2270

श्री फतह-प्रताप गुरुदेव स्मृति पुष्प: आगम-अनुयोग ग्रन्थ माला पुष्प : ४

चरणानुयोग

[प्रथम खण्ड]

[जैन आगमों में आचारधर्म-विषयक सामग्री का प्रामाणिक संकलन]

प्रधान–सम्पादक

अनुयोग प्रवर्तक

मुनिश्री कन्हैयालाल जी "कमल"

संयोजक

श्री विनयमुनिजी "वागीश"

सम्पादिका

महासती श्री मुक्तिप्रभाजी
एम. ए. पी-एच. डी.

महासती श्री दिव्यप्रभाजी
एम. ए. पी-एच. डी.

सह सम्पादिका

महासती श्री अनुपमाजी
एम. ए.

महासती श्री भव्यसाधनाजी

महासती श्री विरतिसाधनाजी
बी. ए.

प्रधान परामर्शक

पंडित श्री दलसुखभाई मालवणिया

प्रकाशक

आगम अनुयोग ट्रस्ट,

अहमदाबाद-३८००१३

प्रकाशक के बोल

भारतीय संस्कृति का सर्वमान्य सूत्र है—आचार : प्रथमो धर्म :—आचार प्रथम धर्म है। जैन परम्परा में "आयारो पढमो अंगो"—आचार प्रथम अंग है—अंग का अर्थ धर्मशास्त्र तो है ही, किन्तु व्यापक अर्थ में लेवें तो जीवन का मुख्य अंग भी है। भारतीय आगमों में मानवता का जितना महत्व कहा है उससे भी कहीं अधिक महत्व साधक जीवन में आचार धर्म का कहा है।

प्राचीन जैन परम्परा में "आचार" के लिए "चरण" शब्द का प्रयोग होता था। चरण याने चरित्र। मनुष्य के आचार धर्म की मर्यादा, संयम-साधना का व्यवस्थित मार्ग—चरण है।

जैन श्रुत ज्ञान—शास्त्रों को चार अनुयोगों में विभक्त किया गया है—१. चरणानुयोग २. धर्म कथानुयोग ३. गणितानुयोग एवं ४. द्रव्यानुयोग। इनमें धर्म कथानुयोग तथा गणितानुयोग का प्रकाशन हम कर चुके हैं। चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं विशाल ग्रन्थ है। चरणानुयोग ग्रन्थ बहुत बड़ा होगा इसलिये इसे पाठकों की सुविधा के लिये दो भागों में प्रकाशित किया जा रहा है।

द्वितीय भाग भी पाठकों के हाथों में पहुँच रहा है, और द्रव्यानुयोग का सम्पादन भी पूज्य गुरुदेव श्री कन्हैयालाल जी महाराज "कमल" सम्पन्न करवा रहे हैं।

चरणानुयोग ग्रन्थराज पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है, साथ ही हम अपने लक्ष्य को अब बहुत शीघ्र सम्पन्न कर सकेंगे इसका विश्वास पाठकों को दिलाते हैं।

अनुयोग सम्पादन—प्रकाशन कार्य हेतु गुरुदेव श्री कन्हैयालालजी म० "कमल" ने अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया है। ऐसे जीवन दानी श्रुत उपासक सन्त के प्रति आभार व्यक्त करना मात्र एक-औपचारिकता होगी, आने वाली पीढ़ियाँ युग-युग तक उनका उपकार स्मरण कर श्रुत का बहुमान करेंगी यही उनके प्रति सच्ची कृतज्ञता होगी। इसी के साथ गुरुदेव श्री के परम सेवाभावी कार्य दक्ष श्री विनय मुनि जी "वागीश" एवं स्थानकवासी जैनसमाज की प्रख्यात विदुषी स्व० महासती उज्ज्वल कुमारी जी की सुशिष्या महासती श्री मुक्तिप्रभा जी, महासती श्री दिव्यप्रभा जी तथा उनकी श्रुतानुरागी शिष्याओं की सेवायें इस कार्य में समर्पित है—यह हम सब का अहोभाग्य है।

जैन दर्शन के विख्यात विद्वान श्री दलसुखभाई मालवणिया भारतीय प्राच्य विद्याओं के प्रतिनिधि विद्वान है, उनका आत्मीय सहयोग अनुयोग सम्पादन कार्य में प्रारम्भ से ही रहा है। उन्होंने अत्यधिक उदारता व निःस्वार्थ भावना से इस कार्य में मार्गदर्शन किया, सहयोग दिया, समय-समय पर अपना मूल्यवान परामर्श भी दिया—अतः उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना हमारा कर्तव्य है।

दुरुह आगम कार्य को प्रेस की दृष्टि से व्यवस्थित कर सुन्दर शुद्ध मुद्रण के लिए जैन दर्शन के अनुभवी विद्वान श्रीचन्द जी सुराना के हम आभारी हैं जिन्होंने पूर्व दोनों अनुयोगों की भाँति इस ग्रन्थ के मुद्रण में भी पूर्ण सद्भावना के साथ सहयोग किया है।

ट्रस्ट के सहयोगी सदस्य मण्डल के भी हम आभारी हैं जिनके आर्थिक अनुदान से इतना विशाल व्यय साध्य कार्य हम सम्पन्न करने में समर्थ हुए हैं।

हमारे ट्रस्ट के मन्त्री अनुभवी एवं सेवाभावी श्री हिम्मतभाई शामलदास शाह अब काफी वृद्ध हो गये हैं, फिर भी वे समय-समय पर अपने अनुभव आदि का लाभ दे रहे हैं। हमारे कार्यकुशल सहयोगी श्री जयन्ती भाई चन्दुलाल संघवी एवं अन्य सभी सहयोगी जनों का स्मरण कर हम शासनदेव से प्रार्थना करते हैं—यह श्रुत ज्ञान की अमर ज्योति सबके जीवन को प्रकाशमय करें।

सम्पादित सामग्री की प्रेस कोपी करने का विशाल कार्य श्री राजेन्द्र मेहता शाहपुर वाले श्री राजेश भण्डारी जोधपुर वाले ने तथा अन्य कार्यकर्ताओं ने श्रद्धा भक्ति एवं विवेकपूर्वक किया है इसलिए ट्रस्ट की ओर से उनका हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

विनीत—

बलदेव भाई डोसाभाई पटेल अध्यक्ष

सम्पादकीय

—मुनिश्री कन्हैयालाल 'कमल'

"चरण" प्रवृत्ति एवं पुरुषार्थ का प्रतीक है। "चरण" में मर्यादा एवं सम्यक्‌विवेक का योग होने पर वह आचरण (आङ्—मर्यादायां) कहलाता है। आचरण अर्थात् आचार-धर्म।

चरणानुयोग का अर्थ होता है आचार धर्म सम्बन्धी नियमावली, मर्यादा आदि की व्याख्या एवं संग्रह।

प्रस्तुत चरणानुयोग ग्रन्थ अपनी इसी अभिधा में सार्थक है।

जैन साहित्य में "अनुयोग" के दो रूप मिलते हैं।

१. अनुयोग-व्याख्या

२. अनुयोग वर्गीकरण

किसी भी पद आदि की व्याख्या करने, उसका हार्द समझने/समझाने के लिये १. उपक्रम, २. निक्षेप, ३. अनुगम और ४. नय-इन चार शैलियों का आश्रय लिया जाता है। **अनुयोजनमनुयोगः**—(अणुजोअणमणुओगो) सूत्र का अर्थ के साथ सम्बन्ध जोड़कर उसकी उपयुक्त व्याख्या करना—इसका नाम है—अनुयोग व्याख्या (जम्बू० वृत्ति)

अनुयोग-वर्गीकरण का अर्थ है—अभिधेय (विषय) की दृष्टि से शास्त्रों का वर्गीकरण करना। जैसे अमुक-अमुक आगम, अमुक अध्ययन, अमुक गाथा—अमुक विषय की है। इस प्रकार विषय-वस्तु की दृष्टि से वर्गीकरण करके आगमों का गम्भीर अर्थ समझने की शैली—अनुयोग वर्गीकरण पद्धति है।

प्राचीन आचार्यों ने आगमों के गम्भीर अर्थ को सरलता पूर्वक समझाने के लिये आगमों का चार अनुयोगों में वर्गीकरण किया है।

१—चरणानुयोग—आचार सम्बन्धी आगम

२—धर्मकथानुयोग—उपदेशप्रद कथा एवं दृष्टान्त सम्बन्धी आगम

३—गणितानुयोग—चन्द्र-सूर्य-अन्तरिक्ष विज्ञान तथा भू ज्ञान के गणित विषयक आगम

४—द्रव्यानुयोग—जीव, अजीव आदि नव तत्वों की व्याख्या करने वाले आगम।

अनुयोग वर्गीकरण के लाभ

यद्यपि अनुयोग वर्गीकरण पद्धति आगमों के उत्तरकालीन चिन्तक आचार्यों की देन है, किन्तु यह आगम पाठी, श्रुताभ्यासी मुमुक्षु के लिए बहुत उपयोगी है। आज के युग में तो इस पद्धति की अत्यधिक उपयोगिता है।

विशाल आगम साहित्य का अध्ययन कर पाना सामान्य व्यक्ति के लिये बहुत कठिन है। इसलिए जब जिस विषय का अनुसन्धान करना हो, तब तद्‌विषयक आगम पाठ का अनुशीलन करके जिज्ञासा का समाधान करना—यह तभी सम्भव है, जब अनुयोग पद्धति से सम्पादित आगमों का शुद्ध संस्करण उपलब्ध हो।

अनुयोग पद्धति से आगमों का स्वाध्याय करने पर अनेक जटिल विषय स्वयं समाहित हो जाते हैं, जैसे—

१. आगमों का किस प्रकार विस्तार हुआ है—यह स्पष्ट हो जाता है।

२. कौन-सा पाठ आगम संकलन काल के पश्चात् प्रविष्ट हुआ है?

३. आगम पाठों में आगम लेखन से पूर्व तथा पश्चात् वाचना भेद के कारण तथा देश-काल के व्यवधान के कारण लिपिक काल में क्या अन्तर पड़ा है?

४. कौन-सा आगम पाठ स्व-मत का है, कौन-सा परमत की मान्यता वाला है ? तथा भ्रान्तिवश परमत मान्यता वाला कौन-सा पाठ आगम में संकलित हो गया है।

इस प्रकार के अनेक प्रश्नों के समाधान इस शैली से प्राप्त हो जाते हैं जिनका आधुनिक शोध छात्रों/प्राच्य विद्या के अनुसन्धाता विद्वानों के लिये बहुत महत्व है।

अनुयोग कार्य का प्रारम्भ :—

लगभग आज से ५० वर्ष पूर्व मेरे मन में अनुयोग-वर्गीकरण पद्धति से आगमों का संकलन करने की भावना जगी थी। श्री दलसुख भाई मालवणिया ने उस समय मुझे मार्ग दर्शन दिया, प्रेरणा दी और निःस्वार्थ/निस्पृह भाव से आत्मिक सहयोग दिया। उनकी प्रेरणा व सहयोग का सम्बल पाकर मेरा संकल्प दृढ़ होता गया और मैं इस श्रुत-सेवा में जुट गया। आज के अनुयोग ग्रन्थ उसी बीज के मधुर फल हैं।

सर्वप्रथम गणितानुयोग का कार्य स्वर्गीय गुरुदेव श्री फतेहचन्दजी म. सा. के सानिध्य में प्रारम्भ किया था। किन्तु उसका प्रकाशन उनके स्वर्गवास के बाद हुआ।

कुछ समय बाद धर्मकथानुयोग का सम्पादन प्रारम्भ किया। वह दो भागों में परिपूर्ण हुआ। तब तक गणितानुयोग का पूर्व संस्करण समाप्त हो चुका था तथा अनेक स्थानों से माँग आती रहती थी। इस कारण धर्मकथानुयोग के बाद पुनः गणितानुयोग का संशोधन प्रारम्भ किया, संशोधन क्या, लगभग ५० प्रतिशत नया सम्पादन ही हो गया। उसका प्रकाशन पूर्ण होने के बाद चरणानुयोग का यह संकलन प्रस्तुत है।

कहावत है "श्रेयांसि बहु विघ्नानि" शुभ व उत्तम कार्य में अनेक विघ्न आते हैं। विघ्न-बाधाएँ हमारी दृढ़ता व धीरता, संकल्प शक्ति व कार्य के प्रति निष्ठा की परीक्षा है। मेरे जीवन में भी ऐसी परीक्षाएँ अनेक बार हुई हैं। अनेक बार शरीर अस्वस्थ हुआ, कठिन बीमारियाँ आईं। सहयोगी भी कभी मिले, कभी नहीं, किन्तु मैं अपने कार्य में जुटा रहा।

सम्पादन में सेवाभावी विनय मुनि "वागीश" भी मेरे साथ सहयोगी बने, वे आज भी शारीरिक सेवा के साथ-साथ मानसिक दृष्टि से भी मुझे परम साता पहुँचा रहे हैं और अनुयोग सम्पादन में भी सम्पूर्ण जागरूकता के साथ सहयोग कर रहे हैं।

खम्भात सम्प्रदाय के आचार्य प्रवर श्री कान्ति ऋषि जी म० ने मुझ पर अनुग्रह करके व्याकरणाचार्य श्रीमहेन्द्र ऋषि जी म० को श्रुत-सेवा में सहयोग करने के लिये भेजा था अतः मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ।

सम्पादकीय-सहयोग :—

सौभाग्य से इस श्रमसाध्य महाकार्य में श्री तिलोक मुनिजी का अप्रत्याशित सहयोग मुझे प्राप्त हुआ है।

इनकी अनन्य श्रुत भक्ति और संयम साधना देखकर ऐसा कौन होगा जो प्रभावित न हो, श्रमण जीवन की वास्तविक श्रमनिष्ठा आपकी रग-रग में समाहित है। आपका चिन्तन और आपके सुझाव मौलिक होते हैं।

गत सात वर्षों से विदुषी महासती डा० मुक्तिप्रभाजी, डा० दिव्यप्रभा जी एवं उनकी साक्षर शिष्या परिवार का ऐसा अनुपम सुयोग मिला की अनुयोग का कार्य आगे बढ़ता गया। मुझे अतीव प्रसन्नता है कि महासती मुक्तिप्रभाजी आदि विदुषी श्रमणियों ने इस कार्य में तन्मय होकर जो सहयोग किया है उसका उपकार आगम अभ्यासी जन युग-युग तक स्मरण करेंगे। इनकी रत्नत्रय साधना सर्वदा सफल हो, यही मेरा हार्दिक आशीर्वाद है।

अनुयोग सम्पादन कार्य में प्रारम्भ में तो अनेक बाधाएँ आईं। जैसे आगम के शुद्ध संस्करण की प्रतियों का अभाव, प्राप्त पाठों में क्रम भंग और विशेषकर "**जाव**" शब्द का अनपेक्षित/अनावश्यक प्रयोग। फिर भी धीरे-धीरे जैसे आगम सम्पादन कार्य में प्रगति हुई वैसे-वैसे कठिनाईयाँ भी दूर हुईं। महावीर जैन विद्यालय बम्बई, जैन विश्व भारती लाडनूं तथा आगम प्रकाशन समिति ब्यावर आदि आगम प्रकाशन संस्थाओं का यह उपकार ही मानना चाहिए कि आज आगमों के सुन्दर उपयोगी संस्करण उपलब्ध हैं, और अधिकांश पूर्वापेक्षा शुद्ध सुसम्पादित हैं। यद्यपि आज भी उक्त संस्थाओं के निदेशकों की आगम सम्पादन शैली पूर्ण वैज्ञानिक या जैसी चाहिए वैसी नहीं है। लिपि दोष, लेखक के मतिभ्रम व वाचना भेद आदि कारणों से आगमों के पाठों में अनेक स्थानों पर व्युत्क्रम दिखाई देते हैं। पाठ-भेद तो है ही, "**जाव**" शब्द कहीं अनावश्यक जोड़ दिया है जिससे अर्थ वैपरीत्य भी हो जाता है, कहीं लगाया नहीं है और कहीं पूरा पाठ देकर भी "**जाव**" लगा दिया गया है। प्राचीन प्रतियों में इस प्रकार के लेखन-दोष रह गये हैं जिससे आगम का उपयुक्त अर्थ करने व प्राचीन पाठ परम्परा का बोध कराने में कठिनाई होती है। विद्वान् सम्पादकों को इस ओर ध्यान देना चाहिए था। प्राचीन प्रतियों में

उपलब्ध पाठ ज्यों का त्यों रख देना—अडिग श्रुत श्रद्धा का रूप नहीं है, हमारी श्रुत-भक्ति श्रुत को व्यवस्थित एवं शुद्ध रूप में प्रस्तुत करने में है। कभी-कभी एक पाठ का मिलान करने व उपयुक्त-पाठ निर्धारण करने में कई दिन व कई सप्ताह भी लग जाते हैं किन्तु विद्वान अनुसंधाता उसको उपयुक्त रूप में ही प्रस्तुत करता है, आज इस प्रकार के आगम-सम्पादन की आवश्यकता है। अस्तु,

मैं अपनी शारीरिक अस्वस्थता के कारण, विद्वान सहयोगी की कमी के कारण, तथा परिपूर्ण साहित्य की अनुपलब्धि तथा समय के अभाव के कारण जैसा संशोधित शुद्ध पाठ देना चाहता था वह नहीं दे सका, फिर भी मैंने प्रयत्न किया है कि पाठ शुद्ध रहे, लम्बे-लम्बे समास पद जिनका उच्चारण दुरूह होता है, तथा उच्चारण करते समय अनेक आगम पाठी भी उच्चारण-दोष से ग्रस्त हो जाते हैं। वैसे दुरूह पाठों को सुगम रूप में प्रस्तुत कर छोटे-छोटे पद बनाकर दिया जाय व ठीक उसके सामने ही उनका अर्थ दिया जाय जिससे अर्थ बोध सुगम हो। यद्यपि जिस संस्करण का मूल पाठ लिया है हिन्दी अनुवाद भी प्रायः उन्हीं का लिया है फिर भी अपनी जागरूकता बरती है। कहीं-कहीं उचित संशोधन भी किया है। उपर्युक्त तीन संस्थाओं के अलावा आगमोदय समिति रतलाम तथा सुत्तागमे (पुप्फभिक्खु जी) के पाठ भी उपयोगी हुए हैं। पूज्य अमोलक ऋषि जी म० एवं आचार्य श्री आत्माराम जी म० द्वारा सम्पादित अनुदित आगमों का भी यथावश्यक उपयोग किया है।

मैं उक्त आगमों के सम्पादक विद्वानों व श्रद्धेय मुनिवरों के प्रति आभारी हूँ। प्रकाशन संस्थाएँ भी उपकारक हैं। उनका सहयोग कृतज्ञ भाव से स्वीकारना हमारा कर्त्तव्य है।

अब प्रस्तुत ग्रन्थ चरणानुयोग के विषय में भी कुछ कहना चाहता हूँ।

चरणानुयोग :—

आगमों का सार आचार है—**अंगाणं किं सारं ? आयारो !** —आचारांग आगम तो अंगों का सारभूत आगम है ही, किन्तु आचार—अर्थात् "चारित्र" यह आगम का, श्रुत का सार है। **नाणस्स फलं विरति:—"** ज्ञान का फल विरति है। श्रुत का सार चारित्र है। अतः चारित्र सम्बन्धी विवरण आगमों में यत्र-तत्र बहुत अधिक मात्रा में मिलता है। यूं भी कहा जा सकता है कि "चारित्र" का विषय सबसे विशाल तथा व्यापक है। धर्मकथानुयोग के समान चरणानुयोग भी वर्णन की दृष्टि से विस्तृत है। अतः इसकी सामग्री अनुमान से अधिक हो गई है। इसलिए इसे दो भागों में विभक्त किया गया है।

"आचार" के प्रमुख पाँच विभाग हैं—१. ज्ञानाचार, २. दर्शनाचार, ३. चारित्राचार, ४. तपाचार, ५. वीर्याचार। वर्णन की दृष्टि से चारित्राचार सबसे विशाल है। प्रस्तुत भाग में ज्ञानाचार एवं दर्शनाचार का वर्णन तो २०४ पृष्ठों में ही आ गया है। चारित्राचार का वर्णन ५४० पृष्ठ होने पर भी पूर्ण नहीं हुआ है। पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति (अष्ट प्रवचन माता) इनका वर्णन ही प्रथम भाग में पूर्ण हो सका है। संयम, समाचारी, संघ व्यवस्था, श्रावकाचार आदि अनेक महत्वपूर्ण विषय दूसरे भाग में प्रकाशित हो रहे हैं। साथ ही चरणानुयोग की तुलनात्मक विस्तृत प्रस्तावना, शब्द सूची, सन्दर्भ स्थलों की निर्देशिका आदि द्वितीय भाग में दिये जा रहे हैं।

मैंने इस बात का भी ध्यान रखा है कि जो विषय आगमों में अनेक स्थानों पर आया है, वहाँ एक आगम का पाठ मूल में देकर बाकी आगम पाठ तुलना के लिये टिप्पणियों में दिये जायें। जिससे तुलनात्मक दृष्टि से पढ़ने वालों को उपयोगी हो। अनेक पाठों के अर्थ में भ्रान्ति होती है, वहाँ टीका, भाष्य आदि का सहारा लेकर पाठ का अर्थ भी स्पष्ट किया गया है, व्याख्या का अन्तर भी दर्शाया है। कुछ पाठों की पूर्ति के लिए वृत्ति, चूर्णि, भाष्य आदि का भी उपयोग किया है।

इस प्रकार पूरी सावधानी बरती है कि जो विषय जहाँ है, वह अपने आप में परिपूर्ण हो, इसलिए उसके समान, पूरक तथा भाव स्पष्ट करने वाले अन्य आगमों के पाठ भी अंकित किये हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि आगम ज्ञान के प्रति रुचि, श्रद्धा व भक्ति रखने वाले पाठकों को यह चरणानुयोग; उनकी जिज्ञासा को तृप्त करेगा, ज्ञान की वृद्धि करेगा तथा श्रुत भक्ति को और अधिक सुदृढ़ बनायेगा।

सम्पादित-साहित्य का शुद्ध रूप में मुद्रण हो—यह भी परम आवश्यक है। अनुयोग ग्रन्थों के शुद्ध व सम्यक् रीति से मुद्रण कार्य में श्रीयुत श्रीचन्द जी सुराना "सरस" का भी महत्वपूर्ण सहयोग रहा है।

अन्त में इस महान् कार्य में प्रत्यक्ष-परोक्ष सहयोग देने वाले सभी सहयोगी जनों के प्रति हार्दिक भाव से कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

अनुक्रमणिका

चरणानुयोग—भाग १

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
मंगल सूत्र	१–१८	१–१०
नमस्कार सूत्र	१	१
नमस्कार मन्त्र का महत्व		१
पंचपद वन्दन सूत्र	२	१
मंगल सूत्र	३	१
उत्तम सूत्र		१
शरण सूत्र		१
चौबीस तीर्थंकरों के नाम	४	३
चतुर्विंशति संस्तव सूत्र	५	३
महावीर वन्दन सूत्र	६	४
श्री वीर-स्तुति	७	४
वीर शासन स्तुति	८	७
गणधर वन्दन सूत्र	९	७
गणधर नाम	१०	७
संघ स्तुति	११	७
संघ वन्दन सूत्र	१२	७
(१) संघ को नगर की उपमा		७
(२) संघ को चक्र की उपमा		७
(३) संघ को रथ की उपमा		८
(४) संघ को कमल की उपमा		८
(५) संघ को चन्द्र की उपमा		८
(६) संघ को सूर्य की उपमा		८
(७) संघ को समुद्र की उपमा		८
(८) संघ को मेरु की उपमा		८
श्रुत नमस्कार सूत्र		९
श्रुत देवता नमस्कार सूत्र	१३	९
गणिपिटक नमस्कार सूत्र	१४	९
लिपि नमस्कार सूत्र	१५	९
वन्दन फल सूत्र	१६	१०
चतुर्विंशतिस्तव फल सूत्र	१७	१०

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
स्तव-स्तुति मंगल फल सूत्र	१८	१०
धर्म प्रज्ञापना	१९–६९	११–५०
भगवान महावीर वर्णन	१९	११–१५
धर्म स्वरूप की जिज्ञासा	२०	१५
भाव लोक के प्रकार	२१	१५
भव की अपेक्षा से ज्ञानादि की प्ररूपणा	२२	१५
छह प्रकार के भाव	२३	१६
भाव प्रमाण प्ररूपण	२४	१७
ज्ञान गुण प्रमाण	२५–२९	१८–२३
दर्शन गुण प्रमाण	३०	२३
चारित्र गुण प्रमाण	३१	२३
नय प्रमाण	३२	२४
प्रस्थक दृष्टान्त	—	२४
वसति दृष्टान्त	—	२५
प्रदेश दृष्टान्त	—	२६
धर्म का स्वरूप	३३–६९	३०–५०
अविरोध धर्म	३४	३०
आज्ञा धर्म	३५	३०
धर्म के परिणाम	३६	३०
धर्म के भेद-प्रभेद	३७–३९	३०–३३
धर्म का माहात्म्य	४०–४१	३३–३४
धर्म के आराधक	४२	३४–३६
धर्म के अनधिकारी	४३	३६
अनुत्तर धर्म की आराधना	४४	३६
धर्म को द्वीप की उपमा	४५	३७
केवलि प्रज्ञप्त धर्म की अप्राप्ति	४६	३७
केवलि प्रज्ञप्त धर्म की प्राप्ति	४७–४८	३७–३९
छद्मस्थ—यावत्—परमावधियों का कम से सिद्ध होने न होने का प्ररूपण	४९	३९
केवली का मोक्ष और सम्पूर्ण ज्ञानित्व	५०	४०
केवलि प्रज्ञप्त धर्म श्रवण के अनुकूल वय	५१	४०

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
केवलि प्रज्ञप्त धर्म श्रवण के अनुकूल काल	५२	४०
धर्म आराधना के अनुकूल क्षेत्र	५३	४०
धर्म का परित्याग करने वाले की और अधर्म को स्वीकार करने वाले की गाड़ीवान से तुलना	५४	४१
धर्म-आराधक की द्यूतकार से तुलना	५५	४१
अधर्म करने वाले की निष्फल रात्रियाँ	५६	४१
धर्म करने वाले की सफल रात्रियाँ		४१
धर्म पाथेय से सुखी अपाथेय से दुःखी	५७	४१
दुर्लभ-धर्म	५८–५९	४२–४५
धर्म साधना में सहायक	६०	४५
श्रद्धा के स्वरूप का प्ररूपण	६१	४५
करण के प्रकार	६२	४५
उपक्रम के भेद	६३	४५
व्यवसाय (अनुष्ठान) के प्रकार	६४	४६
संयतादि की धर्मादि में स्थिति	६५	४६
प्रत्युपकार दुष्कर, प्रत्युपकार सुकर	६६	४८
धर्माश्रित व्यवहार	६७	४९
चार-चार प्रकार के धार्मिक और अधार्मिक पुरुष	६८	४९
धर्म निन्दाकरण प्रायश्चित्त	६९	५०
अधर्म प्रशंसाकरण प्रायश्चित्त		५०
आचार-प्रणधि	७०–८०	५१–५४
आचार धर्म प्रणिधी	७०	५१
आचार के प्रकार	७१	५१
पाँच उत्कृष्ट	७२	५१
चार प्रकार का मोक्ष मार्ग	७३	५१
आराधना के प्रकार	७४	५१
आराधना के फल की प्ररूपणा	७५	५२
तीन प्रकार की बोधि	७६	५३
तीन प्रकार के बुद्ध		५३
तीन प्रकार के मोह	७७	५३
तीन प्रकार के मूर्ख	७८	५३
आचार-समाधि	७९	५३
कल्पस्थिति (आचार-मर्यादा)	८०	५४

ज्ञानाचार : सूत्र ८१ से २०८, पृष्ठ ५५-१२४

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
चार प्रकार की श्रुत समाधि	८१	५५
आठ प्रकार के ज्ञानाचार	८२	५५
ज्ञान की उत्पत्ति के अनुकूल वय	८३	५५
ज्ञान की उत्पत्ति के अनुकूल काल	८४	५५
जिन प्रवचन सुनकर आभिनिबोधिक ज्ञान-यावत्-केवलज्ञान की उत्पत्ति और अनुत्पत्ति	८५	५६
जिन प्रवचन सुने बिना आभिनिबोधिक ज्ञान यावत् केवलज्ञान की उत्पत्ति और अनुत्पत्ति	८६	५७
विभंगज्ञान की उत्पत्ति	८७	५८
ज्ञान की प्रधानता	८८	५८
ज्ञान से संयम का परिज्ञान	८९	५९
ज्ञान से संसार भ्रमण नहीं	९०	५९
श्रुत आराधना का फल	९१	५९
ज्ञान से निर्वाण प्राप्ति	९२	५९
प्रथम : काल ज्ञानाचार	९३–१०५	६२–६९
काल प्रतिलेखना का फल	९३	६२
स्वाध्याय काल प्रतिलेखना	९४	६२
स्वाध्याय ध्यानादि का काल विवेक	९५	६२
व्यतिकृष्ट काल में निर्ग्रन्थ के लिए स्वाध्याय निषेध	९६	६२
निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनी के लिए स्वाध्याय विधान	९७	६३
निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों हेतु स्वाध्याय काल विधान	९८	६३
निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों हेतु अस्वाध्याय काल विधान	९९	६३
चार प्रकार का अस्वाध्याय काल	१००	६३
चार महाप्रतिपदाओं में स्वाध्याय निषेध	१०१	६३
दस प्रकार के औदारिक सम्बन्धी अस्वाध्याय	१०२	६५
शारीरिक कारण होने पर स्वाध्याय का निषेध	१०३	६६
दस प्रकार के अन्तरिक्ष अस्वाध्याय	१०४	६७
अकाल स्वाध्याय करने और काल में स्वाध्याय नहीं करने का प्रायश्चित्त	१०५	६८–६९
द्वितीय : विनय ज्ञानाचार	१०६–१४५	७०–९९
विनयाचार कहने की प्रतिज्ञा	१०६	७०
विनय प्रयोग	१०७	७०
अविनय का फल	१०८	७१
विनय को मूल की उपमा	१०९	७२
आचार्य की विनय-प्रतिपत्ति	११०	७२
शिष्य की विनय-प्रतिपत्ति	१११	७३
विनय के भेद-प्रभेद	११२	७५
विनय प्रतिपन्न पुरुष	११३	८०
विनीत के लक्षण	११४	८१
आठ प्रकार के शिक्षाशील	११५	८२

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
पन्द्रह प्रकार के सुविनीत	११६	८२
शिष्य के करणीय कार्य	११७	८२
गुरु के समीप बैठने की विधि	११८	८३
प्रश्न पूछने की विधि	११९	८३
शिष्य के प्रश्न पर गुरु द्वारा उत्तर	१२०	८४
गुरु के प्रति शिष्य के कर्तव्य	१२१	८४
शिष्य के प्रति गुरु के कर्तव्य	१२२	८४
अनुशासन पालन में शिष्य के कर्तव्य	१२३	८४
गुरु के अनुशासन का शिष्य पर प्रभाव	१२४	८५
कुपित गुरु के प्रति शिष्य के कर्तव्य	१२५	८५
चार प्रकार की विनय-समाधि	१२६	८५
विनय का सुपरिणाम	१२७	८६
अविनीत के लक्षण	१२८	८६
तीन प्रकार के अविनय	१२९	८७
चौदह प्रकार के अविनीत	१३०	८७
अविनीत का स्वरूप	१३१	८७
गुरु आदि के प्रत्यनीक	१३२	८८
अविनीत की उपमाएँ	१३३	८९
अविनीत और विनीत का स्वरूप	१३४	९१
अविनीत-सुविनीत के लक्षण	१३५	९१
अविनीत और सुविनीत के आचरण का प्रभाव	१३६	९२
विनीत-अविनीत का स्वगत चिन्तन	१३७	९३
शिक्षा प्राप्त न होने के पाँच कारण	१३८	९३
शिक्षा के अयोग्य	१३९	९३
तेतीस आशातनाएँ	१४०	९३
तेतीस आशातना (दूसरा प्रकार)	१४१	९६
आशातना के फल का निरूपण	१४२	९८
आशातना के प्रायश्चित्त	१४३–१४४	९९
अविनय करने का प्रायश्चित्त	१४५	९९
तृतीय : बहुमान ज्ञानाचार	१४६–१५२	१००–११०
आचार्यों की महिमा	१४६	१००
आचार्य की सेवा का फल	१४७	१००
वृक्ष के भेद से आचार्य के भेद	१४८	१००
फल भेद से आचार्य के भेद	१४९	१०१
करंडिया के समान आचार्य	१५०	१०१
आचार्य उपाध्याय की सिद्धि	१५१	१०२
आचार्य की उपासना	१५२	१०२
गुरु-पूजा	१५३	१०२
तथारूप श्रमणों माहणों की पर्युपासना का फल	१५४	१०२
गुरु और साधर्मिक शुश्रूषा का फल	१५५	१०३
गुरुकुलवास का माहात्म्य	१५६	१०३
प्रश्न करने की विधि	१५७	१०६
उत्तर विधि	१५८	१०६
समाधि का विधान	१५९	१०८
श्रुतधर के प्रकार	१६०	१०९
बहुश्रुत का स्वरूप	१६१	१०९
अबहुश्रुत का स्वरूप	१६२	११०
चतुर्थ : उपधानाचार		१११—१११
शिक्षा के योग्य	१६३	१११
पंचम : अनिन्हवाचार		१११—१११
असाधु का स्वरूप	१६४	१११
छठा व्यंजन-ज्ञानाचार, सातवाँ अर्थ-ज्ञानाचार		
आठवाँ तदुभय-ज्ञानाचार		११२—११२
सूत्रार्थ का न छिपाना	१६५	११२
ज्ञानाचार : परिशिष्ट	१६६–२०८	११३–१२३
ज्ञान और आचार भेद से पुरुषों के प्रकार	१६६	११३
ज्ञानी और अज्ञानी	१६७–१६८	११४
ज्ञान-दर्शन की उत्पत्ति और अनुत्पत्ति	१६९	११४
अतिशय युक्त ज्ञान-दर्शन की उत्पत्ति नहीं होने के कारण	१७०	११४
अतिशय युक्त ज्ञान-दर्शन की उत्पत्ति के कारण	१७१	११५
ज्ञान-दर्शनादि की वृद्धि करने वाले और हानि करने वाले	१७२	११५
अवधिज्ञान के क्षोभक	१७३	११६
केवलज्ञान-दर्शन के अक्षोभक	१७४	११६
ज्ञानसम्पन्न और क्रियासम्पन्न	१७५	११६
ज्ञान-युक्त और आचार-युक्त	१७६	११७
ज्ञान-युक्त और ज्ञान-परिणत	१७७	११७
ज्ञान युक्त और वेष युक्त	१७८	११८
ज्ञान-युक्त और शोभा युक्त, अयुक्त	१७९	११८
पाँच प्रकार की परिज्ञा	१८०	११८
शरीर सम्पन्न और प्रज्ञा सम्पन्न	१८१	११८
ऋजु-ऋजुप्रज्ञ और वक्र-वक्रप्रज्ञ	१८२	११८
दीन और अदीन, दीन प्रज्ञावान और अदीन प्रज्ञावान	१८३	११९
आर्य और अनार्य, आर्य प्रज्ञावान और अनार्य प्रज्ञावान	१८४	११९
सत्य वक्ता और असत्य वक्ता, सत्य प्रज्ञा और असत्य प्रज्ञा	१८५	११९

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
शील सम्पन्न और दुश्शील सम्पन्न, शील प्रज्ञावान और दुश्शील प्रज्ञावान	१८६	११६
शुद्ध और शुद्ध प्रज्ञावान, अशुद्ध और अशुद्ध प्रज्ञावान	१८७	११६
वचन दाता अदाता, ग्रहिता, अग्रहिता	१८८	१२०
सूत्रार्थ ग्राहक अग्राहक	१८९	१२०
प्रश्न कर्ता, अकर्ता	१९०	१२०
सूत्रार्थ व्याख्याता, अव्याख्याता	१९१	१२०
श्रुत और शरीर से पूर्ण अथवा अपूर्ण	१९२	१२१
श्रुत से पूर्ण और अपूर्ण, पूर्ण सदृश या अपूर्ण सदृश	१९३	१२१
श्रुत से पूर्ण और अपूर्ण, श्रमण वेष से पूर्ण और अपूर्ण	१९४	१२१
श्रुत से पूर्ण और अपूर्ण, उपकारी और अपकारी	१९५	१२१
श्रुत से पूर्ण और अपूर्ण, श्रुत के दाता और अदाता	१९६	१२१
श्रुत से और शरीर से उन्नत और अवनत	१९७	१२१
जाति सम्पन्न, जातिहीन, श्रुत सम्पन्न, श्रुतहीन	१९८	१२२
कुल सम्पन्न और कुलहीन, श्रुत सम्पन्न और श्रुतहीन	१९९	१२२
सुरूप और कुरूप, श्रुत सम्पन्न तथा श्रुतहीन	२००	१२२
बल सम्पन्न और बल हीन, श्रुत सम्पन्न और श्रुतहीन	२०१	१२२
सूत्रधर, अर्थधर	२०२	१२२
छहों दिशाओं में ज्ञान वृद्धि	२०३	१२३
ज्ञान वृद्धिकर दस नक्षत्र	२०४	१२३
तीन प्रकार के निर्णय	२०५	१२३
तीन प्रकार की निवृत्ति	२०६	१२३
तीन प्रकार का विषयानुराग	२०७	१२३
तीन प्रकार का विषय सेवन	२०८	१२३
ज्ञानाचार तालिका		१२३

दर्शनाचार : सूत्र २०९-३०२ पृ. १२५-२०४

सम्यक्‌दर्शन : स्वरूप एवं प्राप्ति के उपाय

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
दर्शन स्वरूप	२०९	१२५
सम्यक्त्व को द्वीप की उपमा	२१०	१२५
दर्शन का लक्षण	२११	१२५
सम्यक्त्व के आठ (प्रभावना) अंग	२१२	१२६
सम्यक्त्व के दस प्रकार (रुचि)	२१३	१२६
तीन प्रकार के दर्शन	२१४	१२७
दर्शन का फल	२१५	१२७
दर्शनावरणीय के क्षय से बोधिलाभ और क्षय न होने से अलाभ	२१६	१२७
दर्शन प्राप्ति के लिए अनुकूल काल	२१७	१२८
दर्शन प्राप्ति के लिए अनुकूल वय	२१८	१२८
दर्शन प्राप्ति के लिए अनुकूल दिशाएँ	२१९	१२८
पाँच दुर्लभबोधि जीव	२२०	१२९
पाँच सुलभबोधि जीव	२२१	१२९
तीन दुर्बोध्य	२२२	१३०
तीन सुबोध्य	२२३	१३०
सुलभबोधि और दुर्लभबोधि	२२४	१३०
बोधि लाभ में बाधक और साधक		१३१
श्रद्धालु-अश्रद्धालु	२२५	१३१
सम्यग्दर्शी श्रमण का परीषह-जय	२२६	१३१
असम्यग्दर्शी श्रमण का परीषह पराजय	२२७	१३२
सम्यक्त्व पराक्रम के प्रश्नोत्तर	२२८	१३२
संवेग आदि का फल	२२९	१३४
निर्वेद का फल	२३०	१३५
सम्यक्त्वी का विज्ञान	२३१	१३५
सम्यक्त्वदर्शी मुनि	२३२	१३५
सम्यक्त्वदर्शी पाप नहीं करता	२३३	१३५
कूर्म दृष्टान्त	२३४	१३५
सम्यक्त्वी की चार प्रकार की श्रद्धा	२३५	१३६
सम्यक्त्व के पाँच अतिचार	२३६	१३७
प्रव्रज्या पूर्व साधक की निर्वेद दशा	२३७	१३८
एकत्व भावना से प्राप्त निर्वेद	२३८	१४०
अनुस्रोत और प्रतिस्रोत	२३९	१४२
अस्थिरात्मा की विभिन्न उपमाएँ	२४०	१४२
साधुता से पतित की दशा	२४१	१४२
संयम में रत को सुख अरत को दुःख	२४२	१४५
संयम में अस्थिर श्रमण की स्थिरता हेतु चिंतन	२४३	१४५
मिथ्यादर्शन विजय का फल	२४४	१४७
चार अन्यतीर्थिकों की श्रद्धा का निरसन	२४५	१४८
प्रथम तज्जीव तत्शरीरवादी की श्रद्धा का निरसन	२४६	१४९
द्वितीय पंच महाभूतवादी की श्रद्धा का निरसन	२४७	१५३
तृतीय ईश्वरकारणिकवादी की श्रद्धा का निरसन	२४८	१५५
चौथा नियतिवादी की श्रद्धा का निरसन	२४९	१५७

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
लोक रचना के अनेक प्रकार	२५०	१५९
अकारकवाद	२५१	१६०
एकात्मवाद	२५२	१६०
आत्मषष्ठवाद	२५३	१६१
अवतारवाद	२५४	१६१
लोकवाद-समीक्षा	२५५	१६१
पाँच स्कन्धवाद	२५६	१६१
स्व-स्व-प्रवाद-प्रशंसा एवं सिद्धि लाभ का दावा	२५७	१६२
विविध वाद निरसन	२५८	१६२
मिथ्यादर्शनों से संसार का परिभ्रमण	२५९	१६३
मिथ्यात्व अज्ञान अनाचरण	२६०–३०२	१६४–२०४
मिथ्या दर्शन के भेद-प्रभेद	२६०	१६४
मिथ्यात्व के भेद-प्रभेद	२६१—२६२	१६४
मोहमूढ़ को बोध दान	२६३	१६५
मोहमूढ़ की दुर्दशा	२६४	१६५
विवाद—शास्त्रार्थ के छह प्रकार	२६५	१६६
विपरीत प्ररूपणा का प्रायश्चित्त	२६६	१६७
अन्यतीर्थियों के चार वाद	२६७	१६७
क्रियावादियों की श्रद्धा	२६८	१६७
एकान्त क्रियावादी	२६९	१६८
एकान्त क्रियावाद और सम्यक् क्रियावाद प्ररूपक	२७०	१६८
सम्यक् क्रियावाद के प्रतिपादक और अनुगामी	२७१	१७०
अक्रियावादी का स्वरूप	२७२	१७०
अक्रियावादियों की समीक्षा	२७३	१७२
अक्रियावादियों का मिथ्यादण्ड प्रयोग	२७४	१७३
एकान्त ज्ञानवादी	२७५	१७८
अज्ञानवाद	२७६	१७८
एकान्त अज्ञानवाद-समीक्षा	२७७	१८०
एकान्त विनयवादी की समीक्षा	२७८	१८१
पौंडरिक रूपक	२७९	१८१
श्रेष्ठ पुण्डरीक को पाने में असफल चार पुरुष		१८२
उत्तम श्वेत कमल को पाने में सफल निःस्पृह भिक्षु		१८५
दृष्टान्तों के दार्ष्टान्तिक की योजना	२८०	१८६
एकान्त-दृष्टि निषेध	२८१	१८७
पार्श्वस्थादि वन्दन-प्रशंसन प्रायश्चित्त	२८२	१९०
अन्यतीर्थिकों की मोक्ष प्ररूपणा और उसका परिहार	२८३	१९१
अन्यतीर्थिकों की प्ररूपणा और परिहार	२८४	१९२
मोक्ष विशारद का उपदेश	२८५	१९२
निर्वाण ही साध्य है	२८६	१९४
मोक्ष मार्ग में अप्रमत्त भाव से गमन का उपदेश	२८७	१९४
निर्वाण का मूल सम्यग्दर्शन	२८८	१९४
प्रधान मोक्षमार्ग	२८९	१९४
उन्मार्ग से गमन करने वालों की नरक गति	२९०	१९५
निर्वाण मार्ग की साधना	२९१	१९५
सन्मार्ग-उन्मार्ग का स्वरूप	२९२	१९६
मोक्षमार्ग जिज्ञासा	२९३	१९६
निर्वाण मार्ग	२९४	१९७
अनुत्तर ज्ञान दर्शन	२९५	१९७
मैत्री भावना	२९६	१९७
सिद्ध स्थान का स्वरूप	२९७	१९९
सत्यवक्ता, असत्यवक्ता, दर्शनसत्या दर्शन-असत्या	२९८	२००
सुशील और दुश्शील, सुदर्शन और कुदर्शन	२९९	२००
शुद्ध और अशुद्ध, शुद्ध दर्शन वाले कुदर्शन वाले	३००	२००
उन्नत और अवनत, उन्नत दर्शनी और अवनत दर्शनी	३०१	२०१
सरल और वक्र, सरल दृष्टि और वक्र दृष्टि आदि	३०२	२०१
दर्शनाचार परिशिष्ट		२०२–२०३
सम्यक् दर्शन तालिका		२०४

चारित्राचार : सूत्र ३०३ से १३३८ (प्रथम भाग तक)
पृष्ठ २०५ से ७३८ (प्रथम भाग तक)

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
चरण विधि का महत्व	३०३	२०५
संवर की उत्पत्ति और अनुत्पत्ति	३०४	२०५
आश्रव और संवर का विवेक	३०५	२०६
पाँच संवर द्वारों का प्ररूपण	३०६	२१०
पाप स्थानों से जीवों की गुरुता	३०७	२१२
विरति स्थानों से जीवों की लघुता	३०८	२१२
दस प्रकार के असंवर	३०९	२१२
पाँच संवर द्वार	३१०	२१३
महायज्ञ	३११	२१३
दस प्रकार के संवर	३१२	२१३
दस प्रकार की असमाधि	३१३	२१३
दस प्रकार की समाधि		२१३
असंवृत अणगार का संसार परिभ्रमण	३१४	२१४
संवृत अणगार का संसार परिभ्रमण	३१५	२१४
चारित्र सम्पन्नता का फल	३१६	२१५
कुछ लोग चारित्र के जानने से ही मोक्ष मानते हैं	३१७	२१५

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
महाव्रत		
प्रथम महाव्रत : अहिंसा महाव्रत का स्वरूप और साधना	३१८-४१६	२१४-२८८
सभी तीर्थंकरों ने सभी प्राण भूत जीव सत्वों की रक्षा करनी चाहिए ऐसी प्ररूपणा की है	३१८	२१५
प्रथम महाव्रत आराधना प्रतिज्ञा	३१९	२१६
प्रथम महाव्रत और उसकी पाँच भावना	३२०	२१७
अहिंसा के साठ नाम	३२१	२१९
भगवती अहिंसा की आठ उपमाएँ	३२२	२२१
अहिंसा स्वरूप के प्ररूपक और पाठक	३२३	२२२
आत्म सम दृष्टि	३२४	२२४
षड् जीवनिकाय का स्वरूप एवं हिंसा का निषेध	३२५-३४९	२२५-२४८
भगवान ने छह जीवनिकाय प्ररूपित किये हैं	३२५	२२५
छह जीवनिकायों का आरम्भ न करने की प्रतिज्ञा	३२६	२२५
छह जीवनिकायों की हिंसा नहीं करनी चाहिए	३२७	२२६
पृथ्वीकाय का आरम्भ न करने की प्रतिज्ञा	३२८	२२७
सचित्त पृथ्वी पर निषद्या (बैठने) का निषेध	३२९	२२८
अचित्त पृथ्वी पर बैठने का विधान	३२९	२२८
पृथ्वीकायिक जीवों की वेदना जानकर उनके आरम्भ का निषेध किया है	३३०	२२८
अप्कायिक जीवों का आरम्भ न करने की प्रतिज्ञा	३३१	२३१
अप्कायिक जीवों की हिंसा का निषेध	३३२	२३१
तेजस्कायिक जीवों का आरम्भ न करने की प्रतिज्ञा	३३३	२३३
तेजस्कायिक एक अमोघ शस्त्र	३३४	२३४
तेजस्कायिक जीवों की हिंसा का निषेध	३३५	२३४
वायुकायिक जीवों का आरम्भ न करने की प्रतिज्ञा	३३६	२३६
वायुकायिक जीवों की हिंसा का निषेध	३३७	२३७
वनस्पतिकायिक जीवों का आरम्भ न करने की प्रतिज्ञा	३३८	२३८
वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा का निषेध	३३९	२३९
वनस्पति शरीर और मनुष्य शरीर की समानता	३४०	२४०
त्रसकाय का स्वरूप	३४१	२४१
त्रसकाय के भेद-प्रभेद	३४२	२४२
त्रसकाय के अनारम्भ की प्रतिज्ञा	३४३	२४२
त्रसकायिकों की हिंसा का निषेध	३४४-३४५	२४३
आर्य-अनार्य वचनों का स्वरूप	३४६	२४५
प्राणातिपात से बाल जीवों का पुनः पुनः जन्म मरण	३४७	२४६
अयतना का निषेध	३४८	२४७
छः जीवनिकाय की हिंसा का परिणाम	३४९	२४८
षड् जीवनिकाय—हिंसाकरण—प्रायश्चित्त – ३	३५०-३५७	२४८-२५१
सचित्त वृक्ष के मूल में आलोकन आदि के प्रायश्चित्त सूत्र	३५०	२४८
सचित्त वृक्ष पर चढ़ने का प्रायश्चित्त सूत्र	३५१	२४९
त्रस प्राणियों को बाँधने और बन्धन मुक्त करने के प्रायश्चित्त सूत्र	३५२	२४९
पृथ्वीकाय आदि के आरम्भ करने का प्रायश्चित्त सूत्र	३५३	२५०
सचित्त पृथ्वीकायिकादि पर कायोत्सर्ग करने के प्रायश्चित्त सूत्र	३५४	२५०
अंडों वाले काष्ठ पर कायोत्सर्ग करने का प्रायश्चित्त सूत्र	३५५	२५०
अस्थिर थूणी आदि पर कायोत्सर्ग आदि करने का प्रायश्चित्त सूत्र	३५६	२५१
वस्त्र से पृथ्वीकाय आदि निकालने का प्रायश्चित्त सूत्र	३५७	२५१
सदोष-चिकित्सा का निषेध—४	३५८-३६५	२५२-२५४
सदोष चिकित्सा निषेध	३५८	२५२
गृहस्थ से व्रण परिकर्म नहीं कराना चाहिए	३५९	२५३
गृहस्थ से गण्डादि का परिकर्म नहीं कराना चाहिए	३६०	२५३
गृहस्थ से शल्य चिकित्सा नहीं कराना चाहिए	३६१	२५४
गृहस्थ से वैयावृत्य नहीं कराना चाहिए	३६२	२५४
गृहस्थकृत चिकित्सा की अनुमोदना का निषेध	३६३	२५४
गृहस्थ द्वारा ठूंठा आदि निकालने की अनुमोदना का निषेध	३६४	२५४
गृहस्थ द्वारा लीख आदि निकालने की अनुमोदना का निषेध	३६५	२५४
चिकित्साकरण प्रायश्चित्त—५	३६६	२५५
(१) **परस्पर चिकित्सा करने के प्रायश्चित्त**		
व्रण परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	३६६	२५५
परस्पर व्रण की चिकित्सा के प्रायश्चित्त सूत्र	३६७	२५५
गण्डादि परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	३६८	२५६
एक दूसरे के गण्डादि की चिकित्सा करने के प्रायश्चित्त सूत्र	३६९	२५८
कृमि निकालने का प्रायश्चित्त सूत्र	३७०	२६०
एक दूसरे के कृमि निकालने का प्रायश्चित्त सूत्र	३७१	२६०

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
वमन आदि के परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	३७२	२६०
गृहस्थ की चिकित्सा करने का प्रायश्चित्त सूत्र	३७३	२६०
(२) निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनी परस्पर चिकित्सा के प्रायश्चित्त		
निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थ के पैरों आदि के परिकर्म कराने के प्रायश्चित्त सूत्र	३७४	२६१
निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थी के पैरों आदि के परिकर्म कराने के प्रायश्चित्त सूत्र	३७५	२६१
निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के व्रणों की चिकित्सा करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	३७६-३७७	२६२
निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के कृमि निकलवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	३७८	२६४
निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के व्रणों की चिकित्सा करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	३७९	[illegible]
निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के गण्डादि की चिकित्सा करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	३८०	२६५
निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के कृमि निकलवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	३८१	२६७
(३) अन्यतीर्थिक या गृहस्थ द्वारा चिकित्सा करवाने के प्रायश्चित्त		
व्रण की चिकित्सा करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	३८२	२६८
गण्ड आदि की चिकित्सा करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	३८३	२६९
कृमि निकलवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	३८४	२७०
(४) अन्यतीर्थिक या गृहस्थ की चिकित्सा करने के प्रायश्चित्त		
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के व्रण की चिकित्सा के प्रायश्चित्त सूत्र	३८५	२७१
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ की गण्डादि की चिकित्सा के प्रायश्चित्त सूत्र	३८६	२७२
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के कृमि निकालने का प्रायश्चित्त सूत्र	३८७	२७४
आरम्भजन्य कार्य करने के प्रायश्चित्त—६		
पानी बहने की नाली निर्माण करने का प्रायश्चित्त सूत्र	३८८	२७४
छींका निर्माण करण प्रायश्चित्त सूत्र	३८९	२७४
पदमार्गादि निर्माण करने का प्रायश्चित्त सूत्र	३९०	२७४
पदमार्गादि निर्माण सम्बन्धी प्रायश्चित्त सूत्र	३९१	२७४
दण्डादि परिस्कार सम्बन्धी प्रायश्चित्त	३९२	२७५
दारुदण्ड करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र	३९३	२७५
सूई आदि के परिष्कार के प्रायश्चित्त सूत्र	३९४	२७६
अन्यतीर्थिकादि द्वारा सूई आदि के उत्तरकरण के प्रायश्चित्त सूत्र	३९५	२७६
बिना प्रयोजन सूई आदि याचना का प्रायश्चित्त सूत्र	३९६	२७७
अविधि से सूई आदि याचना के प्रायश्चित्त सूत्र	३९७	२७७
सूई आदि के विपरीत प्रयोगों के प्रायश्चित्त सूत्र	३९८	२७७
सूई आदि के अन्योन्य प्रदान का प्रायश्चित्त सूत्र	३९९	२७८
अन्यतीर्थिक और गृहस्थ से गृहधूम साफ करने का प्रायश्चित्त सूत्र	४००	२७८
प्रथम महाव्रत का परिशिष्ट—१		
प्रथम महाव्रत की पाँच भावनाएँ	४०१	२७९
प्रथम भावना		२७९
द्वितीय भावना		२८०
तृतीय भावना		२८०
चतुर्थ भावना		२८०
पंचम भावना		२८१
उपसंहार	४०२	२८२
आरम्भ-समारम्भ-समारम्भ के सात-सात प्रकार	४०३	२८२
अनारम्भ असारम्भ और असमारम्भ के सात-सात प्रकार	४०४	२८२
आठ सूक्ष्म जीवों की हिंसा का निषेध	४०५	२८३
आठ सूक्ष्म		२८३
प्रथम प्राण सूक्ष्म	४०६	२८३
द्वितीय पनक सूक्ष्म	४०७	२८४
तृतीय बीज सूक्ष्म	४०८	२८४
चतुर्थ हरित सूक्ष्म	४०९	२८४
पंचम पुष्प सूक्ष्म	४१०	२८४
छठा अण्ड सूक्ष्म	४११	२८५
सप्तम लयन सूक्ष्म	४१२	२८५
अष्टम स्नेह सूक्ष्म	४१३	२८५
पंचेन्द्रिय के घातक दस प्रकार का असंयम करते हैं	४१४	२८६
दस प्रकार के असंयम	४१५	२८६
पंचेन्द्रिय जीवों के अघातक दस प्रकार का संयम करते हैं	४१६	२८६
दस प्रकार के संयम	४१७	२८७
पाप श्रमण का स्वरूप	४१८	२८७
अन्यतीर्थिकों का स्थविरों के साथ पृथ्वी हिंसा विषयक विवाद	४१९	२८७

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
द्वितीय महाव्रत		
(द्वितीय महाव्रत स्वरूप एवं आराधना)	४२०–४३५	२८६–२६६
द्वितीय महाव्रत के आराधना की प्रतिज्ञा	४२०	२८६
मृषावाद विरमण महाव्रत की पाँच भावना	४२१	२८६
सत्य संवर के प्ररूपक और आराधक	४२२	२६१
सत्य वचन की महिमा	४२३	२६१
सत्य वचन की छः उपमायें	४२४	२६२
अवक्तव्य सत्य	४२५	२६३
वक्तव्य सत्य	४२६	२६३
सत्य वचन का फल	४२७	२६३
अल्प मृषावाद का प्रायश्चित्त सूत्र	४२८	२६४
वसुरात्निक-अवसुरात्निक कथन के प्रायश्चित्त सूत्र	४२९	२६४
विपरीत कथन का प्रायश्चित्त सूत्र	४३०	२६४
विपरीत प्रायश्चित्त कहने के प्रायश्चित्त सूत्र	४३१	२६४
द्वितीय महाव्रत का परिशिष्ट		
मृषावाद-विरमण या सत्य महाव्रत की पाँच भावना	४३२	२६६
उपसंहार	४३३	२६८
नहीं बोलने योग्य छः वचनों का निषेध	४३४	२६८
भाषा से सम्बन्धित आठ स्थानों का निषेध	४३५	२६६
तृतीय महाव्रत : स्वरूप एवं आराधना	४३६–४४६	३००–३१३
तृतीय महाव्रत के आराधन की प्रतिज्ञा	४३६	३००
तृतीय महाव्रत और उसकी पाँच भावना	४३७	३०१
दत्त अनुज्ञात संवर का स्वरूप	४३८	३०३
अदत्तादान विरमण महाव्रत आराधक के अकरणीय कृत्य	४३६	३०३
दत्त अनुज्ञात संवर के आराधक	४४०	३०४
दत्त अनुज्ञात संवर का फल	४४१	३०५
अन्य साधु के उपकरण उपयोग हेतु अवग्रह ग्रहण विधान	४४२	३०६
राज्य परिवर्तन में अवग्रह अनुज्ञापन	४४३	३०६
अल्प अदत्तादान का प्रायश्चित्त सूत्र	४४४	३०६
शिष्य के अपहरण का या उसके भाव परिवर्तन का प्रायश्चित्त सूत्र	४४५	३०६
आचार्य के अपहरण या परिवर्तनकरण का प्रायश्चित्त सूत्र	४४६	३०६
तृतीय महाव्रत का परिशिष्ट		
तृतीय अदत्तादान महाव्रत की पाँच भावना	४४७	३०७
उपसंहार	४४८	३०६
अन्यतीर्थिकों द्वारा अदत्तादान का आक्षेप स्थविरों द्वारा उसका परिहार	४४६	३१०
चतुर्थ महाव्रत	४५०–६४५	३१४
चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत के आराधन की प्रतिज्ञा	४५०	३१४–४२८
मैथुन विरमण व्रत की पाँच भावनाएँ	४५१	३१५
ब्रह्मचर्य महिमा	४५२	३१६
ब्रह्मचर्य की तेंतीस उपमाएँ	४५३	३१७
ब्रह्मचर्य के खण्डित होने पर सभी महाव्रत खण्डित हो जाते हैं।	४५४	३१६
ब्रह्मचर्य की आराधना करने पर सभी महाव्रतों की आराधना हो जाती है	४५५	३१६
ब्रह्मचर्य के विघातक	४५६	३२०
ब्रह्मचर्य के सहायक	४५७	३२१
ब्रह्मचर्य की आराधना का फल	४५८	३२१
ब्रह्मचर्य के अनुकूल वय	४५६	३२२
ब्रह्मचर्य के अनुकूल प्रहर	४६०	३२२
ब्रह्मचर्य की उत्पत्ति और अनुत्पत्ति	४६१	३२२
ब्रह्मचर्य पालन के उपाय (२)		
धर्मरथ सारथी धर्मारामविहारी ब्रह्मचारी	४६२	३२३
ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान	४६३	३२३
दस ब्रह्मचर्य समाधि-स्थानों के नाम	४६४	३२४
विविक्त शयनासन सेवन	४६५	३२४
(१) विविक्त शयनासन सेवन का फल	४६६	३२५
(२) स्त्री कथा निषेध	४६७	३२६
(३) स्त्री के आसन पर बैठने का निषेध	४६८	३२६
(४) स्त्री की इन्द्रियों के अवलोकन का निषेध	४६६	३२७
(५) स्त्रियों के वासनाजन्य शब्द श्रवण का निषेध	४७०	३२८
(६) भुक्त भोगों के स्मरण का निषेध	४७१	३२८
(७) विकार-वर्धक आहार करने का निषेध	४७२	३२६
(८) अधिक आहार का निषेध	४७३	३२६
(६) विभूषा करने का निषेध	४७४	३३०
(१०) शब्दादि विषयों में आसक्ति का निषेध	४७५	३३०
ब्रह्मचर्य रक्षण के उपाय	४७६	३३१
(११) वेश्याओं की गली में आवागमन निषेध	४७७	३३२
ब्रह्मचर्य के अठारह प्रकार	४७८	३३२
अब्रह्म निषेध के कारण—२		
अधर्म का मूल है	४७६	३३३
स्त्री राग निषेध	४८०	३३४

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
परिकर्म निषेध—४		
गृहस्थकृत काय क्रिया की अनुमोदना का निषेध	४८१	३३७
गृहस्थकृत शरीर के परिकर्मों की अनुमोदना का निषेध	४८२	३३८
गृहस्थकृत पादपरिकर्म की अनुमोदना का निषेध	४८३	३३८
उद्यानादि में गृहस्थकृत पैर आदि के परिकर्मों की अनुमोदना का निषेध	४८४	३३९
गृहस्थकृत पादपरिकर्म का निषेध	४८५	३३९
गृहस्थ द्वारा मैल निकालने की अनुमोदना का निषेध	४८६	३४०
गृहस्थकृत रोम परिकर्मों की अनुमोदना का निषेध	४८७	३४०
भिक्षु-भिक्षुणी की अन्योन्य परिकर्म क्रिया की अनुमोदना का निषेध	४८८	३४०
अन्योन्य पादादि परिकर्म क्रिया की अनुमोदना का निषेध	४८९	३४०
१—चिकित्साकरण प्रायश्चित्त (५)		
विभूषा के संकल्प से स्व-शरीर की चिकित्सा के प्रायश्चित्त—१		
विभूषा के संकल्प से व्रणों की चिकित्सा करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	४९०	३४१
विभूषा के संकल्प से गण्डादि की चिकित्सा करने के प्रायश्चित्त सूत्र	४९१	३४२
विभूषा के संकल्प से कृमि निकालने का प्रायश्चित्त सूत्र	४९२	३४३
मैथुन के संकल्प से स्व-शरीर की चिकित्सा के प्रायश्चित्त—२		
मैथुन सेवन के संकल्प से व्रण की चिकित्सा करने के प्रायश्चित्त सूत्र	४९३	३४४
मैथुन सेवन के संकल्प से गण्डादि चिकित्सा करने के प्रायश्चित्त सूत्र	४९४	३४५
मैथुन सेवन के संकल्प से कृमि निकालने का प्रायश्चित्त सूत्र	४९५	३४७
मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर चिकित्सा के प्रायश्चित्त—३		
मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर व्रण की चिकित्सा करने के प्रायश्चित्त	४९६	३४७
मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर गण्डादि की चिकित्सा करने के प्रायश्चित्त सूत्र	४९७	३४८
मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर कृमि निकलवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	४९८	३५०

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
(२) परिकर्म करण-प्रायश्चित्त		
स्व-शरीर परिकर्म-प्रायश्चित्त—१		
शरीर परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	४९९	३५१
मैल दूर करने के प्रायश्चित्त सूत्र	५००	३५२
पाद परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	५०१	३५२
नखाग्र भागों के परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र	५०२	३५३
जंघादि रोम परिकर्मों का प्रायश्चित्त सूत्र	५०३	३५३
ओष्ठ परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	५०४	३५४
उत्तरोष्ठादि रोम परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र	५०५	३५४
दन्त परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	५०६	३५५
चक्षु परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	५०७	३५५
अक्षि पत्र परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र	५०८	३५६
भौंहादि रोम परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र	५०९	३५६
केशों के परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र	५१०	३५६
मस्तक ढकने का प्रायश्चित्त सूत्र	५११	३५७
परस्पर शरीर परिकर्म प्रायश्चित्त—२		
एक दूसरे के शरीर परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	५१२	३५७
एक दूसरे के मैल निकालने के प्रायश्चित्त सूत्र	५१३	३५८
एक दूसरे के पाद परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	५१४	३५८
एक दूसरे के नखाग्र काटने का प्रायश्चित्त सूत्र	५१५	३५९
एक दूसरे के जंघादि के रोमों के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र	५१६	३५९
एक दूसरे के होठों के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र	५१७	३६०
एक दूसरे के उत्तरोष्ठ रोमादि परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र	५१८	३६१
एक दूसरे के दांतों के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र	५१९	३६१
एक दूसरे के आँखों के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र	५२०	३६१
एक दूसरे के अक्षिपत्र के परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	५२१	३६२
एक दूसरे के भौंह आदि के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र	५२२	३६२
एक दूसरे के केशों के परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र	५२३	३६
एक दूसरे के मस्तक ढकने का प्रायश्चित्त सूत्र	५२४	३६३
अन्यतीर्थिकादि द्वारा स्व शरीर का परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—३		
शरीर का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५२५	३६३

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
मल दूर करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५२६	३६४
पैरों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५२७	३६४
नखाग्र परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	५२८	३६५
जंघादि के रोमों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५२९	३६५
होठों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५३०	३६६
उत्तरोष्ठादि रोमों के परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५३१	३६७
दाँतों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५३२	३६७
आँखों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५३३	३६८
अक्षिपत्रों के परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५३४	३६८
भौंहों आदि के रोमों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५३५	३६९
केश परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	५३६	३६९
मस्तक ढकवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	५३७	३६९
अन्यतीर्थिकादि द्वारा निर्ग्रन्थी-निर्ग्रन्थ के प्रायश्चित्त—४		
निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के शारीरिक परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५३८	३७०
निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ का मैल निकलवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	५३९	३७१
निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के पैरों का परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	५४०	३७१
निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के नखाग्रों का परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	५४१	३७२
निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के जंघादि के रोमों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५४२	३७२
निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के होठों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५४३	३७३
निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के उत्तरोष्ठ रोमों के परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५४४	३७४
निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के दाँतों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५४५	३७४
निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ की आँखों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५४६	३७५
निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के अक्षिपत्रों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५४७	३७६
निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के भौंहों आदि के परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५४८	३७६
निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के केश परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५४९	३७६
निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ का मस्तक ढकवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	५५०	३७७
अन्यतीर्थिकादि द्वारा निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी के प्रायश्चित्त—५		
निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के शरीर परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५५१	३७७
निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी का (आंखों आदि के) मैल निकलवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	५५२	३७८
निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के पैरों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५५३	३७८
निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के नखाग्रों का परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	५५४	३७९
निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के जंघा आदि के रोमों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५५५	३८०
निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के होठों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५५६	३८०
निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के उत्तरोष्ठादि रोमों का परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	५५७	३८१
निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के दाँतों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५५८	३८२
निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी की आँखों के परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५५९	३८२
निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के अक्षिपत्रों का परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	५६०	३८३
निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के भौंह आदि के रोमों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र	५६१	३८३
निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के केशों का परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	५६२	३८४
निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के मस्तक को ढकवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	५६३	३८४
अन्यतीर्थिक के परिकर्म करने के प्रायश्चित्त—६		
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के शरीर परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र	५६४	३८४
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के मैल निकालने के प्रायश्चित्त सूत्र	५६५	३८५
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के पैरों के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र	५६६	३८६
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के नखाग्रों में परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र	५६७	३८७
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के जंघादि के रोमों का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र	५६८	३८७

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के होठों के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र	५६९	३८८
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के उत्तरोष्ठ रोम आदि के परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	५७०	३८८
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के दाँतों के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र	५७१	३८९
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के आँखों के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र	५७२	३८९
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के अक्षिपत्रों के परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र	५७३	३९०
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के भौंहों आदि के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र	५७४	३९०
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के केश परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र	५७५	३९१
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के मस्तक ढकने का प्रायश्चित्त सूत्र	५७६	३९१
विभूषा के संकल्प से स्व शरीर का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त —७		
विभूषा के संकल्प से शरीर परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र	५७७	३९१
विभूषा के संकल्प से मैल को निकालने के प्रायश्चित्त सूत्र	५७८	३९२
विभूषा के संकल्प से पैरों का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र	५७९	३९२
विभूषा के संकल्प से नखाग्रों के परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र	५८०	३९३
विभूषा के संकल्प से जंघादि के रोमों के परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र	५८१	३९३
विभूषा के संकल्प से होठों का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र	५८२	३९४
विभूषा के संकल्प से उत्तरोष्ठादि रोमों में परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	५८३	३९५
विभूषा के संकल्प से दाँतों के परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	५८४	३९५
विभूषा के संकल्प से चक्षु परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	५८५	३९६
विभूषा के संकल्प से अक्षिपत्रों के परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र	५८६	३९६
विभूषा के संकल्प से भौंहों आदि के रोमों के परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	५८७	३९७
विभूषा के संकल्प से केश परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र	५८८	३९७
विभूषा के संकल्प से मस्तक ढकने का प्रायश्चित्त सूत्र	५८९	३९७
मैथुन के संकल्प से स्व शरीर परिकर्म के प्रायश्चित्त—८		
मैथुन सेवन के संकल्प से शरीर का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र	५९०	३९८
मैथुन सेवन के संकल्प से मल निकालने के प्रायश्चित्त सूत्र	५९१	३९९
मैथुन सेवन के संकल्प से पैरों का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र	५९२	३९९
मैथुन सेवन के संकल्प से नखों का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र	५९३	४००
मैथुन सेवन के संकल्प से जांघ आदि के रोमों का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र	५९४	४००
मैथुन सेवन के संकल्प से होठों का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र	५९५	४०१
मैथुन सेवन के संकल्प से उत्तरोष्ठ रोमों के परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	५९६	४०२
मैथुन सेवन के संकल्प से दाँतों के परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र	५९७	४०३
मैथुन सेवन के संकल्प से आँखों के परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र	५९८	४०३
मैथुन सेवन के संकल्प से अक्षिपत्र परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र	५९९	४०४
मैथुन सेवन के संकल्प से भौंह आदि के रोमों का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र	६००	४०४
मैथुन सेवन के संकल्प से केश परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र	६०१	४०५
मैथुन सेवन के संकल्प से मस्तक ढकने का प्रायश्चित्त सूत्र	६०२	४०५
मैथुन के संकल्प से परस्पर परिकर्म के प्रायश्चित्त—९		
मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर शरीर के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र	६०३	४०५
मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर मल निकालने के प्रायश्चित्त सूत्र	६०४	४०६
मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर पैरों के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र	६०५	४०७

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर नखाग्रों के परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र	६०६	४०८
मैथुन के संकल्प से परस्पर जंघादि परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र	६०७	४०८
मैथुन सेवन के संकल्प से ओष्ठ परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	६०८	४०६
मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर उत्तरोष्ठ परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	६०९	४१०
मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर दन्त परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	६१०	४१०
मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर अक्षिपत्र परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	६११	४११
मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर अक्षिपत्र परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	६१२	४१२
मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर भौंह आदि रोमों के परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	६१३	४१२
मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर केश परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र	६१४	४१३
मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर मस्तक ढकने का प्रायश्चित्त सूत्र	६१५	४१३
(३) मैथुन के संकल्प से निषिद्ध कृत्यों के प्रायश्चित्त—१०		
मैथुन सेवन संकल्प के प्रायश्चित्त सूत्र	६१६	४१३
विकुर्वित रूप से मैथुन संकल्प के प्रायश्चित्त सूत्र	६१७	४१४
मैथुन सेवन के संकल्प से चिकित्सा करने का सूत्र	६१८	४१४
मैथुन सेवन के लिए प्रार्थना करने का प्रायश्चित्त सूत्र	६१९	४१६
मैथुन सेवन के लिए वस्त्र अपावृत्त करने का प्रायश्चित्त सूत्र	६२०	४१६
मैथुन सेवन के लिए अंगादान दर्शन का प्रायश्चित्त सूत्र	६२१	४१६
अंगादान परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	६२२	४१६
मैथुन सेवन के संकल्प से अंगादान परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	६२३	४१७
हस्त कर्म प्रायश्चित्त सूत्र	६२४	४१८
मैथुन सेवन के संकल्प से हस्तकर्म करने का प्रायश्चित्त सूत्र	६२५	४१९
शुक्र के पुद्गल निकालने का प्रायश्चित्त सूत्र	६२६	४१९
(४) मैथुनेच्छा से उपकरण धारणादि के प्रायश्चित्त		
मैथुन सेवन के संकल्प से वस्त्र धारण करने के प्रायश्चित्त सूत्र	६२७	४१९
विभूषा हेतु उपकरण धारण प्रायश्चित्त सूत्र	६२८	४२०
विभूषा हेतु उपकरण प्रक्षालन प्रायश्चित्त सूत्र	६२९	४२०
मैथुन सेवन के संकल्प से आभूषण निर्माण करने के प्रायश्चित्त सूत्र	६३०	४२०
मैथुन सेवन के संकल्प से माला निर्माण करने के प्रायश्चित्त सूत्र	६३१	४२१
मैथुन सेवन के संकल्प से धातु निर्माण करने के प्रायश्चित्त सूत्र	६३२	४२२
(५) मैथुनेच्छा सम्बन्धी प्रकीर्णक प्रायश्चित्त		
मैथुन सेवन के लिए कलह करने का प्रायश्चित्त सूत्र	६३३	४२२
मैथुन सेवन के संकल्प से पत्र लिखने का प्रायश्चित्त सूत्र	६३४	४२२
मैथुन सेवन के संकल्प से प्रणीत आहार करने का प्रायश्चित्त सूत्र	६३५	४२३
वशीकरण करने का प्रायश्चित्त सूत्र	६३६	४२३
अकृत्य सेवन के सम्बन्ध में हुए विवाद का निर्णय	६३७	४२३
५ परिशिष्ट		
चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत की पाँच भावनाएँ	६३८	४२४
प्रथम भावना : स्त्री युक्त स्थान का वर्जन	६३९	४२४
द्वितीय भावना : स्त्री कथा विवर्जन	६४०	४२५
तृतीय भावना : स्त्री रूप दर्शन निषेध	६४१	४२५
चतुर्थ भावना : पूर्व भुक्त भोगों के स्मरण का निषेध	६४२	४२६
पाँचवीं भावना : विकारवर्धक आहार निषेध	६४३	४२७
उपसंहार	—	४२७
ब्रह्मचर्य की नौ अगुप्तियाँ	६४४	४२८
ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियाँ	६४५	४२८
पंचम अपरिग्रह महाव्रत		
अपरिग्रह महाव्रत की आराधना—१		
अपरिग्रह महाव्रत आराधना की प्रतिज्ञा	६४६	४२९
अपरिग्रह महाव्रत की पाँच भावनाएँ	६४७	४२९
अपरिग्रह महाव्रत को पादप की उपमा	६४८	४३२
अपरिग्रह महाव्रत आराधक के अकल्पनीय द्रव्य	६४९	४३२
अपरिग्रह महाव्रत के आराधक—२		
अपरिग्रही	६५०	४३४

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
अपरिग्रही श्रमण को पद्म की उपमा	६५१	४३४
सभी एकान्त पण्डित सर्वत्र समभाव के साधक होते हैं	६५२	४३४
सभी बाल जीव आसक्त हैं, सभी पण्डित अनासक्त हैं	६५३	४३४
अनासक्त ही मरण से मुक्त होता है	६५४	४३५
अनासक्त ही हमेशा अहिंसक होता है	६५५	४३५
कामभोगों में अनासक्त निर्ग्रन्थ	६५६	४३५
त्यागी श्रमणों के लिए प्रमाद का निषेध	६५७	४३६
शल्य को समाप्त करने वाला ही श्रमण होता है	६५८	४३६
त्यागियों की देव गति	६५९	४३६
धीर पुरुष धर्म को जानते हैं	६६०	४३६
ध्रुवचारी कर्मरज को धुनते हैं	६६१	४३६
श्रामण्य रहित श्रमण	६६२	४३७
पाँच आस्रव द्वार	६६३	४३७
परिग्रह का स्वरूप—३		
परिग्रह का स्वरूप	६६४	४३८
परिग्रह पाप का फल दुःख	६६५	४३८
परिग्रह महाभय	६६६	४३९
परिग्रह-मुक्ति ही मुक्ति है	६६७	४३९
परिग्रह से दुःख – अपरिग्रह से सुख	६६८	४३९
सुखी होने के उपाय का प्ररूपण	६६९	४४०
तृष्णा को लता की उपमा	६७०	४४०
अर्थलोलुप हिंसा करते हैं	६७१	४४०
लोभ-निषेध	६७२	४४१
जीवन विनाशी रोग होने पर भी औषधादि के संग्रह का निषेध	६७३	४४१
अशनादि के संग्रह का निषेध	६७४	४४१
बालजीव क्रूर कर्म करते हैं	६७५	४४२
मूर्ख धर्म को नहीं जानते हैं	६७६	४४२
आसक्ति-निषेध—४		
सर्वज्ञ ही सर्व आस्रवों को जानते हैं	६७७	४४३
रति-निषेध	६७८	४४३
अरति-निषेध	६७९	४४३
रति-अरति-निषेध	६८०	४४४
भिक्षु को न रति करनी चाहिए और न अरति करनी चाहिए	६८१	४४४
राग शमन के उपाय	६८२	४४५
आभ्यन्तर परिग्रह के पाश से बद्ध प्राणी	६८३	४४५
आभ्यन्तर परिग्रह से विरत पण्डित	६८४	४४५
परिग्रह विरत पापकर्म विरत होता है	६८५	४४६
गोलों का रूपक	६८६	४४६
भोगों से निवृत्त हो	६८७	४४६
मनोज्ञ और अमनोज्ञ काम भोगों में राग-द्वेष का निग्रह करना चाहिए	६८८	४४६
सभी कामभोग दुःखदायी हैं	६८९	४४७
काम भोगाभिलाषी दुःखी होता है	६९०	४४७
काम-भोगों में आसक्ति का निषेध	६९१	४४८
काम गुणों में मूर्च्छा का निषेध	६९२	४४८
शब्द श्रवण की आसक्ति का निषेध	६९३	४४८
रूप दर्शन आसक्ति-निषेध	६९४	४५१
बाल जीवों के दुःखानुभव के हेतु	६९५	४५१
सभी एकान्त बाल जीव ममत्व युक्त होते हैं	६९६	४५१
आतुर व्यक्तियों को परीषह असह्य होते हैं	६९७	४५२
कषाय कलुषित भाव को बढ़ाते हैं	६९८	४५२
स्वजन शरणदाता नहीं होते	६९९	४५३
कर्मवेदन-काल में कोई शरण नहीं होता	७००	४५५
अपरिग्रह महाव्रत आराधना का फल—५		
अपरिग्रह आराधन का फल	७०१	४५५
सुख-स्पृहा-निवारण का फल	७०२	४५५
विनिवर्तना का फल	७०३	४५६
आसक्ति करने का प्रायश्चित्त—६		
शब्द श्रवण शक्ति के प्रायश्चित्त सूत्र	७०४	४५६
वप्रादि (प्राकारादि) शब्द श्रवण के प्रायश्चित्त सूत्र	७०५	४५७
इहलौकिकादि शब्दों में आसक्ति का प्रायश्चित्त सूत्र	७०६	४५८
गायन आदि करने का प्रायश्चित्त सूत्र	७०७	४५९
मुख आदि से वीणा जैसी आकृति करने के प्रायश्चित्त सूत्र	७०८	४५९
मुख आदि से वीणा जैसी ध्वनि निकालने के प्रायश्चित्त सूत्र	७०९	४६०
विप्रादि अवलोकन के प्रायश्चित्त सूत्र	७१०	४६०
इहलौकिक आदि रूपों में आसक्ति रखने का प्रायश्चित्त सूत्र	७११	४६२
पात्र आदि में अपना प्रतिबिम्ब देखने के प्रायश्चित्त सूत्र	७१२	४६२
गन्ध सूँघने का प्रायश्चित्त सूत्र	७१३	४६३

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
अल्प अचित्त जल से हाथ धोने का प्रायश्चित्त सूत्र	७१४	४६३
कौतूहल के संकल्प से सभी कार्य करने के प्रायश्चित्त सूत्र	७१५	४६३
वशीकरण प्रायश्चित्त—७		
राजा को वश में करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र	७१६	४६५
अंगरक्षक को वश में करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र	७१७	४६५
नगर-रक्षक को वश में करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र	७१८	४६५
निगम-रक्षक को वश में करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र	७१९	४६५
सीमा-रक्षक को वश में करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र	७२०	४६६
देश-रक्षक को वश में करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र	७२१	४६६
सर्व-रक्षक को वश में करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र	७२२	४६६
पांचवें महाव्रत का परिशिष्ट—८		
पाँचवें अपरिग्रह महाव्रत की पाँच भावनाएँ	७२३	४६७
उपसंहार		४७२
पाँचों महाव्रतों का परिशिष्ट—९		
पाँच महाव्रतों की आराधना का फल	७२४	४७३
आरम्भ परिग्रह विरत कर्मों का अन्त करने वाला होता है	७२५	४७४
रात्रिभोजन-निषेध—१		
षष्ठ व्रत आराधन प्रतिज्ञा	७२६	४७५
रात्रि में अशनादि ग्रहण का निषेध	७२७	४७५
रात्रि भोजन निषेध का कारण	७२८	४७६
रात्रि भोजन का सर्वथा निषेध	७२९	४७६
रात्रि में आहारादि के उपयोग का निषेध	७३०	४७६
रात्रि में लेप लगाने का निषेध	७३१	४७७
रात्रि में तेल आदि के मालिश का निषेध	७३२	४७७
रात्रि में कल्कादि के उबटन का निषेध	७३३	४७७
रात्रि भोजन के प्रायश्चित्त—२		
सूर्योदयास्त के सम्बन्ध में शंका होने पर आहार करने के प्रायश्चित्त सूत्र	७३४	४७७
दिन में या रात्रि में अशनादि ग्रहण करने के तथा खाने के प्रायश्चित्त सूत्र	७३५	४८०
रात्रि में अशनादि के संग्रह करने के तथा खाने के प्रायश्चित्त सूत्र	७३६	४८१
दिवा-भोजन निन्दा और रात्रि-भोजन प्रशंसा के प्रायश्चित्त सूत्र	७३७	४८१
दिन में या रात्रि में ग्रहण किये गये गोबर के लेप के प्रायश्चित्त सूत्र	७३८	४८१
दिन में या रात्रि में गृहीत लेप प्रयोग के प्रायश्चित्त सूत्र	७३९	४८२
उद्गाल गिलने का प्रायश्चित्त सूत्र	७४०	४८३
अष्ट प्रवचन माता का स्वरूप		
अष्ट प्रवचन माता	७४१	४८५
आठ समितियाँ	७४२	४८५
ईर्यासमिति		
विधिकल्प—१		
ईर्यासमिति के भेद-प्रभेद	७४३	४८६
प्रासुक विहार स्वरूप प्ररूपण	७४४	४८७
भावित आत्मा अणगार की क्रिया का प्ररूपण	७४५	४८७
संवृत अणगार की क्रिया का प्ररूपण	७४६	४८८
निषेध-कल्प—२		
अस्थिर काष्ठादि के ऊपर होकर जाने का निषेध	७४७	४८९
भिक्षु कोवलादि का अतिक्रमण न करे	७४८	४८९
रात्रिगमन निषेध	७४९	४८९
सांड आदि के भय से उन्मार्ग से जाने का निषेध	७५०	४८९
दस्यु प्रदेश के मार्ग से गमन का निषेध	७५१	४८९
निषिद्ध क्षेत्रों में विहार करने के प्रायश्चित्त सूत्र	७५२	४९०
चोरों के भय से उन्मार्ग गमन का निषेध	७५३	४९०
चोरों का उपसर्ग होने पर मौन रहे	७५४	४९०
चोरों द्वारा उपधि छीन लेने पर फरियाद न करे	७५५	४९१
अन्य से उपधि वहन करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	७५६	४९१
पथिकों के पूछने पर मौन रहना चाहिए	७५७	४९१
मार्ग में गृहस्थों से वार्तालाप का निषेध	७५८	४९१
मार्ग में वप्र आदि अवलोकन निषेध	७५९	४९२
मार्ग में काष्ठादि अवलोकन-निषेध	७६०	४९२
अन्यतीर्थिक आदि के साथ निष्क्रमण व प्रवेश निषेध	७६१	४९३

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
अन्यतीर्थिकादि के साथ ग्रामानुग्राम गमन का निषेध	७६२	४९३
अन्यतीर्थिकादि के साथ प्रवेश और निष्क्रमण के प्रायश्चित्त सूत्र	७६३	४९३
अन्यतीर्थिक आदि के साथ ग्रामानुग्राम विहार करने का प्रायश्चित्त सूत्र	७६४	४९३
निषिद्ध शय्याओं में प्रवेश करने का प्रायश्चित्त सूत्र	७६५	४९३
विधि-निषेध कल्प—३		
भिक्षु के चलने के विधि-निषेध	७६६	४९४
विषम मार्ग से जाने के विधि-निषेध	७६७	४९४
भिक्षार्थ गमन मार्ग के विधि-निषेध	७६८	४९४
ग्रामानुग्राम गमन के विधि-निषेध	७६९	४९५
आचार्यादि के साथ गमन के विधि-निषेध	७७०	४९६
मार्ग में आचार्यादि का विनय	७७१	४९६
मार्ग में रत्नाधिक के साथ गमन के विधि-निषेध	७७२	४९७
मार्ग में रत्नाधिक का विनय	७७३	४९७
स्थविरों की सेवा के लिए परिहार कल्पस्थित भिक्षु के गमन सम्बन्धी विधि-निषेध और प्रायश्चित्त	७७४	४९७
अटवी में जाने के विधि-निषेध	७७५	४९९
विरुद्ध राज्यादि में जाने के विधि-निषेध	७७६	४९९
अराज्य और विरुद्ध राज्य में गमनागमन का प्रायश्चित्त सूत्र	७७७	४९९
अभिषेक राजधानियों में बार-बार जाने-आने के प्रायश्चित्त सूत्र	७७८	५००
सेना के पड़ाव वाले मार्ग से गमन के विधि निषेध	७७९	५००
सेना के समीपवर्ती क्षेत्र में रात रहने का प्रायश्चित्त सूत्र	७८०	५०१
प्राणी आदि युक्त मार्ग से जाने के विधि-निषेध	७८१	५०१
महानदी पार गमन विधि-निषेध के पाँच कारण	७८२	५०१
पाँच महानदी पार करने का प्रायश्चित्त सूत्र	७८३	५०२
नौका विहार के विधि-निषेध	७८४	५०२
जंघा प्रमाण जल पारकरण विधि	७८५	५०५
नौका विहार के प्रायश्चित्त सूत्र	७८६	५०६

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
भाषा समिति		
विधिकल्प—१		
त्रैकालिक तीर्थंकरों ने चार प्रकार की भाषा प्ररूपी है	७८७	५१०
विवेक पूर्वक बोलने वाला आराधक, अविवेक से बोलने वाला विराधक	७८८	५१०
भाषा के भेद-प्रभेद	७८९	५११
विधिकल्प—२		
एक वचन विवक्षा	७९०	५१२
बहुवचन विवक्षा	७९१	५१३
स्त्रीलिंग शब्द	७९२	५१३
पुल्लिंग शब्द	७९३	५१३
नपुंसकलिंग शब्द	७९४	५१३
आराधनी भाषा	७९५	५१३
अवधारिणी भाषा	७९६	५१४
प्रज्ञापनी भाषा	७९७	५१५
मन्दकुमारादि की भाषा आदि का बोध	७९८	५१७
सोलह प्रकार के वचनों का विवेक	७९९	५१८
असावद्य असत्यामृषा भाषा बोलना चाहिए	८००	५१८
कषाय का परित्याग कर बोलना चाहिए	८०१	५१९
आमन्त्रण के सम्बन्ध में असावद्य भाषा विधि	८०२	५१९
अन्तरिक्ष के विषय में भाषा विधि	८०३	५१९
रूपों को देखने पर असावद्य भाषा विधि	८०४	५१९
दर्शनीय प्राकार आदि के सम्बन्ध में असावद्य भाषा विधि	८०५	५२०
उपस्कृत अशनादि के सम्बन्ध में असावद्य भाषा विधि	८०६	५२०
पुष्ट शरीर वाले मनुष्यादि के सम्बन्ध में असावद्य भाषा विधि	८०७	५२०
विधि-निषेध कल्प—२		
गो आदि के सम्बन्ध में असावद्य भाषा विधि	८०८	५२१
उद्यानादि के सम्बन्ध में असावद्य भाषा विधि	८०९	५२१
वन फलों के सम्बन्ध में असावद्य भाषा विधि	८१०	५२१
औषधियों के सम्बन्ध में असावद्य भाषा विधि	८११	५२१
शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्शादि के सम्बन्ध में असावद्य भाषा विधि	८१२	५२२
एकान्त निश्चयात्मक भाषा का निषेध	८१३	५२२
छः निषिद्ध वचन	८१४	५२४

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
आठ निषिद्ध स्थान	८१५	५२४
चार प्रकार की सावद्य भाषाओं का निषेध	८१६	५२४
मृषा आदि भाषाओं का निषेध	८१७	५२४
सत्यामृषा (मिश्र) भाषा आदि भाषाओं का निषेध	८१८	५२४
अवर्णवाद आदि का निषेध	८१९	५२५
सावद्य वचन का निषेध	८२०	५२५
गृहस्थ के सत्कारादि का निषेध	८२१	५२५
पथिकों के सावद्य प्रश्नों के उत्तर देने का निषेध	८२२	५२५
आमन्त्रण में सावद्य भाषा का निषेध	८२३	५२६
रोग आदि के सम्बन्ध में सावद्य भाषा का निषेध	८२४	५२७
प्राकार आदि के सम्बन्ध में सावद्य भाषा का निषेध	८२५	५२८
उपस्कृत अशनादि के सम्बन्ध में सावद्य भाषा का निषेध	८२६	५२८
पुष्ट शरीर वाले मनुष्य आदि के सम्बन्ध में सावद्य भाषा का निषेध	८२७	५२८
गाय आदि के सम्बन्ध में सावद्य भाषा का निषेध	८२८	५२९
उद्यान आदि के सम्बन्ध में सावद्य भाषा का निषेध	८२९	५२९
वन-फलों के सम्बन्ध में सावद्य भाषा का निषेध	८३०	५२९
औषधियों के सम्बन्ध में सावद्य भाषा का निषेध	८३१	५३०
शब्दादि के सम्बन्ध में सावद्य भाषा का निषेध	८३२	५३०
विधि-निषेध-कल्प—३		
कहने योग्य और नहीं कहने योग्य भाषा	८३३	५३०
दान सम्बन्धी भाषा-विवेक	८३४	५३०
अहितकारी भाषा विवेक	८३५	५३१
साधु के जीवन में भाषा विवेक	८३६	५३१
संखडि आदि के सम्बन्ध में भाषा-विवेक	८३७	५३१
नदियों के सम्बन्ध में भाषा विवेक	८३८	५३१
क्रय-विक्रय के सम्बन्ध में भाषा विवेक	८३९	५३२
भाषा समिति के प्रायश्चित्त—४		
अल्प कठोर वचन कहने का प्रायश्चित्त सूत्र	८४०	५३२
अगाढादि वचनों के प्रायश्चित्त सूत्र	८४१	५३२
एषणा समिति—१		
एषणा समिति	८४२	५३३
पिंडेषणा स्वरूप एवं प्रकार—२		
सर्व दोष मुक्त आहार का स्वरूप	८४३	५३३
आहार निष्पादन के कारण व उसे ग्रहण करने तथा खाने की विधि	८४४	५३४
गन्ध में आसक्ति का निषेध	८४५	५३४
मधुकरी वृत्ति	८४६	५३४
मृगचर्या वृत्ति	८४७	५३५
कापोति वृत्ति	८४८	५३५
अदीन वृत्ति	८४९	५३५
आहार निमित्त से भिक्षु को घुन की उपमा	८५०	५३५
भिक्षावृत्ति के निमित्त से भिक्षु को मत्स्य की उपमा	८५१	५३६
भिक्षावृत्ति के निमित्त से भिक्षु को पक्षी की उपमा	८५२	५३६
चार प्रकार के आहार	८५३	५३७
तीन प्रकार का आहार	८५४	५३७
अवगृहीत आहार के प्रकार	८५५	५३८
विगय विकृति के नौ प्रकार	८५६	५३८
विगय के अन्य प्रकार	८५७	५३८
तीन प्रकार की एषणा	८५८	५३८
नौ प्रकार की शुद्ध भिक्षा	८५९	५३९
आहार-पाचन का निषेध	८६०	५३९
छह प्रकार की गोचरी	८६१	५३९
गवेषणा—३		
शुद्ध आहार की गवेषणा और उपभोग का उपदेश	८६२	५४०
सामुदानिकी भिक्षा का विधान	८६३	५४१
एषणा कुशल भिक्षु	८६४	५४१
भिक्षु की गवेषणा विधि	८६५	५४१
आहार-उद्गम-गवेषणा	८६६	५४२
स्वजन-परिजन गृह में जाने के विधि-निषेध	८६७	५४२
स्वजन के घर से आहार ग्रहण का विधि-निषेध	८६८	५४२
स्वजन के घर पर अकाल में जाने का निषेध	८६९	५४३६
स्वजन परिजन के घर असमय में जाने का प्रायश्चित्त सूत्र	८७०	५४

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
गवेषणाकाल में जाने की विधि	८७१	५४४
गवेषणाकाल में आचरणीय कृत्य	८७२	५४४
भिक्षाकाल में ही जाने का विधान	८७३	५४४
गवेषणाकाल में खड़े रहने आदि की विधि	८७४	५४५
श्रमण आदि को देखकर खड़े रहने की और प्रवेश की विधि	८७५	५४५
गृहस्थ के घर में नहीं करने के कार्य	८७६	५४६
संक्लेश स्थान निषेध	८७७	५४६
भिक्षार्थ जाने के समय पात्र प्रतिलेखन की विधि	८७८	५४६
असमय में प्रवेश के विधि-निषेध	८७९	५४७
एषणा क्षेत्र का प्रमाण	८८०	५४७
आहार करते हुए प्राणियों के मार्ग में आने-जाने का निषेध	८८१	५४७
भिक्षा के समय उन्मत्त सांड आदि को देखकर गमन का विधि-विधान	८८२	५४८
खड्डा आदि से युक्त मार्ग में जाने का निषेध	८८३	५४८
अघृणित कुलों में गोचरी का निषेध	८८४	५४८
घृणित कुलों में भिक्षा-गमन का प्रायश्चित्त सूत्र	८८५	५४९
अगवेषणीय कुल	८८६	५४९
निषिद्ध कुलों में गवेषणा-निषेध	८८७	५४९
निषिद्ध कुलों में भिक्षा लेने जाने का प्रायश्चित्त सूत्र	८८८	५४९
भिक्षाचर्या में मल-मूत्रादि परठने की विधि	८८९	५४९
ढके हुए द्वार को खोलने का विधि-निषेध	८९०	५५०
भिक्षाचरी में माया करने का निषेध	८९१	५५०
अभिनिचरिका में जाने के विधि-निषेध	८९२	५५०
चर्या प्रविष्ट भिक्षु के कर्तव्य	८९३	५५१
चर्या निवृत्त भिक्षु के कर्तव्य	८९४	५५१
नवनिर्मित ग्रामादि में आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र	८९५	५५२
नई लोहे आदि की खानों में आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र	८९६	५५२

उद्गम-दोष

प्राक्कथन		५५३
आहार दोष		५५३
सोलह उद्गम दोष		५५४

उद्गम-दोष—४

(१) आधाकर्मदोष—

आधाकर्मी आहार ग्रहण का निषेध	८९७	५५४
आधाकर्मी आहार करने से कर्मबन्ध का एकांत स्थान निषेध	८९८	५५५
कल्पस्थित अकल्पस्थित के निमित्त बने आहार के ग्रहण का निर्णय	८९९	५५६
आसक्तिपूर्वक आधाकर्म आहार करने का फल	९००	५५७
आधाकर्म आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र	९०१	५५८

(२) औद्देशिक दोष—

औद्देशिक आहार ग्रहण करने का निषेध	९०२	५५८
दानार्थ स्थापित आहार ग्रहण करने का निषेध	९०३	५५८
पुण्यार्थ स्थापित आहार ग्रहण करने का निषेध	९०४	५५८
भिखारियों के लिए स्थापित आहार ग्रहण करने का निषेध	९०५	५५८
श्रमणार्थ स्थापित आहार-ग्रहण करने का निषेध	९०६	५५८

(३) पूतिकर्म दोष —

पूतिकर्म दोषयुक्त आहार का निषेध	९०७	५५९
पूतिकर्म दोषयुक्त आहार-ग्रहण करने का परिणाम	९०८	५५९
पूतिकर्म दोषयुक्त आहार करने का प्रायश्चित्त ग्रहण	९०९	५५९

(४) स्थापना दोष—

स्थापना दोष का प्रायश्चित्त सूत्र	९१०	५५९

(५) क्रीत दोष—

क्रीत आहार ग्रहण करने का निषेध	९११	५५९

(६) अभिहृड दोष—

अभिहृत आहार ग्रहण करने का निषेध	९१२	५६०
अभिहृड दोष का प्रायश्चित्त सूत्र	९१३	५६०

(७) उद्भिन्न दोष —

उद्भिन्न आहार ग्रहण करने का निषेध	९१४	५६०
उद्भिन्न आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र	९१५	५६१

(८) मालोपहृत दोष—

मालोपहृत आहार ग्रहण करने का निषेध	९१६	५६१
मालोपहृत आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र	९१७	५६२
कोठे में रखे हुए आहार को लेने का निषेध	९१८	५६२
कोठे में रखा हुआ आहार लेने का प्रायश्चित्त सूत्र	९१९	५६२

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
अनिसृष्ट दोष—		
अनिसृष्ट आहार ग्रहण करने का विधि-निषेध	६२०	५६३
उत्पादन दोष—५		
[प्राक्कथन]		५६३
सोलह उत्पादन दोष		५६३
अन्तर्धान पिंड		५६४
(१) कोपपिंड दोष—		
अशनादि के न मिलने पर क्रोध करने का निषेध	६२१	५६४
(२) मानपिण्ड दोष	६२२	५६५
(३) लोभ-पिण्ड दोष	६२३	५६५
(४) पूर्व-पश्चात् संस्तव दोष	६२४	५६५
पूर्व-पश्चात् संस्तव दोष का प्रायश्चित्त सूत्र	६२५	५६५
उत्पादन दोषों का वर्जन और शुद्ध आहार ग्रहण का उपदेश	६२६	५६६
धातुपिंडादि दोषयुक्त आहार करने वाले के प्रायश्चित्त सूत्र	६२७	५६६
एषणा दोष—६		
प्राक्कथन		५६७
दस दोष ग्रहणैषणा के		५६७
(१) शंकित दोष—		
शंका के रहते हुए आहार ग्रहण करने का निषेध	६२८	५६८
(२) निक्षिप्त दोष—		
पृथ्वीकाय प्रतिष्ठित आहार ग्रहण करने का निषेध	६२९	५६८
अप्काय प्रतिष्ठित आहार ग्रहण करने का निषेध	६३०	५६८
अग्निकाय प्रतिष्ठित आहार ग्रहण करने का निषेध	६३१	५६८
वनस्पतिकाय प्रतिष्ठित आहार ग्रहण करने का निषेध	६३२	५७०
त्रसकाय प्रतिष्ठित आहार ग्रहण करने का निषेध	६३३	५७१
निक्षिप्त दोषयुक्त आहार ग्रहण करने के प्रायश्चित्त सूत्र	६३४	५७१
(३) दायग दोष—		
गर्भवती के हाथ से आहार ग्रहण का निषेध	६३५	५७१
स्तनपान कराती हुई स्त्री के हाथ से आहार ग्रहण का निषेध	६३६	५७१
पूर्वकर्मयुक्त (अचित्त) नमक के ग्रहण का निषेध	६३७	५७१
पूर्वकर्म युक्त (अचित्त) सिट्टे आदि के ग्रहण का निषेध	६३८	५७२
पूर्वकर्म कृत हाथ आदि से आहार ग्रहण का निषेध	६३९	५७२
पूर्वकर्म कृत हाथ आदि से आहार लेने का प्रायश्चित्त सूत्र	६४०	५७३
वायुकाय के विराधक से भिक्षा लेने का निषेध व प्रायश्चित्त	६४१	५७३
वनस्पतिकाय के विराधक से आहार लेने का निषेध	६४२	५७४
विविधकाय विराधक से भिक्षा लेने का निषेध	६४३	५७४
(४) उन्मिश्रदोष —		
प्राणी आदि से युक्त आहार ग्रहण का निषेध और गृहीत आहार के परठने की विधि	६४४	५७४
अनन्तकाय संयुक्त आहारकरण प्रायश्चित्त सूत्र	६४५	५७५
प्रत्येककाय संयुक्त आहारकरण प्रायश्चित्त सूत्र	६४६	५७५
(५) अपरिणत दोष —		
अशस्त्र परिणत कमलकन्द आदि के ग्रहण करने का निषेध	६४७	५७५
अशस्त्र परिणत पिप्पल्यादि के ग्रहण का निषेध	६४८	५७५
अशस्त्र परिणत प्रलंबों के ग्रहण का निषेध	६४९	५७६
अशस्त्र परिणत प्रवालों के ग्रहण का निषेध	६५०	५७६
अशस्त्र परिणत कोमल फलों के ग्रहण का निषेध	६५१	५७६
अशस्त्र परिणत इक्षु आदि के ग्रहण का निषेध	६५२	५७६
अशस्त्र परिणत उत्पलादि के ग्रहण का निषेध	६५३	५७७
अशस्त्र परिणत अग्रबीजादि के ग्रहण का निषेध	६५४	५७७
अशस्त्र परिणति इक्षु आदि के ग्रहण का निषेध	६५५	५७७
अशस्त्र परिणत लसुण आदि के ग्रहण का निषेध	६५६	५७७
अशस्त्र परिणत जीव युक्त पुराने आहार के ग्रहण का निषेध	६५७	५७८
अपरिणत मिश्र वनस्पतियों के ग्रहण का निषेध	६५८	५७८
अपरिणत-परिणत धान्यों के ग्रहण का विधि-निषेध	६५९	५७९
कृत्स्न धान्य भक्षण का प्रायश्चित्त सूत्र	६६०	५७९
भुने हुए सिट्टे आदि के ग्रहण का विधि-निषेध	६६१	५७९

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
अपरिणत-परिणत ताल प्रलम्ब के ग्रहण का विधि-निषेध	९६२	५८०
अपरिणत-परिणत आम ग्रहण का विधि निषेध	९६३	५८०
सचित्त अंब उपभोग के प्रायश्चित्त सूत्र	९६४	५८१
अपरिणत-परिणत इक्षु ग्रहण का विधि-निषेध	९६५	५८२
सचित्त इक्षु खाने के प्रायश्चित्त सूत्र	९६६	५८३
अपरिणत-परिणत लहसुन ग्रहण का विधि-निषेध	९६७	५८३
(६) लिप्त दोष —		
संसृष्ट हाथ आदि से आहार ग्रहण के विधि-निषेध	९६८	५८५
सचित्त द्रव्य से लिप्त हस्तादि से आहार ग्रहण के प्रायश्चित्त सूत्र	९६९	५८६
छर्दित दोष	९७०	५८७
एषणा विवेक —७		
गर्भवती निमित्त निर्मित आहार का विधि-निषेध	९७१	५८७
अदृष्ट स्थान में जाने का निषेध	९७२	५८७
रजयुक्त आहार ग्रहण करने का निषेध	९७३	५८७
पुष्प आदि बिखरे हुए स्थान में प्रवेश का निषेध	९७४	५८८
बच्चे आदि के उल्लंघन का निषेध	९७५	५८८
अधिक त्याज्य भाग वाले आहार ग्रहण का निषेध	९७६	५८८
अग्रपिंड के ग्रहण का निषेध	९७७	५८८
नित्य दान में दिये जाने वाले घरों से आहार लेने का निषेध	९७८	५८९
नित्यदान पिंडादि खाने के प्रायश्चित्त सूत्र	९७९	५८९
आरण्यकादिकों का आहारादि ग्रहण करने के प्रायश्चित्त सूत्र	९८०	५९०
नैवेद्यपिंड भोगने का प्रायश्चित्त सूत्र	९८१	५९०
अत्युष्ण आहार लेने का प्रायश्चित्त सूत्र	९८२	५९०
राजपिण्ड ग्रहण करने और भोगने के प्रायश्चित्त सूत्र	९८३	५९०
अन्तःपुर में प्रवेश व भिक्षा ग्रहण के प्रायश्चित्त सूत्र	९८४	५९०
मूर्धाभिषिक्त राजा के अनेक प्रकार के आहार ग्रहण का प्रायश्चित्त सूत्र	९८५	५९१
मूर्द्धाभिषिक्त राजा के छः दोषायतन जाने बिना गोचरी जाने का प्रायश्चित्त सूत्र	९८६	५९१
बाहागत राजा का आहार ग्रहण करने के प्रायश्चित्त सूत्र	९८७	५९२

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
मूर्धाभिषिक्त राजा के निकाले हुए आहार लेने के प्रायश्चित्त सूत्र	९८८	५९२
विविध स्थानों में राजपिण्ड लेने के प्रायश्चित्त सूत्र	९८९	५९५
प्रकीर्णक दोष —८		
औद्देशिकादि आहार ग्रहण करने के विधि ग्रहण	९९०	५९६
निमन्त्रण करने पर भी दोषयुक्त आहारादि लेने का निषेध	९९१	५९७
सावद्य संयुक्त आहार ग्रहण करने का निषेध	९९२	५९८
आहार की आसक्ति करने का निषेध	९९३	५९८
संग्रह करने का निषेध	९९४	५९९
संखडी निषेध और शुद्ध आहार का विधान	९९५	५९९
दोषरहित आहार का ग्रहण और उसका परिणाम	९९६	५९९
निर्दोष आहार गवेषक की और देने वाले की सुगति	९९७	६००
परिभोगैषणा—९		
आहार करने का उद्देश्य	९९८	६००
आहार करने के स्थान का निर्देश	९९९	६००
गोचरी में प्रविष्ट भिक्षु के आहार करने की विधि	१०००	६००
उपाश्रय में आकर आहार करने की विधि	१	६०१
मुनि आहार की मात्रा का ज्ञाता हो	२	६०२
लेप सहित पूर्ण आहार करने का निर्देश	३	६०२
रसगृद्धि का निषेध	४	६०२
आगंतुक श्रमणों को निमन्त्रित करने की विधि	५	६०२
विगयभोक्ता भिक्षु	६	६०३
आचार्य के दिए बिना विकृति भक्षण का प्रायश्चित्त सूत्र	७	६०३
पुनः भिक्षार्थ जाने का विधान	८	६०३
पुलाक भक्त ग्रहण हो जाने पर गोचरी जाने का विधि-निषेध	९	६०३
साधारण आहार को आज्ञा लेकर बाँटने की विधि	१०	६०४
श्रमण ब्राह्मण आदि के लिए गृहीत आहार के बाँटने खाने की विधि	११	६०४
स्थविरों के लिए संयुक्त गृहीत आहार के परिभोग और परठने की विधि	१२	६०५
बढ़े हुए आहार सम्बन्धी विधि	१३	६०६
साम्भोगिकों को निमन्त्रित किए बिना परठने का प्रायश्चित्त सूत्र	१४	६०६

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
गृहीत आहार में माया करने का निषेध	१५	६०६
आहार का उपभोग करने में माया करने का निषेध	१६	६०७
नीरस आहार परठने का प्रायश्चित्त सूत्र	१७	६०७
गृहीत लवण के परिभोग और परिष्ठापन की विधि	१८	६०७
प्राणियों से युक्त आहार के परिभोग और परिष्ठापन की विधि	१९	६०८
उदकादि से युक्त आहार के परिभोग और परिष्ठापन की विधि	२०	६०८
अचित्त अनेषणीय आहार के परठने की विधि	२१	६०८
आचार्य के दिए बिना आहार करने का प्रायश्चित्त सूत्र	२२	६०९
पशुओं का आहार करने का प्रायश्चित्त सूत्र	२३	६०९
गृहस्थ के पात्र में आहार भोगने का प्रायश्चित्त सूत्र	२४	६०९
पृथ्वी आदि पर अशनादि रखने के प्रायश्चित्त सूत्र	२५	६०९
परिभोगैषणा के दोष—१०		
पाँच दोष परिभोगैषणा के		६०९
इंगालादि दोष का स्वरूप	२६	६१०
इंगालादि दोषरहित आहार का स्वरूप	२७	६१०
क्षेत्रातिक्रान्त आदि दोष का स्वरूप	२८	६११
आहार लेने के कारण	२९	६१२
आहार त्यागने के कारण	३०	६१२
कालातिक्रांत आहार रखने व खाने का निषेध व प्रायश्चित्त	३१	६१२
मार्गातिक्रान्त आहार रखने व खाने का निषेध व प्रायश्चित्त	३२	६१३
आहार की प्रशंसा और निन्दा का निषेध	३३	६१३
संखडी-गमन—११		
आधा योजन उपरान्त संखडी में जाने का निषेध	३४	६१४
संखडी में जाने से होने वाले दोष	३५	६१४
संखडी में भोजन करने से उत्पन्न दोष	३६	६१५
आकीर्ण संखडी में जाने का निषेध व उसके दोष	३७	६१५
उत्सवों में आहार के ग्रहण का विधि-निषेध	३८	६१६
महामहोत्सवों में आहार के ग्रहण का विधि-निषेध	३९	३१६
आकीर्ण या अनाकीर्ण संखडी में जाने का विधि-निषेध	४०	६१७
संखडी में जाने के लिए मायास्थान सेवन का निषेध	४१	६१८
रात्रि में संखडी के लिए जाने का निषेध	४२	६१८
संखडी के लिए जाने के प्रायश्चित्त सूत्र	४३	६१८
सागारिक—१२		
सागारिक के अशनादि ग्रहण का निषेध	४४	६१९
परिहरणीय शय्यातर का निर्णय	४५	६१९
संसृष्ट असंसृष्ट शय्यातर पिंड के ग्रहण का विधि-निषेध	४६	६२०
शय्यातर के असंसृष्ट पिंड के संसृष्ट कराने का निषेध व प्रायश्चित्त	४७	६२०
शय्यातर के घर आये आहार के ग्रहण का विधि-निषेध	४८	६२०
शय्यातर के अन्यत्र भेजे गये आहार को ग्रहण करने का विधि-निषेध	४९	६२०
शय्यातर के अंशयुक्त आहार ग्रहण का विधि-निषेध	५०	६२०
पूज्य पुरुषों के आहार के ग्रहण करने के विधि-निषेध	५१	६२१
शय्यातर के आगन्तुक निमित्तक आहार के ग्रहण का विधि-निषेध	५२	६२२
शय्यातर के दासादि निमित्तक आहार के ग्रहण का विधि-निषेध	५३	६२२
शय्यातर के उपजीवी ज्ञातिजन निमित्तक आहार के ग्रहण का निषेध	५४	६२२
शय्यातर के सीरवाली के पदार्थों को ग्रहण करने का विधि-निषेध	५५	६२३
शय्यातर के सीरवाली भोजन सामग्री के ग्रहण का विधि-निषेध	५६	६२४
शय्यातर के सीरवाली के आम्र फल ग्रहण करने का विधि-निषेध	५७	६२४
सागारिक का आहार भोगने का प्रायश्चित्त सूत्र	५८	६२४
सागारिक का आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र	५९	६२५
शय्यातर का घर जाने बिना भिक्षागमन का प्रायश्चित्त सूत्र	६०	६२५
सागारिक की निश्रा में अशनादि की याचना का प्रायश्चित्त सूत्र	६१	६२५

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
पाणैषणा—२		
प्राक्कथन		६२६
धोवणपाणी सूचक आगम पाठ		६२६
११ प्रकार के ग्राह्य धोवण पानी		६२६
१२ प्रकार के अग्राह्य धोवण पानी		६२७
अचित्त जल ग्रहण विधि	६२	६२७
ग्लान निर्ग्रन्थ के लिए कल्पनीय विकट दत्तियाँ	६३	६२८
अप्रासुक पानी लेने का निषेध	६४	६२६
असावधानी से दिये हुए सचित्त जल के परठने की विधि	६५	६२६
सरस निरस पानी में समभाव का विधान	६६	६३०
पानी ग्रहण करने के विधान और निषेध	६७	६३०
अमनोज्ञ जल परिष्ठापन का प्रायश्चित्त सूत्र	६८	६३२
तत्काल धोये पानी को ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र	६६	६३२
शय्यैषणा-विधि—१		
श्रमण के ठहरने योग्य स्थान	७०	६३२
उपाश्रय की याचना	७१	६३२
उपाश्रय में प्रवेश-निष्क्रमण की विधि	७२	६३३
हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में निर्ग्रन्थों की वसतिवास मर्यादा	७३	६३४
निर्ग्रन्थों के कल्प्य उपाश्रय	७४	६३४
हेमन्त और ग्रीष्म में निर्ग्रन्थियों की वसतिवास मर्यादा	७५	६३४
निर्ग्रन्थियों के कल्प्य उपाश्रय	७६	६३५
निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के कल्प्य उपाश्रय	७७	६३५
ग्रामादि में निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के रहने की विधि	७८	६३५
अभिक्रान्त क्रिया कल्पनीय शय्या	७६	६३५
अल्प सावद्य क्रिया कल्पनीय शय्या	८०	६३६
शय्यैषणा-निषेध—२		
गृह निर्माण शय्या	८१	६३६
निर्ग्रन्थों के अकल्प्य उपाश्रय	८२	६३७
निर्ग्रन्थियों के लिए अकल्प्य उपाश्रय	८३	६३७
निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के लिए अकल्प्य उपाश्रय	८४	६३७
गृहस्थ प्रतिबद्ध उपाश्रय के दोष	८५	६४३
शुद्ध उपाश्रय की प्ररूपणा	८६	६४३
बारंबार साधर्मिक के आगमन की शय्या का निषेध	८७	६४४
कालातिक्रान्त क्रिया का स्वरूप	८८	६४४
उपस्थान क्रिया का स्वरूप	८६	६४४
भिक्षु के एक क्षेत्र में पुनः आने की काल-मर्यादा	६०	६४४
अनभिक्रान्त क्रिया का स्वरूप	६१	६४४
वर्ज्य क्रिया का स्वरूप	६२	६४५
महावर्ज्य क्रिया का स्वरूप	६३	६४५
सावद्य क्रिया का स्वरूप	६४	६४५
महासावद्य क्रिया का स्वरूप	६५	६४५
ग्राम आदि में निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के रहने का निषेध	६६	६४६
निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के लिए पानी के किनारे पर निषिद्ध कार्य	६७	६४६
निर्ग्रन्थियों के उपाश्रय में निर्ग्रन्थों के लिए निषिद्ध कार्य	६८	६४६
निर्ग्रन्थों के उपाश्रय में निर्ग्रन्थियों के लिए निषिद्ध कार्य	६६	६४७
स्वाध्याय भूमि में निषिद्ध कार्य	१००	६४७
शय्यैषणा विधि-निषेध—३		
अन्तरिक्ष उपाश्रय के विधि-निषेध	१०१	६४७
एषणीय और अनेषणीय उपाश्रय	१०२	६४८
तृण पराल निर्मित उपाश्रय का विधि-निषेध	१०३	६४६
कपाटरहित द्वार वाले उपाश्रय का विधि-निषेध	१०४	६५०
धान्ययुक्त उपाश्रय के विधि-निषेध	१०५	६५०
आहारयुक्त उपाश्रय के विधि-निषेध	१०६	६५१
ग्रामादि में चातुर्मास करने का विधि-निषेध	१०७	६५१
बहुश्रुत वसति निवास विधि-निषेध	१०८–१०६	६५२
कायोत्सर्ग के लिए स्थान का विधि-निषेध	११०	६५२
स्वाध्यायभूमि में जाने के विधि-निषेध	१११	६५२
अन्तर गृहस्थानादि प्रकरण	११२	६५३
अवग्रह ग्रहण विधि—४		
पाँच प्रकार के अवग्रह	११३	६५३
आज्ञा ग्रहण करने की विधि	११४	६५३
पूर्वगृहीत अवग्रह के ग्रहण की विधि	११५	६५४
अवग्रह क्षेत्र का प्रमाण	११६	६५४
अवग्रह के ग्रहण करने का और उसमें रहने का विवेक	११७	६५४
अवग्रह ग्रहण निषेध—५		
सचित्त पृथ्वी आदि का अवग्रह निषेध	११८	६५५
अन्तरिक्ष जात अवग्रहों का निषेध	११६	६५५
गृहस्थ संयुक्त उपाश्रय का अवग्रह निषेध	१२०	६५५

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
गृहस्थ के घर से संलग्न उपाश्रय का अवग्रह निषेध	१२१	६५६
अकल्पनीय उपाश्रयों का अवग्रह निषेध	१२२	६५६
सचित्त उपाश्रय का अवग्रह लेने का निषेध	१२३	६५६
संस्तारक ग्रहण विधि—६		
आगन्तुक श्रमणों के शय्या संस्तारक की विधि	१२४	६५६
शय्या संस्तारक के ग्रहण की विधि	१२५	६५६
निर्ग्रन्थों के कल्प्य आसन	१२६	६५७
शय्या संस्तारक के लाने की विधि	१२७	६५७
शय्या संस्तारक की पुनः आज्ञा लेने की विधि	१२८	६५७
शय्या संस्तारक के बिछाने की विधि	१२९	६५७
शय्या संस्तारक पर बैठने व शयन की विधि	१३०	६५८
अन्य सांभोगिकों को पीठ आदि के निमन्त्रण विधि	१३१	६५८
सागारिक के शय्या संस्तारक की प्रत्यर्पण विधि	१३२	६५८
खोए हुए शय्या संस्तारक के अन्वेषण की विधि	१३३	६५८
प्रतिलेखन किये बिना शय्या पर शयन करने वाला पाप श्रमण होता है	१३४	६५९
अनुकूल और प्रतिकूल शय्यायें	१३५	६५९
संस्तारक ग्रहण विधि निषेध—७		
कल्पनीय अकल्पनीय शय्या संस्तारक	१३६	६५९
शय्या संस्तारक ग्रहण का विधि-निषेध	१३७	६६०
संस्तारक प्रत्यर्पण विधि-निषेध	१३८	६६०
संस्तारक ग्रहण निषेध—८		
निर्ग्रन्थियों के अकल्पनीय आसन	१३९	६६१
दुसरी बार आज्ञा लिए बिना शय्या संस्तारक ग्रहण का निषेध	१४०	६६१
शय्या संस्तारक लौटाए बिना विहार करने का निषेध	१४१	६६१
संस्तारक सम्बन्धी प्रायश्चित्त—९		
शय्या संस्तारक सम्बन्धी प्रायश्चित्त सूत्र	१४२	६६२
सागारिक का शय्या संस्तारक बिना आज्ञा लेने का प्रायश्चित्त सूत्र	१४३	६६२
शय्यैषणा विधि-निषेध प्रायश्चित्त—१०		
सुरायुक्त उपाश्रय में रहने का विधि-निषेध व प्रायश्चित्त	१४४	६६३
जलयुक्त उपाश्रय में रहने का विधि-निषेध और प्रायश्चित्त	१४५	६६३
ज्योतियुक्त उपाश्रय में रहने का विधि-निषेध और प्रायश्चित्त	१४६	६६३
दीपकयुक्त उपाश्रय में रहने का विधि-निषेध और प्रायश्चित्त	१४७	६६३
अल्पज्ञों के रहने का विधि-निषेध और प्रायश्चित्त	१४८	६६४
नित्य निवास का प्रायश्चित्त सूत्र	१४९	६६४
औद्देशिकादि शय्याओं में प्रवेश के प्रायश्चित्त सूत्र	१५०	६६४
घृणित कुलों में रहने का प्रायश्चित्त सूत्र	१५१	६६५
निर्ग्रन्थियों के उपाश्रय में अविधि से प्रवेश करने का प्रायश्चित्त सूत्र	१५२	६६५
निर्ग्रन्थियों के आगमन पथ में उपकरण रखने का प्रायश्चित्त सूत्र	१५३	६६५
स्वधर्मी निर्ग्रन्थ को आवास न देने का प्रायश्चित्त सूत्र	१५४	६६५
स्वधर्मी निर्ग्रन्थी को आवास न देने का प्रायश्चित्त सूत्र	१५५	६६५
स्वजन आदि को उपाश्रय में रखने का प्रायश्चित्त सूत्र	१५६	६६५
राजा के समीप ठहरने आदि का प्रायश्चित्त सूत्र	१५७	६६६
वस्त्रैषणा—		
वस्त्रैषणा का स्वरूप—१		
निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों की वस्त्रैषणा का स्वरूप	१५८	६६६
वस्त्र का प्रतिलेखन करने के बाद वस्त्र ग्रहण का विधान	१५९	६६६
हेमन्त और ग्रीष्म में वस्त्र ग्रहण करने का विधान	१६०	६६७
प्रव्रज्या पर्याय के क्रम से वस्त्र ग्रहण का विधान	१६१	६६७
निर्ग्रन्थ की वस्त्रैषणा विधि - १ (२)		
निर्ग्रन्थों की वस्त्रैषणा विधि	१६२	६६७
निर्ग्रन्थिनी की वस्त्रैषणा विधि—१ (३)		
निर्ग्रन्थी की वस्त्रैषणा विधि	१६३	६६८
निर्ग्रन्थी की वस्त्रावग्रह विधि	१६४	६६८
निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी की वस्त्रैषणा का निषेध—१ (४)		
औद्देशिकादि वस्त्र के ग्रहण का निषेध	१६५	६६९

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
श्रमणादि की गणना करके बनाया गया वस्त्र लेने का निषेध	१६६	६६९
अर्धयोजन से आगे वस्त्रैषणा के लिए जाने का निषेध	१६७	६६९
बहुमूल्य वस्त्रों के ग्रहण का निषेध	१६८	६७०
मत्स्य चर्मादि से निर्मित वस्त्रों के ग्रहण का निषेध	१६९	६७०
संकेत वचन से वस्त्र ग्रहण का निषेध	१७०	६७१
अप्रासुक वस्त्र ग्रहण करने का निषेध	१७१	६७१
परिकर्मकृत वस्त्र ग्रहण का निषेध	१७२	६७१
श्रमण के निमित्त प्रक्षालित वस्त्र के ग्रहण का निषेध	१७३	६७२
कन्दादि निकालकर दिये जाने वाले वस्त्र के ग्रहण का निषेध	१७४	६७२
वर्षावास में वस्त्र ग्रहण का निषेध	१७५	६७२
निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनी वस्त्रैषणा के विधि-निषेध—१ (५)		
रात्रि में वस्त्रादि ग्रहण का विधि-निषेध	१७६	६७३
श्रमणादि के उद्देश्य से निर्मित वस्त्र लेने के विधि-निषेध	१७७	६७३
क्रीतादि दोषयुक्त वस्त्र ग्रहण का विधि-निषेध	१७८	६७३
क्रीतादि दोषयुक्त वस्त्र ग्रहण करने के प्रायश्चित्त सूत्र	१७९	६७३
अतिरिक्त वस्त्र वितरण के प्रायश्चित्त सूत्र	१८०	६७४
वस्त्र धारण २ (१)		
वस्त्र धारण के कारण	१८१	६७४
एषणीय वस्त्र	१८२	६७४
एषणीय वस्त्र धारण का विधान	१८३	६७५
निर्ग्रन्थ के वस्त्र धारण की विधि—२ (२)		
एक वस्त्रधारी भिक्षु	१८४	६७६
दो वस्त्रधारी भिक्षु	१८५	६७६
तीन वस्त्रधारी भिक्षु	१८६	६७६
निर्ग्रन्थी की वस्त्र धारण की विधि—२ (३)		
निर्ग्रन्थियों के चादरों का प्रमाण	१८७	६७७
निर्ग्रन्थी की साड़ी सिलवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	१८८	६७७
निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनी वस्त्र धारण के विधि-निषेध—२ (४)		
वस्त्र ग्रहण के विधि-निषेध	१८९	६७८
धारणीय-अधारणीय वस्त्र के प्रायश्चित्त सूत्र	१९०	६७८
आकुंचनपट्टग के ग्रहण का विधि-निषेध	१९१	६७८
अवग्रहानन्तकादि के ग्रहण का विधि-निषेध	१९२	६७९
कृत्स्नाकृत्स्न वस्त्रों का विधि-निषेध	१९३	६७९
कृत्स्न वस्त्र धारण करने का प्रायश्चित्त सूत्र	१९४	६७९
भिन्न-भिन्न वस्त्रों का विधि-निषेध	१९५	६७९
अभिन्न वस्त्र धारण करने का प्रायश्चित्त सूत्र	१९६	६७९
वस्त्र प्रक्षालन का निषेध ३		
वस्त्र सुगन्धित करने का और धोने का निषेध	१९७	६८०
वस्त्र को सुगन्धित करने और धोने के प्रायश्चित्त सूत्र	१९८	६८०
वस्त्र आतापन—४		
विहित स्थानों पर वस्त्र सुखाने का विधान	१९९	६८२
निषिद्ध स्थानों पर वस्त्र सुखाने का निषेध	२००	६८२
निषिद्ध स्थानों पर वस्त्र सुखाने के प्रायश्चित्त सूत्र	२०१	६८३
वस्त्र प्रत्यर्पण का विधि-निषेध—५		
प्रातिहारिक वस्त्र ग्रहण करने में माया करने का निषेध	२०२	६८४
अपहरण के भय से वस्त्र के विवर्ण करने का निषेध	२०३	६८४
चोरों के भय से उन्मार्ग से जाने का निषेध	२०४	६८५
चोरों से अपहरित वस्त्र की याचना का विधि-निषेध	२०५	६८५
वस्त्र के विवर्ण करने के प्रायश्चित्त सूत्र	२०६	६८५
चर्म सम्बन्धी विधि निषेध—६		
सलोम चर्म के विधि-निषेध	२०७	६८५
सरोम चर्म के उपयोग का प्रायश्चित्त सूत्र	२०८	६८६
कृत्स्नाकृत्स्न चर्म का विधि-निषेध	२०९	६८६
अखण्ड चर्म धारण करने का प्रायश्चित्त सूत्र	२१०	६८६
चिलमिली की विधि—७		
चिलमिली रखने का तथा उपयोग करने का विधान	२११	६८६
चिलमिलिका के स्वयं निर्माण करने का प्रायश्चित्त सूत्र	२१२	६८६
चिलमिलिका के निर्माण कराने का प्रायश्चित्त सूत्र	२१३	६८७
वस्त्रैषणा सम्बन्धी अन्य प्रायश्चित्त—८		
अन्यतीर्थिकादि को वस्त्रादि देने का प्रायश्चित्त सूत्र	२१४	६८७

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
अज्ञात वस्त्र ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र	२१५	६८७
घृणित कुल से वस्त्रादि ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र	२१६	६८७
मार्गादि में वस्त्र की याचना करने के प्रायश्चित्त सूत्र	२१७	६८८
वस्त्र के लिए रहने के प्रायश्चित्त सूत्र	२१८	६८८
सचेल अचेल के साथ रहने के प्रायश्चित्त सूत्र	२१९	६८८
गृहस्थ के वस्त्र उपयोग करने का प्रायश्चित्त सूत्र	२२०	६८८
दीर्घसूत्र बनाने के प्रायश्चित्त सूत्र	२२१	६८८
भिक्षु की चादर सिलवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	२२२	६८९
वस्त्र परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र	२२३	६८९
निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनी के पात्रैषणा की विधि—१		
एषणीय पात्र	२२४	६९०
पात्र प्रतिलेखन के बाद पात्र ग्रहण करने का विधान	२२५	६९०
स्थविर के निमित्त लाये गये पात्रादि की विधि	२२६	६९०
अतिरिक्त पात्र वितरण के प्रायश्चित्त सूत्र	२२७	६९१
निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनी के पात्रैषणा का निषेध—२		
औद्देशिकादि पात्र के ग्रहण का निषेध	२२८	६९१
श्रमणादि की गणना करके बनाया गया पात्र लेने का निषेध	२२९	६९२
आधे योजन की मर्यादा के आगे पात्र के लिए जाने का निषेध	२३०	६९२
पात्र हेतु आधे योजन की मर्यादा भंग करने के प्रायश्चित्त सूत्र	२३१	६९२
बहुमूल्य वाले पात्र ग्रहण करने का निषेध	२३२	६९२
निषिद्ध पात्र के प्रायश्चित्त सूत्र	२३३	६९३
संकेत वचन के पात्र ग्रहण का निषेध	२३४	६९४
अप्रासुक पात्र-ग्रहण करने के निषेध	२३५	६९४
परिकर्मकृत पात्र-ग्रहण का निषेध	२३६	६९४
श्रमण के निमित्त प्रक्षालित पात्र के ग्रहण का निषेध	२३७	६९५
कन्दादि निकालकर दिये जाने वाले पात्र के ग्रहण का निषेध	२३८	६९६
औद्देशिक पान-भोजन सहित पात्र ग्रहण का निषेध	२३९	६९६
निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थिनी पात्रैषणा के विधि-निषेध—३		
श्रमणादि के उद्देश्य से निर्मित पात्र लेने के विधि-निषेध	२४०	६९७
क्रीतादि दोषयुक्त पात्र ग्रहण का विधि-निषेध	२४१	६९७
क्रीतादि दोषयुक्त पात्र ग्रहण के प्रायश्चित्त सूत्र	२४२	६९७
पात्र के ग्रहण का विधि-निषेध	२४३	६९८
धारण करने योग्य और न धारण करने योग्य पात्र के प्रायश्चित्त सूत्र	२४४	६९८
अतिरिक्त पात्र देने का विधि-निषेध	२४५	६९८
पात्र धारण विधि निषेध—६		
संवृत्त पात्र धारण विधान	२४६	६९९
संवृत्त पात्र धारण निषेध	२४७	६९९
घटिमात्रक धारण का विधान	२४८	६९९
घटिमात्रक धारण का निषेध	२४९	६९९
कल्पनीय पात्रों की संख्या	२५०	६९९
पात्र-आतापन के विधि-निषेध—७		
विहित स्थानों पर पात्र सुखाने का विधान	२५१	७००
निषिद्ध स्थानों पर पात्र सुखाने का निषेध	२५२	७००
निषिद्ध स्थानों पर पात्र सुखाने के प्रायश्चित्त सूत्र	२५३	७००
पात्र-प्रत्यर्पण का विधि-निषेध—८		
प्रातिहारिक पात्र ग्रहण करने में माया करने का निषेध	२५४	७०१
पात्र के विवर्ण आदि करने का निषेध	२५५	७०२
पात्र का वर्ण परिवर्तन करने के प्रायश्चित्त सूत्र	२५६	७०२
चोरों के भय से उन्मार्ग से जाने का निषेध	२५७	७०३
चोरों से आहारित पात्र के याचना का विधि-निषेध	२५८	७०३
पात्र परिकर्म का निषेध—९		
पात्र के परिकर्म का निषेध	२५९	७०३
पात्र परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र	२६०	७०४
पात्र का स्वयं परिष्कार करने का प्रायश्चित्त सूत्र	२६१	७०५
पात्र के परिष्कार करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	२६२	७०५
पात्र को कोरने का प्रायश्चित्त सूत्र	२६३	७०५
पात्र सन्धान-बन्धन के प्रायश्चित्त सूत्र	२६४	७०६
पात्रैषणा सम्बन्धी अन्य प्रायश्चित्त—१०		
पात्र से त्रस प्राणी आदि निकालने के प्रायश्चित्त सूत्र	२६५	७०६
पात्र के लिए निवास करने के प्रायश्चित्त सूत्र	२६६	७०७
मांग-मांगकर याचना करने के प्रायश्चित्त सूत्र	२६७	७०७
निजगादि गवेषित पात्र रखने के प्रायश्चित्त सूत्र	२६८	७०७

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
पादपुंछण एषणा—		
काष्ठदण्ड वाले पादप्रोंछन का विधि-निषेध	२६९	७०८
काष्ठदण्ड वाले पादप्रोंछन के प्रायश्चित्त सूत्र	२७०	७०९
पादप्रोंछन के न लौटाने का प्रायश्चित्त सूत्र	२७१	७०९
रजोहरण एषणा—		
एषणीय रजोहरण	२७२	७१०
रजोहरण सम्बन्धी प्रायश्चित्त सूत्र	२७३	७१०
गोच्छकादि के वितरण का विवेक	२७४	७११
(४) आदान-निक्षेप समिति का स्वरूप—१		
आदान भाण्ड मात्र निक्षेपणा समिति का स्वरूप	२७५	७१२
उपकरण धारण के कारण	२७६	७१२
सर्व भण्डोपकरण सहित गमन विधि	२७७	७१२
उपकरण अवग्रह-ग्रहण विधान	२७८	७१३
एकाकी स्थविर के भण्डोपकरण और उनके आदान-निक्षेपण की विधि	२७९	७१४
दण्डादि के परिष्कार करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र	२८०	७१४
दण्डादि के परठने का प्रायश्चित्त सूत्र	२८१	७१४
अतिरिक्त उपधि रखने का प्रायश्चित्त सूत्र	२८२	७१४
उपकरण का प्रतिलेखन—२		
शय्या संस्तारक आदि प्रतिलेखन विधान	२८३	७१५
उपधि को उपयोग में लेने की विधि	२८४	७१५
अप्रमाद-प्रमाद प्रतिलेखन के प्रकार	२८५	७१५
प्रतिलेखना में प्रमत्त पाप श्रमण	२८६	७१६
उपधि अप्रतिलेखन का प्रायश्चित्त सूत्र	२८७	७१६
उपकरण का प्रत्यर्पण एवं प्रत्याख्यान—३		
प्रातिहारिक सूई आदि के प्रत्यर्पण की विधि	२८८	७१७
अविधि से सूई आदि के प्रत्यर्पण करने के प्रायश्चित्त सूत्र	२८९	७१७
निश्चित काल में दण्डादि के न लौटाने के प्रायश्चित्त सूत्र	२९०	७१७
उपधि प्रत्याख्यान का फल	२९१	७१८
पतित या विस्मृत उपकरण की एषणा	२९२	७१८
(५) उच्चार-प्रस्रवण निक्षेप समिति—		
परिष्ठापना की विधि—१		
परिष्ठापना समिति का स्वरूप	२९३	७२०
स्थण्डिल की चौभंगी	२९४	७२०
दस लक्षण युक्त स्थण्डिल में परठने का विधान	२९५	७२०
उच्चार-प्रस्रवण भूमि के प्रतिलेखन का विधान	२९६	७२१
मल मूत्र की प्रबल बाधा होने पर करने की विधि	२९७	७२१
मल-मूत्रादि को परठने की विधि	२९८	७२१
श्रमण के मृत शरीर को परठने की और उपकरणों को ग्रहण करने की विधि	२९९	७२१
परिष्ठापना का निषेध—२		
उद्देशिक आदि स्थंडिल में मल-मूत्रादि के परठने का निषेध	३००	७२२
परिकर्म किये हुए स्थण्डिल में मल-मूत्रादि के परठने का निषेध	३०१	७२२
विभिन्न स्थानों में मल-मूत्रादि के परठने का निषेध	३०२	७२३
परिष्ठापना के विधि निषेध—३		
प्रासुक-अप्रासुक स्थण्डिल में परठने का विधि-निषेध	३०३	७२५
श्रमण-ब्राह्मण के उद्देश्य से बनी स्थण्डिल में परठने का विधि-निषेध	३०४	७२५
निषिद्ध परिष्ठापना सम्बन्धी प्रायश्चित्त—४		
निषिद्ध स्थानों पर उच्चार-प्रस्रवण परिष्ठापन के प्रायश्चित्त सूत्र	३०५	७२६
अन्यतीर्थिकादि के साथ स्थण्डिल जाने का प्रायश्चित्त सूत्र	३०६	७२८
आवृत स्थान में मल-मूत्र परठने जाने का प्रायश्चित्त सूत्र	३०७	७२८
उच्चार-प्रस्रवण भूमि के प्रतिलेखन न करने के प्रायश्चित्त सूत्र	३०८	७२९
अविधि से मल-मूत्रादि परठने का प्रायश्चित्त सूत्र	३०९	७२९
स्थण्डिल समाचारी के पालन नहीं करने के प्रायश्चित्त सूत्र	३१०	७२९
गुप्ति—		
गुप्ति-अगुप्ति—१		
गुप्ति का स्वरूप	३११	७३०
त्रिगुप्ति संयत	३१२	७३०
गुप्ति तथा अगुप्ति के प्रकार	३१३	७३०

विषय	सूत्रांक	पृष्ठांक
मन गुप्ति—२		
मन गुप्ति का स्वरूप	३१४	७३०
चार प्रकार की मन-गुप्ति	३१५	७३१
मन को दुष्ट अश्व की उपमा	३१६	७३१
दस चित्त समाधिस्थान	३१७	७३१
व्याकुल चित्तवृत्ति वाले के दुष्कृत्य	३१८	७३२
दस प्रकार की समाधि	३१९	७३३
दस प्रकार की असमाधि	३२०	७३३
मन को वश में करने का फल	३२१	७३३
मन समाधारणा का फल	३२२	७३३
मन की एकाग्रता का फल	३२३	७३४
वचन-गुप्ति—३		
वचन गुप्ति का स्वरूप	३२४	७३४
चार प्रकार की वचन गुप्ति	३२५	७३४
वचन गुप्त के कृत्य	३२६	७३४
वचन गुप्ति का प्ररूपण	३२७	७३४
वचन गुप्ति का फल	३२८	७३४
वचन-समाधारणा का फल	३२९	७३५
काय-गुप्ति—४		
कायगुप्ति का स्वरूप	३३०	७३५
कायगुप्ति के अनेक प्रकार	३३१	७३५
कायगुप्ति का महत्व	३३२	७३५
कायगुप्ति का फल	३३३	७३६
काय समाधारणा का फल	३३४	७३६
इन्द्रियनिग्रह का फल	३३५	७३६
अप्रमत्त मुनि के अध्यवसाय	३३६	७३७
कायदण्ड का निषेध	३३७	७३८
अस्थिरासन वाला पाप श्रमण है	३३८	७३८

परिशिष्ट नं० १

अवशिष्ट पाठों का विषयानुक्रम से संकलन—

सूत्रांक	पृष्ठांक		पृष्ठांक
२० (क)	१५	भगवान की धर्म देशना	७३९
७० (क)	५१	निर्ग्रन्थों का आचार धर्म	७३९
८४ (ख)	५६	ज्ञान की उत्पत्ति अनुत्पत्ति के कारण	७४०
२६२ (ख)	१६५	अन्यतीर्थिकों की दर्शन प्रज्ञापना	७४१
४५८ (ख)	३२२	ब्रह्मचर्य के अनुकूल ज्ञान	७४२
६१७ (ख)	४१४	सचित्त पृथ्वी आदि पर निषद्या करने के प्रायश्चित्त सूत्र	७४२
		अंक पर्यंक में निषद्यादि करने के प्रायश्चित्त सूत्र	७४३
		धर्मशाला आदि में निषद्यादि करने के प्रायश्चित्त सूत्र	७४३
		पुद्गल प्रक्षेपणादि के प्रायश्चित्त सूत्र	७४४
		पशु पक्षियों के अंग संचालनादि के प्रायश्चित्त सूत्र	७४४
		भक्त पान आदि के आदान-प्रदान करने के प्रायश्चित्त सूत्र	७४४
		वाचना देने लेने के प्रायश्चित्त सूत्र	७४५

सूत्रांक	पृष्ठांक		पृष्ठांक
		आकार करने का प्रायश्चित्त सूत्र	७४५
६२३	४१८	अंग संचालन का प्रायश्चित्त सूत्र	७४५
६२९	४२०	मैथुन के संकल्प से वस्त्र निर्माण करने के प्रायश्चित्त सूत्र	७४५
६३६	४२३	अकेली स्त्री के साथ रहने के प्रायश्चित्त सूत्र	७४७
७१० (ख)	४६२	राजा और उनकी रानियों को देखने के प्रायश्चित्त सूत्र	७४८
७२२ (ख)	४६६	ग्राम रक्षक को वश में करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र	७४९
७२२ (ग)	४६६	राज्य रक्षक को वश में करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र	७४९
७२५ (ख)	४७४	भिक्षु के पाँच महाव्रतों का पालन	७४९
९४२ (ख)	५६२	बाहर गये हुए राजा के आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र	७४९
९११ (ख)	५६०	औषध सम्बन्धी क्रीतादि दोषों के प्रायश्चित्त सूत्र	७५०

॥ णाणायारो ॥

काले विणये बहुमाणे,
उवधाणे तहा अणिण्हवणे।
वंजण - अत्थ - तदुभए,
अट्ठविधो णाणमायारो ॥

—निशीथभाष्य, भाग १, गा० ८

च र णा नु यो ग

[ज्ञा ना चा र]

अर्हम्

नमोऽत्थुणं समणस्स भगवओ वड्ढमाणस्स

मंगल सुत्ताणि

णमोक्कार सुत्तं—

१. नमो अरिहंताणं[1]
नमो सिद्धाणं,
नमो आयरियाणं,
नमो उवज्झायाणं,
नमो लोए सव्वसाहूणं,[2]

—वि. स. १, उ. १, सु. १

णमोक्कारमंत महत्तं—

एसो पंच नमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं॥

—आव. अ. १ सु. १

पंचपयवंदण सुत्तं—

२. नमिऊण असुर-सुर-गरुल-भुयंग-परिवंदिए।
गयकिलेसे अरिहे सिद्धायरिए उवज्झाए सव्वसाहूणं॥

—चंद. गा. २

मंगल सुत्तं—

३. चत्तारि मंगलं,
अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

उत्तम सुत्तं—

चत्तारि लोगुत्तमा,
अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

सरण सुत्तं—

चत्तारि सरणं पवज्जामि,
अरिहंते सरणं पवज्जामि,

मंगल सूत्र

नमस्कार सूत्र—

१. अरिहन्तों को नमस्कार हो,
सिद्धों को नमस्कार हो,
आचार्यों को नमस्कार हो,
उपाध्यायों को नमस्कार हो,
लोक में समस्त साधुओं को नमस्कार हो।

नमस्कार मन्त्र महत्त्व—

ये पाँच नमस्कार, सब पापों का नाश करने वाले हैं, और सर्व मंगलों में प्रथम मंगल है।

पंचपदवन्दन सूत्र—

२. असुर-सुर गरुड़ और नागकुमारों से वन्दित, क्लेश रहित अरिहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय और सर्व साधुओं को नमस्कार कर के (चरणानुयोग) प्रारम्भ किया जा रहा है।

मंगल सूत्र—

३. चार मंगल हैं,
अरिहंत मंगल हैं, सिद्ध मंगल हैं,
साधु मंगल हैं, केवली का कहा हुआ धर्म मंगल है।

उत्तम सूत्र—

चार लोक में उत्तम हैं,
अरिहंत लोक में उत्तम हैं, सिद्ध लोक में उत्तम हैं,
साधु लोक में उत्तम हैं, केवली का कहा हुआ धर्म लोक में उत्तम है।

शरण सूत्र—

चार की शरण ग्रहण करता हूँ,
अरिहंतों की शरण ग्रहण करता हूँ,

---

१ (क) जंबु. व. १, सु. १ (ख) सूर. पा. १, सु. १ (ग) चन्द. पा. १, सु. १
२ आव. अ. १ सु. १

सिद्धे सरणं पवज्जामि,
साहू सरणं पवज्जामि,
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि[1] ।

—आव. अ. ४, सु. १२–१४

सिद्धों की शरण ग्रहण करता हूँ,
साधुओं की शरण ग्रहण करता हूँ,
केवली के कहे हुए धर्म की शरण ग्रहण करता हूँ।

---

१ (क) अरहंता मंगलं मज्झ, अरहंता मज्झ देवया। अरहंते कित्तइत्ताणं, वोसिरामित्ति पावगं ॥
सिद्धा य मंगलं मज्झ, सिद्धा य मज्झ देवया। सिद्धे य कित्तइत्ताणं, वोसिरामित्ति पावगं ॥
आयरिया मंगलं मज्झ, आयरिया मज्झ देवया। आयरिए कित्तइत्ताणं, वोसिरामित्ति पावगं ॥
उवज्झाया मंगलं मज्झ, उवज्झाया मज्झ देवया। उवज्झाया कित्तइत्ताणं, वोसिरामित्ति पावगं ॥
साहू य मंगलं मज्झ, साहू य मज्झ देवया। साहू य कित्तइत्ताणं वोसिरामित्ति पावगं ॥

—पइण्णय ६, गा. १-५

(ख) **चउसरण गमणं**

अरिहंत-सिद्ध-साहू, केवलि-कहिओ सुहावहो धम्मो। एए चउरो चउगइ-हरणा, सरणं लहइ धन्नो ॥

अरिहंता सरणं

अह सो जिणभत्ति-भरुच्छरंतरोमंच-कंचुअकरालो। पहरिस-पण-उम्मीसं, सीसंमी कयंजली भणइ ॥
रागद्दोसारीणं हंता कम्मट्ठगाइअरिहंता। विसय-कसायारीणं, अरिहंता हुंतु मे सरणं ॥
रायसिरिमुवक्कमित्ता, तवचरणं दुच्चरं अणुचरित्ता। केवलसिरिमरिहंता, अरिहंता हुंतु मे सरणं ॥
थुइवंदणमरिहंता, अमरिंद-नरिंद पूअमरिहंता। सासय-सुहमरहंता, अरिहंता हुंतु मे सरणं ॥
परमणगयं मुणंता, जोइंद-महिन्दझाणमरहंता। धम्मकहं अरिहंता, अरिहंता हुंतु मे सरणं ॥
सव्वजिआणमहिंसं, अरहंता सच्चवयणमरहंता। बंभव्वयमरहंता, अरिहंता हुंतु मे सरणं ॥
ओसरणमवसरित्ता, चउतीसं अइसए निसेवित्ता। धम्मकहं च कहंता, अरिहंता हुंतु मे सरणं ॥
एगाइ गिराऽणेगे, संदेहे देहिणं समं छित्ता। तिहुयणमणुसासंता, अरिहंता हुंतु मे सरणं ॥
वयणामएण भुवणं, निव्वावित्ता गुणेसु ठावंता। जिअलोअमुद्धरंता, अरिहंता हुंतु मे सरणं ॥
अच्चब्भुयगुणवंते, निअ-जस-ससहर-पसाहिअ-दिअंते। निअयमणाइअणंते, पडिवन्नो सरणमरिहंते ॥
उज्झिअ-जर-मरणाणं, समत्त-दुक्खत्त-सत्त-सरणाणं। तिहुअण-जणसुहयाणं, अरिहंताणं नमो ताणं ॥

सिद्धा सरणं

अरिहंत-सरण-मल-सुद्धि-लद्ध-सुविसुद्ध-सिद्ध-बहुमाणो। पणय-सिर-रइय-कर-कमल-सेहरो-सहरिसं भणइ ॥
कम्मट्ठखयसिद्धा, साहाविअ-नाण-दंसण समिद्धा। सव्वट्ठ-लद्धि-सिद्धा, ते सिद्धा हुंतु मे सरणं ॥
तिअलोअमत्थयत्था, परम पयत्था, अचिंत-समत्था। मंगल-सिद्ध-पयत्था, सिद्धा सरणं सुह-पसत्था ॥
मूलुक्खय-पडिवक्खा, अमूढलक्खा सजोगिपच्चक्खा। साहाविअत्त-सुक्खा, सिद्धा सरणं परममुक्खा ॥
पडिपिल्लिअपडिणीया, समग्ग-झाणग्गि-दड्ढ-भव-बीआ। जोईसर-सरणीया, सिद्धासरणंसुमरणीआ ॥
पाविअ-परमाणंदा, गुणनीसंदा विभिन्न-भव-कंदा। लहुईकय-रवि-चंदा, सिद्धा सरणं खविअद्दंदा ॥
उवलद्ध-परम-बंभा, दुल्लह-लंभा विमुक्क-संरंभा। भुवण-घर-धरण-खंभा, सिद्धा सरणं निरारंभा ॥

साहू सरणं

सिद्ध सरणेण नवबंभ-हेउ-साहु-गुण-जणिअ-बहुमाणो। मेइणि-मिलंत-सुपसत्थ, मत्थओ तत्थिमं भणइ ॥
जिअलोअ-बंधुणो, कुगइ-सिंधुणो पारगा महाभागा। नाणाइएहिं सिव-सुक्ख-साहगा साहुणो सरणं ॥
केवलिणो परमोही, विउलमई सुअहरा जिणमयंमि। आयरिअ-उवज्झाया, ते सव्वे साहुणो सरणं ॥
चउदस-दस-नवपुव्वी, दुवालसिक्कारसंगिणो जे अ। जिणकप्पाऽहालंदिअ, परिहारविसुद्धि-साहू अ ॥
खीरासव-महुआसव-संभिन्नस्सोअ-कुट्ठबुद्धि अ। चारण-वेउव्वि-पयाणुसारिणो साहुणो सरणं ॥

चउवीस तित्थयरणामाणि—

४. वंदे उसभं-अजियं संभवमभिनंदणं सुमइ-सुप्पभ-सुपासं।
ससि पुप्फदंत सीयल सिज्जंसं वासुपुज्जं च॥
विमलमणंतं य धम्मं, संति कुंथुं अरं च मल्लिं च।
मुणिसुव्वय-नमि-नेमिं, पासं तह वद्धमाणं च॥
—सं. श्र. गा. १८–१९

चौबीस तीर्थंकरों के नाम —

४. १. ऋषभ, २. अजित, ३. सम्भव, ४. अभिनन्दन, ५. सुमति, ६. पद्मप्रभ (सुप्रभ), ७. सुपार्श्व, ८. चन्द्रप्रभ (शशि), ९. सुविधि (पुष्पदन्त), १०. शीतल, ११. श्रेयांस, १२. वासुपूज्य, १३. विमल, १४. अनन्त, १५. धर्म, १६. शान्ति १७. कुंथु, १८. अर, १९. मल्लि, २०. मुनिसुव्रत, २१. नमि, २२. नेमि (अरिष्टनेमि), २३. पार्श्व और २४. श्रमण भगवान महावीर (वर्द्धमान) को वन्दन करता हूँ।

चउवीसत्थव सुत्तं—

५. लोगस्स उज्जोयगरे, धम्म-तित्थयरे जिणे।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसं पि केवली॥

चतुर्विंशति संस्तव सूत्र—

५. अखिल विश्व में धर्म का उद्योत—प्रकाश करने वाले, धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले, (राग-द्वेष को) जीतने वाले, (अंतरंग काम-क्रोधादि) शत्रुओं को नष्ट करने वाले, ऐसे केवलज्ञानी चौबीस तीर्थंकरों का मैं कीर्तन करूँगा—स्तुति करूँगा।

उसभमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे॥

श्री ऋषभदेव, श्री अजितनाथ जी को वन्दन करता हूं। सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, और राग-द्वेष के विजेता चन्द्रप्रभ जिन को नमस्कार करता हूँ।

सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअल-सिज्जंस-वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि॥

श्री पुष्पदन्त (सुविधिनाथ), शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमलनाथ, राग-द्वेष के विजेता अनन्त, धर्म तथा श्री शान्तिनाथ भगवान को नमस्कार करता हूँ।

उज्झिय-वइर-विरोहा, निच्चमदोहा पसंतमुह-सोहा। अभिमय-गुणसंदोहा, हयमोहा साहुणो सरणं॥
खंडिअ-सिणेह-दामा, अकामधामा निकाम-सुहकामा। सुपुरिस-मणाभिरामा, आयारामा मुणी सरणं॥
मिल्हिअ-विसय-कसाया, उज्झियघर घरणिसंग सुहसाया। अकलिय-हरिस-विसाया, साहू सरणं गय-पमाया॥
हिंसाइ-दोस-सुन्ना, कय-कारुन्ना सयंभुरुप्पन्ना। अजरामर-पह-खुन्ना, साहू सरणं सुकय-पुन्ना॥
कामविडंबणचुक्का, कलिमलमुक्का विविक्क-चोरिक्का। पाव-रय-सुरय-रिक्का, साहू गुण-रयण-चच्चिक्का॥
साहुत्त-सुट्ठिया जं, आयरियाई तओ य ते साहू। साहुभणिएण गहिया, तम्हा ते साहुणो सरणं॥

केवलिकहिओ धम्मो सरणं

पडिवन्न-साहु-सरणो, सरणं काउं पुणो वि जिण धम्मं। पहरिस - रोमंच - पवंच - कंचुअंचिअ-तणू भणइ॥
पवर-सुकएहिं पत्तं, पत्तेहिं वि नवरि केहिं वि न पत्तं। तं केवलि-पन्नत्तं, धम्मं सरणं पवन्नोऽहं॥
पत्तेण अपत्तेण य, पत्ताणि अ जेण नर-सुरसुहाइं। मुक्ख-सुहं पुण पत्तेण, नवरि धम्मो स मे सरणं॥
निद्दलिअ-कलुसकम्मो, कय-सुह-जम्मोखलीकयअहम्मो। पमुह-परिणाम-रम्मो, सरणं मे होउ जिणधम्मो॥
कालत्तए वि न मयं, जम्मण-जर-मरण-वाहि-सय-समयं। अमयं व बहुमयं, जिणमयं च सरणं पवन्नोऽहं॥
पसमिअ-काम-पमोहं, दिट्ठादिट्ठेसु न कलिय-विरोहं। सिव-सुह फलयममोहं, धम्मं सरणं पवन्नोऽहं॥
नरय-गइ गमण-रोहं, गुण-संदोहं पवाइ-निक्खोहं। निहणिअ - वम्मह-जोहं, धम्मं सरणं पवन्नोऽहं॥
भासुर-सुवन्न-सुन्दर - रयणालंकार - गारव - महग्घं। निहिमिव दोगच्च-हरं, धम्मं जिण-देसिअं वंदे॥

—पइण्णयसुत्तेसु कुसलाणुबंधि अज्झयणं गा. ११-४८।

कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च ।
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥

एवं मए अभिथुआ, विहुय-रयमला, पहीण-जर-मरणा ।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥

कित्तिय-वंदिय-महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
आरुग्गबोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दितु ॥

चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।
सागर-वर-गंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥

—आव. अ. २, सु. २–६

महावीरवंदण सुत्ताणि—

६. जयइ जग-जीव-जोणी, वियाणओ जगगुरु जगाणंदो ।
जगनाहो जगबंधू, जयइ जगप्पियामहो भयवं ॥
जयइ सुआणं पभवो, तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ ।
जयइ गुरु लोगाणं, जयइ महप्पा महावीरो ॥
भद्दं सव्व जगुज्जोयगस्स, भद्दं जिणस्स वीरस्स ।
भद्दं सुरासुरनमंसियस्स, भद्दं धुयकम्म-रयस्स ॥

—नं. थ. गा. १–३

ववगय जर-मरण-भए, सिद्धे अभिवंदिऊण तिविहेणं ।
वंदामि जिणवरिंदं, तेलोक्क-गुरुं महावीरं ॥

—पण्ण. पद. १, गा. १

वीरवरस्स भगवओ जर-मरण-किलेसदोसरहियस्स ।
वंदामि विणयपणओ सोक्खुप्पाए सया पाए ॥१॥

—सूर. पा. २०, सु. १०७, गा. ६

जयइ णवणलिणकुवलयवियसियसयवत्तपत्तलदलच्छो ।
वीरो गयंदमयगलसललियगयविक्कमो भयवं ॥

—चंद. गा. १

सिरि वीरत्थुई—

७.

पुच्छिस्सु णं समणा माहणा य, अगारिणो या पर-तित्थिया य ।
से केइ णेगंतहियं धम्ममाहु, अणेलिसं साहु-समिक्खयाए ॥

श्री कुन्थुनाथ, अरनाथ, भगवती मल्ली, मुनिसुव्रत एवं राग द्वेष के विजेता नमिनाथ जी को वन्दन करता हूँ। इसी प्रकार अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ, अन्तिम तीर्थंकर वर्द्धमान (महावीर) स्वामी को नमस्कार करता हूँ।

जिनकी मैंने इस प्रकार स्तुति की है, जो कर्मरूप धूल तथा मल से रहित हैं, जो जरा-मरण दोषों से सर्वथा मुक्त हैं, वे अन्तःशत्रुओं पर विजय पाने वाले धर्म प्रवर्तक चौबीस तीर्थंकर मुझ पर प्रसन्न हों।

जिनकी (इन्द्रादि देवों तथा मनुष्यों ने) कीर्ति की है, वन्दना की है, भाव से पूजा की है, और जो अखिल संसार में सबसे उत्तम हैं, वे सिद्ध-तीर्थंकर भगवान मुझे आरोग्य अर्थात् आत्मशान्ति, बोधि — सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय का पूर्ण लाभ तथा उत्तम समाधि प्रदान करें।

जो अनेक कोटा-कोटि चन्द्रमाओं से भी विशेष निर्मल हैं, जो सूर्यों से भी अधिक प्रकाशमान हैं, जो महासमुद्र से भी अधिक गम्भीर हैं, वे (तीर्थंकर) सिद्ध भगवान मुझे सिद्धि प्रदान करें, अर्थात् उनके आलम्बन से मुझे सिद्धि—मोक्ष प्राप्त हो।

महावीर वन्दन सूत्र—

६. जगत् की जीव योनियों के ज्ञाता जगद्गुरु जगदानन्द जगद्बन्धु जगन्नाथ जगत् पितामह भगवान जयवन्त हैं।

श्रुत के उत्पत्ति स्थान, लोक के गुरु, अन्तिम तीर्थंकर महात्मा महावीर जयवन्त हैं।

कर्मरज रहित, सुरासुर अभिवन्दित, सर्वजगद्योतक वीर जिन कल्याणकारी हों।

जन्म, जरा, मरण के भय से रहित सिद्धों को वन्दना करके त्रैलोक्य गुरु जिनेन्द्र भगवान महावीर की वन्दना करता हूँ।

जरा, मरण, क्लेश, द्वेष रहित वीरवर भगवान महावीर के सदा सुखदायी पैरों में विनयपूर्वक नमकर उन्हें वन्दना करता हूँ।

नवीन विकसे हुए नलिन, नीलोत्पल, सौ पांखडी वाले, कमल समान दीर्घ मनोहर नेत्रों वाले और अपनी लीला सहित जाता हुआ गजेन्द्र समान गति वाले श्रमण भगवान महावीर रागादि शत्रुओं को निर्विघ्न जीतते हैं।

श्री वीर-स्तुति—

७. श्रमण-माहण, गृहस्थ और अन्य संघानुयायियों ने पूछा कि जिसने साधु समीक्षापूर्वक अन्य धर्मों से भिन्न हितकारी धर्म कहा है, वह कौन है ?

कहं च नाणं कहं दंसण से, सीलं कहं नाय-सुयस्स आसी ? ।
जाणासि णं भिक्खु ! जहातहेणं, अहासुयं बूहि जहा णिसंतं ॥

हे भिक्षु ! उन ज्ञातपुत्र का ज्ञान-दर्शन और शील-आचार क्या है ? यह आप जानते हैं इसलिए यथाश्रुत, यथा अवधारित जो हो वह यथातथ्य कहें ।

खेयन्नए से कुसले महेसी, अणंतनाणी य अणंतदंसी ।
जसंसिणो चक्खुपहे ठियस्स, जाणाहि धम्मं च धिइं च पेहि ॥

वे महर्षि खेदज्ञ प्राणियों के खेद—दुःख के ज्ञाता, कुशल—कर्म रूप कुश के लुनने-छेदने में निपुण, आशुप्रज्ञ, अनन्तज्ञानी, अनन्तदर्शी (अतीत में) चक्षुपथ में स्थित थे, हे जिज्ञासु ! उनके धर्म को जानो और उनके धैर्य को देखो ।

उड्ढं अहे यं तिरियं दिसासु, तसा य जे थावर जे य पाणा ।
से णिच्च-णिच्चेहिं समिक्खपन्ने, दीवे व धम्मं समियं उदाहु ॥

ऊर्ध्व अधो और तिर्यक् दिशाओं में स्थित जो प्राणी हैं उन्हें नित्यानित्य द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय से सम्यक् प्रकार देखकर उस प्राज्ञ ने समभाव से द्वीप समान आधारभूत धर्म कहा है ।

से सव्वदंसी अभिभूयनाणी, निरामगंधे धिइमं ठियप्पा ।
अणुत्तरे सव्व-जगंसि विज्जं, गंथा अतीते अभए अणाऊ ॥

वे सर्वदर्शी महावीर अभिभूतज्ञानी—अन्य ज्ञानियों से अधिक ज्ञानी, निरामगन्ध—निर्दोष चारित्र वाले, धैर्यवान्, स्थितात्मा, इस जगत् में अनुत्तर प्रधान विद्वान् निर्ग्रन्थ अनायु—आयुकर्म के बन्ध से रहित थे ।

से भूइपण्णे अणिएअचारी, ओहंतरे धीरे अणंत-चक्खू ।
अणुत्तरे तप्पइ सूरिए वा, वइरोयणिंदे व तमं पगासे ॥

वे महावीर भूतिप्रज्ञ-सर्वज्ञ, अनियतचारी-स्वेच्छाविहारी, ओघंतर-संसार समुद्र से उत्तीर्ण, सर्वदर्शी, सूर्यसम सर्वाधिक तेजस्वी, वैरोचनेन्द्र-अग्निसम अन्धकार का नाश करने वाले थे ।

अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं, नेया मुणी कासव आसुपन्ने ।
इंदे व देवाण महाणुभावे, सहस्सनेता दिवि णं विसिट्ठे ॥

जिस प्रकार स्वर्ग में महानुभाव इन्द्र सहस्र देव समूह का विशिष्ट नेता है, उसी प्रकार आशुप्रज्ञ काश्यप गोत्री भगवान महावीर ऋषभादि प्रज्ञप्त इस अनुत्तर धर्म के नेता थे ।

से पन्नया अक्खय-सायरे वा, महोदही वा वि अणंतपारे ।
अणाइले वा अकसाइ मुक्के, सक्के व देवाहिवई जुइमं ॥

वे महावीर सागर सम अक्षय, महोदधि सम अपार प्रज्ञा वाले थे । वे अकुटिल, अकषाय, मुक्त और देवाधिपति सम द्युतिमान थे ।

से वीरिएणं पडिपुण्णवीरिए, सुदंसणे वा नग-सव्व-सेट्ठे ।
सुरालए वासि-मुदागरे से, विरायए णेग-गुणोववेए ॥

वे महावीर वीर्य-शक्ति से प्रतिपूर्ण वीर्य, सर्वपर्वत श्रेष्ठ मेरु सम सुदर्शन सुरालयवासियों के मोदवर्धक और अनेक गुण-युक्त विराजमान थे ।

सयं सहस्साण उ जोयणाणं, तिकंडगे पंडग-वेजयंते ।
से जोयणे णवणवए सहस्से, उद्धुस्सितो हेट्ठ सहस्समेगं ॥

वह मेरु तीन काण्ड एवं पाण्डुक वनरूप वैजयन्ती-युत सौ हजार (एक लाख) योजन का है । निन्यानवें हजार योजन भूमि से ऊँचा है और एक हजार योजन भूमि में नीचे है ।

पुट्ठे नभे चिट्ठइ भूमि-वट्ठिए, जं सूरिया अणुपरिवट्टयंति ।
से हेमवन्ने बहुनंदणे य, जंसी रतिं वेदयंती महिंदा ।

वह नन्दन वन युत हेमवर्ण मेरु भू-पर स्थित होते हुए भी नभ का स्पर्श करता है । सूर्य उसकी परिक्रमा करते हैं और महेन्द्र उस पर बैठकर आनन्द का अनुभव करते हैं ।

से पव्वए सद्द-महप्पगासे, विरायती कंचण-मट्ठ-वण्णे ।
अणुत्तरे गिरिसु य पव्व-दुग्गे, गिरीवरे से जलिए व भोमे ॥

वह मेरु पर्वतों में श्रेष्ठ, प्रधान दुर्गम पर्वत है तथा वह पृथ्वी पर देदीप्यमान मणि एवं स्वर्णसम द्युतिमान शुद्ध वर्ण-वाला अनेक नामों से प्रसिद्ध है ।

महीइ मज्झंमि ठिए णगिंदे, पन्नायते सूरिय-सुद्ध-लेसे ।
एवं सिरीए उ स भूरि-वन्ने, मणोरमे जोयइ अच्चिमाली ॥

वह नगेन्द्र विविध वर्णों से सुशोभित सूर्य सम शुद्ध मनोहर कान्तियुक्त सर्व दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ पृथ्वी के मध्य भाग में स्थित है ।

सुदंसणस्सेव जसो गिरिस्स, पवुच्चइ महतो पव्वयस्स।
एतोवमे समणे नाय-पुत्ते, जाई-जसो-दंसण-नाण-सीले॥

यह महापर्वत सुदर्शन गिरि का यश कहा है। ज्ञातपुत्र भगवान महावीर श्रमण के ज्ञान, दर्शन, शील, जाति और यश को इस (मेरु) की उपमा दी जाती है।

गिरीवरे वा निसहाययाणं, रुयए व सेट्ठे वलयायताणं।
तओवमे से जग-भूइ-पन्ने, मुणीण मज्झे तमुदाहु पन्ने॥

आयत गिरिवरों में जैसे निषधगिरि और वर्तुल पर्वतों में जैसे रुचक पर्वत श्रेष्ठ हैं वैसे ही श्रेष्ठ प्रज्ञ भ० महावीर मुनियों के मध्य में श्रेष्ठ हैं।

अणुत्तरं धम्ममुईरइत्ता, अणुत्तरं झाणवरं झियाई।
सुसुक्कसुक्कं, अपगंड-सुक्कं, संखेंदु-एगंतवदात-सुक्कं॥

भ० महावीर सर्वोत्तम धर्म कहकर शंख, इन्दु और निर्दोष शुक्ल वस्तु के समान सर्वोत्तम शुक्ल ध्यान करते थे।

अणुत्तरग्गं परमं महेसी, असेस-कम्मं स विसोहइत्ता।
सिद्धिगते साइमणंतपत्ते, नाणेण सीलेण य दंसणेण॥

महर्षि महावीर ज्ञान दर्शन और शील से अशेष कर्मों का शोधन करके सर्वोत्तम सादि अनन्त सिद्धि गति को प्राप्त हुए हैं।

रुक्खेसु णाए जह सामली वा, जंसी रतिं वेदयंति सुवन्ना।
वणेसु वा नंदणमाहु सेट्ठं, नाणेण सीलेण य भूइपन्ने॥

जिस प्रकार वृक्षों में सुपर्ण देवों का क्रीड़ा स्थल शाल्मली वृक्ष और वनों में नन्दन वन श्रेष्ठ हैं। उसी प्रकार ज्ञान और शील में श्रेष्ठ प्रज्ञ भ० महावीर श्रेष्ठ हैं।

थणियं व सद्दाण अणुत्तरे उ, चंदो व ताराण महाणुभावे।
गंधेसु वा चंदणमाहु सेट्ठं, एवं मुणीणं अपडिन्नमाहु॥

शब्दों में मेघगर्जन, ताराओं में महानुभाव चन्द्र और गन्ध पदार्थों में चन्दन के समान अप्रतिज्ञ-कामना रहित भ० महावीर श्रेष्ठ माने गये हैं।

जहा सयंभू उदहीणसेट्ठे, नागेसु वा धरणिंदमाहु सेट्ठे।
खोओदए वा रस-वेजयंते, तवोवहाणे मुणि वेजयंते॥

समुद्रों में स्वयंभूरमण, नागकुमारों में धरणेन्द्र और रसों में इक्षुरस के समान तपस्वियों में उपधान तपःप्रधान भ० महावीर हैं।

हत्थीसु एरावणमाहु णाए, सीहो मियाणं सलिलाण गंगा।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवे, निव्वाणवादीणिह नायपुत्ते॥

हाथियों में एरावण, मृगों में सिंह, नदियों में गंगा और पक्षियों में वेणुदेव गरुड़ के समान निर्वाणवादियों में ज्ञातपुत्र भगवान महावीर हैं।

जोहेसु णाए जह वीससेणे, पुप्फेसु वा जह अरविंदमाहु।
खत्तीण सेट्ठे जह दंत-वक्के, इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे॥

योद्धाओं में विश्वसेन, पुष्पों में अरविन्द और क्षत्रियों में दन्तवक्र के समान ऋषियों में वर्धमान श्रेष्ठ हैं।

दाणाण सेट्ठं अभय-प्पयाणं, सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति।
तवेसु वा उत्तम-बंभचेरं, लोगुत्तमे समणे णायपुत्ते॥

दानों में अभयदान, सत्यों में अनवद्य सत्य, तपों में उत्तम ब्रह्मचर्य के समान, लोकोत्तम ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर श्रेष्ठ हैं।

ठिईण सेट्ठा लवसत्तमा वा, सभा सुहम्मा व सभाण सेट्ठा।
निव्वाण-सेट्ठा जह सव्व-धम्मा, न णायपुत्ता परमत्थि णाणी॥

स्थितियों में लवसत्तमा स्थिति, सभाओं में सुधर्मा सभा, और धर्मों में निर्वाण धर्म से अधिक श्रेष्ठ कोई नहीं है। उसी प्रकार ज्ञातपुत्र भगवान महावीर से अधिक ज्ञानी कोई नहीं है।

पुढोवमे धुणई विगयगेही, न सण्णिहिं कुव्वई आसुपन्ने।
तरिउं समुद्दं व महाभवोघं, अभयंकरे वीर अणंतचक्खू॥

साधकों के लिए भगवान महावीर पृथ्वी के समान आधारभूत हैं, गृद्धि रहित वे भगवान महावीर संचय नहीं करते हैं, आशुप्रज्ञ भगवान महावीर समुद्र के समान संसार समुद्र को तिर चुके हैं और अभयंकर भगवान महावीर अनन्त ज्ञानी हैं।

कोहं च माणं च तहेव मायं, लोभं चउत्थं अज्झत्थ-दोसा ।
एआणि वंता अरहा महेसी, न कुव्वई पावं न कारवेइ ॥

क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार अध्यात्म दोषों का वमन—त्याग कर अर्हत् महर्षि महावीर न स्वयं पाप करते हैं और न पाप करवाते हैं।

किरियाकिरियं वेणइयाणुवायं, अण्णाणियाणं पडियच्च ठाणं ।
से सव्व-वायं इइ वेयइत्ता, उवट्ठिए संजम दीह-रायं ॥

भगवान महावीर, अक्रिया, विनय और अज्ञानवादियों के पक्ष एवं वादों को जानकर दीर्घरात्र-यावज्जीवन-संयम-साधना के लिए उपस्थित हुए हैं।

से वारिया इत्थि सराइभत्तं, उवहाणवं दुक्ख खयट्ठयाए ।
लोगं विदित्ता आरं परं च, सव्वं पभू वारिय सव्व वारं ॥

इहलोक और परलोक को जानकर दुःख क्षय के लिए उपधानवान् प्रभु ने रात्रिभोजन, स्त्री और सर्व वार-पापों का परित्याग कर दिया है।

सोच्चा य धम्मं अरिहंतभासियं, समाहियं अट्ठपओवसुद्धं ।
तं सद्दहाणा य जणा अणाऊ, इंदा व देवाहिवइ आगमिस्संति ॥
—सूय. सु. १, अ. ६ गा. १-२९

श्री अरिहन्तदेव द्वारा भाषित, सम्यक् रूप से उक्त युक्तियों और हेतुओं से अथवा अर्थों और पदों से शुद्ध (निर्दोष) धर्म को सुनकर उस पर श्रद्धा (श्रद्धापूर्वक सम्यक् आचरण) करने वाले व्यक्ति आयुष्य (कर्म) से रहित—मुक्त हो जायेंगे, अथवा इन्द्रों की तरह देवों का आधिपत्य प्राप्त करेंगे।

वीर-सासण थुई—

८. निव्वुइ-पह-सासणयं जयइ, सया सव्वभावदेसणयं ।
कुसमय-मय-नासणयं, जिणिंद वर-वीर-सासणयं ॥
—नं. थ. गा. २

वीर शासन स्तुति—

निवृत्ति मार्ग का शासक, सर्व भाव-पदार्थों का उपदेशक, कुसमय सिद्धान्त मद का नाशक जिनेन्द्रवर भगवान महावीर का शासन सदा जयवन्त हो।

गणहर वंदण सुत्तं—

९. णमो गोयमाईणं गणहराणं
—नि. अंतिमसुत्तं

गणधर वन्दन सूत्र :

गणधर गौतमादि को नमस्कार हो।

गणहरणामाणि—

१०. पढमित्थ इंदभूई, बीए पुण होई अग्गिभूइ त्ति ।
तइए य वाउभूई, तओ वियत्ते सुहम्मे य ॥
मंडिय-मोरियपुत्ते, अकंपिए चेव अयलभाया य ।
मेयज्जे य पहासे, गणहरा हुंति वीरस्स ॥
—नं. थ. गा. २०-२१

गणधर नाम :

प्रथम इन्द्रभूति, द्वितीय अग्निभूति, तृतीय वायुभूति, चतुर्थ व्यक्त, पंचम सुधर्मा, षष्ठ मंडितपुत्र, सप्तम मौर्यपुत्र, अष्टम अकंपित, नवम अचलभ्राता, दशम मेतार्य, एकादशम प्रभास, ये भगवान महावीर के गणधर हैं।

संघस्स थुई—

११. तव नियम विणयवेलो जयइ सया नाणविमलविउलजलो ।
हेउसयविउलवेगो संघसमुद्दो गुणविसालो ॥
— वि. स. ४१, उ. १९६, गा. २

संघ स्तुति :

तप, नियम और विनयरूप वेला भरतीवाले, निर्मल ज्ञानरूप पानी वाले सैकड़ों हेतु रूप विपुल वेग वाले और गुण से विशाल ऐसे संघसमुद्र की जय हो।

संघ वंदण सुत्तं—

१२ (१) संघस्स णगरोवमा—

गुण-भवण-गहण ! सुय-रयण-भरिय ! दंसण-विसुद्ध रत्थागा ! ।
संघ-नगर ! भद्दं ते अक्खंडचरित्तपागारा ! ॥

संघ वन्दन सूत्र :

(१) संघ को नगर की उपमा—

गुण रूप भवनों के गहन ! श्रुतरूप रत्नों से भरे हुए ! विशुद्ध दर्शन—श्रद्धारूप ! रथ्या-गलियों वाले और अखण्ड चारित्ररूप प्राकार वाले हे संघ नगर ! "तू कल्याणकारी है।"

(२) संघस्स चक्कोवमा—

संजम-तव-तुंबारयस्स नमो सम्मत्तपारियल्लस्स ।
अप्पडिचक्कस्स जओ होउ सया संघचक्कस्स ॥

(२) संघ को चक्र की उपमा—

संयम रूप तुंब-नाभि, तप रूप अर, सम्यक्त्वरूप परिकर और प्रतिचक्र-विरोधपक्ष-रहित "संघ-चक्र" की सदा जय हो।

(३) संघस्स रहोवमा—

भद्दं सील-पडागूसियस्स तव-नियम-तुरय-जुत्तस्स ।
संघरहस्स भगवओ सज्झाय-सुनंदिघोसस्स ॥

(३) संघ को रथ की उपमा—

तप-नियमरूप तरंगों से युक्त, शीलरूप पताका से उन्नत और स्वाध्याय रूप नंदि-मंगलघोष वाला भगवान "संघ-रथ" कल्याणप्रद है ।

(४) संघस्स पउमोवमा—

कम्म-रय-जलोह-विणिग्गयस्स सुय-रयण-दीह-नालस्स ।
पंच-महव्वय-थिर-कण्णियस्स गुण-केसरालस्स ॥
सावग-जण-महुअर-परिवुडस्स जिण-सूर-तेय-बुद्धस्स ।
संघ-पउमस्स भद्दं समण-गण-सहस्स-पत्तस्स ।

(४) संघ को कमल की उपमा—

श्रुत-रत्नरूप दीर्घ नाल वाले, कर्म-रज रूप जल से बाहर निकले हुए पंचमहाव्रत रूप स्थिर कर्णिका वाले, गुण रूप केसर वाले, श्रावक जनरूप मधुकरों से घिरे हुए जिनरूप सूर्य के तेज से बुद्ध-विकसित, श्रमण-गण रूप सहस्र पत्र वाले "संघ-पद्म" कल्याणप्रद हो ।

(५) संघस्स चंदोवमा—

तव-संजम-मय-लंछण ! अकिरिय-राहु-मुह-दुद्धरिस ! णिच्चं ।
जय संघचंद ! निम्मल सम्मत्तविसुद्धजोण्हागा ! ॥

(५) संघ को चन्द्र की उपमा—

अक्रियावाद रूप राहु के मुख में अग्राह्य, विशुद्ध सम्यक्त्व रूप ज्योत्स्ना-चन्द्रिका वाले "हे संघ-चन्द्र !" तेरी जय हो ।

(६) संघस्स सूरोवमा—

पर-तित्थिय-गह पह-नासगस्स तव-तेय-दित्त-लेसस्स ।
नाणुज्जोयस्स जए भद्दं दम-संघ-सूरस्स ॥

(६) संघ को सूर्य की उपमा—

तपस्तेज रूप प्रदीप्त लेश्य-कान्ति वाले, ज्ञान रूप उद्योत वाले, पर-तीर्थिकरूप ग्रहों की प्रभा को नाश करने वाले, दम-प्रधान "संघ-सूर्य" इस जगत में कल्याणकारी हो ।

(७) संघस्स समुद्दोवमा—

भद्दं ! धिइवेलापरिगयस्स सज्झाय-जोग-मगरस्स ।
अक्खोहस्स भगवओ संघसमुद्दस्स रुंदस्स ॥

(७) संघ को समुद्र की उपमा—

धृतिरूप वेला से घिरे हुए, स्वाध्याय तथा शुभयोगरूप मगरों से युक्त परीषह और उपसर्गों में अक्षुब्ध, सर्व ऐश्वर्य युक्त भगवान "संघ-समुद्र" कल्याणकारी हो ।

(८) संघस्स मेरुवमा—

सम्मद्दंसण - वर - वइरदढ - रूढ - गाढावगाढ - पेढस्स ।
धम्म - वर - रयण - मंडियचामीयर - मेहलागस्स ॥
नियमूसिय - कणय - सिलायलुज्जल - जलंत - चित्तकूडस्स ।
नंदण - वण - मणहर सुरभि - सील - गंधुद्धुमायस्स ॥

(८) संघ को मेरु की उपमा—

सम्यक्त्वरूप श्रेष्ठ वज्रमय दृढ़ गहरी रोपी हुई पीठिका वाले, धर्म रूप श्रेष्ठ रत्नों से मंडित-जड़ी हुई मेखला वाले ।

नियम रूपी ऊँची-ऊँची शिलाओं से उज्ज्वल एवं ज्वलंत चित्तरूप कूट शिखर वाले, शीलरूप सुगन्धित धूम से व्याप्त नन्दन वन वाले ।

जीव - दया - सुन्दर - कंदरुद्दरिय - मुणिवर-मइंद-इन्नस्स ।
हेउ - सय - धाउ - पगलंत - रयण - दित्तोसहिगुहस्स ॥

जीवदयारूप सुन्दर कन्दराओं में उद्दिप्त-स्वाभिमानी नाना मुनिवररूप मृगेन्द्रों वाले, सैकड़ों हेतु रूप धातुओं से झरती हुई दिव्य भावरूप ओषधिरत्नवाली गुफावाले ।

संवर-वर - जल - पगलिय - उज्झर - पविरायमाण - हारस्स ।
सावग - जण - पउर - - रवंत - मोर - नच्चंत - कुहरस्स ॥

संवररूप बहती हुई श्रेष्ठ जलधारा से सुशोभित झरनों वाले, प्रचुर श्रावकरूप बोलते व नाचते हुए मयूरों वाली कन्दरा वाले ।

विणय - नयप्पवर-मुणिवर - फुरंत - विज्जुज्जलंत -सिहरस्स ।
विविह-गुण-कप्प-रुक्खग - फल - भर - कुसुमाउल - वणस्स ॥

विनयावनत प्रवर मुनिवररूप चमकती हुई बिजली से आलोकित शिखरवाले, विविध गुण रूप पुष्पफलयुक्त कल्पवृक्ष वाले ।

नाण-वर-रयण - दिप्पंत - कंत - वेरुलिय - विमल - चूलस्स ।
वंदामि विणय - पणओ संघ - महामन्दर - गिरिस्स ॥

ज्ञानरूप श्रेष्ठ रत्नों से दैदीप्यमान कांत वैडूर्यमय विमल चूला—शिखर वाले, संघरूप-महामंदर गिरि को वन्दना करता हूँ ।

गुण - रयणुज्जल - कडयं सील - सुगंधि - तव - मंडिउद्देसं ॥
सुय - बारसंग - सिहरं संघमहामंदरं वंदे ॥

गुण रूप रत्नों से उज्ज्वल कटक – मध्य भाग वाले, शीलरूप सुगन्धित एवं तप से मण्डित उद्देश – पार्श्वभूमि वाले, द्वादशांग श्रुतरूप शिखर वाले उस संघ-महामन्दर को वन्दन करता हूँ।

नगर - रह - चक्क - पउमे चंदे सूरे समुद्दमेरुम्मि।
जो उवमिज्जइ सययं तं संघ गुणायरं वंदे[1] ॥
—नं. थ. गा. ४—१९

नगर, रथ, चक्र, पद्म, चन्द्र, सूर्य, समुद्र, और मेरु की जिसे उपमा दी जाती है उस संघ-गुणाकर को वन्दना करता हूँ।

सुअस्स णमोक्कार सुत्तं—

णमो सुअस्स। —वि. स. १, उ. १, सु. ३

श्रुत नमस्कार सूत्र—

श्रुत को नमस्कार हो।

सुयदेवया णमोक्कार सुत्ताइं—

१३ नमो सुयदेवयाए भगवतीए[2]। —वि. स. १७, उ. १, सु. १

श्रुतदेवता नमस्कार सूत्र—

भगवती श्रुतदेवता को नमस्कार हो।

कुमुय सुसंठियचलणा अमलियकोरंटबेंटसंकासा।
सुयदेवया भगवई मम मतितिमिरं पणासेउ ॥
—वि. अंतिमसुत्तं

कछुआ की तरह सुन्दर चरण कमल वाली, निर्मल कोरंट वृक्ष की कली के समान पूज्य श्रुतदेवी मेरे मति अज्ञान का नाश करो।

वियसियअरविंदकरा नासियतिमिरा सुयाहिया देवी।
मज्झं पि देउ मेहं बुह विबुहणमंसिया णिच्चं ॥

जिसके हाथ में विकसित कमल हैं और बुध – पंडित, विबुध—देवों ने जिन्हें हमेशा नमस्कार किये हैं ऐसी श्रुताधिष्ठित देवी मुझे बुद्धि अर्पित करो।

सुयदेवयाए पणमिमो जीए पसाएण सिक्खियं नाणं।
अण्णं पवयणदेवी संतिकरी तं नमंसामि ॥

श्रुतदेवता को प्रणाम करता हूँ, जिनकी कृपा से ज्ञान सीखा है और इसके अतिरिक्त शान्ति करने वाली प्रवचनदेवी को भी मेरा नमस्कार हो।

सुयदेवया य जक्खो कुंभधरो बंभसंति वेरोट्टा।
विज्जाय अंतहुंडी देउ अविग्घं लिहंतस्स ॥
—वि. अंतिमसुत्तं

श्रुतदेवता, कुम्भधर यक्ष, ब्रह्मशान्ति वैरोट्या, विद्या और अंतहुण्डी—लेखन करने वाले को निर्विघ्न करो।

गणिपिडग णमोक्कार सुत्तं—

१४. णमो दुवालसंगस्स गणिपिडगस्स। —वि. अंतिमसुत्तं

गणिपिटक नमस्कार सूत्र—

द्वादशांग गणिपिटक को नमस्कार हो।

लिवि णमोक्कार सुत्तं—

१५. णमो बंभीए लिवीए[3]। —वि. स. १, उ. १, सु. १

लिपि नमस्कार सूत्र—

ब्राह्मी लिपि को नमस्कार हो।

---

१ १. नगर, २. रथ, ३. चक्र, ४. पद्म, ५. चन्द्र, ६. सूर्य, ७. समुद्र, ८. मेरु—यह उपमा अष्टक मानव में महामानव की प्रतिष्ठा का द्योतक है। यहाँ अध्यात्म साधकों का संघ उपमेय है। श्रेष्ठतम उपमानों द्वारा संघ में उन सब अनिवार्य गुणों की प्रतिष्ठा होना आवश्यक बताया गया है जिनसे साधक साधना में सहज सिद्धि को प्राप्त हो सकता है।

२ भग. स. २६, उ. १, सु. १।

३ ब्राह्मी लिपि को नमस्कार—क्यों और कैसे ?

अक्षर विन्यासरूप अर्थात्—लिपिबद्ध श्रुत द्रव्यश्रुत है, लिखे जाने वाले अक्षरसमूह का नाम लिपि है। भगवान ऋषभदेव ने अपनी पुत्री ब्राह्मी को दाहिने हाथ से लिखने के रूप में जो लिपि सिखाई, वह ब्राह्मी लिपि कहलाती है। ब्राह्मीलिपि को नमस्कार करने के सम्बन्ध में तीन प्रश्न उठते हैं—

(१) लिपि अक्षरस्थापनारूप होने से उसे नमस्कार करना द्रव्यमंगल है, जो कि एकान्त मंगलरूप न होने से यहाँ कैसे उपादेय हो सकता है ?

(२) गणधरों ने सूत्र को लिपिबद्ध नहीं किया, ऐसी स्थिति में उन्होंने लिपि को नमस्कार क्यों किया ?

वंदणा फल सुत्तं—

१६. प० वंदणएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

उ० वंदणएणं नीयागोयं कम्मं खवेइ। उच्चागोयं निबन्धइ। सोहग्गं च णं अप्पडिहयं आणाफलं निव्वत्तेइ दाहिण-भावं च णं जणयइ। —उत्त. अ. २९, सु. १२

वन्दना फल सूत्र—

९. प्र०—भन्ते ! वन्दना से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—वन्दना से वह नीच-कुल में उत्पन्न करने वाले कर्मों को क्षीण करता है। ऊँचे-कुल में उत्पन्न करने वाले कर्म का अर्जन करता है। जिसकी आज्ञा को लोग शिरोधार्य करें वैसे अबाधित सौभाग्य को प्राप्त होता है तथा दाक्षिण्यभाव को प्राप्त होता है।

चउवीसत्थवफल सुत्तं—

१७. प० चउव्वीसत्थएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

उ० चउव्वीसत्थएणं दंसणविसोहिं जणयइ।

—उत्त. अ. २९, सु. ११

चतुर्विंशतिस्तव फल सूत्र—

११. प्र०—भन्ते ! चतुर्विंशतिस्तव (चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति करने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—चतुर्विंशतिस्तव से सम्यक्त्व की विशुद्धि को प्राप्त करता है।

थव-थुई मंगल फल सुत्तं—

१८. प० थवथुइमंगलेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ० थवथुइमंगलेणं नाणदंसणचरित्तबोहिलाभं जणयइ। नाणदंसणचरित्त-बोहिलाभसंपन्ने य णं जीवे अन्तकिरियं कप्पविमाणोववत्तिगं आराहणं आराहेइ।

—उत्त. अ. २९, सु. १६

स्तवस्तुतिमंगल फल सूत्र—

११. प्र०—भन्ते ! स्तव और स्तुति रूप मंगल से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—स्तव और स्तुति रूप मंगल से वह ज्ञान, दर्शन और चारित्र की बोधि का लाभ करता है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र के बोधि-लाभ से सम्पन्न व्यक्ति मोक्ष-प्राप्ति या वैमानिक देवों में उत्पन्न होने योग्य आराधना करता है।

—: ० :—

(क्रमशः पृष्ठ ९ का शेष)

३. प्रस्तुत शास्त्र स्वयं मंगलरूप है, फिर शास्त्र के लिए यह मंगल क्यों किया गया ?

इनका क्रमशः समाधान यों है—प्राचीनकाल में शास्त्र को कण्ठस्थ करने की परम्परा थी, लिपिबद्ध करने की नहीं। ऐसी स्थिति में लिपि को नमस्कार करने की आवश्यकता नहीं थी, फिर भी लिपि को नमस्कार किया गया है, उसका आशय वृत्तिकार स्पष्ट करते हैं कि यह नमस्कार प्राचीनकालीन लोगों के लिए नहीं, आधुनिक लोगों के लिए है। इससे यह भी सिद्ध है कि गणधरों ने लिपि को नमस्कार नहीं किया है, यह नमस्कार शास्त्र को लिपिबद्ध करने वाले किसी परम्परानुगामी द्वारा किया गया है। अक्षरस्थापनारूप लिपि अपने आप में स्वतः नमस्करणीय नहीं होती, ऐसा होता तो लाटी, यवनी, तुर्की, राक्षसी आदि प्रत्येक लिपि नमन योग्य होती; परन्तु यहाँ ब्राह्मी लिपि को नमन योग्य बताई है, उसका कारण यह है कि शास्त्र ब्राह्मी लिपि में लिपिबद्ध हो जाने के कारण वह लिपि आधुनिकजनों के लिए श्रुतज्ञान रूप भावमंगल को प्राप्त करने में अत्यन्त उपकारी है। द्रव्यश्रुत भावश्रुत का कारण होने से संज्ञाक्षर रूप (ब्राह्मीलिपिरूप) द्रव्यश्रुत को भी मंगलरूप माना है। वस्तुतः यहाँ नमन योग्य भावश्रुत ही है, वही पूज्य है। अथवा शब्दनय की दृष्टि से शब्द और उसका कर्ता एक हो जाता है। इस अभेद विवक्षा से ब्राह्मीलिपि को नमस्कार भगवान ऋषभदेव (ब्राह्मीलिपि के आविष्कर्ता) को नमस्कार करना है। अतः मात्र लिपि को नमस्कार करने का अर्थ अक्षरविन्यास को नमस्कार करना लिया जायेगा तो अतिव्याप्ति दोष होगा।

धम्मपण्णवणा

१६. ते णं काले णं
ते णं समए णं
समणे भगवं महावीरे ।
आइगरे
तित्थयरे
सयं संबुद्धे ।
पुरिसुत्तमे
पुरिससीहे
पुरिसवरपुंडरीए
पुरिसवरगंधहत्थी ।
लोगुत्तमे
लोगनाहे
लोगहिए
लोगपईवे
लोगपज्जोयगरे ।
अभयदए
चक्खुदए
मग्गदए
सरणदए
जीवदए
बोहिदए ।
धम्मदए
धम्मदेसए
धम्मनायगे
धम्मसारही
धम्मवर चाउरंत चक्कवट्टी ।
दीवो
ताणं
सरणगई पइट्ठा
अप्पडिहयवरणाणदंसणधरे ।
वियट्ट छउमे ।
जिणे
जाणए
तिण्णे
तारए
मुत्ते
मोयए

धर्मप्रज्ञापना

१२. उस काल में
उस समय में
श्रमण भगवन् महावीर ।
श्रुत-चारित्र धर्म के प्रवर्तक
चतुर्विध तीर्थ के संस्थापक
स्वयंबुद्ध ।
पुरुषों में उत्तम
पुरुषों में सिंह समान
पुरुषों में श्रेष्ठ पुण्डरीक कमल समान
पुरुषों में श्रेष्ठ गन्धहस्ति समान ।
लोक में उत्तम
लोक के नाथ
लोक के हितकर
लोक में दीपक समान
लोक में उद्योतकर्ता ।
अभयदानदाता
ज्ञानचक्षुदाता
(मोक्ष) मार्गदर्शक
शरणदाता
जीवदयाकर्ता
बोधिदाता
धर्मदाता
धर्मोपदेशक
धर्मनायक
धर्म सारथी
धर्म के श्रेष्ठ चतुर्दिक चक्रवर्ती ।
द्वीप समान
रक्षक
शरणागत के आधार
आवरण रहित अनुत्तर ज्ञान दर्शन के धारक ।
छद्म-छल से सर्वथा निवृत्त ।
राग-द्वेष के विजेता
राग-द्वेष जीतने का पथ बताने वाले
संसार सागर से उत्तीर्ण
भवसागर से तारक
बाह्याभ्यन्तर परिग्रह से मुक्त
परिग्रह से मोचक

बुद्धे	जीवाजीव द्रव्यों के ज्ञाता
बोहए।	जीवाजीव द्रव्यों के बोधक।
सव्वण्णू	सर्वज्ञ
सव्वदरिसी	सर्वदर्शी
सिव-मयल-मरुअ-मणंत-मक्खय-मव्वाबाह-मपुणरावत्तगं	उपद्रवरहित, स्थिर, रोगरहित, अनन्त, अक्षय, बाधा-रहित, अपुनरावर्तक
सिद्धिगइ नामधेयं ठाणं संपाविउकामे	सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त करने की कामना वाले थे
अरहा जिणे केवली	वे अर्हन्त जिन केवली थे
सत्तहत्थुस्सेहे	वे सात हाथ ऊँचे थे
समचउरंससंठाणसंठिए	वे समचौरस संस्थान से स्थित थे
वज्जरिसहनारायसंघयणे	वे वज्रऋषभनाराच संहनन वाले थे
अणुलोम वाउवेगे	उनके शरीर में सभी वायु अनुकूल वेगवाले थे
कंकग्गहणी	कंक पक्षी के समान उनकी ग्रहणी थी
कवोयपरिणामे	कपोत के समान उनकी पाचन शक्ति थी
सउणिपोस-पिट्ठन्तरोरुपरिणए	उनके पृष्ठभाग के अन्त में अपान और उरु पक्षी के समान सुगठित थे
पउमुप्पलगंध सरिस णिस्सास सुरभिवयणे	उनका निःश्वास और वदन पद्मकमल जैसा सुगंधित था
निरायंक-उत्तम-पसत्थ-अइसेयणिरुवमपले	उनके शरीर में मांस रोगरहित, उत्तम, प्रशस्त अतिश्वेत एवं अनुपम था
जल्ल-मल-कलंक-सेय-रयदोसवज्जियसरीरे णिरुवलेवे	उनका शरीर गाढ़मल-मृदुमल-दाग-स्वेद-रजदोष रहित एवं अलिप्त था
छाया उज्जोइयंगमंगे	उनकी छाया और प्रत्येक अंग उद्योतित थे
घण-णिचिय-सुबद्ध-लक्खणुन्नयकूडागारणिभ-पिंडिय-ग्गसिरए	उनका मस्तक सघन-सुबद्ध-स्नायु युत उत्तम लक्षण संपन्न पर्वत के उन्नत शिखर पिण्ड जैसा था
सामलिबोंड-घण-णिचियच्छोडियमिउ-विसय-पसत्थ-सुहुम-लक्खणसुगंध-सुन्दर-भुजमोचक-भिंगणील-कज्जल-पहट्ठ-भमरगण णिद्ध-णिकुरंब-णिचय-कुंचियपयाहिणावत्तमुद्धसिरए	उनके मस्तक पर केश सेमल फल के फटने से निकले हुए सघन रेशे जैसे मृदु-विशद-प्रशस्त-सूक्ष्म-लक्षण-सम्पन्न-सुगन्धित सुन्दर थे, भुजमोचक-नीलभृंग और कज्जल जैसे तथा भ्रमरगण जैसे काले चमकीले पुष्ट सघन एवं दक्षिणावर्त थे
दालिम-पुप्फ-पकास-तवणिज्जसरिसणिम्मल-सुणिद्ध केसंत केसभूमि	उनके सिर पर केश उत्पन्न होने वाली त्वचा अनार के पुष्प जैसी तथा तपाये हुए स्वर्ण जैसी निर्मल एवं चिकनी थी
छत्तागारुत्तमंगदेसे	उनके मस्तक का मध्यभाग छत्राकार था
णिव्वण-सम-लट्ठ-मट्ठ चंदद्धसमणिडाले	उनका ललाट व्रण रहित समपुष्ट - शुद्ध - अर्द्धचन्द्राकार जैसा था
उडुवइ-पडिपुण्ण-सोमवयणे	उनका मुख प्रतिपूर्ण शशिसम सौम्य था
अल्लीण-पमाणजुत्तसवणे	उनके श्रवण संगत एवं प्रमाणोपेत थे
पीण-मंसल-कवोलदेसभाए	उनके कपोल पुष्ट एवं मांसल थे

आणामिय चाव-रुइल किण्हब्भराइतणु-कसिणणिद्ध भमुहे	उनकी भौंहें नमे हुए धनुष के समान टेढ़ी, काले बादल के समान पूर्ण पतली एवं चिकनी थी
अवदालिय-पुंडरीय-णयणे	उनके नयन विकसित पुण्डरीक कमल जैसे थे
कोआसिय-धवल-पत्तलच्छे	आँख के अन्दर के श्वेत-श्याम भाग बहुत तेज थे
गरुलायय-उज्जु-तुंग-णासे	उनकी नासिका गरुड़ की चोंच के समान लम्बी सीधी और ऊँची थी
उवचिय-सिलप्पवाल-बिंबफलसण्णिभाहरोट्ठे	उनके ओष्ठ प्रवाल शिला अथवा बिम्बफल सदृश थे
पंडुर-ससिसयल-विमल-णिम्मलसंख-गोखीरफेण - कुंद-दग - रयमुणालिया-धवल दंतसेढी	उनकी दन्तश्रेणी चन्द्रखण्ड, विमल निर्मल शंख, गोदुग्ध के झाग, कुन्द पुष्प, और कमलतन्तु जैसी श्वेत थी
अखंड दंते	उनके दांत अखण्ड थे
अप्फुडिय दंते	उनके दांत फटे हुए नहीं थे
अविरल दंते	उनके दांत एक दूसरे के साथ थे
सुणिद्ध दंते	उनके दांत चिकने थे
सुजाय दंते	उनके दांत सुन्दर थे
हुयवह-णिद्धंत-धोय-तत्त-तवणिज्जरत्ततल-तालु-जीहे	उनका तालु और जिह्वा अग्नि से तपाये हुए एवं जल से धोये हुए स्वर्ण सदृश रक्ततल वाले थे
अवट्ठिय-सुविभत्तचित्त-मंसू	उनके दाढ़ी-मूंछ सदा समान एवं सुलझे हुए रहते थे
मंसल-संठिय-पसत्थ-सद्दूल विउल हणुए	उनकी ठुड्डी शार्दूल सिंह की ठुड्डी के समान मांसल-सुस्थित-प्रशस्त एवं पुष्ट थी
चउरंगुल-सुप्पमाण-कंबुवरसरिसग्गीवे	उनकी गरदन चार अंगुल (चौड़ी) प्रमाणवाली श्रेष्ठ शंख सदृश थी
वर महिस-वराह-सीहसद्दूलउसभ-णागवर-पडिपुण्ण खंधे	उनके स्कन्ध श्रेष्ठ महिष, शूकर, शार्दूल सिंह, वृषभ और श्रेष्ठ हस्ति के स्कन्ध जैसे थे
जुग-सण्णिभ-पीण-रइअ-पीवर पउट्ठसंठिए-सुसिलिट्ठ-विसिलिट्ठ-घणथिर-सुबद्धसंधि-पुरवरफलिहवट्टिय भुए	उनकी भुजायें गाड़ी के जुए जैसी पुष्ट एवं सुन्दर विशिष्ट स्नायुओं से सुबद्ध सुदृढ़ सन्धियों से संगत एवं स्थिर कलाइयों से युक्त नगर (द्वार के कपाट) की अर्गला जैसी गोल थीं
चंद-सूर-संख-चक्क-दिसासोत्थिय-विभत्त-सुविरइय पाणिलेहे	उनके हाथों में चन्द्र, सूर्य, शंख, चक्र, दक्षिणावर्त स्वस्तिक आदि की सुन्दर एवं स्पष्ट रेखायें थीं
रत्ततलोवइय-मउय-मंसल-सुजाय-लक्खण-पसत्थअछिद्द जालपाणी	उनके हस्ततल मृदु-मांसल तथा प्रशस्त लक्षण युक्त थे और अंगुलियां मिलाने पर उनमें छिद्र नहीं दिखाई देते थे
पीवर कोमल वरंगुली	उनकी श्रेष्ठ अंगुलियां पुष्ट एवं कोमल थीं
आयंब-तंब-तलिन सुई-रुइलणिद्ध णखे	उनके हाथ की अंगुलियों के नख अल्प रक्तवर्ण के स्वच्छ स्निग्ध पतले तथा चमक वाले थे
कणगसिलातलुज्जल-पसत्थ-समतलउवचिय-वित्थिण्ण-पिहुल-सिरिवच्छंकिय वच्छे	उनका वक्षस्थल स्वर्णशिला सदृश उज्ज्वल विशाल-समतल-पुष्ट-चौड़ा तथा श्रीवत्स नामक स्वस्तिक से अंकित था
सण्णय-संगय-सुंदर-सुजाय-नियमाइय-पीणरइय पासे	उनके पार्श्वभाग क्रमशः संकुचित, शरीरानुसार संगत-सुन्दर-पुष्ट-प्रमाणोपेत सुनिष्पन्न थे
झस-विहग-सुजायपीण कुच्छी	उनका उदर मत्स्य तथा पक्षी जैसा सुन्दर था
सुइ करणे	उनके उदर की आंतें स्वस्थ थीं

गंगावत्तक - पयाहिणावत्त - तरंगभंगुर- रविकिरण-तरुण-बोहिय अकोसायंत-पउमगंभीर वियड-णाभे

उनकी नाभि गंगानदी के दक्षिणावर्त तरंगों से बने हुए भंवर जैसी गूढ़ घुमाववाली तरुण सूर्य की किरणों से पूर्ण विकसित कमल जैसी गहन गम्भीर थी

साहयसोणंद-मुसल-दप्पणणिकरियवरकणगच्छरु सरिसवर वइर-वलियमज्झे

उनके शरीर का मध्यभाग तिपाई, मुसल, दर्पणदण्ड, शोधित-श्रेष्ठ स्वर्ण से निर्मित तलवार की मूठ तथा श्रेष्ठ वज्र के मध्यभाग जैसा था

पमुइय-वरतुरग-सीहवर-वट्टिय कडी

उनकी कटि—कमर प्रमुदित-उत्तम अश्व तथा श्रेष्ठ सिंह की कमर जैसी थी

वरतुरगसुजाय-गुज्झदेसे

उनका गुप्तांग श्रेष्ठ अश्व जैसा सुनिष्पन्न था

आइण्ण-हउव्व-णिरुवलेवे

उनका मल-मूत्र-विसर्जन का स्थान उत्तम अश्व के समान लेप रहित था

गयससण-सुजाय-सन्निभोरू

उनके उरू हाथी की सूँड के समान सुगठित थे

समुग्ग-णिमग्ग-गूढ जाणु

उनके घुटने डिब्बे के ढक्कन के समान सुस्थित थे

एणी कुरुविंदावत्त वट्टाणुपुव्व जंघे

उनकी पिण्डलियाँ हिरण की पिण्डलियों के समान तथा कुरुविन्द घास के समान क्रमशः वृत्ताकार थीं

संठिय सुसिलिट्ठ गूढ गुप्फे

उनके टखने सुगठित, सुस्थित एवं गूढ़ थे

सुपइट्ठिय-कुम्म-चारु चलणे

उनके चरण कछुए के समान ऊपर से उन्नत एवं सुप्रतिष्ठित थे

रत्तुप्पलपत्त-मउय-सुकुमाल-कोमल तले

उनके पैरों के तलवे रक्त उत्पल जैसे मृदु सुकुमार कोमल थे

नग-नगर-मगर-सागर-चक्कंकवरंग-मंगलंकिय चरणे

उनके चरणतल में पर्वत, नगर, मकर, सागर, चक्रांक, स्वस्तिक आदि मांगलिक चिन्ह अंकित थे

अणुपुव्व-सुसंहयंगुलीए

उनके पैरों की अंगुलियाँ क्रमशः छोटी-बड़ी एक दूसरे से सटी हुई थीं

उण्णय-तणु-तंब-णिद्ध णक्खे

उनके पैरों की अंगुलियों के नख ताम्रवर्ण, उन्नत, स्निग्ध तथा पतले थे

वरवारणतुल्ल-विक्कम विलसिय गई

उनकी गति भद्रहस्ति की गति के समान पराक्रम पूर्ण थी

कणगसिलाय-सुजाय-णिरुवहय-देहधारी

वे स्वर्णशिला सदृश सुन्दर-रोगरहित देहधारी थे

उज्जुय-सम-सहिय-जच्चतणुकसिण-णिद्ध-आइज्जलउह-रमणिज्जरोमराई

उनके शरीर पर रोमराजि सीधी, समान, एक दूसरे से मिली हुई, श्रेष्ठ, सूक्ष्म, काली, चिकनी, उत्तम लावण्य-सम्पन्न एवं रमणीय थी

हुयवह-णिद्धूम-जलिय तडितडिएतरुण-रविकिरण सरिस तेए

उनका तेज निर्धूम प्रज्वलित अग्नि, विद्युत, तरुण सूर्य की किरणों जैसा था

अणासवे अममे अकिंचणे छिन्नसोए णिरुवलेवे

वे आस्रवरहित थे, ममत्व रहित थे, अपरिग्रही थे, शोक रहित थे, अलिप्त थे

ववगय-पेम-राग-दोस मोहे

वे प्रेम, राग, द्वेष रूप मोह से रहित थे

णिग्गंथस्स पवयणस्स देसए

वे निर्ग्रन्थ प्रवचन के उपदेष्टा थे

सत्थणाइणायगे, पइट्ठावए, समणगपई समणगविंद परियट्टिए

वे शास्त्रकारों के नायक थे, प्रतिष्ठापक थे, श्रमण स्वामी थे, श्रमण वृन्द से परिवृत थे

चउतीसबुद्धवयणातिसेस पत्ते

पणतीससच्चवयणातिसेस पत्ते[1] —उव. सु १६

तए णं समणे भगवं महावीरे तीसे य महइमहालियाए परिसाए, मुणि परिसाए, जइ परिसाए, देव परिसाए, अणेगसयाए, अणेगसयवंद्राए, अणेगसयवंदपरिवाराए, [illegible] णवत्थणिय-महुर-गम्भीरकोंचणिग्घोस-दुंदुभिस्सरे

उरे वित्थडाए, कंठे वट्टियाए

सिरे सभाइण्णाए

अगरलाए

अमम्मणाए

सुवत्तक्खरसण्णिवाइयाए पुण्णरत्ताए सव्वभासाणुगामिणीए सरस्सईए

जोयण णिहारिणासरेणं

अद्धमागहाए भासाए धम्मं परिकहेइ

सा वि य णं अद्धमागहा भासा तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं अप्पणो सभासाए परिणमेणं परिणमइ[2] — उव. सु. ५६

धम्मसरूवं जिण्णासा

२०. प०—कतरे धम्मे अक्खाते माहणेण मतीमता ?

उ०—अंजु धम्मं अहातच्चं जिणाणं तं सुणेह मे ।

—सूय.सु. १, अ. ६, गा. १

भावलोअप्पयारा

२१. तिविहे लोगे पण्णत्ते, तं जहा—

१. णाणलोगे,

२. दंसणलोगे,

३. चरित्तलोगे ।

—ठाणं अ. ३, उ. २, सु. १६१

भयावेक्खया णाणाइणं परूवणा—

२२. प०—इहभविए भंते ! नाणे ? परभविए नाणे ? तदुभयभविए नाणे ?

उ०—गोयमा ! इहभविए वि नाणे, परभविए वि नाणे, तदुभयभविए वि नाणे ।

दंसणं पि एवमेव

वे चौंतीस बुद्धवचनातिशयों से सम्पन्न थे

वे पैंतीस सत्यवचनातिशयों से सम्पन्न थे

उस समय श्रमण भगवान महावीर ने अनेक सौ, अनेक सौवृन्द, अनेक सौवृन्दों के परिवार वाली उस महान परिषदा में, मुनि परिषदा में, यति परिषदा में, देव परिषदा में, शरद ऋतु के नवीन मेघ के गर्जन जैसे, कौंच पक्षी तथा दुन्दुभी के घोष जैसे स्वर से,

हृदय में विस्तृत, कण्ठ में स्थित,

मस्तिष्क में व्याप्त,

अस्पष्ट उच्चारण रहित

हकलाहट रहित,

व्यक्त अक्षरों के पूर्ण संयोजन सहित सर्वभाषानुगामिनी वाणी को

योजन पर्यन्त सुनाई दे ऐसे स्वर से

अर्धमागधी भाषा में धर्म कहा—

वह अर्धमागधी भाषा उन सब आर्य-अनार्य श्रोताओं की अपनी-अपनी भाषा में परिणत हुई ।

धर्म-स्वरूप की जिज्ञासा—

१३. प्र० केवलज्ञानसम्पन्न, महामाहन (अहिंसा के उपदेष्टा) भगवान् महावीर स्वामी ने कौन-सा धर्म बताया है ?

उ० जिनवरों के (द्वारा उपदिष्ट) उस सरल धर्म को यथार्थ रूप से मुझसे सुनो ।

भावलोक के प्रकार—

१४. लोक तीन प्रकार के कहे गये हैं—

१. ज्ञानलोक,

२, दर्शनलोक,

३. चारित्रलोक ।

भव की अपेक्षा से ज्ञानादि की प्ररूपणा—

१५. प्र० हे भगवन् ! क्या ज्ञान इहभविक है ? परभविक है ? या तदुभयभविक है ?

उ० गौतम ! ज्ञान इहभविक भी है, परभविक भी है, और तदुभयभविक भी है ।

इसी प्रकार दर्शन भी जान लेना चाहिए ।

१ उवा. सु. ६

२ भगवान महावीर के शरीर का यह वर्णक पाठ औपपातिक सूत्र के सूत्रों से लिया है किन्तु उपलब्ध प्रतियों में विभिन्न वाचना भेद के पाठ हैं अतः प्रस्तुत वर्णक पाठ के संकलन में सभी प्रतियों का उपयोग किया गया है ।
इस वर्णक में सूत्रों के जितने अंश अपेक्षित थे उतने ही लिए हैं और सूत्रांक आगम प्रकाशन समिति ब्यावर के दिए हैं ।

प०—इहभविए भंते ! चरित्ते ? परभविए चरित्ते ? तदुभयभविए चरित्ते ?

उ०—गोयमा ! इहभविए चरित्ते, नो परभविए चरित्ते, नो तदुभयभविए चरित्ते।

एवं तवे संजमे

—वि. स. १, उ. १, सु. १०

प्र० हे भगवन् ! क्या चारित्र इहभविक है ? परभविक है ? या तदुभयभविक है ?

उ० गौतम ! चारित्र इहभविक है, वह परभविक नहीं है और न तदुभयभविक है।

इसी प्रकार तप और संयम के विषय में भी जान लेना चाहिए।

छव्विहा भावा—

२३. छव्विहे भावे पण्णत्ते, तं जहा—

१. ओदइए,

२. उवसमिए,

३. खइए,

४. खओवसमिए,

५. पारिणामिए,

६. सन्निवाइए।[1]

—ठाणं. अ. ६, सु. ५३७

छह प्रकार के भाव—

भाव छह प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. औदयिक भाव—कर्म के उदय से होने वाले क्रोध, मानादि इक्कीस भाव।

२. औपशमिक भाव—मोह कर्म के उपशम से होने वाले सम्यक्त्वादि दो भाव हैं।

३. क्षायिक भाव—घाति कर्मों के क्षय से उत्पन्न होने वाले अनन्त ज्ञान-दर्शनादि नौ भाव।

४. क्षायोपशमिक भाव—घातिकर्मों के क्षयोपशम से होने वाले मति-श्रुतज्ञानादि अठारह भाव।

५. पारिणामिक भाव—किसी कर्म के उदयादि के बिना अनादि से चले आ रहे जीवत्व आदि तीन भाव।

६. सान्निपातिक भाव—उपर्युक्त भावों के संयोग से होने वाले भाव।

---

१ (क) अणु. उवक्कम. सु. २०७.

(ख) "छव्विहे भावे" इत्यादि, भवनं भावः पर्याय इत्यर्थः

गाहा—ओदइय उवसमिए य, खइए य तहा खओवसमेए य।

परिणाम सन्निवाए य, छव्विहो भावलोगो उ ॥—॥

(१) तत्रौदयिको द्विविधः १. उदय—२. उदयनिष्पन्नश्च,

तत्रोदयोऽष्टानां कर्मप्रकृतिनामुदयः—शान्तावस्थापरित्यागेनोदीरणावलिकामतिक्रम्योदयावलिकायात्मीयात्मीयरूपेण विपाक इत्यर्थः

अत्र चैवं व्युत्पत्तिः —उदय एवौदयिकः

उदयनिष्पन्नस्तु कर्मोदयजनितो जीवस्य मानुषत्वादिः पर्यायः तत्र च उदयेन निर्वृत्तस्तत्र वा भव इत्यौदयिक इत्येवं व्युत्पत्तिरिति.

(२) तथा औपशमिकोऽपि द्विविधः—१. उपशम, २. उपशमनिष्पन्नश्च.

तत्रोपशमो दर्शनकर्मणोऽनन्तानुबन्ध्यादि भिन्नस्योपशमश्रेणिप्रतिपन्नस्य वा मोहनीयभेदान् अनन्तानुबन्ध्यादीनुपशमयतः, उदयाभाव इत्यर्थः उपशम एवौपशमिकः

उपशमनिष्पन्नस्तु उपशान्त क्रोध इत्यादि उदयाभावफलस्वरूप आत्मपरिणाम इति भावना.

तत्र च व्युत्पत्तिः—उपशमेन निर्वृत्त औपशमिक इति.

(३) तथा क्षायिको द्विविधः—१. क्षय, २. क्षयनिष्पन्नश्च.

तत्र क्षयोऽष्टानां कर्मप्रकृतीनां ज्ञानावरणादि भेदानां, क्षय कर्माभाव एवेत्यर्थः :

क्षयनिष्पन्नस्तु तत्फलरूपो विचित्र आत्मपरिणामः केवलज्ञानः दर्शनचारित्रादि. तत्र क्षयेण निर्वृत्तः "क्षायिक" इति व्युत्पत्तिः।

भावप्पमाणपरूवणं—

भाव प्रमाण प्ररूपण—

२४. प०—से किं तं भावप्पमाणे ?

२४. प्र०—भाव प्रमाण कितने प्रकार का है ?

(शेष टिप्पण पृष्ठ १६ का)

(४) तथा क्षायोपशमिको द्विविधः, १. क्षयोपशम, २. क्षयोपशमनिष्पन्नश्च।

तत्र क्षयोपशमश्चतुर्णां घातिकर्मणां केवलज्ञानप्रतिबन्धकानां ज्ञानावरण-दर्शनावरण-मोहनीयान्तरायाणां क्षयोपशम इह उदीर्णस्य क्षयोऽनुदीर्णस्य च विपाकमधिकृत्योपशम इति गृह्यते।

आह—औपशमिकोऽप्येवंभूत एव, नेवं।

तत्रोपशान्तस्य प्रदेशानुभवतोऽप्यवेदनात् अस्मिंश्च वेदनादिति अयं च क्षयोपशमक्रियारूप एवेति क्षयोपशम एवं क्षायोपशमिकः।

क्षयोपशमनिष्पन्नस्त्वाभिनिबोधिक ज्ञानादिलब्धिपरिणाम आत्मन, एवं क्षयोपशमेन निर्वृत्तः क्षायोपशमिक इति च व्युत्पत्तिरिति।

(५) तथा परिणमनं परिणामः—अपरित्यक्तपूर्वावस्थस्यैव तद्भावगमनमित्यर्थः।

उक्तं च—

परिणामोह्यर्थान्तरगमनं, न च सर्वथा व्यवस्थानम्।

न च सर्वथा विनाशः, परिणामस्तद्विदामिष्टः॥

स एव पारिणामिक इत्युच्यते।

स च साद्यनादिभेदेन द्विविधः १. तत्र सादिः जीर्णघृतादीनां, तद्भावस्य सादित्वादिति।

२. अनादिपारिणामिकस्तु धर्मास्तिकायादीनां तद्भावस्य तेषामनादित्वादिति।

(६) तथा सन्निपातो—मेलकस्तेन निर्वृत्तः सान्निपातिकः अयं चैषां पञ्चानामौदयिकादिभावानां द्व्यादि संयोगतः सम्भवा-सम्भवानपेक्षया षड्विंशतिभंगरूपः।

तत्र द्विकसंयोगे दश त्रिक संयोगेऽपि दशैव चतुष्कसंयोगे पञ्च, पञ्चकसंयोगेत्वेक एवेति। सर्वेऽपि षड्विंशतिरिति।

इह चाविरुद्धाः पञ्चदश सन्निपातिकभेदा इष्यन्ते, ते चैवं भवन्ति।

गाहाओ—उदइए खओवसमिए, परिणामिक्केक्क गइचउक्के वि।
खयजोगेण वि चउरो, तयभावे उवसमेणं पि॥—॥
उवसमसेढी एक्को, केवलिणो वि य तहेव सिद्धस्स।
अविरुद्धसन्निवाइय, भेया एमेव पनरस॥—॥

औदयिक—क्षायोपशमिक-पारिणामिकनिष्पन्नः सान्निपातिक एकैको गतिचतुष्केऽपि।

तद्यथा—औदयिको नारकत्वं, क्षायोपशमिक इन्द्रियाणि, पारिणामिको जीवत्वमिति।

इत्थं तिर्यग्नरामरेष्वपि योजनीयमिति चत्वारो भेदाः

तथा क्षययोगेनापि चत्वार एव तास्वेव गतिषु।

अभिलापस्तु—औदयिको नारकत्वं, क्षायोपशमिक इन्द्रियाणि, क्षायिकः सम्यक्त्वं, पारिणामिको जीवत्वमिति, एवं तिर्यगादिष्वपि वाच्यं सन्ति चैतेष्वपि क्षायिक सम्यग्दृष्टयोऽधिकृतभंगान्यथानुपपत्तेरिति भावनीयमिति।

"तय भावे" त्ति, क्षायिकाभावे च शब्दाच्छेषत्रय भावे चौपशमिकेनापि चत्वार एव उपशममात्रस्य गतिचतुष्टयेऽपि भावादिति।

अभिलापस्तथैव, नवरं—सम्यक्त्वस्थाने उपशान्तकषायत्वमिति वक्तव्यमेते चाष्टौ भंगाः, प्राक्तनाश्चत्वार इति द्वादश, उपशमश्रेण्या-मेको भंगः तस्या मनुष्येष्वेव भावात्।

अभिलापः पूर्ववत् नवरं- मनुष्य विषय एवं,

केवलिनश्चैक एव, औदयिको मानुषत्वं क्षायिकः सम्यक्त्वं पारिणामिको जीवत्वं।

तथैव सिद्धस्यैक एव क्षायिक सम्यक्त्वं पारिणामिको जीवत्वमिति।

एवमेतेस्त्रिभिर्भंगैः सहिताः प्रागुक्ताः द्वादश अविरुद्ध सान्निपातिका भेदाः पञ्चदशभवन्तीति।

अपि च—

गाहाओ—उवसमिए२ खइएऽविय२ खयउवसम१८ उदय२१ पारिणामे ३य।
दो, नव, अट्ठारसगं, इगविसा तिन्नि भेएणं॥

(पृष्ठ १८ पर शेष टिप्पण)

उ०—भावप्पमाणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. गुणप्पमाणे, २. णयप्पमाणे, ३. संखप्पमाणे।[1]
—अणु० सु० ४२७

उ०—भाव प्रमाण तीन प्रकार का कहा गया है। यथा—
(१) गुण प्रमाण, (२) नय प्रमाण, (३) संख्या प्रमाण।

प०—से किं तं जीवगुणप्पमाणे?

प्र०—जीव गुण प्रमाण कितने प्रकार का है?

उ०—जीवगुणप्पमाणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. णाणगुणप्पमाणे, २. दंसणगुणप्पमाणे, ३. चरित्त-गुणप्पमाणे य। —अणु० सु० ४३५

उ०—जीव गुण प्रमाण तीन प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) ज्ञान गुण प्रमाण, (२) दर्शन गुण प्रमाण, (३) चारित्र गुण प्रमाण।

णाणगुणप्पमाणं—

ज्ञान गुण प्रमाण—

२५. प०—से किं तं णाणगुणप्पमाणे?

२५. प्र०—ज्ञान गुण प्रमाण कितने प्रकार का है?

उ०—णाणगुणप्पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. पच्चक्खे, २. अणुमाणे, ३. ओवम्मे, ४. आगमे।

उ०—ज्ञानगुण प्रमाण चार प्रकार का कहा गया है। यथा—
(१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमान, (३) उपमा, (४) आगम।

प०—से किं तं पच्चक्खे?

प्र०—प्रत्यक्ष कितने प्रकार का है?

उ०—पच्चक्खे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. इंदियपच्चक्खे य, २. नो इंदियपच्चक्खे य।

उ०—प्रत्यक्ष दो प्रकार का कहा गया है। यथा—
(१) इन्द्रियप्रत्यक्ष, (२) नो इन्द्रियप्रत्यक्ष।

प०—से किं तं इंदियपच्चक्खे?

प्र०—इन्द्रिय प्रत्यक्ष कितने प्रकार का है?

उ०—इंदियपच्चक्खे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—
सोइंदियपच्चक्खे-जाव-फासिंदियपच्चक्खे,
से तं इंदियपच्चक्खे।

उ०—इन्द्रियप्रत्यक्ष पाँच प्रकार का कहा गया है। यथा—
श्रोत्रेन्द्रिय प्रत्यक्ष—यावत्—स्पर्शेन्द्रिय प्रत्यक्ष।
इन्द्रिय प्रत्यक्ष समाप्त

२६. प०—से किं तं नो इंदियपच्चक्खे?

२६. प्र०—नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष कितने प्रकार का है?

उ०—णो इंदियपच्चक्खे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. ओहिणाणपच्चक्खे, २. मणपज्जवणाणपच्चक्खे, ३. केवलणाणपच्चक्खे,
से तं नो इंदियपच्चक्खे, से तं पच्चक्खे।

उ०—नो इन्द्रियप्रत्यक्ष तीन प्रकार का कहा गया है। यथा—(१) अवधिज्ञानप्रत्यक्ष, (२) मनःपर्यवज्ञानप्रत्यक्ष, (३) केवलज्ञानप्रत्यक्ष।
नो इन्द्रियप्रत्यक्ष समाप्त। प्रत्यक्षसमाप्त।

२७. प०—से किं तं अणुमाणे?

प्र०—अनुमान (प्रमाण) कितने प्रकार का है?

उ०—अणुमाणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. पुव्ववं, २. सेसवं, ३. दिट्ठ साहम्मवं।

उ०—अनुमान तीन प्रकार का कहा गया है। यथा—
(१) पूर्ववत्, (२) शेषवत्, (३) दृष्टसाधर्म्यवत्।

---

१. सम्म चरित्ते पढमे; १. दंसण, २. नाणे य, ३. दाण, ४. लाभे य।
५. उवभोग, ६. भोग, ७. वीरिय, ८. सम्म, ९. चरित्ते तह बीए॥—॥
(क) ४ चउनाण ३ अन्नाणतियं, ३ दंसणतिय ५ पंचदाणलद्धीओ।
१ समत्तं, १ चारित्तं च, १ संजमासंजमे तइए॥—॥
४ चउगइ, ४ चउक्कसाया, ३ लिंगतियं ६ लेसछक्क १ अन्नाणं।
१ मिच्छत्त १ मसिद्धत्तं, १ असंजमे तह चउत्थे उ॥—॥
पंचमगम्मि य भावे, १ जीव, २ अभव्वत्त, ३ भव्वत्ता चेव,
पंचण्हवि भावाणं, भेया एमेव तेवन्ना॥—॥ —स्थानांग टीका से उद्धृत

१ (क) यहां गुणप्रमाण और नयप्रमाण लिए हैं—संख्याप्रमाण गणितानुयोग (काल प्रमाण पृ० ६६१ से काललोक में तथा क्षेत्रप्रमाण परिशिष्ट २ पृ० ७५४ पर) में दिया गया है।
(ख) इससे आगे का एक सूत्र द्रव्यानुयोग में दिया है।

प०—से किं तं पुव्ववं ?

उ०—पुव्ववं पंचविहं पण्णत्ते, तं जहा—

१. खतेण वा, २. वणेण वा, ३. मसेण वा, ४. लंछणेण वा, ५. तिलएण वा।

संगहणी गाहा—

माता पुत्तं जहा णट्ठं, जुवाणं पुणरागयं।
काई पच्चभिजाणेज्जा, पुव्वलिंगेण केणइ ॥—॥

से तं पुव्ववं।

प०—से किं तं सेसवं ?

उ०—सेसवं पंचविहं पण्णत्तं, तं जहा—

१. कज्जेणं, २. कारणेणं, ३. गुणेणं, ४. अवयवेणं, ५. आसएणं।

प०—से किं तं कज्जेणं ?

उ०—कज्जेणं=संखं सद्देणं, भेरिं तालिएणं, वसभं ढंकिएणं, मोरं केकाइएणं, हयं हिंसिएणं, गयं गुलगुलाइएणं, रहं धणधणाइएणं, से तं कज्जेणं।

प०—से किं तं कारणेणं ?

उ०—कारणेणं=तंतवो पडस्स कारणं, न पडो तंतुकारणं,

वीरणा कडस्स कारणं, न कडो वीरणकारणं,

मिप्पिंडो घडस्स कारणं, न घडो मिप्पिंडकारणं।

से तं कारणेणं।

प०—से किं तं गुणेणं ?

उ०—गुणेणं—सुवण्णं निकसेणं, पुप्फं गंधेणं, लवणं रसेणं, मदिरं आसायिएणं, वत्थं फासेणं, से तं गुणेणं।

प०—से किं तं अवयवेणं ?

उ०—अवयवेणं=महिसं सिंगेणं, कुक्कुडं सीहाए, हत्थि विसाणेणं[1] वराहं दाढाए, मोरं पिछेणं, आसं खुरेणं, वग्घं नहेणं, चमरं वालगंडेणं, दुपयं मणुसमाइ, चउप्पयं गवमाइ, बहुपयं गोम्हियाइ, सीहं केसरेणं, वसहं ककुहेणं, महिलं वलयबाहाए।

संगहणी गाहा—

परियर बंधेण भडं, जाणिज्ज महिलियं णिवसेणेणं।
सित्थेण दोणपागं, कविं च एक्काए गाहाए ॥—॥

से तं अवयवेणं।

प्र०—पूर्ववत् कितने प्रकार का है ?

उ०—पूर्ववत् पाँच प्रकार का कहा गया है। यथा—

(१) क्षत से, (२) वर्ण से, (३) मसे से, (४) लांछन से, (५) तिल से।

संग्रहणी गाथा—

किसी माता का पुत्र बाल्यकाल में भाग गया, जवान होने पर घर आया तो माता ने किसी पूर्व चिन्ह से उसे पहचाना।

—पूर्ववत् (प्रमाण) समाप्त।

प्र०—शेषवत् कितने प्रकार का है ?

उ०—शेषवत् पाँच प्रकार का कहा गया है। यथा—

(१) कार्य से, (२) कारण से, (३) गुण से, (४) अवयव से, (५) आश्रय से।

प्र०—कार्य का स्वरूप कैसा है ?

उ०—कार्य=यथा—शंख शब्द से, भेरी बजाने से, वृषभ धड़कने से, मयूर केकारव से, अश्व हिनहिनाट से, गज गुलगुलाट से। **—कार्य से समाप्त।**

प्र०—कारण का स्वरूप कैसा है ?

उ०—कारण=यथा—तन्तु पट के कारण हैं, पट तन्तुओं का कारण नहीं है।

शलाकायें चटाई के कारण हैं, चटाई शलाकाओं का कारण नहीं है।

मृत्पिण्ड घट का कारण है, घट मृत् पिण्ड का कारण नहीं है। **—कारण से समाप्त**

प्र०—गुण का स्वरूप कैसा है ?

उ०—गुण=यथा—सुवर्ण कसौटी से, पुष्प गन्ध से, लवणी रस से, मदिरा आस्वाद से, वस्त्र स्पर्श से। **—गुण से समाप्त**

प्र०—अवयव का स्वरूप कैसा है ?

उ०—अवयव=यथा—भैंसा सींग से, मुर्गा शिखा से, हाथ दान्त से, वराह दाढा से, मोर पिच्छ से, अश्व खुर से, व्याघ्र नखों से, चामर गाय केशों के गुच्छ से, द्विपद-मनुष्यादि, चतुष्पद गाय आदि, बहुपद गोह आदि, सिंह केस जटा से, वृषभ ककुध से, महिला चूड़ा से।

संग्रहणी गाथार्थ—

योधा कमर बन्ध से, महिला वेषभूषा से,
द्रोणपाक कण से, कवि एक गाथा से।

—अवयव से समाप्त

1 दन्तशृंग—हाथीदाँत

प०—से किं तं आसएणं ?

उ०—आसएणं=अग्गिं धूमेणं, सलिलं बलागाहिं, वुट्ठं अब्भविकारेणं, कुलपुत्तं सीलसमायारेणं।

संगहणी गाहा—

इंगियागार पेहिएहिं किरियाहिं भासिएण य।
नेत्त-वक्कविकारेहिं गिज्झए अंतगं मणं ॥—॥

से तं आसएणं से तं सेसवं।

प०—से किं तं दिट्ठसाहम्मवं ?

उ०—दिट्ठसाहम्मवं दुविहं पण्णत्तं, तं जहा—
१. सामण्णदिट्ठं य, २. विसेसदिट्ठं य।

प०—से किं तं सामण्णदिट्ठं ?

उ०—सामण्णदिट्ठं—जहा—एगो पुरिसो तहा बहवे पुरिसा,

जहा बहवे पुरिसा तहा एगो पुरिसो।
जहा एगो करिसावणो, तहा बहवे करिसावणा,
जहा बहवे करिसावणा, तहा एगो करिसावणो।
से तं सामण्णदिट्ठं।

प०—से किं तं विसेसदिट्ठं ?

उ०—विसेसदिट्ठं—से जहाणामए केइपुरिसे कंचि पुरिसं बहूणं पुरिसाणं मज्झे पुव्वदिट्ठं पच्चभिजाणेज्जा—'अयं से पुरिसे'।

बहूणं वा करिसावणाणं मज्झे पुव्वदिट्ठं करिसावणं पच्चभिजाणेज्जा। 'अयं से करिसावणे'।

तस्स समासओ तिविहं गहणं भवति, तं जहा—
१. तीतकालगहणं, २. पडुप्पण्णकालगहणं, ३. अणागयकालगहणं।

प०—से किं तं तीतकालगहणं ?

उ०—तीतकालगहणं=उत्तिणाणि वणाणि, निप्फण्णसस्सं वा मेइणिं, पुण्णाणि य कुण्ड-सर णदि-दीहिया-तलागाइं पासित्ता, तेणं साहिज्जइ जहा सुवुट्ठी आसि।
से तं तीतकालगहणं।

प०—से किं तं पडुप्पण्णकालगहणं ?

उ०—पडुप्पण्णकालगहणं=साहुं गोयरग्गगयं विच्छड्डियपउरभत्त-पाणं पासित्ता। तेणं साहिज्जइ जहा सुभिक्खे वट्टइ। से तं पडुप्पण्णकालगहणं।

प०—से किं तं अणागयकालगहणं ?

उ०—अणागयकालगहणं।

प्र०—आश्रय का स्वरूप कैसा है ?

उ०—आश्रय=यथा—अग्नि धूम से, पानी बगुलों से, वर्षा बादल से, कुलपुत्र सदाचार से।

संग्रहणी गाथार्थ—

अन्तर्मन के भाव अंगचेष्टाओं से, क्रियाओं से, वाणी से, आँख और मुख के विकारों से जाने जाते हैं।

—आश्रय से समाप्त। शेषवत् समाप्त।

प्र०—दृष्टसाधर्म्य (साम्य) कितने प्रकार का है ?

उ०—दृष्टसाधर्म्य दो प्रकार का कहा गया है। यथा—
(१) सामान्यदृष्ट, (२) विशेषदृष्ट।

प्र०—सामान्यदृष्ट का स्वरूप कैसा है ?

उ०—सामान्यदृष्ट=यथा—जैसा एक पुरुष है वैसे अनेक पुरुष हैं।

जैसे अनेक पुरुष हैं वैसा एक पुरुष है।
जैसा एक कृषक है वैसे अनेक कृषक हैं।
जैसे अनेक कृषक हैं वैसा एक कृषक है।

—सामान्यदृष्ट समाप्त।

प्र०—विशेषदृष्ट का स्वरूप कैसा है ?

उ०—विशेषदृष्ट=यथा—जिस प्रकार कोई पुरुष किसी पूर्व दृष्ट पुरुष को अनेक पुरुषों के बीच में देखकर यह जाने की यह वह पुरुष है।

पूर्व दृष्ट कृषक को अनेक कृषकों के मध्य में देखकर वह जाने कि—'यह वह कृषक है।'

उसका तीन प्रकार से ग्रहण होता है। यथा—
(१) अतीतकाल ग्रहण, (२) वर्तमानकाल ग्रहण, (३) अनागतकाल ग्रहण।

प्र०—अतीतकाल ग्रहण का स्वरूप कैसा है ?

उ०—अतीत काल ग्रहण=यथा—घास वाले वन, पके हुए धान्य वाले खेत, भरे हुए कुण्ड, सर—नदी, बावड़ी, तालाब आदि देखकर यह निर्णय करे कि यहाँ अच्छी वर्षा हुई है।

—अतीतकाल ग्रहण समाप्त।

प्र०—वर्तमानकाल ग्रहण का स्वरूप कैसा है ?

उ०—वर्तमानकाल ग्रहण=यथा—गोचरी गया हुआ साधु प्रचुर भात—पानी देखकर यह जाने कि यहाँ सुभिक्ष है।

—वर्तमानकाल ग्रहण समाप्त।

प्र०—अनागतकाल ग्रहण का स्वरूप कैसा है ?

उ०—अनागतकाल ग्रहण=यथा—

संगहणी गाहा —

अब्भस्स निम्मलत्तं, कसिणा य गिरीसविज्जुयाम्हे ।
थणियं वाउब्भामो, संझा रत्ता य णिद्धा य ॥—॥

वारुणं वा, माहिंदं वा, अण्णयरं वा पसत्थं उप्पायं पासित्ता ते णं साहिज्जइ—जहा सुवुट्ठी भविस्सइ ।
से तं अणागयकालगहणं ।

एएसिं चेव विवज्जासे तिविहं गहणं भवइ, तं जहा—
१. तीतकालगहणं, २. पडुप्पन्नकालगहणं, ३. अणागयकालगहणं ।

प०—से किं तं तीतकालगहणं ?

उ०—तीतकालगहणं=नित्तणाइं वणाइं, अणिप्फण्णसस्सं च मेइणिं सुक्काणि य कुण्ड-सर-णदि-दह-तलागाइं पासित्ता तेणं साहिज्जंति—जहा कुवुट्ठी आसी ।
से तं तीतकालगहणं ।

प०—से किं तं पडुप्पण्णकालगहणं ?

उ०—पडुप्पण्णकालगहणं=साहुं गोयरग्गयं अलभमाणं पासित्ता, तेणं साहिज्जइ, जहा दुब्भिक्खे वट्टइ ।
से तं पडुप्पण्णकालगहणं ।

प०—से किं तं अणागयकालगहणं ?

उ०—अणागयकालगहणं=अग्गेयं वा, वायव्वं वा अण्णयरं वा अप्पसत्थं उप्पायं पासित्ता तेणं साहिज्जइ जहा कुवुट्ठी भविस्सइ ।
से तं अणागयकालगहणं । से तं विसेसदिट्ठं । से तं दिट्ठसाहम्मवं । से तं अणुमाणे ।

२८. प०—से किं तं ओवम्मे ?

उ०—ओवम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. साहम्मोवणीए य, २. वेहम्मोवणीए य ।

प०—से किं तं साहम्मोवणीए ?

उ०—साहम्मोवणीए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. किंचिसाहम्मे, २. पायसाहम्मे, ३. सव्वसाहम्मे य ।

प०—से किं तं किंचिसाहम्मे ?

उ०—किंचि साहम्मे=जहा मंदरो तहा सरिसवो, जहा सरिसवो तहा मंदरो । जहा समुद्दो तहा गोप्पयं, जहा गोप्पयं तहा समुद्दो । जहा चंदो तहा कुन्दो, जहा कुन्दो तहा चंदो । से तं किंचिसाहम्मे ।

प०—से किं तं पायसाहम्मे ?

उ०—पायसाहम्मे=जहा गो तहा गवयो, जहा गवयो तहा गो । से तं पायसाहम्मे ।

संग्रहणी गाथार्थ—

स्वच्छ आकाश, कृष्ण वर्ण के बादलों में बिजली की चमक, और गर्जना, मण्डलवात, रक्तवर्णा संध्या, आर्द्रा, मूलादि नक्षत्रों का योग, अन्य प्रशस्त उत्पात इनको देखकर "सुवृष्टि होगी" ऐसा अनुमान करना ।

—अनागत काल ग्रहण समाप्त ।

इनसे विपरीत तीन प्रकार का ग्रहण होता है । यथा—
(१) अतीतकाल ग्रहण, (२) वर्तमानकाल ग्रहण, (३) अनागतकाल ग्रहण ।

प्र०—अतीतकाल ग्रहण का स्वरूप कैसा है ?

उ०—अतीतकाल ग्रहण=यथा—तृणरहित वन, धान्य रहित खेत, कुण्ड, सर, नदी, द्रह, तालाब आदि सूखे देखकर—"यहां वर्षा नहीं हुई है" ऐसा अनुमान करे ।

—अतीतकाल ग्रहण समाप्त

प्र०—वर्तमानकाल ग्रहण का स्वरूप कैसा है ?

उ०—गोचरी गया हुआ साधु भात आदि का अलाभ देखकर—"यहाँ दुर्भिक्ष है" ऐसा जाने ।

—वर्तमानकाल ग्रहण समाप्त ।

प्र०—अनागतकाल ग्रहण का स्वरूप कैसा है ?

उ०—अनागतकाल ग्रहण=यथा—अग्नि कोण या वायव्य कोण का वायु अन्य अप्रशस्त उत्पात देखकर "भविष्य में वर्षा नहीं होगी" ऐसा सोचना ।

—अनागतकाल ग्रहण समाप्त । विशेषदृष्ट समाप्त । दृष्ट साधर्म्य समाप्त । अनुमान समाप्त ।

२८. प्र०—उपमा कितने प्रकार की है ?

उ०—उपमा दो प्रकार की कही गई है । यथा—
(१) साधर्म्योपमा, (२) वैधर्म्योपमा ।

प्र०—साधर्म्योपमा कितने प्रकार की है ?

उ०—साधर्म्योपमा तीन प्रकार की कही गई है । यथा—
(१) अल्प साधर्म्य, (२) अर्ध साधर्म्य, (३) सर्वसाधर्म्य ।

प्र०—अल्प साधर्म्य का स्वरूप कैसा है ?

उ०—अल्प साधर्म्य—जैसा मन्दर पर्वत वैसा सरसों है, जैसा सरसों है, वैसा मन्दर पर्वत है । जैसा समुद्र है वैसा गोपद है, जैसा गोपद है वैसा समुद्र है । जैसा चन्द्र है वैसा कुन्द है, जैसा कुन्द है वैसा चन्द्र है । **—अल्प साधर्म्य समाप्त ।**

प्र०—अर्ध साधर्म्य का स्वरूप कैसा है ?

उ०—अर्ध साधर्म्य=यथा—जैसी गाय है वैसा गवय है, जैसा गवय है, वैसी गाय है । **—अर्ध साधर्म्य समाप्त ।**

प०—से किं तं सव्वसाहम्मे ?

उ०—सव्वसाहम्मे ओवम्मं णत्थि ।
तहा वि तस्स ओवम्मं कीरइ ।
जहा अरिहंतेहिं अरिहंतसरिसं कयं ।
एवं—
चक्कवट्टिणा चक्कवट्टिसरिसं कयं ।
बलदेवेण बलदेवसरिसं कयं ।
वासुदेवेण वासुदेवसरिसं कयं ।
साहुणा साहुसरिसं कयं ।
से तं सव्वसाहम्मे । से तं साहम्मोवणीए ।

प०—से किं तं वेहम्मोवणीए ?

उ०—वेहम्मोवणीए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. किंचिवेहम्मे, २. पायवेहम्मे, ३. सव्ववेहम्मे ।

प०—से किं तं किंचिवेहम्मे ?

उ०—किंचिवेहम्मे = जहा सामलेरो न तहा बाहुलेरो, जहा बाहुलेरो न तहा सामलेरो ।
से तं किंचिवेहम्मे ।

प०—से किं तं पायवेहम्मे ?

उ०—पायवेहम्मे = जहा वायसो न तहा पायसो । जहा पायसो न तहा वायसो ।
से तं पायवेहम्मे ।

प०—से किं तं सव्ववेहम्मे ?

उ०—सव्ववेहम्मे = नत्थि ओवम्मे । तहावि तेणेव तस्स ओवम्मं कीरइ ।
जहा—नीएण नीयसरिसं कयं ।
दासेण दाससरिसं कयं ।
काकेण काकसरिसं कयं ।
साणेण साणसरिसं कयं ।
पाणेण पाणसरिसं कयं ।
से तं सव्ववेहम्मे । से तं वेहम्मोवणीए । से तं ओवम्मे ।

२९. प०—से किं तं आगमे ?

उ०—आगमे दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—
१. लोइए य, २. लोगुत्तरिए य ।

प०—से किं तं लोइए ?

उ०—लोइए जण्णं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठिएहिं सच्छंद-बुद्धि मइ विगप्पियं । तं जहा—
भारहं रामायणं-जाव-चत्तारि य वेया संगोवंगा ।
से तं लोइए आगमे ।

प्र०—सर्व साधर्म्य का स्वरूप कैसा है ?

उ०—सर्व साधर्म्योपमा होती ही नहीं है,
फिर भी उपमा की जा रही है—
अरिहन्तों से अरिहन्तों का साधर्म्य,
इसी प्रकार—
चक्रवर्ती से चक्रवर्ती का साधर्म्य,
बलदेव से बलदेव का साधर्म्य,
वासुदेव से वासुदेव का साधर्म्य,
साधु से साधु का साधर्म्य ।

—**सर्व साधर्म्य समाप्त । साधर्म्योपनीत समाप्त ।**

प्र०—वैधर्म्योपमा कितने प्रकार की है ?

उ०—वैधर्म्योपमा तीन प्रकार की कही गई है । यथा—
(१) अल्प वैधर्म्य, (२) अर्ध वैधर्म्य, (३) सर्व वैधर्म्य ।

प्र०—अल्प वैधर्म्य का स्वरूप कैसा है ?

उ०—अल्प वैधर्म्य = यथा—जैसी श्याम गाय है वैसी श्वेत गाय नहीं है, जैसी श्वेत गाय है वैसी श्याम गाय नहीं है ।

—**अल्प वैधर्म्य समाप्त ।**

प्र०—अर्ध वैधर्म्य का स्वरूप कैसा है ?

उ०—अर्ध वैधर्म्य = यथा—जैसा काक (कौआ) है वैसा पायस (क्षीर) नहीं है, जैसा पायस है वैसा वायस (काक) नहीं है ।

—**अर्ध वैधर्म्य समाप्त ।**

प्र०—सर्व वैधर्म्योपमा का स्वरूप कैसा है ?

उ०—सर्व वैधर्म्योपमा = होता ही नहीं है, फिर भी उसकी उपमा की जा रही है ।
यथा—नीच ने नीच जैसा किया,
दास ने दास जैसा किया,
काक ने काक जैसा किया,
श्वान ने श्वान जैसा किया,
प्राणी ने प्राणी जैसा किया है ।

—**सर्व वैधर्म्य समाप्त । वैधर्म्योपनीत समाप्त । उपमा समाप्त ।**

२९. प्र०—आगम कितने प्रकार के हैं ?

उ०—आगम दो प्रकार के कहे गये हैं । यथा—
(१) लौकिक आगम, (२) लोकोत्तर आगम ।

प्र०—लौकिक कितने प्रकार के हैं ?

उ०—लौकिक आगम यथा—अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों की स्वच्छन्द बुद्धि से विरचित ।
भारत, रामायण—यावत्—सांगोपांग चारों वेद ।

—**लौकिक आगम समाप्त ।**

प०—से किं तं लोगुत्तरिए ?

उ०—लोगुत्तरिए जं इमं अरहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पण्ण-णाण-दंसणधरेहिं तीय-पच्चुप्पन्न-मणागय जाणएहिं तेलोक्क वहिय-महिय-पुइएहिं सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं पणीयं दुवालसंगं गणिपिडगं। तं जहा—आयारो -जाव-दिट्ठिवाओ। से तं लोगुत्तरिए आगमे।

अहवा—आगमे तिविहे पण्णत्ते। तं जहा—

१. सुत्तागमे य, २. अत्थागमे य, ३. तदुभयागमे य।

अहवा—आगमे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. अत्तागमे, २. अणंतरागमे, ३. परंपरागमे।

तित्थगराणं अत्थस्स अत्तागमे।

गणहराणं सुत्तस्स अत्तागमे, अत्थस्स अणंतरागमे,

गणहरसीसाणं सुत्तस्स अणंतरागमे अत्थस्स परंपरागमे।

तेणं परं सुत्तस्स वि अत्थस्स वि नो अत्तागमे नो अणंतरागमे परंपरागमे।

से तं लोगुत्तरिए। से तं आगमे। से तं णाणगुणप्पमाणे।

—अणु० सू० ४३६-४७०

प्र०—लोकोत्तर आगम का स्वरूप कैसा है ?

उ०—लोकोत्तर आगम, यथा—केवलज्ञान, केवलदर्शन से अतीत-वर्तमान और भविष्य जानने वाले सर्वज्ञ सर्वदर्शी अरहन्त भगवन्तों द्वारा प्ररूपित द्वादशांग गणिपिटक। यथा—आचारांग—यावत्—दृष्टिवाद।

—लोकोत्तर आगम समाप्त

अथवा—आगम तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा—

(१) सूत्रागम, (२) अर्थागम, (३) तदुभयागम।

अथवा—आगम तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा—

(१) आत्मागम, (२) अनन्तरागम, (३) परम्परागम।

तीर्थंकरों का अर्थागम उनका आत्मागम है।

गणधरों का सूत्रागम उनका आत्मागम और अर्थागम अनन्तरागम है।

गणधर शिष्यों के लिए सूत्रागम अनन्तरागम है और अर्थागम परम्परागम है।

इसके बाद सूत्रागम भी और अर्थागम भी न आत्मागम है, न अनन्तरागम है, अपितु परम्परागम है।

—लोकोत्तर समाप्त। आगम समाप्त। ज्ञानगुण प्रमाण समाप्त।

दंसणगुणप्पमाणं—

२०. प०—से किं तं दंसणगुणप्पमाणे ?

उ०—दंसणगुणप्पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—

१. चक्खुदंसणगुणप्पमाणे, २. अचक्खुदंसणगुणप्पमाणे, ३. ओहिदंसणगुणप्पमाणे, ४. केवलदंसणगुणप्पमाणे य।

चक्खुदंसणं—चक्खुदंसणिस्स घड-पड-कड-रहाइएसु दव्वेसु।

अचक्खुदंसणं—अचक्खुदंसणिस्स आयभावे।

ओहिदंसणं—ओहिदंसणिस्स सव्वरूविदव्वेहिं न पुण सव्वपज्जवेहिं।

केवलदंसणं—केवलदंसणिस्स सव्वदव्वेहिं सव्वपज्जवेहि य। से तं दंसणगुणप्पमाणे।

—अणु० सु० ४७१

दर्शनगुण प्रमाण—

३०. प्र०—दर्शनगुण प्रमाण कितने प्रकार का है ?

उ०—दर्शनगुण प्रमाण चार प्रकार का कहा गया है। यथा—

(१) चक्षुदर्शनगुण प्रमाण, (२) अचक्षुदर्शनगुण प्रमाण, (३) अवधिदर्शनगुण प्रमाण, (४) केवलदर्शनगुण प्रमाण।

(१) चक्षुदर्शन—चक्षुदर्शनी के घट, पट, कट, रथ आदि द्रव्यों के देखने में है।

(२) अचक्षुदर्शन—अचक्षुदर्शनी के अपने आपको देखने में है।

(३) अवधिदर्शन—अवधिदर्शनी के सर्व रूपी द्रव्यों के देखने में है, सर्व पर्यवों के देखने में नहीं।

(४) केवलदर्शन—केवल दर्शनी के सर्वद्रव्य और सर्वपर्यायों के देखने में है। —दर्शन गुण प्रमाण समाप्त।

चरित्तगुणप्पमाणं—

३१. प०—से किं तं चरित्तगुणप्पमाणे ?

उ०—चरित्तगुणप्पमाणे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

चारित्रगुण प्रमाण—

३१. प्र०—चारित्रगुण प्रमाण कितने प्रकार का है ?

उ०—चारित्रगुण प्रमाण पाँच प्रकार का कहा गया है। यथा—

१. सामाइय चरित्तगुणप्पमाणे ।
२. छेओवट्ठावणिय चरित्तगुणप्पमाणे,
३. परिहारविसुद्धिय चरित्तगुणप्पमाणे,
४. सुहुमसंपराय चरित्तगुणप्पमाणे,
५. अहक्खाय चरित्तगुणप्पमाणे ।

(१) सामायिक चारित्रगुण प्रमाण,
(२) छेदोपस्थापनीय चारित्रगुण प्रमाण,
(३) परिहारविशुद्धिक चारित्रगुण प्रमाण,
(४) सूक्ष्मसम्पराय चारित्रगुण प्रमाण,
(५) यथाख्यात चारित्रगुण प्रमाण ।

सामाइय चरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते । तं जहा—

१. इत्तरिए य, २. आवकहिए य ।

(१) सामायिक चारित्रगुण प्रमाण दो प्रकार का कहा गया है । यथा—

(१) इत्वरिक=अल्पकालीन, (२) यावत्कथिक=यावज्जीवन ।

छेओवट्ठावणिय चरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. सातियारे य, २. निरतियारे य ।

(२) छेदोपस्थापनीय चारित्रगुण प्रमाण दो प्रकार का कहा गया है । यथा—

(१) सातिचार; (२) निरतिचार ।

परिहारविसुद्धिय चरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. णिव्विसमाणए य, २. णिव्विट्ठकाइए य ।

(३) परिहारविशुद्धिक चारित्रगुण प्रमाण दो प्रकार का कहा गया है । यथा—

(१) निर्विषमानक, (२) निर्विष्टकायिक ।

सुहुमसंपराय चरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. संकिलिस्समाणयं य, २. विसुज्झमाणयं य ।

(४) सूक्ष्मसम्पराय चारित्रगुण प्रमाण दो प्रकार का कहा गया है । यथा—

(१) संक्लिश्यमानक, (२) विशुद्धयमानक ।

अहक्खाय चरित्तगुणप्पमाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. पडिवाई य, २. अपडिवाई य ।

१. छउमत्थे य, २. केवलिए य ।

से तं चरित्तगुणप्पमाणे, से तं जीवगुणप्पमाणे, से तं गुणप्पमाणे । —अणु० सु० ४७२

(५) यथाख्यात चारित्रगुण प्रमाण दो प्रकार का कहा गया है । यथा—

(१) प्रतिपातिक, (२) अप्रतिपातिक ।

(१) छाद्मस्थिक, (२) कैवलिक ।

—चारित्रगुण प्रमाण समाप्त । जीवगुण प्रमाण समाप्त । गुण प्रमाण समाप्त ।

णयप्पमाणं—

३२ प०—से किं तं णयप्पमाणे ?

उ०—णयप्पमाणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. पत्थगदिट्ठन्तेणं, २. वसहिदिट्ठन्तेणं,
३. पएसदिट्ठन्तेणं । —अणु० सु० ४७३

नय प्रमाण—

३२. प्र० नय प्रमाण कितने प्रकार का है ?

उ०—नय प्रमाण तीन प्रकार का कहा गया है । यथा—

(१) प्रस्थक दृष्टान्त से, (२) वसति दृष्टान्त से, (३) प्रदेश दृष्टान्त से ।

पत्थगदिट्ठन्तं—

प०—से किं तं पत्थगदिट्ठन्तेणं ?

उ०—पत्थगदिट्ठन्तेणं—से जहा नामए केइ पुरिसे परसुं गहाय अडविहुत्ते गच्छेज्जा ।

तं च केइ पासित्ता वदेज्जा—कत्थ भवं गच्छसि ?

(१) अविसुद्धो नेगमो भणइ—पत्थगस्स गच्छामि ।

तं च केइ छिंदमाणं पासित्ता वदेज्जा—किं भवं छिंदसि ?

प्रस्थक दृष्टान्त—

प्र०—प्रस्थक (धान्य मापने का एक पात्र) दृष्टान्त क्या है ?

उ०—प्रस्थक दृष्टान्त—जिस प्रकार कोई पुरुष कुल्हाड़ी लेकर अटवी में जाए; उसे देखकर कोई कहे—

तुम कहाँ जा रहे हो ?

उस समय अविशुद्ध नैगम नयवाला कहता है । प्रस्थक के लिए जा रहा हूँ ।

उस पुरुष को काष्ठ काटते हुए देखकर कोई कहे—तुम क्या काट रहे हो ?

विसुद्धतराओ णेगमो भणइ—पत्थयं छिंदामि।

उस समय विशुद्धतर नैगमनय वाला कहता है—प्रस्थक काट रहा हूँ।

तं च केइ तच्छेमाणं पासित्ता वएज्जा—किं भवं तच्छेसि?

उस पुरुष को काष्ठ छीलते हुए देखकर कोई कहे—तुम क्या छील रहे हो?

विसुद्धतराओ णेगमो भणइ—पत्थयं तच्छेमि।

उस समय विशुद्धतर नैगमनय वाला कहता है—प्रस्थक छील रहा हूँ।

तं च केइ उक्किरमाणं पासित्ता वएज्जा—किं भवं उक्किरसि?

उस पुरुष को काष्ठ कोरते हुए देखकर कोई कहे—तुम क्या कोर रहे हो?

विसुद्धतराओ णेगमो भणइ—पत्थयं उक्किरामि।

उस समय विशुद्धतर नैगमनय वाला कहता है—प्रस्थक कोर रहा हूँ।

तं च केइ विलिहमाणं पासित्ता वएज्जा—किं भवं विलिहसि?

उस पुरुष को काष्ठ की खुदाई करते हुए देखकर कोई कहे—तुम यह खुदाई किसकी कर रहे हो?

विसुद्धतराओ णेगमो भणइ—पत्थयं विलिहामि।

उस समय विशुद्धतर नैगमनय वाला कहता है—प्रस्थक की खुदाई कर रहा हूँ।

एवं विसुद्धतरागस्स णेगमस्स नामाउडिओ पत्थओ।

इस प्रकार विशुद्धतर नैगमनय वाला प्रस्थक के सम्बन्ध में कहता है।

(२) एवमेव ववहारस्स वि।

इसी प्रकार व्यवहारनय वाला भी कहता है।

(३) संगहस्स चितो मिओ मिज्जसमारूढो पत्थओ।

संग्रहनय वाला धान्य का संग्रह करके प्रस्थक द्वारा मापना प्रारम्भ करते हुए को प्रस्थक कहता है।

(४) उज्जुसुयस्स पत्थओ वि पत्थओ मिज्जं वि से पत्थओ।

ऋजुसूत्रनय वाला प्रस्थक से धान्य मापते हुए को प्रस्थक कहता है।

तिण्हं सद्दनयाणं पत्थगाहिगारजाणओ पत्थगो। जस्स वा वसेणं पत्थगो निप्फज्जइ। से तं पत्थगदिट्ठंतेणं।

—अणु. सु. ४७४

तीनों शब्द नय प्रस्थक के कार्य को जानकर प्रस्थक कहते हैं।

—प्रस्थक दृष्टान्त समाप्त।

वसहिदिट्ठन्तं—

वसतिदृष्टान्त—

प०—से किं तं वसहिदिट्ठन्तेणं?

प्र०—वसति दृष्टान्त कैसा है?

उ०—वसहिदिट्ठन्तेणं—से जहानामए केइ पुरिसे कंचि पुरिसं वएज्जा—किं भवं वससि?

उ०—वसति दृष्टान्त—जिस प्रकार कोई पुरुष किसी पुरुष को कहे—आप कहाँ रहते हैं?

तत्थ अविसुद्धो णेगमो भणइ—'लोगे वसामि।'

उस समय अविशुद्ध नैगमनय वाला कहता है—"मैं लोक में रहता हूँ।"

लोगे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—१. उड्ढलोए, २. अहोलोए, ३. तिरियलोए। तेसु सव्वेसु भवं वससि?

लोक तीन प्रकार का है—(१) ऊर्ध्वलोक, (२) अधोलोक, (३) तिर्यक्‌लोक, क्या उन सब में आप रहते हैं?

विसुद्धतराओ णेगमो भणइ—'तिरियलोए वसामि।'

विशुद्धतर नैगमनय वाला कहता है—"मैं तिर्यक्‌लोक में रहता हूँ।"

तिरियलोए जंबुद्दीवादीया सयंभुरमणपज्जवसाणा असंखेज्जा दीव समुद्दा पण्णत्ता। तेसु सव्वेसु भवं वससि?

तिर्यक्‌लोक में जम्बूद्वीप से लेकर स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त असंख्येय द्वीप-समुद्र कहे गये हैं। क्या उन सब में आप रहते हैं?

विसुद्धतराओ णेगमो भणइ—जंबुद्दीवे वसामि।

विशुद्धतर नैगमनय वाला कहता है—"मैं जम्बूद्वीप में रहता हूँ।"

जंबुद्दीवे दस खेत्ता पण्णत्ता, तं जहा—

जम्बूद्वीप में दस क्षेत्र कहे गये हैं। यथा—

१. भरहे, २. एरवए, ३. हेमवए, ४. एरण्णवए, ५. हरिवस्से, ६. रम्मगवस्से, ७. देवकुरा, ८. उत्तरकुरा, ९. पुव्वविदेहे, १०. अवरविदेहे।

(१) भरत, (२) ऐरवत, (३) हैमवत, (४) हैरण्यवत (५) हरिवर्ष, (६) रम्यकवर्ष, (७) देवकुरु, (८) उत्तरकुरु, (९) पूर्वविदेह, (१०) अपर (पश्चिम) विदेह।

तेसु सव्वेसु भवं वससि ?

क्या आप उन सब में रहते हैं ?

विसुद्धतराओ णेगमो भणइ—भरहे वसामि।

विशुद्धतर नैगमनय वाला कहता है—"मैं भरत क्षेत्र में रहता हूँ।"

भरहेवासे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

भरतक्षेत्र दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा—

१. दाहिणड्ढभरहे य, २. उत्तरड्ढभरहे य,

(१) दक्षिणार्ध भरत, (२) उत्तरार्ध भरत।

तेसु सव्वेसु भवं वससि ?

"क्या आप उन सब में रहते हैं ?"

विसुद्धतराओ णेगमो भणइ—दाहिणड्ढभरहे वसामि।

विशुद्धतर नैगमनय वाला कहता है—"मैं दक्षिणार्ध भरत में रहता हूँ।"

दाहिणड्ढभरहे अणेगाइं गाम-नगर-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासम-संबाह-संनिवेसाइं तेसु सव्वेसु भवं वससि ?

दक्षिणार्ध भरत में अनेक ग्राम, नगर, खेट, कर्बट, मडंब, द्रोणमुख, पट्टण, आसंबाह, संनिवेस आदि हैं—"क्या आप उन सब में रहते हैं ?"

विसुद्धतराओ णेगमो भणइ—पाडलिपुत्ते वसामि।

विशुद्धतर नैगमनय वाला कहता है—"मैं पाटलीपुत्र में रहता हूँ।"

पाडलिपुत्ते अणेगाइं गिहाइं, तेसु सव्वेसु भवं वससि ?

पाटलिपुत्र में अनेक घर हैं—"क्या आप उन सब में रहते हैं ?"

विसुद्धतराओ णेगमो भणइ—देवदत्तस्स घरे वसामि।

विशुद्धतर नैगमनय वाला कहता है—"मैं देवदत्त के घर में रहता हूँ।"

देवदत्तस्स घरे अणेगा कोट्ठगा।
तेसु सव्वेसु भवं वससि ?

देवदत्त के घर में अनेक कोठरियाँ हैं—
"क्या आप उन सब में रहते है ?"

विसुद्धतराओ णेगमो भणइ—गब्भघरे वसामि।

विशुद्धतर नैगमनय वाला कहता है—"मैं गर्भ (मध्य) गृह में रहता हूँ।"

एवं विसुद्धस्स णेगमस्स वसमाणो वसइ।
एवमेव ववहारस्स वि।
संगहस्स संथारसमारूढो वसइ।
उज्जुसुयस्स जेसु आगासपएसेसु ओगाढो तेसु वसइ।

इस प्रकार विशुद्धतर नैगमनय वाला बसता है।
इसी प्रकार व्यवहारनय वाला भी है।
संग्रहनय वाला—अपने बिस्तर पर रहता है।
ऋजुसूत्रनय वाला—जिन आकाश प्रदेशों में स्थित हैं उतने में रहता है। अर्थात् वर्तमान में वह जितनी जगह में है उतनी में रहता है।

तिण्हं सद्दनयाणं आयभावे वसइ।
से तं वसहिदिट्ठन्तेणं। —अणु० सु० ४७५

तीनों शब्द नय वालों का कथन है—'आत्मभाव में रहता है।'

—वसति दृष्टान्त समाप्त।

पएसदिट्ठन्तं—

प्रदेश दृष्टान्त—

प०—से किं तं पएसदिट्ठन्तेणं ?

प्र०—प्रदेश दृष्टान्त कैसा है ?

उ०—पएसदिट्ठन्तेणं—णेगमो भणइ—छण्हं पएसो, तं जहा—

उ०—प्रदेश दृष्टान्त—नैगमनय वाला कहता है—छहों के प्रदेश हैं। यथा—

१. धम्मपएसो, २. अधम्मपएसो,
३. आगासपएसो ४. जीवपएसो,
५. खंधपएसो, ६. देसपएसो ।

एवं वयंतं नेगमं संगहो भणइ, जं भणसि छण्हं पएसो, तण्ण भवइ ।

(१) धर्मास्तिकाय के प्रदेश, (२) अधर्मास्तिकाय के प्रदेश,
(३) आकाशास्तिकाय के प्रदेश, (४) जीवास्तिकाय के प्रदेश,
(५) स्कन्ध के प्रदेश, (६) देश के प्रदेश ।

इस प्रकार कहते हुए नैगमनय वाले को संग्रहनय वाला कहता है—"जो तुम छहों के प्रदेश कहते हो—वह यथार्थ नहीं है।"

प०—कम्हा ?

प्र०—कैसे ?

उ०—जम्हा जो सो देस पएसो सो तस्सेव दव्वस्स ।

उ०—जिस द्रव्य के देश के जो प्रदेश हैं वे प्रदेश उसी द्रव्य के हैं।

प०—जहा को दिट्ठन्तो ?

प्र०—दृष्टान्त क्या है ?

उ०—दासेण मे खरो कीओ, दासो वि मे खरो वि मे, तं मा भणाहि—छण्हं पएसो ।

भणाहि—पंचण्हं पएसो, तं जहा—

१. धम्मपएसो, २. अधम्मपएसो,
३. आगासपएसो, ४. जीवपएसो,
५. खंधपएसो ।

एवं वयंत संगहं ववहारो भणइ—जं भणसि पंचण्हं पएसो तं न भवइ ।

उ०—मेरे दास ने गधा खरीदा है तो दास भी मेरा है और गधा भी मेरा है। इसलिए छहों के प्रदेश न कहो।

पाँच के प्रदेश कहो। यथा—

(१) धर्मास्तिकाय के प्रदेश, (२) अधर्मास्तिकाय के प्रदेश,
(३) आकाशास्तिकाय के प्रदेश, (४) जीवास्तिकाय के प्रदेश,
(५) स्कन्ध के प्रदेश।

इस प्रकार कहते हुए संग्रहनय वाले को व्यवहारनय वाला कहता है—जो तुम पाँचों के प्रदेश कहते हो—वह यथार्थ नहीं है।

प०—कम्हा ?

प्र०—कैसे ?

उ०—जइ जहा पंचण्हं गोट्ठियाणं केइ दव्व जाए सामण्णे । तं जहा—हिरण्णे वा, सुवण्णे वा, धणे वा, धण्णे वा, तो जुत्त वत्तुंजहा पंचण्हं पएसो ?

उ०—जिस प्रकार पाँच मित्रों के कुछ द्रव्य (पदार्थ) साझे के हैं। यथा—हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य। तो क्या पाँचों के प्रदेश के समान ये पाँचों के द्रव्य हैं—इस प्रकार कहना युक्ति-संगत है ?

तं मा भणाहि—पंचण्हं पएसो ।

भणाहि—पंचविहो पएसो, तं जहा—

१. धम्मपएसो, २. अधम्मपएसो,
३. आगासपएसो, ४. जीवपएसो,
५. खंधपएसो ।

एवं वयंतं ववहारं उज्जुसुओ भणइ—जं भणसि पंचविहो पएसो, तं न भवइ ।

इसलिए पाँचों के प्रदेश न कहो।

पाँच प्रकार के प्रदेश हैं—ऐसा कहो—यथा—

(१) धर्मास्तिकाय के प्रदेश, (२) अधर्मास्तिकाय के प्रदेश,
(३) आकाशास्तिकाय के प्रदेश, (४) जीवास्तिकाय के प्रदेश,
(५) स्कन्ध के प्रदेश।

इस प्रकार कहते हुए व्यवहारनय वाले को ऋजुसूत्रनय वाला कहता है—जो तुम पाँच प्रकार के प्रदेश कहते हो, वह यथार्थ नहीं है।

प०—कम्हा ?

प्र०—कैसे ?

उ०—जइ ते पंचविहो पएसो एवं ते एक्केक्को पएसो पंचविहो । एवं तं पणवीसविहो पएसो भवइ ।

उ०—यदि तुम पाँच प्रकार के प्रदेश कहते हो तो एक-एक के पाँच प्रकार के प्रदेश होंगे—इस प्रकार पच्चीस प्रकार के प्रदेश होते हैं।

तं मा भणाहि—पंचविहो पएसो—

भणाहि—भइयव्वो पएसो—

इसलिए पाँच प्रकार के प्रदेश न कहो।

प्रदेश = विभाज्य है—ऐसा कहो—

१. सिया धम्मपएसो,
२. सिया अधम्मपएसो,
३. सिया आगासपएसो,
४. सिया जीवपएसो,
५. सिया खंधपएसो।

एवं वयंतं उज्जुसुयं संपइ सद्दणयो भणइ।

जं भणसि भइयव्वो पएसो तं न भवइ।

प०- कम्हा ?

उ०- १. जइ ते भइयव्वो पएसो एवं ते धम्मपएसो वि सिया अधम्मपएसो, सिया आगासपएसो, सिया जीवपएसो, सिया खंधपएसो।

२. अधम्मपएसो वि सिया धम्मपएसो, सिया आगासपएसो, सिया जीवपएसो, सिया खंधपएसो।

३. आगासपएसो वि सिया धम्मपएसो, सिया अधम्मपएसो, सिया जीवपएसो, सिया खंधपएसो।

४. जीवपएसो वि सिया धम्मपएसो, सिया अधम्मपएसो, सिया आगासपएसो, सिया खंधपएसो।

५. खंधपएसो वि सिया धम्मपएसो, सिया अधम्मपएसो, सिया आगासपएसो, सिया जीवपएसो।

तं मा भणाहि भइयव्वो पएसो। भणाहि—
धम्मे पएसे से पएसे धम्मे।
अधम्मे पएसे से पएसे अधम्मे।
आगासे पएसे से पएसे आगासे।
जीवे पएसे से पएसे णो जीवे।
खंधे पएसे से पएसे णो खंधे।
एवं वयंतं सद्दणयं समभिरूढो भणति—

जं भणसि—धम्मे पदेसे, से पदेसे धम्मे-जाव-खंधे पदेसे, से पदेसे नो खंधे,

तं न भवइ।

(१) कभी धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं,
(२) कभी अधर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं,
(३) कभी आकाशास्तिकाय के प्रदेश हैं,
(४) कभी जीवास्तिकाय के प्रदेश हैं,
(५) कभी स्कन्ध के प्रदेश हैं।

इस प्रकार कहते हुए ऋजुसूत्रनय वाले को शब्द नय वाला कहता है—

जो तुम "प्रदेश विभाज्य हैं" ऐसा कहते हो वह यथार्थ नहीं है।

प्र०—कैसे ?

उ०—(१) यदि वे प्रदेश विभाज्य हैं तो जो धर्मास्तिकाय का प्रदेश है वह कभी अधर्मास्तिकाय का प्रदेश भी होगा, कभी आकाशास्तिकाय का प्रदेश भी होगा, कभी जीवास्तिकाय का प्रदेश भी होगा और कभी स्कन्ध का प्रदेश भी होगा।

(२) जो अधर्मास्तिकाय का प्रदेश है वह कभी धर्मास्तिकाय का प्रदेश भी होगा, कभी आकाशास्तिकाय का प्रदेश भी होगा, कभी जीवास्तिकाय का प्रदेश भी होगा, और कभी स्कन्ध का भी प्रदेश होगा।

(३) जो आकाशास्तिकाय का प्रदेश है वह कभी धर्मास्तिकाय का प्रदेश भी होगा, कभी अधर्मास्तिकाय का प्रदेश भी होगा, कभी जीवास्तिकाय का प्रदेश भी होगा और कभी स्कन्ध का भी प्रदेश होगा।

(४) जीवास्तिकाय का प्रदेश कभी धर्मास्तिकाय का प्रदेश होगा, कभी अधर्मास्तिकाय का प्रदेश होगा, कभी आकाशास्तिकाय का प्रदेश होगा और कभी स्कन्ध का प्रदेश भी होगा।

(५) स्कन्ध का प्रदेश कभी धर्मास्तिकाय का प्रदेश होगा, कभी अधर्मास्तिकाय का प्रदेश होगा, कभी आकाशास्तिकाय का प्रदेश होगा और कभी जीवास्तिकाय का प्रदेश होगा।

अतः प्रदेश विभाज्य है—ऐसा मत कहो—किन्तु ऐसा कहो—
धर्मास्तिकाय का जो प्रदेश है वह धर्मास्तिकाय है।
अधर्मास्तिकाय का जो प्रदेश है वह अधर्मास्तिकाय है।
आकाशास्तिकाय का जो प्रदेश है वह आकाशास्तिकाय है।
जीवास्तिकाय का जो प्रदेश है वह जीवास्तिकाय नहीं है।
स्कन्ध का जो प्रदेश है वह स्कन्ध नहीं है।
इस प्रकार कहते हुए शब्दनय वाले को समभिरूढनय वाला कहता है—

जो तुम कहते हो—धर्मास्तिकाय का जो प्रदेश है, वह धर्मास्तिकाय है,—यावत्—स्कन्ध का जो प्रदेश है वह स्कन्ध नहीं है।

ऐसा न कहो।

प०—कम्हा ?

प्र०—क्यों ?

उ० एत्थ दो समासा भवंति, तं जहा—
१. तप्पुरिसे य, २. कम्मधारए य।

उ०—यहाँ दो समास होते हैं, यथा—
(१) तत्पुरुष, (२) कर्मधारय।

प०—तं न नज्जइ कयरेणं समासेणं भणसि ?
किं तप्पुरिसेणं किं कम्मधारएणं ?
जइ तप्पुरिसेणं भणसि तो मा एवं भणाहि—
अह कम्मधारएणं भणसि तो विसेसओ भणाहि

प्र०—तुम किस समास से कहते हो—यह जाना नहीं जाता है—तत्पुरुष समास कहते हो या कर्मधारय समास कहते हो ?
यदि तत्पुरुष समास कहते हो तो इस प्रकार न कहो।
कर्मधारय समास कहते हो तो विशेष रूप से कहो, अर्थात् स्पष्ट कहो।

धम्मे य से पएसे से पएसे धम्मे।

धर्मास्तिकाय का जो प्रदेश है वह धर्मास्तिकाय ही है, अर्थात् धर्मास्तिकाय से अभिन्न है।

अधम्मे य से पएसे से पएसे अधम्मे।

अधर्मास्तिकाय का जो प्रदेश है वह अधर्मास्तिकाय ही है अर्थात् अधर्मास्तिकाय से अभिन्न है।

आगासे य से पएसे से पएसे आगासे।

आकाशास्तिकाय का जो प्रदेश है वह आकाशास्तिकाय ही है अर्थात् आकाशास्तिकाय से अभिन्न है।

(धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय,ये तीनों एक-एक द्रव्यात्मक हैं, अतः इस प्रकार कहना ही उचित है)

जीवे य से पएसे से पएसे नो जीवे।

जीवास्तिकाय का जो प्रदेश है अर्थात् एक जीव जीवास्तिकाय नहीं है।

(जीवास्तिकाय अनन्त जीवात्मक है अतः एक जीव जीवास्तिकाय नहीं हो सकता)

खंधे य से पएसे से पएसे नो खंधे।

स्कन्ध का जो (एक) प्रदेश है वह स्कन्ध नहीं है।
(स्कन्ध जघन्य दो प्रदेशात्मक—**यावत्**—अनन्त प्रदेशात्मक होते हैं, अतः एक प्रदेश स्कन्ध नहीं है।)

एवं वयंतं संपयं समभिरूढं एवंभूओ भणइ—

इस प्रकार कहते हुए समभिरूढनय वाले को एवंभूतनय वाला कहता है—

जं जं भणसि तं तं सव्वं कसिणं पडिपुण्णं निरवसेसं एगगहणगहियं देसे वि मे अवत्थू, पएसे वि मे अवत्थू।

तुम जिन-जिन द्रव्यों के सम्बन्ध में कहते हो उन सबको पूर्ण, अखण्ड, निरवशेष एक के ग्रहण से ग्रहण किये जाने वालों को द्रव्य मानता हूँ। 'मैं देश को भी अवस्तु मानता हूँ और प्रदेश को भी अवस्तु मानता हूँ।'

से तं पएसदिट्ठंतेणं। से तं नयप्पमाणे।

—अणु० सु० ४७६

प्रदेश दृष्टान्त समाप्त।

धम्मसरूवं—

३३. समयाए धम्मे आरिएहिं पवेइए।

—आ० सु० १, अ० ५, उ० ३, सु० १५७

अविरोहो धम्मो—

३४. भूएहिं न विरुज्झेज्जा, एस धम्मे वुसीमओ।
वुसिमं जगं परिन्नाय, अस्सि जीवित-भावणा॥

भावणा-जोग-सुद्धप्पा, जले नावा व आहिया।
नावा व तीर-संपन्ना, सव्वदुक्खा तिउट्टइ॥

—सू० सु० १, अ० १५, गा० ४-५

आणा धम्मो—

३५. "आणाए मामगं धम्मं" एस उत्तरवादे इह माणवाणं वियाहिए।

—आ० सु० १, अ० ६, उ० २, सु० १८५

धम्मपरिणामाइं—

३६. प०—धम्मसद्धाए णं भंते! जीवे किं जणयइ?

उ०—धम्मसद्धाएणं सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ। आगारधम्मं च णं चयइ। अणगारिएणं जीवे सारीर-माणसाणं दुक्खाणं छेयण-भेयण-संजोगाइणं-वोच्छेयं करेइ, अव्वाबाहं च सुहं निव्वत्तेइ।

—उत्त० अ० २९, सु० ४

धम्मस्स भेयप्पभेया—

३७. दुविहे धम्मे पण्णत्ते, तं जहा—सुयधम्मे चेव, चरित्तधम्मे चेव।

सुयधम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सुत्तसुयधम्मे चेव, अत्थ-सुयधम्मे चेव।

चरित्तधम्मे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—आगारचरित्तधम्मे चेव, अणगारचरित्तधम्मे चेव।

—ठाणं० अ० २, उ० १, सु० ६१

धर्म का स्वरूप—

३३. आर्यों ने समता में धर्म कहा है।

अविरोध धर्म—

३४. प्राणियों के साथ वैर-विरोध न करे, यही तीर्थंकर का या सुसंयमी का धर्म है। सुसंयमी साधु (त्रस-स्थावर रूप) जगत् का स्वरूप सम्यक्‌रूप से जानकर इस वीतराग प्रतिपादित धर्म में जीवित भावना (जीव-समाधान-कारिणी पच्चीस या बारह प्रकार की भावना) करे।

भावनाओं के योग (सम्यक् प्रणिधान रूप योग) से जिसका अन्तरात्मा शुद्ध हो गया है, उसकी स्थिति जल में नौका के समान (संसार समुद्र को पार करने में समर्थ) कही गई है। किनारे पर पहुँची हुई नौका विश्राम करती है, वैसे ही भावनायोगसाधक भी संसार समुद्र के तट पर पहुँचकर समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है।

आज्ञा धर्म—

३५. भगवान महावीर ने कहा— 'मेरा अभिमत धर्म मेरी आज्ञा पालने में है, मानवों के लिए यह मेरा सर्वोपरि कथन है।'

धर्म के परिणाम—

३६. प्र०—हे भगवन्! धर्म-श्रद्धा से जीव को किस फल की प्राप्ति होती है?

उ०—हे गौतम! सातावेदनीय कर्मजन्य सुख में अनुराग रखता हुआ यह जीव वैराग्य प्राप्त करता है, फिर गृहस्थधर्म को छोड़कर अनगार-धर्म को ग्रहण करता हुआ शारीरिक और मानसिक दुःखों का छेदन, भेदन तथा अनिष्ट संयोगजन्य मानसिक दुःख का व्यवच्छेद कर देता है। तदनन्तर सर्व बाधा रहित सुख का संपादन करता है।

धर्म के भेद-प्रभेद—

३७. धर्म दो प्रकार का कहा गया है—(१) श्रुतधर्म (द्वादशांग-श्रुत का अभ्यास करना), चारित्र धर्म (सम्यक्त्व, व्रत, समिति आदि का आचरण)।

श्रुतधर्म दो प्रकार का कहा गया है—(१) सूत्र-श्रुतधर्म (मूल सूत्रों का अध्ययन करना), (२) अर्थ-श्रुतधर्म (सूत्रों के अर्थ का अध्ययन करना)।

चारित्रधर्म दो प्रकार का कहा गया है (१) अगारचारित्र धर्म (श्रावकों का अणुव्रत आदि रूप धर्म), (२) अनगारचारित्र धर्म (साधुओं का महाव्रत आदि रूप धर्म)।

तिविहे धम्मे पण्णत्ते, तं जहा—

१. सुयधम्मे,

२. चरित्तधम्मे,

३. अत्थिकायधम्मे ।

—ठाणं० अ० ३, उ० ३, सु० १९४

धर्म तीन प्रकार का कहा गया है—

(१) श्रुतधर्म—वीतराग-भावना के साथ शास्त्रों का स्वाध्याय रखना ।

(२) चारित्र-धर्म— मुनि और श्रावक के धर्म का परिपालन करना ।

(३) अस्तिकाय-धर्म—प्रदेश वाले द्रव्यों को अस्तिकाय कहते हैं और उनके स्वभाव को अस्तिकाय-धर्म कहा जाता है ।

तिविहे भगवया धम्मे पण्णत्ते, तं जहा—

सुअहिज्झिए,
सुझाइए,
सुतवस्सिए ।

जया सुअहिज्झियं भवइ, तया सुझाइयं भवइ ।
जया सुझाइयं भवइ, तया सुतवस्सियं भवइ ।
से सुअहिज्झिए, सुझाइए, सुतवस्सिए, सुयक्खाएणं, भगवया धम्मे पण्णत्ते । —ठाणं० अ० ३, उ० ४, सु० २१७

भगवान ने तीन प्रकार का धर्म कहा है, यथा—

(१) सु—अधीत (समीचीन रूप से अध्ययन किया गया),
(२) सु—ध्यात (समीचीन रूप से चिन्तन किया गया),
(३) सु—तपस्थित (सु—आचरित) ।

जब धर्म सु—अधीत होता है, तब वह सु—ध्यात होता है ।
जब वह सु—ध्यात होता है, तब वह सु—तपस्थित होता है ।
सु—अधीत, सु—ध्यात और सु—तपस्थित धर्म को भगवान ने सु-आख्यात (स्वाख्यात) धर्म कहा है ।

३८. **दसविहे धम्मे पण्णत्ते, तं जहा—**

गामधम्मे, नयरधम्मे, रट्ठधम्मे, पासंडधम्मे, कुलधम्मे, गणधम्मे, संघधम्मे, सुयधम्मे, चरित्तधम्मे, अत्थिकायधम्मे ।[1]

—ठाणं० अ० १०, सु० ७६०

३८. धर्म दस प्रकार का कहा गया है । यथा—

(१) ग्रामधर्म, (२) नगरधर्म, (३) राष्ट्रधर्म, (४) पाखण्ड-धर्म, (५) कुलधर्म, (६) गणधर्म, (७) संघधर्म, (८) श्रुतधर्म, (९) चारित्रधर्म, (१०) अस्तिकायधर्म ।

३९. **दसविहे समणधम्मे पण्णत्ते, तं जहा—**

खंति, मुत्ति, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे, सच्चे, संजमे, तवे, चियाए, बंभचेरवासे ।[2]

—ठाणं० अ० १०, सु० ७१२

३९. श्रमणधर्म दस प्रकार का कहा गया है । यथा—

(१) क्षमा, (२) अलोभ, (३) सरलता, (४) मृदुता, (५) लघुता, (६) सत्य, (७) संयम, (८) तप, (९) त्याग, (१०) ब्रह्मचर्यवास ।

---

१ इन दस धर्मों में पहले चार धर्म लौकिक धर्म हैं । पाँचवाँ, छठा और सातवाँ लौकिक एवं लोकोत्तर दोनों धर्म हैं । आठवाँ और नौवाँ लोकोत्तर धर्म हैं । दसवाँ द्रव्य धर्म है ।

२ (क) चत्तारि धम्मदारा पण्णत्ता, तं जहा—खंति, मुत्ति, अज्जवे, मद्दवे । —ठाणं ४, उ० ४, सु० ३७२

(ख) पंच अज्जवठाणा पण्णत्ता, तं जहा—साहु अज्जवं, साहु मद्दवं, साहु लाघवं, साहु खंति, साहु मुत्ति । —ठाणं अ० ५, उ० १, सु० ४००

(ग) सम० १०, सु० १

(घ) चाई, लज्जू, धन्ने, तवस्सी, खंतिखमे, जिंतिदिए, सोहिए, अणियाणे, अबहिल्लेसे, अममे, अकिंचणे, छिन्नगंथे, निरुवलेवे । —प० संवरद्वार, ५, सु० ६

(च) भिक्खुधम्मम्मि दसविहे ।
जे भिक्खू जयई निच्चं से न अच्छइ मंडले । —उत्त० अ० ३१, गा० १०

(छ) पंच ठाणाइं समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं, वण्णिताइं णिच्चं कित्तिताइं णिच्चं बुइयाइं णिच्चं पसत्थाइं णिच्चमब्भणुण्णाताइं भवंति तं जहा—खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे, लाघवे ।

पंच ठाणाइं समणेणं भगवया महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं णिच्चं वण्णियाइं जाव णिच्चमब्भणुण्णायाइं तं जहा—१. सच्चे २. संजमे, ३. तवे, ४. चियाए, ५. बंभचेरवासे । —ठाणं० अ० ५, उ० १, सु० ३९६

प०—१. खन्तीए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—खन्तीए णं परीसहे जिणइ।

प०—(२) मुत्तीए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—मुत्तीए णं अकिंचणं जणयइ। अकिंचणे य जीवे अत्थलोलाणं पुरिसाणं अपत्थणिज्जो भवइ।

प०—३. अज्जवयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—अज्जवयाए णं काउज्जुययं भावुज्जुययं भासुज्जुययं अविसंवायणं जणयइ। अविसंवायणसंपन्नयाए णं जीवे धम्मस्स आराहए भवइ।

प०—४. मद्दवयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—मद्दवयाए णं अणुस्सियत्तं जणयइ। अणुस्सियत्ते णं जीवे मिउमद्दवसंपन्ने अट्ठ मयट्ठाणाइं निट्ठवेइ॥

—उत्त० अ० २९, सु० ४८-५१

प्र०—(१) भंते ! क्षमा से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—क्षमा से वह परीषहों पर विजय प्राप्त कर लेता है।

प्र०—(२) भंते ! मुक्ति (निर्लोभता) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—मुक्ति से जीव अकिंचनता को प्राप्त होता है। अकिंचन जीव अर्थ-लोलुप पुरुषों के द्वारा अप्रार्थनीय होता है—उसके पास कोई याचना नहीं करता।

प्र०—(३) भंते ! ऋजुता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—ऋजुता से वह काया की सरलता, मन की सरलता, भाषा की सरलता और अवंचक वृत्ति को प्राप्त होता है। अवंचक वृत्ति से सम्पन्न जीव धर्म का आराधक होता है।

प्र०—(४) मृदुता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—मृदुता से वह अनुद्धत मनोभाव को प्राप्त करता है। अनुद्धत मनोभाव वाला जीव मृदु-मार्दव से सम्पन्न होकर मद के आठ स्थानों का विनाश कर देता है।

प०—५. पडिरूवयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—पडिरूवयाए णं लाघवियं जणयइ। लहुभूए णं जीवे अप्पमत्ते पागडलिंगे पसत्थलिंगे विसुद्धसम्मत्ते सत्तसमिइसमत्ते सव्वपाणभूयजीवसत्तेसु वीससणिज्जरूवे अप्पडिलेहे जिइन्दिए विउलतवसमिइसमन्नागए यावि भवइ।

उत्त० अ० २९, सु० ४४

प्र०—(५) भंते ! प्रतिरूपता (जिनकल्पिक जैसे आचार का पालन करने से) जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—प्रतिरूपता से वह हल्केपन को प्राप्त होता है। उपकरणों के अल्पीकरण से हल्का बना हुआ जीव अप्रमत्त, प्रकट-लिंग-वाला, प्रशस्त लिंग वाला, विशुद्ध सम्यक्त्व वाला, पराक्रम और समिति से परिपूर्ण, सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्वों के लिए विश्वसनीय रूप वाला, अल्प-प्रतिलेखन वाला, जितेन्द्रिय तथा विपुल तप और समितियों का सर्वत्र प्रयोग करने वाला होता है।

प०—६. (क) भावसच्चे णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—भावसच्चे णं भावविसोहिं जणयइ। भावविसोहिए वट्टमाणे जीवे अरहन्तपन्नत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठेइ। अरहन्तपन्नत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठित्ता "परलोगधम्मस्स आराहए" हवइ।

(ख) करणसच्चे णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

करणसच्चे णं करणसत्तिं जणयइ। करणसच्चे वट्टमाणो जीवे जहावाई तहाकारी यावि भवइ।

(ग) जोगसच्चे णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

जोगसच्चे णं जोगं विसोहेइ।

—उत्त० अ० २९, सु० ५०-५२

प्र०—(६) (क) भंते ! भाव-सत्य (अन्तर-आत्मा की सचाई) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—भाव-सत्य से वह भाव की विशुद्धि को प्राप्त होता है। भाव विशुद्धि में वर्तमान जीव अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म की आराधना के लिए तैयार होता है। अर्हत्-प्रज्ञप्त धर्म की आराधना में तत्पर होकर वह 'परलोक-धर्म का आराधक' होता है।

(ख) भंते ! करण-सत्य (कार्य की सचाई) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—करण सत्य से वह करण-शक्ति (अपूर्व कार्य करने की सामर्थ्य) को प्राप्त होता है। करण-सत्य में वर्तमान जीव जैसा कहता है वैसा करता है।

(ग) भंते ! योग-सत्य (मन, वाणी और काया की सचाई) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—योग-सत्य से वह मन, वाणी और काया की प्रवृत्ति को विशुद्ध करता है।

प०—७. संजमेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—संजमेणं अणण्हयत्तं जणयइ।

प०—८. तवेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—तवेणं वोदाणं जणयइ।[1]

—उत्त० अ० २९, सु० २८-२९

प्र०—(७) भंते ! संयम से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—संयम से जीव आश्रव का निरोध करता है।

प्र०—(८) भंते ! तप से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—तप से वह व्यवदान—पूर्व-संचित कर्मों को क्षीण कर विशुद्धि को प्राप्त होता है।

धम्ममाहप्पं—

धर्म का माहात्म्य—

४०. एस धम्मे सुद्धे णितीइए सासए समेच्च लोयं खेयण्णेहिं पवेदिते। तं जहा—

उट्ठिएसु वा, अणुट्ठिएसु वा, उवट्ठिएसु वा, अणुवट्ठिएसु वा, उवरतदंडेसु वा, अणुवरतदंडेसु वा, सोवधिएसु वा अणुवहिएसु वा, संजोगरएसु वा, असंजोगरएसु वा।

४०. यह धर्म शुद्ध, नित्य और शाश्वत है। खेदज्ञ अर्हन्तों ने (जीव) लोक को सम्यक् प्रकार से जानकर इसका प्रतिपादन किया है।

जो धर्माचरण के लिए उठे हैं अथवा अभी नहीं उठे हैं। जो धर्मश्रवण के लिए उपस्थित हुए हैं, या नहीं हुए हैं, जो (जीवों को मानसिक, वाचिक और कायिक) दण्ड देने से उपरत हैं, अथवा अनुपरत हैं, जो उपाधि से युक्त हैं अथवा उपाधि से रहित हैं, जो संयोगों में रत हैं, अथवा संयोगों में रत नहीं है।

तच्चं चेतं तहा चेतं अस्सिं चेतं पवुच्चति।

वह (अरिहन्त-प्ररूपित धर्म) तत्त्व-सत्य है, तथ्य है, (तथारूप ही है) यह इसमें सम्यक् रूप से प्रतिपादित है।

तं आइत्तु ण णिहे, ण णिक्खिवे, जाणित्तु धम्मं जहा-तहा।

साधक उस (धर्म) को ग्रहण करके (उसके आचरण हेतु अपनी शक्तियों को) छिपाए नहीं और न ही उसे (आवेश में आकर) फेंके या छोड़े। धर्म का जैसा स्वरूप है, वैसा जानकर (आजीवन उसका आचरण करे)।

दिट्ठेहिं णिव्वेयं गच्छेज्जा।

(इष्ट-अनिष्ट) रूपों (इन्द्रिय-विषयों) से विरक्ति प्राप्त करे।

णो लोगस्सेसणं चरे।

वह लोकैषणा में न भटके।

जस्स णत्थि इमा णाती, अण्णा तस्स कओ सिया ?

जिस मुमुक्षु में यह (लोकैषणा) बुद्धि नहीं है, उससे अन्य प्रवृत्ति कैसे होगी ? अथवा जिसमें सम्यक्त्व ज्ञाति नहीं है या अहिंसा बुद्धि नहीं है उसमें विवेक बुद्धि कैसे होगी ?

दिट्ठं सुयं मयं विण्णायं, जमेयं परिकहिज्जति।

यह जो धर्म कहा जा रहा है वह दृष्ट; श्रुत (सुना हुआ) मत (माना हुआ) और विशेष रूप से ज्ञात (अनुभूत) है।

समेमाणा पलेमाणा पुणो पुणो जातिं पकप्पेंति।

हिंसा में रचे रहने वाले और उसी में लीन रहने वाले मनुष्य बार-बार जन्म लेते रहते हैं।

अहो य रातो य जतमाणे धीरे सया आगतपण्णाणे, पमत्ते बहिया पास, अप्पमत्ते सया परक्कमेज्जासि।

—आ० सु० १, अ० ४, उ० १, सु० १३२-१३३

(सम्यग्दर्शन में) अहर्निश यत्न करने वाले, सतत प्रज्ञावान्, धीर साधक उन्हें देख; जो प्रमत्त है, (धर्म से) बाहर हैं। इसलिए तू अप्रमत्त होकर (सम्यक्त्व में पराक्रम कर) ऐसा मैं कहता हूँ।

४१. सोही उज्जुयभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई।
निव्वाणं परमं जाई, घय-सित्त व्व पावए॥

४१. जो ऋजुभूत (सरल) होता है, उसे शुद्धि प्राप्त होती है और जो शुद्ध होता है उसमें धर्म ठहरता है (जिसमें धर्म स्थिर है, वह) घृत से सिक्त (सींची हुई) अग्नि की तरह परम निर्वाण (विशुद्ध आत्मदीप्ति) को प्राप्त होता है।

---

१ (क) वेइए—त्याग के लिए देखिए ज्ञानाचार। (ख) बंभचेरवासे के लिए देखिए ब्रह्मचर्य महाव्रत।

विगिंच कम्मुणो हेउं, जसं संचिणु खन्तिए।
पाढवं सरीरं हिच्चा, उड्ढं पक्कमई दिसं॥

कर्म के हेतु को दूर कर क्षमा से यश (संयम) का संचय कर। ऐसा करने वाला पार्थिव शरीर को छोड़कर ऊर्ध्व दिशा (स्वर्ग या मोक्ष) को प्राप्त होता है।

विसालिसेहिं सीलेहिं, जक्खा उत्तर-उत्तरा।
महासुक्का व दिप्पन्ता, मन्नन्ता अपुणच्चवं॥

विविध प्रकार के शीलों की आराधना करके जो देव कल्पों व उसके ऊपर के देवलोकों की आयु का भोग करते हैं, वे उत्तरोत्तर महाशुक्ल (चन्द्र-सूर्य) की तरह दीप्तिमान् होते हैं। "स्वर्ग से पुनः च्यवन नहीं होता" ऐसा मानते हैं।

अप्पिया देवकामाणं, कामरूव-विउव्विणो।
उड्ढं कप्पेसु चिट्ठन्ति, पुव्वा वाससया बहू॥

वे देवों भोगों के लिए अपने आप अर्पित किए हुए रहते हैं। इच्छानुसार रूप करने में समर्थ होते हैं तथा सैकड़ों पूर्व-वर्षों तक असंख्य काल तक वहाँ रहते हैं।

तत्थ ठिच्चा जहाठाणं, जक्खा आउक्खए चुया।
उवेन्ति माणुसं जोणिं, से दसंगे भिजायइ॥

वे देव उन कल्पों में अपनी शील की आराधना के अनुरूप स्थानों में रहते हुए आयु-क्षय होने पर वहाँ से च्युत होते हैं, फिर मनुष्य-योनि को प्राप्त होते हैं। वे वहाँ दस अंगों वाली भोग सामग्री से युक्त होते हैं।

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पसवो दास-पोरुसं।
चत्तारि काम-खन्धाणि, तत्थ से उववज्जई॥

क्षेत्र, वास्तु, स्वर्ण पशु और दास पौरुषेय—जहाँ ये चार काम-स्कन्ध होते हैं उन कुलों में वे उत्पन्न होते हैं।

मित्तवं नायवं होइ, उच्चागोए य वण्णवं।
अप्पायंके महापन्ने, अभिजाए जसोबले॥

वे मित्रवान्, ज्ञातिमान्, उच्च गोत्र वाले, वर्णवान्, निरोग, महाप्रज्ञ, अभिजात, यशस्वी और बलवान् होते हैं।

भोच्चा माणुस्सए भोए, अप्पडिरूवे अहाउयं।
पुव्वं विसुद्ध-सद्धम्मे, केवलं बोहि बुज्झिया॥

जीवन भर अनुपम मानवीय भोगों को भोगकर, पूर्व-जन्म में विशुद्ध-सद्धर्मी (निदान रहित तप करने वाले) होने के कारण वे विशुद्ध बोधि का अनुभव करते हैं।

चउरंगं दुल्लहं मत्ता, संजमं पडिवज्जिया।
तवसा धुय कम्मंसे, सिद्धे हवइ सासए॥
—उत्त. अ. ३, गा. १२-२०

वे उक्त चार अंगों को दुर्लभ मानकर संयम को स्वीकार करते हैं। फिर तपस्या से कर्म के सब अंशों को धुनकर शाश्वत सिद्ध हो जाते हैं।

धम्मारामे चरे भिक्खू, धिइमं धम्म-सारही।
धम्मारामे रए दंते, बंभचेर समाहिए॥
—उत्त. अ. १६, गा. १७

हे ब्रह्मचर्यनिष्ठ! दान्त धैर्यवान् धर्मरूप आराम में रत भिक्षु! तू धर्मरूप रथ का सारथी बनकर धर्मरूप आराम में विचरण कर।

एस धम्मे धुवे निच्चे, सासए जिणदेसिए।
सिद्धा सिज्झंति चाणेण, सिज्झिस्संति तहावरे॥
—उत्त. अ. १६, गा. १६

यह निर्ग्रन्थकथित धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है। इससे अनेक आत्माएँ अतीत में सिद्ध हुई हैं, वर्तमान में सिद्ध हो रही हैं और भविष्य में सिद्ध होंगी।

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो॥
—दस. अ. १, गा. १

अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म उत्कृष्ट मंगल है। ऐसे धर्म में जिसका मन रमा रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

धम्मस्स आराहगा—

धर्म के आराधक—

४२. तं आइत्तु न निहे, न निक्खिवे—
जाणित्तु धम्मं जहा तहा·········
—आ. सु. १, अ. ४, उ. १, सु. १३३

४२. साधक धर्म का यथार्थ स्वरूप जानकर और स्वीकार कर न माया करे और न धर्म को छोड़े।

अहेगे धम्ममादाय आदाणप्पभितिसुपणिहिए चरे अपलीयमाणे दढे सव्वगेहिं परिण्णाय ।

—आ. सु. १, अ. ६, उ. २, सु. १८४

कुछ साधक धर्म स्वीकार करके प्रारम्भ से ही मायाजाल में नहीं फँसते हुए दृढ़तापूर्वक सर्व प्रतिज्ञा का पालन करते हैं ।

तं मेहावी जाणेज्जा धम्मं ।

—आ. सु. १, अ. ६, उ. ४, सु. १९१

मेधावी पुरुष सर्वज्ञप्रज्ञप्त धर्म को जाने ।

बुद्धा धम्मस्स पारगा ।

—आ. सु. १, अ. ८, उ. ८, सु. २३०

बुद्ध पुरुष धर्म के पारंगत होते हैं ।

जे एय चरंति आहियं, नातेणं महता महेसिणा ।
ते उट्ठिय ते समुट्ठिया, अन्नोन्नं सारेंति धम्मओ ॥

—सू. सु. १, अ. २, उ. २, गा. २६

महान् महर्षि ज्ञातपुत्र के द्वारा कहे हुए इस धर्म का जो आचरण करते हैं वे ही उत्थित हैं, वे ही समुत्थित हैं और वे ही एक दूसरे को धर्म में प्रवृत्त करते हैं ।

णो काहिए होज्ज संजए, पासणिए ण य संपसारए ।
णच्चा धम्मं अणुत्तरं, कयकिरिए ण यावि मामए ॥

—सू. सु. १, अ. २, उ. २, गा. २८

संयत साधक विकथा न करे, प्रश्न-फल न कहे और ममत्व न करे किन्तु लोकोत्तर धर्म का अनुष्ठान करे ।

छन्नं च पसंसं णो करे, न य उक्कोस-पगास-माहणे ।
तेसिं सुविवेगमाहिते, पणया जेहिं सुज्झोसितं धुयं ॥

माहन (अहिंसाधर्मी साधु) छन्न (माया) और पसंस (लोभ) न करे, और न ही उक्कोस (मान) और पगास (क्रोध) करे । जिन्होंने धुत (कर्मों के नाशक संयम) का अच्छी तरह सेवन (अभ्यास) किया है, उन्हीं का सुविवेक (उत्कृष्ट विवेक) प्रसिद्ध हैं, वे ही अनुत्तर धर्म के प्रति प्रणत (समर्पित) हैं ।

अणिहे सहिए सुसंवुडे, धम्मट्ठी उवहाणवीरिए ।
विहरेज्ज समाहितिंदिए, आयहियं खु दुहेण लब्भइ ॥

—सू. सु. १, अ. २, उ. २, गा. २९-३०

वह अनुत्तर-धर्म-साधक किसी भी वस्तु की स्पृहा या आसक्ति न करे, ज्ञान दर्शन-चारित्र की वृद्धि करने वाले हितावह कार्य करे, इन्द्रिय और मन को गुप्त सुरक्षित रखे, धर्मार्थी तपस्या में पराक्रमी बने, इन्द्रियों को समहितवशवर्ती रखे इस प्रकार संयम में विचरण करे, क्योंकि आत्महित स्व-कल्याण दुःख से प्राप्त होता है ।

जेहिं काले परक्कंतं, न पच्छा परितप्पइ ।
ते धीरा बंधणुम्मुक्का, नावकंखंति जीवियं ॥

—सू. सु. १, अ. ३, उ. ४, गा. १५

धर्मोपार्जन काल में जिन पुरुषों ने धर्मोपार्जन किया है वे पश्चात्ताप नहीं करते हैं । बंधन से छूटे हुए वे धीर पुरुष असंयमी जीवन की इच्छा नहीं करते हैं ।

एवमादाय मेहावी, अप्पणो गिद्धिमुद्धरे ।
आरियं उवसंपज्जे, सव्वधम्ममकोवियं ॥
सह संमइए णच्चा, धम्मसारं सुणेत्तु वा ।
समुवट्ठिए अणगारे, पच्चक्खाए य पावए ॥

—सू. सु. १, अ. ८, गा. १३-१४

मेधावी साधक अपनी आसक्ति को छोड़े और सब धर्मों से अदूषित आर्य धर्म को स्वीकार करे ।

स्व सम्मति से धर्म के स्वरूप को और धर्म के सार को सुनकर जो अनगार साधक आत्म-उत्थान के लिए तैयार होता है वह पापों का प्रत्याख्यान कर देता है ।

प०—जे इमे भंते ! उग्गा, भोगा, राइन्ना, इक्खागा, नाया, कोरव्वा एएणं अस्सि धम्मे ओगाहंति ?

प्र०—हे भगवन् ! जो उग्रकुल, भोगकुल, राजन्यकुल, इक्ष्वाकुकुल, ज्ञातकुल और कौरव्यकुल के क्षत्रिय हैं, क्या वे सब इस धर्म में प्रवेश करते हैं ?

अस्सि धम्मे ओगाहित्ता अट्ठविहं कम्मरयमलं पवाहेंति ?

प्रवेश करके आठ प्रकार के कर्मरूप रजमल को धोते हैं ?

अट्ठविहं कम्मरयमलं पवाहित्ता तओ पच्छा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति ?

आठ प्रकार के कर्मरज मल को धोकर पश्चात् वे सिद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं परिनिवृत्त होकर सब दुःखों का अन्त करते हैं ?

उ०—हंता गोयमा ! जे इमे उग्गा, भोगा, तं चेव—अंतं करेंति। अत्थेगइया अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति। —वि. स. २०, उ. ८, सु. १६

उ० —हे गौतम ! जो उग्रकुल आदि के क्षत्रिय हैं, वे—यावत्—सब दुःखों का अन्त करते हैं और कुछ एक क्षत्रिय देवलोकों में देवरूप में उत्पन्न होते हैं।

धम्माणहिगारिणो—

धर्म के अनधिकारी—

४३. "न इत्थं तवो वा दमो णियमो वा दिस्सति" संपुण्णं बाले जीविउकामे लालप्पमाणे मूढे विप्परियासमुवेति।

—आ. सु. १, अ. २, उ. ३, सु. ७७

४३. भोगमय जीवन का इच्छुक सर्वथा बाल एवं मूढ मानव इस प्रकार प्रलाप करता है कि—"इस जगत में तप, इन्द्रिय दमन तथा नियम किसी काम के नहीं हैं।"

जरा—मच्चुवसोवणीते नरे सततं मूढे धम्मं णाभिजाणति।

—आ. सु. १, अ. ३, उ. १, सु. १०८

जरा और मृत्यु के आक्रमण से त्रस्त एवं मोह से मूढ बना हुआ मानव कदापि धर्मज्ञ नहीं हो सकता है।

अणुत्तरधम्मस्स आराहणा—

अनुत्तर धर्म की आराधना—

४४. उत्तरमणुयाण आहिया, गामधम्मा इति मे अणुस्सुतं।
जंसी विरता समुट्ठिता, कासवस्स अणुधम्मचारिणो॥

४४. मैंने (सुधर्मा स्वामी ने) परम्परा से यह सुना है कि ग्रामधर्म (पाँचों इन्द्रियों के शब्दादि विषय अथवा मैथुन सेवन) इस लोक में मनुष्यों के लिए उत्तर (दुर्जेय) कहे गये हैं। जिनसे विरत (निवृत्त) तथा संयम (संयमानुष्ठान) में उत्थित (उद्यत) पुरुष ही काश्यपगोत्रीय भगवान ऋषभदेव अथवा भगवान महावीर स्वामी के धर्मानुयायी साधक हैं।

जे एय चरंति आहियं, नातेणं महता महेसिणा।
ते उट्ठित ते समुट्ठिता, अन्नोन्नं सारेंति धम्मओ॥

जो पुरुष महान् महर्षि ज्ञातपुत्र के द्वारा इस धर्म का आचरण करते हैं, वे ही मोक्षमार्ग में उत्थित (उद्यत) हैं, और वे सम्यक् प्रकार से समुत्थित (समुद्यत) हैं तथा वे ही धर्म से (विचलित या भ्रष्ट होते हुए) एक-दूसरे को संभालते हैं, पुनः धर्म में स्थिर या प्रवृत्त करते हैं।

मा पेह पुरा पणामए, अभिकंखे उवहिं धुणित्तए।
जे दूवणतेहिं णो णया, ते जाणंति समाहिमाहियं॥

पहले भोगे हुए शब्दादि विषयों (प्रणामकों) का अन्तर्निरीक्षण या स्मरण मत करो। उपधि, माया या अष्टविध कर्म-परिग्रह को धुनने-दूर करने की अभिकांक्षा (इच्छा) करो। जो दुर्मनस्कों (मन को दूषित करने वाले शब्दादि विषयों) में नत (समर्पित या आसक्त नहीं है, वे (साधक) अपनी आत्मा में निहित समाधि (राग-द्वेष से निवृत्ति या धर्मध्यानस्थ चित्तवृत्ति) को जानते हैं।

णो काहिए होज्ज संजए, पासणिए णं य संपसारए।
नच्चा धम्मं अणुत्तरं, कयकिरिए य ना यावि मामए॥

संयमी पुरुष विरुद्ध काथिक (कथाकार) न बने, न प्राश्निक (प्रश्नफलवक्ता) बने, और न ही सम्प्रसारक (वर्षा, वित्तोपार्जन आदि के उपाय निर्देशक) बने, न ही किसी वस्तु पर ममत्ववान् हो; किन्तु अनुत्तर (सर्वोत्कृष्ट) धर्म को जानकर संयमरूप धर्मक्रिया का अनुष्ठान करे।

ण हि णूण पुरा अणुस्सुतं, अदुवा तं तह णो समुट्ठियं।
मुणिणा सामाइयाहितं, णाएणं जगसव्वदंसिणा॥

जगत् के समस्त भावदर्शी ज्ञातपुत्र मुनि पुंगव भगवान महावीर ने जो सामायिक आदि का प्रतिपादन किया है, निश्चय ही जीवों ने उसे सुना ही नहीं है, (यदि सुना भी है तो) जैसा उन्होंने कहा, वैसा (यथार्थ रूप से) उसका आचरण (अनुष्ठान) नहीं किया है।

एवं मत्ता महंतरं, धम्ममिणं सहिता बहू जणा।
गुरुणो छंदाणुवत्तगा, विरता तिन्न महोघमाहितं ॥[1]

—सूय. सु. १, अ. २, उ. २, गा. २५-३२

इस प्रकार जानकर सबसे महान् (अनुत्तर) आर्हद्धर्म को मान (स्वीकार) करके ज्ञानादि-रत्नत्रय-सम्पन्न गुरु से छन्दानुवर्ती (आज्ञाधीन या अनुज्ञानुसार चलने वाले) एवं पाप से विरत अनेक मानवों (साधकों) ने इस विशाल प्रवाहमय संसार सागर को पार किया है, यह भगवान महावीर ने कहा है।

धम्मस्स दीवोवमा—

४५. जहा से दीवे असंदीणे एवं से धम्मे आरियपदेसिए। ते अणवकंखमाणा अणतिवातेमाणा दइता मेधाविणो पंडिता।[2]

—आ. सु. १, अ. ६, उ. ३, सु. १८९

धर्म को द्वीप की उपमा—

४५. जैसे असंदीन (जल में नहीं डूबा हुआ) द्वीप (जलपोतयात्रियों के लिए) आश्वासन-स्थान होता है, वैसे ही आर्य (तीर्थंकर) द्वारा उपदिष्ट धर्म (संसार समुद्र पार करने वालों के लिए आश्वासन-स्थान) होता है।

केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स अपत्ति—

४६. दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा—आरम्भे चेव, परिग्गहे चेव।

—ठाणं अ. २, उ. १, सु. ५४

केवलिप्रज्ञप्त धर्म की अप्राप्ति—

४६. आरम्भ और परिग्रह—इन दो स्थानों को ज्ञपरिज्ञा से जाने और प्रत्याख्यान परिज्ञा से छोड़े बिना आत्मा केवलिप्रज्ञप्त धर्म को नहीं सुन पाता।

केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स पत्ति—

४७. दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा—आरम्भे चेव, परिग्गहे चेव।

दोहिं ठाणेहिं आया केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा सोच्चच्चेव, अभिसमेच्च च्चेव।

—ठा. अ. २, उ. १, सु. ५५

केवलिप्रज्ञप्त धर्म की प्राप्ति

४७. आरम्भ और परिग्रह—इन दोनों स्थानों को ज्ञपरिज्ञा से जानकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग कर आत्मा केवलि—प्रज्ञप्त धर्म को सुन पाता है।

धर्म की उपादेयता सुनने और उसे जानने, इन दो स्थानों (कारणों) से आत्मा केवलि प्रज्ञप्त-धर्म को सुन पाता है।

४८. प०—असोच्चा णं भंते! केवलिस्स वा, केवलिसावगस्स वा, केवलिसावियाए वा, केवलिउवासगस्स वा, केवलिउवासियाए वा, तप्पक्खियस्स वा, तप्पक्खियसावगस्स वा, तप्पक्खियसावियाए वा, तप्पक्खियउवासगस्स वा, तप्पक्खियउवासियाए वा, केवलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए?

उ०—गोयमा! असोच्चा णं केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगत्तिए केवलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए, अत्थेगतिए, केवलिपन्नत्तं धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए।

४८. प्र०—हे भदन्त! केवली से, केवली के श्रावक से, केवली की श्राविका से, केवली के उपासक से, केवली की उपासिका से, केवली के पाक्षिक से, केवली पाक्षिक श्रावक से, केवली-पाक्षिक श्राविका से, केवली पाक्षिक उपासक से, केवली पाक्षिक उपासिका से बिना सुने ही कोई जीव केवली प्रज्ञप्त धर्म के श्रवण का लाभ प्राप्त कर सकता है?

उ०—गौतम! केवली से—यावत्—केवलीपाक्षिक उपासिका से बिना सुने कई जीव केवलीप्रज्ञप्त धर्म का श्रवण प्राप्त कर सकते हैं। कई जीव केवलीप्रज्ञप्त धर्म का श्रवण प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

---

१ संखाय पेसलं धम्मं दिट्ठिमं परिनिव्वुडे।

—सूय० सु० २, अ० ३, उ० ३, सु० २३२

२ प०—महाउदग-वेगेणं, वुज्झमाणाण पाणिणं। सरणं गई पइट्ठा य दीवं के मन्नसी मुणी?
उ०—अत्थि एगो महादीवो, वारिमज्झे महालओ। महाउदगवेगस्स, गई तत्थ न विज्जई॥
प०—दीवे य इइ के वुत्ते? केसी गोयममब्बवी। केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी॥
उ०—जरा—मरणवेगेणं, वुज्झमाणाण पाणिणं। धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं॥

—उत्त०, अ० २३, गा० ६५-६८

प०—से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ—

असोच्चा णं केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खिय उवासियाए वा अत्थेगतिए केवलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए अत्थेगतिए केवलिपन्नत्तं धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए ?

उ०—गोयमा ! जस्स णं नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खियउवासियाए वा केवलि-पन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए।

जस्स णं नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खियउवासियाए वा केवलि पन्नत्तं धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए।

से तेणट्ठेणं गोयमा एवं वुच्चइ—

जस्स णं नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खियउवासियाए वा केवलि पन्नत्तं धम्मं लभेज्जा।

जस्स णं नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खियउवासियाए वा केवलि पन्नत्तं धम्मं नो लभेज्जा।

—वि. स. ९, उ. ३१, सु. १३

प्र०—हे भदन्त ! किस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है—

केवली से—**यावत्**—केवली-पाक्षिक उपासिका से बिना सुने कई जीव केवली प्रज्ञप्त धर्म को श्रवण करते हैं, कई जीव केवली प्रज्ञप्त धर्म को श्रवण नहीं करते हैं ?

उ०—गौतम ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ है, वह केवली से—**यावत्**—केवली पाक्षिक उपासिका से बिना सुने केवली प्रज्ञप्त धर्म का श्रवण प्राप्त कर सकता है।

जिसके ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं हुआ है, वह केवली से—**यावत्**—केवली पाक्षिक उपासिका से बिना सुने केवली प्रज्ञप्त धर्म का श्रवण प्राप्त नहीं करता है।

गौतम ! इस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है—

जिसके ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ है, वह केवली से—**यावत्**—केवली पाक्षिक उपासिका से बिना सुने केवली प्रज्ञप्त धर्म का श्रवण प्राप्त कर सकता है।

जिसके ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं हुआ है, वह केवली से—**यावत्**—केवली पाक्षिक उपासिका से बिना सुने केवली प्रज्ञप्त धर्म का श्रवण प्राप्त नहीं कर सकता है।

प०—सोच्चा णं भंते ! केवलिस्स वा, केवलिसावगस्स वा, केवलिसावियाए वा, केवलिउवासगस्स वा, केवलिउवासियाए वा, तप्पक्खियस्स वा, तप्पक्खियसावगस्स वा, तप्पक्खियसावियाए वा, तपक्खियउवासगस्स वा, तप्पक्खियउवासियाए वा, केवलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए ?

उ०—गोयमा ! सोच्चा णं केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगतिए केवलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए, अत्थेगतिए केवलिपन्नत्तं धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए।

प०—से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ—

सोच्चा णं केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगतिए केवलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए अत्थेगतिए केवलिपन्नत्तं धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए ?

उ०—गोयमा ! जस्स णं नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ, से णं सोच्चा केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खियउवासियाए वा केवलि पन्नत्तं धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए।

प्र०—भन्ते ! केवली से, केवली के श्रावक से, केवली की श्राविका से, केवली के उपासक से, केवली की उपासिका से, केवली के पाक्षिक से, केवली पाक्षिक श्रावक से, केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर कोई जीव केवली प्रज्ञप्त धर्म के श्रवण का लाभ प्राप्त कर सकता है ?

उ०—गौतम ! केवली से—**यावत्**—केवलि पाक्षिक उपासिका से सुनकर कई जीव केवली प्रज्ञप्त धर्म का श्रवण प्राप्त कर सकते हैं कई जीव केवली प्रज्ञप्त धर्म का श्रवण प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

प्र०—भन्ते ! किस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है—

केवलि से—**यावत्**—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर कई जीव केवली प्रज्ञप्त धर्म को श्रवण करते हैं, और कई जीव केवली प्रज्ञप्त धर्म को श्रवण नहीं करते हैं ?

उ०—गौतम ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं हुआ है, वह केवली से—**यावत्**—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर केवली प्रज्ञप्त धर्म का श्रवण नहीं करता है।

जस्स णं नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, से ण सोच्चा केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए।

से तेणट्ठेणं गोयमा एवं वुच्चइ—

जस्स णं नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, से णं सोच्चा केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा सवणयाए।

जस्स णं नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ, से णं सोच्चा केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलिपन्नत्तं धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए। —वि. स. ९, उ. ३१, सु. ३२

जिसके ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ है, वह केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर केवली प्रज्ञप्त धर्म का श्रवण प्राप्त कर सकता है।

गौतम ! इस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है—

जिसके ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ है, वह केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर केवली प्रज्ञप्त धर्म का श्रवण प्राप्त कर सकता है।

जिसके ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं हुआ है, वह केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर केवली प्रज्ञप्त धर्म का श्रवण प्राप्त नहीं करता है।

छउमत्थ जाव परमाहोहिणं कमसो असिज्झणाइ-सिज्झणाइ परूवणं—

छद्मस्थ—यावत्—परमावधियों का क्रम से सिद्ध होने न होने का प्ररूपण—

४९. प०—छउमत्थे णं भंते ! मणूसे तीतमणंतं सासयं समयं, केवलेणं संजमेणं, केवलेणं संवरेणं, केवलेणं बंभचेर-वासेणं, केवलाहिं पवयणमाताहिं सिज्झिंसु—जाव—सव्वदुक्खाणमंतंकरिंसु ?

उ०—गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे।

प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—"मणूसे तीतमणंतं सासतं समयं—जाव—अंतं करेंसु ?"

उ०—गोयमा ! जे केइ अंतकरा वा, अंतिमसरीरिया वा सव्वदुक्खाणमंतं करेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा, सव्वे ते उप्पन्ननाण-दंसणधरा अरहा जिणे केवली भवित्ता ततो पच्छा सिज्झंति—जाव—सव्वदुक्खाण-मंतकरेंसु वा, करेंति वा, करिस्संति वा, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"मणूसे तीतमणंतं सासतं समयं—जाव—सव्वदुक्खाणमंतं करेंसु।"

पडुप्पन्ने वि एवं चेव, नवरं "सिज्झंति" भाणियव्वं।

अणागते वि एवं चेव, नवरं "सिज्झिस्संति" भाणि-यव्वं।

जहा छउमत्थो तहा आहोहिओ वि, तहा परमाहोहिओ वि। तिण्णि तिण्णि आलावगा भाणियव्वा।

—वि. स. १, उ. ४, सु. १२-१५

४९. प्र०—भगवन् ! क्या बीते हुए अनन्त शाश्वत काल में छद्मस्थ मनुष्य केवल संयम से, केवल संवर से, केवल ब्रह्मचर्य-वास से और केवल (अष्ट) प्रवचनमाता (के पालन) से सिद्ध हुआ है, बुद्ध हुआ है,—यावत्—समस्त दुःखों का अन्त करने वाला हुआ है ?

उ०—हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्र०—भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि पूर्वोक्त छद्मस्थ मनुष्य—यावत्—समस्त दुःखों का अन्तकार नहीं हुआ ?

उ०—गौतम ! जो भी कोई मनुष्य, कर्मों का अन्त करने वाले, चरम शरीरी हुए हैं, अथवा समस्त दुःखों का जिन्होंने अन्त किया है, जो अन्त करते हैं या करेंगे, वे सब उत्पन्न ज्ञानदर्शनधारी अर्हन्त, जिन और केवली होकर तत्पश्चात् सिद्ध हुए हैं, बुद्ध हुए हैं, मुक्त हुए हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त हुए हैं, और उन्होंने समस्त दुःखों का अन्त किया है, वे ही करते हैं और करेंगे, इसी कारण हे गौतम ! ऐसा कहा है कि—यावत्—समस्त दुःखों का अन्त किया।

वर्तमान काल में भी इसी प्रकार जानना। विशेष यह है कि 'सिद्ध होते हैं', ऐसा कहना चाहिए।

तथा भविष्यकाल में भी इसी प्रकार जानना। विशेष यह है कि 'सिद्ध होंगे', ऐसा कहना चाहिए।

जैसा छद्मस्थ के विषय में कहा है, वैसा ही आधोवधिक और परमाधोवधिक के विषय में जानना चाहिए और उसके तीन-तीन आलापक कहने चाहिए।

केवलिस्स मोक्खो संपुण्णणाणित्तं च—

५०. प०—केवली णं भंते ! मणूसे तीतमणंतं सासयं समयं—जाव—सव्वदुक्खाणं अंतं करेंसु ?

उ०—हंता, सिज्झिंसु-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेंसु । एते तिण्णि आलावगा भाणियव्वा छउमत्थस्स जधा, नवरं सिज्झिंसु, सिज्झंति, सिज्झिस्संति ।

प०—से नूणं भंते ! तीतमणंतं सासयं समयं, पडुप्पन्नं वा सासयं समयं, अणागतमणंतं वा सासयं समयं जे केइ अंतकरा वा अंतिमसरीरिया वा सव्वदुक्खाणमंतं करेंसु वा करेंति वा करिस्संति वा सव्वे ते उप्पन्ननाण-दंसणधरा अरहा जिणे केवली भवित्ता तओ पच्छा सिज्झंति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेस्संति वा ?

उ०—हंता, गोयमा ! तीतमणंतं सासतं समयं-जाव-सव्वदुक्खाण अंतं करेस्संति वा ।

प०—से नूण भंते ! उप्पन्ननाण-दंसणधरे अरहा जिणे केवली "अलमत्थु" त्ति वत्तव्वं सिया ?

उ०—हंता, गोयमा ! उप्पन्ननाण-दंसणधरे अरहा जिणे केवली "अलमत्थु" त्ति वत्तव्वं सिया ।

—वि. श. १, उ. ४, सु. १६-१८

केवली का मोक्ष और सम्पूर्ण ज्ञानित्व—

५०. प्र०—भगवन् ! बीते हुए अनन्त शाश्वत काल में केवली मनुष्य ने—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त किया है ?

उ०—हाँ गौतम ! वह सिद्ध हुआ,—यावत्—उसने समस्त दुःखों का अन्त किया । यहाँ भी छद्मस्थ के समान ये तीन आलापक कहने चाहिए । विशेष यह है कि, सिद्ध हुआ, सिद्ध होता है और सिद्ध होगा, इस प्रकार तीन आलापक कहने चाहिए ।

प्र०—भगवन् ! बीते हुए अनन्त शाश्वत काल में, वर्तमान शाश्वत काल में और अनन्त शाश्वत भविष्य काल में जिन अन्तकरों ने अथवा चरमशरीरी पुरुषों ने समस्त दुःखों का अन्त किया है, करते हैं या करेंगे; क्या वे सब उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधारी, अर्हन्त, जिन और केवली होकर तत्पश्चात् सिद्ध बुद्ध आदि होते हैं,—यावत्—सब दुःखों का अन्त करेंगे ?

उ०—हाँ, गौतम ! बीते हुए अनन्त शाश्वतकाल में—यावत्—सब दुःखों का अन्त करेंगे ।

प्र०—भगवन् ! वह उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधारी अर्हन्त, जिन और केवली "अलमस्तु" अर्थात् पूर्ण है, ऐसा कहा जा सकता है ?

उ०—हाँ, गौतम ! वह उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधारी, अर्हन्त, जिन और केवली पूर्ण (अलमस्तु) है, ऐसा कहा जा सकता है ।

केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स सवणाणुकूलो वयो—

५१. तओ वया पण्णत्ता, तं जहा—

पढमे वए, मज्झिमे वए, पच्छिमे वए ।

तिहिं वएहिं आया केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा—

पढमे वये, मज्झिमे वए, पच्छिमे वए ।

—ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६१

केवलिप्रज्ञप्त धर्म श्रवण के अनुकूल वय—

५१. वय (काल-कृत अवस्था- भेद) तीन कहे गये हैं—

प्रथम वय, मध्यम वय, और पश्चिम वय ।

तीनों ही वयों में आत्मा केवलि-प्रज्ञप्त धर्म-श्रवण का लाभ पाता है—यथा—

प्रथम वय में, मध्यम वय में और पश्चिम वय में ।

केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स सवणाणुकूलो कालो—

५२. १. तओ जामा पण्णत्ता, तं जहा—

पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे ।

२. तिहिं जामेहिं आया केवलिपण्णत्तं धम्मं लभेज्ज सवणयाए, तं जहा—

पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे ।

—ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६२

केवलिप्रज्ञप्त धर्म श्रवण के अनुकूल काल—

५२. १. तीन याम (प्रहर) कहे गये हैं—

प्रथम याम, मध्यम याम और पश्चिम याम ।

२. तीनों ही यामों में आत्मा केवलि-प्रज्ञप्त धर्म-श्रवण का लाभ पाता है—

प्रथम याम में, मध्यम याम में और पश्चिम याम में ।

धम्माराहणाणुकूलखित्तं—

५३. (क) गामे अदुवा रण्णे,

(ख) णेव गामे, णेव रण्णे धम्ममायाणह ।

पवेइयं माहणेण मइमया ।

—आ. सु. १, अ. ८, उ. १, सु. २०२

धर्म आराधना के अनुकूल क्षेत्र—

५३. महामाहण मतिमान भगवान महावीर ने कहा—हे साधक ! तू ये जान ले कि—यदि विवेक है तो गाँव में या अरण्य में ···· दोनों जगह धर्म आराधना हो सकती है । यदि विवेक नहीं है तो न गाँव में और न अरण्य में आराधना हो सकती है ।

धम्मं जहमाणस्स अधम्मं पडिवज्जमाणस्स सागडिएण-तुलणा—

५४. जहा सागडिओ जाणं, समं हिच्चा महापहं ।
विसमं मग्गमोइण्णो, अक्खे भग्गम्मि सोयइ ॥

एवं धम्मं विउक्कम्म, अहम्मं पडिवज्जिया ।
बाले मच्चुमुहं पत्ते, अक्खे भग्गे व सोयइ ॥

—उत्त. अ. ५, गा. १४-१५

धर्म का परित्याग करने वाले की और अधर्म को स्वीकार करने वाले की गाड़ीवान से तुलना—

५४. जिस प्रकार गाड़ीवान प्रशस्त मार्ग को छोड़कर अप्रशस्त मार्ग में गाड़ी चलाता है तो वह गाड़ी की धुरी टूटने पर चिन्तित होता है।

उसी प्रकार धर्म को छोड़कर अधर्माचरण करने वाला मनुष्य मृत्यु आने पर अक्ष-भग्न गाड़ीवान के समान चिन्तित होता है।

धम्माराहगस्स जूअकारेण तुलणा—

५५. कुजए अपराजिए जहा, अक्खेहिं कुसलेहिं दीवयं ।
कडमेव गहाय णो कलिं, नो तीयं नो चेव दावरं ॥

एवं लोगंमि ताइणा, बुइएऽयं जे धम्मे अणुत्तरे ।
तं गिण्हहियं ति उत्तमं, कडमिव सेसऽवहाय पंडिए ॥

—सूय. सु. १, अ. २, उ. २, गा. २३-२४

धर्म-आराधक की द्यूतकार से तुलना –

५५. जिस प्रकार अपराजित चतुर जुआरी जुआ खेलते समय कृत नामक स्थान को ही ग्रहण करता है किन्तु कलि, त्रेता एवं द्वापर स्थानों को ग्रहण नहीं करता है।

इसी प्रकार पंडित (शेष स्थानों को छोड़कर कृत स्थान को ग्रहण करने वाले द्यूतकार के समान) शेष धर्मों को छोड़कर इस लोक में जगत्राता के कहे हुए अनुत्तर धर्म को ग्रहण करे।

अधम्मं कुणमाणस्स अफला राइओ—

५६. जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई ।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जंति राइओ ॥

—उत्त. अ. १४, गा. २४

अधर्म करने वाले की निष्फल रात्रियाँ—

५६. जो ये दिन रात व्यतीत होते हैं उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती है, अधर्म करने वाले के ये दिन-रात निष्फल व्यतीत होते हैं।

धम्मं कुणमाणस्स सफला राइओ—

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई ।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राइओ ॥

—उत्त. अ. १४, गा. २५

धर्म करने वाले की सफल रात्रियाँ—

जो ये दिन-रात व्यतीत होते हैं उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती है, धर्म करने वाले के ये दिन-रात सफल व्यतीत होते हैं।

धम्म पाहेयेण सुही, अपाहेयेण दुही—

५७. अद्धाणं जो महन्तं तु, अपाहेओ पवज्जई ।
गच्छन्तो से दुही होई, छुहा-तण्हाए पीडिओ ॥

एवं धम्मं अकाऊणं, जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छन्तो सो दुही होइ, वाहीरोगेहिं पीडिओ ॥

अद्धाणं जो महन्तं तु, सपाहेओ पवज्जई ।
गच्छन्तो सो सुही होइ छुहा-तण्हाविवज्जिओ ॥

एवं धम्मं पि काऊणं जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छन्तो सो सुही होइ, अप्पकम्मे अवेयणे ॥

जहा गेहे पलित्तम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू ।
सारभण्डाणि नीणेइ, असारं अवउज्झइ ॥

धर्म पाथेय से सुखी, अपाथेय से दुखी—

५७. जो व्यक्ति पाथेय (पथ का संबल) लिए बिना लम्बे मार्ग पर चल देता है, वह चलते हुए भूख और प्यास से पीड़ित होता है।

इसी प्रकार जो व्यक्ति धर्म किए बिना परभव में जाता है, वह जाते ही व्याधि और रोगों से पीड़ित होता है और दुःखी होता है।

जो व्यक्ति पाथेय साथ में लेकर लम्बे मार्ग पर चलता है, वह चलते हुए भूख और प्यास के दुःख से रहित सुखी होता है।

इसी प्रकार जो व्यक्ति धर्म करके परभव में जाता है, वह अल्पकर्मी जाते हुए वेदना से रहित सुखी होता है।

जिस प्रकार घर को आग लगने पर गृहस्वामी मूल्यवान सार वस्तुओं को निकालता है और मूल्यहीन असार वस्तुओं को छोड़ देता है।

एवं लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य।
अप्पाणं तारइस्सामि.................... ॥
— उत्त. अ. १९, गा. १९-२४

उसी प्रकार आपकी अनुमति पाकर जरा और मरण से जलते हुए इस लोक में से सारभूत अपनी आत्मा को बाहर निकालूंगा।

दुल्लहो धम्मो—

५८. ... इह माणुस्सए ठाणे, धम्ममाराहिउं नरा।

सिद्धिसट्ठा व देवा वा उत्तरीए इमं सुतं।
सुतं च मेतमेगेसिं, अमणुस्सेसु णो तहा ॥

अंतं करेंति दुक्खाणं, इहमेगेसि आहितं।
आघायं पुण एगेसिं, दुल्लभेऽयं समुस्सए ॥
—सूय. सु. १, अ. १५, गा. १५-१७

जे धम्मं सुद्धमक्खंति, पडिपुण्णमणेलिसं।
अणेलिसस्स जं ठाणं, तस्स धम्मकहा कुतो ?

कुतो कयाइ मेधावी, उप्पज्जंति तहागता।
तहागता य अपडिण्णा चक्खु लोगस्सऽणुत्तरा ॥

दुर्लभ-धर्म—

५८. इस मनुष्य लोक में या यहाँ मनुष्य भव में दूसरे मनुष्य भी धर्म की आराधना करके संसार का अन्त करते हैं।

मैंने (सुधर्मास्वामी ने) लोकोत्तर प्रवचन (तीर्थंकर भगवान की धर्मदेशना) में यह (आगे कही जाने वाली) बात सुनी है कि मनुष्य ही सम्यग्दर्शनादि की आराधना से कर्मक्षय करके निष्ठितार्थ कृतकृत्य होते हैं, (मोक्ष प्राप्त करते हैं) अथवा (कर्म शेष रहने पर) सौधर्म आदि देव बनते हैं। यह (मोक्ष-प्राप्ति—कृतकृत्यता) भी किन्हीं विरले मनुष्यों को ही होती है, मनुष्य योनि या गति से भिन्न योनि या गति वाले जीवों को मनुष्यों की तरह कृतकृत्यता या सिद्धि प्राप्त नहीं होती, ऐसा मैंने तीर्थंकर भगवान से साक्षात सुना है।

कई अन्यतीर्थिकों का कथन है कि देव ही समस्त दुःखों का अन्त करते हैं, मनुष्य नहीं; (परन्तु ऐसा सम्भव नहीं, क्योंकि) इस आर्हत्-प्रवचन में तीर्थंकर, गणधर आदि का कथन है कि यह समुन्नत मानव-शरीर या मानव-जन्म (समुच्छ्रय) मिलना अथवा मनुष्य के बिना यह समुच्छ्रय-धर्मश्रवणादि रूप अभ्युदय दुर्लभ है, फिर मोक्ष पाना तो दूर की बात है।

जो महापुरुष प्रतिपूर्ण, अनुपम, शुद्ध धर्म की व्याख्या करते हैं, वे सर्वोत्तम (अनुपम) पुरुष के (समस्त द्वन्द्वों से उपरमरूप) स्थान को प्राप्त करते हैं, फिर उनके लिए जन्म लेने की बात ही कहाँ ?

इस जगत् में फिर नहीं आने के लिये मोक्ष में गये हुए (तथागत) मेधावी (ज्ञानी) पुरुष क्या कभी फिर उत्पन्न हो सकते हैं ? (कदापि नहीं।) अप्रतिज्ञ (निदान-रहित) तथागत—तीर्थंकर, गणधर, आदि लोक (प्राणिजगत) के अनुत्तर (सर्वोत्कृष्ट) नेत्र (पथप्रदर्शक) हैं।

छट्ठाणाइं सव्वजीवाणं णो सुलभाइं भवंति, तं जहा —
१. माणुस्सए भवे, २. आरिए खेत्ते जम्मं, ३. सुकुले पच्चायाती, ४. केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स सवणता, ५. सुतस्स वा सद्दहणता[1] ६. सद्दहितस्स वा पत्तितस्स वा रोइतस्स वा सम्मं काएणं फासणता। —ठाणं अ. ६, सु. ४८५

छह स्थान सर्व जीवों के लिए सुलभ नहीं हैं, जैसे—
(१) मनुष्य भव, (२) आर्य-क्षेत्र में जन्म, (३) सुकुल में आगमन, (४) केवलिप्रज्ञप्त धर्म का श्रवण, (५) सुने हुए धर्म का श्रद्धान, (६) श्रद्धान किये, प्रतीति किये और रुचि किये गये धर्म का काया से सम्यक् स्पर्शन (आचरण)।

५९. समावन्नाण संसारे, नाणा-गोत्तासु जाइसु।
कम्मा नाणाविहा कट्टु, पुढो विस्संभिया पया ॥

५९. संसारी जीव विविध प्रकार के कर्मों का अर्जन कर विविध नाम वाली जातियों में उत्पन्न हो, पृथक्-पृथक् रूप से समूचे विश्व का स्पर्श कर लेते हैं—सब जगह उत्पन्न हो जाते हैं।

---

[1] उत्त० अ० ३, गा० १ देखें

एगया देवलोएसु, नरएसु वि एगया ।
एगया आसुरं कायं, आहाकम्मेहिं गच्छई ॥
एगया खत्तिओ होई, तओ चण्डाल-वोक्कसो ।
तओ कीड-पयंगो य, तओ कुन्थु-पिवीलिया ॥
एवमावट्ट-जोणीसु, पाणिणो कम्म-किब्बिसा ।
न निविज्जन्ति संसारे, 'सव्वट्ठेसु व' खत्तिया ॥

जीव अपने कृत कर्मों के अनुसार कभी देवलोक में, कभी नरक में और कभी असुरों के निकाय में उत्पन्न होता है ।

वही जीव कभी क्षत्रिय होता है, कभी चाण्डाल, कभी बोक्कस (वर्णसंकर), कभी कीट, कभी पतंगा, कभी कुंथु और कभी चींटी ।

जिस प्रकार क्षत्रिय लोग समस्त अर्थों (काम-भोगों) को भोगते हुए भी निर्वेद को प्राप्त नहीं होते, उसी प्रकार कर्म-किल्विष (कर्म से अधम बने हुए) जीव योनि-चक्र में भ्रमण करते हुए भी संसार में निर्वेद नहीं हो पाते- -उससे मुक्त होने की इच्छा नहीं करते ।

कम्म-संगेहिं सम्मूढा, दुक्खिया बहु-वेयणा ।
अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मन्ति पाणिणो ॥

जो जीव कर्मों के संग से सम्मूढ़, दुःखित और अत्यन्त वेदना वाले हैं, वे अपने कृत कर्मों के द्वारा मनुष्येतर (नरक-तिर्यंच) योनियों में धकेले जाते हैं ।

कम्माणं तु पहाणाए, आणुपुव्वी कयाइ उ ।
जीवा सोहिमणुप्पत्ता, "आययन्ति मणुस्सयं" ॥
— उत्त. अ. ३, गा. २-७

काल-क्रम के अनुसार कदाचित् मनुष्य-गति को रोकने वाले कर्मों का नाश हो जाता है । उससे शुद्धि प्राप्त होती है । उससे जीव मनुष्यत्व को प्राप्त होते हैं ।

माणुस्सं विग्गहं लद्धुं, सुई धम्मस्स दुल्लहा ।
जं सोच्चा पडिवज्जन्ति, तवं खन्तिमहिंसयं ॥[1]
—उत्त. अ. ३, गा. ८

मनुष्य-शरीर प्राप्त होने पर भी उस धर्म की श्रुति दुर्लभ है जिसे सुनकर जीव तप, क्षमा और अहिंसा को स्वीकार करते हैं ।

---

१ **(क) धर्म श्रवण दुर्लभता—**

तए णं केसी कुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयासी—एवं खलु चउहिं ठाणेहिं चित्ता ! जीवा केवलिपन्नत्तं धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए । तं जहा—

१. आरामगयं वा उज्जाणगयं वा समणं वा माहणं वा णो अभिगच्छइ, णो वंदइ, णो णमंसइ, णो सक्कारेइ, णो सम्माणेइ, णो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेइ, नो अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं पुच्छइ, एएणं ठाणेणं चित्ता ! जीवा केवलिपन्नत्तं धम्मं नो लभंति सवणयाए ।

२. उवस्सयगयं समणं वा तं चेव जाव एतेण वि ठाणेणं चित्ता ! जीवा केवलिपन्नत्तं धम्मं नो लभंति सवणयाए ।

३. गोयरग्गगयं समणं वा माहणं वा जाव नो पज्जुवासइ, णो विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभइ, णो अट्ठाइं जाव पुच्छइ, एएणं ठाणेणं चित्ता ! केवलिपन्नत्तं धम्मं नो लभइ सवणयाए ।

४. जत्थ वि य णं समणेण वा माहणेण वा सद्धिं अभिसमागच्छइ, तत्थ वि णं हत्थेण वा वत्थेण वा छत्तेण वा अप्पाणं आवरित्ता चिट्ठइ, नो अट्ठाइं जाव पुच्छइ, एएण वि ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलिपन्नत्तं धम्मं णो लभइ सवणयाए । एएहिं च णं चित्ता ! चउहिं ठाणेहिं जीवे णो लभइ केवलिपन्नत्तं धम्मं सवणयाए ।

(ख) धर्म श्रवण सुलभता—

चउहिं ठाणेहिं चित्ता ! जीवे केवलिपन्नत्तं धम्मं लभइ सवणयाए, तं जहा—

१. आरामगयं वा उज्जाणगयं वा समणं वा माहणं वा वंदइ नमंसइ जाव (सक्कारेइ, सम्माणेइ, कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं) पज्जुवासइ अट्ठाइं जाव (हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं) पुच्छइ, एएणं वि जाव लभइ सवणयाए एवं—

२. उवस्सयगयं

३. गोयरग्गगयं समणं वा जाव (असण-पाण-खाइम-साइमेणं) पडिलाभेइ, अट्ठाइं जाव पुच्छइ एएण वि ।

४. जत्थ वि य णं समणेण वा माहणेण वा अभिसमागच्छइ तत्थ वि य णं णो हत्थेण वा जाव (वत्थेण वा, छत्तेण वा अप्पाणं) आवरेत्ताणं चिट्ठइ, एएण वि ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलिपन्नत्तं धम्मं लभइ सवणयाए ।

तुज्झं च णं चित्ता ! पएसी राया आरामगयं वा तं चेव सव्वं भाणियव्वं आइल्लएणं गमएणं जाव अप्पाणं आवरेत्ता चिट्ठइ, तं कहं णं चित्ता ! पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खिस्सामो ?

—राय० सू० २३४

आहच्च सवणं लद्धुं, सद्धा परमदुल्लहा ।
सोच्चा नेआउयं मग्गं, बहवे परिभस्सई ॥

कदाचित् धर्म सुन लेने पर भी उसमें श्रद्धा होना दुर्लभ है । बहुत लोग मोक्ष की ओर ले जाने वाले मार्ग को सुनकर भी उससे भ्रष्ट हो जाते हैं ।

सुइं च लद्धुं सद्धं च, वीरियं पुण दुल्लहं ।
बहवे रोयमाणा वि, "नो एणं" पडिवज्जए ॥
—उत्त. अ. ३, गा. ९-१०

श्रुति और श्रद्धा प्राप्त होने पर भी संयम में वीर्य (पुरुषार्थ) होना अत्यन्त दुर्लभ है । बहुत लोग संयम में रुचि रखते हुए भी उसे स्वीकार नहीं करते ।

दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिणं ।
गाढा य विवाग कम्मुणो, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

सब प्राणियों को चिरकाल तक भी मनुष्य-जन्म मिलना दुर्लभ है । कर्म के विपाक तीव्र होते हैं, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

पुढविक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

पृथ्वीकाय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक असंख्य-काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

आउक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

अप्काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक असंख्य-काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

तेउक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

तेजस्-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक असंख्य काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

वाउक्कायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

वायु-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक असंख्य काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

वणस्सइकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालमणन्तदुरन्तं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

वनस्पति-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक दुरन्त अनन्त-काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

बेइन्दियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

द्वीन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक संख्येय-काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भी प्रमाद मत कर ।

तेइन्दियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

त्रीन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक संख्येय-काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

चउरिन्दियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

चतुरिन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक संख्येय-काल तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

पंचिन्दियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
सत्तट्ठभवग्गहणे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

पंचेन्द्रिय-काय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक सात-आठ जन्म ग्रहण तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

देवे नेरइए य अइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।
इक्किक्कभवग्गहणे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

देव और नरक-योनि में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक एक-एक जन्म-ग्रहण तक वहाँ रह जाता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

एवं भवसंसारे, संसरइ सुहासुहेहिं कम्मेहिं ।
जीवो पमायबहुलो, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

इस प्रकार प्रमाद-बहुल जीव शुभ-अशुभ कर्मों द्वारा जन्म-मृत्युमय संसार में परिभ्रमण करता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

लद्धूण वि माणुसत्तणं, आरिअत्तं पुणरावि दुल्लहं ।
बहवे दसुया मिलेक्खुया, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

मनुष्य-जन्म दुर्लभ है, उसके मिलने पर भी आर्य देश में जन्म पाना और भी दुर्लभ है । बहुत सारे लोग मनुष्य होकर भी दस्यु और म्लेच्छ होते हैं, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

लद्धूण वि आयरियत्तणं, अहीणपंचिंदियया हु दुल्लहा ।
विगलिंदियया हु दीसई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

आर्यदेश में जन्म मिलने पर भी पाँचों इन्द्रियों से पूर्ण स्वस्थ होना दुर्लभ है । बहुत सारे लोग इन्द्रियहीन दीख रहे हैं, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

अहीणपंचिंदियत्तं पि से लहे, उत्तमधम्मसुई हु दुल्लहा ।
कुतित्थिनिसेवए जणे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

पाँचों इन्द्रियाँ पूर्ण स्वस्थ होने पर भी उत्तम धर्म की श्रुति दुर्लभ है । बहुत सारे लोग कुतीर्थिकों की सेवा करने वाले होते हैं, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

लद्धूण वि उत्तमं सुइं, सद्दहणा पुणरावि दुल्लहा ।
मिच्छत्तनिसेवए जणे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

उत्तम धर्म की श्रुति मिलने पर भी श्रद्धा होना और अधिक दुर्लभ है । बहुत सारे लोग मिथ्यात्व का सेवन करने वाले होते हैं, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

धम्मं पि हु सद्दहंतया, दुल्लहया काएण फासया ।
इह कामगुणेहिं मुच्छिया, समयं गोयम ! मा पमायए ॥
—उत्त. अ. १०, गा. ४-२०

उत्तम धर्म में श्रद्धा होने पर भी उसका आचरण करने वाले दुर्लभ हैं । इस लोक में बहुत सारे लोग काम-गुणों में मूर्च्छित होते हैं, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर ।

धम्मसाहणाए सहाया—

६०. धम्मं चरमाणस्स पंच निस्साठाणा पण्णत्ता, तं जहा—

छक्काए, गणे,
राया, गिहवई,
सरीरं । —ठाणं. अ. ५, उ. ३, सु. ४०७

धर्म साधना में सहायक—

६० धर्म का आचरण करने वाले साधु के लिए पांच निश्रा (आलम्बन) कहे गये हैं । जैसे—

१. षट्काय, २. गण (श्रमणसंघ),
३. राजा, ४. गृहपति,
५. शरीर ।

सद्धासरूव-परूवणं—

६१. नत्थि धम्मे अधम्मे वा, नेव सन्नं निवेसए ।
अत्थि धम्मे अधम्मे वा, एवं सन्नं निवेसए ॥
—सूय. सु. २, अ. ५, गा. १४

श्रद्धा के स्वरूप का प्ररूपण—

६१ धर्म अथवा अधर्म नहीं हैं, ऐसी श्रद्धा नहीं रखनी चाहिए । धर्म अथवा अधर्म हैं, ऐसी श्रद्धा रखनी चाहिए ।

करणप्पयारा—

६२. तिविहे करणे पण्णत्ते, तं जहा—
धम्मिए करणे, अधम्मिए करणे
धम्मियाधम्मिये करणे । —ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. २१६

करण के प्रकार—

६२ करण तीन प्रकार का कहा है, यथा—
१. धार्मिक करण, २. अधार्मिक करण,
३. धार्मिकाधार्मिक करण ।

उवक्कमभेया—

६३. तिविधे उवक्कमे पण्णत्ते, तं जहा—

उपक्रम के भेद—

६३. उपक्रम (उपायपूर्वक कार्य का आरम्भ) तीन प्रकार का कहा गया है—जैसे—

धम्मिए उवक्कमे,

अधम्मिए उवक्कमे,

धम्मियाधम्मिए उवक्कमे ।

—ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १६४

(१) धार्मिक-उपक्रम—श्रुत और चारित्र रूप धर्म की प्राप्ति के लिए प्रयास करना ।

(२) अधार्मिक-उपक्रम—असंयमवर्धक आरम्भ कार्य करना ।

(३) धार्मिकाधार्मिक-उपक्रम—संयम और असंयम रूप कार्यों का करना ।

ववसायप्पगारा—

६४. तिविहे ववसाए पण्णत्ते, तं जहा—

धम्मिए ववसाए, अधम्मिए ववसाए, धम्मियाधम्मिए ववसाए ।

अहवा—तिविहे ववसाए पण्णत्ते तं जहा—

पच्चक्खे, पच्चइए, आणुगामिए ।

अहवा—तिविहे ववसाए पण्णत्ते तं जहा—

इहलोइए, परलोइए- इहलोइय-परलोइए ।

इहलोइए ववसाए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

लोइए, वेइए, सामइए ।

लोइए ववसाए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

अत्थे, धम्मे, कामे ।

वेइए ववसाए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

रिउव्वेदे, जउव्वेदे, सामवेदे ।

सामइए ववसाए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

णाणे, दंसणे, चरित्ते । - ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १९१

व्यवसाय (अनुष्ठान) के प्रकार—

६४. व्यवसाय (वस्तुरूप का निर्णय अथवा पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए किया जाने वाला अनुष्ठान) तीन प्रकार का कहा गया है—

(१) धार्मिक व्यवसाय, (२) अधार्मिक व्यवसाय, (३) धार्मिकाधार्मिक व्यवसाय ।

अथवा व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है—

(१) प्रत्यक्ष व्यवसाय, (२) प्रात्ययिक (व्यवहार-प्रत्यक्ष) व्यवसाय और (३) आनुगामिक (अनुमानिक व्यवसाय)

अथवा व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है—

(१) ऐहलौकिक, (२) पारलौकिक, (३) ऐहलौकिक-पारलौकिक ।

ऐहलौकिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है—

(१) लौकिक, (२) वैदिक, (३) सामयिक (श्रमणों का व्यवसाय) ।

लौकिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है—

(१) अर्थव्यवसाय, (२) धर्मव्यवसाय, (३) काम-व्यवसाय ।

वैदिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है—

(१) ऋग्वेद, (२) यजुर्वेद, (३) सामवेद व्यवसाय (अर्थात् इन वेदों के अनुसार किया जाने वाला निर्णय या अनुष्ठान)

सामयिक व्यवसाय तीन प्रकार का कहा गया है—

(१) ज्ञान, (२) दर्शन, (३) चारित्र व्यवसाय ।

संजयाइणं धम्माइसु ठिई—

६५. प०—१. से णं भंते ! संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मे धम्मे ठिए ?

२. असंजय-अविरय-अपडिहय - अपच्चक्खायपावकम्मे अधम्मे ठिए ?

३. संजयासंजए धम्माधम्मे ठिए ?

उ०—१. हंता गोयमा ! संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मे धम्मे ठिए ।

संयतादि की धर्मादि में स्थिति—

६५. प्र०—(१) हे भदन्त ! संयत, प्राणितिपातादि से विरत, जिसने प्राणातिपातादि से पाप कर्मों का प्रतिघात और प्रत्याख्यान किये हैं ऐसा जीव धर्म में स्थित है ?

(२) असंयत, प्राणातिपातादि से अविरत, जिसने प्राणातिपातादि पांच कर्मों का प्रतिघात और प्रत्याख्यान नहीं किये हैं—ऐसा जीव अधर्म में स्थित है ?

(३) संयत-असंयत (अंशतः असंयत, अंशतः संयत) जीव धर्माधर्म में स्थित है ?

उ०—(१) हाँ गौतम ! संयत, प्राणातिपातादि से विरत, जिसने प्राणातिपातादि पाप कर्मों का प्रतिघात और प्रत्याख्यान किये हैं—ऐसा जीव धर्म में स्थित है ।

२. असंजय-अविरय-अपडिहय-अपच्चक्खाय-पावकम्मे अधम्मे ठिए।

(२) असंयत—प्राणातिपातादि से अविरत, जिसने प्राणातिपातादि पापकर्मों का प्रतिघात और प्रत्याख्यान नहीं किये हैं ऐसा जीव अधर्म में स्थित है।

३. संजयासंजए धम्माधम्मे ठिए ॥१॥

(३) संयत-असंयत जीव धर्माधर्म में स्थित है।

प०—एएसि णं भंते ! धम्मंसि वा, अहम्मंसि वा, धम्माधम्मंसि वा, चक्किया केइ आसइत्तए वा, सइत्तए वा, चिट्ठित्तए वा, निसीवित्तए वा, तुयट्टित्तए वा ?

प्र०—हे भदन्त ! धर्म में, अधर्म में, धर्माधर्म में कोई भी जीव बैठना, सोना, खड़ा रहना, नीचे बैठना—करवट बदलना आदि क्रिया कर सकता है ?

उ०—गोयमा ! णो तिणट्ठे समट्ठे ॥२॥

उ०—गौतम ! यह अर्थ तर्कसंगत नहीं है।

प०—से केणं खाइं अट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—

प्र०—(१) हे भदन्त ! किस प्रसिद्ध प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है ?

१. संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय - पावकम्मे धम्मे ठिए ?

(१) संयत, प्राणातिपातादि से विरत, जिसने प्राणातिपातादि पापकर्मों का प्रतिघात और प्रत्याख्यान किये हैं—ऐसा जीव अधर्म में स्थित है ?

२. असंजय-अविरय-अपडिहय-अपच्चक्खाय - पावकम्मे अधम्मे ठिए ?

(२) असंयत—प्राणातिपातादि से अविरत—जिसने प्राणातिपातादि पाप कर्मों का प्रतिघात और प्रत्याख्यान नहीं किये हैं—ऐसा जीव अधर्म में स्थित है ?

३. संजयासंजए धम्माधम्मे ठिए ?

(३) संयतासंयत धर्माधर्म में स्थित है ?

उ०—१. गोयमा ! संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय - पावकम्मे धम्मे ठिए, धम्मं चेव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ,

उ०—(१) गौतम ! संयत—प्राणातिपातादि से विरत—जिसने प्राणातिपातादि पापकर्मों का प्रतिघात और प्रत्याख्यान किये हैं- ऐसा जीव धर्म में स्थित है—क्योंकि धर्म को ग्रहण कर विहरता है (व्यवहार) करता है।

२. असंजय-अविरय-अपडिहय-अपच्चक्खाय-पावकम्मे अधम्मे ठिए, अधम्मं चेव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ,

(२) असंयत—प्राणातिपातादि से अविरत—जिसने प्राणातिपातादि पापकर्मों का प्रतिघात और प्रत्याख्यान नहीं किये हैं—ऐसा जीव अधर्म में स्थित है, क्योंकि अधर्म को ग्रहण कर विहरता है (व्यवहार करता है)।

३. संजयासंजए धम्माधम्मे ठिए, धम्माधम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ,

(३) संयतासंयत जीव धर्म-अधर्म में स्थित है, क्योंकि धर्म-अधर्म ग्रहण कर व्यवहार करता है,

से तेणट्ठेणं गोयमा !

इस प्रयोजन से गौतम !

संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय - पावकम्मे धम्मे ठिए।

संयत—प्राणातिपातादि से विरत—जिसने प्राणातिपातादि पापकर्मों का प्रतिघात और प्रत्याख्यान किये हैं—ऐसा जीव धर्म में स्थित है।

असंजय-अविरय-अपडिहय-अपच्चक्खाय - पावकम्मे अधम्मे ठिए।

असंयत—प्राणातिपातादि से अविरत—जिसने प्राणातिपातादि पापकर्मों का प्रतिघात और प्रत्याख्यान नहीं किया है—ऐसा जीव अधर्म में स्थित है।

संजयासंजए धम्माधम्मे ठिए ।३॥

संयतासंयत धर्माधर्म में स्थित है।

प०—जीवा णं भंते ! किं धम्मे ठिया ? अधम्मे ठिया ? धम्माधम्मे ठिया ?

प्र०—हे भदन्त ! जीव धर्मस्थित हैं ? अधर्मस्थित हैं ? धर्माधर्मस्थित हैं ?

उ०—गोयमा ! जीवा धम्मे वि ठिया, अधम्मे वि ठिया, धम्माधम्मे वि ठिया ॥४॥

उ०—गौतम ! जीव धर्मस्थित भी हैं, अधर्मस्थित भी हैं, धर्माधर्मस्थित भी हैं।

प०—नेरइया णं भंते ! किं धम्मे ठिया ? अधम्मे ठिया ? धम्माधम्मे ठिया ?

उ०—गोयमा ! णेरइया नो धम्मे ठिया, अधम्मे ठिया, नो धम्माधम्मे ठिया ॥५॥

प०—असुरकुमारा-जाव-थणियकुमारा णं भंते ! किं धम्मे ठिया ? किं अधम्मे ठिया ? किं धम्माधम्मे ठिया ?

उ०—गोयमा ! असुरकुमारा-जाव-थणियकुमारा नो धम्मे ठिया, अधम्मे ठिया, नो धम्माधम्मे ठिया।

प०—पुढवीकाइया-जाव-चउरिंदिया णं भंते ! किं धम्मे ठिया ? अधम्मे ठिया ? धम्माधम्मे ठिया ?

उ०—गोयमा ! पुढवीकाइया-जाव-चउरिंदिया नो धम्मे ठिया, अधम्मे ठिया, नो धम्माधम्मे ठिया ॥६॥

प०—पंचिंदियतिरिक्ख जोणिया णं भंते ! किं धम्मे ठिया ? अधम्मे ठिया ? धम्माधम्मे ठिया ?

उ०—गोयमा ! पंचिंदियतिरिक्ख जोणिया नो धम्मे ठिया, अधम्मे ठिया, धम्माधम्मे वि ठिया ॥७॥

प०—मणुस्सा णं भंते ! किं धम्मे ठिया ? अधम्मे ठिया ? धम्माधम्मे ठिया ?

उ०—गोयमा ! मणुस्सा धम्मे वि ठिया, अधम्मे वि ठिया, धम्माधम्मे वि ठिया ॥८॥

प०—वाणमंतर—जोइसिया—वेमाणिया णं भंते ! किं धम्मे ठिया ? अधम्मे ठिया ? धम्माधम्मे ठिया ?

उ०—गोयमा ! वाणमंतर—जोइसिया—वेमाणिया नो धम्मे ठिया, अधम्मे ठिया, नो धम्माधम्मे ठिया ॥८॥

—वि. सं. १७, उ. २, सु. १-६

प्र०—हे भदन्त ! नैरयिक धर्मस्थित है ? अधर्मस्थित है ? धर्माधर्म स्थित है ?

उ०—गौतम ! नैरयिक धर्मस्थित नहीं है, अधर्मस्थित है, धर्माधर्म स्थित नहीं है।

प्र०—हे भदन्त ! असुरकुमार—**यावत्**—स्तनितकुमार धर्मस्थित हैं ? अधर्मस्थित हैं ? धर्माधर्म स्थित है ?

उ०—गौतम ! असुरकुमार—**यावत्**—स्तनितकुमार धर्मस्थित नहीं है, अधर्मस्थित है, धर्माधर्मस्थित नहीं है।

प्र०—हे भदन्त ! पृथ्वीकायिक—**यावत्**—चतुरिन्द्रिय जीव धर्मस्थित है ? अधर्मस्थित है ? धर्माधर्मस्थित है ?

उ०—गौतम ! पृथ्वीकायिक—**यावत्**—चतुरिन्द्रिय जीव धर्मस्थित नहीं है, अधर्मस्थित है, धर्माधर्मस्थित नहीं है।

प्र०—हे भदन्त ! पंचेन्द्रिय तिर्यग् योनिक जीव धर्मस्थित है ? अधर्मस्थित है ? धर्माधर्मस्थित है ?

उ०—गौतम ! पंचेन्द्रिय तिर्यग् योनिक जीव धर्मस्थित नहीं है, अधर्मस्थित है, धर्माधर्मस्थित है।

प्र०—हे भदन्त ! मनुष्य धर्मस्थित है ? अधर्मस्थित है ? धर्माधर्मस्थित है ?

उ०—गौतम ! मनुष्य धर्मस्थित है, अधर्म स्थित भी है, धर्माधर्म स्थित भी है।

प्र०—हे भदन्त ! वाणव्यंतर-ज्योतिषिक, वैमानिक धर्मस्थित है ? अधर्मस्थित है ? धर्माधर्मस्थित है ?

उ०—गौतम ! वाणव्यंतर, ज्योतिषिक, वैमानिक धर्मस्थित नहीं है, अधर्मस्थित है, धर्माधर्मस्थित नहीं है।

दुप्पडियारा सुप्पडियारा—

६६. तिण्हं दुप्पडियारं समणाउसो ! तं जहा—

अम्मापिउणो, भट्टिस्स, धम्मायरियस्स।

१. संपातो वि य णं केइ पुरिसे, अम्मापियरं सयपाग-सहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भगेत्ता, सुरभिणा गंधट्टएणं उवट्टित्ता, तिहिं उदगेहिं मज्जावित्ता, सव्वालंकार-विभूसियं करेत्ता, मणुन्नं थालीपागसुद्धं अट्ठारस-वंजणाउलं भोयणं भोयावेत्ता जावज्जीवं पिट्ठिवडेंसियाए परिवहेज्जा, तेणावि तस्स अम्मापिउस्स दुप्पडियारं भवइ।

अहे णं से तं अम्मापियरं केवलिपण्णत्ते धम्मे आघवइत्ता पण्णवइत्ता परूवइत्ता ठावइत्ता भवइ, तेणामेव तस्स अम्मापिउस्स सुप्पडियारं भवइ समणाउसो !

प्रत्युपकार दुष्कर, प्रत्युपकार सुकर—

६६. हे आयुष्मन् श्रमण ! इन तीनों का प्रत्युपकार दुष्कर है—

(१) माता-पिता का, (२) भर्ता-स्वामी का, (३) धर्माचार्य का।

(१) कोई पुरुष प्रतिदिन प्रातःकाल में माता-पिता के शरीर पर शत सहस्र पाक तेल मलकर सुगन्धित जल से स्नान कराता है, सर्वालंकार से विभूषित कर अट्ठारह प्रकार का सरस भोजन कराता है और उन्हें जीवन पर्यन्त अपने कन्धे पर उठाये फिरता है—इतना करने पर भी वह अपने माता-पिता का प्रत्युपकार नहीं कर पाता है।

—यदि उन्हें केवलीप्रज्ञप्त धर्म प्रज्ञापित करता है, प्ररूपित करता है या उन्हें धर्म में स्थिर करता है, तो उनका प्रत्युपकार करने में समर्थ होता है।

२. केइ महच्चे दरिद्दं समुक्कसेज्जा, तए णं से दरिद्दे समुक्किट्ठे समाणे पच्छा पुरं च णं विउलभोगसमितिसमन्नागते यावि विहरेज्जा, तए णं से महच्चे अन्नया कयाइ दरिद्दीहूए समाणे तस्स दरिद्दस्स अंतिए हव्वमागच्छेज्जा, तए णं से दरिद्दे तस्स भट्टिस्स सव्वस्समवि दलयमाणे तेणावि तस्स दुप्पडियारं भवइ ।

अहे णं से तं भट्टिं केवलिपण्णत्ते धम्मे आघवइत्ता—जाव—ठावइत्ता भवति, तेणामेव तस्स भट्टिस्स सुप्पडियारं भवइ ।

३. केइ तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगमवि आयरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म कालमासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववन्ने, तएणं से देवे तं धम्मायरियं दुब्भिक्खातो वा देसातो सुभिक्खं देसं साहरेज्जा, कंताराओ वा णिक्कंतारं करेज्जा, दीहकालिएणं वा रोगातंकेण अभिभूतं समाणं विमोएज्जा, तेणावि तस्स धम्मायरियस्स दुप्पडियारं भवइ ।

अहे णं से तं धम्मायरियं केवलि-पण्णत्ताओ धम्माओ भट्ठं समाणं भुज्जो वि केवलिपण्णत्ते धम्मे आघवइत्ता – जाव—ठावइत्ता भवति, तेणामेव तस्स धम्मायरियस्स सुप्पडियारं भवइ । —ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १४३

(२) कोई धनी पुरुष किसी दीन को व्यापार के हेतु आर्थिक सहयोग दे एवं कुछ समय पश्चात् वह दीन व्यक्ति धनी और अर्थ सहयोगी धनी पुरुष दीन हो जाता है—उस समय धनी बने हुए उस व्यक्ति से यदि वह आर्थिक सहयोग की अपेक्षा करे और उसे (जो अब दीन हो गया है) सर्वस्व भी अर्पण कर दे, तब भी वह उसका प्रत्युपकार नहीं कर सकता है ।

—यदि वह उसे केवलीप्रज्ञप्त धर्म कहे **यावत्**—उसे धर्म में स्थिर करे तो वह उसका प्रत्युपकार करने में समर्थ होता है ।

(३) कोई पुरुष धर्माचार्य से एक वचन सुनकर बोधि लाभ करता है और यथासमय देह त्यागकर वह देवलोक में उत्पन्न होता है, यदि वह दिव्य शक्ति से अपने उस धर्माचार्य को दुर्भिक्षग्रस्त प्रदेश से सुभिक्ष प्रदेश में, पथ विस्मृत होने पर गहन विपिन से बसति में ले जाकर रख दे, अथवा रोग-ग्रस्त को रोग-मुक्त कर दे तथापि वह धर्माचार्य का प्रत्युपकार नहीं कर सकता है ।

—यदि वह कदाचित धर्म विमुख होते हुए अपने धर्माचार्य को धर्म कहे—**यावत्**—धर्म में स्थिर कर दे तो उसका प्रत्युपकार करने में समर्थ होता है ।

धम्मज्जिओ ववहारो—

६७. धम्मज्जियं च ववहारं, बुद्धेहायरियं सया ।
तमायरन्तो ववहारं, गरहं नाभिगच्छई ॥
— उत्त. अ. १, गा. ४२

धर्मार्जित व्यवहार—

६७. जो व्यवहार धर्म से अर्जित हुआ है, जिसका तत्वज्ञ आचार्यों ने सदा आचरण किया है, उस व्यवहार का आचरण करता हुआ मुनि कहीं भी गर्हा को प्राप्त नहीं होता ।

चउ-चउव्विहा धम्मिया अधम्मिया पुरिसा—

६८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
१. रूवं नाममेगे जहइ, नो धम्मं
२. धम्मं नाममेगे जहइ, नो रूवं,
३. एगे रूवं वि जहइ, धम्मं वि जहइ,
४. एगे नो रूवं जहइ, नो धम्मं जहइ ।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
१. धम्मं नाममेगे जहइ, नो गणसंठिइं,
२. गणसंठिइं नाममेगे जहइ, नो धम्मं,
३. एगे गणसंठिइं वि जहइ, धम्मं वि जहइ,
४. एगे नो गणसंठिइं जहइ, नो धम्मं जहइ ।

चार-चार प्रकार के धार्मिक और अधार्मिक पुरुष—

६८. चार जाति के पुरुष कहे गये हैं । जैसे —

(१) कोई रूप (साधुवेष) को छोड़ देता है, पर धर्म नहीं छोड़ता है,

(२) कोई धर्म को छोड़ देता है, पर रूप को नहीं छोड़ता है,

(३) कोई रूप भी छोड़ देता है और धर्म को भी छोड़ देता है,

(४) कोई न रूप को ही छोड़ता है और न धर्म को ही छोड़ता है ।

(पुनः) चार जाति के पुरुष कहे गये हैं । जैसे —

(१) कोई धर्म को छोड़ देता है, पर गण की संस्थिति (मर्यादा) नहीं छोड़ता ।

(२) कोई गण की मर्यादा को छोड़ देता है, पर धर्म को नहीं छोड़ता है ।

(३) कोई गण की मर्यादा भी छोड़ देता है, और धर्म भी छोड़ देता है ।

(४) कोई न गण की मर्यादा ही छोड़ता है और न धर्म ही छोड़ता है ।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
१. पियधम्मे नाममेगे, नो दढधम्मे,
२. दढधम्मे नाममेगे, नो पियधम्मे,
३. एगे पियधम्मे वि, दढधम्मे वि,
४. एगे नो पियधम्मे, नो दढधम्मे।[1]
—ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१९

(पुनः) चार जाति के पुरुष कहे गये हैं, जैसे —
(१) कोई प्रियधर्मा है, पर दृढ़धर्मा नहीं है।
(२) कोई दृढ़धर्मा है, पर प्रियधर्मा नहीं है।
(३) कोई प्रियधर्मा भी है और दृढ़धर्मा भी है।
(४) कोई न प्रियधर्मा ही है और न दृढ़धर्मा ही है।

धम्मनिंदा पायच्छित्तं—

६९. जे भिक्खू धम्मस्स अवण्णं वयइ वयंतं वा साइज्जइ। तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ११, सु. ९

धर्मनिन्दाकरण प्रायश्चित्त—

६९. जो भिक्षु धर्म की निंदा करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। वह भिक्षु गुरु चातुर्मासिक परिहार प्रायश्चित्त स्थान का पात्र होता है।

अधम्मपसंसा पायच्छित्तं—

जे भिक्खू अधम्मस्स वण्णं वयइ वयंतं वा साइज्जइ। तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ११, सु. १०

अधर्मप्रशंसाकरण प्रायश्चित—

जो भिक्षु अधर्म की प्रशंसा करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है। वह भिक्षु गुरु चातुर्मासिक परिहार प्रायश्चित्त स्थान का पात्र होता है।

---

१ ववं० उ० १०, सु० ११-१३

आयार-पण्णत्ति

आचार-प्रज्ञप्ति

आयारधम्मप्पणिही—

७०. आयारप्पणिहिं लद्धुं, जहा कायव्व भिक्खुणा।
तं भे उदाहरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे[1]॥

—दस. अ. ८, गा. १

आचार धर्म प्रणिधी—

७०. आचार-प्रणिधी को पाकर भिक्षु को जिस प्रकार (जो) करना चाहिए वह मैं तुम्हें कहूँगा। अनुक्रमपूर्वक मुझसे सुनो।

आयारप्पयारा—

७१. पंचविहे आयारे पण्णत्ते, तं जहा—
(१) णाणायारे, (२) दंसणायारे, (३) चरित्तायारे, (४) तवायारे, (५) वीरियायारे।

—ठाणं. अ. ५, उ. २, सु. ४३३

आचार के प्रकार—

७१. आचार पांच प्रकार का कहा गया है। जैसे—
(१) ज्ञानाचार, (२) दर्शनाचार, (३) चारित्राचार, (४) तपाचार, (५) वीर्याचार।

पंचमणुत्तरा—

७२. केवलिस्स णं पंच अणुत्तरा पण्णत्ता, तं जहा—

(१) अणुत्तरे णाणे, (२) अणुत्तरे दंसणे (३) अणुत्तरे चरित्ते, (४) अणुत्तरे तवे, (५) अणुत्तरे वीरिए।

—ठाणं ५, उ. १, सु. ४१०

पांच उत्कृष्ट—

७२. केवली के पांच स्थान अनुत्तर (सर्वोत्तम-अनुपम) कहे गये हैं, जैसे—

(१) अनुत्तर ज्ञान, (२) अनुत्तर दर्शन, (३) अनुत्तर चारित्र, (४) अनुत्तर तप, (५) अनुत्तर वीर्य।

चउविहं मोक्खमग्गं—

७३. मोक्खमग्गगइं तच्चं, सुणेह जिणभासियं।
चउकारणसंजुत्तं, नाणदंसणलक्खणं॥

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एस मग्गो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं॥

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एयं मग्गमणुप्पत्ता, जीवा गच्छन्ति सोग्गइं॥

—उत्त. अ. २८, गा. १-३

नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई॥

—उत्त. अ. २८, गा. ३५

चार प्रकार का मोक्ष मार्ग—

७३. चार कारणों से संयुक्त, ज्ञान-दर्शन, लक्षण वाली जिन-भाषित मोक्ष-मार्ग की गति को सुनो।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप—यह मोक्ष-मार्ग है, ऐसा वरदर्शी (श्रेष्ठ द्रष्टा) अर्हतों ने प्ररूपित किया।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप—इस मार्ग को प्राप्त करने वाले जीव सुगति में जाते हैं।

जीव ज्ञान से पदार्थों को जानता है, दर्शन से श्रद्धा करता है, चारित्र से निग्रह करता है और तप से शुद्ध होता है।

आराहणापयारा—

७४. तिविहा आराहणा पन्नत्ता तं जहा—
णाणाराहणा, दंसणाराहणा, चरित्ताराहणा।
णाणाराहणा तिविहा पन्नत्ता, तं जहा—

आराधना के प्रकार—

७४. आराधना तीन प्रकार की कही गई है, यथा—
ज्ञान आराधना, दर्शन आराधना और चारित्र आराधना।
ज्ञान आराधना तीन प्रकार की कही गई है—

१ दुविहे आयारे पन्नत्ते, तं जहा—णाणायारे, चेव नोणाणायारे चेव।
णोणाणायारे दुविहे पन्नत्ते, तं जहा—दंसणायारे चेव नोदंसणायारे चेव।
नोदंसणायारे दुविहे पन्नत्ते, तं जहा—चरित्तायारे चेव नोचरित्तायारे चेव।
णो चरित्तायारे दुविहे पन्नत्ते, तं जहा—तवायारे चेव वीरियायारे चेव।

—ठाणं. अ. २, उ. ३, सु. ७६

उक्कस्सा, मज्झिमा, जहन्ना ।

एवं दंसणाराहणा वि,

चारित्ताराहणा वि ।

—ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. १९८

उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य ।

दर्शन आराधना तीन प्रकार की कही गई है—

उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य ।

चारित्र आराधना तीन प्रकार की कही गई है—

उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य ।

आराहणाफलपरूवणा—

७५. प०—उक्कोसियं णं भंते ! णाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झति—जाव—अंतं करेति ?

उ०—गोयमा ! अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति—जाव—अंतं करेति । अत्थेगतिए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झति—जाव—अंतं करेति ।

अत्थेगतिए कप्पोवएसु वा कप्पातीएसु वा उववज्जति ।

प०—उक्कोसियं णं भंते ! दंसणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झति—जाव—अंतं करेति ?

उ०—एवं चेव ।

प०—उक्कोसियं णं भंते ! चरित्ताराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झति—जाव—अंतं करेति ?

उ०—एवं चेव ।

णवरं अत्थेगतिए कप्पातीएसु उववज्जति ।

प०—मज्झिमियं णं भंते ! णाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झति—जाव—अंतं करेति ?

उ०—गोयमा ! अत्थेगतिए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झइ—जाव—अंतं करेति, तच्चं पुण भवग्गहणं नाइक्कमइ ।

प०—मज्झिमियं णं भंते ! दंसणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झति—जाव—अंतं करेति ?

उ०—एवं चेव ।

आराधना के फल की प्ररूपणा—

७५. प्र०—भगवन् ! ज्ञान की उत्कृष्ट आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है,—यावत्—सभी दुःखों का अन्त करता है ?

उ०—गौतम ! कितने ही जीव उसी भव में सिद्ध हो जाते हैं,—यावत्—सभी दुःखों का अन्त कर देते हैं; कितने ही जीव दो भव ग्रहण करके सिद्ध होते हैं—यावत्—सभी दुःखों का अन्त करते हैं,

कितने ही जीव कल्पोपपन्न देवलोकों में अथवा कल्पातीत देवलोकों में उत्पन्न होते हैं ।

प्र०—भगवन् ! दर्शन की उत्कृष्ट आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है,—यावत्—सभी दुःखों का अन्त करता है ?

उ०—गौतम ! **जिस प्रकार उत्कृष्ट ज्ञानाराधना के फल के विषय में कहा है, उसी प्रकार उत्कृष्ट दर्शनाराधना के (फल के) विषय में समझना चाहिए ।**

प्र०—भगवन् ! चारित्र की उत्कृष्ट आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है,—यावत्—सभी दुःखों का अन्त करता है ?

उ०—गौतम ! **उत्कृष्ट ज्ञानाराधना के (फल के) विषय में जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार उत्कृष्ट चारित्राराधना के (फल के) विषय में कहना चाहिए । विशेष यह है कि कितने ही जीव (इसके फलस्वरूप) कल्पातीत देवलोकों में उत्पन्न होते हैं ।**

प्र०—भगवन् ! ज्ञान की मध्यम-आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है,—यावत्—सब दुःखों का अन्त करता है ?

उ०—गौतम ! कितने ही जीव दो भव ग्रहण करके सिद्ध होते है, यावत् सभी दुःखों का अन्त करते हैं, वे तीसरे भव का अतिक्रमण नहीं करते ।

प्र०—भगवन् ! दर्शन की मध्यम आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सब दुःखों का अन्त करता है ?

उ०—गौतम ! **जिस प्रकार ज्ञान की मध्यम आराधना के (फल के) विषय में कहा, उसी प्रकार दर्शन की मध्यम आराधना के (फल के) विषय में कहना चाहिए ।**

एवं मज्झिमियं चरित्ताराहणं पि।

इसी (पूर्वोक्त) प्रकार से चारित्र की मध्यम आराधना के (फल के) विषय में कहना चाहिए।

प०—जहण्णियं णं भंते ! नाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झति—जाव—अंतं करेति ?

प्र०—भगवन् ! ज्ञान की जघन्य आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है,—यावत्—सब दुःखों का अन्त करता है ?

उ०—गोयमा ! अत्थेगतिए तच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झइ—जाव—अंतं करेइ, सत्तट्ठभवग्गहणाइं पुण नाइक्कमइ।

उ०—गौतम ! कितने ही जीव तीसरा भव ग्रहण करके सिद्ध होते हैं,—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करते हैं; परन्तु सात-आठ भव का अतिक्रमण नहीं करते।

एवं दंसणाराहणं पि।

इसी प्रकार जघन्य दर्शनाराधना के (फल के) विषय में समझना चाहिए।

एवं चरित्ताराहणं पि।

—वि. श. ८, उ. १०, सु. १०-१८

इसी प्रकार जघन्य चारित्राराधना के (फल के) विषय में भी कहना चाहिए।

तिविहा बोही—

७५. तिविहा बोधी पण्णत्ता, तं जहा—
णाणबोधी, दंसणबोधी, चरित्तबोधी[1]।

—ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६४

तीन प्रकार की बोधि—

७५. बोधि तीन प्रकार की कही गई है—
(१) ज्ञानबोधि, (२) दर्शनबोधि, (३) चारित्रबोधि।

तिविहा बुद्धा—

तिविहा बुद्धा पण्णत्ता, तं जहा—
णाणबुद्धा, दंसणबुद्धा, चरित्तबुद्धा[2]।

—ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. १६४

तीन प्रकार के बुद्ध—

७६. बुद्ध तीन प्रकार के कहे गये हैं—
(१) ज्ञानबुद्ध, (२) दर्शनबुद्ध, (३) चारित्रबुद्ध।

तिविहे मोहे—

७७. तिविहे मोहे पण्णत्ते, तं जहा—
णाणमोहे, दंसणमोहे[3], चरित्तमोहे।

—ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६४

तीन प्रकार के मोह—

७७. मोह तीन प्रकार का कहा गया है—
(१) ज्ञानमोह, (२) दर्शनमोह, (३) चारित्रमोह।

तिविहा मूढा—

७८. तिविहा मूढा पण्णत्ता, तं जहा—
णाणमूढा, दंसणमूढा, चरित्तमूढा।[4]

—ठा. अ. ३, उ. २, सु. १६४

तीन प्रकार के मूर्ख—

७८. मूढ़ तीन प्रकार का कहा गया है—
(१) ज्ञानमूढ़, (२) दर्शनमूढ़, (३) चारित्रमूढ़।

आयारसमाही—

७९. चउव्विहा खलु आयारसमाही भवइ तं जहा—
१. नो इहलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठेज्जा,
२. नो परलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठेज्जा,
३. नो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठेज्जा,

आचार समाधि—

७९. आचार-समाधि के चार प्रकार हैं, जैसे—
(१) इहलोक के निमित्त आचार का पालन नहीं करना।
(२) परलोक के निमित्त आचार का पालन नहीं करना।
(३) कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लोक के निमित्त आचार का पालन नहीं करना।

---

१. ठाणं. अ. २, उ. ४, सु. ११५
२. ठा. अ. २, उ. ४, सु. ११५
३. ठाणं. अ. २, उ. ४, सु. ११५
४. ठाणं. अ. २, उ. ४, सु. ११५।

४. नन्नत्थ आरहंतेहिं हेऊहिं आयारमहिट्ठेज्जा,
चउत्थं पयं भवइ ।
भवइ य इत्थ सिलोगो—
जिणवयणरए अतितिणे पडिपुण्णाययमाययट्ठिए ।
आयारसमाहिसंवुडे भवइ य दंते भावसंधए ॥

—दस. अ. ९, उ. ४, सु. ४, गा. ५

(४) आर्हत-हेतु के अतिरिक्त अन्य किसी भी उद्देश्य से आचार का पालन नहीं करना—यह चतुर्थ पद है ।

यहाँ (आचार-समाधि के प्रकरण में) एक श्लोक है—

जो जिनवचन में रत होता है, जो प्रलाप नहीं करता, जो सूत्रार्थ से प्रतिपूर्ण होता है, जो अत्यन्त मोक्षार्थी होता है, वह आचार-समाधि के द्वारा संवृत होकर इन्द्रिय और मन का दमन करने वाला तथा मोक्ष को निकट करने वाला होता है ।

कप्पट्ठिई—

कल्पस्थिति (आचार-मर्यादा)—

८०. छव्विहा कप्पट्ठिई पण्णत्ता, तं जहा—

१. सामाइय-संजय-कप्पट्ठिई,
२. छेओवट्ठावणिय-संजय कप्पट्ठिई,
३. निव्विसमाण कप्पट्ठिई,
४. निव्विट्ठकाइय कप्पट्ठिई,
५. जिणकप्पट्ठिई,
६. थेरकप्पट्ठिई ।

—कप्प. उ. ६, सु. २०

८०. कल्पस्थिति (निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों की आचार मर्यादा) छह प्रकार की होती है । यथा—

(१) सामायिकसंयतकल्पस्थिति—सामायिक चारित्र सम्बन्धी मर्यादा ।

(२) छेदोपस्थापनीय संयतकल्पस्थिति—यावज्जीवन की सामायिक स्वीकार कराते समय अथवा व्रत भंग होने पर पुनः पाँच महाव्रतों के आरोपण रूप चारित्र की मर्यादा ।

(३) निर्विश्यमान कल्पस्थिति—परिहारविशुद्धि तप स्वीकार करने वाले की आचार मर्यादा ।

(४) निर्विष्टकायिक कल्पस्थिति—पारिहारिक तप पूरा करने वाले की आचार मर्यादा ।

(५) जिनकल्पस्थिति—गच्छ से बाहर होकर तपस्यापूर्वक जीवन बिताने वाली आचार मर्यादा ।

(६) स्थविरकल्पस्थिति—गच्छ के आचार्य की आचार मर्यादा ।

णाणायारो

चउव्विहा सुयसमाही—

८१. चउव्विहा खलु सुयसमाही भवइ तं जहा—

१. सुयं मे भविस्सइ त्ति अज्झाइयव्वं भवइ

२. एगग्गचित्तो भविस्सामि त्ति अज्झाइयव्वं भवइ

३. अप्पाणं ठावइस्सामि त्ति अज्झाइयव्वं भवइ

४. ठिओ परं ठावइस्सामित्ति अज्झाइयव्वं भवइ। चउत्थं पयं भवइ।

भवइ य इत्थ सिलोगो—

नाणमेगग्गचित्तो य, ठिओ ठावयई परं।
सुयाणि य अहिज्जित्ता, रओ सुयसमाहिए॥

—दस. अ. ९, उ. ४, सु. ७, ८

अट्ठविहो णाणायारो—

८२. काले विणए बहुमाणे, उवहाणे तहा अनिण्हवणे।
वंजण-अत्थ-तदुभए, अट्ठविहो णाणमायारो[1]॥

—आचारांग टीका अ. १, उ. १, गा. ७,

णाणुप्पण्णाणुकूलो वयो—

८३. तओ वया पण्णत्ता, तं जहा—

पढमे वए, मज्झिमे वए, पच्छिमे वए।

तिहिं वएहिं आया केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा,

—जाव—तिहिं वएहिं आया केवलणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—

पढमे वए, मज्झिमे वए, पच्छिमे वए।

णाणुप्पण्णाणुकूलो कालो—

८४. तओ जामा पण्णत्ता, तं जहा—

पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।

ज्ञानाचार

चार प्रकार की श्रुत समाधि—

८१. श्रुत-समाधि के चार प्रकार हैं, जैसे—

(१) "मुझे श्रुत प्राप्त होगा", इसलिए अध्ययन करना चाहिए।

(२) "मैं एकाग्र-चित्त होऊँगा", इसलिए अध्ययन करना चाहिए।

(३) "मैं आत्मा को धर्म में स्थापित करूँगा।", इसलिए अध्ययन करना चाहिए।

(४) "मैं धर्म में स्थित होकर दूसरों को उसमें स्थापित करूँगा", इसलिए अध्ययन करना चाहिए। यह चतुर्थ पद है और यहाँ (श्रुत-समाधि के प्रकरण में) एक श्लोक है—

अध्ययन के द्वारा ज्ञान होता है चित्त की एकाग्रता होती है, धर्म में स्थित होता है और दूसरों को स्थिर करता है तथा अनेक प्रकार के श्रुत का अध्ययन कर श्रुत-समाधि में रत हो जाता है।

आठ प्रकार के ज्ञानाचार—

८२. ज्ञानाचार आठ प्रकार का है—

यथा—(१) कालाचार, (२) विनयाचार, (३) बहुमानाचार, (४) उपधानाचार, (५) अनिह्नवाचार, (६) व्यंजनाचार, (७) अर्थाचार, (८) तदुभयाचार।

ज्ञान की उत्पत्ति के अनुकूल वय—

८३. वय (काल-कृत अवस्था-भेद) तीन कहे गये हैं—

यथा—प्रथम वय, मध्यम वय और अन्तिम वय।

तीनों ही वयों में आत्मा विशुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान को प्राप्त करता है—

—यावत्—तीनों ही वयों में आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को प्राप्त करता है—

यथा—प्रथम वय में, मध्यम वय में और अन्तिम वय में।

ज्ञान की उत्पत्ति के अनुकूल काल—

८४. तीन (याम) प्रहर कहे गये हैं—

यथा—प्रथम याम, मध्यम याम, अन्तिम याम।

---

१. आगमों में ज्ञानाचार विषयक यत्र तत्र जितने सूत्र हैं उनका वर्गीकरण करने के लिए ज्ञानाचार के इन आठ भेदों का कथन यहाँ निर्देश किया है। आगे क्रमशः ज्ञानाचार के आठ भेदों का वर्णन है।

तिहिं जामेहिं आया केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा,

—जाव—तिहिं जामेहिं आया केवलणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—

पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे ।

—ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६३

तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान को प्राप्त करता है—

—यावत्—तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध केवलज्ञान को प्राप्त करता है—

यथा—प्रथम याम में, मध्यम याम में और अन्तिम याम में ।

जिणपवयणं सोच्चा आभिणिबोहियणाणस्स जाव केवलनाणस्स उप्पत्ति-अणुप्पत्ति—

जिनप्रवचन सुनकर आभिनिबोधिक ज्ञान—यावत्—केवलज्ञान की उत्पत्ति और अनुत्पत्ति –

८५. प०—सोच्चा णं भंते ! केवलिस्स वा —जाव—तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलं आभिणिबोहियनाणं—जाव—केवलनाणं उप्पाडेज्जा ?

उ०—गोयमा ! सोच्चा णं केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खिय-उवासियाए वा अत्थेगत्तिए केवलं आभिणिबोहिय-नाणं—जाव—केवलनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगत्तिए केवलं आभिणिबोहियनाणं—जाव—केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा ।

प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—

सोच्चा णं केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खियउवासि-याए वा अत्थेगत्तिए केवलं आभिणिबोहियनाणं—जाव—केवलनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगत्तिए केवलं आभिणिबोहियनाणं—जाव—केवलनाणं नो उप्पा-डेज्जा ?

उ०—गोयमा ! जस्स णं आभिणिबोहियनाणावरणिज्जाणं कम्माणं—जाव—केवलनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ से णं सोच्चा केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं आभिणि-बोहियनाणं—जाव—केवलनाणं उप्पाडेज्जा ।

जस्स णं आभिणिबोहियनाणावरणिज्जाणं कम्माणं—जाव—केवलनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ से णं सोच्चा केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं आभिणिबोहियनाणं—जाव—केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ -

जस्स णं आभिणिबोहियनाणावरणिज्जाणं कम्माणं—जाव—केवलनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ से णं सोच्चा केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं आभिणिबोहियनाणं—जाव—केवलनाणं उप्पाडेज्जा ।

८५. प्र० भन्ते ! केवली से —यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर कोई जीव आभिनिबोधिकज्ञान—यावत्—केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है ?

उ०—गौतम ! केवली से —यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर कई जीव आभिनिबोधिकज्ञान —यावत्—केवलज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और कई जीव आभिनिबोधिकज्ञान —यावत्—केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं ।

प्र०—भन्ते ! किस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है—

केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर कई जीव आभिनिबोधिक ज्ञान—यावत्—केवलज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और कई जीव आभिनिबोधिक ज्ञान—यावत्—केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं ?

उ०—गौतम ! जिसके आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्मों का—यावत्—केवलज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ है वह केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर कई जीव आभिनिबोधिकज्ञान—यावत्—केवलज्ञान प्राप्त कर सकते हैं ।

जिसके आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्मों का—यावत्—केवलज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं हुआ है वह केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर कई जीव आभिनिबोधिकज्ञान—यावत्—केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं ।

गौतम ! इस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है—

जिसके आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्मों का—यावत्—केवलज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ है वह केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर कई जीव आभिनिबोधिक—यावत्—केवलज्ञान प्राप्त कर सकते हैं ।

जस्स णं आभिणिबोहियनाणावरणिज्जाणं कम्माणं —जाव—केवल-नाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ से णं सोच्चा केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं आभिणिबोहियनाणं -जाव-केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा।

—वि. स. ९, उ. ३१, सु. १३

जिसके आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्मों का—यावत्—केवलज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं हुआ है वह केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर कई जीव आभिनिबोधिकज्ञान—यावत्—केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता हैं।

जिणपवयणं असोच्चा आभिणिबोहियणाणस्स जाव केवलनाणस्स उप्पत्ति-अणुप्पत्ति—

जिनप्रवचन सुने बिना आभिनिबोधिक ज्ञान यावत् केवलज्ञान की उत्पत्ति और अनुत्पत्ति—

८६. प०—असोच्चा णं भंते ! केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं आभिणिबोहियनाणं-जाव-केवलनाणं उप्पाडेज्जा ?

उ०—गोयमा ! असोच्चा णं केवलिस्स वा—जाव—तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगत्तिए केवलं आभिणिबोहियनाणं-जाव-केवलनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगत्तिए केवलं आभिणिबोहियनाणं-जाव-केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा।

प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—

असोच्चा णं केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगत्तिए केवलं आभिणिबोहियनाणं-जाव-केवलनाणं उप्पाडेज्जा, अत्थेगत्तिए केवलं आभिणिबोहियनाणं-जाव-केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा ?

उ०—गोयमा ! जस्स णं आभिणिबोहिय नाणावरणिज्जाणं कम्माणं-जाव-केवलनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं आभिणिबोहियनाणं -जाव-केवलनाणं उप्पाडेज्जा।

जस्स णं आभिणिबोहियनाणावरणिज्जाणं कम्माणं -जाव-केवलनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं आभिणिबोहियनाणं-जाव-केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—

जस्स णं आभिणिबोहियनाणावरणिज्जाणं कम्माणं -जाव-केवलनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं आभिणिबोहियनाणं-जाव-केवलनाणं उप्पाडेज्जा।

जस्स णं आभिणिबोहियनाणावरणिज्जाणं कम्माणं -जाव-केवलनाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो

८६. प्र०—भन्ते ! केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुने बिना कोई जीव आभिनिबोधिकज्ञान—यावत्—केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है ?

उ०—गौतम ! केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुने बिना कई जीव आभिनिबोधिकज्ञान—यावत्—केवलज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और कई जीव आभिनिबोधिकज्ञान—यावत्—केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

प्र०—भन्ते ! किस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है—

केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुने बिना कई जीव आभिनिबोधिकज्ञान—यावत्—केवलज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और कई जीव आभिनिबोधिकज्ञान—यावत्—केवलज्ञान प्राप्त नही कर सकते हैं ?

उ०—गौतम ! जिसके आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्मों का—यावत्—केवलज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ है वह केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुने बिना कई जीव आभिनिबोधिकज्ञान—यावत्—केवलज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

जिसके आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्मों का—यावत्—केवलज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं हुआ है वह केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुने बिना कई जीव आभिनिबोधिकज्ञान—यावत्—केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

गौतम ! इस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है।

जिसके आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्मों का—यावत्—केवलज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ है वह केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुने बिना कई जीव आभिनिबोधिकज्ञान—यावत्—केवलज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

जिसके आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय कर्मों का—यावत्—केवलज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं हुआ है वह केवली

कइ भवइ से णं असोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलं आभिणिबोहियनाणं-जाव-केवलनाणं नो उप्पाडेज्जा।

—वि. स. ९, उ. ३१, सु. ३२

से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुने बिना कई जीव आभिनिबोधिकज्ञान—यावत्—केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

विभंगणाणोप्पत्ति—

विभंगज्ञान की उत्पत्ति—

८७. तस्स णं छट्ठंछट्ठेणं अनिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स पगतिभद्दयाए पगइउवसंतयाए पगतिपयणुकोह-माण-माया-लोभयाए मिउमद्दवसंपन्नयाए अल्लीणताए भद्दताए विणीतताए अण्णया कयाइ सुभेणं अज्झवसाणेणं, सुभेणं परिणामेणं, लेस्साहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापोहमग्गण-गवेसणं करेमाणस्स विब्भंगे नामं अन्नाणे समुप्पज्जइ,

८७. निरन्तर छठ-छठ (बेले-बेले) का तपःकर्म करते हुए सूर्य के सम्मुख बाहें ऊँची करके आतापनाभूमि में आतापना लेते हुए उस (बिना धर्म श्रवण किये केवलज्ञान तक प्राप्त करने वाले) जीव की प्रकृति भद्रता से, प्रकृति की उपशान्तता से स्वाभाविक रूप से ही क्रोध, मान, माया और लोभ की अत्यन्त मन्दता होने से अत्यन्त मृदुत्वसम्पन्नता से, कामभोगों में अनासक्ति से, भद्रता और विनीतता से तथा किसी समय शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम, विशुद्ध लेश्या एवं तदावरणीय (विभंगज्ञानावरणीय) कर्मों के क्षयोपशम से ईहा, अपोह, मार्गणा और गवेषणा करते हुए (विभंग) नामक अज्ञान उत्पन्न होता है।

से णं तेणं विब्भंगनाणेणं समुप्पन्नेणं जहन्नेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं जाणइ पासइ,

फिर वह उस उत्पन्न हुए विभंगज्ञान द्वारा जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट असंख्यात हजार योजन तक जानता और देखता है।

से णं तेणं विब्भंगनाणेणं समुप्पन्नेणं जीवे वि जाणइ, अजीवे वि जाणइ,

उस उत्पन्न हुए विभंग ज्ञान से वह जीवों को भी जानता है और अजीवों को भी जानता है।

पासंडत्थे सारंभे सपरिग्गहे संकिलिस्समाणे वि जाणइ, विसुज्झमाणे वि जाणइ,

वह पाषण्डस्थ, सारम्भी (आरम्भयुक्त), सपरिग्रह (परिग्रही) और संक्लेश पाते हुए जीवों को भी जानता है और विशुद्ध होते हुए जीवों को भी जानता है।

से णं पुव्वामेव सम्मत्तं पडिवज्जइ, सम्मत्तं पडिवज्जित्ता समणधम्मं रोएति, समणधम्मं रोएत्ता चरित्तं पडिवज्जइ, चरित्तं पडिवज्जित्ता लिंगं पडिवज्जइ,

(तत्पश्चात्) वह (विभंगज्ञानी) सर्वप्रथम सम्यक्त्व प्राप्त करता है, सम्यक्त्व प्राप्त करके श्रमणधर्म पर रुचि करता है, श्रमणधर्म पर रुचि करके चारित्र अंगीकार करता है। चारित्र अंगीकार करके लिंग (साधु वेश) स्वीकार करता है।

तस्स णं तेहिं मिच्छत्तपज्जवेहिं परिहायमाणेहिं परिहायमाणेहिं, सम्मद्दंसणपज्जवेहि परिवड्ढमाणेहिं परिवड्ढमाणेहिं से विब्भंगे अन्नाणे सम्मत्तपरिग्गहिए खिप्पामेव ओही परावत्तइ।

—वि. स. ९, उ. ३१, सु. १४

तब उस (भूतपूर्व विभंगज्ञानी) के मिथ्यात्व के पर्याय क्रमशः क्षीण होते-होते और सम्यग्-दर्शन के पर्याय क्रमशः बढ़ते-बढ़ते वह "विभंग" नामक अज्ञान, सम्यक्त्व-युक्त होता है और शीघ्र ही अवधि (ज्ञान) के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

णाणस्स पहाणत्तं—

ज्ञान की प्रधानता—

८८. नाणेण विणा न हुन्ति चरणगुणा।—उत्त. अ. २८, गा. ३०

पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठए सव्वसंजए।
अन्नाणी किं काही, किं वा नाहिइ सेय-पावगं॥[1]

८८. ज्ञान के बिना चारित्र गुण की प्राप्ति नहीं होती है।

पहले ज्ञान फिर दया—इस प्रकार सब मुनि स्थित होते हैं। अज्ञानी क्या करेगा? वह क्या जानेगा—क्या श्रेय है और क्या पाप?

---

१ अज्ञानी को हेय, ज्ञेय, उपादेय का विवेक नहीं होता है, यह विवेक ज्ञान से ही सम्भव है अतः ज्ञानाचार को सर्वप्रथम स्थान देना संगत है।

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं ।
उभयं पि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे ॥
—दस. अ. ४, गा. ३३-३४

जीव सुनकर कल्याण को जानता है और सुनकर ही पाप को जानता है। कल्याण और पाप सुनकर ही जाने जाते हैं। वह उनमें जो श्रेय है उसी का आचरण करे।

नाणेण संजम परिण्णा—

ज्ञान से संयम का परिज्ञान—

८९. जो जीवे वि न याणाइ, अजीवे वि न याणई ।
जीवाजीवे अयाणंतो, कहं सो नाहिइ संजमं ॥

८९. जो जीवों को भी नहीं जानता, अजीवों को भी नहीं जानता वह जीव और अजीव को न जानने वाला संयम को कैसे जानेगा ?

जो जीवे वि वियाणाइ, अजीवे वि वियाणई ।
जीवाजीवे वियाणंतो, सो हु नाहिइ संजमं ॥
—दस. अ. ४, गा. १२-१३

जो जीवों को भी जानता है, अजीवों को भी जानता है वही, जीव और अजीव दोनों को जानने वाला ही, संयम को जान सकेगा।

नाणेण न संसार भमणं—

ज्ञान से संसार भ्रमण नहीं—

९०. प०—नाणसंपन्नयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—नाणसंपन्नयाए णं जीवे सव्वभावाभिगमं जणयइ । नाणसंपन्ने णं जीवे चाउरन्ते संसारकन्तारे न विणस्सइ ।

जहा सूई ससुत्ता, पडिया वि न विणस्सइ ।
तहा जीवे ससुत्ते, संसारे न विणस्सइ ॥

नाणविणयतवचरित्तजोगे संपाउणइ ससमय-परसमय संघायणिज्जे भवइ ।
—उत्त. अ. २९, सु. ६१

९०. प्र०—भन्ते ! ज्ञानसम्पन्नता (श्रुतज्ञानसम्पन्नता) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—ज्ञान-सम्पन्नता से वह सब पदार्थों को जान लेता है। ज्ञान-सम्पन्न जीव चार गतिरूप चार अन्तों वाली संसार-अटवी में विनष्ट नहीं होता।

जिस प्रकार ससूत्र (धागे में पिरोई हुई) सुई गिरने पर भी गुम नहीं होती, उसी प्रकार ससूत्र (श्रुत सहित) जीव संसार में रहने पर भी विनष्ट नहीं होता।

(ज्ञान-सम्पन्न) अवधि आदि विशिष्ट ज्ञान, विनय, तप और चारित्र के योगों को प्राप्त करता है तथा स्वसमय और परसमय की व्याख्या या तुलना के लिए प्रामाणिक पुरुष माना जाता है।

सुय-आराहणा फलं—

श्रुत-आराधना का फल—

९१. प०—सुयस्स आराहणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—सुयस्स आराहणयाए अन्नाणं खवेइ न य संकिलिस्सइ ॥
—उत्त. अ. २९, सु. २६

९१. प्र०—भन्ते ! श्रुत की आराधना से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—श्रुत की आराधना से अज्ञान का क्षय करता है और राग-द्वेष आदि से उत्पन्न होने वाले मानसिक संक्लेशों से बच जाता है।

नाणेण निव्वाणपत्ति—

ज्ञान से निर्वाण प्राप्ति—

९२. जया जीवे अजीवे य, दो वि एए वियाणई ।
तया गइं बहुविहं सव्वजीवाण जाणई ॥

जया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणई ।
तया पुण्णं च पावं च, बंधं मोक्खं च जाणई ॥

जया पुण्णं च पावं च, बंधं मोक्खं च जाणई ।
तया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ॥

९२. जब मनुष्य जीव और अजीव इन दोनों को जान लेता है तब वह सब जीवों की बहुविध गतियों को भी जान लेता है।

जब मनुष्य सब जीवों की बहुविध गतियों को जान लेता है तब वह पुण्य, पाप, बन्ध और मोक्ष को भी जान लेता है।

जब मनुष्य पुण्य, पाप, बन्ध और मोक्ष को जान लेता है तब जो भी देवों और मनुष्यों के भोग हैं उनसे विरक्त हो जाता है।

जया निव्विदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे।
तया चयइ संजोगं, सब्भिंतरबाहिरं[1] ॥

जब मनुष्य दैविक और मानुषिक भोगों से विरक्त हो जाता है तब वह आभ्यन्तर और बाह्य संयोगों को त्याग देता है।

जया चयइ संजोगं, सब्भिंतरबाहिरं।
तया मुण्डे[2] भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं ॥

जब मनुष्य आभ्यन्तर और बाह्य संयोगों को त्याग देता है तब वह मुंड होकर अनगार-वृत्ति को स्वीकार करता है।

जया मुण्डे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं।
तया संवरमुक्किट्ठं[3], धम्मं फासे अणुत्तरं ॥

जब मनुष्य मुंड होकर अनगार-वृत्ति को स्वीकार करता है तब वह उत्कृष्ट संवरात्मक अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है।

जया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं।
तया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं[4] ॥

जब मनुष्य उत्कृष्ट संवरात्मक अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है तब वह अबोधि-रूप पाप द्वारा संचित कर्म-रज को प्रकम्पित कर देता है।

जया धुणइ कम्मरयं[5], अबोहिकलुसं कडं।
तया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छई[6] ॥

जब मनुष्य अबोधि-रूप पाप द्वारा संचित कर्म-रज को प्रकम्पित कर देता है तब वह सर्वत्र-गामी ज्ञान और दर्शन—केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है।

जया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छई।
तया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली[7] ॥

जब मनुष्य सर्वत्र-गामी ज्ञान और दर्शन—केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है तब वह जिन और केवली होकर लोक-अलोक को जान लेता है।

---

१ आभ्यन्तर संयोग—क्रोध, मान, माया, लोभ आदि। बाह्य संयोग—क्षेत्र, वास्तु, हिरण्यक, सुवर्ण, स्वजन, परिजन आदि।

२ (क) मुण्ड दो प्रकार के होते हैं—द्रव्यमुण्ड और भावमुण्ड, केश लुञ्चन करना द्रव्यमुण्ड होना है। इन्द्रियों के विषयों पर विजय प्राप्त करना भावमुण्ड होना है। द्रव्यमुण्ड को कायिकमुण्ड और भावमुण्ड को मानसिक मुण्ड कहते हैं।

(ख) स्था. अ. १०, सु. ७४६ में दस प्रकार के मुण्ड कहे हैं। यथा—
दस मुण्डा पण्णत्ता, तं जहा—सोतिंदियमुण्डे (चक्खिदियमुण्डे, घाणिंदियमुण्डे, जिब्भिंदियमुण्डे, फासिंदियमुण्डे, कोहमुण्डे, माणमुण्डे-मायामुण्डे, लोभमुण्डे, सिरमुण्डे।)
मुंड दस प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—
१. श्रोत्रेन्द्रियमुण्ड—श्रोत्रेन्द्रिय के विषय का मुण्डन (त्याग) करने वाला।
२. चक्षुरिन्द्रियमुण्ड—चक्षुरिन्द्रिय के विषय का मुण्डन करने वाला।
३. घ्राणेन्द्रियमुण्ड—घ्राणेन्द्रिय के विषय का मुण्डन करने वाला।
४. रसनेन्द्रियमुण्ड—रसनेन्द्रिय के विषय का मुण्डन करने वाला।
५. स्पर्शनेन्द्रियमुण्ड—स्पर्शनेन्द्रिय के विषय का मुण्डन करने वाला।
६. क्रोधमुण्ड—क्रोध कषाय का मुण्डन करने वाला।
७. मानमुण्ड—मान कषाय का मुण्डन करने वाला।
८. मायामुण्ड—माया कषाय का मुण्डन करने वाला।
९. लोभमुण्ड—लोभ कषाय का मुण्डन करने वाला
१०. शिरोमुण्ड—शिर के केशों का मुण्डन करने वाला।

३ देशविरत का संवर देशसंवर है अत: जघन्य संवर है। सर्वविरति का संवर सर्वसंवर है इसलिए उत्कृष्ट संवर है।

४ बोध रहित दशा अर्थात् अज्ञान दशा या मिथ्यात्वदशा को अबोधि कहते हैं। जब तक व्यक्ति बोधरहित रहता है तब तक ही पापकर्म करता है।

५ आत्मा का आवरण कर्मरज है, उसके धुन देने से केवलज्ञान और केवलदर्शनरूप आत्मस्वरूप प्रकट हो जाता है।

६ केवलज्ञान से लोकव्यापी समस्त पदार्थों को तथा अलोक को केवलज्ञानी जान लेता है।

७ स्थानांग सूत्र, स्था. ३, उ. ४, सूत्र २२० में तीन प्रकार के जिन और तीन प्रकार के केवली कहे हैं, किन्तु यहाँ केवलज्ञानी केवली और केवलज्ञानी जिन कहे गये हैं।

जया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली।
तया जोगे निरुम्भित्ता[1], सेलेसिं पडिवज्जई॥

जब मनुष्य जिन और केवली होकर लोक-अलोक को जान लेता है तब वह योगों का निरोध कर शैलेशी अवस्था को प्राप्त होता है।

जया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जई[2]।
तया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ॥

जब मनुष्य योग का निरोध कर शैलेशी अवस्था को प्राप्त होता है तब वह कर्मों का क्षय कर रज-मुक्त बन सिद्धि को प्राप्त करता है।

जया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ।
तया लोगमत्थयत्थो[3], सिद्धो हवइ सासओ॥

—दस. अ. ४, गा. १७-४४

जब मनुष्य कर्मों का क्षय कर रजमुक्त बन सिद्धि को प्राप्त होता है तब वह लोक के मस्तक पर स्थित शाश्वत सिद्ध होता है।

दोहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अणाईयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं वीतिवएज्जा,

इन दो स्थानों से सम्पन्न अनगार (साधु) अनादि अनन्त दीर्घ मार्ग वाले एवं चतुर्गति रूप विभाग वाले संसार रूपी गहन वन को पार करता है, अर्थात् मुक्त होता है।

तं जहा—विज्जाए चेव चरणेण चेव।

—ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ५३

यथा—१. विद्या से (ज्ञान), और चरण (चारित्र) से।

※●※

१ सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति शुक्लध्यान में योगों का निरोध होता है। योग निरोध का क्रम इस प्रकार है—
सर्वप्रथम मनोयोग का निरोध होता है, पश्चात् वचनयोग का निरोध होता है, तत्पश्चात् काययोग का निरोध होता है। इसके लिए देखिए उत्तराध्ययन अ. २९, सू. ७२

२ शैल + ईश = शैलेश, मेरु का नाम है, मेरु के समान अडोल, अकम्प, अवस्था शैलेशी अवस्था है। कम्पन योग-निमित्तक होता है, योगरहित आत्मा में कम्पन नहीं होता है, अतः योगों का निरोध करके शैलेशी अवस्था को प्राप्त होता है। जहाँ तक कम्पन है वहाँ तक आत्मा मुक्त नहीं होता—इसके लिए देखें भगवती. शत. १७, उद्दे. ३

३ कर्मों का क्षय करके रजमुक्त आत्मा लोक के मस्तक पर किस प्रकार स्थित होता है? यह रूपक है—
जह मिउलेवालित्तं, गरुयं तुम्बं अहो वयइ एवं। आसवकयकम्मगुरू, जीवा वच्चंति अहरगइं॥
तं चेव तव्विमुक्कं, जलोवरिं ठाइ जायलहुभावं। जह तह कम्मविमुक्का, लोयग्गपइट्ठिया होंति॥

—ज्ञाताधर्म कथा—श्रुत. १, अ. ६ तुम्बे का रूपक

पढमो काल-णाणायारे | प्रथम काल–ज्ञानाचार

कालपडिलेहणा फलं—

६३. प०—कालपडिलेहणयाए[1] णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—कालपडिलेहणयाए नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ ॥

—उत्त. अ. २९ सु. १७

काल प्रतिलेखना का फल—

६३. प्र०—भन्ते ! काल-प्रतिलेखना (स्वाध्याय आदि के उपयुक्त समय का ज्ञान करने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—काल-प्रतिलेखना से वह ज्ञानावरणीय कर्म को क्षीण करता है।

सज्झायकालस्स पडिलेहणं—

६४. दिवसस्स चउरो भागे, कुज्जा भिक्खू वियक्खणे।
तओ उत्तरगुणे कुज्जा, दिणभागेसु चउसु वि ॥११॥
जं नेइ जया रत्तिं, नक्खत्तं तंमि नह चउब्भागे।
संपत्ते विरमेज्जा, सज्झाय पओसकालम्मि ॥१९॥
तम्मेव य नक्खत्ते, गयण चउब्भागसावसेसंमि।
वेरत्तियं पि कालं, पडिलेहित्ता मुणी कुज्जा ॥२०॥

—उत्त अ. २६

स्वाध्याय काल-प्रतिलेखना—

६४. विचक्षण भिक्षु दिन के चार भाग करे। उन चारों भागों में उत्तर-गुणों (स्वाध्याय आदि) की आराधना करे।

जो नक्षत्र जिस रात्रि की पूर्ति करता हो, वह (नक्षत्र) जब आकाश के चतुर्थ भाग में आए (प्रथम प्रहर समाप्त हो) तब प्रदोष-काल (रात्रि के प्रारम्भ) में प्रारब्ध स्वाध्याय से विरत हो जाए।

वही नक्षत्र जब आकाश के चतुर्थ भाग में शेष रहे तब वैरात्रिक काल (रात का चतुर्थ प्रहर) आया हुआ जानकर फिर स्वाध्याय में प्रवृत्त हो जाय।

सज्झाय-झाणाइ काल विवेगो—

६५. पढमं पोरिसिं सज्झायं, बीयं झाणं झियायई।
तइयाए भिक्खायरियं, पुणो चउत्थीए सज्झायं ॥

—उत्त. अ. २६, गा. १२

पोरिसीए चउत्थीए, कालं तु पडिलेहिया।
सज्झायं तु तओ कुज्जा, अबोहेन्तो असंजए ॥

—उत्त. अ. २६, गा. ४४

स्वाध्याय ध्यानादि का काल विवेक—

६५. प्रथम प्रहर में स्वाध्याय और दूसरे में ध्यान करे। तीसरे में भिक्षाचरी और चौथे में पुनः स्वाध्याय करे।

चौथे प्रहर में काल की प्रतिलेखना कर असंयत व्यक्तियों को न जगाता हुआ स्वाध्याय करे।

णिग्गंथाणं विइगिट्ठकाले सज्झायकाल निसेहो—

६६. नो कप्पइ निग्गंथाणं विइगिट्ठे काले[2] सज्झायं उद्दिसित्तए वा करेत्तए वा।

—वव. उ. ७, सु. १४

व्यतिकृष्ट काल में निर्ग्रन्थों के लिए स्वाध्याय निषेध—

६६. निर्ग्रन्थों का व्यतिकृष्टकाल (विपरीत काल-कालिक आगम के स्वाध्याय काल में उत्कालिक आगम का स्वाध्याय करना तथा उत्कालिक आगम के स्वाध्यायकाल में कालिक आगम का स्वाध्याय करना) में स्वाध्याय करना नहीं कल्पता है।

---

१ (क) कालप्रतिलेखना—यह काल किस क्रिया के करने का है ? यह निरीक्षण करना काल-प्रतिलेखना है।

(ख) प्रमाद रहित साधक काल-प्रतिलेखना से स्वाध्याय का काल जानकर स्वाध्याय करे तो उसे ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है।

(ग) आवश्यक अ. ४ में काल-प्रतिलेखना सूत्र में काल के अतिक्रम आदि दोषों की शुद्धि का पाठ है।

२ व्यतिकृष्ट काल दो प्रकार का है—१. कालिक व्यतिकृष्ट, २. उत्कालिक व्यतिकृष्ट।

कालिक व्यतिकृष्ट—दिवस और रात्रि के प्रथम तथा चतुर्थ प्रहर को छोड़कर द्वितीय और तृतीय प्रहर में कालिक आगमों का अध्ययन कराना एवं स्वाध्याय करना।

उत्कालिक व्यतिकृष्ट—चार सन्ध्याओं में उत्कालिक आगमों का अध्ययन कराना तथा स्वाध्याय करना।

कालिक और उत्कालिक आगमों की संख्या श्रुत ज्ञान के विभाग में देखें।

निग्गंथीणं विइगिट्ठकाले सज्झायविहाणं—

९७. कप्पइ निग्गंथीणं विइगिट्ठए काले सज्झायं करेत्तए निग्गंथ निस्साए।[1] —वव. उ. ७, सु. १५

निर्ग्रन्थिनी के लिए स्वाध्याय विधान—

९७. निर्ग्रन्थ की निश्रा में निर्ग्रन्थियों को व्यतिकृष्टकाल में (भी) स्वाध्याय करना कल्पता है।

निग्गंथ-निग्गंथीण सज्झायविहाणं—

९८. कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा सज्झाइए सज्झायं करेत्तए। —वव. उ. ७, सु. १७

कप्पइ णिग्गंथाणं वा णिग्गंथीणं वा चाउक्ककालं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—

पुव्वण्हे,
अवरण्हे,
पओसे,
पच्चूसे। —ठाणं ४, उ. २, सु. २८५

निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थिनी हेतु स्वाध्याय काल विधान—

९८. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को स्वाध्यायकाल में (ही) स्वाध्याय करना कल्पता है।

निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को चार कालों में स्वाध्याय करना कल्पता है, जैसे—

१. पूर्वाह्न में—दिन के प्रथम प्रहर में।
२. अपराह्न में—दिन के अन्तिम प्रहर में।
३. प्रदोष में—रात के प्रथम प्रहर में।
४. प्रत्यूष में—रात के अन्तिम प्रहर में।

निग्गंथ-निग्गंथीणं असज्झायकाल विहाणं—

९९. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा असज्झाइए सज्झायं करेत्तए। —वव. उ. ७, सु. १६

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनी हेतु अस्वाध्याय काल विधान—

९९. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थिनियों को अस्वाध्याय काल में स्वाध्याय करना नहीं कल्पता है।

चउव्विहो असज्झायकालो—

१००. णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा चउहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—

१. पढमाए,
२. पच्छिमाए,
३. मज्झण्हे,
४. अड्ढरत्ते।[2] —ठाणं. ४, उ. २, सु. २८५

चार प्रकार का अस्वाध्याय-काल—

१००. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को चार सन्ध्याओं में स्वाध्याय करना नहीं कल्पता है, जैसे—

१. प्रथम सन्ध्या—सूर्योदय का पूर्वकाल।
२. पश्चिम सन्ध्या—सूर्यास्त के पीछे का काल।
३. मध्याह्न सन्ध्या—दिन के मध्य समय का काल।
४. अर्धरात्र-सन्ध्या—आधी रात का समय।

चउसु महापाडिवएसु सज्झायणिसेहो—

१०१. णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झायं करेत्तए, तं जहा—

१. आसाढपाडिवए,
२. इंदमहपाडिवए,
३. कत्तियपाडिवहे,

चार महाप्रतिपदाओं में स्वाध्याय निषेध—

१०१. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को चार महाप्रतिपदाओं में स्वाध्याय करना नहीं कल्पता है, जैसे—

१. आषाढ़ प्रतिपदा—आषाढ़ी पूर्णिमा के पश्चात् आने वाली सावन की प्रतिपदा।

२. इन्द्रमह-प्रतिपदा—आसौज मास की पूर्णिमा के पश्चात् आने वाली कार्तिक की प्रतिपदा।

३. कार्तिक-प्रतिपदा—कार्तिक पूर्णिमा के पश्चात् आने वाली मगसिर की प्रतिपदा।

---

१ क्षेत्र व्यतिकृष्ट और भाव व्यतिकृष्ट ये दो प्रकार के शिष्य होते हैं, इन्हें आगमों का अध्ययन करना निषिद्ध है।

२ इन चार सन्ध्याकालों में एक-एक मुहूर्त अस्वाध्याय काल रहता है, सन्ध्याकाल से पूर्व एक घड़ी और पश्चात् एक घड़ी इस प्रकार एक मुहूर्त होता है।

४. सुगिम्हगपाडिवए।[1]

—ठाणं. ४, उ. २, सु. २८५

४. सुग्रीष्म-प्रतिपदा—चैत्री पूर्णिमा के पश्चात् आने वाली वैशाखी प्रतिपदा।

---

१ इन चार पूर्णिमाओं में और चार प्रतिपदाओं में स्वाध्याय न करने के दो कारण हैं—

१. स्वाध्याय करने वाले के साथ मिथ्यादृष्टि देव छलना न करें।

२. इन दिनों विकृतिवाला आहार अधिक मिलता है, इसलिए स्वाध्याय में मन नहीं लगता है।

निशीथ उद्दे. १९, सूत्र १२ में चार महाप्रतिपदाओं का कथन इस प्रकार है—चैत्र कृष्णा प्रतिपदा, आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा, भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदा और कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा।

स्थानांग में कथित चार महाप्रतिपदाओं में—आश्विन कृष्णा प्रतिपदा के स्थान में यहाँ भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदा का कथन है। यह अन्तर या तो वाचना भेद के कारण है, या स्थानांग संकलनकर्ता के देश में इन्द्र महोत्सव आश्विन महाप्रतिपदा का होता होगा और निशीथ संकलनकर्ता के देश में इन्द्र महोत्सव भाद्रपद महाप्रतिपदा को समापन्न होता होगा, अतः इन दो भिन्न प्रतिपदाओं का कथन इन दो आगमों में हुआ है।

निशीथ उद्दे. १९, सूत्र ११ में चार महा मह अर्थात् चार महामहोत्सव का कथन है। इन चार महोत्सव में स्वाध्याय करने का प्रायश्चित्त का विधान है। ये चार महा महोत्सव क्रमशः इन पूर्णिमाओं में होते हैं—

इन्द्र महोत्सव—आश्विन पूर्णिमा तथा आश्विन कृष्णा प्रतिपदा।

राजस्थान में—कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा।

स्कन्द महोत्सव—कार्तिक पूर्णिमा तथा कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा।

राजस्थान में—मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा।

नाग महोत्सव—आषाढ़ पूर्णिमा तथा आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा।

राजस्थान में—श्रावण कृष्णा प्रतिपदा।

भूत महोत्सव—चैत्र पूर्णिमा तथा चैत्र कृष्णा प्रतिपदा।

राजस्थान में वैशाख कृष्णा प्रतिपदा।

आश्विन पूर्णिमा के पश्चात् आश्विन कृष्णा प्रतिपदा गुजरात में प्रचलित पंचांग के अनुसार कही गई है।

राजस्थान में प्रचलित पंचांग के अनुसार पूर्णिमा के पश्चात् कृष्णा प्रतिपदा भिन्न मास की आती है। इसलिए ऊपर दोनों प्रतिपदाएँ लिखी हैं।

इस सम्बन्ध में स्थानांग टीकाकार का लिखना इस प्रकार है—

आषाढस्य पौर्णमास्या अनन्तरा प्रतिपदाषाढप्रतिपदमेवमन्यत्रापि। नवरमिन्द्रमहः—अश्वयुक् पौर्णमासी, सुग्रीष्मः—चैत्रपौर्णमासीति। इह च यत्र विषये यतो दिवसान्महामहाः प्रवर्तन्ते यत्र तद्दिवसात् स्वाध्यायो न विधीयते महसमाप्तिदिनं यावत् तच्च पौर्णमास्येव, प्रतिपदस्तुक्षणानुवृत्ति-सम्भवेन वर्ज्यन्त इति। उक्तं च आषाढी इंदमहो, कत्तिय सुगिम्हाए य बोद्धव्वो। एए महामहा खलु, सव्वेसिं जाव पाडिवया।

—आचारांग श्रुत. २, अ. १, उद्दे. २, सु. १२ में तथा भगवती श्रत. ९, उद्दे. ३३ में इन्द्रमह आदि उन्नीस महोत्सवों के नाम हैं, साथ ही अन्य महोत्सवों के होने का भी निर्देश है। अन्य महोत्सवों को छोड़कर केवल चार महोत्सवों में ही स्वाध्याय न करने का विधान क्यों है—यह शोध का विषय है। इन्द्र महोत्सव आदि उत्सव भिन्न-भिन्न तिथियों में भी मनाये जाते हैं, जैसे यक्ष महोत्सव आषाढ़ पूर्णिमा को मनाया जाता है, किन्तु लाट देश में श्रावण पूर्णिमा को मनाया जाता है, तो क्या लाट देश में अस्वाध्याय श्रावण पूर्णिमा के दिन रहेगा?

वर्तमान में इन निर्दिष्ट पूर्णिमाओं में ये उत्सव नहीं मनाए जाते हैं, इसलिए इन दिनों में अस्वाध्याय रखने का क्या हेतु है? यह सब विचारणीय विषय हैं।

दसविहे ओरालिए असज्झाए—

१०२. दसविधे ओरालिए असज्झाइए पण्णत्ते[1], तं जहा—

१. अट्ठि, २. मंसे, ३. सोणिते[2], ४. असुइसामंते[3], ५. सुसाण-सामंते[4], ६. चंदोवराए, ७. सूरोवराए[5],

दस प्रकार के औदारिक-सम्बन्धी-अस्वाध्याय—

१०२. औदारिक शरीर सम्बन्धी अस्वाध्याय दस प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. अस्थि, २. मांस, ३. रक्त, ४. अशुचि, ५. श्मशान के समीप होने पर, ६. चन्द्र-ग्रहण, ७. सूर्य-ग्रहण,

---

१ मनुष्य और तिर्यञ्च के औदारिक शरीर सम्बन्धी अस्वाध्याय है। यहाँ केवल पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च के औदारिक शरीर सम्बन्धी अस्वाध्यायों का उल्लेख है। —टीकाकार

२ (क) आगमोत्तरकालीन ग्रन्थों में—शोणित, मांस, चर्म और अस्थि ये चार अस्वाध्याय कहे हैं।

अस्वाध्याय के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव :—

द्रव्य—अस्थि, मांस, शोणित और चर्म ये चार अस्वाध्याय के द्रव्य हैं।

क्षेत्र—अस्वाध्याय का क्षेत्र—साठ हाथ की सीमा में रहे हुए अस्थि आदि चार पदार्थ हैं।

काल—अस्थि आदि जिस समय दिखाई दें, उस समय से तीन प्रहर का अस्वाध्याय काल है।

भाव—कालिक, उत्कालिक आगमों का स्वाध्याय न करना।

यह कथन पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च की अस्थि आदि के सम्बन्ध में है। मनुष्य की अस्थि आदि के सम्बन्ध में द्रव्य और भाव का कथन तिर्यञ्च के समान है। क्षेत्र और काल के सम्बन्ध में कुछ विशेषताएँ हैं, वे इस प्रकार हैं :—

क्षेत्र—अस्थि आदि द्रव्य से सौ हाथ की सीमा पर्यन्त का क्षेत्र अस्वाध्याय क्षेत्र है।

काल—मनुष्य की अस्थि दिखाई दे उस समय से अहोरात्रि पर्यन्त का काल अस्वाध्याय काल है।

(ख) स्त्री—रज का अस्वाध्याय काल—तीन दिन। यदि तीन दिन पश्चात् भी रजोदर्शन होता रहे तो अस्वाध्याय नहीं है। उपाश्रय या स्वाध्याय भूमि से दोनों पार्श्व भाग में या पृष्ठ भाग में सात गृह पर्यन्त बालक-बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमशः सात आठ दिन का अस्वाध्याय काल माना गया है। उपाश्रय के जिस ओर राजमार्ग हो उस ओर अस्वाध्याय नहीं माना जाता।

मनुष्य की अस्थि सौ हाथ तक हो तो उसका अस्वाध्याय बारह वर्ष तक रहता है चाहे वह पृथ्वी में ही क्यों न गड़ी हो। चिता में जली हुई एवं जल प्रवाह में बही हुई हड्डी स्वाध्याय में बाधक नहीं है।

३ स्वाध्याय स्थल के समीप जब तक मल-मूत्र की दुर्गन्ध आती हो या मल-मूत्र दृष्टिगोचर होते हों तब तक अस्वाध्याय नहीं है।

४ श्मशान में चारों ओर सौ-सौ हाथ तक अस्वाध्याय क्षेत्र है।

५ (क) चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण को औदारिक अस्वाध्याय में इसलिए गिना है कि उनके विमान पृथ्वीकाय के बने हुए हैं।

(ख) चन्द्रग्रहण का अस्वाध्याय दो प्रकार का है—जघन्य—आठ प्रहर, उत्कृष्ट बारह प्रहर।

१. यदि उदयकाल में चन्द्र ग्रसित हो गया हो तो चार प्रहर उस रात के एवं चार प्रहर आगामी दिवस के ये आठ प्रहर अस्वाध्याय के हैं।

२. यदि चन्द्रमा प्रभात के समय ग्रहण ग्रसित अस्त हो तो चार प्रहर दिन के चार प्रहर रात के एवं चार प्रहर द्वितीय दिवस के। इस प्रकार बारह प्रहर अस्वाध्याय के हैं।

(ग) सूर्यग्रहण का अस्वाध्याय दो प्रकार का है—१. जघन्य—बारह प्रहर, उत्कृष्ट—सोलह प्रहर।

१. सूर्य अस्त होते समय ग्रसित हो तो चार प्रहर रात के और आठ प्रहर आगामी अहोरात्रि के—इस प्रकार बारह प्रहर अस्वाध्याय के हैं।

२. यदि उगता हुआ सूर्य ग्रसित हो तो उस दिन-रात के आठ और आगामी दिन-रात के आठ—इस प्रकार सोलह प्रहर अस्वाध्याय के हैं।

मेघाच्छन्न आकाश के कारण यदि ग्रहण दिखाई न दे और सायंकाल में सूर्य ग्रसित हो, अस्त हो तो उस दिन-रात और आगामी दिन-रात के सोलह प्रहर अस्वाध्याय के हैं।

(घ) अन्य अन्तरिक्ष अस्वाध्याय आकस्मिक हैं किन्तु चन्द्रग्रहण और सूर्य-ग्रहण आकस्मिक नहीं है इसलिए अन्तरिक्ष अस्वाध्याय से भिन्न माना है।

८. पडणे[1], ९. रायवुग्गहे[2] १०. उवस्सयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे[3]।

—ठाणं. अ. १०, सु. ७१४

८. पतन—मरण प्रमुख व्यक्ति के मरने पर, ९. राजविप्लव होने पर १०. उपाश्रय के भीतर सौ हाथ औदारिक कलेवर के होने पर स्वाध्याय करने का निषेध किया गया है।

अप्पणो असज्झाए सज्झाय-निसेहो—

शारीरिक कारण होने पर स्वाध्याय का निषेध—

१०३. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अप्पणो असज्झाइए सज्झायं करेत्तए।[4] कप्पइ णं अन्नमन्नस्स वायणं दलइत्तए।[5]

—वव. उ. ७, सु. १८

१०३. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को स्वशरीर सम्बन्धी अस्वाध्याय होने पर स्वाध्याय करना नहीं कल्पता है, किन्तु (व्रणादि को विधिवत् आच्छादित कर) वाचना देना कल्पता है।

---

१ (क) गाँव के मुखिया बड़े परिवार वाले और शय्यातर (जिसकी आज्ञा से मकान में ठहरे हो) की तथा उपाश्रय से सात घरों के अन्दर अन्य किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाय तो एक अहोरात्रि का अस्वाध्याय काल है।

(ख) राजा की मृत्यु होने पर जब तक दूसरा राजा राज्य सिंहासन पर न बैठे तब तक स्वाध्याय करना निषिद्ध है। इसी प्रकार प्रमुख राज्याधिकारी (अमात्य, सेनाधिपति आदि) की मृत्यु होने पर जब तक नया राज्याधिकारी नियुक्त न कर दिया जाय तब तक स्वाध्याय करना निषिद्ध है।

(ग) जब तक अराजकता, अव्यवस्था एवं अशान्ति बनी रहे तब तक स्वाध्याय करने का निषेध है।

२ (क) राजा या सेनापतियों के संग्राम, प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषों की लड़ाई, मल्लयुद्ध या दो गाँव के जन समूह का पारस्परिक युद्ध व कलह हो तो युद्ध समाप्ति के पश्चात् एक अहोरात्रि पर्यन्त अस्वाध्याय काल है।

(ख) युद्ध में यदि अत्यधिक मनुष्य आदि मारे गये हों तो उस स्थान में बारह वर्ष तक स्वाध्याय करना निषेध है।

३ (क) उपाश्रय में पंचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य का शरीर पड़ा हो तो सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय क्षेत्र है।

(ख) उपाश्रय के सामने से मृत शरीर ले जा रहे हों तो जब तक सौ हाथ से आगे न निकल जाय तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

(ग) छोटे गाँव में मृत देह को जब तक गाँव से बाहर न ले जावें तब तक स्वाध्याय निषेध है।

(घ) बड़े शहर में मोहल्ले से बाहर जब तक मृत शरीर को न ले जावे तब तक स्वाध्याय करने का निषेध है।

(ङ) मृत शरीर दो प्रकार का है—१. दृष्ट—जो मृत शरीर दृष्टिगोचर हो वह, २. श्रुत अमुक स्थान में मृत शरीर पड़ा है—ऐसा किसी से सुना हो।

दृष्ट और श्रुत मृत शरीर के सम्बन्ध में चार विकल्प

१. मृत शरीर दिखाई नहीं देता है किन्तु दुर्गन्ध आती है।

२. मृत शरीर दिखाई देता है किन्तु दुर्गन्ध नहीं आती है।

३. मृत शरीर दिखाई भी देता है और उसकी दुर्गन्ध भी आती है।

४. मृत शरीर दिखाई भी नहीं देता है और दुर्गन्ध भी नहीं आती है।

इनमें अन्तिम चतुर्थ भंग का अस्वाध्याय नहीं है, शेष तीनों भंगों का अस्वाध्याय है।

प्रथम भंग में मृत शरीर की जहाँ तक दुर्गन्ध आती है वहाँ तक स्वाध्याय करने का निषेध है।

द्वितीय भंग में साठ हाथ या सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय क्षेत्र है। पारदर्शक आवरणों से आवृत कलेवर अथवा विविध प्रकार के लेप से दुर्गन्ध रहित बनाया हुआ कलेवर द्वितीय भंग का विषय है।

तृतीय भंग में जहाँ तक मृत शरीर दिखाई दे और जहाँ तक मृत शरीर की दुर्गन्ध आवे वहाँ तक अस्वाध्याय क्षेत्र है।

चतुर्थ भंग स्वाध्याय का क्षेत्र है।

४ निर्ग्रन्थ के आत्मसमुत्थ अस्वाध्याय एक प्रकार का है—यथा—व्रण, अर्श, भगन्दर आदि से बहने वाला रक्त, पूय आदि। निर्ग्रन्थी के आत्म-समुत्थ अस्वाध्याय दो प्रकार का है—यथा—प्रथम—व्रण, अर्श, भगन्दर आदि, द्वितीय—आर्तव, रजःस्राव।

५ (क) निर्ग्रन्थ को स्वाध्याय स्थल से सौ हाथ दूर जाकर व्रण आदि का प्रक्षालन कर उस पर राख के तीन आवरण बाँधने के पश्चात् वाचना देना कल्पता है।

(शेष टिप्पण अगले पृष्ठ पर)

दसविहे अन्तलिक्खए असज्झाए—

१०४. दसविधे अन्तलिक्खए असज्झाए पण्णत्ते, तं जहा—

१. उक्कावाते[1] ।

२. दिसिदाघे[2] ।

३. गज्जिते[3] ।

४. विज्जुते[4] ।

दस प्रकार के अन्तरिक्ष अस्वाध्याय—

१०४. अन्तरिक्ष आकाश सम्बन्धी अस्वाध्यायकाल दस प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. उल्कापात-अस्वाध्याय—बिजली गिरने या तारा टूटने पर स्वाध्याय नहीं करना।

२. दिग्दाह—दिशाओं को जलती हुई देखकर स्वाध्याय नहीं करना।

३. गर्जन—आकाश में मेघों की घोर गर्जना के समय स्वाध्याय नहीं करना।

४. विद्युत—तड़तड़ाती हुई बिजली के चमकने पर स्वाध्याय नहीं करना।

(शेष टिप्पण पिछले पृष्ठ का)

इसी प्रकार निर्ग्रन्थी को भी सौ हाथ दूर जाकर व्रण का विधिवत् प्रक्षालन करने और रक्त के तीन आवरण आर्तव पर बांधने के पश्चात् वाचना देना या लेना कल्पता है।

(ख) व्यवहारभाष्य में तथा हरिभद्रीय आवश्यक में अस्वाध्यायों का भिन्न प्रकार से वर्णन है, यथा—

असज्झाइयं च दुविहं, आयसमुत्थं परसमुत्थं च। जं तत्थ परसमुत्थं, तं पंचविहं तु नायव्वं॥ व्यवहारभाष्य उद्दे. ७
अस्वाध्याय दो प्रकार के हैं—१. आत्मसमुत्थ और २. परसमुत्थ। आत्मसमुत्थ के भेद ऊपर कहे अनुसार हैं।

परसमुत्थ के पाँच भेद हैं—१. संयमघाती, २. औत्पातिक, ३. देवता प्रयुक्त, ४. व्युद्ग्रहजनित, ५. शारीरिक।
अस्वाध्याय के इन पाँच भेदों के प्रभेदों में सभी अस्वाध्यायों का समावेश हो जाता है। यथा—

१. संयमघाती—धूमिका, महिका, रजोवात।
२. औत्पातिक—पांशु वृष्टि, मांस वृष्टि, रुधिर वृष्टि, केश वृष्टि, शिला वृष्टि आदि।
३. देवता प्रयुक्त—गंधर्व नगर, दिग्दाह, विद्युत, उल्कापात, यूपक, यक्षादीप्त, चन्द्र-ग्रहण, सूर्य-ग्रहण, निर्घात, गर्जन, अनभ्र, वज्रपात, चार सन्ध्या, चार महोत्सव, चार प्रतिपदा आदि।
४. व्युद्ग्रहजनित—संग्राम, महासंग्राम, द्वन्द्वयुद्ध, मल्लयुद्ध आदि।
५. शारीरिक—अण्डज, जरायुज और पोतज का प्रसव, अथवा इनका मरण, इनके उद्‌भिन्न या अनुद्‌भिन्न कलेवर। अशिव महामारि आदि। व्रण, अर्श, भगन्दर, ऋतुधर्म, गलित कुष्ठ आदि।

(ग) अस्वाध्याय सम्बन्धी विशेष जानकारी के लिए प्रवचनसारोद्धार द्वार २६८ गाथा—४६४—४८५, व्यवहार उद्दे. ७ का भाष्य, हरिभद्रीय आवश्यक प्रतिक्रमण अध्ययन, अस्वाध्याय निर्युक्ति अभिधान राजेन्द्र कोष, भाग १, पृ२ ८३२ आदि देखें।
तेतीस अशातनाओं में 'कालस्स आसायणाए' यह एक अशातना है—स्वाध्याय काल में स्वाध्याय न करना और अस्वाध्याय काल में स्वाध्याय करना यह काल की अशातना है।

कुमुदिनी और सूर्यमुखी वनस्पति पर तथा चक्रवाक और उलूक पक्षी पर चन्द्र-सूर्य का साक्षात प्रभाव दिखाई देता है इसी प्रकार चन्द्र-सूर्य ग्रहण का भी अनिष्ट प्रभाव प्रत्येक पदार्थ पर अवश्यम्भावी है इसलिए ग्रहण काल में तथा निर्धारित उत्तरकाल में स्वाध्याय का निषेध है।

१ तारा टूटना या आकाश से तेजपुंज का गिरना—उल्कापात है। इसका अस्वाध्यायकाल एक प्रहर का है।

२ दिग्दाह का अस्वाध्याय काल एक प्रहर का है।

३-४ गर्जित की दो प्रहर की और विद्युत की एक प्रहर की अस्वाध्याय है। आर्द्रा नक्षत्र से चित्रा नक्षत्र तक अर्थात् वर्षाकाल में गर्जित और विद्युत की अस्वाध्याय नहीं है।

५. णिग्घाते[1]।

५. निर्घात—मेघों के होने या न होने पर आकाश में व्यन्तरादि कृत घोर गर्जन या वज्रपात के होने पर स्वाध्याय नहीं करना।

६. जुवए[2]।

६. यूपक—सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रमा की प्रभा एक साथ मिलने पर स्वाध्याय नहीं करना।

७. जक्खालित्ते[3]।

७. यक्षादीप्त—यक्षादि के द्वारा किसी एक दिशा में बिजली जैसा प्रकाश दिखने पर स्वाध्याय नहीं करना।

८. धूमिया[4]।

८. धूमिका—कोहरा होने पर स्वाध्याय नहीं करना।

९. महिया[5]।

९. महिका—तुषार या बर्फ गिरने पर स्वाध्याय नहीं करना।

१०. रयुग्घाते[6]।

१०. रज-उद्घात—तेज आँधी से धूलि उड़ने पर स्वाध्याय नहीं करना।

—ठाणं. अ. १०, सु. ७१४

अकाले सज्झायकरणस्स काले सज्झायअकरणस्स पायच्छित्तं—

अकाल स्वाध्याय करने और काल में स्वाध्याय नहीं करने का प्रायश्चित्त—

१०५. जे भिक्खू चउहिं संझाहिं सज्झायं करेइ करेंतं वा साइज्जइ।[7] तं जहा—१. पुव्वाए संझाए, २. पच्छिमाए संझाए, ३. अवरण्हे, ४. अड्ढरत्ते।

जो भिक्षु प्रातःकाल में, सायंकाल में, मध्यान्ह में और अर्द्धरात्रि में इन चार सन्ध्याओं में स्वाध्याय करता है, करने के लिए कहता है, व करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू कालियसुयस्स परं तिण्हं पुच्छाणं पुच्छइ पुच्छंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु कालिक श्रुत की तीन पृच्छाओं से अधिक पृच्छाएँ आचार्य से अकाल में पूछता है, पूछने के लिए कहता है, व पूछने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू दिट्ठिवायस्स परं सत्तण्हं पुच्छाणं पुच्छइ पुच्छंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु दृष्टिवाद की सात पृच्छाओं से अधिक पृच्छाएँ अकाल में आचार्य से पूछता है, पूछने के लिए कहता है, व पूछने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू चउसु महामहेसु सज्झायं करेइ करेंतं वा साइज्जइ। तं जहा—१. इंदमहे, २. खंदमहे, ३. जक्खमहे, ४. भूतमहे।

जो भिक्षु इन्द्रमहोत्सव, स्कन्दमहोत्सव, यक्षमहोत्सव, भूतमहोत्सव, इन चार महोत्सवों में स्वाध्याय करता है, स्वाध्याय करने को कहता, व स्वाध्याय करने वालों का अनुमोदन करता है।

---

१ अनभ्र वज्रपात तथा गर्जने की प्रचण्ड ध्वनि को निर्घात कहते हैं। इसका अस्वाध्याय काल एक प्रहर का है।

२ शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा, द्वितीय और तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्र की प्रभा मिल जाती है। उस समय संध्या का बीतना मालूम नहीं होता, इसलिए इन तीन दिनों में एक प्रहर का अस्वाध्याय काल है।

३ किसी एक दिशा में ठहर-ठहर कर बिजली जैसा प्रकाश दिखाई देता है, उसे यक्षादिप्त कहते हैं। इसका अस्वाध्याय काल एक प्रहर का है।

४ कार्तिक मास से माघ मास पर्यन्त मेघ का गर्भकाल कहलाता है। इस काल में धूम्र वर्ण का कुहरा पड़ता है। जब तक कुहरा रहे तब तक अस्वाध्याय काल है।

५ उक्त गर्भकाल में श्वेतवर्ण का कुहरा पड़ता है, उसे मिहिका कहते हैं। जब तक श्वेतवर्ण का कुहरा रहे तब तक अस्वाध्याय काल है।

६ रजोघात—आकाश में रज छाई रहे तब तक अस्वाध्याय काल है।

७ अकाले कओ सज्झाओ—आव. अ. ४, सु. २६

जे भिक्खू चउसु महापाडिवएसु सज्झायं करेइ करेंतं वा साइज्जइ। तं जहा—१. सुगिम्ह-पाडिवए, २. आसाढी-पाडिवए, ३. आसोय-पाडिवए, ४. कत्तिय-पाडिवए।

जो भिक्षु वैशाखी प्रतिपदा, आषाढ़ी प्रतिपदा, आश्विन प्रतिपदा और कार्तिक प्रतिपदा इन चार महा प्रतिपदाओं में स्वाध्याय करता है, स्वाध्याय करने के लिए कहता है, व स्वाध्याय करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू चाउकाल-पोरिसिं सज्झायं न करेइ न करेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु चतुष्काल पौरुषी में स्वाध्याय नहीं करता है, स्वाध्याय नहीं करने को कहता है, व स्वाध्याय नहीं करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू चाउकाल-पोरिसिं सज्झायं उवाइणावेइ उवाइणावेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु चतुष्काल पौरुषी का स्वाध्यायकाल बीतने पर स्वाध्याय करता है, स्वाध्याय करने के लिए कहता है, व स्वाध्याय करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू चाउक्कालं सज्झायं न करेइ न करेंतं वा साइज्जइ।[1]

जो भिक्षु चार काल में स्वाध्याय नहीं करता है, स्वाध्याय नहीं करने के लिए कहता है, व स्वाध्याय नहीं करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू चाउक्कालं सज्झायं उवाइणावेइ उवाइणावेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु चार काल स्वाध्याय का अतिक्रमण करता है, अतिक्रमण करने के लिए कहता है, व अतिक्रमण करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू असज्झाइए सज्झायं करेइ करेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु अस्वाध्यायकाल में स्वाध्याय करता है, स्वाध्याय करने को कहता है, व स्वाध्याय करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू अप्पणो असज्झाइए सज्झायं करेइ करेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु अपने अस्वाध्याय काल में स्वाध्याय करता है, स्वाध्याय करने को कहता है, व स्वाध्याय करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १९, सु. ८—१८ (४८)

उक्त आसेवना करने वाला भिक्षु उद्घातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

❋❋

१ (क) पडिक्कमामि चाउक्कालं सज्झायस्स अकरणयाए—आव. अ. ४, सु. १९
(ख) काले न कओ सज्झाओ—आव. अ. ४, सु. २९

बिइओ विणय णाणायारो — द्वितीय विनय ज्ञानाचार

विणयायार पाउअरण-पइण्णा—

१०६. संजोगा[1] विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो[2]।
विणयं[3] पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे ॥
—उत्त. अ. १, गा. १

विनयाचार कहने की प्रतिज्ञा—

१०६. संयोग से विप्रमुक्त—रहित अणगार भिक्षु के विनय को मैं प्रगट करूँगा, हे शिष्य ! तू मुझसे अनुक्रम से सुन।

विणय पओगो—

१०७. रायणिएसु[4] विणयं पउंजे,
धुवसीलयं[5] सययं न हावएज्जा।

विनय प्रयोग—

१०७. रात्निकों के प्रति विनय का प्रयोग करे,
ध्रुवशीलता की कभी हानि न करे,

---

१ संजोग दो प्रकार के हैं—१. बाह्य संयोग, २. आभ्यंतर संयोग।
(क) माता-पिता आदि स्वजनों का तथा पदार्थों का संयोग बाह्य संयोग है।
(ख) क्रोध आदि कषायों का संयोग आभ्यंतर संयोग है।

२ अनगार और भिक्षु का प्रयोग विशेष अर्थ का द्योतक है। अन्य दर्शनानुयायी कुछ साधक अनगार होते हैं किन्तु भिक्षु नहीं होते हैं और कुछ भिक्षु होते हैं किन्तु अनगार नहीं होते हैं, अतः जो अनगार हो और भिक्षु हो उसका विनय यहाँ कहा जाएगा। यहाँ विनय शब्द साधुजन-सेवित आचार अर्थात् अनुशासन, नम्रता और आचार के अर्थ में प्रयुक्त है।

३ लोकोपचार विनय, अर्थनिमित्त विनय, कामहेतु विनय, भय विनय, मोक्ष विनय इन पाँच प्रकार के विनय में से यहाँ मोक्ष विनय का अधिकार है।

४ (क) पूर्व दीक्षित, आचार्य, उपाध्याय, सद्भाव के उपदेशक अथवा ज्ञानादि भाव रत्नों से अधिक समृद्ध हों, वे रात्निक कहलाते हैं।
(ख) स्थानांग अ. ४, उद्दे. ३, सूत्र ३२० में चतुर्विध संघ के लिए "राइणिए" का प्रयोग हुआ है।
(ग) मूलाचार अधि. ५, गाथा १८७ में केवल साधुओं के लिए "रादिणिए और ऊणरादिणिए" का प्रयोग हुआ है।
(घ) सूत्रकृतांग श्रुत. १, अ. १४, गा. ७ में पर्याय ज्येष्ठ के लिए "रातिणिय" और सह दीक्षित के लिए "समव्वत" शब्द मिलता है। इस प्रकार दीक्षापर्याय की अपेक्षा से तीन प्रकार के श्रमण होते हैं—१. रात्निक—पूर्व दीक्षित २. समव्रत-सहदीक्षित, ३. ऊनरात्निक-पश्चात् दीक्षित।
(ङ) मूलाचार में "रादिणिय" का संस्कृत रूप "रात्रिक" और "उणरादिणिय" का संस्कृत रूप "ऊनरात्रिक" किया है।

५ टीकाकार ने ध्रुवशीलता का अर्थ अष्टादश सहस्र-शीलांग किया है—
जे णो करंति मणसा, णिज्जिय आहार-सन्ना सोइंदिए। पुढवीकायारंभे, खंतिजुत्ते ते मुणी वंदे ॥
यह एक गाथा है, इसी एक गाथा से १८००० गाथाएँ बनती हैं। गाथाओं का रचनाक्रम इस प्रकार है—
प्रथम दस गाथाओं में दस धर्मों के नाम क्रमशः आयेंगे। पुनः "पुढवी" के साथ दस धर्मों की दस गाथाएँ होंगी इसी प्रकार "आउ, तेउ, वाउ, वणस्सइ, बेइंदिय, तेइंदिय, चउरिंदिय, पंचिंदिय और अजीव" इन सबके साथ दस धर्मों का कथन करने पर १०×१०=१०० गाथाएँ बनेंगी, इन १०० गाथाओं में "सोइंदिय" का प्रयोग हुआ, इसी प्रकार "चक्खिंदिय, घाणिंदिय, रसिंदिय और फासिंदिय" के संयोग से १००×५=५०० गाथाएँ हो गई। इन ५०० गाथाओं में "आहारसन्ना" का प्रयोग हुआ। इसी प्रकार "भयसन्ना, मेहुणसन्ना और परिग्गहसन्ना" के प्रयोग से ५००×४=२००० गाथाएँ हुई। इन गाथाओं में "मणसा" का प्रयोग हुआ, इसी प्रकार "वयसा और कायसा" का प्रयोग करने पर २०००×३=६००० गाथाएँ हुई। इन ६००० गाथाओं में "करंति" का प्रयोग करें, इसी प्रकार "कारयंति और समणुजाणंति" के प्रयोग से ६०००×३=१८००० गाथाएँ बनती हैं।

(शेष टिप्पण अगले पृष्ठ पर)

कुम्मोव्व अल्लीणपलीणगुत्तो[1],
परक्कमेज्जा तव संजमम्मि ॥

—दस, अ. ८, गा. ४०

कूर्म (कछुआ) की तरह आलीनगुप्त और प्रलीनगुप्त हो तप और संयम में पराक्रम करे।

अविणयफलं—

१०८. थंभा व कोहा व मयप्पमाया,
गुरुस्सगासे विणयं न सिक्खे[2]।
सो चेव उ तस्स अभूइभावो[3],
फलं व कीयस्स[4] वहाय होइ ॥

—दस. अ. ६, उ. १, गा. १

अविनय का फल—

१०८. जो मुनि गर्व, क्रोध, माया या प्रमादवश गुरु के समीप विनय की शिक्षा नहीं लेता वही (विनय की अशिक्षा) उसके विनाश के लिए होती है, जैसे—कीचक (बाँस) का फल उसके वध के लिए होता है।

(शेष टिप्पण पिछले पृष्ठ का)

न करंति मणेण आहारसण्णविप्पजढगो उ णियमेण। सोइंदिय संवुडो पुढविकायारम्भ खंतिजुओ ॥
इय मद्दवाइजोगा पुढविकाए भवंति दस भेया। आउक्कायादीसु वि, इय एते पिंडियं तु सयं ॥
सोइंदिएण एयं, सेसेहि वि जे इमं तओ पंचो। आहारसण्ण जोगा, इय सेसाहि सहस्सदुगं ॥
एयं मणेण वइमाईएसु एयंति छस्स छसहस्साइं। ण करइ सेसेहि पिय एए सव्वे वि अट्ठारा ॥

अष्टादश सहस्रशीलांग रथ का प्राचीन चित्र—

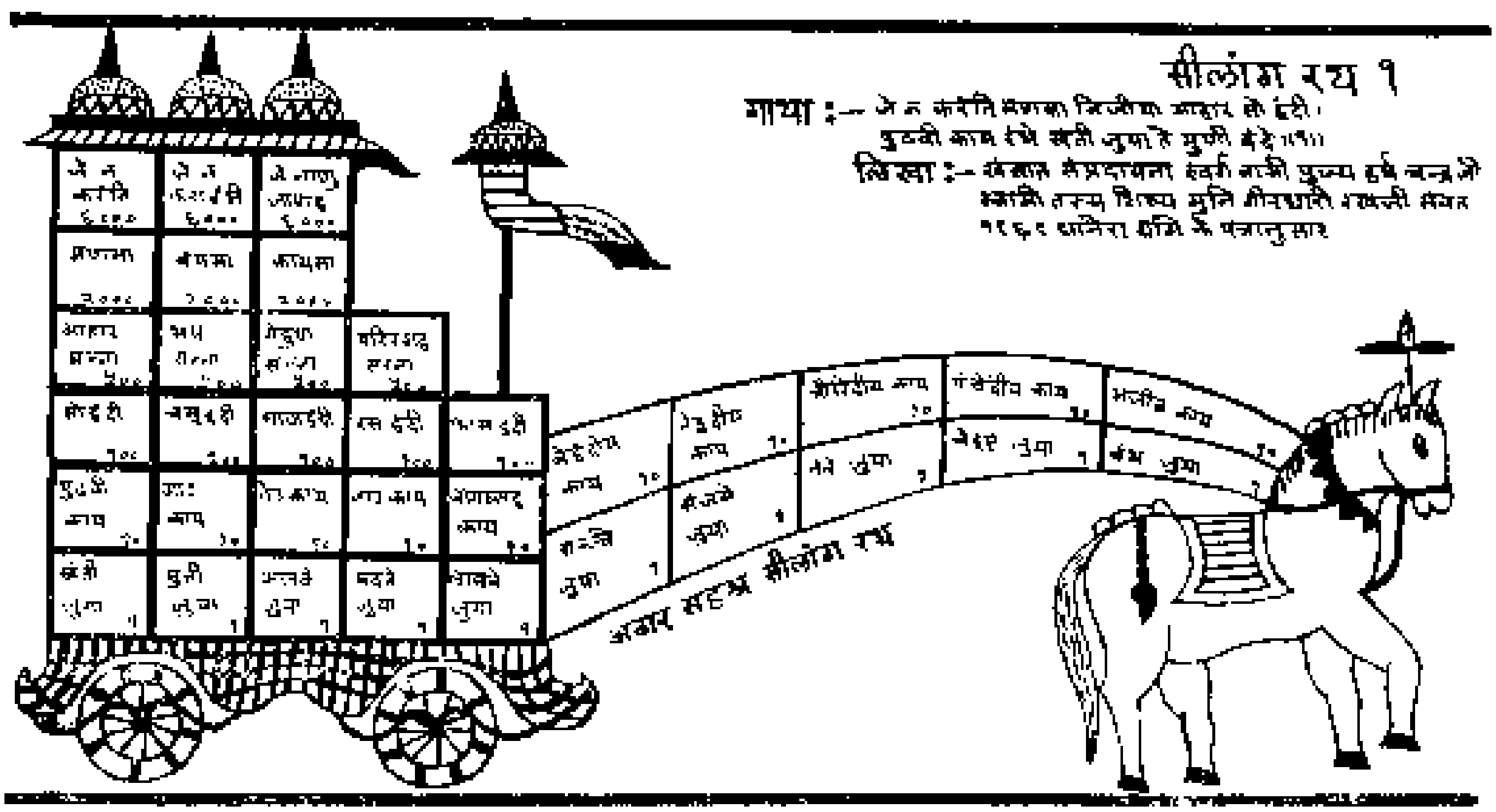

१ गुप्त शब्द आलीन और प्रलीन दोनों से सम्बन्धित है, कूर्म के समान स्वशरीर में अंगोपांगों का संगोपन करके जो किसी प्रकार की कायचेष्टा नहीं करता है वह आलीनगुप्त कहलाता है। कारण उपस्थित होने पर यतनापूर्वक जो शारीरिक प्रवृत्ति करता है, वह प्रलीनगुप्त कहलाता है। श्रमण कूर्म के समान अपने अंगोपांगों को गुप्त रखे और आवश्यकता होने पर विवेकपूर्वक प्रवृत्ति करे।

२ विनय दो प्रकार का है—(१) ग्रहण-विनय, (२) आसेवन-विनय। ज्ञानात्मक विनय को ग्रहण विनय और क्रियात्मक विनय को आसेवन विनय कहते हैं। —जीतकल्प चूर्णि

३ भूति का अर्थ है ऐश्वर्य, उसका अभाव अभूति भाव अर्थात् विनय।

४ वायु से शब्द करते हुए बांस को कीचक कहते हैं। फल लगने पर यह बांस सूख जाता है।

विणयस्स मूलोवमा—

१०९. मूलाओ खंधप्पभवो दुमस्स,
खंधाओ पच्छा समुवेंति साहा।
साहप्पसाहा विरुहंति पत्ता,
तओ से पुप्फं च फलं रसो य॥

एवं धम्मस्स विणओ मूलं,
परमो से मोक्खो।
जेण कित्तिं सुयं सिग्घं,
निस्सेसं चाभिगच्छई॥

—दस. अ. ९, उ. २, गा. १-२

विनय की मूल की उपमा—

१०९. वृक्ष के मूल से स्कन्ध उत्पन्न होता है, स्कन्ध के पश्चात् शाखाएँ आती हैं, और शाखाओं में से प्रशाखाएँ निकलती हैं। उसके पश्चात् पत्र, पुष्प, फल और रस होता है।

इसी प्रकार धर्म का मूल है 'विनय' (आचार) और उसका परम (अन्तिम) फल है मोक्ष। विनय के द्वारा मुनि कीर्ति, श्लाघनीय श्रुत और समस्त इष्ट तत्वों को प्राप्त होता है।

आयरियस्स विणय-पडिवत्ती—

११०. आयरिओ अंतेवासी इमाए चउव्विहाए विणय-पडिवत्तीए विणइत्ता भवइ निरणित्तं गच्छइ, तं जहा—

१. आयार-विणएणं, २. सुयं-विणएणं,

३. विक्खेवणा-विणएणं, ४. दोस-निग्घायणा-विणएणं।

प०—से किं तं आयार-विणए?

उ०—आयार-विणए चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—

१. संयम-सामायारी यावि भवइ,

२. तव-सामायारी यावि भवइ,

३. गण-सामायारी यावि भवइ,

४. एकल्ल-विहार-सामायारी यावि भवइ।

से तं आयार-विणए।

प०—से किं तं सुय-विणए?

उ०—सुय-विणए चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा—

१. सुत्तं वाएइ,

२. अत्थं वाएइ,

३. हियं वाएइ,

४. निस्सेसं वाएइ,

से तं सुय-विणए।

आचार्य की विनय-प्रतिपत्ति—

११०. आचार्य अपने शिष्यों को यह चार प्रकार की विनय-प्रतिपत्ति सिखाकर अपने ऋण से उऋण हो जाता है। जैसे—

आचारविनय, श्रुतविनय,

विक्षेपणाविनय और दोष-निर्घातनाविनय।

प्र०—भगवन्! वह आचारविनय क्या है?

उ०—आचारविनय चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. संयमसमाचारी—संयम के भेद-प्रभेदों का ज्ञान कराके आचरण कराना।

२. तपःसमाचारी—तप के भेद-प्रभेदों का ज्ञान कराके आचरण कराना।

३. गणसमाचारी—साधु-संघ की सारण-वारणादि से रक्षा करना, रोगी दुर्बल साधुओं की यथोचित व्यवस्था करना, अन्य गण के साथ यथायोग्य व्यवहार करना और कराना।

४. एकाकी विहार समाचारी—किस समय किस अवस्था में अकेले विहार करना चाहिए, इस बात का ज्ञान कराना।

यह आचारविनय है।

प्र०—भगवन्! श्रुतविनय क्या है?

उ०—श्रुतविनय चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. सूत्रवाचना—मूल सूत्रों का पढ़ाना।

२. अर्थवाचना—सूत्रों के अर्थ का पढ़ाना।

३. हितवाचना—शिष्य के हित का उपदेश देना।

४. निःशेषवाचना—प्रमाण नय, निक्षेप, संहिता, पदच्छेद, पदार्थ, पद-विग्रह, चालना (शंका) प्रसिद्धि (समाधान) आदि के द्वारा सूत्रार्थ का यथाविधि समग्र अध्यापन करना-कराना।

यह श्रुतविनय है।

प०—से किं तं विक्खेवणा-विणए ?

प्र०—भगवन् ! विक्षेपणाविनय क्या है ?

उ०—विक्खेवणा-विणए चउव्विहे पण्णत्ते । तं जहा—

उ०—विक्षेपणाविनय चार प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१. अदिट्ठ-धम्मं दिट्ठ-पुव्वगत्ताए विणयइत्ता भवइ,

१. अदृष्टधर्मा को अर्थात् जिस शिष्य ने सम्यक्त्वरूपधर्म को नहीं जाना है, उसे उससे अवगत कराके सम्यक्त्वी बनाना ।

२. दिट्ठपुव्वगं साहम्मियत्ताए विणयइत्ता भवइ,

२. दृष्टधर्मा शिष्य को साधर्मिकता-विनीत (विनयसंयुक्त) करना ।

३. चुय-धम्माओ धम्मे ठावइत्ता भवइ,

३. धर्म से च्युत होने वाले शिष्य को धर्म में स्थापित करना ।

४. तस्सेव धम्मस्स हियाए, सुहाए, खमाए, निस्सेसाए, अणुगामियत्ताए अब्भुट्ठेत्ता भवइ ।

४. उसी शिष्य के धर्म के हित के लिए, सुख के लिए, सामर्थ्य के लिए, मोक्ष के लिए और अनुगामिकता अर्थात् भवान्तर में भी धर्मादि की प्राप्ति के लिए अभ्युद्यत रहना ।

से तं विक्खेवणा-विणए ।

यह विक्षेपणाविनय है ।

प०—से किं तं दोस-निग्घायणा-विणए ?

प्र०—भगवन् ! दोषनिर्घातविनय क्या है ?

उ०—दोस-निग्घायणा-विणए चउव्विहे पण्णत्ते । तं जहा—

उ०—दोषनिर्घातनाविनय चार प्रकार का कहा गया है । जैसे—

१. कुद्धस्स कोहं विणएत्ता भवइ,

१. क्रुद्ध व्यक्ति के क्रोध को दूर करना ।

२. दुट्ठस्स दोसं णिगिण्हित्ता भवइ,

२. दुष्ट व्यक्ति के दोष को दूर करना ।

३. कंखियस्स कंखं छिंदित्ता भवइ,

३. आकांक्षा वाले व्यक्ति की आकांक्षा का निवारण करना ।

४. आय-सुपणिहिए यावि भवइ,

४. आत्मा को सुप्रणिहित रखना अर्थात् शिष्यों को सुमार्ग पर लगाये रखना ।

से तं दोस-निग्घायणा-विणए । —दसा. द. ४, सु. १५-१६

यह दोषनिर्घातनाविनय है ।

अंतेवासिस्स विणय पडिवत्ती—

शिष्य की विनय-प्रतिपत्ति—

१११. तस्स णं एवं गुणजाइयस्स अंतेवासिस्स इमा चउव्विहा विणय-पडिवत्ती भवइ । तं जहा—

१११. इस प्रकार के गुणवान अन्तेवासी शिष्य की यह चार प्रकार की विनय प्रतिपत्ति होती है । जैसे —

१. उवगरण-उप्पायणया,

१. उपकरणोत्पादनता—संयम के साधक वस्त्र-पात्रादि का प्राप्त करना ।

२. साहिल्लया,

२. सहायता—अशक्त साधुओं की सहायता करना ।

३. वण्ण-संजलणया,

३. वर्णसंज्वलनता—गण और गणी के गुण प्रकट करना ।

४. भार पच्चोरुहणया ।

४. भारप्रत्यवरोहणता—गण के भार का निर्वाह करना ।

प०—से किं तं उवगरण-उप्पायणया ?

प्र०—भगवन् ! उपकरणोत्पादनता क्या है ?

उ०—उवगरण-उप्पायणया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—

उ०—उपकरणोत्पादनता चार प्रकार की कही गई है । जैसे—

१. अणुप्पण्णाणं उवगरणाणं उप्पाइत्ता भवइ,

१. अनुत्पन्न उपकरण उत्पादनता—नवीन उपकरणों को प्राप्त करना ।

२. पोराणाणं उवगरणाणं सारक्खित्ता संगोवित्ता भवइ,

२. पुरातन उपकरणों का संरक्षण और संगोपन करना ।

३. परित्तं जाणित्ता पच्चुद्धरित्ता भवइ,

४. अहाविहिं संविभइत्ता भवइ।

से तं उवगरण-उप्पायणया ?

प०—से किं तं साहिल्लया ?

उ०—साहिल्लया चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—

१. अणुलोम-वइ-सहिते यावि भवइ,

२. अणुलोम-काय-किरियत्ता यावि भवइ,

३. पडिरूव-काय-संफासणया यावि भवइ,

४. सव्वत्थेसु अपडिलोमया यावि भवइ।

से तं साहिल्लया।

प०—से किं तं वण्ण-संजलणया ?

उ०—वण्ण-संजलणया चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—

१. अहातच्चाणं वण्ण-वाई भवइ,

२. अवण्णवाइं पडिहणित्ता भवइ,

३. वण्णवाइं अणुवूहित्ता भवइ,

४. आय वुड्ढसेवी यावि भवइ।

से तं वण्ण-संजलणया।

प०—से किं तं भार पच्चोरुहणया ?

उ०—भार-पच्चोरुहणया चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा—

१. असंगहिय-परिजण-संगहित्ता भवइ,

२. सेहं आयार-गोयर-संगहित्ता भवइ,

३. साहम्मियस्स गिलायमाणस्स अहाथामं वेयावच्चे अब्भुट्ठित्ता भवइ,

४. साहम्मियाणं अहिगरणंसि उप्पण्णंसि तत्थ अणिस्सितो-वस्सिए अपक्खग्गहिय-मज्झत्थ-भावभूए सम्मं ववहरमाणे

३. जो उपकरण परीत (अल्प) हों उनका प्रत्युद्धार करना अर्थात् अपने गण के या अन्य गण से आये हुए साधु के पास यदि अल्प उपकरण हों, या न हों तो उसकी पूर्ति करना।

४. शिष्यों के लिए यथायोग्य विभाग करके देना।

यह उपकरणोत्पादनता है।

प्र०—भगवन्! सहायताविनय क्या है ?

उ०—सहायताविनय चार प्रकार का कहा गया है। जैसे

१. अनुलोम (अनुकूल) वचन-सहित होना। अर्थात् जो गुरु कहें उसे विनयपूर्वक स्वीकार करना।

२. अनुलोम काय की क्रिया वाला होना। अर्थात्—जैसा गुरु कहें वैसी काय की क्रिया करना।

३. प्रतिरूप कायसंस्पर्शनता—गुरु की यथोचित सेवा-सुश्रूषा करना।

४. सर्वार्थ-अप्रतिलोमता—सर्वकार्यों में कुटिलता-रहित व्यवहार करना।

यह सहायताविनय है।

प्र०—भगवन्! वर्णसंज्वलनताविनय क्या है ?

उ०—वर्णसंज्वलनताविनय चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. यथातथ्य गुणों का वर्णवादी (प्रशंसा करने वाला) होना।

२. अवर्णवादी (अयथार्थ दोषों के कहने वाले) को निरुत्तर करने वाला होना।

३. वर्णवादी के गुणों का अनुबृंहण (संवर्धन) करना।

४. स्वयं वृद्धों की सेवा करना।

यह वर्णसंज्वलनताविनय है।

प्र०—भगवन्! भारप्रत्यारोहणताविनय क्या है ?

उ०—भारप्रत्यारोहणताविनय चार प्रकार का कहा गया है। जैसे—

१. असंगृहित-परिजन-संग्रहीता होना (निराश्रित शिष्यों का संग्रह करना)।

२. नवीन दीक्षित शिष्यों को आचार और गोचरी की विधि सिखाना।

३. साधर्मिक रोगी साधुओं की यथाशक्ति वैयावृत्य के लिए अभ्युद्यत रहना।

४. साधर्मिकों में परस्पर अधिकरण (कलह-क्लेश) उत्पन्न हो जाने पर रागद्वेष का परित्याग करते हुए, किसी पक्ष-विशेष

तस्स अधिगरणस्स खमावणाए विउसमणताए सया समियं अब्भुट्ठित्ता भवइ,

प०—कहं णु भंते ! साहम्मिया ?

उ०—अप्पसद्दा, अप्पझंझा, अप्पकलहा, अप्पकसाया, अप्पतुमंतुमा, संजमबहुला, संवरबहुला, समाहिबहुला, अप्पमत्ता, संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणा—एवं च णं विहरेज्जा।

से तं भार-पच्चोरुहणया।

एसा खलु थेरेहिं भगवंतेहिं अट्ठविहा गणि-संपया पण्णत्ता।

—दसा. द. ४, सु. २०-२५

को ग्रहण न करके मध्यस्थ भाव रखे और सम्यक् व्यवहार का पालन करते हुए उस कलह के क्षमापन और उपशमन के... सदा ही अभ्युद्यत रहे।

प्र०—भगवन् ! ऐसा क्यों करें ?

उ०—क्योंकि ऐसा करने से साधर्मिक अनर्गल प्रलाप नहीं करेंगे, झंझा (झंझट) नहीं होगी, कलह, कषाय और तू-तू-मैं-मैं नहीं होगी तथा साधर्मिक जन संयम-बहुल, संवर-बहुल, समाधि-बहुल और अप्रमत्त होकर संयम से और तप से अपने आत्मा की भावना करते हुए विचरण करेंगे।

यह भारप्रत्यवरोहणताविनय है।

यह निश्चय से स्थविर भगवन्तों ने आठ प्रकार की गणि-सम्पदा कही है।

विणयस्स भेयप्पभेया—

११२. प०—से किं तं विणए ?

उ०—अब्भुट्ठाणं अंजलिकरणं, तहेवासणदायणं।
गुरुभत्तिभावसुस्सूसा, विणओ एस वियाहिओ॥

—उत्त. अ. ३०, गा. ३२

विणए सत्तविहे पण्णत्ते। तं जहा—

१. णाणविणए, २. दंसणविणए, ३. चरित्तविणए, ४. मणविणए, ५. वइविणए, ६. कायविणए ७. लोगोवयारविणए।

प०—से किं तं णाणविणए ?

उ०—णाणविणए पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. आभिणिबोहियणाणविणए, २. सुयणाणविणए, ३. ओहिणाणविणए, ४. मणपज्जवणाणविणए ५. केवलणाणविणए।

प०—से किं तं दंसणविणए ?

उ०—दंसणविणए दुविहे पण्णत्ते। तं जहा—

१. सुस्सूसणाविणए, २. अणच्चासायणाविणए।

प०—से किं तं सुस्सूसणाविणए ?

उ०—सुस्सूसाविणए अणेगविहे पण्णत्ते। तं जहा—

१. अब्भुट्ठाणे इ वा।

विनय के भेद-प्रभेद—

११२. प्र०—विनय क्या है ?

उ०—अभ्युत्थान (खड़े होना), हाथ जोड़ना, आसन देना, गुरुजनों की भक्ति करना और भावपूर्वक शुश्रूषा करना विनय कहलाता है।

विनय सात प्रकार का बतलाया गया है—

१. ज्ञान-विनय, २. दर्शन-विनय, ३. चारित्र-विनय, ४. मनोविनय, ५. वचन-विनय, ६. काय-विनय, ७. लोकोपचार-विनय।

प्र०—ज्ञान-विनय क्या है ?

उ०—ज्ञान-विनय के पाँच भेद बतलाये गये हैं—

१. आभिनिबोधिक ज्ञान—मतिज्ञान-विनय, २. श्रुतज्ञान-विनय, ३. अवधिज्ञान-विनय, ४. मनःपर्यवज्ञान विनय, ५. केवलज्ञान-विनय।

—इन ज्ञानों की यथार्थता स्वीकार करते हुए इनके लिए विनीतभाव से यथाशक्ति पुरुषार्थ या प्रयत्न करना।

प्र०—दर्शन-विनय क्या है ?

उ०—दर्शन-विनय दो प्रकार का बतलाया गया है—

१. शुश्रूषा-विनय, २. अनत्याशातना-विनय।

प्र०—शुश्रूषा-विनय क्या है ?

उ०—शुश्रूषा-विनय अनेक प्रकार का बतलाया गया है, जो इस प्रकार है—

१. अभ्युत्थान—गुरुजनों या गुणी जनों के आने पर उन्हें आदर देने हेतु खड़े होना।

2. आसणाभिग्गहे इ वा,

२. आसनाभिग्रह—गुरुजन जहाँ बैठना चाहें वहाँ आसन रखना।

३. आसणप्पदाणे इ वा,

३. आसन-प्रदान—गुरुजनों को आसन देना।

४. सक्कारे इ वा,

४. गुरुजनों का सत्कार करना,

५. सम्माणे इ वा,

५. सम्मान करना,

६. किइकम्मे इ वा,

६. यथाविधि वंदन-प्रणाम करना,

७. अंजलिप्पग्गहे इ वा,

७. कोई बात स्वीकार या अस्वीकार करते समय हाथ जोड़ना,

८. एंतस्स अणुगच्छणया,

८. आते हुए गुरुजनों के सामने जाना,

९. ठियस्स पज्जुवासणया,

९. बैठे हुए गुरुजनों के समीप बैठना,

१०. गच्छंतस्स पडिसंसाहणया।

१०. उनकी सेवा करना, जाते हुए गुरुजनों को पहुँचाने जाना।

से तं सुस्सूणाविणए।

यह शुश्रुषा-विनय है।

प०—से किं तं अणच्चासायणाविणए?

प्र०—अनत्याशातनाविनय क्या है?

उ०—अणच्चासायणाविणए पणयालीसविहे पण्णत्ते, तं जहा—

उ०—अनत्याशातना-विनय के पैंतालीस भेद हैं। वे इस प्रकार हैं—

१. अरहंताणं अणच्चासायणया,

१. अर्हतों की आशातना नहीं करना—आत्मगुणों का आशातन—नाश करने वाले अवहेलनापूर्ण कार्य नहीं करना।

२. अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अणच्चासायणया,

२. अर्हत्-प्रज्ञप्त—अर्हतों द्वारा बतलाये गये धर्म की आशातना नहीं करना।

३. आयरियाणं अणच्चासायणया एवं,

३. आचार्यों की आशातना नहीं करना।

४. उवज्झायाणं,

४. उपाध्यायों की आशातना नहीं करना।

५. थेराणं,

५. स्थविरों—ज्ञानवृद्ध, चारित्रवृद्ध, वयोवृद्ध श्रमणों की आशातना नहीं करना।

६. कुलस्स,

६. कुल की आशातना नहीं करना।

७. गणस्स,

७. गण की आशातना नहीं करना।

८. संघस्स,

८. संघ की आशातना नहीं करना।

९. किरियाणं,

९. क्रियावान् की आशातना नहीं करना।

१०. संभोगस्स,

१०. सांभोगिक—जिसके साथ वन्दन, नमन, भोजन आदि पारस्परिक व्यवहार हो, उस गच्छ के श्रमण या समान आचार वाले श्रमण की आशातना नहीं करना।

११. आभिणिबोहियणाणस्स,

११. मति-ज्ञान की आशातना नहीं करना।

१२. सुयणाणस्स,

१२. श्रुत-ज्ञान की आशातना नहीं करना।

१३. ओहिणाणस्स,

१३. अवधि-ज्ञान की आशातना नहीं करना।

१४. मणपज्जवणाणस्स,

१४. मनःपर्यव-ज्ञान की आशातना नहीं करना।

१५. केवलणाणस्स,

१५. केवल-ज्ञान की आशातना नहीं करना।

१६-३०. एएसिं भत्तिबहुमाणे,

३१-४५. एएसिं चेव वण्णसंजलणया,

से तं अणच्चासायणाविणए।

इन पन्द्रह की भक्ति, उपासना, बहुमान के प्रति तीव्र भावानुरागरूप पन्द्रह भेद तथा इन (पन्द्रह) की यशस्विता, प्रशस्ति एवं गुणकीर्तन रूप और पन्द्रह भेद—यों अनत्याशातना-विनय के कुल पैंतालीस भेद होते हैं।

प०—से किं तं चरित्तविणए ?

उ०—चरित्तविणए पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. सामाइयचरित्तविणए,
२. छेओवट्ठावणियचरित्तविणए,
३. परिहारविसुद्धचरित्तविणए,
४. सुहुमसंपरायचरित्तविणए,
५. अहक्खायचरित्तविणए,
से तं चरित्तविणए।

प्र०—चारित्र-विनय क्या है ?

उ०—चारित्र-विनय पांच प्रकार का है—

१. सामायिकचारित्र-विनय,
२. छेदोपस्थापनीयचारित्र-विनय,
३. परिहारविशुद्धचारित्र-विनय,
४. सूक्ष्मसंपरायचारित्र-विनय,
५. यथाख्यातचारित्र-विनय।
यह चारित्र-विनय है।

प०—से किं तं मणविणए ?

उ०—मणविणए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. पसत्थमणविणए, २. अपसत्थमणविणए।

प्र०—मनोविनय क्या है ?

उ०—मनोविनय दो प्रकार का कहा गया है—

१. प्रशस्त मनोविनय, २. अप्रशस्त मनोविनय।

प०—से किं तं अपसत्थमणविणए ?

उ०—अपसत्थमणविणए जे य मणे—

१. सावज्जे,
२. सकिरिए,
३. सकक्कसे,
४. कडुए,
५. णिट्ठुरे,
६. फरुसे,
७. अण्हयकरे,
८. छेयकरे,
९. भेयकरे,
१०. परितावणकरे,
११. उद्दवणकरे,
१२. भूओवघाइए, तहप्पगारं मणो णो पहारेज्जा,
से तं अपसत्थमणविणए।

प्र०—अप्रशस्त मनोविनय क्या है ?

उ०—जो मन

१. सावद्य—पाप या गर्हित कर्म युक्त,
२. सक्रिय—प्राणातिपात आदि आरम्भ क्रिया सहित,
३. कर्कश,
४. कटुक—अपने लिए तथा औरों के लिए अनिष्ट,
५. निष्ठुर—कठोर—मृदुतारहित,
६. परुष—स्नेहरहित—रूखा,
७. आस्रवकारी—अशुभ कर्मग्राही,
८. छेदकर—किसी के हाथ, पैर आदि अंग तोड़ डालने का दुर्भाव रखने वाला,
९. भेदकर—नासिका आदि अंग काट डालने का बुरा भाव रखने वाला,
१०. परितापनकर—प्राणियों को सन्तप्त, परितप्त करने के भाव रखने वाला,
११. उपद्रवणकर—मारणान्तिक कष्ट देने अथवा धन-सम्पत्ति हर लेने का बुरा विचार रखने वाला,
१२. भूतोपघातिक—जीवों को घात करने का दुर्भाव रखने वाला होता है, वह अप्रशस्त मन है।

प०—से किं तं पसत्थमणविणए ?

उ०—पसत्थमणविणए जे य मणे—

१. असावज्जे, २. अकिरिए, ३. अकक्कसे, ४. अकडुए, ५. अणिट्ठुरे, ६. अफरुसे, ७. अणण्हयकरे, ८. अछेयकरे, ९. अभेयकरे, १०. अपरितावणकरे, ११. अणुद्दवणकरे, १२. अभूओवघाइए,,
तहप्पगारं मणं धारेज्जा सेत्तं पसत्थमणोविणएवणिए।

प्र०—प्रशस्त मन किसे कहते हैं ?

उ०—प्रशस्त मन विनय अर्थात्

१. असावद्य, २. निष्क्रिय, ३. अकर्कश, ४. अकटुक—इष्ट-मधुर, ५. अनिष्ठुर—मधुर-कोमल, ६. अपरुष—स्निग्ध-स्नेहमय, ७. अनास्रवकारी, ८. अछेदकर, ९. अभेदकर, १०. अपरितापनकर, ११. अनुपद्रवणकर—दयार्द्र, १२. अभूतोपघातिक—जीवों के प्रति करुणाशील-सुखकर होता है।

प०—से किं तं वइ विणए ?

उ०—वइ विणए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. पसत्थवइविणए, २. अपसत्थवइविणए।

प०—से किं तं अपसत्थ वइ विणए ?

उ०—अपसत्थ वइ विणए जे य भासे।

१. सावज्जे,

२. सकिरिए,

३. कक्कसे,

४. कडुए,

५. णिट्ठुरे,

६. फरुसे,

७. अण्हयकरे,

८. छेयकरे,

९. भेयकरे,

१०. परितावणकरे,

११. उद्दवणकरे,

१२. भूओवघाइए, तहप्पगारं वइं णो पहारेज्जा।

से त्तं अपसत्थ वइ विणए।

प०—से किं तं पसत्थ वइ विणए ?

उ०—पसत्थ वइ विणए जे ये भासे।

१. असावज्जे, २. अकिरिए, ३. अकक्कसे, ४. अकडुए, ५. अणिट्ठुरे, ६. अफरुसे, ७. अणण्हयकरे, ८. अछेयकरे, ९. अभेयकरे, १०. अपरितावणकरे, ११. अणुद्दवकरे, १२. अभूओवधाइए, तहप्पगारं वइं धारेज्जा।

से त्तं पसत्थ वइ विणए।

से त्तं वइ विणए।

प०—से किं तं कायविणए ?

उ०—कायविणए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. पसत्थकायविणए, २. अपसत्थकायविणए।

प०—से किं तं अपसत्थकायविणए ?

उ०—अपसत्थकायविणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—

प्र०—वचन विनय क्या है ?

उ०—वचन विनय दो प्रकार का कहा गया है—

१. प्रशस्त वचन विनय, २. अप्रशस्त वचन विनय,

प्र०—अप्रशस्त वचन विनय क्या है ?

उ०—जो वचन

१. सावद्य—पाप या गर्हित कर्मयुक्त,

२. सक्रिय—प्राणातिपात आदि आरम्भ क्रिया सहित,

३. कर्कश,

४. कटुक—अपने लिए तथा औरों के लिए अनिष्ट,

५. निष्ठुर—कठोर-मृदुता रहित,

६. परुष—स्नेहरहित-शुष्क,

७. आस्रवकारी—अशुभ कर्मग्राही,

८. छेदकर—किसी के हाथ, पैर आदि अंग काट डालने का दुर्वचन बोलने वाला,

९. भेदकर—नासिका आदि अंग काट डालने का बुरा वचन बोलने वाला,

१०. परितापनकर—प्राणियों को सन्ताप परिताप करने के वचन बोलने वाला,

११. उपद्रवणकर—मारणान्तिक कष्ट देने अथवा धन-सम्पत्ति हर लेने का बुरा वचन बोलने वाला,

१२. भूतोपघातिक—जीवों का घात करने का दुर्वचन बोलने वाला होता है।

यह अप्रशस्त वचनविनय है।

प्र०—प्रशस्त वचन विनय किसे कहते हैं ?

उ०—प्रशस्त वचन याने,

१. असावद्य, २. निष्क्रिय, ३. अकर्कश, ४. अकटुक—इष्ट-मधुर, ५. अनिष्ठुर—मधुर-कोमल, ६. अपरुष—स्निग्ध-स्नेहमय, ७. अनास्रवकारी, ८. अछेदकर, ९. अभेदकर, १०. अपरितापनकर, ११. अनुपद्रवणकर-दयार्द्र, १२. अभूतोपघातिक—जीवों के प्रति करुणाशील—सुखकर होता है।

यह प्रशस्त वचन विनय है।

यह वचन विनय है।

प्र०—काय-विनय क्या है ?

उ०—काय-विनय दो प्रकार का बतलाया गया है—

१. प्रशस्त काय-विनय, २. अप्रशस्त काय-विनय।

प्र०—अप्रशस्त काय-विनय क्या है ?

उ०—अप्रशस्त काय-विनय के सात भेद हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. अणाउत्तं गमणे,

१. अनायुक्त गमन—उपयोग—जागरूकता या सावधानी बिना चलना।

२. अणाउत्तं ठाणे,

२. अनायुक्त स्थान—बिना उपयोग स्थित होना-ठहरना, खड़ा होना।

३. अणाउत्तं निसीयणे,

३. अनायुक्त निषीदन—बिना उपयोग बैठना।

४. अणाउत्तं तुयट्टणे,

४. अनायुक्त त्वग्वर्तन—बिना उपयोग बिछौने पर करवट बदलना, सोना।

५. अणाउत्तं उल्लंघणे,

५. अनायुक्त उल्लंघन—बिना उपयोग कर्दम आदि का अतिक्रमण करना—कीचड़ आदि लांघना।

६. अणाउत्तं पलंघणे,

६. अनायुक्त प्रलंघन—बिना उपयोग बारबार लांघना।

७. अणाउत्तं सव्विंदियकायजोगजुंजणया,

७. अनायुक्त सर्वेन्द्रियकाययोग-योजनता—बिना उपयोग सभी इन्द्रियों तथा शरीर को योगयुक्त करना—विविध प्रवृत्तियों में लगाना।

से तं अपसत्थकायविणए।

यह अप्रशस्त काय विनय है।

प०—से किं तं पसत्थकायविणए ?

प्र०—प्रशस्त काय-विनय क्या है ?

उ०—पसत्थकायविणए सत्तविहे पण्णत्ते। तं जहा—

उ०—प्रशस्त काय-विनय के सात भेद हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. आउत्तं गमणे,

१. उपयुक्त गमन—उपयोग जागरूकता या सावधानी से चलना।

२. आउत्तं ठाणे,

२. उपयुक्त स्थान—उपयोग से स्थित होना-ठहरना, खड़ा होना।

३. आउत्तं निसीयणे,

३. उपयुक्त निषीदन—उपयोग से बैठना।

४. आउत्तं तुयट्टणे,

४. उपयुक्त त्वग्वर्तन—उपयोग से बिछौने पर करवट बदलना, सोना।

५. आउत्तं उल्लंघणे,

५. उपयुक्त उल्लंघन—उपयोग से कर्दम आदि का अतिक्रमण करना, कीचड़ आदि लांघना।

६. आउत्तं पलंघणे,

६. उपयुक्त प्रलंघन—उपयोग से बार-बार लांघना।

७. आउत्तं सव्विंदियकायजोगजुंजणया,

७. उपयुक्त सर्वेन्द्रियकाययोग-योजनता—उपयोग से सभी इन्द्रियों तथा शरीर को योगयुक्त करना—विविध प्रवृत्तियों में लगाना।

से तं पसत्थकायविणए, से तं कायविणए।

यह प्रशस्त कायविनय है। यह कायविनय है।

प०—से किं तं लोगोवयारविणए ?

प्र०—लोकोपचार-विनय क्या है ?

उ०—लोगोवयारविणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—

उ०—लोकोपचार-विनय के सात भेद बतलाये गये हैं, जो इस प्रकार हैं—

१. अब्भासवत्तियं,

१. अभ्यासवर्तिता—गुरुजनों, बड़ों, सत्पुरुषों के समीप बैठना।

२. परच्छंदाणुवत्तियं,

२. परच्छन्दानुवर्तिता—गुरुजनों, पूज्य जनों की इच्छानुरूप प्रवृत्ति करना।

३. कज्जहेउं,

३. कार्य हेतु—विद्या आदि प्राप्त करने हेतु, अथवा जिनसे विद्या प्राप्त की, उनकी सेवा-परिचर्या करना।

४. कयपडिकिरिया,

४. कृत-प्रतिक्रिया—अपने प्रति किये गये उपकारों के लिए कृतज्ञता अनुभव करते हुए सेवा-परिचर्या करना।

५. अत्तगवेसणया,

५. आर्त-गवेषणता—रुग्णता, वृद्धावस्था से पीड़ित संयत जनों, गुरुजनों, की सार-सम्हाल तथा औषधि, पथ्य आदि द्वारा सेवा-परिचर्या करना।

६. देसकालण्णया,

६. देशकालज्ञता—देश तथा समय को ध्यान में रखते हुए ऐसा आचरण करना, जिससे अपना मूल लक्ष्य व्याहत न हो।

७. सव्वट्ठेसु अप्पडिलोमया।

७. सर्वार्थाप्रतिलोमता—सभी अनुष्ठेय विषयों, कार्यों में विपरीत आचरण न करना, अनुकूल आचरण करना।

से तं लोगोवयारविणए,
से तं विणए।[1] —ओव. सु. ३०

यह लोकोपचार-विनय है।
इस प्रकार यह विनय का विवेचन है।

विणयपडिवण्णा पुरिसा—

११३. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा,

१. अब्भुट्ठेति णाममेगे णो अब्भुट्ठावेति,

२. अब्भुट्ठावेति णाममेगे णो अब्भुट्ठेति,

३. एगे अब्भुट्ठेति वि अब्भुट्ठावेति वि,

४. एगे णो अब्भुट्ठेति णो अब्भुट्ठावेति।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

१. वाएइ णाममेगे णो वायावेइ,

२. वायावेइ णाममेगे णो वाएइ,

३. एगे वाएइ वि वायावेइ वि,

४. एगे णो वाएइ णो वायावेइ।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

१. पडिच्छति णाममेगे णो पडिच्छावेति,

विनय प्रतिपन्न पुरुष—

११३. पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष (गुरुजनादि को देखकर) अभ्युत्थान करता है, किन्तु (दूसरों से) अभ्युत्थान करवाता नहीं।

२. कोई पुरुष (दूसरों से) अभ्युत्थान करवाता है, किन्तु (स्वयं) अभ्युत्थान नहीं करता।

३. कोई पुरुष स्वयं भी अभ्युत्थान करता है और दूसरों से भी अभ्युत्थान करवाता है।

४. कोई पुरुष न स्वयं अभ्युत्थान करता है और न दूसरों से भी अभ्युत्थान करवाता है।

पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष (गुरुजनादि की) वन्दना करता है, किन्तु (दूसरों से) वन्दना करवाता नहीं।

२. कोई पुरुष (दूसरों से) वन्दना करवाता है, किन्तु स्वयं वन्दना नहीं करता।

३. कोई पुरुष स्वयं भी वन्दना करता है और दूसरों से भी वन्दना करवाता है।

४. कोई पुरुष न स्वयं वन्दना करता है और न दूसरों से वन्दना करवाता है।

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. कोई पुरुष (गुरुजनादि का) सत्कार करता है, किन्तु (दूसरों से) सत्कार करवाता नहीं।

---

१ ठाणं. अ. ७, सु. ५८५

२. पडिच्छावेति णाममेगे णो पडिच्छति,

२. कोई पुरुष दूसरों से सत्कार करवाता है, किन्तु स्वयं सत्कार नहीं करता।

३. एगे पडिच्छति वि पडिच्छावेति वि,

३. कोई पुरुष स्वयं भी सत्कार करता है और दूसरों से भी सत्कार करवाता है।

४. एगे णो पडिच्छति णो पडिच्छावेति।

४. कोई पुरुष न स्वयं सत्कार करता है और न दूसरों से सत्कार करवाता है।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पुच्छइ णाममेगे णो पुच्छावेइ,

१. कोई पुरुष (गुरुजनादि का) सम्मान करता है, किन्तु (दूसरों से) सम्मान नहीं करवाता।

२. पुच्छावेइ णाममेगे णो पुच्छइ,

२. कोई पुरुष दूसरों से सम्मान करवाता है, किन्तु स्वयं सम्मान नहीं करता।

३. एगे पुच्छइ वि पुच्छावेइ वि,

३. कोई पुरुष स्वयं भी सम्मान करता है और दूसरों से भी सम्मान करवाता है।

४. एगे णो पुच्छइ णो पुच्छावेइ।

४. कोई पुरुष न स्वयं सम्मान करता है और न दूसरों से सम्मान करवाता है।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

१. पूएइ णाममेगे णो पूयावेति,

१. कोई पुरुष (गुरुजनादि की) पूजा करता है, किन्तु (दूसरों से) पूजा नहीं करवाता।

२. पूयावेति णाममेगे णो पूएइ,

२. कोई पुरुष दूसरों से पूजा करवाता है, किन्तु स्वयं पूजा नहीं करता।

३. एगे पूएइ वि पूयावेति वि,

३. कोई पुरुष स्वयं भी पूजा करता है और दूसरों से भी पूजा करवाता है।

४. एगे णो पूएइ णो पूयावेति।

—ठाणं अ. ४, उ. १, सु. २५६

४. कोई पुरुष न स्वयं पूजा करता है और न दूसरों से पूजा करवाता है।

विणीयस्स लक्खणाइं—

विनीत के लक्षण—

११४. आणानिद्देसकरे, गुरूणमुववायकारए।
इंगियागार-सम्पन्ने, से विणीए त्ति वुच्चइ॥

—उत्त. अ. १, गा. २

११४. आज्ञा निर्देश के अनुसार कार्य करने वाला, गुरुजनों के समीप बैठने वाला, और उनके इंगित तथा आकार के ज्ञान से जो सम्पन्न है वह विनीत कहा जाता है।

मणोगयं वक्कगयं, जाणित्तायरियस्स उ।
तं परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए॥

—उत्त. अ. १, गा. ४३

आचार्य के मनोगत और वाक्यगत भावों को जानकर, उनको वाणी से ग्रहण करे और कार्यरूप में परिणत करे।

कालं छंदोवयारं च, पडिलेहित्ताण हेउहिं।
तेण तेण उवाएण, तं तं संपडिवायए॥

—दस. अ. ९, उ. २, गा. २०

काल, अभिप्राय और आराधना विधि को हेतुओं से जानकर, उस-उस (तदनुकूल) उपाय के द्वारा उस-उस प्रयोजन का सम्प्रतिपादन करे—पूरा करे।

अमोहं वयणं कुज्जा, आयरियस्स महप्पणो।
तं परिगिज्झ वायाए, कम्मुणा उववायए॥

—दस. अ. ८, गा. ३३

मुनि महान् आत्मा आचार्य के वचन को सफल करे। (आचार्य जो कहे) उसे वाणी से ग्रहण कर कर्म से उसका आचरण करे।

आयरियं अग्गिमिवाहियग्गी, सुस्सूसमाणो पडिजागरेज्जा।
आलोइयं इंगियमेव नच्चा, जो छन्दमाराहयइ स पुज्जो॥

जैसे आहिताग्नि अग्नि की शुश्रूषा करता हुआ जागरूक रहता है, वैसे ही जो आचार्य की शुश्रूषा करता हुआ जागरूक रहता है, जो आचार्य के आलोकित और इंगित को जानकर उसके अभिप्राय की आराधना करता है, वह पूज्य है।

आयारमट्ठा विणयं पउंजे, सुस्सूसमाणो परिगिज्झ वक्कं।
जहोवइट्ठं अभिकंखमाणो, गुरुं तु नासाययई स पुज्जो॥
—दस. अ. ९, उ. ३, गा. १-२

जो आचार के लिए विनय का प्रयोग करता है, जो आचार्य को सुनने की इच्छा रखता हुआ उनके वाक्य को ग्रहण कर उपदेश के अनुकूल आचरण करता है, जो गुरु की आशातना नहीं करता, वह पूज्य है।

अट्ठविहा सिक्खासीला—

आठ प्रकार के शिक्षाशील—

११५. अह अट्ठहिं ठाणेहिं, सिक्खासीले त्ति वुच्चई।
अहस्सिरे सया दन्ते, न य मम्ममुदाहरे॥

नासीले न विसीले, न सिया अइलोलुए।
अकोहणे सच्चरए, सिक्खासीले त्ति वुच्चइ॥
—उत्त. अ. ११, गा. ४-५

११५. आठ स्थानों (हेतुओं) से व्यक्ति को शिक्षा-शील कहा जाता है। १. जो हास्य न करे, २. जो सदा इन्द्रिय और मन का दमन करे, ३. जो मर्म-प्रकाशन न करे,

४. जो चरित्र से हीन न हो, ५. जिसका चरित्र दोषों से कलुषित न हो, ६. जो रसों में अति लोलुप न हो, ७. जो क्रोध न करे, ८. जो सत्य में रत हो—उसे शिक्षा-शील कहा जाता है।

पण्णरसविहा सुविणीया—

पन्द्रह प्रकार के सुविनीत—

११६. अह पन्नरसहिं ठाणेहिं, सुविणीए त्ति वुच्चइ।
नीयावत्ती अचवले, अमाई अकुऊहले॥

११६. पन्द्रह स्थानों (हेतुओं) से सुविनीत कहलाता है। १. जो नम्र व्यवहार करता है, २. जो चपल नहीं होता, ३. जो मायावी नहीं होता, ४. जो कुतूहल नहीं करता,

अप्पं चाऽहिक्खिवई, पबन्धं च न कुव्वई।
मेत्तिज्जमाणो भयई, सुयं लद्धुं न मज्जई॥

५. जो किसी का तिरस्कार नहीं करता, ६. जो क्रोध को टिका कर नहीं रखता, ७. जो मित्रभाव रखने वाले के प्रति कृतज्ञ होता है, ८. जो श्रुत प्राप्त कर मद नहीं करता,

न य पावपरिक्खेवी, न य मित्तेसु कुप्पई।
अप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे कल्लाण भासई॥

९. जो स्खलना होने पर किसी का तिरस्कार नहीं करता, १०. जो मित्रों पर क्रोध नहीं करता, ११. जो अप्रिय मित्र की भी एकान्त में प्रशंसा करता है,

कलहडमरवज्जए, बुद्धे अभिजाइए।
हिरिमं पडिसंलीणे, सुविणीए त्ति वुच्चई॥
—उत्त. अ. ११, गा. १०-१३

१२. जो कलह और हाथा-पाई का वर्जन करता है, १३. जो कुलीन होता है, १४. जो लज्जावान् होता है, १५. जो प्रतिसंलीन (इन्द्रिय और मन का संगोपन करने वाला) होता है—वह बुद्धिमान मुनि विनीत कहलाता है।

सेहस्स करणीय कज्जाणि—

शिष्य के करणीय कार्य—

११७. आलवन्ते लवन्ते वा, न निसीएज्ज कयाइ वि।
चइऊणमासणं धीरो, जओ जत्तं पडिस्सुणे॥
—उत्त. अ. १, गा. २१

११७. बुद्धिमान शिष्य गुरु के एक बार बुलाने पर या बार-बार बुलाने पर कभी भी बैठा न रहे, किन्तु वे जो आदेश दें, उसे आसन को छोड़कर यत्न के साथ स्वीकार करे।

निसन्ते सियाऽमुहरी, बुद्धाणं अन्तिए सया।
अट्ठजुत्ताणि सिक्खेज्जा, निरट्ठाणि उ वज्जए॥

(शिष्य) आचार्य के समीप सदा प्रशान्त रहे। वाचालता न करे। उनके पास अर्थ-युत पदों को सीखे और निरर्थक कथाओं का वर्जन करे।

अणुसासिओ न कुप्पेज्जा, खंति सेविज्ज पण्डिए।
खुड्डेहिं सह संसग्गिं, हासं कीडं च वज्जए॥

(शिष्य) गुरु के द्वारा अनुशासित होने पर क्रोध न करे, क्षमा की आराधना करे। क्षुद्र व्यक्तियों के साथ संसर्ग, हास्य और क्रीड़ा न करे।

मा य चण्डालियं कासी, बहुयं मा य आलवे ।
कालेण य अहिज्जित्ता, तओ झाएज्ज एगगो ॥
—उत्त. अ. १, गा. ८-१०

(शिष्य) चण्डालोचित कर्म (क्रूर-व्यवहार) न करे । बहुत न बोले । स्वाध्याय के काल में स्वाध्याय करे और उसके पश्चात अकेला ध्यान करे ।

पडिणीयं च बुद्धाणं, वाया अदुव कम्मुणा ।
आवी वा जइ वा रहस्से, नेव कुज्जा कयाइ वि ॥
—उत्त. अ. १, गा. १७

(शिष्य) लोगों के समक्ष या एकान्त में, वचन से या कर्म से, कभी भी आचार्यों के प्रतिकूल वर्तन न करे ।

आयरिएहिं वाहित्तो, तुसिणीओ न कयाइ वि ।
पसाय-पेही नियागट्ठी, उवचिट्ठे गुरुं सया ॥
—उत्त. अ. १, गा. २०

आचार्यों के द्वारा बुलाये जाने पर किसी भी अवस्था में मौन न रहे, गुरु के प्रसाद को चाहने वाला, मोक्षाभिलाषी शिष्य सदा उनके समीप रहे ।

न कोवए आयरियं, अप्पाणं पि न कोवए ।
बुद्धोवघाई न सिया, न सिया तोत्तगवेसए ॥
—उत्त. अ. १, गा. ४०

शिष्य आचार्य को कुपित न करे । स्वयं भी कुपित न हो । आचार्य का उपघात करने वाला न हो । उनका छिद्रान्वेषी न हो ।

आहच्च चण्डालियं कट्टु, न निण्हविज्ज कयाइ वि ।
'कडं कडे' त्ति भासेज्जा, 'अकडं नो कडे' त्ति य ॥
—उत्त. अ. १, गा. ११

(शिष्य) सहसा चण्डालोचित कर्म कर उसे कभी भी न छिपाए । अकरणीय किया हो तो किया और नहीं किया हो तो न किया कहे ।

गुरुसमीवनिसीयण विही—

११८. न पक्खओ न पुरओ, नेव किच्चाण पिट्ठओ ।
न जुंजे ऊरुणा ऊरुं, सयणे नो पडिस्सुणे ॥

गुरु के समीप बैठने की विधि—

११८. (शिष्य) आचार्यों के बराबर न बैठे । आगे और पीछे भी न बैठे । उनके उरु (जांघ) से अपना उरु सटाकर न बैठे । बिछौने पर बैठा ही उनके आदेश को स्वीकार न करे, किन्तु उसे छोड़कर स्वीकार करे ।

नेव पल्हत्थियं कुज्जा, पक्खपिण्डं च संजए ।
पाए पसारिए वावि, न चिट्ठे गुरुणन्तिए ॥
—उत्त. अ. १, गा. १८-१९

संयमी मुनि गुरु के समीप पालथी लगाकर (घुटनों और जाँघों के चारों ओर वस्त्र बाँधकर) न बैठे । पक्ष-पिण्ड कर (दोनों हाथों से शरीर को बाँधकर) तथा पैरों को फैलाकर न बैठे ।

आसणे उवचिट्ठेज्जा, "अणुच्चे अकुए" थिरे ।
अप्पुट्ठाई निरुट्ठाई, निसीएज्जऽप्पकुक्कुए ॥
—उत्त. अ. १, गा. ३०

जो गुरु के आसन से नीचा हो, अकम्पमान हो और स्थिर हो (जिसके पाये धरती पर टिके हुए हों) वैसे आसन पर बैठे । प्रयोजन होने पर भी बार-बार न उठे । बैठे तब स्थिर एवं शान्त होकर बैठे । हाथ-पैर आदि से चपलता न करे ।

पण्ह पुच्छा विही—

११९. इहलोगपारत्तहियं, जेणं गच्छइ सोग्गइं ।
बहुस्सुयं पज्जुवासेज्जा, पुच्छेज्जऽत्थविणिच्छयं ॥
—दस. अ. ८, गा. ४३

प्रश्न पूछने की विधि—

११९. जिस श्रमणधर्म के द्वारा इहलोक और परलोक में हित होता है, मृत्यु के पश्चात् सुगति प्राप्त होती है, उसकी प्राप्ति के लिए वह बहुश्रुत की पर्युपासना करे और अर्थ विनिश्चय के लिए प्रश्न करे ।

आसण-गओ न पुच्छेज्जा, नेव "सेज्जा-गओ कयाइ" वि ।
आगम्मुक्कुडुओ[1] सन्तो, पुच्छेज्जा पंजलीउडो ॥
—उत्त. अ. १, गा. २२

आसन पर अथवा शय्या पर बैठा-बैठा कभी भी गुरु से कोई बात न पूछे, परन्तु उनके समीप आकर उकडू बैठ, हाथ जोड़कर पूछे ।

---

१ उत्कटासन—गोदुहासन को कहते हैं ।

अपुच्छिओ न भासेज्जा, भासमाणस्स अंतरा।
पिट्ठिमंसं न खाएज्जा, मायामोसं विवज्जए॥
—दस. अ. ८, गा. ४५

बिना पूछे न बोले, बीच में न बोले, पृष्ठमांस—चुगली न खाए और कपटपूर्ण असत्य का वर्जन करे।

नापुट्ठो वागरे किंचि[1], पुट्ठो वा नालियं वए।
कोहं असच्चं कुव्वेज्जा[2], धारेज्जा पियमप्पियं॥
—उत्त. अ. १, गा. १४

बिना पूछे कुछ भी न बोले। पूछने पर असत्य न बोले। क्रोध न करे। आ जाए तो उसे विफल कर दे। प्रिय और अप्रिय को धारण करे—उन पर राग और द्वेष न करे।

न लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं, न निरट्ठं न मम्मयं[3]।
अप्पणट्ठा परट्ठा वा, उभयस्सन्तरेण वा॥
—उत्त. अ. १, गा. २५

किसी के पूछने पर भी अपने, पराये या दोनों के प्रयोजन के लिए अथवा अकारण ही सावद्य न बोले, निरर्थक न बोले और मर्म-भेदी वचन न बोले।

सेहकयपण्हस्स गुरु विण्णमुत्तरं—

शिष्य के प्रश्न पर गुरु द्वारा उत्तर—

१२०. एवं विणयजुत्तस्स, सुत्तं अत्थं च तदुभयं।
पुच्छमाणस्स सीसस्स, वागरेज्ज जहासुयं॥
—उत्त. अ. १, गा. २३

१२०. इस प्रकार जो शिष्य विनय-युक्त हो, उसके पूछने पर गुरु सूत्र, अर्थ और तदुभय (सूत्र और अर्थ दोनों) जैसे सुने हों (जाने हुए हों) वैसे बताये।

गुरुं पइ सेहस्स किच्चाइं—

गुरु के प्रति शिष्य के कर्तव्य—

१२१. तेसिं गुरूणं गुणसागराणं, सोच्चाण मेहावि सुभासियाइं।
चरे मुणी पंचरए तिगुत्तो, चउक्कसायावगए स पुज्जो॥

१२१. जो मेधावी मुनि उन गुण-सागर गुरुओं के सुभाषित सुनकर उनका आचरण करता है, पाँच महाव्रतों में रत, मन, वाणी और शरीर से गुप्त तथा क्रोध, मान, माया और लोभ को दूर करता है, वह पूज्य है।

गुरुमिह सययं पडियरिय मुणी, जिणवयनिउणे अभिगमकुसले।
धुणिय रयमलं पुरेकडं, भासुरमउलं गइं गय॥
—दस. अ. ९, उ. ३, गा. १४-१५

इस लोक में गुरु की सतत सेवा कर, जिनमत-निपुण (आगम-निपुण) और अभिगम (विनय-प्रतिपत्ति) में कुशल मुनि पहले किए हुए रज और मल को कम्पित कर प्रकाशयुक्त अनुपम गति को प्राप्त होता है।

सेहं पइ गुरुस्स किच्चाइं—

शिष्य के प्रति गुरु के कर्तव्य—

१२२. जे माणिया सययं माणयंति, जत्तेण कन्नं व निवेसयंति।
ते माणए माणरिहे तवस्सी, जिइंदिए सच्चरए स पुज्जो॥
—दस. अ. ९, उ. ३, गा. १३

१२२. अभ्युत्थान आदि के द्वारा सम्मानित किये जाने पर जो शिष्यों को सतत सम्मानित करते हैं—श्रुत ग्रहण के लिए प्रेरित करते हैं, पिता जैसे अपनी कन्या को यत्नपूर्वक योग्य कुल में स्थापित करता है, वैसे ही आचार्य अपने शिष्यों को योग्य मार्ग में स्थापित करते हैं, उन माननीय, तपस्वी, जितेन्द्रिय और सत्य-रत आचार्य का जो सम्मान करता है वह पूज्य है।

अणुसासणे सेहस्स किच्चाइं—

अनुशासन-पालन में शिष्य के कर्तव्य—

१२३. जं मे बुद्धाणुसासन्ति, सीएण फरुसेण वा।
मम लाभो त्ति पेहाए, पयओ तं पडिस्सुणे॥

१२३. "आचार्य मुझ पर कोमल या कठोर वचनों से जो अनुशासन करते हैं वह मेरे लाभ के लिए है"—ऐसा सोचकर प्रयत्नपूर्वक उनके वचनों को स्वीकार करे।

---

१ अपुच्छिओ णिक्कारणं न भासते। —जीतकल्प चूर्णी, पृ. २८८

२ कदाचित् क्रोध आ जाय तो उपशान्त होकर दुःसंकल्प, दुर्वचन एवं दुष्कृत्य का पश्चात्ताप करे। क्रोध के असत्य करने की, अर्थात् क्रोध करने से संचित अशुभ कर्मवर्गणा के क्षय की यही विधि है।

३ लोकविरुद्ध या राज्यविरुद्ध आदि, जिसके प्रगट होने से मनुष्य को अपयश के भय से मरना पड़े वह वचन मर्म वचन है।

अणुसासणमोवायं, दुक्कडस्स य चोयणं ।
हियं तं मन्नए पण्णो, वेसं होइ असाहुणो ॥

मृदु या कठोर वचनों से किया जाने वाला अनुशासन दुष्कृत का निवारक होता है । प्रज्ञावान् मुनि उसे हित मानता है । वही असाधु के लिए द्वेष का हेतु बन जाता है ।

हियं विगय-भया बुद्धा, फरुसं पि अणुसासणं ।
वेसं तं होइ मूढाणं, खन्ति-सोहिकरं पयं ॥
—उत्त. अ. १, गा. २७-२९

भय-मुक्त बुद्धिमान शिष्य गुरु के कठोर अनुशासन को भी हितकर मानते हैं । परन्तु अज्ञानियों के लिए वही— क्षमा और चित्त-विशुद्धि करने वाला गुण-वृद्धि का आधारभूत—अनुशासन द्वेष का हेतु बन जाता है ।

गुरुकयाणुसासणस्स पभावो—

गुरु के अनुशासन का शिष्य पर प्रभाव—

१२४. रमए पण्डिए सासं, हयं भद्दं व वाहए ।
बालं सम्मइ सासन्तो, गलियस्सं व वाहए ॥
—उत्त. अ. १, गा. ३७

१२४. जैसे उत्तम घोड़े को हाँकते हुए उसका वाहक आनन्द पाता है, वैसे ही पण्डित (विनीत) शिष्य पर अनुशासन करता हुआ गुरु आनन्द पाता है और जैसे दुष्ट घोड़े को हाँकते हुए उसका वाहक खिन्न होता है वैसे ही बाल (अविनीत) शिष्य पर अनुशासन करता हुआ गुरु खिन्न होता है ।

कुवियगुरु पसायणट्ठा सेहस्स किच्चाइं—

कुपित गुरु के प्रति शिष्य के कर्तव्य—

१२५. आयरियं कुवियं नच्चा, पत्तिएण पसायए ।
विज्झवेज्ज पंजलिउडो, वएज्ज न पुणो त्ति य ॥
—उत्त. अ. १, गा. ४१

१२५. आचार्य को कुपित हुए जानकर विनीत शिष्य प्रतीतिकारक (या प्रीतिकारक) वचनों से उन्हें प्रसन्न करे । हाथ जोड़कर उन्हें शान्त करे और यों कहे कि "मैं ऐसा पुनः नहीं करूँगा ।"

चउव्विहा विणयसमाही—

चार प्रकार की विनय-समाधि—

१२६. सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं—इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा पन्नत्ता ।

१२६. आयुष्मन् ! मैंने सुना है उन भगवान् (प्रज्ञापक आचार्य प्रभवस्वामी) ने इस प्रकार कहा—इस निर्ग्रन्थ-प्रवचन में स्थविर भगवान् ने विनय समाधि के चार स्थानों का प्रज्ञापन किया है ।

प०—कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा पन्नत्ता ?

प्र०—वे विनय-समाधि के चार स्थान कौन से हैं जिनका स्थविर भगवान् ने प्रज्ञापन किया है ?

उ०—इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं चत्तारि विणयसमाहिट्ठाणा पन्नत्ता, तं जहा—

१. विणयसमाही, २. सुयसमाही,
३. तवसमाही, ४. आयारसमाही ।

उ०—वे विनय-समाधि के चार प्रकार ये हैं, जिनका स्थविर भगवान ने प्रज्ञापन किया है, जैसे—

(१) विनय-समाधि (२) श्रुत-समाधि,
(३) तप-समाधि, (४) आचार-समाधि ।

विणए सुए अ तवे, य आयारे निच्चं पंडिया ।
अभिरामयंति अप्पाणं, जे भवंति जिइंदिया ॥

जो जितेन्द्रिय होते हैं वे पण्डित पुरुष अपनी आत्मा को सदा विनय, श्रुत, तप और आचार में लीन किये रहते हैं ।

चउव्विहा खलु विणयसमाही भवइ तं जहा—

१. अणुसासिज्जंतो सुस्सूसइ,
२. सम्मं संपडिवज्जइ,
३. वेयमाराहइ,
४. न य भवइ अत्तसंपग्गहिए ।

चउत्थं पयं भवइ । भवइ य इत्थ सिलोगो—

विनय-समाधि के चार प्रकार हैं, जैसे—

(१) शिष्य आचार्य के अनुशासन को सुनना चाहता है ।
(२) अनुशासन को सम्यग् रूप से स्वीकार करता है ।
(३) वेद (ज्ञान) की आराधना करता है अथवा (अनुशासन के अनुकूल आचरण कर आचार्य की वाणी को सफल बनाता है) ।
(४) आत्मोत्कर्ष (गर्व) नहीं करता—

यह चतुर्थ पद है और यहाँ (विनय-समाधि के प्रकरण) में एक श्लोक है —

वेहेइ हियाणुसासणं, सुस्सूसइ तं च पुणो अहिट्ठए।
न य माणमएण मज्जइ, विणयसमाही आययट्ठिए॥
—दस. अ. ९, उ. ४, सु. १-४, गा. १-२

(१) मोक्षार्थी मुनि हितानुशासन की अभिलाषा करता है—सुनना चाहता है।

(२) शुश्रूषा करता है—अनुशासन को सम्यग् रूप से ग्रहण करता है।

(३) अनुशासन के अनुकूल आचरण करता है।

(४) मैं विनय-समाधि में कुशल हूँ—इस प्रकार गर्व के उन्माद से उन्मत्त नहीं होता।

विणयस्स सुफलं—

१२७. तम्हा विणयमेसेज्जा, सीलं पडिलभेज्जओ।
बुद्ध-पुत्ते नियागट्ठी, न निक्कसिज्जइ कण्हुई॥
—उत्त. अ. १, गा. ७

नच्चा नमइ मेहावी, लोए "कित्ती से" जायए।
हवई किच्चाणं सरणं, भूयाणं जगई जहा॥

पुज्जा जस्स पसीयन्ति, संबुद्धा पुव्वसंथुया।
पसन्ना लाभइस्सन्ति, विउलं अट्ठियं सुयं॥

स पुज्जसत्थे सुविणीयसंसए,
"मणोरुई" चिट्ठइ कम्म-संपया।

तवोसमायारिसमाहिसंवुडे,
महज्जुई पंच-वयाइं पालिया॥

स देव-गन्धव्व-मणुस्सपूइए, चइत्तु देहं मलपंकपुव्वयं।
सिद्धे वा हवइ सासए, देवे वा अप्परए महिड्ढिए॥
—उत्त. अ. १, गा. ४५,४८

विनय का सुपरिणाम—

१२७. इसलिए विनय का आचरण जिससे शील की प्राप्ति हो। जो बुद्ध (आचार्य का प्रिय शिष्य) और मोक्ष का अभिलाषी होता है, वह गण से नहीं निकाला जाता।

मेधावी मुनि उक्त विनय-पद्धति को जानकर उसे क्रियान्वित करने में तत्पर हो जाता है। उसकी लोक में कीर्ति होती है। जिस प्रकार पृथ्वी प्राणियों के लिए आधार होती है, उसी प्रकार वह धर्माचरण करने वालों के लिए आधार होता है।

उस पर तत्त्ववित् पूज्य आचार्य प्रसन्न होते हैं। अध्ययन-काल से पूर्व ही वे उसके विनय-समाचरण से परिचित होते हैं। वे प्रसन्न होकर उसे मोक्ष के हेतुभूत विपुल श्रुत-ज्ञान का लाभ करवाते हैं।

वह पूज्य होता है—उसके शास्त्रीय ज्ञान का बहुत सम्मान होता है उसके सारे संशय मिट जाते हैं। वह गुरु के मन को भाता है। वह कर्म-सम्पदा (दसविध समाचारी) से सम्पन्न होकर रहता है।

वह तप-समाचारी और समाधि से संवृत्त होता है। पाँच महाव्रतों का पालन कर महान् तेजस्वी हो जाता है।

देव, गन्धर्व और मनुष्यों से पूजित वह विनीत शिष्य मल और पंक से बने हुए शरीर को त्यागकर या तो शाश्वत सिद्ध होता है या अल्पकर्म वाला महर्द्धिक देव होता है।

अविणीय लक्खणाइं—

१२८. आणाऽनिद्देसकरे, गुरूणमणुववायकारए।
पडिणीए असंबुद्धे, "अविणीए त्ति" वुच्चई॥
—उत्त. अ. १, गा. ३

आयरियउवज्झाएहिं, सुयं विणयं च गाहिए।
ते चेव खिंसई बाले, पावसमणि त्ति वुच्चई॥

आयरियउवज्झायाणं, सम्मं नो पडितप्पइ।
अप्पडिपूयए थद्धे, पावसमणि त्ति वुच्चई॥
—उत्त. अ. १७, गा. ४-५

अविनीत के लक्षण—

१२८. जो गुरु की आज्ञा और निर्देश का पालन नहीं करता, गुरु की शुश्रूषा नहीं करता, जो गुरु के प्रतिकूल वर्तन करता है और तथ्य को नहीं जानता, वह "अविनीत" कहलाता है।

जिन आचार्य और उपाध्याय ने श्रुत और विनय सिखाया उन्हीं की निन्दा करता है, वह विवेक-विकल भिक्षु पाप-श्रमण कहलाता है।

जो आचार्य और उपाध्याय के कार्यों की सम्यक् प्रकार से चिन्ता नहीं करता—उनकी सेवा नहीं करता, जो बड़ों का सम्मान नहीं करता, जो अभिमानी होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है।

तिविहे अविणए—

१२९. अविणए तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—

देसच्चाई,

निरालंबणता,

णाणा पेज्जदोसे।

—ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८३

तीन प्रकार के अविनय—

१२९. अविनय तीन प्रकार का कहा गया है—

(१) देशत्यागी—स्वामी को गाली आदि देकर देश को छोड़कर चले जाना।

(२) निरालम्बन—गच्छ या कुटुम्ब को छोड़ देना या उससे अलग हो जाना।

(३) नानाप्रेयोद्वेषी—नाना प्रकारों से लोगों के साथ राग-द्वेष करना।

चउद्दसविहे अविणीए—

१३०. अह चउदसहिं ठाणेहिं, वट्टमाणे उ संजए।
अविणीए वुच्चई सो उ, निव्वाणं च न गच्छइ॥

अभिक्खणं कोही हवइ, पबन्धं च पकुव्वई।
मित्तिज्जमाणो वमई, सुयं लद्धूण मज्जई॥

अवि पावपरिक्खेवी, अवि मित्तेसु कुप्पई।
सुप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे भासइ पावगं॥

पइण्णवाई दुहिले, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे।
असंविभागी अचियत्ते, अविणीए त्ति वुच्चई॥

—उत्त. अ. ११, गा. ६-९

चौदह प्रकार के अविनीत—

१३०. चौदह स्थानों (हेतुओं) में वर्तन करने वाला संयमी अविनीत कहा जाता है। वह निर्वाण को प्राप्त नहीं होता।

(१) जो बार-बार क्रोध करता है, (२) जो क्रोध को टिकाकर रखता है, (३) जो मित्रभाव रखने वाले को भी ठुकराता है, (४) जो श्रुत प्राप्त कर मद करता है,

(५) जो किसी की स्खलना होने पर उसका तिरस्कार करता है, (६) जो मित्रों पर कुपित होता है, (७) जो अत्यन्त प्रिय मित्र की भी एकान्त में बुराई करता है,

(८) जो असंबद्ध-भाषी है, (९) जो देशद्रोही है, (१०) जो अभिमानी है, (११) जो सरस आहार आदि में लुब्ध है, (१२) जो अजितेन्द्रिय है, (१३) जो असंविभागी है, (१४) जो अप्रीतिकर है—वह अविनीत कहलाता है।

अविणीय सरूवं—

१३१. एवं ते सिस्सा दिया य, राओ य अणुपुव्वेण वाइया तेहिं महावीरेहिं पण्णाणमंतेहिं,

तेसिंतिए पन्नाणमुवलब्भ हेच्चा उवसमं फारुसियं समादियंति।

वसित्ता बंभचेरंसि आणं तं णो त्ति मन्नमाणा।

आघायं तु सोच्चा निसम्म "समणुन्ना जीविस्सामो" एगे णिक्खम्म ते असंभवंता विडज्झमाणा कामेसु गिद्धा अज्झोववन्ना समाहिमाघायमझोसयंता सत्थारमेव फरुसं वयंति।

सीलमंता उवसंता संखाए रीयमाणा, "असीला" अणुवयमाणस्स बितिया मंदस्स बालया।

अविनीत का स्वरूप—

१३१. जिस प्रकार पक्षी अपने शावकों का शिक्षण देते हैं उसी प्रकार जो ज्ञान न होने के कारण जिनोक्त धर्म की आराधना के लिए उद्यत नहीं हैं उन शिष्यों को दिन-रात गुरुजन अध्ययन कराते हैं।

इस प्रकार महापराक्रमी प्रज्ञावान् गुरुओं से पढ़ाये गये उन शिष्यों में कुछ ऐसे होते हैं जो गुरुओं से आगम-ज्ञान प्राप्त करने के अनन्तर उपशमभाव छोड़कर ज्ञान-गर्व से उद्धत हो जाते हैं।

कुछ शिष्य ऐसे होते हैं जो संयमी बनने के पश्चात् जिनाज्ञा की अवहेलना करते हुए शरीर की शोभा बढ़ाते हैं।

"हम सर्वमान्य बनेंगे" ऐसा सोचकर कुछ शिष्य दीक्षा लेते हैं और वे मोक्षमार्ग के पथिक बनकर काम-वासनाजन्य सुख में आसक्त बन जिनोक्त समाधिभाव को प्राप्त नहीं होते हैं और जो उन्हें हितशिक्षा देते हैं वे उन्हें कर्कश वचन कहते हैं।

कुछ कुशील शिष्य उपशान्त एवं विवेकी श्रमणों को "शील-भ्रष्ट" कहते हैं—यह उन पासत्थादिक मन्दजनों की दुगुनी मूर्खता है।

णियट्टमाणा वेगे आयारगोयरमाइक्खंति ।

कुछ शिष्य स्वयं संयम का पालन नहीं करते हैं, किन्तु शुद्ध आचार-गोचर का कथन करते हैं।

नाणब्भट्ठा, दंसणलूसिणो नममाणा एगे जीवियं विप्परिणामेंति ।

कुछ शिष्य ज्ञान-दर्शन भ्रष्ट हैं किन्तु वे ऐसा कहते हैं—कि "हम जैसा आचरण कर रहे हैं वही शुद्ध आचार है" इसलिए ज्ञान-दर्शनभ्रष्ट वे शिष्य विनयी होते हुए भी आचार-भ्रष्ट हैं।

पुट्ठा वेगे णियच्छंति, जीवियस्सेव कारणा । निक्खंतं पि तेसिं दुन्निक्खंतं भवई ।

कुछ अज्ञ शिष्य परीषहों से पीड़ित होने पर सुख सुविधा के लिए संयम भ्रष्ट हो जाते हैं ऐसे व्यक्तियों का गृहत्याग भी निरर्थक होता है।

बालवयणिज्जा हु ते नरा पुणो पुणो जातिं पकप्पेंति अहे संभवंता विद्दायमाणा "अहमंसीति विउक्कसे" उदासीणे फरुसं वयंति । पलियं पगंथे, अदुवा अगंथे अतहेहिं—तं मेहावी जाणिज्जा धम्मं ।

वे असंयमी शिष्य अज्ञ जनों में भी निन्दनीय होते हैं, कुछ अल्पज्ञ शिष्य—विद्वत्ता का दिखावा करते हुए "मैं विद्वान् हूँ," ऐसा कहकर मध्यस्थ श्रमणों की अवहेलना करते हैं अथवा मिथ्या-दोषारोपण करके अवहेलना करते हैं। अतः वे पुनः पुनः चारों गतियों में जन्म लेते हैं इसलिए मेधावी शिष्य विनयधर्म को जाने।

एवं तेसिं भगवओ अणुट्ठाणे जहा से दिएपोए । एवं ते सिस्सा दिया य, राओ य अणुपुव्वेण वाइय त्ति बेमि ।

—आ. सु. १, अ. ६, उ. ३, सु. १८६-१९१

जिस प्रकार पक्षी के बच्चे का (पंख आने तक उसके माता-पिता द्वारा) पालन किया जाता है, उसी प्रकार (भगवान महावीर के) धर्म में जो अभी तक अनुत्थित है, (जिनकी बुद्धि अभी तक धर्म में संस्कारबद्ध नहीं हुई है) उन शिष्यों का वे (आचार्य) क्रमशः वाचना आदि के द्वारा दिन-रात पालन—संवर्द्धन करते हैं, ऐसा मैं कहता हूँ।

गुरुआईणं पडिणीया—

गुरु आदि के प्रत्यनीक—

१३२. रायगिहे नयरे-जाव-एवं वयासी—

१३२. राजगृह नगर में (गौतम स्वामी ने) यावत् (श्रमण भगवान् महावीर से) इस प्रकार पूछा—

प्र०—गुरु णं भंते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?

प्र०—भगवन् ! गुरुदेव की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक (द्वेषी या विरोधी) कहे गए हैं ?

उ०—गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—
आयरियपडिणीए, उवज्झायपडिणीए,
थेरपडिणीए ।

उ०—गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं वे इस प्रकार—
(१) आचार्य-प्रत्यनीक, (२) उपाध्याय-प्रत्यनीक,
(३) स्थविर-प्रत्यनीक ।

प०—गइं णं भंते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?

प्र०—भगवन् ! गति की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए हैं ?

उ०—गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—
इहलोगपडिणीए, परलोगपडिणीए,
दुहओलोगपडिणीए ।

उ०—गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं। वे इस प्रकार—
(१) इहलोक-प्रत्यनीक, (२) परलोक-प्रत्यनीक,
(३) उभयलोक-प्रत्यनीक ।

प०—समूहं णं भंते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?

प्र०—भगवन् ! समूह (श्रमणसंघ) की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए हैं ?

उ०—गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—
कुलपडिणीए, गणपडिणीए,
संघपडिणीए ।

उ०—गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं। वे इस प्रकार—
(१) कुल-प्रत्यनीक, (२) गण-प्रत्यनीक,
(३) संघ-प्रत्यनीक ।

प०—अणुकंपं पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—
तवस्सिपडिणीए, गिलाणपडिणीए,
सेहपडिणीए ।

प्र०—भगवन् ! अनुकम्प्य (साधुओं) की अपेक्षा से कितने प्रत्यनीक कहे गए हैं ?

उ०—गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं। वे इस प्रकार—
(१) तपस्वी-प्रत्यनीक, (२) ग्लान-प्रत्यनीक,
(३) शैक्ष (नवदीक्षित)-प्रत्यनीक।

प०—सुयं णं भंते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—
सुत्तपडिणीए, अत्थपडिणीए,
तदुभयपडिणीए ।

प्र०—भगवन् ! श्रुत की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए हैं ?

उ०—गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं। वे इस प्रकार—
(१) सूत्रप्रत्यनीक, (२) अर्थप्रत्यनीक,
(३) तदुभयप्रत्यनीक।

प०—भावं णं भंते ! पडुच्च कति पडिणीया पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा—
नाणपडिणीए, दंसणपडिणीए,
चरित्तपडिणीए ।[1] —वि. स. ८, उ. ८, सु. १-७

प्र०—भगवन् ! भाव की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गए हैं ?

उ०—गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गए हैं। वे इस प्रकार—
(१) ज्ञान-प्रत्यनीक, (२) दर्शन-प्रत्यनीक
(३) चारित्र-प्रत्यनीक।

अविणीय उवमाइं—

अविनीत की उपमाएँ—

१३३. जहा सुणी पूइ-कण्णी, निक्कसिज्जइ सव्वसो ।
एवं दुस्सील-पडिणीए, मुहरी निक्कसिज्जई ॥

१३३. जैसे सड़े हुए कानों वाली कुतिया सभी स्थानों से निकाली जाती है, वैसे ही दुःशील, गुरु के प्रतिकूल वर्तन करने वाला और वाचाल भिक्षु गण से निकाल दिया जाता है।

कण-कुण्डगं चइत्ताणं, विट्ठं भुंजइ सूयरे ।
एवं सीलं चइत्ताणं, दुस्सीले रमई मिए ॥

जिस प्रकार सूअर चावलों की भूसी को छोड़कर विष्ठा खाता है, वैसे ही अज्ञानी भिक्षु शील को छोड़कर दुःशील में रमण करता है।

सुणियाऽभावं साणस्स, सूयरस्स नरस्स य ।
विणए ठवेज्ज अप्पाणं, इच्छन्तो हियमप्पणो ॥
—उत्त. अ. १, गा. ४-६

अपनी आत्मा का हित चाहने वाला भिक्षु कुतिया और सूअर की तरह दुष्ट मनुष्य के अभाव (हीन भाव) को सुनकर अपने आप को विनय में स्थापित करे।

मा "गलियस्से व" कसं, वयणमिच्छे पुणो पुणो ।
कसं व दट्ठुमाइण्णे, पावगं परिवज्जए ॥
—उत्त. अ. १, गा. १२

जैसे अविनीत घोड़ा चाबुक को बार-बार चाहता है, वैसे विनीत शिष्य गुरु के वचन को (आदेश-उपदेश) को बार-बार न चाहे। जैसे विनीत घोड़ा चाबुक को देखते ही उन्मार्ग को छोड़ देता है, वैसे ही विनीत शिष्य गुरु के इंगित और आकार को देखकर अशुभ प्रवृत्ति छोड़ दे।

जे य चंडे मिए थद्धे, दुव्वाई नियडी सढे ।
वुज्झइ से अविणीयप्पा, कट्ठं सोयगयं जहा ॥

जो चण्ड, मृग-अज्ञ, स्तब्ध, अप्रियवादी, मायावी और शठ है, वह अविनीतात्मा संसार-स्रोत में वैसे ही प्रवाहित होता रहता है जैसे नदी के स्रोत में पड़ा हुआ काठ।

विणयं पि जो उवाएणं, चोइओ कुप्पई नरो ॥
दिव्वं सो सिरिमेज्जंतिं, दंडेण पडिसेहए ॥
—दस. अ. ९, उ. २, सु. ३-४

विनय में उपाय के द्वारा भी प्रेरित करने पर जो कुपित होता है, वह आती हुई दिव्य लक्ष्मी को डण्डे से रोकता है।

---

१ ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. २०८

खलुंके जो उ जोएइ, विहम्माणो किलिस्सई।
असमाहिं च वेएइ, तोत्तओ य से भज्जई[1]॥

जो खलुंक (दुष्ट) बैलों को जोतता है, वह उन्हें मारता हुआ क्लेश पाता है, असमाधि का अनुभव करता है और अन्ततः उसका चाबुक भी टूट जाता है।

एगं डसइ पुच्छंमि, एगं विन्धइऽभिक्खणं।
एगो भंजइ समिलं, एगो उप्पहपट्ठिओ॥

वह क्षुब्ध हुआ वाहक किसी की पूछ काट देता है, तो किसी को बार-बार बींधता है। और उन बैलों में से कोई एक समिला—जुए की कील को तोड़ देता है, तो दूसरा उन्मार्ग पर चल पड़ता है।

एगो पडइ पासेणं, निवेसइ निविज्जई।
उक्कुद्दइ उप्फिडई, सढे बालगवी वए॥

कोई मार्ग के एक ओर पार्श्व (बगल) में गिर पड़ता है कोई बैठ जाता है, कोई लेट जाता है। कोई कूदता है, कोई उछलता है, तो कोई शठ बालगवी—तरुण गाय के पीछे भाग जाता है।

माई मुद्धेण पडई, कुद्धे गच्छइ पडिप्पहं।
मयलक्खेण चिट्ठई, वेगेण य पहावई॥

कोई धूर्त बैल शिर को निढाल बनाकर भूमि पर गिर जाता है। कोई क्रोधित होकर प्रतिपथ-उन्मार्ग में चला जाता है। कोई मृतक-सा पड़ा रहता है, तो कोई वेग से दौड़ने लगता है।

छिन्नाले छिन्दई सिल्लिं, दुद्दन्तो भंजए जुगं।
से वि य सुस्सुयाइत्ता, उज्जाहित्ता पलायए॥

कोई छिन्नाल—दुष्ट बैल रास को छिन्न-भिन्न कर देता है। दुर्दान्त होकर जुए को तोड़ देता है। और सूं-सूं आवाज करके वाहन को छोड़कर भाग जाता है।

खलुंका जारिसा जोज्जा, दुस्सीसा वि हु तारिसा।
जोइया धम्मजाणम्मि, भज्जन्ति धिइदुब्बला॥

अयोग्य बैल जैसे वाहन को तोड़ देते हैं, वैसे ही धैर्य में कमजोर शिष्यों को धर्म-यान में जोतने पर वे भी उसे तोड़ देते हैं।

इड्ढीगारविए एगे, एगेऽत्थ रसगारवे।
सायागारविए एगे, एगे सुचिरकोहणे॥

कोई ऋद्धि—ऐश्वर्य का गौरव (अहंकार) करता है, कोई रस का गौरव करता है, कोई सात—सुख का गौरव करता है, तो कोई चिरकाल तक क्रोध करता है।

भिक्खालसिए एगे, एगे ओमाणभीरुए थद्धे।
एगं च अणुसासम्मी, हेऊहिं कारणेहिं य॥

कोई भिक्षाचरी में आलस्य करता है, कोई अपमान से डरता है, तो कोई स्तब्ध है—धीठ है। हेतु और कारणों से गुरु कभी किसी को अनुशासित करता है।

सो वि अन्तरभासिल्लो, दोसमेव पकुव्वई।
आयरियाणं तं वयणं, पडिकूलेइ अभिक्खणं॥

तब वह बीच में ही बोल उठता है, मन में द्वेष प्रकट करता है तथा बार-बार आचार्य के वचनों के प्रतिकूल आचरण करता है।

न सा ममं वियाणाइ, न वि सा मज्झ दाहिई।
निग्गया होहिई मन्ने, साहू अन्नोऽत्थ वच्चउ॥

(गुरु प्रयोजनवश किसी श्राविका से कोई वस्तु लाने को कहे, तब वह कहता है) वह मुझे नहीं जानती, वह मुझे नहीं देगी, मैं जानता हूँ, वह घर से बाहर गई होगी। इस कार्य के लिए मैं ही क्यों, कोई दूसरा साधु चला जाए।

पेसिया पलिउंचन्ति, ते परियन्ति समन्तओ।
रायवेट्ठिं व मन्नन्ता, करेन्ति भिउडिं मुहे॥

किसी कार्य के लिए उन्हें भेजा जाता है और वह कार्य किए बिना ही लौट आते हैं। पूछने पर कहते हैं—उस कार्य के लिए आपने हमसे कब कहा था? वे चारों ओर घूमते हैं, किन्तु गुरु के पास कभी नहीं बैठते। कभी गुरु का कहा कोई काम करते हैं तो उसे राजा की बेगार की भाँति मानते हुए मुंह पर भृकुटी तान लेते हैं—मुंह को मचोट लेते हैं।

१ दुग्गओ वा पओएणं चोइओ वहई रहं। एवं दुब्बुद्धि किच्चाणं वुत्तो वुत्तो पकुव्वई॥ —दस. अ. ९, उ. २, गा. १९

वाइया संगहिया चेव, "भत्तपाणे य" पोसिया।
जायपक्खा जहा हंसा, पक्कमन्ति दिसोदिसिं॥

(आचार्य सोचते हैं) मैंने उन्हें पढ़ाया, संगृहीत (दीक्षित) किया भक्त-पान से पोषित किया, किन्तु कुछ योग्य बनने पर वे वैसे ही बन गए हैं, जैसे पंख आने पर हंस विभिन्न दिशाओं में प्रक्रमण कर जाते हैं—दूर-दूर उड़ जाते हैं।

अह सारही विचिन्तेइ, खलुंकेहिं समागओ।
किं मज्झ दुट्ठसीसेहिं, अप्पा मे अवसीयई॥

कुशिष्यों द्वारा खिन्न होकर सारथि (आचार्य) सोचते हैं—इन दुष्ट शिष्यों से मुझे क्या? इनके संसर्ग से मेरी आत्मा अवसन्न व्याकुल होती है।

जारिसा मम सीसाउ, तारिसा गलिगद्दहा।
गलिगद्दहे चइत्ताणं, दढं परिगिण्हइ तवं॥

—उत्त. अ. २७, गा. ३-१६

जैसे गलिगर्दभ (आलसी और निकम्मे गधे) होते हैं, वैसे ही ये मेरे शिष्य हैं। (ऐसा सोचकर गार्ग्याचार्य ने) गलिगर्दभ रूप शिष्यों को छोड़कर दृढ़ तपश्चरण (उग्र बाह्याभ्यन्तर तपोमार्ग) स्वीकार किया।

अविणीय-विणीय सरूवं—

१३४. जे यावि चंडे मइ-इड्ढिगारवे,
पिसुणे नरे साहसहीणपेसणे।
अदिट्ठधम्मे विणए अकोविए,
असंविभागी न हु तस्स मोक्खो॥
निद्देसवत्ती पुण जे गुरूणं,
सुयत्थधम्मा विणयम्मि कोविया।
तरित्तु ते ओहमिणं दुरुत्तरं,
खवित्तु कम्मं गइमुत्तमं गय॥

—दस. अ. ९, उ. २, गा. २२-२३

अविनीत और विनीत का स्वरूप—

१३४. जो नर चण्ड है, जिसे बुद्धि और ऋद्धि का गर्व है, जो पिशुन है, जो साहसिक है, जो गुरु की आज्ञा का यथासमय पालन नहीं करता, जो अदृष्ट (अज्ञात) धर्मा है, जो विनय में निपुण नहीं है, जो असंविभागी है, उसे मोक्ष प्राप्त नहीं होता।

और जो गुरु के आज्ञाकारी हैं, जो गीतार्थ हैं, जो विनय में कोविद हैं, वे इस दुस्तर संसार-समुद्र को तैरकर कर्मों का क्षय कर उत्तम गति को प्राप्त होते हैं।

अविणीय-सुविणीय लक्खणाइं—

१३५. तहेव अविणीयप्पा, उववज्झा हया गया।
दीसंति दुहमेहंता, आभिओगमुवट्ठिया॥

तहेव सुविणीयप्पा, उववज्झा हया गया।
दीसंति सुहमेहंता, इड्ढिं पत्ता महायसा॥

तहेव अविणीयप्पा, लोगंसि नरनारिओ।
दीसंति दुहमेहंता, छाया ते विगलितेन्दिया॥
दण्डसत्थपरिजुण्णा, असब्भवयणेहि य।
कलुणा विवन्नछंदा, खुप्पिवासाए परिगया॥

तहेव सुविणीयप्पा, लोगंसि नरनारिओ।
दीसंति सुहमेहंता, इड्ढिपत्ता महायसा॥

तहेव अविणीयप्पा, देवा जक्खा य गुज्झगा।
दीसंति दुहमेहंता, आभिओगमुवट्ठिया॥

तहेव सुविणीयप्पा, देवा जक्खा य गुज्झगा।
दीसंति सुहमेहंता, इड्ढिपत्ता महायसा॥

अविनीत-सुविनीत के लक्षण—

१३५. जो औपवाह्य (सवारी के काम आने वाले) घोड़े और हाथी अविनीत होते हैं, वे सेवाकाल में दुःख का अनुभव करते हुए देखे जाते हैं।

जो औपवाह्य घोड़े और हाथी सुविनीत होते हैं, वे ऋद्धि और महान् यश को पाकर सुख का अनुभव करते हुए देखे जाते हैं।

लोक में जो पुरुष और स्त्री अविनीत होते हैं, क्षत-विक्षत या दुर्बल, इन्द्रिय-विकल, दण्ड और शस्त्र से जर्जर, असभ्य वचनों के द्वारा तिरस्कृत, करुण, परवश, भूख और प्यास से पीड़ित होकर दुःख का अनुभव करते हुए देखे जाते हैं।

लोक में जो पुरुष या स्त्री सुविनीत होते हैं, वे ऋद्धि और महान् यश को पाकर सुख का अनुभव करते हुए देखे जाते हैं।

जो देव, यक्ष और गुह्यक (भवनवासी देव) अविनीत होते हैं, वे सेवाकाल में दुःख का अनुभव करते हुए देखे जाते हैं।

जो देव, यक्ष और गुह्यक सुविनीत होते हैं, वे ऋद्धि और महान् यश को पाकर सुख का अनुभव करते हुए देखे जाते हैं।

जे आयरियउवज्झायाणं, सुस्सूसावयणंकरा।
तेसिं सिक्खा पवड्ढंति, जलसित्ता इव पायवा॥
—दस. अ. ९, उ. २, गा. ५-१२

जो मुनि आचार्य और उपाध्याय की शुश्रूषा और आज्ञा-पालन करते हैं उनकी शिक्षा उसी प्रकार बढ़ती है, जैसे जल से सींचे हुए वृक्ष।

अविणीतस्स-विणीतस्स य आयरण-पभावो—

अविनीत और सुविनीत के आचरण का प्रभाव—

१३६. अप्पणट्ठा परट्ठा वा, सिप्पा णेउणियाणि य।
गिहिणो उवभोगट्ठा, इहलोगस्स कारणा॥
जेण बंधं वहं घोरं, परियावं च दारुणं।
सिक्खमाणा नियच्छंति, जुत्ता ते ललिइंदिया॥
ते वि तं गुरुं पूयंति, तस्स सिप्पस्स कारणा।
सक्कारेंति नमंसंति, तुट्ठा निद्देसवत्तिणो॥
किं पुण जे सुयग्गाही, अणंतहियकामए।
आयरिया जं वए भिक्खू, तम्हा तं नाइवत्तए॥

१३६. जो गृही अपने या दूसरों के लिए, लौकिक उपभोग के निमित्त शिल्प और नैपुण्य सीखते हैं—

वे पुरुष ललितेन्द्रिय होते हुए भी शिक्षा-काल में (शिक्षक के द्वारा) घोर बन्ध, वध और दारुण परिताप को प्राप्त होते हैं।

फिर भी वे उस शिल्प के लिए उस गुरु की पूजा करते हैं और सन्तुष्ट होकर उसकी आज्ञा का पालन करते हैं।

जो आगम-ज्ञान को पाने में तत्पर और अनन्तहित (मोक्ष) का इच्छुक है उसका फिर कहना ही क्या? इसलिए आचार्य जो कहे भिक्षु उसका उल्लंघन न करे।

नीयं सेज्जं गइं ठाणं, नीयं च आसणाणि य।
नीयं च पाए वंदेज्जा, नीयं कुज्जा य अंजलिं॥

भिक्षु (आचार्य से) नीची शैय्या करे, नीची गति करे, नीचे खड़ा रहे, नीचा आसन करे, और नीचा होकर अन्जलि करे—हाथ जोड़े।

संघट्टइत्ता काएणं, तहा उवहिणामवि।
खमेह अवराहं मे, वएज्ज न पुणो त्ति य॥
—दस.अ. ९, उ. २, गा. १३-१८

अपनी काया से तथा उपकरणों से एवं किसी दूसरे प्रकार से आचार्य का स्पर्श हो जाने पर शिष्य इस प्रकार कहे—"आप मेरा अपराध क्षमा करें, मैं फिर ऐसा नहीं करूँगा।"

(आलवंते लवंते वा, न निसेज्जाए पडिस्सुणे।
मोत्तूणं आसणं धीरो, सुस्सूसाए पडिस्सुणे॥[1])
—दस. अ. ९, उ. २, गा. २० का टिप्पण

(बुद्धिमान शिष्य गुरु के एक बार बुलाने पर या बार-बार बुलाने पर कभी भी बैठा न रहे, किन्तु आसन को छोड़कर शुश्रूषा के साथ उनके वचन को स्वीकार करे।)

विवत्ती अविणीयस्स, संपत्ती विणियस्स य।
जस्सेयं दुहओ नायं, सिक्खं से अभिगच्छइ॥
—दस. अ. ९, उ. २, गा. २१

"अविनीत के विपत्ति और विनीत के सम्पत्ति होती है"—ये दोनों जिसे ज्ञात हैं, वही शिक्षा को प्राप्त होता है।

अणासवा थूलवया, कुसीला,
मिउं पि चण्डं पकरेंति सीसा।
चित्ताणुया लहु दक्खोववेया,
पसायए ते हु दुरासयं पि॥
—उत्त. अ. १, गा. १३

आज्ञा को न मानने वाले और अंट-शंट बोलने वाले कुशील शिष्य कोमल स्वभाव वाले गुरु को भी क्रोधी बना देते हैं।

चित्त के अनुसार चलने वाले और पटुता से कार्य को सम्पन्न करने वाले शिष्य, दुराशय (शीघ्र ही कुपित होने वाले) गुरु को भी प्रसन्न कर लेते हैं।

जे विग्गहीए अन्नायभासी,
न से समे होति अझंझपत्ते।
ओवायकारी य हिरीमणे य,
एगंतदिट्ठी य अमाइरूवे॥

जो साधक कलहकारी है, अन्याययुक्त (न्याय-विरुद्ध) बोलता है, वह (रागद्वेषयुक्त होने के कारण) सम-मध्यस्थ नहीं हो सकता, वह कलहरहित भी नहीं होता। परन्तु सुसाधु उपपात-कारी (गुरु सान्निध्य में रहकर—उनके निर्देशानुसार चलने वाला) या उपायकारी (सूत्रोपदेशानुसार उपाय—प्रवृत्ति करने वाला) होता है, वह अनाचार सेवन करते गुरु आदि से लज्जित होता है, जीवादि तत्वों में उसकी (दृष्टि-श्रद्धा) स्पष्ट या निश्चित होती है, तथा वह माया-रहित व्यवहार करता है।

---

१ यह गाथा—दस. अ. ९, उ. २, गा. १९ के बाद टिप्पण में है।

तं पेसले सुहुमे पुरिसजाते,
जच्चण्णिए चेव सुउज्जुयारे।
बहुं पि अणुसासिते जे तहच्चा,
समे हु से होति अझंझपत्ते॥
—सूय. सु. १, अ. १३, गा. ६-७

भूल होने पर आचार्य आदि के द्वारा अनेक बार अनुशासित होकर भी जो अपनी लेश्या शुद्ध रखता है, वह सुसाधक मृदुभाषी या विनयादिगुणयुक्त है। वही सूक्ष्मार्थदर्शी है, वही वास्तव में संयम में पुरुषार्थी है, तथा वही उत्तम जाति से समन्वित और साध्वाचार में ही सहज-सरल-भाव से प्रवृत्त रहता है। वही सम है, और अकषाय-प्राप्त है (अथवा वही सुसाधक वीतराग पुरुषों के समान अझंझा प्राप्त है)।

अविणीय-सुविणीयाणं चिंतणं—

१३७. "खड्डुया मे चवेडा मे, अक्कोसा य वहा य मे"।
कल्लाणमणुसासन्तो, पावदिट्ठि त्ति मन्नई॥

पुत्तो मे भाय नाइ त्ति, साहू कल्लाण मन्नई।
पावदिट्ठी उ अप्पाणं, सासं "दासं व" मन्नई॥
—उत्त. अ. १, गा. ३८-३९

विनीत-अविनीत का स्वगत चिन्तन —

१३७. पाप-दृष्टि वाला शिष्य गुरु के कल्याणकारी अनुशासन को भी ठोकर मारने, चांटा चिपकाने, गाली देने व प्रहार करने के समान मानता है।

गुरु मुझे पुत्र, भाई और स्वजन की तरह अपना समझकर शिक्षा देते हैं—ऐसा सोच विनीत शिष्य उनके अनुशासन को कल्याणकारी मानता है। परन्तु कुशिष्य हितानुशासन से शासित होने पर अपने को दास तुल्य मानता है।

पंच असिक्खा ठाणाणि—

१३८. अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा न लब्भई।
थम्भा कोहा पमाएणं, रोगेणालस्सएण य॥
—उत्त. अ. ११, गा. ३

शिक्षा प्राप्त न होने के पाँच कारण—

१३८. निम्न पांच स्थानों (हेतुओं) से शिक्षा प्राप्त नहीं होती—
(१) मान, (२) क्रोध, (३) प्रमाद,
(४) रोग, (५) आलस्य

सिक्खाए अणुवउत्ता—

१३९. तओ नो कप्पंति सिक्खावेत्तए, तं जहा—
१. पण्डए,
२. वाइए,
३. कीवे। —कप्प. उ. ४, सु. ६

शिक्षा के अयोग्य—

१३९. इन तीनों को शिक्षित करना नहीं कल्पता है, यथा—
(१) पण्डक—महिला सदृश स्वभाव वाला नपुंसक,
(२) वातिक—कामवासना का दमन न कर सकने वाला,
(३) क्लीव—असमर्थ।

तेत्तीसं आसायणाओ—

१४०. इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं तेत्तीसं आसायणाओ पण्णत्ताओ।

प०—कयराओ खलु ताओ थेरेहिं भगवंतेहिं तेत्तीसं आसायणाओ पण्णत्ताओ?

उ०—इमाओ खलु ताओ थेरेहिं भगवंतेहिं तेत्तीसं आसायणाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. सेहे रायणियस्स पुरओ गंता, भवइ आसायणा सेहस्स।

२. सेहे रायणियस्स सपक्खं गंता, भवइ आसायणा सेहस्स।

३. सेहे रायणियस्स आसन्नं गंता, भवइ आसायणा सेहस्स।

तेतीस आशातनाएँ—

१४०. इस आर्हत प्रवचन में स्थविर भगवन्तों ने तेतीस आशातनाएँ कही हैं—

प्र०—उन स्थविर भगवन्तों ने वे कौन सी तेतीस आशातनाएँ कही हैं?

उ०—उन स्थविर भगवन्तों ने ये तेतीस आशातनाएँ कही हैं। जैसे—

(१) शैक्ष (अल्प दीक्षापर्यायवाला) रात्निक साधु के आगे चले तो उसे आशातना दोष लगता है।

(२) शैक्ष, रात्निक साधु के समक्ष (समश्रेणी-बराबरी में) चले तो उसे आशातना दोष लगता है।

(३) शैक्ष, रात्निक साधु के आसन्न (अति समीप) होकर चले तो उसे आशातना दोष लगता है।

४. सेहे रायणियस्स पुरओ चिट्ठित्ता, भवइ आसायणा सेहस्स ।

(४) शैक्ष, रात्निक साधु के आगे खड़ा हो तो उसे आशातना दोष लगता है ।

५. सेहे रायणियस्स सपक्खं चिट्ठित्ता, भवइ आसायणा सेहस्स ।

(५) शैक्ष, रात्निक साधु के समक्ष खड़ा हो तो उसे आशातना दोष लगता है ।

६. सेहे रायणियस्स आसन्नं चिट्ठित्ता, भवइ आसायणा सेहस्स ।

(६) शैक्ष, रात्निक साधु के आसन्न खड़ा हो तो आशातना दोष लगता है ।

७. सेहे रायणियस्स पुरओ निसीइत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स ।

(७) शैक्ष, रात्निक साधु के आगे बैठे तो उसे आशातना दोष लगता है ।

८. सेहे रायणियस्स सपक्खं निसीइत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स ।

(८) शैक्ष, रात्निक साधु के समक्ष बैठे तो उसे आशातना दोष लगता है ।

९. सेहे रायणियस्स आसन्नं निसीइत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स ।

(९) शैक्ष, रात्निक साधु के आसन्न बैठे तो उसे आशातना दोष लगता है ।

१०. सेहे रायणिएणं सद्धिं बहिया वियारभूमिं निक्खंते समाणे तत्थ सेहे पुव्वतरागं आयमइ, पच्छा रायणिए भवइ आसायणा सेहस्स ।

(१०) शैक्ष, रात्निक साधु के साथ बाहर (मलोत्सर्ग-स्थान) पर गया हुआ हो (कारणवशात् दोनों एक ही पात्र में जल ले गये हों) ऐसी दशा में यदि शैक्ष रात्निक से पहले आचमन (शौच-शुद्धि) करे तो आशातना दोष लगता है ।

११. सेहे रायणिएणं सद्धिं बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खंते समाणे तत्थ सेहे पुव्वतरागं आलोएइ पच्छा रायणिए, भवइ आसायणा सेहस्स ।

(११) शैक्ष, रात्निक के साथ बाहर विचारभूमि या विहार-भूमि (स्वाध्याय स्थान) पर जावे तो वहाँ शैक्ष रात्निक से पहले आलोचना करे तो उसे आशातना दोष लगता है ।

१२. केइ रायणियस्स पुव्व-संलवित्तए सिया, तं सेहे पुव्वतरागं आलवइ, पच्छा रायणिए, भवइ आसायणा सेहस्स ।

(१२) कोई व्यक्ति रात्निक के पास वार्तालाप के लिए आये, यदि शैक्ष उससे पहले ही वार्तालाप करने लगे तो उसे आशातना दोष लगता है ।

१३. सेहे रायणियस्स राओ वा वियाले वा वाहरमाणस्स—"अज्जो ! के सुत्ता ? के जागरा ?" तत्थ सेहे जागरमाणे रायणियस्स अपडिसुणेत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स ।

(१३) रात्रि में या विकाल (सन्ध्या-समय) में रात्निक साधु शैक्ष को सम्बोधन करके कहे—(पूछे—) हे आर्य ! कौन-कौन सो रहे हैं और कौन-कौन जाग रहे हैं ? उस समय जागता हुआ भी शैक्ष यदि रात्निक के वचनों को अनसुना करके उत्तर न दे तो आशातना दोष लगता है ।

१४. सेहे असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, पडिग्गाहित्ता तं पुव्वमेव सेहतरागस्स आलोएइ, पच्छा रायणियस्स, भवइ आसायणा सेहस्स ।

(१४) शैक्ष, यदि अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार को (गृहस्थ के घर से) लाकर उसकी आलोचना पहले किसी अन्य शैक्ष के पास करे और पीछे रात्निक के समीप करे तो उसे आशातना दोष लगता है ।

१५. सेहे असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गहित्ता तं पुव्वमेव सेहतरागस्स उवदंसेइ, पच्छा रायणियस्स, भवइ आसायणा सेहस्स ।

(१५) शैक्ष, यदि अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार को (गृहस्थ के घर से) लाकर पहले किसी अन्य शैक्ष को दिखावे और पीछे रात्निक को दिखलावे तो उसे आशातना दोष लगता है ।

१६. सेहे असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहित्ता तं पुव्वमेव सेहतरागं उवणिमंतेइ, पच्छा रायणिए, भवइ आसायणा सेहस्स ।

(१६) शैक्ष, यदि अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार को उपाश्रय में लाकर पहले अन्य शैक्ष को (भोजनार्थ) आमंत्रित करे और पीछे रात्निक को आमन्त्रित करे तो उसे आशातना दोष लगता है ।

१७. सेहे रायणिएणं सद्धिं असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहित्ता तं रायणियं अणापुच्छित्ता जस्स जस्स इच्छइ तस्स तस्स खद्धं खद्धं तं दलयति, भवइ आसायणा सेहस्स।

(१७) शैक्ष, यदि रात्निक साधु के साथ अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार को (उपाश्रय में) लाकर रात्निक से बिना पूछे जिस-जिस साधु को देना चाहता है जल्दी-जल्दी अधिक-अधिक मात्रा में देवे तो उसे आशातना दोष लगता है।

१८. सेहे असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा पडिग्गाहित्ता रायणिएणं सद्धिं आहारेमाणे तत्थ सेहे—खद्धं-खद्धं डागं-डागं ऊसढं-ऊसढं रसियं-रसियं मणुन्नं-मणुन्नं मणामं-मणामं निद्धं-निद्धं लुक्खं-लुक्खं आहारित्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(१८) शैक्ष, अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार को लाकर रात्निक साधु के साथ आहार करता हुआ यदि वहां वह शैक्ष प्रचुर मात्रा में विविध प्रकार के शाक, श्रेष्ठ, ताजे, रसदार, मनोज्ञ, मनोभिलषित (खीर, रबड़ी, हलुआ आदि) स्निग्ध और रूक्ष नमकीन पापड़ आदि आहार करे तो उसे आशातना दोष लगता है।

१९. सेहे रायणियस्स वाहरमाणस्स अपडिसुणित्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(१९) रात्निक के बुलाने पर यदि शैक्ष रात्निक की बात को नहीं सुनता है (अनसुनी कर चुप रह जाता है) तो उसे आशातना दोष लगता है।

२०. सेहे रायणियस्स वाहरमाणस्स तत्थगए चेव पडिसुणित्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२०) रात्निक के बुलाने पर यदि शैक्ष अपने स्थान पर बैठा हुआ उनकी बात को सुने और सन्मुख उपस्थित न हो तो आशातना दोष लगता है।

२१. सेहे रायणियं "किं" त्ति वत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२१) रात्निक के बुलाने पर यदि शैक्ष "क्या कहते हो" ऐसा कहता है तो उसे आशातना दोष लगता है।

२२. सेहे रायणियं "तुमं" त्ति वत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२२) शैक्ष, रात्निक को "तू" या "तुम" कहे तो उसे आशातना दोष लगता है।

२३. सेहे रायणियं खद्धं खद्धं वत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२३) शैक्ष, रात्निक के सम्मुख अनर्गल प्रलाप करे तो उसे आशातना दोष लगता है।

२४. सेहे रायणियं तज्जाएणं तज्जाएणं पडिहणित्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२४) शैक्ष, रात्निक को उन्हीं के द्वारा कहे गये वचनों से प्रतिभाषण करे तो उसे आशातना दोष लगता है।

२५. सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स "इति एवं" वत्ता भवइ आसायणा सेहस्स।

(२५) शैक्ष, रात्निक से कथा कहते समय कहे कि "यह ऐसा कहिये" तो उसे आशातना दोष लगता है।

२६. सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स "नो सुमरसी" त्ति वत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२६) शैक्ष, रात्निक के कथा कहते हुए "आप भूलते हैं, आपको स्मरण नहीं है" कहता है तो उसे आशातना दोष लगता है।

२७. सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स णो सुमणसे, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२७) शैक्ष, रात्निक के कथा कहते हुए यदि सु-मनस न रहे (दुर्भाव प्रकट करे) तो उसे आशातना दोष लगता है।

२८. सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स परिसं भेत्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२८) शैक्ष, रात्निक के कथा कहते हुए यदि (किसी बहाने से) परिषद् (सभा) को विसर्जन करने का आग्रह करे तो उसे आशातना दोष लगता है।

२९. सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स कहं आच्छिदित्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(२९) शैक्ष, रात्निक के कथा कहते हुए यदि कथा में बाधा उपस्थित करे तो उसे आशातना दोष लगता है।

३०. सेहे रायणियस्स कहं कहेमाणस्स तीसे परिसाए, अणुट्ठियाए अभिन्नाए अवुच्छिन्नाए, अव्वोगडाए दोच्चंपि तच्चंपि तमेव कहं कहित्ता, भवइ आसायणा सेहस्स।

(३०) शैक्ष, रात्निक के कथा कहते हुए, उस परिषद् के अनुत्थित (नहीं उठने तक) अभिन्न, अच्छिन्न (छिन्न-भिन्न नहीं होने तक) और अव्याकृत (नहीं बिखरने तक) विद्यमान रहते हुए यदि उसी कथा को दूसरी बार और तीसरी बार भी कहता है तो उसे आशातना दोष लगता है।

३१. सेहे रायणियस्स सिज्जा-संथारगं पाएणं संघट्टित्ता हत्थेण अणणुण्णवित्ता गच्छइ, भवइ आसायणा सेहस्स।

(३१) शैक्ष, यदि रात्निक साधु के शैय्या-संस्तारक का (असावधानी से) पैर से स्पर्श हो जाने पर हाथ जोड़कर बिना क्षमा-याचना किये चला जाये तो उसे आशातना दोष लगता है।

३२. सेहे रायणियस्स सिज्जा-संथारए चिट्ठित्ता वा, निसीइत्ता वा, तुयट्टित्ता वा, भवइ आसायणा सेहस्स।

(३२) शैक्ष, रात्निक के शैय्या-संस्तारक पर खड़ा होवे, बैठे या लेटे तो उसे आशातना दोष लगता है।

३३. सेहे रायणियस्स उच्चासणंसि वा समासणंसि वा चिट्ठित्ता वा, निसीइत्ता वा, तुयट्टित्ता वा, भवइ आसायणा सेहस्स।

(३३) शैक्ष, रात्निक से ऊँचे या समान आसन पर, खड़ा हो या बैठे या लेटे तो उसे आशातना दोष लगता है।

एयाओ खलु ताओ थेरेहिं भगवंतेहिं तेत्तीसं आसायणाओ पण्णत्ताओ।[1]—त्ति बेमि।

—दसा. द. ३, सु. १-३

स्थविर भगवन्तों ने निश्चय से ये पूर्वोक्त तेतीस आशातनाएँ कही हैं। —ऐसा मैं कहता हूँ।

अहवा तेत्तीसं आसायणाओ—

तेतीस आशातना (दूसरा प्रकार)—

१४१. १. अरिहंताणं आसायणाए,

१४१. (१) अरिहन्तों की आशातना—वर्तमान में यहाँ अरिहन्त कहाँ हैं नहीं हैं तो फिर आशातना कैसी? (इस प्रकार का विकल्प करना)

२. सिद्धाणं आसायणाए,

(२) सिद्धों की आशातना—सिद्धों के शरीर नहीं है फिर सुख का उपभोग किस प्रकार होगा? वे निष्क्रिय हैं फिर उनका ज्ञान सक्रिय कैसे? इत्यादि विकल्प करना।

३. आयरियाणं आसायणाए,

(३) आचार्यों की आशातना—यह लघुवय है, यह कुलीन नहीं है, वह स्वयं वैय्यावृत्ति करने के लिए सबको प्रेरणा देता है, इत्यादि विकल्प करना।

४. उवज्झायाणं आसायणाए,

(४) उपाध्यायों की आशातना—आचार्य के समान।

५. साहूणं आसायणाए,

(५) साधुओं की आशातना—ये मलिन वस्त्र रखते हैं, ये कठोर तप करके आत्मघात करते हैं, इनके जाति-कुल का कोई पता नहीं है, केशलुंचन जैसे अज्ञान कष्ट सहनकर अपना बड़प्पन बताते हैं, इत्यादि विकल्प करना।

६. साहुणीणं आसायणाए,

(६) साध्वियों की आशातना—ये सदा अपवित्र रहती हैं, कलहशीला होती हैं, अत्यधिक परिग्रह रखती हैं, इत्यादि विकल्प रखना।

७. सावयाणं आसायणाए,

(७) श्रावकों की आशातना—ये प्रतिदिन मिथ्याभाषण करके ''''''मिच्छा मि दुक्कडं'''''' लेते रहते हैं ये तो मायाचारी हैं, ये जन धन में ममत्व रखकर मुक्ति की कामना करते हैं, ये सन्तान और सम्पत्ति की कामना से दान पुण्य करते हैं, इत्यादि विकल्प रखना।

८. सावियाणं आसायणाए,

(८) श्राविकाओं की आशातना—ये बाल-बच्चों में मोह रखती है, रात-दिन आरम्भ परिग्रह में लगी रहती हैं, इनमें ईर्ष्या, जलन बहुत रहती है, इत्यादि बातें कहकर अवहेलना करना।

१ सम. सम. ३३, सु. १।

९. देवाणं आसायणाए,

(९) देवताओं की आशातना – देवताओं की निन्दा करना या देवताओं का अस्तित्व ही न मानना, पुनर्जन्म न मानना।

१०. देवीणं आसायणाए,

(१०) देवियों की आशातना – देवों के समान।

११. इहलोगस्स आसायणाए, परलोगस्स आसायणाए,

(११) इहलोक और परलोक की आशातना—इहलोक और परलोक की प्ररूपणा को असत्य मानना, पुनर्जन्म न मानना, नरक आदि चार गतियाँ न मानना।

१२. केवलीणं आसायणाए,

(१२) केवली की आशातना—केवली का अवर्णवाद (निन्दा) करना।

१३. केवलीपन्नत्तस्स धम्मस्स आसायणाए,

(१३) केवली-प्रज्ञप्त धर्म की आशातना—धर्म के माहात्म्य का अपलाप करना, सर्वज्ञकथित सिद्धान्तों का उपहास करना।

१४. सदेव-मणुआ-सुरस्स लोगस्स आसायणाए,

(१४) लोक की आशातना—देवादि सहित लोक के सम्बन्ध में मिथ्या प्ररूपणा करना, लोक सम्बन्धी पौराणिक धारणाओं पर विश्वास करना, लोक की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय सम्बन्धी भ्रान्त धारणाओं का प्रचार करना।

१५. सव्वपाण-भूय-जीव सत्ताणं आसायणाए,

(१५) प्राण, भूत जीव और सत्वों की आशातना - आत्मा का अस्तित्व स्वीकार न करना, या क्षणिक मानना, पृथ्वी आदि को निर्जीव मानना।

१६. कालस्स आसायणाए,

(१६) काल की आशातना—"काले कालं समायरे" ...... के सिद्धान्त को स्वीकार न करना, या इस सिद्धान्त का उपहास करना।

१७. सुयस्स आसायणाए,

(१७) श्रुत की आशातना—श्रुत की प्राकृत भाषा सामान्य जनों की भाषा है, श्रुत में परस्पर विरोध है, इत्यादि विकल्प रखना।

१८. सुयदेवयाए आसायणाए,

(१८) श्रुत देवता की आशातना —श्रुत की अधिष्ठात्री देवी को अकिंचित्कर मानना।

१९. वायणायरियस्स आसायणाए,

(१९) वाचनाचार्य की आशातना —उपाध्याय की आज्ञा से शिष्यों को श्रुत का उद्देश आदि कराने वाले को वाचनाचार्य कहते हैं। ...... उसकी अवज्ञा करना।

चउद्दस णाण आसायणाओ—

[चौदह ज्ञान की आशातना]

२०. जं वाइद्धं,

(२०) व्याविद्ध—आगम पढ़ते हुए पदों को आगे-पीछे करके बोलना।

२१. वच्चामेलियं,

(२१) व्यत्याम्रेडित—शून्यचित्त से शास्त्र के पाठों को दोहराना, अथवा अन्य सूत्र का पाठ अन्य सूत्र में मिला देना।

२२. हीणक्खरं,

(२२) हीनाक्षर—अक्षर छोड़कर स्वाध्याय करना।

२३. अच्चक्खरं,

(२३) अधिकाक्षर—आगमपाठ में अधिक अक्षर बोलना।

२४. पयहीणं,

(२४) पदहीन—आगमपाठ में से पद छोड़कर पाठ करना।

२५. विणयहीणं,

(२५) विनयहीन—शास्त्र पढ़ाने वाले का विनय न करना।

२६. जोगहीणं,

(२६) योगहीन—मन, वचन और काययोग को चंचल रखना।

२७. घोसहीणं,

(२७) घोषहीन उदात्त, अनुदात्त और स्वरित का यथार्थ उच्चारण न करना।

२८. सुट्ठुदिन्नं,

(२८) सुष्ठुदत्त—शिष्य को उसकी योग्यता से अधिक पढ़ाना।

२९. दुट्ठुपडिच्छियं,

(२९) दुष्टुप्रतिच्छित—श्रुत को दुर्भाव से ग्रहण करना।

३०. अकाले कओ सज्झाओ,

(३०) अकाल में स्वाध्याय करना—कालिक श्रुत को अकाल में पढ़ना, और उत्कालिक श्रुत को अस्वाध्यायकाल में पढ़ना।

३१. काले न कओ सज्झाओ,

(३१) काल में स्वाध्याय न करना—कालिक और उत्कालिक आगमों को निश्चित स्वाध्यायकाल में न पढ़ना।

३२. असज्झाइए सज्झाइयं,

(३२) अस्वाध्याय में स्वाध्याय करना—बत्तीस अस्वाध्यायों में स्वाध्याय करना।

३३. सज्झाइए न सज्झाइयं।

—आव. अ. ४, सु. २६

(३३) स्वाध्याय काल में स्वाध्याय न करना—जिस समय बत्तीस अस्वाध्याय में से एक भी अस्वाध्याय न हो, फिर भी स्वाध्याय न करना।

आसायणा-फल-निरूवणं—

१४२. जे यावि मंदि त्ति गुरुं विइत्ता,
डहरे इमे अप्पसुए त्ति नच्चा।
हीलंति मिच्छं पडिवज्जमाणा,
करेंति आसायण ते गुरूणं॥
पगईए मंदा वि भवंति एगे,
डहरा वि य जे सुयबुद्धोववेया।
आयारमंता गुणसुट्ठिअप्पा,
जे हीलिया सिहिरिव भास कुज्जा॥

जे यावि नागं डहरे त्ति नच्चा,
आसायए से अहियाय होइ।
एवायरियं पि हु हीलयन्तो,
नियच्छई जाइपहं खु मंदे॥
आसीविसो यावि परं सुरुट्ठो,
किं जीवनासाओ परं न कुज्जा।
आयरियपाया पुण अप्पसन्ना,
अबोहिआसायण नत्थि मोक्खो॥
जो पावगं जलियमवक्कमेज्जा,
आसीविसं वा वि हु कोवएज्जा।
जो वा विसं खायइ जीवियट्ठी,
एसोवमासायणया गुरूणं॥
सिया हु से पावय नो डहेज्जा,
आसीविसो वा कुविओ न भक्खे।
सिया विसं हालहलं न मारे,
न यावि मोक्खो गुरुहीलणाए॥

आशातना के फल का निरूपण—

१४२. जो मुनि गुरु को—"ये मंद (अल्पप्रज्ञ) हैं", ये "ये अल्पवयस्क और अल्प-श्रुत हैं", ऐसा जानकर उनके उपदेश को मिथ्या मानते हुए उनकी अवहेलना करते हैं। वे गुरु की आशातना करते हैं।

कई आचार्य वयोवृद्ध होते हुए भी स्वभाव से मन्द (अल्प-प्रज्ञ) होते हैं और कई अल्पवयस्क होते हुए भी श्रुत और बुद्धि से सम्पन्न होते हैं। आचारवान् और गुणों में सुस्थितात्मा आचार्य, भले फिर वे मंद हों या प्राज्ञ, अवज्ञा प्राप्त होने पर गुण-राशि को उसी प्रकार भस्म कर डालते हैं जिस प्रकार अग्नि ईंधन-राशि को।

जो कोई—यह सर्प छोटा है—ऐसा जानकर उसकी आशातना (कदर्थना) करता है, वह (सर्प) उसके अहित के लिए होता है। इसी प्रकार अल्पवयस्क आचार्य की भी अवहेलना करने वाला मन्द संसार में परिभ्रमण करता है।

आशीविष सर्प अत्यन्त क्रुद्ध होने पर भी "जीवन-नाश" से अधिक क्या कर सकता है? परन्तु आचार्यपाद अप्रसन्न होने पर अबोधि के कारण बनते हैं। अतः आशातना से मोक्ष नहीं मिलता।

कोई जलती अग्नि को लांघता है, आशीविष सर्प को कुपित करता है और जीवित रहने की इच्छा से विष खाता है, गुरु की आशातना इनके समान है। ये जिस प्रकार हित के लिए नहीं होते, उसी प्रकार गुरु की आशातना हित के लिए नहीं होती।

सम्भव है कदाचित् अग्नि न जलाए, सम्भव है आशीविष सर्प कुपित होने पर भी न खाए और यह भी सम्भव है कि हलाहल विष भी न मारे, परन्तु गुरु की अवहेलना से मोक्ष सम्भव नहीं है।

जो पव्वयं सिरसा भेत्तुमिच्छे,
सुत्तं व सीहं पडिबोहएज्जा।
जो वा दए सत्तिअग्गे पहारं,
एसोवमासायणया गुरूणं ॥

कोई शिर से पर्वत का भेदन करने की इच्छा करता है, सोए हुए सिंह को जगाता है और भाले की नोंक पर प्रहार करता है, गुरु की आशातना इनके समान है।

सिया हु सीसेण गिरिं पि भिंदे,
सिया हु सीहो कुविओ न भक्खे।
सिया न भिंदेज्ज व सत्तिअग्गं,
न यावि मोक्खो गुरुहीलणाए ॥

सम्भव है शिर से पर्वत को भी भेद डाले, सम्भव है सिंह कुपित होने पर भी न खाए और यह भी सम्भव है कि भाले की नोंक भी भेदन न करे, पर गुरु की अवहेलना से मोक्ष सम्भव नहीं है।

आयरियपाया पुण अप्पसन्ना,
अबोहिआसायण नत्थि मोक्खो।
तम्हा अणाबाहसुहाभिकंखी,
गुरुप्पसायाभिमुहो रमेज्जा ॥
—दस. अ. ९, उ. १, गा. २-१०

आचार्यपाद के अप्रसन्न होने पर बोधि-लाभ नहीं होता। आशातना से मोक्ष नहीं मिलता। इसलिए मोक्ष-सुख चाहने वाला मुनि गुरु-कृपा के अभिमुख रहे।

आसायणाए पायच्छित्तं—

१४३. जे भिक्खू आयरिय-उवज्झायाणं सेज्जा-संथारयं पाएणं संघट्टेत्ता हत्थेणं अणणुण्णवेत्ता धारयमाणे गच्छइ गच्छंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १६, सु. ३९(५१)

१४४. जे भिक्खू भिक्खुं अण्णयरीए अच्चासायणाए अच्चासाइए अच्चासायंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. ४

आशातना के प्रायश्चित्त—

१४३. जो भिक्षु आचार्य उपाध्यायों की शैया संस्तारक को पैर से छूकर हाथ से विनय किये बिना जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

वह भिक्षु लघु चातुर्मासिक परिहार प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

१४४. जो भिक्षु भिक्षु की किसी एक प्रकार की आशातना करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

वह भिक्षु चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान [प्रायश्चित्त] का पात्र होता है।

अविणयकरणस्स पायच्छित्तं—

१४५. जे भिक्खू भदंतं आगाढं वयइ वयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू भदंतं फरुसं वयइ वयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू भदंतं आगाढं फरुसं वयइ वयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू भदंतं अण्णयरीए अच्चासायणयाए अच्चासाएइ अच्चासायंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. १०, सु. १-४(५१)

अविनय करने का प्रायश्चित्त—

१४५. जो भिक्षु आचार्य को अपशब्द कहता है, कहलवाता है, कहने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु आचार्य को कठोर वचन कहता है, कहलवाता है, कहने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु आचार्य को अपशब्द और कठोर वचन कहता है, कहलवाता है, कहने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु आचार्य की किसी एक प्रकार की आशातना करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

वह भिक्षु गुरु चातुर्मासिक परिहार प्रायश्चित्त स्थान का पात्र होता है।

तइओ बहुमाण णाणायारो

तृतीय बहुमान ज्ञानाचार

आयरिय महिमा—

१४६. जहा निसंते तवणच्चिमाली,
पभासई केवलभारहं तु ।
एवायरिओ सुयसीलबुद्धिए,
विरायई सुरमज्झे व इंदो ॥

जहा ससी कोमुइजोगजुत्तो,
नक्खत्ततारागणपरिवुडप्पा ।
खे सोहई विमले अब्भमुक्के,
एवं गणी सोहइ भिक्खुमज्झे ॥

महागरा आयरिया महेसी,
समाहिजोगे सुयसीलबुद्धिए ।
संपाविउकामे अणुत्तराइं,
आराहए तोसए धम्मकामी ॥

—दस. अ. ९, उ. १, गा. १४-१६

आचार्यों की महिमा—

१४६. जैसे दिन में प्रदीप्त होता हुआ सूर्य सम्पूर्ण भारत (भरत-क्षेत्र) को प्रकाशित करता है वैसे ही श्रुत, शील और बुद्धि से सम्पन्न आचार्य विश्व को प्रकाशित करते हैं और जिस प्रकार देवताओं के बीच इन्द्र शोभित होता है, उसी प्रकार साधुओं के बीच आचार्य सुशोभित होते हैं ।

जिस प्रकार बादलों से मुक्त विमल आकाश में नक्षत्र और तारागण से परिवृत आश्विन कार्तिक-पूर्णिमा में उदित चन्द्रमा शोभित होता है, उसी प्रकार भिक्षुओं के बीच गणी (आचार्य) शोभित होते हैं ।

अनुत्तर ज्ञान आदि गुणों की सम्प्राप्ति की इच्छा रखने वाला मुनि निर्जरा का अर्थी होकर समाधियोग, श्रुतशील और बुद्धि के महान् आकर, मोक्ष की एषणा करने वाले आचार्य की आराधना करे और उन्हें प्रसन्न करे ।

आयरिय सुस्सूसा फलं—

१४७. सोच्चाण मेहावी सुभासियाइं,
सुस्सूसए आयरियप्पमत्तो ।
आराहइत्ताण गुणे अणेगे,
से पावई सिद्धिमणुत्तरं ॥

—दस. अ. ९, उ. १, गा. १७

आचार्य की सेवा का फल—

१४७. मेधावी मुनि इन सुभाषितों को सुनकर अप्रमत्त रहता हुआ आचार्य की सुश्रूषा करे । इस प्रकार वह अनेक गुणों की आराधना कर अनुत्तर सिद्धि को प्राप्त करता है ।

रुक्खभेयेण आयरिय भेया—

१४८. (क) चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—
साले णाममेगे सालपरियाए,
साले णाममेगे एरंडपरियाए,
एरण्डे णाममेगे सालपरियाए,
एरण्डे णाममेगे एरण्डपरियाए,
एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—
साले णाममेगे सालपरियाए,
साले णाममेगे एरण्डपरियाए,
एरण्डे णाममेगे सालपरियाए,
एरण्डे णाममेगे एरण्डपरियाए,

(ख) चत्तारि रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—
साले णाममेगे सालपरिवारे,
साले णाममेगे एरण्डपरिवारे,
एरण्डे णाममेगे सालपरिवारे,
एरण्डे णाममेगे एरण्डपरिवारे,

वृक्ष के भेद से आचार्य के भेद—

१४८ (क) वृक्ष चार प्रकार के कहे हैं, यथा—
शाल जाति का हो और शाल पर्यायी हो,
शाल जाति का हो और एरण्ड पर्यायी हो,
एरण्ड जाति का हो और शाल पर्यायी हो,
एरण्ड जाति का हो और एरण्ड पर्यायी हो ।
इसी प्रकार आचार्य चार प्रकार के कहे हैं यथा—
श्रेष्ठ जाति, कुल समुत्पन्न हो और ज्ञान-क्रिया युक्त हो,
श्रेष्ठ जाति, कुल समुत्पन्न हो और ज्ञान-क्रिया रहित हो,
श्रेष्ठ जाति, कुल में अनुत्पन्न हो और ज्ञान-क्रिया युक्त हो,
श्रेष्ठ जाति, कुल में अनुत्पन्न हो और ज्ञान-क्रिया रहित हो ।

(ख) वृक्ष चार प्रकार के कहे हैं, यथा—
शाल जाति का और शाल परिवारवाला,
शाल जाति का और एरण्ड परिवारवाला,
एरण्ड जाति का और साल परिवारवाला,
एरण्ड जाति का और एरण्ड परिवार वाला ।

एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—

इसी प्रकार आचार्य चार प्रकार के कहे हैं, यथा—

साले णाममेगे सालपरिवारे,

श्रेष्ठ जाति, कुल समुत्पन्न और श्रेष्ठ गुण सम्पन्न शिष्य परिवारवाला,

साले णाममेगे एरण्डपरिवारे,

श्रेष्ठ जाति, कुल समुत्पन्न और गुण रहित शिष्य परिवारवाला,

एरण्डे णाममेगे सालपरिवारे,

श्रेष्ठ जाति, कुल में अनुत्पन्न और गुण सहित शिष्य परिवारवाला।

एरण्डे णाममेगे एरण्डपरिवारे।

श्रेष्ठ जाति, कुल में अनुत्पन्न और गुण रहित शिष्य परिवारवाला।

सालदुममज्झयारे, जह साले णाम होइ दुमराया।
इय सुन्दर आयरिए, सुन्दरसीसे मुणेयव्वे॥

जिस प्रकार शाल वृक्षों के मध्य में रहा हुआ महान् शाल वृक्ष शोभित होता है। उसी प्रकार सुन्दर शिष्यों के मध्य में सुन्दर आचार्य शोभित होते हैं।

एरण्डमज्झयारे, जह साल णाम होइ दुमराया।
इय सुन्दर आयरिए, मंगुल सीसे मुणेयव्वे॥

जिस प्रकार एरण्ड वृक्षों के मध्य में महान् शाल वृक्ष अशोभनीय लगता है। उसी प्रकार सुन्दर आचार्य असुन्दर शिष्यों से अशोभनीय लगते हैं।

सालदुममज्झयारे, एरण्डे णाम होइ दुमराया।
इय मंगुल आयरिए, सुन्दरसीसे मुणेयव्वे॥

शाल वृक्षों के बीच में जैसी एरण्ड की स्थिति है वैसा ही सुन्दर शिष्यों में असुन्दर आचार्य की स्थिति है।

एरण्डमज्झयारे, एरण्डे णाम होइ दुमराया।
इय मंगुलआयरिए, मंगुलसीसे मुणेयव्वे॥
—ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३४९

एरण्डों में जैसे एरण्ड रहता है, वैसे ही असुन्दर शिष्यों में असुन्दर आचार्य रहता है।

फलभेयेण आयरियभेया—

१४९. चत्तारि फला पण्णत्ता, तं जहा—

१. आमलग—महुरे, २. मुद्दिया—महुरे,
३. खीर—महुरे, ४. खंड महुरे।

एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—

१. आमलगमहुरफलसमाणे,
२. मुद्दियामहुरफलसमाणे,
३. खीरमहुरफलसमाणे,
४. खंडमहुरफलसमाणे। —ठाणं. ४, उ. ३, सु. ३१९

फल भेद से आचार्य के भेद—

१४९. चार प्रकार के फल कहे हैं, यथा—

(१) आँवला जैसे मधुर, (२) द्राक्षा जैसे मधुर,
(३) क्षीर जैसे मधुर, (४) खांड जैसे मधुर।

इसी प्रकार आचार्य चार प्रकार के कहे हैं, यथा—

(१) आँवला जैसे मधुर फल के समान,
(२) द्राक्षा जैसे मधुर फल के समान,
(३) क्षीर जैसे मधुर फल के समान,
(४) खांड जैसे मधुर फल के समान।

करंडग समाणा आयरिया—

१५०. चत्तारि करंडगा पण्णत्ता, तं जहा—

१. सोवाग—करंडए, २. वेसिया—करंडए,
३. गाहावई—करंडए, ४. राय—करंडए,

एवामेव चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तं जहा—

१. सोवागकरंडसमाणे,
२. वेसियाकरंडसमाणे,
३. गाहावइकरंडसमाणे,
४. रायकरंडसमाणे। —ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३४८

करंडिया के समान आचार्य—

१५०. चार प्रकार के करण्डक कहे हैं, यथा—

(१) श्वपाक—करंडक, (२) वेश्या—करंडक,
(३) गाथापति—करंडक, (४) राज करंडक,

इसी प्रकार चार प्रकार के आचार्य कहे हैं, यथा—

(१) श्वपाक के करंडक जैसे,
(२) वेश्या के करंडक जैसे,
(३) गाथापति के करंडक जैसे,
(४) राजा के करंडक जैसे।

आयरिय-उवज्झायाणं सिद्धि—

१५१. प०—आयरिय-उवज्झाएणं भंते ! सविसयंसि गणं अगिलाए संगिण्हमाणं, अगिलाए उवगिण्हमाणे कइहिं भवग्गहणेहिं सिज्झइ-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ?

उ०—गोयमा ! अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं।
अत्थेगइए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झइ।
तच्चं पुण भवग्गहणं णाइक्कमइ॥

—वि. श. ५, उ. ६, सु. १९

आचार्य-उपाध्याय की सिद्धि—

१५१. प्र०—हे भगवन् ! आचार्य और उपाध्याय यदि अपने शिष्यों को बिना ग्लानि के सूत्रार्थ दे और बिना ग्लानि के रत्नत्रय की साधना में सहयोग दे तो कितने भव ग्रहण करने के पश्चात् सिद्ध होते हैं—**यावत्**—सर्व दुःखों का अन्त करते हैं ?

उ०—हे गौतम ! कुछ एक तो उसी भव से सिद्ध होते हैं और कुछ एक दो भव ग्रहण करके सिद्ध होते हैं किन्तु तीसरे भव को तो कोई लांघता नहीं अर्थात् तीसरे भव से तो सिद्ध होते ही हैं।

आयरिय-उवासणा—

१५२. जहाहियग्गी जलणं नमंसे,
नाणाहुईमंतपयाभिसित्तं।
एवायरियं उवचिट्ठएज्जा,
अणंतनाणोवगओ वि संतो॥

—दस. अ. ९, उ. १, गा. ११

आचार्य की उपासना—

१५२. जैसे आहिताग्नि ब्राह्मण विविध आहुति और मन्त्रपदों से अभिषिक्त अग्नि को नमस्कार करता है, वैसे ही शिष्य अनन्त-ज्ञान-सम्पन्न होते हुए भी आचार्य की विनयपूर्वक सेवा करे।

गुरु-पूयणं—

१५३. जस्संतिए धम्मपयाइं सिक्खे,
तस्संतिए वेणइयं पउंजे।
सक्कारए सिरसा पंजलीओ,
कायग्गिरा भो मणसा य निच्चं॥

लज्जा दया संजम बंभचेरं,
कल्लाणभागिस्स विसोहिठाणं।
जे मे गुरु सययमणुसासयंति,
ते हं गुरु सययं पूययामि॥

—दस. अ. ९, उ. १, गा. १२-१३

गुरु-पूजा—

१५३. जिसके समीप धर्मपदों की शिक्षा लेता है उसके समीप विनय का प्रयोग करे। सिर को झुकाकर, हाथों को जोड़कर (पंचांग वन्दन कर) काया, वाणी और मन से सदा सत्कार करे।

लज्जा, दया, संयम और ब्रह्मचर्य कल्याणभागी साधु के लिए विशोधिस्थल हैं। जो गुरु मुझे उनकी सतत शिक्षा देते हैं उनकी मैं सतत पूजा करता हूँ।

तहारूवसमण माहणाणं पज्जुवासणा फलं—

१५४. प०—१. तहारूवा णं भंते ! समणं वा माहणं वा पज्जुवासमाणस्स किं फला पज्जुवासणा ?

उ०—गोयमा ! सवणफला।

प०—२. से णं भंते ! सवणे किं फले ?

उ०—णाणफले।

प०—३. से णं भंते ! णाणे किं फले ?

उ०—विण्णाणफले।

प०—४. से णं भंते ! विण्णाणे किं फले ?

उ०—पच्चक्खाणफले।

प०—५. से णं भंते ! पच्चक्खाणे किं फले ?

उ०—संजमफले।

तथारूप श्रमणों माहणों की पर्युपासना का फल—

१५४. प्र०—भन्ते ! तथारूप (जैसा वेश है, तदनुरूप गुणों वाले) श्रमण या माहन की पर्युपासना करने वाले मनुष्य को उसकी पर्युपासना का क्या फल मिलता है ?

उ०—गौतम ! पर्युपासना का फल श्रवण है।

प्र०—(२) भन्ते ! उस श्रवण का क्या फल होता है ?

उ०—गौतम ! श्रवण का फल ज्ञान है।

प्र०—(३) भन्ते ! उस ज्ञान का क्या फल होता है ?

उ०—गौतम ! ज्ञान का फल विज्ञान है।

प्र०—(४) भन्ते ! उस विज्ञान का क्या फल होता है ?

उ०—गौतम ! विज्ञान का फल प्रत्याख्यान है।

प्र०—(५) भन्ते ! प्रत्याख्यान का क्या फल होता है ?

उ०—गौतम ! प्रत्याख्यान का फल संयम है।

प०—६. से णं भंते ! संजमे किं फले ?

उ०—अणण्हयफले ।

प०—७. से णं भंते ! अणण्हये किं फले ?

उ०—तवफले ।

प०—८. से णं भंते ! तवे किं फले ?

उ—वोदाणफले ।

प०—९. से णं भंते ! वोदाणं किं फले ?

उ०—अकिरियाफले ।

प०—१०. से णं भंते ! अकिरिया किं फला ?

उ०—सिद्धिपज्जवसाणफला पण्णत्ता गोयमा !

गाहा—

सवणे णाणे य विण्णाणे, पच्चक्खाणे य संजमे ।
अणण्हये तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धि ॥

—वि. स. २, उ. ५, सु. २६

—ठाणं. अ ३, उ. ३, सु. १९५

प्र०—(६) भन्ते ! संयम का फल क्या है ?

उ०—गौतम ! संयम का फल अनाश्रवत्व (संवर—नवीन कर्मों का निरोध) है ।

प्र०—(७) भन्ते ! अनाश्रवत्व का क्या फल होता है ?

उ०—गौतम ! अनाश्रवत्व का फल तप है ।

प्र०—(८) भन्ते ! तप का क्या फल होता है ?

उ०—गौतम ! तप का फल व्यवदान (कर्मनाश) है ।

प्र०—(९) भन्ते ! व्यवदान का क्या फल होता है ?

उ०—गौतम ! व्यवदान का फल अक्रिय है ।

प्र०—(१०) भन्ते ! अक्रिय का क्या फल होता है ?

उ०—गौतम ! अक्रिय का अन्तिम फल सिद्धि है । (अर्थात्—अक्रियता—अयोगी अवस्था प्राप्त होने पर अन्त में सिद्धि-मुक्ति प्राप्त होती है ।)

गाथा—

(१) (पर्युपासना का फल) श्रवण, (२) (श्रवण का फल) ज्ञान, (३) (ज्ञान का फल) विज्ञान, (४) (विज्ञान का फल) प्रत्याख्यान, (५) (प्रत्याख्यान का फल) संयम, (६) (संयम का फल) अनाश्रवत्व, (७) (अनाश्रवत्व का फल) तप, (८) (तप का फल) व्यवदान, (९) (व्यवदान का फल) अक्रिया और (१०) (अक्रिया का फल) सिद्धि है ।

गुरु साहम्मिय सुस्सूसणया फलं—

१५५. प०—गुरुसाहम्मियसुस्सूसणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—गुरुसाहम्मियसुस्सूसणयाए णं विणयपडिवत्तिं जणयइ । "विणयपडिवन्ने य णं" जीवे अणच्चासायणसीले नेरइयतिरिक्खजोणियमणुस्सदेवदोग्गईओ निरुम्भइ । वण्णसंजलणभत्तिबहुमाणयाए मणुस्सदेवसोग्गईओ निबन्धइ सिद्धिं सोग्गइं च विसोहेइ । पसत्थाइं च णं विणयमूलाइं सव्वकज्जाइं साहेइ । अन्ने य बहवे जीवे विणइत्ता भवइ ।

—उत्त. अ. २९, सु. ६

गुरु और साधर्मिक सुश्रूषा का फल—

१५५. प्र० भन्ते ! गुरु और साधर्मिक की शुश्रूषा (पर्युपासना) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—गुरु और साधर्मिक की शुश्रूषा से वह विनय को प्राप्त होता है । विनय को प्राप्त करने वाला व्यक्ति गुरु का अविनय या परिवाद करने वाला नहीं होता, इसलिए वह नैरयिक, तिर्यग्-योनिक, मनुष्य और देव सम्बन्धी दुर्गति का निरोध करता है । श्लाघा, गुण-प्रकाशन, भक्ति और बहुमान के द्वारा मनुष्य और देव-सम्बन्धी सुगति से सम्बन्ध जोड़ता है । सिद्धि और सुगति का मार्ग प्रशस्त करता है । विनय-मूलक सब प्रशस्त कार्यों को सिद्ध करता है और दूसरे बहुत व्यक्तियों को विनय के पथ पर ले आता है ।

गुरुकुलवासस्स माहप्पं—

१५६. गंथं विहाय इह सिक्खमाणो,
उट्ठाय सुबंभचेरं वसेज्जा ।
ओवायकारी विणयं सुसिक्खे,
जे छेए विप्पमायं न कुज्जा ॥

गुरुकुलवास का माहात्म्य—

१५६. इस लोक में बाह्य-आभ्यन्तर ग्रन्थ-परिग्रह का त्याग करके प्रव्रजित होकर मोक्षमार्ग-प्रतिपादक शास्त्रों के ग्रहण, (अध्ययन), और आसेवन (आचरण) रूप में गुरु से सीखता हुआ साधक सम्यक्रूप से ब्रह्मचर्य (नवगुप्ति सहित ब्रह्मचर्य या संयम) में स्थित रहे अथवा गुरुकुल में वास करे । आचार्य या गुरु के सान्निध्य में अथवा उनकी आज्ञा में रहता हुआ शिष्य विनय का प्रशिक्षण ले । (संयम या गुरु-आज्ञा के पालन में) निष्णात साधक (कदापि) प्रमाद न करे ।

जहा दियापोतमपत्तजातं,
सावासगा पविउं मण्णमाणं।
तमचाइयं तरुणमपत्तजातं,
ढंकादि अव्वत्तगमं हरेज्जा ॥

जैसे कोई पक्षी का बच्चा पूरे पंख आये बिना अपने आवास-स्थान (घोंसले) से उड़कर अन्यत्र जाना चाहता है, वह तरुण (बाल) पक्षी उड़ने में असमर्थ होता है। थोड़ा-थोड़ा पंख फड़-फड़ाते देखकर ढंक आदि मांस-लोलुप पक्षी उसका हरण कर लेते हैं और मार डालते हैं।

एवं तु सेहं पि अपुट्ठधम्मं,
निस्सारियं वुसिमं मण्णमाणा।
दियस्स छावं व अपत्तजातं,
हरिंसु णं पावधम्मा अणेगे ॥

इसी प्रकार जो साधक अभी श्रुत-चारित्र धर्म में पुष्ट—परिपक्व नहीं है, ऐसे शैक्ष (नवदीक्षित शिष्य) को अपने गच्छ (संघ) से निकला या निकाला हुआ तथा वश में आने योग्य जानकर अनेक पाषण्डी परतीर्थिक पंख न आये हुए पक्षी के बच्चे की तरह उसका हरण कर लेते (धर्मभ्रष्ट कर देते) हैं।

ओसाणमिच्छे मणुए समाहिं,
अणोसिते णंतकरे ति णच्चा।
ओभासमाणो दवियस्स वित्तं,
ण णिक्कसे बहिया आसुपण्णे ॥

गुरुकुल में निवास नहीं किया हुआ साधकपुरुष अपने कर्मों का अन्त नहीं कर पाता, यह जानकर गुरु के सान्निध्य में निवास और समाधि की इच्छा करे। मुक्तिगमनयोग्य (द्रव्यभूत-निष्कलंक चारित्रसम्पन्न) पुरुष के आचरण (वृत्त) को अपने सदनुष्ठान से प्रकाशित करे। अतः आशुप्रज्ञ साधक गच्छ से या गुरुकुलवास से बाहर न निकले।

जे ठाणओ या सयणासणे या,
परक्कमे यावि सुसाधुजुत्ते।
समितीसु गुत्तीसु य आयपण्णे,
वियागरंते य पुढो वदेज्जा ॥
—सूय. सु. १, अ. १४, गा. १-५

गुरुकुलवास से साधक स्थान—(कायोत्सर्ग), शयन (शय्या-संस्तारक, उपाश्रय शयन आदि) तथा आसन, (आसन आदि पर उपवेशन-विवेक, गमन-आगमन, तपश्चर्या आदि) एवं संयम में पराक्रम के (अभ्यास) द्वारा सुसाधु के समान आचरण करता है। तथा समितियों और गुप्तियों के विषय में (अभ्यस्त होने से) अत्यन्त प्रज्ञावान् (अनुभवी) हो जाता है, वह समिति-गुप्ति आदि का यथार्थस्वरूप दूसरों को भी बताता है।

सद्दाणि सोच्चा अदु भेरवाणि,
अणासवे तेसु परिव्वएज्जा।
निद्दं च भिक्खु न पमाय कुज्जा,
कहंकहं पी वितिगिच्छतिण्णे ॥

ईर्यासमिति आदि से युक्त साधु मधुर या भयंकर शब्दों को सुनकर उनमें मध्यस्थ —राग-द्वेष रहित होकर संयम में प्रगति करे, तथा निद्रा-प्रमाद एवं विकथा-कषायादि प्रमाद न करे। (गुरुकुल निवासी अप्रमत्त) साधु को कहीं किसी किसी विषय में विचिकित्सा—शंका हो जाय तो वह (गुरु से समाधान प्राप्त करके) उससे पार (निश्शंक) हो जाए।

डहरेण वुड्ढेणऽणुसासिते ऊ,
रातिणिएणावि समव्वएणं।
सम्मं तगं थिरतो णाभिगच्छे,
णिज्जंतए वा वि अपारए से ॥

गुरु सान्निध्य में निवास करते हुए साधु से किसी विषय में प्रमादवश भूल हो जाए तो अवस्था और दीक्षा में छोटे या बड़े साधु द्वारा अनुशासित (शिक्षित या निवारित) किये जाने पर अथवा भूल सुधारने के लिए प्रेरित किये जाने पर जो साधक उसे सम्यक्तया स्थिरतापूर्वक स्वीकार नहीं करता, वह संसार-समुद्र को पार नहीं कर पाता।

विउट्ठितेणं समयाणुसिट्ठे,
डहरेण वुड्ढेण य चोइते तु।
अच्चुट्ठिताए घडदासिए वा,
अगारिणं वा समयाणुसिट्ठे॥

साध्वाचार के पालन में कहीं भूल होने पर परतीर्थिक, अथवा गृहस्थ द्वारा आर्हत आगम विहित आचार की शिक्षा दिये जाने पर या अवस्था में छोटे या वृद्ध के द्वारा प्रेरित किये जाने पर, यहाँ तक कि अत्यन्त तुच्छ कर्म करने वाली घटदासी (घड़ा भरकर लाने वाली नौकरानी) द्वारा अकार्य के लिए निवारित किये जाने पर अथवा किसी के द्वारा यह कहे जाने पर कि 'यह कार्य तो गृहस्थाचार के योग्य भी नहीं है, साधु की तो बात ही क्या है ?'

ण तेसु कुज्झे ण य पव्वहेज्जा,
ण यावि किंचि फरुसं वदेज्जा।
तहा करिस्सं ति पडिस्सुणेज्जा,
सेयं खु मेयं ण पमाद कुज्जा॥

इन (पूर्वोक्त विभिन्न रूप से) शिक्षा देने वालों पर साधु क्रोध न करे, (परमार्थ का विचार करके) न ही उन्हें दण्ड आदि से पीड़ित करे, और न ही उन्हें पीड़ाकारी कठोर शब्द कहे; अपितु "मैं भविष्य में ऐसा (पूर्वऋषियों द्वारा आचरित) ही करूँगा" इसप्रकार (मध्यस्थवृत्ति से) प्रतिज्ञा करे, (अथवा अपने अनुचित आचरण के लिए "मिच्छामि दुक्कडं" के उच्चारण-पूर्वक आत्म-निन्दा द्वारा उससे निवृत्त हो) साधु यही समझे कि इसमें (प्रसन्नतापूर्वक अपनी भूल स्वीकार करके उससे निवृत्त होने में) मेरा ही कल्याण है। ऐसा समझकर वह पुनः प्रमाद न करे।

वणंसि मूढस्स जहा अमूढा,
मग्गाणुसासंति हितं पयाणं।
तेणावि मज्झं इणमेव सेयं,
जं मे बुहाऽसम्मणुसासयंति॥

जैसे यथार्थ और अयथार्थ मार्ग को भली-भाँति जानने वाले व्यक्ति घोर वन में मार्ग भूले हुए दिशामूढ़ व्यक्ति को कुमार्ग से हटाकर जनता के लिए हितकर मार्ग बता देते (शिक्षा देते) हैं, इसी तरह मेरे लिए भी यही कल्याणकारक उपदेश है, जो ये वृद्ध, बड़े या तत्वज्ञ पुरुष मुझे सम्यक् अच्छी शिक्षा देते हैं।

अह तेण मूढेण अमूढगस्स,
कायव्व पूया सविसेसजुत्ता।
एतोवमं तत्थ उदाहु वीरे,
अणुगम्म अत्थं उवणेति सम्मं॥

उस मूढ़ (प्रमादवश मार्गभ्रष्ट) पुरुष को उस अमूढ़ (मार्ग-दर्शन करने या जाग्रत करने वाले पुरुष) का उसी तरह विशेष रूप से (उसका परम उपकार मानकर) आदर-सत्कार (पूजा) करना चाहिए, जिस तरह मार्गभ्रष्ट पुरुष सही मार्ग पर चढ़ाने और बताने वाले व्यक्ति की विशेष सेवा-पूजा आदर-सत्कार करता है। इस विषय में वीर प्रभु ने यही उपमा (तुलना) बताई है। अतः पदार्थ (परमार्थ) को समझकर प्रेरक के उपकार (उपदेश) को हृदय में सम्यक्रूप से स्थापित करे।

णेया जहा अंधकारंसि राओ,
मग्गं ण जाणाइ अपस्समाणं।
से सूरियस्स अब्भुग्गमेणं,
मग्गं वियाणाति पगासियंसि॥
एवं तु सेहे वि अपुट्ठधम्मे,
धम्मं न जाणाति अबुज्झमाणे।
से कोविए जिणवयणेण पच्छा,
सूरोदए पासति चक्खुणेव॥

—सूय. सु. १, अ. १४, गा. ६-१३

जैसे अटवी आदि प्रदेशों से भलीभाँति परिचित मार्गदर्शक भी अंधेरी रात्रि में कुछ भी न देख पाने के कारण मार्ग को भली-भाँति नहीं जान पाता, परन्तु वही पुरुष सूर्य के उदय होने से चारों ओर प्रकाश फैलने पर मार्ग को भलीभाँति जान लेता है।

इसी तरह धर्म में अनिपुण-अपरिपक्व शिष्य भी सूत्र और अर्थ को नहीं समझता हुआ धर्म (श्रमणधर्म तत्व) को नहीं जान पाता, किन्तु वही अबोध शिष्य एक दिन जिनवचनों के अध्ययन-अनुशीलन से विद्वान् हो जाता है। फिर वह धर्म को इस प्रकार स्पष्ट जान लेता है जिस प्रकार सूर्योदय होने पर आँख के द्वारा व्यक्ति घट-पट आदि पदार्थों को स्पष्ट जान लेता है।

पण्हकरणविही—

१५७. कालेण पुच्छे समियं पयासु,
आइक्खमाणो दवियस्स वित्तं ।
तं सोयकारी य पुढो पवेसे,
संखा इमं केवलियं समाहिं ॥

अस्सिं सुठिच्चा तिविहेण तायी,
एतेसु या संति निरोहमाहु ।
ते एवमक्खंति तिलोगदंसी,
ण भुज्जमेतं ति पमायसंगं ॥

णिसम्म से भिक्खु समीहमट्ठं,
पडिभाणवं होति विसारदे या ।
आयाणमट्ठी वोदाण मोणं,
उवेच्च सुद्धेण उवेति मोक्खं ॥

—सूय. सु. १, अ. १४, गा. १५-१७

प्रश्न करने की विधि—

१५७. (गुरुकुलवासी) साधु (प्रश्न करने योग्य) अवसर देखकर सम्यग्ज्ञानसम्पन्न आचार्य से प्राणियों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे। तथा मोक्षगमन योग्य (द्रव्य) सर्वज्ञ वीतराग प्रभु के आगम (ज्ञान-धन) को बताने वाले आचार्य की पूजा-भक्ति करे। आचार्य का आज्ञाकारी शिष्य उनके द्वारा उपदिष्ट केवलि-प्ररूपित सम्यक्-ज्ञानादिरूप समाधि को भलीभाँति जानकर हृदय में स्थापित करे।

इसमें (गुरुकुलवास काल में) गुरु से जो उपदेश सुना और हृदय में भलीभाँति अवधारित किया, उस समाधिभूत मोक्षमार्ग में अच्छी तरह स्थित होकर मन-वचन-काया से कृत, कारित और अनुमोदित रूप से स्व-पर-त्राता (अपनी आत्मा का और अन्य प्राणियों का रक्षक) बना रहे। इन समिति-गुप्ति-आदि रूप समाधिमार्गों में स्थिर हो जाने पर सर्वज्ञों ने शान्तिलाभ और कर्मनिरोध बताया है। त्रिलोकदर्शी महापुरुष कहते हैं कि साधु को फिर कभी प्रमाद का संग नहीं करना चाहिए।

गुरुकुलवासी वह साधु उत्तम साधु के आचार को सुनकर अथवा स्वयं अभीष्ट अर्थ—मोक्ष रूप अर्थ को जानकर गुरुकुलवास से प्रतिभावान् एवं सिद्धान्त विशारद (स्वसिद्धान्त का सम्यग्ज्ञाता होने से श्रोताओं को यथार्थ-वस्तुतत्त्व के प्रतिपादन में निपुण) हो जाता है। फिर सम्यग्ज्ञान आदि से अथवा मोक्ष से प्रयोजन रखने वाला (आदानार्थी) वह साधु तप (व्यवदान) और मौन (संयम) ग्रहण रूप एवं आसेवन रूप शिक्षा द्वारा (उपलब्ध करके शुद्ध) निरुपाधिक उद्गमादि दोष रहित आहार से निर्वाह करता हुआ समस्त कर्मक्षयरूप मोक्ष को प्राप्त करता है।

उत्तरविही—

१५८. संखाय धम्मं च वियागरेंति,
बुद्धा हु ते अंतकरा भवंति ।
ते पारगा दोण्ह वि मोयणाए,
संसोधितं पण्हमुदाहरंति ॥

उत्तरविधि—

१५८. (गुरुकुलवासी होने से धर्म में सुस्थित, बहुश्रुत, प्रतिभावान् एवं सिद्धान्त विशारद) साधु सद्बुद्धि से (स्व-पर-शक्ति को, परिषदा को या प्रतिपाद्य विषय को सम्यक्तया जानकर) दूसरे को श्रुत-चारित्र-धर्म का उपदेश देते हैं (धर्म की व्याख्या करते हैं)। वे बुद्ध-त्रिकालवेत्ता होकर जन्म-जन्मान्तर संचित कर्मों का अन्त करने वाले होते हैं। वे स्वयं दूसरों को कर्मपाश से अथवा ममत्वरूपी बेड़ी से मुक्त करके संसार-पारगामी हो जाते हैं। वे सम्यक्तया सोच-विचार कर (प्रश्नकर्त्ता कौन है? यह किस पदार्थ को समझ सकता है, मैं किस विषय का प्रतिपादन करने में समर्थ हूँ? इन बातों की भलीभाँति परीक्षा करके) प्रश्न का संशोधित (पूर्वापर अविरुद्ध) उत्तर देते हैं।

नो छादते नो वि य लूसएज्जा,
माणं ण सेवेज्ज पगासणं च ।
ण यावि पण्णे परिहास कुज्जा,
ण या सियावाय वियागरेज्जा ॥

साधु प्रश्नों का उत्तर देते समय शास्त्र के यथार्थ को न छिपाए (अथवा वह अपने गुरु या आचार्य का नाम या अपना गुणोत्कर्ष बताने के अभिप्राय से दूसरों के गुण न छिपाए), अपसिद्धान्त का आश्रय लेकर शास्त्रपाठ की तोड़-मरोड़ कर व्याख्या न करे, (अथवा दूसरों के गुणों को दूषित न करे), तथा वह मैं ही सर्वशास्त्रों का ज्ञाता और महान् व्याख्याता हूँ, इस प्रकार मान-गर्व न करे, न ही स्वयं को बहुश्रुत एवं महातपस्वी रूप से प्रकाशित करे अथवा अपने तप, ज्ञान गुण आदि को प्रसिद्ध न करे। प्राज्ञ (श्रुतधर) साधक श्रोता (मन्दबुद्धि वाला व्यक्ति) का परिहास भी न करे, और न ही (तुम पुत्रवान्, धनवान् या दीर्घायु हो इस प्रकार का) आशीर्वादसूचक वाक्य कहे।

भूताभिसंकाए दुगुंछमाणो,
ण णिव्वहे मंतपदेण गोत्तं ।
ण किंचि मिच्छे मणुओ पयासु,
असाहुधम्माणि ण संवदेज्जा ॥

प्राणियों के विनाश की आशंका से तथा पाप से घृणा करता हुआ साधु किसी को आशीर्वाद न दे, तथा मन्त्र आदि के पदों का प्रयोग करके गोत्र (वचनगुप्ति या वाक्संयम अथवा मौन) को निःसार न करे, (अथवा साधु राजा आदि के साथ गुप्त मन्त्रणा करके या राजादि को कोई मन्त्र देकर गोत्र—प्राणियों के जीवन का नाश न कराए) साधु पुरुष धर्मकथा या शास्त्र व्याख्यान करता हुआ जनता (प्रजा) से द्रव्य या किसी पदार्थ के लाभ, सत्कार या भेंट, पूजा आदि की अभिलाषा न करे, असाधुओं के धर्म (वस्तुदान, तर्पण आदि) का उपदेश न करे (अथवा असाधुओं के धर्म का उपदेश करने वाले को सम्यक् न कहे, अथवा धर्मकथा करता हुआ साधु असाधु-धर्मों—अपनी प्रशंसा, कीर्ति, प्रसिद्धि आदि की इच्छा न करे)।

हासं पि णो संधये पावधम्मं,
ओए तहियं फरुसं वियाणे ।
णो तुच्छए णो य विकंथइज्जा,
अणाइले या अकसाइ भिक्खू ॥

जिससे हँसी उत्पन्न हो, ऐसा कोई शब्द या मन-वचन-काया का व्यापार न करे, अथवा साधु किसी के दोषों को प्रकट करने वाली, पापबन्ध के स्वभाववाली बातें हंसी में न कहे। वीतरागता में ओतप्रोत (रागद्वेष रहित) साधु दूसरों के चित्त को दुखित करने वाले कठोर सत्य को भी पापकर्मबन्धकारक जानकर न कहे। साधु किसी विशिष्ट लब्धि, सिद्धि या उपलब्धि अथवा पूजा-प्रतिष्ठा को पाकर मद न करे, न ही अपनी प्रशंसा करे अथवा दूसरे को भलीभांति जाने-परखे बिना उसकी अति प्रशंसा न करे। साधु व्याख्यान या धर्मकथा के अवसर पर लाभादि निरपेक्ष (निर्लोभ) एवं सदा कषायरहित होकर रहे।

संकेज्ज याऽसंकितभाव भिक्खू,
विभज्जवायं च वियागरेज्जा ।

सूत्र और अर्थ के सम्बन्ध में शंकारहित होने पर भी, "मैं ही इसका अर्थ जानता हूँ, दूसरा नहीं;" इस प्रकार का गर्व न करे, अथवा अशंकित होने पर भी शास्त्र के गूढ़ शब्दों की व्याख्या करते समय शंका (अन्य अर्थ की सम्भावना) के साथ कहे, अथवा स्पष्ट (शंका रहित) अर्थ को भी इस प्रकार न कहे जिससे श्रोता को शंका उत्पन्न हो तथा पदार्थों की व्याख्या विभज्यवाद से सापेक्ष दृष्टि से अनेकांत रूप से करे।

भासादुगं धम्म समुट्ठितेहिं,
वियागरेज्जा समया सुपण्णे ॥

धर्माचरण करने में समुद्यत साधुओं के साथ विचरण करता हुआ साधु दो भाषाएँ (सत्य और असत्यामृषा) बोले। सुप्रज्ञ (स्थिरबुद्धिसम्पन्न) साधु धनिक और दरिद्र दोनों को समभाव से धर्म कहे।

अणुगच्छमाणे वितहं ऽभिजाणे,
तहा तहा साहु अकक्कसेणं ।
ण कत्थती भास विहिंसएज्जा,
निरुद्धगं वा वि न दीहएज्जा ॥

पूर्वोक्त दो भाषाओं का आश्रय लेकर शास्त्र या धर्म की व्याख्या करते हुए साधु के कथन को कोई व्यक्ति यथार्थ समझ लेता है, और कोई मन्दमति व्यक्ति उसे अयथार्थ रूप में (विपरीत) समझता है, (ऐसी स्थिति में) साधु उस विपरीत समझने वाले व्यक्ति को जैसे-जैसे समीचीन हेतु, युक्ति, उदाहरण एवं तर्क आदि से वह समझ सके, वैसे-वैसे हेतु आदि से अकर्कश (कटुता-रहित—कोमल) शब्दों में समझाने का प्रयत्न करे। (किन्तु जो ठीक नहीं समझता है, उसे—तू मूर्ख है, दुर्बुद्धि है, जड़मति है, इत्यादि तिरस्कारसूचक वचन कहकर उसके मन को दुःखित न करे, (तथा प्रश्नकर्त्ता की भाषा को असम्बद्ध बताकर उसकी विडम्बना न करे, छोटी-सी (थोड़े शब्दों में कही जा सकने वाली) बात को व्यर्थ का शब्दाडम्बर करके विस्तृत न करे।

समालवेज्जा पडिपुण्णभासी,
निसामिया समिया अट्ठदंसी ।
आणाए सुद्धं वयणं भिउंजे,
ऽभिसंधए पावविवेग भिक्खू ॥

—सूय. सु. १, अ. १४, गा. १८-२४

जो बात संक्षेप में न समझाई जा सके उसे साधु विस्तृत (परिपूर्ण) शब्दों में कहकर समझाए। गुरु से सुनकर पदार्थ को भलीभाँति जानने वाला (अर्थदर्शी) साधु आज्ञा से शुद्ध वचनों का प्रयोग करे। साधु पाप का विवेक रखकर निर्दोष वचन बोले।

समाहिविहाणं—

समाधि का विधान—

१५६. अहाबुइयाइं सुसिक्खएज्जा,
जएज्ज या णातिवेलं वदेज्जा ।
से दिट्ठिमं दिट्ठि ण लूसएज्जा,
से जाणति भासिउं तं समाहिं ॥

१५६. तीर्थंकर और गणधर आदि ने जिस रूप में आगमों का प्रतिपादन किया है, गुरु से उनकी अच्छी तरह शिक्षा ले, (अर्थात्—ग्रहण शिक्षा द्वारा सर्वज्ञोक्त आगम का अच्छी तरह ग्रहण करे और आसेवना शिक्षा द्वारा उद्युक्त विहारी होकर तद-नुसार आचरण करे) (अथवा दूसरों को भी सर्वज्ञोक्त आगम अच्छी तरह सिखाए)। वह सदैव उसी में प्रयत्न करे। मर्यादा का उल्लंघन करके अधिक न बोले। सम्यक्दृष्टिसम्पन्न साधक सम्यक्दृष्टि को दूषित न करे (अथवा धर्मोपदेश देता हुआ साधु किसी सम्यक्दृष्टि की दृष्टि को (शंका पैदा करके) बिगाड़े नहीं। वह साधक उस (तीर्थंकरोक्त सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तपश्चरणरूप) भाव समाधि को कहना जानता है।

अलूसए णो पच्छण्णभासी,
णो सुत्तमत्थं च करेज्ज ताई ।
सत्थारभत्ती अणुवीति वायं,
सुयं च सम्मं पडिवातएज्जा ॥

साधु आगम के अर्थ को दूषित न करे, तथा वह सिद्धान्त को छिपा कर न बोले। स्व-पर-त्राता साधु सूत्र और अर्थ को अन्यथा न करे। साधु शिक्षा देने वाले (प्रशास्ता-गुरु) की भक्ति का ध्यान रखता हुआ सोच-विचार कर कोई बात कहे, तथा साधु ने गुरु से जैसा सुना है, वैसा ही दूसरे के समक्ष सिद्धान्त या शास्त्र वचन का प्रतिपादन करे।

से सुद्धसुत्ते उवहाणवं च,
धम्मं च जे विंदति तत्थ तत्थ।
आदेज्जवक्के कुसले वियत्ते,
से अरिहति भासिउं तं समाहिं॥

—सूय. सु. १, अ. १४, गा. २५-२७

जिस साधु का सूत्रोच्चारण, सूत्रानुसार प्ररूपण एवं सूत्राध्ययन शुद्ध है, जो शास्त्रोक्त तप (उपधान तप) का अनुष्ठान करता है, जो श्रुतचारित्ररूप धर्म को सम्यक्रूप से जानता या प्राप्त करता है अथवा जो उत्सर्ग के स्थान पर उत्सर्ग-मार्ग की और अपवाद-मार्ग के स्थान पर अपवाद की प्ररूपणा करता है, या हेतुग्राह्य अर्थ की हेतु से और आगम-ग्राह्य अर्थ की आगम से अथवा स्व-समय की स्व-समय रूप में एवं पर-समय की पर-समय रूप में प्ररूपणा करता है, वही पुरुष ग्राह्य-वाक्य है। तथा वही शास्त्र का अर्थ और तदनुसार आचरण करने में कुशल होता है। वह अविचारपूर्वक कार्य नहीं करता। वही ग्रन्थमुक्त साधक सर्वज्ञों की समाधि की व्याख्या कर सकता है।

सुत्तधरस्स भेया—

१६०. तओ पुरिस जाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुत्तधरे, अत्थधरे, तदुभयधरे।

—स्थानांग अ. ३, उ. ३, सु. ३४४

श्रुतधर के प्रकार—

१६०. श्रुतधर पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—
सूत्रधर, अर्थधर और तदुभयधर (सूत्र और अर्थ दोनों के धारक)।

बहुस्सुयसरूवं—

१६१. जहा संखम्मि पयं, "निहियं दुहओ वि" विरायइ।
एवं बहुस्सुए भिक्खू धम्मो कित्ती तहा सुयं॥

जहा से कम्बोयाणं, आइण्णे कन्थए सिया।
आसे जवेण पवरे, एवं हवइ बहुस्सुए॥

जहाइण्णसमारूढे, सूरे दढपरक्कमे।
उभओ नन्दिघोसेणं, एवं हवइ बहुस्सुए॥

जहा करेणुपरिकिण्णे, कुंजरे सट्ठिहायणे।
बलवन्ते अप्पडिहए, एवं हवइ बहुस्सुए॥

जहा से तिक्खसिंगे, जायखन्धे विरायई।
वसहे जूहाहिवई, एवं हवइ बहुस्सुए॥

जहा से तिक्खदाढे, उदग्गे दुप्पहंसए।
सीहे मियाणपवरे, एवं हवइ बहुस्सुए॥

जहा से वासुदेवे, संखचक्कगदाधरे।
अप्पडिहयबले जोहे, एवं हवइ बहुस्सुए॥

बहुश्रुत का स्वरूप

१६१. जिस प्रकार शंख में रखा हुआ दूध दोनों ओर (अपने और अपने आधार के गुणों) से सुशोभित होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भिक्षु में धर्म, कीर्ति और श्रुत दोनों ओर (अपने और अपने आधार के गुणों) से सुशोभित होते हैं।

जिस प्रकार कम्बोज देश के घोड़ों में से कन्थक घोड़ा शील आदि गुणों से आकीर्ण और वेग से श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार भिक्षुओं में बहुश्रुत श्रेष्ठ होता है।

जिस प्रकार आकीर्ण (जातिमान्) अश्व पर चढ़ा हुआ दृढ़ पराक्रम वाला योद्धा दोनों ओर बजने वाले वाद्यों के घोष से अजेय होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत अपने आसपास होने वाले स्वाध्याय-घोष से अजेय होता है।

जिस प्रकार हथिनियों से परिवृत साठ वर्ष का बलवान् हाथी किसी से पराजित नहीं होता, उसी प्रकार बहुश्रुत दूसरों से पराजित नहीं होता।

जिस प्रकार तीक्ष्ण सींग और अत्यन्त पुष्ट स्कन्ध वाला बैल यूथ का अधिपति बन सुशोभित होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत आचार्य बनकर सुशोभित होता है।

जिस प्रकार तीक्ष्ण दाढ़ों वाला पूर्ण युवा और दुष्पराजेय सिंह आरण्य-पशुओं में श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत अन्य तीर्थिकों में श्रेष्ठ होता है।

जिस प्रकार शंख, चक्र और गदा को धारण करने वाला वासुदेव अबाधित बल वाला योद्धा होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत अबाधित बल वाला होता है।

जहा से चाउरन्ते, चक्कवट्टी महिड्ढिए ।
चउदसरयणाहिवई, एवं हवइ बहुस्सुए ॥

जिस प्रकार महान् ऋद्धिशाली, चतुरन्त चक्रवर्ती चौदह रत्नों का अधिपति होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत चतुर्दश पूर्वधर होता है ।

जहा से सहस्सक्खे, वज्जपाणी पुरन्दरे ।
सक्के देवाहिवई, एवं हवइ बहुस्सुए ॥

जिस प्रकार सहस्रचक्षु, वज्रपाणि और पुरों का विदारण करने वाला शक्र देवों का अधिपति होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत देवी (श्रुत) सम्पदा का अधिपति होता है ।

जहा से तिमिरविद्धंसे, उत्तिट्ठन्ते दिवायरे ।
जलन्ते इव तेएण, एवं हवइ बहुस्सुए ॥

जिस प्रकार अन्धकार का नाश करने वाला उगता हुआ सूर्य तेज से जलता हुआ प्रतीत होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत तप के तेज से जलता हुआ प्रतीत होता है ।

जहा से उडुवई चन्दे, नक्खत्तपरिवारिए ।
पडिपुण्णे पुण्णमासीए, एवं हवइ बहुस्सुए ॥

जिस प्रकार नक्षत्र-परिवार से परिवृत ग्रहपति चन्द्रमा पूर्णिमा को प्रतिपूर्ण होता है, उसी प्रकार साधुओं के परिवार से परिवृत बहुश्रुत सकल कलाओं में परिपूर्ण होता है ।

जहा से सामाइयाणं, कोट्ठागारे सुरक्खिए ।
नाणाधन्नपडिपुण्णे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥

जिस प्रकार सामाजिकों (समुदाय वृत्ति वालों) का कोष्ठागार सुरक्षित और अनेक प्रकार के धान्यों से परिपूर्ण होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत नाना प्रकार के श्रुत से परिपूर्ण होता है ।

जहा सा दुमाण पवरा, जम्बू नाम सुदंसणा ।
अणाढियस्स देवस्स, एवं हवइ बहुस्सुए ॥

जिस प्रकार अनाधृत देव का आश्रय सुदर्शन नाम का जम्बु वृक्ष सब वृक्षों में श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत सब साधुओं में श्रेष्ठ होता है ।

जहा सा नईण पवरा, सलिला सागरंगमा ।
सीया नीलवन्तपवहा, एवं हवइ बहुस्सुए ॥

जिस प्रकार नीलवान् पर्वत से निकलकर समुद्र में मिलने वाली शीता नदी शेष नदियों में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार बहुश्रुत सब साधुओं में श्रेष्ठ होता है ।

जहा से नगाण पवरे, सुमहं मन्दरे गिरी ।
नाणोसहिपज्जलिए, एवं हवइ बहुस्सुए ॥

जिस प्रकार अतिशय महान् और अनेक प्रकार की औषधियों से दीप्त मन्दर पर्वत सब पर्वतों में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार बहुश्रुत सब साधुओं में श्रेष्ठ होता है ।

जहा से सयंभूरमणे, उदही अक्खओदए ।
नाणारयणपडिपुण्णे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥

जिस प्रकार अक्षय जल वाला स्वयंभूरमण समुद्र अनेक प्रकार के रत्नों से भरा हुआ होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत अक्षय ज्ञान से परिपूर्ण होता है ।

समुद्दगम्भीरसमा दुरासया,
अचक्किया केणइ दुप्पहंसया ।
सुयस्स पुण्णा विउलस्स ताइणो,
खवित्तु कम्मं गइमुत्तमं गया ॥
तम्हा सुयमहिट्ठेज्जा, उत्तमट्ठगवेसए ।
जेणप्पाणं परं चेव, सिद्धिं संपाउणेज्जासि ॥

—उत्त. अ. ११, गा. १५-३२

समुद्र के समान गम्भीर, दुराशय (कष्टों से अबाधित), अभय, किसी प्रतिवादी के द्वारा अपराजेय, विपुलश्रुत से पूर्ण और त्राता बहुश्रुत मुनि कर्मों का क्षय करके उत्तम गति (मोक्ष) में गये ।

इसलिए उत्तम-अर्थ (मोक्ष) की गवेषणा करने वाला मुनि श्रुत का आश्रयण करे, जिससे वह अपने आपको और दूसरों को सिद्धि (मुक्ति) को प्राप्त करा सके ।

अबहुस्सुय सरूवं—

१६२. जे यावि होइ निव्विज्जे, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ।
अभिक्खणं उल्लवई, अविणीए, अबहुस्सुए ॥

—उत्त. अ. ११, गा. २

अबहुश्रुत का स्वरूप—

१६२. जो विद्याहीन है, विद्यावान् होते हुए भी जो अभिमानी है, जो सरस आहार में लुब्ध है, जो अजितेन्द्रिय है, जो बार-बार असम्बद्ध बोलता है, जो अविनीत है, वह अबहुश्रुत कहलाता है ।

जे य चंडे मिए थद्धे, दुव्वाई नियडी सढे ।
वुज्झइ से अविणीयप्पा, कट्ठं सोयगयं जहा ॥
—दस. अ. ९, उ. २, गा. ३

जो चण्ड, अज्ञ, स्तब्ध, अप्रियवादी मायावी और शठ हैं, वह अविनीतात्मा संसार स्रोत में वैसे ही प्रवाहित होता है, जैसे नदी के स्रोत में पड़ा हुआ काष्ठ ।

चउत्थो उवहाणायारो[1]

चतुर्थ उपधानाचार

सिक्खारिहं—

१६३. वसे गुरुकुले निच्चं, जोगवं उवहाणवं ।
पियंकरे पियंवाई, से सिक्खं लद्धुमरिहई ॥
—उत्त. अ. ११, गा. १४

शिक्षा के योग्य—

१६३. जो सदा गुरुकुल में वास करता है, जो समाधियुक्त होता है, जो उपधान (श्रुत-अध्ययन के समय तप) करता है, जो प्रिय करता है, जो प्रिय बोलता है—वह शिक्षा प्राप्त कर सकता है ।

पंचमो अणिण्हवायारो

पंचम अनिन्हवाचार

असाहुसरूवं —

१६४. अहो य राओ य समुट्ठिएहिं, तहागएहिं पडिलब्भ धम्मं ।
समाहिं माघायमजोसयंता, सत्थारमेवं फरुसं वयंति ॥

असाधु का स्वरूप—

१६४. अहर्निश उत्तम अनुष्ठान में प्रवृत्त तीर्थंकरों से धर्म को पाकर भी समाधिमार्ग का सेवन न करते हुए जमालि आदि निन्हव अपने शास्ता को कठोर वचन कहते हैं ।

---

१ (क) आगमों के अध्ययन-काल में आयंबिल आदि तप करना उपधानाचार है ।

(ख) प्रत्येक आगम के अध्ययन-काल में कितना तप करना—इसका विस्तृत विवरण उपलब्ध आगमों में नहीं है, किन्तु "योगोद्वहन विधि" विषयक कतिपय ग्रन्थों में उपधान तप की विधि है ।

उपधान परिभाषा—

(ग) उपसमीपेऽधीयते क्रियते सूत्रादिकं येन तपसा तदुपधानम् ।

(घ) उपधीयते उवष्टभ्यते श्रुतमनेनेति उपधानम् ।

(च) आचारांग श्रुत. १, अ. ९ वां "उवहाणसुयं" उपधानश्रुत नाम का अध्ययन है । इस अध्ययन में भगवान् महावीर की तपोमय साधना का वर्णन है ।

(छ) सूत्रकृतांग श्रुत. १, अ. ११, गा. ३५ में "उपधानवीर्य" श्रमण का विशेषण है ।

(ज) स्थानांग अ. २, उद्दे. ३, सूत्र ८४ में "उपधान-प्रतिमा" का उल्लेख है । उपधानं तपस्तत्प्रतिमोपधानप्रतिमा द्वादश भिक्षुप्रतिमा एकादशोपासकप्रतिमाश्चेत्येवरूपेति ।

(झ) स्थानांग अ. ४, उद्दे. १, सूत्र २५१ में भी "उपधान-प्रतिमा" का उल्लेख है ।

(ञ) स्थानांग अ. ४, उद्दे. १, सूत्र २३५ में चार अन्तक्रियाओं में उपधानवान् अणगार का विशेषण है ।

(ट) सूत्रकृतांग श्रु. १, अ. २, उद्दे. १ गा. १५ में एक सुन्दर रूपक दिया है—जिस प्रकार पक्षिणी पंख फड़फड़ाकर धूल झाड़ देती है, उसी प्रकार श्रमण भी उपधान तप से कर्मरज को झाड़ देता है ।

(ठ) उपधान-महिमा—जह खलु मइलं वत्थं, सुज्झइ उदगाएहिं दव्वेहिं । एवं भावुवहाणेण, सुज्झए कम्ममट्ठविहं ॥
—आचारांग निर्युक्ति गाथा २८३

(ड) उपधान तप के सम्बन्ध में निशीथ और महानिशीथ में यत् किंचित् लिखा है किन्तु प्रतियां उपलब्ध न होने से यहाँ नहीं लिखा है ।

(ढ) श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा में उपधान तप कराने की परिपाटी प्रचलित है । वे इस तप की आराधना में श्रावक-श्राविकाओं को ही अधिक से अधिक स्थान देते हैं । 'सप्त उपधान विधि' नामक पुस्तक में सात प्रकार के उपधान की तप विधि हैं । इसके प्रास्ताविक निवेदन में संपादक मुनि ने लिखा है कि—"पूर्वस्मिन्समये उपधानतपोवाहि नामाचारादि-व्यवस्था परमोत्कृष्टविधिसम्पन्ना प्रकारान्तरेण निर्धारिता चासीत्, परं देशकालादिकं समालोच्य करुणावरुणालयैराचार्यैः स क्रमो नितरां सुगमो भवेत्तथा पश्चात् परिवर्तितः ।"

(ण) उपधान तप के सम्बन्ध में प्राचीन ग्रन्थ विधिप्रपा 'आचार दिनकर' और 'समाचारीशतक' आदि में यत्र तत्र लिखा है जिज्ञासु उन-उन ग्रन्थों का स्वाध्याय करें ।

विसोहियं ते अणुकाहयंते, जे आयभावेण वियागरेज्जा ।
अट्ठाणिए होइ बहुगुणाणं, जे णाणसंकाए मुसं वएज्जा ॥

जो (गोष्ठामाहिल के समान[1]) विशुद्ध मोक्ष मार्ग की परम्परागत व्याख्या से भिन्न व्याख्या करते हैं, वे सर्वज्ञ के ज्ञान में सशंक होकर मृषा बोलते हैं, अतः उत्तम गुणों के अपात्र होते हैं।

जे यावि पुट्ठा पलिउंचयंति आयाणमट्ठं खलु वंचयंति ।
असाहुणो ते इह साहुमाणी, मायण्णि एसंति अणंतघातं ॥
—सूय. सु. १, अ. १३, गा. ३-४

जो कोई (साधक साधिका) पूछने पर अपने (गुरु का नाम) छिपाते हैं, वे लेने लायक मोक्ष अर्थ से अपने को वंचित करते हैं। वे असाधु होते हुए अपने को साधु मानने वाले माया (कपट) से युक्त हो अनन्तकालिक घात (नरक) को प्राप्त होंगे।

छट्ठो वंजणणाणायारो[2] सत्तमो अट्ठणाणायारो[3] अट्ठमो तदुभयणाणायारो[4]

छठा व्यंजन-ज्ञानाचार, सातवां अर्थ-ज्ञानाचार, आठवां तदुभय-ज्ञानाचार

सुत्तत्थस्स अणिण्हवणं—

१६५. अदूसए[5] णो पच्छण्णभासी, णो सुत्तमत्थं च करेज्ज ताई[6] ।
सत्थारभत्ती अणुवीइ वायं, सुयं च सम्मं पडिवाययंति ॥
—सूय. सु. १, अ. १४, गा. २६, (६०५)

सूत्रार्थ का न छिपाना—

१६५. सर्व प्राणियों का त्राता श्रमण आगम के अर्थ को न छिपावे, न दूषित करे सूत्रार्थ का अन्यथा उच्चारण न करे तथा शास्ता की भक्ति का ध्यान रखते हुए प्रत्येक बात विचार कर कहे और गुरु से सूत्रार्थ की जैसी व्याख्या सुनी है वैसी ही अन्य को कहे।

**

१ भगवान् महावीर के शासनकाल में सात प्रवचन निन्हव हुए हैं, उनका संक्षिप्त वर्णन स्थानांग अ. ७, सूत्र ५८७ में है।

२ (क) जो अर्थ को व्यक्त करे वह व्यन्जन है, व्यन्जनों से सूत्र की रचना होती है, अतः व्यन्जन सूत्र को कहते हैं। "वंजणमिति भण्णते सुत्तं"—निशीथचूर्णी पीठिका पृष्ठ १२ गाथा १७, सूत्र के अक्षरों का शुद्ध उच्चारण करना व्यन्जनाचार है।

(ख) सूत्र के अशुद्ध उच्चारण से अर्थ-भेद होता है, अर्थ-भेद से क्रिया भेद तथा क्रिया-भेद से निर्जरा नहीं होती है और निर्जरा न होने से मोक्ष नहीं होता है, अतः सूत्रों का शुद्ध उच्चारण करना आवश्यक है।

(ग) सूत्रकृतांग श्रुत. १, अ. १४, गा. २७ में "सुद्ध सुत्ते" सूत्र का शुद्ध उच्चारण भावसमाधि का हेतु माना है।

(घ) शुद्ध उच्चारण के लिए व्याकरण का ज्ञान आवश्यक है तथा भाषा समिति का विवेक आवश्यक है, अतः एतद् विषयक विस्तृत विवरण भाषा समिति विभाग में देखें।

३ सूत्र का सत्य अर्थ करना अर्थाचार है।

४ सूत्र और अर्थ का शुद्ध उच्चारण करना और सम्यक् अर्थ समझना तदुभयाचार है।

५ अदूसए—अपसिद्धान्तव्याख्यानेन सर्वज्ञोक्तमागमं न दूषयेत्।

६ ताई—संसारात् त्रायी-त्राणशीलो जन्तुनाम्।

णाणायार-परिसिट्ठं

ज्ञानाचार परिशिष्ट

णाण-आयार-भेएण पुरिसभेया—

१६६. (क) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

सेयंसे नाममेगे सेयंसे,

सेयंसे नाममेगे पावंसे,

पावंसे नाममेगे सेयंसे,

पावंसे नाममेगे पावंसे ।

(ख) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

सेयंसे नाममेगे सेयंसेत्ति सालिसए,

सेयंसे नाममेगे पावंसेत्ति सालिसए,

पावंसे नाममेगे सेयंसेत्ति सालिसए,

पावंसे नाममेगे पावंसेत्ति सालिसए ।

(ग) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

सेयंसे नाममेगे सेयंसे त्ति मन्नइ,

सेयंसे नाममेगे पावंसे त्ति मन्नइ,

पावंसे नाममेगे सेयंसे त्ति मन्नइ,

पावंसे नाममेगे पावंसे त्ति मन्नइ ।

(घ) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

सेयंसे नाममेगे सेयंसे त्ति सालिसए मन्नइ,

सेयंसे नाममेगे पावंसे त्ति सालिसए मन्नइ,

ज्ञान और आचार भेद से पुरुषों के प्रकार—

१६६. (क) चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा—

कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं और आचरण की दृष्टि से भी श्रेष्ठ हैं।

कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं किन्तु आचरण की दृष्टि से पापी हैं।

कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से पापी हैं किन्तु आचरण की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं।

कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से भी पापी हैं और आचरण की दृष्टि से भी पापी हैं।

(ख) चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा—

कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं और आचरण की दृष्टि से श्रेष्ठ सदृश हैं।

कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं किन्तु आचरण की दृष्टि से पापी के सदृश हैं।

कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से पापी हैं किन्तु आचरण की दृष्टि से श्रेष्ठ सदृश हैं।

कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से पापी हैं और आचरण की दृष्टि से पापी सदृश हैं।

(ग) चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा—

कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं और अपने आप को श्रेष्ठ ही मानते हैं।

कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं, किन्तु अपने आप को पापी मानते हैं।

कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से पापी हैं किन्तु अपने आप को श्रेष्ठ मानते हैं।

कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से पापी हैं और अपने आप को पापी मानते हैं।

(घ) चार प्रकार के पुरुष कहे गए हैं, यथा—

कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं और अपने आप को श्रेष्ठ सदृश मानते हैं।

कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं किन्तु अपने आप को पापी सदृश मानते हैं।

पावंसे नाममेगे सेयंसे त्ति सालिसए मन्नइ,

पावंसे नाममेगे पावंसे त्ति सालिसए मन्नइ।

—ठाणं अ. ४, उ. ४, सु. ३४४

कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से पापी हैं किन्तु अपने आप को श्रेष्ठ सदृश मानते हैं।

कुछ पुरुष बोध की दृष्टि से पापी हैं और अपने आप को पापी सदृश मानते हैं।

णाणिणो अण्णाणिणो य—

१६७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दुग्गए नाममेगे दुग्गए,
दुग्गए नाममेगे सुग्गए,
सुग्गए नाममेगे दुग्गए,
सुग्गए नाममेगे सुग्गए।

ज्ञानी और अज्ञानी—

१६७. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—

एक पुरुष पहले भी ज्ञानादि गुण से हीन है और पीछे भी ज्ञानादि गुण से हीन है।

एक पुरुष पहले ज्ञानादि गुण से हीन है किन्तु पीछे ज्ञानादि गुण से सम्पन्न होता है।

एक पुरुष पहले ज्ञानादि गुण से सम्पन्न है किन्तु पीछे ज्ञानादि गुण से हीन हो जाता है।

एक पुरुष पहले भी ज्ञानादि गुण से सम्पन्न है और पीछे भी ज्ञानादि गुण से सम्पन्न है।

१६८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
तमे नाममेगे तमे,
तमे नाममेगे जोई,
जोई नाममेगे तमे,
जोई नाममेगे जोई। —ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३२७

१६८. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—
एक पुरुष पहले अज्ञानी है और पीछे भी अज्ञानी है,
एक पुरुष पहले अज्ञानी है किन्तु पीछे ज्ञानी है,
एक पुरुष पहले ज्ञानी है किन्तु पीछे अज्ञानी है,
एक पुरुष पहले भी ज्ञानी है और पीछे भी ज्ञानी है।

नाणदंसणुप्पत्ति—अणुप्पत्ति य—

१६९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
किससरीरस्स नाममेगस्स णाण-दंसणे समुप्पज्जइ,
नो दढसरीरस्स,
दढसरीरस्स नाममेगस्स णाण-दंसणे समुप्पज्जइ,
नो किससरीरस्स,
एगस्स किससरीरस्स वि णाण-दंसणे समुप्पज्जइ,
दढसरीरस्स वि,
एगस्स नो किससरीरस्स णाण-दंसणे समुप्पज्जइ,
नो दढसरीरस्स। —ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २८३

ज्ञान-दर्शन की उत्पत्ति और अनुत्पत्ति—

१६९. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—

कृश शरीर वाले पुरुष को ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होता है, किन्तु दृढ़ शरीर वाले को नहीं,

दृढ़ शरीर वाले पुरुष को ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होता है, किन्तु कृश शरीर वाले को नहीं,

कृश और दृढ़ शरीर वाले पुरुष को भी ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होता है,

कृश और दृढ़ शरीर वाले पुरुष को ज्ञान-दर्शन उत्पन्न नहीं होता है,

अतिसेस नाणदंसणाणं अणुप्पत्ति कारणाइं—

१७०. चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अस्सिं समयंसि अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जिउकामे वि ण समुप्पज्जेज्जा, तं जहा—

१. अभिक्खणं-अभिक्खणं इत्थिकहं भत्तकहं देसकहं रायकहं कहेत्ता भवति।

२. विवेगेण विउस्सग्गेणं णो सम्ममप्पाणं भावित्ता भवति।

३. पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि णो धम्मजागरियं जागरइत्ता भवति।

अतिशययुक्त ज्ञान-दर्शन की उत्पत्ति नहीं होने के कारण—

१७०. चार कारणों से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों के इस समय में अर्थात् तत्काल अतिशय-युक्त ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते-होते भी उत्पन्न नहीं होते, जैसे—

(१) जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी बार-बार स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा और राजकथा करता है।

(२) जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी विवेक और व्युत्सर्ग के द्वारा आत्मा को सम्यक् प्रकार से भावित करने वाला नहीं होता।

(३) जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी पूर्वरात्रि और अपररात्रिकाल के समय धर्म-जागरण करके जागृत नहीं रहता।

४. फासुयस्स एसणिज्जस्स उंछस्स सामुदाणियस्स णो सम्मं गवेसित्ता भवति।

इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा -जाव-(अस्सिं समयंसि अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जिउकामे वि) णो समुप्पज्जेज्जा।

—ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २८४

(४) जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी प्रासुक, एषणीय, उंछ और सामुदानिक भिक्षा की सम्यक् प्रकार से गवेषणा नहीं करता।

इन चार कारणों से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को तत्काल अतिशय-युक्त ज्ञान-दर्शन उत्पन्न होते-होते भी रुक जाते हैं—उत्पन्न नहीं होते।

अतिसेस नाणदंसणुप्पत्ति कारणाइं—

१७१. चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अस्सिं समयंसि अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जिउकामे समुप्पज्जेज्जा, तं जहा—

१. इत्थिकहं भत्तकहं देसकहं रायकहं णो कहेत्ता भवति।

२. विवेगेण विउस्सग्गेणं सम्ममप्पाणं भावेत्ता भवति।

३. पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरइत्ता भवति।

४. फासुयस्स एसणिज्जस्स उंछस्स सामुदाणियस्स सम्मं गवेसित्ता भवति।

इच्चेतेहिं चउहिं ठाणेहिं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा -जाव-अस्सिं समयंसि अतिसेसे णाणदंसणे समुप्पज्जिउकामे समुप्पज्जेज्जा। —ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २८४

अतिशय-युक्त ज्ञान-दर्शन की उत्पत्ति के कारण—

१७१. चार कारणों से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को अभीष्ट अतिशय-युक्त ज्ञान-दर्शन तत्काल उत्पन्न होते हैं, जैसे—

(१) जो स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा और राजकथा नहीं कहता।

(२) जो विवेक और व्युत्सर्ग के द्वारा आत्मा की सम्यक् प्रकार से भावना करता है।

(३) जो पूर्वरात्रि और अपररात्रि के समय धर्म ध्यान करता हुआ जागृत रहता है।

(४) जो प्रासुक, एषणीय, उंछ और सामुदानिक भिक्षा की सम्यक् प्रकार से गवेषणा करता है।

इन चार कारणों से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों के अभीष्ट, अतिशय-युक्त ज्ञान-दर्शन तत्काल उत्पन्न होते हैं।

णाण-दंसणाणं वुड्ढिकरा हाणिकरा य—

१७२. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

एगेणं नाममेगे वड्ढइ एगेणं हायइ,

एगेणं नाममेगे वड्ढइ दोहिं हायइ,

दोहिं नाममेगे वड्ढई एगेणं हायइ,

एगे दोहिं नाममेगे वड्ढइ दोहिं हायइ।

—ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३२७

ज्ञान-दर्शनादि की वृद्धि करने वाले और हानि करने वाले—

१७२. चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं—यथा—

एक पुरुष ज्ञान से बढ़ता है किन्तु सम्यग्दर्शन से हीन होता है,

एक पुरुष ज्ञान से बढ़ता है किन्तु सम्यग्दर्शन और विनय से हीन होता है,

एक पुरुष ज्ञान और चारित्र से बढ़ता है किन्तु सम्यग्दर्शन से हीन होता है,

एक पुरुष ज्ञान और चारित्र से बढ़ता है किन्तु सम्यग्दर्शन और विनय से हीन होता है।

[इस चौभंगी का एक वैकल्पिक अर्थ और भी है—

एक पुरुष ज्ञान से बढ़ता है और राग से हीन होता है,

एक पुरुष ज्ञान से बढ़ता है और राग-द्वेष से हीन होता है,

एक पुरुष ज्ञान व संयम से बढ़ता है और राग से हीन होता है,

एक पुरुष ज्ञान व संयम से बढ़ता है और राग-द्वेष से हीन होता है।]

ओहिनाणिस्स खोभगा—

१७३. पंचहिं ठाणेहिं ओहिदंसणे समुपज्जिउकामे वि तप्पढमयाए खंभाएज्जा, तं जहा—

१. अप्पभूतं वा पुढविं पासित्ता तप्पढमयाए खंभाएज्जा,

२. कुन्थुरासिभूतं वा पुढविं पासित्ता तप्पढमयाए खंभाएज्जा,

३. महइ महालयं वा महोरगसरीरं पासित्ता तप्पढमयाए खंभाएज्जा,

४. देवं वा महड्ढियं-जाव-महेसक्खं पासित्ता तप्पढमयाए खंभाएज्जा,

५. पुरेसु वा पोराणाइं महइ महालयाइं महानिहाणाइं पहीण-सामियाइं, पहीणसेउयाइं, पहीणगुत्तागाराइं उच्छिन्न-सामियाइं उच्छिन्नसेउयाइं उच्छिन्नगोत्तागाराइं जाइं इमाइं गामागर-णगर-खेड-कब्बड-मंडब-दोणमुह-पट्टणासम-संवाह-सन्निवेसेसु सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु णगरणिद्धमणेसु सुसाण-सुन्नागार-गिरिकंदर-संति-सेलोवट्ठावण भवणगिहेसु सन्निक्खित्ताइं चिट्ठन्ति ताइं वा पासित्ता तप्पढमयाए खंभाएज्जा। इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं ओहिदंसणे समुपज्जिउकामे तप्पढमयाए खंभाएज्जा।

अवधिज्ञान के क्षोभक—

१७३. अवधिज्ञान प्रथम अवधिउपयोग की प्रवृत्ति के समय पाँच कारणों से क्षुब्ध-चलित होता है, यथा—

(१) पृथ्वी को अल्प देखकर अवधिज्ञानी प्रथम अवधि उपयोग की प्रवृत्ति के समय क्षुब्ध होता है,

(२) कुंथुओं की राशिमय पृथ्वी को देखकर अवधिज्ञानी प्रथम अवधिउपयोग की प्रवृत्ति के समय क्षुब्ध होता है,

(३) महान् अजगर के शरीर देखकर अवधिज्ञानी प्रथम अवधिउपयोग की प्रवृत्ति के समय क्षुब्ध होता है।

(४) अत्यन्त सुखी और महती ऋद्धि वाले देव को देखकर अवधिज्ञानी प्रथम अवधिउपयोग की प्रवृत्ति के समय क्षुब्ध होता है।

(५) पुर ग्रामादि के जनपद आदि में एवं गिरिकन्दरा-श्मशान-शून्यगृह आदि स्थानों में स्वामी हीन उत्तराधिकारीहीन प्राचीन दबी हुई महानिधियों (भण्डारों) को देखकर अवधिज्ञानी प्रथम अवधिउपयोग की प्रवृत्ति के समय क्षुब्ध होता है।

केवलणाण-दंसण अक्खोभगा—

१७४. पंचहिं ठाणेहिं केवलवरनाण-दंसणे समुपज्जिउकामे तप्पढमयाए नो खंभाएज्जा, तं जहा—

अप्पभूतं वा पुढविं पासित्ता तप्पढमयाए नो खंभाएज्जा, —सेसं तहेव—जाव—भवणगिहेसु सन्निक्खित्ताइं चिट्ठन्ति ताइं वा पासित्ता तप्पढमयाए नो खंभाएज्जा। इच्चेएहिं पंचहिं ठाणेहिं-जाव-नो खंभाएज्जा।

—ठाणं. अ. ५, उ. १, सु. ३६४

केवलज्ञान-दर्शन के अक्षोभक—

१७४. केवलज्ञानी और केवलदर्शनी उपयोग की प्रवृत्ति के समय क्षुब्ध नहीं होता, यथा—

पृथ्वी को अल्प देखकर—यावत्—स्वामीहीन महानिधियों को देखकर क्षुब्ध नहीं होते हैं। इन पाँच कारणों से—यावत्—क्षुब्ध नहीं होते हैं।

णाणसंपन्ना किरियासंपन्ना य—

१७५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

बुहे णाममेगे बुहे,
बुहे नाममेगे अबुहे,
अबुहे नाममेगे बुहे,
अबुहे नाममेगे अबुहे।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

बुहे नाममेगे बुहहियए,
बुहे नाममेगे अबुहहियए,
अबुहे नाममेगे बुहहियए,
अबुहे नाममेगे अबुहहियए। —ठाणं. अ ४, उ. ४, सु. ३४२

ज्ञान सम्पन्न और क्रिया सम्पन्न —

१७५. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—

एक पुरुष शास्त्रज्ञ है और क्रियाकुशल भी है,
एक पुरुष शास्त्रज्ञ है किन्तु क्रियाकुशल नहीं है,
एक पुरुष शास्त्रज्ञ नहीं है किन्तु क्रियाकुशल है,
एक पुरुष शास्त्रज्ञ भी नहीं है और क्रियाकुशल भी नहीं है।

चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—

एक पुरुष विवेकी है और उसके कार्य भी विवेकपूर्ण हैं,
एक पुरुष विवेकी है किन्तु उसके कार्य अविवेककृत हैं,
एक पुरुष अविवेकी है किन्तु उसके कार्य विवेकपूर्ण हैं,
एक पुरुष अविवेकी है और उसके कार्य भी अविवेककृत हैं।

णाणजुत्ता—आयारजुत्ता य—

१७६. (क) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

जुत्ते नाममेगे जुत्ते,
जुत्ते नाममेगे अजुत्ते,
अजुत्ते नाममेगे जुत्ते,
अजुत्ते नाममेगे अजुत्ते ।

—ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१९

ज्ञान-युक्त और आचार-युक्त

१७६. (क) चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—

एक पुरुष ज्ञान से युक्त है और आचार से भी युक्त है,
एक पुरुष ज्ञान से युक्त है किन्तु आचार से युक्त नहीं है,
एक पुरुष ज्ञान से अयुक्त है किन्तु आचार से युक्त है,
एक पुरुष ज्ञान से भी अयुक्त है और आचार से भी अयुक्त है।

[काल की अपेक्षा से इस चौभंगी का अर्थ इस प्रकार होगा—

एक पुरुष गृहस्थ पर्याय में धनादि से युक्त था और श्रमण-पर्याय में भी ज्ञानादि से युक्त है,

एक पुरुष गृहस्थ पर्याय में धनादि से युक्त था किन्तु श्रमण-पर्याय में ज्ञानादि से युक्त नहीं है,

एक पुरुष गृहस्थ पर्याय में धनादि से अयुक्त था किन्तु श्रमणपर्याय में ज्ञानादि से युक्त है।

एक पुरुष गृहस्थ पर्याय में धनादि से अयुक्त था और श्रमण-पर्याय में भी ज्ञानादि से अयुक्त है।]

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

तमे नाममेगे तमबले,
तमे नाममेगे जोईबले,
जोई नाममेगे तमबले,
जोई नाममेगे जोईबले ।

चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—

एक पुरुष अज्ञानी है और दुराचारी है,
एक पुरुष अज्ञानी है किन्तु सदाचारी है,
एक पुरुष ज्ञानी है किन्तु दुराचारी है,
एक पुरुष ज्ञानी है किन्तु सदाचारी है।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

तमे नाममेगे तमबलपलज्जणे,
तमे नाममेगे जोईबलपलज्जणे,
जोई नाममेगे तमबलपलज्जणे,
जोई नाममेगे जोईबलपलज्जणे ।

—ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३२७

(ख) चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—

एक पुरुष अज्ञानी है और उसे दुराचार में ही आनन्द आता है,
एक पुरुष अज्ञानी है किन्तु उसे सदाचार में आनन्द आता है,
एक पुरुष ज्ञानी है किन्तु उसे दुराचार में ही आनन्द आता है,
एक पुरुष ज्ञानी है किन्तु उसे सदाचार में ही आनन्द आता है।

णाणजुत्ता—णाणपरिणता य—

१७७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

जुत्ते नाममेगे जुत्तपरिणए,
जुत्ते नाममेगे अजुत्तपरिणए,
अजुत्ते नाममेगे जुत्तपरिणए,
अजुत्ते नाममेगे अजुत्तपरिणए ।

—ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१९

ज्ञान-युक्त और ज्ञान परिणत—

१७७. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—

एक पुरुष ज्ञानादि से युक्त है और ज्ञानादि की परिणति से भी युक्त है,

एक पुरुष ज्ञानादि से युक्त है किन्तु ज्ञानादि की परिणति से युक्त नहीं है,

एक पुरुष ज्ञानादि से अयुक्त है किन्तु ज्ञानादि की परिणति से युक्त है,

एक पुरुष ज्ञानादि से भी अयुक्त है और ज्ञानादि की परिणति से भी अयुक्त है।

णाणजुत्ता वेसजुत्ता य—

१७८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते नाममेगे जुत्तरूवे,
जुत्ते नाममेगे अजुत्तरूवे,
अजुत्ते नाममेगे जुत्तरूवे,
अजुत्ते नाममेगे अजुत्तरूवे।
—ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१६

ज्ञान-युक्त और वेषयुक्त—

१७८. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—
एक पुरुष ज्ञानादि से युक्त है और साधुवेष से भी युक्त है,
एक पुरुष ज्ञानादि से युक्त है किन्तु साधुवेष से अयुक्त है,
एक पुरुष ज्ञानादि से अयुक्त है किन्तु साधुवेष से युक्त है,
एक पुरुष ज्ञानादि से भी अयुक्त है और साधुवेष से भी अयुक्त है।

णाणजुत्ता सिरिजुत्ता, अजुत्ता य—

१७९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जुत्ते नाममेगे जुत्तसोभे,
जुत्ते नाममेगे अजुत्तसोभे,
अजुत्ते नाममेगे जुत्तसोभे,
अजुत्ते नाममेगे अजुत्तसोभे।
—ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१६

ज्ञानयुक्त और शोभायुक्त; अयुक्त—

१७९. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—
एक पुरुष ज्ञानादि से युक्त है और उसकी उचित शोभा भी है।
एक पुरुष ज्ञानादि से युक्त है किन्तु उसकी उचित शोभा नहीं है।
एक पुरुष ज्ञानादि से अयुक्त है किन्तु उसकी उचित शोभा है।
एक पुरुष ज्ञान से भी अयुक्त है और उसकी उचित शोभा भी नहीं है।

पंचविहा परिण्णा—

१८०. पंचविहा परिण्णा पण्णत्ता, तं जहा—
१. उवहिपरिण्णा,
२. उवस्सयपरिण्णा,
३. कसायपरिण्णा,
४. जोगपरिण्णा,
५. भत्तपाणपरिण्णा। —ठाणं. अ. ५, उ. २, सु. ४२०

पाँच प्रकार की परिज्ञा—

१८०. परिज्ञा पाँच प्रकार की कही गई है, जैसे—
(१) उपधि परिज्ञा,
(२) उपाश्रय परिज्ञा,
(३) कषाय परिज्ञा,
(४) योग परिज्ञा,
(५) भक्तपान परिज्ञा।

सरीरसंपन्ना पण्णासंपन्ना य—

१८१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उन्नए नाममेगे उन्नए पन्ने,
उन्नए नाममेगे पणए पन्ने,
पणए नाममेगे उन्नए पन्ने,
पणए नाममेगे पणए पन्ने।
—ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २३६

शरीरसम्पन्न और प्रज्ञ सम्पन्न—

१८१. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—
एक पुरुष शरीर से उन्नत है और प्रज्ञा से भी उन्नत है,
एक पुरुष शरीर से उन्नत है किन्तु प्रज्ञा से उन्नत नहीं है,
एक पुरुष शरीर से उन्नत नहीं है किन्तु प्रज्ञा से उन्नत है,
एक पुरुष शरीर से भी उन्नत नहीं है और प्रज्ञा से भी उन्नत नहीं है।

उज्जू उज्जुपण्णा, जुत्ता वंका वंकपण्णाजुत्ता—

१८२. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू नाममेगे उज्जूपन्ने,
उज्जू नाममेगे वंकपन्ने,
वंके नाममेगे उज्जूपन्ने,
वंके नाममेगे वंकपन्ने। —ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २३६

ऋजु-ऋजुप्रज्ञ और वक्र-वक्रप्रज्ञ—

१८२. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—
एक पुरुष ऋजु है और ऋजुप्रज्ञ है,
एक पुरुष ऋजु है किन्तु वक्रप्रज्ञ है,
एक पुरुष वक्र है किन्तु ऋजुप्रज्ञ है,
एक पुरुष वक्र है और वक्रप्रज्ञ है।

दीना दीनपण्णाजुत्ता, अदीना अदीनपण्णाजुत्ता—

१८३. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा
दीणे नाममेगे दीणपन्ने,
दीणे नाममेगे अदीणपन्ने,
अदीणे नाममेगे दीणपन्ने,
अदीणे नाममेगे अदीणपन्ने।
—ठाणं. अ. ४. उ. २, सु. २७९

दीन और अदीन, दीन-प्रज्ञावान और अदीन-प्रज्ञावान—

१८३. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—
एक पुरुष दीन है और सूक्ष्म अर्थ के आलोचन में भी दीन है।
एक पुरुष दीन है किन्तु सूक्ष्म अर्थ के आलोचन में अदीन है।
एक पुरुष अदीन है किन्तु सूक्ष्म अर्थ के आलोचन में दीन है।
एक पुरुष अदीन है और सूक्ष्म अर्थ के आलोचन में भी अदीन है।

अज्जा अणज्जा, अज्जपण्णाजुत्ता अणज्ज पण्णाजुत्ता—

१८४. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे नाममेगे अज्जपन्ने,
अज्जे नाममेगे अणज्जपन्ने,
अणज्जे नाममेगे अज्जपन्ने,
अणज्जे नाममेगे अणज्जपन्ने।
ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २८०

आर्य और अनार्य, आर्य प्रज्ञावान् और अनार्य प्रज्ञावान्—

१८४. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—
एक पुरुष आर्य भी है और आर्यप्रज्ञ भी है।
एक पुरुष आर्य है किन्तु आर्यप्रज्ञ नहीं है।
एक पुरुष अनार्य है किन्तु आर्यप्रज्ञ है।
एक पुरुष अनार्य है और अनार्यप्रज्ञ भी है।

सच्चा असच्चा, सच्चपण्णाजुत्ता असच्च पण्णाजुत्ता—

१८५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सच्चे नाममेगे सच्चपन्ने,
सच्चे नाममेगे असच्चपन्ने,
असच्चे नाममेगे सच्चपन्ने,
असच्चे नाममेगे असच्चपन्ने।

सत्यवक्ता और असत्यवक्ता सत्य प्रज्ञा और असत्य प्रज्ञा—

१८५. पुरुष चार प्रकार के कहे हैं, यथा—
एक पुरुष सत्य वक्ता है और उसकी प्रज्ञा भी सत्य है।
एक पुरुष सत्य वक्ता है किन्तु उसकी प्रज्ञा असत्य है।
एक पुरुष असत्य वक्ता है किन्तु उसकी प्रज्ञा सत्य है।
एक पुरुष असत्य वक्ता है और उसकी प्रज्ञा भी असत्य है।

सुसीला दुस्सीला, सील पण्णाजुत्ता असीलपण्णाजुत्ता—

१८६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुद्द नाममेगे सुद्दपन्ने,
सुद्द नाममेगे असुद्दपन्ने,
असुद्द नाममेगे सुद्दपन्ने,
असुद्द नाममेगे असुद्दपन्ने।

शील सम्पन्न और दुशील सम्पन्न, शील प्रज्ञावान और दुश्शील प्रज्ञावान—

१८६. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—
एक पुरुष स्वभाव से अच्छा है और उसकी प्रज्ञा भी पवित्र है,
एक पुरुष स्वभाव से अच्छा है किन्तु उसकी प्रज्ञा अपवित्र है,
एक पुरुष स्वभाव से अच्छा नहीं है किन्तु उसकी प्रज्ञा पवित्र है,
एक पुरुष स्वभाव से अच्छा नहीं है और उसकी प्रज्ञा भी अपवित्र है।

सुद्धा सुद्ध पण्णाजुत्ता, असुद्धा असुद्ध पण्णाजुत्ता—

१८७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुद्धे नाममेगे सुद्धपन्ने,
सुद्धे नाममेगे असुद्धपन्ने,
असुद्धे नाममेगे सुद्धपन्ने,
असुद्धे नाममेगे असुद्धपन्ने।
—ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २४१

शुद्ध और शुद्ध प्रज्ञावान, अशुद्ध और अशुद्ध प्रज्ञावान—

१८७. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—
एक पुरुष निर्मल ज्ञानादि गुणवाला है और उसकी प्रज्ञा भी शुद्ध है,
एक पुरुष निर्मल ज्ञानादि गुणवाला है किन्तु उसकी प्रज्ञा अशुद्ध है,
एक पुरुष निर्मल ज्ञानादि गुणवाला नहीं है किन्तु उसकी प्रज्ञा शुद्ध है,
एक पुरुष निर्मल ज्ञानादि गुणवाला नहीं है और उसकी प्रज्ञा भी शुद्ध नहीं है।

वायणा दाता, अदाता, गहिया, अगहिया—

१८८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

१. वाएइ णाममेगे णो वायावेइ,

२. वायावेइ णाममेगे णो वाएइ,

३. एगे वाएइ वि वायावेइ वि,

४. एगे णो वाएइ णो वायावेइ।

पडिच्छगा-अपडिच्छगा—

१८९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

१. पडिच्छति णाममेगे णो पडिच्छावेति,

२. पडिच्छावेति णाममेगे णो पडिच्छति,

३. एगे पडिच्छति वि पडिच्छावेति वि,

४. एगे णो पडिच्छति णो पडिच्छावेति।

पण्ह कत्ता, अकत्ता—

१९०. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

१. पुच्छइ णाममेगे णो पुच्छावेइ,

२. पुच्छावेइ णाममेगे णो पुच्छइ,

३. एगे पुच्छइ वि पुच्छावेइ वि,

४. एगे णो पुच्छइ णो पुच्छावेइ।

वागरा, अवागरा—

१९१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

१. वागरेति णाममेगे णो वागरावेति,

२. वागरावेति णाममेगे णो वागरेति,

३. एगे वागरेति वि वागरावेति वि,

४. एगे णो वागरेति णो वागरावेति।

— ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २५६

वाचना दाता, अदाता, ग्रहिता, अग्रहिता—

१८८. पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

(१) कोई पुरुष दूसरों को वाचना देता है, किन्तु दूसरों से वाचना नहीं लेता।

(२) कोई पुरुष दूसरों से वाचना लेता है, किन्तु दूसरों को वाचना नहीं देता।

(३) कोई पुरुष दूसरों को वाचना देता है और दूसरों से वाचना लेता भी है।

(४) कोई पुरुष न दूसरों को वाचना देता है और न दूसरों से वाचना लेता है।

सूत्रार्थ ग्राहक अग्राहक—

१८९. पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

(१) कोई पुरुष प्रतीच्छा (सूत्र और अर्थ का ग्रहण) करता है, किन्तु प्रतीच्छा करवाता नहीं है।

(२) कोई पुरुष प्रतीच्छा करवाता है, किन्तु प्रतीच्छा करता नहीं है।

(३) कोई पुरुष प्रतीच्छा करता भी है और प्रतीच्छा करवाता भी है।

(४) कोई पुरुष प्रतीच्छा न करता है और न प्रतीच्छा करवाता है।

प्रश्नकर्ता, अकर्ता—

१९०. पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

(१) कोई पुरुष प्रश्न करता है, किन्तु प्रश्न करवाता नहीं है।

(२) कोई पुरुष प्रश्न करवाता है, किन्तु स्वयं प्रश्न करता नहीं है।

(३) कोई पुरुष प्रश्न करता भी है और प्रश्न करवाता भी है।

(४) कोई पुरुष न प्रश्न करता है, न प्रश्न करवाता है।

सूत्रार्थ व्याख्याता, अव्याख्याता—

१९१. पुनः पुरुष चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

(१) कोई पुरुष सूत्रादि का व्याख्यान करता है, किन्तु अन्य से व्याख्यान करवाता नहीं है।

(२) कोई पुरुष व्याख्यान करवाता है, किन्तु स्वयं व्याख्यान नहीं करता है।

(३) कोई पुरुष स्वयं व्याख्यान करता है, और अन्य से व्याख्यान करवाता भी है।

(४) कोई पुरुष न स्वयं व्याख्यान करता है और न अन्य से व्याख्यान करवाता है।

सुएण वा सरीरेण वा पुण्णा अपुण्णा—

१९२. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

पुण्णे नाममेगे पुण्णे,
पुण्णे नाममेगे तुच्छे,
तुच्छे नाममेगे पुण्णे,
तुच्छे नाममेगे तुच्छे।

—ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३६०

श्रुत और शरीर से पूर्ण अथवा अपूर्ण—

१९२. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—

एक पुरुष अवयवादि से पूर्ण है और श्रुत से भी पूर्ण है,
एक पुरुष अवयवादि से पूर्ण है किन्तु श्रुत से अपूर्ण है,
एक पुरुष श्रुत से अपूर्ण है किन्तु अवयवादि से पूर्ण है,
एक पुरुष श्रुत से भी अपूर्ण है और अवयवादि से भी अपूर्ण है।

सुएण पुण्णा अपुण्णा, पुण्णावभासा अपुण्णावभासा—

१९३. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

पुण्णे नाममेगे पुण्णोभासी,
पुण्णे नाममेगे तुच्छोभासी,
तुच्छे नाममेगे पुण्णोभासी,
तुच्छे नाममेगे तुच्छोभासी।

—ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३६०

श्रुत से पूर्ण और अपूर्ण, पूर्ण सदृश या अपूर्ण सदृश—

१९३. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—

एक पुरुष श्रुत से पूर्ण है और पूर्ण ही दिखाई देता है,
एक पुरुष श्रुत से पूर्ण है किन्तु अपूर्ण दिखाई देता है,
एक पुरुष श्रुत से अपूर्ण है किन्तु पूर्ण दिखाई देता है,
एक पुरुष श्रुत से अपूर्ण है और अपूर्ण ही दिखाई देता है।

सुएण पुण्णा अपुण्णा, पुण्णरूवा अपुण्णरूवा—

१९४. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

पुण्णे नाममेगे पुण्णरूवे,
पुण्णे नाममेगे तुच्छरूवे,
तुच्छे नाममेगे पुण्णरूवे,
तुच्छे नाममेगे तुच्छरूवे। —ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३६०

श्रुत से पूर्ण अपूर्ण, श्रमणवेष से पूर्ण और अपूर्ण—

१९४. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—

एक पुरुष श्रुत से भी पूर्ण है और साधुवेष से भी पूर्ण है,
एक पुरुष श्रुत से पूर्ण है किन्तु साधुवेष से पूर्ण नहीं है,
एक पुरुष श्रुत से अपूर्ण है किन्तु साधुवेष से पूर्ण है,
एक पुरुष श्रुत से भी अपूर्ण है और साधुवेष से भी अपूर्ण है।

सुएण पुण्णा अपुण्णा, उपकारकारगा, अपकारकारगा—

१९५. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

पुण्णे वि एगे पियट्ठे,
पुण्णे वि एगे अवदले,
तुच्छे वि एगे पियट्ठे,
तुच्छे वि एगे अवदले।

—ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३६०

श्रुत से पूर्ण और अपूर्ण उपकारी और अपकारी—

१९५. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—

एक पुरुष श्रुत से पूर्ण है और परोपकारी भी है,
एक पुरुष श्रुत से पूर्ण है किन्तु परोपकारी नहीं है,
एक पुरुष श्रुत से पूर्ण नहीं है किन्तु परोपकारी है,
एक पुरुष श्रुत से भी पूर्ण नहीं है और परोपकारी भी नहीं है।

सुएण पुण्णा अपुण्णा, सुअस्स दाता अदाता—

१९६. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

पुन्ने वि एगे विस्संदइ,
पुन्ने वि एगे णो विस्संदइ,
तुच्छे वि एगे विस्संदइ,
तुच्छे वि एगे नो विस्संदइ।

—ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३६०

श्रुत से पूर्ण और अपूर्ण, श्रुत के दाता और अदाता—

१९६. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं यथा—

एक पुरुष श्रुत से पूर्ण है और अन्य को श्रुत देता है,
एक पुरुष श्रुत से पूर्ण है किन्तु अन्य को श्रुत नहीं देता है,
एक पुरुष श्रुत से पूर्ण नहीं है किन्तु अन्य को श्रुत देता है,
एक पुरुष श्रुत से भी पूर्ण नहीं है और अन्य को भी श्रुत नहीं देता है।

सुएण सरीरेण य उन्नया अवनया—

१९७. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

उन्नए नाममेगे उन्नए,
उन्नए नाममेगे पणए,

श्रुत से और शरीर से उन्नत या अवनत—

१९७. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—

एक पुरुष शरीर से उन्नत है और श्रुत से भी उन्नत है,
एक पुरुष शरीर से उन्नत है किन्तु श्रुत से उन्नत नहीं है,

पणए नाममेगे उन्नए,
पणए नाममेगे पणए। —ठाणं. अ. ४, सु. २३६

एक पुरुष शरीर से उन्नत नहीं है किन्तु श्रुत से उन्नत है,
एक पुरुष शरीर से उन्नत नहीं है और श्रुत से भी उन्नत नहीं है।

जाइसंपन्ना, जाइहीणा, सुयसंपन्ना, सुयहीणा—

१९८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
जाइसंपन्ने नाममेगे नो सुयसंपन्ने,
सुयसंपन्ने नाममेगे नो जाइसंपन्ने,
एगे जाइ संपन्ने वि सुयसंपन्ने वि,
एगे नो जाइ संपन्ने नो सुयसंपन्ने।
—ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१६

जातिसम्पन्न, जातिहीन, श्रुतसम्पन्न, श्रुतहीन—

१९८. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—
एक पुरुष जातिसम्पन्न है किन्तु श्रुतसम्पन्न नहीं है,
एक पुरुष श्रुतसम्पन्न है किन्तु जातिसम्पन्न नहीं है,
एक पुरुष जातिसम्पन्न भी है और श्रुतसम्पन्न भी है,
एक पुरुष जातिसम्पन्न भी नहीं है और श्रुतसम्पन्न भी नहीं है।

कुलसंपण्णा, कुलहीणा, सुयसम्पन्ना, सुयहीणा—

१९९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
कुलसंपन्ने नाममेगे नो सुयसंपन्ने,
सुयसंपन्ने नाममेगे नो कुलसंपन्ने,
एगे कुलसंपन्ने वि सुयसंपन्ने वि,
एगे नो कुलसंपन्ने नो सुयसंपन्ने।
—ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१९

कुलसम्पन्न और कुलहीन, श्रुतसम्पन्न और श्रुतहीन—

१९९. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—
एक पुरुष कुलसम्पन्न है किन्तु श्रुतसम्पन्न नहीं है,
एक पुरुष श्रुतसम्पन्न है किन्तु कुलसम्पन्न नहीं है,
एक पुरुष कुलसम्पन्न भी है और श्रुतसम्पन्न भी है,
एक पुरुष कुलसम्पन्न भी नहीं है और श्रुतसम्पन्न भी नहीं है।

सुरूवा, कुरूवा, सुयसम्पन्ना, सुयहीणा—

२००. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
रूवसंपन्ने नाममेगे नो सुयसंपन्ने,
सुयसंपन्ने नाममेगे नो रूवसंपन्ने,
एगे रूवसंपन्ने वि सुयसंपन्ने वि,
एगे नो रूवसंपन्ने नो सुयसंपन्ने।
—ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१९

सुरूप और कुरूप, श्रुतसम्पन्न और श्रुतहीन—

२००. चार प्रकार के पुरुष कहे गये हैं, यथा—
एक पुरुष रूपसम्पन्न है किन्तु श्रुतसम्पन्न नहीं है,
एक पुरुष श्रुतसम्पन्न है किन्तु रूपसम्पन्न नहीं है,
एक पुरुष रूपसम्पन्न भी है और श्रुतसम्पन्न भी है,
एक पुरुष रूपसम्पन्न भी नहीं है और श्रुतसम्पन्न भी नहीं है।

बलसम्पण्णा, बलहीणा, सुयसम्पण्णा, सुयरहिया—

२०१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
बलसंपन्ने नाममेगे नो सुयसंपन्ने,
सुयसंपन्ने नाममेगे नो बलसंपन्ने,
एगे बलसंपन्ने वि सुयसंपन्ने वि,
एगे नो बलसंपन्ने नो सुयसंपन्ने।
—ठाणं. अ. ४, उ. ३, सु. ३१९

बलसम्पन्न और बलहीन, श्रुतसम्पन्न और श्रुतहीन—

२०१. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—
एक पुरुष बलसम्पन्न है, किन्तु श्रुतसम्पन्न नहीं है,
एक पुरुष श्रुतसम्पन्न है, किन्तु बलसम्पन्न नहीं है,
एक पुरुष बलसम्पन्न भी है और श्रुतसम्पन्न भी है,
एक पुरुष बलसम्पन्न भी नहीं है और श्रुतसम्पन्न भी नहीं है।

सुत्तधरा, अत्थधरा—

२०२. तओ पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुत्तधरे, अत्थधरे, तदुभयधरे।
—ठाणं अ. ३, उ. ३, सु. १७७

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
सुत्तधरे नाममेगे नो अत्थधरे,
अत्थधरे नाममेगे नो सुत्तधरे,
एगे सुत्तधरे वि अत्थधरे वि,
एगे नो सुत्तधरे नो अत्थधरे।
—ठाणं, अ. ४, उ. १, सु. २५६

सूत्रधर, अर्थधर

२०२. श्रुतधर पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—
सूत्रधर, अर्थधर और तदुभयधर (सूत्र और अर्थ दोनों के धारक)

चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—
एक सूत्रधर है किन्तु अर्थधर नहीं है,
एक अर्थधर है किन्तु सूत्रधर नहीं है,
एक सूत्रधर भी है और अर्थधर भी है,
एक सूत्रधर भी नहीं है और अर्थधर भी नहीं है।

छसु दिसासु णाणवुड्ढी—

२०३. छद्दिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—पाईणा, पडीणा, दाहिणा, उदीणा, उड्ढा, अधा।

छहि दिसाहि जीवाणं गती पवत्तति णाणाभिगमे, तं जहा—पाईणाते-जाव-अधाते। —ठाणं. अ. ६, सु. ४९९

छहों दिशाओं में ज्ञान वृद्धि—

२०३. छः दिशाएँ कही हैं, यथा—(१) पूर्व, (२) पश्चिम, (३) दक्षिण, (४) उत्तर, (५) ऊर्ध्व, (६) अधो।

छः दिशाओं में जीवों को ज्ञान की प्राप्ति होती है, यथा—पूर्व—यावत्—अधोदिशा में।

णाणवुड्ढिकरा दस नक्खत्ता—

२०४. दस नक्खत्ता णाणस्स वुड्ढिकरा पण्णत्ता, तं जहा—
मिगसिरमद्दा पुस्सो, तिन्नि य पुव्वाइं मूलमस्सेसा।
हत्थो चित्तो य तहा, दस वुड्ढिकराइं णाणस्स[1] ॥
—ठाणं. अ. १०, सु. ७८१

ज्ञान वृद्धिकर दस नक्षत्र—

२०४. ज्ञान वृद्धि करने वाले दस नक्षत्र कहे हैं, यथा—
(१) मृगशिर, (२) आर्द्रा, (३) पुष्य, (४) पूर्वाषाढा, (५) पूर्वाफाल्गुनी, (६) पूर्वाभाद्रपदा, (७) मूल, (८) अश्लेषा, (९) हस्त, (१०) चित्रा।

तिविहा निण्णया—

२०५. तिविहे अंते पण्णत्ते, तं जहा—
लोगंते,
वेयंते,
समयंते। —ठाणं. ३, उ. ४, सु. २१९

तीन प्रकार के निर्णय—

२०५. अन्त (रहस्य-निर्णय) तीन प्रकार का कहा गया है—
(१) लोकान्त-निर्णय—लौकिक शास्त्रों के रहस्य का निर्णय।
(२) वेदान्त-निर्णय—वैदिक शास्त्रों के रहस्य का निर्णय।
(३) समयान्त-निर्णय—जैनसिद्धान्तों के रहस्य का निर्णय।

तिविहा निव्वुई—

२०६. तिविधा वावत्ती पण्णत्ता, तं जहा—
जाणू, अजाणू, वितिगिच्छा।

तीन प्रकार की निवृत्ति—

२०६. व्यावृत्ति (पापरूप कार्यों से निवृत्ति) तीन प्रकार की कही गई है—ज्ञान-पूर्वक, अज्ञान-पूर्वक और विचिकित्सा (संशयादि)-पूर्वक।

तिविहो विसयाणुरागो—

२०७. तिविधा अज्झोववज्जणा पण्णत्ता, तं जहा—
जाणू, अजाणू, वितिगिच्छा।

तीन प्रकार का विषयानुराग—

२०७. अध्युपपादन (इन्द्रिय-विषयानुसंग) तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञानपूर्वक, अज्ञान-पूर्वक और विचिकित्सा-पूर्वक।

तिविहं विसयाणुसेवणं—

२०८. तिविधा परियावज्जणा पण्णत्ता, तं जहा—
जाणू, अजाणू, वितिगिच्छा। —ठाणं. ३, उ. ४, सु. २१८

तीन प्रकार का विषय सेवन—

२०८. पर्यापादन (विषय-सेवन) तीन प्रकार का कहा गया है—ज्ञानपूर्वक, अज्ञान-पूर्वक, और विचिकित्सा-पूर्वक।

---

१ इन नक्षत्रों का चन्द्रमा के साथ योग होने पर यदि अध्ययन किया जाता है तो ज्ञान वृद्धि होती है, विघ्नरहित अध्ययन, श्रवण, व्याख्यान एवं धारणा होती है। ऐसे कार्यों में विशेषकाल कारण होता है, क्योंकि विशेषकाल क्षयोपशम का हेतु होता है, कहा भी है—

गाहा—उदयक्खयखओवसमा, जं च कम्मुणो भणिया। दव्वं, खेत्तं कालं, भवं च भावं च संपप्प ॥

ज्ञानाचार तालिका

ज्ञानाचार

१. काल ज्ञानाचार २. विनयाचार ३. बहुमानाचार ४. उपधानाचार ५. अनिन्हवाचार ६. व्यंजनाचार ७. अर्थाचार ८. तदुभयाचार

१. काल ज्ञानाचार

१ काल-प्रतिलेखना
४ अस्वाध्याय काल
४ महाप्रतिपदा में स्वाध्याय निषेध
१० औदारिक अस्वाध्याय
१० अन्तरिक्ष अस्वाध्याय

२. विनयाचार — विनयसमाधि (४)

४ विनयप्रतिपत्ति

१ आचार विनयप्रतिपत्ति
२ श्रुत विनयप्रतिपत्ति
३ विक्षेपना विनय प्र.
४ दोष निर्घातना विनय प्र.

आचार विनयप्रतिपत्ति (४)

१ संयमसमाचारी २ तपःसमाचारी ३ गणसमाचारी ४ एकाकीविहार समाचारी

श्रुतविनय (४)

१ सूत्र वाचना २ अर्थ वाचना ३ हित वाचना ४ निःशेष वाचना

विक्षेपनाविनय (४)

१ अदृष्टधर्मा २ दृष्टधर्मा ३ च्युतधर्मा को धर्मज्ञान देकर स्थापित करना ४ धर्म में उद्यत करना

दोषनिर्घातनाविनय (४)

१ क्रुद्ध, २ दुष्ट, ३ कांक्षा वालों के दोष निवारण करना, ४ आत्म-सुप्रणिहित रखना

अविनय

१ अविनय
- १ देशत्याग
- २ निरालम्बन
- ३ नाना प्रायोद्वेषी

२ अविनीत (१४ प्रकार)
प्रत्यनीक (६ + ३ = १८)

- ३ **गुरुप्रत्यनीक**—१. आचार्य प्रत्यनीक २. उपाध्याय प्र. ३. स्थविर प्र.
- ३ **गति प्रत्यनीक**—१. इहलोक प्र. २. परलोक प्र. ३. उभयलोक प्र.
- ३ **समूह प्रत्यनीक**—१. कुल प्र. २. गण प्र. ३. संघ प्र.
- ३ **अनुकम्प्य प्रत्यनीक**—१. तपस्वी प्र. २. ग्लान प्र. ३. शैक्ष प्र.
- ३ **श्रुत प्रत्यनीक**—१. सूत्र प्र. २. अर्थ प्र. ३. तदुभय प्र.
- ३ **भाव प्रत्यनीक**—१. ज्ञान प्र. २. दर्शन प्र. ३. चारित्र प्र.

४. उपधानाचार

१ उपकरणोत्पादनता (४ भेद)
२ सहायता (४ भेद)
३ वर्णसंज्वलनता (४ भेद)
४ भार प्रत्यवरोहणता (४ भेद)

विनयसमाधि (४)

१ ज्ञानविनय (५ भेद)
२ दर्शनविनय (५५ भेद)
- १ शुश्रूषा विनय (१० भेद)
- २ अनत्याशातनाविनय (४५ भेद)

३ चारित्रविनय (५ भेद)
४ मनोविनय (२४ भेद)
- १ प्रशस्त मनोविनय (१२ भेद)
- २ अप्रशस्त मनोविनय (१२ भेद)

५ वचनविनय (२४ भेद)
- १ प्रशस्त वचनविनय (१२ भेद)
- २ अप्रशस्त वचनविनय (१२ भेद)

६ कायविनय (१४ भेद)
- १ प्रशस्तकायविनय (७)
- २ अप्रशस्तकायविनय (७)

७ लोकोपचारविनय (७ भेद)

॥ दंसणायारो ॥

णिस्संकिय णिक्कंखिय,
णिव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठि य ।
उववूह – थिरीकरणे,
वच्छल्ल – पभावणे अट्ठ ॥

—निशीथभाष्य, भाग १, गा० २३

च र णा नु यो ग

[द र्श ना चा र]

S-Bharti/AGRA-2

दंसणायारो

दर्शनाचार

सम्यक्दर्शन । स्वरूप एवं प्राप्ति के उपाय

दंसणसरूवं—

२०९. प०—से णूणं भंते ! तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं ?

उ०—हंता, गोयमा ! तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं ।

प०—से णूणं भंते ! एवं मणे धारेमाणे, एवं पकरेमाणे, एवं चिट्ठेमाणे, एवं संवरेमाणे आणाए आराहए भवइ ?

उ०—हंता, गोयमा ! एवं मणं धारेमाणे-जाव-आणाए आराहए भवइ । —वि. स. १, उ. ३, सु. ६

दर्शन स्वरूप—

२०९. प्र०—हे भगवन् ! वही सत्य और निःशंक है जो जिन भगवान् ने कहा है ?

उ०—हाँ गौतम ! वही सत्य और निःशंक है जो जिन भगवान् ने कहा है।

प्र०—हे भगवन् ! इस प्रकार मन में धारणा करता हुआ, आचरण करता हुआ, स्थिर रहता हुआ, आत्मसंवरण करता हुआ प्राणी आज्ञा का आराधक होता है ?

उ०—हाँ गौतम ! इस प्रकार मन में धारण करता हुआ —**यावत्** - आज्ञा का आराधक होता है।

सम्मत्तस्स दीवोवमा—

२१०. वुज्झमाणाण पाणाणं, किच्चंताण सकम्मुणा ।
आघाति साहु तं दीवं, पतिट्ठेसा पवुच्चती ॥
—सूय. सु. १, अ. ११, गा. १३

सम्यक्त्व को द्वीप की उपमा—

२१०. (मिथ्यात्व, कषाय एवं प्रमाद आदि संसार-सागर के स्रोतों के प्रवाह (तीव्रधारा) में बहाकर ले जाते हुए तथा अपने (कृत) कर्मों (के उदय) से दुःख पाते हुए प्राणियों के लिए तीर्थंकर उसे (निर्वाणमार्ग को) उत्तम द्वीप परहितरत बतलाते हैं। (तत्वज्ञ पुरुष) कहते हैं कि यही मोक्ष का प्रतिष्ठान (संसार भ्रमण से विश्रान्ति रूप स्थान, या मोक्ष प्राप्ति का आधार) है।

दंसण लक्खणं—

२११. जीवाजीवा य बंधो य, पुण्णं पावासवो तहा ।
संवरो निज्जरा मोक्खो, संते ए तहिया नव ॥

तहियाणं तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं ।
भावेणं सद्दहंतस्स, सम्मत्तं तं वियाहियं ॥
—उत्त. अ. २८, गा. १४-१५

इणमेव णावकंखंति जे जणा धुवचारिणो ।
जाति-मरणं परिण्णाय-चरे संकमणे दढे ॥
—आ. सु. १, अ. २, उ. ३, सु. ७८

दर्शन का लक्षण—

२११. (१) जीव, (२) अजीव, (३) बन्ध (४) पुण्य, (५) पाप, (६) आस्रव, (७) संवर, (८) निर्जरा और (९) मोक्ष ये नव पदार्थ सत्य हैं।

जीवादि इन सत्य पदार्थों के सद्भाव में स्वभाव से या उपदेश से जो भावपूर्वक श्रद्धा है उसे सम्यक्त्व कहा गया है।

जो पुरुष ध्रुवचारी—अर्थात् शाश्वत सुख-केन्द्र मोक्ष की ओर गतिशील होते हैं, वे ऐसा विपर्यासपूर्ण जीवन नहीं चाहते। वे जन्म-मरण के चक्र को जानकर दृढ़तापूर्वक मोक्ष के पथ पर बढ़ते रहें।

समदंसणिस्स अट्ठ पभावणा—

२१२. **निस्संकिय निक्कंखिय, निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य ।**
उववूह - थिरीकरणे, वच्छल्ल - पभावणे अट्ठ ॥

—उत्त. अ. २८, गा. ३१

सम्यक्त्व के आठ (प्रभावना) अंग—

२१२. (१) निःशंका, (२) निष्कांक्षा, (३) निर्विचिकित्सा, (४) अमूढ़-दृष्टि, (५) उपबृंहण (सम्यक्दर्शन की पुष्टि), (६) स्थिरीकरण, (७) वात्सल्य, (८) प्रभावना—ये आठ सम्यक्त्व के अंग हैं ।

सम्मदंसणिस्स दसविहारुई—

२१३. **निसग्गुवएसरुई , आणारुई सुत्तबीयरुइमेव ।**
अभिगमवित्थाररुई , किरियासंखेवधम्मरुई ॥[1]

सम्यक्त्व के दस प्रकार—(रुचि)

२१३. (१) निसर्ग-रुचि, (२) उपदेश-रुचि, (३) आज्ञा-रुचि, (४) सूत्र-रुचि, (५) बीज-रुचि, (६) अभिगम-रुचि, (७) विस्तार-रुचि, (८) क्रिया-रुचि, (९) संक्षेप-रुचि, (१०) धर्म-रुचि ।

(१) **भूयत्थेणाहिगया , जीवाजीवा य पुण्ण-पावं च ।**
सहसम्मुइयासवसंवरो , रोएइ उ निसग्गो ॥

जो जिणदिट्ठे भावे, चउव्विहे सद्दहाइ सयमेव ।
एमेव नऽन्नह त्ति य, स निसग्गरुई **त्ति नायव्वो ॥**

(१) जो परोपदेश के बिना केवल अपनी आत्मा से उपजे हुए भूतार्थ (यथार्थ-ज्ञान) से, जीव, अजीव, पुण्य, पाप तथा आश्रव को जानता है और संवर पर श्रद्धा करता है, वह **निसर्ग-रुचि** है ।

जो जिनेन्द्र द्वारा दृष्ट तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से विशेषित पदार्थों पर स्वयं ही—"यह ऐसा ही है अन्यथा नहीं है"—ऐसी श्रद्धा रखता है, उसे **निसर्ग-रुचि** वाला जानना चाहिए ।

(२) **एए चेव उ भावे, उवइट्ठे जो परेण सद्दहई ।**
छउमत्थेण जिणेण व, उवएसरुई **त्ति नायव्वो ॥**

(२) जो दूसरों—छद्मस्थ या जिन—के द्वारा उपदेश प्राप्त कर, इन भावों पर श्रद्धा करता है, उसे **उपदेश-रुचि** वाला जानना चाहिए ।

(३) **रागो दोसो मोहो, अन्नाणं जस्स अवगयं होइ ।**
आणाए रोयंतो, सो खलु आणारुई **नाम ॥**

(३) जो व्यक्ति, राग, द्वेष, मोह और अज्ञान से दूर हो जाने पर वीतराग की आज्ञा में रुचि रखता है, वह **आज्ञा-रुचि** है ।

(४) **जो सुत्तमहिज्जन्तो, सुएण ओगाहई उ सम्मत्तं ।**
अंगेण बाहिरेण व, सो सुत्तरुइ **नायव्वो ॥**

(४) जो अंग-प्रविष्ट या अंग बाह्य सूत्रों को पढ़ता हुआ सम्यक्त्व पाता है, वह **सूत्र-रुचि** है ।

(५) **एगेण अणेगाइं, पयाइं जो पसरई उ सम्मत्तं ।**
उदए व्व तेल्लबिंदु, सो बीयरुइ **त्ति नायव्वो ॥**

(५) पानी में डाले हुए तेल की बूंद की तरह सम्यक्त्व (रुचि) एक पद (तत्त्व) से अनेक पदों में फैलता है, उसे **बीज रुचि** जानना चाहिए ।

(६) **सो होइ** अभिगमरुई, **सुयनाणं जेण अत्थओ दिट्ठं ।**
"एक्कारस अंगाइं", पइण्णगं दिट्ठिवाओ य ॥

(६) जिसे ग्यारह अंग, प्रकीर्ण और दृष्टिवाद आदि श्रुत-ज्ञान अर्थ सहित प्राप्त है, वह **अभिगम-रुचि** है ।

(७) **दव्वाण सव्वभावा, सव्वपमाणेहि जस्स उवलद्धा ।**
सव्वाहि नयविहीहि, य, वित्थाररुई **त्ति नायव्वो ॥**

(७) जिसे द्रव्यों के सब भाव, सभी प्रमाणों और सभी नय-विधियों से उपलब्ध हैं, वह **विस्तार-रुचि** है ।

(८) **दंसणनाणचरित्ते , तवविणए सच्चसमिइगुत्तीसु ।**
जो किरियाभावरुई, सो खलु किरियारुई **नाम ॥**

(८) दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, विनय, सत्य, समिति, गुप्ति आदि क्रियाओं में जिसकी वास्तविक रुचि है, वह **क्रिया-रुचि** है ।

(९) **अणभिग्गहियकुदिट्ठी ,** संखेवरुई **त्ति होइ नायव्वो ।**
अविसारओ पवयणे, अणभिग्गहिओ य सेसेसु ॥

(९) जो जिन-प्रवचन में विशारद नहीं है और अन्यान्य प्रवचनों का अभिज्ञ भी नहीं है, [किन्तु जिसे कुदृष्टि का आग्रह न होने के कारण स्वल्प ज्ञान मात्र से जो तत्त्व-श्रद्धा प्राप्त होती है, उसे **संक्षेप-रुचि** जानना चाहिए ।

---

१ ठा. अ. १०, सु. ७५१ ।

(१०) जो अत्थिकायधम्मं, सुयधम्मं खलु चरित्तधम्मं च।
सद्दहइ जिणाभिहियं, सो धम्मरुइ त्ति नायव्वो ॥
—उत्त. अ. २८, गा. १६–२७

(१०) जो जिन-प्ररूपित अस्तिकाय धर्म, श्रुत-धर्म और चारित्र-धर्म में श्रद्धा रखता है, उसे धर्म-रुचि जानना चाहिए।

तिविहे दंसणे –

तीन प्रकार के दर्शन –

२१४. तिविहे दंसणे पण्णत्ते,[1] तं जहा—
१. सम्मदंसणे, २. मिच्छदंसणे,
३. सम्मामिच्छदंसणे। —ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १९०/१
सम्मदंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
णिसग्गसम्मदंसणे, अभिगमदंसणे,
णिसग्गसम्मदंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
पडिवाइ चेव, अपडिवाइ चेव,
अभिगमसम्मदंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
पडिवाइ चेव, अपडिवाइ चेव,
—ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ५९

२१४. तीन प्रकार के दर्शन कहे गये हैं यथा—
(१) सम्यग्दर्शन, (२) मिथ्यादर्शन,
(३) सम्यग्मिथ्यादर्शन।
सम्यग्दर्शन दो प्रकार के कहे गये हैं यथा—
(१) निसर्ग सम्यग्दर्शन, (२) अभिगम सम्यग्दर्शन।
निसर्ग सम्यग्दर्शन दो प्रकार के कहे गये हैं यथा—
(१) प्रतिपाति, (२) अप्रतिपाति।
अभिगम सम्यग्दर्शन दो प्रकार के कहे गये हैं यथा—
(१) प्रतिपाति, (२) अप्रतिपाति।

दंसणसंपण्णयाए फलं—

दर्शन का फल—

२१५. प०—दंसणसंपन्नयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—दंसणसंपन्नयाए णं भवमिच्छत्तछेयणं करेइ,
परं न विज्झायइ।
अणुत्तरेणं नाणदंसणेणं अप्पाणं संजोएमाणे
सम्मं भावेमाणे विहरइ ॥
—उत्त. अ. २९, सु. ६२

२१५. प्र०—भन्ते ! दर्शन-सम्पन्नता (सम्यक्-दर्शन की सम्प्राप्ति) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—दर्शन-सम्पन्नता से वह संसार-पर्यटन के हेतु-भूत मिथ्यात्व का उच्छेद करता है—क्षायिक सम्यक्-दर्शन को प्राप्त होता है। उससे आगे उसकी प्रकाश-शिखा बुझती नहीं। वह अनुत्तर ज्ञान और दर्शन को आत्मा से संयोजित करता हुआ, उन्हें सम्यक् प्रकार से आत्मसात् करता हुआ विहरण करता है।

दरिसणावरणिज्जस्स खएण बोहिलाभो अक्खएण-अलाभो-

दर्शनावरणीय के क्षय से बोधिलाभ और क्षय न होने से अलाभ—

२१६. प०—(क) सोच्चा णं भंते ! केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलं बोहिं बुज्झेज्जा ?

२१६. प्र०—(क) भन्ते ! केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर कई जीव केवलबोधि को प्राप्त कर सकता है ?

उ०—गोयमा ! सोच्चा णं केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खिय-उवासियाए वा अत्थेगतिए केवलं बोहिं बुज्झेज्जा अत्थेगत्ति ए केवलं बोहिं नो बुज्झेज्जा।

उ०—गौतम ! केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर कई जीव केवलबोधि को प्राप्त कर सकते हैं और कई जीव केवलबोधि को प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

---

1 (क) ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ५९।
(ख) सत्तविहे दंसणे पण्णत्ते, तं जहा—१. सम्मदंसणे, २. मिच्छदंसणे, ३. सम्मामिच्छदंसणे, ४. चक्खुदंसणे, ५. अचक्खुदंसणे, ६. ओहिदंसणे, ७. केवलदंसणे। —ठाणं. अ. ७, सु. ५६५
(ग) अट्ठविहे दंसणे पण्णत्ते, तं जहा—१. सम्मदंसणे, २. मिच्छदंसणे, ३. सम्मामिच्छदंसणे, ४. चक्खुदंसणे, ५. अचक्खुदंसणे, ६. ओहिदंसणे, ७. केवलदंसणे, ८. सुविणदंसणे। —ठाणं. अ. ८, सु. ६१९
स्थानांग की रचना के अनुसार ७ और ८ दर्शनों के प्रकार कहे गये हैं किन्तु सम्यग्दर्शनादि दर्शनत्रय से चक्षुदर्शनादि दर्शनों का विषय साम्य नहीं है। चक्षुदर्शनादि चार दर्शन उपयोग रूप हैं और यह चारों दर्शन दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम-क्षयजन्य हैं।
(घ) तिविधे पओगे पण्णत्ते, तं जहा—सम्मपओगे, मिच्छपओगे, सम्मामिच्छपओगे। —ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १९०

प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—

सोच्चा णं केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगत्तिए केवलं बोहिं बुज्झेज्जा अत्थेगत्तिए केवलं बोहिं नो बुज्झेज्जा ?

उ०—गोयमा ! जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, से णं सोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं बोहिं बुज्झेज्जा।

जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ, से णं सोच्चा केवलिस्स वा जाव-तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलं बोहिं नो बुज्झेज्जा।

से तेणट्ठेणं गोयमा एवं वुच्चइ—

जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, से णं सोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलं बोहिं बुज्झेज्जा।

जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ, से णं सोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खिय उवासियाए वा केवलं बोहिं नो बुज्झेज्जा।

—वि. श. ९, उ. ३१, सु. १२

प्र०—भन्ते ! किस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है—

केवली से—**यावत्** केवलीपाक्षिक उपासिका से सुनकर कई जीव केवलबोधि को प्राप्त कर सकते हैं, और कई जीव केवलबोधि को प्राप्त नहीं कर सकते हैं ?

उ०—गौतम ! जिसके दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम हुआ है वह केवली से—**यावत्**—केवलीपाक्षिक उपासिका से सुनकर केवलबोधि को प्राप्त कर सकता है।

जिसके दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं हुआ है, वह केवलि से—**यावत्**—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर केवल बोधि को प्राप्त नहीं कर सकता है।

गौतम ! इस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है—

जिसके दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम हुआ है वह केवली से—**यावत्**—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर केवलबोधि को प्राप्त कर सकता है।

जिसके दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं हुआ है वह केवली से—**यावत्**—केवलीपाक्षिक उपासिका से सुनकर केवल बोधि को प्राप्त नहीं कर सकता है।

प०—(ख) असोच्चा णं भंते ! केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलं बोहिं बुज्झेज्जा ?

उ०—गोयमा ! असोच्चा णं केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खिय-उवासियाए वा अत्थेगत्तिए केवलं बोहिं बुज्झेज्जा अत्थेगत्तिए केवलं बोहिं नो बुज्झेज्जा।

प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—

असोच्चा णं केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगत्तिए केवलं बोहिं बुज्झेज्जा अत्थेगत्तिए केवलं बोहिं नो बुज्झेज्जा ?

उ०—गोयमा ! जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं बोहिं बुज्झेज्जा।

जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं बोहिं नो बुज्झेज्जा।

से तेणट्ठेणं गोयमा एवं वुच्चइ—

जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं बोहिं बुज्झेज्जा।

प्र०—(ख) भन्ते ! केवली से—**यावत्**—केवलिपाक्षिक उपासिका से सुने बिना कोई जीव केवलबोधि को प्राप्त कर सकता है ?

उ०—गौतम ! केवली से—**यावत्** केवलीपाक्षिक उपासिका से सुने बिना कई जीव केवलबोधि को प्राप्त कर सकते हैं और कई जीव केवलबोधि को प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

प्र०—भन्ते ! किस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है—

केवली से—**यावत्**—केवलीपाक्षिक उपासिका से सुने बिना कई जीव केवलबोधि को प्राप्त कर सकते हैं और कई जीव केवलबोधि को प्राप्त नहीं कर सकते हैं ?

उ०—गौतम ! जिसके दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम हुआ है वह केवली से—**यावत्**—केवलीपाक्षिक उपासिका से सुने बिना केवलबोधि को प्राप्त कर सकता है।

जिसके दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं हुआ है, वह केवली से—**यावत्** केवलीपाक्षिक उपासिका से सुने बिना केवलबोधि को प्राप्त नहीं कर सकता है।

गौतम ! इस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है—

जिसके दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम हुआ है वह केवली से—**यावत्**—केवलीपाक्षिक उपासिका से बिना सुने केवलबोधि को प्राप्त कर सकता है।

जस्स णं दरिसणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं बोहिं नो बुज्झेज्जा।

—वि. श. ९, उ. ३१, सु. ३२

जिसके दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं हुआ है वह केवली से—यावत्—केवलीपाक्षिक उपासिका से बिना सुने बोधि को प्राप्त नहीं कर सकता है।

दंसणलाभाणुकूलो कालो—

२१७. तओ जामा पण्णत्ता, तं जहा—

पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे,

तिहिं जामेहिं आया केवलं बोहिं बुज्झेज्जा,

पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।

—ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६३

दर्शनप्राप्ति के लिए अनुकूल काल—

२१७. तीन याम (प्रहर) कहे हैं, यथा—

प्रथम याम, मध्यम याम, अन्तिम याम।

तीन यामों में आत्मा शुद्ध बोध को प्राप्त होता है,

प्रथम याम, मध्यम याम, और अन्तिम याम।

दंसणलाभाणुकूला वया—

२१८. तओ वया पण्णत्ता, तं जहा—

पढमे वए, मज्झिमे वए, पच्छिमे वए।

तिहिं वएहिं आया केवलं बोहिं बुज्झेज्जा—

पढमे वए, मज्झिमे वए, पच्छिमे वए।

—ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६३

दर्शन प्राप्ति के लिए अनुकूल वय—

२१८. तीन वय कहे हैं, यथा—

प्रथम वय, मध्यम वय, अन्तिम वय।

तीन वय में आत्मा शुद्ध बोध को प्राप्त होता है—

प्रथम वय, मध्यम वय और अन्तिम वय।

छसु दिसासु दंसणलाभो—

२१९. छद्दिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

पाईणा, पडीणा, दाहिणा, उदीणा उड्ढा, अहा

छहिं दिसाहिं जीवाणं दंसणाभिगमे।

—ठाणं. अ. ६, सु. ४९९

दर्शन प्राप्ति के लिए अनुकूल दिशाएँ—

२१९. छः दिशाएँ कही हैं, यथा—

पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व और अधो।

इन छः दिशाओं में जीवों को दर्शन (सम्यक्त्व) की प्राप्ति होती है।

पंच दुल्लहबोही जीवा

२२०. पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लभबोधियत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा—

अरहंताणं अवण्णं वदमाणे,

अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्णं वदमाणे,

आयरियउवज्झायाणं अवण्णं वदमाणे,

चाउवण्णस्स संघस्स अवण्णं वदमाणे,

विवक्क-तवबंभचेराणं देवाणं अवण्णं वदमाणे।

—ठाणं. अ. ५, उ. २, सु. ४२६

पाँच दुर्लभबोधि जीव

२२०. पाँच कारणों से जीव दुर्लभबोधि करने वाले (जिनधर्म की प्राप्ति को दुर्लभ बनाने वाले) मोहनीय आदि कर्मों का उपार्जन करते हैं। जैसे—

(१) अर्हन्तों का अवर्णवाद करता हुआ।

(२) अर्हत्प्रज्ञप्त धर्म का अवर्णवाद करता हुआ।

(३) आचार्य उपाध्याय का अवर्णवाद करता हुआ।

(४) चतुर्वर्ण (चतुर्विध) संघ का अवर्णवाद करता हुआ।

(५) तप और ब्रह्मचर्य के परिपाक से दिव्य गति को प्राप्त देवों का अवर्णवाद करता हुआ।

पंच सुलहबोही जीवा—

२२१. पंचहिं ठाणेहिं जीवा सुलभबोधियत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहा—

अरहंताणं वण्णं वदमाणे,

अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स वण्णं वदमाणे,

आयरियउवज्झायाणं वण्णं वदमाणे,

चाउवण्णस्स संघस्स वण्णं वदमाणे,

विवक्क-तव-बंभचेराणं देवाणं वण्णं वदमाणे।

— ठाणं. अ. ५, उ. २, सु. ४२६

पाँच सुलभबोधि जीव—

२२१. पाँच कारणों से जीव सुलभबोधि करने वाले कर्म का उपार्जन करता है। जैसे—

(१) अर्हन्तों का वर्णवाद (सद्गुणोद्भावन) करता हुआ।

(२) अर्हत्प्रज्ञप्त धर्म का वर्णवाद करता हुआ।

(३) आचार्य-उपाध्याय का वर्णवाद करता हुआ।

(४) चतुर्वर्ण (चतुर्विध) संघ का वर्णवाद करता हुआ।

(५) तप और ब्रह्मचर्य के विपाक से दिव्यगति को प्राप्त देवों का वर्णवाद करता हुआ।

तओ दुर्बोध्या—

२२२. तओ दुसण्णप्पा पण्णत्ता, तं जहा—
दुट्ठे,
मूढे,
वुग्गाहिते[1]

तीन दुर्बोध्य—

२२२. तीन दुःसंज्ञाप्य (दुर्बोध्य) कहे गये हैं—
(१) दुष्ट—तत्त्वोपदेष्टा के प्रति द्वेष रखने वाला,
(२) मूढ़—गुण और दोषों से अनभिज्ञ,
(३) व्युद्ग्राहित—अंधश्रद्धा वाला दुराग्रही।

तओ सुबोध्या—

२२३. तओ सुसण्णप्पा पण्णत्ता, तं जहा—
अदुट्ठे,
अमूढे,
अवुग्गाहिते।[2] —ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. २०४

तीन सुबोध्य—

२२३. तीन सुसंज्ञाप्य (सुबोध्य) कहे गये हैं—
(१) अदुष्ट—तत्त्वोपदेष्टा के प्रति द्वेष न रखने वाला,
(२) अमूढ़—गुण और दोषों का ज्ञाता,
(३) अव्युद्ग्राहित—सम्यक् श्रद्धावाला।

सुल्लहबोही-दुल्लहबोही य—

२२४. इतो विद्धंसमाणस्स, पुणो संबोहि दुल्लभा।
दुल्लभा उ तहच्चा णं, जे धम्मट्ठं वियागरे॥
—सुय. सु. १, अ. १५, गा. १८

सुलभ बोधि और दुर्लभ बोधि—

२२४. जो जीव इस मनुष्यभव (या शरीर) से भ्रष्ट हो जाता है, उसे पुनः जन्मान्तर में सम्बोधि (सम्यग्दृष्टि) का प्राप्ति होना अत्यन्त दुर्लभ है। जो साधक धर्मरूप पदार्थ की व्याख्या करते हैं, अथवा धर्म प्राप्ति के योग्य हैं, उनको तथाभूत अर्चा (सम्यग्दर्शनादि प्राप्ति के योग्य शुभ लेश्या अन्तःकरणपरिणति, अथवा सम्यग्दर्शन-प्राप्तियोग्य तेजस्वी मनुष्यदेह) (जिसने पूर्वजन्म में धर्म-बोध नहीं पाया है, उन्हें) प्राप्त होनी अति दुर्लभ हैं।

इणमेव खणं वियाणिया, णो सुलभं बोहिं च आहियं।
एवं सहिएऽहियासए, आह जिणे इणमेव सेसगा।
—सुय. सु. १, अ. २, उ. ३, गा. १९

ज्ञानादि सम्पन्न या स्वहितैषी मुनि इस प्रकार विचार करे कि यही क्षण (बोधि प्राप्ति का) अवसर है, बोधि (सम्यग्दर्शन) दुर्लभ है ऐसा जिन—राग-द्वेष विजेता ने और शेष तीर्थंकरों ने कहा है।

इह जीवियं अणियमेत्ता, पब्भट्ठा समाहिजोगेहिं।
ते काम-भोगरसगिद्धा, उववज्जंति आसुरे काये॥

जो श्रमण काम, भोग और रसों में गृद्ध हैं वे इस जीवन में अनियन्त्रित रहकर और समाधियोग से भ्रष्ट होकर आसुर काय में उत्पन्न होते हैं।

तत्तो वि य उवट्टित्ता, संसारं बहुं अणुपरियडंति।
बहुकम्मलेवलित्ताणं, बोही होइ सुदुल्लहा तेसिं॥
—उत्त. अ. ८, गा. १४-१५

(बहुत कर्मों के लेप से लिप्त) वे वहाँ से भी निकलकर संसार में बहुत परिभ्रमण करते हैं, उन्हें बोधि की प्राप्ति महान् दुर्लभ है।

मिच्छादंसणरत्ता, सनियाणा कण्हलेसमोगाढा।
इय जे मरंति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोही॥

इस प्रकार जो जीव मिथ्यादर्शन में अनुरक्त, निदान सहित (धर्म) क्रिया करने वाले और कृष्णलेश्या युक्त हो मरते हैं उन्हें पुनः बोधि प्राप्त होना महान् दुर्लभ है।

सम्मद्दंसणरत्ता, अनियाणा सुक्कलेसमोगाढा।
इय जे मरंति जीवा, तेसिं सुलहा भवे बोही॥

सम्यग्दर्शन में अनुरक्त, निदानरहित (धर्म) क्रिया करने वाले, और शुक्ललेश्या युक्त जो जीव मरते हैं, उन्हें बोधि प्राप्त होना सुलभ है।

मिच्छादंसणरत्ता, सनियाणा हु हिंसगा।
इय जे मरंति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोही॥
—उत्त. अ. ३६, गा. २५७-२५९

जो जीव (अन्तिम समय में) मिथ्यादर्शन में अनुरक्त, निदान से युक्त और हिंसक होकर मरते हैं, उन्हें बोधि दुर्लभ होती है।

---

१ कप्प. उ. ४, सु. १२।
२ कप्प. उ. ४, सु. १३।

बोहिलाभे बाधगा साहगा य—

दो ठाणाइं अपरियाणित्ता आया णो केवलं बोहिं बुज्झेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

दो ठाणाइं परियाणित्ता आया केवलं बोहिं बुज्झेज्जा, तं जहा—आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।

दोहिं ठाणेहिं आया केवलं बोहिं बुज्झेज्जा, तं जहा—सोच्चा चेव, अभिसोच्चा चेव।

दोहिं ठाणेहिं आया केवलं बोहिं बुज्झेज्जा, तं जहा—खएण चेव, उवसमेण चेव। —ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ५४

बोधिलाभ में बाधक और साधक—

दो स्थानों का (हेतुओं का) त्याग किए बिना आत्मा को शुद्ध सम्यक्त्व (बोध) प्राप्त नहीं होता है, यथा—आरम्भ और परिग्रह।

दो स्थानों का त्याग करने पर आत्मा शुद्ध बोध (सम्यक्त्व) प्राप्त करता है, यथा—आरम्भ और परिग्रह।

दो स्थानों से आत्मा शुद्ध बोध को प्राप्त होता है, यथा—सुनकर और समझकर।

दो स्थानों से आत्मा शुद्ध बोध को प्राप्त होता है, यथा—कर्मों के क्षय से अथवा उपशम से।

सड्ढालु वा, असड्ढालु वा—

२२५. १. सड्ढिस्स णं समणुन्नस्स संपव्वयमाणस्स—समियं ति मन्नमाणस्स एगया समिया होइ,

२. सड्ढिस्स णं समणुन्नस्स संपव्वयमाणस्स—समियं ति मन्नमाणस्स एगया असमिया होइ,

३. सड्ढिस्स णं समणुन्नस्स संपव्वयमाणस्स—असमियं ति मन्नमाणस्स एगया समिया होइ,

४. सड्ढिस्स णं समणुन्नस्स संपव्वयमाणस्स—असमियं ति मन्नमाणस्स एगया असमिया होइ।

५. समियं ति मन्नमाणस्स समिया वा, असमिया वा, समिया होइ उवेहाए।

६. असमियं ति मन्नमाणस्स समिया वा, असमिया वा, असमिया होइ, उवेहाए।

उवेहमाणो अणुवेहमाणो बूया—"उवेहाहि समियाए"

इच्चेवं तत्थ संधी झोसिओ भवइ।

से उट्ठियस्स ठियस्स गति समणुपासह।

एत्थ वि बालभावे अप्पाणं—णो उवदंसेज्जा। —आ. सु. १, अ. ५, उ. ५, सु. १६६

श्रद्धालु-अश्रद्धालु—

२२५. (१) दीक्षित होने के समय वैराग्यवान् श्रद्धालु जिन प्रवचन को सम्यग् मानता है और भविष्य में भी सम्यग् मानता है।

(२) दीक्षित होने के समय वैराग्यवान् श्रद्धालु जिन प्रवचन को सम्यग् मानता है किन्तु भविष्य में सम्यग् नहीं मानता है।

(३) दीक्षित होने के समय वैराग्यवान् श्रद्धालु जिन प्रवचन को असम्यग् मानता है किन्तु भविष्य में सम्यग् मानता है।

(४) दीक्षित होने के समय वैराग्यवान् श्रद्धालु जिन प्रवचन को असम्यग् मानता है और भविष्य में भी असम्यग् मानता है।

(५) जो जिन प्रवचन को सम्यग् मानता है उसे सम्यक् या असम्यक् पदार्थ विचारणा से सम्यक् रूप में परिणत होते हैं।

(६) जो जिन प्रवचन को असम्यक् मानता है उसे सम्यक् या असम्यक् पदार्थ असम्यक् विचारणा से असम्यक् रूप में परिणत होते हैं।

विचारक पुरुष अविचारक पुरुष से कहे कि—हे पुरुष! सम्यक् विचार कर।

इस प्रकार (सम्यग् विचार से ही) संयमी जीवन में कर्म क्षय किये जाते हैं।

इस प्रकार से व्यवहार में होने वाली सम्यक् असम्यक् की गुत्थी सुलझाई जा सकती है—अर्थात् इस पद्धति से (मिथ्यात्वादि के कारण होने वाली) कर्मसन्तति रूप सन्धि तोड़ी जा सकती है।

तुम अज्ञान भाव में भी अपने आपको प्रदर्शित मत करो।

सम्मद्दंसणि समणस्स परीसहविजयो—

२२६. तओ ठाणा ववसियस्स हियाए सुहाए खमाए णिस्सेसाए आणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—

सम्यग्दर्शी श्रमण का परीषह-जय—

२२६. व्यवसित (श्रद्धालु) निर्ग्रन्थ के लिए तीन स्थान हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस और अनुगामिता के कारण होते हैं, यथा—

१. से णं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गंथे पावयणे णिस्संकिते णिक्कंखिते णिव्वितिगिच्छते णो भेद-समावण्णे णो कलुससमावण्णे णिग्गंथं णं पावयणं सद्दहति पत्तियति रोएति, से परिस्सहे अभिजुंजिय अभिजुंजिय अभिभवति, णो तं परिस्सहा अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवंति।

२. से णं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पंचहिं महव्वएहिं णिस्संकिए-जाव-णो कलुससमावण्णे पंच महव्वताइं सद्दहति-जाव-णो तं परिस्सहा अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवंति।

३. से णं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए छहिं जीवणिकाएहिं णिस्संकिते-जाव-णो कलुससमावण्णे छ जीवणिकाए सद्दहति-जाव-णो तं परिस्सहा अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवंति।

—ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. २२३

(१) जो मुण्डित हो, अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन में निःशंकित निःकांक्षित, निर्विचिकित्सक, अभेदसमापन्न अकलुषसमापन्न होकर निर्ग्रन्थ-प्रवचन में श्रद्धा करता है, प्रतीति करता है, रुचि करता है वह परीषहों से जूझ-जूझ कर; उन्हें अभिभूत कर देता है, उसे परीषह अभिभूत नहीं कर पाते।

(२) जो मुण्डित हो अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर पाँच महाव्रतों में निःशंकित—**यावत्**—अकलुषसमापन्न होकर पाँच महाव्रतों में श्रद्धा करता है—**यावत्**—वह परीषहों से जूझ-जूझ कर उन्हें अभिभूत कर देता है, उसे परीषह अभिभूत नहीं कर पाते।

(३) जो मुण्डित हो अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर छह जीवनिकायों में निःशंकित—**यावत्**—अकलुषसमापन्न होकर छह जीवनिकाय में श्रद्धा करता है,—**यावत्**—वह परीषहों से जूझ-जूझ कर उन्हें अभिभूत कर देता है, उसे परीषह जूझ-जूझ कर अभिभूत नहीं कर पाते।

असम्मद्दंसणिस्स समणस्स परीसह पराजओ—

२२७. तओ ठाणा अव्ववसितस्स अहिताए असुभाए अखमाए अणिस्सेसाए अणाणुगामियत्ताए भवंति, तं जहा—

१. से णं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए णिग्गंथे पावयणे संकिते कंखिते वितिगिच्छते भेदसमावण्णे कलुस-समावण्णे णिग्गंथं पावयणं णो सद्दहति णो पत्तियति णो रोएति, तं परिस्सहा अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवंति, णो से परिस्सहे अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवइ।

२. से णं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए पंचहिं महव्वएहिं संकिते-जाव-कलुससमावण्णे पंच महव्वताइं णो सद्दहति-जाव-णो से परिस्सहे अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवति।

३. से णं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए छहिं जीवणिकाएहिं संकिते-जाव-कलुससमावण्णे छ जीवणिकाए णो सद्दहति-जाव-णो से परिस्सहे अभिजुंजिय-अभिजुंजिय अभिभवति।

—ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. २२३

असम्यग्दर्शी श्रमण का परीषह पराजय—

२२७. अव्यवस्थित (अश्रद्धालु) निर्ग्रन्थ के तीन स्थान अहित, अशुभ, अक्षम, अनिःश्रेयस और अनानुगामिता के कारण होते हैं —

(१) वह मुण्डित हो अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर निर्ग्रन्थ प्रवचन में शंकित, कांक्षित, विचिकित्सक, भेद-समापन्न और कलुष-समापन्न होकर निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर श्रद्धा नहीं करता, प्रतीति नहीं करता, रुचि नहीं करता। उसे परीषह आकर अभिभूत कर देते हैं, वह परीषहों से जूझ-जूझ कर उन्हें अभिभूत नहीं कर पाता।

(२) वह मुण्डित हो अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर पाँच महाव्रतों में शंकित—**यावत्**—कलुषसमापन्न होकर पाँच महाव्रतों पर श्रद्धा नहीं करता **यावत्**—उसे परीषह आकर अभिभूत कर देते हैं, वह परीषहों से जूझ-जूझ कर उन्हें अभिभूत नहीं कर पाता।

(३) वह मुण्डित हो अगार से अनगार धर्म में प्रव्रजित होकर छह जीवनिकायों में शंकित—**यावत्**—कलुषसमापन्न होकर छह जीव-निकाय पर श्रद्धा नहीं करता,—**यावत्**—उसे परीषह प्राप्त होकर अभिभूत कर देते हैं, वह परीषहों से जूझ जूझ कर उन्हें अभिभूत नहीं कर पाता।

सम्मत्तपरक्कमस्स पण्हुत्तरा—

२२८. सुयं मे आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं - इह खलु सम्मत्त-परक्कमे "नाम अज्झयणे" समणेणं भगवया महावीरेणं कास-वेणं पवेइए जं सम्मं सद्दहित्ता पत्तियाइत्ता रोयइत्ता फास-

सम्यक्त्व-पराक्रम के प्रश्नोत्तर

२२८. आयुष्मन्! मैंने सुना है भगवान् ने इस प्रकार कहा है—इस निर्ग्रन्थ-प्रवचन में कश्यप-गोत्री श्रमण भगवान् महावीर ने सम्यक्त्व-पराक्रम नाम का अध्ययन कहा है, जिस पर भलिभाँति

इत्ता पालइत्ता तीरइत्ता किट्टइत्ता सोहइत्ता आराहइत्ता आणाए अणुपालइत्ता बहवे जीवा सिज्झन्ति बुज्झन्ति मुच्चन्ति परिनिव्वायन्ति सव्वदुक्खाणमन्तं करेन्ति ।

तस्स णं अयमट्ठे एवमाहिज्जइ तं जहा—

१. संवेगे	२. निव्वेए
३. धम्मसद्धा	४. गुरुसाहम्मियसुस्सूसणया
५. आलोयणया	६. निन्दणया
७. गरहणया	८. सामाइए
९. चउव्वीसत्थए	१०. वंदणए
११. पडिक्कमणे	१२. काउस्सग्गे
१३. पच्चक्खाणे	१४. थयथुइमंगले
१५. कालपडिलेहणया	१६. पायच्छित्तकरणे
१७. खमावणया	१८. सज्झाए
१९. वायणया	२०. पडिपुच्छणया
२१. परियट्टणया	२२. अणुप्पेहा
२३. धम्मकहा	२४. सुयस्स आराहणया
२५. एगग्गमणसंनिवेसणया	२६. संजमे
२७. तवे	२८. वोदाणे
२९. सुहसाए	३०. अप्पडिबद्धया
३१. विवित्तसयणासणसेवणया	३२. विणियट्टणया
३३. संभोगपच्चक्खाणे	३४. उवहिपच्चक्खाणे
३५. आहारपच्चक्खाणे	३६. कसायपच्चक्खाणे
३७. जोगपच्चक्खाणे	३८. सरीरपच्चक्खाणे
३९. सहायपच्चक्खाणे	४०. भत्तपच्चक्खाणे
४१. सब्भावपच्चक्खाणे	४२. पडिरूवया
४३. वेयावच्चे	४४. सव्वगुणसंपण्णया
४५. वीयरागया	४६. खन्ती
४७. मुत्ती	४८. अज्जवे
४९. मद्दवे	५०. भावसच्चे
५१. करणसच्चे	५२. जोगसच्चे
५३. मणगुत्तया	५४. वयगुत्तया
५५. कायगुत्तया	५६. मणसमाधारणया
५७. वयसमाधारणया	५८. कायसमाधारणया
५९. नाणसंपन्नया	६०. दंसणसंपन्नया
६१. चरित्तसंपन्नया	६२. सोइन्दियनिग्गहे
६३. चक्खिन्दियनिग्गहे	६४. घाणिन्दियनिग्गहे
६५. जिब्भिन्दियनिग्गहे	६६. फासिन्दियनिग्गहे

श्रद्धा कर, प्रतीति कर, रुचि रखकर, जिसके विषय का स्पर्श कर, स्मृति में रखकर, समग्र-रूप से हस्तगत कर, गुरु को पठित पाठ का निवेदन कर, गुरु के समीप उच्चारण की शुद्धि कर, सही अर्थ का बोध प्राप्त कर और अर्हत् की आज्ञा के अनुसार अनुपालन कर बहुत जीव सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण (शान्त) होते हैं और सब दुःखों का अन्त करते हैं । सम्यक्त्व-पराक्रम का अर्थ इस प्रकार कहा गया है । जैसे—

१. संवेग	२. निर्वेद
३. धर्म-श्रद्धा	४. गुरु और साधर्मिक की शुश्रूष
५. आलोचना	६. निन्दा
७. गर्हा	८. सामायिक
९. चतुर्विंशति-स्तव	१०. वन्दन
११. प्रतिक्रमण	१२. कायोत्सर्ग
१३. प्रत्याख्यान	१४. स्तव-स्तुति-मंगल
१५. काल-प्रतिलेखन	१६. प्रायश्चित्तकरण
१७. क्षामणा	१८. स्वाध्याय
१९. वाचना	२०. प्रतिप्रच्छना
२१. परावर्तना	२२. अनुप्रेक्षा
२३. धर्म-कथा	२४. श्रुताराधना
२५. एकाग्र मन की स्थापना	२६. संयम
२७. तप	२८. व्यवदान
२९. सुख की स्पृहा का त्याग	३०. अप्रतिबद्धता
३१. विविक्त-शयनासन-सेवन	३२. विनिवर्तना
३३. सम्भोग-प्रत्याख्यान	३४. उपधि-प्रत्याख्यान
३५. आहार-प्रत्याख्यान	३६. कषाय-प्रत्याख्यान
३७. योग-प्रत्याख्यान	३८. शरीर-प्रत्याख्यान
३९. सहाय-प्रत्याख्यान	४०. भक्त-प्रत्याख्यान
४१. सद्भाव-प्रत्याख्यान	४२. प्रतिरूपता
४३. वैयावृत्य	४४. सर्वगुण-सम्पन्नता
४५. वीतरागता	४६. क्षांति
४७. मुक्ति	४८. आर्जव
४९. मार्दव	५०. भाव-सत्य
५१. करण-सत्य	५२. योग-सत्य
५३. मनो-गुप्तता	५४. वाक्-गुप्तता
५५. काय-गुप्तता	५६. मनःसमाधारणा
५७. वाक्-समाधारणा	५८. काय-समाधारणा
५९. ज्ञान-सम्पन्नता	६०. दर्शन-सम्पन्नता
६१. चारित्र-सम्पन्नता	६२. श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रह
६३. चक्षुरिन्द्रिय-निग्रह	६४. घ्राणेन्द्रिय-निग्रह
६५. जिह्वेन्द्रिय-निग्रह	६६. स्पर्शनेन्द्रिय-निग्रह

६७. कोहविजए ६८. माणविजए
६९. मायाविजए ७०. लोहविजए
७१. पेज्जदोसमिच्छादंसणविजए
७२. सेलेसी ७३. अकम्मया।[1]

—उत्त. अ. २९, सु. १-२

६७. क्रोध-विजय ६८. मान-विजय
६९. माया-विजय ७०. लोभ-विजय
७१. प्रेयो-द्वेष-मिथ्या-दर्शन विजय
७२. शैलेशी ७३. अकर्मता।

संवेगाइणं फलं—

२२९. प०—संवेगेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—संवेगे णं अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ। अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ। अणन्ताणुबन्धिकोहमाणमायालोभे खवेइ। कम्मं न बन्धइ। तप्पच्चइयं च णं मिच्छत्तविसोहिं काऊण दंसणाराहए भवइ। दंसणविसोहीए य णं विसुद्धाए अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ। सोहीए य णं विसुद्धाए तच्चं पुणो भवग्गहणं सिज्झइ। सोहीए य णं विसुद्धाए तच्चं पुणो भवग्गहणं नाइक्कमइ।

—उत्त. अ. २९, सु. ३

प०— अह भंते ! संवेगे, निव्वेए, गुरु-साहम्मिय-सुस्सूसणया, आलोयणया, निंदणया, गरहणया, खमावणया, सुहसायया, विउसमणया, भावे अपडिबद्धया, विणिवट्टणया, विवित्त-सयणासण-सेवणया, सोइंदिय-संवरे-जाव-फासिंदिय-संवरे, जोग-पच्चक्खाणे, सरीर-पच्चक्खाणे, कसाय-पच्चक्खाणे, संभोग-पच्चक्खाणे, उवहि-पच्चक्खाणे, भत्त-पच्चक्खाणे, खमा, विरागया, भाव-सच्चे, जोग-सच्चे, करण-सच्चे, मण-समन्नाहरणया, वइ-समन्नाहरणया, काय-समन्नाहरणया, कोह-विवेगे-जाव-मिच्छादंसण-सल्ल-विवेगे, णाण-संपन्नया, दंसण-संपन्नया, चरित्त-संपन्नया, वेयण-अहियासणया, मारणंतिय-अहियासणया, एए णं भंते ! पया किं पज्जवसाणफला समणाउसो[2] ?

संवेग आदि का फल—

२२९. प्र०—भन्ते ! संवेग (मोक्ष की अभिलाषा) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—संवेग से वह अनुत्तर धर्म-श्रद्धा को प्राप्त होता है। अनुत्तर धर्म-श्रद्धा से शीघ्र ही और अधिक संवेग को प्राप्त करता है। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, और लोभ का क्षय करता है। नये कर्मों का संग्रह नहीं करता। कषाय के क्षीण होने से प्रकट होने वाली मिथ्यात्व-विशुद्धि कर दर्शन (सम्यक्-श्रद्धा) की आराधना करता है। दर्शन-विशोधि के विशुद्ध होने पर कई एक जीव उसी जन्म से सिद्ध हो जाते हैं और कई उसके विशुद्ध होने पर तीसरे जन्म का अतिक्रमण नहीं करते—उसमें अवश्य ही सिद्ध हो जाते हैं।

प्र०—आयुष्मन् श्रमण भगवन् ! संवेग, निर्वेद, गुरु-साधर्मिक शुश्रूषा, आलोचना, निन्दना, गर्हणा, क्षमापना, श्रुत-सहायता, व्युपशमना, भाव में अप्रतिबद्धता, विनिवर्तना, विविक्त शयनासन-सेवनता, श्रोत्रेन्द्रिय-संवर—**यावत्**—स्पर्शेन्द्रिय संवर, योग-प्रत्याख्यान, शरीर-प्रत्याख्यान, कषाय-प्रत्याख्यान, सम्भोग-प्रत्याख्यान, उपधि-प्रत्याख्यान, भक्त-प्रत्याख्यान, क्षमा, विरागता, भाव-सत्य, योग-सत्य, करण-सत्य, मनःसमन्वाहरण, वचन-समन्वाहरण, काय-समन्वाहरण, क्रोध-विवेक—**यावत्**—मिथ्यादर्शनशल्य-विवेक, ज्ञान-सम्पन्नता, दर्शन-सम्पन्नता, चारित्र-सम्पन्नता, वेदना-अध्यासनता और मारणान्तिक-अध्यासनता इन पदों का अन्तिम फल क्या कहा गया है ?

---

१ सम्यक्त्व पराक्रम अध्ययन के इन सूत्रों में सम्यग्दर्शन से सम्बन्धित केवल चार सूत्र हैं और शेष सूत्र अन्यान्य विषयों के हैं वे जिन-जिन अनुयोगों के हैं उन-उन अनुयोगों में यथास्थान दिये गये हैं।

२ (क) उत्तराध्ययन अ. २९ में संवेग से अकम्मया तक ७१ प्रश्नोत्तर हैं (मतान्तर से ७२ या ७३ प्रश्नोत्तर हैं) और इस उपरोक्त प्रश्नोत्तर में केवल ५४ पद हैं, जिनके फल का इसमें कथन है ? इस क्रम भेद और संख्या भेद का क्या कारण है ? यह शोध का विषय है। कुछ विद्वान इसका कारण वाचना भेद बताते हैं। कुछ विद्वानों की यही मान्यता है कि—भगवती सूत्र के ये प्रश्नोत्तर उत्तराध्ययन अ. २९ का संक्षिप्त पाठ है।

(ख) प्रश्न के अन्त में "समणाउसो" सम्बोधन अशुद्ध प्रतीत होता है। क्योंकि हे "आयुष्मन् श्रमण" यह सम्बोधन गुरु शिष्य के लिये करता है। यहाँ इससे विपरीत है।

उ०—गोयमा ! संवेगे निव्वेए-जाव-मारणंतिय-अहियासणया-एए णं सिद्धि-पज्जवसाणफला पन्नत्ता समणाउसो ।

—वि. श. १७, उ. ३, सु. २२

णिव्वेयफलं—

२३० प०—निव्वेएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—निव्वेएणं दिव्व-माणुस-तेरिच्छिएसु कामभोगेसु निव्वेयं हव्वमागच्छइ । सव्वविसएसु विरज्जइ, सव्वविसएसु विरज्जमाणे आरम्भपरिच्चायं करेइ । आरम्भपरिच्चायं करेमाणे संसारमग्गं वोच्छिन्दइ सिद्धिमग्गे पडिवन्ने य भवइ ।

—उत्त. अ. २९, सु. ४

सम्मद्दंसणिस्स विण्णाणं—

२३१. जं सम्मं ति पासह, तं मोणं ति पासह ।
जं मोणं ति पासह, तं सम्मं ति पासह ॥

न इमं सक्कं सिढिलेहिं अद्दिज्जमाणेहिं गुणासाएहिं वंकसमायारेहिं पमत्तेहिं गारमावसंतेहिं ।

सम्मत्तदंसी मुणी—

२३२. मुणी मोणं समायाय धुणे कम्मसरीरगं ।

पंतं लूहं सेवंति, वीरा सम्मत्तदंसिणो ।

एस ओहंतरे मुणी तिण्णे मुत्ते विरए वियाहिए—त्ति बेमि ॥

—आ. सु. १, अ. ५, उ. ३, सु. १६१

सम्मत्तदंसी न करेइ पावं—

२३३. जाइं च वुड्ढिं च इहऽज्ज पासे,
भूएहिं जाणे पडिलेह सायं ।
तम्हाऽतिविज्जे परमंति णच्चा,
सम्मत्तदंसी न करेइ पावं ॥

—आ. सु. १, अ. ३, उ. २, सु. ११२

कुम्म दिट्ठन्तं—

२३४. एगे पेगे महावीरा विप्परक्कमंति ।

पासह ! एगेऽवसीयमाणे अणत्तपण्णे ।

उ०—हे आयुष्मन् श्रमण गौतम ! संवेग, निर्वेद आदि—यावत्—मारणान्तिक अध्यासनता इन सभी पदों का अन्तिम फल सिद्धि (मुक्ति) है ।

निर्वेद का फल—

२३०. प्र०—भन्ते ! निर्वेद (भव-वैराग्य) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—निर्वेद से वह देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी कामभोगों में ग्लानि को प्राप्त होता है । सब विषयों से विरक्त हो जाता है । सब विषयों से विरक्त होता हुआ वह आरम्भ और परिग्रह का परित्याग करता है । आरम्भ और परिग्रह का परित्याग करता हुआ संसार-मार्ग का विच्छेद करता है और सिद्धि-मार्ग को प्राप्त होता है ।

सम्यक्त्वी का विज्ञान—

२३१. जो सम्यक्त्व को समझता है, वह मुनि-जीवन को समझता है । जो मुनि-जीवन को समझता है, वह सम्यक्त्व को समझता है ।

इस (सम्यक्त्व या मुनि जीवन) का सम्यक् अनुष्ठान शिथिल, स्नेही, आसक्त, कुटिल, प्रमत्त और गृही जनों से शक्य नहीं है ।

सम्यक्त्वदर्शी मुनि—

२३२. मुनि मौन—(सम्यक्त्व या मुनि जीवन) को स्वीकार करके कर्मरूप शरीर को धुने ।

सम्यग्दर्शी वीर तुच्छ एवं रूक्ष आहार का सेवन करते हैं ।

ऐसा सम्यग्दर्शी मुनि भवसागर तिरनेवाला है और वही तीर्ण, मुक्त, विरत कहा गया है । ऐसा मैं कहता हूँ ।

सम्यक्त्वदर्शी पाप नहीं करता—

२३३. हे आर्य ! जन्म जरा मरण के दुःखों को देख, प्राणियों के सुख-दुख के साथ तू तेरे सुख-दुख की तुलना कर और इसके लिए तू मोक्ष के स्वरूप को जानकर अति विद्वान बन । क्योंकि मोक्ष-मार्ग जानकर जो सम्यक्त्वदर्शी हुआ है वह पाप नहीं करता है ।

कूर्म-दृष्टान्त—

२३४. कुछ (विरले लघुकर्मी) महान वीर पुरुष इस प्रकार के ज्ञान के आख्यान (उपदेश) को सुनकर (संयम में) पराक्रम भी करते हैं ।

(किन्तु) उन्हें देखो, जो आत्मप्रज्ञा से शून्य हैं, इसलिए (संयम में) विषाद पाते हैं, (उनकी करुणदशा को इस प्रकार समझो) ।

से बेमि—से जहा वि कुम्मे हरए विणिविट्ठचित्ते—पच्छन्न-पलासे, उम्मुग्गं से णो लभति।

मैं कहता हूँ—जैसे एक कछुआ है, उसका चित्त (एक) महाह्रद (सरोवर) में लगा हुआ है। वह सरोवर शैवाल और कमल के पत्तों से ढका हुआ है। वह कछुआ उन्मुक्त आकाश को देखने के लिए (कहीं) छिद्र को भी नहीं पा रहा है।

रुक्ख दिट्ठन्तं—भंजगा इव संनिवेसं नो चयंति,
एवं पेगे अणेगरूवेहिं कुलेहिं जाता।

वृक्ष दृष्टान्त—जैसे वृक्ष (विविध शीत, ताप, तूफान तथा प्रहारों को सहते हुए भी) अपने स्थान को नहीं छोड़ते, वैसे ही कुछ लोग हैं जो (अनेक सांसारिक कष्ट, यातना, दुःख आदि बार-बार पाते हुए भी) गृहवास को नहीं छोड़ते।

रूवेहिं सत्ता कलुणं थणंति,
णिदाणतो ते ण लभंति मोक्खं।
—आ. सु. १, अ. ६, उ. १, सु. १७८

इसी प्रकार कई (गुरुकर्मा) लोग अनेक प्रकार (दरिद्र, सम्पन्न, मध्यवित्त आदि) कुलों में जन्म लेते हैं, (धर्माचरण के योग्य भी होते हैं) किन्तु रूपादि विषयों में आसक्त होकर (अनेक प्रकार के शारीरिक-मानसिक दुःखों से, उपद्रवों से और भयंकर रोगों से आक्रान्त होने पर) करुण विलाप करते हैं, (लेकिन इस पर भी वे दुःखों के आवास रूप गृहवास को नहीं छोड़ते) ऐसे व्यक्ति दुःखों के हेतुभूत कर्मों से मुक्त नहीं हो पाते।

सम्मद्दंसणस्स चउव्विहा सद्दहणा—

सम्यक्त्वी की चार प्रकार की श्रद्धा—

२३५. परमत्थसंथवो वा,
सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वा वि,

वावन्नकुदंसणवज्जणा य,

एए सम्मत्तसद्दहणा।[1]
—उत्त. अ. २८, गा. २८

२३५. (१) परमार्थ तत्व का बारम्बार गुणगान करना,

(२) जिन महापुरुषों ने परमार्थ को भलीभाँति देखा है उनकी सेवा शुश्रूषा करना,

(३) जो सम्यक्त्व से—सन्मार्ग से पतित हो गये हैं तथा

(४) जो कुदर्शनी—असत्य दर्शन में विश्वास रखते हैं उनकी संगति न करना,

यह सम्यक्त्व श्रद्धा है अर्थात् इन उक्त गुणों से सम्यक्त्व की श्रद्धा प्रकट होती है।

---

१ सम्यक्त्व के सड़सठ भेद—

चउ सद्दहण-तिलिंगं, दस-विणय-ति-सुद्धि-पंच-गयदोसं। अट्ठ-पभावण-भूसण, लक्खण - पंचविह - संजुत्तं॥
छव्विह-जयणागारं, छब्भावणभाविअं च छट्ठाणं। इय सत्तसट्ठि-दंसण - भेअ - विसुद्धं तु सम्मत्तं॥

ये सड़सठ भेद क्रमशः इस प्रकार हैं—

सम्यक्त्व के तीन लिंग (चिन्ह)

१. सुस्सूसधम्मराओ, २. गुरुदेवाणं जहा समाहिए। ३. वेयावच्चे नियमो, सम्मदिट्ठिस्स लिंगाई॥

सम्यक्त्व के दस विनय

१. अरिहंत, २. सिद्ध, ३. चेइए, ४. सुए, ५. अधम्मे, ६. असाहुवग्गे य।
७. आयरिय, ८. उवज्झाए, ९. पवयणे, १०. दंसणे विणओ॥

सम्यक्त्वी की तीन शुद्धि

१. मुत्तूण जिणं, २. मुत्तूण जिणमयं, ३. जिणमयट्ठिए मोत्तुं। संसारकत्तवारं, चिंतिज्जंतं जगं सेसं॥

सम्यक्त्व के पाँच दूषण

शंका १, कंख, २, विगिच्छा, ३, पसंस, ४, तह संथवो, ५, कुलिंगीसु। सम्मत्तस्सऽइयारा, परिहरिअव्वा पयत्तेणं॥

[शेष टिप्पण अगले पृष्ठ पर]

सम्मत्तस्स पंचअइयारा—

२३६. सम्मत्तस्स समणोवासएणं पंच अइयारा इमे जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—

संका, कंखा, वितिगिच्छा, परपासंड-पसंसा, परपासंड-संथवे।[1]
—आव. अ. ६, सु. ६५

१. सम्मद्दंसणस्स पढमं "संसयं" अइयारं—

संसयं परियाणओ संसारे परिण्णाए भवइ,
संसयं अपरियाणओ संसारे अपरिण्णाए भवइ।
—आ. सु. १, अ. ५, उ. १, सु. १४९

२. सम्मद्दंसणस्स विइयं "कंखा" अइयारं—

प०—कहं णं भंते! समणा वि निग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति?

उ०—गोयमा! तेहिं तेहिं नाणंतरेहिं दंसणंतरेहिं चरित्तंतरेहिं लिंगंतरेहिं पवयणंतरेहिं पावयणंतरेहिं कप्पंतरेहिं मग्गंतरेहिं मतंतरेहिं भंगंतरेहिं नयंतरेहिं नियमंतरेहिं संकिया कंखिया वितिकिच्छिता भेदसमावन्ना, कलुससमावन्ना, एवं खलु समणा निग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेदेंति।
—वि. स. १, उ. ३, सु. ५

सम्यक्त्व के पाँच अतिचार—

२३६. सम्यक्त्व के पाँच प्रधान अतिचार जानने योग्य हैं, आदर के योग्य नहीं हैं, यथा—

(१) शंका, (२) कांक्षा, (३) विचिकित्सा, (४) पर-पाषंड-प्रशंसा, (५) पर-पाषंड-संस्तव।

(१) **सम्यग्दर्शन का प्रथम "संशय" अतिचार—**

जो संशय को जानता है वह संसार को भी जानता है,
जो संशय को नहीं जानता है वह संसार को भी नहीं जानता है—

(२) **सम्यक् दर्शन का द्वितीय "कांक्षा" अतिचार—**

प्र०—भगवन्! श्रमणनिर्ग्रन्थ कांक्षामोहनीयकर्म का वेदन किस प्रकार करते हैं?

उ०—गौतम! उन-उन कारणों से ज्ञानान्तर, दर्शनान्तर, चारित्रान्तर, लिंगान्तर, प्रवचनान्तर, प्रावचनिकान्तर, कल्पान्तर, मार्गान्तर, मतान्तर, भंगान्तर, नयान्तर, नियमान्तर, और प्रमाणान्तरों के द्वारा शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेदसमापन्न और कलुषसमापन्न होकर श्रमणनिर्ग्रन्थ भी कांक्षामोहनीय कर्म का वेदन करते हैं।

(शेष टिप्पण पिछले पृष्ठ का)

सम्यक्त्वी की आठ प्रभावना—

१. पावयणी, २. धम्मकही, ३. वाई, ४. नेमित्तिओ, ५. तवस्सी य। ६. विज्जासिद्धो, ७. य कवी, अट्ठे य ८. पभावगा भणिया॥

सम्यक्त्वी के पांच भूषण—

१. जिणसासणे कुसलया, २. पभावणा, ३. तित्थसेवणा, ४. थिरया। ५. भत्ती अ गुणा सम्मत्त, दीवया उत्तमा पंच॥

सम्यक्त्वी के पांच लक्षण—

१. उवसम, २. संवेगो वि अ, ३. निव्वेओ तह य होइ, ४. अणुकंपा, । ५. अत्थिक्कं च अ एए, सम्मत्ते लक्खणा पंच॥

सम्यक्त्वी की छः प्रकार की यत्ना —

नो अन्नतित्थिए अन्नतित्थिदेवे य तह सदेवाइं। गहिए कुतित्थिएहिं, १. वंदामि न वा, २. नमंसामि॥
३. नेव अणालत्तो आलवेमि, ४. नो संलवेमि तह तेसिं। देमि न ५. असणाइं, पेसेमि न गंध, ६. पुप्फाइं॥

सम्यक्त्वी के छः आगार—

१. रायाभिओगो य, २. गणाभिओगो, ३. बलाभिओगो य, ४. सुराभिओगो।
५. कंतारवित्ती, ६. गुरुनिग्गहो य, छ छिंडियाऊ जिणसासणम्मि॥

सम्यक्त्वी की छः भावना —

१. मूलं, २. दारं, ३. पइट्ठाणं, ४. आहारो, ५. भायणं, ६. निही। दु छक्कस्सा वि धम्मस्स, सम्मत्तं परिकित्तिअं॥

सम्यक्त्व के छः स्थान—

अत्थि अ णिच्चो कुणई, कयं च सुएई अत्थि णिव्वाणं। अत्थि अ मुक्खो वाओ, छ सम्मत्तस्स ठाणाइं॥

—प्रवचन सारोद्धार, द्वार १४९, गा. ९४०-९५५

1 (क) आठ दर्शनातिचार—संका, कंखा, वितिगिच्छा, मूढदिट्ठी, अणुववूहा, अथिरीकरणं, अवच्छलं, अप्पभावणया।
—जीतकल्पचूर्णी, गा. २८

३. सम्मद्दसणस्स तइयं "विइगिच्छा" अइयारं—

वितिगिच्छसमावन्नेणं अप्पाणेणं णो लभति समाधिं।

सिता वेगे अणुगच्छंति,

असिता वेगे अणुगच्छंति।

अणुगच्छमाणेहिं अणणुगच्छमाणे कहं णं णिव्विज्जे?

—आ. सु. १, अ. ५, सु. १६७

(३) सम्यक्दर्शन का तृतीय विचिकित्सा अतिचार—

विचिकित्साप्राप्त (शंकाशील) आत्मा समाधि प्राप्त नहीं कर पाता।

कुछ लघुकर्मा सित (बद्ध/गृहस्थ) आचार्य का अनुगमन करते हैं, (उनके कथन को समझ लेते हैं)

कुछ असित (अप्रतिबद्ध/अनगार) भी (विचिकित्सादि रहित होकर आचार्य का) अनुगमन करते हैं।

इन अनुगमन करने वालों के बीच में रहता हुआ (आचार्य) का अनुगमन न करने वाला (तत्व नहीं समझने वाला) कैसे उदासीन (संयम के प्रति खेदखिन्न) नहीं होगा?

४. परपासंडसेवी—

आयरियपरिच्चाई, परपासण्डसेवए।
गाणंगणिए दुब्भूए, पावसमणे त्ति वुच्चई॥

—उत्त. अ. १७, गा. १७

(४) परपासंडसेवी—

जो आचार्य को छोड़ दूसरे धर्म-सम्प्रदायों में चला जाता है, जो छह मास की अवधि में एक गण से दूसरे गण में संक्रमण करता है, जिसका आचरण निन्दनीय है, वह पाप-श्रमण कहलाता है।

५. परपासंडसंथव—

अकुसीले सया भिक्खू, णेव य संसग्गियं भए।
सुहरूवा तत्थुवसग्गा, पडिबुज्झेज्ज ते विऊ॥

—सूय. सु. १, अ. ६, गा. २८

(५) परपाषंडसंस्तव—

साधु सदैव अकुशील बनकर रहे, तथा कुशीलजनों या दुराचारियों के साथ संसर्ग न रखे, क्योंकि उसमें (कुशीलों की संगति में) भी सुखरूप (अनुकूल) उपसर्ग रहते हैं, अतः विद्वान साधक इस तथ्य को भलीभाँति जाने तथा उनसे सावधान (प्रतिबुद्ध-जागृत) रहे।

साहगस्स पव्वज्जा पुव्वं निव्वेयदसा—

२३७. से बेमि पाईणं वा-जाव-उदीणं वा संतेगतिया मणुस्सा भवंति, तं जहा—आरिया वेगे, अणारिया वेगे, उच्चागोया वेगे, णीयागोया वेगे, कायमंता वेगे, हस्समंता वेगे, सुवण्णा वेगे, दुवण्णा वेगे, सुरूवा वेगे, दुरूवा वेगे।

तेसिं च णं खेत-वत्थूणि परिग्गहियाणि भवंति, तं जहा—अप्पयरा वा भुज्जतरा वा। तेसिं च णं जण-जाणवयाइं परिग्गहियाइं भवंति, तं जहा—अप्पयरा वा भुज्जयरा वा।

तहप्पकारेहिं कुलेहिं आगम्म अभिभूय एगे भिक्खायरियाए समुट्ठिता, सतो वा वि एगे णायओ य उवकरणं च विप्पजहाय भिक्खायरियाए समुट्ठिता, असतो वा वि एगे नायओ य उवकरणं च विप्पजहाय भिक्खायरियाए समुट्ठिता।

प्रव्रज्या पूर्व साधक की निर्वेद-दशा—

२३७. (श्री सुधर्मास्वामी श्री जम्बूस्वामी से कहते हैं—) मैं ऐसा कहता हूँ कि पूर्व आदि चारों दिशाओं में नाना प्रकार के मनुष्य निवास करते हैं, जैसे कि कोई आर्य होते हैं, कोई अनार्य होते हैं, कोई उच्चगोत्रीय और कोई नीचगोत्रीय होते हैं, कोई मनुष्य लम्बे कद के (ऊँचे) और कोई ठिगने कद के (ह्रस्व) होते हैं, किसी के शरीर का वर्ण सुन्दर होता है, किसी का असुन्दर होता है, कोई सुरूप होते हैं, कोई कुरूप।

उनके पास खेत और मकान आदि होते हैं, उनके अपने जन (परिवार, कुल आदि के लोग) तथा जनपद (देश) परिगृहीत (अपने स्वामित्व के) होते हैं, जैसे कि किसी का परिग्रह थोड़ा और किसी का अधिक।

इनमें से कोई पुरुष पूर्वोक्त कुलों में जन्म लेकर विषय-भोगों की आसक्ति छोड़कर भिक्षावृत्ति धारण करने के लिए (दीक्षाग्रहण हेतु) उद्यत होते हैं। कई विद्यमान ज्ञातिजन (स्वजन) अज्ञातिजन (परिजन) तथा उपकरण (विभिन्न भोगोपभोग-साधन या धन-धान्यादि वैभव) को छोड़कर भिक्षावृत्ति धारण करने (प्रव्रजित होने) के लिए समुद्यत होते हैं, अथवा कई अविद्यमान ज्ञातिजन, अज्ञातिजन एवं उपकरण का त्याग करके भिक्षावृत्ति धारण करने के लिए समुद्यत होते हैं।

जे ते सतो वा असतो वा णायओ य उवकरणं च विप्पजहाय भिक्खायरियाए समुट्ठिता पुव्वामेव तेहिं णातं भवति, तं जहा—इह खलु पुरिसे अण्णमण्णं ममट्ठाए एवं विप्पडिवेदेति, तं जहा—

जो विद्यमान अथवा अविद्यमान ज्ञातिजन, अज्ञातिजन उपकरण का त्याग करके भिक्षाचर्या (साधुदीक्षा) के लिए समुत्थित होते हैं, इन दोनों प्रकार के साधकों को पहले से ही यह ज्ञात होता है कि—इस लोक में पुरुषगण अपने से भिन्न वस्तुओं (परपदार्थों) को उद्देश्य करके झूठमूठ ही ऐसा मानते हैं कि ये मेरी हैं, मेरे उपभोग में आएँगी, जैसे कि—

खेत्तं मे, वत्थुं मे, हिरण्णं मे, सुवण्णं मे, धणं मे, धण्णं मे, कंसं मे, दूसं मे, विपुल-धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्त-रयण-संतसार-सावतेयं मे, सद्दा मे, रूवा मे, गंधा मे, रसा मे, फासा मे, एते खलु मे कामभोगा, अहमवि एतेसिं।

यह खेत (या जमीन) मेरा है, यह मकान मेरा है, यह चाँदी मेरी है, यह सोना मेरा है, यह धन मेरा है, धान्य मेरा है, यह कांसे के बर्तन मेरे हैं, यह बहुमूल्य वस्त्र या लौह आदि धातु मेरा है, यह प्रचुर धन (गाय, भैंस आदि पशु) यह बहुत-सा कनक, ये रत्न, मणि, मोती, शंखशिला, प्रवाल (मूंगा), रक्तरत्न (लाल), पद्मराग आदि उत्तमोत्तम मणियाँ और पैतृक नकद धन, मेरे हैं, ये कर्णप्रिय शब्द करने वाले वीणा, वेणु आदि वाद्य-साधन मेरे हैं, ये सुन्दर और रूपवान पदार्थ मेरे हैं, ये इत्र, तेल आदि सुगन्धित पदार्थ मेरे हैं, ये उत्तमोत्तम स्वादिष्ट एवं सरस खाद्य पदार्थ मेरे हैं, ये कोमल-कोमल स्पर्श वाले गद्दे, तोशक आदि पदार्थ मेरे हैं। ये पूर्वोक्त पदार्थ-समूह मेरे कामभोग के साधन हैं, मैं इनका योग-क्षेम (अप्राप्त को प्राप्त करने और प्राप्त की रक्षा) करने वाला हूं, अथवा उपभोग करने में समर्थ हूँ।

से मेहावी पुव्वामेव अप्पणा एवं समभिजाणेज्जा, तं जहा—

वह (प्रव्रजित अथवा प्रव्रज्या लेने का इच्छुक) मेधावी साधक स्वयं पहले से ही (इनका उपभोग करने से पूर्व ही) भलीभाँति यह जान ले कि "इस संसार में जब मुझे कोई रोग या आतंक उत्पन्न होता है, जो कि मुझे इष्ट नहीं है, कान्त (मनोहर) नहीं है, प्रिय नहीं है, अशुभ है, अमनोज्ञ है, अधिक पीड़ाकारी (मनोव्यथा पैदा करने वाला) है, दुःखरूप है, सुखरूप नहीं है, (तब यदि मैं प्रार्थना करूँ कि) हे भय का अन्त करने वाले मेरे धन-धान्य आदि कामभोगो! मेरे इस अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, अतीव दुःखद, दुःखरूप या असुखरूप रोग, आतंक आदि को तुम बांट कर ले लो, क्योंकि मैं इस पीड़ा, रोग या आतंक से बहुत दुःखी हो रहा हूँ, मैं चिन्ता या शोक से व्याकुल हूँ, इनके कारण मैं बहुत चिन्ताग्रस्त हूँ, मैं अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूँ, मैं बहुत ही वेदना पा रहा हूँ, या अतिसंतप्त हूँ।

इह खलु मम अण्णयरे दुक्खे रोगायंके समुप्पज्जेज्जा अणिट्ठे अकंते अप्पिए असुभे अमणुण्णे अमणामे दुक्खे णो सुहे, से हंता भयंतारो कामभोगा! इमं मम अण्णतरं दुक्खं रोगायंकं परियाइयह अणिट्ठं अकंतं अप्पियं असुभं अमणुण्णं अमणामं दुक्खं णो सुहं, ताहं दुक्खामि वा सोयामि वा जूरामि वा तिप्पामि वा पिड्डामि वा परितप्पामि वा,

इमाओ मे अण्णतरातो दुक्खातो रोगायंकातो पडिमोयह अणिट्ठातो अकंतातो अप्पियाओ असुहाओ अमणुण्णाओ अमणामाओ दुक्खाओ णो सुहातो। एवामेव नो लद्धपुव्वं भवति।

अतः तुम सब मुझे इस अनिष्ट अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, अवमान्य दुःखरूप या असुखरूप मेरे किसी एक दुःख से या रोगातंक से मुक्त करा दो। तो वे (धनधान्यादि कामभोग) पदार्थ उक्त प्रार्थना सुनकर दुःखादि से मुक्त करा दें। ऐसा कभी नहीं होता!

इह खलु कामभोगा णो ताणाए वा सरणाए वा, पुरिसे वा

इस संसार में वास्तव में काम-भोग दुःख से पीड़ित उस व्यक्ति की रक्षा करने या शरण देने में समर्थ नहीं होते। इन काम-भोगों का उपभोक्ता किसी समय तो (दुःसाध्य व्याधि, जरा-

एगता पुव्विं कामभोगे विप्पजहति, कामभोगा वा एगता पुव्विं पुरिसं विप्पजहंति, अन्ने खलु कामभोगा अन्नो अहमंसि, से किमंग पुण वयं अन्नमन्नेहिं कामभोगेहिं मुच्छामो ? इति संखाए णं वयं कामभोगे विप्पजहिस्सामो।

जीर्णता, या अन्य शासनादि का उपद्रव या मृत्युकाल आने पर) पहले से ही स्वयं इन काम-भोग पदार्थों को (बरतना) छोड़ देता है, अथवा किसी समय (द्रव्यादि के अभाव में) (विषयोन्मुख) पुरुष को काम-भोग (ये कामभोग्य साधन) पहले ही छोड़ (कर चल) देते हैं। इसलिए ये काम-भोग मेरे से भिन्न है, मैं इनसे भिन्न हूँ। फिर हम क्यों अपने से भिन्न इन काम-भोगों में मूच्छित आसक्त हों, इस प्रकार इन सबका ऐसा स्वरूप जानकर (अब) हम इन कामभोगों का परित्याग कर देंगे।

से मेहावी जाणेज्जा बाहिरंगमेतं, इणमेव उवणीततरागं,

(इस प्रकार वह विवेकशील) बुद्धिमान साधक (निश्चितरूप से) जान ले, ये सब काम-भोगादिपदार्थ बहिरंग—बाह्य हैं, मेरी आत्मा से भिन्न (परभाव) हैं।

तं जहा—माता मे, पिता मे, भाया मे, भज्जा मे, भगिणी मे, पुत्ता मे, धूता मे, नत्तू मे, सुण्हा मे, पेसा मे, सुही मे, सयण-संगंथ-संथुता मे, एते खलु मे णायओ, अहमवि एतेसिं।

—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६६७-६७१

(सांसारिक दृष्टि वाले मानते हैं कि) इनसे तो मेरे निकटतर ये ज्ञातिजन (स्वजन) हैं—जैसे कि (वह कहता है—) "यह मेरी माता है, मेरा पिता है, मेरा भाई है, मेरी बहन है, मेरी पत्नी है, मेरे पुत्र हैं, ये मेरा दास (नौकर-चाकर) है, यह मेरा नाती है, मेरी पुत्र-वधू है, मेरा मित्र है, ये मेरे पहले और पीछे के स्वजन एवं परिचित सम्बन्धी हैं। ये मेरे ज्ञातिजन हैं, और मैं भी इनका आत्मीय जन हूँ।"

एगत्त भावणया णिव्वेयं—

एकत्व-भावना से प्राप्त निर्वेद—

२३८. से मेहावी पुव्वामेव अप्पणा एवं समभिजाणेज्जा—इह खलु मम अण्णतरे दुक्खे रोगातंके समुप्पज्जेज्जा अणिट्ठे-जाव-दुक्खे नो सुहे, से हंता भयंतारो णायओ इमं मम ण्णतरं दुक्खं रोगायंकं परिआदियह अणिट्ठं-जाव-नो सुहं मा हं दुक्खामि वा-जाव-परितप्पामि वा, इमातो मं अन्नयरातो दुक्खातो रोगायंकातो पडिमोएह अणिट्ठाओ-जाव-णो सुहातो। एवामेव णो लद्धपुव्वं भवति।

२३८. (किन्तु उक्त शास्त्रज्ञ) बुद्धिमान साधक को स्वयं पहले से ही सम्यक् प्रकार से जान लेना चाहिए कि इस लोक में मुझे किसी प्रकार का कोई दुःख या रोग-आतंक (जो कि मेरे लिए अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय—यावत्—दुःखदायक है) पैदा होने पर मैं अपने ज्ञातिजनों से प्रार्थना करूँ कि हे भय का अन्त करने वाले ज्ञातिजनो! मेरे इस अनिष्ट, अप्रिय—यावत्—दुःखरूप या असुखरूप दुःख या रोगातंक को आप लोग बराबर बाँट लें, ताकि मैं इस दुःख से दुःखित, चिन्तित—यावत्—अतिसंतप्त न होऊँ। आप सब मुझे इस अनिष्ट—यावत्—उत्पीड़क दुःख या रोगातंक से मुक्त करा (छुटकारा दिला) दें।" इस पर वे ज्ञाति-जन मेरे दुःख और रोगातंक को बाँट कर ले लें, या मुझे इस दुःख या रोगातंक से मुक्त करा दें, ऐसा कदापि नहीं होता।

तेसिं वा वि भयंताराणं मम णाययाणं अण्णयरे दुक्खे रोगातंके समुप्पज्जेज्जा अणिट्ठे-जाव-नो सुहे, से हंता अहमेतेसिं भयंताराणं णाययाणं इमं अण्णतरं दुक्खं रोगातंकं परियाइयामि अणिट्ठं-जाव-णो सुहं, मा मे दुक्खंतु वा-जाव-परितप्पंतु वा, इमाओ णं अण्णतरातो दुक्खातो रोगातंकातो परिमोएमि अणिट्ठातो-जाव-नो सुहातो। एवामेव णो लद्धपुव्वं भवति।

अथवा भय से मेरी रक्षा करने वाले उन मेरे ज्ञातिजनों को ही कोई दुःख या रोग उत्पन्न हो जाय, जो अनिष्ट, अप्रिय—यावत्—असुखकर हो, तो मैं उसे भयत्राता ज्ञातिजनों के अनिष्ट, अप्रिय—यावत्—असुखरूप उस दुःख या रोगातंक को बाँटकर ले लूं, ताकि वे मेरे ज्ञातिजन दुःख न पाएँ—यावत्—वे अतिसंतप्त न हों, तथा मैं उन ज्ञातिजनों को उनके किसी अनिष्ट—यावत्—असुखरूप दुःख या रोगातंक से मुक्त कर दूं, ऐसा भी कदापि नहीं होता।

अण्णस्स दुक्खं अण्णो नो परियाइयति, अन्नेण कडं कम्मं अन्नो नो पडिसंवेदेति,[1] पत्तेयं जायति, पत्तेयं मरइ, पत्तेयं चयति, पत्तेयं उववज्जति, पत्तेयं झंझा, पत्तेयं सण्णा, पत्तेयं मण्णा, एवं विण्णू, वेदणा, इति खलु णातिसंयोगा णो ताणाए वा णो सरणाए वा,

(क्योंकि) दूसरे के दुःख को दूसरा व्यक्ति बाँट नहीं सकता। दूसरे के द्वारा कृतकर्म का फल दूसरा नहीं भोग सकता। प्रत्येक प्राणी अकेला ही जन्मता है, (आयुष्य क्षय होने पर) अकेला ही मरता है, प्रत्येक व्यक्ति अकेला ही त्याग करता है, अकेला ही प्रत्येक व्यक्ति इन वस्तुओं का उपभोग या स्वीकार करता है, प्रत्येक व्यक्ति अकेला ही झंझा (कलह) आदि कषायों को ग्रहण करता है, अकेला ही पदार्थों का परिज्ञान करता है, तथा प्रत्येक व्यक्ति अकेला ही मनन-चिन्तन करता है, प्रत्येक व्यक्ति अकेला ही विद्वान् होता है, प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने सुख-दुःख का वेदन (अनुभव) करता है। अतः पूर्वोक्त प्रकार से अन्यकृत कर्म का फल अन्य नहीं भोगता, तथा प्रत्येक व्यक्ति को जन्म-जरा-मरणादि भिन्न-भिन्न हैं इस सिद्धान्त के अनुसार ज्ञातिजनों का संयोग दुःख से रक्षा करने या पीड़ित मनुष्य को शान्ति या शरण देने में समर्थ नहीं है।

पुरिसो वा एगता पुव्विं णातिसंयोगे विप्पजहति, नातिसंयोगा वा एगता पुव्विं पुरिसं विप्पजहंति, अन्ने खलु णातिसंयोगा अन्नो अहमंसि, से किमंग पुण वयं अन्नमन्नेहिं णातिसंयोगेहिं मुच्छामो ? इति संखाए ण वयं णातिसंयोगे विप्पजहिस्सामो।

कभी (क्रोधादिवश या मरणकाल में) मनुष्य स्वयं ज्ञातिजनों के संयोग को पहले ही छोड़ देता है अथवा कभी ज्ञातिसंयोग भी (मनुष्य के दुर्व्यवहार-दुराचरणादि देखकर) मनुष्य को पहले छोड़ देता है। अतः (मेधावी साधक यह निश्चित जान ले कि) "ज्ञातिजनसंयोग मेरे से भिन्न है, मैं भी ज्ञातिजन संयोग से भिन्न हूँ।" तब फिर हम अपने पृथक् (आत्मा से भिन्न) इस ज्ञातिजनसंयोग में क्यों आसक्त हों ? यह भलीभाँति जानकर अब हम ज्ञाति-संयोग का परित्याग कर देंगे।

से मेहावी जाणेज्जा बाहिरगमेतं, इणमेव उवणीयतरागं, तं जहा—हत्था मे, पाया मे, बाहा मे, ऊरू मे, सीसं मे, उदरं मे, सीलं मे, आउं मे, बलं मे, वण्णो मे, तया मे, छाया मे, सोयं मे, चक्खुं मे, घाणं मे, जिब्भा मे, फासा मे, ममाति।

परन्तु मेधावी साधक को यह निश्चित रूप से जान लेना चाहिए कि ज्ञातिजनसंयोग तो बाह्य वस्तु (आत्मा से भिन्न-परभाव) है ही, इनसे भी निकटतर सम्बन्धी ये सब (शरीर से सम्बन्धित अवयवादि) हैं, जिन पर प्राणी ममत्व करता है, जैसे कि—ये मेरे हाथ हैं, ये मेरे पैर हैं, ये मेरी बाहें हैं, ये मेरी जाँघें हैं, यह मेरा मस्तक है, यह मेरा उदर (पेट) है, यह मेरा शील (स्वभाव या आदत) है, इसी तरह मेरी आयु, मेरा बल, मेरा वर्ण (रंग), मेरी चमड़ी (त्वचा), मेरी छाया (अथवा कान्ति), मेरे कान, मेरे नेत्र, मेरी नासिका, मेरी जिह्वा, मेरी स्पर्शेन्द्रिय, इस प्रकार प्राणी "मेरा मेरा" करता है।

वंसि वयातो परिजूरति तं जहा—आऊओ बलाओ वण्णाओ तताओ छाताओ सोताओ-जाव-फासाओ, सुसंधोता संधी विसंधी भवति, वलितरंगे गाते भवति, किण्हा केसा पलिता भवंति, तं जहा—जं पि य इमं सरीरगं उरालं

(परन्तु याद रखो) आयु अधिक होने पर ये सब जीर्ण शीर्ण हो जाते हैं। जैसे कि (वृद्ध होने के साथ-साथ मनुष्य) आयु से, बल से, वर्ण से, त्वचा से, कान से, तथा स्पर्शेन्द्रिय सभी शरीर सम्बन्धी पदार्थों से क्षीण-हीन हो जाता है। उसकी सुगठित (गठी हुई) दृढ़ सन्धियाँ (जोड़) ढीली हो जाती हैं, उसके शरीर की चमड़ी सिकुड़कर नसों के जाल से वेष्टित

---

1. न तस्स दुक्खं विभयंति नाइओ, न मित्तवग्गा न सुया न बंधवा। एक्को सयं पच्चणु होइ दुक्खं, कत्तारमेवं अणुजाइ कम्मं॥

— उत्तराध्ययन, अ. १३, गा. २३

आहारोवचियं एतं पि य मे अणुपुव्वेणं विप्पजहियव्वं भविस्सति।

एयं संखाए से भिक्खू भिक्खायरियाए समुट्ठिते दुहतो लोगं जाणेज्जा, तं जहा—जीवा चेव अजीवा चेव, तसा चेव, थावरा चेव। —सूय. सु. २, अ. १, सु. ६७२-६७६

(तरंगरेखावत्) हो जाती है। उसके काले केश सफेद हो जाते हैं, यह जो आहार से उपचित (वृद्धिगत) औदारिक शरीर है, वह भी क्रमशः अवधि (आयुष्य) पूर्ण होने पर छोड़ देना पड़ेगा।

यह जानकर भिक्षाचर्या स्वीकार करने हेतु प्रव्रज्या के लिए समुद्यत साधु लोक को दोनों प्रकार से जान ले, जैसे कि—लोक जीवरूप और अजीवरूप है, तथा त्रसरूप है और स्थावररूप है।

अणुसोओ पडिसोओ य—

२३९. अणुसोयपट्ठिए बहुजणम्मि,
पडिसोयलद्धलक्खेणं।
पडिसोयमेव अप्पा,
दायव्वो होउकामेणं॥

अणुसोयसुहोलोगो,
पडिसोओ आसवो सुविहियाणं।
अणुसोओ संसारो,
पडिसोओ तस्स उत्तारो॥

तम्हा आयारपरक्कमेण, संवरसमाहिबहुलेणं।
चरिया गुणा य नियमा य, होंति साहूण दट्ठव्वा॥
—दस. चू. २, गा. १-४

अनुस्रोत और प्रतिस्रोत—

२३९. अधिकांश लोग अनुस्रोत में प्रस्थान कर रहे हैं—भोग मार्ग की ओर जा रहे हैं। किन्तु जो मुक्त होना चाहता है, जिसे प्रतिस्रोत में गति करने का लक्ष्य प्राप्त है, जो विषय-भोगों से विरक्त हो संयम की आराधना करना चाहता है, उसे अपनी आत्मा को स्रोत के प्रतिकूल ले जाना चाहिए—विषयानुरक्ति में प्रवृत्त नहीं करना चाहिए।

जन-साधारण को स्रोत के अनुकूल चलने में सुख की अनुभूति होती है, किन्तु जो सुविहित साधु हैं उसका आश्रव (इन्द्रिय-विजय) प्रतिस्रोत होता है। अनुस्रोत संसार है (जन्म मरण की परम्परा है) और प्रतिस्रोत उसका उतार है जन्म-मरण का पार पाना है।

इसलिए आचार में पराक्रम करने वाले, संवर में प्रभूत समाधि रखने वाले साधुओं को चर्या, गुणों तथा नियमों की ओर दृष्टिपात करना चाहिए।

अथिरप्पाणं विविहा उवमा—

२४०. जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ।
वायाविद्धो व्व हढो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि॥

गोवालो भण्डपालो वा, जहा तद्दव्वऽणिस्सरो।
एवं अणिस्सरो तं पि, सामण्णस्स भविस्ससि॥
—उत्त. अ. २२, गा. ४४-४५

अस्थिरात्मा को विभिन्न उपमाएँ—

२४०. यदि तू स्त्रियों को देख उनके प्रति इस प्रकार राग-भाव पैदा करेगा तो वायु से आहत हढ (वनस्पति-विशेष) की तरह अस्थितात्मा हो जायगा।

जैसे गोपाल और भाण्डपाल गायों और किराने के स्वामी नहीं होते, इसी प्रकार तू भी श्रामण्य का स्वामी नहीं होगा।

सामण्ण हीणाणं अवट्ठिई—

२४१. कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए।
पए पए विसीयंतो, संकप्पस्स वसं गओ॥
—उत्त. अ. २, गा. १

धम्माउ भट्ठं सिरिओववेयं,
जन्नग्गि विज्झायमिवप्पतेयं।
हीलंति णं दुव्विहियं कुसीला,
दाढुद्धियं घोरविसं व नागं॥

इहेवधम्मो अयसो अकित्ती,
दुन्नामधेज्जं च पिहुज्जणम्मि।
चुयस्स धम्माउ अहम्मसेविणो,
संभिन्नवित्तस्स य हेट्ठओ गई॥

साधुता से पतित की दशा—

२४१. वह कैसे श्रामण्य का पालन करेगा जो काम (विषय-राग) का निवारण नहीं करता, जो संकल्प के वशीभूत होकर पग-पग पर विषादग्रस्त होता है?

जिसकी दाढ़ें उखाड़ ली गई हों उस घोर विषधर सर्प की साधारण लोग भी अवहेलना करते हैं वैसे ही धर्म-भ्रष्ट, चारित्र रूपी श्री से रहित, बुझी हुई यज्ञाग्नि की भाँति निस्तेज और दुर्विहित साधु की कुशील व्यक्ति भी निन्दा करते हैं।

धर्म से च्युत, अधर्मसेवी और चारित्र का खण्डन करने वाला साधु इसी मनुष्य-जीवन में अधर्म का आचरण करता है, उसका अयश और अकीर्ति होती है। साधारण लोगों में भी उसका दुर्नाम होता है तथा उसकी अधोगति होती है।

भुंजित्तु भोगाइं पसज्झ चेयसा,
तहाविहं कट्टु असंजमं बहुं ।
गइं च गच्छे अणभिज्झियं दुहं,
बोही य से नो सुलभा पुणो पुणो ॥
—दस. चू. १, गा. १२-१४

वह संयम से भ्रष्ट साधु आवेगपूर्ण चित्त से भोगों को भोग-कर और तथाविध प्रचुर असंयम का आसेवन कर अनिष्ट एवं दुःखपूर्ण गति में जाता है और बार-बार जन्म-मरण करने पर भी उसे बोधि सुलभ नहीं होती।

जया य चयई धम्मं, अणज्जो भोग कारणा ।
से तत्थ मुच्छिए बाले, आयई नावबुज्झइ ॥

अनार्य जब भोग के लिए धर्म को छोड़ता है तब वह भोग में मूर्च्छित अज्ञानी अपने भविष्य को नहीं समझता।

जया ओहाविओ होइ, इंदो वा पडिओ छमं ।
सव्वधम्मपरिब्भट्ठो , स पच्छा परितप्पइ ॥

जब कोई साधु उत्प्रव्रजित होता है—गृहवास में प्रवेश करता है—तब वह सकलधर्म से भ्रष्ट होकर वैसे ही परिताप करता है जैसे देवलोक के वैभव से च्युत होकर भूमितल पर पड़ा हुआ इन्द्र।

जया य वंदिमो होइ, पच्छा होइ अवंदिमो ।
देवया व चुया ठाणा, स पच्छा परितप्पइ ॥

प्रव्रजित काल में साधु वन्दनीय होता है, वही जब उत्प्रव्रजित होकर अवन्दनीय हो जाता है तब वह वैसे ही परिताप करता है जैसे अपने स्थान से च्युत देवता।

जया य पूइमो होइ, पच्छा होइ अपूइमो ।
राया व रज्जपब्भट्ठो, स पच्छा परितप्पइ ॥

प्रव्रजित काल में साधु पूज्य होता है, वही जब उत्प्रव्रजित होकर अपूज्य हो जाता है तब वह वैसे ही परिताप करता है जैसे राज्य-भ्रष्ट राजा।

जया य माणिमो होइ, पच्छा होइ अमाणिमो ।
सेट्ठि व्व कब्बडे छूढो, स पच्छा परितप्पइ ॥

प्रव्रजित काल में साधु मान्य होता है, वही जब उत्प्रव्रजित होकर अमान्य हो जाता है तब वह वैसे ही परिताप करता है जैसे कर्वट (छोटे से गाँव) में अवरुद्ध किया हुआ श्रेष्ठी।

जया य थेरओ होइ, समइक्कंतजोव्वणो ।
मच्छो व्व गलं गिलित्ता, स पच्छा परितप्पइ ॥

यौवन के बीत जाने पर जब वह उत्प्रव्रजित साधु बूढ़ा होता है, तब वह वैसे ही परिताप करता है जैसे काँटे को निगलने वाला मत्स्य।

जया य कुकुडुंबस्स, कुतत्तीहिं विहम्मइ ।
हत्थी व बंधणे बद्धो, स पच्छा परितप्पइ ॥

वह उत्प्रव्रजित साधु जब कुटुम्ब की दुश्चिन्ताओं से प्रतिहत होता है तब वह वैसे ही परिताप करता है जैसे बन्धन में बँधा हुआ हाथी।

पुत्तदारपरिकिण्णो , मोहसंताणसंतओ ।
पंकोसन्नो जहा नागो, स पच्छा परितप्पइ ॥

पुत्र और स्त्री से घिरा हुआ और मोह की परम्परा से परि-व्याप्त वह वैसे ही परिताप करता है जैसे पंक में फँसा हुआ हाथी।

अज्ज आहं गणी होंतो, भावियप्पा बहुस्सुओ ।
जइ हं रमंतो परियाए, सामण्णे जिणदेसिए ॥
—दस. चू. १, गा. १-९

आज मैं भावितात्मा और बहुश्रुत गणी होता यदि जिनोपदिष्ट श्रमण-पर्याय (चारित्र) में रमण करता।

जो पव्वइत्ताण महव्वयाइं, सम्मं नो फासयई पमाया ।
अनिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे, न मूलओ छिन्दइ बन्धणं से ॥

जो महाव्रतों को स्वीकार कर भलीभाँति उनका पालन नहीं करता, अपनी आत्मा का निग्रह नहीं करता, रसों में मूर्च्छित होता है वह बन्धन का मूलोच्छेद नहीं कर पाता।

आउत्तया जस्स न अत्थि काइ, इरियाए भासाए तहेसणाए ।
आयाणनिक्खेवदुगुंछणाए, न धीरजायं अणुजाइ मग्गं ॥

ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप और उच्चार-प्रस्रवण की परिस्थापना में जो सावधानी नहीं बरतता, वह उस मार्ग का अनुगमन नहीं कर सकता जिस पर वीर-पुरुष चले हैं।

चिरं पि से मुण्डरुई भवित्ता, अथिरव्वए तवनियमेहि भट्ठे ।
चिरं पि अप्पाण किलेसइत्ता, न पारए होइ हु संपराए ॥

जो व्रतों में स्थिर नहीं है, तप और नियमों से भ्रष्ट है, वह चिरकाल से मुण्डन में रुचि रखकर भी और चिरकाल तक आत्मा को कष्ट देकर भी संसार का पार नहीं पा सकता।

"पोल्ले व" मुट्ठी जह से असारे,
अयन्तिए कूडकहावणे वा।
राढामणी वेरुलियप्पगासे,
अमहग्घए होइ य जाणएसु॥

जो पोली मुट्ठी की भाँति असार है, खोटे सिक्के की भाँति नियन्त्रण रहित है, काचमणि होते हुए भी वैडूर्य जैसे चमकता है, वह जानकार व्यक्तियों की दृष्टि में मूल्य-हीन हो जाता है।

कुसीललिंगं इह धारइत्ता,
इसिज्झयं जीविय वूहइत्ता।
असंजए संजयलप्पमाणे,
विणिघायमागच्छइ से चिरं पि॥

जो कुशील वेश और ऋषि-ध्वज (रजोहरण आदि मुनि-चिन्हों) को धारण कर उनके द्वारा जीविका चलाता है, असंयत होते हुए भी अपने आपको संयत कहता है, वह चिरकाल तक विनाश को प्राप्त होता है।

"विसं तु पीयं" जह कालकूडं,
हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं।
"एसे व" धम्मो विसओववन्नो,
हणाइ वेयाल इवाविवन्नो॥

"दिया हुआ काल-कूट विष, अवधि से पकड़ा हुआ शस्त्र और नियन्त्रण में नहीं लाया हुआ वेताल जैसे विनाशकारी होता है, वैसे ही यह विषयों से युक्त धर्म भी विनाशकारी होता है।

जे लक्खणं सुविण पउंजमाणे,
निमित्त–कोउहल–संपगाढे।
कुहेडविज्जासवदारजीवी,
न गच्छई सरणं तम्मिकाले॥

जो लक्षण-शास्त्र, स्वप्न-शास्त्र का प्रयोग करता है, निमित्त शास्त्र और कौतुक कार्य में अत्यन्त आसक्त है, मिथ्या आश्चर्य उत्पन्न करने वाले मिथ्यात्मक आश्रव द्वार से जीविका चलाता है, वह कर्म का फल भुगतने के समय किसी की शरण को प्राप्त नहीं होता।

तमंतमेणेव उ से असीले,
सया दुही विप्परियासुवेइ।
संधावई नरग-तिरिक्खजोणिं,
मोणं विराहेत्तु असाहुरूवे॥

वह शील रहित साधु अपने तीव्र अज्ञान से सतत दुःखी होकर विपरीत दृष्टि-वाला हो जाता है। वह असाधु प्रकृति वाला मुनि धर्म की विराधना कर नरक और तिर्यग्-योनि में आता जाता रहता है।

उद्देसियं कीयगडं नियागं,
न मुंचई किंचि अणेसणिज्जं।
अग्गीवि वा सव्वभक्खी भवित्ता,
इओ चुओ गच्छइ कट्टु पावं॥

जो औद्देशिक, क्रीतकृत, नित्याग्र और कुछ भी अनेषणीय को नहीं छोड़ता, वह अग्नि की तरह सर्वभक्षी होकर, पाप-कर्म का अर्जन करता है और यहाँ से मरकर दुर्गति में जाता है।

न तं अरी कंठछेत्ता करेइ,
जं से करे अप्पणिया दुरप्पा।
से नाहिई मच्चुमुहं तु पत्ते,
पच्छाणुतावेण दयाविहूणो॥

स्वयं की अपनी दुष्प्रवृत्ति-शील दुरात्मा जो अनर्थ करती है, वह गला काटने वाला शत्रु भी नहीं कर पाता है। उक्त तथ्य को निर्दय-संयमहीन मनुष्य मृत्यु के क्षणों में पश्चात्ताप करता हुआ जान पाएगा।

निरट्ठिया नग्गरुई उ तस्स,
जे उत्तमट्ठं विवज्जासमेइ।
इमे वि से नत्थि परे वि लोए,
दुहओ वि से झिज्जइ तत्थ लोए॥

जो उत्तमार्थ में—अन्तिम समय की साधना में विपरीत दृष्टि रखता है उसकी श्रामण्य में अभिरुचि व्यर्थ है उसके लिए न यह लोक है, न परलोक है। दोनों लोक के प्रयोजन से शून्य होने के कारण वह उभय-भ्रष्ट भिक्षु निरन्तर चिन्ता में घुलता जाता है।

एमेवऽहाछन्द—कुसीलरूवे,
मग्गं विराहेत्तु जिणुत्तमाणं।
कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा,
निरट्ठसोया परियावमेइ॥

इसी प्रकार स्वच्छन्द साधु और कुशील साधु भी जिनोत्तम भगवान् के मार्ग की विराधना कर वैसे ही परिताप को प्राप्त होता है, जैसे कि भोग-रसों में आसक्त होकर निरर्थक शोक करने वाली कुररी (गीध) पक्षिणी परिताप को प्राप्त होती है।

सोच्चाण मेहावि सुभासियं इमं,
अणुसासणं नाणगुणोववेयं ।
मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं,
महानियण्ठाण वए पहेणं ॥

मेधावी साधक इस सुभाषित को एवं ज्ञान-गुण से युक्त अनुशासन (शिक्षा) को सुनकर कुशील व्यक्तियों के मार्गों को छोड़कर, महान् निर्ग्रन्थ के पथ पर चले ।

चरित्तमायारगुणन्निए तओ,
अणुत्तरं संजमपालियाणं ।
निरासवे संखवियाणकम्मं,
उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं ॥

—उत्त. अ. २०, गा. ५१-५२

चारित्राचार और ज्ञानादि गुणों से सम्पन्न निर्ग्रन्थ निरास्रव होता है अनुत्तर शुद्ध संयम का पालन कर वह निरास्रव (राग-द्वेषादि बन्ध-हेतुओं से मुक्त) साधक कर्मों का क्षय कर विपुल उत्तम एवं शाश्वत मोक्ष को प्राप्त करता है ।

संजमरयाणं सुहं अरयाणं दुक्खं—

संयम में रत को सुख अरत को दुःख—

२४२. देवलोगसमाणो उ, परियाओ महेसिणं ।
रयाणं अरयाणं तु, महानिरयसारिसो ॥

२४२. संयम में रत महर्षियों के लिए मुनि-पर्याय देवलोक के समान सुखद होता है और जो संयम में रत नहीं होते उनके लिए वही (मुनि-पर्याय) महानरक के समान दुःखद होता है ।

अमरोवमं जाणिय सोक्खमुत्तमं,
रयाण परियाए तहारयाणं ।
निरओवमं जाणिय दुक्खमुत्तमं,
रमेज्ज तम्हा परियाय पंडिए ॥

—दस. चू. १, गा. १०-११

संयम में रत मुनियों का सुख देवों के समान उत्तम (उत्कृष्ट) जानकर तथा संयम में रत न रहने वाले मुनियों का दुःख नरक के समान उत्तम (उत्कृष्ट) जानकर पण्डित मुनि संयम में ही रमण करे ।

अथिर समणस्स ठिइहेउ चिंतणं—

संयम में अस्थिर श्रमण की स्थिरता हेतु चिन्तन—

२४३. इमस्स ता नेरइयस्स जंतुणो,
दुहोवणीयस्स किलेसवत्तिणो ।
पलिओवमं झिज्जइ सागरोवमं,
किमंग पुण मज्झ इमं मणोदुहं ॥

२४३. दुःख से युक्त और क्लेशमय जीवन बिताने वाले इन नारकीय जीवों की पल्योपम और सागरोपम आयु भी समाप्त हो जाती है तो फिर वह मेरा मनोदुःख कितने काल का है ?

न मे चिरं दुक्खमिणं भविस्सई,
असासया भोगपिवास जंतुणो ।
न चे सरीरेण इमेणवेस्सई,
अविस्सई जीवियपज्जवेण मे ॥

यह मेरा दुःख चिरकाल तक नहीं रहेगा । जीवों की भोग-पिपासा अशाश्वत है । यदि वह इस शरीर के होते हुए न मिटी तो मेरे जीवन की समाप्ति के समय तो अवश्य मिट ही जायगी ।

जस्सेवमप्पा उ हवेज्ज निच्छिओ,
चएज्ज देहं न उ धम्मसासणं ।
तं तारिसं नो पयलेंति इंदिया,
उवेंतवाया व सुदंसणं गिरिं ॥

जिसकी आत्मा इस प्रकार निश्चित होती है (दृढ़ संकल्पयुक्त होती है)—"देह को त्याग देना चाहिए पर धर्मशासन को नहीं छोड़ना चाहिए"—उस दृढ़-प्रतिज्ञ साधु को इन्द्रियाँ उसी प्रकार विचलित नहीं कर सकतीं जिस प्रकार वेगपूर्ण गति से आता हुआ महावायु सुदर्शन गिरि को ।

इच्चेव संपस्सिय बुद्धिमं नरो,
आयं उवायं विविहं वियाणिया ।
काएण वाया अदु माणसेणं,
तिगुत्तिगुत्तो जिणवयणमहिट्ठिज्जासि ॥

—दस. चू. १, गा. १५-१८

बुद्धिमान मनुष्य इस प्रकार सम्यक् आलोचना कर तथा विविध प्रकार के लाभ और उनके साधनों को जानकर तीन गुप्तियों (काय, वाणी और मन) से गुप्त होकर जिनवाणी का आश्रय ले ।

इह खलु भो ! पव्वइएणं, उप्पन्नदुक्खेणं, संजमे अरइसमावन्न-चित्तेणं, ओहाणुप्पेहिणा अणोहाइएणं चेव, हयरस्सि-गयंकुस-पोयपडागाभूयाइं इमाइं अट्ठारस ठाणाइं सम्मं संपडिलेहियव्वाइं भवंति । तं जहा —

मुमुक्षुओ ! निर्ग्रन्थ-प्रवचन में जो प्रव्रजित है किन्तु उसे मोहवश दुःख उत्पन्न हो गया, संयम में उसका चित्त अरति-युक्त हो गया, वह संयम को छोड़ गृहस्थाश्रम में चला जाना चाहता है, उसे संयम छोड़ने से पूर्व अठारह स्थानों का भलीभाँति आलोचन करना चाहिए। अस्थितात्मा के लिए इनका वही स्थान है जो अश्व के लिए लगाम, हाथी के लिए अंकुश और पोत के लिए पताका का है। अठारह स्थान इस प्रकार हैं, यथा—

१. हं भो ! दुस्समाए दुप्पजीवी ।

(१) ओह ! इस दुष्षमा (दुःख-बहुल पाँचवें आरे) में लोग बड़ी कठिनाई से जीविका चलाते हैं।

२. लहुस्सगा इत्तरिया गिहीणं कामभोगा ।

(२) गृहस्थों के काम-भोग स्वल्प-सारसहित (तुच्छ) और अल्पकालिक हैं।

३. भुज्जो य साइबहुला मणुस्सा ।

(३) मनुष्य प्रायः माया बहुल होते हैं।

४. इमे य मे दुक्खे न चिरकालोवट्ठाई भविस्सइ ।

(४) यह मेरा परीषह-जनित दुःख चिरकाल स्थायी नहीं होगा।

५. ओमजणपुरक्कारे ।

(५) गृहवासी को नीच जनों का पुरस्कार करना होता है—सत्कार करना होता है।

६. वंतस्स य पडियाइयणं ।

(६) संयम को छोड़ घर में जाने का अर्थ है वमन को वापस पीना।

७. अहरगइवासोवसंपया ।

(७) संयम को छोड़ गृहवास में जाने का अर्थ है नारकीय-जीवन का अंगीकार।

८. दुल्लभे खलु भो ! गिहीणं धम्मे गिहिवासमज्झे वसंताणं ।

(८) ओह ! गृहवास में रहते हुए गृहियों के लिए धर्म का स्पर्श निश्चय दुर्लभ है।

९. आयंके से वहाय होइ ।

(९) वहाँ आतंक वध के लिए होता है।

१०. संकप्पे से वहाय होइ ।

(१०) वहाँ संकल्प वध के लिए होता है।

११. सोवक्केसे गिहवासे । निरुवक्केसे परियाए ।

(११) गृहवास क्लेश सहित है और मुनि-पर्याय क्लेश-रहित।

१२. बंधे गिहवासे । मोक्खे परियाए ।

(१२) गृहवास बन्धन है और मुनि पर्याय मोक्ष।

१३. सावज्जे गिहवासे । अणवज्जे परियाए ।

(१३) गृहवास सावद्य है और मुनि पर्याय अनवद्य।

१४. बहुसाहारणा गिहीणं कामभोगा ।

(१४) गृहस्थों के काम-भोग बहुजन सामान्य है—सर्व सुलभ हैं।

१५. पत्तेयं पुण्णपावं ।

(१५) पुण्य और पाप अपना-अपना होता है।

१६. अणिच्चे खलु भो ! मणुयाण जीविए कुसग्गजलबिंदुचंचले ।

(१६) ओह ! मनुष्यों का जीवन अनित्य है, कुश के अग्र-भाग पर स्थित जल-बिन्दु के समान चंचल है।

१७. बहुं च खलु पावं कम्मं पगडं ।।

(१७) ओह ! इससे पूर्व बहुत ही मैंने पाप-कर्म किये हैं।

१८. पावाणं च खलु भो ! कडाणं कम्माणं पुव्विं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिकंताणं वेयइत्ता मोक्खो, नत्थि अवेयइत्ता, तवसा वा झोसइत्ता ।

(१८) ओह ! दुश्चरित्र और दुष्ट-पराक्रम के द्वारा पूर्वकाल में अर्जित किये हुए पाप-कर्मों को भोग लेने पर अथवा तप के द्वारा उनका क्षय कर देने पर ही मोक्ष होता है—उनसे छुटकारा होता है। उन्हें भोगे बिना (अथवा तप के द्वारा उनका क्षय किए बिना) मोक्ष नहीं होता—उनसे छुटकारा नहीं होता।

अट्ठारसमं पयं भवइ । —दस. चू. १, सु. १

यह अठारहवाँ पद है।

मिच्छादंसणविजओ फलं—

२४४. प०—पेज्ज-दोस-मिच्छादंसणविजएणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—पेज्ज-दोस-मिच्छादंसणविजएणं नाण-दंसण-चरित्ताराहणयाए अब्भुट्ठेइ। "अट्ठविहस्स कम्मस्स कम्मगण्ठि-विमोयणाए" तप्पढमयाए जहाणुपुव्वि अट्ठवीसइविहं मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ, पंचविहं नाणावरणिज्जं नव-दंसणावरणिज्जं पंचविहं अन्तरायं एए तिन्नि वि कम्मंसे जुगवं खवेइ।

तओ पच्छा अणुत्तरं अणंतं कसिणं पडिपुण्णं निरावरणं वितिमिरं विसुद्धं लोगालोगप्पभावगं केवल-वरनाण-दंसणं समुप्पाडेइ।

-जाव-सजोगी भवइ, ताव य इरियावहियं कम्मं बन्धइ सुहफरिसं दुसमयट्ठिइयं।

तं पढमसमए बद्धं, बिइयसमए वेइयं, तइयसमए निज्जिण्णं तं बद्धं पुट्ठं उदीरियं वेइयं निज्जिण्णं सेयाले य अकम्मं चावि भवइ॥

अहाउयं पालइत्ता अन्तोमुहुत्तद्धावसेसाउए जोगनिरोहं करेमाणे सुहुमकिरियं अप्पडिवाइ सुक्कज्झाणं झायमाणे तप्पढमयाए "मणजोगं निरुम्भइ निरुम्भित्ता, वइजोगं निरुम्भइ निरुम्भित्ता, कायजोगं निरुम्भइ निरुम्भित्ता आणापाणुनिरोहं" करेइ करित्ता ईसि पंचहस्सक्खरुच्चारणद्धाए य णं अणगारे समुच्छिन्नकिरियं अनियट्टि-सुक्कज्झाणं झियायमाणे वेयणिज्जं, आउयं, नामं, गोत्तं च एए चत्तारि वि कम्मंसे जुगवं खवेइ।

तओ ओरालियकम्माइं च सव्वाहिं विप्पजहणाहिं विप्पजहित्ता उज्जुसेढिपत्ते अफुसमाणगई उड्ढं एगसमएणं अविग्गहेणं तत्थ गन्ता सागारोवउत्ते सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाएइ सव्वदुक्खाणमन्तं करेइ।

—उत्त. अ. २९, सु. ७२-७५

मिथ्यादर्शन विजय का फल—

२४४. प्र०—भन्ते ! प्रेम, द्वेष और मिथ्या-दर्शन के विजय से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—प्रेम, द्वेष और मिथ्या-दर्शन के विजय से वह ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना के लिए उद्यत होता है। आठ कर्मों में जो कर्मग्रन्थि (घात्य-कर्म) है, उसे खोलने के लिए वह उद्यत होता है। वह जिसे पहले कभी भी पूर्णतः क्षीण नहीं कर पाया उस अट्ठाईस प्रकार वाले मोहनीय कर्म को क्रमशः सर्वथा क्षीण करता है, फिर वह पाँच प्रकार वाले ज्ञानावरणीय, नौ प्रकार वाले दर्शनावरणीय और पाँच प्रकार वाले अन्तराय—इन तीनों विद्यमान कर्मों को एक साथ क्षीण करता है।

उसके पश्चात् वह अनुत्तर, अनन्त, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण, निरावरण तिमिर रहित, विशुद्ध लोक और अलोक को प्रकाशित करने वाले केवलज्ञान और केवलदर्शन को उत्पन्न करता है।

जब तक वह सयोगी होता है तब तक उसके ईर्या-पथिक-कर्म का बन्ध होता है। बन्ध सुख-स्पर्श (पुण्य-मय) होता है। उसकी स्थिति दो समय की होती है।

प्रथम समय में बन्ध होता, द्वितीय समय में वेदा जाता है और तीसरे समय में वह निर्जीर्ण हो जाता है। वह कर्म बद्ध होता है, स्पृष्ट होता है, उदय में आता है, भोगा जाता है, नष्ट हो जाता है और अन्त में अकर्म भी हो जाता है।

केवली होने के पश्चात् वह शेष आयुष्य का निर्वाह करता है। जब अन्तरमुहूर्त परिमाण आयु शेष रहती है, वह योग-निरोध करने में प्रवृत्त हो जाता है। उस समय सूक्ष्म-क्रिय अप्रतिपाति नामक शुक्लध्यान में लीन बना हुआ वह सबसे पहले मनो-योग का निरोध करता है, फिर वचनयोग का निरोध करता, फिर काययोग निरोध करता है, उसके पश्चात् आनापान (उच्छ्वास-निश्वास) का निरोध करता है, उसके पश्चात् स्वल्पकाल तक पाँच ह्रस्वाक्षरों (अ इ उ ऋ लृ) का उच्चारण किया जाये उतने काल तक समुच्छिन्न-क्रियाअनिवृत्ति नामक शुक्लध्यान में लीन बना हुआ अनगार वेदनीय आयुष्य, नाम और गोत्र—इन चार कर्मों को एक साथ क्षीण करता है।

उसके बाद वह औदारिक और कार्मण शरीर को सदा के लिए सर्वथा परित्याग कर देता है। सम्पूर्णरूप से इन शरीरों से रहित होकर वह ऋजुश्रेणी को प्राप्त होता है और एक समय में अस्पृशद्गतिरूप ऊर्ध्वगति से बिना मोड़ लिए (अविग्रह रूप से) सीधे वहाँ (लोकाग्र में) जाकर साकारोपयोगयुक्त (ज्ञानोपयोगी अवस्था में) सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है और समस्त दुःखों का अन्त कर देता है।

चउण्हं अण्ण उत्थियसद्दहण-णिरसणं—

२४५. इह खलु पाईणं वा पडीणं वा उदीणं वा दाहिणं वा संति एगतिया मणुस्सा भवंति अणुपुव्वेण लोगं तं उववन्ना,

तं जहा—आरिया वेगे, अणारिया वेगे, उच्चागोया वेगे णीया-गोया वेगे, कायंता वेगे हुस्समंता वेगे, सुवण्णा वेगे दुवण्णा वेगे, सुरूवा वेगे दुरूवा वेगे।

तेसिं च णं महं एगे राया भवति
महाहिमवंतमलयमंदरमहिंदसारे अच्चंतविसुद्धरायकुलवंसप्पसूते निरंतररायलक्खणविरातियंगमंगे बहुजणबहुमाणपूजिते सव्व-गुणसमिद्धे खत्तिए मुदिए मुद्धाभिसित्ते,

माउं पिउं सुजाए
दयपत्ते सीमंकरे सीमंधरे खेमंकरे खेमंधरे
मणुस्सिंदे जणवयपिया जणवयपुरोहिते सेउकरे केउकरे

णरपवरे पुरिसवरे पुरिससीहे पुरिसआसीविसे पुरिसवरपोंड-रीए पुरिसवरगंधहत्थी
अड्ढे दित्ते वित्ते विच्छिण्णविउलभवण-सयणासण-जाण-वाहणाइण्णे

चार अन्यतीर्थियों की श्रद्धा का निरसन—

२४५. (श्रमण भगवान् महावीर कहते हैं—) इस मनुष्य लोक में पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं में उत्पन्न कई प्रकार के मनुष्य होते हैं,

जैसे कि—उन मनुष्यों में कई आर्य (क्षेत्रार्य आदि) होते हैं, अथवा कई अनार्य (धर्म से दूर, पापी, निर्दय, निरनुकम्प, क्रोधमूर्ति, असंस्कारी) होते हैं, कई उच्चगोत्रीय होते हैं, कई नीचगोत्रीय। उनमें से कोई भीमकाय (लम्बे और सुदृढ़ शरीर वाले) होते हैं। कई ठिगने कद के होते हैं। कोई (सोने की तरह) सुन्दर वर्ण वाले होते हैं, तो कोई बुरे (काले कलूट) वर्ण वाले। कोई सुरूप (सुन्दर अंगोपांगों से युक्त) होते हैं तो कोई कुरूप (बेडौल, अपंग) होते हैं।

उन मनुष्यों में (विलक्षण कर्मोदय से) कोई एक राजा होता है। वह (राजा) महान् हिमवान्, मलयाचल, मन्दराचल तथा महेन्द्र पर्वत के समान सामर्थ्यवान् अथवा वैभववान होता है। वह अत्यन्त विशुद्ध राजकुल के वंश में जन्मा हुआ होता है। उसके अंग राजलक्षणों से सुशोभित होते हैं। उसकी पूजा प्रतिष्ठा अनेक जनों द्वारा बहुमानपूर्वक की जाती है, वह गुणों से समृद्ध होता है, वह क्षत्रिय (पीड़ित प्राणियों का त्राता-रक्षक) होता है। वह सदा प्रसन्न रहता है। वह राजा राज्याभिषेक किया हुआ होता है।

वह अपने माता-पिता का सुपुत्र (अंगजात) होता है। उसे दया प्रिय होती है। वह सीमंकर (जनता की सुव्यवस्था के लिए सीमा—नैतिक धार्मिक मर्यादा स्थापित करने वाला) तथा सीमंधर (स्वयं उस मर्यादा का पालन करने वाला) होता है। वह क्षेमंकर (जनता का कुशल-क्षेम करने वाला) तथा क्षेमन्धर (प्राप्त योग क्षेम का वहन-रक्षण करने वाला) होता है। वह मनुष्यों में इन्द्र, जनपद (देश या प्रान्त) का पिता, और जनपद का पुरोहित (शांतिरक्षक) होता है। वह अपने राज्य या राष्ट्र की सुख-शांति के लिए सेतुकर (नदी, नहर, पुल, बाँध आदि का निर्माण कराने वाला) और केतुकर (भूमि, खेत, बगीचे आदि की व्यवस्था करने वाला) होता है।

वह मनुष्यों में श्रेष्ठ, पुरुषों में वरिष्ठ, पुरुषों में सिंहसम, पुरुषों में आसीविष सर्प समान, पुरुषों में श्रेष्ठ पुण्डरीक तुल्य, पुरुषों में श्रेष्ठ मत्तगन्धहस्ती के समान होता है। वह अत्यन्त धनाढ्य, दीप्तिवान (तेजस्वी) एवं प्रसिद्ध पुरुष होता है। उसके पास विशाल विपुल भवन, शैय्या, आसन, यान (विविध पालकी आदि) तथा वाहन (घोड़ा-गाड़ी, रथ आदि सवारियाँ एवं हाथी, घोड़े आदि) की प्रचुरता रहती है।

बहुधणबहुजातरूव-रयए
आओगपओगसंपउत्ते
विच्छड्डियपउरभत्त-पाणे
बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलगप्पभूते
पडिपुण्णकोस-कोट्ठागाराउहधरे

उसके कोष (खजाने) प्रचुर धन, सोना, चाँदी आदि से भरे रहते हैं। उसके यहाँ से बहुत-से लोगों को पर्याप्त मात्रा में भोजन पानी दिया जाता है। उसके यहाँ बहुत से दास-दासी, गाय, बैल, भैंस, बकरी आदि पशु रहते हैं। उसके धान्य का कोठार अन्न से, धन के कोश (खजाने) प्रचुर द्रव्य से और आयुधागार विविध शस्त्रास्त्रों से भरा रहता है।

बलवं दुब्बलपच्चामित्ते
ओहयकंटकं निहयकंटकं मलियकंटकं उद्धियकंटकं अकंटयं
ओहयसत्तू निहयसत्तू उद्धियसत्तू निज्जियसत्तू पराइयसत्तू
ववगयदुब्भिक्खमारिभयविप्पमुक्कं,

वह शक्तिशाली होता है। वह अपने शत्रुओं को दुर्बल बनाए रखता है। उसके राज्य में कंटक—चोरों, व्यभिचारियों, लुटेरों तथा उपद्रवियों एवं दुष्टों का नाश कर दिया जाता है, उनका मानमर्दन कर दिया जाता है, उन्हें कुचल दिया जाता है, उनके पैर उखाड़ दिये जाते हैं, जिससे उसका राज्य निष्कण्टक (चोर आदि दुष्टों से रहित) हो जाता है। उसके राज्य पर आक्रमण करने वाले शत्रुओं को नष्ट कर दिया जाता है, उन्हें खदेड़ दिया जाता है, उनका मानमर्दन कर दिया जाता है, अथवा उनके पैर उखाड़ दिये जाते हैं, उन शत्रुओं को जीत लिया जाता है, उन्हें हरा दिया जाता है। उसका राज्य दुर्भिक्ष और महामारी आदि के भय से विमुक्त हो जाता है।

रायवण्णओ जहा उववाइए—जाव—पसंतडिंबडमरं रज्जं पसासेमाणे विहरति।

(यहाँ से लेकर) "जिसमें स्वचक्र-परचक्र का भय शान्त हो गया है, ऐसे राज्य का प्रशासन-पालन करता हुआ वह राजा विचरण करता है," (यहाँ तक का पाठ औपपातिक सूत्र में वर्णित पाठ की तरह समझ लेना चाहिए।)

तस्स णं रण्णो परिसा भवति—
उग्गा उग्गपुत्ता भोगा भोगपुत्ता इक्खागा इक्खागपुत्ता नाया नायपुत्ता
कोरव्वा कोरव्वपुत्ता भट्टा भट्टपुत्ता माहणा माहणपुत्ता
लेच्छई लेच्छइपुत्ता पसत्थारो पसत्थपुत्ता सेणावती सेणावतीपुत्ता।

उस राजा की परिषद् (सभा) होती है। उसके सभासद ये होते हैं—उग्रकुल में उत्पन्न उग्रपुत्र, भोगकुल में जन्मे भोगपुत्र, इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न तथा इक्ष्वाकुपुत्र, ज्ञातकुल में उत्पन्न ज्ञातपुत्र, कुरुकुल में उत्पन्न—कौरव, तथा कौरवपुत्र, सुभटकुल में उत्पन्न तथा सुभटपुत्र, ब्राह्मणकुल में उत्पन्न तथा ब्राह्मणपुत्र, लिच्छवी नामक क्षत्रियकुल में उत्पन्न तथा लिच्छवीपुत्र, प्रशास्तागण (मन्त्री आदि बुद्धिजीवी वर्ग) तथा प्रशास्तापुत्र (मन्त्री आदि के पुत्र) सेनापति और सेनापति पुत्र।

पढमं तज्जीवतच्छरीरवाइएसद्दहण णिरसणं—

२४६. तेसिं च णं एगतिए सड्ढी, कामं तं समणा य माहणा य पहारेंसु गमणाए,
तत्थऽन्नतरेणं धम्मेणं पण्णत्तारो वयमेतेणं धम्मेणं पण्णवइस्सामो,

से एवमायाणह भयंतारो जहा मे एस धम्मे सुयक्खाते सुपण्णत्ते भवति।

—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६४५-६४७

प्रथम तज्जीव-तत्शरीरवादी की श्रद्धा का निरसन—

२४६. इनमें से कोई एक धर्म में श्रद्धालु होता है। उस धर्म श्रद्धालु के पास श्रमण या ब्राह्मण (माहन) धर्म की प्राप्ति की इच्छा से जाने का निश्चय (निर्धारण) करते हैं। किसी एक धर्म की शिक्षा देने वाले वे श्रमण और ब्राह्मण यह निश्चय करते हैं कि हम इस धर्मश्रद्धालु पुरुष के समक्ष अपने इस (अभीष्ट) धर्म की प्ररूपणा करेंगे।

वे उस धर्मश्रद्धालु पुरुष के पास जाकर कहते हैं—"हे संसार भीरु धर्मप्रेमी! अथवा भय से जनता के रक्षक महाराज! मैं जो भी उत्तम धर्म की शिक्षा आपको दे रहा हूँ उसे ही आप पूर्वपुरुषों द्वारा सम्यक् प्रकार से कथित और सुप्रज्ञप्त (सत्य) समझें।"

तं जहा—उड्ढं पादतला अहे केसग्गमत्थया तिरियं तयपरियंते जीवे,
एस आयपज्जवे कसिणे,
एस जीवे जीवति, एस मए णो जीवति, सरीरे चरमाणे चरति, विणट्ठम्मि य णो चरति,
एतं तं जीवितं भवति.

वह धर्म इस प्रकार है– पादतल (पैरों के तलवे) से ऊपर और मस्तक के केशों के अग्रभाग से नीचे तक तथा तिरछा—चमड़ी तक जो शरीर है, वही जीव है। यह शरीर ही जीव का समस्त पर्याय (अवस्था विशेष अथवा पर्यायवाची शब्द) है। (क्योंकि) इस शरीर के जीने तक ही यह जीव जीता रहता है, शरीर के मर जाने पर यह नहीं जीता, शरीर के स्थित (टिके) रहने तक ही यह जीव स्थित रहता है और शरीर के नष्ट हो जाने पर नष्ट हो जाता है। इसलिए जब तक शरीर है, तभी तक यह जीवन (जीव) है।

आदहणाए परेहिं णिज्जति,
अगणिझामिते सरीरे कवोत-वण्णाणि अट्ठीणी भवंति,
आसंदीपंचमा पुरिसा गामं पच्चागच्छंति।
एवं असतोअसंविज्जमाणे।[1]

शरीर जब मर जाता है तब दूसरे लोग जलाने के लिए ले जाते हैं, आग से शरीर के जल जाने पर हड्डियां कपोत वर्ण (कबूतरी रंग) की हो जाती है। इसके पश्चात् मृत व्यक्ति को श्मशान भूमि में पहुँचाने वाले जघन्य (कम से कम) चार पुरुष मृत शरीर को ढोने वाली मंचिका (अर्थी) को लेकर अपने गाँव में लौट आते हैं। ऐसी स्थिति में यह स्पष्ट हो जाता है कि शरीर से भिन्न कोई जीव नामक पदार्थ नहीं है, क्योंकि वह शरीर से भिन्न प्रतीत नहीं होता। (अत: जो लोग शरीर से भिन्न जीव का अस्तित्व नहीं मानते, उनका यह पूर्वोक्त सिद्धांत ही युक्तियुक्त समझना चाहिए।)

जेसिं तं सुयक्खाय भवति—"अन्नो भवति जीवो अन्नं सरीरं" तम्हा ते एवं नो विप्पडिवेवेंति—

जो लोग युक्तिपूर्वक यह प्रतिपादन करते हैं कि 'जीव पृथक् है और शरीर पृथक् है," वे इस प्रकार (जीव और शरीर को) पृथक्-पृथक् करके नहीं बता सकते कि—

अयमाउसो! आता दीहे ति वा हस्से ति वा परिमंडले ति वा वट्टे ति वा तंसे ति वा चउरंसे ति वा छलंसे ति वा अट्ठंसे ति वा आयते ति वा,
कण्हे ति वा णीले ति वा लोहिते ति वा हालिद्दे ति वा सुब्भिगंधे ति वा दुब्भिगंधे ति वा तित्ते ति वा कडुए ति वा कसाए ति वा अंबिले ति वा महुरे ति वा कक्खडे ति वा मउए ति वा गरुए ति वा लहुए ति वा सिते ति वा उसिणे ति वा णिद्धे ति वा लुक्खे ति वा।

यह आत्मा दीर्घ (लम्बा) है, यह ह्रस्व (छोटा या ठिगना) है, यह चन्द्रमा के समान परिमण्डलाकार है, अथवा गेंद की तरह गोल है, यह त्रिकोण है, या चतुष्कोण है, या यह षट्कोण या अष्टकोण है, यह आयत (चौड़ा) है, यह काला है अथवा नीला है, यह लाल है या पीला है या श्वेत है, यह सुगन्धित है या दुर्गन्धित, यह तिक्त (तीखा) है या कड़वा अथवा कसैला, खट्टा या मीठा है, अथवा यह कर्कश है या कोमल है अथवा भारी (गुरु) है या हलका (लघु) अथवा शीतल है या उष्ण है, स्निग्ध है अथवा रूक्ष है।

एवमसतो असंविज्जमाणे।

इसलिए जो लोग जीव को शरीर से भिन्न नहीं मानते, उनका मत ही युक्ति संगत है।

जेसिं तं सुयक्खायं भवति "अन्नो जीवो अन्नं सरीरं", तम्हा ते णो एवं उवलभंति—

जिन लोगों का यह कथन है कि जीव अन्य है, और शरीर अन्य है, वे इस प्रकार से जीव को उपलब्ध (प्राप्त) नहीं करा पाते—

---

१ पत्तेयं कसिणे आया जे बाला जे य पंडिता, संति पेच्चा ण ते संति णत्थि सत्तोववातिया।
णत्थि पुण्णे व पावे वा णत्थि लोए इतो परे, सरीरस्स विणासेणं विणासो होति देहिणो॥
—सूय. सु. १, अ. १, उ. १, गा. ११-१२

से जहानामए केइ पुरिसे कोसीतो असिं अभिनिव्वट्टित्ताणं उवदंसेज्जा—अयमाउसो ! असी, अयं कोसीए,
एवमेव णत्थि केइ अभिनिव्वट्टित्ताणं उवदंसेति—अयमाउसो ! आता अयं सरीरे।

जैसे—कि कोई व्यक्ति म्यान से तलवार को बाहर निकाल कर दिखलाता हुआ कहता है—"आयुष्मान् ! यह तलवार है, और यह म्यान है।" इसी प्रकार कोई पुरुष ऐसा नहीं है, जो शरीर से जीव को पृथक् करके दिखला सके कि "आयुष्मान् ! यह तो आत्मा है और यह (उससे भिन्न) शरीर है।"

से जहाणामए केइ पुरिसे मुंजाओ इसीयं अभिनिव्वट्टित्ताणं उवदंसेज्जा—
अयमाउसो ! मुंजो, अयं इसीया,
एवामेव नत्थि केति उवदंसेत्तारो अयमाउसो ! आता इदं सरीरे।

जैसे कि कोई पुरुष मुंज नामक घास से इषिका (कोमल स्पर्श वाली शलाका) को बाहर निकाल कर अलग-अलग बतला देता है कि "आयुष्मन् ! यह तो मुंज है और यह इषिका है।" इसी प्रकार ऐसा कोई उपदर्शक पुरुष नहीं है, जो यह बता सके कि "आयुष्मान् ! यह आत्मा है और यह (उससे पृथक्) शरीर है।"

से जहाणामए केति पुरिसे मंसाओ अट्ठिं अभिनिव्वट्टित्ताणं उवदंसेज्जा—
अयमाउसो ! मंसे, अयं अट्ठी,
एवामेव नत्थि केति उवदंसेत्तारो—अयमाउसो ! आया, इदं सरीरं।

जैसे कोई पुरुष मांस से हड्डी को अलग-अलग करके बतला देता है कि "आयुष्मान् ! यह मांस और यह हड्डी है।" इसी तरह कोई ऐसा उपदर्शक पुरुष नहीं है, जो शरीर से आत्मा को अलग करके दिखला दे कि "आयुष्मान् ! यह तो आत्मा है और यह शरीर है।"

से जहानामए केति पुरिसे करतलाओ आमलकं अभिनिव्वट्टित्ताणं उवदंसेज्जा—
अयमाउसो ! करतले, अयं आमलए,
एवामेव णत्थि केति उवदंसेत्तारो—अयमाउसो ! आया, इयं सरीरं।

जैसे कोई पुरुष हथेली से आंवले को बाहर निकालकर दिखला देता है कि "आयुष्मान् ! यह हथेली (करतल) है, और यह आंवला है।" इसी प्रकार कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो शरीर से आत्मा को पृथक् करके दिखा दे कि "आयुष्मान् ! यह आत्मा है, और यह (उससे पृथक्) शरीर है।"

से जहाणामए केइ पुरिसे दहीओ णवणीयं अभिनिव्वट्टित्ताणं उवदंसेज्जा—
अयमाउसो ! नवनीतं, अयं दही,
एवामेव नत्थि केति उवदंसेत्तारो जाव सरीरं।

जैसे कोई पुरुष दही से नवनीत (मक्खन) को अलग निकाल कर दिखला देता है कि "आयुष्मन् ! यह नवनीत है और यह दही है।" इस प्रकार कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जो शरीर से आत्मा को पृथक् करके दिखला दे कि "आयुष्मान् ! यह तो आत्मा है और यह शरीर है।"

से जहानामए केति पुरिसे तिलेहिंतो तेल्लं अभिनिव्वट्टित्ताणं उवदंसेज्जा—
अयमाउसो ! तेल्ले, अयं पिण्णाए,
एवामेव-जाव-सरीरं।

जैसे कोई पुरुष तिलों से तेल निकालकर प्रत्यक्ष दिखला देता है कि "आयुष्मन् ! यह तो तेल है और यह उन तिलों की खली है," वैसे कोई पुरुष ऐसा नहीं है, जो शरीर को आत्मा से पृथक् करके दिखा सके कि "आयुष्मन् ! यह आत्मा है, और यह उससे भिन्न शरीर है।"

से जहानामए केइ पुरिसे उक्खूतो खोतरसं अभिनिव्वट्टित्ताणं उवदंसेज्जा—अयमाउसो ! खोतरसे, अयं चोए, एवमेव जाव-सरीरं।

जैसे कोई पुरुष ईख से उसका रस निकालकर दिखा देता है कि "आयुष्मन् ! यह ईख का रस है और यह उसका छिलका है," इसी प्रकार ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो शरीर और आत्मा को अलग-अलग करके दिखला दे कि "आयुष्मान् ! यह आत्मा है और यह शरीर है।"

से जहानामए केइ पुरिसे अरणीतो अग्गिं अभिनिव्वट्टित्ताणं उवदंसेज्जा—
अयमाउसो ! अरणी, अयं अग्गी,
एवामेव-जाव-सरीरं।

जैसे कि कोई पुरुष अरणि की लकड़ी से आग निकालकर प्रत्यक्ष दिखला देता है कि—"आयुष्मन् ! यह अरणि है और यह आग है," इसी प्रकार कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जो शरीर और आत्मा को पृथक् करके दिखला दे कि "आयुष्मन् ! यह आत्मा है और यह उससे भिन्न शरीर है।"

एवं असतो असंविज्जमाणे ।
जेसिं तं सुयक्खातं भवति तं जहा—"अन्नो जीवो अन्नं सरीरं" तम्हा तं मिच्छा ।
—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६४८-६५०

इसलिए आत्मा शरीर से पृथक् उपलब्ध नहीं होती, यही बात युक्तियुक्त है। इस प्रकार (विविध युक्तियों से आत्मा का अभाव सिद्ध होने पर भी) जो पृथगात्मवादी (स्वदर्शनानुरागवश) बार-बार प्रतिपादन करते हैं, कि आत्मा अलग है, शरीर अलग है, पूर्वोक्त कारणों से उनका कथन मिथ्या है।

से हंता

इस प्रकार शरीर से भिन्न आत्मा को न मानने वाले तज्जीव तच्छरीरवादी लोकायतिक आदि स्वयं जीवों का (निःसंकोच) हनन करते हैं, तथा (दूसरों को भी उपदेश देते हैं)—

हणह खणह छणह डहह पयह आलुंपह विलुंपह सहसक्कारेह विपरामुसह,

इन जीवों को मारो, यह पृथ्वी खोद डालो, यह वनस्पति काटो, इसे जला दो, इसे पकाओ, इन्हें लूट लो या इनका हरण कर लो। इन्हें काट दो या नष्ट कर दो, बिना सोचे विचारे सहसा वध कर डालो, इन्हें पीड़ित (हैरान) करो, इत्यादि।

एत्ताव ताव जीवे, णत्थि परलोए,

इतना (शरीरमात्र) ही जीव है, (परलोकगामी कोई जीव नहीं होने से) परलोक नहीं है।" (इसलिए यथेष्ट सुख भोग करो)।

ते णो एवं विप्पडिवेदेंति, तं जहा—किरिया इ वा अकिरिया इ वा, सुक्कडे ति वा दुक्कडे ति वा, कल्लाणे ति वा पावए ति वा, साहू ति वा असाहू ति वा, सिद्धि ति वा असिद्धि ति वा, निरए ति वा अनिरए ति वा ।
एवं ते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइं कामभोगाइं समारंभंति भोयणाए ।
—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६५१

वे शरीरात्मवादी आगे कही जाने वाली बातों को नहीं मानते जैसे कि—सत्क्रिया या असत्क्रिया, सुकृत या दुष्कृत, कल्याण (पुण्य) या पाप, भला या बुरा, सिद्धि या असिद्धि, नरक या स्वर्ग, आदि।

इस प्रकार वे शरीरात्मवादी अनेक प्रकार के कर्मसमारम्भ करके विविध प्रकार के काम-भोगों का सेवन (उपभोग) करते हैं अथवा विषयों का उपभोग करने के लिए विविध प्रकार के दुष्कृत्य करते हैं।

एवं एगे पागब्भिया निक्खम्म मामगं धम्मं पण्णवेंति ।

इस प्रकार शरीर से भिन्न आत्मा न मानने की धृष्टता करने वाले कोई नास्तिक अपने मतानुसार प्रव्रज्या धारण करके "मेरा ही धर्म सत्य है" ऐसी प्ररूपणा करते हैं।

तं सद्दहमाणा तं पत्तियमाणा तं रोएमाणा

इस शरीरात्मवाद में श्रद्धा रखते हुए, उस पर प्रतीति करते हुए, उसमें रुचि रखते हुए कोई राजा आदि उस शरीरात्मवादी से कहते हैं—

साधु सुयक्खाते समणे ति वा माहणे ति वा, कामं खलु आउसो ! तुमं पूययामो,
तं जहा—असणेण वा पाणेण वा खाइमेण वा साइमेण वा वत्थेण वा पडिग्गहेण वा कंबलेण वा पायपुंछणेण वा,

हे श्रमण या ब्राह्मण ! आपने हमें यह तज्जीव-तच्छरीरवाद रूप उत्तम धर्म बताकर बहुत ही अच्छा किया, हे आयुष्मन् ! (आपने हमारा उद्धार कर दिया) अतः हम आपकी पूजा (सत्कार सम्मान) करते हैं, जैसे कि—हम अशन पान, खाद्य, स्वाद्य अथवा वस्त्र, पात्र, कम्बल अथवा पाद-प्रोंछन आदि के द्वारा आपका सत्कार-सम्मान करते हैं।

तत्थेगे पूयणाए समाउट्टिंसु तत्थेगे पूयणाए निगामइंसु ।
—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६५२

यों कहते हुए कई राजा आदि उनकी पूजा में प्रवृत्त होते हैं, अथवा वे शरीरात्मवादी अपनी पूजा-प्रतिष्ठा में प्रवृत्त हो जाते हैं, और उन स्वमतस्वीकृत राजा आदि को अपनी पूजा-प्रतिष्ठा के लिए अपने मत-सिद्धान्त में दृढ़ (पक्के या कट्टर) कर देते हैं।

पुव्वामेव तेसिं णायं भवति—समणा भविस्सामो अणगारा अकिंचणा अपुत्ता अपसू परदत्तभोइणो भिक्खुणो पावं कम्मं णो करिस्सामो समुट्ठाए ते अप्पणा अप्पडिविरया भवंति, सयमाइयंति अन्ने वि आदियावेन्ति अन्नं पि आतियंतं समणुजाणंति,

इन शरीरात्मवादियों ने पहले तो यह प्रतिज्ञा की होती है कि "हम अनगार (घर-बार के त्यागी), अकिंचन (द्रव्यादि-रहित), अपुत्र (पुत्रादि के त्यागी), अपशु (पशु आदि के स्वामित्व से रहित), परदत्तभोजी (दूसरों के द्वारा दिये गए भिक्षान्न पर निर्वाह करने वाले) भिक्षु एवं श्रमण (शम सम एवं श्रम-तप की साधना करने वाले), बनेंगे, अब हम पाप कर्म (सावद्य कार्य) नहीं करेंगे," ऐसी प्रतिज्ञा के साथ वे स्वयं दीक्षा ग्रहण करके (प्रव्रजित होकर) भी पाप कर्मों (सावद्य आरम्भसमारम्भादि कार्यों) से विरत (निवृत्त) नहीं होते, वे स्वयं परिग्रह को ग्रहण (स्वीकार) करते हैं, दूसरे से ग्रहण कराते हैं और परिग्रह ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करते (अच्छा समझते) हैं।

एवामेव ते इत्थिकामभोगेहिं मुच्छिया गिद्धा गढिता अज्झोववण्णा लुद्धा रागदोसवसट्टा, ते णो अप्पाणं समुच्छेदेंति, नो परं समुच्छेदेंति, नो अण्णाइं पाणाइं भूताइं जीवाइं सत्ताइं समुच्छेदेंति,

इसीप्रकार वे स्त्री तथा अन्य कामभोगों में आसक्त (मूर्च्छित), गृद्ध, उनमें अत्यधिक इच्छा और लालसा से युक्त, लुब्ध (लोभी), राग-द्वेष के वशीभूत एवं आर्त्त (चिन्तातुर) रहते हैं। वे न तो अपनी आत्मा को संसार से या कर्म-पाश (बन्धन) से मुक्त कर पाते हैं, न वे दूसरों को मुक्त कर सकते हैं, और न अन्य प्राणियों, भूतों, जीवों और सत्वों को मुक्त कर सकते हैं।

पहीणा पुव्वसंजोगं, आयरियं मग्गं असंपत्ता, इति ते णो हव्वाए णो पाराए, अतरा कामभोगेसु विसण्णा।

वे (उक्त शरीरात्मवादी प्रथम असफल पुरुष के समान) अपने स्त्री-पुरुष, धन-धान्य आदि पूर्वसंयोग गृहावास या ज्ञाति-जनवास) से प्रभ्रष्ट (प्रहीन) हो चुके हैं, और आर्यमार्ग (सम्यग्-दर्शनादियुक्त मोक्षमार्ग) को नहीं पा सके हैं। अतः वे न तो इस लोक के होते हैं, और न ही परलोक के होते हैं (किन्तु उभयलोक के सदनुष्ठान से भ्रष्ट होकर (बीच में कामभोगों—(के कीचड़) में आसक्त हो (फँस) जाते हैं।

इति पढमे पुरिसज्जाते तज्जीव-तस्सरीरिए आहिते।

—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६५३

इस प्रकार प्रथम पुरुष तज्जीव-तच्छरीरवादी कहा गया है।

बि.यं पंचमहब्भूयवाइए सद्दहणणिरसणं—

द्वितीय पंच महाभूतवादी की श्रद्धा का निरसन—

२४७. अहावरे दोच्चे पुरिसज्जाते पंचमहब्भूतिए त्ति आहिज्जति।

२४७. पूर्वोक्त प्रथम पुरुष से भिन्न दूसरा पुरुष पंचमहाभूतिक कहलाता है।

इह खलु पाईणं वा—जाव—संतेगतीया मणुस्सा भवंति अणुपुव्वेणं लोयं उववण्णा, तं जहा—आरिया वेगे—जाव—दुरूवा वेगे। तेसिं च णं महं एगे राया भवती महया एवं चेव णिरवसेसं—जाव—सेणावतिपुत्ता।

इस मनुष्यलोक की पूर्व—यावत्—उत्तरदिशा में मनुष्य रहते हैं। वे क्रमशः नाना रूपों में मनुष्यलोक में उत्पन्न होते हैं, जैसे कि—कोई आर्य होते हैं, कोई अनार्य। कोई—यावत्—कुरूप आदि होते हैं। उन मनुष्यों में से कोई एक महान् पुरुष राजा होता है। वह राजा पूर्वसूत्रोक्त विशेषणों—महान् हिमवान आदि से युक्त होता है और उसकी राजपरिषद्—यावत्—सेनापति आदि से युक्त होती है।

तेसिं च णं एगतीए सड्ढी भवति, कामं तं समणा य माहणा य पहारिंसु गमणाए। तत्थऽण्णतरेणं धम्मेणं पन्नत्तारो वयमिमेणं धम्मेणं पन्नवइस्सामो,

उन सभासदों में से कोई पुरुष धर्मश्रद्धालु होता है। वे श्रमण और माहन उसके पास जाने का निश्चय करते हैं। वे किसी एक धर्म की शिक्षा देने वाले अन्यतीर्थिक श्रमण और माहन (ब्राह्मण) राजा आदि से कहते हैं—"हम आपको उत्तम धर्म की शिक्षा देंगे।"

से एवमायाणह भयंतारो ! जहा मे एस धम्मे सुअक्खाए सुपण्णत्ते भवति ।

इसके पश्चात् वे कहते हैं—"हे भयत्राताओ ! प्रजा के भय का अन्त करने वालो ! मैं जो भी आपको उत्तम धर्म का उपदेश दे रहा हूँ, वही पूर्व पुरुषों द्वारा सम्यक् प्रकार से कथित और सुप्रज्ञप्त (सत्य) है ।"

इह खलु पंच महब्भूता जेहिं नो कज्जति किरिया ति वा अकिरिया ति वा, सुकडे ति वा दुक्कडे ति वा कल्लाणे ति वा पावए ति वा साहु ति वा असाहु ति वा, सिद्धी ति वा असिद्धी ति वा णिरए ति वा अणिरए ति वा अवि यंतसो तणमात-मवि ।

इस जगत में पंच महाभूत ही सब कुछ हैं । जिनसे हमारी क्रिया या अक्रिया, सुकृत अथवा दुष्कृत, कल्याण या पाप, अच्छा या बुरा, सिद्धि या असिद्धि, नरकगति या नरक के अतिरिक्त अन्य गति; अधिक कहां तक कहें, तिनके के हिलने जैसी क्रिया भी (इन्हीं पंचमहाभूतों) से होती है ।

तं च पदुद्देसेणं पुढोभूतसमवातं जाणेज्जा, तं जहा—

उस भूत-समवाय (समूह) को पृथक्-पृथक् नाम से जानना चाहिए । जैसे कि—

पुढवी एगे महब्भूते, आऊ दोच्चे महब्भूते, तेऊ तच्चे महब्भूते, वाऊ चउत्थे महब्भूते, आगासे पंचमे महब्भूते ।

पृथ्वी एक महाभूत है, जल दूसरा महाभूत है, तेज (अग्नि) तीसरा महाभूत है, वायु चौथा महाभूत है और आकाश पाँचवां महाभूत है ।

इच्चेते पंच महब्भूता अणिम्मिता अणिम्मेया अकडा णो कित्तिमा णो कडगा अणादिया अणिधणा अवंझा अपुरोहिता सतंता सासता ।

ये पांच महाभूत किसी कर्ता के द्वारा निर्मित (बनाये हुए) नहीं हैं, न ही ये किसी कर्ता द्वारा बनवाए हुए (निर्मापित) हैं, ये किये हुए (कृत) नहीं हैं, न ही ये कृत्रिम (बनावटी) हैं, और न ये अपनी उत्पत्ति के लिए किसी की अपेक्षा रखते हैं । ये पाँचों महाभूत आदि एवं अन्त रहित हैं तथा अवन्ध्य—अवश्य कार्य करने वाले हैं । इन्हें कार्य में प्रवृत्त करने वाला कोई दूसरा पदार्थ नहीं है, ये स्वतन्त्र एवं शाश्वत (नित्य) हैं ।

आयछट्ठा पुण एगे, एवमाहु—

कोई (सांख्यवादी) पंचमहाभूत और छठे आत्मा को मानते हैं । वे इस प्रकार कहते हैं कि—

सतो णत्थि विणासो, असतो णत्थि संभवो ।

एताव ताव जीवकाए, एताव ताव अत्थिकाए, एताव ताव सव्वलोए, एतं मुहं लोगस्स कारणयाए, अवि यंतसो तणमातमवि ।

सत् का विनाश नहीं होता और असत् की उत्पत्ति नहीं होती । (वे पंचमहाभूतवादी कहते हैं—) "इतना ही (यही) जीव काय है, इतना ही (पंचभूतों का अस्तित्वमात्र ही) अस्तिकाय है, इतना ही (पंचमहाभूतरूप ही) समग्र जीव लोक है । ये पंच-महाभूत ही लोक के प्रमुख कारण (समस्त कार्यों में व्याप्त) हैं, यहाँ तक कि तृण का कम्पन भी इन पंचमहाभूतों के कारण होता है ।"

से किणं किणावेमाणे, हणं घातमाणे, पयं पयावेमाणे, अवि अंतसो पुरिसमवि विक्किणित्ता घायइत्ता, एत्थ वि जाणाहि—णत्थि एत्थ दोसो ।[1]

—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६५४-६५७

(इस दृष्टि से आत्मा असत् या अकिंचित्कर होने से) "स्वयं खरीदता हुआ, दूसरे से खरीद कराता हुआ, एवं प्राणियों का स्वयं घात करता हुआ तथा दूसरे से घात कराता हुआ, स्वयं पकाता हुआ और दूसरों से पकवाता हुआ (उपलक्षण से इन सब असद् अनुष्ठानों का अनुमोदन करता हुआ, (यहाँ तक कि किसी पुरुष को (दास आदि के रूप में) खरीदकर घात करने वाला पुरुष भी दोष का भागी नहीं होता क्योंकि इन सब (सावद्य) कार्यों में कोई दोष नहीं है, यह समझ लो ।"

---

१ संति पंच महब्भूया इहमेगेसिमाहिया । पुढवी आऊ तेऊ वाऊ आगास पंचमा ।
एते पंच महब्भूया तेब्भो एगो त्ति आहिया, अह ऐसिं विणासे उ विणासो होइ देहिणो ॥—सूय. सु. १, अ. १, उ. १, गा. ७-८

ते णो एतं विप्पडिवेदेंति, तं जहा—किरिया ति वा—जाव—अणिरए ति वा।

वे (पंचमहाभूतवादी) क्रिया से लेकर नरक से भिन्न गति तक के (पूर्वोक्त) पदार्थों को नहीं मानते।

एवामेव ते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइं कामभोगाइं समारंभंति भोयणाए।

एवामेव ते अणारिया विप्पडिवण्णा तं सद्दहमाणा पत्तियमाणा—जाव—इति ते णो हव्वाए णो पाराए, अंतरा कामभोगेसु विसण्णा।

इस प्रकार वे नाना प्रकार के सावद्य कार्यों के द्वारा कामभोगों की प्राप्ति के लिए सदा आरम्भ-समारम्भ में प्रवृत्त रहते हैं। अतः वे अनार्य (आर्यधर्म से दूर), तथा विपरीत विचार वाले हैं। इन पंचमहाभूतवादियों के धर्म (दर्शन) में श्रद्धा रखने वाले एवं इनके धर्म को सत्य मानने वाले राजा आदि (पूर्वोक्त प्रकार से इनकी पूजा-प्रशंसा तथा आदर सत्कार करते हैं, विषयभोगसामग्री इन्हें भेंट करते हैं। इस प्रकार सावद्य अनुष्ठान में भी अधर्म न मानने वाले वे पंचमहाभूतवादी स्त्री सम्बन्धी कामभोग में मूच्छित होकर) न तो इहलोक के रहते हैं और न परलोक के। उभयभ्रष्ट होकर पूर्ववत् बीच में ही कामभोगों में फँसकर कष्टों पाते हैं।

दोच्चे पुरिसज्जाए पंचमहब्भूतिए ति आहिते।

—सुय. सु. २, अ. १, सु. ६५८

यह दूसरा पुरुष पांचमहाभूतिक कहा गया है।

तइयं ईसरकारणीय वाइए सद्दहण-णिरसणं—

तृतीय ईश्वरकारणिकवादी की श्रद्धा का निरसन—

२४८. अहावरे तच्चे पुरिसज्जाते ईसरकारणिए ति आहिज्जइ।

२४८. दूसरे पांचमहाभूतिक पुरुष के पश्चात् तीसरा पुरुष "ईश्वरकारणिक" कहलाता है।

इह खलु पाईणं वा—जाव—उदीणं वा संतेगतिया मणुस्सा भवंति अणुपुव्वेणं लोयं उववन्ना, तं जहा—आरिया वेगे—जाव—तेसिं च णं महंते एगे राया भवति—जाव—सेणावतिपुत्ता।

इस मनुष्यलोक में पूर्व—यावत्—उत्तर दिशाओं में कई मनुष्य होते हैं, जो क्रमशः इस लोक में उत्पन्न हैं। जैसे कि उनमें से कोई आर्य होते हैं, कोई अनार्य आदि। प्रथम सूत्रोक्त सब वर्णन यहाँ जान लेना चाहिए। उनमें कोई एक श्रेष्ठ पुरुष महान् राजा होता है। वहाँ से लेकर राजा की सभा के सभासदों (सेनापतिपुत्र) तक का वर्णन भी पूर्वोक्त वर्णनवत् समझ लेना चाहिए।

तेसिं च णं एगतीए सड्ढी भवति, कामं तं समणा य माहणा य पहारिंसु गमणाए—जाव—जहा मे एस धम्मे सुअक्खाए सुपण्णत्ते भवति।

इन पुरुषों में से कोई एक धर्मश्रद्धालु होता है। उस धर्मश्रद्धालु के पास जाने का तथाकथित श्रमण और ब्राह्मण (माहन) निश्चय करते हैं। वे उसके पास जाकर कहते हैं—हे भयत्राता महाराज! मैं आपको सच्चा धर्म सुनाता हूँ, जो पूर्वपुरुषों द्वारा कथित एवं सुप्रज्ञप्त है,—यावत्—आप उसे ही सत्य समझें।

इह खलु धम्मा पुरिसादीया पुरिसोत्तरिया पुरिसप्पणीया पुरिसपज्जोइता पुरिसअभिसमण्णागता पुरिसमेव अभिभूय चिट्ठन्ति।

इस जगत में जितने भी चेतन—अचेतन धर्म (स्वभाव या पदार्थ) हैं, वे सब पुरुषादिक हैं—ईश्वर या आत्मा (उनका) आदि कारण है; वे सब पुरुषोत्तरिक हैं—ईश्वर या आत्मा ही सब पदार्थों का कार्य है, अथवा ईश्वर ही उनका संहारकर्ता है, सभी पदार्थ ईश्वर द्वारा प्रणीत (रचित) हैं, ईश्वर से ही उत्पन्न (जन्मे हुए) हैं, सभी पदार्थ ईश्वर द्वारा प्रकाशित हैं, सभी पदार्थ ईश्वर के अनुगामी हैं, ईश्वर का आधार लेकर टिके हुए हैं।

१. से जहानामए गंडे सिया सरीरे जाते सरीरे वुड्ढे सरीरे अभिसमण्णागते सरीरमेव अभिभूय चिट्ठति । एवामेव धम्मा वि पुरिसादीया–जाव–पुरिसमेव अभिभूय चिट्ठन्ति ।

(१) जैसे कि किसी प्राणी के शरीर में हुआ फोड़ा (गुमड़ा) शरीर से ही उत्पन्न होता है, शरीर में ही बढ़ता है, शरीर का ही अनुगामी बनता है और शरीर का आधार लेकर टिकता है, इसी तरह सभी धर्म (पदार्थ) ईश्वर से ही उत्पन्न होते हैं, ईश्वर से ही वृद्धिगत होते हैं, ईश्वर के ही अनुगामी होते हैं, ईश्वर का आधार लेकर ही स्थित रहते हैं ।

२. से जहाणामए अरई सिया सरीरे जाया सरीरे अभिसंवुड्ढा सरीरे अभिसमण्णागता सरीरमेव अभिभूय चिट्ठति । एवामेव धम्मा पुरिसादीया–जाव–पुरिसमेव अभिभूय चिट्ठन्ति ।

(२) जैसे अरति (मन का उद्वेग) शरीर से ही उत्पन्न होती है, शरीर में ही बढ़ती है, शरीर की अनुगामिनी बनती है, और शरीर को ही मुख्य आधार बना करके पीड़ित करती हुई रहती है, इसी तरह समस्त पदार्थ ईश्वर से ही उत्पन्न होकर—**यावत्**—उसी से वृद्धिगत और उसी के आश्रय से स्थित हैं ।

३. से जहाणामए वम्मिए सिया पुढवीजाते पुढवीसंवुड्ढे पुढवी अभिसमण्णागते पुढवीमेव अभिभूय चिट्ठति । एवामेव धम्मा वि पुरिसादीया–जाव–अभिभूय चिट्ठन्ति ।

(३) जैसे वल्मीक (कीटविशेषकृत मिट्टी का स्तूप या दीमकों के रहने की बांबी) पृथ्वी से उत्पन्न होता है, पृथ्वी में ही बढ़ता है, और पृथ्वी का ही आश्रय लेकर रहता है, वैसे ही समस्त धर्म (पदार्थ) भी ईश्वर से ही उत्पन्न होकर—**यावत्**—उसी में लीन होकर रहते हैं ।

४. से जहाणामए रुक्खे सिया पुढवीजाते पुढविसंवुड्ढे पुढवि-अभिसमण्णागते पुढविमेव अभिभूय चिट्ठति । एवामेव धम्मा वि पुरिसाइया–जाव–अभिभूय चिट्ठन्ति ।

(४) जैसे कोई वृक्ष मिट्टी से ही उत्पन्न होता है, मिट्टी से ही उसका संवर्द्धन होता है, मिट्टी का ही अनुगामी बनता है, और मिट्टी में ही व्याप्त होकर रहता है, वैसे ही सभी पदार्थ ईश्वर से उत्पन्न, संवर्द्धित और आनुगामिक होते हैं और अन्त में उसी में व्याप्त होकर रहते हैं ।

५. से जहानामए पुक्खरणी सिया पुढविजाता–जाव–पुढवि-मेव अभिभूय चिट्ठति । एवामेव धम्मा वि पुरिसादीया-जाव-पुरिसमेव अभिभूय चिट्ठन्ति ।

(५) जैसे पुष्करिणी (बावड़ी) पृथ्वी से उत्पन्न (निर्मित) होती है, और—**यावत्**—अन्त में पृथ्वी में ही लीन होकर रहती है, वैसे ही सभी पदार्थ ईश्वर से उत्पन्न होते हैं और अन्त में उसी में ही लीन होकर रहते हैं ।

६. से जहाणामए उदगपोक्खले सिया उदगजाए-जाव-उदगमेव अभिभूय चिट्ठति । एवामेव धम्मा वि-जाव-पुरिसमेव अभि-भूय चिट्ठन्ति ।

(६) जैसे कोई जल का पुष्कर (पोखर या तालाब) हो, वह जल से ही उत्पन्न (निर्मित) होता है, जल से ही बढ़ता है, जल का अनुगामी होकर अन्त में जल को ही व्याप्त करके रहता है, वैसे ही सभी पदार्थ ईश्वर से उत्पन्न, संवर्द्धित एवं अनुगामी होकर उसी में विलीन होकर रहते हैं ।

७. से जहाणामए उदगबुब्बुए सिया उदगजाए-जाव-उदगमेव अभिभूय चिट्ठति । एवामेव धम्मा वि पुरिसाईया-जाव-पुरिसमेव अभिभूय चिट्ठन्ति ।

—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६५६-६६०

(७) जैसे कोई पानी का बुद्बुद् (बुलबुला) पानी में उत्पन्न होता है, पानी से ही बढ़ता है, पानी का ही अनुगमन करता है और अन्त में पानी में ही विलीन हो जाता है, वैसे ही सभी पदार्थ ईश्वर से उत्पन्न होते हैं और अन्त में उसी में व्याप्त (लीन) होकर रहते हैं ।

जं पि य इमं समणाणं णिग्गंथाणं उद्दिट्ठं वियंजियं दुवालसंगं गणिपिडगं, तं जहा—

यह जो श्रमणों-निर्ग्रन्थों द्वारा कहा हुआ, रचा हुआ या प्रकट किया हुआ, द्वादशांग गणिपिटक (आचार्यों का या गणधरों का ज्ञान पिटारा—ज्ञानभण्डार है), जैसे कि –

आयारो-जाव-दिट्ठिवाओ, सव्वमेयं मिच्छा, ण एतं तहितं, ण एयं आहत्तहितं।

आचारांग, सूत्रकृतांग से लेकर दृष्टिवाद तक, यह सब मिथ्या है, यह तथ्य (सत्य) नहीं है और न ही यह यथातथ्य (यथार्थ वस्तुस्वरूप का बोधक) है, (क्योंकि यह सब ईश्वरप्रणीत नहीं है)।

इमं सच्चं, इमं तहितं, इमं आहत्तहितं, ते एवं सण्णं कुव्वंति, ते एवं सण्णं संठवेंति, ते एवं सण्णं सोवट्ठवेंति,

यह जो हमारा (ईश्वरकर्तृत्ववाद या आत्माद्वैतवाद है) यह सत्य है, यह तथ्य है, यह यथातथ्य (यथार्थ रूप से वस्तुप्रकाशक) है। इस प्रकार वे (ईश्वरकारणवादी या आत्माद्वैतवादी) ऐसी संज्ञा (मान्यता या विचारधारा) रखते, (या निश्चित करते) हैं, वे अपने शिष्यों के समक्ष भी इसी मान्यता की स्थापना करते हैं, वे सभा में भी वे इसी मान्यता से सम्बन्धित युक्तियाँ मताग्रह-पूर्वक उपस्थित (प्रस्तुत करते हैं)।

तमेवं ते तज्जातियं दुक्खं णातिउट्टन्ति सउणी पंजरं जहा।

जैसे पक्षी पिंजरे को नहीं तोड़ सकता वैसे ही वे (पूर्वोक्त वादी) अपने ईश्वर-कर्तृत्ववाद या आत्माद्वैतवाद को अत्यन्ता-ग्रह के कारण नहीं छोड़ सकते, अतः इस मत के स्वीकार करने से उत्पन्न (तज्जातीय) दुःख (दुःख के कारणभूत कर्मसमूह) को नहीं तोड़ सकते।

ते णो (एतं) विप्पडिवेदेंति तं जहा—किरिया इ वा-जाव-अणिरए ति वा।

वे (ईश्वरकारणवादी या आत्माद्वैतवादी स्वमताग्रहग्रस्त होने से) इन (आगे कहे जाने वाली) बातों को नहीं मानते जैसे कि—पूर्वसूत्रोक्त क्रिया से लेकर अनिरय (नरक से अतिरिक्त गति) तक हैं।

एवामेव ते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइं काम-भोगाइं समारंभित्ता भोयणाए एवामेव ते अणारिया विप्प-डिवण्णा, तं सद्दहमाणा-जाव-इति ते णो हव्वाए णो पाराए, अंतरा कामभोगेसु विसण्णा।

वे नाना प्रकार के पापकर्मयुक्त (सावद्य) अनुष्ठानों के द्वारा कामभोगों के उपभोग के लिए अनेक प्रकार के काम-भोगों का आरम्भ करते हैं। वे अनार्य (आर्यधर्म से दूर) हैं, वे विपरीत मार्ग को स्वीकार किये हुए हैं, अथवा भ्रम में पड़े हुए हैं। इस प्रकार के ईश्वरकर्तृत्ववाद में श्रद्धा-प्रतीति रखने वाले वे धर्म-श्रद्धालु राजा आदिक उन मतप्ररूपक साधकों की पूजा-भक्ति करते हैं, इत्यादि पूर्वोक्त वर्णन के अनुसार वे ईश्वरकारणवादी न तो इस लोक के होते हैं न परलोक के। वे उभयभ्रष्ट लोग बीच में ही कामभोगों में फँसकर दुःख पाते हैं।

तच्चे पुरिसज्जाते इस्सरकारणिए[1] त्ति आहिते।

—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६६१-६६२

यह तीसरे ईश्वरकारणवादी का स्वरूप कहा गया है।

चउत्थं णियइवाइय सद्दहण-णिरसणं—

चौथा नियतिवादी की श्रद्धा का निरसन—

२४९. अहावरे चउत्थे पुरिसजाते णियतिवातिए ति आहिज्जति।

२४९. तीन पुरुषों का वर्णन करने के पश्चात् अब नियतिवादी नामक चौथे पुरुष का वर्णन किया जाता है।

इह खलु पाईणं वा तहेव-जाव-सेणावतिपुत्ता वा, तेसिं च णं

इस मनुष्य लोक में पूर्वादि दिशाओं के वर्णन से लेकर राजा और राजसभा के सभासद सेनापतिपुत्र तक का वर्णन प्रथम

१ ईसरेण कडे लोए पहाणाति तहावरे। जीवाऽजीव समाउत्ते सुह-दुक्ख समन्निए। —सूय. सु. २, अ. १, उ. ३, गा. ६(६४)

एगतिए सड्ढो भवति, कामं तं समणा य माहणा या संपहारिंसु गमणाए-जाव-जहा मे एस धम्मे सुअक्खाते सुपण्णत्ते भवति।

पूर्वोक्त पाठ के समान जानना चाहिए। पूर्वोक्त राजा और उसके सभासदों में से कोई पुरुष धर्मश्रद्धालु होता है। उसे धर्मश्रद्धालु जानकर (धर्मोपदेशार्थ) उसके निकट जाने का श्रमण और ब्राह्मण निश्चय करते हैं।—**यावत्**—वे उसके पास जाकर कहते हैं—मैं आपको पूर्वपुरुषकथित और सुप्रज्ञप्त (सत्य) धर्म का उपदेश करता हूँ (उसे आप ध्यान से सुने।)"

इह खलु दुवे पुरिसा भवंति—एगे पुरिसे किरियमाइक्खति, एगे पुरिसे णो किरियमाइक्खति।

इस लोक में (या दार्शनिक जगत् में) दो प्रकार के पुरुष होते हैं—एक पुरुष क्रिया का कथन करता है, (जबकि) दूसरा क्रिया का कथन नहीं करता, (क्रिया का निषेध करता है)।

जे य पुरिसे किरियमाइक्खइ, जे य पुरिसे णोकिरियमाइक्खइ, दो वि ते पुरिसा तुल्ला एगट्ठा कारणमावन्ना।

जो पुरुष क्रिया का कथन करता है और जो पुरुष क्रिया का निषेध करता है। (नियतिवाद) को प्राप्त है।

बाले पुण एवं विप्पडिवेदेति कारणमावन्ने, तं जहा—जो अहमंसी दुक्खामि वा सोयामि वा जूरामि वा तिप्पामि वा पिड्डामि वा परितप्पामि वा अहं तमकासी,

ये दोनों ही अज्ञानी (बाल) हैं, अपने सुख और दुःख के कारणभूत काल, कर्म तथा ईश्वर आदि को मानते हुए यह समझते हैं कि मैं जो कुछ भी दुःख पा रहा हूँ, शोक (चिन्ता) कर रहा हूँ, दुःख से आत्मनिन्दा (पश्चात्ताप) कर रहा हूँ, या शारीरिक बल का नाश कर रहा हूँ, पीड़ा पा रहा हूँ, या संतप्त हो रहा हूँ, वह सब मेरे ही किये हुए कर्म (कर्मफल) हैं,

परो वा जं दुक्खति वा सोयइ वा जूरइ वा तिप्पइ वा पिड्डइ वा परितप्पइ वा परो एतमकासि,

तथा जो दूसरा दुःख पाता है, शोक करता है, आत्मनिन्दा करता है, शारीरिक बल का क्षय करता है, अथवा पीड़ित होता है या संतप्त होता है, वह सब उसके द्वारा किये हुए (कर्मफल) हैं।

एवं से बाले सकारणं वा परकारणं वा एवं विप्पडिवेदेति कारणमावन्ने।

इस कारण वह अज्ञजीव (काल, कर्म, ईश्वर आदि को सुख-दुःख का कारण मानता हुआ) स्वनिमित्तक (स्वकृत) तथा परनिमित्तक (परकृत) सुख-दुःखादि को अपने तथा दूसरे के द्वारा कृत कर्मफल समझता है।

मेधावी पुण एवं विप्पडिवेदेति कारणमावन्ने—

परन्तु एकमात्र नियति को ही समस्त पदार्थों का कारण मानने वाला पुरुष तो यह समझता है कि

अहमंसि दुक्खामि वा सोयामि वा जूरामि वा तिप्पामि वा पिड्डामि वा परितप्पामि वा, णो अहमेतमकासि परो वा जं दुक्खति वा-जाव-परितप्पति वा णो परो एयमकासि।

"मैं जो कुछ दुःख भोगता हूँ, शोकमग्न होता हूं या संतप्त होता हूँ, वे सब मेरे किये हुए कर्म (कर्मफल) नहीं हैं, तथा दूसरा पुरुष जो दुःख पाता है, शोक आदि से संतप्त-पीड़ित होता है, वह भी उसके द्वारा कृतकर्मों का फल नहीं है, (अपितु यह सब नियति का प्रभाव है)।

एवं से मेहावी सकारणं वा परकारणं वा एवं विप्पडिवेदेति कारणमावन्ने।

इस प्रकार वह बुद्धिमान पुरुष अपने या दूसरे के निमित्त से प्राप्त हुए दुःख आदि को यों मानता है कि ये सब नियतिकृत (नियति के कारण से हुए) हैं, किसी दूसरे के कारण से नहीं।

से बेमि—पाईणं वा-जाव- जे तसथावरा पाणा ते संघायमावज्जंति,

अतः मैं (नियतिवादी) कहता हूँ कि पूर्व आदि दिशाओं में रहने वाले जो त्रस एवं स्थावर प्राणी हैं, वे सब नियति के प्रभाव से ही औदारिक आदि शरीर की रचना (संघात) को प्राप्त करते हैं,

ते एवं परियायमागच्छंति, ते एवं विवेगमागच्छंति, ते एवं विहाणमागच्छंति, ते एवं संगइयंति ।

वे नियति के कारण ही बाल्य, युवा और वृद्ध अवस्था (पर्याय) को प्राप्त करते हैं, वे नियतिवशात् ही शरीर से पृथक् (मृत) होते हैं, वे नियति के कारण ही काना, कुबड़ा आदि नाना प्रकार की दशाओं को प्राप्त करते हैं, नियति का आश्रय लेकर ही नाना प्रकार के सुख-दुःखों को प्राप्त करते हैं।

उवेहाए णो एयं विप्पडिवेदेंति, तं जहा—किरिया ति वा -जाव-णिरए ति वा अणिरए ति वा ।

(श्री सुधर्मास्वामी श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं—) इस प्रकार नियति को ही समस्त अच्छे बुरे कार्यों का कारण मानने की कल्पना (उत्प्रेक्षा) करके (निःसंकोच एवं कर्मफल प्राप्ति से निश्चिन्त होने से) नियतिवादी आगे कही जाने वाली बातों को नहीं मानते—क्रिया, अक्रिया से लेकर प्रथम सूत्रोक्त नरक और नरक से अतिरिक्त गति तक के पदार्थ।

एवं ते विरूवरूवेहिं कम्मसमारंभेहिं विरूवरूवाइं कामभोगाइं समारभंति भोयणाए । एवामेव ते अणारिया विप्पडिवण्णा तं सद्दहमाणा-जाव-इति ते णो हव्वाए णो पाराए, अंतरा कामभोगेसु विसण्णा ।

इस प्रकार वे नियतिवाद के चक्र में पड़े हुए लोग नाना प्रकार के सावद्यकर्मों का अनुष्ठान करके काम-भोगों का उपभोग करते हैं, इसी कारण (नियतिवाद में श्रद्धा रखने वाले) वे (नियतिवादी) अनार्य हैं, वे भ्रम में पड़े हैं। वे न तो इस लोक के होते हैं और न परलोक के, अपितु काम-भोगों में फँसकर कष्ट भोगते हैं।

चउत्थे पुरिसजाते णियइवाइए त्ति आहिए ।

यह चतुर्थपुरुष नियतिवादी कहलाता है।

इच्चेते चत्तारि पुरिसजाता णाणापण्णा णाणाछंदा णाणासीला णाणादिट्ठी णाणारुई णाणारंभा णाणज्झवसाणसंजुत्ता पहीणपुव्वसंजोगा आरियं मग्गं असंपत्ता,

इस प्रकार ये पूर्वोक्त चार पुरुष भिन्न-भिन्न बुद्धि वाले, विभिन्न अभिप्राय वाले, विभिन्न शील (आचार) वाले, पृथक्-पृथक् दृष्टि (दर्शन) वाले, नाना रुचि वाले, अलग-अलग आरम्भ धर्मानुष्ठान वाले तथा विभिन्न अध्यवसाय (पुरुषार्थ) वाले हैं। इन्होंने माता-पिता आदि गृहस्थाश्रमीय पूर्वसंयोगों को तो छोड़ दिया, किन्तु आर्यमार्ग (मोक्षपथ) को अभी तक पाया नहीं है।

इति ते णो हव्वाए णो पाराए, अंतरा कामभोगेसु विसण्णा ।।

—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६६३-६६६

इस कारण वे न तो इस लोक के रहते हैं और न ही परलोक के होते हैं, किन्तु बीच में ही (सांसारिक) काम-भोगों से ग्रस्त होकर कष्ट पाते हैं।

विविहा लोगरयण-परूवणा—

लोक रचना के अनेक प्रकार—

२५०. इणमन्नं तु अण्णाणं इहमेगेसिमाहियं ।
देवउत्ते अयं लोगे बंभ उत्ते त्ति आवरे ।।

२५०. (पूर्वोक्त अज्ञानों के अतिरिक्त) दूसरा अज्ञान यह भी है—"इस लोक (दार्शनिक जगत्) में किसी ने कहा है कि यह लोक (किसी) देव के द्वारा उत्पन्न किया हुआ है और दूसरे कहते हैं कि ब्रह्मा ने बनाया है।"

---

1 आघायं पुण एगेसिं उववन्ना पुढो जिया । वेदयंति सुहं दुक्खं अदुवा लुप्पंति ठाणओ ।।
न तं सयंकडं दुक्खं कओ अन्नकडं च णं । सुहं वा जइ वा दुक्खं सेहियं वा असेहियं ।।
न सयं कडं ण अन्नेहिं वेदयन्ति पुढो जिया । संगतियं तं तहा तेसिं इहमेगेहिमाहियं ।।
एवमेताइं जंपंता बाला पंडियमाणिणो । णिययाऽणिययं संतं अजाणंता अबुद्धिया ।।
एवमेगे उ पासत्था ते भुज्जो विप्पगब्भिया । एवं उवट्ठिता संता ण ते दुक्खविमोक्खया ।।
—सूय. सु. १, अ. १, उ. २, गा. २८-३२

ईसरेण कडे लोए पहाणाति तहावरे।
जीवा-जीवसमाउत्ते सुह-दुक्खसमन्निए॥

जीव और अजीव से युक्त तथा सुख-दुःख से समन्वित (सहित) यह लोक ईश्वर के द्वारा कृत-रचित है (ऐसा कई कहते हैं) तथा दूसरे (सांख्य) कहते हैं कि (यह लोक) प्रधान (प्रकृति) आदि के द्वारा कृत है।

सयंभुणा कडे लोए इति वुत्तं महेसिणा।
मारेण संथुता माया तेण लोए असासते॥

स्वयम्भू (विष्णु या किसी अन्य) ने इस लोक को बनाया है, ऐसा हमारे महर्षि ने कहा है। यमराज ने यह माया रची है, इसी कारण यह लोक अशाश्वत-अनित्य (परिवर्तनशील) है।

माहणा समणा एगे आह अंडकडे जगे।
असो तत्तमकासी य अयाणंता मुसं वदे॥

कई माहन (ब्राह्मण) और श्रमण जगत् को अण्डे के द्वारा कृत कहते हैं तथा (वे कहते हैं)—ब्रह्मा ने तत्व (पदार्थ-समूह) को बनाया है। वस्तुतत्व को न जानने वाले ये (अज्ञानी) मिथ्या ही ऐसा कहते हैं।

सएहिं परियाएहिं लोयं बूया कडे ति य।
तत्तं ते ण विजाणंती ण विणासि कयाइ वि॥

(पूर्वोक्त अन्य दर्शनी) अपने-अपने अभिप्राय से इस लोक को कृत (किया हुआ) बतलाते हैं। (वास्तव में) वे (सब अन्यदर्शनी) वस्तुतत्व को नहीं जानते, क्योंकि यह लोक कभी भी विनाशी नहीं है।

अमणुण्णसमुप्पायं दुक्खमेव विजाणिया।
समुप्पायमयाणंता किह नाहिंति संवरं॥

—सूय. सु. १, अ. १, उ. ३, गा. ५-१०

दुःख अमनोज्ञ (अशुभ) अनुष्ठान से उत्पन्न होता है, यह जान लेना चाहिए। दुःख की उत्पत्ति का कारण न जानने वाले लोग दुःख को रोकने (संवर) का उपाय कैसे जान सकते हैं?

अकारकवाई—

अकारकवाद—

२५१. कुव्वं च कारवं चेव सव्वं कुव्वं ण विज्जति।
एवं अकारओ अप्पा एवं ते उ पगब्भिया॥

२५१. आत्मा स्वयं कोई क्रिया नहीं करता, और न दूसरों से कराता है, तथा आत्मा समस्त (कोई भी) क्रिया करने वाला नहीं है। इस प्रकार आत्मा अकारक है। इस प्रकार वे (अकारकवादी सांख्य आदि) (अपने मन्तव्य की) प्ररूपणा करते हैं।

जे ते उ वाइणो एवं लोए तेसिं कओ सिया?
तमाओ ते तमं जंति मंदा आरंभनिस्सिया॥

—सूय. सु. १, अ. १, उ. १, गा. १३-१४

जो वे (पूर्वोक्त) वादी (तज्जीव-तच्छरीरवादी) तथा अकारकवादी इस प्रकार शरीर से भिन्न आत्मा नहीं है, इत्यादि तथा "आत्मा अकर्ता और निष्क्रिय है" कहते हैं, उनके मत में यह लोक (चतुर्गतिक संसार या परलोक) कैसे घटित हो सकता है? (वस्तुतः) वे मूढ़ एवं आरम्भ में आसक्त वादी एक (अज्ञान) अन्धकार से निकलकर दूसरे अन्धकार में जाते हैं।

एगप्पवाई—

एकात्मवाद—

२५२ जहा य पुढवीथूभे एगे नाणा हि दीसइ।
एवं भो! कसिणे लोए, विण्णू नाणा हि दीसए॥

२५२. जैसे एक ही पृथ्वीस्तूप (पृथ्वीपिण्ड) नानारूपों में दिखाई देता है, हे जीवो! इसी तरह समस्त लोक में (व्याप्त) विज्ञ (आत्मा) नानारूपों में दिखाई देता है, अथवा (एक) आत्मरूप (यह) समस्त लोक नानारूपों में दिखाई देता है।

एवमेगे त्ति जंपंति, मंदा आरम्भणिस्सिया।
एगे किच्चा सयं पावं, तिव्वं दुक्खं नियच्छइ॥

—सूय. सु. १, अ. १, उ. १, गा. ९-१०

इस प्रकार कई मन्दमति (अज्ञानी), "आत्मा एक ही है", ऐसा कहते हैं, (परन्तु) आरम्भ में आसक्त रहने वाला व्यक्ति पापकर्म करके स्वयं अकेले ही दुःख प्राप्त करते हैं (दूसरे नहीं)।

आयछट्ठवाय—

२५३. संति पंच महब्भूता इहमेगेसि आहिता।
आयछट्ठा पुणेगाऽऽहु आया लोगे य सासते ॥

दुहओ ते ण विणस्संति नो य उप्पज्जए असं।
सव्वे वि सव्वहा भावा नियतीभावमागता ॥
—सूय. सु. १, अ. १, उ. १, गा. १५-१६

अवतारवायं—

२५४. सुद्धे अपावए आया इहमेगेसि आहितं।
पुणो कीडा-पदोसेणं से तत्थ अवरज्झति ॥

इह संवुडे मुणी जाए पच्छा होति अपावए।
वियडं व जहा भुज्जो नीरयं सरयं तहा ॥
—सूय. सु. १, अ. १, उ. ३, गा. ११-१२

लोगवायसमिक्खा—

२५५. लोगावायं निसामेज्जा इहमेगेसि आहितं।
विवरीतपण्णसंभूतं अण्णण्णबुतिताणुयं ॥

अणंते णितिए लोए सासते ण विणस्सति।
अंतवं णितिए लोए इति धीरोऽतिपासति ॥

अपरिमाणं विजाणाति इहमेगेसि आहितं।
सव्वत्थ सपरिमाणं इति धीरोऽतिपासति ॥

जे केइ तसा पाणा चिट्ठन्ति अदु थावरा।
परियाए अत्थि से अंजू तेण ते तस-थावरा ॥
—सूय. सु. १, अ. १, उ. ४, गा. ५-८

पंचखंधवायं—

२५६. पंच खंधे वयंतेगे बाला उ खणजोइणो।
अण्णो अणण्णो णेवाहु हेउयं च अहेउयं ॥

आत्मषष्ठवाद—

२५३. इस जगत् में पाँच महाभूत हैं, और छठा आत्मा है, ऐसा कई वादियों ने प्ररूपण किया (कहा) फिर उन्होंने कहा कि "आत्मा और लोक शाश्वत—नित्य हैं।"

सहेतुक और अहेतुक दोनों प्रकार से भी पूर्वोक्त छहों पदार्थ नष्ट नहीं होते, और न ही असत्-अविद्यमान पदार्थ कभी उत्पन्न होता है। सभी पदार्थ सर्वथा नियतीभाव—नित्यत्व को प्राप्त होते हैं।

अवतारवाद—

२५४. इस जगत् में किन्हीं (दार्शनिकों या अवतारवादियों) का कथन (मत) है कि आत्मा शुद्धाचारी होकर (मोक्ष में) पापरहित हो जाता है। पुनः क्रीड़ा (राग) या प्रद्वेष (द्वेष) के कारण वहीं (मोक्ष में ही) बन्ध युक्त हो जाता है।

इस मनुष्य भव में जो जीव संवृत-संयम-नियमादि युक्त मुनि बन जाता है, वह बाद में निष्पाप हो जाता है। जैसे—रज रहित निर्मल जल पुनः सरजस्क मलिन हो जाता है। वैसे ही वह (निर्मल निष्पाप आत्मा भी पुनः मलिन हो जाती है।)

लोकवाद—समीक्षा—

२५५. इस लोक में किन्हीं लोगों का कथन है कि लोकवाद-पौराणिक कथा या प्राचीन लौकिक लोगों द्वारा कही हुई बातें सुनना चाहिए, (किन्तु वस्तुतः पौराणिकों का वाद) विपरीत बुद्धि की उपज है—तत्त्वविरुद्ध प्रज्ञा द्वारा रचित है, परस्पर एक दूसरों द्वारा कही हुई मिथ्या बातों (गप्पों) का ही अनुगामी यह लोकवाद है।

यह लोक (पृथ्वी आदि लोक) अनन्त (सीमारहित) है, नित्य है और शाश्वत है, यह कभी नष्ट नहीं होता, (यह किसी का कथन है।) तथा यह लोक अन्तवान ससीम और नित्य है। इस प्रकार व्यास आदि धीर पुरुष देखते अर्थात् कहते हैं।

इस लोक में किन्हीं का यह कथन है कि कोई पुरुष सीमातीत पदार्थ को जानता है, किन्तु सर्व को जानने वाला नहीं। समस्त देश-काल की अपेक्षा वह धीर पुरुष सपरिमाण—परिमाण सहित—एक सीमा तक जानता है।

जो कोई त्रस अथवा स्थावर प्राणी इस लोक में स्थित है, उनका अवश्य ही पर्याय (परिवर्तन) होता है, जिससे वे त्रस से स्थावर और स्थावर से त्रस होते हैं।

पंच स्कन्धवाद—

२५६. कई बाल (अज्ञानी) क्षणमात्र स्थिर रहने वाले पाँच स्कंध बताते हैं। वे (भूतों से) भिन्न तथा अभिन्न कारण से उत्पन्न (सहेतुक) और बिना कारण उत्पन्न (अहेतुक) (आत्मा को) नहीं मानते, नहीं कहते।

पुढवी आऊ तेऊ य तहा वाऊ य एकओ।
चत्तारि धाउणो रूवं एवमाहंसु आवरा॥
—सूय. सु. १, अ. १, उ. १, गा. १७-१८

दूसरे (बौद्धों) ने बताया कि पृथ्वी, जल, तेज और वायु ये चारों धातु के रूप हैं, ये (शरीर के रूप में) एकाकार हो जाते हैं, (तब इनकी जीव-संज्ञा) होती है।

पत्तेयवाय पसंसा सिद्धिलाभो य —

स्व-स्व-प्रवाद-प्रशंसा एवं सिद्धि लाभ का दावा—

२५७. एयाणुवीति मेधावि बंभचेरे ण ते वसे।
पुढो पावाउया सव्वे अक्खायारो सयं सयं॥

२५७. बुद्धिमान साधक इन (पूर्वोक्त वादियों के कथन पर) चिन्तन करके (मन में यह) निश्चित कर ले कि (पूर्वोक्त जगत् कर्तृत्ववादी या अवतारवादी) ब्रह्म=आत्मा की चर्या (सेवा या आचरण) में स्थित नहीं है। वे सभी प्रावादुक अपने-अपने वाद की पृथक्-पृथक् वाद (मान्यता) की बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा (बखान) करने वाले हैं।

सए सए उवट्ठाणे सिद्धिमेव ण अन्नहा।
अहो वि होति वसवत्ती सव्वकामसमप्पिए॥

(विभिन्न मतवादियों ने) अपने-अपने (मत में प्ररूपित) अनुष्ठान से ही सिद्धि (समस्त सांसारिक प्रपंच रहित सिद्धि) होती है, अन्यथा (दूसरी तरह से) नहीं, ऐसा कहा है। मोक्ष प्राप्ति से पूर्व इसी जन्म एवं लोक में ही वशवर्ती (जितेन्द्रिय अथवा हमारे तीर्थ या मत के अधीन) हो जाए तो उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

सिद्धा य ते अरोगा य इहमेगेसि आहितं।
सिद्धिमेव पराकाउं सासए गढिया नरा॥

इस संसार में कई मतवादियों का कथन है कि (हमारे मतानुसार अनुष्ठान से) जो सिद्धि (रस-सिद्धि या अष्टसिद्धि) प्राप्त हुए हैं, वे नीरोग (रोग मुक्त) हो जाते हैं। परन्तु इस प्रकार की डींग हांकने वाले वे लोग (स्वमतानुसार प्राप्त) तथाकथित सिद्धि को ही आगे रखकर अपने-अपने आशय (दर्शन या मत) में ग्रथित (आसक्त/ग्रस्त-बँधे हुए) हैं।

असंवुडा अणादीयं भमिहिंति पुणो पुणो।
कप्पकालमुवज्जंति ठाणा आसुर किब्बिसिय॥
—सूय. सु. १, अ. १, उ. ३, गा. १३-१६

वे (तथाकथित लौकिक सिद्धिवादी) असंवृत—इन्द्रिय मनःसंयम से रहित होने से (वास्तविक सिद्धि-मुक्ति तो दूर रही) इस अनादि संसार में बार-बार परिभ्रमण करेंगे। वे कल्पकाल पर्यन्त—चिरकाल तक असुरों-भवनपति देवों तथा किल्विषक (निम्नकोटि के) देवों के स्थानों में उत्पन्न होते हैं।

विविह वाय-निरसणं—

विविध वाद निरसन—

२५८. आगारमावसंता वि आरण्णा वा वि पव्वया।
इमं दरिसणमावन्ना सव्वदुक्खा विमुच्चती॥

२५८. अन्यमती अपने ही मत को श्रेष्ठ मानते हुए इस प्रकार कहते हैं—घर में रहने वाले (गृहस्थ), तथा वन में रहने वाले तापस एवं प्रव्रज्या धारण किये हुए मुनि अथवा पार्वत—पर्वत की गुफाओं में रहने वाले (जो कोई) भी (मेरे) इस दर्शन को प्राप्त (स्वीकार) कर लेते हैं, (वे) सब दुःखों से मुक्त हो जाते हैं।

ते णावि संधिं णच्चा णं न ते धम्मविऊ जणा।
जे ते उ वाइणो एवं न ते ओहंतराऽऽहिता॥

लेकिन वे (पूर्वोक्त मतवादी अन्यदर्शनी) न तो सन्धि को जानकर (क्रिया में प्रवृत्त होते हैं।) और न ही वे लोग धर्मवेत्ता हैं। इस प्रकार के (पूर्वोक्त अफलवाद के समर्थक) वे जो मतवादी (अन्यदर्शनी) हैं, उन्हें (तीर्थंकर ने) संसार (जन्म-मरण की परम्परा) को तैरने वाले नहीं कहे।

ते णावि संधिं णच्चा णं न ते धम्मविऊ जणा ।
जे ते उ वाइणो एवं ण ते संसारपारगा ॥

वे (अन्यतीर्थिक) सन्धि को जाने बिना ही (क्रिया में प्रवृत्त होते हैं,) तथा वे धर्मज्ञ नहीं हैं। इस प्रकार के जो वादी (पूर्वोक्त सिद्धान्तों को मानने वाले) हैं, वे (अन्यतीर्थी) चातुर्गतिक संसार (समुद्र) के पारगामी नहीं हैं।

ते णावि संधिं णच्चा णं न ते धम्मविऊ जणा ।
जे ते उ वाइणो एवं ण ते गब्भस्स पारगा ॥

वे (अन्य मतावलम्बी) न तो सन्धि को जानकर (क्रिया में प्रवृत्त होते हैं) और न ही वे धर्म के ज्ञाता हैं। इस प्रकार के जो वादी (पूर्वोक्त मिथ्या सिद्धान्तों को मानने वाले) हैं, वे गर्भ (में आगमन) को पार नहीं कर सकते।

ते णावि संधिं णच्चा णं न ते धम्मविऊ जणा ।
जे ते उ वाइणो एवं ण ते जम्मस्स पारगा ॥

वे (अन्य मतवादी) न तो सन्धि को जानकर (क्रिया में प्रवृत्त होते हैं), और न ही वे धर्म के तत्त्वज्ञ हैं। जो मतवादी (पूर्वोक्त मिथ्यावादों के प्ररूपक हैं), वे जन्म (परम्परा) को पार नहीं कर सकते।

ते णावि संधिं णच्चा णं न ते धम्मविऊ जणा ।
जे ते उ वाइणो एवं ण ते दुक्खस्स पारगा ॥

वे (अन्य मतवादी) न तो सन्धि को जानकर ही (क्रिया में प्रवृत्ति करते हैं), और न ही वे धर्म का रहस्य जानते हैं। इस प्रकार के जो वादी (मिथ्यामत के शिकार) हैं, वे दुःख (-सागर) को पार नहीं कर सकते।

ते णावि संधिं णच्चा णं न ते धम्मविऊ जणा ।
जे ते उ वाइणो एवं न ते मारस्स पारगा ॥

वे अन्यतीर्थी सन्धि को जाने बिना ही (क्रिया में प्रवृत्त हो जाते हैं), वे धर्मज्ञ नहीं हैं। अतः जो (पूर्वोक्त प्रकार से मिथ्या प्ररूपणा करने वाले) वादी हैं, वे मृत्यु को पार नहीं कर सकते।

णाणाविहाइं दुक्खाइं अणुभवंति पुणो पुणो ।
संसारचक्कवालम्मि वाहि-मच्चु-जराकुले ॥

वे (मिथ्यात्वग्रस्त अन्य मतवादी) मृत्यु, व्याधि और वृद्धावस्था से पूर्ण (इस) संसाररूपी चक्र में बार-बार नाना प्रकार के दुःखों का अनुभव करते हैं—दुःख भोगते हैं।

उच्चावयाणि गच्छंता गब्भमेस्संत ऽणंतसो ।
नायपुत्ते महावीरे एवमाहु जिणोत्तमे ॥
—सूय. सु. १, अ. १, उ. १, गा. १९-२७

ज्ञातपुत्र जिनोत्तम श्री महावीर स्वामी ने यह कहा कि वे (पूर्वोक्त अफलवादी अन्यतीर्थी) उच्च-नीच गतियों में भ्रमण करते हुए अनन्त बार (माता के) गर्भ में आयेंगे।

मिच्छादंसणेहिं संसार परियट्टणं—

मिथ्यादर्शनों से संसार का परिभ्रमण—

२५९. इच्चेयाहिं दिट्ठीहिं सातागारव-णिस्सिता ।
सरणं ति मण्णमाणा सेवंती पावगं जणा ॥

२५९. इन (पूर्वोक्त) दृष्टियों को लेकर सुखोपभोग एवं बड़प्पन में आसक्त अपने-अपने दर्शन को अपना शरण मानते हुए पाप का सेवन करते हैं।

जहा आसाविणिं णावं जातिअंधो दुरूहिया ।
इच्छेज्जा पारमागंतुं अंतरा य विसीयति ॥

जैसे चारों ओर से जल प्रविष्ट होने वाली (छिद्रयुक्त) नौका पर चढ़कर जन्मान्ध व्यक्ति पार जाना चाहता है, परन्तु वह बीच ही जल में डूब जाता है।

एवं तु समणा एगे मिच्छदिट्ठी अणारिया ।
संसारपारकंखी ते संसारं अणुपरियट्टन्ति ॥
—सूय. सु. १, अ. १, उ. २, गा. ३०-३२

इसी प्रकार कई मिथ्यादृष्टि, अनार्य श्रमण संसार सागर से पार जाना चाहते हैं, लेकिन संसार में ही बार-बार पर्यटन करते रहते हैं।

⁂

मिथ्यात्व अज्ञान अनाचरण

मिच्छादंसणस्स भेयप्पभेया—

२६०. मिच्छादंसणे दुविहे पन्नत्ते, तं जहा—
अभिग्गहियमिच्छादंसणे चेव
अणभिग्गहियमिच्छादंसणे चेव।
अभिग्गहियमिच्छादंसणे दुविहे पन्नत्ते तं जहा—
सपज्जवसिते चेव अपज्जवसिते चेव।
एवमणभिग्गहितमिच्छादंसणे वि।
सपज्जवसिते, अपज्जवसिते।

—ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ५६

मिथ्यादर्शन के भेद प्रभेद—

२६०. मिथ्यादर्शन दो प्रकार का कहा गया है, यथा—
आभिग्रहिक (इस भव में ग्रहण किया गया मिथ्यात्व) और अनाभिग्रहिक, (पूर्व भवों से आने वाला मिथ्यात्व)
आभिग्रहिक मिथ्यादर्शन दो प्रकार का कहा गया है यथा—
सपर्यवसित (सान्त) और अपर्यवसित (अनन्त)
अनाभिग्रहिक मिथ्यादर्शन दो प्रकार का कहा गया है—
सपर्यवसित और अपर्यवसित।

मिच्छत्तस्स भेयप्पभेया—

२६१. तिविहे मिच्छत्ते पण्णत्ते, तं जहा—
अकिरिया, अविणए, अन्नाणे।
अकिरिया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—
पओगकिरिया[1], समुदाणकिरिया,[2], अन्नाणकिरिया।
पओगकिरिया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—
मणपओगकिरिया, वइपओगकिरिया,
कायपओगकिरिया।
समुदाणकिरिया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—
अणंतरसमुदाणकिरिया,[3] परंपरसमुदाणकिरिया[4],
तदुभयसमुदाणकिरिया।[5]
अन्नाणकिरिया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—
मतिअन्नाणकिरिया, सुअन्नाणकिरिया,
विभंगअन्नाणकिरिया।
अन्नाणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—
देसऽण्णाणे[6], सव्वऽण्णाणे[7], भावण्णाणे[8]।

—ठाणं. अ ३, उ. ३, सु. १९३

मिथ्यात्व के भेद प्रभेद—

२६१. मिथ्यात्व तीन प्रकार का कहा है, यथा—
(१) अक्रिया, (२) अविनय, (३) अज्ञान।
अक्रिया मिथ्यात्व तीन प्रकार का कहा है, यथा—
(१) प्रयोगक्रिया, (२) समुदानक्रिया, (३) अज्ञानक्रिया।
प्रयोगक्रिया तीन प्रकार की कही है, यथा—
(१) मनप्रयोगक्रिया, (२) वचनप्रयोगक्रिया,
(३) कायप्रयोगक्रिया।
समुदानक्रिया तीन प्रकार की कही है, यथा—
(१) अनन्तर समुदानक्रिया, (२) परम्परा समुदानक्रिया,
(३) तदुभय समुदानक्रिया।
अज्ञान क्रिया तीन प्रकार की कही है, यथा—
(१) मति-अज्ञान क्रिया, (२) श्रुत-अज्ञान क्रिया,
(३) विभंग-अज्ञान क्रिया।
अज्ञान तीन प्रकार का कहा है, यथा—
(१) देश अज्ञान, (२) सर्व अज्ञान, (३) भाव अज्ञान।

---

१ प्रयोगक्रिया आत्मा की वीर्य-शक्ति के व्यापार को कहते हैं, मिथ्यात्वी जीव का प्रयोग असम्यक् होने से अक्रिय कहा जाता है; और उससे जीव के कर्मबन्ध होता है। आत्मा की वीर्य-शक्ति का व्यापार मन, वचन और काया द्वारा व्यक्त होता है, इसलिए प्रयोगक्रिया के ये तीन भेद हैं।

२ समुदानक्रिया—मन, वचन और काया के व्यापार से संचित कर्म रज का प्रकृतिबन्ध आदि रूप से अथवा देशघाति एवं सर्वघातिरूप से व्यवस्थित होना समुदान क्रिया है।

३ अनन्तर समुदान क्रिया—प्रथम समय में होने वाली क्रिया।

४ परम्परा समुदान क्रिया—द्वितीयादि समयों में होने वाली क्रिया।

५ तदुभय समुदान क्रिया—प्रथमाप्रथम समयों में होने वाली क्रिया।

६ विवक्षित द्रव्य के एक देश को न जानना देश अज्ञान है।

७ विवक्षित द्रव्य को सर्वथा न जानना सर्व अज्ञान है।

८ विवक्षित द्रव्य के पर्याय न जानना "भाव अज्ञान" है।—टीका

२६२. दसविधे मिच्छत्ते पण्णत्ते, तं जहा—

१. अधम्मे धम्मसण्णा,
२. धम्मे अधम्मसण्णा,
३. उम्मग्गे मग्गसण्णा,
४. मग्गे उम्मग्गसण्णा,
५. अजीवेसु जीवसण्णा,
६. जीवेसु अजीवसण्णा,
७. असाहुसु साहुसण्णा,
८. साहुसु असाहुसण्णा,
९. अमुत्तेसु मुत्तसण्णा,
१०. मुत्तेसु अमुत्तसण्णा । —ठाणं. अ. १०, सु. ७३४

२६२. मिथ्यात्व दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

(१) अधर्म को धर्म मानना,
(२) धर्म को अधर्म मानना,
(३) उन्मार्ग को सुमार्ग मानना,
(४) सुमार्ग को उन्मार्ग मानना,
(५) अजीवों को जीव मानना,
(६) जीवों को अजीव मानना,
(७) असाधुओं को साधु मानना,
(८) साधुओं को असाधु मानना,
(९) अमुक्तों को मुक्त मानना,
(१०) मुक्तों को अमुक्त मानना।

मोहमूढस्स बोहप्पदाणं—

२६३. अदक्खुव दक्खुवाहितं, सद्दहसु अदक्खुदंसणा ।
हंदि हु सुनिरुद्धदंसणे, मोहणिज्जेण कडेण कम्मुणा ।।

दुक्खी मोहे पुणो पुणो, निव्विंदेज्ज सिलोग-पूयणं ।
एवं सहिते हि पासए, आयतुलं पाणेहिं संजते ।।
—सूय. सु. १, अ. २, उ. ३, गा. ११-१२

मोहमूढ़ को बोधदान—

२६३. अदृष्टवत् (अन्धतुल्य) पुरुष ! प्रत्यक्षदर्शी (सर्वज्ञ) द्वारा कथित दर्शन (सिद्धान्त) में श्रद्धा करो। हे असर्वज्ञदर्शन पुरुषो ! स्वयंकृत मोहनीय कर्म से जिसकी दृष्टि अवरुद्ध हो गई है, (वह सर्वज्ञोक्त सिद्धान्त को नहीं मानता) यह समझ लो।

दुःखी जीव पुनः पुनः मोह--विवेकमूढ़ता को प्राप्त करता है। (अतः) अपनी स्तुति और पूजा से साधु को विरक्त रहना चाहिए। इस प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र-सम्पन्न संयमी साधु समस्त प्राणियों को आत्मतुल्य देखे।

मोहमूढस्स दुद्दसा—

२६४. पासह एगेऽवसीयमाणे अणत्तपण्णे ।

से बेमि—से जहावि कुम्मे हरए विणिविट्ठचित्ते पच्छण्णपलासे, उम्मग्गं से णो लभति ।

भंजगा इव संनिवेसं नो चयंति ।

एवं पेगे अणेगरूवेहिं कुलेहिं जाता
रूवेहिं सत्ता कलुणं थणंति,
णिदाणतो ते ण लभंति मोक्खं ।।१७८।।

अह पास तेहिं कुलेहिं आयत्ताए जाया—

गंडी अहवा कोढी रायंसी अवमारियं ।
काणियं झिमियं चेव कुणितं खुज्जितं तहा ।।

मोहमूढ़ की दुर्दशा—

२६४. उन्हें देखो, जो आत्मप्रज्ञा से शून्य हैं, इसलिए विषाद पाते हैं।

मैं कहता हूँ—जैसे एक कछुआ है, उसका चित्त महाह्रद में लगा हुआ है। वह सरोवर शैवाल और कमल के पत्तों से ढका हुआ है। वह कछुआ उन्मुक्त आकाश को देखने के लिए छिद्र को भी नहीं पा रहा है।

जैसे वृक्ष (विविध शीत-तापादि सहते हुए भी) अपने स्थान को नहीं छोड़ते, वैसे ही कुछ लोग हैं (जो अनेक सांसारिक कष्ट पाते हुए भी गृहवास को नहीं छोड़ते)।

इसी प्रकार कई (गुरुकर्मा) लोग अनेक प्रकार के कुलों में जन्म लेते हैं, किन्तु रूपादि विषयों में आसक्त होकर करुण विलाप करते हैं, ऐसे व्यक्ति दुःखों के हेतुभूत कर्मों से मुक्त नहीं हो पाते।

अच्छा तू देख वे उन कुलों में आत्मत्व (अपने-अपने कृत कर्मों के फलों को भोगने) के लिए निम्नोक्त रोगों के शिकार हो जाते हैं—

(१) गण्डमाला, (२) कोढ़, (३) राजयक्ष्मा, (४) अपस्मार (मृगी या मूर्छा), (५) काणत्व, (६) जड़ता, (७) कुणित्व,

उवरिं च पास, मुइं च सूणियं च गिलासिणिं।
वेवइं पीढसप्पि च सिलिवयं मधुमेहणिं ॥
सोलस एते रोगा अक्खाया अणुपुव्वसो।

(टूंटापन, एक हाथ या पैर छोटा या एक बड़ा), (८) कुबड़ापन, (९) उदररोग, (१०) मूकरोग (गूंगापन), (११) शोथरोग—सूजन, (१२) भस्मकरोग, (१३) कम्पनवात, (१४) पीठसर्पी—पंगुता, (१५) श्लीपदरोग (हाथीपगा) और (१६) मधुमेह ये सोलह रोग क्रमशः कहे गये हैं।

अह णं फुसंति आतंका फासा य असमंजसा ॥१७९॥

इसके अनन्तर (शूल आदि मरणान्तक) आतंक (दुःसाध्य रोग) और अप्रत्याशित (दुःखों के) स्पर्श प्राप्त होते हैं।

मरणं तेसिं सपेहाए उववायं चयणं च णच्चा
परियागं च सपेहाए तं सुणेहि जहा तहा।

उन मनुष्यों की मृत्यु का पर्यालोचन कर उपपात और च्यवन को जानकर तथा कर्मों के विपाक (फल) का भलीभाँति विचार करके उसके यथातथ्य को सुनो।

संति पाणा अंधा तमंसि वियाहिता।
तामेव सइं असइं अतियच्च उच्चावचे फासे पडिसंवेदेति।

(इस संसार में) ऐसे भी प्राणी बताये गये हैं, जो अन्धे होते हैं, और अन्धकार में ही रहते हैं। वे प्राणी उसी को एक बार या अनेक बार भोगकर तीव्र और मन्द स्पर्शों का प्रतिसंवेदन करते हैं।

बुद्धेहिं एवं पवेदितं।
संति पाणा वासगा रसगा उदए उदयचरा आगासगामिणो

बुद्धों (तीर्थंकरों) ने इस तथ्य का प्रतिपादन किया है।

(और भी अनेक प्रकार के) प्राणी होते हैं—जैसे—वर्षज (वर्षा ऋतु में उत्पन्न होने वाले मेंढक आदि) अथवा वासक (भाषालब्धि-सम्पन्न द्वीन्द्रियादि प्राणी), रसज-रस में उत्पन्न होने वाले अथवा रसग (रसज्ञ संज्ञी जीव), उदक --एकेन्द्रिय अप्कायिक जीव, या जल में उत्पन्न होने वाले कृमि या जलचर जीव, आकाशगामी-नभचरपक्षी आदि।

पाणा पाणे किलेसंति।
पास लोए महब्भयं।
बहुदुक्खा हु जंतवो।
सत्ता कामेहिं माणवा।
अबलेण वहं गच्छंति सरीरेणं पभंगुरेण।

वे प्राणी अन्य प्राणियों को कष्ट देते हैं।

तू देख, लोक में महान् भय है।

संसार में जीव बहुत ही दुःखी हैं।

मनुष्य काम-भोगों में आसक्त हैं।

इस निर्बल शरीर को सुख देने के लिए अन्य प्राणियों के वध की इच्छा करते हैं।

अट्टे से बहुदुक्खे इति बाले पकुव्वति।

वेदना से पीड़ित वह मनुष्य दुःख पाता है। इसलिए वह अज्ञानी प्राणियों को कष्ट देता है।

एते रोगे बहू णच्चा आतुरा परितावए।

इन अनेक रोगों को उत्पन्न हुए जानकर आतुर मनुष्य (चिकित्सा के लिए अन्य प्राणियों को) परिताप देते हैं।

णालं पास। अलं तवेतेहिं।

तू देख! ये (प्राणिघातक-चिकित्साविधियाँ कर्मोदय जनित रोगों का शमन करने में पर्याप्त (समर्थ नहीं है अतः इनसे तुमको दूर रहना चाहिए।

एतं पास मुणी! महब्भया णातिवातेज्ज कंचणं।
—आ. सु. १, अ. ६, उ. १, सु. १७८-१८०

मुनिवर! तू देख! यह (हिंसामूलक चिकित्सा) महान् भयरूप है। अतः किसी भी प्राणी का अतिपात-वध मत कर।

छव्विहे विवादे—

विवाद—शास्त्रार्थ के छह प्रकार—

२६५. छव्विहे विवादे पण्णत्ते, तं जहा—
१. ओसक्कइत्ता,

२६५. विवाद—शास्त्रार्थ छह प्रकार का कहा गया है, जैसे—

(१) वादी के तर्क का उत्तर ध्यान में न आने पर समय बिताने के लिए प्रकृत विषय से हट जाना।

२. उस्सक्कइत्ता,

(२) शास्त्रार्थ की पूर्ण तैयारी होते ही वादी को पराजित करने के लिए आगे आना।

३. अणुलोमइत्ता,

(३) विवादाध्यक्ष को अपने अनुकूल बना लेना, अथवा प्रतिवादी के पक्ष का एक बार समर्थन कर उसे अपने अनुकूल कर लेना।

४. पडिलोमइत्ता,

(४) शास्त्रार्थ की पूर्णतः तैयारी होने पर विवादाध्यक्ष तथा प्रतिपक्षी की उपेक्षा कर देना।

५. भइत्ता,

(५) विवादाध्यक्ष की सेवा कर उसे अपने पक्ष में कर लेना।

६. भेलइत्ता। —ठाणं. अ. ६, सु. ५१२

(६) निर्णायकों में अपने समर्थकों का बहुमत कर लेना।

विवरीयपरूवणस्स पायच्छित्तं—

२६६. जे भिक्खू अप्पाणं विप्परियासेइ विप्परियासंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू परं विप्परियासेइ विप्परियासंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —नि. उ. ११, सु. ७०-७१—(६४)

विपरीत प्ररूपणा का प्रायश्चित—

२६६. जो भिक्षु अपनी विपरीत धारणा बनाता है, बनवाता है, बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु दूसरे की विपरीत धारणा बनाता है, बनवाता है, बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

वह भिक्षु गुरु चातुर्मासिक परिहार प्रायश्चित्त स्थान का पात्र होता है।

अण्णउत्थियाणं चउरो वाया—

२६७. चत्तारि समोसरणाणिमाणि, पावादुया जाइं पुढो वयंति।
किरियं अकिरियं विणयं ति तइयं, अण्णाणमाहंसु चउत्थमेव॥
—सूय. सु. १, अ. १२, गा. १

अन्यतीर्थियों के चार वाद—

२६७. परतीर्थिक मतवादी (प्रावादुक) जिन्हें पृथक्-पृथक् बतलाते हैं, वे चार समवसरण—वाद या सिद्धान्त ये हैं—क्रियावाद, अक्रियावाद, तीसरा विनयवाद, और चौथा अज्ञानवाद।

किरियावाईणं सद्धा—

२६८. प०—से किं तं किरिया-वाई यावि भवति?

उ०—किरिया वाई, भवति।

तं जहा—आहिय-वाई, आहिय-पण्णे, आहिय-दिट्ठी,

सम्मा-वाई, निया-वाई, संति पर-लोगवादी,

अत्थि इहलोगे, अत्थि परलोगे, अत्थि माया, अत्थि पिया, अत्थि अरिहंता, अत्थि चक्कवट्टी, अत्थि बलदेवा, अत्थि वासुदेवा,

अत्थि सुकड-दुक्कडाणं कम्माणं फल-वित्ति-विसेसे,
सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णा फला भवंति,
दुच्चिण्णा कम्मा दुच्चिण्णा फला भवंति,
सफले कल्लाण-पावए,

पच्चायंति जीवा,
अत्थि नेरइया-जाव-अत्थि देवा अत्थि सिद्धी।

क्रियावादियों की श्रद्धा—

२६८. प्र०—भगवन्! क्रियावादी कौन है?

उ०—जो अक्रियावादी से विपरीत आचरण करता है।

यथा—जो आस्तिकवादी है, आस्तिकबुद्धि है, आस्तिक दृष्टि है,

सम्यक्‌वादी है, नित्य (मोक्ष) वादी है, परलोकवादी है,

जो यह मानता है कि इह लोक है, पर लोक है, माता है, पिता है, अरिहंत हैं, चक्रवर्ती हैं, बलदेव हैं, वासुदेव हैं,

सुकृत और दुष्कृत कर्मों का फलवृत्ति-विशेष होता है सु-आचरित कर्म शुभफल देते हैं और असद् आचरित कर्म अशुभ फल देते हैं,

कल्याण (पुण्य) और पाप फल-सहित हैं, अर्थात् अपना फल देते हैं,

जीव परलोक में जाते भी हैं और आते भी हैं,

नारकी हैं,—यावत्—(तिर्यंच हैं, मनुष्य हैं) देव हैं और सिद्धि (मुक्ति) है। इस प्रकार मानने वाला आस्तिक क्रियावादी कहलाता है।

से एवं वादी एवं पन्ने एवं दिट्ठि-छंद-रागाभिनिवट्ठे यावि भवइ ।
से भवइ महिच्छे-जाव-उत्तरगामिणेरइए सुक्कपक्खिए, आगमेस्साणं सुलभबोहिए यावि भवइ ।

इस प्रकार का आस्तिकवादी, आस्तिक प्रज्ञ, और आस्तिक दृष्टि (कदाचित् चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से) स्वच्छन्द रागाभिनिविष्ट महान् इच्छाओं वाला भी होता है, और वैसी दशा में यदि नरकायु का बन्ध कर लेता है तो वह उत्तर दिशा-वर्ती नरकों में उत्पन्न होता है, वह शुक्लपाक्षिक होता है और आगामीकाल में सुलभबोधि होता है,—यावत्—सुगतियों को प्राप्त करता हुआ अन्त में मोक्षगामी होता है।

से तं किरिया-वादी । ——दसा. द. ६, सु. १५-१६

यह क्रियावादी है।

एगंत किरियावाई—

२६९. अहावरं पुरक्खायं किरियावाइदरिसणं ।
कम्मचिंतापणट्ठाणं संसारपरिवड्ढणं ॥

एकान्त क्रियावादी—

२६९. दूसरा पूर्वोक्त (एकान्त) क्रियावादियों का दर्शन है। कर्म (कर्म-बन्धन) की चिन्ता से रहित (उन एकान्त क्रियावादियों का दर्शन) (जन्म-मरण-रूप) संसार की या दुःख समूह की वृद्धि करने वाला है।

जाणं काएण णाउट्टी अबुहो जं च हिंसती ।
पुट्ठो संवेदेति परं अवियत्तं खु सावज्जं ॥

जो व्यक्ति जानता हुआ मन से हिंसा करता है, किन्तु शरीर से छेदन-भेदनादि क्रिया रूप हिंसा नहीं करता एवं जो अनजान में (शरीर से) हिंसा कर देता है, वह केवल स्पर्शमात्र से उसका (कर्मबन्ध का) फल भोगता है। वस्तुतः वह सावद्य (पाप) कर्म अव्यक्त-अस्पष्ट-अप्रकट होता है।

संतिमे तओ आयणा जेहिं कीरति पावगं ।
अभिकम्माय पेसाय मणसा अणुजाणिया ॥

ये तीन (कर्मों के) आदान (ग्रहण—बन्ध के कारण) हैं, जिनसे पाप (पापकर्मबन्ध) किया जाता है—(१) किसी प्राणी को मारने के लिए स्वयं अभिक्रम-आक्रमण करना, (२) प्राणि वध के लिए नौकर आदि को भेजना या प्रेरित करना, और (३) मन से अनुज्ञा-अनुमोदना देना।

एए उ तओ आयणा जेहिं कीरति पावगं ।
एवं भावविसोहिए णिव्वाणमभिगच्छती ॥

ये ही तीन आदान-कर्मबन्ध के कारण हैं, जिनसे पापकर्म किया जाता है। वहां (पाप कर्म से) भावों की विशुद्धि होने से कर्मबन्ध नहीं, किन्तु मोक्ष की प्राप्ति होती है।

पुत्तं पि ता समारंभ आहारट्ठमसंजए ।
भुंजमाणो य मेधावी कम्मुणा नोवलिप्पति ॥

(किसी दुष्काल आदि विपत्ति के समय) कोई असंयत गृहस्थ पिता आहार के लिए पुत्र को भी मारकर भोजन करे तो वह कर्मबन्ध नहीं करता। तथा मेधावी साधु भी निस्पृहभाव से उस आहार मांस का सेवन करता हुआ कर्म से लिप्त नहीं होता।

मणसा जे पउस्संति चित्तं तेसिं ण विज्जती ।
अणवज्जं अतहं तेसिं ण ते संवुडचारिणो ॥
—सूय. सु. १, अ. १, उ. २, गा. २४-२९

जो लोग मन से (किसी प्राणी पर) द्वेष करते हैं, उनका चित्त विशुद्धियुक्त नहीं है तथा उनके (उस) कृत्य को निरवद्य (निष्पाप) कहना अतथ्य-मिथ्या है तथा वे लोग संवर के साथ विचरण करने वाले नहीं है।

एगंत किरियावायस्स सम्मं किरियावायस्स परूवगा—

२७०. ते एवमक्खंति समेच्च लोगं,
तहा तहा समणा माहणा य ।
सयकडं णण्णकडं च दुक्खं,
आहंसु विज्जाचरणं पमोक्खं ॥

एकान्त क्रियावाद और सम्यक् क्रियावाद प्ररूपक—

२७०. वे श्रमण (शाक्यभिक्षु) और माहन (ब्राह्मण) अपने-अपने अभिप्राय के अनुसार लोक को जानकर उस-उस क्रिया के अनुसार फल प्राप्त होना बताते हैं।

तथा (वे यह भी कहते हैं कि) दुःख स्वयंकृत (अपना ही किया हुआ) होता है, अन्यकृत नहीं। परन्तु तीर्थंकरों ने विद्या (ज्ञान) और चरण (चारित्र-क्रिया) से मोक्ष कहा है।

ते चक्खु लोगंसिह णायगा तु,
मग्गाऽणुसासंति हितं पयाणं ।
तहा तहा सासयमाहु लोए,
जंसी पया माणव ! संपगाढा ॥

इस लोक में तीर्थंकर आदि नेत्र के समान हैं, तथा वे (शासन) नायक (धर्म नेता या प्रधान) हैं। वे प्रजाओं के लिए हितकर ज्ञानादि रूप मोक्षमार्ग की शिक्षा देते हैं।

इस चतुर्दशरज्ज्वात्मक या पंचास्तिकायरूप लोक में जो-जो वस्तु जिस-जिस प्रकार से द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से शाश्वत है उसे उसी प्रकार से उन्होंने कही है। अथवा यह जीवनिकायरूप लोक (संसार) जिन-जिन मिथ्यात्व आदि कारणों से जैसे-जैसे शाश्वत (सुदृढ़ या सुदीर्घ) होता है, वैसे-वैसे उन्होंने बताया है, अथवा जैसे-जैसे राग-द्वेष आदि या कर्म की मात्रा में अभिवृद्धि होती है, वैसे-वैसे सांसाराभिवृद्धि होती है, यह उन्होंने कहा है, जिस संसार में (नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव के रूप में) प्राणिगण निवास करते हैं।

जे रक्खसा वा जमलोइया वा,
जे वा सुरा गंधव्वा य काया ।
आगासगामी य पुढोसिया य,
पुणो पुणो विप्परियासुवेंति ॥

जो राक्षस हैं, अथवा यमलोकवासी (नारक) हैं तथा जो चारों निकाय के देव हैं, या जो देव गन्धर्व हैं, और पृथ्वीकाय आदि षड्जीवनिकाय के हैं तथा जो आकाशगामी हैं एवं जो पृथ्वी पर रहते हैं, वे सब (अपने किये हुए कर्मों के फलस्वरूप) बार-बार विविध रूपों में (विभिन्न गतियों से) परिभ्रमण करते रहते हैं।

जमाहु ओहं सलिलं अपारगं,
जाणाहि णं भवगहणं दुमोक्खं ।

तीर्थंकरों गणधरों आदि ने जिस संसार सागर को स्वयम्भू-रमण समुद्र के जल की तरह अपार (दुस्तर) कहा है, उस गहन संसार को दुर्मोक्ष (दुःख से छुटकारा पाया जा सके, ऐसा) जानो।

जंसी विसण्णा विसयंगणाहिं,
दुहतो वि लोयं अणुसंचरति ॥

—सूय. सु. १, अ. १२, गा. ११-१४

जिस संसार में विषयों और अंगनाओं में आसक्त जीव दोनों ही प्रकार से (स्थावर और जंगमरूप) अथवा आकाशाश्रित एवं पृथ्वी-आश्रित रूप से अथवा वेषमात्र से प्रव्रज्याधारी होने और अविरति के कारण, एक लोक से दूसरे लोक में भ्रमण करते रहते हैं।

ण कम्मुणा कम्म खवेंति बाला,
अकम्मुणा उ कम्म खवेंति धीरा ।
मेधाविणो लोभमयावतीता,
संतोसिणो णो पकरेंति पावं ॥

अज्ञानी जीव (पापयुक्त) कर्म करके अपने कर्मों का क्षय नहीं कर सकते। अकर्म के द्वारा (आश्रवों—कर्म के आगमन को रोक कर, अन्ततः शैलेशी अवस्था में) धीर (महासत्व) साधक कर्म का क्षय करते हैं। मेधावी साधक लोभमय (परिग्रह) कार्यों से अतीत (दूर) होते हैं, वे सन्तोषी होकर पापकर्म नहीं करते।

ते तीत-उप्पण्ण-मणागताइं,
लोगस्स जाणंति तहागताइं ।
णेतारो अण्णेसि अणण्णणेया,
बुद्धा हु ते अंतकडा भवंति ॥

वे वीतराग पुरुष प्राणिलोक (पंचास्तिकायात्मक या प्राणि-समूह रूप लोक) के भूत, वर्तमान एवं भविष्य (के सुख-दुःखादि वृत्तान्तों) को यथार्थ रूप में जानते हैं। वे दूसरे जीवों के नेता हैं, परन्तु उनका कोई नेता नहीं है। वे ज्ञानी पुरुष (स्वयंबुद्ध, तीर्थंकर, गणधर आदि) संसार (जन्म-मरण) का अन्त कर देते हैं।

ते णेव कुव्वंति ण कारवेंति,
भूताभिसंकाए दुगुंछमाणा ।

वे (प्रत्यक्षज्ञानी या परोक्षज्ञानी तत्त्वज्ञ पुरुष) प्राणियों के घात की आशंका (डर) से पाप-कर्म से घृणा (अरुचि) करते हुए स्वयं हिंसादि पापकर्म नहीं करते, न ही दूसरे से पाप (हिंसादि) कर्म कराते हैं।

सया जता विप्पणमंति धीरा,
विण्णत्तिधीरा य भवंति एगे ॥
—सूय. सु. १, अ. १२, गा. १५-१७

वे धीर पुरुष सदैव संयत (पापकर्म से निवृत्त) रहते हुए संयमानुष्ठान की ओर झुके रहते हैं। परन्तु कई अन्यदर्शनी ज्ञान (विज्ञप्ति) मात्र से वीर बनते हैं, क्रिया से नहीं।

सम्मकिरियावायस्स पडिवायका पालगा य—

२७१. डहरे य पाणे वुड्ढे य पाणे,
ते आततो पासति सव्वलोए।
उवेहति लोगमिणं महंतं,
बुद्धऽप्पमत्तेसु परिव्वएज्जा ॥

सम्यक् क्रियावाद के प्रतिपादक और अनुगामी—

२७१. इस समस्त लोक में छोटे-छोटे (कुन्थु आदि) प्राणी भी हैं और बड़े-बड़े (स्थूल शरीर वाले हाथी आदि) प्राणी भी हैं। सम्यक्वादी सुसाधु उन्हें अपनी आत्मा के समान देखता-जानता है। "यह प्रत्यक्ष दृश्यमान विशाल (महान्) प्राणिलोक कर्मवश दुःखरूप है," इस प्रकार की उत्प्रेक्षा (अनुप्रेक्षा- विचारणा) करता हुआ वह तत्वदर्शी पुरुष अप्रमत्त साधुओं से दीक्षा ग्रहण करे—प्रव्रजित हो।

जे आततो परतो यावि णच्चा,
अलमप्पणो होति अलं परेसिं।
तं जोतिभूतं च सताऽऽवसेज्जा,
जे पाउकुज्जा अणुवीयि धम्मं ॥

जो सम्यक् क्रियावादी साधक स्वयं अथवा दूसरे (तीर्थंकर, गणधर आदि) से जीवादि पदार्थों को जानकर अन्य जिज्ञासुओं या मुमुक्षुओं को उपदेश देता है, जो अपना या दूसरों का उद्धार या रक्षण करने में समर्थ है, जो जीवों की कर्म परिणति को अथवा सद्धर्म (श्रुत-चारित्ररूप धर्म या क्षमादिदशविध श्रमण धर्म एवं श्रावक धर्म) का विचार करके (तदनुरूप) धर्म को प्रकट करता है, उस ज्योतिः स्वरूप (तेजस्वी) मुनि के सान्निध्य में सदा निवास करना चाहिए।

अत्ताण जो जाणति जो य लोगं,
आगइं च जो जाणइ णागइं च।
जो सासयं जाणइ असासयं च,
जातीं मरणं च चयणोववातं ॥
अहो वि सत्ताण विउट्टणं च,
जो आसवं जाणति संवरं च।
दुक्खं च जो जाणति निज्जरं च,
सो भासितुमरिहति किरियवादं ॥

जो आत्मा को जानता है, जो लोक को तथा जीवों की गति और अनागति (सिद्धि) को जानता है, इसी तरह शाश्वत (मोक्ष) और अशाश्वत (संसार) को तथा जन्म-मरण एवं प्राणियों के नाना गतियों में गमन को जानता है; तथा अधोलोक (नरक आदि) में भी जीवों को नाना प्रकार की पीड़ा होती है, यह जो जानता है, एवं जो आश्रव (कर्मों के आगमन) और संवर (कर्मों के निरोध) को जानता है तथा जो दुःख (बन्ध) और निर्जरा को जानता है, वही सम्यक् क्रियावादी साधक क्रियावाद को सम्यक् प्रकार से बता सकता है।

सद्देसु रूवेसु असज्जमाणे,
गंधेसु रसेसु अदुस्समाणे।
णो जीवियं णो मरणाभिकंखी,
आदाणगुत्ते वलयाविमुक्के ॥
—सूय. सु. १, अ. १२, गा. १८-२२

सम्यग्वादी साधु मनोज्ञ शब्दों और रूपों में आसक्त न हो, न ही अमनोज्ञ गन्ध और रस के प्रति द्वेष करे तथा वह (असंयमी जीवन) जीने की आकांक्षा न करे, और न ही (परीषहों और उपसर्गों से पीड़ित होने पर) मृत्यु की इच्छा करे। किन्तु संयम (आदान) से सुरक्षित (गुप्त) और माया से विमुक्त होकर रहे।

अकिरियावाइ सरूवं—

२७२. अकिरियावाइ-वण्णणं, तं जहा—अकिरिया यावि भवइ नाहिय-वाई, नाहिय-पण्णे, नाहिय-दिट्ठी,

अक्रियावादी का स्वरूप—

२७२. जो अक्रियावादी है, अर्थात् जीवादि पदार्थों के अस्तित्व का अपलाप करता है, नास्तिकवादी है, नास्तिक बुद्धिवाला है, नास्तिक दृष्टि रखता है।

णो सम्मवाई, णो णितियवादी, णं संति परलोगवाई,

जो सम्यक्वादी नहीं है, नित्यवादी नहीं है और क्षणिकवादी है, जो परलोकवादी नहीं है।

णत्थि इह लोए, णत्थि पर लोए, णत्थि माया, णत्थि पिया, णत्थि अरिहंता, णत्थि चक्कवट्टी, णत्थि बलदेवा, णत्थि वासुदेवा, णत्थि णिरया णत्थि णेरइया,

जो कहता है कि इहलोक नहीं है, परलोक नहीं है, माता नहीं है, पिता नहीं है, अरिहन्त नहीं है, चक्रवर्ती नहीं है, बलदेव नहीं है, वासुदेव नहीं है, नरक नहीं है, नारकी नहीं है।

णत्थि सुकड-दुक्कडाणं फल-वित्ति-विसेसो,

सुकृत (पुण्य) और दुष्कृत (पाप) कर्मों का फलवृत्ति विशेष नहीं है,

णो सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला भवंति,

सुचीर्ण (सम्यक् प्रकार से आचरित) कर्म, सुचीर्ण (शुभ) फल नहीं देते हैं,

णो दुच्चिण्णा कम्मा दुच्चिण्णफला भवंति,

दुश्चीर्ण (कुत्सित प्रकार से आचरित) कर्म, दुश्चीर्ण (अशुभ) फल नहीं देते हैं,

अफले कल्लाण-पावए, णो पच्चायंति जीवा,
णत्थि णिरयगई, तिरियगई, मणुस्सगई, देवगई, णत्थि सिद्धि

कल्याण (शुभ) कर्म और पापकर्म फलरहित हैं, जीव परलोक में जाकर उत्पन्न नहीं होते, नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव ये चार गतियाँ नहीं हैं, सिद्धि मुक्ति नहीं है।

से एवं वादी, एवं पण्णे, एवं दिट्ठी, एवं छंद-रागाभिनिविट्ठे यावि भवई।

जो इस प्रकार कहने वाला है, इस प्रकार की प्रज्ञा (बुद्धि) वाला है, इस प्रकार की दृष्टिवाला है, और जो इस प्रकार के छन्द (इच्छा या लोभ) और राग (तीव्र अभिनिवेश या कदाग्रह) से अभिनिविष्ट (सम्पन्न) है, वह मिथ्यादृष्टि जीव है।

से भवति महिच्छे, महारंभे, महापरिग्गहे, अहम्मिए, अहम्माणुए, अहम्मसेवी, अहम्मिट्ठे, अहम्मक्खाइ, अहम्मरागी अहम्मपलोई, अहम्मजीवी, अहम्म-पलज्जणे, अहम्म-सील-समुदायारे, अहम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ।

ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव महा इच्छा वाला, महारम्भी, महापरिग्रही, अधार्मिक, अधर्मानुगामी, अधर्मसेवी, अधर्मिष्ट, अधर्म ख्यातिवाला, अधर्मानुरागी, अधर्मदृष्टा, अधर्मजीवी, अधर्म में अनुरक्त रहने वाला, अधार्मिक शील-स्वभाववाला, अधार्मिक आचरण और अधर्म से ही आजीविका करता हुआ विचरता है।

"हण, छिंद, भिंद" विकत्तए,

(वह मिथ्यादृष्टि नास्तिक आजीविका के लिए दूसरों से) कहता है—जीवों को मारो, उनके अंगों का छेदन करो, सिर-पेट आदि का भेदन करो, काटो, (इसका अन्त करो, वह स्वयं जीवों का अन्त करता है)

लोहियपाणी, चंडे, रुद्दे, खुद्दे, असमिक्खियकारी, साहस्सिए,

उसके हाथ रक्त से रंगे रहते हैं, वह चण्ड, रौद्र और क्षुद्र होता है, असमीक्षित (बिना विचारे) कार्य करता है, साहसिक होता है,

उक्कंचण-वंचण-माया-नियडि-कूड-कवड-साइ-संपओग-बहुले,

लोगों से उत्कोच (रिश्वत-घूस) लेता है, प्रवंचन, माया, निकृति (छल) कूट, कपट और सातिसम्प्रयोग (माया-जाल रचने) में बहुत कुशल होता है।

दुस्सीले, दुपरिचए, दुच्चरिए, दुरणुणेए, दुव्वए, दुप्पडियाणंदे,

वह दुःशील होता है, दुष्टजनों से परिचय रखता है, दुश्चरित होता है, दुरनुनेय (दारुणस्वभावी) होता है, हिंसा-प्रधान व्रतों को धारण करता है, दुष्प्रत्यानन्द (दुष्कृत्यों को करने और सुनने से आनन्दित) होता है अथवा उपकारी के साथ कृतघ्नता करके आनन्द मानता है।

निस्सीले, निव्वए, निग्गुणे, निम्मेरे, निप्पच्चक्खाण-पोसहोववासे, असाहू।

—दस. द. ६, सु. ३-५

शील-रहित होता है, व्रत रहित होता है, प्रत्याख्यान (त्याग) और पौषधोपवास नहीं करता है, अर्थात् श्रावक व्रतों से रहित होता है और असाधु है, अर्थात् साधुव्रतों का पालन नहीं करता है।

अकिरियाइणं समिक्खा—

२७३. ""सवावसंकी य अणागतेहिं,
णो किरियमाहंसु अकिरियआया ।
सम्मिस्सभावं सगिरा गिहीते,
से मुम्मुई होति अणाणुवादी ।
इमं दुपक्खं इममेगपक्खं
आहंसु छलायतणं च कम्मं ॥
ते एवमक्खंति अबुज्झमाणा,
विरूवरूवाणि अकिरियाता ।
जमादिदित्ता बहवो मणूसा,
भमंति संसारमणोवतग्गं ॥
णाइच्चो उवेति ण अत्थमेति,
ण चंदिमा वड्ढती हायती वा ।
सलिला ण संदंति ण वंति वाया,
वंझे णियते कसिणे हु लोए ॥
जहा य अंधे सह जोतिणा वि,
रूवाइं णो पस्सति हीणणेत्ते ।
संतं पि ते एवमकिरियआता,
किरियं ण पस्संति निरुद्धपण्णा ॥
संवच्छरं सुविणं लक्खणं च,
निमित्तं देहं उप्पाइयं च ।
अट्ठंगमेतं बहवे अहित्ता,
लोगंसि जाणंति अणागताइं ॥
केई निमित्ता तहिया भवंति,
केसिंचि तं विप्पडिएति णाणं ।
ते विज्जभावं अणहिज्जमाणा,
आहंसु विज्जापलिमोक्खमेव ॥

—सूय. सु. १, अ. १२, गा. ४-१०

अक्रियावादियों की समीक्षा—

२७३. (उत्तरार्द्ध) तथालव वानि कर्मबन्ध की शंका करने वाले अक्रियावादी भविष्य और भूतकाल के क्षणों के साथ वर्तमान-काल का कोई सम्बन्ध (संगति) न होने से क्रिया (और तज्ज-नित कर्मबन्ध) का निषेध करते हैं।

वे (पूर्वोक्त अक्रियावादी) अपनी वाणी से स्वीकार किये हुए पदार्थों का निषेध करते हुए मिश्रपक्ष को (पदार्थ के अस्तित्व और नास्तित्व दोनों से मिश्रित विरुद्धपक्ष को) स्वीकार करते हैं। वे स्याद्वादियों के कथन का अनुवाद करने (दोहराने) में भी असमर्थ होकर अति मूक हो जाते हैं।

वे इस पर-मत को द्विपक्ष-प्रतिपक्ष युक्त तथा स्वमत को प्रतिपक्ष रहित बताते हैं एवं स्याद्वादियों के हेतु वचनों को खण्डन करने के लिए वे छलयुक्त वचन एवं कर्म (व्यवहार) का प्रयोग करते हैं।

वस्तुतत्व को न समझने वाले वे अक्रियावादी नाना प्रकार के शास्त्रों का कथन (शास्त्रवचन प्रस्तुत) करते हैं। जिन शास्त्रों का आश्रय लेकर बहुत-से मनुष्य अनन्तकाल तक संसार में परि-भ्रमण करते हैं।

सर्वशून्यतावादी (अक्रियावादी) कहते हैं कि न तो सूर्य उदय होता है, और न ही अस्त होता है तथा चन्द्रमा (भी) न तो बढ़ता है और न घटता है, एवं नदी आदि के जल बहते नहीं और न ही हवाएँ चलती हैं। यह सारा लोक अर्थशून्य (वन्ध्य या मिथ्या) एवं नियत (निश्चित-अभाव) रूप है।

जैसे अन्धा मनुष्य किसी ज्योति (दीपक आदि के प्रकाश) के साथ रहने पर भी नेत्रहीन होने से देख नहीं पाता, इसी तरह जिनकी प्रज्ञा ज्ञानावरण के कारण रुकी हुई है, वे बुद्धिहीन अक्रियावादी सम्मुख विद्यमान क्रिया को भी नहीं देखते।

जगत् में बहुत-से लोग ज्योतिषशास्त्र (संवत्सर), स्वप्न-शास्त्र, लक्षणशास्त्र, निमित्तशास्त्र शरीर पर प्रादुर्भूत-तिल-मष आदि चिन्हों का फल बताने वाला शास्त्र, तथा उल्कापात दिग्दाह, आदि का फल बताने वाला शास्त्र, इन अष्टांग (आठ अंगों वाले) निमित्त शास्त्रों को पढ़कर भविष्य की बातों को जान लेते हैं।

कई निमित्त तो सत्य (तथ्य) होते हैं और किन्हीं-किन्हीं निमित्तवादियों का वह ज्ञान विपरीत (अयथार्थ) होता है। यह देखकर विद्या का अध्ययन न करते हुए अक्रियावादी विद्या से परिमुक्त होने—त्याग देने को ही कल्याणकारक कहते हैं।

अकिरियावाइस्स मिच्छादंडप्पओगो—

२७४. (क) १. सव्वाओ पाणाइवायाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

२. सव्वाओ मुसावायाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

३. सव्वाओ अदिन्नादाणाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

४. सव्वाओ मेहुणाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

५. सव्वाओ परिग्गहाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

६. सव्वाओ कोहाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

७. सव्वाओ माणाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

८. सव्वाओ मायाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

९. सव्वाओ लोभाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

१०. सव्वाओ पेज्जाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

११. सव्वाओ दोसाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

१२. सव्वाओ कलहाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

१३. सव्वाओ अब्भक्खाणाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

१४. सव्वाओ पिसुण्णाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

१५. सव्वाओ परपरिवायाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

१६. सव्वाओ अरइ रइ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

१७. सव्वाओ मायामोसाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

१८. सव्वाओ मिच्छादंसणसल्लाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए।

—दसा. द. ६, सु. ६

(ख) सव्वाओ कसाय-दंतकट्ठ-ण्हाण-मद्दण-विलेवण-सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधमल्लालंकाराओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए,

अक्रियावादी का मिथ्यादण्ड प्रयोग—

२७४. (क) वह यावज्जीवन सर्व प्रकार के प्राणातिपात (जीवघात) से अप्रतिविरत रहता है अर्थात् सभी प्रकार की जीवहिंसा करता है,

२. यावज्जीवन सर्वप्रकार के मृषावाद से अप्रतिविरत रहता है,

३. यावज्जीवन सर्वप्रकार के अदत्तादान से अप्रतिविरत रहता है,

४. यावज्जीवन सर्वप्रकार के मैथुन-सेवन से अप्रतिविरत रहता है,

५. यावज्जीवन सर्वप्रकार के परिग्रह से अप्रतिविरत रहता है अर्थात् त्याग नहीं करता है,

६. यावज्जीवन सर्वप्रकार के क्रोध से अप्रतिविरत रहता है,

७. यावज्जीवन सर्वप्रकार के मान से अप्रतिविरत रहता है,

८. यावज्जीवन सर्वप्रकार के माया से अप्रतिविरत रहता है,

९. यावज्जीवन सर्वप्रकार के लोभ से अप्रतिविरत रहता है,

१०. यावज्जीवन सर्वप्रकार के प्रेय (राग) से अप्रतिविरत रहता है,

११. यावज्जीवन सर्वप्रकार के द्वेष से अप्रतिविरत रहता है,

१२. यावज्जीवन सर्वप्रकार के कलह से अप्रतिविरत रहता है,

१३. यावज्जीवन सर्वप्रकार के अभ्याख्यान से अप्रतिविरत रहता है,

१४. यावज्जीवन सर्वप्रकार के पैशुन्य से (चुगली करने से) अप्रतिविरत रहता है,

१५. यावज्जीवन सर्वप्रकार के पर-परिवाद (लोगों का पीठ पीछे अपवाद) करने से अप्रतिविरत रहता है,

१६. यावज्जीवन सर्वप्रकार की रति (इष्ट पदार्थों के मिलने पर प्रसन्नता) और अरति (इष्ट पदार्थों के नहीं मिलने पर अप्रसन्नता) से अप्रतिविरत रहता है,

१७. यावज्जीवन सर्वप्रकार की माया-मृषा (छलपूर्वक असत्य भाषण करने और वेष-भूषा बदलकर दूसरों को ठगने से) अप्रतिविरत रहता है,

१८. यावज्जीवन सर्वप्रकार के मिथ्यादर्शन शल्य से अप्रतिविरत रहता है अर्थात् जन्म भर उक्त पाप-स्थानों का सेवन करता रहता है।

(ख) वह नास्तिक मिथ्यादृष्टि सर्वप्रकार के कषाय रंग के वस्त्र, दन्तकाष्ठ (दातुन-दन्तधावन) स्नान, मर्दन, विलेपन, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, माला और अलंकारों (आभूषणों) से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है।

सव्वाओ सगड-रह-जाण-जुग-गिल्लि-थिल्लि-सीया-संदमाणिया-सयणासण-जाण-वाहण-भोयण-पवित्थर-विहिओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए;

वह सर्वप्रकार के शकट, रथ, यान, युग, गिल्ली, थिल्ली, शिविका, स्यन्दमानिका, शयनासन, यान, वाहन, भोजन और प्रविस्तर विधि (गृह-सम्बन्धी वस्त्र-पात्रादि) से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है। (अर्थात् सभी प्रकार के पंचेन्द्रियों के विषय-सेवन में अति आसक्त रहता है, सभी प्रकार की सवारियों का उपभोग करता है और नाना प्रकार के गृह-सम्बन्धी वस्त्र, आभरण, भोजनादि का संग्रह करता रहता है।)

सव्वाओ आस-हत्थि-गो-महिस-गवेलय-मेस-दास-दासी-कम्मकर-पोरुस्साओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए;

वह मिथ्यादृष्टि सर्व अश्व, हस्ती, गौ (गाय-बैल) महिष (भैंस-पाड़ा), गवेलक (बकरा-बकरी), मेष (भेड़-मेंढा), दास, दासी और कर्मकर (नौकर-चाकर आदि) पुरुष-समूह से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है।

सव्वाओ कय-विक्कय-मासद्ध-मासरूवग-संववहाराओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए;

वह सर्वप्रकार के क्रय (खरीद) विक्रय (बिक्री) माषार्धमाष (मासा, आधामासा) रूपक-संव्यवहार से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है।

सव्वाओ हिरण्ण-सुवण्ण-धण-धन्न-मणि-मोत्तिय-संख-सिलप्पवालाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए;

वह सर्व हिरण्य (चाँदी), सुवर्ण, धन-धान्य, मणि-मौक्तिक, शंख-शिलप्रवाल (मूंगा) से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है।

सव्वाओ कूडतुल्ल-कूडमाणाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए;

वह सर्वप्रकार के कूटतुला, कूटमान (हीनाधिक तोल-नाप) से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है।

सव्वाओ आरम्भ-समारंभाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए;

वह सर्व आरम्भ-समारम्भ से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है।

सव्वाओ पयण-पयावणाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए;

वह सर्व प्रकार के पचन-पाचन से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है।

सव्वाओ करण-करावणाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए;

वह सर्व कार्यों के करने-कराने से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है।

सव्वाओ कुट्टण-पिट्टणाओ तज्जण-तालणाओ वह-बंध-परिकिलेसाओ अप्पडिविरए जावज्जीवाए;

वह सर्वप्रकार के कूटने-पीटने से, तर्जन-ताड़न से, वध, बन्ध और परिक्लेश से यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है

जे यावण्णे तहप्पगारा सावज्जा अबोहिया कम्मा पर-पाण-परियावण कडा कज्जंति तओ वि य अप्पडिविरए जावज्जीवाए।

—यावत् जितने भी उक्त प्रकार के सावद्य (पापयुक्त) अबोधिक (मिथ्यात्ववर्धक) और दूसरे जीवों के प्राणों को परिताप पहुँचाने वाले कर्म किये जाते हैं, उनसे भी वह यावज्जीवन अप्रतिविरत रहता है। अर्थात् उक्त सभी प्रकार के पाप-कार्यों एवं आरम्भ-समारम्भों में संलग्न रहता है।

(वह मिथ्यादृष्टि पापात्मा किस प्रकार से उक्त पाप-कार्यों के करने में लगा रहता है, इस बात को एक दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हैं—)

से जहानामए केइ पुरिसे कलम-मसूर-तिल-मूंग-मास-निप्फाव-कुलत्थ-आलिसंदग-सेत्तीणा हरिमंथ जवजवा एवमाइएहिं अयते कूरे मिच्छा दंडं पउंजइ ।

जैसे कोई पुरुष कलम (धान्य), मसूर, तिल, मूंग, माष (उड़द) निष्पाव (बालोल, धान्यविशेष) कुलत्थ (कुलथी) आलिसिंदक (चवला) सेतीणा (तुवर) हरिमन्थ (काला चना) जव-जव (ज्वार) और इसी प्रकार के दूसरे धान्यों को बिना किसी यतना के (जीव-रक्षा के भाव बिना) क्रूरतापूर्वक उपमर्दन करता हुआ मिथ्यादण्ड प्रयोग करता है, अर्थात् उक्त धान्यों को जिस प्रकार खेत में लुनते, खलिहान में दलन-मलन करते, मूसल से उखली में कूटते, चक्की से दलते-पीसते और चूल्हे पर राँधते हुए निर्दय व्यवहार करता है।

एवामेव तहप्पगारे पुरिसजाए तित्तिर-वट्टग-लावग-कपोत-कपिंजल-मिय-महिस-वाराह-गाह-गोह-कुम्मसरी-सिवाविएहिं अयते कूरे मिच्छा दंडं पउंजइ ।

—दसा. द. ६, सु. ७-८

उसी प्रकार कोई पुरुष-विशेष तीतर, बटेर, लावा, कबूतर, कपिंजल (कुरज-एक पक्षि विशेष) मृग, भैंसा, वराह (सूकर), ग्राह (मगर), गोधा (गोह, गोहरा), कछुआ और सर्प आदि निरपराध प्राणियों पर अयतना से क्रूरतापूर्वक मिथ्यादण्ड का प्रयोग करता है, अर्थात् इन जीवों के मारने में कोई पाप नहीं है, इस बुद्धि से उनका निर्दयतापूर्वक घात करता है।

(ग) जाविय से बाहिरिया परिसा भवति, तं जहा—दासे इ वा, पेसे इ वा, भिअए इ वा, भाइल्ले इ वा, कम्मकरे इ वा, भोगपुरिसे इ वा, तेसिं पि य णं अण्णयरगंसि अहा—लहुयंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंडं निवत्तेति । तं जहा—

(ग) उस मिथ्यादृष्टि की जो बाहरी परिषद् होती है, जैसे—दास (क्रीत किंकर) प्रेष्य (दूत) भृतक (वेतन से काम करने वाला) भागिक (भागीदार कार्यकर्ता) कर्मकर (घरेलू काम करने वाला) या भोग पुरुष (उसके उपार्जित धन का भोग करने वाला) आदि, उनके द्वारा अतिलघु अपराध के हो जाने पर स्वयं ही भारी दण्ड देने की आज्ञा देता है।

इमं दंडेह, इमं मुंडेह, इमं तज्जेह, इमं तालेह, इमं अंदुय-बंधणं करेह, इमं नियल-बंधणं करेह, इमं हडि-बंधणं करेह, इमं चारग-बंधणं करेह, इमं नियल-जुयल-संकोडिय-मोडियं करेह, इमं हत्थछिन्नयं करेह, इमं पाय-छिन्नयं करेह, इमं कण्ण-छिन्नयं करेह, इमं नक्क-छिन्नयं करेह, इमं सीसछिन्नयं करेह, इमं मुख-छिन्नयं करेह, इमं वेय छिन्नयं करेह, इमं उट्ठछिन्नयं करेह, इमं हियउप्पाडियं करेह,

जैसे—(हे पुरुषो), इसे डण्डे आदि से पीटो, इसका शिर मुंडा डालो, इसे तर्जित करो, इसे थप्पड़ लगाओ, इसके हाथों में हथकड़ी डालो, इसके पैरों में बेड़ी डालो, इसे खोडे में डालो, इसे कारागृह (जेल) में बन्द करो, इसके दोनों पैरों को सांकल से कसकर मोड़ दो, इसके हाथ काट दो, इसके पैर काट दो, इसके कान काट दो, इसकी नाक काट दो, इसके ओठ काट दो, इसका शिर काट दो, इसका मुख छिन्न-भिन्न कर दो, इसका पुरुष-चिन्ह काट दो, इसका हृदय-विदारण करो।

एवं नयण-वसण-दसण-वदण-जिब्भ-उप्पाडियं करेह, इमं उल्लंबियं करेह, इमं घासियं, इमं घोलियं, इमं सूलाइयं, इमं सूलाभिन्नं, इमं खारवत्तियं करेह, इमं दब्भ-वत्तियं करेह, इमं सीह-पुच्छयं करेह, इमं वसभपुच्छयं करेह, इमं दवग्गि-दड्ढयं करेह, इमं काकणीमंस-खावियं करेह इमं भत्तपाण-निरुद्धयं करेह, इमं जावज्जीव-बंधणं करेह, इमं अन्नतरेणं असुभ-कुमारेणं मारेह ।

इसी प्रकार इसके नेत्र, वृषण (अण्डकोष) दशन (दाँत) वदन (मुख) और जीभ को उखाड़ दो, इसे रस्सी से बाँधकर वृक्ष आदि पर लटका दो, इसे बाँधकर भूमि पर घसीटो, इसका दही के समान मन्थन करो, इसे शूली पर चढ़ा दो, इसे त्रिशूल से भेद दो, इसके शरीर को शस्त्रों से छिन्न-भिन्न कर उस पर क्षार (नमक, सज्जी, आदि खारी वस्तु) भर दो, इसके घावों में डाभ (तीक्ष्ण घास कास) चुभाओ, इसे सिंह की पूंछ से बाँधकर छोड़ दो, इसे वृषभ सांड की पूंछ से बाँधकर छोड़ दो, इसे दावाग्नि में जला दो, इसके माँस के कौड़ी के समान टुकड़े बना कर काक-गिद्ध आदि को खिला दो, इसका खान-पान बन्द कर दो, इसे यावज्जीवन बन्धन में रखो, इसे किसी भी अन्य प्रकार की कुमौत से मार डालो।

जा वि य से अब्भिंतरिया परिसा भवति, तं जहा—माया इ वा, पिया इ वा, भाया इ वा, भगिणी इ वा, भज्जा इ वा, धूया इ वा, सुण्हा इ वा तेसिं पि य णं अण्णयरंसि अहा लहुयंसि अवराहंसि सयमेव गरुयं दंडं निवत्तेति, तं जहा—

उस मिथ्यादृष्टि की जो आभ्यन्तर परिषद् होती है, जैसे—माता, पिता, भ्राता, भगिनी, भार्या (पत्नी) पुत्री, स्नुषा (पुत्रवधू) आदि. उनके द्वारा किसी छोटे से अपराध के होने पर स्वयं ही भारी दण्ड देता है।

सीयोदग-वियडंसि कायं ओबोलित्ता भवइ;

जैसे—शीतकाल में अत्यन्त शीतल जल से भरे तालाब आदि में उसका शरीर डुबाता है।

उसिणोदग-वियडेण कायं ओसिंचित्ता भवइ;

उष्णकाल में अत्यन्त उष्णजल उसके शरीर पर सिंचन करता है,

अगणिकाएण कायं उड्डहित्ता भवइ;

उनके शरीर को आग से जलाता है।

जोत्तेण वा, वेत्तेण वा, नेत्तेण वा, कसेण वा, छिवाडीए वा, लयाए वा, पासाइं उद्दालित्ता भवइ,

जोत (बैलों के गले में बाँधने के उपकरण) से, बेंत आदि से, नेत्र (दही मथने की रस्सी) से, कशा (हण्टर चाबुक) से, छिवाड़ी (चिकनी चाबुक) से, या लता (गुर-बेल) से मार-मारकर दोनों पार्श्वभागों का चमड़ा उधेड़ देता है।

दंडेण वा, अट्ठीण वा, मुट्ठीण वा, लेलुएण वा, कवालेण वा, कायं आउट्टित्ता भवइ।

अथवा डण्डे से, हड्डी से, मुट्ठी से, पत्थर के ढेले से और कपाल (खप्पर) से उसके शरीर को कूटता-पीटता है।

तहप्पगारे पुरिस-जाए संवसमाणे दुम्मणा भवंति।
तहप्पगारे पुरिस-जाए विप्पवसमाणे सुमणा भवंति।

इस प्रकार के पुरुषवर्ग के साथ रहने वाले मनुष्य दुर्मन (दुःखी) रहते हैं और इस प्रकार के पुरुषवर्ग से दूर रहने पर मनुष्य प्रसन्न रहते हैं।

तहप्पगारे पुरिस-जाए, दंडमासी, दंडगुरुए, दंडपुरक्खडे,

इस प्रकार का पुरुषवर्ग सदा डण्डे को पार्श्वभाग में रखता है और किसी के अल्प अपराध के होने पर भी अधिक से अधिक दण्ड देने का विचार रखता है, तथा दण्ड देने को सदा उद्यत रहता है और डण्डे को ही आगे कर बात करता है।

अहिए अस्सि लोयंसि, अहिए परंसि लोयंसि।

ऐसा मनुष्य इस लोक में भी अपना अहित-कारक है और परलोक में भी अपना अकल्याण करने वाला है।

ते दुक्खेंति, सोयंति, एवं झुरेंति, तिप्पंति, पिट्टेंति, परितप्पंति,

उक्त प्रकार के मिथ्यादृष्टि अक्रियावादी नास्तिक लोग दूसरों को दुःखित करते हैं, शोक-संतप्त करते हैं, दुःख पहुँचाकर झुरित करते हैं, सताते हैं, पीड़ा पहुँचाते हैं, पीटते हैं और अनेक प्रकार से परिताप पहुँचाते हैं।

ते दुक्खण-सोयण-झुरण-तिप्पण-पिट्टण-परितप्पण-वह-बंध-परिकिलेसाओ अप्पडिविरए।

—दस. द. ६, सु. ९-११

वह दूसरों को दुःख देने से, शोक उत्पन्न करने से, झुराने से, रुलाने से, पीटने से, परितापन से, वध से, बन्ध से नाना प्रकार के दुःख-सन्ताप पहुँचाता हुआ उनसे अप्रतिविरत रहता है, अर्थात् सदा ही दूसरों को दुःख पहुँचाने में संलग्न रहता है।

(घ) एवामेव से इत्थि-काम भोगेहिं मुच्छिए, गिद्धे, गढिए, अज्झोववण्णे,

(घ) इसी प्रकार वह स्त्री सम्बन्धी काम-भोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त और पंचेन्द्रियों के विषयों में निमग्न रहता है।

-जाव-वासाइं चउ-पंचमाइं, छद्दसमाणि वा अप्पतरो वा भुज्जतरो वा कालं भुंजित्ता कामभोगाइं, पसेवित्ता वेरायतणाइं, संचिणित्ता बहूयं पावाइं कम्माइं,

—**यावत्** – वह चार-पाँच वर्ष, या छह-सात वर्ष, या आठ-दस वर्ष या इससे अल्प या अधिक काल तक काम-भोगों को भोगकर वैर-भाव के सभी स्थानों का सेवन कर और बहुत पाप-कर्मों का संचय कर,

ओसन्नं संभार-कडेण कम्मुणा । से जहानामए—

प्रायः स्वकृत कर्मों के भार से; जैसे,

अयगोले इ वा, सेलगोले इ वा उदयंसि पक्खित्ते समाणे उदग-तलमइवत्तित्ता अहे धरणि-तले पइट्ठाणे भवइ,

लोहे का गोला या पत्थर का गोला जल में फेंका जाने पर जल-तल का अतिक्रमण कर नीचे भूमि-तल में जा पैठता है,

एवामेव तहप्पगारे पुरिसजाए वज्ज-बहुले, धुण्ण-बहुले, पंक-बहुले, वेर-बहुले दंभ-नियडि-साइ-बहुले, आसायणा-बहुले, अयस-बहुले, अप्पत्तिय-बहुले

वैसे ही उक्त प्रकार का पुरुषवर्ग वज्रवत् पाप-बहुल, क्लेश-बहुल, पंक-बहुल, वैर-बहुल, दम्भ-निकृति-साति-बहुल, आशातना-बहुल, अयश-बहुल, अप्रतीति-बहुल होता हुआ,

ओसण्णं तस-पाण-घाती कालमासे कालं किच्चा धरणि-तलमइवत्तित्ता अहे नरग-धरणितले पइट्ठाणे भवइ ।

प्रायः त्रस प्राणियों का घात करता हुआ कालमास में काल इस भूमि-तल का अतिक्रमण कर नीचे नरक भूमि-तल में जाकर (मरण) करके प्रतिष्ठित हो जाता है ।

ते णं नरगा—

वे नरक—

अंतो वट्टा, बाहिं चउरंसा, अहे-खुरप्पसंठाण-संठिआ, निच्चंधकार-तमसा,

भीतर से वृत्त (गोल) और बाहिर चतुरस् (चौकोण) हैं, नीचे क्षुरप्र (क्षुरा-उस्तरा) के आकार से संस्थित है, नित्य घोर अन्धकार से व्याप्त है,

ववगय-गह-चंद-सूर-णक्खत्त-जोइस-पहा,

और चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र इन ज्योतिष्कों की प्रभा से रहित हैं,

मेद-वसा-मंस-रुहिर-पूय-पडल-चिक्खल - लित्ताणुलेवण-तला,

उन नरकों का भूमितल मेद-वसा (चर्बी), मांस, रुधिर, पूय (विकृत रक्त पीव), पटल (समूह) की कीचड़ से लिप्त-अतिलिप्त है ।

असुइविस्सा, परमदुब्भिगंधा,

वे नरक मल-मूत्रादि अशुचि पदार्थों से भरे हुए हैं, परम दुर्गन्धमय हैं,

काउय-अगणि-वण्णाभा, कक्खड-फासा दुरहियासा ।

काली या कपोत वर्ण वाली अग्नि के वर्ण जैसी आभा वाले हैं, कर्कश स्पर्श वाले हैं, अतः उनका स्पर्श असह्य है,

असुभा नरगा । असुभा नरएसु वेयणा ।

वे नरक अशुभ हैं अतः उन नरकों में वेदनाएँ भी अशुभ ही होती हैं ।

नो चेव णं नरएसु नेरइया निद्दायंति वा, पयलायंति वा, सुइं वा रइं वा, धिइं वा, मइं वा उवलभंति ।

उन नरकों में नारकी न निद्रा ही ले सकते हैं और न ऊंघ ही सकते हैं । उन्हें स्मृति, रति, धृति और मति उपलब्ध नहीं होती है ।

ते णं तत्थ—

वे नारकी उन नरकों में—

उज्जलं, विउलं पगाढं, कक्कसं, कडुयं, चंडं, दुक्खं, दुग्गं, तिक्खं, तिव्वं दुरहियासं नरएसु नेरइया नरय-वेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति ।

उज्ज्वल, विपुल, प्रगाढ़, कर्कश, कटुक, चण्ड, रौद्र दुःखमय तीक्ष्ण, तीव्र दुःसह नरक-वेदनाओं का प्रतिसमय अनुभव करते हुए विचरते हैं ।

से जहानामए रुक्खे सिया पव्वयग्गे जाए, मूलच्छिन्ने, अग्गे गरुए,

जैसे पर्वत के अग्रभाग (शिखर) पर उत्पन्न वृक्ष मूल भाग के काट दिये जाने पर उपरिम भाग के भारी होने से

जओ निन्नं, जओ दुग्गं, जओ विसमं तओ पवडति । एवामेव तहप्पगारे पुरिसजाए गब्भाओ गब्भं, जम्माओ जम्मं, माराओ मारं, दुक्खाओ दुक्खं,

जहाँ निम्न (नीचा) स्थान है, जहाँ दुर्गम प्रवेश है और जहाँ विषम स्थल है वहाँ गिरता है, इसी प्रकार उपर्युक्त प्रकार का मिथ्यात्वी घोर पापी पुरुष वर्ग एक गर्भ से दूसरे गर्भ में, एक जन्म से दूसरे जन्म में, एक मरण से दूसरे मरण में, और एक दुःख से दूसरे दुःख में पड़ता है ।

दाहिण-गामि णेरइए, कण्हपक्खिए, आगमेस्साणं-जाव-दुल्लभबोहिए यावि भवति।

वह दक्षिण-दिशा-स्थित घोर नरकों में जाता है, वह कृष्ण पाक्षिक नारकी आगामी काल में—**यावत्**—दुर्लभबोधि वाला होता है।

से तं अकिरिया-वाई यावि भवइ।

—दसा. द. ६, सु. १२-१४

उक्त प्रकार का जीव अक्रियावादी है।

एगंतणाणवाई—

एकान्त ज्ञानवादी—

२७५. कल्लाणे पावए वा वि,
ववहारो ण विज्जई।
जं वेरं तं न जाणंति,
समणा बालपंडिया॥

२७५. यह व्यक्ति एकान्त कल्याणवान् (पुण्यवान्) है, और यह एकान्त पापी है, ऐसा व्यवहार नहीं होता, (तथापि) बालपण्डित (सद्-असद्-विवेक से रहित होते हुए भी स्वयं को पण्डित मानने वाले) (शाक्य आदि) श्रमण (एकान्त पक्ष के अवलम्बन से उत्पन्न होने वाले), वैर (कर्मबन्धन) नहीं जानते।

असेसं अक्खयं वा वि,
सव्वदुक्खे त्ति वा पुणो।
वज्झा पाणा न वज्झ त्ति,
इति वायं न नीसरे॥

जगत् के अशेष (समस्त) पदार्थ अक्षय (एकान्त नित्य) हैं, अथवा एकान्त अनित्य हैं, ऐसा कथन (प्ररूपण) नहीं करना चाहिए, तथा सारा जगत् एकान्त रूप से दुःखमय है, ऐसा वचन भी नहीं कहना चाहिए एवं अमुक प्राणी वध्य है, अमुक अवध्य है, ऐसा वचन भी साधु को (मुंह से) नहीं निकालना चाहिए।

दीसंति समियाचारा,
भिक्खुणो साहुजीविणो।
एए मिच्छोवजीवि त्ति,
इति दिट्ठिं न धारए॥

साधुतापूर्वक जीने वाले, (शास्त्रोक्त) सम्यक् आचार के परिपालक निर्दोष भिक्षाजीवी साधु दृष्टिगोचर होते हैं, इसलिए ऐसी दृष्टि नहीं रखनी चाहिए कि ये साधुगण कपट से जीविका (जीवननिर्वाह) करते हैं।

दक्खिणाए पडिलंभो,
अत्थि नत्थि त्ति वा पुणो।
ण वियागरेज्ज मेहावी,
संतिमग्गं च बूहए॥

—सूय. सु. २, अ. ५, गा. २९-३२

मेधावी (विवेकी) साधु को ऐसा (भविष्य) कथन नहीं करना चाहिए कि दान का प्रतिलाभ अमुक से होता है, अमुक से नहीं होता, अथवा तुम्हें आज भिक्षा-लाभ होगा या नहीं? किन्तु जिससे शान्ति की वृद्धि होती हो, ऐसा वचन कहना चाहिए।

भणन्ता अकरेन्ता य,
बन्धमोक्खपइण्णिणो।
वायाविरियमेत्तेण
समासासेन्ति अप्पयं॥

"ज्ञान से ही मोक्ष होता है"—जो ऐसा कहते हैं, पर उसके लिए कोई क्रिया नहीं करते, वे केवल बन्ध और मोक्ष के सिद्धांत की स्थापना करने वाले हैं। वे केवल वाणी की वीरता से अपने आपको आश्वासन देने वाले हैं।

न चित्ता तायए भासा,
कओ विज्जाणुसासणं।
विसन्ना पावकम्मेहिं,
बाला पंडियमाणिणो॥

—उत्त. अ. ६, गा. ९-१०

विविध भाषाएँ त्राण नहीं होतीं। विद्या का अनुशासन भी कहाँ त्राण देता है? (जो इनको त्राण मानते हैं वे) अपने आपको पण्डित मानने वाले अज्ञानी मनुष्य विविध प्रकार से पाप-कर्मों में डूबे रहते हैं।

अण्णाणवायं—

अज्ञानवाद—

२७६. जविणो मिगा जहा संता परिताणेण वज्जिता।
असंकियाइं संकंति संकियाइं असंकिणो॥

२७६. जैसे परित्राण-संरक्षण से रहित अत्यन्त शीघ्र भागने वाले मृग शंका से रहित स्थानों में शंका करते हैं और शंका करने योग्य स्थानों में शंका नहीं करते।

परियाणियाणि संकंता पासिताणि असंकिणो।
अण्णाणभयसंविग्गा संपलिंती तहिं तहिं॥

सुरक्षित-परित्राणित स्थानों को शंका-स्पद और पाश-बन्धन-युक्त स्थानों को शंकारहित मानते हुए अज्ञान और भय से उद्विग्न वे (मृग) उन—(पाशयुक्तबन्धन वाले) स्थलों में ही जा पहुँचते हैं।

अह तं पवेज्ज बज्झं अहे बज्झस्स वा वए।
मुंचेज्ज पयपासाओ तं तु मंदे ण देहती॥

यदि वह मृग उस बन्धन को लाँघकर चला जाए, अथवा उसके नीचे होकर निकल जाए तो पैरों में पड़े हुए (उस) पाश बन्धन से छूट सकता है, किन्तु वह मूर्ख मृग तो उस (बन्धन) को देखता (ही) नहीं है।

अहियप्पा हियपण्णाणे विसमंतेणुवागते।
से बद्धे पयपासेहिं तत्थ घायं नियच्छति॥

अहितात्मा-अपना ही अहित करने वाले अहितबुद्धि (प्रज्ञा) वाला वह मृग कूट-पाशादि (बन्धन) से युक्त विषम प्रदेश में पहुँचकर वहाँ पद-बन्धन से बँध जाता है और (वहीं) वध को प्राप्त होता है।

एवं तु समणा एगे मिच्छद्दिट्ठी अणारिया।
असंकिताइं संकंति संकिताइं असंकिणो॥

इसी प्रकार कई मिथ्यादृष्टि अनार्य श्रमण अशंकनीय-शंका के अयोग्य स्थानों में शंका करते हैं और शंकनीय-शंका के योग्य स्थानों में निःशंक रहते हैं—शंका नहीं करते।

धम्मपण्णवणा जा सा तं तु संकंति मूढगा।
आरंभाइं न संकंति अवियत्ता अकोविया॥

वे मूढ़ मिथ्यादृष्टि, धर्मप्रज्ञापना—धर्मप्ररूपणा में तो शंका करते हैं, (जबकि) आरम्भों हिंसायुक्त कार्यों में (सत्शास्त्रज्ञान से रहित है, इस कारण) शंका नहीं करते।

सव्वप्पगं विउक्कस्सं सव्वं णूमं विहूणिया।
अप्पत्तियं अकम्मंसे एयमट्ठं मिगे चुए॥

सर्वात्मक—सबके अन्तःकरण में व्याप्त—लोभ, समस्त माया, विविध उत्कर्षरूप मान और अप्रत्ययरूप क्रोध को त्यागकर ही जीव अकर्मांश (कर्म से सर्वथा) रहित होता है। किन्तु इस (सर्वज्ञ-भाषित) अर्थ (सदुपदेश या सिद्धान्त अथवा सत्य) को मृग के समान (बेचारा) अज्ञानी जीव ठुकरा देता है।

जे एतं णाभिजाणंति मिच्छद्दिट्ठी अणारिया।
मिगा वा पासबद्धा ते घायमेसंति णंतसो॥

जो मिथ्यादृष्टि अनार्यपुरुष इस अर्थ (सिद्धान्त या सत्य) को नहीं जानते मृग की तरह पाश (बन्धन) में बद्ध वे (मिथ्यादृष्टि अज्ञानी) अनन्तबार घात—विनाश को प्राप्त करेंगे—विनाश को ढूंढते हैं।

माहणा समणा एगे सव्वे णाणं सयं वदे।
सव्वलोगे वि जे पाणा न ते जाणंति किंचणं॥

कई ब्राह्मण (माहन) एवं श्रमण (ये) सभी अपना-अपना ज्ञान बघारते हैं—बतलाते हैं परन्तु समस्त लोक में जो प्राणी हैं, उन्हें भी (उनके विषय में भी) वे कुछ नहीं जानते।

मिलक्खू अमिलक्खुस्स जहा वुत्ताणुभासती।
ण हेउं से विजाणाति भासियं तऽणुभासतो॥

जैसे म्लेच्छ पुरुष अम्लेच्छ (आर्य) पुरुष के कथन (कहे हुए) का (सिर्फ) अनुवाद कर देता है। वह हेतु (उस कथन के कारण या रहस्य) को विशेष नहीं जानता, किन्तु उसके द्वारा कहे हुए वक्तव्य के अनुसार ही (परमार्थशून्य) कह देता है।

एवमण्णाणिया नाणं वयंता वि सयं सयं।
णिच्छयत्थं ण जाणंति मिलक्खू व अबोहिए॥

इसी तरह सम्यग्ज्ञानहीन (ब्राह्मण और श्रमण) अपना-अपना ज्ञान बघारते—कहते हुए भी (उसके) निश्चित अर्थ (परमार्थ) को नहीं जानते। वे (पूर्वोक्त) म्लेच्छों—अनार्यों की तरह सम्यक् बोधरहित हैं।

अण्णाणियाण वीमंसा अण्णाणे णो णियच्छती।
अप्पणो य परं णालं कुतो अण्णेऽणुसासिउं ? ॥

अज्ञानियों—अज्ञानवादियों द्वारा अज्ञानपक्ष में मीमांसा-पर्यालोचना करना युक्त (युक्तिसंगत) नहीं हो सकता। (जब) वे (अज्ञानवादी) अपने आपको अनुशासन (स्वकीय शिक्षा) में रखने में समर्थ नहीं है, तब दूसरों को अनुशासित करने (शिक्षा देने) में कैसे समर्थ हो सकते हैं ?

वणे मूढे जहा जंतु मूढणेताणुगामिए।
दुहओ वि अकोविया तिव्वं सोयं णियच्छति ॥

जैसे वन में दिशामूढ़ प्राणी दिशामूढ़ नेता के पीछे चलता है तो सन्मार्ग से अनभिज्ञ वे दोनों ही (कहीं खतरनाक स्थल में पहुँचकर) अवश्य तीव्र शोक में पड़ते हैं—असह्य दुःख पाते हैं—वैसे ही अज्ञानवादी सम्यक् मार्ग के विषय में दिग्मूढ़ नेता के पीछे चलकर बाद में गहन शोक में पड़ जाते हैं।

अंधो अंधं पहं णितो दूरमद्धाण गच्छती।
आवज्जे उप्पहं जंतु अदुवा पंथाणुगामिए ॥

अन्धे मनुष्य को मार्ग पर ले जाता हुआ दूसरा अन्धा पुरुष (जहाँ जाना है, वहाँ से) दूरवर्ती मार्ग पर चला जाता है, इसमें वह (अज्ञानान्ध) प्राणी या तो उत्पथ (ऊबड़-खाबड़ मार्ग) को पकड़ लेता है—पहुँच जाता है, या फिर उस (नेता) के पीछे-पीछे (अन्य मार्ग पर) चला जाता है।

एवमेगे नियायट्ठी धम्ममाराहगा वयं।
अदुवा अधम्ममावज्जे ण ते सव्वज्जुयं वए ॥

इसी प्रकार कई नियागार्थी—मोक्षार्थी कहते हैं—हम धर्म के आराधक हैं, परन्तु (धर्माराधना तो दूर रही) वे (प्रायः) अधर्म को ही (धर्म के नाम से) प्राप्त—स्वीकार कर लेते हैं। वे सर्वथा सरल-अनुकूल संयम के मार्ग को नहीं पकड़ते—नहीं प्राप्त करते।

एवमेगे वितक्काहिं णो अण्णं पज्जुवासिया।
अप्पणो य वितक्काहिं अयमंजू हि दुम्मति ॥

कई दुर्बुद्धि जीव इस प्रकार के (पूर्वोक्त) वितर्कों (विकल्पों) के कारण (अपने अज्ञानवादी नेता को छोड़कर) दूसरे—ज्ञानवादी की पर्युपासना—सेवा नहीं करते। अपने ही वितर्कों से मुग्ध वे यह अज्ञानवाद की यथार्थ (सीधा) है, (यह मानते हैं।)

एवं तक्काए साहेंता धम्मा-धम्मे अकोविया।
दुक्खं ते णाइतुट्टन्ति सउणी पंजरं जहा ॥

धर्म-अधर्म के सम्बन्ध में अज्ञानवादी इस प्रकार के तर्कों से सिद्ध करते हुए दुःख को नहीं तोड़ सकते, जैसे पक्षी पिंजरे को नहीं तोड़ सकता।

सयं सयं पसंसंता गरहंता परं वइं।
जे उ तत्थ विउस्संति संसारं ते विउस्सिया ॥
—सूय. सु. १, अ. १, उ. २, गा. ६-२३

अपने-अपने मत की प्रशंसा करते हुए और दूसरे के वचन की निन्दा करते हुए जो उस विषय में अपना पाण्डित्य प्रकट करते हैं, वे संसार में दृढ़ता से जकड़े रहते हैं।

एगंत अण्णाणवायस्स समिक्खा—

एकान्त अज्ञानवाद-समीक्षा—

२७७. अण्णाणिया ता कुसला वि संता,
असंथुया णो वितिगिंछतिण्णा।
अकोविया आहु अकोवियाए,
अणाणुवीयीति मुसं वयंति ॥
—सूय. सु. १, अ. १२, गा. २

२७७. वे अज्ञानवादी अपने आपको (वाद में) कुशल मानते हुए भी संशय से रहित (विचिकित्सा) को पार किये हुए (नहीं हैं। अतः वे असंस्तुत) असम्बद्धभाषी या मिथ्यावादी होने से अप्रशंसा के पात्र) हैं। वे स्वयं अकोविद (धर्मोपदेश में अनिपुण) हैं और अपने अकोविद (अनिपुण-अज्ञानी) शिष्यों को उपदेश देते हैं। वे (अज्ञान पक्ष का आश्रय लेकर) वस्तुतत्व का विचार किये बिना ही मिथ्याभाषण करते हैं।

एगंत विणयवाइस्स समिक्खा—

२७८. सच्चं असच्चं इति चिंतयंता,
असाहु साहु त्ति उदाहरंता ।।
जेमे जणा वेणइया अणेगे,
पुट्ठा वि भावं विणइंसु णाम ।।
अणोवसंखा इति ते उदाहु,
अट्ठे स ओभासति अम्ह एवं ।
—सूय. सु. १, अ. १२, गा. ३-४/१

एकान्त-विनयवादी की समीक्षा—

२७८. जो सत्य है, उसे असत्य मानते हुए तथा जो असाधु (अच्छा नहीं है,) उसे साधु (अच्छा) बताते हुए ये जो बहुत से विनयवादी लोग हैं, वे पूछने पर भी अपने भाव के अनुसार विनय से ही स्वर्ग-मोक्ष प्राप्ति बताते हैं।

वस्तु के यथार्थ स्वरूप का परिज्ञान न होने से व्यामूढमति वे विनयवादी ऐसा कहते हैं। वे कहते हैं—"हमें अपने प्रयोजन की सिद्धि इसी प्रकार से दिखती है।"

पोंडरीय रूवगं—

२७९. सुयं मे आउसंतेण भगवता एवमक्खायं—
इह खलु पोंडरीए णामं अज्झयणे, तस्स णं अयमट्ठे—पण्णत्ते—
से जहाणामए पोक्खरणी सिया बहुउदगा बहुसेया बहुपुक्खला लद्धट्ठा पुण्डरीगिणी पासादिया दरिसणीया अभिरूवा पडिरूवा ।

पौंडरिक रूपक—

२७९. (श्री सुधर्मास्वामी श्री जम्बूस्वामी से कहते हैं) "हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है—'उन भगवान ने ऐसा कहा था'—
"इस आर्हत् प्रवचन में पौण्डरीक नामक एक अध्ययन है, उसका यह अर्थ—भाव उन्होंने बताया—कल्पना करो कि जैसे कोई पुष्करिणी (कमलों वाली बावड़ी) है, जो अगाध जल से परिपूर्ण है, बहुत कीचड़ वाली है, (अथवा बहुत से अत्यन्त श्वेत पद्म होने तथा स्वच्छ जल होने से अत्यन्त श्वेत है), बहुत पानी होने से अत्यन्त गहरी है अथवा बहुत-से कमलों से युक्त है। वह पुष्करिणी (कमलों वाली इस) नाम को सार्थक करने वाली या यथार्थ नाम वाली, अथवा जगत् में लब्धप्रतिष्ठ है। वह प्रचुर पुण्डरीकों श्वेतकमलों से सम्पन्न है। वह पुष्किरिणी देखने मात्र से चित्त को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, प्रशस्तरूपसम्पन्न, अद्वितीयरूपवाली (अत्यन्त मनोहर) है।

तीसे णं पुक्खरणीए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे पउमवरपोंडरिया बुइया अणुपुव्वुट्ठिया ऊसिया रूइला वण्णमंता गंधमंता रसमंता फासमंता पासादीया दरिसणीया अभिरूवा पडिरूवा ।

उस पुष्करिणी के देश-देश (प्रत्येक देश) में, तथा उन-उन प्रदेशों में—यत्र-तत्र बहुत-से उत्तमोत्तम पौण्डरीक (श्वेतकमल) कहे गए हैं, जो क्रमशः ऊँचे उठे (उभरे) हुए हैं। वे पानी और कीचड़ से ऊपर उठे हुए हैं। अत्यन्त दीप्तिमान् हैं, रंग-रूप में अतीव सुन्दर हैं, सुगन्धित हैं, रसों से युक्त हैं, कोमल स्पर्शवाले हैं, चित्त को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अद्वितीय रूपसम्पन्न एवं सुन्दर हैं।

तीसे णं पुक्खरणीए बहुमज्झदेसभाए एगे महं पउमवरपोंडरिए बुइए, अणुपुव्वुट्ठिए ऊसिते रूइले वण्णमंते रसमंते फासमंते पासादीए दरिसणिए अभिरूवे पडिरूवे ।

उस पुष्करिणी के ठीक बीचोंबीच (मध्यभाग) में एक बहुत बड़ा तथा कमलों में श्रेष्ठ पौण्डरिक (श्वेत) कमल स्थित बताया गया है। वह भी उत्तमोत्तम क्रम से विलक्षण रचना से युक्त है, तथा कीचड़ और जल से ऊपर उठा हुआ है, अथवा बहुत ऊँचा है। वह अत्यन्त रुचिकर या दीप्तिमान् है, मनोज्ञ है, उत्तम सुगन्ध से युक्त है, विलक्षण रसों से सम्पन्न है, कोमलस्पर्श युक्त है, अत्यन्त आल्हादक दर्शनीय, मनोहर और अतिसुन्दर है।

सव्वावंति च णं तीसे पुक्खरणीए तत्थ तत्थ देसे तहिं तहिं

(निष्कर्ष यह है) उस सारी पुष्करिणी में जहाँ-तहाँ, इधर-उधर सभी देश-प्रदेशों में बहुत से उत्तमोत्तम पुण्डरीक (श्वेत-कमल) भरे पड़े (बताए गए) हैं। वे क्रमशः उतार-चढ़ाव से

बहवे पउमवर-पुण्डरीया बुइया अणुपुव्वट्ठिता-जाव-पडिरूवा।

सुन्दर रचना से युक्त है, जल और पंक से ऊपर उठे हुए, —यावत्—पूर्वोक्त गुणों से सम्पन्न अत्यन्त रूपवान् एवं अद्वितीय सुन्दर हैं।

सव्वावंति च णं तीसे पुक्खरणीए बहुमज्झदेसभागे एगे महं पउमवरपोंडरीए बुइते अणुपुव्वट्ठिते-जाव-पडिरूवे।

— सूय. सु. २, अ. १, सु. ६३८

उस समग्र पुष्करिणी के ठीक बीच में एक महान् उत्तम-पुण्डरीक (श्वेतकमल) बताया गया है, जो क्रमशः उभरा हुआ —यावत्—(पूर्वोक्त) सभी गुणों से सुशोभित बहुत मनोरम है।

पोंडरीयपग्गहणे चउरो वि असफला—

श्रेष्ठ पुण्डरीक को पाने में असफल चार पुरुष—

अह पुरिसे पुरत्थिमातो दिसातो आगम्म तं पुक्खरणिं तीसे पुक्खरणीए तीरे ठिच्चा पासति तं महं एगं पउमवरपोंडरियं अणुपुव्वट्ठितं ऊसियं-जाव-पडिरूवं।

अब कोई पुरुष पूर्वदिशा से उस पुष्करिणी के पास आकर उस पुष्करिणी के तीर (किनारे) खड़ा होकर उस महान् उत्तम एक पुण्डरीक को देखता है, जो क्रमशः (उतार चढ़ाव के कारण) सुन्दर रचना से युक्त तथा जल और कीचड़ से ऊपर उठा हुआ एवं—यावत्—(पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त) बड़ा ही मनोहर है।

तए णं से पुरिसे एवं वदासी—

"अहमंसि पुरिसे खेत्तण्णे कुसले पंडिते वियत्ते मेधावी अबाले मग्गत्थे मग्गविदू मग्गस्स गति-परक्कमण्णू,

इसके पश्चात् उस श्वेतकमल को देखकर उस पुरुष ने (मन ही मन) इस प्रकार कहा—"मैं पुरुष हूं, खेदज्ञ (क्षेत्रज्ञ या निपुण) हूँ, कुशल (हित में प्रवृत्ति एवं अहित से निवृत्ति करने में निपुण) हूँ, पण्डित (पाप से दूर, धर्मज्ञ या देशकालज्ञ), व्यक्त (बाल-भाव से निष्क्रान्त-वयस्क अथवा परिपक्वबुद्धि), मेधावी (बुद्धिमान्) तथा अबाल (बालभाव से निवृत्त-युवक) हूँ। मैं मार्गस्थ (सज्जनों द्वारा आचरित मार्ग पर स्थित) हूँ, मार्ग का ज्ञाता हूँ, मार्ग की गति एवं पराक्रम का (जिस मार्ग से चलकर जीव अपने अभीष्टदेश में पहुँचता है, उसका) विशेषज्ञ हूँ।

अहमेयं पउमवरपोंडरियं उन्निक्खेस्सामि" त्ति कट्टु इति वच्चा से पुरिसे अभिक्कमे तं पुक्खरणिं,

जाव जावं च णं अभिक्कमे ताव तावं च णं महंते उदए, महंते सेए पहीणे तीरं, अपत्ते पउमवरपोंडरीयं णो हव्वाए णो पाराए, अंतरा पोक्खरणीए सेयंसि विसण्णे पढमे पुरिसज्जाए।

—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६३९

मैं कमलों में श्रेष्ठ इस पुण्डरीक कमल को (उखाड़कर) बाहर निकाल लूंगा। इस इच्छा से यहां आया हूँ।"—यह कहकर पुरुष उस पुष्करिणी में प्रवेश करता है। वह ज्यों-ज्यों पुष्करिणी में आगे बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उसमें अधिकाधिक गहरा पानी और कीचड़ का उसे सामना करना पड़ता है। अतः वह व्यक्ति तीर से भी हट चुका है और श्रेष्ठ पुण्डरीक कमल के पास भी नहीं पहुँच पाया। वह न इस पार का रहा, न उस पार का। अपितु उस पुष्करिणी के बीच में ही गहरे कीचड़ में फँसकर अत्यन्त क्लेश पाता है। यह प्रथम पुरुष की कथा है।

अहावरे दोच्चे पुरिसज्जाए।

अह पुरिसे दक्खिणातो दिसातो आगम्म तं पुक्खरिणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासति

अब दूसरे पुरुष का वृत्तान्त बताया जाता है।

(पहले पुरुष के कीचड़ में फँस जाने के बाद) दूसरा पुरुष दक्षिण दिशा से उस पुष्करिणी के पास आकर उस (पुष्करिणी) के दक्षिण किनारे पर ठहरकर उस श्रेष्ठ पुण्डरीक को देखता है,

तं महं एगं पउमवरपोंडरीयं अणुपुव्वट्ठितं-जाव-पडिरूवं, तं च एत्थ एगं पुरिसजातं पासति पहीणं तीरं, अपत्तं पउमवरपोंडरीयं, णो हव्वाए णो पाराए, अंतरा पोक्खरणीए सेयंसि विसण्णं।

जो विशिष्ट क्रमबद्ध रचना से युक्त है, —यावत्—(पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त) अत्यन्त सुन्दर है। वहाँ (खड़ा-खड़ा) वह उस (एक) पुरुष को देखता है, जो किनारे से बहुत दूर हट चुका है, और उस प्रधान श्वेतकमल तक पहुँच नहीं पाया है, जो न उधर का रहा है, न उधर का, बल्कि उस पुष्करिणी के बीच में ही कीचड़ में फँस गया है।

तए णं से पुरिसे तं पुरिसं एवं वयासी—अहो णं इमे पुरिसे अखेयण्णे अकुसले अपंडिते अवियत्ते अमेहावी बाले णो मग्गत्थे णो मग्गविऊ णो मग्गस्स गतिपरक्कमण्णू

तदनन्तर दक्षिण दिशा से आये हुए इस दूसरे पुरुष ने उस पहले पुरुष के विषय में कहा कि—"अहो ! यह पुरुष खेदज्ञ (मार्गजनित खेद-परिश्रम को जानता) नहीं है, (अथवा इस क्षेत्र का अनुभव नहीं है,) यह अकुशल है, पण्डित नहीं है, परिपक्व बुद्धिवाला नहीं है, यह अभी बाल—अज्ञानी है। यह सत्पुरुषों के मार्ग में स्थित नहीं है, न ही यह व्यक्ति मार्गवेत्ता है। जिस मार्ग से चलकर मनुष्य अपने अभीष्ट उद्देश्य को प्राप्त करता है, उस मार्ग की गतिविधि तथा पराक्रम को यह नहीं जानता।

जं णं एस पुरिसे "खेयन्ने कुसले-जाव-पउमवरपोंडरीयं उण्णिक्खेस्सामि",

जैसा कि इस व्यक्ति ने यह समझा था कि मैं बड़ा खेदज्ञ या क्षेत्रज्ञ हूँ, कुशल हूँ,—**यावत्**—पूर्वोक्त विशेषताओं से युक्त हूँ, मैं इस पुण्डरीक को उखाड़कर ले जाऊँगा,

णो य खलु एतं पउमवरपोंडरीयं एवं उण्णिक्खेयव्वं जहा णं एस पुरिसे मन्ने।

किन्तु यह पुण्डरीक इस तरह उखाड़कर नहीं लाया जा सकता जैसा कि यह व्यक्ति समझ रहा है।

अहमंसि पुरिसे खेयण्णे कुसले पंडिए वियत्ते मेहावी अबाले मग्गत्थे मग्गविऊ मग्गस्स गतिपरक्कमण्णू अहमेयं पउमवर-पोंडरीयं उण्णिक्खिस्सामि त्ति कट्टु इति वच्चा से पुरिसे अभिक्कमे तं पुक्खरणिं,

"मैं खेदज्ञ (या क्षेत्रज्ञ) पुरुष हूँ, मैं इस कार्य में कुशल हूँ, हिताहित विज्ञ हूँ, परिपक्वबुद्धिसम्पन्न प्रौढ़ हूँ, तथा मेधावी हूँ, मैं नादान बच्चा नहीं हूँ, पूर्वज सज्जनों द्वारा आचरित मार्ग पर स्थित हूँ, उस पथ का ज्ञाता हूँ, उस मार्ग की गतिविधि और पराक्रम को जानता हूँ। मैं अवश्य ही इस उत्तम श्वेतकमल को उखाड़कर बाहर निकाल लाऊँगा, (मैं ऐसी प्रतिज्ञा करके आया हूँ) यों कहकर वह द्वितीय पुरुष उस पुष्करिणी में उतर गया।

-जाव-जावं च णं अभिक्कमे ताव तावं च णं महंते उदए महंते सेए, पहीणे तीरं, अप्पत्ते पउमवरपोंडरीयं, णो हव्वाए णो पाराए, अंतरा सेयंसि विसण्णे दोच्चे पुरिसजाते।

—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६४०

ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता गया, त्यों-त्यों उसे अधिकाधिक कीचड़ और अधिकाधिक जल मिलता गया। इस तरह वह भी किनारे से दूर हट गया और उस प्रधान पुण्डरीक कमल को भी प्राप्त न कर सका। यों वह न इस पार का रहा और न उस पार का रहा। वह पुष्करिणी के बीच में ही कीचड़ में फँसकर रह गया और दुःखी हो गया। यह दूसरे पुरुष का वृत्तान्त है।

अहावरे तच्चे पुरिसजाते।

इसके पश्चात् तीसरे पुरुष का वर्णन किया जाता है।

अह पुरिसे पच्चत्थिमाओ दिसाओ आगम्म तं पुक्खरणिं तीसे पुक्खरिणीए तीरे ठिच्चा पासति तं महं एगं पउमवरपुण्डरियं अणुपुव्वुट्ठियं-जाव-पडिरूवं,

दूसरे पुरुष के पश्चात् तीसरा पुरुष पश्चिम दिशा से उस पुष्करिणी के पास आकर उसके किनारे खड़ा होकर उस एक महान् श्रेष्ठ पुण्डरीक कमल को देखता है, जो विशेष रचना से युक्त—**यावत्**—पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त अत्यन्त मनोहर है।

ते तत्थ दोण्णि पुरिसज्जाते पासति पहीणे तीरं, अप्पत्ते पउमवरपोंडरीयं, णो हव्वाए णो पाराए, -जाव-सेयंसि निसण्णे।

वह वहाँ (उस पुष्करिणी में) उन दोनों पुरुषों को भी देखता है, जो तीर से भ्रष्ट हो चुके हैं और उस उत्तम श्वेतकमल को भी नहीं पा सके, तथा जो न इस पार के रहे और न उस पार के रहे, अपितु पुष्करिणी के अधबीच में अगाध कीचड़ में ही फँस कर दुःखी हो गये थे।

तते णं से पुरिसे एवं वयासी—
अहो णं इमे पुरिसा अखेयण्णा अकुसला अपंडिया अवियत्ता अमेहावी बाला णो मग्गत्था

इसके पश्चात् उस तीसरे पुरुष ने उन दोनों पुरुषों के लिए इस प्रकार कहा—"अहो ! ये दोनों व्यक्ति खेदज्ञ या क्षेत्रज्ञ नहीं है, न पण्डित हैं, न ही प्रौढ—परिपक्वबुद्धिवाले हैं, न ये बुद्धिमान् हैं, ये अभी नादान बालक से हैं, ये साधु पुरुषों द्वारा आचा-

णो मग्गविऊ णो मग्गस्स गतिपरक्कमण्णू, जं णं एते पुरिसा एवं मण्णे "अम्हेतं पउमवरपोंडरीयं उण्णिक्खेस्सामो", णो य खलु एयं पउमवरपोंडरीयं एवं उण्णिक्खेतव्वं जहा ण एए पुरिसा मण्णे।

अहमंसि पुरिसे खेतन्ने कुसले पंडिते वियत्ते मेहावी अबाले मग्गत्थे मग्गविऊ मग्गस्स गतिपरक्कमण्णू, अहमेयं पउमवरपोंडरीयं उण्णिक्खेस्सामि इति वच्चा से पुरिसे अभिक्कमे तं पुक्खरणिं,

-जाव-जावं च णं अभिक्कमे ताव तावं च णं महंते उदए महंते सेए जाव अंतरा सेयंसि निसण्णे तच्चे पुरिसजाए।
—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६४१

अहावरे चउत्थे पुरिसजाए।

अह पुरिसे उत्तरातो दिसातो आगम्म तं पुक्खरणिं तीसे पुक्खरणीए तीरे ठिच्चा पासति एगं पउमवरपोंडरीयं अणुपुव्वुट्ठितं -जाव- पडिरूवं।

ते तत्थ तिण्णि पुरिसजाते पासति पहीणे तीरं अपत्ते-जाव-सेयंसि निसण्णे।

तते णं से पुरिसे एवं वदासी—अहो णं इमे पुरिसा अखेत्तण्णा -जाव-णो मग्गस्स गतिपरक्कमण्णू, जण्णं एते पुरिसा एवं मण्णे—अम्हेतं पउमवरपोंडरीयं उण्णिक्खिस्सामो। णो खलु एयं पउमवरपोंडरीयं एवं उण्णिक्खेयव्वं जहा णं एते पुरिसा मण्णे।

अहमंसि पुरिसे खेयण्णे-जाव-मग्गस्स गतिपरक्कमण्णू, अहमेयं पउमवरपोंडरीयं उण्णिक्खिस्सामि इति वच्चा से पुरिसे अभिक्कमे तं पुक्खरणिं,

जाव जावं च णं अभिक्कमे ताव तावं च णं महंते उदए महंते सेते-जाव-णिसण्णे

चउत्थे पुरिसजाए। —सूय. सु. २, अ. १, सु. ६४२

रित मार्ग पर स्थित नहीं है, तथा जिस मार्ग पर चलकर जीव अभीष्ट को सिद्ध करता है, उसे ये नहीं जानते। इसी कारण ये दोनों पुरुष ऐसा मानते थे कि "हम इस उत्तम श्वेतकमल को उखाड़कर बाहर निकाल लाएँगे," परन्तु इस उत्तम श्वेतकमल को इस प्रकार उखाड़ लाना सरल नहीं, जितना ये दोनों पुरुष मानते हैं।"

"अलबत्ता मैं खेदज्ञ (क्षेत्रज्ञ), कुशल, पण्डित, परिपक्व-बुद्धिसम्पन्न, मेधावी, युवक, मार्गवेत्ता, मार्ग की गतिविधि और पराक्रम का ज्ञाता हूँ। मैं इस उत्तम श्वेतकमल को बाहर निकाल कर ही रहूँगा, मैं यह संकल्प करके ही यहाँ आया हूँ। (यों कहकर उस तीसरे पुरुष ने पुष्करिणी में प्रवेश किया और ज्यों-ज्यों उसने आगे कदम बढ़ाए, त्यों-त्यों उसे बहुत अधिक पानी और अधिकाधिक कीचड़ का सामना करना पड़ा। अतः वह तीसरा व्यक्ति भी कीचड़ में वहीं फँसकर रह गया और अत्यन्त दुःखी हो गया। वह न इस पार का रहा और न उस पार का। यह तीसरे पुरुष की कथा है।

अब चौथे पुरुष का वर्णन किया जाता है।

तीसरे पुरुष के पश्चात् चौथा पुरुष उत्तर दिशा से उस पुष्करिणी के पास आकर, किनारे खड़ा होकर उस एक महान् श्वेतकमल को देखता है, जो विशिष्ट रचना से युक्त—यावत्—(पूर्वोक्त विशेषणों से विशिष्ट) मनोहर है। तथा वह वहाँ (उस पुष्करिणी में) उन तीनों पुरुषों को भी देखता है, जो तीर से बहुत दूर हट चुके हैं और श्वेतकमल तक भी नहीं पहुँच सके हैं अपितु पुष्करिणी के बीच में ही कीचड़ में फँस गए हैं।

तदनन्तर उन तीनों पुरुषों को (देखकर उन) के लिए चौथे पुरुष ने इस प्रकार कहा—"अहो! ये तीनों पुरुष खेदज्ञ (क्षेत्रज्ञ) नहीं हैं,—यावत्—(पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त) मार्ग की गतिविधि एवं पराक्रम में विशेषज्ञ नहीं हैं। इसी कारण ये लोग समझते हैं कि "हम उस श्रेष्ठ पुण्डरीक कमल को उखाड़कर ले आएँगे, किन्तु ये उत्तम श्वेतकमल इस प्रकार नहीं निकाला जा सकता, जैसा कि ये लोग मान रहे हैं।

"मैं खेदज्ञ पुरुष हूँ—यावत्—उस मार्ग की गतिविधि और पराक्रम का विशेषज्ञ हूँ। मैं इस प्रधान श्वेतकमल को उखाड़कर ले आऊँगा इसी अभिप्राय से मैं होकर यहाँ आया हूँ।"

यों कहकर वह चौथा पुरुष भी पुष्करिणी में उतरा और ज्यों-ज्यों वह आगे बढ़ता गया त्यों-त्यों उसे अधिकाधिक पानी और अधिकाधिक कीचड़ मिलता गया। वह पुरुष उस पुष्करिणी के बीच में ही भारी कीचड़ में फँसकर दुःखी हो गया। अब न तो वह इस पार का रहा, न उस पार का।

इस प्रकार चौथे पुरुष का भी वही हाल हुआ।

पवरपोंडरीय पग्गहणे निरीहो भिक्खू सफलो—

अह भिक्खू लूहे तीरट्ठी खेयण्णे कुसले पंडिते वियत्ते मेहावी अबाले मग्गत्थे मग्गविदू मग्गस्स गतिपरक्कमण्णू अन्नतरीओ दिसाओ अणुदिसाओ वा आगम्म तं पुक्खरणीं, तीसे पुक्खरणीए तीरे ठिच्चा पासति तं महं एगं पउमवर-पोंडरीयं-जाव-पडिरूवं,

ते य चत्तारि पुरिसजाते पासति पहीणे तीरं अपत्ते-जाव-अंतरा पोक्खरणीए सेयंसि विसण्णे ।

तते णं भिक्खू एवं वयासी —
अहो णं इमे पुरिसा अखेतण्णा-जाव-णो मग्गस्स गतिपरक्कमण्णू जं णं एते पुरिसा एवं मन्ने "अम्हेयं पउमवरपोंडरीयं उन्निक्खिस्सामो" णो य खलु एयं पउमवरपोंडरीयं एवं उन्निक्खेतव्वं जहा णं एते पुरिसा मन्ने,

अहमंसी भिक्खू लूहे तीरट्ठी खेयण्णे-जाव-मग्गस्स गति-परक्कमण्णू, अहमेयं पउमवर-पोंडरीयं उन्निक्खिस्सामि त्ति कट्टु इति वच्चा,

से भिक्खू णो अभिक्कमे तं पुक्खरणिं, तीसे पुक्खरणीए तीरे ठिच्चा सद्दं कुज्जा—"उप्पताहि खलु भो पउमवरपोंडरीया ! उप्पताहि खलु भो पउमवरपोंडरीया ।"
अह से उप्पतिते पउमवरपोंडरिए ।

—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६४३

एवं से भिक्खू धम्मट्ठी धम्मविदू नियागपडिवण्णे,

से जहेयं वुतियं, अदुवा पत्ते पउमवरपोंडरीयं अदुवा अपत्ते पउमवरपोंडरीयं ।

उत्तम श्वेतकमल को पाने में सफल : निःस्पृह भिक्षु—

इसके पश्चात् राग-द्वेषरहित (रूक्ष-अस्निग्ध घड़े के समान कर्ममल-लेपरहित), संसार-सागर के (तीर उस पार जाने का इच्छुक) खेदज्ञ या क्षेत्रज्ञ,—**यावत्**—(पूर्वोक्त सभी विशेषणों से युक्त) मार्ग की गति और पराक्रम का विशेषज्ञ तथा निर्दोष भिक्षामात्र से निर्वाह करने वाला साधु किसी दिशा अथवा विदिशा से उस पुष्करिणी के पास आकर उस (पुष्करिणी) के तट पर खड़ा होकर उस श्रेष्ठ पुण्डरीक कमल को देखता है, जो अत्यन्त विशाल—**यावत्**—(पूर्वोक्त गुणों से युक्त) मनोहर है। और वहाँ वह भिक्षु उन चारों पुरुषों को भी देखता है, जो किनारे से बहुत दूर हट चुके हैं, और उत्तम श्वेतकमल को भी नहीं पा सके हैं। जो न तो इस पार के रहे हैं, न उस पार के, जो पुष्करिणी के बीच में ही कीचड़ में फँस गए हैं।

इसके पश्चात् उस भिक्षु ने उन चारों पुरुषों के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा —"अहो ! ये चारों व्यक्ति खेदज्ञ नहीं हैं,—**यावत्**—(पूर्वोक्त विशेषणों से सम्पन्न) मार्ग की गति एवं पराक्रम से अनभिज्ञ हैं। इसी कारण यह लोग समझने लगे कि "हम लोग इस श्रेष्ठ श्वेतकमल को निकाल कर ले जाएंगे, परन्तु यह उत्तम श्वेतकमल इस प्रकार नहीं निकाला जा सकता, जैसा कि ये लोग समझते हैं।"

"मैं निर्दोष भिक्षाजीवी साधु हूं, राग-द्वेष से रहित (रूक्ष= निःस्पृह) हूं। मैं संसार सागर के पार (तीर पर) जाने का इच्छुक हूं, क्षेत्रज्ञ (खेदज्ञ) हूं—**यावत्**—जिस मार्ग से चलकर साधक अपने अभीष्ट साध्य की प्राप्ति के लिए पराक्रम करता है, उसका विशेषज्ञ हूं। मैं इस उत्तम श्वेतकमल को (पुष्करिणी से बाहर) निकालूंगा, इसी अभिप्राय से यहां आया हूं।"

यों कहकर वह साधु उस पुष्करिणी के भीतर प्रवेश नहीं करता, वह उस (पुष्करिणी) के तट पर खड़ा-खड़ा ही आवाज देता है—"हे उत्तम श्वेतकमल ! वहाँ से उठकर (मेरे पास) आ जाओ, आ जाओ ! यों कहने के पश्चात् वह उत्तम पुण्डरीक उस पुष्करिणी से उठकर (या बाहर निकलकर) आ जाता है।

इस प्रकार (पूर्वोक्त विशेषणयुक्त) वह भिक्षु धर्मार्थी (धर्म से ही प्रयोजन रखने वाला) धर्म का ज्ञाता और नियाग (संयम या विमोक्ष) को प्राप्त होता है।

ऐसा भिक्षु जैसा कि इस अध्ययन में पहले कहा गया था, पूर्वोक्त पुरुषों में से पांचवां पुरुष है। वह (भिक्षु) श्रेष्ठ पुण्डरीक कमल के समान निर्वाण को प्राप्त कर सके अथवा उस श्रेष्ठ पुण्डरीक कमल को (मति, श्रुत, अवधि एवं मनःपर्याय ज्ञान तक ही प्राप्त होने से) प्राप्त न कर सके, (वही सर्वश्रेष्ठ पुरुष है।)

एवं से भिक्खू परिण्णातकम्मे परिण्णायसंगे परिण्णायगिहवासे उवसंते समिते सहिए सया जते।

इस प्रकार का भिक्षु कर्म (कर्म के स्वरूप, विपाक एवं उपादान) का परिज्ञाता, संग (बाह्य-आभ्यन्तर-सम्बन्ध) का परिज्ञाता, तथा (निःसार) गृहवास का परिज्ञाता (मर्मज्ञ) हो जाता है। वह (इन्द्रिय और मन के विषयों का उपशमन करने से) उपशान्त, (पंचसमितियों से युक्त होने से) समित, (हित से—ज्ञानादि से युक्त होने से—) सहित एवं सदैव यतनाशील अथवा संयम में प्रयत्नशील होता है।

सेयं वयणिज्जे तं जहा—

उस साधक को इस प्रकार (आगे कहे जाने वाले विशेषणों में से किसी भी एक विशेषणयुक्त शब्दों से) कहा जा सकता है, जैसे कि—

समणे ति वा माहणे ति वा खंते ति वा दंते ति वा गुत्ते ति वा मुत्ते ति वा इसी ति वा मुणीति वा कति ति वा विदू ति वा भिक्खू ति वा लूहे ति वा तिरट्ठी ति वा चरणकरणपारविदू

वह श्रमण है, या माहन् (प्राणियों का हनन मत करो, ऐसा उपदेश करने वाला या ब्रह्मचर्यनिष्ठ होने से ब्राह्मण) है, अथवा क्षान्त (क्षमाशील) है, या दान्त (इन्द्रियमनोवशीकर्ता) है, अथवा गुप्त (तीन गुप्तियों से गुप्त) है, अथवा मुक्त (मुक्तवत्), तथा महर्षि (विशिष्ट तपश्चरणयुक्त) है, अथवा मुनि (जगत् की त्रिकालावस्था पर मनन करने वाला) है, अथवा कृती (पुण्यवान्—सुकृति या परमार्थपण्डित), तथा विद्वान् (अध्यात्मविद्यावान्) है, अथवा भिक्षु (निरवद्यभिक्षाजीवी) है, या वह रूक्ष (अन्ताहारी-प्रान्ताहारी) है, अथवा तीरार्थी (मोक्षार्थी) है, अथवा चरण-करण (मूल-उत्तर गुणों) के रहस्य का पारगामी है।

त्ति बेमि। —सूय. सु. २, अ. १, सु. ६६२-६६३

—ऐसा मैं कहता हूँ।

दिट्ठन्तस्स णिगमणं—

दृष्टान्तों के दार्ष्टान्तिक की योजना—

२८०. किट्टिते णाते समणाउसो! अट्ठे पुण से जाणितव्वे भवति।

२८०. (श्रमण भगवान् महावीर स्वामी कहते हैं—) "आयुष्मान् श्रमणो! तुम्हें मैंने यह दृष्टान्त (ज्ञात) कहा है; इसका अर्थ (भाव) तुम लोगों को जानना चाहिए।"

भंते! त्ति समणं भगवं महावीरं निग्गंथा य निग्गंथीओ य वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वदासी—किट्टिते नाए समणाउसो! अट्ठं पुण से ण जाणामो।

"हाँ, भदन्त!" कहकर साधु और साध्वी श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना और नमस्कार करते हैं। वन्दना-नमस्कार करके भगवान् महावीर से इस प्रकार कहते हैं—"आयुष्मन् श्रमण भगवान्! आपने जो दृष्टान्त बताया उसका अर्थ (रहस्य) हम नहीं जानते।"

समणाउसो! त्ति समणे भगवं महावीरे ते य बहवे निग्गंथा य निग्गंथीओ य आमंतेत्ता एवं वदासी—हंता समणाउसो! आइक्खामि विभावेमि किट्टेमि पवेदेमि सअट्ठं सहेउं सनिमित्तं भुज्जो भुज्जो उवदंसेमि।

(इस पर) श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने उन बहुत-से निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थिनियों को सम्बोधित करके इस प्रकार कहा—"आयुष्मान् श्रमण-श्रमणियों! मैं इसका अर्थ (रहस्य) बताता हूँ, अर्थ स्पष्ट (प्रकट) करता हूँ। पर्यायवाची शब्दों द्वारा उसे कहता हूँ, हेतु और दृष्टान्तों द्वारा हृदयंगम कराता हूँ; अर्थ, हेतु और निमित्त सहित उस अर्थ को बार-बार बताता हूँ।"

से बेमि—लोयं च खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो! सा पुक्खरणी बुइता,

(सुनो,) उस अर्थ को मैं कहता हूँ—"आयुष्मान् श्रमणो! मैंने अपनी इच्छा से मानकर (मात्र रूपक के रूप में कल्पना कर) इस लोक को पुष्करिणी कहा है।

कम्मं च खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो ! से उदए बुइते,

हे आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने अपनी कल्पना से विचार करके कर्म को इस पुष्करिणी का जल कहा है।

कामभोगा य खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो ! से सेए ते बुइते,

आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने अपनी कल्पना से स्थिर करके कामभोगों को पुष्करिणी का कीचड़ कहा है।

जणं-जाणवयं च खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो ! ते बहवे पउमवरपुण्डरीगा बुइता,

आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने अपनी दृष्टि से चिन्तन करके आर्य देशों के मनुष्यों और जनपदों (देशों) को पुष्करिणी के बहुत से श्वेतकमल कहा है।

रायाणं च खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो ! से एगे महं पउमवरपोंडरीए बुइते,

आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने अपनी इच्छा से अपने मन में निश्चित करके राजा को उस पुष्करिणी का एक महान् श्रेष्ठ श्वेतकमल (पुण्डरीक) कहा है।

अन्नउत्थिया य खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो ! से चत्तारि पुरिसजाता बुइता,

हे आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने अपनी इच्छा से मानकर अन्यतीर्थिकों को उस पुष्करिणी के कीचड़ में फंसे हुए चार पुरुष बताया है :

धम्मं च खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो ! से भिक्खू बुइते,

आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने अपनी बुद्धि से चिन्तन करके धर्म को वह भिक्षु बताया है।

धम्मतित्थं च खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो ! से तीरे बुइए,

आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने अपनी इच्छा से अपने आप सोचकर धर्मतीर्थ को पुष्करिणी का तट बताया है।

धम्मकहं च खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो ! से सद्दे बुइते,

आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने अपनी आत्मा में निश्चित करके धर्मकथा को उस भिक्षु का वह शब्द (आवाज) कहा है।

नेव्वाणं च खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो ! से उप्पाते बुइते,

आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने अपने मन में स्थिर करके निर्वाण (समस्त कर्मक्षयरूप मोक्ष या सिद्धशिला स्थान) को श्रेष्ठ पुण्डरीक का पुष्करिणी से उठकर बाहर आना कहा है।

एवमेयं च खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो ! से एवमेयं बुइतं।

—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६४४-६४५

(संक्षेप में) आयुष्मान् श्रमणो ! मैंने इस (पूर्वोक्त) प्रकार से अपनी आत्मा में निश्चय करके (यत्किंचित् साधर्म्य के कारण) इन पुष्करिणी आदि को इन लोक आदि के दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत किया है।

एगंतदिट्ठी णिसेहो—

२८१. अणादीयं परिण्णाय,
अणवदग्गे ति वा पुणो।
सासतमसासते यावि,
इति दिट्ठि न धारए॥

एतेहिं दोहिं ठाणेहिं,
ववहारो ण विज्जती।
एतेहिं दोहिं ठाणेहिं,
अणायारं तु जाणए॥

एकान्त-दृष्टि निषेध—

२८१. "यह (चतुर्दशरज्ज्वात्मक एवं धर्माधर्मादिषट्द्रव्यरूप) लोक अनादि (आदि-रहित) और अनन्त है," यह जानकर विवेकी पुरुष यह लोक एकान्त नित्य (शाश्वत) है, अथवा एकान्त अनित्य (अशाश्वत) है; इस प्रकार की दृष्टि, एकान्त (आग्रहमयी बुद्धि) न रखे।

इन दोनों (एकान्त नित्य और एकान्त अनित्य) पक्षों (स्थानों) से व्यवहार (शास्त्रीय या लौकिक व्यवहार) चल नहीं सकता। अतः इन दोनों एकान्त पक्षों के आश्रय को अनाचार जानना चाहिए।

समुच्छिज्जिहिंति सत्थारो,
सव्वे पाणा अणेलिसा।
गंठीगा वा भविस्संति,
सासयं ति च णो वदे॥

प्रशास्ता (शासनप्रवर्तक (तीर्थंकर तथा उनके शासनानुगामी सभी भव्य जीव) एक दिन) भवोच्छेद (कालक्रम से मोक्षप्राप्ति कर लेंगे। अथवा सभी जीव परस्पर विसदृश (एक समान नहीं) हैं, या सभी जीव कर्मग्रन्थि से बद्ध (ग्रन्थिक) रहेंगे, अथवा सभी जीव शाश्वत (सदा स्थायी एकरूप) रहेंगे, अथवा तीर्थंकर, सदैव शाश्वत (स्थायी) रहेंगे। इत्यादि एकान्त वचन नहीं बोलने चाहिए।

एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जई।
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणई॥

क्योंकि इन दोनों (एकान्तमय) पक्षों से (शास्त्रीय या लौकिक) व्यवहार नहीं होता। अतः इन दोनों एकान्तपक्षों के ग्रहण को अनाचार समझना चाहिए।

जे केति खुड्डगा पाणा,
अदुवा संति महालया।
सरिसं तेहिं वेरं ति,
असरिसं ति य णो वदे॥

(इस संसार में) जो (एकेन्द्रिय आदि) क्षुद्र (छोटे) प्राणी हैं, अथवा जो महाकाय (हाथी, ऊँट, मनुष्य आदि) प्राणी हैं, इन दोनों प्रकार के प्राणियों (की हिंसा से, दोनों) के साथ समान ही वैर होता है, अथवा समान वैर नहीं होता; ऐसा नहीं कहना चाहिए।

एतेहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जती।
एतेहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए॥

क्योंकि इन दोनों ("समान वैर होता है या समान वैर नहीं होता";) एकान्तमय वचनों से व्यवहार नहीं होता। अतः इन दोनों एकान्त वचनों को अनाचार जानना चाहिए।

अहाकम्माइं भुंजंति,
अण्णमण्णे सकम्मुणो।
उवलित्ते ति जाणेज्जा,
अणुवलित्ते ति वा पुणो॥

आधाकर्म दोषयुक्त आहारादि का जो साधु उपभोग करते हैं, वे दोनों (आधाकर्मदोषयुक्त आहारादिदाता तथा उपभोक्ता) परस्पर अपने (पाप) कर्म से उपलिप्त होते हैं, अथवा उपलिप्त नहीं होते, ऐसा जानना चाहिए।

एतेहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जती।
एतेहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए॥

इन दोनों एकान्त मान्यताओं से व्यवहार नहीं चलता है, इसलिए इन दोनों एकान्त मन्तव्यों का आश्रय लेना अनाचार समझना चाहिए।

जमिदं उरालमाहारं,
कम्मगं च तमेव य।
सव्वत्थ वीरियं अत्थि,
णत्थि सव्वत्थ वीरियं॥

यह जो (प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला) औदारिक शरीर है, आहारक शरीर है, और कार्मण शरीर है, तथैव वैक्रिय एवं तैजस् शरीर है; ये पांचों (सभी) शरीर एकान्ततः भिन्न नहीं हैं, एक ही हैं) अथवा ये पांचों सर्वथा भिन्न-भिन्न ही हैं; ऐसे एकान्तवचन नहीं कहने चाहिए। तथा सब पदार्थों में सब पदार्थों की शक्ति (वीर्य) विद्यमान है, अथवा सब पदार्थों में सबकी शक्ति नहीं ही है; ऐसा एकान्तकथन भी नहीं करना चाहिए।

एतेहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो ण विज्जती।
एतेहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए॥

क्योंकि इन दोनों प्रकार के एकान्त विचारों से व्यवहार नहीं होता। अतः इन दोनों एकान्तमय विचारों का प्ररूपण करना अनाचार समझना चाहिए।

णत्थि लोए अलोए वा, णेवं सण्णं निवेसए।
अत्थि लोए अलोए वा, एवं सण्णं निवेसए॥

लोक नहीं है या अलोक नहीं है, ऐसी संज्ञा (बुद्धि—समझ नहीं रखनी चाहिए अपितु) लोक है और अलोक (आकाशास्तिकायमात्र) है, ऐसी संज्ञा रखनी चाहिए।

णत्थि जीवा अजीवा वा, णेवं सण्णं निवेसए।
अत्थि जीवा अजीवा वा, एवं सण्णं निवेसए॥

जीव और अजीव पदार्थ नहीं हैं, ऐसी संज्ञा नहीं रखनी चाहिए, अपितु जीव और अजीव पदार्थ हैं, ऐसी संज्ञा (बुद्धि) रखनी चाहिए।

णत्थि धम्मे अधम्मे वा, णेवं सण्णं निवेसए।
अत्थि धम्मे अधम्मे वा, एवं सण्णं निवेसए॥

धर्म-अधर्म नहीं है, ऐसी मान्यता नहीं रखनी चाहिए, किन्तु धर्म भी है और अधर्म भी है, ऐसी मान्यता रखनी चाहिए।

णत्थि बंधे व मोक्खे वा, णेवं सण्णं निवेसए।
अत्थि बंधे व मोक्खे वा, एवं सण्णं निवेसए॥

बन्ध और मोक्ष नहीं है, यह नहीं मानना चाहिए, अपितु बन्ध है और मोक्ष भी है, यही श्रद्धा रखनी चाहिए।

णत्थि पुण्णे व पावे वा, णेवं सण्णं निवेसए।
अत्थि पुण्णे व पावे वा, एवं सण्णं निवेसए॥

पुण्य और पाप नहीं है, ऐसी बुद्धि रखना उचित नहीं, अपितु पुण्य भी है और पाप भी है, ऐसी बुद्धि रखनी चाहिए।

णत्थि आसवे संवरे वा, णेवं सण्णं निवेसए।
अत्थि आसवे संवरे वा, एवं सण्णं निवेसए॥

आश्रव और संवर नहीं है, ऐसी श्रद्धा नहीं रखनी चाहिए, अपितु आश्रव भी है और संवर भी है, ऐसी श्रद्धा रखनी चाहिए।

णत्थि वेयणा निज्जरा वा, णेवं सण्णं निवेसए।
अत्थि वेयणा निज्जरा वा, एवं सण्णं निवेसए॥

वेदना और निर्जरा नहीं है, ऐसी मान्यता रखना ठीक नहीं है किन्तु वेदना और निर्जरा है, यह मान्यता रखनी चाहिए।

नत्थि किरिया अकिरिया वा, णेवं सण्णं निवेसए।
अत्थि किरिया अकिरिया वा, एवं सण्णं निवेसए॥

क्रिया और अक्रिया नहीं है, ऐसी संज्ञा नहीं रखनी चाहिए, अपितु क्रिया भी है और अक्रिया भी है, ऐसी मान्यता रखनी चाहिए।

नत्थि कोहे व माणे वा, णेवं सण्णं निवेसए।
अत्थि कोहे व माणे वा, एवं सण्णं निवेसए॥

क्रोध और मान नहीं हैं, ऐसी मान्यता नहीं रखनी चाहिए, अपितु क्रोध भी है और मान भी है, ऐसी मान्यता रखनी चाहिए।

नत्थि माया व लोभे वा, णेवं सण्णं निवेसए।
अत्थि माया व लोभे वा, एवं सण्णं निवेसए॥

माया और लोभ नहीं है, इस प्रकार की मान्यता नहीं रखनी चाहिए, किन्तु माया है और लोभ भी है, ऐसी मान्यता रखनी चाहिए।

णत्थि पेज्जे व दोसे वा, णेवं सण्णं निवेसए।
अत्थि पेज्जे व दोसे वा, एवं सण्णं निवेसए॥

राग और द्वेष नहीं है, ऐसी विचारणा नहीं रखनी चाहिए, किन्तु राग और द्वेष हैं, ऐसी विचारणा रखनी चाहिए।

णत्थि चाउरंते संसारे, णेवं सण्णं निवेसए।
अत्थि चाउरंते संसारे, एवं सण्णं निवेसए॥

चार गति वाला संसार नहीं है, ऐसी श्रद्धा नहीं रखनी चाहिए, अपितु चातुर्गतिक संसार (प्रत्यक्षसिद्ध) है, ऐसी श्रद्धा रखनी चाहिए।

णत्थि देवो व देवी वा, णेवं सण्णं निवेसए।
अत्थि देवो व देवी वा, एवं सण्णं निवेसए॥

देवी और देव नहीं हैं, ऐसी मान्यता नहीं रखनी चाहिए, अपितु देव-देवी हैं, ऐसी मान्यता रखनी चाहिए।

नत्थि सिद्धी असिद्धी वा, णेवं सण्णं निवेसए।
अत्थि सिद्धी असिद्धी वा, एवं सण्णं निवेसए॥

सिद्धि (मुक्ति) या असिद्धि (अमुक्तिरूप संसार) नहीं है, ऐसी बुद्धि नहीं रखनी चाहिए, अपितु सिद्धि भी है और असिद्धि (संसार) भी है, ऐसी बुद्धि रखनी चाहिए।

नत्थि सिद्धी नियं ठाणं, णेवं सण्णं निवेसए।
अत्थि सिद्धी नियं ठाणं, एवं सण्णं निवेसए॥

सिद्धि (मुक्ति) जीव का निज स्थान (सिद्धशिला) नहीं है, ऐसी खोटी मान्यता नहीं रखनी चाहिए, प्रत्युत सिद्धि जीव का निजस्थान है, ऐसा सिद्धान्त मानना चाहिए।

नत्थि साहू असाहू वा णेवं सण्णं निवेसए।
अत्थि साहू असाहू वा, एवं सण्णं निवेसए॥

(संसार में कोई) साधु नहीं है और असाधु नहीं है, ऐसी मान्यता नहीं रखनी चाहिए, प्रत्यक्ष साधु और असाधु दोनों हैं, ऐसी श्रद्धा रखनी चाहिए।

णत्थि कल्लाणे पावे वा, णेवं सण्णं निवेसए।
अत्थि कल्लाणे पावे वा, एवं सण्णं निवेसए॥
—सूय. सु. २, अ. ५, गा. १२-२८

कोई भी कल्याणवान और पापी नहीं है ऐसा नहीं समझना चाहिए, अपितु कल्याणवान् और पापी दोनों हैं ऐसी श्रद्धा रखनी चाहिए।

पासत्थाई वंदमाणस्स पसंसमाणस्स पायच्छित्तं—

पार्श्वस्थादिवंदन-प्रशंसन प्रायश्चित्त—

२८२. जे भिक्खू पासत्थं वंदइ वंदंतं वा साइज्जइ।

२८२. जो भिक्षु पासत्थे को वन्दना करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू पासत्थं पसंसइ पसंसंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु पासत्थे की प्रशंसा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू ओसण्णं वंदइ वंदंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु अवसन्न की वन्दना करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू ओसण्णं पसंसइ पसंसंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु अवसन्न की प्रशंसा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू कुसीलं वंदइ वंदंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु कुशील को वन्दना करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू कुसीलं पसंसइ पसंसंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु कुशील की प्रशंसा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू नितियं वंदइ वंदंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नित्यक की वन्दना करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू नितियं पसंसइ पसंसंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नित्यक की प्रशंसा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू संसत्तं वंदइ वंदंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु संसक्त को वन्दना करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू संसत्तं पसंसइ पसंसंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु संसक्त की प्रशंसा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू काहियं वंदइ वंदंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु देश आदि की कथा करने वाले को वन्दन करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू काहियं पसंसइ पसंसंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु देश आदि की कथा करने वाले की प्रशंसा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू पासणियं वंदइ वंदंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नृत्यादि देखने वाले को वन्दन करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू पासणियं पसंसइ पसंसंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नृत्यादि देखने वाले की प्रशंसा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू ममायं वंदइ वंदंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु ये उपकरण मेरे ही हैं, ऐसा कहने वाले की प्रशंसा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू ममायं पसंसइ पसंसंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु ये उपकरण मेरे ही हैं, ऐसा कहने वाले की प्रशंसा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू संपसारयं वंदइ वंदंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु (असंयतों को) आरम्भ के कार्यों का निर्देशन करने वाले को वन्दना करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू संपसारयं पसंसइ पसंसंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु (असंयतों को) आरम्भ के कार्यों का निर्देशन करने वाले की प्रशंसा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १३, सु. ४५-६२—(७७)

वह भिक्षु गुरु चातुर्मासिक परिहार प्रायश्चित्त स्थान का पात्र होता है।

अण्ण उत्थियाणं मोक्खपरूवणा परिहारो य—

अन्यतीर्थियों की मोक्ष प्ररूपणा और उसका परिहार—

२८३. इहेगे मूढा पवदंति मोक्खं,
आहारसंपज्जणवज्जणेणं।
एगे य सीओदगसेवणेणं,
हुतेण एगे पवदंति मोक्खं॥

२८३. इस जगत् में अथवा मोक्षप्राप्ति के विषय में कई मूढ़ इस प्रकार का प्रतिपादन करते हैं कि आहार का रस-पोषक-नमक खाना छोड़ देने से मोक्ष प्राप्त होता है, और कई शीतल (कच्चे जल के सेवन से) तथा कई (अग्नि में घृतादि द्रव्यों का) हवन करने से मोक्ष (की प्राप्ति) बतलाते हैं।

पाओसिणाणादिसु णत्थि मोक्खो,
खारस्स लोणस्स अणासएणं।
ते मज्ज मंसं लसुणं च भोच्चा,
अन्नत्थ वासं परिकप्पयंति॥

प्रातःकाल में स्नानादि से मोक्ष नहीं होता, न ही क्षार (खार) या नमक न खाने से मोक्ष होता है। वे (अन्यतीर्थी मोक्षवादी) मद्य मांस और लहसुन खाकर मोक्ष-अन्यत्र (संसार में) अपना निवास बना लेते हैं।

उदगेण जे सिद्धिमुदाहरंति,
सायं च पातं उदगं फुसंता।
उदगस्स फासेण सिया य सिद्धी,
सिज्झिंसु पाणा बहवे दगंसि॥

सायंकाल और प्रातःकाल जल का स्पर्श (स्नानादि क्रिया के द्वारा) करते हुए जो जल स्नान से सिद्धि (मोक्ष प्राप्ति) बतलाते हैं, (वे मिथ्यावादी हैं)। यदि जल के (बार-बार) स्पर्श से मुक्ति (सिद्धि) मिलती तो जल में रहने वाले बहुत-से जलचर प्राणी मोक्ष प्राप्त कर लेते।

मच्छा य कुम्मा य सिरीसिवा य,
मग्गू य उट्टा दगरक्खसा य।
अट्ठाणमेयं कुसला वदंति,
उदगेण जे सिद्धिमुदाहरंति॥

(यदि जलस्पर्श से मोक्ष प्राप्ति होती तो) मत्स्य, कच्छप, सरीसृप (जलचर सर्प), मद्गु तथा उष्ट्र नामक जलचर और जलराक्षस (मानवाकृति जलचर) आदि जलजन्तु सबसे पहले मुक्ति प्राप्त कर लेते, परन्तु ऐसा नहीं होता। अतः जो जल-स्पर्श से मोक्षप्राप्ति (सिद्धि) बताते हैं, मोक्षतत्व पारंगत (कुशल) पुरुष उनके इस कथन को अयुक्त कहते हैं।

उदगं जती कम्म मलं हरेज्जा,
एवं सुहं इच्छामेत्तता वा।
अंधव्व णेयारमणुस्सरित्ता,
पाणाणि चेवं विणिहंति मंदा॥

जल यदि कर्म-मल का हरण-नाश कर लेता है, तो वह इसी तरह शुभ-पुण्य का भी हरण कर लेगा (अतः जल कर्म-मल हरण कर लेता है, यह कथन) इच्छा (कल्पना) मात्र है। मन्दबुद्धि लोग अज्ञानान्ध नेता का अनुसरण करके इस प्रकार (जलस्नान आदि क्रियाओं) से प्राणियों का घात करते हैं।

पावाइं कम्माइं पकुव्वतो हि,
सिओदगं तु जइ तं हरेज्जा।
सिज्झिंसु एगे दगसत्तघाती,
मुसं वयंते जलसिद्धिमाहु॥

यदि पापकर्म करने वाले व्यक्ति के उस पाप को शीतल (सचित्त) जल (जल स्नानादि) हरण कर ले तब तो कई जल जन्तुओं का घात करने वाले (मछुए आदि) भी मुक्ति प्राप्त कर लेंगे। इसलिए जो जल (स्नान आदि) से सिद्धि (मोक्ष प्राप्ति) बतलाते हैं, वे मिथ्यावादी हैं।

हुतेण जे सिद्धिमुदाहरंति,
सायं च पातं अगणिं फुसंता।

सायंकाल और प्रातःकाल अग्नि का स्पर्श करते हुए जो लोग (अग्निहोत्रादि कर्मकाण्डी) अग्नि में होम करने से सिद्धि (मोक्षप्राप्ति या सुगतिगमनरूप स्वर्गप्राप्ति) बतलाते हैं, वे भी

एवं सिया सिद्धि हवेज्ज तम्हा,
अगणिं फुसंताण कुकम्मिणं पि ॥

मिथ्यावादी हैं। यदि इस प्रकार (अग्निस्पर्श से या अग्निकार्य करने) से सिद्धि मिलती हो, तब तो अग्नि का स्पर्श करने वाले (हलवाई, रसोइया, कुम्भकार, लुहार, स्वर्णकार आदि) कुकर्मियों (आरम्भ करने वालों, आग जलाने वालों) को भी सिद्धि प्राप्त हो जानी चाहिए।

अपरिक्ख दिट्ठं ण हु एव सिद्धी,
एहिंति ते घातमबुज्झमाणा।
भूतेहिं जाण पडिलेह सातं,
विज्जं गहाय तस-थावरेहिं ॥

जलस्नान और अग्निहोत्र क्रियाओं से सिद्धि मानने वाले लोगों ने परीक्षा किये बिना ही इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है। इस प्रकार सिद्धि नहीं मिलती। वस्तुतत्व के बोध से रहित वे लोग घात (संसार भ्रमणरूप अपना विनाश) प्राप्त करेंगे। अध्यात्मविद्यावान् (सम्यग्ज्ञानी) यथार्थ वस्तुस्वरूप का ग्रहण (स्वीकार) करके यह विचार करे कि त्रस और स्थावर प्राणियों के घात से उन्हें सुख कैसे होगा ? यह (भलीभाँति) समझ ले।

थणंति लुप्पंति तसंति कम्मी,
पुढो जगा परिसंखाय भिक्खू।
तम्हा विदू विरते आयगुत्ते,
दट्ठुं तसे य पडिसाहरेज्जा ॥
—सूय. सु. १. अ. ७, गा. १२-२०

पापकर्म करने वाले प्राणी पृथक्-पृथक् रुदन करते हैं, (तलवार आदि के द्वारा) छेदन किये जाते हैं, त्रास पाते हैं। यह जानकर विद्वान् भिक्षु पाप से विरत होकर आत्मा का रक्षक (गोप्ता या मन-वचन-काय-गुप्ति से युक्त) बने। वह त्रस और स्थावर प्राणियों को भलीभाँति जानकर उनके घात की क्रिया से निवृत्त हो जाय।

अण्णतित्थियाणं परूवणा परिहारो य —

अन्यतीर्थियों की प्ररूपणा और परिहार—

२८४ तमेव अविजाणंता,
अबुद्धा बुद्धमाणिणो।
बुद्धा मो त्ति य मण्णंता,
अंतए ते समाहिए ॥
ते य बीओदगं चेव,
तमुद्दिस्सा य जं कडं।
भोच्चा झाणं झियायंति,
अखेयण्णा असमाहिता ॥

२८४. उसी (प्रतिपूर्ण अनुपम निर्वाणमार्गरूप धर्म) को नहीं जानते हुए अविवेकी (अबुद्ध) होकर भी स्वयं को पण्डित मानने वाले अन्यतीर्थिक हम ही धर्म तत्व का प्रतिबोध पाए हुए हैं यों मानते हुए सम्यग्दर्शनादिरूप भाव समाधि से दूर हैं।

वे (अन्यतीर्थिक) बीज और सचित्त जल का तथा उनके उद्देश्य (निमित्त) से जो आहार बना है, उसका उपभोग करके (आर्त) ध्यान करते हैं, क्योंकि वे अखेदज्ञ (उन प्राणियों के खेद-पीड़ा से अनभिज्ञ या धर्म ज्ञान में अनिपुण) और असमाधियुक्त हैं।

जहा ढंका य कंका य, कुलला मग्गुका सिही।
मच्छेसणं झियायंति, झाणं ते कलुसाधमं ॥

जैसे ढंक, कंक, कुरर, जलमुर्गा और शिखी नामक जलचर पक्षी मछली को पकड़कर निगल जाने का बुरा विचार (कुध्यान) करते हैं, उनका वह ध्यान पापरूप एवं अधम होता है।

एवं तु समणा एगे,
मिच्छद्दिट्ठी अणारिया।
विसएसणं झियायंति,
कंका वा कलुसाहमा ॥
—सुय. सु. १, अ. ११, गा. २५-२८

इसी प्रकार कई तथाकथित मिथ्यादृष्टि एवं अनार्य श्रमण विषयों की प्राप्ति (अन्वेषणा) का ही ध्यान करते हैं, अतः वे भी ढंक, कंक आदि प्राणियों की तरह पाप भावों से युक्त एवं अधम हैं।

मोक्ख विसारस्स उवएसो—

मोक्ष विशारद का उपदेश—

२८५. अह ते परिभासेज्जा भिक्खू मोक्खविसारए।
एवं तुब्भे पभासेंता दुपक्खं चेव सेवहा ॥

२८५. इसके पश्चात् मोक्षविशारद (ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप मोक्ष की प्ररूपणा करने में निपुण) साधु उन (अन्यतीर्थिकों) से (इस प्रकार) कहे कि यों कहते (आक्षेप करते हुए) आप लोग दुष्पक्ष (मिथ्या पक्ष) का सेवन करते (आश्रय लेते) हैं।

तुब्भे भुंजह पाएसु,
गिलाणो अभिहडं ति य ।
तं च बीओदगं भोच्चा,
तमुद्देसादि जं कडं ॥

आप सन्त लोग (गृहस्थ के कांसा, तांबा आदि धातु के) पात्रों में भोजन करते हैं, रोगी सन्त के लिए गृहस्थों से (अपने स्थान पर) भोजन मंगवा कर लेते हैं, तथा आप बीज और सचित्त (कच्चे) जल का उपभोग करते हैं एवं जो आहार किसी सन्त के निमित्त (उद्देश्य) से बना है उस औद्देशिक आदि दोषयुक्त आहार का सेवन करते हैं।

लित्ता तिव्वाभितावेण,
उज्झया असमाहिया ।
नातिकंडुइतं सेयं,
अरुयस्सावरज्झती ॥

आप लोग तीव्र कषायों अथवा तीव्र बन्ध वाले कर्मों से लिप्त (सद्विवेक से—) रहित तथा समाधि (शुभ अध्यवसाय) से रहित हैं। (अतः हमारी राय में) घाव (व्रण) का अधिक खुजलाना अच्छा नहीं है, क्योंकि उससे दोष (विकार) उत्पन्न होता है।

तत्तेण अणुसिट्ठा,
ते अपडिण्णेण जाणया ।
ण एस णियए मग्गे,
असमिक्खा वई किती ॥

जो प्रतिकूल ज्ञाता नहीं है अथवा जिसे मिथ्या (विपरीत) अर्थ बताने की प्रतिज्ञा नहीं है, तथा जो हेय-उपादेय का ज्ञाता साधु है, उसके द्वारा उन (आक्षेपकर्ता अन्य दर्शनियों) को सत्य (तत्व वास्तविक) बात की शिक्षा दी जाती है कि यह (आप लोगों द्वारा स्वीकृत) मार्ग (निन्दा का रास्ता) नियत (युक्ति संगत) नहीं है, आपने सुविहित साधुओं के लिए जो (आक्षेपात्मक) वचन कहा है, वह बिना विचारे कहा है, तथा आप लोगों का आचार भी विवेकशून्य है।

एरिसा जा वई एसा,
अग्गे वेणु व्व करिसिता ।
गिहिणो अभिहडं सेयं,
भुंजितुं न तु भिक्खुणो ॥

आपका यह जो कथन है कि साधु को गृहस्थ द्वारा लाये हुए आहार का उपयोग (सेवन) करना श्रेयस्कर है, किन्तु साधु के द्वारा लाये हुए का नहीं, यह बात बाँस के अग्रभाग की तरह कमजोर है, (वजनदार नहीं है।)

धम्मपण्णवणा जा सा,
सारंभाण विसोहिया ।
न तु एताहिं दिट्ठीहिं,
पुव्वमासि पकप्पियं ॥

(साधुओं को दान आदि देकर उपकार करना चाहिए), यह जो धर्म-प्रज्ञापना (धर्म-देशना) है, वह आरम्भ-समारम्भयुक्त गृहस्थों की विशुद्धि करने वाली है, साधुओं की नहीं, इन दृष्टियों से (सर्वज्ञों ने) पूर्वकाल में यह प्ररूपणा नहीं की थी।

सव्वाहिं अणुजुत्तीहिं अचयंता जवित्तए ।
ततो वायं णिराकिच्चा ते भुज्जो वि पगब्भिता ॥

समग्र युक्तियों से अपने पक्ष की सिद्धि (स्थापना) करने में असमर्थ वे अन्यतीर्थी तब वाद को छोड़कर फिर अपने पक्ष की स्थापना करने की धृष्टता करते हैं।

रागदोसाभिभूतप्पा ,
मिच्छत्तेण अभिद्दुता ।
अक्कोसे सरणं जंति,
टंकणा इव पव्वयं ॥

राग और द्वेष से जिनकी आत्मा दबी हुई है, जो व्यक्ति मिथ्यात्व से ओत-प्रोत हैं, वे अन्यतीर्थी शास्त्रार्थ में हार जाने पर आक्रोश (गाली या अपशब्द आदि) का आश्रय लेते हैं। जैसे (पहाड़ पर रहने वाले) टंकणजाति के म्लेच्छ (युद्ध में हार जाने पर) पर्वत का ही आश्रय लेते हैं।

बहुगुणप्पगप्पाइं ,
कुज्जा अत्तसमाहिए ।
जेणऽण्णो ण विरुज्झेज्जा,
तेणं तं तं समायरे ॥

जिसकी चित्तवृत्ति समाधि (प्रसन्नता या कषायोपशान्ति) से युक्त है, वह मुनि, (अन्यतीर्थी के साथ विवाद के समय) अनेक गुण निष्पन्न हो, जिससे इस प्रकार का अनुष्ठान करे और दूसरा कोई व्यक्ति अपना विरोधी न बने।

इमं च धम्ममादाय कासवेण पवेइयं ।
कुज्जा भिक्खू गिलाणस्स अगिलाए समाहिते ॥
—सूय. सु. १, अ. ३, उ. ३, गा. ११-२०

काश्यपगोत्रीय भगवान् महावीर स्वामी के द्वारा कहे हुए इस धर्म को स्वीकार करके समाधियुक्त भिक्षु रुग्ण साधु की सेवा (वैयावृत्य) ग्लानि रहित होकर करे।

णिव्वाणमेव साहेज्जं—

२८६. णेव्वाणपरमा बुद्धा,
णक्खत्ताणं व चंदिमा ।
तम्हा सया जते दंते,
निव्वाणं संधते मुणी ॥
—सूय. सु. १, अ. ११ गा. २२

निर्वाण ही साध्य है—

२८६. जैसे नक्षत्रों में चन्द्रमा प्रधान है, वैसे ही निर्वाण को ही प्रधान (परम) मानने वाले (परलोकार्थी) तत्वज्ञ साधकों के लिए (स्वर्ग, चक्रवर्तित्व, धन आदि को छोड़कर) निर्वाण ही सर्वश्रेष्ठ (परम पद) है। इसलिए मुनि सदा दान्त (मन और इन्द्रियों का विजेता) और यत्नशील (यतनाचारी) होकर निर्वाण के साथ ही सन्धान करे, (प्रवृत्ति करे)।

मोक्खमग्गे अपमत्तगमणोवएसो—

२८७. न हु जिणे अज्ज दिस्सई, बहुमए दिस्सई मग्गदेसिए ।
संपइ नेयाउए पहे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

अवसोहिय कण्टगापहं, ओइण्णो सि पहं महालयं ।
गच्छसि मग्गं विसोहिया, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

अबले जह भारवाहए, मा मग्गे विसमेऽवगाहिया ।
पच्छा पच्छाणुतावए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥

तिण्णो हु सि अण्णवं महं, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ।
अभितुर पारं गमित्तए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥
—उत्त. अ. १०, गा. ३१-३४

मोक्ष मार्ग में अप्रमत्त भाव से गमन का उपदेश—

२८७. "आज जिन नहीं दीख रहे हैं, जो मार्ग-दर्शक हैं वे एक-मत नहीं हैं"—अगली पीढ़ियों को इस कठिनाई का अनुभव होगा, किन्तु अभी मेरी उपस्थिति में तुझे पार ले जाने वाला (न्यायपूर्ण) पथ प्राप्त है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

कांटों से भरे मार्ग को छोड़कर तू विशाल-पथ पर चला आया है। दृढ़ निश्चय के साथ उसी मार्ग पर चल। हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

बलहीन भार-वाहक की भांति तू विषम-मार्ग में मत चले जाना। विषम-मार्ग में जाने वाले को पछतावा होता है, इसलिए हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

तू इस महान् समुद्र को तैर गया, अब तीर के निकट पहुँच कर क्यों खड़ा है ? उसके पार जाने के लिए जल्दी कर। हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

णिव्वाणमूलं सम्मद्दंसणं—

२८८. नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं, दंसणे उ भइयव्वं ।
सम्मत्तचरित्ताइं , जुगवं पुव्वं व सम्मत्तं ॥

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुन्ति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ॥
—उत्त. अ. २८, गा. २९-३०

निर्वाण का मूल सम्यग्-दर्शन

२८८. सम्यक्त्व-विहीन चारित्र नहीं होता। दर्शन (सम्यक्त्व) में चारित्र की भजना (विकल्प) है। सम्यक्त्व और चारित्र युगपत् (एक साथ) उत्पन्न होते हैं और जहाँ वे युगपत् उत्पन्न नहीं होते, वहाँ पहले सम्यक्त्व होता है।

अदर्शनी (असम्यक्त्वी) के ज्ञान (सम्यग्ज्ञान) नहीं होता, ज्ञान के बिना चारित्र-गुण नहीं होते। अगुणी व्यक्ति की मुक्ति नहीं होती। अमुक्त का निर्वाण नहीं होता।

पहाणा मोक्खमग्गा—

२८९. अच्चन्तकालस्स समूलगस्स,
सव्वस्स दुक्खस्स उ जो पमोक्खो ।
तं भासओ मे पडिपुण्णचित्ता,
सुणेह एगन्तहियं हियत्थं ॥

प्रधान मोक्षमार्ग—

२८९. अनादि-कालीन सब दुःखों और उनके कारणों (कषाय आदि) के मोक्ष का जो उपाय है वह मैं कह रहा हूँ। वह एकांत-हित (ध्यान के लिए हितकर) है, अतः तुम प्रतिपूर्ण चित्त होकर हित (मोक्ष) के लिए सुनो।

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए,
अन्नाणमोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य संखएणं,
एगन्तसोक्खं समुवेइ मोक्खं ॥

सम्पूर्ण ज्ञान का प्रकाश, अज्ञान और मोह का नाश तथा राग और द्वेष का क्षय होने से आत्मा एकान्त सुखमय मोक्ष को प्राप्त होता है।

तस्सेस मग्गो गुरुविद्धसेवा,
विवज्जणा बालजणस्स दूरा।
"सज्झायएगन्तनिसेवणा य",
सुत्तत्थ-संचिन्तणया धिई य ॥
—उत्त. अ. ३२, गा. १-३

गुरु और वृद्धों (स्थविर मुनियों) की सेवा करना, अज्ञानी-जनों का दूर से ही वर्जन करना, स्वाध्याय करना, एकान्तवास करना, सूत्र और अर्थ का चिन्तन करना तथा धैर्य रखना, यह मोक्ष का मार्ग है।

उम्मग्गपट्ठाणं निरयगमणं—

२९०. सुद्धं मग्गं विराहित्ता, इहमेगे उ दुम्मती।
उम्मग्गगता दुक्खं, घातमेसंति ते तधा ॥

उन्मार्ग से गमन करने वालों की नरकगति—

२९०. इस जगत् में कई दुर्बुद्धि व्यक्ति तो शुद्ध (निर्वाण रूप) भावमार्ग की विराधना करके उन्मार्ग में प्रवृत्त होते हैं। वे अपने लिए दुःख तथा अनेक बार घात (विनाश-मरण) चाहते हैं या ढूंढते हैं।

जहा आसाविणि नावं, जातिअंधे दुरूहिया।
इच्छती पारमागंतुं, अंतरा य विसीयती ॥

जैसे कोई जन्मान्ध पुरुष छिद्र वाली नौका पर चढ़कर नदी पार जाना चाहता है, परन्तु वह बीच (मझधार) में ही डूब जाता है।

एवं तु समणा एगे, मिच्छद्दिट्ठी अणारिया।
सोयं कसिणमावण्णा, आगंतारो महब्भयं ॥
—सूय. सु. १, अ. ११, सु. २९-३१

इसी तरह कई मिथ्यादृष्टि अनार्य श्रमण कर्मों के आश्रव रूप पूर्ण भाव स्रोत में डूबे हुए होते हैं। उन्हें अन्त में नरकादि दुःख रूप महाभय पाना पड़ेगा।

णिव्वाण साहणा—

२९१. धम्मं च धम्ममादाय,
कासवेण पवेदितं।
तरे सोयं महाघोरं,
अत्तत्ताए, परिव्वए ॥
विरते गामधम्मेहिं,
जे केइ जगती जगा।
तेसिं अत्तुवमायाए,
थामं कुव्वं परिव्वए ॥
अतिमाणं च मायं च,
तं परिण्णाय पंडिते।
सव्वमेयं निराकिच्चा,
निव्वाणं संधए मुणी ॥
संधते साहुधम्मं च,
पावं धम्मं णिराकरे।
उवधाणवीरिए भिक्खू,
कोहं माणं न पत्थए ॥

निर्वाण मार्ग की साधना—

२९१. काश्यपगोत्रीय भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित इस धर्म को ग्रहण (स्वीकार) करके शुद्ध मार्ग साधक साधु महाघोर (जन्म-मरणादि दीर्घकालिक दुःखपूर्ण) संसार सागर को पार करे तथा आत्मरक्षा के लिए संयम में पराक्रम करे।

साधु ग्राम धर्मों (शब्दादि विषयों) से निवृत्त (विरत) होकर जगत् में जो कोई (जीवितार्थी) प्राणी है, उन सुखप्रिय प्राणियों को आत्मवत् समझकर उन्हें दुःख न पहुँचाए, उनकी रक्षा के लिए पराक्रम करता हुआ संयम पालन में प्रगति करे।

पण्डित मुनि अति-(चारित्र विघातक) मान और माया (तथा अति लोभ और क्रोध) को (संसारवृद्धि का कारण) जान-कर इस समस्त कषाय समूह का निवारण करके निर्वाण (मोक्ष) के साथ आत्मा का सन्धान करे अथवा मोक्ष अन्वेषण करे।

(मोक्ष मार्ग परायण) साधु क्षमा आदि दशविध श्रमण धर्म अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप उत्तम धर्म के साथ मन-वचन-काया को जोड़े अथवा उत्तर धर्म में वृद्धि करे। तथा जो पाप-धर्म है उसका निवारण करे। भिक्षु तपश्चरण (उपधान) में पूरी शक्ति लगाए तथा क्रोध और अभिमान को जरा भी सफल न होने दे।

जे य बुद्धा अतिक्कंता,
जे य बुद्धा अणागता ।
संति तेसिं पतिट्ठाणं,
भूयाणं जगती जहा ॥

जो बुद्ध (केवलज्ञानी) अतीत में हो चुके हैं, और जो बुद्ध भविष्य में होंगे, उन सबका आधार (प्रतिष्ठान) शान्ति ही (कषाय-मुक्ति या मोक्ष रूप भाव मार्ग) है, जैसे कि प्राणियों का जगती (पृथ्वी) आधार है।

अह णं वतमावण्णं,
फासा उच्चावया फुसे ।
ण तेसु विणिहण्णेज्जा,
वातेणेव महागिरी ॥

अनगार धर्म स्वीकार करने के पश्चात् साधु नाना प्रकार के अनुकूल प्रतिकूल परीषह और उपसर्ग स्पर्श करे तो साधु उनसे जरा भी विचलित न हो, जैसे कि महावात से महागिरिवर मेरु कभी विचलित नहीं होता।

संवुडे से महापण्णे,
धीरे दत्तेसणं चरे ।
निव्वुडे कालमाकंखी,
एवं केवलिणो मयं ॥

—सूय. सु. १, अ. ११, गा. ३२-३८

आश्रवद्वारों का निरोध (संवर) किया हुआ वह महाप्रज्ञ धीर साधु दूसरे (गृहस्थ) के द्वारा दिया हुआ एषणीय-कल्पनीय आहार ही ग्रहण (सेवन) करे। तथा शान्त (उपशान्त कषाय निवृत्त) रहकर (अगर काल का अवसर आए तो) काल (पण्डित-मरण या समाधिमरण) की आकांक्षा (प्रतीक्षा) करे, यही केवली भगवान् का मत है।

सुमग्ग-उम्मग्ग सरूवं—

२९२. कुप्पहा बहवो लोए, जेहिं नासन्ति जंतवो ।
अद्धाणे कह वट्टन्ते, तं न नस्ससि गोयमा ! ॥
जे य मग्गेण गच्छन्ति, जे य उम्मग्गपट्ठिया ।
ते सव्वे विइया मज्झं, तो न नस्सामहं मुणी ! ॥
मग्गे य इइ के वुत्ते ? केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥
कुप्पवयण - पासण्डी, सव्वे उम्मग्गपट्ठिया ।
सम्मग्गं तु जिणक्खायं, एस मग्गे हि उत्तमे ॥

—उत्त. अ. २३, गा. ६०-६३

सन्मार्ग-उन्मार्ग का स्वरूप—

२९२. "गौतम ! लोक में कुमार्ग बहुत हैं, जिससे लोग भटक जाते हैं। मार्ग पर चलते हुए तुम क्यों नहीं भटकते हो ?"

"जो सन्मार्ग से चलते हैं और जो उन्मार्ग से चलते हैं, उन सबको मैं जानता हूँ। अतः हे मुने ! मैं नहीं भटकता हूँ।"

"मार्ग किसे कहते हैं ?" केशी ने गौतम को कहा।

केशी के पूछने पर गौतम ने यह कहा —

"मिथ्या प्रवचन को मानने वाले सभी पाषण्डी—व्रती लोग उन्मार्ग पर चलते हैं। सन्मार्ग तो जिनोपदिष्ट है, और यही उत्तम मार्ग है।"

मोक्खमग्ग जिण्णासा—

२९३. कयरे मग्गे अक्खाते, माहणेण मतीमता ।
जं मग्गं उज्जु पावित्ता, ओहं तरति दुत्तरं ॥

मोक्षमार्ग जिज्ञासा—

२९३. अहिंसा के परम उपदेष्टा (महामाहन) केवलज्ञानी (विशुद्ध मतिमान) भगवान महावीर ने कौन सा मोक्षमार्ग बताया है ? जिस सरल मार्ग को पाकर दुस्तर संसार (ओघ) को मनुष्य पार करता है ?

तं मग्गं अणुत्तरं सुद्धं, सव्वदुक्खविमोक्खणं ।
जाणासि णं जहा भिक्खू, तं णे बूहि महामुणी ॥

हे महामुने ! सब दुःखों से मुक्त करने वाले शुद्ध और अनुत्तर (सर्वश्रेष्ठ) उस मार्ग को आप जैसे जानते हैं, (कृपया) वह हमें बताइये।

जइ णे केइ पुच्छिज्जा, देवा अदुव माणुसा ।
तेसिं तु कतरं मग्गं, आइक्खेज्ज कहाहि णे ॥

यदि कोई देव अथवा मनुष्य हमसे पूछे तो हम उनको कौन सा मार्ग बताएँ ? (कृपया) यह हमें बताइये।

जइ वो केइ पुच्छिज्जा, देवा अदुव माणुसा ।
तेसिमं पडिसाहेज्जा, मग्गसारं सुणेह मे ॥

यदि कोई देव या मनुष्य तुमसे पूछे तो उन्हें यह (आगे कहा जाने वाला) मार्ग बतलाना चाहिए। यह साररूप मार्ग तुम मुझसे सुनो।

अणुपुव्वेणं महाघोरं, कासवेण पवेदियं।
जमादाय इओ पुव्वं, समुद्दं व ववहारिणो॥

काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान् द्वारा प्रतिपादित उस अतिकठिन मार्ग को मैं क्रमशः बताता हूँ। जैसे समुद्र मार्ग से विदेश में व्यापार करने वाले व्यापारी समुद्र को पार कर लेते हैं, वैसे ही इस मार्ग का आश्रय लेकर इससे पूर्व बहुत से जीवों ने संसार-सागर को पार किया है।

अतरिंसु तरंतेगे, तरिस्संति अणागता।
तं सोच्चा पडिवक्खामि, जंतवो तं सुणेह मे॥

—सूय. सु. १, अ. ११, गा. १-६

वर्तमान में कई भव्य जीव पार करते हैं, एवं भविष्य में भी बहुत से जीव इसे पार करेंगे। उस भावमार्ग को मैंने तीर्थंकर महावीर से सुनकर (जैसा समझा है) उस रूप में मैं आप (जिज्ञासुओं) को कहूँगा। हे जिज्ञासुजीवों! उस मार्ग (सम्बन्धी वर्णन को आप मुझसे सुने।

निव्वाण-मग्गं—

२६४. उड्ढं अहे तिरियं च, जे केइ तस-थावरा।
सव्वत्थ विरतिं कुज्जा, संति निव्वाणमाहियं॥

निर्वाण-मार्ग—

२६४. ऊपर, नीचे और तिरछे (लोक में) जो कोई त्रस और स्थावर जीव हैं, सर्वत्र उन सबकी हिंसा से विरति (निवृत्ति) करना चाहिए। (इस प्रकार) जीव को शान्तिमय निर्वाण-मोक्ष (की प्राप्ति कही गई) है।

पभू दोसे निराकिच्चा, ण विरुज्झेज्ज केणइ।
मणसा वयसा चेव, कायसा चेव अंतसो॥

—सूय. सु. १, अ. ११, गा. ११-१२

इन्द्रियविजेता साधक दोषों का निवारण करके किसी भी प्राणी के साथ जीवनपर्यन्त मन से, वचन से या काया से वैर विरोध न करे।

अणुत्तर णाण-दंसणं—

२६५. जमतीतं पडुप्पण्णं, आगामिस्सं च णायगो।
सव्वं मण्णति तं तातो, दंसणावरणंतए॥

अनुत्तरज्ञान दर्शन—

२६५. जो पदार्थ (अतीत में) हो चुके हैं, जो पदार्थ वर्तमान में विद्यमान हैं और जो पदार्थ भविष्य में होने वाले हैं, उन सबको दर्शनावरणीय कर्म का सर्वथा अन्त करने वाले जीवों के त्राता-रक्षक, धर्मनायक तीर्थंकर जानते-देखते हैं।

अंतए वितिगिछाए, से जाणति अणेलिसं।
अणेलिसस्स अक्खाया, ण से होंति तहिं तहिं॥

—सूय. सु. १, अ. १५, गा. १-२

जिसने विचिकित्सा (संशय) का सर्वथा अन्त (नाश) कर दिया है, वह (घातिचतुष्टय का क्षय करने के कारण) अतुल (अप्रतिम) ज्ञानवान् है। जो पुरुष सबसे बढ़कर वस्तुतत्त्व का प्रतिपादन करने वाला है, वह उन-उन (बौद्धादि दर्शनों) में नहीं होता।

मेत्ति भावणा—

२६६. (क) तहिं तहिं सुयक्खायं, से य सच्चे सुयाहिए।
सदा सच्चेण संपण्णे, मेत्तिं भूतेहिं कप्पते॥

मैत्री भावना—

२६६. (क) (तीर्थंकरदेव ने) उन-उन (आगमादि स्थानों) में जो (जीवादि पदार्थों का) अच्छी तरह से कथन किया है, वही सत्य है और वही सुभाषित (स्वाख्यात) है। अतः सदा सत्य से सम्पन्न होकर प्राणियों के साथ मैत्री भावना रखनी चाहिए।

भूतेहिं न विरुज्झेज्जा, एस धम्मे वुसीमओ।
वुसीमं जगं परिण्णाय, अस्सि जीवितभावणा॥

प्राणियों के साथ वैर-विरोध न करें, यही तीर्थंकरों का या सुसंयमी का धर्म है। कुसंयमी साधु जगत् का स्वरूप सम्यक्रूप से जानकर इस वीतराग-प्रतिपादित धर्म में जीवित भावना करे।

भावणाजोगसुद्धप्पा, जले णावा व आहिया।
नावा व तीरसंपन्ना, सव्वदुक्खा तिउट्टति॥

—सूय. सु. १, अ. १५, गा. १-५

भावनाओं के योग से जिसका अन्तरात्मा शुद्ध हो गया है, उसकी स्थिति जल में नौका के समान कही गई है। किनारे पर पहुँची हुई नौका, विश्राम करती है, वैसे ही भावना योग साधक भी संसार-समुद्र के तट पर पहुँचकर समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है।

(ख) जं च मे पुच्छसी काले, सम्मं सुद्धेण चेयसा ।
ताइं पाउकरे बुद्धे, तं नाणं जिणसासणे ॥

(ख) "जो तुम मुझे सम्यक् शुद्ध चित्त से काल के विषय में पूछ रहे हो, उसे बुद्ध—सर्वज्ञ ने प्रकट किया है। अतः वह ज्ञान जिनशासन में विद्यमान है।"

किरियं च रोयए धीरे, अकिरियं परिवज्जए ।
दिट्ठीए दिट्ठिसम्पन्ने, धम्मं चर सुदुच्चरं ॥

"धीर पुरुष क्रिया में रुचि रखे और अक्रिया का त्याग करे। सम्यग्दृष्टि से दृष्टिसम्पन्न होकर तुम दुश्चर धर्म का आचरण करो।"

एयं पुण्णपयं सोच्चा, अत्थ-धम्मोवसोहियं ।
भरहो वि भारहं वासं, चेच्चा कामाइं पव्वए ॥

"अर्थ और धर्म से उपशोभित इस पुण्यपद (पवित्र उपदेश वचन) को सुनकर भरत चक्रवर्ती भारतवर्ष और कामभोगादि का परित्याग कर प्रव्रजित हुए थे।"

सगरो वि सागरन्तं, भरहवासं नराहिवो ।
इस्सरियं केवलं हिच्चा, दयाए परिनिव्वुडे ॥

"नराधिप सागर चक्रवर्ती सागर-पर्यन्त भारतवर्ष एवं पूर्ण ऐश्वर्य को छोड़कर दया—अर्थात् संयम की साधना से परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।"

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महिड्ढिओ ।
पव्वज्जमब्भुवगओ, मघवं नाम महाजसो ॥

"महान् ऋद्धि-सम्पन्न महान यशस्वी मघवा नामक चक्रवर्ती ने भारतवर्ष को छोड़कर प्रव्रज्या स्वीकार की।"

सणंकुमारो मणुस्सिन्दो, चक्कवट्टी महिड्ढिओ ।
पुत्तं रज्जे ठवित्ताणं, सो वि राया तवं चरे ॥

"महान् ऋद्धि-सम्पन्न, मनुष्येन्द्र सनत्कुमार चक्रवर्ती ने पुत्र को राज्य पर स्थापित कर तप का आचरण किया।"

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महिड्ढिओ ।
सन्ती सन्तिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरं ॥

"महान् ऋद्धि-सम्पन्न और लोक में शान्ति करने वाले शान्तिनाथ चक्रवर्ती ने भारतवर्ष को छोड़कर अनुत्तर गति प्राप्त की।"

इक्खागरायवसभो, कुन्थु नाम नराहिवो ।
विक्खायकित्ती धिइमं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥

"इक्ष्वाकु कुल के राजाओं में श्रेष्ठ नरेश्वर, विख्यातकीर्ति, धृतिमान् कुन्थुनाथ ने अनुत्तर गति प्राप्त की।"

सागरन्तं जहित्ताणं, भरहं नरवरीसरो ।
अरो य अरयं पत्तो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥

"सागरपर्यन्त भारतवर्ष को छोड़कर, कर्म-रज को दूर करके नरेश्वरों में श्रेष्ठ "अर" ने अनुत्तर गति प्राप्त की।"

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी नराहिओ ।
चइत्ता उत्तमे भोए, महापउमे तवं चरे ॥

"भारतवर्ष को छोड़कर, उत्तम भोगों को त्यागकर "महापद्म चक्रवर्ती ने तप का आचरण किया।"

एगच्छत्तं पसाहित्ता, महिं माणनिसूरणो ।
हरिसेणो मणुस्सिन्दो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥

"शत्रुओं का मानमर्दन करने वाले हरिषेण चक्रवर्ती ने पृथ्वी पर एकछत्र शासन करके फिर अनुत्तर गति प्राप्त की।"

अन्निओ रायसहस्सेहिं सुपरिच्चाई दमं चरे ।
जयनामो जिणक्खायं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥

"हजार राजाओं के साथ श्रेष्ठ त्यागी जय चक्रवर्ती ने राज्य का परित्याग कर जिन-भाषित दम (संयम) का आचरण किया और अनुत्तर गति प्राप्त की।"

दसण्णरज्जं मुइयं, चइत्ताण मुणी चरे ।
दसण्णभद्दो निक्खन्तो, सक्खं सक्केण चोइओ ॥

"साक्षात् देवेन्द्र से प्रेरित होकर दशार्ण-भद्र राजा ने अपने सब प्रकार से प्रमुदित दशार्ण राज्य को छोड़कर प्रव्रज्या ली और मुनि-धर्म का आचरण किया।"

नमी नमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ ।
चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥

"साक्षात् देवेन्द्र से प्रेरित होने पर भी विदेह के राजा नमि श्रामण्य धर्म में भलि-भाँति स्थिर हुए और अपने को अति नम्र बनाया।"

करकण्डू कलिंगेसु, पंचालेसु य दुम्मुहो ।
नमी राया विदेहेसु, गन्धारेसु य नग्गई ॥

"कलिंग में करकण्डु, पांचाल में द्विमुख, विदेह में नमि राजा और गन्धार में नग्गति—

एए नरिन्दवसभा, निक्खन्ता जिणसासणे ।
पुत्ते रज्जे ठवित्ताणं, सामण्णे पज्जुवट्ठिया ॥

ये राजाओं में वृषभ के समान महान् थे। इन्होंने अपने-अपने पुत्र को राज्य में स्थापित कर श्रामण्य धर्म स्वीकार किया।

सोवीररायवसभो, चेच्चा रज्जं मुणी चरे ।
उद्दायणो पव्वइओ, पत्तो गइमणुत्तरं ॥

सोवीर राजाओं में वृषभ के समान महान उद्रायण राजा ने राज्य को छोड़कर प्रव्रज्या ली, मुनि-धर्म का आचरण किया और अनुत्तर गति प्राप्त की।

तहेव कासीराया, सेओ-सच्चपरक्कमे ।
कामभोगे परिच्चज्ज, पहणे कम्ममहावणं ॥

इसी प्रकार श्रेय और सत्य में पराक्रमशील काशीराज ने काम-भोगों का परित्याग कर कर्मरूपी महावन का नाश किया।

तहेव विजओ राया, अणट्ठाकित्ति पव्वए ।
रज्जं तु गुणसमिद्धं, पयहित्तु महाजसो ॥

इसी प्रकार अमरकीर्ति महान् यशस्वी विजय राजा ने गुण-समृद्ध राज्य को छोड़कर प्रव्रज्या ली।

तहेवुग्गं तवं किच्चा, अव्वक्खित्तेण चेयसा ।
महाबलो रायरिसी, अद्दाय सिरसा सिरं ॥

इसी प्रकार अनाकुल चित्त से उग्र तपश्चर्या करके राजर्षि महाबल ने सिर देकर सिर प्राप्त किया—अर्थात् अहंकार का विसर्जन कर सिद्धिरूप उच्च पद प्राप्त किया। अथवा सिद्धिरूप श्री प्राप्त की।

कहं धीरो अहेऊहिं, उम्मत्तो व महिं चरे ?
एए विसेसमादाय, सूरा दढपरक्कमा ॥

इन भरत आदि शूर और दृढ़ पराक्रमी राजाओं ने जिन-शासन में विशेषता देखकर ही उसे स्वीकार किया था। अतः अहेतुवादों से प्रेरित होकर अब कोई कैसे उन्मत्त की तरह पृथ्वी पर विचरण करे ?

अच्चन्तनियाणखमा, सच्चा मे भासिया वई ।
अतरिंसु तरन्तेगे, तरिस्सन्ति अणागया ॥

मैंने यह अत्यन्त निदानक्षम—युक्तिसंगत सत्य-वाणी कही है। इसे स्वीकार कर अनेक जीव अतीत में संसार-समुद्र से पार हुए हैं, वर्तमान में पार हो रहे हैं और भविष्य में पार होंगे।

कहं धीरे अहेऊहिं, अत्ताणं परियावसे ?
सव्वसंगविनिम्मुक्के, सिद्धे हवइ नीरए ॥
—उत्त. अ. १८, गा. ३२-५४

धीर साधक एकान्तवादी अहेतुवादों में अपने-आप को कैसे लगाएँ ? जो सभी संगों से मुक्त है, वही नीरज अर्थात् कर्मरज से रहित होकर सिद्ध होता है।

सिद्धट्ठाण सरूवं—

२९७. इह आगतिं गतिं परिण्णाय अच्चेति जातिमरणस्स वट्टमग्गं वक्खातरते ।

सिद्धस्थान का स्वरूप—

२९७. साधक जीवों की गति-आगति (संसार परिभ्रमण) के कारणों का परिज्ञान करके व्याख्यात-रत मुनि जन्म-मरण के वृत्त मार्ग को पार कर जाता है।

सव्वे सरा नियट्टन्ति,
तक्का जत्थ ण विज्जति,
मती तत्थ ण गाहिया ।
ओए अप्पतिट्ठाणस्स खेत्तण्णे ।

(उन सिद्धात्मा का स्वरूप या अवस्था बताने के लिए) सभी स्वर लौट जाते हैं, वहाँ कोई तर्क नहीं है, वहाँ मति भी प्रवेश नहीं कर पाती। वहां (मोक्ष में) वह समस्त कर्मफल से रहित ओजरूप शरीररूप प्रतिष्ठान—आधार से रहित और क्षेत्रज्ञ ही है।

से ण दीहे, ण हस्से, ण वट्टे, ण तंसे, ण चउरंसे, ण परिमंडले,

वह न दीर्घ है, न ह्रस्व है, न वृत्त है, न त्रिकोण है, न चतुष्कोण है, न परिमण्डल है।

ण किण्हे, ण णीले, ण लोहिते, ण हालिद्दे, ण सुक्किले,

वह न कृष्ण है, न नील है, न लाल है, न पीला है और न शुक्ल है।

ण सुब्भिगंधे, ण दुब्भिगंधे,

ण तित्ते, ण कडुए, ण कसाए, ण अंबिले, ण महुरे,

ण कक्खडे, ण मउए, ण गरुए, ण लहुए, ण सीए, ण उण्हे, ण णिद्धे, ण लुक्खे,

ण काऊ, ण रुहे, ण संगे, ण इत्थी, ण पुरिसे, ण अण्णहा।

परिण्णे सण्णे।

उवमा ण विज्जति।

अरूवी सत्ता।

अपयस्स पयं णत्थि।

से ण सद्दे, ण रूवे, ण गंधे, ण रसे, ण फासे इच्चेतावंति।

—आ. सु. १, अ. ५, उ. ६, सु. १७६

न वह सुगन्ध (युक्त) है, न दुर्गन्ध (युक्त) है,

न तिक्त (तीखा) है, न कडुवा है, न कसैला है, न खट्टा है, न मीठा है, न कर्कश है, न मृदु है, न गुरु है, न लघु है, न ठंडा है, न गर्म है, न चिकना है, न रूखा है,

न कायवान् है, न जन्मधर्मा है, संग रहित है, न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है।

वह परिज्ञ है, संज्ञ (सभी पदार्थ सम्यक् जानता) है, वह सर्वतः चैतन्यमय ज्ञानघन है। (उसका बोध कराने के लिए) कोई उपमा नहीं है। वह अरूपी (अमूर्त) सत्ता है। वह पदातीत-अपद है। उसका बोध कराने के लिए कोई पद नहीं है।

वह न शब्द है, न रूप है, न गन्ध है, न रस है और न स्पर्श है। बस, इतना ही है।

सच्चा असच्चा दंसणसच्चा दंसणअसच्चा—

२९८. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

सच्चे नाममेगे सच्चदिट्ठी,
सच्चे नाममेगे असच्चदिट्ठी,
असच्चे नाममेगे सच्चदिट्ठी,
असच्चे नाममेगे असच्चदिट्ठी।

—ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २४१

सत्यवक्ता, असत्यवक्ता दर्शनसत्या दर्शन असत्या—

२९८. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—

एक पुरुष सत्य वक्ता है और उसकी दृष्टि-दर्शन भी सत्य है,
एक पुरुष सत्यवक्ता है किन्तु उसकी दृष्टि-दर्शन असत्य है,
एक पुरुष असत्यवक्ता है किन्तु उसकी दृष्टि-दर्शन सत्य है,
एक पुरुष असत्यवक्ता है और उसकी दृष्टि-दर्शन भी असत्य है।

सुसीला दुस्सीला सुदंसणा कुदंसणा—

२९९. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

सुई नाममेगे सुइदिट्ठी,

सुई नाममेगे असुइदिट्ठी,

असुई नाममेगे सुइदिट्ठी,

असुई नाममेगे असुइदिट्ठी।

—ठाणं अ. ४, उ. १, सु. २४१

सुशील और दुश्शील; सुदर्शन और कुदर्शन—

२९९. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—

एक पुरुष अच्छे स्वभाववाला है और उसकी दृष्टि-दर्शन भी अच्छा है,

एक पुरुष अच्छे स्वभाववाला है किन्तु उसकी दृष्टि-दर्शन अच्छा नहीं है,

एक पुरुष अच्छे स्वभाववाला नहीं है किन्तु उसकी दृष्टि-दर्शन अच्छा है,

एक पुरुष अच्छे स्वभाववाला नहीं है और उसकी दृष्टि-दर्शन भी अच्छा नहीं है।

सुद्धा असुद्धा सुद्ध दंसणा असुद्ध दंसणा—

३००. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—

सुद्धे नाममेगे सुद्धे,
सुद्धे नाममेगे असुद्धे,
असुद्धे नाममेगे सुद्धे,
असुद्धे नाममेगे असुद्धे।

—ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २३९

शुद्ध और अशुद्ध शुद्ध दर्शनवाले और कुदर्शनवाले—

३००. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—

एक पुरुष शुद्ध है और उसकी दृष्टि-दर्शन भी शुद्ध है,
एक पुरुष शुद्ध है किन्तु दृष्टि शुद्ध नहीं है,
एक पुरुष अशुद्ध है किन्तु उसकी दृष्टि शुद्ध है,
एक पुरुष अशुद्ध है और उसकी दृष्टि भी अशुद्ध है।

उन्नया अवनया उन्नयदंसणा-अवनयदंसणा—

३०१. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उन्नए नाममेगे उन्नयदिट्ठी,
उन्नए नाममेगे पणयदिट्ठी,
पणए नाममेगे उन्नयदिट्ठी,
पणए नाममेगे पणयदिट्ठी।

—ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २३१

उन्नत और अवनत, उन्नत दर्शनी और अवनत दर्शनी—

३०१. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—
एक पुरुष उन्नत है और उन्नत दृष्टि-दर्शनवाला है,
एक पुरुष उन्नत है किन्तु हीन दृष्टि-दर्शनवाला है,
एक पुरुष हीन है किन्तु उन्नत दृष्टि-दर्शनवाला है,
एक पुरुष हीन है और हीन दृष्टि-दर्शनवाला है।

सरला वंका उज्जुदंसणा-वंकदंसणा आइ—

३०२. (क) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
उज्जू नाममेगे उज्जुदिट्ठी,
उज्जू नाममेगे वंकदिट्ठी,
वंके नाममेगे उज्जुदिट्ठी,
वंके नाममेगे वंकदिट्ठी।

—ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २३६

(ख) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
अज्जे नाममेगे अज्जदिट्ठी,
अज्जे नाममेगे अणज्जदिट्ठी,
अणज्जे नाममेगे अज्जदिट्ठी,
अणज्जे नाममेगे अणज्जदिट्ठी।

—ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २८०

(ग) चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
दीणे नाममेगे दीणदिट्ठी,
दीणे नाममेगे अदीणदिट्ठी,
अदीणे नाममेगे दीणदिट्ठी,
अदीणे नाममेगे अदीणदिट्ठी।

—ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २७१

सरल और वक्र, सरल दृष्टि और वक्रदृष्टि आदि—

३०२. चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—
एक पुरुष हृदय से सरल है और मायारहित दृष्टि-दर्शनवाला है,
एक पुरुष हृदय से सरल है किन्तु वह मायायुत दृष्टि-दर्शनवाला है,
एक पुरुष हृदय से वक्र है किन्तु मायारहित दृष्टि-दर्शनवाला है,
एक पुरुष हृदय से वक्र है और मायायुत दृष्टि-दर्शनवाला है।

चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—
एक पुरुष आर्य है और आर्य दृष्टि-दर्शनवाला है,
एक पुरुष आर्य है किन्तु अनार्य-दृष्टि-दर्शनवाला है,
एक पुरुष अनार्य है किन्तु आर्य दृष्टि-दर्शनवाला है,
एक पुरुष अनार्य है और अनार्य दृष्टि-दर्शनवाला है।

चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा—
एक पुरुष म्लान मुख वाला है और उसकी दृष्टि-दर्शन भी स्पष्ट नहीं है,
एक पुरुष म्लान मुख वाला है किन्तु उसकी दृष्टि-दर्शन स्पष्ट है,
एक पुरुष म्लान मुख वाला नहीं है किन्तु उसकी दृष्टि दर्शन स्पष्ट है,
एक पुरुष म्लान मुख वाला नहीं है और उसकी दृष्टि-दर्शन भी स्पष्ट है।

दर्शनाचार : परिशिष्ट

(१) पुण्डरीक सम्बन्धी दृष्टान्त दार्ष्टान्तिक की योजना—

प्रस्तुत प्रकरण के दो सूत्रों (सूत्र २७७-२७८) में से प्रथम सूत्र में श्रमण भगवान महावीर ने श्रमण-श्रमणियों की जिज्ञासा देखकर उनको दृष्टान्तों का अर्थघटन करके बताने का आश्वासन दिया है, द्वितीय सूत्र में महावीर प्रभु ने अपनी केवलज्ञानरूपी प्रज्ञा द्वारा निश्चित करके पुष्करिणी आदि दृष्टान्तों का विविध पदार्थों से उपमा देकर इस प्रकार अर्थघटन किया है—

(१) पुष्करिणी चौदह रज्जू-परिमित विशाल लोक है। जैसे पुष्करिणी में अगणित कमल उत्पन्न और विनष्ट होते रहते हैं, वैसे ही लोक में अगणित प्रकार के जीव स्व-स्वकर्मानुसार उत्पन्न-विनष्ट होते रहते हैं। पुष्करिणी अनेक कमलों का आधार होती है, वैसे ही मनुष्यलोक भी अनेक मानवों का आधार है।

(२) पुष्करिणी का जल कर्म है। जैसे पुष्करिणी में जल के कारण कमलों की उत्पत्ति होती है, वैसे ही आठ प्रकार के स्वकृत कर्मों के कारण मनुष्यों की उत्पत्ति होती है।

(३) काम-भोग पुष्करिणी का कीचड़ है। जैसे—कीचड़ में फँसा हुआ मानव अपना उद्धार करने में असमर्थ हो जाता है, वैसे ही काम-भोगों में फँसा मानव भी अपना उद्धार नहीं कर सकता। ये दोनों ही समान रूप से बन्धन के कारण हैं। एक बाह्य बन्धन है, दूसरा आन्तरिक बन्धन।

(४) आर्यजन और जनपद बहुसंख्यक श्वेतकमल हैं। पुष्करिणी में नाना प्रकार के कमल होते हैं, वैसे ही मनुष्यलोक में नाना प्रकार के मानव रहते हैं। अथवा पुष्करिणी कमलों से सुशोभित होती है, वैसे ही मनुष्यों और उनके देशों से मानव लोक सुशोभित होता है।

(५) जैसे पुष्करिणी के समस्त कमलों में प्रधान एक उत्तम और विशाल श्वेतकमल है, वैसे ही मनुष्यलोक के सभी मनुष्यों में श्रेष्ठ और सब पर शासनकर्ता नरेन्द्र होता है. वह शीर्षस्थ एवं स्व-पर अनुशास्ता होता है, जैसे कि पुष्करिणी में कमलों का शीर्षस्थ श्रेष्ठ पुण्डरीक है।

(६) अविवेक के कारण पुष्करिणी के कीचड़ में फँस जाने वाले जैसे वे चार पुरुष थे, वैसे ही संसाररूपी पुष्करिणी के काम-भोगरूपी कीचड़ या मिथ्या मान्यताओं के दलदल में फँस जाने वाले चार अन्यतीर्थिक हैं, जो पुष्करिणी-पंकमग्न पुरुषों की तरह न तो अपना उद्धार कर पाते हैं, न ही प्रधान श्वेतकमलरूप शासक का उद्धार कर सकते हैं।

(७) अन्यतीर्थिक गृहत्याग करके भी सत्संयम का पालन नहीं करते, अतएव वे न तो गृहस्थ ही रहते हैं, न साधुपद-मोक्षपद प्राप्त कर पाते हैं। वे बीच में फँसे पुरुषों के समान न इधर के न उधर के रहते हैं—उभयभ्रष्ट ही रह जाते हैं।

(८) जैसे बुद्धिमान् पुरुष पुष्करिणी के भीतर न घुसकर उसके तट पर से ही आवाज देकर उत्तम श्वेतकमल को बाहर निकाल लेता है, वैसे ही राग-द्वेषरहित साधु काम-भोग रूपी दलदल से युक्त संसार-पुष्करिणी में न घुसकर संसार के धर्मतीर्थरूप तट पर खड़ा (तटस्थ-निर्लिप्त) होकर धर्मकथारूपी आवाज देकर श्वेतकमलरूपी राजा-महाराजा आदि को संसाररूपी पुष्करिणी से बाहर निकाल लेते हैं।

(९) जैसे कमल जल और कीचड़ का त्याग करके बाहर (उनसे ऊपर उठ) आता है, इसी प्रकार उत्तम पुरुष अपने अष्टविध कर्मरूपी जल और काम-भोगरूपी कीचड़ का त्याग करके निर्वाणपद को प्राप्त कर लेते हैं। श्वेतकमल का ऊपर उठकर बाहर आना ही निर्वाण पाना है।

(२) क्रियावाद—

निर्युक्तिकार ने क्रियावाद के १८० भेद बताए हैं। वे इस प्रकार से हैं—सर्वप्रथम जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष इन नौ पदार्थों को क्रमशः स्थापित करके उसके नीचे स्वतः और परतः ये दो भेद रखने चाहिए। इसी तरह उनके नीचे "नित्य" और "अनित्य" इन दो भेदों की स्थापना करनी चाहिए। उसके नीचे क्रमशः काल, स्वभाव, नियति, ईश्वर और आत्मा इन ५ भेदों की स्थापना करनी चाहिए। जैसे—(१) जीव स्वतः विद्यमान है, (२) जीव परतः (दूसरे से) उत्पन्न होता है, (३) जीव नित्य है, (४) जीव अनित्य है, इन चारों भेदों को क्रमशः काल आदि पांचों के साथ लेने से बीस भेद (४×५=२०)

होते हैं। इसी प्रकार अजीवादि शेष ८ के प्रत्येक के बीस-बीस भेद समझने चाहिए। यों नौ ही पदार्थों के २० × ९ = १८० भेद क्रियावादियों के होते हैं।[1]

(३) अक्रियावाद—

अक्रियावाद के ८४ भेद होते हैं, वे इस प्रकार हैं—जीव आदि ७ पदार्थों को क्रमशः लिखकर उसके नीचे (१) स्वतः और (२) परतः ये दो भेद स्थापित करने चाहिए। फिर उन ७ × २ = १४ ही पदों के नीचे (१) काल, (२) यदृच्छा, (३) नियति, (४) स्वभाव, (५) ईश्वर और (६) आत्मा इन ६ पदों को रखना चाहिए। जैसे—जीव स्वतः यदृच्छा से नहीं है, जीव परतः यदृच्छा से नहीं है, जीव स्वतः काल से नहीं है, जीव परतः काल से नहीं है; इसी तरह नियति, स्वभाव, ईश्वर और आत्मा के साथ भी प्रत्येक के दो-दो भेद होते हैं। यों जीवादि सातों पदार्थों के सात स्वतः परतः के प्रत्येक के दो और काल आदि के ६ भेद मिलाकर कुल ७ × २ = १४ × ६ = ८४ भेद हुए।[2]

(४) अज्ञानवाद—

अज्ञानवादियों के ६७ भेद इस प्रकार हैं—जीवादि ९ तत्वों को क्रमशः लिखकर उनके नीचे ये ७ भंग रखने चाहिए—(१) सत्, (२) असत्, (३) सदसत्, (४) अवक्तव्य, (५) सदवक्तव्य, (६) असदवक्तव्य, और (७) सद्-असद् अवक्तव्य। जैसे—जीव सत् है, यह कौन जानता है ? और यह जानने से भी क्या प्रयोजन है ? इसी प्रकार क्रमशः असत् आदि शेष छहों भंग समझ लेने चाहिए। जीवादि ९ तत्वों में प्रत्येक के साथ सात भंग होने से कुल ६३ भंग हुए। फिर ४ भंग ये और मिलाने से ६३ + ४ = ६७ भेद हुए। चार भंग ये हैं (१) सत् (विद्यमान) पदार्थ की उत्पत्ति होती है, यह कौन जानता है, और यह जानने से भी क्या लाभ ? इसी प्रकार असत् (अविद्यमान), सदसत् (कुछ विद्यमान और कुछ अविद्यमान), और अवक्तव्यभाव के साथ भी इसी तरह का वाक्य जोड़ने से ४ विकल्प होते हैं।

(५) विनयवाद—

निर्युक्तिकार ने विनयवाद के ३२ भेद बताये हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) देवता, (२) राजा, (३) यति, (४) ज्ञाति, (५) वृद्ध, (६) अधम, (७) माता और (८) पिता। इन आठों का मन से, वचन से, काया से और दान से विनय करना चाहिए। इस प्रकार ८ × ४ = ३२ भेद विनयवाद के हुए।[3]

इस प्रकार अन्यतीर्थिक मान्य	क्रियावाद के	१८० भेद
	अक्रियावाद के	८४ भेद
	अज्ञानवाद के	६७ भेद
	विनयवाद के	३२ भेद
	सर्वभेद	३६३

१ सूत्रकृतांग निर्युक्ति गा. ११९।

२ सूत्रकृतांग शीलांक वृत्ति पत्रांक २०८।

३ सूत्रकृतांग शीलांक वृत्ति पत्रांक २०८।

सम्यक्दर्शन तालिका

दर्शनाचार

१. निसर्ग सम्यग्दर्शन

२. अभिगम सम्यग्दर्शन

पांच लक्षण :

१. उपशम
२. संवेग
३. निर्वेद
४. अणुकंपा
५. आस्तिक्य

पांच अतिचार

१. शंका
२. कांक्षा
३. विचिकित्सा
४. पर-पाषंड-प्रशंसा
५. पर-पाषंड-संस्तव

पांच भूषण

१. जिनशासन कुशलता
२. प्रभावना
३. तीर्थ सेवना
४. धर्मस्थिरता
५. गुण-भक्ति

दस प्रकार (रुचि)

१. निसर्गरुचि
२. उपदेशरुचि
३. आज्ञारुचि
४. सूत्ररुचि
५. बीजरुचि
६. अभिगमरुचि
७. विस्ताररुचि
८. क्रियारुचि
९. संक्षेपरुचि
१०. धर्मरुचि

आठ अंग

१. निःशंका
२. निष्कांक्षा
३. निर्विचिकित्सा
४. अमूढदृष्टि
५. उपबृंहण
६. स्थिरीकरण
७. वात्सल्य
८. प्रभावना

श्रद्धा के चार प्रकार

१. परमार्थ का संस्तव
२. सुदृष्ट परमार्थ सेवना
३. सम्यक्त्व भ्रष्ट का संगत्याग
४. कुदर्शनी का संगत्याग

आठ प्रभावक

१. प्रावचनिक
२. धर्मकथिक
३. वादी
४. नैमित्तिक
५. तपस्वी
६. विद्यासिद्ध
७. कवि
८. प्रभावक

मिथ्यादर्शन

- **१ अक्रिया**
  - **१ प्रयोग क्रिया**
    - १. मनःप्रयोग क्रिया
    - २. वचनप्रयोग क्रिया
    - ३. कायप्रयोग क्रिया
  - **२ समुदान क्रिया**
    - १. अनन्तर समुदानक्रिया
    - २. परम्पर समुदानक्रिया
    - ३. तदुभय समुदानक्रिया
  - **३ अज्ञान क्रिया**
    - १. मतिअज्ञान क्रिया
    - २. श्रुतअज्ञान क्रिया
    - ३. विभंगअज्ञान क्रिया
- **२ अविनय**
- **३ अज्ञान**
  - **३ प्रकार**
    - १. देशअज्ञान
    - २. सर्वअज्ञान
    - ३. भावअज्ञान
  - **दश प्रकार**
    - १. धर्म में अधर्म श्रद्धा
    - २. अधर्म में धर्म श्रद्धा
    - (आदि)।

३

॥ चरित्तायारो ॥

पणिधाण जोगजुत्तो,
पंचहिं समतीहिं तिहिं य गुत्तीहिं ।
एस चरित्तायारो,
अट्ठविहो होति णायव्वो ॥

—निशीथभाष्य; भाग १, गा० ३५

च र णा नु यो ग

[चा रि त्रा चा र]

३

चरित्तायारो

चारित्राचार

चरणविहिमहत्तं—

३०३. चरणविहिं पवक्खामि, जीवस्स उ सुहावहं।
जं चरित्ता बहू जीवा, तिण्णा संसारसागरं॥
—उत्त. अ. ३१, गा. १

दोहिं ठाणेहिं संपन्ने अणगारे अणाईयं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं वीतिवतेज्जा, तं जहा—विज्जाए चेव चरणेण चेव।[1]
—ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ५३

णत्थि आसवे संवरे वा, णेवं सण्णं निवेसए।
अत्थि आसवे संवरे वा, एवं सण्णं निवेसए॥
—सूय. सु. २, अ. ५, गा. १७

चरणविधि का महत्व—

३०३. अब मैं जीव को सुख देने वाली उस चरण-विधि का कथन करूँगा जिसका आचरण कर बहुत से जीव संसार-सागर से तिर गए।

विद्या और चरण (चारित्र) इन दोनों स्थानों से सम्पन्न अणगार अनादि अनन्त दीर्घ मार्ग वाले एवं चतुर्गतिरूप संसार रूपी गहन वन को पार करता है, अर्थात् मुक्त होता है।

आश्रव और संवर नहीं है ऐसी श्रद्धा नहीं रखनी चाहिए किन्तु आश्रव भी है और संवर भी है ऐसी श्रद्धा रखनी चाहिए।

संवरस्स उप्पत्ति अणुप्पत्ति य —

३०४. तओ जामा पण्णत्ता,

तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।
तिहिं जामेहिं आया केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा,
तं जहा—पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।
—ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६३

प०—असोच्चा णं भंते! केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा?

उ०—गोयमा! असोच्चा णं केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खिय-उवासियाए वा अत्थेगत्तिए केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, अत्थेगत्तिए केवलेणं संवरेणं नो संवरेज्जा।

प०—से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—

असोच्चा णं केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगत्तिए केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, अत्थेगत्तिए केवलेणं संवरेणं नो संवरेज्जा?

उ०—गोयमा! जस्स णं अज्झवसाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा।

संवर की उत्पत्ति और अनुत्पत्ति—

३०४. तीन याम (प्रहर) कहे गये हैं—

यथा—प्रथम याम, मध्यम याम और अन्तिम याम।
तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध संवर से संवृत होता है—
यथा—प्रथम याम में, मध्यम याम में और अन्तिम याम में।

प्र०—भन्ते! केवलि से—यावत्—केवलिपाक्षिक उपासिका से बिना सुने कोई जीव संवर आराधन कर सकता है?

उ०—गौतम! केवलि से—यावत्—केवलिपाक्षिक उपासिका से सुने बिना कई जीव संवर आराधन कर सकते हैं और कई जीव संवर आराधन नहीं कर सकते हैं।

प्र०—भन्ते! किस कारण से ऐसा कहा जाता है—

केवलि से—यावत्—केवलि पाक्षिक उपासिका से सुने बिना कोई एक जीव संवर आराधन कर सकता है और कोई जीव संवर आराधन नहीं कर सकता?

उ०—गौतम! जिसके अध्यवसानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ है वह केवलि से—यावत्—केवलि पाक्षिक उपासिका से सुने बिना संवर आराधन कर सकता है।

---

1 ठाणं. अ. २, उ० १, सु. ६१

जस्स णं अज्झवसाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलेणं संवरेणं नो संवरेज्जा।

जिसके अध्यवसानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं हुआ है। वह केवलि से —यावत्—केवलिपाक्षिक उपासिका से सुने बिना संवर आराधन नहीं कर सकता है।

से तेणट्ठेणं गोयमा एवं वुच्चइ—

गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है—

जस्स णं अज्झवसाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा।

जिसके अध्यवसानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ है वह केवली से—यावत्—केवलिपाक्षिक उपासिका से सुने बिना संवर आराधन कर सकता है।

जस्स णं अज्झवसाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलेणं संवरेणं नो संवरेज्जा।

—वि. स. ९, उ. ३१, सु. ११

जिसके अध्यवसानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं हुआ है वह केवली से—यावत्—केवलि पाक्षिक उपासिका से सुने बिना संवर आराधन नहीं कर सकता है।

प०—सोच्चा णं भंते ! केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा ?

प्र०—भन्ते ! केवलि से—यावत्—केवलिपाक्षिक उपासिका से सुनकर कोई जीव संवर आराधन कर सकता है ?

उ०—गोयमा ! सोच्चा णं केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगतिए केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, अत्थेगतिए केवलेणं संवरेणं नो संवरेज्जा।

उ०—गौतम ! केवलि से —यावत्—केवलिपाक्षिक उपासिका के सुनकर कोई जीव संवर आराधन कर सकता है और कोई जीव संवर आराधन नहीं कर सकता है।

प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—

प्र०—भन्ते ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है—

सोच्चा णं केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगतिए केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, अत्थेगतिए केवलेणं संवरेणं नो संवरेज्जा ?

केवलि से—यावत्—केवलि पाक्षिक उपासिका से सुनकर कोई जीव संवर आराधन कर सकता है और कई जीव संवर आराधन नहीं कर सकता है ?

उ०—गोयमा ! जस्स णं अज्झवसाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ से णं सोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा।

जस्स णं अज्झवसाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ से णं सोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलेणं संवरेणं नो संवरेज्जा।

उ०—गौतम ! जिसके अध्यवसानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ है वह केवलि से —यावत्— केवलि पाक्षिक उपासिका से सुनकर संवर आराधन कर सकता है।

जिसके अध्यवसानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं हुआ है वह केवलि से—यावत्—केवलिपाक्षिक उपासिका से सुनकर संवर आराधन नहीं कर सकता है।

से तेणट्ठेणं गोयमा एवं वुच्चइ —

गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है—

जस्स णं अज्झवसाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, से णं सोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा।

जिसके अध्यावसानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ है वह केवलि से—यावत्—केवलिपाक्षिक उपासिका से सुनकर संवर आराधन कर सकता है।

जस्स णं अज्झवसाणावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ, से णं सोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलेणं संवरेणं नो संवरेज्जा।

—वि. स. ९, उ. ३१, सु. ३२

जिसके अध्यावसानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं हुआ है वह केवलि से—यावत्—केवलि पाक्षिक उपासिका से सुनकर संवर आराधन नहीं कर सकता है।

आसवस्स संवरस्स य विवेगो —

३०५. अमणुण्णसमुप्पायं दुक्खमेव विजाणिया।
समुप्पायमयाणंता किह नाहिंति संवरं॥

—सूय. सु. १, अ. १, उ. ३, गा. १०

आश्रव और संवर का विवेक—

३०५. दुःख की उत्पत्ति का कारण जानना चाहिए,
दुःख की उत्पत्ति को बिना जाने कैसे संवर को जान पाएंगे।

अहो वि सत्ताण विउट्टणं च,
जो आसवं जाणति संवरं च ।
दुक्खं च जो जाणति निज्जरं च,
सो भासितुमरिहति किरियवादं ॥
—सूय. सु. १. अ. १२, गा. २१

जो अधोलोक में प्राणियों के विवर्त (जन्म-मरण) को जानता है, जो आस्रव और संवर को जानता है, जो दुःख और निर्जरा को जानता है, वही क्रियावाद का प्रतिपादन कर सकता है ।

जे आसवा ते परिस्सवा, जे परिस्सवा ते आसवा ।

जो आस्रव (कर्मबन्ध) के स्थान हैं, वे ही परिस्रव (संवर) कर्म निर्जरा के स्थान बन जाते हैं, (इस प्रकार) जो परिस्रव (संवर) है, वे आस्रव हो जाते हैं ।

जे अणासवा ते अपरिस्सवा, जे अपरिस्सवा ते अणासवा ।

जो अनास्रव, व्रत विशेष हैं, वे भी (अशुभ अध्यवसाय वाले के लिए ; अपरिस्रव-कर्म के कारण हो जाते हैं.) इसी प्रकार जो अपरिस्रव-पाप के कारण हैं, वे भी (कदाचित्) अनास्रव होते हैं ।

एते य पए संबुज्झमाणे लोगं च आणाए अभिसमेच्चा पुढो पवेदितं ।

इन पदों (भंगों-विकल्पों) को सम्यक्प्रकार से समझने वाला तीर्थंकरों द्वारा प्रतिपादित लोक (जीव समूह) को आज्ञा (आगमवाणी) के अनुसार सम्यक् प्रकार से जानकर आस्रवों का सेवन न करे ।

चिट्ठं कूरेहिं कम्मेहिं चिट्ठं परिविचिट्ठति ।
अचिट्ठं कूरेहिं कम्मेहिं णो चिट्ठं परिविचिट्ठति ।

जो व्यक्ति अत्यन्त गाढ़ अध्यवसायवश क्रूर कर्मों में प्रवृत्त होता है, वह अत्यन्त प्रगाढ़ वेदना वाले स्थान में पैदा होता है । मंद अध्यवसायवाला होकर, क्रूर कर्मों में प्रवृत्त नहीं होता, वह प्रगाढ़ वेदना वाले स्थान में उत्पन्न नहीं होता है ।

एगे वदंति अदुवा वि णाणी, णाणी वदंति अदुवा वि एगे ।[1]
—आ. सु. १, अ. ४, उ. २, सु. १३४-१३५

यह बात चौदह पूर्वों के धारक श्रुतकेवली आदि कहते हैं, या केवलज्ञानी भी कहते हैं । जो यह बात केवलज्ञानी कहते हैं वही श्रुतकेवली भी कहते हैं ।

प०—जीवे णं भंते ? सया समियं एयति वेयति चलति फंदइ घट्टइ खुब्भइ उदीरति तं तं भावं परिणमति ?

प्र०—भगवन् ! क्या जीव सदा समित (मर्यादित) रूप में कांपता है, विविध रूप में कांपता है, चलता है (एक स्थान से दूसरे स्थान जाता है) स्पन्दन क्रिया करता है (थोड़ा या धीमा चलता है) घट्टित होता (सर्व दिशाओं में जाता है घूमता है.) क्षुब्ध (चंचल) होता है, उदीरित (प्रबलरूप से प्रेरित) होता है या करता है, और उन-उन भावों में परिणत होता है ?

उ०—हंता, मंडियपुत्ता ! जीवे णं सया समितं एयति—जाव-तं तं भावं परिणमति ।

उ०—हाँ मण्डितपुत्र ! जीव सदा समित (परिमित) रूप से कांपता है,— यावत् उन-उन भावों में परिणत होता है ।

प०—जाव च णं भंते ! से जीवे सया समितं-जाव-परिणमति तावं च णं तस्स जीवस्स अंते अंतकिरिया भवति ?

प्र०—भगवन् ! जब तक जीव समित-परिमित रूप से कांपता है,— यावत्—उन-उन भावों में परिणत (परिवर्तित) होता है, तब तक क्या उस जीव की अन्तिम (मरण) समय में अन्तक्रिया (मुक्ति) होती है ?

उ०—णो इणट्ठे समट्ठे ।

उ०—मण्डितपुत्र ! यह अर्थ (बात) समर्थ (शक्य) नहीं है, (क्योंकि जीव जब तक क्रियायुक्त है, तब तक अन्तक्रिया क्रिया का अन्तरूप मुक्ति नहीं हो सकती ।)

---

१ (क) सु० १३४ और १३५ के बीच का सूत्रांश तपाचार के अन्तर्गत स्वाध्याय तप के पाँचवें भेद धर्मकथा में देखिए ।
(ख) संवर तथा सामायिक के विशेष प्रसंग हेतु भग. श. १, उ. ९, सूत्र २१-२४ धर्मकथानुयोग भाग १ खंड २, पृ. ३१९-३२१ में देखें ।

प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जावं च णं से जीवे सया समितं एयति-जाव-अंते तावं च णं तस्स जीवस्स अंतकिरिया न भवति ?

प्र०—भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जब तक जीव समितरूप से सदा काँपता है,—**यावत्**—उन-उन भावों में परिणत होता है, तब तक उसकी अन्तिम समय में अन्तक्रिया नहीं होती है ?

उ०—मंडियपुत्ता ! जावं च णं से जीवे सया समितं-जाव-परिणमति तावं च णं से जीवे आरंभति सारंभति समारंभति,

उ०—हे मण्डितपुत्र ! जीव जब तक सदा समित रूप से काँपता है—**यावत्**—उन-उन भावों में परिणत होता है, तब तक वह (जीव) आरम्भ करता है, संरम्भ में रहता है, समारम्भ करता है,

आरम्भे वट्टति, सारम्भे वट्टति, समारम्भे वट्टति,

आरम्भ में रहता (वर्तता) है, संरम्भ में रहता (वर्तता) है, और समारम्भ में रहता (वर्तता) है।

आरम्भमाणे, सारम्भमाणे, समारम्भमाणे आरम्भे वट्टमाणे, सारम्भे वट्टमाणे, समारम्भे वट्टमाणे,

आरम्भ, सारम्भ और समारम्भ करता हुआ तथा आरम्भ में, संरम्भ में, और समारम्भ में, प्रवर्त्तमान जीव—

बहूणं पाणाणं-जाव-सत्ताणं दुक्खावणताए सोयावणताए जूरावणताए तिप्पावणताए पिट्टावणताए परितावणताए वट्टति,

बहुत-से प्राणों,—**यावत्**—सत्वों को दुःख पहुँचाने में, शोक कराने में, झुराने (विलाप कराने) में, रुलाने अथवा आँसू गिरवाने में, पिटवाने में, (थकान-हैरान कराने में,) और परिताप (पीड़ा) देने (संतप्त करने) में प्रवृत्त होता है।

से तेणट्ठेणं मंडियपुत्ता ! एवं वुच्चति—जावं च णं से जीवे सया समितं एयति-जाव-परिणमति तावं च णं तस्स जीवस्स अंते अंतकिरिया न भवति।

इसलिए हे मण्डितपुत्र ! इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि जब तक जीव सदा समितरूप से कम्पित होता है,—**यावत्**—उन-उन भावों में परिणत होता है, तब तक वह जीव, अन्तिम समय (मरणकाल) में अन्तक्रिया नहीं कर सकता।

प०—जीवे णं भंते ! सया समियं णो एयति-जाव-णो तं तं भावं परिणमति ?

प्र०—भगवन् ! जीव सदैव (शाश्वतरूप से) समितरूप से ही कम्पित नहीं होता,—**यावत्**—उन-उन भावों में परिणत नहीं होता ?

उ०—हंता, मंडियपुत्ता ! जीवे णं सया समियं-जाव-नो परिणमति।

उ०—हाँ, मण्डितपुत्र ! जीव सदा के लिए समितरूप से ही कम्पित नहीं होता,—**यावत्**—उन-उन भावों में परिणत नहीं होता। (अर्थात्—जीव एक दिन क्रियारहित हो सकता है।)

प०—जाव च णं भंते ! से जीवे नो एयति-जाव-नो तं तं भावं परिणमति तावं च णं तस्स जीवस्स अंते अंतकिरिया भवति ?

प्र०—भगवन् ! जब वह जीव सदा के लिए समितरूप से कम्पित नहीं होता—**यावत्**—उन-उन भावों में परिणत नहीं होता, तब क्या उस जीव की अन्तिम समय में अन्तक्रिया (मुक्ति) नहीं हो जाती ?

उ०—हंता,-जाव-भवति।

उ०—हाँ, (मण्डितपुत्र !) ऐसे—**यावत्**—जीव की अन्तिम समय में अन्तक्रिया (मुक्ति) हो जाती है।

प०—से केणट्ठेणं भंते !-जाव-भवति ?

प्र०—भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा है कि ऐसे जीव की—**यावत्**—अन्तक्रिया मुक्ति हो जाती है ?

उ०—मंडियपुत्ता ! जावं च णं से जीवे सया समियं णो एयति-जाव णो परिणमइ तावं च णं से जीवे नो आरभति, नो सारभति, नो समारभति, नो आरम्भे

उ०—मण्डितपुत्र ! जब वह जीव सदा (के लिए) समित रूप से (भी) कम्पित नहीं होता—**यावत्**—उन-उन भावों में परिणत नहीं होता, तब वह जीव न आरम्भ नहीं करता, संरम्भ

वट्टइ, णो सारम्भे वट्टइ णो समारम्भे वट्टइ, अणारम्भमाणे, असारम्भमाणे, असमारम्भमाणे,

नहीं करता एवं समारम्भ भी नहीं करता, और न ही वह जीव आरम्भ में, संरम्भ में एवं समारम्भ में प्रवृत्त होता है।

आरम्भे अवट्टमाणे, सारम्भे अवट्टमाणे, समारम्भे अवट्टमाणे बहूणं पाणाणं-जाव-सत्ताणं अदुक्खावणयाए-जाव-अपरियावणयाए वट्टइ।

आरम्भ, संरम्भ और समारम्भ नहीं करता हुआ तथा आरम्भ, संरम्भ और समारम्भ में प्रवृत्त न होता हुआ जीव बहुत-से प्राणों, भूतों, जीवों और सत्वों को दुःख पहुँचाने में —यावत्—परिताप उत्पन्न करने में प्रवृत्त (या निमित्त) नहीं होता।

प०—से जहानामए केइ पुरिसे सुक्कं तणहत्थयं जायतेयंसि पक्खिवेज्जा, से नूणं मंडियपुत्ता ! से सुक्के तणहत्थए जायतेयंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव मसमसाविज्जइ ?

प्र०—(भगवान्) जैसे, (कल्पना करो) कोई पुरुष सूखे घास के पूले (तृण के मुट्ठे) को अग्नि में डाले तो क्या मण्डितपुत्र ! वह सूखे घास का पूला अग्नि में डालते ही शीघ्र जल जाता है ?

उ०—हंता, मसमसाविज्जइ।

उ०—हाँ, भगवन् ! वह शीघ्र जल जाता है।

प०—से जहानामए केइ पुरिसे तत्तंसि अयकवल्लंसि उदयबिंदु पक्खिवेज्जा, से नूणं मंडियपुत्ता ! से उदयबिंदु तत्तंसि अयकवल्लंसि पक्खित्ते समाणे खिप्पामेव विद्धंसमागच्छइ ?

प्र०—(भगवान्) (कल्पना करो) जैसे कोई पुरुष तपे हुए लोहे के कड़ाह पर पानी की बूंद डाले तो क्या मण्डितपुत्र ! तपे हुए लोहे के कड़ाह पर डाली हुई वह जल-बिन्दु अवश्य ही शीघ्र नष्ट हो जाती है ?

उ०—हंता, विद्धंसमागच्छइ।

उ०—(मण्डितपुत्र—) हाँ भगवन् ! वह जलबिन्दु शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

प०—से जहानामए हरए सिया पुण्णे पुण्णप्पमाणे वोलट्टमाणे वोसट्टमाणे समभरघडत्ताए चिट्ठति ?

प्र०—(भगवान्—) (मान लो) कोई एक सरोवर है, जो जल से पूर्ण हो, पूर्णमात्रा में पानी से भरा हो, पानी से लबालब भरा हो, बढ़ते हुए पानी के कारण उसमें से पानी छलक रहा हो, पानी से भरे हुए घड़े के समान क्या उसमें पानी व्याप्त हो सकता है ?

उ०—हंता चिट्ठति।

उ०—हाँ, भगवन् ! उसमें पानी व्याप्त हो सकता है।

प०—अहे णं केइ पुरिसे तंसि हरयंसि एगं महं नावं सतासवं सयच्छिड्डं ओगाहेज्जा, से नूणं मंडियपुत्ता ! सा नावा तेहिं आसवद्दारेहिं आपूरेमाणी आपूरेमाणीत्ता पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चि ति ?

प्र०—अब उस सरोवर में कोई पुरुष, सैकड़ों छोटे छिद्रों वाली तथा सैकड़ों बड़े छिद्रों वाली एक बड़ी नौका को उतार दे, तो क्या मण्डितपुत्र ! वह नौका उन छिद्रों (पानी आने के द्वारों) द्वारा पानी से भरती-भरती जल से परिपूर्ण हो जाती है ? पूर्णमात्रा में उसमें पानी भर जाता है ? पानी से वह लबालब भर जाती है ? उसमें पानी बढ़ने से छलकने लगता है ? (और अन्त में) वह (नौका) पानी से भरे घड़े की तरह सर्वत्र पानी से व्याप्त होकर रहती है ?

उ०—हंता चिट्ठति।

उ०—हाँ, भगवन् ! वह पूर्वोक्त प्रकार से जल से व्याप्त होकर रहती है।

प०—अहे णं केइ पुरिसे तीसे नावाए सव्वतो समंता आसवद्दाराइं पिहेइ पिहित्ता नावाउस्सिंचणएणं उदयं उस्सिंचिज्जा, से नूणं मंडियपुत्ता ! सा नावा तंसि उदयंसि उस्सित्तंसि समाणंसि खिप्पामेव उड्ढं उद्दाति ?

प्र०—यदि कोई पुरुष उस नौका के समस्त छिद्रों को चारों ओर से बन्द कर (ढक) दे, और वैसा करके नौका की उलीचनी (पानी उलीचने के उपकरण विशेष) से पानी को उलीच दे (जल को रोक दे) तो हे मण्डितपुत्र ! नौका के पानी को उलीच कर खाली करते ही क्या वह शीघ्र ही पानी के ऊपर आ जाती है ?

उ०—हंता उद्दाति ।[1]

एवामेव मंडियपुत्ता ! अत्तत्तासंवुडस्स अणगारस्स इरियासमियस्स-जाव-गुत्तबंभयारिस्स,

आउत्तं गच्छमाणस्स चिट्ठमाणस्स निसीयमाणस्स तुयट्ट-माणस्स,

आउत्तं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणं गेण्हमाणस्स निक्खिवमाणस्स-जाव-चक्खुपम्हनिवायमवि वेमाया सुहुमा इरियावहिया किरिया-कज्जइ ।

सा पढमसमयबद्धपुट्ठा बितियसमयवेतिता ततियसमय-निज्जरिया, सा बद्धापुट्ठा उदीरिया वेदिया निज्जिण्णा सेयकाले अकम्मं चावि भवति ।

से तेणट्ठेणं मंडियपुत्ता ! एवं वुच्चति—जावं च णं से जीवे सया समितं नो एयति-जाव-तावं च णं तस्स जीवस्स अंते अंतकिरिया भवति ।

-वि. स. ३, उ. ३, सु. ११-१४

उ०—हाँ, भगवन् ! पानी के ऊपर आ जाती है ।

हे मण्डितपुत्र ! इसी तरह अपनी आत्मा द्वारा आत्मा में संवृत हुए, ईर्यासमिति आदि पाँच समितियों से समित तथा मनोगुप्ति आदि तीन गुप्तियों से गुप्त, ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों से गुप्त,

उपयोगपूर्वक गमन करने वाले, ठहरने वाले, बैठने वाले, करवट बदलने वाले तथा,

उपयोगपूर्वक वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोञ्छन, (रजोहरण) आदि धर्मोपकरणों को सावधानी (उपयोग) के साथ उठाने और रखने वाले अनगार को भी अक्षिनिमेष मात्र समय में विमात्रा-पूर्वक सूक्ष्म ईर्यापथिकी क्रिया लगती है ।

वह प्रथम समय में बद्ध-स्पृष्ट द्वितीय समय में वेदित और तृतीय समय में निर्जीर्ण (क्षीण) हो जाता है । वह बद्ध-स्पृष्ट उदीरित-वेदित एवं निर्जीर्ण क्रिया भविष्यत्काल में अकर्मरूप भी हो जाती है ।

इसी कारण से हे मण्डितपुत्र ! ऐसा कहा जाता है कि जब वह जीव सदा समितरूप से भी कम्पित नहीं होता,—**यावत्**— उन-उन भावों में परिणत नहीं होता, तब अन्तिम समय में उसकी अन्तक्रिया हो जाती है ।

पंच संवरदार परूवणं—

३०६. जंबू !

एत्तो य संवरदाराइं, पंच वोच्छामि आणुपुव्विए ।
जह भणियाणि भगवया, सव्वदुक्खविमोक्खणट्ठाए ॥
पढमं होइ अहिंसा, बिइयं सच्चवयणं ति पण्णत्तं ।
दत्तमणुण्णाय संवरो य, बंभचेरमपरिग्गहत्तं च ॥[2]

पाँच संवरद्वारों का प्ररूपण—

३०६. श्री सुधर्मास्वामी कहते हैं—हे जम्बू !

अब मैं पाँच संवरद्वारों को अनुक्रम से कहूँगा, जिसे भगवान् ने सर्वदुःखों से मुक्ति पाने के लिए कहे हैं,

(इन पाँच संवरद्वारों) में प्रथम अहिंसा है, दूसरा सत्यवचन है, तीसरा स्वामी की आज्ञा से दत्त (अदत्तादानविरमण) है, चौथा ब्रह्मचर्य और पंचम अपरिग्रहत्व है ।

---

१ (क) प०—अत्थि णं भंते ! जीवा य पोग्गला य अन्नमन्नबद्धा अन्नमन्नपुट्ठा अन्नमन्नमोगाढा अन्नमन्नसिणेहपडिबद्धा अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठन्ति ?

उ०—हंता, अत्थि ।

प०—से केणट्ठेणं भंते !-जाव-चिट्ठन्ति ?

उ०—गोयमा ! से जहानामए हरदे सिया पुण्णे पुण्णप्पमाणे वोलट्टमाणे वोसट्टमाणे समभरघडत्ताए चिट्ठति,

प०—अहे णं केइ पुरिसे तंसि हरदंसि एगं महं नावं सदासवं सतछिड्डं ओगाहेज्जा । से नूणं गोयमा ! सा णावा तेहिं आसवद्दारेहिं आपूरमाणी आपूरमाणी पुण्णा पुण्णप्पमाणा वोलट्टमाणा वोसट्टमाणा समभरघडत्ताए चिट्ठति ?

उ०—हंता चिट्ठति ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! अत्थि णं जीवा य पोग्गला य-जाव-अन्नमन्नघडत्ताए चिट्ठन्ति । —वि. स. १, उ. ६, सु. २६

(ख) सूय. सु. १, अ. १, उ. २, गा. ३१ । (ग) उत्त. अ. २३, गा. ७०-७३ ।

२ (क) पंच महव्वया पण्णत्ता, तं जहा—१. सव्वाओ पाणातिवायाओ वेरमणं, २. सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, ३. सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, ४. सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं, ५. सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं ।—ठाणं. अ. ५, उ. १, सु. ३८९

(शेष अगले पृष्ठ पर)

ताणि उ इमाणि सुव्वय !
महव्वयाइं लोयहियसव्वयाइं

श्री सुधर्मास्वामी ने अपने अन्तेवासी जम्बू स्वामी से कहा—हे सुव्रत ! अर्थात् उत्तम व्रतों के धारक और पालक जम्बू ! जिनका पूर्व में नामनिर्देश किया जा चुका है ऐसे ये महाव्रत समस्त लोक के हितकारी हैं या लोक का सर्वहित करने वाले हैं।

सुयसागर-देसियाइं, तवसंजममहव्वयाइं
सीलगुणवरव्वयाइं, सच्चज्जवव्वयाइं

श्रुतरूपी सागर (आगम) में इनका उपदेश किया गया है। ये तप और संयमरूप व्रत हैं। इन महाव्रतों में शील का और उत्तम गुणों का समूह सन्निहित है। सत्य और आर्जव-ऋजुता-सरलता-निष्कपटता इनमें प्रधान है।

णरय-तिरिय-मणुय-देवगइ-विवज्जगाइं
सव्वजिणसासणगाइं, कम्मरयविदारगाइं,

ये महाव्रत नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति से बचाने वाले हैं—मुक्ति प्रदाता हैं। समस्त जिनों—तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट हैं। कर्मरूपी रज का विदारण करने वाले अर्थात् क्षय करने वाले हैं।

भवसयविणासगाइं, दुहसयविमोयणगाइं
सुहसयपवत्तणगाइं,
कापुरिसदुरुत्तराइं सप्पुरिसणीसेवियाइं,

सैकड़ों भवों—जन्म-मरणों का अन्त करने वाले हैं। सैकड़ों दुःखों से बचाने वाले हैं। सैकड़ों सुखों में प्रवृत्त करने वाले हैं। ये महाव्रत कायरपुरुषों के लिए दुस्तर हैं, सत्पुरुषों द्वारा सेवित हैं,

णिव्वाणगमणसग्गप्पयाणगाइं,

ये मोक्ष में जाने के मार्ग हैं, स्वर्ग में पहुँचाने वाले हैं।

संवरदाराइं पंच कहियाणि उ भगवया।
—पण्ह. सु. २, अ. १, सु. १

इस प्रकार के ये महाव्रत रूप पाँच संवरद्वार भगवान् महावीर ने कहे हैं।

एयाइं वयाइं पंच वि सुव्वय-महव्वयाइं हेउसय विवित्त-पुक्खलाइं कहियाइं,

हे सुव्रत ! ये पाँच संवररूप महाव्रत सैकड़ों हेतुओं से पुष्कल विस्तृत हैं।

अरहंतसासणे समासेण पंच संवरा,
वित्थरेण उ पणवीसंति,

अरिहंत-शासन में ये संवरद्वार संक्षेप में (पाँच) कहे गए हैं।

विस्तार से (प्रत्येक की पाँच-पाँच भावनाएँ होने से) इनके पच्चीस प्रकार होते हैं।

(शेष टिप्पण पिछले पृष्ठ का)

(ख) पंच णिज्जरट्ठाणा पन्नत्ता, तं जहा—१. पाणाइवायाओ वेरमणं, २. मुसावायाओ वेरमणं, ३. अदिन्नादाणाओ वेरमणं ४. मेहुणाओ वेरमणं, ५. परिग्गहाओ वेरमणं। —सम. ५, सु. १

(ग) तहेव हिंसं अलियं, चोज्जं अबम्भसेवणं। इच्छाकामं च लोभं च, संजओ परिवज्जए॥ —उत्त. अ. ३५, गा. ३

(घ) उत्त. अ. २३, गा. ८७, (ङ) —सूय. सु. १, अ. १६, सु. ६३२, (च) आव. अ. ४, सु. २४(३)

(छ) सूय. सु. २, अ. ६, गा. ६ (ज) दस. अ. १३, गा. ११ (झ) दस. अ. ६, गा. ८-२१

(ञ) स्था. अ. ५, उ. २, सु. ४१८ तथा सम. ५, में पांच संवर के नाम हैं किन्तु वे सम्यक्त्व, विरति, अकषाय, अप्रमाद और अयोग हैं। पाँच निर्जरास्थान, पांच महाव्रत या पांच संवर उक्त पांच के अन्तर्गत "विरति" में समाविष्ट हो जाते हैं। संवर और निर्जरा की परिभाषा के अनुसार प्राणातिपातविरमण आदि पांच संवर भी हैं और निर्जरास्थान भी हैं।

पण्ह. सु. २, अ. १, सु. १ के प्रारम्भ में अहिंसा आदि ५ संवरों के कतिपय विशेषण हैं। उनमें नरकादि चार गतियों का विवर्जन और निर्वाण एवं देवगति की प्राप्ति पांच संवरों की आराधना का फल कहा गया है। जहाँ देवगति विवर्जन है वहाँ अशुभ देवगति का विवर्जन है। निर्वाण गति की अपेक्षा ये पांच निर्जरा स्थान हैं। अशुभ की निर्जरा होने से शुभ मनुष्य गति या शुभ देवगति दाता है।

समिय-समिय संवुडे, सयाजयण-घडण-सुविसुद्धदंसणे एए अणु-चरियसंजते चरमसरीरधरे भविस्सतीति ।

—पण्ह. सु. २, अ. ५, सु. १८

जो साधु ईर्यासमिति आदि (पूर्वोक्त पच्चीस भावनाओं) सहित होता है अथवा ज्ञान और दर्शन से सहित होता है तथा कषायसंवर और इन्द्रियसंवर से संवृत्त होता है, जो प्राप्त संयम-योग का यत्नपूर्वक पालन करता है और अप्राप्त संयमयोग की प्राप्ति के लिए यत्नशील रहता है, सर्वथा विशुद्ध श्रद्धावान होता है, वह इन संवरों की आराधना करके अशरीर (मुक्त) होगा ।

पाव ठाणेहिं जीवाणं गरुयत्तं—

३०७. प०—कहण्णं भंते ! जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छंति ?

उ०—गोयमा ! पाणाइवाएणं, मुसावाएणं, अदिण्णादाणेणं, मेहुणेणं, परिग्गहेणं, कोह-माण-माया-लोभ-पेज्ज-दोस-कलह-अब्भक्खाण-पिसुन्न-रइअरइ-परपरिवाय-माया-मोस-मिच्छादंसणसल्लेणं एवं खलु गोयमा ! जीवा गरुयत्तं हव्वमागच्छंति ।

—वि. स. १, उ. ६, सु. १

पाप स्थानों से जीवों की गुरुता—

३०७. प्र०—भगवन् ! जीव किस प्रकार शीघ्र गुरुत्व (भारीपन) को प्राप्त होते हैं ?

उ०—गौतम ! प्राणातिपात से, मृषावाद से, अदत्तादान से, मैथुन से, परिग्रह से, क्रोध से, मान से, माया से, लोभ से, प्रेम (राग) से, द्वेष से, कलह से, अभ्याख्यान से, पैशुन्य से, रति-अरति से, परपरिवाद (परनिन्दा) से, मायामृषा से, और मिथ्या-दर्शनशल्य से, इस प्रकार हे गौतम ! जीव शीघ्र गुरुत्व को प्राप्त होते हैं ।

विरइ ठाणेहिं जीवाणं लहुयत्तं—

३०८. प०—कहण्णं भंते ! जीवा लहुयत्तं हव्वमागच्छंति ?

उ०—गोयमा ! पाणाइवायावेरमणेणं-जाव-मिच्छादंसणसल्ल वेरमणेणं एवं खलु गोयमा ! जीवा लहुयत्तं हव्व-मागच्छंति,

एवं संसारं आउलीकरेंति, परित्तिं करेंति
एवं संसारं दीहीं करेंति, हस्सी करेंति,
एवं संसारं अणुपरियट्टन्ति, वीइवयंति
पसत्था चत्तारि, अप्पसत्था चत्तारि ।[1]

— वि. स. १, उ. ६, सु. २-३

विरति-स्थानों से जीवों की लघुता—

३०८. प्र०—भगवन् ! जीव किस प्रकार शीघ्र लघुत्व (लघुता-हल्केपन) को प्राप्त करते हैं ?

उ०—गौतम ! प्राणातिपात से विरत होने से—यावत्—मिथ्यादर्शनशल्य से विरत होने से जीव शीघ्र लघुत्व को प्राप्त होते हैं ।

इस प्रकार जीव संसार को बढ़ाते हैं और परिमित करते हैं, दीर्घकालीन करते हैं, अल्पकालीन करते हैं, बार-बार भ्रमण करते हैं, संसार को लांघ जाते हैं ।

उनमें से चार (लघुत्व, परित्तीकरण, ह्रस्वीकरण एवं व्यति-क्रमण) प्रशस्त हैं और चार (गुरुत्व, वृद्धीकरण, दीर्घीकरण एवं पुनः-पुनः भवभ्रमण) अप्रशस्त हैं ।

दसविहे असंवरे—

३०९. दसविहे असंवरे पण्णत्ते, तं जहा

१. सोतिंदियअसंवरे,	२. चक्खिंदियअसंवरे,
३. घाणिंदियअसंवरे,	४. जिब्भिंदियअसंवरे,
५. फासिंदियअसंवरे,[2]	६. मणअसंवरे,[3]
७. वयअसंवरे,	८. कायअसंवरे,
९. उवकरणअसंवरे,	१०. सूचीकुसग्गअसंवरे ।

—ठाणं. अ. १० सु. ७०९

दस प्रकार के असंवर—

३०९. दस प्रकार के असंवर कहे गये हैं, यथा—

(१) श्रोत्रेन्द्रिय असंवर,	(२) चक्षुइन्द्रिय-असंवर;
(३) घ्राणेन्द्रिय-असंवर	(४) रसना-इन्द्रिय असंवर,
(५) स्पर्शनेन्द्रिय असंवर,	(६) मन-असंवर,
(७) वचन-असंवर,	(८) काय-असंवर,
(९) उपकरण-असंवर,	(१०) सूचीकुशाग्र-असंवर ।

---

१ वि. स. १२, उ. २, सु. १४ ।
२ ठाणं. अ. ५, उ. २, सु. ४२७ ।
३ ठाणं. अ. ६, सु. ४८७ ।

पंच संवर दारा—

३१०. पंच संवर दारा पन्नत्ता, तं जहा—

१. सम्मत्तं, २. विरई,
३. अप्पमत्तया, ४. अकसाइया,
५. अजोगया । —सम. ५, सु. १

पाँच संवर द्वार—

३१०. पाच संवर द्वार कहे गये हैं, यथा—

(१) सम्यक्त्व, (२) विरति,
(३) अप्रमत्तता, (४) अकषायता,
(५) अयोगता या योगों की प्रवृत्ति का निरोध ।

महाजण्णं—

३११. सुसंवुडा पंचहिं संवरेहिं,
इह जीवियं अणवकंखमाणा ।
वोसट्ठकाया सुइचत्तदेहा,
महाजयं जयइ जन्नसिट्ठं ॥
—उत्त. अ. १२, गा. ४२

महायज्ञ—

३११. जो पांच संवरों से सुसंवृत होता है,
जो असंयमी जीवन की इच्छा नहीं करता है,
जो काया का व्युत्सर्ग करता है, जो शुचि है,
और जो देह का त्याग करता है, वह महाजयी
श्रेष्ठयज्ञ करता है ।

दसविहे संवरे—

३१२. दसविधे संवरे पण्णत्ते, तं जहा—

१. सोतिंदियसंवरे, २. चक्खिंदियसंवरे,
३. घाणिंदियसंवरे, ४. जिब्भिंदियसंवरे,
५. फासिंदियसंवरे,[1] ६. मणसंवरे,[2]
७. वयसंवरे, ८. कायसंवरे,
९. उवकरणसंवरे, १०. सूचीकुसग्गसंवरे ।
— ठाणं. अ. १०, सु. ७०९

दस प्रकार के संवर—

३१२. संवर दस प्रकार का कहा गया है । जैसे—

(१) श्रोत्रेन्द्रिय-संवर, (२) चक्षुरिन्द्रिय-संवर,
(३) घ्राणेन्द्रिय-संवर, (४) रसनेन्द्रिय-संवर,
(५) स्पर्शनेन्द्रिय-संवर, (६) मन-संवर,
(७) वचन-संवर, (८) काय-संवर,
(९) उपकरण-संवर, (१०) सूचीकुशाग्र-संवर।

दसविहा असमाही—

३१३. दसविधा असमाधी पण्णत्ता, तं जहा—

१. पाणातिवाते, २. मुसावाए,
३. अदिण्णादाणे, ४. मेहुणे,
५. परिग्गहे, ६. इरियाऽसमिती
७. भासाऽसमिती, ८. एसणाऽसमिती,
९. आयाण-भंड-मत्त-णिक्खेवणाऽसमिती ।
१०. उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणग-जल्ल-परिट्ठावणियाऽसमिती । —ठाणं. अ. १०, सु. ७११

दस प्रकार की असमाधि—

३१३. असमाधि दस प्रकार की कही गई है । जैसे—

(१) प्राणातिपात-अविरमण । (२) मृषावाद-अविरमण।
(३) अदत्तादान-अविरमण । (४) मैथुन-अविरमण ।
(५) परिग्रह-अविरमण । (६) ईर्या-असमिति ।
(७) भाषा-असमिति । (८) एषणा-असमिति ।
(९) आदान-भाण्ड-मत्र (पात्र) निक्षेप की असमिति ।
(१०) उच्चार-प्रस्रवण-श्लेष्म-सिंघाण-जल्ल परिष्ठापना की असमिति ।

दसविहा समाही—

दसविधा समाधी पण्णत्ता, तं जहा—

१. पाणातिवायवेरमणे, २. मुसावायवेरमणे,
३. अदिण्णादाणवेरमणे, ४. मेहुणवेरमणे,
५. परिग्गहवेरमणे, ६. इरियासमिती,
७. भासासमिती, ८. एसणासमिती,
९. आयाण-भंड-मत्त-णिक्खेवणासमिती ।
१०. उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणग-जल्ल-परिट्ठावणिया समिती । —ठाणं. अ. १०, सु. ७११

दस प्रकार की समाधि—

समाधि दस प्रकार की कही गई है । जैसे

(१) प्राणातिपात-विरमण । (२) मृषावाद-विरमण ।
(३) अदत्तादान-विरमण । (४) मैथुन-विरमण ।
(५) परिग्रह-विरमण । (६) ईर्यासमिति ।
(७) भाषासमिति । (८) एषणासमिति ।
(९) आदान भाण्ड मत्र (पात्र) निक्षेपण समिति ।
(१०) उच्चार-प्रस्रवण-श्लेष्म-सिंघाण-जल्ल-परिष्ठापना समिति ।

---

1 ठाणं. अ. ५, उ. २, सु. ४२७ ।

2 ठाणं. अ. ६, सु. ४८७ ।

असंवुडअणगारस्स संसार परिब्भमणं—

३१४. प०—असंवुडे णं भंते ! अणगारे किं सिज्झति ? बुज्झति ? मुच्चति ? परिनिव्वाति ? सव्वदुक्खाणमंतं करेति ?

उ०—गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।

प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ नो सिज्झइ-जाव-नो अंतं करेइ ?

उ०—गोयमा ! असंवुडे अणगारे आउयवज्जाओ सत्तकम्म-पगडीओ,

सिढिलबंधणबद्धाओ धणियबंधणबद्धाओ पकरेति,

हस्सकालट्ठितीयाओ, दीहकालट्ठितीयाओ पकरेति,

मंदाणुभागाओ, तिव्वाणुभागाओ पकरेति,

अप्पपदेसग्गाओ बहुप्पदेसग्गाओ पकरेति,

आउगं च णं कम्मं सिय बंधति, सिय नो बंधति,

असातावेदणिज्जं च णं कम्मं भुज्जो-भुज्जो उवचिणाति,

अणादीयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसार-कंतारं अणुपरियट्टइ ।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! असंवुडे अणगारे नो सिज्झति -जाव-नो सव्वदुक्खाणमंतं करेइ ।

—वि. स. १, उ. १, सु. ११

असंवृत अणगार का संसार परिभ्रमण—

३१४. प्र०—भगवन् ! असंवृत अनगार क्या सिद्ध होता है, —यावत्—समस्त दुःखों का अन्त करता है ?

उ०—हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ (शक्य या ठीक) नहीं है ।

प्र०—भगवन् ! वह किस कारण से सिद्ध नहीं होता, —यावत्—अन्त नहीं करता ?

उ०—गौतम ! असंवृत अनगार आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों को

शिथिल बन्धन से बद्ध को गाढ़ बन्धन से बद्ध करता है,

अल्पकालीन स्थिति वाली को दीर्घ-कालिक स्थिति वाली करता है,

मन्द अनुभाग वाली को तीव्र अनुभाग वाली करता है,

अल्पप्रदेश वाली को बहुत प्रदेश वाली करता है,

और आयुकर्म को कदाचित् बाँधता है, एवं कदाचित् नहीं बाँधता है,

असातावेदनीय कर्म का बार-बार उपार्जन करता है,

तथा अनादि अनवदग्र-अनन्त दीर्घ मार्ग वाले चतुर्गति संसाररूपी अरण्य में बार-बार पर्यटन परिभ्रमण करता है,

हे गौतम ! इस कारण से असंवृत अनगार सिद्ध नहीं होता —यावत्—समस्त दुःखों का अन्त नहीं करता ।

संवुडअणगारस्स संसारपारगमणं—

३१५. प०—संवुडे णं भंते ! अणगारे सिज्झति-जाव-अंतं करेति ?

उ०—हंता, सिज्झति-जाव-अंतं करेति ।

प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-सिज्झइ-जाव-अंतं करेति ?

उ०—गोयमा ! संवुडे अणगारे आउयवज्जाओ सत्तकम्म-पगडीओ, धणियबंधणबद्धाओ सिढिलबंधणबद्धाओ पकरेति,

दीहकालट्ठितीयाओ हस्सकालट्ठितीयाओ पकरेति,

तिव्वाणुभागाओ मंदाणुभागाओ पकरेति,

बहुपएसग्गाओ अप्पपएसग्गाओ पकरेति,

आउयं च णं कम्मं न बंधति,

असायावेयणिज्जं च णं कम्मं नो भुज्जो भुज्जो उवचिणाति,

संवृत अणगार का संसार पारगमन—

३१५. प्र०—भगवन् ! क्या संवृत अनगार सिद्ध होता है, —यावत्—अन्त करता है ?

उ०—हाँ गौतम ! वह सिद्ध होता है,—यावत्—सब दुःखों का अन्त करता है ।

प्र०—भगवन् ! वह किस कारण से सिद्ध होता है, —यावत्—सब दुःखों का अन्त करता है ?

उ०—गौतम ! संवृत अनगार आयुष्यकर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों को गाढ़बन्धन से बद्ध को शिथिल बन्धनबद्ध कर देता है,

दीर्घकालिक स्थिति वाली को ह्रस्व (थोड़े) काल की स्थिति वाली करता है,

तीव्ररस (अनुभाव) वाली को मन्दरस वाली करता है,

बहुत प्रदेश वाली को अल्पप्रदेश वाली करता है,

और आयुष्य कर्म को नहीं बाँधता है ।

वह असातावेदनीय कर्म का बार-बार उपचय नहीं करता है । (अतएव वह)

अणाईयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसार-कंतारं वीतीवयति।

अनादि-अनन्त दीर्घमार्ग वाले चतुर्गतिरूप संसार-अरण्य का उल्लंघन करता है।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"संवुडे अणगारे सिज्झति-जाव-अंतं करेति।"

—वि. सं. १, उ. १, सु. ११

इस कारण से, हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि संवृत अनगार सिद्ध हो जाता है,—यावत्—अन्त कर देता है।

चरित्तसंपन्नयाए फलं—

चारित्र सम्पन्नता का फल—

३१६. प०—चरित्तसंपन्नयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

३१६. प्र०—भन्ते ! चारित्र-सम्पन्नता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—चरित्तसंपन्नयाए णं सेलेसीभावं जणयइ। "सेलेसिं पडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेइ। तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ मुच्चइ परिनिव्वाएइ सव्व-दुक्खाणमंतं करेइ।"

—उत्त. अ. २९, सु. ६३

उ०—चारित्र-सम्पन्नता से वह शैलेशी-भाव को प्राप्त होता है। शैलेशी-दशा को प्राप्त करने वाला अनगार चार केवलि-सत्क (केवली के विद्यमान) कर्मों को क्षीण करता है। उसके पश्चात् वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परि-निर्वाण होता है और सब दुःखों का अन्त करता है।

एगे चरणविण्णाणेण एव मोक्खं मण्णंति—

कुछ लोग चारित्र के जानने से ही मोक्ष मानते हैं—

३१७. इहमेगे उ मन्नन्ति, अप्पच्चक्खायपावगं।
आयरियं विदित्ताणं, सव्वदुक्खा विमुच्चई॥

—उत्त. अ. ६, गा. ८

३१७. इस संसार में कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि पापों का त्याग किये बिना ही आचार को जानने मात्र से जीव सब दुःखों से मुक्त हो जाता है।

प्रथम महाव्रत

(१) अहिंसा महाव्रत का स्वरूप और आराधना

सव्वेहिं तित्थयरेहिं सव्व-पाण-भूय-जीव-सत्ताणं रक्खणं कायव्वं इति परूवियं—

सभी तीर्थंकरों ने सभी प्राण-भूत-जीव-सत्वों की रक्षा करनी चाहिए ऐसी प्ररूपणा की है—

३१८. से बेमि—जे य अतीता जे य पडुप्पण्णा जे य आगमेस्सा अरहंता भगवंता सव्वे ते एवमाइक्खंति, एवं भासेंति, एवं पण्णवेंति, एवं परूवेंति—

३१८. मैं (सुधर्मास्वामी) कहता हूँ—भूतकाल में (ऋषभदेव आदि) जो भी अर्हन्त (तीर्थंकर) हो चुके हैं, वर्तमान में जो भी (सीमन्धरस्वामी आदि) तीर्थंकर हैं, तथा जो भी भविष्य में (पद्मनाभ आदि) होंगे, वे सभी अर्हन्त भगवान (परिषद में) ऐसा ही उपदेश देते हैं, ऐसा ही भाषण करते हैं, ऐसा ही (हेतु, दृष्टान्त, युक्ति आदि द्वारा) बताते (प्रज्ञापन करते) हैं, और ऐसी ही प्ररूपणा करते हैं कि—

सव्वे पाणा-जाव-सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, ण परिघेतव्वा, ण परितावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा,

किसी भी प्राणी,—यावत्—सत्व की हिंसा नहीं करनी चाहिए, न ही बलात् उनसे आज्ञा पालन कराना चाहिए, न उन्हें बलात् दास-दासी आदि के रूप में पकड़कर या खरीदकर रखना चाहिए, न उन्हें परिताप (पीड़ा) देना चाहिए, और न उन्हें उद्विग्न (भयभीत या हैरान) करना चाहिए।

एस धम्मे धुवे णितिए सासते, समेच्च लोगं खेतण्णेहिं पवेदिते।[1]

—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६८०

यही धर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है। समस्त लोक को केवल-ज्ञान के प्रकाश में जानकर जीवों के खेद (पीड़ा) को या क्षेत्र को जानने वाले श्री तीर्थंकरों ने इस धर्म का प्रतिपादन किया है।

से भिक्खू जे इमे तस-थावरा पाणा भवंति ते णो सयं समारभति,

णो अण्णेहिं समारभावेंति,

अण्णे समारभंते वि न समणुजाणइ,

जो ये त्रस और स्थावर प्राणी हैं, उनका वह भिक्षु स्वयं समारम्भ नहीं करता,

न वह दूसरों से समारम्भ कराता है,

और न ही समारम्भ करते हुए व्यक्ति का अनुमोदन करता है।

इति से महता आदाणातो उवसंते उवट्ठिते पडिविरते।

—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६८४

इस कारण से वह साधु महान् कर्मों के आदान (बन्धन) से मुक्त हो जाता है, शुद्ध संयम में उद्यत रहता है तथा पाप कर्मों से निवृत्त हो जाता है।

उरालं जगओ जोयं, विपरीयासं पलेंति य।
सव्वे अक्कंतदुक्खा य, अतो सव्वे अहिंसिया॥

(औदारिक-त्रस-स्थावर जीव रूप) जगत् का (बाल्य-यौवन-वृद्धत्व आदि) संयोग—अवस्थाविशेष अथवा योग मन वचन काया की प्रवृत्ति उदार स्थूल है—इन्द्रियप्रत्यक्ष है और वे (जीव) विपर्यय (दूसरे पर्याय) को भी प्राप्त होते हैं तथा सभी प्राणी दुःख से आक्रान्त—पीड़ित हैं, अतः सभी प्राणी अहिंस्य—हिंसा करने योग्य नहीं—हैं।

एतं खु णाणिणो सारं, जं न हिंसति किंच णं।
अहिंसा समयं चेव, एतावंतं वियाणिया॥[2]

—सूय. सु. १, अ. १, उ. ४, गा. ९-१०

विशिष्ट विवेकी पुरुष के लिए यही सार—न्यायसंगत निष्कर्ष है कि वह (स्थावर या जंगम) किसी भी जीव की हिंसा न करे। अहिंसा के कारण सब जीवों पर समता रखना और (उपलक्षण से सत्य आदि) इतना ही जानना चाहिए, अथवा अहिंसा का समय (सिद्धान्त या आचार) इतना ही समझना चाहिए।

पढम महव्वय आराहणा पइण्णा—

३१९. पढमे भंते! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं।

सव्वं भंते! पाणाइवायं पच्चक्खामि—

से सुहुमं वा बायरं वा, तसं वा, थावरं वा,

से य पाणाइवाए चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. दव्वओ, २. खेत्तओ, ३. कालओ, ४. भावओ।

१. दव्वओ छसु जीवनिकाएसु,

२. खेत्तओ सव्वलोगे,

३. कालओ दिया वा, राओ वा,

४. भावओ रागेण वा दोसेण वा।

नेव सयं पाणे अइवाएज्जा, नेवन्नेहिं पाणे अइवायावेज्जा, पाणे अइवायंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा,

प्रथम महाव्रत आराधन प्रतिज्ञा—

३१९. भन्ते! पहले महाव्रत में प्राणातिपात से विरमण होता है।

भन्ते! मैं सर्व प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ।

सूक्ष्म या स्थूल, त्रस या स्थावर

उस प्राणातिपात के चार प्रकार कहे हैं—

(१) द्रव्य से, (२) क्षेत्र से, (३) काल से, (४) भाव से।

(१) द्रव्य से छहों जीवनिकाय में,

(२) क्षेत्र से सर्वलोक में,

(३) काल से दिन में या रात में,

(४) भाव से राग या द्वेष से।

जो भी प्राणी हैं उनके प्राणों का अतिपात मैं स्वयं नहीं करूँगा, दूसरों से नहीं कराऊँगा और अतिपात करने वालों का अनुमोदन भी नहीं करूँगा,

---

1 आ. सु. १, अ. ४, उ. ५, सु. १३२।

2 सूय. सु. १, अ. ११, गा. १०।

जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भन्ते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।[1]

पढमे भन्ते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वओ पाणाइवायाओ वेरमणं।[2] —दस. अ. ४, सु. ११

यावज्जीवन के लिए, तीन करण तीन योग से—मन से, वचन से, काया से—न करूँगा, न कराऊँगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूँगा।

भन्ते ! मैं उससे निवृत्त होता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और (कषाय) आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ।

भन्ते ! मैं पहले महाव्रत में उपस्थित हुआ हूँ। इसमें सर्व प्राणातिपात की विरति होती है।

पढम महव्वयस्स पंच भावणाओ—

प्रथम महाव्रत और उसकी पाँच भावना—

३२०. पढमं भंते ! महव्वयं पच्चक्खामि सव्वं पाणातिवातं।

से सुहुमं वा, बायरं वा, तसं वा, थावरं वा, णेव सयं पाणातिवातं करेज्जा, णेवऽण्णं पाणातिवातं कारवेज्जा, अण्णं पि पाणातिवातं करंतं ण समणुजाणेज्जा।

जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणसा, वयसा, कायसा।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि, निंदामि, गरहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

३२०. भन्ते ! मैं प्रथम महाव्रत में सम्पूर्ण प्राणातिपात (हिंसा) का प्रत्याख्यान (त्याग) करता हूँ।

मैं सूक्ष्म-स्थूल (बादर) और त्रस-स्थावर समस्त जीवों का न तो स्वयं प्राणातिपात (हिंसा) करूँगा, न दूसरों से कराऊँगा और न प्राणातिपात करने वालों का अनुमोदन—समर्थन करूँगा,

इस प्रकार मैं यावज्जीवन तीन करण से एवं मन, वचन, काया से—तीन योगों से उस पाप से निवृत्त होता हूँ।

हे भगवन् ! मैं उस पूर्वकृत पाप (हिंसा) का प्रतिक्रमण करता, (पीछे हटता हूँ,) (आत्म-साक्षी से—) निन्दा करता हूँ, और (गुरु साक्षी से—) गर्हा करता हूँ, अपनी आत्मा से पाप का व्युत्सर्ग (पृथक्करण) करता हूँ।

तस्सिमाओ पंच भावणाओ भवंति।

१. तत्थिमा पढमा भावणा—रियासमिते से णिग्गंथे, णो अणरियासमिते त्ति।

केवली बूया—"इरियाअसमिते से णिग्गंथे पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं अभिहणेज्ज वा, वत्तेज्ज वा, परियावेज्ज वा, लेसेज्ज वा, उद्दवेज्ज वा। इरियासमित्ते से णिग्गंथे, णो इरियाअसमिते त्ति पढमा भावणा।

२. अहावरा दोच्चा भावणा—मणं परिजाणति से णिग्गंथे,

जे य मणे पावए सावज्जे सकिरिए अण्हयकरे छेयकरे भेयकरे अधिकरणिए पादोसिए पारिताविए पाणातिवाइए भूतोवघातिए तहप्पगारं मणं णो पधारेज्जा। मणं परिजाणति से णिग्गंथे, जे य मणे अपावए त्ति दोच्चा भावणा।

उस प्रथम महाव्रत की पाँच भावनाएँ होती हैं—

(१) उनमें पहली भावना यह है—निर्ग्रन्थ ईर्यासमिति से युक्त होता है, ईर्यासमिति से रहित नहीं।

केवली भगवान् कहते हैं—"ईर्यासमिति से रहित निर्ग्रन्थ प्राणी, भूत, जीव और सत्त्व का हनन करता है, धूल आदि से ढकता है, दबा देता है, परिताप देता है, चिपका देता है, या पीड़ित करता है। इसलिए निर्ग्रन्थ ईर्यासमिति से युक्त होकर रहे, ईर्यासमिति से रहित होकर नहीं।" यह प्रथम भावना है।

(२) इसके पश्चात् दूसरी भावना यह है—मन को जो अच्छी तरह जानकर पापों से हटाता है वह निर्ग्रन्थ है।

जो मन पापकर्ता सावद्य (पाप से युक्त) है, क्रियाओं से युक्त है, कर्मों का आस्रवकारक है छेदन-भेदनकारी है, क्लेश-द्वेषकारी है, परितापकारक है। प्राणियों के प्राणों का अतिपात करने वाला और जीवों का उपघातक है। इस प्रकार के मन (मानसिक विचारों) को धारण (ग्रहण) न करे। मन को जो भलीभाँति जानकर पापमय विचारों से दूर रखता है। जिसका मन पापों (पापमय विचारों) से रहित है, वह निर्ग्रन्थ है। यह द्वितीय भावना है।

---

१ समता सव्वभूएसु, सत्तु-मित्तेसु वा जगे। पाणाइवायविरई, जावज्जीवाए दुक्करं। उत्त. अ. १९, गा. २६।

२ दस. अ. ६, गा. ९-१०।

३. अहावरा तच्चा भावणा—वइं परिजाणति से णिग्गंथे,

जा य वई पाविया सावज्जा सकिरिया-जाव-भूतोवघातिया तहप्पगारं वइं णो उच्चारेज्जा।

जे वइं परिजाणति से णिग्गंथे जा य वइ अपाविया त्ति तच्चा भावणा।

४. अहावरा चउत्था भावणा—आयाणभंडमत्तणिक्खेवणा-समिते से णिग्गंथे, णो अणादाणभंडमत्तणिक्खेवणाऽसमिते।

केवली बूया—"आयाणभंडनिक्खेवणाअसमिते से णिग्गंथे पाणाइं भूताइं जीवाइं सत्ताइं अभिहणेज्ज वा-जाव-उद्दवेज्ज वा। तम्हा आयाणभंडणिक्खेवणासमिते से णिग्गंथे, णो अणायाणभंडणिक्खेवणाऽसमिते त्ति चउत्था भावणा।

५. अहावरा पंचमा भावणा—आलोइयपाण-भोयणभोई से णिग्गंथे णो अणालोइयपाण-भोयणभोई।

केवली बूया—"अणालोइयपाण-भोयणभोई से णिग्गंथे पाणाणि वा, भूताणि वा, जीवाणि वा, सत्ताणि वा अभि-हणेज्ज वा-जाव-उद्दवेज्ज वा। तम्हा आलोइयपाण-भोयण-भोई से णिग्गंथे णो अणालोइयपाण-भोयणभोई त्ति पंचमा भावणा।[1]

एत्ताव ताव महव्वयं सम्मं काएणं फासिते पालिते तीरिए किट्टिते अवट्ठिते आणाए आराहिते यावि भवति।

पढमे भंते! महव्वए पाणाइवाताओ वेरमणं।

—आ. सु. २, अ. १५, सु. ७७७-७७९

(३) इसके अनन्तर तृतीय भावना यह है—जो साधक वचन का स्वरूप भलीभाँति जानकर सदोष वचनों का परित्याग करता है, वह निर्ग्रन्थ है।

जो वचन पापकारी सावद्य क्रियाओं से युक्त यावत् जीवों का उपघातक है; साधु इस प्रकार के वचन का उच्चारण न करे।

जो वाणी के दोषों को भलीभाँति जानकर सदोष वाणी का परित्याग करता है वही निर्ग्रन्थ है। उसकी वाणी पापदोष रहित हो, यह तृतीय भावना है।

(४) तदनन्तर चौथी भावना यह है—जो आदानभाण्डमात्र निक्षेपण समिति से युक्त है, वह निर्ग्रन्थ है। जो आदानभाण्डमात्र निक्षेपण समिति से रहित है वह निर्ग्रन्थ नहीं है।

केवली भगवान् कहते हैं—जो निर्ग्रन्थ—आदानभाण्डमात्र निक्षेपण समिति से रहित है, वह प्राणियों, भूतों, जीवों और सत्वों का अभिघात करता है,—यावत्—पीड़ा पहुँचाता है। इसलिए जो आदान-भाण्डमात्रनिक्षेपण समिति से युक्त है वही निर्ग्रन्थ है, जो आदानभाण्ड (मात्र) निक्षेपण समिति से रहित है, वह निर्ग्रन्थ नहीं है। यह चतुर्थ भावना है।

(५) इसके पश्चात् पाँचवीं भावना यह है—जो साधक आलोकित पानभोजनभोजी होता है, वह निर्ग्रन्थ होता है, अना-लोकित पान-भोजन-भोजी नहीं।

केवली भगवान् कहते हैं—जो बिना देखे-भाले ही आहार-पानी सेवन करता है। वह निर्ग्रन्थ प्राणों, भूतों, जीवों और सत्वों का हनन करता है,—यावत्—उन्हें पीड़ा पहुँचाता है। अतः जो देखभाल कर आहार-पानी का सेवन करता है, वही निर्ग्रन्थ है। बिना देखे भाले आहार-पानी करने वाला नहीं। यह पंचम भावना है।

इस प्रकार पाँच भावनाओं से विशिष्ट तथा साधक द्वारा स्वीकृत प्राणातिपात विरमणरूप प्रथम महाव्रत का सम्यक् प्रकार काया से स्पर्श करने पर, उसका पालन करने पर, गृहीत महा-व्रत को भलीभाँति पार लगाने पर, उसका कीर्तन करने पर, उसमें अवस्थित रहने पर, भगवदाज्ञा के अनुरूप आराधन हो जाता है।

हे भगवन्! यह प्राणातिपातविरमणरूप प्रथम महाव्रत है।

१ (क) समवायांग सूत्र में अहिंसा महाव्रत की पांच भावनाएँ हैं—१. ईर्यासमिति, २. मनोगुप्ति, ३. वचनगुप्ति, ४. आलोक भाजन भोजन, ५. आदानभाण्डमात्रनिक्षेपण समिति। —सम. सम. २५, सु. १

(ख) प्रश्नव्याकरण में अहिंसा महाव्रत की पांच भावनाएँ इस प्रकार हैं—१. ईर्यासमिति, २. अपापमन, ३. अपापवचन, ४. एषणा समिति, ५. आदान निक्षेपण समिति। —पण्ह. सु. २, अ. १, सु. ७-११

विशेष के लिए देखें इसी विभाग का परिशिष्ट।

अहिंसाए सट्ठी नामाइं—

३२१. तत्थ पढमं अहिंसा, तस-थावर-सव्वभूय-खेमंकरी ।

तीसे सभावणाओ, किंचि वोच्छं गुणुद्देसं ॥

तत्थ पढमं अहिंसा ।

जा सा सदेव मणुयासुरस्स लोगस्स भवइ दीवो

ताणं सरणं गइ पइट्ठा ।

१. निव्वाणं,

२. निव्वुई,

३. समाही,

४. सत्ती,

५. कित्ती,

६. कंती,

७. रती य,

८. विरती य,

९. सुयंग,

१०. तित्ती,

११. दया,

१२. विमुत्ती,

१३. खंती,

१४. सम्मत्ताराहणा,

अहिंसा के साठ नाम—

३२१. इन संवरद्वारों में प्रथम जो अहिंसा है, वह त्रस और स्थावर—समस्त जीवों का क्षेम-कुशल करने वाली है ।

मैं पाँच भावनाओं सहित अहिंसा के गुणों का कुछ कथन करूँगा ।

उन (पूर्वोक्त) पाँच संवरद्वारों में प्रथम संवरद्वार अहिंसा है ।

यह अहिंसा देवों, मनुष्यों और असुरों सहित समग्र लोक के लिए द्वीप अथवा दीप (दीपक) के समान है ।

त्राण है—विविध प्रकार के जागतिक दुःखों से पीड़ित जनों की रक्षा करने वाली है । शरणदायी है, उन्हें शरण देने वाली है । कल्याणकामी जनों के लिए गति-गम्य है—प्राप्त करने योग्य है तथा समस्त गुणों एवं सुखों का आधार है ।

(अहिंसा के निम्नलिखित नाम हैं ।)

(१) निर्वाण—मुक्ति का कारण है ।

(२) निर्वृत्ति—दुर्ध्यानरहित होने से मानसिक स्वस्थता-रूप है ।

(३) समाधि—समता का कारण है ।

(४) शक्ति—आध्यात्मिक शक्ति या शक्ति का कारण है । (कहीं-कहीं "सत्ती" के स्थान पर "सन्ती" पद मिलता है, जिसका अर्थ है—शांति, अहिंसा में परद्रोह की भावना का अभाव होता है, अतएव वह शान्ति भी कहलाती है ।)

(५) कीर्ति—कीर्ति का कारण है ।

(६) कान्ति—अहिंसा के आराधक में कान्ति—तेजस्विता उत्पन्न हो जाती है, अतः वह कान्ति है ।

(७) रति—प्राणिमात्र के प्रति प्रीति, मैत्री, अनुरक्ति—आत्मीयता को उत्पन्न करने के कारण वह रति है ।

(८) विरति—पापों से विरक्ति ।

(९) श्रुतांग—समीचीन श्रुतज्ञान इसका कारण है, अर्थात् सत् शास्त्रों के अध्ययन मनन से अहिंसा उत्पन्न होती है, इस कारण इसे श्रुतांग कहा गया है ।

(१०) तृप्ति—सन्तोषवृत्ति भी अहिंसा का एक अंग है ।

(११) दया—कष्ट पाते हुए, मरते हुए या दुःखित प्राणियों की करुणाप्रेरित भाव से रक्षा करना, यथाशक्ति दूसरे के दुःख का निवारण करना ।

(१२) विमुक्ति—बन्धनों से पूरी तरह छुड़ाने वाली ।

(१३) क्षान्ति—क्षमा, यह भी अहिंसा का रूप है ।

(१४) सम्यक्त्वाराधना—सम्यक्त्व की आराधना—सेवना [का] कारण ।

१५. महंती,	(१५) महती—समस्त व्रतों में महान्-प्रधान-जिनमें समस्त व्रतों का समावेश हो जाए।
१६. बोही,	(१६) बोधि—धर्म प्राप्ति का कारण।
१७. बुद्धी,	(१७) बुद्धि—बुद्धि को सार्थकता प्रदान करने वाली।
१८. धिई,	(१८) धृति—चित्त की धीरता—दृढ़ता।
१९. समिद्धी,	(१९) समृद्धि—सब प्रकार की सम्पन्नता से युक्त—जीवन को आनन्दित करने वाली।
२०. रिद्धी,	(२०) ऋद्धि—लक्ष्मी प्राप्ति का कारण।
२१. विद्धी,	(२१) वृद्धि—पुण्य एवं धर्म की वृद्धि का कारण।
२२. ठिती,	(२२) स्थिति—मुक्ति में प्रतिष्ठित करने वाली।
२३. पुट्ठी,	(२३) पुष्टि—पुण्यवृद्धि से जीवन को पुष्ट बनाने वाली अथवा पाप का अपचय करके पुण्य का उपचय करने वाली।
२४. नंदा,	(२४) नन्दा—स्व और पर को आनन्द-प्रमोद प्रदान करने वाली।
२५. भद्दा,	(२५) भद्रा—स्व का और पर का भद्र—कल्याण करने वाली।
२६. विसुद्धी,	(२६) विशुद्धि—आत्मा को विशिष्ट शुद्ध बनाने वाली।
२७. लद्धी,	(२७) लब्धि—केवलज्ञान आदि लब्धियों का कारण।
२८. विसिट्ठदिट्ठी,	(२८) विशिष्ट दृष्टि—विचार और आचार में अनेकान्त प्रधान दर्शनवाली।
२९. कल्लाणं,	(२९) कल्याण—कल्याण या शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का कारण।
३०. मंगलं,	(३०) मंगल—पाप-विनाशिनी, सुख उत्पन्न करने वाली, भव-सागर से तारने वाली।
३१. पमोओ,	(३१) प्रमोद—स्व-पर को हर्ष उत्पन्न करने वाली।
३२. विभूती,	(३२) विभूति—ऐश्वर्य का कारण।
३३. रक्खा,	(३३) रक्षा—प्राणियों को दुःख से बचाने की प्रकृतिरूप, आत्मा को सुरक्षित बनाने वाली।
३४. सिद्धावासो,	(३४) सिद्धावास—सिद्धों में निवास कराने वाली, मुक्ति-धाम में पहुँचाने वाली मोक्ष हेतु।
३५. अणासवो,	(३५) अनास्रव—आते हुए कर्मों का निरोध करने वाली।
३६. केवलीणंठाणं,	(३६) केवली-स्थानम्—केवलियों के लिए स्थानरूप।
३७. सिवं,	(३७) शिव—सुख स्वरूप, उपद्रवों का शमन करने वाली।
३८. समिई,	(३८) समिति—सम्यक् प्रवृत्ति।
३९. सीलं,	(३९) शील—सदाचार स्वरूपा, समीचीन आचार।
४०. संजमो त्ति य,	(४०) संयम—मन और इन्द्रियों का निरोध तथा जीव रक्षा रूप।
४१. सीलपरिघरो,	(४१) शीलपरिग्रह—सदाचार अथवा ब्रह्मचर्य का घर—चारित्र का स्थान।

४२. संवरो य, — (४२) संवर—आस्रव का निरोध करने वाली।

४३. गुत्ती, — (४३) गुप्ति—मन, वचन, काय की असत् प्रवृत्ति को रोकना।

४४. ववसाओ, — (४४) व्यवसाय—विशिष्ट-उत्कृष्ट निश्चय रूप।

४५. उस्सओ, — (४५) उच्छ्रय—प्रशस्त भावों की उन्नति—वृद्धि समुदाय।

४६. जण्णो, — (४६) यज्ञ—भाव देवपूजा अथवा यत्न—जीव रक्षा में सावधानतास्वरूप।

४७. आयतणं, — (४७) आयतन—समस्त गुणों का स्थान।

४८. जयणं, — (४८) यतना—प्रमाद—लापरवाही आदि का त्याग।

४९. अप्पमाओ, — (४९) अप्रमाद—मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा इन पाँच प्रमादों का त्याग।

५०. अस्साओ, — (५०) आश्वासन—प्राणियों के लिए आश्वासन-तसल्ली।

५१. विसासो, — (५१) विश्वास—समस्त जीवों के विश्वास का कारण।

५२. अभओ, — (५२) अभय—प्राणियों को निर्भयता प्रदान करने वाली, स्वयं आराधक को भी निर्भय बनाने वाली।

५३. सव्वस्स वि अमाघाओ, — (५३) सर्वस्य अमाघात—प्राणिमात्र की हिंसा का निषेध अथवा अमारी-घोषणा स्वरूप।

५४. चोक्ख, — (५४) चोक्ष—चोखी, शुद्ध, भली प्रतीत होने वाली।

५५. पवित्ता, — (५५) पवित्रा—अत्यन्त पावन—वज्र सरीखे घोर आघात से भी त्राण करने वाली।

५६. सुई, — (५६) शुचि—भाव की अपेक्षा शुद्ध—हिंसा आदि मलीन भावों से रहित, निष्कलंक।

५७. पूजा, — (५७) पूजा—पूजा, विशुद्ध या भाव से देवपूजा रूप।

५८. विमल, — (५८) विमला—स्वयं निर्मल एवं निर्मलता का कारण।

५९. पभासा य, — (५९) प्रभासा—आत्मा को दीप्ति प्रदान करने वाली, प्रकाशमय।

६०. निम्मलयर त्ति, — (६०) निर्मलतरा—अत्यन्त निर्मल अथवा आत्मा को अतीव निर्मल बनाने वाली।

एवमादीणि नियगगुणनिम्मियाइं पज्जवनामाणि होंति, अहिंसाए भगवतीए।

—पण्ह० सु० २, अ० १, सु० २

अहिंसा भगवती के (पूर्वोक्त तथा इसी प्रकार के अन्य) इत्यादि स्वगुण निष्पन्न (अपने गुणों से निष्पन्न हुए) पर्यायवाची नाम हैं।

अहिंसा भगवईए अट्ठोवमा—

भगवती अहिंसा की आठ उपमाएँ—

३२२. एसा सा भगवई अहिंसा,

३२२. यह अहिंसा भगवती जो है; सो—

१. जा सा भीयाण विव सरणं, — (१) (संसार के समस्त) भयभीत प्राणियों के लिए शरणभूत है,

२. पक्खीणं विव गमणं, — (२) पक्षियों के लिए आकाश में गमन करने (उड़ने) के समान है,

३. तिसियाणं विव सलिलं, — (३) यह अहिंसा प्यास से पीड़ित प्राणियों के लिए जल के समान है,

४. खुहियाणं विव असणं,

५. समुद्दमज्झे व पोयवहणं,

६. चउप्पयाणं व आसमपयं,

७. दुहट्ठियाणं व ओसहिबलं,

८. अडवीमज्झे व सत्थगमणं,

एत्तो विसिट्ठतरिया अहिंसा जा सा पुढवी-जल-अगणि-मारुय-वणस्सइ-बीय-हरिय-जलयर-थलयर-खहयर-तस-थावर-सव्व-भूय-खेमंकरी ।

—पण्ह. सु. २, अ. १, सु. ३

(४) भूखों के लिए भोजन के समान है,

(५) समुद्र के मध्य डूबते हुए जीवों के लिए जहाज समान है,

(६) चतुष्पद—पशुओं के लिए आश्रय (स्थान) के समान है,

(७) दुःखों से पीड़ित—रोगी जनों के लिए औषध-बल के समान है,

(८) भयानक जंगल में सार्थ-संघ के साथ गमन करने के समान है।

(क्या भगवती अहिंसा वास्तव में जल, अन्न, औषध, यात्रा में सार्थ (समूह) आदि के समान ही है ? नहीं।) भगवती अहिंसा इनसे भी विशिष्ट है, जो पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, बीज, हरितकाय, जलचर, स्थलचर, खेचर, त्रस और स्थावर सभी जीवों का क्षेम-कुशल-मंगल करने वाली है।

अहिंसा सरूवपरूवगा पालगा य—

३२३. एसा भगवई अहिंसा जा सा अपरिमिय-णाणदंसणधरेहिं सील-गुण-विणय-तव-संयम-णायगेहिं, तित्थकरेहिं सव्वजग-जीववच्छलेहिं तिलोयमहिएहिं जिणवरेहिं (जिणंदेहिं) सुट्ठुदिट्ठा,

ओहिजिणेहिं विण्णाया,

उज्जुमईहिं विदिट्ठा,

विउलमईहिं विदिता,

पुव्वधरेहिं अहीया,

वेउव्वीहिं पतिण्णा,

१. आभिणिबोहियणाणीहिं, २. सुयणाणीहिं,

३. ओहिनाणीहिं, ४. मणपज्जवणाणीहिं, ५. केवलणाणीहिं,

१. आमोसहिपत्तेहिं, २. खेलोसहिपत्तेहिं, ३. विप्पोसहिपत्तेहिं,

४. जल्लोसहिपत्तेहिं, ५. सव्वोसहिपत्तेहिं ।

१. बीयबुद्धीहिं, २. कुट्ठबुद्धीहिं, ३. पयाणुसारीहिं,

४. संभिण्णसोएहिं, ५. सुयधरेहिं ।

अहिंसा स्वरूप के प्ररूपक और पालक—

३२३. यह भगवती अहिंसा वह है जो अपरिमित—अनन्त केवलज्ञान-दर्शन को धारण करने वाले, शीलरूप गुण, विनय, तप और संयम के नायक—इन्हें चरम सीमा तक पहुँचाने वाले, तीर्थ की संस्थापना करने वाले—प्रवर्तक, जगत के समस्त जीवों के प्रति वात्सल्य धारण करने वाले, त्रिलोक पूजित जिनवरों (जिनेन्द्रों) द्वारा अपने केवलज्ञान-दर्शन द्वारा सम्यक् रूप में स्वरूप, कारण और कार्य के दृष्टिकोण से निश्चित की गई है।

विशिष्ट अवधिज्ञानियों द्वारा विज्ञात की गई है।

ऋजुमति-मनःपर्यवज्ञानियों द्वारा देखी-परखी गई है।

विपुलमति-मनःपर्यवज्ञानियों द्वारा ज्ञात की गई है।

चतुर्दश पूर्वश्रुत के धारक मुनियों ने इसका अध्ययन किया है।

विक्रियालब्धिधारकों ने इसका आजीवन पालन किया है।

(१) आभिनिबोधिक-मतिज्ञानियों ने, (२) श्रुतज्ञानियों ने, (३) अवधिज्ञानियों ने, (४) मनःपर्यवज्ञानियों ने, (५) केवलज्ञानियों ने,

(१) आमर्षौषधिलब्धि के धारक, (२) श्लेष्मौषधिलब्धि के धारक, (३) विप्रौषधिलब्धि धारकों, (४) जल्लौषधिलब्धि-धारकों, (५) सर्वौषधिलब्धिप्राप्त,

(१) बीजबुद्धि, (२) कोष्ठबुद्धि, (३) पदानुसारिबुद्धि—लब्धि के धारकों, (४) सम्भिन्नश्रोतस्लब्धि के धारकों, (५) श्रुतधरों ने।

१. मणबलिएहिं, २. वयबलिएहिं, ३. कायबलिएहिं ।

(१) मनोबली, (२) वचनबली और (३) कायबली मुनियों ने

१. णाणबलिएहिं, २. दंसणबलिएहिं, ३. चरित्तबलिएहिं,

(१) ज्ञानबली, (२) दर्शनबली तथा (३) चारित्रबली महापुरुषों ने

१. खीरासवेहिं, २. महुआसवेहिं,
३. सप्पियासवेहिं, ४. अक्खीणमहाणसिएहिं,

(१) क्षीरास्रवलब्धिधारी, (२) मध्वास्रवलब्धिधारी, (३) सर्पिरास्रवलब्धिधारी तथा (४) अक्षीण महानसलब्धि के धारकों ने,

१. चारणेहिं, विज्जाहरेहिं ।

(१) चारणों और विद्याधरों ने,

चउत्थभत्तिएहिं एवं-जाव-छम्मासभत्तिएहिं,

चतुर्थभक्तिकों—एक-एक उपवास करने वालों से लेकर —यावत्—छः मास भक्तिक तपस्वियों ने इसी प्रकार—

१. उक्खित्तचरएहिं,	२. णिक्खित्तचरएहिं,
३. अंतचरएहिं,	४. पंतचरएहिं,
५. लूहचरएहिं,	६. अण्णइलाएहिं,
७. समुदाणचरएहिं,	८. मोणचरएहिं,
९. संसट्ठकप्पिएहिं,	१०. तज्जायसंसट्ठकप्पिएहिं,
११. उवणिहिएहिं	१२. सुद्धेसणिएहिं,
१३. संखादत्तिएहिं,	१४. दिट्ठलाभिएहिं,
१५. अदिट्ठलाभिएहिं,	१६. पुट्ठलाभिएहिं,
१७. आयंबिलएहिं,	१८. पुरिमड्ढिएहिं,
१९. एक्कासणिएहिं,	२०. णिव्विइएहिं,
२१. भिण्णपिंडवाइएहिं,	२२. परिमियपिंडवाइएहिं,
२३. अंताहारेहिं,	२४. पंताहारेहिं,
२५. अरसाहारेहिं,	२६. विरसाहारेहिं,
२७. लूहाहारेहिं,	२८. तुच्छाहारेहिं,
२९. अंतजीवीहिं,	३०. पंतजीवीहिं,
३१. लूहजीवीहिं,	३२. तुच्छजीवीहिं,
३३. उवसंतजीवीहिं,	३४. पसंतजीवीहिं,
३५. विवित्तजीवीहिं,	
३६. अखीरमहुसप्पिएहिं,	

(१) उत्क्षिप्तचरक,	(२) निक्षिप्तचरक,
(३) अन्तचरक,	(४) प्रान्तचरक,
(५) रूक्षचरक,	(६) अन्नग्लायक,
(७) समुदानचरक,	(८) मौनचरक,
(९) संसृष्टकल्पिक,	(१०) तज्जातसंसृष्टकल्पिक,
(११) उपनिधिक,	(१२) शुद्धैषणिक,
(१३) संख्यादत्तिक,	(१४) दृष्टलाभिक,
(१५) अदृष्टलाभिक,	(१६) पृष्ठलाभिक,
(१७) आचाम्लक,	(१८) पुरिमार्धिक,
(१९) एकाशनिक,	(२०) निर्विकृतिक,
(२१) भिन्नपिण्डपातिक,	(२२) परिमितपिण्डपातिक,
(२३) अन्ताहारी,	(२४) प्रान्ताहारी,
(२५) अरसाहारी,	(२६) विरसाहारी,
(२७) रूक्षाहारी,	(२८) तुच्छाहारी,
(२९) अन्तजीवी,	(३०) प्रान्तजीवी,
(३१) रूक्षजीवी,	(३२) तुच्छजीवी,
(३३) उपशान्तजीवी	(३४) प्रशान्तजीवी,
(३५) विविक्तजीवी तथा	

(३६) दुग्ध, मधु और घृत का यावज्जीवन त्याग करने वालों ने,

३७. अमज्जमंसासिएहिं ।

(३७) मद्य और मांस से रहित आहार करने वालों ने,

१. ठाणाइएहिं,
२. पडिमंठाइएहिं, ३. ठाणुक्कडिएहिं,
४. वीरासणिएहिं, ५. णेसज्जिएहिं, ६. डंडाइएहिं,
७. लगंडसाईएहिं, ८. एगपासगेहिं, ९. आयावएहिं,
१०. अप्पावएहिं, ११. अणिट्ठुभएहिं, १२. अकंडूयएहिं,
१३. धुयकेसमंसुलोमणखएहिं,

(१) कायोत्सर्ग करके एक स्थान पर स्थिर रहने का अभिग्रह करने वालों ने, (२) प्रतिमास्थायिकों ने, (३) स्थानोत्कटिकों ने, (४) वीरासनिकों ने, (५) नैषधिकों ने, (६) दण्डायतिकों ने (७) लगण्डशायिकों ने, (८) एकपार्श्वकों ने, (९) आतापकों ने, (१०) अपावृतों ने, (११) अनिष्ठीवकों ने, (१२) अकंडूयकों ने, (१३) धूतकेश श्मश्रु-लोम-नख अर्थात् सिर के बाल, दाढ़ी मूंछ और नखों का संस्कार करने का त्याग करने वालों ने,

१४. सव्वगायपडिकम्मविप्पमुक्केहिं, समणुचिण्णा,

(१४) सम्पूर्ण शरीर के प्रक्षालन आदि संस्कार के त्यागियों ने,

सुयहरविइयत्थकायबुद्धीहिं धीरमइबुद्धिणो य।

श्रुतधरों के द्वारा तत्त्वार्थ को अवगत करने वाली बुद्धि के धारक महापुरुषों ने (अहिंसा भगवती का) सम्यक् प्रकार से आचरण किया है।

जे ते आसीविसउग्गतेयकप्पा, निच्छयववसायपज्जत्तकयमईया, निच्चं सज्झायज्झाणअणुबद्धधम्मझाणा, पंचमहव्वयचरित्तजुत्ता, समिया समिईसु समियपावा छव्विहजगवच्छला निच्चमप्पमत्ता एएहिं अण्णेहिं य जा सा अणुपालिया भगवई।

—पण्ह. सु. २, अ. १, सु. ४

(इनके अतिरिक्त) आशीविष सर्प के सामान उग्र तेज से सम्पन्न महापुरुषों ने, वस्तुतत्त्व का निश्चय और पुरुषार्थ—दोनों में पूर्ण कार्य करने वाली बुद्धि से सम्पन्न महापुरुषों ने, नित्य स्वाध्याय और चित्तवृत्तिनिरोध रूप ध्यान करने वाले तथा धर्म ध्यान में निरन्तर चित्त को लगाये रखने वाले पुरुषों ने, पाँच महाव्रत स्वरूप चारित्र से युक्त तथा पाँच समितियों से सम्पन्न, पापों का शमन करने वाले, षट् जीवनिकायरूप जगत के वत्सल, निरन्तर अप्रमादी रहकर विचरण करने वाले महात्माओं ने तथा अन्य विवेकविभूषित सत्पुरुषों ने अहिंसा भगवती की आराधना की है।

अप्पसमदिट्ठी—

३२४. तुमं सि णाम तं चेव जं हंतव्वं ति मण्णसि,
तुमं सि णाम तं चेव जं अज्जावेतव्वं ति मण्णसि,
तुमं सि णाम तं चेव जं परितावेतव्वं ति मण्णसि,
तुमं सि णाम तं चेव जं परिघेतव्वं ति मण्णसि,

एवं तं चेव जं उद्दवेतव्वं ति मण्णसि।
अंजू चेयं पडिबुद्धजीवी। तम्हा ण हंता, ण वि घातए।

अणुसंवेयणमप्पाणेणं जं हंतव्वं णाभिपत्थए।

—आ. सु. १, अ. ५, उ. ५, सु. १७०

इणमेव णावकंखंति, जे जणा धुवचारिणो।
जाती-मरणं परिण्णाय, चरे संकमणे दढे॥

णत्थि कालस्स णागमो

—आ. सु. १, अ. २, उ. ३, सु. ७८

पभू एजस्स दुगुंछणाए। आतंकदंसी अहियं ति णच्चा।

जे अज्झत्थं जाणति से बहिया जाणति,।
जे बहिया जाणति से अज्झत्थं जाणति।
एयं तुलमण्णेसिं।
इह संतिगता दविया णावकंखंति जीविउं।

—आ. सु. १, अ. १, उ. ७, सु. ५६

आत्मसमदृष्टि—

३२४. तू वही है, जिसे तू हनन योग्य मानता है;
तू वही है, जिसे तू आज्ञा में रखने योग्य मानता है;
तू वही है, जिसे तू परिताप देने योग्य मानता है;
तू वही है, जिसे तू दास बनाने हेतु ग्रहण करने योग्य मानता है;
और तू वही है, जिसे तू मारने योग्य मानता है।

ज्ञानी पुरुष ऋजु-सरल होता है, वह प्रतिबोध पाकर जीने वाला होता है इसके कारण वह स्वयं हनन नहीं करता और न दूसरों से हनन करवाता है।

कृत कर्म के अनुरूप स्वयं को ही उसका फल भोगना पड़ता है, इसलिए किसी का हनन करने की इच्छा मत करो।

जो पुरुष मोक्ष की ओर गतिशील हैं वे इस (विपर्यासपूर्ण जीवन को जीने) की इच्छा नहीं करते (विपर्यासपूर्ण जीवन जीने वाले के) जन्म-मरण को जानकर वह मोक्ष के सेतु पर दृढ़तापूर्वक चले।

मृत्यु के लिए कोई भी क्षण अनवसर नहीं है (वह किसी भी क्षण आ सकती है)।

साधनाशील पुरुष हिंसा में आतंक देखता है, उसे अहित मानता है। अतः वायुकायिक जीवों की हिंसा से निवृत्त होने में समर्थ होता है।

जो अध्यात्म को जानता है, वह बाह्य संसार को भी जानता है। जो बाह्य को जानता है, वह अध्यात्म को जानता है।

इस तुला (स्व-पर की तुलना) का अन्वेषण कर, चिन्तन कर।

इस (जिनशासन में) जो शान्ति प्राप्त (कषाय जिनके उपशान्त हो गये हैं) और दयार्द्र हृदय वाले (द्रविक) मुनि हैं, वे जीव-हिंसा करके जीना नहीं चाहते।

षड्जीवनिकाय का स्वरूप एवं हिंसा का निषेध

भगवया छ जीवनिकाया परूविया—

३२५. सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं—इह खलु छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुयक्खाया सुपन्नत्ता।

सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती।

प०—कयरा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुयक्खाया सुपन्नत्ता। सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती।

उ०—इमा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया सुयक्खाया सुपन्नत्ता। सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपन्नत्ती तं जहा—

१. पुढविकाइया, २. आउकाइया, ३. तेउकाइया, ४. वाउकाइया, ५. वणस्सइकाइया, ६. तसकाइया।
—दस. अ. ४, सु. १-३

भगवान ने छह जीवनिकाय प्ररूपित किये हैं—

३२५. हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है उन भगवान् ने इस प्रकार कहा —निर्ग्रन्थ-प्रवचन में निश्चय ही षड्जीवनिका नामक अध्ययन काश्यप-गोत्री श्रमण भगवान् महावीर द्वारा प्रवेदित सु-आख्यात और सुप्रज्ञप्त है।

इस धर्म-प्रज्ञप्ति अध्ययन का पठन मेरे लिए श्रेय है।

प्र०—वह षड्जीवनिका नामक अध्ययन कौन-सा है जो काश्यप-गोत्री श्रमण भगवान् महावीर द्वारा प्रवेदित, सु-आख्यात और सु-प्रज्ञप्त है, जिस धर्म-प्रज्ञप्ति अध्ययन का पठन मेरे लिए श्रेय है ?

उ०—वह षड्जीवनिका नामक अध्ययन जो काश्यप-गोत्री श्रमण भगवान् महावीर द्वारा प्रवेदित, सु-आख्यात और सु-प्रज्ञप्त है, जिस धर्म-प्रज्ञप्ति अध्ययन का पठन मेरे लिए श्रेय है—यह है जैसे—

(१) पृथ्वीकायिक, (२) अप्कायिक, (३) तेजस्कायिक, (४) वायुकायिक, (५) वनस्पतिकायिक और (६) त्रसकायिक।

छण्हं जीवणिकायाणं अणारंभपइण्णा—

३२६. इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाणं नेव सयं दंडं समारंभेज्जा, नेवन्नेहिं दंडं समारंभावेज्जा, दंडं समारंभंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।
—दस. अ. ४, सु. १०

उवेहेणं बहिया य लोकं।
से सव्वलोकंसि जे केइ विण्णू।

अणुवियि पास ! णिक्खित्तदंडा जे केइ सत्ता पलियं चयंति।

णरा मुतच्चा धम्मविदु त्ति अंजू,

छह जीवनिकायों का आरम्भ न करने की प्रतिज्ञा—

३२६. इन छह जीव-निकायों के प्रति स्वयं दण्ड-समारम्भ नहीं करना चाहिए, दूसरों से दण्ड-समारम्भ नहीं कराना चाहिए और दण्ड-समारम्भ करने वालों का अनुमोदन नहीं करना चाहिए। यावज्जीवन के लिए तीन करण तीन योग से—मन से, वचन से, काया से—न करूँगा, न कराऊँगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूँगा।

भन्ते ! मैं अतीत में किए दण्ड समारम्भ से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और (कषाय–) आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ।

इस (धर्म) से विमुख जो लोग हैं उनकी उपेक्षा कर !
जो ऐसा कहता है, वह समस्त मनुष्य लोक में जो कोई विद्वान है, उनमें अग्रणी विज्ञ है।

तू अनुचिन्तन करके देख—जिन्होंने दण्ड (हिंसा) का त्याग किया है, (वे ही श्रेष्ठ विद्वान होते हैं)।
जो सत्त्वशील मनुष्य धर्म के सम्यक् विशेषज्ञ होते हैं, वे ही कर्म का क्षय करते हैं। ऐसे मनुष्य धर्मवेत्ता होते हैं अथवा शरीर के प्रति भी अनासक्त होते हैं।

आरंभजं दुक्खमिणं ति णच्चा । एवमाहु सम्मत्तदंसिणो ।

इस दुःख को आरम्भ से उत्पन्न हुआ जानकर (समस्त हिंसा का त्याग करना चाहिए) ऐसा (सर्वज्ञों ने) कहा है ।

ते सव्वे पावादिया दुक्खस्स कुसला परिण्णमुदाहरंति इति कम्मं परिण्णाय सव्वसो ।

—आ. सु. १, अ. ४, उ. ३, सु. १४०

वे सब प्रावादिक (सर्वज्ञ) होते हैं, वे दुःख (दुःख के कारण कर्मों को) जानने में कुशल होते हैं । इसलिए वे कर्मों को सब प्रकार से जानकर उनको त्याग करने का उपदेश देते हैं ।

छ जीवणिकायाणं हिंसा न कायव्वा—

छह जीवनिकायों की हिंसा नहीं करनी चाहिए—

३२७. इच्चेयं छज्जीवणियं, सम्मद्दिट्ठी सया जए ।
दुलहं लभित्तु सामण्णं, कम्मुणा न विराहेज्जासि ॥

—दस. अ. ४, गा. ४१

३२७. दुर्लभ श्रमण-भाव को प्राप्त कर सम्यक्-दृष्टि और सतत सावधान श्रमण इस षड्जीवनिकाय की कर्मणा—मन, वचन और काया—से विराधना न करे ।

पुढवी-आऊ - अगणि - वाऊ -तण-रुक्ख-सबीयगा ।
अंडया पोय - जराऊ - रस - संसेय - उब्भिया ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा हरित, तृण, वृक्ष और बीज आदि वनस्पति एवं अंडज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज तथा उद्भिज्ज आदि त्रसकाय, ये सब षट्कायिक जीव हैं ।

एतेहिं छहिं काएहिं, तं विज्जं परिजाणिया ।
मणसा कायवक्केणं, णारंभी ण परिग्गही ॥

—सूय. सु. १, अ. ६, गा. ८-९

विद्वान् साधक इन छह कायों से इन्हें जीव जानकर मन, वचन और काया से न इनका आरम्भ करे और न इनका परिग्रह करे ।

पुढवीजीवा पुढो सत्ता, आउजीवा तहाऽगणी ।
वाउजीवा पुढो सत्ता, तण रुक्ख सबीयगा ॥

पृथ्वी जीव है, पृथ्वी के आश्रित भी पृथक्-पृथक् जीव हैं, जल एवं अग्नि भी जीव है, वायुकाय के जीव भी पृथक्-पृथक् हैं तथा हरित तृण, वृक्ष और बीज (के रूप में वनस्पतियाँ) भी जीव हैं ।

अहावरा तसा पाणा, एवं छक्काय आहिया ।
इत्ताव ताव जीवकाए, नावरे विज्जती काए ॥

इनके अतिरिक्त (छठे) त्रसकाय वाले जीव होते हैं । इस प्रकार तीर्थंकरों ने जीव के छह निकाय (भेद) बताये हैं । इतने ही (संसारी) जीव के भेद हैं । इसके अतिरिक्त संसार में और कोई जीव (का मुख्य प्रकार) नहीं होता ।

सव्वाहिं अणुजुत्तीहिं, मतिमं पडिलेहिया ।
सव्वे अक्कंतदुक्खा य, अतो सव्वे न हिंसया ॥

—सूय. सु. १, अ. ११, सु. ७-९

बुद्धिमान पुरुष सभी अनुकूल (संगत) युक्तियों से इन जीवों में जीवत्व सिद्ध करके भलीभाँति जाने-देखे कि सभी प्राणियों को दुःख अप्रिय है (सभी सुख-लिप्सु हैं), अतः किसी भी प्राणी की हिंसा न करे ।

पुढवि दगअगणिमारुय, तण - रुक्ख - सबीयगा ।
तसा य पाणा जीव त्ति, इइ वुत्तं महेसिणा ॥

तेसिं अच्छणजोएण, निच्चं होयव्वयं सिया ।
मणसा काय वक्केण, एवं भवइ संजए ॥

—दस. अ. ८, गा. २-३

पृथ्वी, उदक, अग्नि, वायु बीज-पर्यन्त तृण-वृक्ष और त्रस प्राणी—ये जीव हैं—ऐसा महर्षि महावीर ने कहा है ।

भिक्षु को मन, वचन और काया से उनके प्रति सदा अहिंसक होना चाहिए । इस प्रकार अहिंसक रहने वाला संयत (संयमी) होता है ।

एत्थं वि जाण उवादीयमाणा, जे आयारे ण रमंति,

तुम यह जानो ! जो आचार (अहिंसा-आत्म-स्वभाव) में रमण नहीं करते वे कर्मों से—आसक्ति की भावना से बंधे हुए हैं ।

आरम्भमाणा विणयं वयंति,

वे आरम्भ करते हुए भी स्वयं को संयमी बताते हैं । अथवा दूसरों को संयम का उपदेश करते हैं ।

छंदोवणीया अज्झोववण्णा,

वे स्वच्छन्दचारी और विषयों में आसक्त होते हैं ।

आरम्भसत्ता पकरेंति संगं ।

वे (स्वच्छन्दचारी) आरम्भ में आसक्त रहते हुए पुनः-पुनः कर्म का संग-बन्धन करते हैं।

से वसुमं सव्व समण्णागत-पण्णाणेणं अकरणिज्जं पावं कम्मं तं णो अण्णेसिं ।

वह वसुमान (ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप धन से संयुक्त) सब प्रकार के विषयों के सम्बन्ध में प्रज्ञापूर्वक विचार करता है, अन्तःकरण से पाप-कर्म को अकरणीय (न करने योग्य) जानें, तथा उस विषय में अन्वेषण (मन से चिन्तन) भी न करे।

तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं छज्जीव-णिकाय-सत्थं समारंभेज्जा,

यह जानकर मेधावी मनुष्य स्वयं षट्-जीव-निकाय का समारम्भ न करे।

णेवऽण्णेहिं छज्जीवणिकायसत्थं समारंभावेज्जा,
णेवऽण्णे छज्जीवणिकायसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा ।

दूसरों से उसका समारम्भ न करवाए,
उसका समारम्भ करने वालों का अनुमोदन भी न करे।

जस्सेते छज्जीवणिकायसत्थ-समारम्भा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे,

जिसने षड्-जीवनिकाय-शस्त्र का प्रयोग भलीभाँति समझ लिया है, त्याग दिया है, वही परिज्ञातकर्मा मुनि कहलाता है।

त्ति बेमि । —आ. सु. १, अ. १, उ. ७, सु. ६२

—ऐसा मैं कहता हूँ।

उड्ढं अहे य तिरियं दिसासु,
तसा य जे थावरा जे य पाणा ।
सया जते तेसु परिव्वएज्जा,
मणप्पओसं अविकंपमाणे ॥
—सूय. सु. १, अ. १४, गा. १४

साधु ऊँची, नीची और तिरछी दिशाओं में जो भी त्रस और स्थावर प्राणी रहते हैं, उनकी हिंसा जिस प्रकार से न हो, उस प्रकार की यतना (यत्न) करे तथा संयम में पुरुषार्थ करे एवं उन प्राणियों पर लेशमात्र भी द्वेष न करता हुआ संयम में निश्चल रहे।

से मेधावी जे अणुग्घायणस्स खेत्तण्णे जे य बंधप्पमोक्खमण्णेसी ।

वह मेधावी है, जो अनुद्घात-अहिंसा का समग्र स्वरूप जानता है, तथा जो कर्मों के बन्धन से मुक्त होने की अन्वेषणा करता है।

कुसले पुण णो बद्धे णो मुक्के ।

कुशल पुरुष न बँधे हुए हैं और न मुक्त हैं।

से जं च आरम्भे, जं च णारंभे, अणारद्धं च ण आरम्भे ।

उन कुशल साधकों ने जिसका आचरण नहीं किया है उनके द्वारा अनाचरित प्रवृत्ति का आचरण न करे।

छणं छणं परिण्णाय लोगसण्णं च सव्वसो ।
—आ. सु. १, अ. २, उ. ६, सु. १०४

अहिंसा और हिंसा के कारणों को जानकर उनका त्याग कर दे। लोक-संज्ञा (लौकिक सुख) को भी सर्व प्रकार से जाने और छोड़ दे।

पुढविकाय अणारंभकरण पइण्णा—

पृथ्वीकाय का आरम्भ न करने की प्रतिज्ञा—

३२८ पुढवी चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ परिणएणं ।
—दस. अ. ४, सु. ४

३२८. शस्त्र-परिणति से पूर्व पृथ्वी चित्तवती (सजीव) कही गई है। वह अनेक जीवों और पृथक सत्त्वों (प्रत्येक जीव के स्वतन्त्र अस्तित्व) वाली है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा—से पुढविं वा भित्तिं वा सिलं वा लेलुं वा ससरक्खं वा कायं ससरक्खं वा वत्थं हत्थेण वा पाएण वा कट्ठेण वा किलिंचेण वा अंगुलियाए वा सलागाए वा सलागहत्थेण वा, न आलिहेज्जा न विलिहेज्जा न घट्टेज्जा न भिंदेज्जा,

संयत विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यातपापकर्मा भिक्षु अथवा भिक्षुणी, दिन में या रात में, एकान्त में या परिषद् में, सोते या जागते—पृथ्वी, भित्ती (नदी पर्वत आदि की दरार), शिला, ढेले, सचित्त-रज से संसृष्ट काय अथवा सचित्त रज से संसृष्ट वस्त्र या हाथ, पांव, काष्ठ, खपचिच, अंगुली, शलाका अथवा शलाका-समूह से न आलेखन करे, न विलेखन करे, न घट्टन करे और न भेदन करे।

अन्नं न आलिहावेज्जा न विलिहावेज्जा न घट्टावेज्जा न भिंदावेज्जा,

दूसरे से न आलेखन कराए, न विलेखन कराए, न घट्टन कराए और न भेदन कराए।

अन्नं आलिहंतं वा विलिहंतं वा घट्टन्तं वा भिंदंतं वा न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।[1]

आलेखन, विलेखन, घट्टन या भेदन करने वाले का अनुमोदन भी न करे, यावज्जीवन के लिए तीन करण तीन योग से मन से, वचन से, काया से, न करूँगा न कराऊँगा और न करने वाले का अनुमोदन भी करूँगा।

तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

—दस. अ. ४, सु. १८

भंते! मैं अतीत के पृथ्वी-समारम्भ से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ।

सचित्त पुढवीए णिसिज्जा निसेहो—
अचित्त पुढवीए णिसेज्जा विहाणो—

सचित्त पृथ्वी पर निषद्या (बैठने) का निषेध—
अचित्त पृथ्वी पर बैठने का विधान—

३२९. सुद्धपुढवीए न निसिए, ससरक्खम्मि य आसणे।
पमज्जित्तु निसीएज्जा, जाइत्ता जस्स ओग्गहं॥

—दस. अ. ८, गा. ५

३२९. मुनि शुद्ध पृथ्वी और सचित्त-रज से संसृष्ट आसन पर न बैठे। अचित्त पृथ्वी पर प्रमार्जन कर और वह जिसकी हो उसकी अनुमति लेकर बैठे।

पुढवीकाइयाणं वेयणा विण्णाय तेसिं आरम्भणिसेहो कओ—

पृथ्वीकायिक जीवों की वेदना जानकर उनके आरम्भ का निषेध किया है—

३३०. अट्टे लोए परिजुण्णे दुस्संबोधे अविजाणए।

३३०. जो मनुष्य आर्त, (विषय-वासना-कषाय आदि से पीड़ित) है, वह ज्ञान-दर्शन से परिजीर्ण-हीन रहता है। ऐसे व्यक्ति को समझाना कठिन होता है, क्योंकि वह अज्ञानी जो है।

अस्सिं लोए पव्वहिए तत्थ तत्थ पुढो पास आतुरा परितावेंति।

अज्ञानी मनुष्य इस लोक में व्यथा-पीड़ा का अनुभव करता है। काम-भोग व सुख के लिए आतुर-लालायित बने प्राणी स्थान-स्थान पर पृथ्वीकाय आदि प्राणियों को परिताप (कष्ट) देते रहते हैं। यह तू देख! समझ!

संति पाणा पुढो सिया।

पृथ्वीकायिक प्राणी पृथक्-पृथक् शरीर में आश्रित रहते हैं अर्थात् वे प्रत्येकशरीरी होते हैं।

लज्जमाणा पुढो पास।

तू देख! आत्म-साधक, लज्जामान है—हिंसा से स्वयं का संकोच करता हुआ अर्थात् हिंसा करने में लज्जा का अनुभव करता हुआ संयममय जीवन जीता है।

अणगारा मो त्ति एगे पवयमाणा। जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारंभेणं पुढविसत्थं समारंभमाणो अणेगरूवे पाणे विहिंसति।

कुछ वेषधारी साधु 'हम गृहत्यागी हैं' ऐसा कथन करते हुए भी वे नाना प्रकार के शस्त्रों से पृथ्वी सम्बन्धी हिंसा-क्रिया में लगकर पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करते हैं। तथा पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा के साथ तदाश्रित अन्य अनेक प्रकार के जीवों की भी हिंसा करते हैं।

तत्थ खलु भगवता परिण्णा पवेदिता—

इस विषय में भगवान् ने परिज्ञा (विवेक) का उपदेश किया है।

---

1 पुढविं भित्तिं सिलं लेलुं नेव भिंदे न संलिहे। तिविहेण करणजोएण संजए सुसमाहिए॥ —दस. अ. ८, गा. ४

इमस्स चेव जीवियस्स, परिवंदण-माणण-पूयणाए जाती-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघातहेउं,

कोई व्यक्ति इस जीवन के लिए, प्रशंसा-सम्मान और पूजा के लिए, जन्म, मरण और मुक्ति के लिए, दुःख का प्रतिकार करने के लिए।

से सयमेव पुढविसत्थं समारंभति, अण्णेहिं वा पुढविसत्थं समारंभावेति, अण्णे वा पुढविसत्थं समारभंते, समणुजाणति, तं से अहिताए, तं से अबोहीए।

स्वयं पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करते हैं, दूसरों से हिंसा करवाते हैं, तथा हिंसा करने वालों का अनुमोदन करते हैं।

वह (हिंसावृत्ति) उसके अहित के लिए होती है। वह उसकी अबोधि अर्थात् ज्ञान-बोधि, दर्शन-बोधि और चारित्र-बोधि की अनुपलब्धि के लिए कारणभूत होती है।

से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाए।

वह साधक (संयमी) हिंसा के उक्त दुष्परिणामों को अच्छी तरह समझता हुआ, आदानीय-संयम-साधना में तत्पर हो जाता है।

सोच्चा भगवतो अणगाराणं इहमेगेसिं णातं भवति—एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णिरए।

कुछ मनुष्यों को भगवान के या अनगार मुनियों के समीप धर्म सुनकर यह ज्ञान होता है कि—"यह जीव-हिंसा ग्रन्थि है, यह मोह है, यह मृत्यु है और यही नरक है।"

इच्चत्थं गढिए लोए, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढवि-कम्मसमारंभेणं पुढविसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति।

(फिर भी) जो मनुष्य सुख आदि के लिए जीवहिंसा में आसक्त होता है, वह नाना प्रकार के शस्त्रों से पृथ्वी सम्बन्धी हिंसा-क्रिया में संलग्न होकर पृथ्वी-कायिक जीवों की हिंसा करता है, और तब वह न केवल पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करता है, अपितु अन्य नानाप्रकार के जीवों की भी हिंसा करता है।

से बेमि—

मैं कहता हूँ—

अप्पेगे अंधमब्भे, अप्पेगे अंधमच्छे,

जैसे कोई किसी जन्मान्ध इन्द्रियविकल—पंगु, गूंगा, बहरा, अवयवहीन को भेदे, मुद्गर आदि से चोट पहुँचाये छेदे, (तलवार आदि से घाव को काटकर अलग कर दे)

अप्पेगे पायमब्भे, अप्पेगे पायमच्छे,
अप्पेगे गुप्फमब्भे, अप्पेगे गुप्फमच्छे,
अप्पेगे जंघमब्भे, अप्पेगे जंघमच्छे,
अप्पेगे जाणुमब्भे, अप्पेगे जाणुमच्छे,
अप्पेगे ऊरुमब्भे, अप्पेगे ऊरुमच्छे,
अप्पेगे कडिमब्भे, अप्पेगे कडिमच्छे,
अप्पेगे णाभिमब्भे, अप्पेगे णाभिमच्छे,
अप्पेगे उदरमब्भे, अप्पेगे उदरमच्छे,
अप्पेगे पासमब्भे, अप्पेगे पासमच्छे,
अप्पेगे पिट्ठिमब्भे, अप्पेगे पिट्ठिमच्छे,
अप्पेगे उरमब्भे, अप्पेगे उरमच्छे,
अप्पेगे हिययमब्भे, अप्पेगे हिययमच्छे,
अप्पेगे थणमब्भे, अप्पेगे थणमच्छे,
अप्पेगे खंधमब्भे, अप्पेगे खंधमच्छे,
अप्पेगे बाहुमब्भे, अप्पेगे बाहुमच्छे,
अप्पेगे हत्थमब्भे, अप्पेगे हत्थमच्छे,
अप्पेगे अंगुलिमब्भे, अप्पेगे अंगुलिमच्छे,

जैसे कोई किसी के पैर को भेदे, छेदे,
जैसे कोई किसी के टखने को भेदे, छेदे,
जैसे कोई किसी की जंघा को भेदे, छेदे,
जैसे कोई किसी के घुटने को भेदे, छेदे,
जैसे कोई किसी के ऊरु को भेदे, छेदे,
जैसे कोई किसी की कटि को भेदे, छेदे,
जैसे कोई किसी की नाभि को भेदे, छेदे,
जैसे कोई किसी के उदर को भेदे, छेदे,
जैसे कोई किसी की पार्श्व (पसली) को भेदे, छेदे,
जैसे कोई किसी की पीठ को भेदे, छेदे,
जैसे कोई किसी की छाती को भेदे, छेदे,
जैसे कोई किसी के हृदय को भेदे, छेदे,
जैसे कोई किसी के स्तन को भेदे, छेदे,
जैसे कोई किसी के कंधे को भेदे, छेदे,
जैसे कोई किसी की भुजा को भेदे, छेदे,
जैसे कोई किसी के हाथ को भेदे, छेदे,
जैसे कोई किसी की अंगुली को भेदे, छेदे,

अप्पेगे णहमब्भे, अप्पेगे णहमच्छे,
अप्पेगे गीवमब्भे, अप्पेगे गीवमच्छे,
अप्पेगे हणुमब्भे, अप्पेगे हणुमच्छे,
अप्पेगे होट्ठमब्भे, अप्पेगे होट्ठमच्छे,
अप्पेगे दंतमब्भे, अप्पेगे दंतमच्छे,
अप्पेगे जिब्भमब्भे, अप्पेगे जिब्भमच्छे,
अप्पेगे तालुमब्भे, अप्पेगे तालुमच्छे,
अप्पेगे गलमब्भे, अप्पेगे गलमच्छे,
अप्पेगे गंडमब्भे, अप्पेगे गंडमच्छे,
अप्पेगे कण्णमब्भे, अप्पेगे कण्णमच्छे,
अप्पेगे णासमब्भे, अप्पेगे णासमच्छे,
अप्पेगे अच्छिमब्भे, अप्पेगे अच्छिमच्छे,
अप्पेगे भमुहमब्भे, अप्पेगे भमुहमच्छे,
अप्पेगे णिडालमब्भे, अप्पेगे णिडालमच्छे,
अप्पेगे सीसमब्भे, अप्पेगे सीसमच्छे,
अप्पेगे संपमारए, अप्पेगे उद्दवए।

जैसे कोई किसी के नख का भेदन करे, छेदन करे,
जैसे कोई किसी की ग्रीवा (गरदन) का भेदन करे, छेदन करे,
जैसे कोई किसी हनु (ठुड्डी) का भेदन करे, छेदन करे,
जैसे कोई किसी के होंठ का भेदन करे, छेदन करे,
जैसे कोई किसी के दाँत का भेदन करे, छेदन करे,
जैसे कोई किसी की जीभ का भेदन करे, छेदन करे,
जैसे कोई किसी के तालु का भेदन करे, छेदन करे,
जैसे कोई किसी के गले का भेदन करे, छेदन करे,
जैसे कोई किसी के कपोल का भेदन करे, छेदन करे,
जैसे कोई किसी के कान का भेदन करे, छेदन करे,
जैसे कोई किसी नाक (नासिका) का भेदन करे, छेदन करे,
जैसे कोई किसी की आँख का भेदन करे, छेदन करे,
जैसे कोई किसी की भौंह का भेदन करे, छेदन करे,
जैसे कोई किसी के ललाट का भेदन करे, छेदन करे,
जैसे कोई किसी के सिर का भेदन करे, छेदन करे,
जैसे कोई किसी को गहरी चोट मारकर, मूच्छित कर दे, या प्राण-वियोजन ही कर दे उसे जैसी कष्टानुभूति होती है; वैसी ही पृथ्वीकायिक जीवों की वेदना समझनी चाहिए।

एत्थ सत्थं[1] समारंभमाणस्स इच्चेते आरम्भा अपरिण्णाता भवंति।

जो यहाँ (लोक में) पृथ्वीकायिक जीवों पर शस्त्र का समारम्भ—प्रयोग करता है, वह वास्तव में इन आरम्भों (हिंसा सम्बन्धी प्रवृत्तियों के कटु परिणामों व जीवों की वेदना) से अनजान है।

एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरम्भा परिण्णाता भवंति।

जो पृथ्वीकायिक जीवों पर शस्त्र का समारम्भ-प्रयोग नहीं करता, वह वास्तव में इन आरम्भों-हिंसा-सम्बन्धी प्रवृत्तियों का ज्ञाता है, (वही इनसे मुक्त होता है)

तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं पुढविसत्थं समारंभेज्जा, णेवऽण्णेहिं पुढविसत्थं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे-पुढविसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा।

यह (पृथ्वीकायिक जीवों की अव्यक्त वेदना) जानकर बुद्धिमान् मनुष्य न स्वयं पृथ्वीकाय का समारम्भ करे, न दूसरों से पृथ्वीकाय का समारम्भ करवाये और न उसका समारम्भ करने वाले का अनुमोदन करे।

जस्सेते पुढविकम्मसमारंभा परिण्णाता भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे।

जिसने पृथ्वीकाय सम्बन्धी समारम्भ को जान लिया अर्थात् हिंसा के कटु परिणाम को जान लिया वही परिज्ञातकर्मा (हिंसा) का त्यागी) मुनि होता है।

त्ति बेमि। —आ. सु. १, अ. १, उ. २, सु. १०-१८

—ऐसा मैं कहता हूँ।

---

1 निर्युक्तिकार ने पृथ्वीकाय के दस शस्त्र इस प्रकार गिनाये हैं:—

१—कुदाल आदि भूमि खोदने के उपकरण।
२—हल आदि भूमि विदारण के उपकरण।
३—मृग शृंग।
४—काठ-लकड़ी तृण आदि।
५—अग्निकाय।
६—उच्चार-प्रश्रवण (मल-मूत्र)।
७—स्वकाय शस्त्र; जैसे—काली मिट्टी का शस्त्र पीली मिट्टी आदि।
८—परकाय शस्त्र; जैसे—जल आदि।
९—तदुभय शस्त्र; जैसे—मिट्टी मिला जल।
१०—भावशस्त्र-असंयम। —आचारांग निर्युक्ति गा. ९५-९६

आउकाय अणारंभ करण-पइण्णा—

३३१. आऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं।

—दस. अ. ४, सु. ५

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा—

से उदगं वा ओसं वा हिमं वा महियं वा करगं वा हरतणुगं वा सुद्धोदगं वा उदओल्लं वा कायं उदओल्लं वा वत्थं ससिणिद्धं वा कायं ससिणिद्धं वा वत्थं, न आमुसेज्जा न संफुसेज्जा न आवीलेज्जा न पवीलेज्जा न अक्खोडेज्जा न पक्खोडेज्जा न आयावेज्जा न पयावेज्जा,

अन्नं न आमुसावेज्जा न संफुसावेज्जा न आवीलावेज्जा न पवीलावेज्जा न अक्खोडावेज्जा न पक्खोडावेज्जा न आयावेज्जा न पयावेज्जा,

अन्नं आमुसंतं वा संफुसंतं वा आवीलंतं वा पवीलंतं वा अक्खोडंतं वा पक्खोडंतं वा आयावंतं वा पयावंतं वा न समणुजाणेज्जा।

जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

—दस. अ. ४, सु. १९

उदउल्लं अप्पणो कायं, नेव पुंछे न संलिहे।
समुप्पेह तहाभूयं, नो णं संघट्टए मुणी॥

—दस. अ. ८, सु. ७

अप्कायिक जीवों का आरम्भ न करने की प्रतिज्ञा—

३३१. शस्त्र-परिणति से पूर्व अप् चित्तवान (सजीव) कहा गया है। वह अनेक जीव और पृथक सत्वों (प्रत्येक जीव के स्वतन्त्र अस्तित्व) वाला है।

संयत-विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यात-पापकर्मा भिक्षु अथवा भिक्षुणी, दिन में या रात में, एकान्त में या परिषद् में, सोते या जागते—

उदक, ओस, हिम, धूंअर, ओले, भूमि को भेदकर निकले हुए जल बिन्दु, शुद्ध उदक (अन्तरिक्ष-जल), जल से भीगे शरीर अथवा जल से भीगे वस्त्र, जल से स्निग्ध शरीर अथवा जल से स्निग्ध वस्त्र का न आमर्श करे, न संस्पर्श करे, न आपीड़न करे, न प्रपीड़न करे, न आस्फोटन करे, न प्रस्फोटन करे, न आतापन करे, और न प्रतापन करे,

दूसरों से न आमर्श कराए, न संस्पर्श कराए, न आपीड़न कराए, न प्रपीड़न कराए, न आस्फोटन कराए, न प्रस्फोटन कराए, न आतापन कराए, न प्रतापन कराए।

आमर्श, संस्पर्श, आपीड़न, प्रपीड़न, आस्फोटन, प्रस्फोटन, आतापन या प्रतापन करने वाले का अनुमोदन न करे।

यावज्जीवन के लिए, तीन करण, तीन योग से—मन से, वचन से, काया से, न करूँगा, न कराऊँगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूँगा।

भन्ते! मैं अतीत के जल-समारम्भ से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और (कषाय) आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ।

मुनि जल से भीगे अपने शरीर को न पोंछे और न मले। शरीर को तथाभूत (भीगा हुआ) देखकर उसका स्पर्श न करे।

आउकाइयाणं हिंसा निसेहो—

३३२. लज्जमाणा पुढो पास।

"अणगारा मो" त्ति एगे पवयमाणा, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं उदयकम्मसमारंभेणं उदयसत्थं समारंभमाणे अण्णे व णेगरूवे पाणे विहिंसति।

अप्कायिक जीवों की हिंसा का निषेध—

३३२. (हे! आत्म साधक!) तू देख! आत्म-साधक, लज्जामान है—(हिंसा से स्वयं संकोच करता हुआ अर्थात् हिंसा करने में लज्जा का अनुभव करता हुआ संयममय जीवन जाता है।)

कुछ साधु वेषधारी "हम गृहत्यागी हैं" ऐसा कथन करते हुए भी वे नाना प्रकार के शस्त्रों से अप्काय सम्बन्धी हिंसा-क्रिया में लगकर अप्कायिक जीवों की हिंसा करते हैं। तथा अप्कायिक जीवों की हिंसा के साथ तदाश्रित अन्य प्रकार के जीवों की भी हिंसा करते हैं।

तत्थ खलु भगवता परिण्णा पवेदिता—

इस विषय में भगवान् महावीर स्वामी ने परिज्ञा-विवेक का उपदेश किया है।

इमस्स चेव जीवितस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए। जाती-मरण-मोयणाए-दुक्खपडिघातहेतुं से सयमेव उदयसत्थं समारंभति, अण्णेहिं वा उदयसत्थं समारंभावेति, अण्णे वा उदयसत्थं समारंभंते समणुजाणति।

कोई व्यक्ति इस जीवन के लिए, प्रशंसा-सम्मान और पूजा के लिए, जन्म, मरण और मुक्ति के लिए, दुख का प्रतीकार करने के लिए स्वयं अप्कायिक जीवों की हिंसा करता है, दूसरों से हिंसा करवाता है, तथा हिंसा करने वालों का अनुमोदन करता है।

तं से अहिताए, तं से अबोहीए।

वह (हिंसावृत्ति) उसके अहित के लिए होती है वह उसकी अबोधि अर्थात् ज्ञान-बोधि, दर्शन-बोधि और चारित्र-बोधि की अनुपलब्धि के लिए कारणभूत होती है।

से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाए।

वह साधक (संयमी) हिंसा के उक्त दुष्परिणामों को अच्छी तरह समझता हुआ, आदानीय-संयम साधना में तत्पर हो जाता है।

सोच्चा भगवतो अणगाराणं इहमेगेसिं णातं भवति—एस खलु मोहे, एस खलु गंथे, एस खलु मारे, एस खलु णिरए।

कुछ मनुष्यों को भगवान् के या अनगार मुनियों के समीप धर्म सुनकर यह ज्ञात होता है कि—"यह जीव-हिंसा ग्रन्थि है, यह मोह है, यह मृत्यु है और यही नरक है।"

इच्चत्थं गढिए लोए, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं उदयसत्थ-कम्मसमारंभेणं उदयसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति।

(फिर भी) जो मनुष्य सुख आदि के लिए जीवहिंसा में आसक्त होता है, वह नाना प्रकार के शस्त्रों से जल-सम्बन्धी हिंसा-क्रिया में संलग्न होकर अप्कायिक जीवों की हिंसा करता है और तब वह न केवल अप्कायिक जीवों की हिंसा करता है, अपितु अन्य नाना प्रकार के जीवों की भी हिंसा करता है।

से बेमि—

मैं कहता हूँ—

संति पाणा उदयणिस्सिया जीवा अणेगा।

जल के आश्रित अनेक प्रकार के जीव रहते हैं।

इहं च खलु भो अणगाराणं उदय—जीवा वियाहिया।

हे मनुष्य ! इस अनगार-धर्म में, अर्थात् अर्हत्दर्शन में जल को "जीव" (सचेतन) कहा है।

सत्थं चेत्थं अणुवीयि पास।

जलकाय के जो शस्त्र हैं, उन पर चिन्तन करके देखें !

पुढो सत्थं पवेदितं।

भगवान् ने जलकाय के अनेक शस्त्र बताये हैं।

अदुवा अदिण्णादाणं।

जलकाय की हिंसा, सिर्फ हिंसा ही नहीं, वह अदत्तादान चोरी भी है।

कप्पइ णे, कप्पइ णे पातुं अदुवा विभूसाए।

"हमें कल्पता है। अपने सिद्धान्त के अनुसार हम पीने के जल ले सकते हैं। हम पीने तथा नहाने (विभूषा) के लिए भी जल का प्रयोग करते हैं।"

पुढो सत्थेहिं विउट्टन्ति।

इस तरह अपने शास्त्र का प्रमाण देकर या नानाप्रकार के शस्त्रों द्वारा जलकाय के जीवों की हिंसा करते हैं।

---

१ निर्युक्तिकार ने जलकाय के सात शस्त्र इस प्रकार बताये हैं—

(१) उत्सेचन—कुएँ से जल निकालना।
(२) गालन—जल छानना।
(३) धोवन—जल से उपकरण-बर्तन आदि धोना।
(४) स्वकाय शस्त्र—एक स्थान का जल दूसरे स्थान के जल का शस्त्र है।
(५) परकाय शस्त्र—मिट्टी, तेल, क्षार, शर्करा, अग्नि आदि।
(६) तदुभय शस्त्र—जल से भीगी मिट्टी आदि।
(७) भाव शस्त्र—असंयम। —आचा. निर्युक्ति गा. ११३, ११४

एत्थ वि तेसिं णो णिकरणाए।

अपने शास्त्र का प्रमाण देकर जलकाय की हिंसा करने वाले साधु हिंसा के पाप से विरत नहीं हो सकते अर्थात् उनका हिंसा न करने का संकल्प पूर्ण नहीं हो सकता।

एत्थ सत्थं[1] समारंभमाणस्स इच्चेते आरम्भा अपरिण्णाया भवंति।

जो यहाँ, शस्त्र-प्रयोग कर जलकाय जीवों का समारम्भ करता है, वह इन आरम्भों (जीवों की वेदना व हिंसा के कुपरिणाम) से बच नहीं पाता।

एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरम्भा परिण्णाया भवंति।

जो जलकायिक जीवों पर शस्त्र-प्रयोग नहीं करता, वह आरम्भों का ज्ञाता है, वह हिंसा-दोष से मुक्त होता है। अर्थात् वह ज्ञ-परिज्ञा से हिंसा को जानकर प्रत्याख्यान-परिज्ञा से उसे त्याग देता है।

तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं उदयसत्थं समारंभेज्जा, णेवऽण्णेहिं उदयसत्थं समारंभावेज्जा, उदयसत्थं समारंभंते अण्णे ण समणुजाणेज्जा।

बुद्धिमान मनुष्य यह (उक्त कथन) जानकर स्वयं जलकाय का समारम्भ न करे, दूसरों से न करवाए और उसका समारम्भ करने वालों का अनुमोदन न करे।

जस्सेते उदयसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णातकम्मे त्ति बेमि।

जिसको जल-सम्बन्धी समारम्भ का ज्ञान होता है, वही परिज्ञातकर्मा (मुनि) होता है।

—आ. सु. १, अ. १, उ. ३, सु. २३-३१

तेउकाइयाणं अणारंभ-करण पइण्णा—

तेजस्कायिक जीवों का आरम्भ न करने की प्रतिज्ञा—

३३३. तेऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थ-परिणएणं।

—दस. अ. ४, सु ६

३३३. शस्त्र-परिणति से पूर्व तेजस् चित्तवान् (सजीव) कहा गया है। वह अनेक जीव और पृथक् सत्वों (प्रत्येक जीव के स्वतन्त्र अस्तित्व) वाला है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे।

संयत विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यात-पापकर्मा भिक्षु अथवा भिक्षुणी।

दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा—

दिन में या रात में, एकान्त में या परिषद में, सोते या जागते—

से अगणिं वा इंगालं वा मुम्मुरं वा अच्चिं वा जालं वा अलायं वा सुद्धागणिं वा उक्कं वा, न उंजेज्जा न घट्टेज्जा न उज्जालेज्जा न निव्वावेज्जा।

अग्नि, अंगारे, मुर्मुर, अर्चि, ज्वाला, अलात (अधजली लकड़ी), शुद्ध (काष्ठ रहित) अग्नि अथवा उल्का का न उत्सेचन करे, न घट्टन करे, न उज्ज्वालन करे और न निर्वाण करे (न बुझाए);

अन्नं न उंजावेज्जा न घट्टावेज्जा न उज्जालावेज्जा न निव्वावेज्जा।

न दूसरों से उत्सेचन कराए, न घट्टन कराए, न उज्ज्वालन कराए और न निर्वाण कराए;

अन्नं उंजंतं वा घट्टंतं वा उज्जालंतं वा निव्वावंतं वा न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।[1]

उत्सेचन, घट्टन, उज्ज्वालन या निर्वाण करने वाले का अनुमोदन न करे, यावज्जीवन के लिए, तीन करण, तीन योग से मन से, वचन से, काया से, न करूँगा, न कराऊँगा और न करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूँगा।

१ इंगालं अगणिं अच्चिं, अलायं वा सजोइयं। न उंजेज्जा न घट्टेज्जा, नो णं निव्वावए मुणी॥ —दस. अ. ८, गा. ८

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

—दस. अ. ४, सु. २०

भन्ते ! मैं अतीत के अग्नि-समारम्भ से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और (कषाय) आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

तेउकाओ अमोहसत्थो—

तेजस्कायिक एक अमोघ शस्त्र—

३३४. विसप्पे सव्वओधारे, बहुपाणविणासणे ।
नत्थि जोइसमे सत्थे, तम्हा जोइं न दीवए ॥

—उत्त. अ. ३५, गा. १२

३३४. अग्नि फैलने वाली, सब ओर से धार वाली और बहुत जीवों का विनाश करने वाली होती है, उसके समान दूसरा कोई शस्त्र नहीं होता, इसलिए भिक्षु उसे न जलाए ।

तेउकाइयाणं हिंसा निसेहो—

तेजस्कायिक जीवों की हिंसा का निषेध—

३३५. जे दीहलोगसत्थस्स खेयण्णे से असत्थस्स खेयण्णे ।

३३५. जो दीर्घलोक शस्त्र (अग्निकाय) के स्वरूप को जानता है वह अशस्त्र (संयम) का स्वरूप भी जानता है ।

जे असत्थस्स खेयण्णे से दीहलोगसत्थस्स खेयण्णे ।

जो संयम का स्वरूप जानता है वह दीर्घलोक शस्त्र का स्वरूप भी जानता है ।

वीरेहिं एयं अभिभूय दिट्ठं संजतेहिं सया जतेहिं सया अप्पमत्तेहिं ।

वीरों (आत्मज्ञानियों) ने, ज्ञान-दर्शनावरण आदि कर्मों को विजय कर (नष्ट कर) यह (संयम का पूर्ण स्वरूप) देखा है । वे वीर संयमी, सदा यतनाशील और सदा अप्रमत्त रहने वाले थे ।

जे पमत्ते गुणट्ठिते से हु दंडे पवुच्चति ।

जो प्रमत्त है, गुणों (अग्नि के रांधना-पकाना आदि) का अर्थी है, वह दण्ड-हिंसक कहलाता है ।

तं परिण्णाय मेहावी इयाणीं णो जमहं पुव्वमकासी पमादेणं ।

यह जानकर मेधावी पुरुष (संकल्प करे)—अब मैं वह (हिंसा) नहीं करूँगा, जो मैंने प्रमाद के वश होकर पहले किया था ।

लज्जमाणा पुढो पास ।

तू देख ! सच्चे साधक (अग्निकाय की) हिंसा करने में लज्जा अनुभव करते हैं ।

अणगारा मो त्ति एगे पवयमाणा, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं अगणिकम्मसमारंभेणं अगणिसत्थं समारंभमाणे अण्णेऽणेगरूवे पाणे विहिंसति ।

और उनको भी देख जो अपने आपको "अनगार" घोषित करते हैं, वे विविध प्रकार के शस्त्रों (उपकरणों) द्वारा अग्नि सम्बन्धी आरम्भ-समारम्भ करते हुए अग्निकाय के जीवों की हिंसा करते हैं, और साथ ही तदाश्रित अन्य अनेक जीवों की भी हिंसा करते हैं ।

तत्थ खलु भगवता परिण्णा पवेदिता—

इस विषय में भगवान ने परिज्ञा अर्थात् विवेक का निरूपण किया है ।

इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाती-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघातहेतुं,

अपने इस जीवन के लिए, प्रशंसा, सम्मान और पूजा के लिए, जन्म-मरण और मोक्ष के लिए दुखों का प्रतिकार करने के लिए (इन कारणों से)

से सयमेव अगणिसत्थं समारभति, अण्णेहिं वा अगणिसत्थं समारभावेति, अण्णे वा अगणिसत्थं समारभमाणे समणुजाणति ।

कोई स्वयं अग्निकाय की हिंसा करता है, दूसरों से भी अग्निकाय की हिंसा करवाता है और अग्निकाय की हिंसा करने वालों का अनुमोदन करता है ।

तं से अहिताए, तं से अबोधीए ।

यह हिंसा, उसके अहित के लिए होती है तथा अबोधि का कारण बनती है ।

से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाए ।

वह साधक यह समझते हुए संयम-साधना में तत्पर हो जाता है ।

सोच्चा भगवतो अणगाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णातं भवति—एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णिरए।
इच्चत्थं गढिए लोए, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं[1] अगणिकम्मसमारंभेणं अगणिसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति।

भगवान् से या अनगार मुनियों से सुनकर कुछ मनुष्यों को यह परिज्ञान हो जाता है, कि यह जीव हिंसा ग्रन्थि है, मोह है, मृत्यु है और नरक है।

फिर भी मनुष्य इस जीवन (प्रशंसा, सन्तान आदि के लिए) में आसक्त होता है। जो कि वह तरह-तरह के शस्त्रों से अग्निकाय की हिंसा-क्रिया में संलग्न होकर अग्निकायिक जीवों की हिंसा करता है। वह न केवल अग्निकायिक जीवों की हिंसा करता है अपितु अन्य नाना प्रकार के जीवों की भी हिंसा करता है।

से बेमि—संति पाणा पुढविणिस्सिता तणणिस्सिता पत्तणिस्सिता कट्ठणिस्सिता गोमयणिस्सिता कयवरणिस्सिता।

मैं कहता हूँ—बहुत से प्राणी-पृथ्वी, तृण, पात्र, काष्ठ, गोबर और कूड़ा-कचरा आदि के आश्रित रहते हैं।

संति संपातिमा पाणा आहच्च संपयन्ति य।

कुछ सम्पातिम-उड़ने वाले प्राणी होते हैं (कीट, पतंग, पक्षी आदि) जो उड़ते-उड़ते नीचे गिर जाते हैं।

अगणिं च खलु पुट्ठा एगे संघातमावज्जंति। जे तत्थ संघातमावज्जंति ते तत्थ परियावज्जंति। जे तत्थ परियावज्जंति ते तत्थ उद्दायन्ति।

ये प्राणी अग्नि का स्पर्श पाकर संघात (शरीर का संकोच) को प्राप्त होते हैं। शरीर का संघात होने पर अग्नि की उष्मा से मूर्च्छित हो जाते हैं। मूर्च्छित हो जाने के बाद मृत्यु को भी प्राप्त हो जाते हैं।

एत्थं सत्थं समारभमाणस्स इच्चेते आरम्भा अपरिण्णाता भवंति।

जो अग्निकाय के जीवों पर शस्त्र-प्रयोग करता है, वह इन आरम्भ-समारम्भ क्रियाओं के कटु परिणामों से अपरिज्ञात होता है, अर्थात् वह हिंसा के दुःखद परिणामों से छूट नहीं सकता है।

एत्थ सत्थं असमारंभमाणस्स इच्चेते आरम्भा परिण्णाता भवति।

जो अग्निकाय पर शस्त्र-समारम्भ नहीं करता है, वह वास्तव में आरम्भ का ज्ञाता अर्थात् हिंसा से मुक्त हो जाता है।

तं परिण्णाय मेहावी नेव सयं अगणि-सत्थं समारंभेज्जा,

यह जानकर मेधावी मनुष्य स्वयं अग्नि-शस्त्र का समारम्भ न करे,

नेवण्णेहिं अगणिसत्थं समारंभावेज्जा,

दूसरों से उसका समारम्भ न करवाए,

अगणिसत्थं समारंभमाणे, अण्णे न समणुजाणेज्जा।

उसका समारम्भ करने वालों का अनुमोदन न करे।

जस्स एते अगणिकम्मसमारंभा परिण्णाता भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे,

जिसने यह अग्नि-कर्म-समारम्भ भली प्रकार समझ लिया है, वही मुनि है, वही परिज्ञात-कर्मा (कर्म का ज्ञाता और त्यागी) है।

त्ति बेमि। —आ. सु. १, अ. १, उ. ४, सु. ३२-३८

—ऐसा मैं कहता हूँ।

तं भिक्खुं सीतफास परीवेवमाणगातं उवसंकमित्तु गाहावती बूया—

शीत-स्पर्श से काँपते हुए शरीर वाले उस भिक्षु के पास आकर कोई गृहपति कहे—

1 अग्निकाय के शस्त्रों का उल्लेख करते हुए निर्युक्ति में इसके ८ प्रकार बताये हैं—
१. मिट्टी या धूलि (इससे वायु निरोधक वस्तु कर्दम आदि भी समझना चाहिए)।
२. जल,
३. आर्द्र वनस्पति,
४. त्रस प्राणी,
५. स्वकाय शस्त्र—एक अग्नि दूसरी अग्नि का शस्त्र है।
६. परकाय शस्त्र—जल आदि,
७. तदुभय मिश्रित—जैसे तुष मिश्रित अग्नि दूसरी अग्नि का शस्त्र है।
८. भावशस्त्र—असंयम।
—आचा. नि. गा. ९६

आउसंतो समणा ! णो खलु ते गामधम्मा उब्बाहंति ?

आयुष्मान् श्रमण ! क्या तुम्हें ग्रामधर्म तो पीड़ित नहीं कर रहा है ? (इस पर मुनि कहता है)

आउसन्तो गाहावती ! णो खलु मम गामधम्मा उब्बाहंति। सीतफासं णो खलु अहं संचाएमि अहियासेत्तए।

आयुष्मान् गृहपति ! मुझे ग्रामधर्म पीड़ित नहीं कर रहे हैं, किन्तु मेरा शरीर दुर्बल होने के कारण मैं शीत-स्पर्श को सहन करने में समर्थ नहीं हूँ (इसलिए मेरा शरीर शीत से प्रकम्पित हो रहा है)।

णो खलु मे कप्पति अगणिकायं उज्जालित्तए वा पज्जालित्तए वा कायं आयावित्तए वा पयावित्तए वा अण्णेसिं वा वयणाओ।

(तुम अग्नि क्यों नहीं जला लेते ?) इस प्रकार गृहपति द्वारा कहे जाने पर मुनि कहता है—) अग्निकाय को उज्ज्वलित करना, प्रज्वलित करना, उससे शरीर को थोड़ा सा भी तपाना या दूसरों को कहकर अग्नि प्रज्वलित कराना अकल्पनीय है।

सिया एवं वदंतस्स परो अगणिकायं उज्जालेत्ता पज्जालेत्ता कायं आयावेज्जा वा पयावेज्जा वा। तं च भिक्खू पडिलेहाए आगमेत्ता आणवेज्जा अणासेवणाए त्ति बेमि।

—आ. सु. १, अ. ८, उ. ४, सु. २११-२१२

(कदाचित वह गृहस्थ) इस प्रकार बोलने पर अग्निकाय को उज्ज्वलित-प्रज्ज्वलित करके साधु के शरीर को थोड़ा तपाए या विशेष रूप से तपाए। उस अवसर पर अग्निकाय के आरम्भ को भिक्षु अपनी बुद्धि से विचार कर आगम की आज्ञा को ध्यान में रखकर उस गृहस्थ से कहे कि अग्नि का सेवन मेरे लिए असेवनीय है।

जे मायरं च पियरं च हेच्चा,
समणव्वदे अगणिं समारभेज्जा।
अहाहु से लोगे कुसीलधम्मे,
भूताइं जे हिंसति आतसाते॥

जो अपने माता और पिता को छोड़कर श्रमणव्रत को धारण करके अग्निकाय का समारम्भ करता है तथा जो अपने सुख के लिए प्राणियों की हिंसा करता है, वह लोक में कुशील धर्म वाला है, (ऐसा सर्वज्ञ पुरुषों ने) कहा है।

उज्जालओ पाणऽतिवातएज्जा,
निव्वावओ अगणिं तिवातइज्जा।
तम्हा उ मेहावि समिक्ख धम्मं,
ण पंडिते अगणिं समारभेज्जा॥

आग जलाने वाला व्यक्ति प्राणियों का घात करता है और आग बुझाने वाला व्यक्ति भी अग्निकाय के जीवों का घात करता है। इसलिए मेधावी (मर्यादाशील) पण्डित (पाप से निवृत्त साधक) अपने (श्रुतचारित्ररूप श्रमण) धर्म का विचार करके अग्निकाय का समारम्भ न करे।

पुढवि वि जीवा आऊ वि जीवा,
पाणा य संपातिमा संपयन्ति।
संसेयया कट्ठसमस्सिता य,
एते दहे अगणिं समारभंते॥

—सूय. सु. १, अ. ७, गा. ५-७

पृथ्वी भी जीव है, जल भी जीव है तथा सम्पातिम (उड़ने वाले पतंगे आदि) भी जीव है जो आग में पड़कर मर जाते हैं। और भी पसीने से उत्पन्न होने वाले जीव एवं काष्ठ (लकड़ी आदि ईंधनों) के आश्रित रहने वाले जीव होते हैं। जो अग्निकाय का समारम्भ करता है, वह इन (स्थावर-त्रस) प्राणियों को जला देता है।

वाउकाय अणारम्भ करण पइण्णा—

वायुकायिक जीवों का आरम्भ न करने की प्रतिज्ञा—

३३६. वाउ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं।

—दस. अ. ४, सु. ७

३३६. शस्त्र-परिणति से पूर्व वायु चित्तवान् (सजीव) कहा गया है। वह अनेक जीव और पृथक् सत्वों (प्रत्येक जीव के स्वतन्त्र अस्तित्व) वाला है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे,

संयत-विरत - प्रतिहत - प्रत्याख्यात - पापकर्मा भिक्षु अथवा भिक्षुणी।

दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा—

दिन में या रात में, एकान्त में या परिषद् में, सोते या जागते—

से सिएण वा विहुयणेण वा तालियंटेण वा पत्तेण वा पत्तभंगेण वा साहाए वा साहाभंगेण वा पिहुणेण वा पिहुणहत्थेण वा चेलेण वा चेलकण्णेण वा हत्थेण वा मुहेण वा अप्पणो वा कायं बाहिरं वा वि पोग्गलं, न फुमेज्जा न वीएज्जा,

चामर, पंखे, बीजन, पत्र, पत्र के टुकड़े, शाखा, शाखा के टुकड़े, मोर-पंख, मोर-पिच्छी, वस्त्र, वस्त्र के पल्ले, हाथ या मुँह से अपने शरीर अथवा बाहरी पुद्गलों को फूंक न दे, हवा न करे।

अन्नं न फुमावेज्जा न वीयावेज्जा,

दूसरों से फूंक न दिलाए, हवा न कराए;

अन्नं फुमंतं वा वीयंतं वा न समणुजाणेज्जा[1] जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

फूंक देने वाले या हवा करने वाले का अनुमोदन भी न करे, यावज्जीवन के लिए, तीन करण तीन योग से—मन से, वचन से, काया से,—न करूँगा, न कराऊँगा और करते वाले का अनुमोदन भी नहीं करूँगा।

तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

—दस. अ. ४, सु. २१

भन्ते! मैं अतीत के वायु-समारम्भ से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और (कषाय) आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ।

वाउकाइयाणं हिंसा निसेहो—

वायुकायिक जीवों की हिंसा का निषेध—

३३७. लज्जमाणा पुढो पास। "अणगारा मो" त्ति एगे पवदमाणा, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वाउकम्मसमारंभेणं वाउसत्थं समारम्भमाणे अण्णेवऽणेगरूवे पाणे विहिंसति।

३३७. तू देख! संयमी साधक जीव हिंसा में लज्जा, ग्लानि-संकोच का अनुभव करते हैं। और उनको भी देख, जो "हम गृहत्यागी हैं" यह कहते हुए भी अनेक प्रकार के उपकरणों से वायुकाय का समारम्भ करते हैं। वायुकाय की हिंसा करते हुए वे अन्य अनेक प्राणियों की भी हिंसा करते हैं।

तत्थ खलु भगवता परिण्णा पवेदिता—

इस विषय में भगवान ने परिज्ञा-विवेक का प्ररूपण किया है।

इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए, जाई-मरण-मोयणाए, दुक्खपडिघातहेतुं,

कोई मनुष्य इस जीवन के लिए, प्रशंसा, सम्मान, पूजा के लिए, जन्म-मरण और मुक्ति के लिए, दुःख का प्रतिकार करने के लिए,

से सयमेव वाउसत्थं समारभति, अण्णेहिं वा वाउसत्थं समारभावेति, अण्णे वा वाउसत्थं समारभंते समणुजाणति।

स्वयं भी वायुकायिक जीवों की हिंसा करता है, दूसरों से करवाता है, तथा हिंसा करते हुए का अनुमोदन भी करता है।

तं से अहियाए, तं से अबोधीए।

यह हिंसा उसके अहित के लिए होती है। अबोधि के लिए होती है।

से तं संबुज्झमाणे, आयाणीयं समुट्ठाए,

वह संयमी, उस हिंसा को—हिंसा के कुपरिणामों को सम्यक् प्रकार से समझते हुए संयम में तत्पर हो जावे।

सोच्चा भगवओ, अणगाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णातं भवति—एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णिरए।

भगवान से या गृहत्यागी श्रमणों के समीप सुनकर कुछ मनुष्य यह जान लेते हैं कि यह हिंसा ग्रन्थि है, यह मोह है, यह मृत्यु है, यह नरक है।

इच्चत्थं गढिए लोए।

फिर भी मनुष्य हिंसा में आसक्त होता है।

जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वाउकम्म-समारंभेणं वाउसत्थं समारम्भमाणे अण्णेवऽणेगरूवे पाणे विहिंसति।

वह नाना प्रकार के शस्त्रों से वायुकायिक जीवों का समारम्भ करता है। वह न केवल वायुकायिक जीवों की हिंसा करता है अपितु अन्य अनेक प्रकार के जीवों की भी हिंसा करता है।

---

१ तालियंटेण पत्तेण, साहाविहुयणेण वा। न वीएज्ज अप्पणो कायं, बाहिरं वा वि पोग्गलं। —दस. अ. ८, गा. ९

से बेमि—संति संपाइमा पाणा आहच्च संपतंति य ।

मैं कहता हूँ सम्पातिम—उड़ने वाले प्राणी होते हैं, वे वायु से प्रताड़ित होकर नीचे गिर जाते हैं।

फरिसं च खलु पुट्ठा, एगे संघायमावज्जंति । जे तत्थ संघायमावज्जंति, ते तत्थ परियावज्जंति, जे तत्थ परियावज्जंति ते तत्थ उद्दायन्ति ।

वे प्राणी वायु का स्पर्श-आघात होने से सिकुड़ जाते हैं। जब वे वायुस्पर्श से संघातित होते हैं—सिकुड़ जाते हैं, तब वे मूच्छित हो जाते हैं। जब वे मूर्च्छा को प्राप्त होते हैं तो वहाँ मर भी जाते हैं।

एत्थ सत्थं समारम्भमाणस्स इच्चेते आरम्भा अपरिण्णाता भवंति ।

जो यहाँ वायुकायिक जीवों का समारम्भ करता है, वह इन आरम्भों से वास्तव में अनजान है।

एत्थं सत्थं समारम्भमाणस्स इच्चेते आरम्भा परिण्णाता भवंति ।

जो वायुकायिक जीवों पर शस्त्र-समारम्भ नहीं करता, वास्तव में उसने आरम्भ को जान लिया है।

तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं वाउसत्थं समारभेज्जा,

यह जानकर बुद्धिमान मनुष्य स्वयं वायुकाय का समारम्भ न करे।

णेवऽण्णेहिं वाउसत्थं समारभावेज्जा,

दूसरों से वायुकाय का समारम्भ न करवाए।

णेवऽण्णे वाउसत्थं समारभंते समणुजाणेज्जा ।

वायुकाय का समारम्भ करने वालों का अनुमोदन न करे।

जस्सेते वाउसत्थं समारम्भा परिण्णाता भवंति, से हु मुणी परिण्णायकम्मे त्ति बेमि ।

जिसने वायुकाय के शस्त्र-समारम्भ को जान लिया है, वही मुनि परिज्ञात-कर्मा (हिंसा का त्यागी) है। ऐसा मैं कहता हूँ।

—आ. सु. १, अ. १, उ. ७, सु. ५७-६१

वणस्सइकाय अणारम्भ-करण पइण्णा—

वनस्पतिकायिक जीवों का आरंभ न करने की प्रतिज्ञा—

३३८. वणस्सई चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थसत्थपरिणएणं,

३३८. शस्त्र परिणति से पूर्व वनस्पति चित्तवती (सजीव) कही गई है। वह अनेक जीव और पृथक सत्वों (प्रत्येक जीव के स्वतन्त्र अस्तित्व) वाली है।

तं जहा—अग्गबीया मूलबीया पोरबीया खंधबीया बीयरुहा सम्मुच्छिमा तणलया ।

उसके प्रकार ये हैं—अग्र-बीज, मूल-बीज, पर्व-बीज, स्कन्ध-बीज, बीज-रुह, सम्मूर्छिम, तृण और लता।

वणस्सइकाइया सबीया चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं ।

— दस. अ. ४, सु. ८

शस्त्र-परिणति से पूर्व बीजपर्यन्त (मूल से लेकर बीज तक) वनस्पतिकायिक चित्तवान् कहे गये हैं। वे अनेक जीवों और पृथक् सत्वों वाले प्रत्येक जीव के स्वतन्त्र अस्तित्व वाले हैं।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे, दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा—

संयत-विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यात-पापकर्मा भिक्षु अथवा भिक्षुणी, दिन में या रात में, एकान्त में या परिषद् में, सोते या जागते।

से बीएसु वा बीयपइट्ठिएसु वा रूढेसु वा रूढपइट्ठिएसु वा जाएसु वा जायपइट्ठिएसु वा हरिएसु वा हरियपइट्ठिएसु वा छिन्नेसु वा छिन्नपइट्ठिएसु वा सच्चित्तेसु वा सच्चित्तकोलपडिनिस्सिएसु वा, न गच्छेज्जा, न चिट्ठेज्जा, न निसीएज्जा, न तुयट्टेज्जा,

बीजों पर, बीजों पर रखी हुई वस्तुओं पर, स्फुटित बीजों पर, स्फुटित बीजों पर रखी हुई वस्तुओं पर, पत्ते आने की अवस्था वाली वनस्पति पर स्थित वस्तुओं पर, हरित पर, हरित पर रखी हुई वस्तुओं पर, छिन्न वनस्पति के अंगों पर, छिन्न वनस्पति के अंगों पर रखी हुई वस्तुओं पर, सचित्त वनस्पति पर, सचित्त कोल—अण्डों एवं काष्ठ-कीट—से युक्त काष्ठ आदि पर न चले, न खड़ा रहे, न बैठे, न सोये;

अन्नं न गच्छावेज्जा न चिट्ठावेज्जा न निसियावेज्जा न तुयट्टावेज्जा,

दूसरों को न चलाए, न खड़ा करे, न बैठाए, न सुलाए,

अन्नं गच्छंतं वा चिट्ठन्तं वा निसीयन्तं वा तुयट्टन्तं वा न समणुजाणेज्जा,

जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

चलने खड़ा रहने, बैठने या सोने वाले का अनुमोदन भी न करे,

यावज्जीवन के लिए, तीन करण, तीन योग से—मन से, वचन से, काया से—न करूँगा, न कराऊंगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूँगा।

तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

—दस. अ. ४, सु. २२

भन्ते! मैं अतीत के वनस्पति-समारम्भ से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और (कषाय) आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ।

तणरुक्खं न छिंदेज्जा, फलं मूलं व कस्सई।
आमगं विविहं बीयं, मणसा वि न पत्थए॥

मुनि तृण, वृक्ष तथा किसी भी (वृक्ष आदि के) फल या मूल का छेदन न करे और विविध प्रकार के सचित्त बीजों की मन से भी इच्छा न करे।

गहणेसु न चिट्ठेज्जा, बीएसु हरिएसु वा,
उदगम्मि तहा निच्चं, उत्तिंगपणगेसु वा॥

—दस. अ. ८, गा. १०-११

मुनि वन-निकुञ्ज के बीच में बीज पर, हरित पर, अनन्त-कायिक-वनस्पति सर्पच्छत्र और काई पर खड़ा न रहे।

दसविहा तणवणस्सइकाइया पन्नत्ता, तं जहा—

१. मूले, २. कंदे, ३. खंधे, ४. तया, ५. साले,
६. पवाले, ७. पत्ते, ८. पुप्फे[1], ९. फले, १०. बीये।

—ठाणं. अ. १०, सु. ७७३

तृणवनस्पतिकायिक जीव दश प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

(१) मूल, (२) कन्द, (३) स्कन्ध, (४) त्वक्, (५) शाखा, (६) प्रवाल, (७) पत्र, (८) पुष्प, (९) फल, (१०) बीज।

वणस्सइकाइयाणं हिंसा निसेहो—

३३९. लज्जमाणा पुढो पास। 'अणगारा मो' त्ति एगे पवयमाणा, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वणस्सतिकम्मसमारम्भेणं वणस्सतिसत्थं समारम्भमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति।

वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा का निषेध—

३३९. तू देख, ज्ञानी हिंसा से लज्जित-विरत रहते हैं। "हम गृहत्यागी हैं" यह कहते हुए भी कुछ लोग नाना प्रकार के शस्त्रों से, वनस्पतिकायिक जीवों का समारम्भ करते हैं। वनस्पतिकाय की हिंसा करते हुए वे अन्य अनेक प्रकार के जीवों की भी हिंसा करते हैं।

तत्थ खलु भगवता परिण्णा पवेदिता—इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए, जाती-मरण-मोयणाए, दुक्खपडिघातहेतुं,

से सयमेव वणस्सतिसत्थं समारंभति, अण्णेहिं वा वणस्सतिसत्थं समारंभावेति अण्णे वा वणस्सतिसत्थं समारम्भमाणे समणुजाणति।

तं से अहियाए तं से अबोहिए।

से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाए।

सोच्चा भगवतो अणगाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णायं भवति—एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे एस खलु णिरए।

इस विषय में भगवान ने परिज्ञा-विवेक का उपदेश किया है—इस जीवन के लिए प्रशंसा, सम्मान, पूजा के लिए जन्म, मरण और मुक्ति के लिए, दुख का प्रतीकार करने के लिए।

वह (तथाकथित साधु) स्वयं वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा करता है, दूसरों से हिंसा करवाता है, करने वाले का अनुमोदन भी करता है।

यह (हिंसा करना, कराना, अनुमोदन करना) उसके अहित के लिए होता है, यह उसकी अबोधि के लिए होता है।

यह समझता हुआ साधक संयम में स्थिर हो जाए।

भगवान् से या त्यागी अणगारों के समीप सुनकर उसे इस बात का ज्ञान हो जाता है—(हिंसा) ग्रन्थि है, यह मोह है, यह मृत्यु है, यह नरक है।

1 ठाणं. अ. ८, सु. ६१४।

इच्चत्थं गढिए लोए, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं वणस्सति-कम्मसमारंभेणं वणस्सतिसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति ।

—आ. सु. १, अ. १, उ. ५, सु. ४२-४४

फिर भी मनुष्य इसमें आसक्त होता है वह नाना प्रकार के शस्त्रों से वनस्पतिकाय के समारम्भ में संलग्न होकर वनस्पति-कायिक जीवों की हिंसा करता है। वह न केवल वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा करता है अपितु अन्य नाना प्रकार के जीवों की भी हिंसा करता है।

एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरम्भा अपरिण्णाता भवंति।

जो वनस्पतिकायिक जीवों पर शस्त्र का समारम्भ करता है, वह उन आरम्भों आरम्भजन्य कटुफलों से अनजान रहता है। (जानता हुआ भी अनजान है।)

एत्थ सत्थं असमारम्भमाणस्स इच्चेते आरम्भा परिण्णाया भवंति।

जो वनस्पतिकायिक जीवों पर शस्त्र प्रयोग नहीं करता, उसके लिए आरम्भ-परिज्ञान है।

तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं वणस्सतिसत्थं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णेहिं वणस्सतिसत्थं समारम्भावेज्जा, णेवऽण्णे वणस्सतिसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा।

यह जानकर मेधावी स्वयं वनस्पति का समारम्भ न करे, न दूसरों से समारम्भ करवाए और न समारम्भ करने वालों का अनुमोदन करे।

जस्सेते वणस्सतिसत्थसमारम्भा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे त्ति बेमि।

—आ. सु. १, अ. १, उ. ५, सु. ४६-४८

जिसको यह वनस्पति सम्बन्धी समारम्भ परिज्ञात होते हैं, वही परिज्ञात कर्मा (हिंसा त्यागी) मुनि होता है।

हरिताणि भूताणि विलंबगाणि,
आहारदेहाइं पुढो सिताइं।
जे छिंदति आतसुहं पडुच्चा,
पागब्भि पाणे बहुणं तिवाती॥

हरी दूब अंकुर आदि भी (वनस्पतिकायिक) जीव हैं, वे भी जीव आकार धारण करते हैं। वे (मूल, स्कन्ध, शाखा, पत्ते, फल-फूल, आदि अवयवों के रूप में) पृथक्-पृथक् रहते हैं। जो व्यक्ति अपने सुख की अपेक्षा से तथा अपने आहार (या आधार-आवास) एवं शरीर-पोषण के लिए इनका छेदन-भेदन करता है, वह धृष्ट पुरुष बहुत-से प्राणियों का विनाश करता है।

जातिं च वुड्ढिं च विणासयन्ते,
बीयाति अस्संजय आयदंडे।
अहाहु से लोए अणज्जधम्मे,
बीयाति जे हिंसति आयसाते॥

—सूय. सु. १, अ. ७, गा. ८-९

जो असंयमी (गृहस्थ या प्रव्रजित) पुरुष अपने सुख के लिए बीजादि (विभिन्न प्रकार के बीज वाले अन्न एवं फलादि) का नाश करता है, वह (बीज के द्वारा) जाति (अंकुर की उत्पत्ति) और (फल के रूप में) वृद्धि का विनाश करता है। (वास्तव में) वह व्यक्ति (हिंसा के उक्त पाप द्वारा) अपनी ही आत्मा को दण्डित करता है संसार में तीर्थंकरों या प्रत्यक्षदर्शियों ने उसे अनार्यधर्मी (अनाड़ी या अधर्मसंसक्त) कहा है।

वणस्सइ य मणुयजीवणयस्स य तुलत्तं—

३४०. से बेमि—
इमं पि जातिधम्मयं,
एयं पि जातिधम्मयं;
इमं पि वुड्ढिधम्मयं,
एयं पि वुड्ढिधम्मयं;
इमं पि चित्तमंतयं,
एयं पि चित्तमंतयं;
इमं पि छिण्णं मिलाती,
एयं पि छिण्णं मिलाती;

वनस्पति शरीर एवं मनुष्य शरीर की समानता—

३४०. मैं कहता हूँ—

१. यह मनुष्य भी जन्म लेता है,
—यह वनस्पति भी जन्म लेती है,
२. यह मनुष्य भी बढ़ता है,[१]
—यह वनस्पति भी बढ़ती है,
३. यह मनुष्य भी चेतनायुक्त है,
—यह वनस्पति भी चेतनायुक्त है,
४. यह मनुष्य शरीर छिन्न होने पर म्लान हो जाता है,
—यह वनस्पति भी छिन्न होने पर म्लान होती है,

इमं पि आहारगं,
एयं पि आहारगं;
इमं पि अणितियं,
एयं पि अणितियं;
इमं पि असासयं,
एयं पि असासयं;
इमं पि चयोवचइयं,
एयं पि चयोवचइयं;
इमं पि विप्परिणामधम्मयं,
एयं पि विप्परिणामधम्मयं।

—आ. सु. १, अ. १, उ. ५, सु. ४५

५. यह मनुष्य भी आहार करता है,
—यह वनस्पति भी आहार करती है,
६. यह मनुष्य-शरीर भी अनित्य है,
—यह वनस्पति शरीर भी अनित्य है,
७. यह मनुष्य-शरीर भी अशाश्वत है,
—यह वनस्पति शरीर भी अशाश्वत है,
८. यह मनुष्य-शरीर भी आहार से उपचित होता है, आहार के अभाव में अपचित-क्षीण होता है,
—यह वनस्पति शरीर भी इसी प्रकार उपचित-अपचित होता है।
९. यह मनुष्य-शरीर भी अनेक प्रकार की अवस्थाओं को प्राप्त होता है,
—यह वनस्पति शरीर भी अनेक प्रकार की अवस्थाओं को प्राप्त होता है।

तसकाय सरूवं—

३४१. से बेमि—

संतिमे तसा पाणा, तं जहा—

अंडया पोतया जराउया रसया संसेइमा संमुच्छिमा उब्भिया उववातिया।[1]

एस संसारे त्ति पवुच्चति। मंदस्स अवियाणओ।

णिज्झाइत्ता पडिलेहित्ता पत्तेयं परिणिव्वाणं।

सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूताणं सव्वेसिं जीवाणं सव्वेसिं सत्ताणं[2]। अस्सातं अपरिणिव्वाणं महब्भयं दुक्खं त्ति बेमि।

त्रसकाय का स्वरूप

३४१ मैं कहता हूँ—

ये सब त्रस प्राणी हैं, जैसे—

अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, सम्मूर्छिम, उद्भिज्ज और औपपातिक।

यह (त्रस जीवों का समन्वित क्षेत्र) संसार कहा जाता है। मन्द तथा अज्ञानी जीवों को यह संसार होता है।

मैं चिन्तन कर, सम्यक् प्रकार से देखकर कहता हूँ—प्रत्येक प्राणी परिनिर्वाण (शान्ति और सुख) चाहता हूँ।

सब प्राणियों, सब भूतों, सब जीवों और सब सत्वों को असाता (वेदना) और अपरिनिर्वाण (अशान्ति) ये महाभयंकर और दुःखदायी है। मैं ऐसा कहता हूँ।

---

१ उत्पत्ति-स्थान की दृष्टि से त्रस जीवों के आठ भेद इस प्रकार किये गये हैं—
१. अंडज—अण्डों से उत्पन्न होने वाले—कोयल, कबूतर, मयूर, हंस आदि।
२. पोतज—पोत अर्थात् चर्ममय थैली। पोत से उत्पन्न होने वाले—जैसे हाथी, वल्गुली आदि।
३. जरायुज—जरायु का अर्थ है गर्भ-वेष्टन या वह झिल्ली जो जन्म के समय शिशु को आवृत्त किये रहती है। इसे "जेर" भी कहते हैं। जरायु के साथ उत्पन्न होने वाले जैसे—मनुष्य, गाय, भैंस आदि।
४. रसज—छाछ, दही आदि रस विकृत होने पर इनमें जो कृमि आदि उत्पन्न हो जाते हैं वे "रसज" कहे जाते हैं।
५. संस्वेदज—पसीने से उत्पन्न होने वाले, जैसे—जूं, लीख आदि।
६. सम्मूर्छिम—बाह्य वातावरण के संयोग से उत्पन्न होने वाले, जैसे—भ्रमर, चींटी, मच्छर, मक्खी आदि।
७. उद्भिज्ज—भूमि को फोड़कर निकलने वाले, जैसे—टीड, पतंगे आदि।
८. औपपातिक—"उपपात" का शाब्दिक अर्थ है सहसा घटने वाली घटना। आगम की दृष्टि से देवता शैया में, नारक कुम्भी में उत्पन्न होकर एक मुहूर्त के भीतर ही पूर्ण युवा बन जाते हैं, इसलिए वे औपपातिक कहलाते हैं।

२ (क) प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त प्राण, भूत, जीव और सत्व शब्द सामान्यतः जीव के ही वाचक हैं। शब्दनय (समभिरूढ नय) की अपेक्षा से आगम में इसके अलग-अलग अर्थों का प्रयुक्तीकरण इस प्रकार है— (शेष टिप्पण अगले पृष्ठ पर)

तसंति पाणा पदिसो दिसासु य ।

ये प्राणी दिशा और विदिशाओं में सब ओर से भयभीत-त्रस्त रहते हैं ।

तत्थ तत्थ पुढो पास आतुरा परितावेंति ।

तू देख, विषय-सुखाभिलाषी आतुर मनुष्य स्थान-स्थान पर इन जीवों को परिताप देते रहते हैं ।

संति पाणा पुढो सिया ।

त्रसकायिक प्राणी पृथक्-पृथक् शरीरों के आश्रित रहते हैं ।

—आ. सु. १, अ. १, उ. ६, सु. ४९

तसकायस्स भेयप्पभेया—

३४२. से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा तं जहा—

अंडया पोयया जराउया रसया संसेइमा सम्मुच्छिमा उब्भिया उववाइया ।

जेसिं केसिंचि पाणाणं अभिक्कंतं पडिक्कंतं संकुचियं पसारियं रुयं भंतं तसियं पलाइयं आगइ-गइविन्नाया—

जे य कीडपयंगा, जा य कुंथुपिवीलिया, सव्वे बेइंदिया, सव्वे तेइंदिया, सव्वे चउरिंदिया, सव्वे पंचिंदिया, सव्वे तिरिक्खजोणिया, सव्वे नेरइया, सव्वे मणुया, सव्वे देवा, सव्वे पाणा परमाहम्मिया—

एसो खलु छट्ठो जीवनिकाओ तसकाओ त्ति पवुच्चई ।

—दस. अ. ४, सु. ६

त्रसकाय के भेद-प्रभेद—

३४२. और ये जो अनेक त्रस प्राणी हैं, जैसे—

अण्डज, पोतज, जरायुज, रसज, संस्वेदज, सम्मूर्च्छनज, उद्भिज, औपपातिक ये छः जीव-निकाय में आते हैं ।

जिन किन्हीं प्राणियों में सामने जाना, पीछे हटना, संकुचित होना, फैलना, शब्द करना, इधर-उधर जाना, भयभीत होना, दौड़ना—ये क्रियाएँ हैं और जो आगति एवं गति के विज्ञाता हैं वे त्रस हैं ।

जो कीट, पतंग, कुंथु, पिपीलिका सब दो इन्द्रिय वाले जीव, सब तीन इन्द्रिय वाले जीव, सब चार इन्द्रिय वाले जीव, सब पाँच इन्द्रिय वाले जीव सब तिर्यक्-योनिक, सब नैरयिक, सब मनुष्य, सब देव और सब प्राणी सुख के इच्छुक हैं—

यह छट्ठा जीव-निकाय त्रसकाय कहलाता है ।

तसकाय अणारम्भ पइण्णा—

३४३. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे,

दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुत्ते वा जागरमाणे वा—

से कीडं वा पयंगं वा कुंथुं वा पिवीलियं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुंसि वा ऊरुंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा

त्रसकाय के अनारम्भ की प्रतिज्ञा—

३४३. संयत-विरत-प्रतिहत-प्रत्याख्यात-पापकर्मा भिक्षु अथवा भिक्षुणी—

दिन में या रात में, एकान्त में या परिषद में, सोते या जागते—

कीट, पतंग, कुंथु या पिपीलिका को हाथ, पैर, बाहु, उरु, उदर, सिर, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोंछनक, रजोहरण, गोच्छग,

(शेष टिप्पण पिछले पृष्ठ का)

प्राण—दस प्रकार के प्राणयुक्त होने से ।

भूत—तीनों काल में रहने के कारण ।

जीव—आयुष्य कर्म के कारण ।

सत्त्व—विविध पर्यायों का परिवर्तन होते हुए भी आत्मद्रव्य की सत्ता में कोई अन्तर नहीं आने के कारण ।

(ख) शीलांकाचार्य ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है—

प्राण—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव ।

भूत—वनस्पतिकायिक जीव ।

जीव—पाँच इन्द्रियवाले जीव, देव, मनुष्य, नारक और तिर्यंच ।

सत्त्व—पृथ्वी, अप्, अग्नि और वायुकाय के जीव ।

थंडिलंसि वा पडिग्गहंसि वा कंबलंसि वा पायपुंछणंसि वा रयहरणंसि वा गोच्छगंसि वा उडुगंसि वा दंडगंसि वा पीढगंसि वा फलगंसि वा सेज्जंसि वा संथारगंसि वा अन्नयरंसि वा तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय एगंतमवणेज्जा नो णं संघायमावज्जेज्जा। —दस. अ. ४, सु. २३

उन्दक— (स्थंडिल), दण्डक, पीठ पर, या फलक, या शैया संस्तारक पर तथा उसी प्रकार के किसी अन्य उपकरण पर चढ़ जाये तो सावधानीपूर्वक धीमे-धीमे प्रतिलेखन कर, प्रमार्जन कर, उन्हें वहाँ से हटाकर एकान्त में रख दे किन्तु उनका संघात न करे—आपस में एक दूसरे प्राणी को पीड़ा पहुँचे वैसे न रखे।

तसे पाणे न हिंसेज्जा वाया अदुव कम्मुणा।
उवरओ सव्वभूएसु पासेज्ज विविहं जगं॥
—दस. अ. ८, गा. १२

(मुनि) वचन अथवा कर्म (कार्य) से त्रस प्राणियों की हिंसा न करे। समस्त जीवों की हिंसा से उपरत (साधु-साध्वी) विविध स्वरूप वाले जगत् (प्राणी-जगत) को (विवेकपूर्वक) देखे।

तसकाइयाणं हिंसानिसेहो—

त्रसकायिकों की हिंसा का निषेध—

३४४. लज्जमाणा पुढो पास। "अणगारा मो" त्ति एगे पवयमाणा, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं तसकायसमारंभेणं तसकायसत्थं समारम्भमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति।

३४४. तू देख !, ज्ञानी हिंसा से लज्जित-विरत रहते हैं। "हम गृह त्यागी हैं" यह कहते हुए भी कुछ लोग नाना प्रकार के शस्त्रों से त्रसकायिक जीवों का समारम्भ करते हैं। त्रसकाय की हिंसा करते हुए वे अन्य अनेक प्रकार के जीवों की भी हिंसा करते हैं।

तत्थ खलु भगवता परिण्णा पवेदिता—इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए, जाती-मरण-मोयणाए, दुक्खपडिघातहेतुं से सयमेव तसकायसत्थं समारंभति, अण्णेहिं वा तसकायसत्थं समारंभावेति, अण्णे वा तसकायसत्थं समारंभमाणे समणुजाणति।

इस विषय में भगवान् ने परिज्ञा—विवेक का उपदेश किया है—इस जीवन के लिये, प्रशंसा, सम्मान, पूजा के लिए, जन्म, मरण और मुक्ति के लिए, और दुःख का प्रतिकार करने के लिए वह (तथाकथित साधु) स्वयं त्रसकायिक जीवों की हिंसा करता है, दूसरों से हिंसा करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं से अहिताए, तं से अबोधीए।

यह (हिंसा करना, कराना, अनुमोदन करना) उसके अहित के लिए होता है। यह उसकी अबोधि के लिए होता है।

से त्तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाए।

वह संयमी उस हिंसा को हिंसा के कुपरिणामों को सम्यक् प्रकार से समझते हुए संयम में तत्पर हो जावे।

सोच्चा भगवतो अणगाराणं वा अंतिए इहमेगेसिं णातं भवति—एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णिरए।

भगवान से या गृहत्यागी श्रमणों के समीप सुनकर कुछ मनुष्य यह जान लेते हैं कि हिंसा ग्रन्थि है, यह मोह, यह मृत्यु है, यह नरक है।

इच्चत्थं गढिए लोए जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं तसकायसमारंभेणं तसकायसत्थं समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसति।

फिर भी मनुष्य इस हिंसा में आसक्त होता है। वह नाना प्रकार के शस्त्रों से त्रसकायिक जीवों के समारम्भ में संलग्न होकर त्रसकायिक जीवों की हिंसा करता है। वह न केवल त्रसकायिक जीवों की हिंसा करता है अपितु अन्य नाना प्रकार के जीवों की भी हिंसा करता है।

से बेमि—

मैं कहता हूँ—

अप्पेगे अच्चाए वधेंति, अप्पेगे अजिणाए वधेंति, अप्पेगे मंसाए वधेंति, अप्पेगे सोणिताए वधेंति, अप्पेगे हिययाए वधेंति, एवं पित्ताए वसाए पिच्छाए पुच्छाए वालाए सिंगाए विसाणाए दंताए दाढाए णहाए ण्हारुणीए अट्ठिए,

कुछ मनुष्य अर्चा (देवता की बलि या शरीर के शृंगार) के लिए जीवहिंसा करते हैं। कुछ मनुष्य चर्म के लिए, मांस, रक्त, हृदय (कलेजा), पित्त, चर्बी, पंख, पूंछ, केश, सींग, विषाण (सूअर का दाँत) दाँत, दाढ़, नख, स्नायु, अस्थि (हड्डी)

अट्ठिमिंजाए अट्ठाए अणट्ठाए ।

और अस्थिमज्जा के लिए प्राणियों की हिंसा करते हैं। कुछ किसी प्रयोजनवश, कुछ निष्प्रयोजन— व्यर्थ ही जीवों का वध करते हैं।

अप्पेगे हिंसिंसु मे त्ति वा,

कुछ व्यक्ति इन्होंने मेरे (स्वजनादि की) हिंसा की, इस कारण (प्रतिशोध की भावना से) हिंसा करते हैं।

अप्पेगे हिंसंति वा,

कुछ व्यक्ति (यह मेरे स्वजनादि की) हिंसा करता है, इस कारण (प्रतीकार की भावना से) हिंसा करते हैं।

अप्पेगे हिंसिस्संति वा वा णे वधेंति ।

कुछ व्यक्ति (यह मेरे स्वजनादि की हिंसा करेगा) इस कारण (भावी आतंक/भय की भावना से) हिंसा करते हैं।

एत्थं सत्थं समारम्भमाणस्स इच्चेते आरम्भा अपरिण्णाया भवंति ।

जो त्रसकायिक जीवों की हिंसा करता है, वह इन आरम्भ (आरम्भजनित कुपरिणामों) से अनजान ही रहता है।

एत्थ सत्थं असमारम्भमाणस्स इच्चेते आरम्भा परिण्णाया भवंति ।

जो त्रसकायिक जीवों की हिंसा नहीं करता है, वह इन आरम्भों से सुपरिचित (मुक्त) रहता है।

तं परिण्णाय मेधावी णेव सयं तसकायसत्थं समारंभेज्जा णेवऽण्णेहिं तसकायसत्थं समारंभावेज्जा णेवऽण्णे तसकायसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा ।

यह जानकर बुद्धिमान मनुष्य स्वयं त्रसकाय-शस्त्र का समारम्भ न करे, दूसरों से समारम्भ न करवाये, समारम्भ करने वालों का अनुमोदन भी न करे।

जस्सेते तसकायसत्थसमारम्भा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णातकम्मे त्ति बेमि ।

—आ. सु. १, अ. १, उ. ६, सु. ५०-५५

जिसने त्रसकाय-सम्बन्धी समारम्भों (हिंसा के हेतुओं-उपकरणों-कुपरिणामों) को जान लिया, वही परिज्ञातपापकर्मा (हिंसा-त्यागी) मुनि होता है।

अज्झत्थं सव्वओ सव्वं, दिस्स पाणे पियायए ।
न हणे पाणिणो पाणे, भय-वेराओ उवरए ॥

—उत्त. अ. ६, गा. ६

सब दिशाओं से होने वाला सब प्रकार का अध्यात्म (सुख) जैसे मुझे इष्ट है, वैसे ही दूसरों को इष्ट है और सब प्राणियों को अपना जीवन प्रिय है यह देखकर भय और वैर से उपरत पुरुष प्राणियों के प्राणों का घात न करे।

छण्हं जीवणिकायाणं हिंसा कम्मबंधहेउ त्ति— तिकालिय अरहंताणं समा परूवणा—

छः जीवनिकायों की हिंसा कर्मबन्ध का हेतु है— त्रैकालिक अर्हन्तों ने समान प्ररूपणा की है।

३४५. तत्थ खलु भगवता छज्जीवणिकाया हेऊ पण्णत्ता, तं जहा— पुढविकाइया-जाव-तसकाइया ।

३४५ सर्वज्ञ भगवान् तीर्थंकर देव ने षट्जीवनिकायों (सांसारिक प्राणियों) को कर्मबन्ध के हेतु बताये हैं। जैसे कि—पृथ्वीकाय —यावत्— त्रसकाय तक षट्जीवनिकाय है।

से जहानामए मम अस्सायं दंडेण वा अट्ठीण वा मुट्ठीण वा लेलूण वा कवालेण वा आउडिज्जमाणस्स वा हम्ममाणस्स वा तज्जिज्जमाणस्स वा ताडिज्जमाणस्स वा परिताविज्जमाणस्स वा किलामिज्जमाणस्स वा उद्दविज्जमाणस्स वा -जाव-लोमुक्खणणमातमवि हिंसाकरं दुक्खं भयं पडिसंवेदेमि,

जैसे कोई व्यक्ति मुझे डण्डे से, हड्डी से, मुक्के से, ढेले से, या पत्थर से अथवा घड़े के फूटे हुए ठीकरे आदि से मारता है, अथवा चाबुक आदि से पीटता है, अथवा अंगुली दिखाकर धमकाता है, या डाँटता है, अथवा ताड़न करता है, या सताता-संताप देता है, अथवा क्लेश करता है, अथवा उद्विग्न करता है, या उपद्रव करता है, या डराता है, तो मुझे दुःख (असाता) होता है, —यावत्—कि मेरा एक रोम भी उखाड़ता है तो मुझे मारने जैसा दुःख और भय का अनुभव होता है।

इच्चेवं जाण सव्वे पाणा-जाव-सत्ता दंडेण वा-जाव-कवालेण वा आउडिज्जमाणा वा हम्ममाणा वा तज्जिज्जमाणा वा

इसी तरह सभी जीव, सभी भूत, समस्त प्राणी—यावत्— सर्व सत्त्व, डण्डे—यावत्—ठीकरे से मारे जाने या पीटे जाने,

ताडिज्जमाणा वा परियाविज्जमाणा वा किलामिज्जमाणा वा उद्दविज्जमाणा वा-जाव-लोमुक्खणणमातमवि हिंसाकरं दुक्खं भयं पडिसंवेदेंति ।

एवं णच्चा सव्वे पाणा–जाव–सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, ण परिघेतव्वा, ण परितावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा ।

—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६७६

अंगुली दिखाकर धमकाये जाने या डाँटे जाने अथवा ताड़न किये जाने, सताये जाने, हैरान किये जाने या उद्विग्न (भयभीत) किये जाने – यावत्—एक रोम मात्र के उखाड़े जाने से वे मृत्यु का-सा कष्ट एवं भय महसूस करते हैं ।

ऐसा जानकर समस्त प्राण— यावत्— सत्व की हिंसा नहीं करनी चाहिए, उन्हें बलात् अपनी आज्ञा का पालन नहीं कराना चाहिए, न उन्हें बलात् पकड़कर या दास-दासी आदि के रूप में खरीद कर रखना चाहिए, न ही किसी प्रकार का संताप देना चाहिए और न उन्हें उद्विग्न (भयभीत) करना चाहिए ।

आयरियाणायरियवयणाणं सरूवं—

३४६. आवंती के आवंती लोयंसी समणा य माहणा य पुढो विवादं वदंति ।

"से दिट्ठं च णे, सुयं च णे, मयं च णे, विण्णायं च णे, उड्ढं अहं तिरियं दिसासु सव्वतो सुपडिलेहियं च णे —सव्वे पाणा सव्वे जीवा सव्वे भूता सव्वे सत्ता हंतव्वा अज्जावेतव्वा परिघेतव्वा, परितावेतव्वा, उद्दवेतव्वा । एत्थ वि जाणह णत्थेत्थ दोसो ।"

अणारियवयणमेयं ।

तत्थ जे ते आरिया ते एवं वयासी –

"से दुद्दिट्ठं च भे, दुस्सुयं च भे, दुम्मयं च भे, दुव्विण्णायं च भे, उड्ढं अहं तिरियं दिसासु सव्वतो दुप्पडिलेहितं च भे, जं णं तुब्भे एवं आचक्खह, एवं भासह, एवं पण्णवेह, एवं परूवेह—सव्वे पाणा सव्वे भूता सव्वे जीवा सव्वे सत्ता हंतव्वा, अज्जावेतव्वा, परिघेतव्वा, परितावेयव्वा, उद्दवेतव्वा । एत्थ वि जाणह णत्थेत्थ दोसो ।"

अणारियवयणमेयं ।

वयं पुण एवमाचिक्खामो, एवं भासामो, एवं पण्णवेमो, एवं परूवेमो—

"सव्वे पाणा सव्वे भूता सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेतव्वा, ण परिघेतव्वा, ण परियावेयव्वा, ण उद्दवेतव्वा । एत्थ वि जाणह णत्थेत्थ दोसो ।"

आर्य-अनार्य वचनों का स्वरूप—

३४६. इन मत-मतान्तरों वाले लोक में जितने भी, जो भी श्रमण या ब्राह्मण हैं, वे परस्पर विरोधी भिन्न-भिन्न मतवाद (विवाद) का प्रतिपादन करते हैं । जैसे कि कुछ मतवादी कहते हैं—

"हमने यह देख लिया है, सुन लिया है, मनन कर लिया है और विशेष रूप से जान भी लिया है, (इतना ही नहीं) ऊँची, नीची और तिरछी सभी दिशाओं में सब तरह से भली-भाँति इसका निरीक्षण कर लिया है कि सभी प्राणी, सभी जीव, सभी भूत, सभी सत्व हनन करने योग्य हैं, उन पर शासन किया जा सकता है, उन्हें परिताप पहुँचाया जा सकता है, उन्हें गुलाम बनाकर रखा जा सकता है, उन्हें प्राण-हीन बनाया जा सकता है । इसके सम्बन्ध में यही समझ लो कि (इस प्रकार से) हिंसा में कोई दोष नहीं है ।"

यह अनार्य (पाप-परायण) लोगों का कथन है ।

इस जगत् में जो भी आर्य-पाप कर्मों से दूर रहने वाले हैं, उन्होंने ऐसा कहा है—

"आपने दोषयुक्त ही समझा है, ऊँची-नीची-तिरछी सभी दिशाओं में सर्वथा दोषपूर्ण होकर निरीक्षण किया है, जो आप ऐसा कहते हैं, ऐसा भाषण करते हैं, ऐसा प्रज्ञापन करते हैं, ऐसा प्ररूपण (मत-प्रस्थापन) करते हैं कि सभी प्राण, भूत, जीव और सत्व हनन करने योग्य हैं, उन पर शासन किया जा सकता है, उन्हें बलात् पकड़कर दास बनाया जा सकता है, उन्हें परिताप दिया जा सकता है, उनको प्राणहीन बनाया जा सकता है, इस विषय में यह निश्चित समझ लो कि हिंसा में कोई दोष नहीं है ।"

यह सरासर अनार्यवचन है ।

हम इस प्रकार कहते हैं, ऐसा ही भाषण करते हैं, ऐसा ही प्रज्ञापन करते हैं, ऐसा ही प्ररूपण करते हैं कि—

"सभी प्राणी, भूत, जीव और सत्वों की हिंसा नहीं करनी चाहिए, उनको जबरन शासित नहीं करना चाहिए, और न उन्हें डराना-धमकाना, प्राण-रहित करना चाहिए । इस सम्बन्ध में यह निश्चित समझ लो कि अहिंसा का पालन सर्वथा दोषरहित है ।"

आयरियवयणमेयं ।

यह आर्यवचन है ।

पुव्वं णिकाय समयं पत्तेयं पुच्छिस्सामो—

पहले उनमें से प्रत्येक दार्शनिक को, जो जो उसका सिद्धान्त है, उसमें व्यवस्थापित कर हम पूछेंगे—

हं भो पावादुया ! किं भे सायं दुक्खं उताहु असायं ? समिता पडिवण्णे यावि एवं बूया —

"हे दार्शनिको ! प्रखरवादियो ! आपको दुःख प्रिय है या अप्रिय ? यदि आप कहें कि हमें दुःख प्रिय है, तब तो यह उत्तर प्रत्यक्षविरुद्ध होगा, यदि आप कहें कि हमें दुःख प्रिय नहीं है, तो आपके द्वारा इस सम्यक् सिद्धान्त के स्वीकार किये जाने पर हम आपसे यह कहना चाहेंगे कि,

"सव्वेसिं पाणाणं सव्वेसिं भूताणं सव्वेसिं जीवाणं सव्वेसिं सत्ताणं असायं अपरिनिव्वाणं महब्भयं दुक्खं ति," त्ति बेमि ।

—आ. सु. १, अ. ४, उ. २, सु. १३६-१३९

"जैसे आपको दुःख प्रिय नहीं है, वैसे ही सभी प्राणी, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःख असाताकारक है, अप्रिय है, अशान्ति-जनक है और महा-भयंकर है ।" ऐसा मैं कहता हूँ ।

पाणाइवाएण बालजीवाणं पुणो पुणो जम्म-मरणं—

प्राणातिपात से बाल जीवों का पुनः-पुनः जन्म-मरण—

३४७. पुढवी य आऊ अगणी य वाऊ,
तण-रुक्ख-बीया य तसा य पाणा ।
जे अंडया जे य जराउ पाणा,
संसेयया जे रसयाभिधाणा ॥

३४७ पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु, तृण, वृक्ष, बीज और त्रस प्राणी तथा जो अण्डज हैं, जो जरायुज प्राणी हैं, जो स्वेदज (पसीने से पैदा होने वाले) और रसज (दूध, दही आदि रसों की विकृति से पैदा होने वाले) प्राणी हैं । इन (पूर्वोक्त) सबको सर्वज्ञ वीतरागों ने जीवनिकाय (जीवों के काय शरीर) बताये हैं । इन (पूर्वोक्त पृथ्वीकायादि प्राणियों) में सुख की इच्छा रहती है, इसे समझ लो और इस पर कुशाग्र बुद्धि से विचार करो ।

एताइं कायाइं पवेदियाइं,
एतेसु जाण पडिलेह सायं ।
एतेहिं काएहि य आयदंडे,
एतेसु या विप्परियासुविंति ॥

जो इन जीवनिकायों का उपमर्दन-पीड़न करके (मोक्षाकांक्षा रखते हैं, वे) अपनी आत्मा को दण्डित करते हैं, वे इन्हीं (पृथ्वी-कायादि जीवों) में विविध रूप में शीघ्र या बार-बार जाते (या उत्पन्न होते) हैं ।

जातीवहं अणुपरियट्टमाणे,
तस-थावरेहिं विणिघायमेति ।
से जाति-जातिं बहुकूरकम्मे,
जं कुव्वती मिज्जती तेण बाले ॥

प्राणि-पीड़क वह जीव एकेन्द्रिय आदि जातियों में बार-बार परिभ्रमण (जन्म-जरा, मरण आदि का अनुभव करता हुआ) करता हुआ त्रस और स्थावर जीवों में उत्पन्न होकर कायदण्ड विपाकज कर्म के कारण विघात को प्राप्त होता है । वह अति-क्रूरकर्मा अज्ञानी जीव बार-बार जन्म लेकर जो कर्म करता है, उसी में मरण-मारण हो जाता है ।

अस्सिं च लोगे अदुवा परत्था,
सतग्गसो वा तह अण्णहा वा ।
संसारमावन्न परं परं ते,
बंधंति वेयंति य दुण्णियाइं ॥

—सूय. सु. १, अ. ७, गा. १-४

इस लोक में अथवा परलोक में, एक जन्म में अथवा सैकड़ों जन्मों में वे कर्म कर्ता को अपना फल देते हैं । संसार में परिभ्रमण करते हुए वे कुशील जीव उत्कृष्ट से उत्कृष्ट दुःख भोगते हैं और आर्तध्यान करके फिर कर्म बाँधते हैं, और अपने दुर्नीतियुक्त कर्मों का फल भोगते रहते हैं ।

आवंती केआवंती लोयंसि विप्परामुसंति अट्ठाए अणट्ठाए वा एतेसु चेव विप्परामुसंति ।

इस लोक में जितने भी कोई मनुष्य सप्रयोजन या निष्प्रयोजन जीवों की हिंसा करते हैं, वे उन्हीं जीवों (की योनियों में) विविध रूप में उत्पन्न होते हैं ।

गुरु से कामा । ततो से मारस्स अंतो ।

उनके लिए शब्दादि काम का त्याग करना बहुत कठिन होता है ।

जत्तो से मारस्स अंतो ततो से दूरे।

इसलिए वह मृत्यु की पकड़ में रहता है और इसीलिए अमृत (परमपद-मोक्ष) से दूर रहता है।

णेव से अंतो णेव से दूरे।

(कामनाओं का निवारण करने वाला) पुरुष न तो मृत्यु की सीमा (पकड़) में रहता है और न मोक्ष से दूर रहता है।

से पासति फुसितमिव कुसग्गे पणुण्णं णिवतितं वातेरितं।

वह पुरुष कुश की नोंक को छुए हुए अस्थिर और वायु के झोंके से प्रेरित होकर गिरते हुए बिन्दु की तरह जीवन को (अस्थिर) जानता देखता है।

एवं बालस्स जीवितं मंदस्स अविजाणतो।

बाल (अज्ञानी), मन्द (मन्दबुद्धि) का जीवन भी इसी तरह अस्थिर है, परन्तु वह (मोहवश) (जीवन के अनित्यत्व) को नहीं जान पाता।

कूराणी कम्माणि बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेति,

वह अज्ञानी हिंसादि क्रूर कर्म उत्कृष्ट रूप से करता हुआ (दुःख को उत्पन्न करता है।) तथा उसी दुःख से मूढ़ उद्विग्न होकर वह विपरीत दशा को प्राप्त होता है।

मोहेण गब्भं मरणाइ इति।

उस मोह से वह बार-बार गर्भ में आता है जन्म-मरणादि पाता है।

एत्थ मोहे पुणो पुणो।

—आ. सु. १, अ. ५, उ. १, सु. १४७-१४८

इसमें भी उसे पुनः-पुनः मोह उत्पन्न होता है।

अजयणा निसेहो—

अयतना का निषेध—

३४८. अजयं चरमाणो उ, पाण-भूयाइं हिंसई।
बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं॥

३४८. अयतनापूर्वक चलने वाला त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा करता है। उससे पाप-कर्म का बन्ध होता है। वह उसके लिए कटु फल वाला होता है।

अजयं चिट्ठमाणो उ, पाण-भूयाइं हिंसई।
बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं॥

अयतनापूर्वक खड़ा होने वाला त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा करता है। उससे पाप-कर्म का बन्ध होता है। वह उसके लिए कटु फल वाला होता है।

अजयं आसमाणो उ, पाण-भूयाइं हिंसई।
बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं॥

अयतनापूर्वक बैठने वाला त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा करता है। उससे पाप-कर्म का बन्ध होता है। वह उसके लिए कटु फल वाला होता है।

अजयं सयमाणो उ, पाण-भूयाइं हिंसई।
बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं॥

अयतनापूर्वक सोने वाला त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा करता है। उससे पापकर्म का बन्ध होता है। वह उसके लिए कटु फल वाला होता है।

अजयं भुंजमाणो उ, पाण-भूयाइं हिंसई।
बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं॥

अयतनापूर्वक भोजन करने वाला त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा करता है। उससे पाप-कर्म का बन्ध होता है। वह उसके लिए कटु फल वाला होता है।

अजयं भासमाणो उ, पाण-भूयाइं हिंसई।
बंधई पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं॥

अयतनापूर्वक बोलने वाला त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा करता है। उससे पाप-कर्म का बन्ध होता है। वह उसके लिए कटु फल वाला होता है।

प०—कहं चरे कहं चिट्ठे, कहमासे कहं सए।
कहं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधई॥

प्र०—कैसे चले? कैसे खड़े हो? कैसे बैठे? कैसे सोए? कैसे खाए? कैसे बोले? जिससे पाप-कर्म का बन्ध न हो।

उ०—जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधई॥

सव्वभूयप्पभूयस्स, सम्मं भूयाइ पासओ।
पिहियासवस्स दंतस्स, पावं कम्मं न बंधई॥

—दस. अ. ४, गा. २४-३२

उ०—यतनापूर्वक चलने, यतनापूर्वक खड़े होने, यतनापूर्वक बैठने, यतनापूर्वक सोने, यतनापूर्वक खाने, और यतनापूर्वक बोलने वाला पाप-कर्म का बन्ध नहीं करता है।

जो सब जीवों को आत्मवत् मानता है, जो सब जीवों को सम्यक्-दृष्टि से देखता है, जो आस्रव का निरोध कर चुका है और जो दान्त है उसके पाप-कर्म का बन्धन नहीं होता।

छज्जीवणिकायवह-परिणामं—

३४९. गब्भाइ मिज्जंति बुया-ऽबुयाणा,
णरा परे पंचसिहा कुमारा।
जुवाणगा मज्झिम थेरगा य,
चयंति ते आउखए पलीणा॥

छः जीवनिकाय की हिंसा का परिणाम—

३४९. (देवी-देवों की अर्चा या धर्म के नाम पर अथवा सुख-वृद्धि आदि किसी कारण से जीवों का छेदन-भेदन करने वाले) मनुष्य गर्भ में ही मर जाते हैं तथा कई तो स्पष्ट बोलने तक की वय में और कई अस्पष्ट बोलने तक की उम्र में ही मर जाते हैं। दूसरे पंचशिखा वाले मनुष्य कुमार अवस्था में ही मृत्यु की गोद में चले जाते हैं, कई युवक होकर तो कई मध्यम (प्रौढ़) उम्र के होकर अथवा बूढ़े होकर चल बसते हैं। इस प्रकार बीज आदि का नाश करने वाले प्राणी (इन अवस्थाओं में से किसी भी अवस्था में) आयुष्य क्षय होते ही शरीर छोड़ देते हैं।

संबुज्झहा जंतवो माणुसत्तं,
दट्ठुं भयं बालिसेणं अलंभो।
एगंतदुक्खे जरिते व लोए,
सकम्मुणा विप्परियासुवेति॥

—सूय. सु. १, अ. ७, गा. १०-११

हे जीवो! मनुष्यत्व या मनुष्य-जन्म की दुर्लभता को समझो। (नरक एवं तिर्यंच योनि के भय को देखकर एवं विवेकहीन पुरुष को उत्तम विवेक अलाभ (प्राप्ति का अलाभ) जानकर बोध प्राप्त करो। यह लोक ज्वरपीड़ित व्यक्ति की तरह एकान्त दुःखरूप है। अपने (हिंसादि पाप) कर्म से सुख चाहने वाला जीव सुख के विपरीत (दुःख) ही पाता है।

**

षड्जीवनिकाय-हिंसाकरण-प्रायश्चित्त—३

सचित्तरुक्खमूले आलोयणाइ करण पायच्छित्त सुत्ताइं—

३५०. जे भिक्खू सचित्त-रुक्ख-मूलंसि ठिच्चा आलोएज्ज वा पलोएज्ज वा आलोयंतं वा पलोयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सचित्त-रुक्ख-मूलंसि ठिच्चा ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा तुयट्टणं वा चेएइ चेयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सचित्त-रुक्ख-मूलंसि ठिच्चा असणं वा-जाव-साइमं वा आहारेइ आहारेंतं वा साइज्जइ।

सचित्त वृक्ष के मूल में आलोकन आदि के प्रायश्चित्त सूत्र—

३५०. जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल पर स्थिर होकर देखे, बार-बार देखे, दिखावे, बार-बार दिखावे, देखने वाले या बार-बार देखने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल पर स्थित होकर कायोत्सर्ग करे, शय्या बनावे, बैठे या लेटे इत्यादि कार्य करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल पर स्थित होकर असण—यावत्—खाद्य का आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू सचित्त-रुक्ख-मूलंसि ठिच्चा उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेइ परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल पर स्थित होकर उच्चार-पासवण परठता है, परठवाता है परठने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू सचित्त-रुक्ख-मूलंसि ठिच्चा सज्झायं करेइ करेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल पर स्थित होकर स्वाध्याय करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू सचित्त-रुक्ख-मूलंसि ठिच्चा सज्झायं उद्दिसइ उद्दिसंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल पर स्थित होकर स्वाध्याय का उद्देसण (पारायण) करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू सचित्त-रुक्ख-मूलंसि ठिच्चा सज्झायं समुद्दिसइ समुद्दिसंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल पर स्थित होकर स्वाध्याय की आज्ञा देता है, दिलवाता है, देने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू सचित्त-रुक्ख-मूलंसि ठिच्चा सज्झायं अणुजाणइ अणुजाणंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल पर स्थित होकर स्वाध्याय की अनुज्ञा देता है, दिलवाता है, देने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू सचित्त-रुक्ख-मूलंसि ठिच्चा सज्झायं वाएइ वायंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल पर स्थित होकर सूत्रार्थ की वाचना देता है, दिलवाता है, देने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू सचित्त-रुक्ख-मूलंसि ठिच्चा सज्झायं पडिच्छइ पडिच्छंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल पर स्थित होकर सूत्रार्थ के सम्बन्ध में प्रश्न करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू सचित्त-रुक्ख मूलंसि ठिच्चा सज्झायं परियट्टेइ परियट्टेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु सचित्त वृक्ष के मूल पर स्थित होकर सूत्रार्थ की पुनरावृत्ति करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ५, सु. १-११

उसे मासिक उद्घातिक परिहार स्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सचित्तरुक्खे दुरूहणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

३५१. जे भिक्खू सचित्तरुक्खं दुरूहइ, दुरूहंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

— नि. उ. १२, सु. ९

सचित्त वृक्ष पर चढ़ने का प्रायश्चित्त सूत्र—

३५१. जो भिक्षु सचित्त वृक्ष पर चढ़ता है, चढ़ने के लिए कहता है या चढ़ने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहार स्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

तसपाणाणं बंधण-मोयण करण पायच्छित्त सुत्तं—

३५२. जे भिक्खू कोलुण पडियाए अण्णयरिं तसपाणजाइं १. तण-पासएण वा, २. मुंज-पासएण वा, ३. कट्ठ-पासएण वा, ४. चम्म-पासएण वा, ५. वेत्त-पासएण वा, ६. रज्जु-पासएण वा, ७. सुत्त-पासएण वा, बंधइ बंधंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कोलुण-पडियाए अण्णयरिं तसपाणजाइं तण-पास-एण वा-जाव-सुत्त-पासएण वा बद्धेल्लयं मुयइ मुयंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।[1]

—नि. उ. १२, सु. १-२

त्रस प्राणियों को बाँधने और बन्धनमुक्त करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

३५२. जो भिक्षु करुणा भाव से किसी एक त्रस प्राणी को १. तृण के पाश से २. मुंज के पाश से, ३. काष्ठ के पाश से, ४. चर्म के पाश से, ५. वेत्र पाश से, ६. रज्जू पाश से, ७. सूत्र पाश से, बाँधता है, बंधवाता है, बाँधने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु करुणा भाव से किसी एक त्रस प्राणी को तृण पाश से—यावत्—सूत्र पाश से बँधे हुए को मुक्त करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

---

१ कुछ प्रतियों में चातुर्मासिक अनुद्घातिक प्रायश्चित्त का विधान है।

पुढवीकाइयाणं आरंभ करण पायच्छित्त सुत्तं—

३५३. जे भिक्खू पुढवीकायस्स वा-जाव-वणस्सइकायस्स वा कलमायमवि समारंभइ समारंभंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १२, सु. ८

पृथ्वीकाय आदि के आरम्भ करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

३५३. जो भिक्षु पृथ्वीकाय— **यावत्**— वनस्पतिकाय का अल्प से अल्प भी आरम्भ करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सचित्त पुढवीकाइए ठाणाइ करणपायच्छित्त सुत्ताइं—

३५४. जे भिक्खू अणंतरहियाए पुढवीए १. ठाणं वा, २. सेज्जं वा, ३. णिसेज्जं वा, ४. णिसीहियं वा चेएइ चेयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू ससिणिद्धाए पुढवीए ठाणं वा-जाव-णिसीहियं वा चेएइ चेयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू ससरक्खाए पुढवीए ठाणं वा-जाव-णिसीहियं वा चेएइ चेयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू मट्टियाकडाए पुढवीए ठाणं वा-जाव-णिसीहियं वा चेएइ चेयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू चित्तमंताए पुढवीए ठाणं वा-जाव-णिसीहियं वा चेएइ चेयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू चित्तमंताए सिलाए ठाणं वा-जाव-णिसीहियं वा चेएइ चेयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू चित्तमंताए लेलूए ठाणं वा-जाव-णिसीहियं वा चेएइ चेयंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १३, सु. १-७

सचित्त पृथ्वीकायिकादि पर कायोत्सर्ग करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

३५४. जो भिक्षु सदा सचित्त रहने वाली पृथ्वी पर कायोत्सर्ग करता है, सोता है, बैठता है, स्वाध्याय करता है, करवाता है करने वाले का अनुमोदन करता है

जो भिक्षु स्निग्ध पृथ्वी पर कायोत्सर्ग करता है— **यावत्**— स्वाध्याय करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त पानी से भीगी हुई पृथ्वी पर कायोत्सर्ग करता है— **यावत्**— स्वाध्याय करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त रज वाली पृथ्वी पर कायोत्सर्ग करता है — **यावत्**— स्वाध्याय करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त पृथ्वी पर कायोत्सर्ग करता है— **यावत्**— स्वाध्याय करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त शिला पर कायोत्सर्ग करता है— **यावत्**— स्वाध्याय करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त ढेले पर कायोत्सर्ग करता है— **यावत्**— स्वाध्याय करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सअंडाइए दारुए ठाणाइ करण पायच्छित्त सुत्तं—

३५५. जे भिक्खू कोलावासंसि दारुए जीवपइट्ठिए सअंडे-जाव-संताणगंसि ठाणं वा-जाव-णिसीहियं वा चेएइ चेयंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १३, सु. ८

अंडों वाले काष्ट पर कायोत्सर्ग करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

३५५. जो भिक्षु कीड़े पड़े हुए काष्ट पर, सजीव काष्ट पर, अंडे प्राणी— **यावत्**— मकड़ी चल रही हो ऐसे काष्ट पर कायोत्सर्ग करता है,— **यावत्**— स्वाध्याय करता है या कायोत्सर्गादि तीनों कार्य एक ही स्थान पर करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

दुबद्धथुणाइसु ठाणाइ करण पायच्छित्त सुत्ताइं —

३५६. जे भिक्खू १. थूणंसि वा, २. गिहेलुयंसि वा, ३. उसुकालंसि वा, ४. कामजलंसि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतरिक्खजायंसि दुबद्धे दुण्णिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेएइ चेयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू १. कुलियंसि वा, २. भित्तिंसि वा, ३. सिलंसि वा, ४. लेलुंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतरिक्खजायंसि दुबद्धे दुण्णिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले ठाणं वा–जाव–णिसीहियं वा चेएइ चेयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू १. खंधंसि वा, २. फलिहंसि वा, ३. मंचंसि वा, ४. मंडवंसि वा, ५. मालंसि वा, ६. पासायंसि वा, ७. हम्मतलंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतरिक्खजायंसि दुबद्धे दुण्णिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले ठाणं वा–जाव–णिसीहियं वा चेएइ चेयंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १३, सु. ९-११

अस्थिर थूणी आदि पर कायोत्सर्ग आदि करने का प्रायश्चित्त सूत्र —

३५६. जो भिक्षु अस्थिर स्तम्भ, देहली, ऊखल, स्नान करने की चौकी आदि अन्य उस प्रकार के किसी ऊँचे स्थान पर अच्छी तरह बँधा हुआ नहीं, अच्छी तरह रखा हुआ नहीं, हिलता हुआ अस्थिर होने पर कायोत्सर्ग करता है, सोता है, स्वाध्याय करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु अस्थिर सोपान, भींत, शिला और शिलाखण्ड आदि अन्य ऐसे ऊँचे स्थानों पर कायोत्सर्ग करता है—यावत्—स्वाध्याय करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु अस्थिर स्कन्ध पर, आगल पर, मंच पर, मण्डप पर, माल पर, प्रासाद पर, तलघर पर या अन्य ऐसे अधर स्थानों पर कायोत्सर्ग करता है—यावत्—स्वाध्याय करता है, या कायोत्सर्गादि तीनों कार्य एक ही स्थान पर करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहार स्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

वत्थाओ पुढवीकाइयाइ णिहरण पायच्छित्त सुत्ताइं —

३५७. जे भिक्खू वत्थाओ पुढवीकायं णीहरइ णीहरावेइ णीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू वत्थाओ आउकायं णीहरइ णीहरावेइ णीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू वत्थाओ तेउकायं णीहरइ णीहरावेइ णीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू वत्थाओ कंदाणि वा–जाव–बीयाणि वा णीहरइ णीहरावेइ णीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू वत्थाओ ओसहिबीयाइं णीहरइ णीहरावेइ णीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू वत्थाओ तसपाणजाइं णीहरइ णीहरावेइ णीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

वस्त्र से पृथ्वीकाय आदि निकालने का प्रायश्चित्त सूत्र —

३५७. जो भिक्षु वस्त्र से (सचित्त) पृथ्वीकाय को निकालता है, निकलवाता है, निकाले हुए (वस्त्र) को लाकर दे उसे लेता है, लेने के लिए कहता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु वस्त्र से (सचित्त) अप्काय को निकालता है, निकलवाता है, निकाले हुए (वस्त्र) को लाकर दे उसे लेता है, लेने के लिए कहता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु वस्त्र से (सचित्त) अग्निकाय को निकालता है, निकलवाता है निकाले हुए (वस्त्र) को लाकर दे उसे लेता है, लेने के लिए कहता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु वस्त्र से (सचित्त) कन्दमूल—यावत्—बीज निकालता है, निकलवाता है, निकाले हुए (वस्त्र) को लाकर दे उसे लेता है, लेने के लिए कहता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु वस्त्र से औषधी (सचित्त) बीज को निकालता है, निकलवाता है, निकाले हुए (वस्त्र) को लाकर दे उसे लेता है, लेने के लिए कहता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु वस्त्र से त्रस प्राणियों को निकालता है, निकलवाता है, निकाले हुए (वस्त्र) को लाकर दे उसे लेता है, लेने के लिए कहता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू वत्थं णिक्कोरेइ णिक्कोरावेइ, णिक्कोरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु वस्त्र को कोरता है, कोरवाता है, कोरे हुए को लाकर दे उसे लेता है, लेने के लिए कहता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. १८, सु. ६४-७०

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित) आता है ।

सदोष–चिकित्सा का निषेध–४

सदोस तेगिच्छा निसेहो—

३५८. से तं जाणह जमहं बेमि—

तेइच्छं पंडिए पवयमाणे से हंता छेत्ता भेत्ता लुंपित्ता विलुंपित्ता उद्दवइत्ता "अकडं करिस्सामि" त्ति मण्णमाणे, जस्स वि य णं करेइ ।

अलं बालस्स संगेणं, जे वा से करेति बाले ।

ण एवं अणगारस्स जायति त्ति बेमि ।

—आ. सु. १, अ. २, उ. ५, सु. ६४

से तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाए तम्हा पावं कम्मं णेव कुज्जा ण कारवे ।

सिया तत्थ एकयरं विप्परामुसति छसु अण्णयरम्मि कप्पति । सुहट्ठी लालप्पमाणे सएण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेति । सएण विप्पमाएण पुढो वयं पकुव्वति जंसिमे पाणा पव्वहिता ।

पडिलेहाए णो णिकरणाए । एस परिण्णा कम्मोवसंती ।

—आ. सु. १, अ. २, उ. ६, सु. ९५-९७

सदोष-चिकित्सा निषेध—

३५८. तुम उसे जानो, जो मैं कहता हूँ—

अपने को चिकित्सा पण्डित बताते हुए कुछ वैद्य, चिकित्सा में प्रवृत्त होते हैं। वह अनेक जीवों का हनन, भेदन, लुम्पन, विलुम्पन और प्राण-वध करता है। "जो पहले किसी ने नहीं किया, ऐसा मैं करूँगा", यह मानता हुआ (वह जीव वध करता है)। वह जिसकी चिकित्सा करता है (वह भी जीव वध में सहभागी होता है।)

(इस प्रकार की हिंसा-प्रधान चिकित्सा करने वाले) अज्ञानी की संगति से क्या लाभ है जो ऐसी चिकित्सा करवाता है, वह भी बाल अज्ञानी है।

अनगार ऐसी चिकित्सा नहीं करवाता—ऐसा मैं कहता हूँ।

वह (साधक) उस पाप-कर्म के विषय को सम्यक् प्रकार से जानकर संयम साधना में समुद्यत हो जाता है। इसलिए वह स्वयं पाप-कर्म न करे, दूसरों से न करवाये (अनुमोदन भी न करे।)

कदाचित् (वह प्रमाद या अज्ञानवश) किसी एक जीवकाय का समारम्भ करता है, तो वह छहों जीव-कायों में से (किसी का भी या सभी का) समारम्भ कर सकता है। वह सुख का अभिलाषी बार-बार सुख की अभिलाषा करता है, (किन्तु) स्व-कृत कर्मों के कारण, (व्यथित होकर) मूढ़ बन जाता है और विषयादि सुख के बदले दुःख को प्राप्त करता है। वह (मूढ़) अपने अति प्रमाद के कारण ही अनेक योनियों में भ्रमण करता है, जहाँ पर कि प्राणी अत्यन्त दुःख भोगते हैं।

यह जानकर पाप-कर्म के कारण प्राणी संसार में दुःखी होता है। उसका (पाप-कर्म का) संकल्प त्याग देवे। यही परिज्ञा-विवेक कहा जाता है। इसी से (पाप त्याग से) कर्मों की शांति (क्षय) होती है।

गिहत्थेण वणपरिकम्मो न कायव्वो—

३५९. से से परो कायंसि वणं आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा, णो तं सातिए, णो तं णियमे।

से से परो कायंसि वणं संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा, णो तं सातिए, णो तं णियमे।

से से परो कायंसि वणं तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा मक्खेज्ज वा भिलंगेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

से से परो कायंसि वणं लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा, णो तं सातिए, णो तं णियमे।

से से परो कायंसि वणं सीतोदगवियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, णो तं सातिए, णो तं णियमे।

से से परो कायंसि वणं अण्णतरेणं सत्थजाएणं अच्छिंदेज्ज वा विच्छिंदेज्ज वा, णो तं सातिए, णो तं णियमे।

से से परो कायंसि वणं अण्णतरेणं सत्थजातेणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा, णो तं सातिए, णो तं णियमे।

—आ. सु. २, अ. १३, सु. ७०८-७१३

गृहस्थ से व्रण-परिकर्म नहीं कराना चाहिए—

३५९. कदाचित् कोई गृहस्थ, साधु के शरीर पर हुए व्रण को एक बार पोंछे या बार-बार अच्छी तरह से पोंछकर साफ करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे और न वचन और काया से प्रेरणा करे।

कदाचित् कोई गृहस्थ साधु के शरीर पर हुए व्रण को दबाए या अच्छी तरह मर्दन करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, वचन एवं काया से प्रेरणा भी न करे।

कदाचित् कोई गृहस्थ साधु के शरीर में हुए व्रण के ऊपर तेल, घी या वसा चुपड़े मसले, लगाए या मर्दन करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, वचन एवं काया से प्रेरणा भी न करे।

कदाचित् कोई गृहस्थ साधु के शरीर पर व्रण को लोध्र कल्क चूर्ण या वर्ण आदि विलेपन द्रव्यों का आलेपन-विलेपन करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, वचन एवं काया से प्रेरणा भी न करे।

कदाचित् कोई गृहस्थ, साधु के शरीर पर हुए व्रण को प्रासुक शीतल जल या उष्ण जल से एक बार या बार-बार धोये तो साधु उसे मन से भी न चाहे, वचन एवं काया से प्रेरणा भी न करे।

कदाचित् कोई गृहस्थ, साधु के शरीर पर हुए व्रण को किसी प्रकार के शस्त्र से थोड़ा-सा छेदन करे या विशेष रूप से छेदन करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, वचन एवं काया से प्रेरणा भी न करे।

कदाचित् कोई गृहस्थ, साधु के शरीर पर हुए व्रण को किसी विशेष शस्त्र से थोड़ा-सा विशेष रूप से छेदन करके उसमें से मवाद या रक्त निकाले या उसे साफ करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, वचन एवं काया से प्रेरणा भी न करे।

गिहत्थेण गंडाईणं परिकम्मो न कायव्वो—

३६०. से से परो कायंसि गंडं वा अरइयं वा पुलयं वा भगंदलं वा आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा, णो तं सातिए, णो तं णियमे।

से से परो कायंसि गंडं वा-जाव-भगंदलं वा संबाहेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, णो तं सातिए, णो तं णियमे।

से से परो कायंसि गंडं वा-जाव-भगंदलं वा तेल्लेण वा घएण वा वसाए वा मक्खेज्ज वा भिलिंगेज्ज वा, णो तं सातिए, णो णियमे।

गृहस्थ से गण्डादि का परिकर्म नहीं कराना चाहिए—

३६०. कदाचित् कोई गृहस्थ, साधु के शरीर में हुए गण्ड, अर्श, पुलक अथवा भगंदर को एक बार या बार-बार साफ करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, वचन एवं काया से प्रेरणा भी न करे।

यदि कोई गृहस्थ, साधु के शरीर में हुए गण्ड—यावत्—भगन्दर को दबाये या परिमर्दन करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, वचन एवं काया से प्रेरणा भी न करे।

यदि कोई गृहस्थ, साधु के शरीर में हुए गण्ड—यावत्—भगन्दर पर तेल, घी, वसा चुपड़े, मले या मालिश करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, वचन एवं काया से प्रेरणा भी न करे।

से से परो कायंसि गंडं वा-जाव-भगंदलं वा लोद्धेण वा कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, णो तं सातिए, णो तं णियमे।

यदि कोई गृहस्थ, साधु के शरीर में हुए गण्ड—**यावत्**—भगन्दर पर लोध कल्क चूर्ण या वर्ण का थोड़ा या अधिक विलेपन करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, वचन एवं काया से प्रेरणा भी न करे।

से से परो कायंसि गंडं वा-जाव-भगंदलं वा सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, णो तं सातिए, णो तं णियमे।

—आ. सु. २, अ. १३, सु. ७१५-७१६

यदि कोई गृहस्थ, मुनि के शरीर में हुए गण्ड—**यावत्**—भगन्दर को प्रासुक शीतल या उष्ण जल से थोड़ा या बहुत धोये तो साधु उसे मन से भी न चाहे, वचन एवं काया से प्रेरणा भी न करे।

गिहत्थेण सल्लतिगिच्छा न कायव्वा—

३६१. से से परो कायंसि गंडं वा-जाव-भगंदलं वा अण्णतरेणं सत्थजातेणं अच्छिंदेज्ज वा, विच्छिंदेज्ज वा, अन्नतरेणं सत्थजातेणं अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा पूयं वा सोणियं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णो तं सातिए, णो तं णियमे।

—आ. सु. २, अ. १३, सु. ७२०

गृहस्थ से शल्य चिकित्सा नहीं कराना चाहिए—

३६१. यदि गृहस्थ मुनि के शरीर में हुए गण्ड—**यावत्**—भगन्दर को किसी विशेष शस्त्र से थोड़ा-सा छेदन करे या विशेष रूप से छेदन करे अथवा किसी विशेष शस्त्र से थोड़ा-सा या विशेष रूप से छेदन करके मवाद या रक्त निकाले या उसे साफ करे तो साधु उसे मन से भी न चाहे, वचन एवं काया से प्रेरणा भी न करे।

गिहत्थेण वेयावच्चं न कायव्वं—

३६२. से से परो सुद्धेणं वा वइबलेणं तेइच्छं आउट्टे, से से परो असुद्धेणं वइबलेणं तेइच्छं आउट्टे से से परो गिलाणस्स सचित्ताइं कंदाणि वा मूलाणि वा तयाणि वा हरियाणि वा खणित्तु वा कड्ढेत्तु वा कड्ढावेत्तु वा तेइच्छं आउट्टेज्जा णो तं सातिए, णो तं णियमे।

गृहस्थ से वैयावृत्य नहीं कराना चाहिए—

३६२. यदि कोई गृहस्थ शुद्ध वाग्बल (मन्त्रबल) से साधु की चिकित्सा करनी चाहे अथवा गृहस्थ अशुद्ध मन्त्रबल से साधु की व्याधि उपशान्त करना चाहे अथवा वह गृहस्थ किसी रोगी साधु की चिकित्सा सचित्त कन्द, मूल, छाल या हरी को खोदकर या खींचकर बाहर निकालकर या निकलवाकर चिकित्सा करना चाहे, तो साधु उसे मन से भी न चाहे, वचन एवं काया से प्रेरणा भी न करे।

कडुवेयणा कट्टुवेयणा पाण-भूत-जीव-सत्ता वेदणं वेदेंति।

—आ. सु. २, अ. १३, सु. ७२८

यदि साधु के शरीर में कठोर वेदना हो तो (यह विचार कर उसे समभाव से सहन करे कि) समस्त प्राणी, भूत, जीव और सत्व अपने किये हुए अशुभ कर्मों के अनुसार कटुक वेदना का अनुभव करते हैं।

गिहत्थकय तिगिच्छाए अणुमोयणा णिसेहो—

३६३. से से परो पादाओ पूयं वा सोणियं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

—आ. सु. २, अ. १३, सु. ७००

गृहस्थकृत चिकित्सा की अनुमोदना का निषेध—

३६३. यदि कोई गृहस्थ साधु के पैरों में पैदा हुए रक्त और मवाद को निकाले या उसे निकाल कर शुद्ध करे तो वह उसे न मन से भी चाहे, वचन एवं काया से प्रेरणा भी न करे।

गिहत्थकय खाणुयाइणिहरण अणुमोयणा णिसेहो—

३६४. से से परो पादाओ खाणुयं वा, कंटयं वा, णीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा, णो तं सातिए वा, णो तं णियमे।

—आ. सु. २, अ. १३, सु. ६९९

गृहस्थ द्वारा ठूंठा आदि निकालने की अनुमोदना का निषेध—

३६४. यदि कोई गृहस्थ साधु के पैरों में लगे हुए कांटे आदि को निकाले या उसे शुद्ध करे तो वह उसे मन से भी न चाहे, वचन एवं काया से प्रेरणा भी न करे।

गिहत्थकय लिक्खाइ णिहरणस्स अणुमोयणा णिसेहो—

३६५. से से परो सीसाओ लिक्खं वा जूयं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा णो तं सातिए, णो तं णियमे।

—आ. सु. २, अ. १३, सु. ७२४

गृहस्थ द्वारा लीख आदि निकालने की अनुमोदना का निषेध—

३६५. यदि कोई गृहस्थ साधु के सिर से जूं या लीख निकाले, या सिर साफ करे, तो वह उसे न मन से भी चाहे, वचन एवं काया से प्रेरणा भी न करे।

चिकित्साकरण प्रायश्चित्त—५

(१) परस्पर चिकित्सा करने के प्रायश्चित्त

वण-परिकम्म-पायच्छित्त-सुत्ताइं—

३६६. जे भिक्खू अप्पणो कायंसि वणं,

आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,
आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो कायंसि वणं—
संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,
संबाहंतं वा, पलिमद्देज्ज वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो कायंसि वणं—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा, अब्भंगेज्ज वा, मक्खेज्ज वा,

अब्भंगंतं वा, मक्खंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो कायंसि वणं—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा, उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,

उल्लोलंतं वा, उव्वट्टन्तं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो कायंसि वणं—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोवेज्ज वा,

उच्छोलंतं वा, पधोवंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो कायंसि वणं—
फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,

फूमंतं वा, रयंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ३, सु. २८-३३

व्रण-परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

३६६. जो भिक्षु अपने शरीर के व्रण का, मार्जन करे, प्रमार्जन करे।

मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने शरीर के व्रण का,
मर्दन करे, प्रमर्दन करे, मर्दन करावे, प्रमर्दन करावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने शरीर के व्रण पर,
तेल—**यावत्**—मक्खन, मले बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने शरीर के व्रण पर,
लोध—**यावत्**—वर्ण का, उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने शरीर के व्रण को,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने शरीर के व्रण को,
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।
उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णमण्ण-वण-तिगिच्छाए पायच्छित्तसुत्ताइं—

३६७. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि वणं—
आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,

परस्पर व्रण की चिकित्सा के प्रायश्चित्त सूत्र—

३६७. जो भिक्षु एक-दूसरे के शरीर पर हुए व्रण का,
मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,

आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि वणं—
संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,
संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु एक-दूसरे के शरीर पर हुए व्रण का,
मर्दन करे, प्रमर्दन करें, मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करें।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि वणं—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा, मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,
मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु एक-दूसरे के शरीर पर हुए व्रण पर,
तेल—**यावत्**—मक्खन मले, बार-बार मले, मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि वणं—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु एक-दूसरे के शरीर पर हुए व्रण पर,
लोध्र—**यावत्**—वर्ण का, उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि वणं—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु एक दूसरे के शरीर पर हुए व्रण को—
अचित्त शीत जल से, अचित्त उष्ण जल से,
धोए, बार-बार धोए, धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि वणं—
फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ४, सु. ६१-६४

जो भिक्षु एक दूसरे के शरीर पर हुए व्रण को—
रंगे, बार-बार रंगे, रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।
उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

गंडाइ परिकम्म पायच्छित्त सुत्ताइं—

३६८. जे भिक्खू अप्पणो कायंसि—
गंडं वा, पिडयं वा अरइयं वा, असियं वा, भगंदलं वा,
अण्णयरेण तिक्खेण सत्थजाएणं,
अच्छिंदेज्ज वा विच्छिंदेज्ज वा,
अच्छिंदंतं वा, विच्छिंदंतं वा साइज्जइ।

गण्डादि परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

३६८. जो भिक्षु अपने शरीर के गण्ड—**यावत्**—भगन्दर को—
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन करे, बार-बार छेदन करे,
छेदन करावे, बार-बार छेदन करावे,
छेदन करने वाले का, बार-बार छेदन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अप्पणो कायंसि—गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा,
णीहरेंतं वा विसोहेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु अपने शरीर के गण्ड—**यावत्**—भगन्दर को—
अन्य किसी प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन करके, बार बार छेदन करके,
पीव या रक्त को,
निकाले, शोधन करे, निकलवावे, शोधन करवावे,
निकालने वाले का शोधन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अप्पणो कायंसि—गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,

जो भिक्षु अपने शरीर के गण्ड—**यावत्**—भगन्दर को—
अन्य किसी प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,

अच्छिदित्ता वा, विच्छिदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
णीहरित्ता वा, विसोहित्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोवेज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोवेंतं वा साइज्जइ ।

छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकाल कर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अप्पणो कायंसि—गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिदित्ता वा, विच्छिदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
णीहरित्ता वा, विसोहित्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेत्ता वा, पधोइत्ता वा,
अण्णयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपेज्ज वा, विलिंपेज्ज वा,
आलिंपंतं वा, विलिंपंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अपने शरीर के गण्ड—यावत्—भगन्दर को—
अन्य किसी प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकाल कर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धोकर, बार-बार धोकर,
अन्य किसी एक लेप का,
लेप करे, बार-बार लेप करे,
लेप करवावे, बार-बार लेप करवावे,
लेप करने वाले का, बार-बार लेप करने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अप्पणो कायंसि—गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं, सत्थजाएणं,
अच्छिदित्ता वा, विच्छिदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
णीहरित्ता वा, विसोहित्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
अण्णयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपित्ता वा, विलिंपित्ता वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगेज्ज वा, मक्खेज्ज वा,
अब्भंगेंतं वा, मक्खेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अपने शरीर के गण्ड—यावत्—भगंदर को—
अन्य किसी प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकालकर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोकर, बार-बार धोकर,
अन्य किसी एक लेप का
लेप कर, बार-बार लेप कर,
तेल,—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलावे, बार-बार मलावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अप्पणो कायंसि—गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं, सत्थजाएणं,
अच्छिदित्ता वा, विच्छिदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
णीहरित्ता वा, विसोहित्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेत्ता वा, पधोइत्ता वा,

जो भिक्षु अपने शरीर के गंड—यावत्—भगंदर को—
अन्य किसी प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन करके, बार-बार छेदन करके,
पीप या रक्त को,
निकाले, शोधन करे,
अचित्त शीतल जल से या अचित्त उष्ण जल से
धोकर, बार-बार धोकर,

अण्णयरेणं आलेवणजाएणं, — अन्य किसी एक लेप का,
आलिंपित्ता वा, विलिंपित्ता वा, — लेप कर, बार-बार लेप कर,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा, — तेल—यावत्—मक्खन,
अब्भंगेत्ता वा, मक्खेत्ता वा, — मलकर, बार-बार मलकर,
अण्णयरेणं धूवणजाएणं, — किसी एक अन्य प्रकार के धूप से,
धूप दे, बार-बार धूप दे,
धूवेज्ज वा, पधूवेज्ज वा, — धूप दिलावे, बार-बार धूप दिलावे,
धूवंतं वा, पधूवंतं वा साइज्जइ । — धूप देने वाले का, बार-बार धूप देने वाले का अनुमोदन करे ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं । —नि. उ. ३, सु. ३४-३९ — उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

अण्णमण्ण-गंडाइ-तिगिच्छाए पायच्छित्त-सुत्ताइं— एक दूसरे के गण्डादि की चिकित्सा करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

३६९. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि—गंडं वा, पिलगं वा, अरइयं वा, असियं वा, भगंदलं वा, — ३६९. जो भिक्षु एक दूसरे के शरीर पर हुए गण्ड—यावत्—भगन्दर को—
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं, — किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
अच्छिंदेज्ज वा, विच्छिंदेज्ज वा, — छेदन करे, बार-बार छेदन करे,
छेदन करवाये, बार-बार छेदन करवाये,
अच्छिंदंतं वा, विच्छिंदंतं वा साइज्जइ । — छेदन करने वाले का, बार-बार छेदन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि—गंडं वा-जाव-भगंदलं वा, — जो भिक्षु एक दूसरे के शरीर पर हुए गण्ड—यावत्—भगन्दर को—
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं, — अन्य किसी प्रकार के शस्त्र से,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा, — छेदन करके, बार-बार छेदन करके,
पूयं वा, सोणियं वा, — पीप या रक्त को,
नीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा, — निकाले, शोधन करे,
निकलवावे, शोधन करवावे,
नीहरेंतं वा, विसोहेंतं वा साइज्जइ । — निकालने वाले का, शोधन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि—गंडं वा-जाव-भगंदलं वा, — जो भिक्षु एक दूसरे के शरीर पर हुए गण्ड—यावत्—भगन्दर को—
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं, — अन्य किसी प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा, — छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पूयं वा सोणियं वा, — पीप या रक्त को,
नीहरित्ता वा, विसोहेत्ता वा, — निकालकर, शोधन कर,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा, — अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा, — धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ । — धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि - गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,

अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरित्ता वा, विसोहेत्ता वा,
सीओदग वियडेण वा, उसिणोदग वियडेण वा,
उच्छोलित्ता वा, पधोएत्ता वा,
अन्नयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपेज्ज वा, विलिंपेज्ज वा,

आलिंपेतं वा, विलिंपेतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु एक दूसरे के शरीर पर हुए गण्ड—**यावत्**—भगन्दर को,

अन्य किसी प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन करके, बार-बार छेदन करके,
पीप या रक्त को,
निकालकर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोकर, बार-बार धोकर,
अन्य किसी एक लेप का,
लेप करे, बार-बार लेप करे, लेप करवावे, बार-बार लेप करवावे,

लेप करने वाले का, बार-बार लेप करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि—गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,

अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा सोणियं वा,
नीहरित्ता वा, विसोहेत्ता वा,
सीओदग वियडेण वा, उसिणोदग वियडेण वा,
उच्छोलेत्ता वा, पधोएत्ता वा,
अण्णयरेणं आलेवणजाएणं
आलिंपित्ता वा विलिंपित्ता वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगेज्ज वा, मक्खेज्ज वा,
अब्भंगेंतं वा, मक्खेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु एक दूसरे के शरीर पर हुए गण्ड—**यावत्**—भगन्दर को—

अन्य किसी प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन करके, बार-बार छेदन करके,
पीप या रक्त को,
निकाले, शोधन करे,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोकर, बार-बार धोकर,
अन्य किसी एक लेप का,
लेप कर, बार-बार लेप कर,
तेल—**यावत्**—मक्खन,
मले, बार-बार मले, मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, या बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायंसि—गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,

अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा सोणियं वा,
नीहरित्ता वा, विसोहेत्ता वा,
सीओदग वियडेण वा, उसिणोदग वियडेण वा,
उच्छोलित्ता वा, पधोइत्ता वा,
अन्नयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपित्ता वा, विलिंपित्ता वा,
तेल्लेण वा,-जाव-णवणीएण वा,

जो भिक्षु एक दूसरे के शरीर पर हुए गण्ड—**यावत्**—भगन्दर को—

अन्य किसी प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकाल कर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोकर, बार-बार धोकर,
किसी एक अन्य लेप का,
लेप कर, बार-बार लेप कर,
तेल—**यावत्**—मक्खन,

मलंगेत्ता वा, मलखेत्ता वा, — मलकर बार-बार मलकर,
अन्नयरेणं धूवणजाएणं, — किसी एक अन्य प्रकार के धूप से,
धूवेज्ज वा, पधूवेज्ज वा, — धूप दे, बार-बार धूप दे,
धूप दिलवावे बार-बार धूप दिलवावे,
धूवंतं वा, पधूवंतं वा साइज्जइ। — धूप दिलवाने वाले का, बार-बार धूप दिलवाने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —नि. उ. ४, सु. ६७-७२

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

किमिणीहरण पायच्छित्तसुत्तं—

कृमि निकालने का प्रायश्चित्त सूत्र—

३७०. जे भिक्खू अप्पणो पालु-किमियं वा, कुच्छिकिमियं वा, अंगुलीए णिवेसिय णिवेसिय, णीहरइ, णीहरंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —नि. उ. ३, सु. ४०

३७०. जो भिक्षु अपनी गुदा के कृमियों को और कुक्षि के कृमियों को उंगली डाल-डालकर निकालता है, निकलवाता है, निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णमण्ण किमिणीहरणस्स पायच्छित्तसुत्तं—

एक दूसरे के कृमि निकालने का प्रायश्चित्त सूत्र—

३७१. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स पालु-किमियं वा, कुच्छि-किमियं वा, अंगुली निवेसिय निवेसिय, नीहरइ, नीहरंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —नि. उ. ४, सु. ७३

३७१. जो भिक्षु एक दूसरे के गुदा के कृमियों को, कुक्षि के कृमियों को उंगली डाल-डालकर निकालता है, निकलवाता है, निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

वमणाइ-परिकम्म-पायच्छित्तसुत्ताइं—

वमन आदि के परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

३७२. जे भिक्खू वमणं करेइ करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू विरेयणं करेइ करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू वमण-विरेयणं करेइ करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अरोगे परिकम्मं करेइ करेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —नि. उ. १३, सु. ४२-४५

३७२. जो भिक्षु वमन करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु विरेचन करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु वमन और विरेचन करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु रोग न होने पर भी औषधि लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

गिहि तिगिच्छाकरण पायच्छित्तसुत्तं—

गृहस्थ की चिकित्सा करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

३७३. जे भिक्खू गिहितिगिच्छं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —नि. उ. १२, सु. १२

३७३. जो भिक्षु गृहस्थ की चिकित्सा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

(२) निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनी परस्पर चिकित्सा के प्रायश्चित्त

णिग्गंथेण णिग्गंथस्स पायाइ परिकम्म कारावण पायच्छित्त-सुत्ताइं—

३७४. जे णिग्गंथे णिग्गंथस्स पाए—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
आमज्जावेज्ज वा, पमज्जावेज्ज वा,
आमज्जावंतं वा पमज्जावंतं वा साइज्जइ ।

-जाव-जे णिग्गंथे णिग्गंथस्स गामाणुगामं दूइज्जमाणस्स,

अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा,
सीसदुवारियं कारावेइ, कारावंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १७, सु. १५-६६

निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थ के पैरों आदि के परिकर्म कराने के प्रायश्चित्त सूत्र—

३७४. जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थ के पैर का,
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करवाने वाले का, प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करे,

—यावत्—जो निर्ग्रन्थ ग्रामानुग्राम जाते हुए निर्ग्रन्थ के मस्तक को,

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
ढकवावे, ढकवाने वाले का अनुमोदन करे ।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

णिग्गंथिणा णिग्गंथीए पायाइ परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्तसुत्ताइं—

३७५. जा णिग्गंथी णिग्गंथीए पाए—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
आमज्जावेज्ज वा, पमज्जावेज्ज वा,
आमज्जावंतं वा, पमज्जावंतं वा साइज्जइ ।

-जाव-जा णिग्गंथी णिग्गंथीए गामाणुगामं दूइज्जमाणीए,

अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
सीसदुवारियं कारावेइ, कारावंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।[1]
—नि. उ. १७, सु. १८०-२३४

निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थी के पैरों आदि के परिकर्म कराने के प्रायश्चित्त सूत्र—

३७५. जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थी के पैर का,
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करवाने वाली का, प्रमार्जन करवाने वाली का अनुमोदन करे

—यावत्—जो निर्ग्रन्थी ग्रामानुग्राम जाती हुई निर्ग्रन्थी के मस्तक को,

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
ढकवाती है, ढकवाने वाली का अनुमोदन करती है ।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

णिग्गंथीणा णिग्गंथ-वण तिगिच्छाकारावणस्स पायच्छित्त-सुत्ताइं—

३७६. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स कायंसि वणं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
आमज्जावेज्ज वा, पमज्जावेज्ज वा,
आमज्जावेंतं वा, पमज्जावेंतं वा साइज्जइ ।

निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के व्रणों की चिकित्सा करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

३७६. जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के शरीर पर हुए व्रण को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाली का प्रमार्जन करवाने वाली का अनुमोदन करे ।

---

१ उपरोक्त दोनों सूत्रों के जाव की पूर्ति के लिए देखिए ब्रह्मचर्य महाव्रत के प्रायश्चित्तों में निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी के प्रायश्चित्त सूत्र । ये सूत्रांक का संस्करण गुटके से उद्धृत है ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स कायंसि वणं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
संबाहावेज्ज वा, पलिमद्दावेज्ज वा,
संबाहावेंतं वा, पलिमद्दावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के शरीर पर हुए व्रण को—
अन्यतीथिक या गृहस्थ से,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करवाने वाली का प्रमर्दन करवाने वाली का अनुमोदन करे।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स कायंसि वणं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
तेल्लेण वा,-जाव-णवणीएण वा,
मक्खावेज्ज वा, भिलिंगावेज्ज वा,
मक्खावेंतं वा, भिलिंगावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के शरीर पर हुए व्रण पर,
अन्यतीथिक या गृहस्थ से,
तेल—यावत्—मक्खन,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलवाने वाली का, बार-बार मलवाने वाली का अनुमोदन करे।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स कायंसि वणं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
लोद्धेण वा,-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलावेज्ज वा, उव्वट्टावेज्ज वा,
उल्लोलावेंतं वा, उव्वट्टावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के शरीर पर हुए व्रण पर,
अन्यतीथिक या गृहस्थ से,
लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करवाने वाली का बार-बार उबटन करवाने वाली का अनुमोदन करे।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स कायंसि वणं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के शरीर पर हुए व्रण को,
अन्यतीथिक या गृहस्थ से,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाली का, बार-बार धुलवाने वाली का अनुमोदन करे।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स कायंसि वणं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
फूमावेज्ज वा, रयावेज्ज वा,
फूमावेंतं वा, रयावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के शरीर पर हुए व्रण को,
अन्यतीथिक या गृहस्थ से,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगवाने वाली का, बार-बार रंगवाने वाली का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. २७-३२

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथिणा णिग्गंथ गंडाईणं तिगिच्छाकारावणस्स पायच्छित्तसुत्ताइं—

निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के गण्डादि की चिकित्सा करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

३७७. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदावेज्ज वा, विच्छिंदावेज्ज वा,
अच्छिंदावेंतं वा, विच्छिंदावेंतं वा साइज्जइ।

३७७. जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के शरीर पर हुए,
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
अन्यतीथिक या गृहस्थ से,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन करवावे, बार-बार छेदन करवावे,
छेदन करवाने वाली का, बार-बार छेदन करवाने वाली का अनुमोदन करे।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदाविता वा, विच्छिंदाविता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरावेज्ज वा, विसोहावेज्ज वा,
नीहरावेंतं वा, विसोहावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के शरीर पर हुए-
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
अन्य किसी प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन करवाकर, बार-बार छेदन करवाकर,
पीप या रक्त को,
निकलवावे, शोधन करवावे,
निकलवाने वाली का, शोधन करवाने वाली का अनुमोदन करे।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदावेत्ता वा, विच्छिंदावेत्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरावेत्ता वा विसोहावेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के शरीर पर हुए,
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
अन्य किसी प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन करवाकर, बार-बार छेदन करवाकर,
पीप या रक्त को,
निकलवा कर, शोधन करवाकर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाली का, बार-बार धुलवाने वाली का अनुमोदन करे।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदावेत्ता वा, विच्छिंदावेत्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरावेत्ता वा, विसोहावेत्ता वा,
सीओदग वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेत्ता वा, पधोयावेत्ता वा,
अन्नयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपावेज्ज वा विलिंपावेज्ज वा,
आलिंपावेंतं वा, विलिंपावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के शरीर पर हुए—
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
अन्य किसी प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन करवाकर, बार-बार छेदन करवाकर,
पीप या रक्त को,
निकलवाकर, शोधन करवाकर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवाकर, बार-बार धुलवाकर,
अन्य किसी एक लेप का,
लेप करवावे, बार-बार लेप करवावे,
लेप करवाने वाली का, बार-बार लेप करवाने वाली का अनुमोदन करे।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदावेत्ता वा, विच्छिंदावेत्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरावेत्ता वा, विसोहावेत्ता वा,

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के शरीर पर हुए,
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
अन्य किसी प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन करवाकर, बार-बार छेदन करवाकर,
पीप या रक्त को,
निकलवाकर, शोधन करवाकर,

सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेत्ता वा, पधोयावेत्ता वा,
अन्नयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपावेत्ता वा, विलिंपावेत्ता वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगावेज्ज वा, मक्खावेज्ज वा,
अब्भंगावेंतं वा, मक्खावेंतं वा साइज्जइ ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदावेत्ता वा, विच्छिंदावेत्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरावेत्ता वा, विसोहावेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेत्ता वा, पधोयावेत्ता वा,
अन्नयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपावेत्ता वा, विलिंपावेत्ता वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगावेत्ता वा, मक्खावेत्ता वा,
अन्नयरेणं धूवणजाएणं वा,
धूवावेज्ज वा, पधूवावेज्ज वा,
धूवावेंतं वा, पधूवावेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १७, सु. ३१-३८

अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवाकर, बार-बार धुलवाकर,
अन्य किसी एक लेप का,
लेप करवाकर, बार-बार लेप करवाकर,
तेल यावत्—मक्खन,
मलवाकर, बार-बार मलवाकर,
मलवाने वाली का, बार-बार मलवाने वाली का अनुमोदन करे ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के शरीर पर हुए,
गण्ड—यावत्—भगन्दर को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
अन्य किसी प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन करवाकर, बार-बार छेदन करवाकर,
पीप या रक्त को,
निकलवाकर, शोधन करवाकर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवाकर बार-बार धुलवाकर,
अन्य किसी एक लेप का,
लेप करवाकर, बार-बार लेप करवाकर,
तेल—यावत्—मक्खन,
मलवाकर, बार-बार मलवाकर,
किसी एक प्रकार के अन्य, धूप से,
धूप दिलवावे, बार-बार धूप दिलवावे,
धूप दिलवाने वाली का बार-बार धूप दिलवाने वाली का अनुमोदन करे ।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

णिग्गंथिणा णिग्गंथकिमिणीहरावणस्स पायच्छित्तसुत्तं—

३७८. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स—
पालुकिमियं वा, कुच्छिकिमियं वा, अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
अंगुलिए निवेसाविय निवेसाविय,
नीहरावेइ नीहरावेंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १७, सु. ३९

निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के कृमि निकलवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

३७८. जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ की,
गुदा के कृमियों को, कुक्षि के कृमियों को,
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
अंगुली डलवा-डलवाकर निकलवाती है या निकलवाने वाली का अनुमोदन करती है ।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

णिग्गंथेण णिग्गंथी वण-तिगिच्छाकारावणस्स पायच्छित्त-सुत्ताइं—

३७९. जे णिग्गंथे णिग्गंथीए कायंसि वणं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,

निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के व्रणों की चिकित्सा करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

३७९. जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के शरीर पर हुए व्रण का,
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,

आमज्जावेज्ज वा, पमज्जावेज्ज वा,
आमज्जावेंतं वा, पमज्जावेंतं वा साइज्जइ।

मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करवाने वाले का, प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए कायंसि वणं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
संबाहेज्ज वा, पलिमद्दावेज्ज वा,
संबाहावेंतं वा, पलिमद्दावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के शरीर पर हुए व्रण का,
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करवानेवाले का, प्रमर्दन करवानेवाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए कायंसि वणं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा
मक्खावेज्ज वा, भिलिंगावेज्ज वा,
मक्खावेंतं वा, भिलिंगावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के शरीर पर हुए व्रण का,
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
तेल—यावत्—मक्खन,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलवानेवाले का, बार-बार मलवानेवाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए कायंसि वणं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलावेज्ज वा, उव्वट्टावेज्ज वा,
उल्लोलावेंतं वा, उव्वट्टावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के शरीर पर हुए व्रण पर—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करवाने वाले का, बार-बार उबटन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए कायंसि वणं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के शरीर पर हुए व्रण को,
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ द्वारा,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवावे बार-बार धुलवावे,
धुलवानेवाले का बार-बार धुलवानेवाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए कायंसि वणं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
फूमावेज्ज वा, रयावेज्ज वा,
फूमावेंतं वा, रयावेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. ८०-८५

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के शरीर पर हुए व्रण को,
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
रंगवावे बार-बार रंगवावे,
रंगवानेवाले का, बार-बार रंगवानेवाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथेण णिग्गंथी गंडाइ तिगिच्छाकारावणस्स पायच्छित्त-सुत्ताइं—

३८०. जे णिग्गंथे णिग्गंथीए कायंसि—
गंडं वा, पिलगं वा, अरइयं वा, असियं वा, भगंदलं वा,
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदावेज्ज वा विच्छिंदावेज्ज वा,
अच्छिंदावेंतं वा, विच्छिंदावेंतं वा साइज्जइ।

निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के गण्डादि की चिकित्सा करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

३८०. जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के शरीर के,
गण्ड—यावत्—भगन्दर को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन करवावे, बार-बार छेदन करवावे,
छेदन करवाने वाले का, बार-बार छेदन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए कायंसि —
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिदावेत्ता वा, विच्छिदावेत्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरावेज्ज वा, विसोहावेज्ज वा,
नीहरावेंतं वा, विसोहावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के शरीर के,
गंड—यावत्—भगंदर को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकलवावे, शोधन करवावे,
निकलवाने वाले का, शोधन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिदावेत्ता वा, विच्छिदावेत्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरावेत्ता वा, विसोहावेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के शरीर के,
गंड—यावत्—भगंदर को,
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन करवाकर, बार-बार छेदन करवाकर,
पीप या रक्त को,
निकलवाकर, शोधन करवाकर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवानेवाले का, बार-बार धुलवानेवाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिदावेत्ता वा, विच्छिदावेत्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरावेत्ता वा, विसोहावेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेत्ता वा, पधोयावेत्ता वा,
अन्नयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपावेज्ज वा, विलिंपावेज्ज वा,
आलिंपावेंतं वा, विलिंपावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के शरीर के,
गंड—यावत्—भगंदर को,
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन करवाकर, बार-बार छेदन करवाकर,
पीप या रक्त को,
निकलवाकर, शोधन करवाकर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवाकर, बार-बार धुलवाकर,
अन्य किसी एक लेप का,
लेप करवावे, बार-बार लेप करवावे,
लेप करवाने वाले का, बार-बार लेप करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिदावेत्ता वा, विच्छिदावेत्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरावेत्ता वा, विसोहावेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा,
उच्छोलावेत्ता वा, पधोयावेत्ता वा,

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के शरीर के,
गंड—यावत्—भगंदर को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन करवाकर, बार-बार छेदन करवाकर,
पीप या रक्त को,
निकलवाकर, शोधन करवाकर,
अचित्त शीत जल से, या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवाकर, बार-बार धुलवाकर,

अन्नयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपावेत्ता वा, विलिंपावेत्ता वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगावेज्ज वा, मक्खावेज्ज वा,
अब्भंगावेंतं वा, मक्खावेंतं वा साइज्जइ।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए कायंसि —
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदावेत्ता वा, विच्छिंदावेत्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरावेत्ता वा, विसोहावेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेत्ता वा, पधोयावेत्ता वा,
अन्नयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपावेत्ता वा, विलिंपावेत्ता वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगावेत्ता वा, मक्खावेत्ता वा,
अन्नयरेणं धूवणजाएणं,
धूवावेज्ज वा, पधूवावेज्ज वा,
धूवावेंतं वा, पधूवावेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. ८६-९१

अन्य किसी एक लेप का,
लेप करवाकर, बार-बार लेप करवाकर,
तेल—यावत्—मक्खन,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलवानेवाले का, बार-बार मलवानेवाले का अनुमोदन करे।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के शरीर के,
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन करवाकर, बार-बार छेदन करवाकर,
पीप या रक्त को,
निकलवाकर, शोधन करवाकर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवाकर, बार-बार धुलवाकर,
अन्य किसी एक लेप का,
लेप करवाकर, बार-बार लेप करवाकर,
तेल—यावत्—मक्खन,
मलवाकर, बार-बार मलवाकर,
किसी एक प्रकार के अन्य धूप से,
धूप दिलवावे, बार-बार धूप दिलवावे,
धूप दिलवाने वाले का, बार-बार धूप दिलवाने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथेण णिग्गंथी-किमीणीहरावणस्स पायच्छित्तसुत्तं—

३८१. जे णिग्गंथे णिग्गंथीए,
पालुकिमियं वा,
कुच्छिकिमियं वा,
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
अंगुलिए निवेसाविय निवेसाविय नीहरावेइ, नीहरावेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. ९२

निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के कृमि निकलवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

३८१. जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी की,
गुदा के कृमियों को—
और कुक्षि के कृमियों को,
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
उंगली डलवा-डलवाकर निकलवाता है, निकलवाने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

(३) अन्यतीर्थिक या गृहस्थ द्वारा चिकित्सा करवाने के प्रायश्चित्त

वण तिगिच्छाकारावणस्स पायच्छित्तसुत्ताइं—

३८२. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा, अप्पणो कायंसि वणं—

आमज्जावेज्ज वा, पमज्जावेज्ज वा,
आमज्जावेंतं वा, पमज्जावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा, अप्पणो कायंसि वणं—

संबाहावेज्ज वा, पलिमद्दावेज्ज वा,
संबाहावेंतं वा, पलिमद्दावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा, अप्पणो कायंसि वणं—

तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खावेज्ज वा, भिलिंगावेज्ज वा,
मक्खावेंतं वा, भिलिंगावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा, अप्पणो कायंसि वणं—

लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलावेज्ज वा, उव्वट्टावेज्ज वा,
उल्लोलावेंतं वा, उव्वट्टावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा, अप्पणो कायंसि वणं—

सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा, अप्पणो कायंसि वणं—

फूमावेज्ज वा, रयावेज्ज वा,
फूमावेंतं वा, रयावेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १५, सु. २५-३०

व्रण की चिकित्सा करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

३८२. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने शरीर के व्रण का—

मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करवाने वाले का, प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने शरीर के व्रण का—

मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करवाने वाले का, प्रमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने शरीर के व्रण पर—

तेल—यावत्—मक्खन,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलवाने वाले का, बार-बार मलवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने शरीर के व्रण पर—

लोध—यावत्—वर्ण का
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करवाने वाले का, बार-बार उबटन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने शरीर से व्रण को—

अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाले का, बार-बार धुलवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने शरीर के व्रण को—

रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगवाने वाले का, बार-बार रंगवाने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

गंडाइ तिगिच्छा करावणस्स पायच्छित्तसुत्ताइं—

३८३. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा, अप्पणो कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदावेज्ज वा विच्छिंदावेज्ज वा,
अच्छिंदावेंतं वा, विच्छिंदावेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा, अप्पणो कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अन्नयरेणं वा तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदावित्ता वा विच्छिंदावित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरावेज्ज वा, विसोहावेज्ज वा,
नीहरावेंतं वा, विसोहावेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा, अप्पणो कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदावेत्ता वा, विच्छिंदावेत्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरावेत्ता वा, विसोहावेत्ता वा,
सीओदग वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा, अप्पणो कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदावेत्ता वा, विच्छिंदावेत्ता वा,
पूयं वा सोणियं वा,
नीहरावेत्ता वा, विसोहावेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेत्ता वा, पधोयावेत्ता वा,
अन्नयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपावेज्ज वा, विलिंपावेज्ज वा,
आलिंपावेंतं वा, विलिंपावेंतं वा साइज्जइ ।

गण्ड आदि की चिकित्सा करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

३८३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने शरीर के—
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
अन्य किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन करवावे, बार-बार छेदन करवावे,
छेदन करवाने वाले का, बार-बार छेदन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने शरीर के—
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
अन्य किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन करवाकर, बार-बार छेदन करवाकर,
पीप या रक्त को,
निकलवावे, शोधन करवावे,
निकलवाने वाले का, शोधन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने शरीर के—
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
अन्य किसी प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन करवाकर, बार-बार छेदन करवाकर,
पीप या रक्त को,
निकलवाकर, शोधन करवाकर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाले का, बार-बार धुलवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने शरीर के—
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
अन्य किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन करवाकर, बार-बार छेदन करवाकर,
पीप या रक्त को,
निकलवाकर, शोधन करवाकर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवाकर, बार-बार धुलवाकर,
अन्य किसी एक प्रकार के लेप का,
लेप करवावे, बार-बार लेप करवावे,
लेप करवाने वाले का, बार-बार लेप करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा, अप्पणो कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिदावेत्ता वा, विच्छिदावेत्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरावेत्ता वा, विसोहावेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेत्ता वा, पधोयावेत्ता वा,
अन्नयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपावेत्ता वा, विलिंपावेत्ता वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगावेज्ज वा, मक्खावेज्ज वा,
अब्भंगावेंतं वा, मक्खावेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने शरीर के—
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
अन्य किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन करवाकर, बार-बार छेदन करवाकर,
पीप या रक्त को,
निकलवाकर, शोधन करवाकर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवाकर, बार-बार धुलवाकर,
अन्य किसी एक प्रकार का,
लेप करवाकर, बार-बार लेप करवाकर,
तेल—यावत्—मक्खन,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलवाने वाले का, बार-बार मलवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा, अप्पणो कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिदावेत्ता वा, विच्छिदावेत्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरावेत्ता वा, विसोहावेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेत्ता वा, पधोयावेत्ता वा,
अन्नयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपित्ता वा, विलिंपित्ता वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगावेत्ता वा, मक्खावेत्ता वा,
अन्नयरेणं धूवणजाएणं,
धूवावेज्ज वा, पधूवावेज्ज वा,
धूवावेंतं वा, पधूवावेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने शरीर के—
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
अन्य किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन करवाकर, बार-बार छेदन करवाकर,
पीप या रक्त को,
निकलवाकर, शोधन करवाकर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवाकर, बार-बार धुलवाकर,
अन्य किसी एक प्रकार के लेप का,
लेप करवाकर, बार-बार लेप करवाकर,
तेल—यावत्—मक्खन,
मलवाकर, बार-बार मलवाकर,
अन्य किसी एक प्रकार के धूप से,
धूप दिलवावे, बार-बार धूप दिलवावे,
धूप दिलवाने वाले का, बार-बार धूप दिलवाने वाले का अनुमोदन करे ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १५, सु. ३१-३६

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

किमिणीहरावणस्स पायच्छित्तसुत्तं—

३८४. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
पालुकिमियं वा, कुच्छिकिमियं वा, अंगुलिए निवेसाविय निवेसाविय, नीहरावेइ नीहरावेंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १५, सु. ३७

कृमि निकलवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

३८४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से—
गुदा के कृमियों को और कुक्षि के कृमियों को उँगली डलवा-डलवाकर, निकलवावे, निकलवाने वाले का अनुमोदन करे ।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

(४) अन्यतीर्थिक या गृहस्थ की चिकित्सा करने के प्रायश्चित्त–

अण्णउत्थियस्स गारत्थियस्स वणपरिकम्म पायच्छित्त-सुत्ताइं—

३८५. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा, कायंसि वणं—

आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,

आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा, कायंसि वणं—

संवाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,

संवाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा, कायंसि वणं—

तेल्लेण वा,-जाव-णवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,

मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा, कायंसि वणं—

लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,

उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा, कायंसि वणं—

सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,

उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा, कायंसि वणं—

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से व्रण की चिकित्सा के प्रायश्चित्त सूत्र—

३८५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थों के शरीर के व्रण का—

मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थों के शरीर के व्रण का—

मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थों के शरीर के व्रण पर—

तेल—**यावत्**—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थों के शरीर के व्रण पर—

लोध—**यावत्**—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थों के शरीर के व्रण को—

अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थों के शरीर के व्रण को—

फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,

फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ११, सु. २१-२८

रंगे, बार-बार रंगे,

रंगवावे, बार-बार रंगवावे,

रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णउत्थियस्स गारत्थियस्स गंडाइतिगिच्छाए पायच्छित्त-सुत्ताइं—

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ की गण्डादि की चिकित्सा के प्रायश्चित्त सूत्र -

३८६. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा, कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदेज्ज वा, विच्छिंदेज्ज वा,

अच्छिंदेंतं वा, विच्छिंदेंतं वा साइज्जइ ।

३८६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थों के शरीर के—
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
अन्य किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन करे, बार-बार छेदन करे,
छेदन करवावे, बार-बार छेदन करवावे,
छेदन करने वाले का, बार-बार छेदन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा, कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा,

नीहरेंतं वा, विसोहेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थों के शरीर के—
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
अन्य किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकाले, शोधन करे,
निकलवावे, शोधन करवावे,
निकालने वाले का, शोधन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरेत्ता वा, विसोहेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,

उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थों के शरीर के—
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
अन्य किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकाल कर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा, कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरेत्ता वा, विसोहेत्ता वा,

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थों के शरीर के—
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
अन्य किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकालकर, शोधन कर,

सीओदग वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेत्ता वा, पधोएत्ता वा,
अण्णयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपेज्ज वा, विलिंपेज्ज वा,

आलिंपंतं वा, विलिंपंतं वा साइज्जइ।

अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोकर, बार-बार धोकर,
अन्य किसी एक लेप का,
लेप करे, बार-बार लेप करे,
लेप करवावे, बार-बार लेप करवावे,
लेप करने वाले का, बार-बार लेप करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं, सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरेत्ता वा, विसोहेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेत्ता वा, पधोएत्ता वा,
अण्णयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपित्ता वा, विलिंपित्ता वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,

अब्भंगेज्ज वा, मक्खेज्ज वा,
अब्भंगेंतं वा, मक्खेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थों के शरीर के—
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
अन्य किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकाल कर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोकर, बार-बार धोकर,
अन्य किसी एक लेप का,
लेप कर, बार-बार लेप कर,
तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा, कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरेत्ता वा, विसोहेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेत्ता वा, पधोएत्ता वा,
अण्णयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपित्ता वा, विलिंपित्ता वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगेत्ता वा, मक्खेत्ता वा,
अण्णयरेणं धूवणजाएणं,
धूवेज्ज वा, पधूवेज्ज वा,

धूवेंतं वा, पधूवेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थों के शरीर के—
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
अन्य किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकाल कर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोकर, बार-बार धोकर,
अन्य किसी एक लेप का,
लेप कर, बार-बार लेप कर,
तेल—यावत्—मक्खन,
मलकर, बार-बार मलकर,
अन्य किसी एक प्रकार के धूप से,
धूप दे, बार-बार धूप दे,
धूप दिलवावे, बार-बार धूप दिलवावे,
धूप देने वाले का, बार-बार धूप देने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ११, सु. २६-३४

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णउत्थियस्स गारत्थियस्स किमिणिहरणस्स पायच्छित्त-सुत्तं—

३८७. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा,
पालु-किमियं वा, कुच्छि-किमियं वा,
अंगुलीए निवेसिय निवेसिय,
नीहरइ, नीहरंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ११, सु. ३५

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के कृमि निकालने का प्रायश्चित्त सूत्र—

३८७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थों के—
गुदा के कृमियों को और कुक्षि के कृमियों को
उंगली डाल-डालकर,
निकालता है, निकलवाता है, या निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

आरम्भजन्य कार्य करने के प्रायश्चित्त—६

दगणालियाकरण पायच्छित्त सुत्तं—

३८८. जे भिक्खू दगवीणियं—
सयमेव करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. २, सु. ११

पानी बहने की नाली निर्माण करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

३८८. जो भिक्षु पानी बहने की नाली का निर्माण—
स्वयं करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सिक्कग-करण-पायच्छित्त सुत्तं—

३८९. जे भिक्खू सिक्कगं वा, सिक्कगणंतगं वा,
सयमेव करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. २, सु. १२

छींका निर्माण करण प्रायश्चित्त सूत्र—

३८९. जो भिक्षु छींका तथा छींके की डोरियों का निर्माण—
स्वयं करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पयमग्गाइकरण पायच्छित्त सुत्तं—

३९०. जे भिक्खू पयमग्गं वा, संकमं वा, आलंबणं वा,
सयमेव करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. २, सु. १०

पदमार्गादि निर्माण करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

३९०. जो भिक्षु पदमार्ग, संक्रमणमार्ग या आलम्बन का
स्वयं निर्माण करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे लघु-मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पयमग्गाइ णिम्माण करण पायच्छित्त सुत्तं—

३९१. जे भिक्खू पयमग्गं वा, संकमं वा, अवलंबणं वा—

अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा कारेइ कारेंतं वा साइज्जइ।

पदमार्गादि निर्माण सम्बन्धी प्रायश्चित्त सूत्र—

३९१. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से
पगडण्डी, पुल या अवलम्बन का,
निर्माण करवाता है, करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू दगवीणियं—
अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा
कारेइ कारेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से,
पानी निकालने की नाली का,
निर्माण करवाता है, करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू सिक्कगणंतगं वा—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा
कारेइ कारेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से,
छींका, छींके की डोरियों का,
निर्माण करवाता है, करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू सोत्तियं वा, रज्जुयं वा, चिलिमिलिं वा—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा
कारेइ कारेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से,
सूत की रस्सी या चिलिमिली का,
निर्माण करवाता है, करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।
—नि. उ. १, सु. ११-१४

उसे मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

दंडाइ परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्तं—

३६२. जे भिक्खू दंडगं वा, लट्ठियं वा, अवलेहणं वा, वेणुसूइयं वा, सयमेव परिघट्टेइ वा, संठवेइ वा, जमावेइ वा,
परिघट्टेंतं वा संठवेंतं वा जमावेंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. २, सु. २६

दण्डादि परिस्कार सम्बन्धी प्रायश्चित्त—

३६२. जो भिक्षु दण्ड, लाठी, अवलेहनिका या बांस की सूई का स्वयं निर्माण करता है, आकार सुधारता है, विषम को सम करता है,

निर्माण करवाता है, आकार सुधरवाता है, विषम को सम करवाता है,

निर्माण करने वाले का, आकार सुधारने वाले का, विषम को, सम करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

दारुदंडकरणाईणं पायच्छित्त सुत्ताइं—

३६३. जे भिक्खू सचित्ताइं—१. दारु-दंडाणि वा, २. वेणु-दंडाणि वा, ३. वेत्त-दंडाणि वा—
करेइ करेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू सचित्ताइं—दारु-दंडाणि वा-जाव-वेत्त-दंडाणि वा
धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू सचित्ताइं—दारु-दंडाणि वा-जाव-वेत्त-दंडाणि वा
परिभुंजइ, परिभुंजंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू चित्ताइं—दारु-दंडाणि वा-जाव-वेत्त-दंडाणि वा
करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू विचित्ताइं—दारु-दंडाणि वा-जाव-वेत्त-दंडाणि वा
धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ ।

दारुदण्ड करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र—

३६३. जो भिक्षु (१) सचित्त काष्ठ का दण्ड, (२) सचित्त बांस का दण्ड और (३) सचित्त बेंत का दण्ड
बनाता है, बनवाता है, बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त काष्ठ का दण्ड—**यावत्**—सचित्त बेंत का दण्ड
धरा रखता है, धरा रखवाता है, धरा रखने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त काष्ठ के दण्ड—**यावत्**—सचित्त बेंत के दण्ड का
परिभोग करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु काष्ठ के दण्ड को—**यावत्**—बेंत के दण्ड को,
रंगता है, रंगवाता है, रंगने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु काष्ठ के दण्ड को—**यावत्**—बेंत के दण्ड को
रंग कर धरा रखता है, धरा रखवाता है, धरा रखने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू चित्ताइं—दारु-दंडाणि वा-जाव-वेत्त-दंडाणि वा परिभुंजइ, परिभुंजंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु रंगे हुए काष्ठ के दण्ड का—यावत्—सचित्त वेंत के दण्ड का परिभोग करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू विचित्ताइं—दारु-दंडाणि वा-जाव-वेत्त-दंडाणि वा करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु काष्ठ के दण्ड को—यावत्—वेंत के दण्ड को दुरंगा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू विचित्ताइं—दारु-दंडाणि वा-जाव-वेत्त-दंडाणि वा धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु काष्ठ के दण्ड को—यावत्—वेंत के दण्ड को दुरंगा करके धरा रखता है, धरा रखवाता है, धरा रखने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू विचित्ताइं—दारु-दंडाणि वा-जाव-वेत्त-दंडाणि वा परिभुंजइ, परिभुंजंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु दुरंगे काष्ठ के दण्ड का—यावत्—दुरंगे वेंत के दण्ड का परिभोग करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. ५, सु. २५-३३

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सूईयाईणं उत्तरकरण पायच्छित्त सुत्ताइं—

सूई आदि के परिष्कार के प्रायश्चित्त सूत्र—

३९४. जे भिक्खू सूईए उत्तरकरणं—
सयमेव करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

३९४. जो भिक्षु सूई का उत्तरकरण (परिष्कार) स्वयं करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू पिप्पलगस्स उत्तरकरणं—
सयमेव करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु कैंची का उत्तरकरण स्वयं करता है, करवाता है करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू नहच्छेयणगस्स उत्तरकरणं—
सयमेव करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नखछेदन का उत्तरकरण स्वयं करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू कण्णसोहणगस्स उत्तरकरणं—
सयमेव करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु कर्णशोधन का उत्तरकरण स्वयं करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. २, सु. १४-१७

उस भिक्षु को मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सूईआईणं अण्णउत्थियाइणा उत्तरकरणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

अन्यतीर्थिकादि द्वारा सूई आदि के उत्तरकरण के प्रायश्चित्त सूत्र—

३९५. जे भिक्खू सूईए उत्तरकरणं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कारेति, कारेंतं वा साइज्जइ।

३९५. जो भिक्षु सूई का उत्तरकरण (परिष्कार) अन्यतीर्थिकों से या गृहस्थ से करवाता है, करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू पिप्पलगस्स उत्तरकरणं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा
कारेति, कारेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू नहच्छेयणगस्स उत्तरकरणं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा
कारेति, कारेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कण्णसोहणगस्स उत्तरकरणं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा
कारेति कारेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. १, सु. १५-१८

जो भिक्षु कैंची का उत्तरकरण—
अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से
करवाता है, करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु नखछेदनक का उत्तरकरण—
अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से
करवाता है, करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु कर्णशोधनक का उत्तरकरण—
अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से
करवाता है, करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

उस भिक्षु को मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सूई आईणं अणट्ठ जायणा करणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

३९६. जे भिक्खू अणट्ठाए सूइं—
जाएइ जायंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अणट्ठाए पिप्पलगं—
जाएइ जायंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अणट्ठाए नहच्छेयणगं—
जाएइ जायंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अणट्ठाए कण्णसोहणगं—
जाएइ जायंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. १, सु. १९-२२

बिना प्रयोजन सूई आदि याचना का प्रायश्चित्त सूत्र—

३९६. जो भिक्षु बिना प्रयोजन सूई की याचना
करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु बिना प्रयोजन कैंची की याचना—
करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु बिना प्रयोजन नखछेदनक की याचना—
करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु बिना प्रयोजन कर्णशोधनक की याचना—
करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उस भिक्षु को मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सूई आईणं अविहि जायणा करणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

३९७. जे भिक्खू अविहीए सूइं—
जाएइ जायंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अविहीए पिप्पलगं—
जाएइ जायंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अविहीए नहच्छेयणगं—
जाएइ जायंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अविहीए कण्णसोहणगं—
जाएइ जायंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १, सु. २३-२६

अविधि से सूईआदि याचना के प्रायश्चित्त सूत्र—

३९७. जो भिक्षु अविधि से सूई की याचना—
करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु अविधि से कैंची की याचना—
करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु अविधि से नखछेदनक की याचना—
करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु अविधि से कर्णशोधनक की याचना—
करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उस भिक्षु को मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सूई आईणं विपरीयपओगकरणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

३९८. जे भिक्खू पाडिहारियं सूइं जाइत्ता—
वत्थं सिव्विस्सामि त्ति पायं सिव्वइ सिव्वंतं वा साइज्जइ।

सूई आदि के विपरीत प्रयोगों के प्रायश्चित्त सूत्र—

३९८. जो भिक्षु पाडिहारिय=प्रत्यर्पणीय सूई की याचना करके—
"वस्त्र सीवूंगा" ऐसा कहने के बाद पात्र
सींता है, सींवाता है, सींने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू पाडिहारियं पिप्पलगं जाइत्ता—
वत्थं छिंदिस्सामि त्ति पायं छिंदइ छिंदंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु पाडिहारिय कैंची की याचना करके —
"वस्त्र काटूंगा" ऐसा कहने के बाद पात्र
काटता है, कटवाता है, काटने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू पाडिहारियं नहच्छेयणगं जाइत्ता —
नहं छिंदिस्सामि त्ति सल्लुद्धरणं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु पाडिहारिय नखछेदनक की याचना करके—
"नख काटूंगा" ऐसा कहने के बाद कांटा
निकालता है, निकलवाता है, निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू पाडिहारियं कण्णसोहणगं जाइत्ता—
कण्णमलं नीहरिस्सामि त्ति दंतमलं वा, नहमलं वा नीहरइ नीहरंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु पाडिहारिय कर्णशोधनक की याचना करके—
"कान का मैल निकालूंगा" ऐसा कहने के बाद दाँतों का या नखों का मैल
निकालता है, निकलवाता है, निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. १, सु. २७-३०

उसे मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सूई आईणं अण्णमण्णदाणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

सूई आदि के अन्योन्य प्रदान का प्रायश्चित्त सूत्र—

३९९. जे भिक्खू अप्पणो एगस्स अट्ठाए सूइं जाइत्ता—
अण्णमण्णस्स अणुप्पदेइ अणुप्पदेंतं वा साइज्जइ।

३९९. जो भिक्षु केवल अपने लिए "सूई" की याचना —
करता है (और वह याचित सूई) दूसरों दूसरों को
देता है, दिलाता है, देने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू अप्पणो एगस्स अट्ठाए पिप्पलगं जाइत्ता—
अण्णमण्णस्स अणुप्पदेइ, अणुप्पदेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु केवल अपने लिए "कैंची" की याचना—
करता है (और वह याचित कैंची) दूसरों दूसरों को
देता है, दिलाता है, देने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू अप्पणो एगस्स अट्ठाए नहच्छेयणगं जाइत्ता—
अण्णमण्णस्स अणुप्पदेइ अणुप्पदेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु केवल अपने लिए "नखछेदनक" की याचना—
करता है (और याचित नखछेदनक) दूसरों दूसरों को
देता है, दिलाता है, देने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू अप्पणो एगस्स अट्ठाए कण्णसोहणगं जाइत्ता—
अण्णमण्णस्स अणुप्पदेइ अणुप्पदेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु केवल अपने लिए "कर्णशोधनक" की याचना—
करता है (और वह याचित कर्णशोधनक) दूसरों दूसरों को
देता है, दिलाता है, देने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. १, सु. ३१-३४

उसे मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णउत्थिएण गारत्थिएण गिहधूम-परिसाडण पायच्छित्त सुत्तं—

अन्यतीर्थिक और गृहस्थ से गृहधूम साफ कराने का प्रायश्चित्त सूत्र—

४००. जे भिक्खू गिह-धूमं—
अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा,
परिसाडावेइ परिसाडावेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. १, सु. ५७

४००. जो भिक्षु गृहधूम को
अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से साफ
करवाता है, साफ करवाते हुए का अनुमोदन करता है।
उसे मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

प्रथम महाव्रत का परिशिष्ट—१

४०१. [पुरिम-पच्छिमगाणं तित्थगराणं पंचजामस्स पणवीसं भावणाओ पण्णत्ताओ तं जहा[1]—

पढम महव्वयस्स पंच भावणाओ—

१. ईरिआसमिई २. मणगुत्ती

३. वयगुत्ती ४. आलोयपाणभोयणं

५. आदाण-भंड-मत्तणिक्खेवणासमिई । —सम. २५, सु. १

तस्स इमा पंच भावणाओ पढमस्स वयस्स होंति—पाणाइवायवेरमण-परिरक्खणट्ठयाए ।

पढमा भावणा

पढमं ठाण-गमण-गुण-जोग-जुंजणजुगंतर-णिवाइयाए दिट्ठिए ईरियव्वं,

कीड-पयंग-तस-थावर-दयावरेण णिच्चं पुप्फ-फल-तय-पवाल-कंद-मूल-दग-मट्टिय-बीय-हरिय-परिवज्जिएण सम्मं ।

एवं खलु सव्वपाणा, ण हीलियव्वा, ण णिंदियव्वा, ण गरहियव्वा, ण हिंसियव्वा, ण छिंदियव्वा, ण भिंदियव्वा, ण वहेयव्वा, ण भयं दुक्खं च किंचि लब्भा पावेउं,

एवं इरियासमिइ जोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा असबल-मसंकिलिट्ठणिव्वणचरित्तभावणाए अहिंसए संजए सुसाहू ।

४०१. प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों ने पाँच महाव्रतों की पच्चीस भावनायें कही हैं । यथा—

प्रथम महाव्रत की पाँच भावनायें—

[प्राणातिपात-विरमण या अहिंसा महाव्रत की पाँच भावना—]

(१) ईर्या समिति (२) मनोगुप्ति

(३) वचनगुप्ति (४) आलोकित-पान-भोजन

(५) आदानभांड-मात्रनिक्षेपणासमिति ।

पाँच महाव्रतों (संवरों) में से प्रथम महाव्रत की ये—आगे कही जाने वाली—पाँच भावनाएँ प्राणातिपातविरमण अर्थात् अहिंसा महाव्रत की रक्षा के लिए हैं ।

प्रथम भावना—

खड़े होने, ठहरने और गमन करने में स्व-पर की पीड़ा-रहितता गुणयोग को जोड़ने वाली तथा गाड़ी के युग (जुवे) प्रमाण भूमि पर गिरने वाली दृष्टि से (अर्थात् लगभग चार हाथ आगे की भूमि पर दृष्टि रखकर) निरन्तर कीट, पतंग, त्रस, स्थावर जीवों की दया में तत्पर होकर फूल, फल, छाल, प्रवाल, —पत्ते-कोंपल, मूल, जल, मिट्टी, बीज एवं हरितकाय-दूब आदि को (कुचलने से) बचाते हुए, सम्यक् प्रकार से—यतना के साथ चलना चाहिए ।

इस प्रकार चलने वाले साधु को निश्चय ही समस्त अर्थात् किसी भी प्राणी की हीलना—उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, निन्दा नहीं करनी चाहिए, गर्हा नहीं करनी चाहिए । उनकी हिंसा नहीं करनी चाहिए । उनका छेदन नहीं करना चाहिए, भेदन नहीं करना चाहिए, उन्हें व्यथित नहीं करना चाहिए । इन पूर्वोक्त जीवों को लेशमात्र भी भय या दुःख नहीं पहुँचाना चाहिए ।

इस प्रकार (के आचरण) से साधु **ईर्या समिति** में मन, वचन, काय की प्रवृत्ति से भावित होता है । तथा शबलता (मलीनता) से रहित संक्लेश से रहित अक्षत (निरतिचार) चारित्र की भावना से युक्त, संयमशील एवं अहिंसक सुसाधु कहलाता है—मोक्ष का साधक होता है ।

---

1 यह पाठ समवायांग का है—अतः एक साथ पांच महाव्रत की पच्चीस भावनाएँ कही गई हैं । यहाँ प्रत्येक महाव्रत की पाँच-पांच भावनाएँ यथास्थान दी गई हैं ।

बिइया भावणा—

बिइयं च मणेण पावएणं पावगं अहम्मियं दारुणं णिस्संसं वह-बंध-परिकिलेस बहुलं भय-मरण-परिकिलेससंकिलिट्ठं, ण कयावि मणेण पावएणं पावगं किंचि वि झायव्वं।

एवं मणसमिइजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा असबलमसंकिलिट्ठणिव्वणचरित्तभावणाए अहिंसए संजए सुसाहू।

द्वितीय भावना—

दूसरी भावना मनःसमिति है। पापमय, अधार्मिक—धर्म-विरोधी, दारुण—भयानक, नृशंस—निर्दयतापूर्ण, वध, बन्ध और परिक्लेश की बहुलता वाले, भय, मृत्यु एवं क्लेश से संक्लिष्ट—मलीन ऐसे पापयुक्त मन से लेशमात्र भी विचार नहीं करना चाहिए। इस प्रकार (के आचरण) से—मनःसमिति की प्रवृत्ति से अन्तरात्मा भावित—वासित होती है तथा निर्मल संक्लेशरहित, अखण्ड (निरतिचार) चारित्र की भावना से युक्त संयमशील एवं अहिंसक सुसाधु कहलाता है।

तइया भावणा—

तइयं च वईए पावियाए पावगं ण किंचि वि भासियव्वं।

एवं वइ-समितिजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा असबल-मसंकिलिट्ठ-णिव्वण-चरित्त-भावणाए अहिंसए संजए सुसाहू।

तृतीय भावना—

तीसरी भावना वचन समिति है। पापमय वाणी से तनिक भी पापयुक्त—सावद्य वचन का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार की वाक् समिति (भाषा समिति) के योग से युक्त अन्तरात्मा वाला निर्मल, संक्लेश रहित और अखण्ड चारित्र की भावना वाला अहिंसक साधु सुसाधु होता है—मोक्ष का साधक होता है।

चउत्था भावणा—

चउत्थं आहारएसणाए सुद्धं उंछं गवेसियव्वं,

चतुर्थ भावना—

चौथी भावना निर्दोष आहार लेना है। आहार की एषणा से शुद्ध-एषणा सम्बन्धी समस्त दोषों से रहित, मधुकरी वृत्ति से—अनेक घरों से भिक्षा की गवेषणा करनी चाहिए

अण्णाए अकहिए अगढिए अदुट्ठे अदीणे अकलुणे अविसाई अपरितंतजोगी जयण-घडण-करण-चरिय-विणय-गुण-जोग-संपओगजुत्ते भिक्खू भिक्खेसणाए जुत्ते समुदाणेऊण····

भिक्षा लेने वाला साधु अज्ञात रहे—अज्ञात सम्बन्ध वाला रहे, अगृद्ध—गृद्धि—आसक्ति से रहित हो, अदुष्ट—द्वेष से रहित हो, अर्थात् भिक्षा न देने वाले, अपर्याप्त भिक्षा देने वाले या नीरस भिक्षा देने वाले दाता पर द्वेष न करे। करुण दयनीय-दयापात्र न बने। अलाभ की स्थिति में विषाद न करे। मन-वचन-काय की सम्यक् प्रवृत्ति में निरन्तर निरत रहे। प्राप्त संयम योगों की रक्षा के लिए यतनाशील एवं अप्राप्त संयमयोगों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नवान, विनय का आचरण करने वाला तथा क्षमा आदि गुणों की प्रवृत्ति से युक्त ऐसा भिक्षाचर्या में तत्पर भिक्षुक अनेक घरों में भ्रमण करके थोड़ी-थोड़ी भिक्षा ग्रहण करे।

भिक्खायरियं उंछं घेत्तूण आगओ गुरुजणस्स पासं गमणा-गमणाइयारे पडिक्कमणपडिक्कंते आलोयणदायणं य दाऊण गुरुजणस्स गुरुसंदिट्ठस्स वा जहोवएसं णिरइयारं च अप्पमत्तो पुणरवि अणेसणाए पयओ पडिक्कमित्ता।

भिक्षा ग्रहण करके अपने स्थान पर गुरुजन के समक्ष जाने-आने में लगे हुए अतिचारों दोषों का प्रतिक्रमण करे। गृहीत-आहार-पानी की आलोचना करे। आहार-पानी उन्हें दिखला दे, फिर गुरुजन के अथवा गुरुजन द्वारा निर्दिष्ट किसी अग्रगण्य साधु के आदेश के अनुसार सब अतिचारों-दोषों की निवृत्ति के लिए पुनः प्रतिक्रमण (कायोत्सर्ग) करे।

संजमेणं णिच्चं पडिलेहण-पप्फोडण-पमज्जणयाए अहो य राओ य अप्पमत्तेण होइ सययं णिक्खियव्वं च गिण्हियव्वं च भायणभंडोवहिउवगरणं ।

एवं आयाणभंडणिक्खेवणासमिइजोगेण भाविओ भवइ अन्तरप्पा असबलमसंकिलिट्ठ णिव्वणचरित्तभावणाए अहिंसए संजए सुसाहू ।

—पण्ह. सु. २, अ. १, सु. ७-११

धारण—ग्रहण करना चाहिए। (शोभावृद्धि आदि किसी अन्य प्रयोजन से नहीं)। साधु सदैव इन उपकरणों के प्रतिलेखन, प्रस्फोटन—झटकने और प्रमार्जन करने में, दिन में और रात्रि में सतत अप्रमत्त रहे और भाजन—पात्र, भाण्ड—मिट्टी के बरतन, उपधि—वस्त्र आदि तथा अन्य उपकरणों को यतनापूर्वक रखे या उठाए।

इस प्रकार **आदान निक्षेपण समिति** के योग से भावित अन्तरात्मा—अन्तःकरण वाला साधु निर्मल, असंक्लिष्ट तथा अखण्ड (निरतिचार) चारित्र की भावना से युक्त अहिंसक संयमशील सुसाधु होता है।

उवसंहारो—

४०२. एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं ।
इमेहिं पंचहि वि कारणेहिं मण-वयण-काय परिरक्खिएहिं णिच्चं आमरणंतं च एस जोगो णेयव्वो धिइमया मइमया अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो सुद्धो सव्वजिणमणुण्णाओ ।

एवं पढमं संवरदारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं आराहियं आणाए अणुपालियं भवइ ।
एवं णायमुणिणा भगवया पण्णवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धं सिद्धवरसासणमिणं आघवियं सुदेसियं पसत्थं ।

—पण्ह. सु. २, अ. १, सु. १२-१४

उपसंहार—

४०२. इस प्रकार मन, वचन और काय से सुरक्षित इन पाँच भावना रूप उपायों से यह अहिंसा-संवरद्वार पालित-सुप्रणिहित होता है। अतएव धैर्यशाली और मतिमान पुरुष को सदा जीवन पर्यन्त सम्यक् प्रकार से इसका पालन करना चाहिए। यह अनास्रव है, अर्थात् नवीन कर्मों के आस्रव को रोकने वाला है, दीनता से रहित है, कलुष-मलीनता से रहित और अच्छिद्र-अनास्रवरूप है, अपरिस्रावी—कर्मरूपी जल के आगमन को अवरुद्ध करने वाला है, मानसिक संक्लेश से रहित है, शुद्ध है और सभी तीर्थंकरों द्वारा अनुज्ञात-अभिमत है।

पूर्वोक्त प्रकार से प्रथम संवरद्वार स्पृष्ट होता है, पालित होता है, शोधित होता है, तीर्ण—पूर्ण रूप से पालित होता है, कीर्तित, आराधित और (जिनेन्द्र भगवान की) आज्ञा के अनुसार पालित होता है। ऐसा भगवान् ज्ञात मुनि—महावीर ने प्रज्ञापित किया है एवं प्ररूपित किया है। यह सिद्धवरशासन प्रसिद्ध है, सिद्ध है, बहुमूल्य है, सम्यक् प्रकार से उपदिष्ट है और प्रशस्त है।

सत्त-सत्तविहे आरम्भे, सारम्भे, समारम्भे—

४०३. सत्तविहे आरम्भे पण्णत्ते, तं जहा—

१. **पुढवीकाइय आरम्भे,** २. **आउकाइय आरम्भे,**
३. **तेउकाइय आरम्भे,** ४. **वाउकाइय आरम्भे,**
५. **वणस्सइकाइय आरम्भे,** ६. **तसकाइय आरम्भे,**
७. **अजीवकाइय आरम्भे ।**

सत्तविहे सारम्भे पण्णत्ते, तं जहा-पुढविकाइयसारम्भे -जाव- अजीवकाइयसारम्भे ।

सत्तविहे समारम्भे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयसमारम्भे -जाव- अजीवकाइयसमारम्भे । —ठाणं. अ. ७, सु. ५७१

आरम्भ-सारम्भ-समारम्भ के सात-सात प्रकार—

४०३. आरम्भ सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

(१) पृथ्वीकायिक-आरम्भ, (२) अप्कायिक-आरम्भ,
(३) तेजस्कायिक-आरम्भ, (४) वायुकायिक-आरम्भ,
(५) वनस्पतिकायिक-आरम्भ (६) त्रसकायिक-आरम्भ,
(७) अजीवकाय-आरम्भ।

सारम्भ सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
पृथ्वीकायिक-सारम्भ—यावत्—अजीवकाय सारम्भ।
समारम्भ सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—
पृथ्वीकायिक-समारम्भ—यावत्—अजीवकाय समारम्भ।

सत्त, सत्तविहे अणारंभे, असारंभे, असमारंभे य—

४०४. सत्तविहे अणारम्भे पण्णत्ते, तं जहा—

१. **पुढविकाइयअणारंभे,** २. **आउकाइयअणारम्भे,**

अनारंभ असारंभ और असमारंभ के सात-सात प्रकार—

४०४. अनारम्भ सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—

(१) पृथ्वीकायिक अनारम्भ, (२) अप्कायिक अनारम्भ,

३. तेउकाइयअणारम्भे, ४. वाउकाइयअणारम्भे,
५. वणस्सइकाइयअणारम्भे, ६. तसकाइयअणारम्भे,
७. अजीवकाइयअणारम्भे,

सत्तविहे असारंभे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयअसारंभे -जाव-अजीवकाइयअसारंभे।

सत्तविहे असमारंभे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइयअसमारंभे -जाव-अजीवकाइय असमारंभे। —ठाणं. अ. ७, सु. ५७१

(३) तेजस्कायिक अनारम्भ, (४) वायुकायिक अनारम्भ, (५) वनस्पतिकायिक अनारम्भ, (६) त्रसकायिक अनारम्भ, (७) अजीवकाय अनारम्भ।

असारम्भ सात प्रकार का कहा गया है। जैसे पृथ्वीकायिक असारम्भ—यावत्—अजीवकाय असारम्भ।

असमारम्भ सात प्रकार का कहा गया है। जैसे—पृथ्वीकायिक असमारम्भ—यावत्—अजीवकाय असमारम्भ।

अट्ठसुहुमजीवाणं हिंसा णिसेहो—

४०५. अट्ठ सुहुमाइं पेहाए, जाइं जाणित्तु संजए।
दयाहिगारी भूएसु, आस चिट्ठ सएहि वा॥

आठ सूक्ष्म जीवों की हिंसा का निषेध—

४०५. संयमी मुनि आठ प्रकार के सूक्ष्म (शरीर वाले जीवों) को देखकर बैठे, खड़ा हो और सोए। इन सूक्ष्म-शरीर वाले जीवों को जानने पर ही कोई सब जीवों की दया का अधिकारी होता है।

अट्ठ सुहुमाइं—

प०—कयराइं अट्ठ सुहुमाइं, जाइं पुच्छेज्ज संजए।
इमाइं ताइं मेहावी, आइक्खेज्ज वियक्खणो॥

उ०—१ सिणेहं २ पुप्फसुहुमं च, ३-४ पाणुत्तिंगं तहेव य।
५ पणगं ६ बीयं ७ हरियं च, ८ अंडसुहुमं च अट्ठमं॥[1]

एवमेयाणि जाणित्ता, सव्वभावेण संजए।
अप्पमत्तो जए निच्चं, सव्विंदियसमाहिए॥
—दस. अ. ८, गा १३-१६

आठ सूक्ष्म—

प्र०—वे आठ सूक्ष्म कौन-कौन से हैं? संयमी शिष्य यह पूछे तब मेधावी और विचक्षण आचार्य कहे कि वे ये हैं—

उ०—(१) स्नेह, (२) पुष्प, (३) प्राण, (४) उत्तिंग, (५) काई, (६) बीज, (७) हरित, (८) अण्ड—ये आठ प्रकार के सूक्ष्म हैं।

सब इन्द्रियों से समाहित साधु इस प्रकार इन सूक्ष्म जीवों को सब प्रकार से जानकर अप्रमत्त-भाव से सदा यतना करे।

पढमं पाणसुहुमं—

४०६. प०—से किं तं पाणसुहुमे?

उ०—पाणसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. किण्हे, २. नीले, ३. लोहिए, ४. हालिद्दे, ५. सुक्किल्ले।

अत्थि कुंथु अणुद्धरी नामं जा ठिया अचलमाणा छउमत्थाण निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा नो चक्खु-फासं हव्वमागच्छइ।

जा अट्ठिया चलमाणा छउमत्थाण निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा चक्खुफासं हव्वमागच्छइ।

जा छउमत्थेण निग्गंथेण वा, निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वा पडिलेहियव्वा हवइ।

से तं पाणसुहुमे। —दसा. द. ८, सु. ५१

प्रथम प्राण सूक्ष्म—

४०६. प्र०—भगवन्! प्राणि-सूक्ष्म किसे कहते हैं?

उ०—प्राणि-सूक्ष्म पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) कृष्ण वर्ण वाले, (२) नील वर्ण वाले, (३) लाल वर्ण वाले, (४) पीत वर्ण वाले, (५) शुक्ल वर्ण वाले।

सूक्ष्म कुंथुए (पृथ्वी पर चलने वाले द्वीन्द्रियादि सूक्ष्म प्राणी) यदि स्थिर हों, चलायमान न हों, छद्मस्थ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को शीघ्र दृष्टिगोचर नहीं होते हैं।

सूक्ष्म कुंथुए यदि अस्थिर हों, चलायमान हों तो छद्मस्थ निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थियों को शीघ्र दृष्टिगोचर हो जाते हैं।

ये प्राणी-सूक्ष्म छद्मस्थ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के बार-बार जानने योग्य, देखने योग्य और प्रतिलेखन योग्य हैं।

प्राणी सूक्ष्म-वर्णन समाप्त।

---

१ (क) वासावासं पज्जोसवियाणं इह खलु निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा इमाइं अट्ठ सुहुमाइं जाइं छउमत्थेणं निग्गंथेण वा निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वाइं पासियव्वाइं पडिलेहियव्वाइं भवंति, तं जहा—

१. पाणसुहुमं, २. पणगसुहुमं, ३. बीअसुहुमं, ४. हरियसुहुमं,
५. पुप्फसुहुमं, ६. अंडसुहुमं, ७. लेणसुहुमं, ८. सिणेहसुहुमं। —दसा. द. ८, सु. ५०

(ख) इस गाथा में "उत्तिंगसुहुम" है और ठाणं अ. ८ सू. १६ में 'लेणसुहुम" है। यह केवल शब्द भेद है। दोनों का अर्थ समान है।

बीयं पणगसुहुमं—

४०७. प०—से किं तं पणगसुहुमे ?

उ०—पणगसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. किण्हे, २. नीले, ३. लोहिए, ४. हालिद्दे, ५. सुक्किल्ले।

अत्थि पणगसुहुमे तद्दव्वसमाणवण्णे नामं पण्णत्ते।

जे छउमत्थेण निग्गंथेण वा, निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वे पासियव्वे पडिलेहियव्वे भवइ।

से तं पणगसुहुमे। —दसा. द. ८, सु. ५२

द्वितीय पनक सूक्ष्म—

४०७. प्र० भगवन् ! पनक सूक्ष्म किसे कहते हैं ?

उ० पनक सूक्ष्म पाँच प्रकार के कहे गए हैं, यथा—

(१) कृष्ण वर्ण वाले, (२) नील वर्ण वाले, (३) लाल वर्ण वाले, (४) पीत वर्ण वाले, (५) शुक्ल वर्ण वाले।

वर्षा होने पर भूमि, काष्ठ, वस्त्र जिस वर्ण के होते हैं उन पर उसी वर्ण वाली फूलन आती है, अतः उनमें उसी वर्ण वाले जीव उत्पन्न होते हैं।

अतः ये पनक-सूक्ष्म छद्मस्थ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के बार-बार जानने योग्य, देखने योग्य और प्रतिलेखन योग्य हैं।

पनक सूक्ष्म वर्णन समाप्त।

तईयं बीयसुहुमं—

४०८. प०—से किं तं बीअसुहुमे ?

उ०—बीअसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. किण्हे, २. नीले, ३. लोहिए, ४. हालिद्दे, ५. सुक्किल्ले।

अत्थि बीअसुहुमे कण्णिया समाणवण्णए नामं पण्णत्ते।

जे छउमत्थेण निग्गंथेण वा, निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वे पासियव्वे पडिलेहियव्वे भवइ।

से तं बीअसुहुमे। —दसा. द. ८, सु. ५३

तृतीय बीज सूक्ष्म—

४०८. प्र० भगवन् ! बीज-सूक्ष्म किसे कहते हैं ?

उ०—बीज-सूक्ष्म पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) कृष्ण वर्ण वाले, (२) नील वर्ण वाले, (३) लाल वर्ण वाले, (४) पीत वर्ण वाले, (५) शुक्ल वर्ण वाले।

वर्षा काल में शालि आदि धान्यों में समान वर्ण वाले सूक्ष्म जीव उत्पन्न होते हैं वे बीज-सूक्ष्म कहे जाते हैं।

ये बीज-सूक्ष्म छद्मस्थ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के बार-बार जानने योग्य, देखने योग्य और प्रतिलेखन योग्य हैं।

बीज-सूक्ष्म वर्णन समाप्त।

चउत्थं हरियसुहुमं—

४०९. प०—से किं तं हरियसुहुमे ?

उ०—हरियसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. किण्हे, २. नीले, ३. लोहिए, ४. हालिद्दे, ५. सुक्किल्ले।

अत्थि हरियसुहुमे पुढवीसमाणवण्णए नामं पण्णत्ते।

जे छउमत्थेण निग्गंथेण वा, निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वे पासियव्वे पडिलेहियव्वे भवइ।

से तं हरियसुहुमे। —दसा. द. ८, सु. ५४

चतुर्थ हरित सूक्ष्म—

४०९. प्र०—भगवन् ! हरित-सूक्ष्म किसे कहते हैं ?

उ०—हरित-सूक्ष्म पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) कृष्ण वर्ण वाले, (२) नील वर्ण वाले, (३) लाल वर्ण वाले, (४) पीत वर्ण वाले, (५) शुक्ल वर्ण वाले।

ये हरित-सूक्ष्म हरे पत्तों पर पृथ्वी के समान वर्ण वाले होते हैं।

ये हरित-सूक्ष्म छद्मस्थ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के बार-बार जानने योग्य, देखने योग्य और प्रतिलेखन योग्य हैं।

हरित-सूक्ष्म वर्णन समाप्त।

पंचमं पुप्फसुहुमं—

४१०. प०—से किं तं पुप्फसुहुमे ?

उ०—पुप्फसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. किण्हे, २. नीले, ३. लोहिए, ४. हालिद्दे, ५. सुक्किल्ले।

अत्थि पुप्फसुहुमे रुक्खसमाणवण्णे नामं पण्णत्ते,

जे छउमत्थेण निग्गंथेण वा, निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वे पासियव्वे पडिलेहियव्वे भवइ।

से तं पुप्फसुहुमे। —दसा. द. ८, सु. ५५

पंचम पुष्प सूक्ष्म—

४१०. प्र०—भगवन् ! पुष्प-सूक्ष्म किसे कहते हैं ?

उ०—पुष्प-सूक्ष्म पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) कृष्ण वर्ण वाले, (२) नील वर्ण वाले, (३) लाल वर्ण वाले, (४) पीत वर्ण वाले, (५) शुक्ल वर्ण वाले।

ये पुष्प-सूक्ष्म जीव फूलों में वृक्ष के समान वर्ण वाले होते हैं।

ये पुष्प-सूक्ष्म जीव छद्मस्थ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के बार-बार जानने योग्य, देखने योग्य और प्रतिलेखन योग्य हैं।

पुष्प-सूक्ष्म वर्णन समाप्त।

छट्ठं अंडसुहुमं—

४११. प०—से किं तं अंडसुहुमे ?

उ०—अंडसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. उद्दसंडे,
२. उक्कलियंडे,
३. पिपीलिअंडे,
४. हलिअंडे,
५. हल्लोहलिअंडे।

जे छउमत्थेण निग्गंथेण वा, निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वे पासियव्वे पडिलेहियव्वे भवइ।

से तं अंडसुहुमे। —दसा. द. ८, सु. ५६

छठा अण्ड सूक्ष्म—

४११. प्र०—भगवन् ! अण्ड सूक्ष्म किसे कहते हैं ?

उ०—अण्ड सूक्ष्म पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) उद्दंशाण्ड—मधुमक्खी मत्कुण आदि के अण्डे।
(२) उत्कलिकाण्ड—मकड़ी आदि के अण्डे।
(३) पिपीलिकाण्ड—कीड़ी, मकोड़ी आदि के अण्डे।
(४) हलिकाण्ड—छिपकली आदि के अण्डे।
(५) हलोहलिकाण्ड—शरटिका आदि के अण्डे।

ये अण्डसूक्ष्मजीव छद्मस्थ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के बार-बार जानने योग्य, देखने योग्य और प्रतिलेखन योग्य हैं।

अण्ड-सूक्ष्म वर्णन समाप्त।

सत्तमं लयणसुहुमं—

४१२. प०—से किं तं लेणसुहुमे ?

उ०—लेणसुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. उत्तिंगलेणे,
२. भिंगुलेणे,
३. उज्जुए,
४. तालमूलए,
५. संबुक्कावट्टे नामं पंचमे।

जे छउमत्थेण निग्गंथेण वा, निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वे पासियव्वे पडिलेहियव्वे भवइ।

से तं लेणसुहुमे। —दसा. द. ८, सु. ५७

सप्तम लयन सूक्ष्म—

४१२. प्र०—भगवन् ! लयन-सूक्ष्म किसे कहते हैं ?

उ०—लयन-सूक्ष्म पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) उत्तिंगलयन—भूमि में गोलाकार गड्ढे बनाकर रहने वाले, सूंड वाले जीव।

(२) भृगुलयन—कीचड़ वाली भूमि पर जमने वाली पपड़ी के नीचे रहने वाले जीव।

(३) ऋजुक लयन—बिलों में रहने वाले जीव।

(४) तालमूलक लयन—ताल वृक्ष के मूल के समान ऊपर सकड़े, अन्दर से चौड़े बिलों में रहने वाले जीव।

(५) शम्बूकावर्त लयन—शंख के समान घरों में रहने वाले जीव।

ये लयन-सूक्ष्म जीव छद्मस्थ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के बार-बार जानने योग्य, देखने योग्य और प्रतिलेखन योग्य हैं।

लयन-सूक्ष्म वर्णन समाप्त।

अट्ठमं सिणेह सुहुमं—

४१३. प०—से किं तं सिणेह-सुहुमे ?

उ०—सिणेह-सुहुमे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. उस्सा,
२. हिमए,
३. महिया,
४. करए,
५. हरतणुए।

जे छउमत्थेण निग्गंथेण वा, निग्गंथीए वा अभिक्खणं अभिक्खणं जाणियव्वे पासियव्वे पडिलेहियव्वे भवइ।

से तं सिणेह-सुहुमे। —दसा. द. ८, सु. ५८

अष्टम स्नेह सूक्ष्म—

४१३. प्र०—भगवन् ! स्नेह-सूक्ष्म किसे कहते हैं ?

उ०—स्नेह-सूक्ष्म पाँच प्रकार के कहे गये हैं, यथा—

(१) ओस-सूक्ष्म—ओस बिन्दुओं के जीव।
(२) हिम-सूक्ष्म—बर्फ के जीव।
(३) महिका-सूक्ष्म—कुहरा, धुंअर आदि के जीव।
(४) करक-सूक्ष्म—ओला आदि के जीव।
(५) हरित-तृण-सूक्ष्म—हरे घास पर रहने वाले जीव।

ये स्नेह सूक्ष्म जीव छद्मस्थ निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के बार-बार जानने योग्य, देखने योग्य और प्रतिलेखन योग्य हैं।

स्नेह-सूक्ष्म वर्णन समाप्त।

पंचेंदियघायका दसविहं असंजमं कुव्वंति —

४१४. पंचिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स दसविहे असंजमे कज्जति, तं जहा —

१. सोतामयाओ सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति।
२. सोतामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।
३. चक्खुमयाओ सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति।
४. चक्खुमएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।
५. घाणमयाओ सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति।
६. घाणमएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।
७. जिब्भामयाओ सोक्खातो ववरोवेत्ता भवति।
८. जिब्भामएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।
९. फासमायाओ [illegible] ववरोवेत्ता भवति।
१०. फासमएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवति।[1]

—ठाणं. अ. १०, सु. ७१५

पंचेन्द्रिय के घातक दस प्रकार का असंयम करते हैं—

४१४. पंचेन्द्रिय जीवों का घात करने वाले के दस प्रकार का असंयम होता है। जैसे—

(१) श्रोत्रेन्द्रिय सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
(२) श्रोत्रेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से।
(३) चक्षुरिन्द्रिय सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
(४) चक्षुरिन्द्रिय सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से।
(५) घ्राणेन्द्रिय सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
(६) घ्राणेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से।
(७) रसनेन्द्रिय सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
(८) रसनेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से।
(९) स्पर्शनेन्द्रिय सम्बन्धी सुख का वियोग करने से।
(१०) स्पर्शनेन्द्रिय सम्बन्धी दुःख का संयोग करने से।

दसविहे असंजमे—

४१५. दसविहे असंजमे पण्णत्ते, तं जहा—

१. पुढविकाइय असंजमे, २. आउकाइयअसंजमे,
३. तेउकाइयअसंजमे, ४. वाउकाइयअसंजमे,
५. वणस्सतिकाइयअसंजमे, ६. बेइंदियअसंजमे,
७. तेइंदियअसंजमे, ८. चउरिंदियअसंजमे,
९. पंचिंदियअसंजमे, १०. अजीवकायअसंजमे।[2]

—ठाणं. अ. १०, सु. ७०९

दस प्रकार के असंयम—

४१५. असंयम दस प्रकार का कहा गया है। जैसे—

(१) पृथ्वीकायिक असंयम, (२) अप्कायिक असंयम,
(३) तेजस्कायिक असंयम, (४) वायुकायिक असंयम,
(५) वनस्पतिकायिक असंयम, (६) द्वीन्द्रिय असंयम,
(७) त्रीन्द्रिय असंयम, (८) चतुरिन्द्रिय असंयम
(९) पंचेन्द्रिय-असंयम, (१०) अजीवकाय असंयम।

पंचिंदिय अघायका दसविहं संजमं कुव्वंति —

४१६. पंचिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स दसविहे संजमे कज्जति तं जहा—

१. सोतामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति।
२. सोतामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति।
३. चक्खुमयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति।
४. चक्खुमएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति।
५. घाणमयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति।
६. घाणामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति।
७. जिब्भामयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति।

पंचेन्द्रिय जीवों के अघातक दस प्रकार का संयम करते हैं—

४१६. पंचेन्द्रिय जीवों का घात नहीं करने वाले के दस प्रकार का संयम होता है। जैसे—

(१) श्रोत्रेन्द्रिय—सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।
(२) श्रोत्रेन्द्रिय—सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से।
(३) चक्षुरिन्द्रिय—सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।
(४) चक्षुरिन्द्रिय—सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से।
(५) घ्राणेन्द्रिय—सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।
(६) घ्राणेन्द्रिय—सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से।
(७) रसनेन्द्रिय—सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से।

---

१ चउरिंदिया णं जीवा समारभमाणस्स अट्ठविहे असंजमे कज्जति तं जहा—
१ चक्खुमाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवइ, २ चक्खुमएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवइ,
एवं जाव—
७ फासमाओ सोक्खाओ ववरोवेत्ता भवइ, ८ फासमएणं दुक्खेणं संजोगेत्ता भवइ। —ठाणं, अ. ८ सु. ६१५

२ सत्तविहेअसंजमे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविकाइय असंजमे जाव तसकाइय असंजमे, अजीवकाय असंयमे। —ठाण. अ. ७, सु. ५७१

८. जिब्भामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति ।

९. फासमयाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवति ।

१०. फासामएण दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवति ।[1]

—ठाणं. अ. १०, सु. ७१५

(८) रसनेन्द्रिय—सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से ।

(९) स्पर्शनेन्द्रिय—सम्बन्धी सुख का वियोग नहीं करने से ।

(१०) स्पर्शनेन्द्रिय—सम्बन्धी दुःख का संयोग नहीं करने से ।

दसविहे संजमे —

४१७. दसविहे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—

१. पुढविकाइयसंजमे, २. आउकाइयसंजमे,
३. तेउकाइयसंजमे, ४. वाउकाइयसंजमे,
५. वणस्सतिकाइयसंजमे, ६. बेइंदियसंजमे,
७. तेइंदियसंजमे, ८. चउरिंदियसंजमे
९. पंचिंदियसंजमे, १०. अजीवकायसंजमे ।[2]

—ठाणं. अ. १०, सु. ७०९

दस प्रकार के संयम—

४१७. संयम दश प्रकार का कहा गया है। जैसे—

(१) पृथ्वीकायिक संयम, (२) अप्कायिक संयम,
(३) तेजस्कायिक संयम, (४) वायुकायिक संयम,
(५) वनस्पतिकायिक संयम, (६) द्वीन्द्रिय-संयम,
(७) त्रीन्द्रिय-संयम, (८) चतुरिन्द्रिय संयम,
(९) पंचेन्द्रिय संयम, (१०) अजीवकाय-संयम ।

पावसमण-सरूवं—

४१८. सम्मद्दमाणे पाणाणि, बीयाणी हरियाणि य ।
असंजए संजयमन्नमाणे, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥

—उत्त. अ. १७, गा. ६

पाप श्रमण का स्वरूप—

४१८. द्वीन्द्रिय आदि प्राणी तथा बीज और हरियाली का मर्दन करने वाला, असंयमी होते हुए भी अपने आपको संयमी मानने वाला, पाप—श्रमण कहलाता है ।

अन्नउत्थियाणं थेरेहिं सह पुढवी हिंसा विवाओ—

४१९. तए णं ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—"तुब्भे णं अज्जो ! तिविहं तिविहेणं असंजय-जाव-एगंतबाला यावि भवह ।

तए णं ते थेरा भगवंतो ते अन्नउत्थिए एवं वयासी—"केण कारणेणं अम्हे तिविहं तिविहेणं असंजय—जाव—एगंतबाला यावि भव मो ?

तए णं ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—"तुब्भे णं अज्जो ! रीयं रीयमाणा पुढविं पेच्चेह, अभिहणह, वत्तेह, लेसेह, संघट्टेह, परितावेह, किलामेह, उवद्दवेह ।

तए णं तुब्भे पुढविं पच्चेमाणा-जाव-उवद्दवेमाणा तिविहं तिविहेणं असंजय-जाव-एगंतबाला यावि भवह ।"

अन्यतीर्थिकों का स्थविरों के साथ पृथ्वी हिंसा विषयक विवाद—

४१९. तत्पश्चात् उन अन्यतीर्थिकों ने उन स्थविर भगवन्तों से कहा—आर्यो ! (हम कहते हैं कि) तुम ही त्रिविध-त्रिविध असंयत—यावत्—एकान्तबाल हो ।

इस पर उन स्थविर भगवन्तों ने उन अन्यतीर्थिकों से (पुनः) पूछा—आर्यो ! किस कारण से हम त्रिविध-त्रिविध असंयत, —यावत्—एकान्तबाल हैं ?

तब उन अन्यतीर्थिकों ने स्थविर भगवन्तों से यों कहा—"आर्यो ! तुम गमन करते हुए पृथ्वीकायिक जीवों को दबाते (आक्रान्त करते) हो, हनन करते हो, पादाभिघात करते हो, उन्हें भूमि के साथ श्लिष्ट (संघर्षित) करते (टकराते) हो, उन्हें एक दूसरे के ऊपर इकट्ठे करते हो, जोर से स्पर्श करते हो, उन्हें परितापित करते हो, उन्हें मारणान्तिक कष्ट देते हो, और उपद्रवित करते-मारते हो । इस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों को दबाते हुए—यावत्—मारते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध असंयत, —यावत्—एकान्तबाल हो ।"

---

१ चउरिंदिया णं जीवा असमारभमाणस्स अट्ठविहे संजमे कज्जति, तं जहा—चक्खुमाओ सोक्खाओ अववरोवित्ता भवइ चक्खुमएणं दुक्खेणं असंजोएत्ता भवइ एवं जाव—फासमाओ सोक्खाओ अववरोवेत्ता भवइ फासामएणं दुक्खेणं असंजोगेत्ता भवइ । —ठाणं. अ. ८, सु. ६१५

२ सत्तविहे संजमे पण्णत्ते तं जहा—पुढविकाइयसंयमे जाव तसकाइयसंयमे, अजीवकायसंयमे । —ठाणं. अ. ७, सु. ६७१

तए णं ते थेरा भगवंतो ते अन्नउत्थिए एवं वयासी—"नो खलु अज्जो ! अम्हे रीयं रीयमाणा पुढविं पेच्चेमो-जाव-उवद्दवेमो।

तब उन स्थविरों ने उन अन्यतीर्थिकों से यों कहा—आर्यो ! हम गमन करते हुए पृथ्वीकायिक जीवों को दबाते (कुचलते) नहीं,—यावत्—मारते नहीं।

अम्हे णं अज्जो ! रीयं रीयमाणा कायं वा, जोगं वा, रियं वा पडुच्च देसं देसेणं वयामो, पएसं पएसेणं वयामो, "तेणं अम्हे देसं देसेणं वयमाणा, पएसं पएसेणं वयमाणा नो पुढविं पेच्चेमो-जाव-उवद्दवेमो,

हे आर्यो ! हम गमन करते हुए काय (अर्थात्—शरीर के लघुनीति-बड़ीनीति आदि कार्य) के लिए, योग (अर्थात्—ग्लान आदि की सेवा) के लिए, ऋत (अर्थात्—सत्य अप्कायादि-जीव-संरक्षणरूप संयम) के लिए एक देश (स्थल) से दूसरे देश (स्थल) में और एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाते हैं।

तए णं अम्हे पुढविं अपेच्चेमाणा-जाव-अणुवद्दवेमाणा तिविहं तिविहेणं संजय-जाव-एगंतपंडिया यावि भवामो।

इस प्रकार एक स्थल से दूसरे स्थल में और एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाते हुए हम पृथ्वीकायिक जीवों को नहीं दबाते हुए,—यावत्—नहीं मारते हुए हम त्रिविध-त्रिविध संयत, —यावत्—एकान्त-पण्डित हैं। किन्तु हे आर्यो ! तुम स्वयं त्रिविध त्रिविध असंयत,—यावत् – एकान्तबाल हो।"

तुब्भे णं अज्जो ! अप्पणा चेव तिविहं तिविहेणं असंजय-जाव-एगंतबाला यावि भवह।

तए णं ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—"केणं कारणेणं अम्हे तिविहं तिविहेणं असंजय-जाव-एगंतबाला यावि भवामो ?

इस पर उन अन्यतीर्थिकों ने उन स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार पूछा "आर्यो ! हम किस कारण से त्रिविध-त्रिविध असंयत,—यावत्—एकान्तबाल हैं ?"

तए णं थेरा भगवंतो ते अन्नउत्थिए एवं वयासी—"तुब्भे णं अज्जो ! रीयं रीयमाणा पुढविं पेच्चेह-जाव-उवद्दवेह, तए णं तुब्भे पुढविं पेच्चेमाणा-जाव-उवद्दवेमाणा तिविहं तिविहेणं असंजय-जाव-एगंतबाला यावि भवह।

तब स्थविर भगवन्तों ने उन अन्यतीर्थिकों से यों कहा — "आर्यो ! तुम गमन करते हुए पृथ्वीकायिक जीवों को दबाते हो, — यावत्—मार देते हो। इसलिए पृथ्वीकायिक जीवों को दबाते हुए,—यावत्—मारते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध असंयत, — यावत् - एकान्तबाल हो।"

तए णं ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—"तुब्भे णं अज्जो ! गम्ममाणे अगते, वीतिक्कमिज्जमाणे अवीतिक्कंते, रायगिहं नगरं संपाविउकामे असंपत्ते ?"

इस पर वे अन्यतीर्थिक उन स्थविर भगवन्तों से यों बोले—हे आर्यो ! तुम्हारे मत में (जाता हुआ), अगत (नहीं गया) कहलाता है, जो लांघा जा रहा है, वह नहीं लांघा गया कहलाता है, और राजगृह को प्राप्त करने (पहुँचने) की इच्छा वाला पुरुष असम्प्राप्त (नहीं पहुँचा हुआ) कहलाता है।

तए णं ते थेरा भगवंतो ते अन्नउत्थिए एवं वयासी—"नो खलु अज्जो ! अम्हं गम्ममाणे अगते, वीतिक्कमिज्जमाणे अवीतिक्कंते रायगिहं नगरं संपाविउकामे असंपत्ते,"

तत्पश्चात् उन स्थविर भगवन्तों ने उन अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार कहा—आर्यो ! हमारे मत में जाता हुआ, अगत नहीं कहलाता, उल्लंघन किया जाता हुआ, उल्लंघन नहीं किया नहीं कहलाता। इसी प्रकार राजगृह नगर को प्राप्त करने की इच्छा वाला व्यक्ति असम्प्राप्त नहीं कहलाता।

अम्हं णं अज्जो गम्ममाणे गए, वीतिक्कमिज्जमाणे वीतिक्कंते, रायगिहं नगरं संपाविउकामे संपत्ते, तुब्भं णं अप्पणा चेव गम्ममाणे अगए, वीतिक्कमिज्जमाणे अवीतिक्कंते रायगिहं नगरं संपाविउकामे असंपत्ते।

हमारे मत में तो, आर्यो ! जाता हुआ "गत", लांघता हुआ "व्यतिक्रान्त", और राजगृह नगर को प्राप्त करने की इच्छा वाला व्यक्ति सम्प्राप्त कहलाता है। हे आर्यो ! तुम्हारे ही मत में जाता हुआ "अगत", लांघता हुआ "अव्यतिक्रान्त" और राजगृह नगर को प्राप्त करने की इच्छा वाला असम्प्राप्त कहलाता है।

तए णं ते थेरा भगवन्तो ते अन्नउत्थिए एवं पडिहणेंति।

—वि. स. ८, उ. ७, सु. १६-२४

तदनन्तर उन स्थविर भगवन्तों ने उन अन्यतीर्थिकों को प्रतिहत (निरुत्तर) किया।

द्वितीय महाव्रत

द्वितीय महाव्रत स्वरूप एवं आराधना

बिइय-महव्वय-आराहण पइण्णा—

४२०. अहावरे दोच्चे भंते ! महव्वए मुसावायाओ वेरमणं ।
सव्वं भंते ! मुसावायं पच्चक्खामि ॥
से कोहा वा, लोहा वा भया वा हासा वा ।
से य मुसावाए चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—
१. दव्वओ, २. खेत्तओ, ३. कालओ, ४. भावओ ।
१. दव्वओ सव्वदव्वेसु,
२. खेत्तओ लोगे वा अलोगे वा,
३. कालओ दिया वा राओ वा,
४. भावओ कोहेण वा, लोहेण वा, भएण वा, हासेण वा,

नेव सयं मुसं वएज्जा, नेवन्नेहिं मुसं वायावेज्जा, मुसं वयंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं[२] वायाए[३] काएणं[४] न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि ।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

दोच्चे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं ।[५] —दस. अ. ४, सु. १२

द्वितीय महाव्रत के आराधक की प्रतिज्ञा—

४२०. भन्ते ! इसके पश्चात् दूसरे महाव्रत में मृषावाद की विरति होती है । भन्ते ! मैं सर्व मृषावाद का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

वह क्रोध से हो या लोभ से, भय से हो या हास्य से ।

मृषावाद चार प्रकार के हैं—

(१) द्रव्य से, (२) क्षेत्र से, (३) काल से, (४) भाव से ।

(१) द्रव्य से सर्व द्रव्य के सम्बन्ध में,
(२) क्षेत्र से लोक में या अलोक में,
(३) काल से दिन में या रात में,
(४) भाव से क्रोध या लोभ से, भय से या हास्य से

मैं स्वयं असत्य नहीं बोलूंगा, दूसरों से असत्य नहीं बुलवाऊँगा और असत्य बोलने वालों का अनुमोदन भी नहीं करूँगा, यावज्जीवन के लिए, तीन करण तीन योग से—मन से, वचन से, काया से—न करूँगा, न कराऊँगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूँगा ।

भन्ते ! मैं अतीत के मृषावाद से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और (कषाय) आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

भन्ते ! मैं दूसरे महाव्रत में उपस्थित हुआ हूँ । इसमें सर्व मृषावाद की विरति होती है ।

मुसावाय विरमणमहव्वयस्स पंच भावणाओ—

४२१. अहावरं दोच्चं (भंते) महव्वयं पच्चक्खामि सव्वं मुसावायं वइदोसं । से कोहा वा लोभा वा भया वा हासा वा णेव सयं मुसं भासेज्जा, णेवऽण्णेणं मुसं भासावेज्जा, अण्णंपि मुसं भासंतं ण समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणसा वयसा कायसा ।

मृषावाद विरमण महाव्रत की पाँच भावना—

४२१. इसके पश्चात् भगवन ! मैं द्वितीय महाव्रत स्वीकार करता हूँ । आज मैं सब प्रकार से मृषावाद (असत्य) और सदोष-वचन का प्रत्याख्यान (त्याग) करता हूँ । (इस सत्य महाव्रत के पालन के लिए) साधु क्रोध से, लोभ से, भय से या हास्य से न तो स्वयं मृषा (असत्य) बोले, न ही अन्य व्यक्ति से असत्य भाषण बुलवाए और जो व्यक्ति असत्य बोलता है, उसका अनुमोदन भी न करे । इस प्रकार यावज्जीवन तीन करणों से तथा मन-वचन-काया, इन तीनों योगों से मृषावाद का सर्वथा त्याग करे ।

---

१ मुसावाओ य लोगम्मि सव्वसाहूहिं गरहिओ । अविस्सासो य भूयाणं तम्हा मोसं विवज्जए ॥ —दस. अ. ६, गा. १२

२ मन से असत्य चिन्तन न करना, ३ वचन से असत्य न बोलना, ४ काया से असत्य आचरण न करना ।

५ निच्चकालऽप्पमत्तेणं, मुसावायविवज्जणं । भासियव्वं हियं सच्चं, निच्चाउत्तेण दुक्करं ॥

—उत्त. अ. १६, गा. २७

तस्स भंते ! पडिक्कमामि-जाव-वोसिरामि ।

इस प्रकार मृषावाद-विरमण रूप द्वितीय महाव्रत स्वीकार करके हे भगवन् ! मैं (पूर्वभाषित मृषावाद रूप) पाप का प्रतिक्रमण करता हूँ,—यावत्—अपनी आत्मा से मृषावाद का सर्वथा व्युत्सर्ग (पृथक्करण) करता हूँ ।

तस्सिमाओ पंच भावणाओ भवंति ।

उस द्वितीय महाव्रत की पाँच भावनाएँ होती हैं—

१. तत्थिमा पढमा भावणा अणुवीयि भासी से णिग्गंथे, णो अणणुवीयि भासी ।

(१) उन पाँचों में से पहली भावना इस प्रकार है—वक्तव्य के अनुरूप चिन्तन करके बोलता है, वह निर्ग्रन्थ है, बिना चिन्तन किये बोलता है, वह निर्ग्रन्थ नहीं है ।

केवली बूया—अणणुवीयि भासी से णिग्गंथे समावज्जेज्जा मोसं वयणाए । अणुवीयि भासी से णिग्गंथे, णो अणणुवीयि भासी त्ति पढमा भावणा ।

केवली भगवान् ने कहा है—बिना विचारे बोलने वाले निर्ग्रन्थ को मिथ्या भाषण का दोष लगता है । अतः वक्तव्य विषय के अनुरूप चिन्तन करके बोलने वाला साधक ही निर्ग्रन्थ कहला सकता है, बिना चिन्तन किये बोलने वाला नहीं । यह प्रथम भावना है ।

२. अहावरा दोच्चा भावणा कोहं परिजाणति से णिग्गंथे, णो कोहणे सिया ।

(२) इसके पश्चात् दूसरी भावना इस प्रकार है—क्रोध का कटुफल जानकर उसका परित्याग कर देता है, वह निर्ग्रन्थ है । इसलिए साधु को क्रोधी नहीं होना चाहिए ।

केवली बूया—कोहपत्ते कोही समावदेज्जा मोसं वयणाए । अणुवीयि भासी ? से णिग्गंथे णो य कोहणाए सि (य) त्ति दोच्चा भावणा ।

केवली भगवान् ने कहा है—क्रोध आने पर क्रोधी व्यक्ति आवेशवश असत्य वचन का प्रयोग कर देता है । अतः जो साधक क्रोध का अनिष्ट स्वरूप जानकर उसका परित्याग कर देता है, वही निर्ग्रन्थ कहला सकता है, क्रोधी नहीं, यह द्वितीय भावना है ।

३. अहावरा तच्चा भावणा—लोभं परिजाणति से णिग्गंथे णो य लोभणाए सिया ।

(३) तदनन्तर तृतीय भावना यह है—जो साधक लोभ का दुष्परिणाम जानकर उसका परित्याग कर देता है, वह निर्ग्रन्थ है, अतः साधु लोभग्रस्त न हो ।

केवली बूया—लोभपत्ते लोभी समावदेज्जा मोसं वयणाए । लोभं परिजाणति से णिग्गंथे णो य लोभणाए सि (य) त्ति तच्चा भावणा ।

केवली भगवान् ने कहा है—कि लोभ प्राप्त व्यक्ति लोभावेशवश असत्य बोल देता है । अतः जो साधक लोभ का अनिष्ट स्वरूप जानकर उसका परित्याग कर देता है, वही निर्ग्रन्थ है, लोभाविष्ट नहीं । यह तीसरी भावना है ।

४. अहावरा चउत्था भावणा—भयं परिजाणति से णिग्गंथे णो य भयभीरुए सिया ।

(४) इसके बाद चौथी भावना यह है—जो साधक भय का दुष्फल जानकर उसका परित्याग कर देता है, वह निर्ग्रन्थ है । अतः साधक को भयभीत नहीं होना चाहिए ।

केवली बूया—भयपत्ते भीरू समावदेज्जा मोसं वयणाए । भयं परिजाणति से णिग्गंथे, णो य भयभीरुए सिया, चउत्था भावणा ।

केवली भगवान् का कहना है—भय-प्राप्त भीरु व्यक्ति भयाविष्ट होकर असत्य बोल देता है । अतः जो साधक भय का यथार्थ अनिष्ट स्वरूप जानकर उसका परित्याग कर देता है, वही निर्ग्रन्थ है, न कि भयभीत । यह चौथी भावना है ।

५. अहावरा पंचमा भावणा—हासं परिजाणति से णिग्गंथे णो य हासणाए सिया ।

(५) इसके अनन्तर पाँचवी भावना यह है—जो साधक हास्य के अनिष्ट परिणाम को जानकर उसका परित्याग कर देता है, वह निर्ग्रन्थ कहलाता है, अतएव निर्ग्रन्थ को हँसोड़ नहीं होना चाहिए ।

केवली बूया—हासपत्ते हासी समावदेज्जा मोसं वयणाए। हासं परिजाणति से निग्गंथे णो य हासणाए सिय त्ति पंचमा भावणा।[1]

केवली भगवान् का कथन है-हास्यवश हँसी करने वाला व्यक्ति असत्य भी बोल देता है। इसलिए जो मुनि हास्य का अनिष्ट स्वरूप जानकर उसका त्याग कर देता है, वह निर्ग्रन्थ है, न कि हंसी मजाक करने वाला। यह पाँचवी भावना है।

एत्ताव ताव (दोच्चं) महव्वयं सम्मं काएणं फासिते पालिते तीरिए किट्टिते अवट्ठिते आणाए आराहिते यावि भवति।

इस प्रकार इन पाँच भावनाओं से विशिष्ट साधक द्वारा स्वीकृत मृषावाद विरमण रूप द्वितीय सत्य महाव्रत का काया से सम्यक्-स्पर्श (आचरण) करने, उसका पालन करने, गृहीत महाव्रत को भलीभाँति पार लगाने, उसका कीर्तन करने एवं उसमें अन्त तक अवस्थित रहने पर भगवद् आज्ञा के अनुरूप आराधन हो जाता है।

दोच्चे भंते! महव्वए मुसावायाओ वेरमणं।

—आ. सु. २, अ. १५, सु. ७८०-७८२

हे भगवन्! यह मृषावाद विरमण रूप द्वितीय महाव्रत है।

सच्चवयणस्स परूवगा आराहगा य—

सत्य संवर के प्ररूपक और आराधक—

४२२. तं सच्चं भगवं तित्थयरसुभासियं दसविहं,[2]

४२२. (१) यह सत्य भगवान् तीर्थंकरों द्वारा दस प्रकार का कहा गया है।

चोद्दसपुव्वीहिं पाहुडत्थविइयं, महरिसीण य समयप्पइण्णं,

(२) चतुर्दश पूर्वधरों ने प्राभृतों में प्रतिपादित सत्य के अंश को जाना है। महर्षियों ने सत्य का सिद्धान्त रूप में प्रतिपादित किया है।

देविंद-नरिंद-भासियत्थं, वेमाणियसाहियं, महत्थं, मंतोसहि-विज्जा-साहणत्थं, चारणगण-समण-सिद्धविज्जं, मणुयगणाणं वंदणिज्जं, अमरगणाणं अच्चणिज्जं, असुरगणाणं पूयणिज्जं, अणेगपासंडिपरिग्गहियं जं तं लोगम्मि सारभूयं।

—पण्ह. सु. २, अ. २, सु. ४

देवेन्द्रों और नरेन्द्रों ने सत्य को पुरुषार्थ साध्य कहा है। वैमानिक देवों ने सत्य का महान् प्रयोजन साध लिया है। सत्य मन्त्र, औषधी तथा विद्याओं की साधना कराने वाला है। विद्याधरों चारणों एवं श्रमणों की विद्याएँ सत्य से ही सिद्ध होती हैं। सत्य मनुष्यों के लिए वन्दनीय है, देवों के लिए अर्चनीय है और असुरों के लिए पूजनीय है। अनेक पाखण्डियों ने भी सत्य को ग्रहण किया है। सत्य लोक में सारभूत है।

सच्चवयणस्स महप्पं—

सत्य वचन की महिमा—

४२३. जंबू! बिइयं य सच्चवयणं सुद्धं सुचियं सिवं सुजायं सुभासियं सुव्वयं सुकहियं सुदिट्ठं सुपइट्ठियं सुपइट्ठियजसं सुसंजमिय-वयण-बुइयं सुरवर-नरवसभ-पवरबलवग-सुविहिय-जण-बहुमयं, परमसाहुधम्मचरणं, तव-णियम-परिग्गहियं सुगइपहदेसगं य लोगुत्तमं वयमिणं।

४२३. हे जम्बू! द्वितीय संवरद्वार सत्य है।

यह सत्य वचन शुद्ध है, पवित्र है, शिव है, सुजात है, सुभाषित है, सुव्रत है, सुकथित है, सुदृष्ट है सुप्रतिष्ठित है, सुप्रतिष्ठित यशवाला है, अत्यन्त संयत वचनों द्वारा कथित है, उत्तम देवों, उत्तम पुरुषों, बलवानों तथा सुविहित जनों द्वारा सम्मत है, परम साधुजनों का धर्मानुष्ठान है, तप और नियमों द्वारा गृहीत है, सद्गति का पथ प्रदर्शक है और यह व्रत लोक में उत्तम है।

—प. सु. २, अ. २, सु. १—३

---

१ (क) समवायांग सूत्र में द्वितीय महाव्रत की पाँच भावनाएँ इस प्रकार हैं—

(१) अनुवीचिभाषण, (२) क्रोधविवेक, (३) लोभविवेक, (४) भयविवेक, (५) हास्यविवेक।

—सम. सम. २५, सु. १

(ख) प्रश्नव्याकरण सूत्र में इस महाव्रत की भावनाएँ आचारांग सूत्र की तरह ही है। —प. सु. २, अ. २, सु. ११—१५

विस्तृत पाठ परिशिष्ट में देखें।

२ ठाणं. अ. १०, सु. ७४१।

विज्जाहर-गगणगमण-विज्जाण साहकं सग्गमग्ग-सिद्धिपहदेसगं अवितहं,

यह सत्य वचन विद्याधरों की आकाशगामिनी विद्या की सिद्धियों में साधन रूप है। स्वर्गमार्ग और सिद्धिमार्ग का दर्शक है। असत्य से रहित है।

तं सच्चं उज्जुयं अकुडिलं भूयत्थं अत्थओ विसुद्धं उज्जोयकरं पभासगं भवइ सव्वभावाणं जीवलोए, अविसंवाइ।

यह सत्य सरल है, अकुटिल है, वास्तविक अर्थ का प्रतिपादक है, प्रयोजन से शुद्ध है, उद्योत करने वाला है, जीव लोक में समस्त भावों को प्रकाशित करने वाला है, अविसंवादी है,

जहत्थमहुरं पच्चक्खं दवियं व जं तं अच्छेरकारगं

यथार्थ में मधुर है। प्रत्यक्ष देवता के समान है, आश्चर्यजनक कार्यों का साधक है।

१. अवत्थंतरेसु बहुएसु मणुसाणं, सच्चेण महासमुद्दमज्झे वि मूढाणिया वि पोया।

(१) अनेक अवस्थाओं में मनुष्य सत्य के प्रभाव से महासमुद्र के मध्य में रहा हुआ भी डूबता नहीं है।

२. सच्चेण य उदगसंभमम्मि वि ण वुज्झइ ण य मरंति थाहं ते लहंति।

(२) सत्य के प्रभाव से समुद्र में भूले हुए जहाज और उनके चलाने वाले पानी के भँवरों में भी डूबते नहीं हैं, मरते नहीं हैं और किनारे लग जाते हैं।

३. सच्चेण य अगणिसंभमम्मि वि ण डज्झंति उज्जुगा मणुस्सा।

(३) सत्य के प्रभाव से मनुष्य अग्नि का क्षोभ होने पर भी जलता नहीं है।

४. सच्चेण य तत्ततेल्ल-तउ-लोह-सीसगाइं छिवंति धरेंति ण य डज्झंति मणुस्सा।

(४) सत्य के प्रभाव से सरल मनुष्य तपे हुए तेल, ताँबा, लोहा या सीसे को छुए या हथेली पर रखे तो भी जलता नहीं है।

५. सच्चेण य मणुस्सा पव्वयकडकाहिं मुच्चंते ण य मरंति।

(५) सत्य के प्रभाव से पर्वत पर से गिराये गए मनुष्य मरते नहीं हैं।

६. सच्चेण य परिग्गहिया असिपंजरगया समराओ वि णिइंति अणहा य सच्चवाई।

(६) सत्य के प्रभाव से समर में शत्रुओं के मध्य में फंसा हुआ मनुष्य भी बिना घाव लगे निकल जाता है।

७. वहबंधभियोगवेर-घोरेहिं पमुच्चंति य।

(७) सत्यवादी पुरुष प्रबल शत्रुओं द्वारा की जाने वाली मारपीट, बन्धन और बलात्कार से भी मुक्त हो जाता है।

८. अमित्तमज्झाहिं णिइंति अणहा य सच्चवाई।

(८) सत्यवादी शत्रुओं के मध्य में आया हुआ भी निर्दोष निकल आता है।

९. देवाणि य देवयाओ करेंति सहायं सच्चवयणे रत्ताणं।

—पण्ह. सु. २, अ. २, सु. १-३

(९) सत्यवादी की देवता भी सहायता करते हैं।

सच्चवयणस्स छ उवमाओ—

सत्य वचन की छ उपमायें—

४२४. १. गंभीरयरं महासमुद्दाओ,

२. थिरयरगं मेरुपव्वयाओ,

३. सोमयरगं चंदमंडलाओ,

४. दित्तयरं सूरमंडलाओ,

५. विमलयरं सरयणहयलाओ,

६. सुरभियरं गंधमायणाओ।

४२४. (१) सत्य महासागर से भी अधिक गम्भीर है,

(२) सत्य सुमेरु से भी अधिक स्थिर है,

(३) सत्य चन्द्रमण्डल से भी अधिक सौम्य है,

(४) सत्य सूर्यमण्डल से भी अधिक दीप्तिमान है,

(५) सत्य शरद ऋतु के आकाश मण्डल से भी अधिक निर्मल है,

(६) सत्य गन्धमादन पर्वत से भी अधिक सुगन्धमय है।

जे वि य लोगम्मि अपरिसेसा मंतजोगा जवा य विज्जा य जंभगा य अत्थाणि य सत्थाणि य सिक्खाओ य आगमा य सव्वाइं पि ताइं सच्चे पइट्ठियाइं।

—प. सु. २, अ. २, सु. ५-६

लोक में जितने भी मन्त्र योग जाप, विद्या, जृम्भक देव, अस्त्र-शस्त्र, शिक्षा, कला और आगम हैं वे सब सत्य में प्रतिष्ठित हैं।

अवत्तव्वं सच्चं—

४२५. सच्चं वि य संजमस्स उवरोधकारगं किंचि न वत्तव्वं हिंसा-सावज्जसंपउत्तं भेय-विकहकारगं अणत्थ-वाय-कलह-कारगं अणज्जं, अववाय-विवायसंपउत्तं वेलंबं ओजधेज्ज बहुलं णिल्लज्जं लोयगरहणिज्जं दुद्दिट्ठं दुस्सुयं अमुणियं। अप्पणो थवणा, परेसु णिंदा,

ण तंसि मेहावी, ण तंसि धण्णो ण तंसि पियधम्मो, ण तंसि कुलीणो, ण तंसि दाणवई, ण तंसि सूरो, ण तंसि पडिरूवो, ण तंसि लट्ठो, ण पंडिओ, ण बहुस्सुओ, ण वि य तंसि तवस्सी, ण यावि परलोयणिच्छयमई असि, सव्वकालं।

जाइ-कुल-रूव-वाहि-रोगेण वावि जं होई वज्जणिज्जं दुहओ उवयारमइक्कंतं एवंविहं सच्चं वि ण वत्तव्वं।

—प. सु. २, अ. २, सु. ८

अवक्तव्य सत्य—

४२५. (१) संयम का बाधक हो वैसा सत्य कदापि नहीं बोलना चाहिए। हिंसा और सावद्य से युक्त, चारित्र का भेद करने वाला, विकथारूप, वृथा, कलहकारी अनार्य या अन्याय युक्त, अपवाद और विवाद उत्पन्न करने वाला, विडम्बनाजनक, जोश और धृष्टता से युक्त, लज्जाहीन, लोक निन्दनीय, अच्छी तरह न देखा हुआ, अच्छी तरह न सुना हुआ, अच्छी तरह न जाना हुआ, आत्म-प्रशंसा तथा परनिन्दा रूप, ऐसा सत्य वचन भी नहीं बोलना चाहिए।

(२) "तुममें बुद्धि नहीं है, तू धन का लेनदार नहीं है, तू धर्मप्रिय नहीं है, तू कुलीन नहीं है, तू दानी नहीं है, तू शूरवीर नहीं है, तू रूपवान नहीं है, तू पण्डित नहीं है, तू बहुश्रुत नहीं है, तू तपस्वी नहीं है, तू परलोक की दृढ़ श्रद्धा नहीं रखता है" ऐसे वचन कदापि कहने योग्य नहीं है।

(३) जो वचन जाति, कुल, रूप, व्याधि, रोग आदि के कथन द्वारा पर को पीड़ा पहुँचाने वाले हों तथा शिष्टाचार या उपकार का उल्लंघन करें वे वर्जनीय हैं। ऐसा सत्य भी बोलने योग्य नहीं है।

वत्तव्वं सच्चं—

४२६. प०—अह केरिसगं पुणाइ सच्चं तु भासियव्वं?

उ०—जं तं दव्वेहिं पज्जवेहिं य गुणेहिं कम्मेहिं बहुविहेहिं सिप्पेहिं आगमेहि य णामक्खाय-णिवाय-उवसग्ग-तद्धिय-समास-संधि-पद-हेउ-जोगिय-उणाइ-किरिया-विहाण-धाउ-सर-विभत्ति-वण्णजुत्तं तिकल्लं दसविहं पि सच्चं[1] जह भणियं तह य कम्मुणा होइ। दुवालस-विहा होइ भासा,[2] वयणं वि य होइ सोलसविहं।[3]

एवं अरहंतमणुण्णायं समिक्खियं संजएणं कालम्मि य वत्तव्वं।

—प. सु. २, अ. २, सु. ६

वक्तव्य सत्य—

४२६. प्र०—फिर किस प्रकार का सत्य कहना चाहिए?

उ०—जो वचन द्रव्य-पर्याय-गुण कर्म नाना प्रकार के शिल्प और आगम से युक्त हों तथा नाम, आख्यात, निपात, उपसर्ग, तद्धित समास, सन्धि, पद, हेतु, यौगिक उणादि (प्रत्ययविशेष) क्रिया-विधान धातु स्वर विभक्ति वर्ण से युक्त हों अर्थात् जो वचन अर्थ की दृष्टि से और शब्द शास्त्र की दृष्टि से युक्त हों उनका ही प्रयोग करना चाहिए। दस प्रकार के सत्य त्रैकालिक हैं। यह सत्य जिस प्रकार कहा गया है उसी प्रकार का होता है। बारह प्रकार की भाषा और सोलह प्रकार के वचन होते हैं।

इस प्रकार अर्हन्त भगवान् द्वारा अनुज्ञात एवं समीक्षित वचन यथासमय संयमी जनों को बोलने चाहिए।

सच्चवयण फलं—

४२७. इमं च अलिय-पिसुण-फरुस-कडुय-चवलवयण-परिरक्खणट्ठ-याए पावयणं भगवया सुकहियं,

सत्य वचन का फल—

४२७. यह प्रवचन भगवान् ने असत्य, पैशुन्य, कठोर, कटुक तथा विवेकहीन वचनों के निषेध के लिए सम्यक् प्रकार से कहा है।

---

१ (क) ठाणं, अ. १०, सु. ७४१ (ख) पण्ण. पद ११, सु. ८६२

२ पण्ण. प. ११, सु. ८६६ ३ पण्ण. प. ११, सु. ८९६

अत्तहियं पेच्चाभाविर्य आगमेसिभद्दं सुद्धं णेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्ख पावाणं विउसमणं।

—प. सु. २, अ. २, सु. १०

यह प्रवचन आत्म हितकर है, परभव में शुभ फल देने वाला है, भविष्य में कल्याणकारी है, शुद्ध है, न्याय युक्त है, कुटिलता से रहित है, सर्वोत्तम है, समस्त दुःखों और पापों को शान्त करने वाला है।

अप्पमुसावायस्स पायच्छित्तसुत्तं—

४२८. जे भिक्खू लहुसगं मुसं वयइ वयंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. २, सु. १६

अल्पमृषावाद का प्रायश्चित्त सूत्र—

४२८. जो भिक्षु अल्प मृषावाद बोलता है, बुलवाता है, बोलने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

वसुराइयं अवसुराइयं वयमाणस्स पायच्छित्तसुत्ताइं—

४२९. जे भिक्खू वुसिराइयं अवुसिराइयं वयइ वयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अवुसिराइयं वुसिराइयं वयइ वयंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि उ. १६, सु. १४-१५

वसुरात्निक-अवसुरात्निक कथन के प्रायश्चित्त सूत्र—

४२९. जो भिक्षु धनवान को निर्धन कहता है, कहलवाता है, कहने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु निर्धन को धनवान कहता है, कहलवाता है, कहने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विवरीय वयमाणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

४३०. जे भिक्खू णत्थि संभोगवत्तिया[1] किरियत्ति वयइ वयंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ५, सु. ६२

विपरीत कथन का प्रायश्चित्त सूत्र—

४३०. जो भिक्षु "संभोग प्रत्तिया किया नहीं है" ऐसा कहता है, कहलवाता है, कहने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विवरीय पायच्छित्तं वदमाणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

४३१. जे भिक्खू उग्घाइयं अणुग्घाइयं वयइ वयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अणुग्घाइयं उग्घाइयं वयइ वयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू उग्घाइयं अणुग्घाइयं देइ देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अणुग्घाइयं उग्घाइयं देइ देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू उग्घाइय सोच्चा णच्चा संभुंजइ संभुंजंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू उग्घाइय-हेउं सोच्चा णच्चा संभुंजइ संभुंजंतं वा साइज्जइ।

विपरीत प्रायश्चित्त कहने के प्रायश्चित्त सूत्र—

४३१. जो भिक्षु उद्घातिक को अनुद्घातिक कहता है, कहलवाता है, कहने के लिए अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु अनुद्घातिक को उद्घातिक कहता है, कहलवाता है, कहने के लिए अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु उद्घातिक प्रायश्चित्त वाले को अनुद्घातिक प्रायश्चित्त देता है, दिलाता है, देने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु अनुद्घातिक प्रायश्चित्त वाले को उद्घातिक प्रायश्चित्त देता है, दिलाता है, देने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु (किसी अन्य भिक्षु को) उद्घातिक प्रायश्चित्त प्राप्त हुआ है, ऐसा सुनकर या जानकर (उसके साथ) आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु (किसी अन्य भिक्षु के) उद्घातिक प्रायश्चित्त का हेतु सुनकर या जानकर (उसके साथ) आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

---

१ सम्भोग विसम्भोग विधान के लिए देखिये इसी अनुयोग के "संघव्यवस्था" में "गणव्यवस्था" के "सम्भोग विधान" विषय में।

जे भिक्खू उग्घाइय-संकप्पं सोच्चा णच्चा संभुंजइ संभुंजंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु (किसी अन्य भिक्षु का) उद्घातिक प्रायश्चित्त का संकल्प सुनकर या जानकर (उसके साथ) आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जे भिक्खू उग्घाइयं वा उग्घाइय-हेउं वा उग्घाइय-संकप्पं वा सोच्चा णच्चा संभुंजइ संभुंजंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु (किसी अन्य भिक्षु के) उद्घातिक प्रायश्चित्त; उद्घातिक प्रायश्चित्त का हेतु या उद्घातिक प्रायश्चित्त का संकल्प सुनकर या जानकर (उसके साथ) आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जे भिक्खू अणुग्घाइयं सोच्चा णच्चा संभुंजइ संभुंजंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु (किसी अन्य भिक्षु को) अनुद्घातिक प्रायश्चित्त प्राप्त हुआ है, ऐसा सुनकर या जानकर (उसके साथ) आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है ।'

जे भिक्खू अणुग्घाइय-हेउं सोच्चा णच्चा संभुंजइ संभुंजंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु (किसी अन्य भिक्षु के) अनुद्घातिक प्रायश्चित्त का हेतु सुनकर या जानकर (उसके साथ) आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जे भिक्खू अणुग्घाइय-संकप्पं सोच्चा णच्चा संभुंजइ संभुंजंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु (किसी अन्य भिक्षु का) अनुद्घातिक प्रायश्चित्त, का संकल्प सुनकर या जानकर (उसके साथ) आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जे भिक्खू अणुग्घाइयं वा अणुग्घाइय-हेउं वा अणुग्घाइय-संकप्पं वा सोच्चा णच्चा संभुंजइ संभुंजंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु (किसी अन्य भिक्षु के) अनुद्घातिक प्रायश्चित्त, अनुद्घातिक प्रायश्चित्त का हेतु या अनुद्घातिक प्रायश्चित्त का संकल्प सुनकर या जानकर (उसके साथ) आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जे भिक्खू उग्घाइयं वा अणुग्घाइयं वा सोच्चा णच्चा संभुंजइ संभुंजंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु (किसी अन्य भिक्षु को) उद्घातिक प्रायश्चित्त और अनुद्घातिक प्रायश्चित्त प्राप्त हुआ है, ऐसा सुनकर या जानकर (उसके साथ) आहार करता है, करवाता है, या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जे भिक्खू उग्घाइय-हेउं वा अणुग्घाइय-हेउं वा सोच्चा णच्चा संभुंजइ संभुंजंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु (किसी अन्य भिक्षु को) उद्घातिक प्रायश्चित्त या अनुद्घातिक प्रायश्चित्त, प्रायश्चित्त का हेतु सुनकर या जानकर (उसके साथ) आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जे भिक्खू उग्घाइय-संकप्पं वा अणुग्घाइय-संकप्पं वा सोच्चा णच्चा संभुंजइ संभुंजंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु (किसी अन्य भिक्षु को) उद्घातिक प्रायश्चित्त या अनुद्घातिक प्रायश्चित्त, प्रायश्चित्त का संकल्प सुनकर या जानकर (उसके साथ) आहार करता है करवाता है करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जे भिक्खू उग्घाइयं वा अणुग्घाइयं वा उग्घाइय-हेउं वा अणुग्घाइय-हेउं वा उग्घाइय-संकप्पं वा अणुग्घाइय संकप्पं वा सोच्चा णच्चा संभुंजइ संभुंजंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु (किसी अन्य भिक्षु को) उद्घातिक प्रायश्चित्त या अनुद्घातिक प्रायश्चित्त, उद्घातिक प्रायश्चित्त का हेतु, अनुद्घातिक प्रायश्चित्त का हेतु, उद्घातिक प्रायश्चित्त का संकल्प, अनुद्घातिक प्रायश्चित्त का संकल्प सुनकर या जानकर (उसके साथ) आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।
—नि. उ. १०, सु. १५-२०

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

परिशिष्ट–१

बिइय मुसावाय विरमण महव्वयस्स पंच भावणा—

४३२. १. अणुवीतिभासणया,
२. कोहविवेगे,
३. लोभविवेगे,
४. भयविवेगे,
५. हासविवेगे, —सम. २५, सु. १६५

तस्स इमा पंच भावणाओ बितियस्स वयस्स अलियवयणस्स वेरमण-परिरक्खणट्ठयाए।

पढमं—सोऊण संवरट्ठं परमट्ठं सुट्ठु जाणिऊणं ण वेगियं ण तुरियं ण चवलं ण कडुयं ण फरुसं ण साहसं ण य परस्स पीलाकरं सावज्जं,

सच्चं च हियं च मियं च गाहगं च सुद्धं संगयमकाहलं च समिक्खियं संजएण कालम्मि य वत्तव्वं।

एवं अणुवीइसमिइजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा संजयकर-चरण-णयण वयणो सूरो सच्चज्जवसंपण्णो।

बिइयं—कोहो ण सेवियव्वो, कुद्धो चंडिक्किओ मणूसो।

१. अलियं भणेज्ज पिसुणं भणेज्ज, फरुसं भणेज्ज, अलियं-पिसुणं-फरुसं भणेज्ज।

२. कलहं करेज्जा, वेरं करेज्जा, विकहं करेज्जा, कलहं-वेरं विकहं करेज्जा,

३. सच्चं हणेज्ज, सीलं हणेज्ज, विणयं हणेज्ज, सच्चं सीलं विणयं हणेज्ज।

४. वेसो भवेज्ज, वत्थुं भवेज्ज, गम्मो भवेज्ज, वेसो वत्थुं गम्मो भवेज्ज।

एयं अण्णं च एवमाइयं भणेज्ज कोहग्गिसंपलित्तो तम्हा कोहो ण सेवियव्वो।

एवं खंतीइ भाविओ भवइ अंतरप्पा संजयकर-चरण-णयण-वयणो सूरो सच्चज्जवसंपण्णो।

मृषावाद-विरमण या सत्य महाव्रत की पाँच भावना—

४३२. (१) अनुवीचिभाषण—चिन्तन करके बोलना,
(२) क्रोध-विवेक—क्रोध त्यागकर बोलना,
(३) लोभ-विवेक—लोभ त्यागकर बोलना,
(४) भय-विवेक—भय त्यागकर बोलना,
(५) हास्य-विवेक—हास्य त्यागकर बोलना,

द्वितीय अलीक वचन विरमण व्रत की रक्षा के लिए ये पाँच भावनाएँ कही हैं—

प्रथम—सत्य वचन रूप संवर का अर्थ गुरु के समीप और उसका परमार्थ सम्यक् प्रकार से समझकर वेग, त्वरा एवं चपलता पूर्वक अनिष्ट कठोर साहसिक परपीड़ाकारी और सावद्य वचन नहीं बोलने चाहिए।

सत्य हितकारी परिमित ग्राहक (प्रतीतिजनक) शुद्ध सुसंगत स्पष्ट विचार युक्त वचन संयमी जनों को यथासमय बोलने चाहिए।

इस प्रकार जिसका अन्तरात्मा अनुविचिन्त्य समिति के योग से युक्त होता है। उसका अन्तरात्मा हाथ पैर नेत्र एवं मुख को संयत करने वाला शौर्य तथा सरल सत्य से परिपूर्ण हो जाता है।

द्वितीय—क्रोध नहीं करना चाहिए, क्रुद्ध और रुद्र मनुष्य—

(१) असत्य भाषण करता है, पैशुन्य-चुगली करता है, कठोर वचन बोलता है, और असत्य, पैशुन्य एवं कठोर वचनों का प्रयोग करता है।

(२) कलह करता है, वैर करता है, विकथा करता है और कलह, वैर एवं विकथा करता है।

(३) सत्य का घात करता है, शील का घात करता है, विनय का घात करता है और सत्य, शील एवं विनय का घात करता है।

(४) द्वेष का पात्र बनता है, दोष का पात्र बनता है, निन्दा का पात्र बनता है और द्वेष, दोष एवं निन्दा का पात्र बनता है।

जो क्रोधाग्नि से प्रज्वलित है वह इस प्रकार के तथा अन्य प्रकार के मृषा वचन बोलता है, इसलिए क्रोध नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार जिसका अन्तरात्मा क्षमा से भावित होता है उसके हाथ, पैर, नेत्र एवं मुख संयत हो जाते हैं तथा वह शौर्य एवं सरल सत्य से परिपूर्ण हो जाता है।

तत्तियं—लोहो न सेवियव्वो—

१. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, खेत्तस्स व वत्थुस्स व कएण।

२. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, कित्तीए व लोभस्स व कएण।

३. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, रिद्धीए व सोक्खस्स व कएण।

४. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, भत्तस्स व पाणस्स व कएण।

५. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, पीढस्स व फलगस्स व कएण।

६. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, सेज्जाए व संथारगस्स व कएण।

७. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, वत्थस्स व पत्तस्स व कएण।

८. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, कंबलस्स व पायपुंछस्स व कएण।

९. लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, सीसस्स व सिस्सीणीए व कएण।

लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं, अन्नेसु य एवमादिसु बहुसु कारण-सएसु, तम्हा लोभो न सेवियव्वो।

एवं मुत्तीए भाविओ भवइ अन्तरप्पा। संजय कर-चरण-नयण-वयण सूरो सच्चज्जवसंपन्नो।

तृतीय लोभ नहीं करना चाहिए. लोभी लालची मनुष्य—

(१) क्षेत्र और वास्तु (मकान आदि) के लिए मिथ्या भाषण करता है।

(२) कीर्ति और लोभ के लिए मिथ्या भाषण करता है।

(३) ऋद्धि और सुख के लिए मिथ्या भाषण करता है।

(४) भोजन और पान के लिए मिथ्या भाषण करता है।

(५) पीढा और फलक के लिए मिथ्या भाषण करता है।

(६) शय्या और संस्तारक के लिए मिथ्या भाषण करता है।

(७) वस्त्र और पात्र के लिए मिथ्या भाषण करता है।

(८) कम्बल और पाद प्रोंछन के लिए मिथ्या भाषण करता है।

(९) शिष्य और शिष्या के लिए मिथ्या भाषण करता है।

इत्यादि अनेक कारणों से लोभी मिथ्या भाषण करता है, इसलिए लोभ नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार जिसका अन्तरात्मा मुक्ति (निर्लोभता) से भावित होता है उसके हाथ, पैर, नेत्र एवं मुख संयत हो जाते हैं, तथा शौर्य एवं सरल-सत्य से परिपूर्ण हो जाता है।

चउत्थं—न भाइयव्वं—

१. भीतं खु भया अइंति लहुयं।

२. भीतो अबितिज्जओ मणूसो।

३. भीतो भूतेहिं घिप्पइ।

४. भीतो अन्नं पि हु भेसेज्जा।

५. भीतो तव-संजमं पि हु मुएज्जा।

६. भीतो य भरं न नित्थरेज्जा।

७. सप्पुरिस-निसेवियं च मग्गं भीतो न समत्थो अणुचरिउं।

तम्हा न भाइयव्वं भयस्स वा, वाहिस्स वा, रोगस्स वा, जराए वा, मच्चुस्स वा अन्नस्स वा एवमाइयस्स।

एवं धेज्जेण भाविओ भवइ अन्तरप्पा।
संजय-कर-चरण-नयण-वयण-सूरो सच्चज्जवसंपन्नो।

चतुर्थ—भयभीत नहीं होना चाहिए,

(१) भयभीत को शीघ्र ही अनेक भय उपस्थित हो जाते हैं।

(२) भयभीत की कोई सहायता नहीं करता है,

(३) भयभीत को भूत-प्रेत लग जाते हैं,

(४) भयभीत मनुष्य दूसरों को भी भयभीत करता है,

(५) भयभीत मनुष्य तप-संयम को भी त्याग देता है,

(६) भयभीत मनुष्य भार वहन नहीं कर सकता,

(७) भयभीत मनुष्य सत्पुरुषों द्वारा सेवित मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता है,

अतएव भय से, व्याधि से रोग से, जरा से, मृत्यु से तथा अन्य किसी भय के हेतु से भयभीत नहीं होना चाहिए।

इस प्रकार जिसका अन्तरात्मा धैर्य से भावित होता है उसके हाथ, पैर, नेत्र एवं मुख संयत हो जाते हैं तथा वह शौर्य एवं सरल सत्य से परिपूर्ण हो जाता है।

पंचमकं—हासं न सेवियव्वं।
अलियाइं असंतकाइं जंपंति हासइत्ता।

पंचम—किसी की हँसी नहीं करनी चाहिए, हँसी-मजाक करने वाले ही असत्य वचन और अशोभन वचन बोलते हैं।

१. परपरिभवकारणं च हासं।
२. परपरिवायप्पियं च हासं।
३. परपीलाकारगं च हासं।
४. भेदविमुत्तिकारगं च हासं।
५. अन्नोऽन्नजणियं च होज्ज हासं।
६. अन्नोऽन्नगमणं च होज्ज मम्मं।
७. अन्नोऽन्नगमणं च होज्ज कम्मं।
८. कंदप्पाभियोगगमणं च होज्ज हासं।

(१) हास्य दूसरे के पराभव का कारण होता है।
(२) हास्य पर-निन्दा प्रधान होता है।
(३) हास्य पर-पीड़ाजनक होता है।
(४) हास्य से चारित्र का भंग और विकृत मुख होता है।
(५) हास्य परस्पर (एक दूसरे के साथ) होता है।
(६) हास्य से (एक दूसरे के) मर्म प्रकट होते हैं।
(७) हास्य लोकनिन्द्य कर्म है।
(८) हास्य से (साधु की) कान्दर्पिका और आभियोगिक देवों में उत्पत्ति होती है।

९. आसुरियं किव्विसत्तणं जणेज्ज य हासं। तम्हा हासं न सेवियव्वं।

(९) हास्य से (साधु की) असुर और किल्विषिक देवों में उत्पत्ति होती है, इसलिए किसी की हँसी नहीं करनी चाहिए।

एवं मोणेण भाविओ भवइ अंतरप्पा।
संजम-कर-चरण-नयण-वयण सूरो सच्चज्जवसंपन्नो।
—प. सु. २, अ. २, सु. ११-१५

इस प्रकार जिसका अन्तरात्मा मौन से भावित होता है उसके हाथ, पैर, नेत्र एवं मुख संयत हो जाते हैं तथा वह शौर्य एवं सरल सत्य से परिपूर्ण हो जाता है।

उवसंहारो—

४३३. एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सुपणिहियं।
इमेहिं पंचहिं वि कारणेहिं मण-वयण-काय-परिरक्खिएहिं निच्चं आमरणंतं च एस जोगो णेयव्वो धिइमया मइमया अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो सव्व जिणमणुण्णाओ।

उपसंहार—

४३३. इस प्रकार मन, वचन और काय से पूर्ण सुरक्षित-सुसेवित इन पांच भावनाओं से संवर का यह द्वार—सत्यमहाव्रत सम्यक् प्रकार से संवृत—आचरित और सुपणिहित—स्थापित हो जाता है। अतएव धैर्यवान् तथा मतिमान् साधक को चाहिए कि वह आस्रव का निरोध करने वाले, निर्मल, निश्छिद्र—कर्म-जल के प्रवेश को रोकने वाले, कर्मबन्ध के प्रवाह से रहित, संक्लेश का अभाव करने वाले एवं समस्त तीर्थंकरों द्वारा अनुज्ञात इस योग को निरन्तर जीवन पर्यन्त आचरण में उतारे।

एवं बितियं संवरदारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं अणुपालियं आणाए आराहियं भवइ।

इस प्रकार (पूर्वोक्त रीति से) सत्य नामक संवरद्वार यथासमय अंगीकृत, पालित, शोधित—निरतिचार आचरित या शोभाप्रदायक, तीरित—अन्त तक पार पहुँचाया हुआ, कीर्तित—दूसरों के समक्ष आदरपूर्वक कथित, अनुपालित—निरन्तर सेवित और भगवान् की आज्ञा के अनुसार आधारित होता है।

एवं णायमुणिणा भगवया पन्नवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धवरसासणमिणं आघवियं सुदेसियं पसत्थं।
—प. सु. २, अ. २, सु. १६-१८

इस प्रकार भगवान् ज्ञातमुनि—महावीर स्वामी ने इस सिद्धवरशासन का कथन किया है, विशेष प्रकार से विवेचन किया है। यह तर्क और प्रमाण से सिद्ध है, सुप्रतिष्ठित किया गया है, भव्य जीवों के लिए इसका उपदेश किया गया है, यह प्रशस्त कल्याणकारी—मंगलमय है।

छण्हं अवयणाइणं निसेहो—

४३४. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा
इमाइं छ अवयणाइं वइत्तए, तं जहा—

नहीं बोलने योग्य छः वचनों का निषेध—

४३४. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को ये छह कुवचन बोलना नहीं कल्पता है। यथा—

१. अलियवयणे, २. हीलियवयणे,
३. खिंसियवयणे ४. फरुसवयणे,
५. गारत्थियवयणे,
६. विओसवियं वा पुणो उदीरित्तए।[1]

—कप्प. उ. ६, सु. १

(१) अलीकवचन, (२) अवहेलनाजनक वचन,
(३) खिंसित वचन, (४) परुष वचन,
(५) गार्हस्थ्य वचन,
(६) शान्त कलह को पुनः प्रज्वलित करने वाला वचन।

अट्ठ ठाणाइणं निसेहो—

४३५. कोहे माणे य मायाए लोभे य उवउत्तया।
हासे भए मोहरिए विगहासु तहेव य॥

एयाइं अट्ठ ठाणाइं परिवज्जित्तु संजए।
असावज्जं मियं काले भासं भासेज्ज पन्नवं॥

—उत्त. अ. २४, गा. ९-१०

भाषा से सम्बन्धित आठ स्थानों का निषेध—

४३५. (१) क्रोध, (२) मान, (३) माया, (४) लोभ, (५) हास्य, (६) भय, (७) वाचालता और (८) विकथा के प्रति सावधान रहे—इनका प्रयोग न करे।

प्रज्ञावान् मुनि इन आठ स्थानों का वर्जन कर यथा-समय निरवद्य और परिमित वचन बोले।

---

१ ठाणं. अ. ६, सु. ५२७।

तृतीय महाव्रत स्वरूप एवं आराधना

ततियमहव्वयस्स आराहणा पइण्णा

४३६. अहावरे तच्चे भंते ! महव्वए अदिन्नादाणाओ वेरमणं।

सव्वं भंते ! अदिन्नादाणं पच्चक्खामि ?[1]

से गामे वा, नगरे वा, रण्णे वा, अप्पं वा, बहुं वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा।

से य अदिण्णादाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. दव्वओ, २. खेत्तओ, ३. कालओ, ४. भावओ।

१. दव्वओ अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा,

२. खेत्तओ गामे वा, नयरे वा, अरण्णे वा,

३. कालओ दिया वा राओ वा

४. भावओ अप्पग्घे वा महग्घे वा।

नेव सयं अदिन्नं गेण्हेज्जा, नेवन्नेहिं अदिन्नं गेण्हावेज्जा, अदिन्नं गेण्हंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।[2]

तच्चे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं। —दस. अ ४, सु. १३

"समणे भविस्सामि अणगारे अकिंचणे अपुत्ते अपसू परदत्त-भोई पावं कम्मं णो करिस्सामि" त्ति समुट्ठाए "सव्वं भंते ! अदिण्णादाणं पच्चक्खामि।"

तृतीय महाव्रत के आराधन की प्रतिज्ञा—

४३६. भन्ते ! इसके पश्चात् तीसरे महाव्रत में अदत्तादान की विरति होती है।

भन्ते ! मैं सर्व अदत्तादान का प्रत्याख्यान करता हूँ। जैसे कि—गाँव में, नगर में या अरण्य में (कहीं भी) अल्प या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त (सजीव) हो या अचित्त (निर्जीव)।

वह अदत्तादान चार प्रकार का है जैसे—(१) द्रव्य से, (२) क्षेत्र से, (३) काल से, (४) भाव से।

(१) द्रव्य से—अल्प या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त।

(२) क्षेत्र से—गाँव में, नगर में या अरण्य में,

(३) काल से—दिन में या रात्रि में,

(४) भाव से—अल्प मूल्य वाली या बहुमूल्य वाली।

किसी भी अदत्त-वस्तु को मैं स्वयं ग्रहण नहीं करूँगा, दूसरों से अदत्त वस्तु का ग्रहण नहीं कराऊँगा और अदत्त-वस्तु ग्रहण करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूँगा, यावज्जीवन के लिए, तीन करण तीन योग से—मन से, वचन से, काया से—न करूँगा, न कराऊँगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूँगा।

भन्ते ! मैं अतीत के अदत्तादान से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ।

भन्ते ! मैं तीसरे महाव्रत में उपस्थित हुआ हूँ। इसमें सर्व अदत्तादान की विरति होती है।

मुनि दीक्षा लेते समय साधु प्रतिज्ञा करता है—"अब मैं श्रमण बन जाऊँगा। अनगार, अकिंचन (अपरिग्रही) अपुत्र (पुत्रादि सम्बन्धों से मुक्त), अपशु (द्विपद-चतुष्पद आदि पशुओं के स्वामित्व से मुक्त) एवं परदत्तभोजी (दूसरे गृहस्थ द्वारा प्रदत्त भिक्षा में प्राप्त आहारादि का सेवन करने वाला) होकर मैं अब कोई भी हिंसादि पापकर्म नहीं करूँगा।" इस प्रकार संयम पालन के लिए उत्थित-समुद्यत होकर कहता है—"भन्ते ! मैं आज समस्त प्रकार के अदत्तादान का प्रत्याख्यान करता हूँ।"

---

१ दंतसोहणमाइस्स, अदत्तस्स विवज्जणं। अणवज्जेसणिज्जस्स, गेण्हणा अवि दुक्करं॥ —उत्त. अ. १९, गा. २८

२ चित्तमंतमचित्तं वा अप्पं वा जइ वा बहुं। दंतसोहणमेत्तं पि ओग्गहं सि अजाइया॥ —दस. अ. ६, गा १३

से अणुपविसित्ता गामं वा जाव-रायहाणिं वा णेव सयं अदिण्णं गेण्हेज्जा, णेवऽण्णेणं अदिण्णं गेण्हावेज्जा, णेवऽण्णं अदिण्णं गेण्हंतं वि समणुजाणेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ७, उ. १, सु. ६०७

साधु ग्राम—यावत्—राजधानी में प्रविष्ट होकर स्वयं बिना दिये हुए (किसी भी) पदार्थ को ग्रहण न करे, न दूसरों से ग्रहण कराए और न अदत्त ग्रहण करने वाले का अनुमोदन-समर्थन करे।

अदिण्णादाण महव्वयस्स पंच भावणाओ—

४३७. अहावरं तच्चं भंते ! महव्वयं पच्चक्खामि सव्वं अदिण्णादाणं।

से गामे वा नगरे वा अरण्णे वा अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा णेव सयं अदिण्णं गेण्हेज्जा, णेवऽण्णं अदिण्णं गेण्हावेज्जा अण्णं पि अदिण्णं गेण्हंतं ण समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणसा वयसा कायसा तस्स भंते ! पडिक्कमामि-जाव-वोसिरामि।

तृतीय महाव्रत और उसकी पांच भावना—

४३७. "भगवन् ! इसके पश्चात् अब मैं तृतीय महाव्रत स्वीकार करता हूँ, इसके सन्दर्भ में मैं सब प्रकार से अदत्तादान का प्रत्याख्यान (त्याग) करता हूँ। वह इस प्रकार—

वह (ग्राह्य पदार्थ) चाहे गाँव में हो, नगर में हो, अरण्य में हो, थोड़ा हो या बहुत, सूक्ष्म हो या स्थूल (छोटा हो या बड़ा), सचेतन हो, या अचेतन; उसे उसके स्वामी के बिना दिये न तो स्वयं ग्रहण करूँगा, न दूसरे से (बिना दिये पदार्थ) ग्रहण करवाऊँगा, और न ही अदत्त ग्रहण करने वाले का अनुमोदन-समर्थन करूँगा, यावज्जीवन तक, तीन करणों से तथा मन-वचन-काया, इन तीन योगों से यह प्रतिज्ञा करता हूं। साथ ही मैं पूर्वकृत अदत्तादानरूप पाप का प्रतिक्रमण करता हूँ,—यावत्—अपनी आत्मा से अदत्तादान पाप का व्युत्सर्ग करता हूँ।

तस्सिमाओ पंच भावणाओ भवंति।

इस तीसरे महाव्रत की ये पाँच भावनाएँ हैं—

१. तत्थिमा पढमा भावणा—अणुवीयि मितोग्गहजाई से निग्गंथे णो अणणुवीयि मितोग्गहजाई से निग्गंथे।

(१) उन पांचों में से प्रथम भावना इस प्रकार है—जो साधक पहले विचार करके परिमित अवग्रह की याचना करता है, वह निर्ग्रन्थ है, किन्तु बिना विचार किये परिमित अवग्रह की याचना करने वाला नहीं।

केवली बूया—अणणुवीयि मितोग्गहजाई से णिग्गंथे अदिण्णं गेण्हेज्जा। अणुवीयि मितोग्गहजाई से निग्गंथे, णो अणणुवीयि मितोग्गहजाई त्ति पढमा भावणा।

केवली भगवान् ने कहा है—जो बिना विचार किये मितावग्रह की याचना करता है, वह निर्ग्रन्थ अदत्त ग्रहण करता है। अतः तदनुरूप चिन्तन करके परिमित अवग्रह की याचना करने वाला साधु निर्ग्रन्थ कहलाता है, न कि बिना विचारे किये मर्यादित अवग्रह की याचना करने वाला। इस प्रकार यह प्रथम भावना है।

२. अहावरा दोच्चा भावणा—अणुण्णविय पाण-भोयण-भोई से णिग्गंथे, णो अणणुण्णविय पाण-भोयणभोई।

(२) इसके अनन्तर दूसरी भावना यह है—गुरुजनों की अनुज्ञा लेकर आहार-पानी आदि सेवन करने वाला निर्ग्रन्थ होता है, अनुज्ञा लिये बिना आहार-पानी आदि का उपभोग करने वाला नहीं।

केवली बूया—अणणुण्णवीयि पाण-भोयणभोई से णिग्गंथे अदिण्णं भुंजेज्जा। तम्हा अणुण्णवीयि पाण-भोयण भोई से णिग्गंथे, णो अणणुण्णविय पाण-भोयणभोई त्ति दोच्चा भावणा।

केवली भगवान् ने कहा है—जो निर्ग्रन्थ गुरु आदि की अनुज्ञा प्राप्त किये बिना पान-भोजनादि का उपभोग करता है, वह अदत्तादान का सेवन करता है। इसलिए जो साधक गुरु आदि की अनुज्ञा प्राप्त करके आहार-पानी आदि का उपभोग करता है, वह निर्ग्रन्थ कहलाता है। अनुज्ञा ग्रहण किये बिना आहार-पानी आदि का सेवन करने वाला नहीं। यह दूसरी भावना है।

३. अहावरा तच्चा भावणा—णिग्गंथे णं उग्गहंसि, उग्गहियंसि एत्ताव ताव उग्गहणसीलए सिया।

(३) अब तृतीय भावना का स्वरूप इस प्रकार है—निर्ग्रन्थ साधु को क्षेत्र और काल के (इतना-इतना इस प्रकार से) प्रमाण-पूर्वक अवग्रह की याचना करनी चाहिए।

केवली बूया—निग्गंथे णं उग्गहंसि उग्गहियंसि एत्ताव ताव अणोग्गहणसीलो अदिण्णं ओगिण्हेज्जा, निग्गंथे णं उग्गहंसि उग्गहियंसि एत्ताव-ताव उग्गहणसीलए सिय त्ति तच्चा भावणा।

केवली भगवान् ने कहा है—जो निर्ग्रन्थ इतने क्षेत्र और इतने काल की मर्यादापूर्वक अवग्रह की अनुज्ञा (याचना) ग्रहण नहीं करता वह अदत्त का ग्रहण करता है। अतः निर्ग्रन्थ साधु क्षेत्र काल की मर्यादा खोलकर अवग्रह की अनुज्ञा ग्रहण करने वाला होता है, अन्यथा नहीं। यह तृतीय भावना है।

४. अहावरा चउत्था भावणा—निग्गंथे णं उग्गहंसि उग्गहियंसि अभिक्खणं अभिक्खणं उग्गहणसीलए सिया।

(४) इसके अनन्तर चौथी भावना यह है—निर्ग्रन्थ अवग्रह की अनुज्ञा ग्रहण करने के पश्चात् बार-बार अवग्रह अनुज्ञा—ग्रहणशील होना चाहिए।

केवली बूया—निग्गंथे णं उग्गहंसि उग्गहियंसि अभिक्खणं अभिक्खणं अणोग्गहणसीले अदिण्णं गिण्हेज्जा, निग्गंथे णं उग्गहंसि उग्गहियंसि अभिक्खणं अभिक्खणं उग्गहणसीलए सिय त्ति चउत्था भावणा।

क्योंकि केवली भगवान् ने कहा है—जो निर्ग्रन्थ अवग्रह की अनुज्ञा ग्रहण कर लेने पर बार-बार अवग्रह की अनुज्ञा नहीं लेता, वह अदत्तादान दोष का भागी होता है। अतः निर्ग्रन्थ को एक बार अवग्रह की अनुज्ञा ग्रहण कर लेने पर भी पुनः-पुन अवग्रहा-नुज्ञा ग्रहणशील होना चाहिए। यह चौथी भावना है।

५. अहावरा पंचमा भावणा—अणुवीयि मितोग्गहजाई से निग्गंथे साहम्मिएसु णो अणणुवीयि मितोग्गहजाई।

(५) इसके पश्चात् पाँचवीं भावना इस प्रकार है—जो साधक साधर्मिकों से भी विचार करके मर्यादित अवग्रह की याचना करता है, वह निर्ग्रन्थ है, बिना विचारे परिमित अवग्रह की याचना करने वाला नहीं।

केवली बूया—अणणुवीयि मितोग्गहजाई से निग्गंथे साहम्मिएसु अदिण्णं ओगिण्हेज्जा। से अणुवीयि मितोग्गहजाई से निग्गंथे साहम्मिएसु णो अणणुवीयि मितोग्गहजाई त्ति पंचमा भावणा।[1]

केवली भगवान् ने कहा है—बिना विचार किये जो साधर्मिकों से परिमित अवग्रह की याचना करता है, उसे साधर्मिकों का अदत्त ग्रहण करने का दोष लगता है। अतः जो साधक साधर्मिकों से भी विचारपूर्वक मर्यादित अवग्रह की याचना करता है। वही निर्ग्रन्थ कहलाता है। बिना विचारे साधर्मिकों से मर्यादित अवग्रह याचक नहीं। इस प्रकार की पंचम भावना है।

एत्ताव ताव (तच्चे) महव्वयं सम्मं काएणं फासिते पालिते तीरिए किट्टिते अवट्ठिते आणाए आराहिते यावि भवति।

इस प्रकार पंच भावनाओं से विशिष्ट एवं स्वीकृत अदत्तादान विरमण तृतीय महाव्रत का सम्यक् प्रकार से काया से स्पर्श करने, उसका पालन करने, गृहीत महाव्रत को भलीभाँति पार लगाने, उसका कीर्तन करने तथा उसमें अन्त तक अवस्थित रहने पर भगवदाज्ञा के अनुरूप सम्यक् आराधन हो जाता है।

तच्चं भंते! महव्वयं अदिण्णादाणाओ वेरमणं।

—आ. सु. २, अ. १५, सु. ७८३-७८५

भगवन्! यह अदत्तादान—विरमणरूप तृतीय महाव्रत है।

---

१ (क) समवायांग सूत्र में तृतीय महाव्रत की पाँच भावनाएँ इस प्रकार हैं—

१. अवग्रहानुज्ञापनता, २. अवग्रह सीमापरिज्ञान,
३. स्वयं ही अवग्रह अनुग्रहणता, ४. साधर्मिक अवग्रह अनुज्ञापनता।
५. साधारण भक्तपान अनुज्ञाप्य परिभुंजनता।

—सम. २५, सु. १६५

(शेष टिप्पण अगले पृष्ठ पर)

दत्तमणुण्णाय संवरस्स सरूवं—

४३८. आयाणं नरयं दिस्सं नायएज्ज तणामवि।
"दोगुंछी अप्पणो पाए" दिन्नं भुंजेज्ज भोयणं॥

—उत्त. अ. ६, गा. ७

दत्त अनुज्ञात संवर का स्वरूप—

४३८. "परिग्रह नरक है"—यह देखकर एक तिनके को भी अपना बनाकर न रखे (अथवा "अदत्त का आदान नरक है"—यह देखकर बिना दिया हुआ एक तिनका भी न ले) असंयम से जुगुप्सा करने वाला मुनि अपने पात्र में गृहस्थ द्वारा प्रदत्त भोजन करे।

जंबू ! दत्तमणुण्णायसंवरो नाम होइ ततियं सुव्वता !

सुन्दर व्रत वाले हे जम्बू ! तीसरा संवरद्वार **दत्तानुज्ञात** नामक है।

महव्वयं गुणव्वयं परदव्व-हरण-पडिविरइ-करणजुत्तं। अपरिमियमणंत - तण्हाणुगयमहिच्छ - मण - वयण-कलुस-आयाण-सुनिग्गहियं, सुसंजमिय-मण-हत्थ-पायनिहुयं निग्गंथं, णेट्ठिकं, निरुत्तं, निरासवं, निब्भयं-विमुत्तं, उत्तमनर-वसभ-पवर-बलवग-सुविहितजणसंमतं परमसाहुधम्मचरणं।

—प. सु. २, अ. ३, सु. १

यह महाव्रत है और गुणव्रत भी है। इस लोक और परलोक के सुधार का निमित्तभूत है। परद्रव्य के हरण करने में विरक्ति-युक्त, अपरिमित तथा अनन्ततृष्णारूप और अनुगत (वस्तुओं की अपेक्षा) महेच्छा रूप जो मन-वचन के द्वारा होने वाला पाप रूपी ग्रहण (आदान) के भली प्रकार निग्रह-युक्त, अच्छी तरह से संयमित मन-हाथ-पैर आदि के संवरण-युक्त, (बाह्य तथा आभ्यन्तर) ग्रन्थि को तोड़ने वाला, निष्ठायुक्त (उत्कृष्ट), निरुक्त (तीर्थंकरों द्वारा पूर्णता से कहा गया), आस्रव-रहित, निर्भय, विमुक्त (लोभ के दोष से रहित) उत्तम, नरवृषभ द्वारा प्रधान बलवान् मनुष्यों और सुविहित (साधु) जनों से मान्य किया हुआ और परम साधुओं का धर्मानुष्ठान रूप यह (तीसरा) व्रत है।

अदिन्नादाणविरमणमहव्वयाराहगस्स अकरणिज्ज किच्चाइं—

४३९. जत्थ य गामागार-नगर-निगम-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-संबाह-पट्टणासमगयं च किंचि दव्वं मणि-मुत्त-सिलप्पवाल-कंस-दूस-रययवर-कणग-रयणमादि पडियं पम्हुट्ठं विप्पणट्ठं न कप्पति कस्सइ कहेउं वा, गेण्हिउं वा।

अदत्तादान विरमण महाव्रत आराधक के अकरणीय कृत्य—

४३९. गाँव - आगर - निगम-खेड-कब्बड-मण्डप-द्रोणमुख-सम्बाह-पट्टण-आश्रम आदि का कोई भी द्रव्य जैसे—मणि-मुक्ता (मोती), शिला-प्रवाल-काँसी (धातु), वस्त्र-सोना-चाँदी-रत्न आदि कुछ भी क्यों न पड़ा हो, या किसी का खो गया हो, और वह पड़ा पा गया हो (और उसके मालिक को मिलता न हो) फिर उसके विषय में किसी से कहना या स्वयं उठा लेना, साधु को नहीं कल्पता है।

अहिरण्ण-सुवण्णिकेणं, समलेट्ठुकंचणेणं अपरिग्गहसंवुडेणं लोगम्मि विहरियव्वं।

हिरण्य-सुवर्ण से रहित-धन और पत्थर तथा कंचन को समान जानने वाला (ऐसी उपेक्षावृत्ति से) केवल अपरिग्रह और संवृत (इन्द्रियों के संवरयुक्त) भाव से, साधु को लोक में घूमना चाहिये।

जं पि य होज्जाहि दव्वजातं खलगतं खेत्तगतं रण्णमंतरगतं वा किंचि पुप्फ-फल-तयप्पवाल-कंद-मूल-तण-कट्ठ-सक्कराति

कुछ भी द्रव्यादि पदार्थ खलिहान में हो या खेत में हो, जंगल में हो, जैसे फूल-फल वक्कल-मंजरी (प्रवाल) कन्द-मूल-

(शेष टिप्पण पिछले पृष्ठ का)

(ख) प्रश्नव्याकरण में पाँच भावनाएँ इस प्रकार हैं—

१. विविक्तवासवसति,
२. अभीक्ष्ण अवग्रह याचन,
३. शय्या समिति,
४. साधारण पिण्डमात्र लाभ,
५. विनय प्रयोग।

—प. सु. २, अ. ३, सु. १०-१४

पाठ देखिए—परिशिष्ट में।

अप्पं च बहुं च अणुं च थूलगं वा न कप्पति उग्गहंमि अदिण्णंमि गिण्हिउं।

घास-लकड़ी-कंकर आदि वस्तुएँ मूल्यवान या विशेष मूल्य की हों, थोड़ी हों या बहुत हों, फिर भी साधु उन वस्तुओं को उसके मालिक की आज्ञा पाये बिना न ले।

जे हणि हणि उग्गहं अणुण्णविय गेण्हियव्वं।

प्रतिदिन अवग्रह पाकर (मालिक की आज्ञा लेकर) उन-उन कल्प्य वस्तुओं को ही साधु को लेना उचित है।

वज्जेयव्वो सव्वकालं अचियत्त-घरप्पवेसो, अचियत्त-भत्तपाणं, अचियत्त-पीढ-फलग-सेज्जा-संथारग-वत्थ-पत्त-कंबल-दंडग-रयहरण-निसेज्ज-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पायपुंछणाइ-भायण-भंडोवहि-उवकरणं।

साधु से अप्रीति करने वाले के घर में प्रवेश या ऐसे किसी अप्रीति वाले के घर का भोजन पानादि साधु को लेना अनुचित है एवं अप्रतीतिकारी के यहाँ से पाट, पट्टे, शय्या, संस्तारक, कपड़े, बर्तन, कम्बल डण्डा रजोहरण, तख्त, चोलपट्टक, मुख पर बाँधने की मुख-वस्त्रिका, पादप्रोंछन, भोजन, वस्त्रादि उपकरण भी न लें।

परपरिवाओ परस्स दोसो, परववएसेणं जं च गेण्हइ परस्स नासेइ जं च सुकयं दाणस्स य अंतराइयं, दाणविप्पणासो, पेसुण्णं चेव मच्छरित्तं च।

दूसरे के अपवाद (औरों के दोषों को) देखकर या किसी दूसरे के नाम से किसी प्रकार की वस्तु न लें, इस रीति के दोष साधु के लिए त्याज्य हैं। इस भाँति दूसरों के द्वारा किया गया उपकार का नाश करना, इस ढंग के कार्य, दान में विघ्न खड़े करने वाले कार्य, दान का विनाश दूसरों की खोटी-खरी चुगली-चाड़ी तथा मात्सर्य ये सब दोष त्याग करने योग्य हैं।

जे वि य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारग-वत्थ-पाय-कंबल-मुहपोत्तिय-पायपुंछणादि-भायण-भंडोवहि-उवकरणं असंविभागी, असंगहरुई।

जो साधु तख्त, चौकी, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कंबल, रजोहरण छोटी चौकी, चोलपट्टक, मुंह पर बाँधने की मुँहपत्ती, पैर पोंछने का कपड़ा आदि तथा भाजन भण्ड इत्यादि उपकरण संविभाग न कर दे। ऐसे उपकरण दोषमुक्त-सूझते मिले तो भी उन्हें लेने की रुचि न करे।

तवतेणे य, वयतेणे य, रूवतेणे य, आयारे चेव भावतेणे य।

जो तप का चोर हो, वाचा का चोर हो, रूप का चोर हो, आचार धर्म का चोर हो, भाव का चोर हो।

सद्दकरे झंझकरे कलहकरे वेरकरे विकहकरे असमाहिकरे, सया अप्पमाणभोई, सततं अणुबद्धवेरे य, निच्चरोसी, से तारिसए नाराहए वयमिणं।

—प. सु. २, अ. ३, सु. २-७

(रात्रि में) प्रगाढ़-ऊँचे स्वर में बोलता हो, गच्छ में फूट डालता हो, कलह करता हो, वैर बढ़ाता हो, विकथा-बकवास करता हो, चित्त में असमाधि उत्पन्न करता हो, सदा प्रमाण रहित भोजन करता हो, निरन्तर वैर विरोध को टिकाए रखता हो, नित्य नया रोष या अप्रसन्नता रखता हो, ऐसी प्रकृति का साधु तीसरे व्रत का आराधन नहीं कर सकता है।

दत्तमणुण्णाय संवरस्स आराहगा—

दत्त अनुज्ञात संवर के आराधक—

४४०. प०—अह केरिसए पुणाइं आराहए वयमिणं ?

४४०. प्र०—(यदि पूर्वोक्त प्रकार के मनुष्य इस व्रत की आराधना नहीं कर सकते) तो फिर किस प्रकार के मनुष्य इस व्रत के आराधक हो सकते हैं ?

उ०—जे से उवहि-भत्त-पाण-संगहण-दाण-कुसले।

उ०—इस अस्तेय व्रत का आराधक वही पुरुष हो सकता है जो—वस्त्र, पात्र आदि धर्मोपकरण, आहार-पानी आदि का संग्रहण और संविभाग करने में कुशल हो।

अच्चंत-बाल-दुब्बल-गिलाण-वुड्ढ-खमग-पवत्ति-आयरिय-उवज्झाए, सेहे साहम्मिए, तवस्सी, कुल-गण-संघ-चेइयट्ठे।

जो अत्यन्त बाल, दुर्बल, रुग्ण, वृद्ध और मासक्षपक आदि तपस्वी साधु की, प्रवर्तक, आचार्य, उपाध्याय की, नवदीक्षित साधु की तथा साधर्मिक— लिंग एवं प्रवचन से समानधर्मा साधु की, तपस्वी कुल, गण, संघ के चित्त की प्रसन्नता के लिए सेवा करने वाला हो,

निज्जरट्ठी वेयावच्चं अणिस्सियं बहुविहं दसविहं करेइ।

जो निर्जरा का अभिलाषी हो—कर्म क्षय करने का इच्छुक हो, जो अनिश्रित हो अर्थात् यशकीर्ति आदि की कामना न करते हुए दूसरे पर निर्भर न रहता हो, वही दस प्रकार का वैयावृत्य, (अन्नपान आदि अनेक प्रकार से) करता है।

१. न य अचियत्तस्स गिहं पविसइ।

(१) वह अप्रीतिकारक गृहस्थ के कुल में प्रवेश नहीं करता।

२. न य अचियत्तस्स गेण्हइ भत्त पाणं।

(२) अप्रीतिकारक के घर का आहार-पानी ग्रहण नहीं करता है।

३. न य अचियत्तस्स सेवइ पीढ फलग-सेज्जा संथारग-वत्थ—पाय—कंबल—डंडग—रयहरण-निसेज्ज-चोलपट्टग-मुहपोत्तिय-पायपुंछणाइ-भायण-भंडोवहि-उवगरणं।

(३) अप्रीतिकारक से पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, वस्त्र, पात्र, कम्बल, दण्ड, रजोहरण, आसन, चोलपट्ट, मुखवस्त्रिका एवं पादप्रोंछन भाजन-भंड उपकरण आदि उपधि भी नहीं लेता है।

४. न य परिवायं परस्स जपति।

(४) वह दूसरों की निन्दा (परपरिवाद) नहीं करता।

५. न यावि दोसे परस्स गेण्हति।

(५) दूसरे के दोषों को ग्रहण नहीं करता है।

६. परववएसेण वि न किंचि गेण्हति।

(६) जो दूसरों के नाम से (अपने लिए) कुछ भी ग्रहण नहीं करता।

७. न य विपरिणामेति किंचि जणं।

(७) किसी को दानादि धर्म से विमुख नहीं करता।

८. न यावि णासेइ दिन्न-सुकयं।

(८) दूसरे के दान आदि का सुकृत अथवा धर्माचरण का अपलाप नहीं करता है।

९. दाऊण य न होइ पच्छाताविए।

(९) जो दानादि देकर और वैयावृत्य आदि करके पश्चात्ताप नहीं करता है।

१०. संविभागसीले।

(१०) आचार्य, उपाध्याय आदि के लिए संविभाग करने वाला।

११. संगहोवग्गहकुसले, से तारिसए आराहेइ वयमिणं।

—पण्ह. सु. २, अ. ३, सु.

(११) संग्रह एवं उपकार करने में कुशल साधक ही अस्तेय-व्रत का आराधक होता है।

दत्तमणुण्णाय संवरस्स फलं—

४४१. इमं च परदव्वहरण-वेरमण-परिरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं अत्तहियं पेच्चाभावियं आगमेसिभद्दं सुद्धं नेयाउयं अकुडिलं अणुत्तरं सव्वदुक्खपावाण-विओवसमणं।

—पण्ह. सु. २, अ. ३, सु. ६

दत्त अनुज्ञात संवर का फल—

४४१. परकीय द्रव्य के हरण से विरमण (निवृत्ति) रूप इस अस्तेयव्रत की परिरक्षा के लिए भगवान् तीर्थंकर देव ने यह प्रवचन समीचीन रूप से कहा है। यह प्रवचन आत्मा के लिए हितकारी है, आगामी भव में शुभ फल प्रदान करने वाला है और भविष्यत् में कल्याणकारी है। यह प्रवचन शुद्ध है, न्याय-युक्ति-तर्क से संगत है, अकुटिल-मुक्ति का सरल मार्ग है, सर्वोत्तम है तथा समस्त दुःखों और पापों को निश्शेष रूप से शान्त कर देने वाला है।

अण्ण समणोवगरणस्स ओग्गह विहि—

४४२. जेहिं वि सद्धिं संपव्वइए तेसिंऽपि याइं छत्तयं वा डंडगं वा मत्तयं वा-जाव-चम्मछेदणगं वा तेसिं पुव्वामेव उग्गहं अणणुण्णविय पडिलेहिय पमज्जिय तओ संजयामेव ओगिण्हेज्ज वा पगिण्हेज्ज वा।

—आ. सु. २, अ. ७, उ १, सु. ६०७

अन्य साधु के उपकरण-उपयोग हेतु अवग्रह ग्रहण विधान—

४४२. जिन साधुओं के साथ या जिनके पास वह प्रव्रजित हुआ है, या विचरण कर रहा है, या रह रहा है, उनके भी छत्र, दण्ड, मात्रक (भाजन) - यावत् - चर्मच्छेदनक आदि उपकरणों को पहले उनसे अवग्रह -अनुज्ञा लिए बिना तथा प्रतिलेखन प्रमार्जन किये बिना एक या अनेक बार ग्रहण न करे। अपितु उनसे पहले अवग्रह-अनुज्ञा (ग्रहण करने की आज्ञा) लेकर, तत्पश्चात् उसका प्रतिलेखन-प्रमार्जन करके फिर संयमपूर्वक उस वस्तु को एक या अनेक बार ग्रहण करे।

रज्ज परियट्टिए ओग्गह विहि—

४४३. से रज्जपरियट्टेसु संथडेसु अव्वोगडेसु अव्वोच्छिन्नेसु अपरपरिग्गहिएसु सच्चेव ओग्गहस्स पुव्वाणुण्णवणा चिट्ठइ अहालंदमवि ओग्गहे।

से रज्जपरियट्टेसु असंथडेसु वोगडेसु वोच्छिन्नेसु परपरिग्गहिएसु भिक्खुभावस्स अट्ठाए दोच्चंपि ओग्गहे अणुण्णवेयव्वे सिया।

—वव. उ. ७, सु. २६-२७

राज्य परिवर्तन में अवग्रह अनुज्ञापन—

४४३. राजा की मृत्यु के बाद जब तक नये राजा का अभिषेक हो राज्य अविभक्त एवं शत्रुओं द्वारा अनाक्रान्त रहे। राजवंश अविच्छिन्न रहे और राज्य व्यवस्था पूर्ववत् रहे तब तक साधु साध्वियों के लिए पूर्वगृहीत आज्ञा ही अवस्थित रहती है।

राजा की मृत्यु के बाद राज्य विभक्त हो जाय या शत्रुओं द्वारा आक्रान्त हो जाये। राजवंश विच्छिन्न हो जाये या राज्य व्यवस्था पूर्ववत् न रहे तो साधु-साध्वियों को भिक्षु-भाव की रक्षा के लिए दूसरी बार आज्ञा लेनी चाहिए।

अप्पअदिण्णादाणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

४४४. जे भिक्खू लहुसगं अदत्तं आइयइ आइयन्तं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. २, सु २०

अल्प अदत्तादान का प्रायश्चित्त सूत्र—

४४४. जो भिक्षु अल्प अदत्तादान लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक अनुद्घातिक परिहारिक स्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सेह-अवहरण-विप्परिणामणं पायच्छित्त सुत्तं—

४४५. जे भिक्खू सेहं अवहरइ अवहरंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सेहं विप्परिणामेइ विप्परिणामंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. १०, सु. ९-१०

शिष्य के अपहरण का या उसके भाव परिवर्तन का प्रायश्चित्त सूत्र—

४४५. जो भिक्षु शिष्य का अपहरण करता है करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु शिष्य के पूर्व गुरु के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारिक स्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

आयरियस्स अवहरण-विप्परिणामण-पायच्छित्त सुत्तं—

४४६. जे भिक्खू दिसं अवहरइ अवहरंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू दिसं विप्परिणामेइ विप्परिणामंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. १०, सु. ११-१२

आचार्य के अपहरण या परिवर्तनकरण का प्रायश्चित्त सूत्र—

४४६. जो भिक्षु आचार्य का अपहरण करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु आचार्य का परिवर्तन करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहार स्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

तृतीय महाव्रत परिशिष्ट

अदिण्णादाण महव्वयस्स पंच भावणाओ—

४४७. १. उग्गहमणुण्णवणया,
२. उग्गहसीमजाणणया,
३. सयमेव उग्गहं अणुगिण्हणया,
४. साहम्मिय उग्गहं अणुण्णविय परिभुंजणया,
५. साहारणभत्तपाणं अणुण्णविय परिभुंजणया।

—सम. २५, सु. १

तृतीय अदत्तादान महाव्रत की पाँच भावना—

४४७. (१) अवग्रह-अनुज्ञापनता।
(२) अवग्रहसीम-ज्ञापनता।
(३) स्वयमेव अवग्रह-अनुग्रहणता।
(४) साधर्मिक-अवग्रह-अनुज्ञापनता।
(५) साधारण-भक्तपान अनुज्ञाप्य परिभुंजनता।

तस्स इमा पंच भावणाओ होंति परदव्व-हरणवेरमणपरिरक्खणट्ठयाए।

परद्रव्यहरण-विरमण (अदत्तादान त्याग) व्रत की पूरी तरह रक्षा करने के लिए ये पाँच भावनाएँ हैं—

पढमं—देवकुल-सभ-प्पवा-आवसह-रुक्खमूल-आराम-कंदरागर-गिरिगुहा-कम्म-उज्जाण-जाणसाला-कुवियसाला-मंडव-सुण्णघर-सुसाण लेण-आवणे, अन्नंमि य एवमादियंमि दग-मट्टिय-बीज-हरित-तस-पाण-असंसत्ते अहाकडे फासुए विवित्ते पसत्थे उवस्सए होइ विहरियव्वं।

प्रथम—देवकुल, सभा-महाजनस्थान, प्रपा, परिव्राजक निवास, वृक्षमूल, उद्यान, कन्दरा, खान, गुफा, चूना बनाने का स्थान, यानशाला, गृह सामग्री भरने का स्थान, मण्डप, शून्यगृह, श्मशान, लयन—शैल गृह, विक्रयशाला आदि अन्य ऐसे ही स्थान जो सचित्त पानी, मिट्टी, बीज, हरितकाय त्रस प्राणियों से रहित हों और गृहस्थ ने अपने उपयोग के लिए बनवाया हो। प्रासुक हो तथा स्त्री-पुरुष-पण्डक से रहित और प्रशस्त हो ऐसे उपाश्रय में साधु को रहना चाहिए।

आहाकम्मबहुले य जे से आसित्त-संमज्जिओवलित्त-सोहिय-छायण-दूमण-लिंपण-अणुलिंपण-जलण-भंडचालणं, अंतो बहिं च असंजमो जत्थ वट्टई, संजयाण अट्ठा वज्जेयव्वो हु उवस्सओ से तारिसए सुत्त पडिकुट्ठे।

जो स्थान आधाकर्मबहुल हो अर्थात् जहाँ साधु के निमित्त पानी का छिड़काव किया हो, झाड़ू से साफ किया हो, पानी से खूब सींचा हो, वन्दन माला आदि से सुशोभित किया हो, चटाई आदि बिछाई हो, कलई से श्वेत किया गया हो, गोबर आदि से लीपा हो, बार-बार लीपा हो, गरम करने के लिए या प्रकाश के लिए आग जलाई हो, बर्तन इधर-उधर किये हों इस प्रकार साधुओं के लिए जिस उपाश्रय के अन्दर या बाहर जीवों की अधिक हिंसा की गई हो ऐसा आगम निषिद्ध उपाश्रय साधु के लिए वर्जनीय है।

एवं विवित्तवास-वसहि-समितिजोगेण भाविओ भवई अंतरप्पा। निच्चं अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्मविरओ दत्तमणुण्णाय-ओग्गहरुई।

इस प्रकार जिसका अन्तरात्मा विविक्तवाससमिति से भावित होता है वह दुर्गति में ले जाने वाले पापकर्मों के करने और करवाने के दोष से नित्य विरत होता हुआ दत्त अनुज्ञात अवग्रह की रुचि वाला बनता है।

बितीयं—आरामुज्जाण-काणण-वणप्पदेसभागे जं किंचि इक्कडं च, कठिणगं च जंतुगं च परा-मेर-कुच्च-कुस-डब्भ-पलाल-मूयग-वल्लय-पुप्फ, फल-तय-प्पवाल-कंद-मूल-तण-कट्ठ-सक्कराओ गेण्हइ, सेज्जोवहिस्स अट्ठा न कप्पए ओग्गहे अदिन्नंमि गिण्हेउं।

द्वितीय—आराम, उद्यान, कानन और वन प्रदेश में जो कोई इक्कड़, कठिनग, जतुग परा, मूंज, कुश, दूब, पलाल, मूयग, वल्वज, पुष्प, फल, छाल, अंकुर, मूल, तृण, काष्ठ कांकरी आदि संस्तारक के लिए आवश्यक हो वे आज्ञा माँग कर लेने कल्पते हैं, बिना आज्ञा-अदत्त लेना नहीं कल्पता।

जे हणि हणि उग्गहं अणुन्नविय गेण्हियव्वं।

प्रतिदिन आज्ञा लेकर लेना कल्पता है।

एवं उग्गहसमितिजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा । निच्चं अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्मविरते दत्तमणुण्णाय-ओग्गहरुई ।

इस प्रकार जिसका अन्तरात्मा अवग्रह समिति से भावित होता है वह दुर्गति में ले जाने वाले पाप कर्मों के करने और करवाने के दोष से नित्य विरत होता हुआ दत्त अनुज्ञात अवग्रह की रुचि वाला बनता है ।

ततीयं—१. पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगट्ठयाए रुक्खा न छिंदियव्वा ।

तृतीय—(१) पीढ़ा, फलक, शय्या या संस्तारक के लिए वृक्ष नहीं काटना चाहिए ।

२. न छेयणेण भेयणेण सेज्जा कारेयव्वा ।

(२) छेदन-भेदन किया कर शय्या नहीं बनवानी चाहिए ।

३. जस्सेव उवस्सए वसेज्ज, सेज्जं तत्थेव गवेसेज्जा ।

(३) जिसके उपाश्रय में निवास किया हो वहीं शय्या की गवेषणा करनी चाहिए ।

४. न य विसमं समं करेज्जा ।

(४) ऊँची-नीची जमीन को सम नहीं करना चाहिए ।

५. न निवाय-पवाय उस्सुगत्तं ।

(५) हवा का अभाव हो या अधिक हवा आती हो तो कुछ भी प्रतिकार नहीं करना चाहिए ।

६. न डंस-मसगेसु खुभियव्वं ।

(६) डांस या मच्छरों का उपद्रव हो तो भी क्षोभ नहीं होना चाहिए ।

७. अग्गी धूमो य न कायव्वो ।

(७) अग्नि या धुआँ नहीं करना चाहिए ।

एवं संजम-बहुले, संवर-बहुले, संवुड-बहुले, समाहि-बहुले, धीरे काएण फासयंतो सययं अज्झप्पज्झाणजुत्ते समिए एगे चरेज्ज धम्मं ।

इस प्रकार जो पृथ्वीकाय आदि जीवों के रक्षण में तत्पर, आश्रव रोकने में तत्पर, कषाय और इन्द्रियों के निग्रह में तत्पर, चित्त-समाधि में तत्पर, धैर्यवान्, काया से सर्वदा (न केवल मनोरथ से) चारित्र का पालन करता हुआ अध्यात्मध्यान से युक्त होता है, वह रागादि से रहित होकर धर्म का आचरण करता है ।

एवं सेज्जासमितिजोगेण भाविओ भवई अंतरप्पा । निच्चं अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्मविरते दत्तमणुण्णाय-ओग्गहरुई ।

इस प्रकार जिसका अन्तरात्मा शय्यासमिति के योग से भावित होता है वह दुर्गति में ले जाने वाले पाप कर्मों के करने के दोष से विरत होता हुआ दत्त अनुज्ञात अवग्रह की रुचि वाला बनता है ।

चउत्थं—साहारण-पिंडपातलाभे भोत्तव्वं संजएण समियं ।

चतुर्थ– समान साधर्मिकों को प्राप्त आहार आदि भी आज्ञा प्राप्त करके उपयोग में लेने चाहिए ।

न साय-सूपाहिकं, न खद्धं, न वेगियं, न तुरियं, न चवलं, न साहसं, न य परस्स पीलाकरं सावज्जं ।

साधर्मिकों के आहार में से शाक, दाल आदि अधिक नहीं लेने चाहिए, भोजन का भी अधिक भाग नहीं लेना चाहिए, (अन्यथा साधुओं को अप्रीति होती है) ग्रास वेग से नहीं निगलने चाहिए, ग्रास मुंह में जल्दी-जल्दी नहीं रखने चाहिए, आहार करते समय कायिक चपलता नहीं रखनी चाहिए, सहसा (हित-मित-पथ्य का विवेक किये बिना) आहार नहीं करना चाहिए, "दूसरों को पीड़ा हो" इस प्रकार आहार नहीं करना चाहिए, सावद्य (सदोष) आहार नहीं करना चाहिए ।

तह भोत्तव्वं जह से ततियवयं न सीदति ।

आहार इस प्रकार लेना चाहिए जिससे तृतीय व्रत खण्डित न हो ।

साहारण-पिंडपायलाभे सुहुमं अदिन्नादाणवय-नियम-वेरमणं ।

समान स्वधर्मिकों से प्राप्त आहार आदि के (आज्ञा लेकर) लेने में निश्चित रूप से सूक्ष्म अदत्तादान विरमण व्रत का पालन होता है ।

एवं साहारण-पिंडपायलाभे समिति जोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा।

इस प्रकार जिसका अन्तरात्मा आचरण पिण्ड पात्र समिति के योग से भावित होता है।

निच्चं अहिकरण-करण-कारावण-पावकम्मविरते दत्तमणुन्नाय ओग्गहरुई।

वह दुर्गति में ले जाने वाले पाप कर्मों के करने व कराने के दोष से विरत होता हुआ दत्त-अनुज्ञात अवग्रह रुचि वाला बनता है।

पंचमगं—१. साहम्मिएसु विणओ पउंजियव्वो।

पंचम—(१) साधर्मी के प्रति विनय का प्रयोग करना चाहिए।

२. उवगरण-पारणासु विणओ पउंजियव्वो।

(२) रोगी आदि के सेवा के लिए, पारणा तपश्चर्या की समाप्ति में विनय का प्रयोग करना चाहिए।

३. वायण-परियट्टणासु विणओ पउंजियव्वो।

(३) वाचना—नये ग्रन्थ के अध्ययन में तथा परिवर्तना—सूत्रार्थक के दुहराने में विनय का प्रयोग करना चाहिए।

४. दाण-गहण-पुच्छणासु विणओ पउंजियव्वो।

(४) साधर्मिकों को आहारादि देने में या उनसे आहारादि ग्रहण करने में अथवा सूत्रार्थ की पृच्छा में विनय का प्रयोग करना चाहिए।

५. निक्खमण-पवेसणासु विणओ पउंजियव्वो।

(५) उपाश्रय से निकलते समय या उपाश्रय में प्रवेश करते समय विनय का प्रयोग करना चाहिए।

६. गुरुसु साहुसु तवस्सीसु य विणओ पउंजियव्वो।
अन्नेसु य एवमाविसु बहुसु कारणसएसु विणओ पउंजियव्वो।

(६) गुरुओं की, साधुओं की, तपस्वियों की विनय करनी चाहिए इत्यादि ऐसे अनेक प्रसंगों में विनय का प्रयोग करना चाहिए।

विणओवि तवो, तवो वि धम्मो, तम्हा विणओ पउंजियव्वो।

"विनय तप है, तप धर्म है, इसलिए गुरुओं, साधुओं और तपस्वियों के प्रति विनय का प्रयोग करना चाहिए।"

एवं विणएण भाविओ भवई अंतरप्पा।
णिच्चं अहिगरणं करण-कारावण-पावकम्म विरए, दत्तमणुण्णाय ओग्गहरुई।

—प. सु. २, अ. ३, सु. १०-१५

इस प्रकार जिसका अन्तरात्मा विनय से भावित होता है वह दुर्गति में ले जाने वाले पाप कर्मों के करने व कराने के दोषों से सदा विरत होता हुआ दत्त-अनुज्ञात के अवग्रह की रुचि वाला बनता है।

उवसंहारो—

४४८. एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं, एवं पंचहिं वि कारणेहिं मण-वय-काय-परिरक्खिएहिं णिच्चं आमरणंतं च एस जोगो णेयव्वो धिइमया मइमया अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावो असंकिलिट्ठो सुद्धो सव्वजिण-मणुण्णाओ।

उपसंहार—

४४८. इस प्रकार मन, वचन और काय से पूर्ण रूप से सुरक्षित-सुसेवित इन पाँच भावनाओं से संवर का यह द्वार—अस्तेय महाव्रत सम्यक् प्रकार से संवृत-आचरित और सुप्रणिहित स्थापित हो जाता है। अतएव धैर्यवान् तथा मतिमान् साधक को चाहिये कि वह आस्रव का निरोध करने वाले, निर्मल (अकलुष) निश्छिद्र-कर्म-जल के प्रवेश को रोकने वाले, कर्मबन्ध के प्रवाह से रहित, संक्लेश का अभाव करने वाले एवं समस्त तीर्थंकरों द्वारा अनुज्ञात इस योग को निरन्तर जीवनपर्यन्त आचरण में उतारे।

एवं तइयं संवरदारं फासियं पालियं सोहियं,

इस प्रकार (पूर्वोक्त रीति से) दत्तानुज्ञात नामक तृतीय संवर-द्वार यथासमय अंगीकृत, पालित, शोधित-निरतिचार आचरित या शोभाप्रदायक

तीरियं,
किट्टियं,

तीरित—अन्त तक पार पहुँचाया हुआ
कीर्तित—दूसरों के समक्ष आदरपूर्वक कथित

आराहियं आणाए अणुपालियं भवइ।

अनुपालित—निरन्तर सेवित और भगवान् की आज्ञा के अनुसार आराधित होता है।

एवं णायमुणिणा भगवया पण्णवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धं सिद्धवर सासणमिणं आघवियं सुदेसियं पसत्थं।

—प. सु. २, अ. ३, सु. १६

इस प्रकार भगवान् ज्ञातमुनि महावीर स्वामी ने इस सिद्ध-वरशासन का कथन किया है, विशेष प्रकार से विवेचन किया है। यह तर्क और प्रमाण से सिद्ध है, सुप्रतिष्ठित किया गया है, भव्य जीवों के लिये इसका उपदेश किया गया है, यह प्रशस्त-कल्याणकारी-मंगलमय है।

अन्नउत्थिएहिं अदत्तादाणाक्खेवो—थेरेहिं तप्परिहारो य—

अन्यतीर्थिकों द्वारा अदत्तादान का आक्षेप—स्थविरों द्वारा उसका परिहार—

४४९. **तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। वण्णओ। गुण-सिलए चेइए वण्णओ-जाव-पुढविसिलापट्टओ वण्णओ तस्स णं गुणसिलयस्स चेइयस्स अदूरसामंते बहवे अन्नउत्थिया परिवसंति।**

४४९. उस काल उस समय में राजगृह नगर था। (औपपातिक सूत्र में वर्णित चम्पानगरवत् जानना) गुणशीलक चैत्य था, —**यावत्**—पृथ्वीशिलापट्टक था। (यह वर्णन औपपातिक सूत्र के पूर्णभद्र चैत्य की भाँति समझना तथा शिलापट्टक तक का वर्णन जानना) उस गुणशीलक चैत्य के आस-पास (इर्द-गिर्द) बहुत से अन्यतीर्थिक रहते थे।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे -जाव-समोसढे-जाव-परिसा पडिगया।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर धर्म के आदि संस्थापक—**यावत्**—पधारे। (यह वर्णन औपपातिकवत् जानना)—**यावत्**—परिषद् धर्मोपदेश सुनकर वापिस लौट गयी।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे अंतेवासी थेरा भगवंतो जातिसम्पन्ना कुलसम्पन्ना-जाव-जीवि-यासा-मरणभयविप्पमुक्का समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढं जाणू अहोसिरा झाणकोट्ठोवगया संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा-जाव-विहरंति।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के अनेक शिष्य जातिसम्पन्न कुलसम्पन्न—**यावत्**—जीवन की आशा रहित और मरण भय से रहित स्थविर भगवन्त श्रमण भगवान् महावीर के आस-पास घुटने खड़े रखकर, सिर नीचे झुकाकर, ध्यान कोष्ठ को प्राप्त होकर संयम-तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

तए णं ते अन्नउत्थिया जेणेव थेरा भगवन्तो तेणेव उवा-गच्छंति, उवागच्छित्ता ते थेरे भगवन्ते एवं वयासी—"तुब्भे णं अज्जो तिविहं तिविहेणं असंजय-अविरय-अप्पडिहय-अपच्च-क्खाय पावकम्मा सकिरिया असंवुडा, एगंतदंडा, एगंतबाला या वि भवह।

एकदा वे अन्यतीर्थिक जहाँ स्थविर भगवन्त थे, वहाँ आये। उनके पास आकर स्थविर भगवन्तों को इस प्रकार कहा—"हे आर्यो! तुम त्रिविध-त्रिविध से (तीन करण तीन योग से) असंयत, अविरत, अप्रतिहत पापकर्म वाले और अप्रत्याख्यान पाप कर्म वाले हो, क्रिया रहित हो, असंवृत हो, एकान्त हिंसा कारक, एकान्त अज्ञानी भी हो।"

तए णं ते थेरा भगवन्तो ते अन्नउत्थिए एवं वयासी—"केण कारणेणं अज्जो! तिविहं तिविहेणं असंजय-अविरय-अप्पडिहय-अपच्चक्खाय—पावकम्मा-जाव-एगंतबाला यावि भवामो?"

ततः स्थविर भगवन्तों ने अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार पूछा—"हे आर्यो! किस कारण से हम त्रिविध-त्रिविध से असंयत-अविरत-अप्रतिहत-पापकर्म और अप्रत्याख्यान पाप कर्म वाले—**यावत्**—एकान्त अज्ञानी हैं?"

तए णं ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवन्ते एवं वयासी—

तदनन्तर अन्यतीर्थिकों ने स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार कहा—

"तुब्भे णं अज्जो! अदिन्नं गेण्हह, अदिन्नं भुंजह, अदिन्नं सातिज्जह। तए णं तुब्भे अदिन्नं गेण्हमाणा, अदिन्नं भुंज-माणा, अदिन्नं सातिज्जमाणा तिविहं तिविहेणं असंजय-

"हे आर्य! तुम अदत्त (बिना दिये) ग्रहण करते हो, अदत्त भोजन करते हो, अदत्त का स्वाद लेते हो। इस प्रकार तुम अदत्त ग्रहण करते हुए, अदत्त भोजन करते हुए, अदत्त की

अविरय-अप्पडिहय-अपच्चक्खाय-पावकम्मा–जाव–एगंतबाला यावि भवह।"

अनुमति देते हुए, त्रिविध-त्रिविध से असंयत-अविरत-अप्रतिहत-पापकर्म वाले और अप्रत्याख्यान पापकर्म वाले—**यावत्**—एकान्त अज्ञानी हो।

तए णं ते थेरा भगवन्तो ते अन्नउत्थिए एवं वयासी—

तत्पश्चात् स्थविर भगवन्तों ने उन अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार पूछा—

"केण कारणेणं अज्जो ! अम्हे अदिन्नं गेण्हामो, अदिन्नं भुंजामो, अदिन्नं सातिज्जामो ?"

तए णं अम्हे अदिन्नं गेण्हमाणा, अदिन्नं भुंजमाणा, अदिन्नं सातिज्जमाणा तिविहं तिविहेणं असंजय-अविरय-अप्पडिहय-अपच्चक्खाय-पावकम्मा-जाव-एगंतबाला यावि भवामो ?

"हे आर्यों ! किस कारण से हम अदत्त ग्रहण करते हैं ? अदत्त भोजन करते हैं ? अदत्त का स्वाद लेते हैं ?

अदत्त का ग्रहण करते हुए अदत्त का भोजन करते हुए, अदत्त की अनुमति देते हुए, त्रिविध-त्रिविध से असंयत-अविरत-पापकर्म के अनिरोधक, पापकर्म के अप्रत्याख्यान वाले—**यावत्**—एकान्त अज्ञानी भी हैं ?"

तए णं ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवन्ते एवं वयासी—

बाद में अन्यतीर्थिकों ने स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार कहा—

"तुम्हाणं अज्जो ! दिज्जमाणे अदिन्ने, पडिग्गहेज्जमाणे अपडिग्गहिए निसिरिज्जमाणे अणिसट्ठे,

"हे आर्यों ! आपके मत में दिया जाता हुआ पदार्थ "नहीं दिया", ग्रहण किया जाता हुआ पदार्थ "नहीं ग्रहण किया", पात्र में डाला जाता हुआ पदार्थ—"नहीं डाला गया" ऐसा कथन है।

तुब्भे णं अज्जो ! दिज्जमाणं पडिग्गहगं असंपत्तं एत्थ णं अंतरा केइ अवहरिज्जा, गाहावइस्स णं तं, नो खलु तं तुब्भं, तए णं तुब्भे अदिन्नं गेण्हह, अदिन्नं भुंजह, अदिन्नं सातिज्जह, "तए णं तुब्भे अदिन्नं गेण्हमाणा, अदिन्नं भुंजमाणा, अदिन्नं सातिज्जमाणा-जाव-एगंतबाला यावि भवह।"

हे आर्यों ! आपको दिया जाता हुआ पदार्थ, जब तक पात्र में नहीं पड़ा तब तक बीच में से ही कोई उसका अपहरण कर ले तो तुम कहते हो—"वह उस गृहपति के पदार्थ का अपहरण हुआ", "तुम्हारे पदार्थ का अपहरण हुआ" ऐसा तुम नहीं कहते। इस कारण से तुम अदत्त का ग्रहण करते हो, तुम अदत्त का भोजन करते हो, अदत्त की अनुमति देते हो, अतः तुम अदत्त का ग्रहण करते हुए, अदत्त का भोजन करते हुये, अदत्त की अनुमति देते हुए—**यावत्**—एकान्त अज्ञानी हो।"

तए णं ते थेरा भगवन्तो ते अन्नउत्थिए एवं वयासी—

तदनन्तर स्थविर भगवन्तों ने उन अन्यतीर्थिकों को इस प्रकार कहा—

"नो खलु अज्जो ! अम्हे अदिन्नं गिण्हामो, अदिन्नं भुंजामो, अदिन्नं सातिज्जामो, अम्हे णं अज्जो ! दिन्नं गेण्हामो, दिन्नं भुंजामो, दिन्नं सातिज्जामो।"

हे आर्यों ! हम अदत्त ग्रहण नहीं करते, अदत्त भोजन नहीं करते, अदत्त की अनुमोदना नहीं करते, हम दत्त (दिया हुआ) ग्रहण करते हैं, दत्त का भोजन करते हैं, दत्त की अनुमोदना करते हैं।

तए णं अम्हे दिन्नं गेण्हमाणा, दिन्नं भुंजमाणा, दिन्नं सातिज्जमाणा तिविहं तिविहेणं संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मा, अकिरिया, संवुडा, एगंत अदंडा, एगंतपंडिया यावि भवामो।

अतः हम दत्त को ग्रहण करते हुए, दत्त का भोजन करते हुये, दत्त का अनुमोदन करते हुए, त्रिविध-त्रिविध संयत-विरत, पापकर्मों के निरोधक, पापकर्मों के प्रत्याख्यान किये हुए, क्रिया रहित—संवृत, एकान्त अहिंसक, एकान्त ज्ञानी हैं।"

तए णं ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—

तत्पश्चात् उन अन्यतीर्थिकों ने स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार पूछा—

"केण कारणेणं अज्जो ! तुम्हे दिन्नं गेण्हह, दिन्नं भुंजह, दिन्नं सातिज्जह," तए णं तुब्भे दिन्नं गेण्हमाणा-जाव-एगंतपंडिया यावि भवह।

"हे आर्यों ! किस कारण से तुम दत्त ग्रहण करते हो, दत्त भोजन करते हो, दत्त की अनुमोदना करते हो, दत्त ग्रहण करते हुए—**यावत्**—एकान्त ज्ञानी हो ?

तए णं ते थेरा भगवन्तो ते अन्नउत्थिए एवं वयासी—

तदनन्तर स्थविर भगवन्तों ने अन्यतीर्थिकों को इस प्रकार कहा—

"अम्हे णं अज्जो ! दिज्जमाणे दिन्ने, पडिग्गहेज्जमाणे पडिग्गहिए निसिरिज्जमाणे निसट्ठे। अम्हे णं तं णो खलु तं गाहावइस्स।

"हमारे मत में हे आर्यो ! दिया जाता हुआ "दिया गया" ग्रहण किया जाता हुआ "ग्रहण किया" पात्र में डाला जाता हुआ "पात्र में डाला गया" ऐसा कथन है। अतः हमें दिया हुआ पदार्थ जब तक पात्र में नहीं पड़ा हो तब तक बीच में से कोई अपहरण करता है तो वह हमारा है, वह गृहस्थ का नहीं है।

तए णं अम्हे दिन्नं गेण्हामो, दिन्नं भुंजामो, दिन्नं सातिज्जामो, तए णं अम्हे दिन्नं गेण्हमाणा, दिन्नं भुंजमाणा, दिन्नं सातिज्जमाणा तिविहं तिविहेणं संजय-विरय-पडिहय पच्चक्खाय-पावकम्मा-जाव-एगंतपंडिया यावि भवामो।

अतः हम दिया हुआ ग्रहण करते हैं, दिया हुआ भोजन करते हैं, दिये हुए की अनुमति देते हैं। इस प्रकार हम दत्त का ग्रहण करते हुए, दत्त का भोजन करते हुए, दत्त की अनुमति देते हुए, त्रिविध-त्रिविध से संयत-विरत-पापकर्म के निरोधक, पाप कर्म के प्रत्याख्यान किये हुए क्रिया रहित, संवृत, एकान्त अहिंसक—**यावत्**—एकान्त पण्डित हैं।

तुब्भे णं अज्जो ! अप्पणा चेव तिविहं तिविहेणं असंजय-अविरय-अपडिहय-अपच्चक्खाय पावकम्मा-जाव-एगंतबाला यावि भवह।

हे आर्यो ! तुम स्वयं त्रिविध-त्रिविध से असंयत-अविरत-पापकर्मों के अनिरोधक, पापकर्मों के प्रत्याख्यान नहीं किये हुए—**यावत्**—एकान्त अज्ञानी हो।

तए णं ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—

तत्पश्चात् उन अन्यतीर्थिकों ने स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार पूछा—

"केण कारणेणं अज्जो अम्हे तिविहं तिविहेणं असंजय-अविरय-अपडिहय-अपच्चक्खाय पावकम्मा सकिरिया—असंवुडा एगंतदंडा एगंतबाला यावि भवामो ?

"किस कारण से हम त्रिविध-त्रिविध से असंयत-अविरत-पापकर्मों के अनिरोधक पापकर्मों के प्रत्याख्यान नहीं किये हुए—**यावत्**—एकान्त अज्ञानी हैं ?"

तए णं ते थेरा भगवंतो ते अन्नउत्थिए एवं वयासी—

तदनन्तर उन स्थविर भगवन्तों ने अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार कहा—

"तुब्भे णं अज्जो ! अदिन्नं गेण्हह, अदिन्नं भुंजह, अदिन्नं साइज्जह, तए णं अज्जो ! तुब्भे अदिन्नं गेण्हमाणा, अदिन्नं भुंजमाणा, अदिन्नं साइज्जमाणा तिविहं तिविहेणं असंजय-अविरय-अपडिहय-अपच्चक्खाय पावकम्मा-जाव-एगंतबाला यावि भवह।"

हे आर्यो ! तुम अदत्त ग्रहण करते हो, अदत्त भोजन करते हो, अदत्त की अनुमति देते हो। इस प्रकार हे आर्यो ! तुम अदत्त ग्रहण करते हुए, अदत्त भोजन करते हुए, अदत्त की अनुमति देते हुए त्रिविध-त्रिविध के असंयत, अविरत, पापकर्मों के अनिरोधक, पापकर्मों के प्रत्याख्यान नहीं किये हुए—**यावत्**—एकान्त अज्ञानी हो।

तए णं ते अन्नउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—

तदनन्तर उन अन्यतीर्थिकों ने स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार पूछा—

"केण कारणेणं अज्जो ! अम्हे अदिन्नं गेण्हामो, अदिन्नं भुंजामो, अदिन्नं साइज्जामो, तए णं अम्हे अदिन्नं गेण्हमाणा, अदिन्नं भुंजमाणा, अदिन्नं साइज्जमाणा तिविहं तिविहेणं, असंजय–अविरय–अपच्चक्खाय–पावकम्मा–जाव–एगंतबाला यावि भवामो।"

हे आर्यो ! किस कारण से हम अदत्त ग्रहण करते हैं, अदत्त भोजन करते हैं, अदत्त की अनुमति देते हैं, इस प्रकार अदत्त ग्रहण करते हुए, अदत्त भोजन करते हुए, अदत्त की अनुमति देते हुए त्रिविध-त्रिविध असंयत-अविरत-पापकर्मों के अनिरोधक, पापकर्मों के प्रत्याख्यान नहीं किये हुए—**यावत्**—एकान्त अज्ञानी होते हैं ?

तए णं थेरा भगवन्तो ते अन्नउत्थिए एवं वयासी—

तत्पश्चात् उन स्थविर भगवन्तों ने अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार कहा—

तुब्भे णं अज्जो दिज्जमाणे—अदिन्ने, पडिग्गहेज्जमाणे अपडिग्गहिए, निसिरिज्जमाणे अनिसट्ठे।

तुब्भे णं अज्जो! दिज्जमाणं पडिग्गहगं असंपत्तं एत्थ णं अंतरा केइ अवहरिज्जा गाहावइस्स णं तं, नो खलु तं तुब्भं, तए णं तुब्भे अदिन्नं गेण्हह, अदिन्नं भुंजह, अदिन्नं सातिज्जह,

तए णं तुब्भे अदिन्नं गेण्हमाणा, अदिन्नं भुंजमाणा, अदिन्नं साइज्जमाणा तिविहं तिविहेणं असंजय-अविरय-अपडिहय-अपच्चक्खाय-पावकम्मा-जाव-एगंतबाला यावि भवह।"

—वि. स. ८, उ. ७, सु. १-१५

हे आर्यो तुम देते हुए को "अदत्त" ग्रहण करते हुए को "ग्रहण नहीं किया", पात्र में डाला जाता पदार्थ "नहीं डाला गया" (मानते हो)।

हे आर्य! दिया जाता हुआ पदार्थ जब-तक पात्र में नहीं आया और बीच में से ही कोई उसे अपहरण करता है तो वह गृहस्थ का है, वह तुम्हारा नहीं है, अतः तुम अदत्त ग्रहण करते हो, अदत्त भोजन करते हो, अदत्त की अनुमति देते हो—

इस प्रकार तुम अदत्त का ग्रहण करते हुए अदत्त का भोजन करते हुए, अदत्त की अनुमति देते हुए त्रिविध-त्रिविध से असंयत-अविरत-पापकर्मों के अनिरोधक, पापकर्मों का प्रत्याख्यान नहीं किये हुए—यावत्—एकान्त अज्ञानी हो।"

✱✱

चतुर्थ महाव्रत

ब्रह्मचर्य स्वरूप (१)

चउत्थ बंभचेर महव्वयस्स आराहण-पइण्णा—

४५०. अहावरे चउत्थे भंते ! महव्वए मेहुणाओ वेरमणं ।

सव्वं भन्ते ! मेहुणं पच्चक्खामि; से दिव्वं वा माणुसं वा, तिरिक्ख जोणियं वा ।

[से य मेहुणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—१. दव्वओ, २. खेत्तओ, ३. कालओ, ४. भावओ ।

१. दव्वओ रूवेसु वा, रूवसहगतेसु वा दव्वेसु,

२. खेत्तओ उड्ढलोए वा, अहोलोए वा, तिरियलोए वा ।

३. कालओ दिया वा राओ वा,

४. भावओ रागेण वा दोसेण वा ।]

नेव सयं मेहुणं सेवेज्जा, नेवऽन्नेहिं मेहुणं सेवावेज्जा, मेहुणं सेवंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा, जावज्जीवाए-तिविहं तिविहेणं, मणेणं वायाए काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि ।

तस्स भन्ते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।[1]

चउत्थे भन्ते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं । —दस. अ. ४, सु. १४

अहावरं चउत्थं भंते ! महव्वयं पच्चक्खामि सव्वं मेहुणं ।

से दिव्वं वा, माणुसं वा, तिरिक्खजोणियं वा, णेव सयं मेहुणं गच्छेज्जा । णेवऽण्णं मेहुणं गच्छाविज्जा, अण्णं पि मेहुणं गच्छंतं ण समणुजाणेज्जा,

जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं-जाव-वोसिरामि ।

चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत के आराधन की प्रतिज्ञा—

४५०. भन्ते ! इसके बाद चौथे महाव्रत में मैथुन की विरति होती है ।

भन्ते ! मैं सब प्रकार के मैथुन का प्रत्याख्यान करता हूँ । देव सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धी अथवा तिर्यञ्च सम्बन्धी ।

[वह मैथुन चार प्रकार का है, जैसे— (१) द्रव्य से, (२) क्षेत्र से, (३) काल से, (४) भाव से ।

(१) द्रव्य से रूप में या रूप युक्त द्रव्य में,

(२) क्षेत्र से उर्ध्वलोक, या अधोलोक या तिर्यक्लोक में,

(३) काल से दिन में या रात्रि में,

(४) भाव से राग या द्वेष से ।]

मैथुन का मैं स्वयं सेवन नहीं करूँगा, दूसरों से मैथुन सेवन नहीं कराऊँगा और मैथुन सेवन करने वालों का अनुमोदन भी नहीं करूँगा, यावज्जीवन के लिए तीन करण तीन योग से—मन से, वचन से, काया से—न करूँगा, न कराऊँगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूँगा ।

भन्ते ! मैं अतीत के मैथुन-सेवन से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और मैथुन से अविरत आत्मा की अतीत अवस्था का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

भन्ते ! मैं चौथे महाव्रत में उपस्थित हुआ हूँ । इसमें सर्व मैथुन की विरति होती है ।

इसके बाद भगवन् ! मैं चतुर्थ महाव्रत स्वीकार करता हूँ इसके सन्दर्भ में समस्त प्रकार के मैथुन—विषय सेवन का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

देव सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धी और तिर्यञ्च योनि सम्बन्धी मैथुन का मैं स्वयं सेवन नहीं करूँगा, न दूसरों से एतत् सम्बन्धी मैथुन सेवन कराऊँगा, और न ही मैथुन सेवन करने वालों का अनुमोदन करूँगा ।

यावज्जीवन तक तीन करण तीन योग से यह प्रतिज्ञा करता हूँ—यावत्—अपनी आत्मा से मैथुन सेवन-पाप का व्युत्सर्ग करता हूँ ।

---

१ विरई अबंभचेरस्स, कामभोगरसन्नुणा । उग्गं महव्वयं बंभं धारेयव्वं सुदुक्करं ॥ —उत्त. अ. १९, गा. २९

मेहुणविरमणवयस्स पंच भावणाओ –

४५१. तस्सिमाओ पंच भावणाओ भवंति।

१. तत्थिमा पढमा भावणा—

णो णिग्गंथे अभिक्खणं अभिक्खणं इत्थीणं कहं कहइत्तए सिया।

केवली बूया— निग्गंथे णं अभिक्खणं अभिक्खणं इत्थीणं कहं कहेमाणे संतिभेदा, संतिविभंगा, संति केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा।

णो णिग्गंथे अभिक्खणं अभिक्खणं इत्थीणं कहं कहेइत्तए सिय त्ति पढमा भावणा।

२. अहावरा दोच्चा भावणा—

णो णिग्गंथे इत्थीणं मणोहराइं मणोरमाइं इंदियाइं आलोइत्तए णिज्झाइत्तए सिया।

केवली बूया—णिग्गंथे णं इत्थीणं मणोहराइं मणोरमाइं इंदियाइं आलोएमाणे णिज्झाएमाणे संतिभेदा, संतिविभंगा संति केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा,

णो णिग्गंथे इत्थीणं मणोहराइं मणोरमाइं इंदियाइं आलोइत्तए णिज्झाइत्तए सिय त्ति दोच्चा भावणा।

३. अहावरा तच्चा भावणा —

णो णिग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकीलियाइं सुमरित्तए सिया।

केवली बूया—णिग्गंथे णं इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकीलियाइं सरमाणे संतिभेदा संतिविभंगा संति केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा।

णो णिग्गंथे इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकीलियाइं सुमरित्तए सिय त्ति तच्चा भावणा।

४. अहावरा चउत्था भावणा—

णातिमत्तपाण—भोयणभोई से निग्गंथे, णो पणीयरसभोयणभोई।

केवली बूया —अतिमत्तपाण—भोयणभोई से णिग्गंथे पणीयरस भोयणभोई त्ति संतिभेदा संतिविभंगा संति केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा।

मैथुनविरमणव्रत की पाँच भावनाएँ—

४५१. उसकी पाँच भावनाएँ कही गई हैं—

(१) उन पाँच भावनाओं में **पहली भावना** इस प्रकार है—

निर्ग्रन्थ साधु बार-बार स्त्रियों की काम-जनक कथा (बातचीत) न कहे।

केवली भगवान् ने कहा है—बार-बार स्त्रियों की कथा कहने वाला निर्ग्रन्थ शान्ति रूप चारित्र का और शान्तिरूप ब्रह्मचर्य का भंग करने वाला होता है, तथा शान्तिरूप केवली-प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

अतः निर्ग्रन्थ को स्त्रियों की कथा बार-बार नहीं कहनी चाहिए। यह प्रथम भावना है।

(२) इसके पश्चात् **दूसरी भावना** यह है—

निर्ग्रन्थ साधु काम-राग से स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों को सामान्य रूप से या विशेष रूप से न देखे।

केवली भगवान् ने कहा है --स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों को काम-रागपूर्वक सामान्य या विशेष रूप से अवलोकन करने वाला साधु शान्तिरूप चारित्र का नाश तथा शान्तिरूप ब्रह्मचर्य का भंग करता है, तथा शान्तिरूप केवलीप्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

अतः निर्ग्रन्थ को स्त्रियों की मनोहर एवं मनोरम इन्द्रियों का कामरागपूर्वक सामान्य अथवा विशेष रूप से अवलोकन नहीं करना चाहिए। यह दूसरी भावना है।

(३) इसके अनन्तर **तीसरी भावना** इस प्रकार है—

निर्ग्रन्थ साधु स्त्रियों के साथ की हुई पूर्वरति (पूर्वाश्रम में की हुई) एवं पूर्व कामक्रीड़ा का स्मरण न करे।

केवली भगवान् ने कहा है - स्त्रियों के साथ की हुई पूर्वरति एवं पूर्व कामक्रीड़ा का स्मरण करने वाला साधु शान्तिरूप चारित्र का नाश तथा शान्तिरूप ब्रह्मचर्य का भंग करने वाला होता है तथा शान्तिरूप केवलीप्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

अतः निर्ग्रन्थ साधु स्त्रियों के साथ हुई पूर्वरति एवं पूर्व काम-क्रीड़ा का स्मरण न करे। यह तीसरी भावना है।

(४) इसके बाद **चौथी भावना** इस प्रकार है—

निर्ग्रन्थ अतिमात्रा में आहार-पानी का सेवन न करे, और न ही सरस स्निग्ध-स्वादिष्ट भोजन का उपयोग करे।

केवली भगवान् ने कहा है —जो निर्ग्रन्थ प्रमाण से अधिक (अतिमात्रा में) आहार-पानी का सेवन करता है, तथा स्निग्ध सरस-स्वादिष्ट भोजन करता है, वह शान्तिरूप चारित्र का नाश करने वाला तथा शान्तिरूप ब्रह्मचर्य को भंग करने वाला होता है तथा शान्तिरूप केवली-प्रज्ञप्त धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

णातिमत्तपाण-भोयणभोई से निग्गंथे, णो पणीतरसभोयणभोई त्ति चउत्था भावणा।

इसलिए निर्ग्रन्थ को अति मात्रा में आहार-पानी का सेवन या सरस स्निग्ध भोजन का उपभोग नहीं करना चाहिए। यह चौथी भावना है।

५. अहावरा पंचमा भावणा—

इसके अनन्तर पंचम भावना का स्वरूप इस प्रकार है—

णो णिग्गंथे इत्थी-पसु-पंडगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्तए सिया।

निर्ग्रन्थ स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त शय्या (वसति) और आसन आदि का सेवन न करे।

केवली बूया—निग्गंथे णं इत्थी-पसु-पंडगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवेमाणे संतिभेदा संतिविभंगा, संति केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा।

केवली भगवान् कहते हैं—जो निर्ग्रन्थ स्त्री, पशु और नपुंसक से संसक्त शय्या और आसन आदि का सेवन करता है, वह शान्तिरूप चारित्र को नष्ट कर देता है, शान्तिरूप ब्रह्मचर्य को भंग कर देता है और शान्तिरूप केवलीप्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

णो णिग्गंथे इत्थी-पसु-पंडगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्तए सिय त्ति पंचमा भावणा।[1]

इसलिए निर्ग्रन्थ को स्त्री-पशु-नपुंसक संसक्त शय्या और आसन आदि का सेवन नहीं करना चाहिए। यह पंचम भावना है।

एताव ताव महव्वए सम्मं काएण फासिते पालिते सोहिते तीरिए किट्टिते अवट्ठिते आणाए आराहिते यावि भवति।

इस प्रकार इन पाँच भावनाओं से विशिष्ट एवं स्वीकृत मैथुनविरमण रूप चतुर्थ महाव्रत का सम्यक् प्रकार से काया से स्पर्श करने पर, उसका पालन करने पर, उसका शोधन करने पर, प्रारम्भ से पालन करते हुए पूर्ण करने पर, पूर्ण नियमों का पालन करने पर, कीर्तन करने पर तथा अन्त तक उसमें अवस्थित रहने पर भगवदाज्ञा के अनुरूप सम्यक् आराधन हो जाता है।

चउत्थं भंते ! महव्वयं मेहुणाओ वेरमणं।

—आ. सु. २, अ. १५, सु. ७८६-७८८

भगवन् ! यह मैथुन-विरमणरूप चतुर्थ महाव्रत है।

बंभचेर महिमा—

ब्रह्मचर्य महिमा—

४५२. जंबू ! एत्तो य बंभचेरं उत्तम-तव-नियम-णाण-दंसण-चरित्त-सम्मत्त-विणयमूलं।

४५२. हे जम्बू ! अदत्तादानविरमण के अनन्तर ब्रह्मचर्य व्रत है। यह ब्रह्मचर्य उत्तम तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व तथा विनय का मूल है।

यम-नियम-गुणप्पहाणजुत्तं,

हिमवंत-महंत-तेयमंत-पसत्थ-गंभीर-थिमित-मज्झं,

यम और नियम रूप प्रधान गुणों से युक्त है।

हिमवान् पर्वत से भी महान और तेजस्वी, जिसके पालन करने से साधकों का अन्तःकरण प्रशस्त, गम्भीर और स्थिर हो जाता है।

---

१ (क) समवायांग सूत्र में चतुर्थ महाव्रत की पांच भावनाएँ इस प्रकार हैं—१. स्त्री-पशु और नपुंसक से संसक्त शयन, आसन का वर्जन, २. स्त्रीकथा विवर्जनता, ३. स्त्रियों की इन्द्रियों के अवलोकन का वर्जन, ४. पूर्वभुक्त और पूर्वक्रीड़ित का अस्मरण, ५. प्रणीत आहार का विवर्जन। —सम. २५, सु. १

(ख) प्रश्नव्याकरण में पांच भावनाएँ इस प्रकार हैं—१. असंसक्त वासवसति, २. स्त्रीजन कथा-वर्जन, ३. स्त्री के अंग प्रत्यंगों और चेष्टाओं के अवलोकन का वर्जन, ४. पूर्वभुक्त भोगों की स्मृति का वर्जन, ५. प्रणीत रस का भोजन वर्जन।
विस्तृत पाठ परिशिष्ट में देखें। —प. सु. २, अ. ४, सु. ८-१२

अज्जवसाहुजणाचरितं

यह सरल साधुजनों द्वारा आचरित है।

मोक्खमग्गं, विसुद्ध-सिद्धिगति-निलयं,

यह मोक्षमार्ग है, विशुद्ध सिद्ध गति का स्थान है।

सासयमव्वाबाहमपुणब्भवं, पसत्थं, सोमं, सुभं, सिवमचलमक्खयकरं,

यह शाश्वत है, क्षुधादि पीड़ाओं से रहित है और पुनर्भव को रोकने वाला है, प्रशस्त है, मंगलमय है, सौम्य है, शुभ अथवा सुखरूप है, शिव है, अचल है, अक्षयकारी है।

जतिवर सारक्खितं, सुचरियं, सुसाहियं,

इस ब्रह्मचर्य का यतिवरों ने सम्यक् प्रकार से रक्षण किया है, सम्यक् प्रकार से आचरण किया है, सम्यक् प्रकार से कहा है।

नवरं—मुणिवरेहिं महापुरिस-धीर-सूर-धम्मिय-धितिमंताण य सया विसुद्धं,

विशेष—उत्तम मुनियों ने, महापुरुषों ने, धीर, शूरवीरों ने, धार्मिक पुरुषों ने, धैर्यवानों ने इस ब्रह्मचर्य का सदा, यावज्जीवन पालन किया है।

भव्वं सव्वभव्वजणाणुचिन्नं निस्संकियं निब्भयं, नित्तुसं, निरायासं, निरुवलेवं,

यह व्रत निर्दोष है, कल्याणकारी है, भव्यजनों ने इसका आचरण किया है, यह शंका रहित है, भय रहित है, तुषरहित-स्वच्छ-तन्दुल के समान खेद के कारणों से रहित है, पाप के लेप से रहित है।

निव्वुतिघरं, नियमं, निप्पकंपं तव-संजम-मूल-दलिय-णेम्मं,

निवृत्ति—मन का मुक्ति गृह है, नियमों से निश्चल है, तप-संयम का मूल है।

पंच महव्वय-सुरक्खियं, समिति-गुत्तिगुत्तं,

पंच महाव्रतों से सुरक्षित है, समिति गुप्ति से युक्त है।

झाणवरकवाडसुकयं, अज्झप्पदिन्नफलिहं,

उत्तम ध्यान के लिए कपाट के पीछे मध्य भाग में दी हुई अर्गला के समान है।

संनद्धोच्छइय-दुग्गइपहं, सुगइपहदेसगं च, लोगुत्तमं च।

—प. सु. २, अ. ४, सु. १

यह व्रत दुर्गति के मार्ग को अवरुद्ध करने वाला है और सुगति का पथदर्शक है। यह व्रत लोक में उत्तम है।

देवदाणवगन्धव्वा जक्ख-रक्खस-किन्नरा।
बम्भयारिं नमंसन्ति, दुक्करं जे करन्ति तं॥

——उत्त. अ. १६, गा. १८

ब्रह्मचारी को देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर ये सभी नमस्कार करते हैं, जो दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है।

बंभचेरस्स सत्तीसं उवमाओ—

ब्रह्मचर्य की तेंतीस उपमाएँ—

४५३. १. वयमिणं पउमसर-तलाग-पालिभूयं,

४५३. (१) यह व्रत कमलों से सुशोभित सरोवर और तालाब के समान धर्म की पाल के समान है अर्थात् धर्म की रक्षा करने वाला है।

२. महासगड-अरगतुंबभूयं,

(२) किसी महाशकट के पहियों के आरों के लिए नाभि के समान है।

३. महाविडिम-रुक्ख-खंधभूयं,

(३) यह व्रत किसी विशाल वृक्ष के स्कन्ध के समान है, धर्म का आधार ब्रह्मचर्य है।

४. महानगर-पागार-कवाड-फलिहभूयं,

(४) यह व्रत महानगर के प्राकार—परकोटा के कपाट की अर्गला के समान है।

५. रज्जु-पिणिद्धो व इंदकेतू विसुद्धणेग-गुण-संपिणिद्धं।

(५) डोरी से बँधे इन्द्रध्वज के सदृश है। उसी प्रकार अनेक गुणों से समृद्ध ब्रह्मचर्य है।

६. गहगण-णक्खत्त-तारगाणं व जहा उडुवई।

(६) जैसे ग्रहगण नक्षत्र और तारागण में चन्द्रमा प्रधान होता है, उसी प्रकार समस्त व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है।

७. मणि - मुत्त - सिल - प्पवाल-रत्त-रयणागराणं च जहा समुद्दो।

(७) मणि, मुक्ता, शिला, प्रवाल और लाल (रत्न) की उत्पत्ति के स्थानों में समुद्र प्रधान है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य सर्व व्रतों का श्रेष्ठ उद्‌भव स्थान है।

८. वेरुलिओ चेव जहा मणीणं।

(८) इसी प्रकार ब्रह्मचर्य मणियों में वैडूर्यमणि के समान उत्तम है।

९. जहा मउडो चेव भूसणाणं।

(९) आभूषणों में मुकुट के समान है।

१०. वत्थाणं चेव खोमजुयलं।

(१०) समस्त प्रकार के वस्त्रों में क्षौमयुगल/कपास के वस्त्र-युगल के सदृश है।

११. अरविन्द चेव पुप्फजेट्ठं।

(११) पुष्पों में श्रेष्ठ अरविन्द-कमलपुष्प के समान है।

१२. गोसीसं चेव चंदणाणं।

(१२) चन्दनों में गोशीर्ष चन्दन के समान है।

१३. हिमवन्तो चेव ओसहीणं।

(१३) जैसे औषधियों चमत्कारिक वनस्पतियों का उत्पत्ति स्थान हिमवान् पर्वत है, उसी प्रकार आमर्षौषधि आदि (लब्धियों) की उत्पत्ति का स्थान ब्रह्मचर्य है।

१४. सीतोदा चेव निन्नगाणं।

(१४) जैसे नदियों में शीतोदा नदी प्रधान है, वैसे ही सब व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है।

१५. उदहीसु जहा सयंभुरमणो।

(१५) समुद्रों में स्वयंभूरमण समुद्र जैसे महान् है, उसी प्रकार व्रतों में ब्रह्मचर्य महत्वशाली है।

१६. रुयगवरे चेव मंडलिक-पव्वयाणं।

(१६) जैसे माण्डलिक अर्थात् गोलाकार पर्वतों में रुचकवर पर्वत प्रधान है, उसी प्रकार सब व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है।

१७. पवरो एरावण इव कुंजराणं।

(१७) इन्द्र का एरावण नामक गजराज जैसे सर्व गजराजों में श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सब व्रतों में ब्रह्मचर्य मुख्य है।

१८. सिहोव्व जहा मिगाणं।

(१८) ब्रह्मचर्य वन्य जन्तुओं में सिंह के समान प्रधान है।

१९. पवरो सुवन्नगाणं च वेणुदेवे।

(१९) ब्रह्मचर्य सुपर्णकुमार देवों में वेणुदेव के समान श्रेष्ठ है।

२०. धरणे जहा पण्णग-इंदराया।

(२०) जैसे नागकुमार जाति के देवों में धरणेन्द्र प्रधान है, उसी प्रकार सर्व व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है।

२१. कप्पाणं चेव बंभलोए।

(२१) कल्पों में ब्रह्मलोक कल्प के समान ब्रह्मचर्य उत्तम है।

२२. सभासु य जहा भवे सोहम्मा।

(२२) जैसे उत्पाद सभा आदि इन पाँचों सभाओं में सुधर्मा सभा श्रेष्ठ है, उसी प्रकार व्रतों में ब्रह्मचर्य है।

२३. ठितिसु लवसत्तमव्व पवरा।

(२३) जैसे स्थितियों में लवसत्तमा-अनुत्तरविमानवासी देवों की स्थिति प्रधान है, उसी प्रकार व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है।

२४. दाणाणं चेव अभयदाणं।

(२४) सब दानों में अभयदान के समान ब्रह्मचर्य सब व्रतों में श्रेष्ठ है।

२५. किमिरागो चेव कम्बलाणं।

(२५) ब्रह्मचर्य सब प्रकार के कम्बलों में कृमिरागरक्त कम्बल के समान उत्तम है।

२६. संघयणे चेव वज्जरिसभे।

(२६) संहननों में वज्रऋषभनाराचसंहनन के समान ब्रह्मचर्य समस्त व्रतों में उत्तम है।

२७. संठाणे चेव समचउरंसे।

(२७) संस्थानों में समचतुरस्रसंस्थान के समान ब्रह्मचर्य समस्त व्रतों में उत्तम है।

२८. झाणेसु य परमसुक्कझाणं ।

(२८) ब्रह्मचर्य ध्यानों में परम शुक्लध्यान के समान सर्व-प्रधान है।

२९. णाणेसु य परमकेवलं सुप्रसिद्धं ।

(२९) समस्त ज्ञानों में जैसे केवलज्ञान प्रधान है, उसी प्रकार सर्व व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत प्रधान है।

३०. लेसासु य परम सुक्कलेसा ।

(३०) लेश्याओं में परमशुक्ललेश्या जैसे सर्वोत्तम है, वैसे ही सब व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत प्रधान है।

३१. तित्थंकरे जहा चेव मुणीणं ।

(३१) ब्रह्मचर्य व्रत सब व्रतों में इसी प्रकार उत्तम है, जैसे सब मुनियों में तीर्थंकर उत्तम होते हैं।

३२. वासेसु जहा महाविदेहे ।

(३२) ब्रह्मचर्य सभी व्रतों में वैसा ही श्रेष्ठ है, जैसे सब क्षेत्रों में महाविदेह क्षेत्र उत्तम है।

३३. गिरिराया चेव मंदरवरे ।

(३३) पर्वतों में गिरिराज सुमेरु की भाँति ब्रह्मचर्य सर्वोत्तम व्रत है।

३४. वणेसु जह नंदणवणं पवरं ।

(३४) जैसे समस्त वनों में नन्दनवन प्रधान है, उसी प्रकार समस्त व्रतों में ब्रह्मचर्य प्रधान है।

३५. दुमेसु जहा जंबू सुदंसणा विस्सुयजसा, जीए नामेण य-अयंदीवो ।

(३५) जैसे समस्त वृक्षों में सुदर्शन जम्बू विख्यात है, जिसके नाम से यह द्वीप विख्यात है। उसी प्रकार समस्त व्रतों में ब्रह्मचर्य विख्यात है।

३६. तुरगवती, गयवती, रहवती, नरवती जह विसुए चेव-राया ।

(३६) जैसे अश्वाधिपति, गजाधिपति और रथाधिपति राजा विख्यात होता है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्यव्रताधिपति विख्यात है।

३७. रहिय चेव जहा महारहगए ।

(३७) जैसे रथिकों में महारथी राजा श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार समस्त व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत सर्वश्रेष्ठ माना है।

एवमणेगा गुणा अहीणा भवंति एक्कंमि बंभचेरे ।।

— प. सु. २, अ. ४, सु. २

इस प्रकार (ब्रह्मचर्य) अनेक निर्मल गुणों से व्याप्त है।

बंभचेरभग्गे सव्वे महव्वया भग्गा—

ब्रह्मचर्य के खण्डित होने पर सभी महाव्रत खण्डित हो जाते हैं—

४५४ जंमि य भग्गंमि होइ सहसा सव्वं संभग्गमथियचुण्णिय-कुसल्लिय-पल्लट्टपडिय-खंडिय-परिसडिय - विणासियं, विणय-सील-तव-नियम-गुणसमूहं ।

—प. सु. २, अ. ४, सु. २-३

४५४. (यह ऐसा आधारभूत व्रत है) जिसके भग्न होने पर सहसा—एकदम सब विनय, शील, तप और गुणों का समूह फूटे घड़े की तरह संभग्न हो जाता है, दही की तरह मथित हो जाता है, आटे की भाँति चूर्ण-चूरा चूरा हो जाता है, काँटे लगे शरीर की तरह शल्य युक्त हो जाता है। पर्वत से लुढ़की शिला के समान लुढ़का-गिरा हुआ, चीरी या तोड़ी हुई लकड़ी की तरह खण्डित हो जाता है तथा दुरवस्था को प्राप्त और अग्नि द्वारा दग्ध होकर बिखरे काष्ठ के समान विनष्ट हो जाता है।

बंभचेरे आराहिए सव्वे महव्वया आराहिया—

ब्रह्मचर्य की आराधना करने पर सभी महाव्रतों की आराधना हो जाती है—

४५५. तं बंभं भगवंतं जंमि य आराहियंमि आराहियं वयमिणं सव्वं --

यह ब्रह्मचर्य भगवान है—अतिशय सम्पन्न है।

"सीलं तवो य, विणओ य, संजमो य, खंती, गुत्ती, मुत्ती, तहेव इहलोइय-पारलोइय जसे य, कित्ती य, पच्चओ य"। तम्हा निहुएण बंभचेरं चरियव्वं, सव्वओ विसुद्धं जावज्जीवाए जाव सेयट्ठी संजउत्ति ॥

इस प्रकार एक ब्रह्मचर्य की आराधना करने पर अनेक गुण स्वतः अधीन—प्राप्त हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने पर निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या सम्बन्धी सम्पूर्ण व्रत अखण्ड रूप से पालित हो जाते हैं, यथा—शील, समाधान, तप, विनय और संयम, क्षमा, गुप्ति, मुक्ति-निर्लोभता। ब्रह्मचर्य व्रत के प्रभाव से इहलोक और परलोक सम्बन्धी यश और कीर्ति प्राप्त होती है। यह विश्वास का कारण है अर्थात् ब्रह्मचारी पर सब का विश्वास होता है। अतएव श्रेयार्थी को एकाग्रचित्त से (तीन करण और तीन योग से) विशुद्ध (सर्वथा निर्दोष) ब्रह्मचर्य का यावज्जीवन पालन करना चाहिए।

इस प्रकार भगवान् महावीर ने ब्रह्मचर्य व्रत का कथन किया है।

एवं भणियं वयं भगवया, तं च इमं—

भगवान का वह कथन इस प्रकार है—

गाहाओ—

गाथार्थ—

पंचमहव्वसुव्वयमूलं, समणमणाइल साहुसुचिन्नं ।
वेर-विरमण-पज्जवसाणं, सव्वसमुद्दमहोदधितित्थं ॥

यह ब्रह्मचर्य व्रत पाँच महाव्रत रूप शोभन व्रतों का मूल है, शुद्ध आचार या स्वभाव वाले मुनियों द्वारा भावपूर्वक सम्यक् प्रकार से सेवन किया गया है, यह वैरभाव की निवृत्ति और उसका अन्त करने वाला है तथा समस्त समुद्रों में स्वयंभूरमण समुद्र के समान दुस्तर किन्तु तैरने का उपाय होने के कारण तीर्थस्वरूप है।

तित्थकरेहिं सुदेसियमग्गं, नरय-तिरिच्छ-विवज्जियमग्गं ।
सव्वपवित्तिसुनिम्मियसारं, सिद्धिविमाणअवंगुयदारं ॥

तीर्थंकर भगवन्तों ने ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने के मार्ग-उपाय-गुप्ति आदि भलीभाँति बतलाए हैं। यह नरकगति और तिर्यंचगति के मार्ग को रोकने वाला है, अर्थात् ब्रह्मचर्य आराधक को नरक-तिर्यंचगति से बचाता है, सभी पवित्र अनुष्ठानों को सारयुक्त बनाने वाला तथा मुक्ति और वैमानिक देवगति के द्वार को खोलने वाला है।

देव-नरिंद-नमंसियपूयं, सव्वजगुत्तम-मंगलमग्गं ।
दुद्धरिसं गुणनायकमेक्कं, मोक्खपहस्सऽवडिंसगभूयं ॥

—प. सु. २, अ. ४, सु. ३-४

देवेन्द्रों और नरेन्द्रों के द्वारा जो नमस्कृत हैं, अर्थात् देवेन्द्र और नरेन्द्र जिनको नमस्कार करते हैं उन महापुरुषों के लिए भी ब्रह्मचर्य पूजनीय है। यह जगत् के सब मंगलों का मार्ग—उपाय है अथवा प्रधान उपाय है। यह दुद्धर्ष अर्थात् कोई इसका पराभव नहीं कर सकता या दुष्कर है। यह गुणों का अद्वितीय नायक है अर्थात् ब्रह्मचर्य ही ऐसा साधन है जो अन्य सभी सद्गुणों की आराधना को प्रेरित करता है।

बंभचेर विघातका—

ब्रह्मचर्य के विघातक—

४५६. जेण सुद्धचरिएण भवइ सुबंभणो सुसमणो सुसाहू सुइसी सुमुणी संजए एवं भिक्खू जो सुद्धं चरति बंभचेरं।

४५६. ब्रह्मचर्य महाव्रत का निर्दोष परिपालन करने से मनुष्य उत्तम ब्राह्मण, उत्तम श्रमण, उत्तम साधु, श्रेष्ठ ऋषि अर्थात् यथार्थ तत्वदृष्टा, उत्कृष्ट मुनि—तत्व का वास्तविक मनन करने वाला, वही संयत संयमवान् और वही सच्चा भिक्षु-निर्दोष भिक्षाजीवी है।

इमं च रति-राग-दोस-मोह-पवड्ढणकरं, किं मज्ज-पमाय-दोस-पसत्थ—सीलकरणं, अब्भंगणाणि य, तेल्ल-मज्जणाणि य, अभिक्खणं कक्ख-सीस-कर-चरण-वयण धोवण-संबाहण-गायकम्म-परिमद्दणाणुलेवण-चुण्णवास-धूवण—सरीरपरिमंडण-बाउसिकं-हसिय-भणिय-नट्ट-गीय-वाइय-नड-नट्टक-जल्ल-मल्ल-पेच्छण-वेलंबक जाणि य सिंगारागाराणि य।

ब्रह्मचर्य का अनुपालन करने वाले पुरुष को इन आगे कहे जाने वाले व्यवहारों का त्याग करना चाहिए—विषयराग, स्नेह-राग, द्वेष और मोह की वृद्धि करने वाला, निस्सार प्रमाददोष तथा पार्श्वस्थ-शिथिलाचारी साधुओं का शील-आचार, (जैसे निष्कारण शय्यातर पिण्ड का उपभोग आदि) घृतादि की मालिश करना, तेल लगाकर स्नान करना, बार-बार बगल, शिर, हाथ पैर और मुंह धोना, मर्दन करना, पैर आदि दबाना, पगचम्पी करना, परिमर्दन करना, समग्र शरीर को मलना, विलेपन करना, चूर्णवास-सुगन्धित चूर्ण-पाउडर से शरीर को सुवासित करना, अगर आदि का धूप देना, शरीर को मण्डित करना, सुशोभित बनाना, बाकुशिक कर्म करना, नखों, केशों एवं वस्त्रों को संवारना आदि, हँसी ठट्ठा करना, विकारयुक्त भाषण करना, नाट्य, गीत, वादित्र, नटों, नृत्यकारों और जल्लों-रस्से पर खेल दिखलाने वालों और मल्लों—कुश्तीबाजों का तमाशा देखना जो शृंगार का आगार -घर है।

अन्नाणि य एवमादियाणि तव-संजम-बंभचेर-घाओवघातियाइं अणुचरमाणेणं बंभचेरं वज्जेयव्वाइं सव्वकालं।

—प. सु. २, अ. ४, सु. ५

तथा इसी प्रकार अन्य बातें जिनसे तपश्चर्या, संयम एवं ब्रह्मचर्य का उपघात—आंशिक विनाश या घात—पूर्णतः विनाश होता है, वे ब्रह्मचर्य का आचरण करने वाले को सदैव के लिए त्याग देना चाहिए।

बंभचेर सहायगा—

४५७. भावियव्वो भवइ य अंतरप्पा, इमेहिं तव-नियम-सील-जोगेहिं निच्चकालं।

प०—किं ते?

उ०—अण्हाणक-अदंतधावण-सेय-मल-जल्लधारणं, मूणवय-केसलोए य, खम-दम-अचेलग-खुप्पिवास, लाघव-सितोसिण-कट्ठसेज्जा, भूमि-निसेज्जा, परघरपवेस-लद्धावलद्ध-माणावमाण-निंदण-दंस-मसग-फास—नियम-तव-गुण-विणयमाविएहिं जहा से थिरतरकं होइ बंभचेरं।

—प. सु. २, अ. ४, सु. ६

ब्रह्मचर्य के सहायक—

४५७. इन त्याज्य व्यवहारों के वर्जन के साथ आगे कहे जाने वाले व्यापारों से अन्तरात्मा को भावित-वासित करना चाहिए।

प्र०—वे व्यापार कौन से हैं?

उ०—(वे ये हैं) स्नान नहीं करना, दन्तधावन नहीं करना, स्वेद (पसीना) धारण करना, जमे हुए या इससे भिन्न मैल को धारण करना, मौनव्रत धारण करना, केशों का लुञ्चन करना, क्षमा, दम-इन्द्रियनिग्रह, अचेलकता—वस्त्ररहित होना अथवा अल्प वस्त्र धारण करना, भूख-प्यास सहना, लाघव—उपाधि अल्प रखना, सर्दी गर्मी सहना, काष्ठ की शय्या, भूमिनिषद्या जमीन पर आसन, परगृहप्रवेश-शय्या या भिक्षादि के लिए गृहस्थ के घर में जाना और प्राप्ति या अप्राप्ति (को समभाव से सहना) मान, अपमान, निन्दा एवं दंशमशक का क्लेश सहन करना, नियम अर्थात् द्रव्यादि सम्बन्धी अभिग्रह करना, तप तथा मूलगुण आदि एवं विनय (गुरुजनों के लिए अभ्युत्थान) आदि से अन्तःकरण को भावित करना चाहिए, जिससे ब्रह्मचर्यव्रत खूब स्थिर—दृढ़ हो।

बंभचेर आराहणा फलं—

४५८. इमं च अबंभचेरविरमण-परिरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं, अत्तहियं पेच्चा भाविकं, आगमेसि भद्दं, सुद्धं, नेआउयं, अकुडिलं, अणुत्तरं, सव्वदुक्ख-पावाण विउसमणं।

—प. सु. २, अ. ४, सु. ७

ब्रह्मचर्य की आराधना का फल—

४५८. अब्रह्मनिवृत्ति (ब्रह्मचर्य) व्रत की रक्षा के लिए भगवान महावीर ने यह प्रवचन कहा है। यह प्रवचन परलोक में फल-प्रदायक है, भविष्य में कल्याण का कारण है शुद्ध है, न्याययुक्त है, कुटिलता से रहित है, सर्वोत्तम है और दुःखों और पापों को उपशान्त करने वाला है।

बंभचेराणुकूला वय —

४५९. तओ वया पण्णत्ता,

तं जहा — पढमे वए, मज्झिमे वए, पच्छिमे वए।
तिहिं वएहिं आया केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा,

तं जहा — पढमे वए, मज्झिमे वए, पच्छिमे वए।

— ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६३

ब्रह्मचर्य के अनुकूल वय —

४५९. वय (काल-कृत अवस्था-भेद) तीन कहे गये हैं —

यथा — प्रथमवय, मध्यमवय और अन्तिमवय।

तीनों ही वयों में आत्मा विशुद्ध ब्रह्मचर्यवास में निवास करता है,

यथा — प्रथम वय में, मध्यम वय में और अन्तिम वय में।

बंभचेराणुकूला यामा —

४६०. तओ जामा पण्णत्ता,

तं जहा — पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।
तिहिं जामेहिं आया केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा,

तं जहा — पढमे जामे, मज्झिमे जामे, पच्छिमे जामे।

— ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६३

ब्रह्मचर्य के अनुकूल प्रहर —

४६०. तीन याम (प्रहर) कहे गये हैं —

यथा — प्रथम याम, मध्यम याम और अन्तिम याम।

तीनों ही यामों में आत्मा विशुद्ध ब्रह्मचर्यवास में निवास करता है —

यथा — प्रथम याम में, मध्यम याम में और अन्तिम याम में।

बंभचेरस्स उप्पत्ति अणुप्पत्ति य —

४६१. प० — असोच्चा णं भंते ! केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खिय-उवासियाए वा केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा?

उ० — गोयमा ! असोच्चा णं केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खिय-उवासियाए वा अत्थेगत्तिए केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा, अत्थेगत्तिए केवलं बंभचेरवासं नो आवसेज्जा।

प० — से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ —

असोच्चा णं भंते ! केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खिय-उवासियाए वा अत्थेगत्तिए केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा, अत्थेगत्तिए केवलं बंभचेरवासं नो आवसेज्जा?

उ० — गोयमा ! जस्स णं चरित्तावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा। जस्स णं चरित्तावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा।

से तेणट्ठेणं गोयमा एवं वुच्चइ —

जस्स णं चरित्तावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ, से णं असोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं बंभचेरवासं नो आवसेज्जा।

— वि. स. ९, उ. ३१, सु. १३

ब्रह्मचर्य की उत्पत्ति और अनुत्पत्ति —

४६१. प्र० — भन्ते ! केवली से — यावत् — केवली पाक्षिक उपासिका से बिना सुने कोई जीव ब्रह्मचर्य पालन कर सकता है?

उ० — गौतम ! केवली से — यावत् — केवली पाक्षिक उपासिका से सुने बिना कई जीव ब्रह्मचर्य पालन कर सकते हैं और कई जीव ब्रह्मचर्य पालन नहीं कर सकते हैं।

प्र० — भन्ते ! किस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है —

केवली से - यावत् — केवली पाक्षिक उपासिका से सुने बिना कई जीव ब्रह्मचर्य पालन कर सकते हैं और कई जीव ब्रह्मचर्य पालन नहीं कर सकते हैं?

उ० — गौतम ! जिसके चारित्रावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ है वह केवली से — यावत् — केवली पाक्षिक उपासिका से सुने बिना ब्रह्मचर्य पालन कर सकता है।

जिसके चारित्रावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं हुआ है वह केवली से — यावत् — केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर भी ब्रह्मचर्य पालन नहीं कर सकता है।

गौतम ! इस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है —

जिसके चारित्रावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ है, वह केवली से — यावत् — केवलि पाक्षिक उपासिका से सुने बिना ब्रह्मचर्य पालन कर सकता है।

जिसके चारित्रावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं हुआ है, वह केवलि से — यावत् — केवलि पाक्षिक उपासिका से सुनकर भी ब्रह्मचर्य पालन नहीं कर सकता है।

प०—सोच्चा णं भंते ! केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा ?

उ०—गोयमा ! सोच्चा णं केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगतिए केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा, अत्थेगतिए केवलं बंभचेरवासं नो आवसेज्जा।

प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—
सोच्चा णं केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा अत्थेगतिए केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा, अत्थेगतिए केवलं बंभचेरवासं नो आवसेज्जा ?

उ०—गोयमा ! जस्स णं चरित्तावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ, से णं सोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा।

जस्स णं चरित्तावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ से णं सोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं बंभचेरवासं नो आवसेज्जा।

से तेणट्ठेणं गोयमा एवं वुच्चइ—
जस्स णं चरित्तावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे कडे भवइ से णं सोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं बंभचेरवासं आवसेज्जा।

जस्स णं चरित्तावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमे नो कडे भवइ, से णं सोच्चा केवलिस्स वा-जाव-तप्पक्खियउवासियाए वा केवलं बंभचेरवासं नो आवसेज्जा।
—वि. स. ९, उ. ३१, सु. १२

प्र०—भन्ते ! केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर कोई जीव ब्रह्मचर्य का पालन कर सकता है ?

उ०—गौतम ! केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर कई जीव ब्रह्मचर्य का पालन कर सकते हैं और कई जीव ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकते हैं।

प्र०—भन्ते ! किस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है—
केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर कई जीव ब्रह्मचर्य पालन कर सकते हैं और कई जीव ब्रह्मचर्य पालन नहीं कर सकते हैं ?

उ०—गौतम ! जिसके चारित्रावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ है वह केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर ब्रह्मचर्य पालन कर सकता है।

जिसके चारित्रावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं हुआ है वह केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर भी ब्रह्मचर्य पालन नहीं कर सकता है।

गौतम ! इस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है—
जिसके चारित्रावरणीय कर्मों का क्षयोपशम हुआ है, वह केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर ब्रह्मचर्य पालन कर सकता है।

जिसके चारित्रावरणीय कर्मों का क्षयोपशम नहीं हुआ है, वह केवली से—यावत्—केवली पाक्षिक उपासिका से सुनकर भी ब्रह्मचर्य पालन नहीं कर सकता है।

ब्रह्मचर्य पालन के उपाय (२)

धम्मरहसारही धम्मारामविहारी बंभयारी—

४६२. धम्मारामे चरे भिक्खू, धिइमं धम्मसारही।
धम्मारामरए दन्ते, बम्भचेरसमाहिए॥
—उत्त. अ. १६, गा. १७

धर्मरथ सारथी धर्मारामविहारी ब्रह्मचारी—

४६२. धैर्यवान्, धर्म के रथ को चलाने वाला, धर्म में रत, दान्त और ब्रह्मचर्य में चित्त का समाधान पाने वाला भिक्षु धर्म के उद्यान में विचरण करे।

बंभचेरसमाहिठाणा—

४६३. सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं—
इह खलु थेरेहिं भगवन्तेहिं दस बम्भचेरसमाहिठाणा पन्नत्ता,

ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान—

४६३. हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है, भगवान् ने ऐसा कहा है—
निर्ग्रन्थ प्रवचन में जो स्थविर (गणधर) भगवान् हुए हैं उन्होंने ब्रह्मचर्य समाधि के दस स्थान बतलाये हैं,

जे भिक्खू सोच्चा, नच्चा, निसम्म, संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिबहुले, गुत्ते, गुत्तिन्दिए, गुत्तबम्भयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा।

जिन्हें सुनकर, जिनके अर्थ का निश्चय कर, भिक्षु संयम, संवर और समाधि का पुनः-पुनः अभ्यास करे। मन, वाणी और शरीर का गोपन करे, इन्द्रियों को उनके विषयों से बचाए, ब्रह्मचर्य की सुरक्षाओं से सुरक्षित रखे और सदा अप्रमत्त होकर विहार करे।

प०—कयरे खलु ते थेरेहिं भगवन्तेहिं दस बम्भचेरसमाहिठाणा पन्नत्ता, जे भिक्खू सोच्चा, नच्चा, निसम्म, संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिबहुले, गुत्ते, गुत्तिन्दिए, गुत्तबम्भयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा ?

प्र० स्थविर भगवान् ने वे कौन से ब्रह्मचर्य-समाधि के दस स्थान बतलाये हैं, जिन्हें सुनकर, जिनके अर्थ का निश्चय कर, भिक्षु संयम, संवर और समाधि का पुनः-पुनः अभ्यास करे। मन, वाणी और शरीर का गोपन करे, इन्द्रियों को उनके विषयों से बचाये, ब्रह्मचर्य को सुरक्षाओं से सुरक्षित रखे और सदा अप्रमत्त होकर विहार करे ?

उ०—इमे खलु ते थेरेहिं भगवन्तेहिं दस बम्भचेरसमाहिठाणा पन्नत्ता, जे भिक्खू सोच्चा, नच्चा, निसम्म, संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिबहुले, गुत्ते, गुत्तिन्दिए, गुत्तबम्भयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्ज त्ति।

—उत्त. अ. १६, सु. १

उ०—स्थविर भगवान् ने ब्रह्मचर्य समाधि के दस स्थान बतलाये हैं, जिन्हें सुनकर अर्थ का निश्चय कर, भिक्षु संयम, संवर और समाधि का पुनः-पुनः अभ्यास करे। मन, वाणी और शरीर का गोपन करे। इन्द्रियों को उनके विषयों से बचाये, ब्रह्मचर्य को दस सुरक्षाओं से सुरक्षित रखे और सदा अप्रमत्त होकर विहार करे। वे इस प्रकार हैं :—

दस बम्भचेरसमाहिठाणाणं णामाइं—

४६४. १. आलओ थीजणाइण्णो, २. थीकहा य मणोरमा।
३. संथवो चेव नारीणं, ४. तासिं इन्दियदरिसणं॥
५. कुइयं रुइयं गीयं,

६. भुत्तासियाणि य।
७. पणीयं भत्तपाणं च, ८. अइमायं पाण-भोयणं॥
९. गत्तभूसणमिट्ठं च,
१०. कामभोगा य दुज्जया। नरस्सऽत्तगवेसिस्स, विसं तालउडं जहा। —उत्त. अ. १६, गा. ११-१३

दस ब्रह्मचर्य समाधि स्थानों के नाम—

४६४. (१) स्त्रियों से आकीर्ण आलय, (२) मनोरम स्त्री-कथा,
(३) स्त्रियों का परिचय, (४) उनकी इन्द्रियों को देखना,
(५) उनके कूजन, रोदन, गीत और हास्य युक्त शब्दों को सुनना,
(६) उनके भुक्त भोगों को याद करना,
(७) प्रणीत पान भोजन, (८) मात्रा से अधिक पान भोजन,
(९) शरीर को सजाने की इच्छा और
(१०) दुर्जय काम-भोग ये दस आत्म-गवेषी मनुष्य के लिए तालपुट विष के समान हैं।

विवित्तसयणासणसेवणं —

४६५. "विवित्ताइं सयणासणाइं सेविज्जा, से निग्गंथे" नो इत्थी-पसु-पण्डगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ से निग्गंथे।

विविक्त-शयनासन सेवन —

४६५. जो एकान्त शयन और आसन का सेवन करता है, वह निर्ग्रन्थ है। निर्ग्रन्थ स्त्री, पशु और नपुंसक से आकीर्ण शयन और आसन का सेवन नहीं करता।

प०—तं कहमिति चे ?

प्र०—यह क्यों ?

उ०—आयरियाह—निग्गंथस्स खलु इत्थी-पसु-पण्डगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा,

उ०—ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—स्त्री, पशु और नपुंसक से आकीर्ण शयन और आसन का सेवन करने वाले ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य (के विषय) में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है,

भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा,

अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है, अथवा उन्माद पैदा होता है।

दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा।

तम्हा नो इत्थी-पसु-पण्डगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ से निग्गंथे। —उत्त. अ. १६, सु. २

अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है, अथवा केवलि कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है, इसलिए जो स्त्री, पशु और नपुंसक से आकीर्ण शयन और आसन का सेवन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

जं विवित्तमणाइण्णं, रहियं इत्थि जणेण य।
बम्भचेरस्स रक्खट्ठा, आलयं तु निसेवए॥
—उत्त. अ. १६, गा. ३

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए मुनि वैसे आलय में रहे जो एकान्त, अनाकीर्ण और स्त्रियों से रहित हो।

अन्नट्ठं पगडं लयणं, भएज्ज सयणाऽऽसणं।
उच्चारभूमिसम्पन्नं, इत्थी - पसु - विवज्जियं॥
—दस. अ. ८, गा. ५१

मुनि दूसरों के लिए बने हुए गृह, शयन और आसन का सेवन करे। वह गृह मल-मूत्र-विसर्जन की भूमि से युक्त तथा स्त्री और पशु से रहित हो।

विवित्तसेज्जासणजन्तियाणं, ओमासणाणं दमिइन्दियाणं।
न रागसत्तू धरिसेइ चित्तं, पराइओ वाहिरिवोसहेहिं॥

जो विविक्त-शय्या और आसन से नियन्त्रित होते हैं, जो कम खाते हैं और जितेन्द्रिय होते हैं, उनके चित्त को राग-शत्रु वैसे ही आक्रान्त नहीं कर सकता है जैसे औषध से पराजित रोग देह को।

जहा बिरालावसहस्स मूले, न मूसगाणं वसही पसत्था।
एमेव इत्थीनिलयस्स मज्झे, न बम्भयारिस्स खमो निवासो॥
—उत्त. अ. ३२, गा. १२-१३

जैसे बिल्ली की बस्ती के पास चूहों का रहना अच्छा नहीं होता, उसी प्रकार स्त्रियों की बस्ती के पास ब्रह्मचारी का रहना अच्छा नहीं होता।

मणोहरं चित्तहरं, मल्ल-धूवेण वासियं।
सकवाडं पण्डुरुल्लोयं, मणसा वि न पत्थए॥[1]

जो स्थान मनोहर चित्रों से आकीर्ण, माल्य और धूप से सुवासित, किवाड़ सहित, श्वेत चन्दवा से युक्त हो वैसे स्थान की मन से भी प्रार्थना (अभिलाषा) न करे।

इन्दियाणि उ भिक्खुस्स, तारिसम्मि उवस्सए।
दुक्कराइं निवारेउं, कामरागविवड्ढणे॥
—उत्त. अ. ३५, गा. ४-५

काम-राग को बढ़ाने वाले उपाश्रय में इन्द्रियों का निग्रह करना (उन पर नियन्त्रण पाना) भिक्षु के लिए दुष्कर होता है।

कामं तु देवीहिं विभूसियाहिं न चाइया खोभइउं तिगुत्ता।
तहा वि एगंतहियं ति नच्चा, विवित्तवासो मुणिणं पसत्थो॥

यह ठीक है कि तीन गुप्तियों से गुप्त मुनियों को विभूषित देवियाँ भी विचलित नहीं कर सकतीं, फिर भी भगवान् ने एकान्त हित की दृष्टि से उनके विविक्त-वास को प्रशस्त कहा है।

मोक्खाभिकंखिस्स वि माणवस्स संसारभीरुस्स ठियस्स धम्मे।
नेयारिसं दुत्तरमत्थि लोए, जहित्थिओ बालमणोहराओ॥
—उत्त. अ. ३२, गा. १६-१७

मोक्ष चाहने वाले संसार-भीरु एवं धर्म में स्थित मनुष्य के लिए लोक में और कोई वस्तु ऐसी दुस्तर नहीं है, जैसी दुस्तर मन को हरने वाली सुकुमार सुन्दरियाँ हैं।

१. विवित्तसयणासण सेवणफलं—

१. विविक्त शयनासन सेवन का फल—

४६६. प०—विवित्तसयणासणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

४६६. प्र०—भन्ते ! विविक्त-शयनासन के सेवन से जीव क्या फल प्राप्त करता है ?

उ०—विवित्तसयणासणयाए णं चरित्तगुत्तिं जणयइ। चरित्तगुत्ते य णं जीवे विवित्ताहारे दढचरित्ते एगन्तरए मोक्खभावपडिवन्ने अट्ठविहकम्मगंठिं निज्जरेइ।
—उत्त. अ. २९, सु. ३२

उ०—विविक्त शयनासन के सेवन से वह चारित्र की रक्षा को प्राप्त होता है। चारित्र की सुरक्षा करने वाला जीव पौष्टिक आहार का वर्जन करने वाला, दृढ़ चरित्र वाला, एकांत में रत, अन्तःकरण से मोक्ष-साधना में लगा हुआ, आठ प्रकार के कर्मों की गांठ को तोड़ देता है।

---

१ चित्तभित्तिं न निज्झाए, नारिं वा सुअलंकियं। भक्खरं पिव दट्ठूणं, दिट्ठिं पडिसमाहरे॥ —दस. अ. ८, गा. ५४

२. थीकहाणिसेहो—

४६७. नो इत्थीणं कहं कहित्ता हवइ, से निग्गंथे।

प०—तं कहमिति चे ?

उ०—आयरियाह—निग्गंथस्स खलु इत्थीणं कहं कहेमाणस्स, बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा,

भेयं वा लभेज्जा,

उम्मायं वा पाउणिज्जा,

दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा,

केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा।

तम्हा नो इत्थीणं कहं कहेज्जा,

—उत्त. अ. १६, सु. ३

मणपल्हायजणणि, कामरागविवड्ढणि।
बम्भचेररओ भिक्खू थीकहं तु विवज्जए॥

समं च संथवं थीहिं, संकहं च अभिक्खणं।
बम्भचेररओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए॥

—उत्त. अ. १६, गा. ४-५

२—स्त्री-कथा निषेध—

४६७. जो स्त्रियों की कथा नहीं करता वह निर्ग्रन्थ है।

प्र०—यह क्यों ?

उ०—ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—स्त्रियों की कथा करने वाले ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य (के विषय) में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है।

अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है,

अथवा उन्माद पैदा होता है,

अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है,

अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है,

इसलिए स्त्रियों की कथा न करे।

ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु मन को आल्हाद देने वाली तथा काम-राग बढ़ाने वाली स्त्री-कथा का वर्जन करे।

ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु स्त्रियों के साथ परिचय और बार-बार वार्तालाप का सदा वर्जन करे।

३. इत्थीहिं सद्धिं निसेज्जाणिसेहो—

४६८. नो इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागए विहरित्ता हवइ से निग्गंथे।

प०—तं कहमिति चे ?

उ०—आयरियाह—निग्गंथस्स खलु इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागयस्स, विहरमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा, समुप्पज्जिज्जा,

भेयं वा लभेज्जा,

उम्मायं वा पाउणिज्जा,

दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा,

केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा।

तम्हा खलु नो निग्गंथे इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागए विहरेज्जा।

—उत्त. अ. १६, सु. ४

कुव्वंति संथवं ताहिं, पब्भट्ठा समाहिजोगेहिं।
तम्हा समणा ण समेंति, आतहिताय सण्णिसेज्जाओ॥

—सूय. सु. १, अ. ४, उ. १, गा. १६

जहा कुक्कुडपोयस्स, निच्चं कुललओ भयं।
एवं खु बंभयारिस्स, इत्थीविग्गहओ भयं॥

—दस. अ. ८, गा. ५३

३—स्त्री के आसन पर बैठने का निषेध—

४६८. जो स्त्रियों के साथ एक आसन पर नहीं बैठता, वह निर्ग्रन्थ है।

प्र०—यह क्यों ?

उ०—ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—स्त्रियों के साथ एक आसन पर बैठने वाले ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य (के विषय) में शंका, कांक्षा, या विचिकित्सा, उत्पन्न होती है।

अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है,

अथवा उन्माद पैदा होता है,

अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है,

अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है,

इसलिए स्त्रियों के साथ एक आसन पर नहीं बैठना चाहिए।

समाधियोगों (धर्मध्यान) से भ्रष्ट पुरुष ही उन स्त्रियों के साथ संसर्ग करते हैं। अतएव श्रमण आत्महित के लिए स्त्रियों के निवास स्थान पर बैठा (निषद्या) नहीं करते।

जिस प्रकार मुर्गे के बच्चे को बिल्ली से सदा भय होता है, उसी प्रकार ब्रह्मचारी को स्त्री के शरीर से भय होता है।

जतुकुम्भे जोतिमुवगूढे, आसुऽभितत्ते णासमुपयाति ।
एविथियाहिं अणगारा, संवासेण णासमुवयंति ॥
—सूय. सु. १, अ. ४, उ. १, गा. २७

जैसे अग्नि को छूता हुआ लाख का घड़ा तप्त होकर नाश को प्राप्त (नष्ट) हो जाता है इसी तरह स्त्रियों के साथ संवास (संसर्ग) से अनगार पुरुष (भी) शीघ्र ही नष्ट (संयमभ्रष्ट) हो जाता है।

हत्थपायपडिच्छिन्नं, कण्णनासविगप्पियं ।
अवि वाससइं नारिं, बंभयारी विवज्जए ॥
—दस. अ. ८, गा. ५५

जिसके हाथ पैर कटे हुए हों, जो कान, नाक से विकल हो वैसी सौ वर्षों की बूढ़ी नारी से भी ब्रह्मचारी दूर रहे।

समरेसु अगारेसु, सन्धीसु य महापहे ।
एगो एगत्थिए सद्धिं, नेव चिट्ठे न संलवे ॥
—उत्त. अ. १, गा. २६

कामदेव के मन्दिरों में, घरों में, दो घरों के बीच की संधियों में और राजमार्ग में अकेला मुनि अकेली स्त्री के साथ न खड़ा रहे और न संलाप करे।

४. इत्थी इंदियाणं आलोयणणिसेहो—

४—स्त्री की इन्द्रियों के अवलोकन का निषेध—

४६९. नो इत्थीणं इन्दियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता, निज्झाइत्ता, हवइ, से निग्गंथे ।

प०—तं कहमिति चे ?

उ०—आयरियाह—निग्गंथस्स खलु इत्थीणं इन्दियाइं मणोहराइं, मणोरमाइं आलोएमाणस्स, निज्झायमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा,
भेयं वा लभेज्जा,
उम्मायं वा पाउणिज्जा,
दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा,
केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा ।
तम्हा खलु निग्गंथे नो इत्थीणं इन्दियाइं मणोहराइं, मणोरमाइं आलोएज्जा, निज्झाएज्जा ।
—उत्त. अ. १६, सु. ५

४६९. जो स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को दृष्टि गड़ाकर नहीं देखता, उनके विषय में चिन्तन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

प्र०—वह क्यों ?

उ०—ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को दृष्टि गड़ाकर देखने वाले और उनके विषय में चिन्तन करने वाले ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य (के विषय) में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है।
अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है,
अथवा उन्माद पैदा होता है,
अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है,
अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है,
इसलिए स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को दृष्टि गड़ाकर न देखे और उनके विषय में चिन्तन न करे।

अंगपच्चंगसंठाणं, चारुल्लवियपेहियं ।
बम्भचेररओ थीणं, चक्खुगेज्झं विवज्जए ॥[1]
—उत्त. अ. १६, गा. ६

ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु स्त्रियों के चक्षु-ग्राह्य, अंग-प्रत्यंग, आकार, बोलने की मनोहर मुद्रा और चितवन को न देखे और न देखने का प्रयत्न करे।

न रूव-लावण्ण-विलास-हासं,
न जंपियं इंगियपेहियं वा ।
इत्थीण चित्तंसि निवेसइत्ता,
दट्ठुं ववस्से समणे तवस्सी ॥

तपस्वी श्रमण स्त्रियों के रूप, लावण्य, विलास, हास्य, मधुर आलाप, इंगित और चितवन को चित्त में रमा कर उन्हें देखने का संकल्प न करे।

अदंसणं चेव अपत्थणं च,
अचिन्तणं चेव अकित्तणं च ।
इत्थीजणस्सारियझाणजोग्गं,
हियं सया बम्भवए रयाणं ॥
—उत्त. अ. ३२, गा. १४-१५

जो सदा ब्रह्मचर्य में रत हैं, उनके लिए स्त्रियों को न देखना, न चाहना, न चिन्तन करना और न वर्णन करना हितकर है और धर्म-ध्यान के लिए उपयुक्त है।

---

१ अंग-पच्चंगसंठाणं, चारुल्लविय-पेहियं । इत्थीणं तं न निज्झाए, कामरागविवड्ढणं ॥ —दस. अ. ८, गा. ५७

५. इत्थीणं कुइयाइ सद्दसवणणिसेहो—

४७०. नो इत्थीणं कुड्डन्तरंसि वा, दूसन्तरंसि वा, भित्तन्तरंसि वा, कुइयसद्दं वा, रुइयसद्दं वा, गीयसद्दं वा, हसियसद्दं वा, थणियसद्दं वा, कन्दियसद्दं वा, विलवियसद्दं वा, सुणेत्ता हवइ से निग्गंथे।

प०—तं कहमिति चे ?

उ०—आयरियाह—निग्गंथस्स खलु इत्थीणं कुड्डन्तरंसि वा, दूसन्तरंसि वा, भित्तिअंतरंसि वा कुइयसद्दं वा, रुइयसद्दं वा, गीयसद्दं वा, हसियसद्दं वा, थणियसद्दं वा, कन्दियसद्दं वा, विलवियसद्दं वा, सुणमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा, समुप्पज्जिज्जा, बम्भयारिस्स, बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा, समुप्पज्जिज्जा,
भेयं वा लभेज्जा,
उम्मायं वा पाउणिज्जा,
दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा,
केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा।
तम्हा खलु निग्गंथे नो इत्थीणं कुड्डन्तरंसि वा, दूसन्तरंसि वा, भित्तंतरंसि वा, कुइयसद्दं वा, रुइयसद्दं वा, गीयसद्दं वा, हसियसद्दं वा, थणियसद्दं वा, कन्दियसद्दं वा, विलवियसद्दं वा सुणेमाणे विहरेज्जा।

—उत्त. १६, सु. ६

कुइयं रुइयं गीयं, हसियं थणियं कन्दियं।
बम्भचेररओ थीणं, सोयगिज्झं विवज्जए॥

—उत्त. अ. १६, गा. ७

५—स्त्रियों के वासनाजन्य शब्द-श्रवण का निषेध—

४७०. जो मिट्टी की दीवार के अन्तर से, परदे के अन्तर से, पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्दों को नहीं सुनता, वह निर्ग्रन्थ है।

प्र०—यह क्यों ?

उ०—ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—मिट्टी की दीवार के अन्तर से, परदे के अन्तर से, पक्की दीवार के अन्तर से, स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्दों को सुनने वाले ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य (के विषय) में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है।

अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है,
अथवा उन्माद पैदा होता है,
अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है,
अथवा वह केवली कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है,
इसलिए मिट्टी की दीवार के अन्तर से, परदे के अन्तर से, पक्की दीवार के अन्तर से, स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन या विलाप के शब्दों को न सुने।

ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु स्त्रियों के श्रोत्र—ग्राह्य कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन और क्रन्दन को न सुने और न सुनने का प्रयत्न करे।

६. भुत्तभोग-सुमरणणिसेहो—

४७१. नो निग्गंथे पुव्वरयं, पुव्वकीलियं अणुसरित्ता हवइ से निग्गंथे।

प०—तं कहमिति चे ?

उ०—आयरियाह—निग्गंथस्स खलु पुव्वरयं, पुव्वकीलियं अणुसरमाणस्स, बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा,

भेयं वा लभेज्जा,
उम्मायं वा पाउणिज्जा,
दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा,
केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा।
तम्हा खलु नो निग्गंथे पुव्वरयं, पुव्वकीलियं अणुसरेज्जा।

—उत्त. अ. १६, सु. ७

६—भुक्त भोगों के स्मरण का निषेध—

४७१. जो गृहवास में की हुई रति और क्रीड़ा का अनुस्मरण नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

प्र०—यह क्यों ?

उ०—ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—गृहवास में की हुई रति और क्रीड़ा का अनुस्मरण करने वाले ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य (के विषय) में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है।

अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है।
अथवा उन्माद पैदा होता है।
अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है।
अथवा वह केवली कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।
इसलिए गृहवास में की हुई रति और क्रीड़ा का अनुस्मरण न करे।

हासं किड्डं रइं दप्पं, सहसाऽवत्तासियाणि य ।
बम्भचेररओ थीणं, नाणुचिन्ते कयाइ वि ॥
—उत्त. अ. १६, गा. ८

ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु पूर्व-जीवन में स्त्रियों के साथ अनुभूत हास्य, क्रीड़ा, रति, अभिमान और आकस्मिक त्रास का कभी भी अनुचिन्तन न करे।

७. पणीयआहारणिसेहो—

४७२. नो पणीयं आहारं आहारित्ता हवइ से निग्गंथे ।

प०—तं कहमिति चे ?

उ० आयरियाह—निग्गंथस्स खलु पणीयं पाणभोयणं आहारेमाणस्स बम्भयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा,
भेयं वा लभेज्जा,
उम्मायं वा पाउणिज्जा,
दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा,
केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा ।
तम्हा खलु नो निग्गंथे पणीयं आहारं आहारेज्जा ।
—उत्त. अ. १६, सु. ८

(७) विकार-वर्धक आहार करने का निषेध—

४७२. जो प्रणीत आहार नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

प्र०—वह क्यों ?

उ०—ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—प्रणीत पान-भोजन करने वाले ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है।
अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है।
अथवा उन्माद पैदा होता है।
अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है।
अथवा वह केवलि कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।
इसलिए प्रणीत आहार न करे।

पणीयं भत्तपाणं तु खिप्पं मयविवड्ढणं ।
बम्भचेररओ भिक्खू निच्चसो परिवज्जए ॥
—उत्त. अ. १६, गा. ६

ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु शीघ्र ही काम-वासना को बढ़ाने वाले प्रणीत भक्त पान का सदा वर्जन करे।

रसा पगामं न निसेवियव्वा,
पायं रसा दित्तिकरा नराणं ।
दित्तं च कामा समभिद्दवन्ति,
दुमं जहा साउफलं व पक्खी ॥

जहा दवग्गी पउरिन्धणे वणे,
समारुओ, नोवसमं उवेइ ।
एविन्दियग्गी वि पगामभोइणो,
न बम्भयारिस्स हियाय कस्सई ॥
—उत्त. अ. ३२, गा. १०-११

रसों का प्रकाम (अधिक मात्रा में) सेवन नहीं करना चाहिए। वे प्रायः मनुष्य की धातुओं को उद्दीप्त करते हैं। जिसकी धातुएँ उद्दीप्त होती हैं उसे काम-भोग सताते हैं, जैसे स्वादिष्ट फल वाले वृक्ष को पक्षी।

जैसे पवन के झोकों के साथ प्रचुर इन्धन वाले वन में लगा हुआ दावानल उपशान्त नहीं होता, उसी प्रकार प्रकाम-भोजी (ठूंस ठूंस कर खाने वाले) की इन्द्रियाग्नि (कामाग्नि) शान्त नहीं होती। इसलिए प्रकाम-भोजन किसी भी ब्रह्मचारी के लिए हितकर नहीं होता।

८. अमितपाणभोयणणिसेहो—

४७३. नो अइमायाए पाणभोयणं आहारेत्ता हवइ से निग्गंथे ।

प० तं कहमिति चे ?

उ०—आयरियाह—निग्गंथस्स खलु अइमायाए पाणभोयणं आहारेमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा,
भेयं वा लभेज्जा
उम्मायं वा पाउणिज्जा,
दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा,
केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा ।
तम्हा खलु नो निग्गन्थे अइमायाए पाणभोयणं भुंजिज्जा । —उत्त. अ. १६, सु. ६

८—अधिक आहार का निषेध—

४७३. जो मात्रा से अधिक नहीं खाता-पीता, वह निर्ग्रन्थ है।

प्र०—वह क्यों ?

उ०—ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—मात्रा से अधिक पीने और खाने वाले ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य (के विषय) में शंका, कांक्षा व विचिकित्सा उत्पन्न होती है।
अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है,
अथवा उन्माद पैदा होता है,
अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है,
अथवा केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है,
इसलिए मात्रा से अधिक न पीए और न खाए।

धम्मलद्धं मियं काले, जत्तत्थं पणिहाणवं ।
नाइमत्तं तु भुंजेज्जा, बम्भचेररओ सया ॥
—उत्त. अ. १६, गा. १०

ब्रह्मचर्य-रत और स्वस्थ चित्तवाला भिक्षु जीवन निर्वाह के लिए उचित समय में निर्दोष, भिक्षा द्वारा प्राप्त, परिमित भोजन करे, किन्तु अधिक मात्रा में न खाये ।

९. विभूसाणिसेहो—

९—विभूषा करने का निषेध—

४७४. नो विभूसाणुवाई हवइ, से निग्गंथे ।

४७४. जो विभूषा नहीं करता—शरीर को नहीं सजाता, वह निर्ग्रन्थ है ।

प०—त कहमिति चे ?

उ०—आयरियाह—विभूसावत्तिए, विभूसियसरीरे इत्थिजणस्स अभिलसणिज्जे हवइ । तओ णं तस्स इत्थिजणेणं अभिलसिज्जमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा,

भेयं वा लभेज्जा,
उम्मायं वा पाउणिज्जा,
दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा,
केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा ।
तम्हा खलु नो निग्गन्थे विभूसाणुवाई सिया ।
—उत्त. अ. १६, सु. १०

प्र०—यह क्यों ?

उ०—ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—जिसका स्वभाव विभूषा करने का होता है, जो शरीर को विभूषित किये रहता है, उसे स्त्रियाँ चाहने लगती है । पश्चात् स्त्रियों के द्वारा चाहे जाने वाले ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य (के विषय) में शंका, कांक्षा या विचिकित्सा उत्पन्न होती है ।

अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है,
अथवा उन्माद होता है ।
अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है
अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है,
इसलिए विभूषा न करे ।

विभूसं परिवज्जेज्जा, सरीरपरिमण्डणं ।
बम्भचेररओ भिक्खू, सिंगारत्थं न धारए ॥
—उत्त. अ. १६, गा. ११

ब्रह्मचर्य में रत रहने वाला भिक्षु विभूषा का वर्जन करे और शरीर की शोभा बढाने वाले (केश, दाढ़ी आदि को) शृंगार के लिये धारण न करे ।

१०. सद्दाइसु मुच्छाणिसेहो—

१०—शब्दादि विषयों में आसक्ति का निषेध—

४७५. नो सद्द-रूव-रस-गन्ध-फासाणुवाई हवइ, से निग्गन्थे ।

४७५. जो शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में आसक्त नहीं होता, वह निर्ग्रन्थ है ।

प०—तं कहमिति चे ?

उ०—आयरियाह—निग्गन्थस्स खलु सद्द-रूव-रस-गन्ध-फासाणुवाइस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा,

भेयं वा लभेज्जा,

उम्मायं वा पाउणिज्जा,

दीहकालियं वा रोगायंकं हवेज्जा,
केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा ।

तम्हा खलु नो निग्गन्थे सद्द-रूव-रस-गन्ध-फासाणुवाइ हविज्जा ।

दसमे बम्भचेरसमाहिट्ठाणे हवइ ।

—उत्त० अ० १६, सु० ११

प्र०—यह क्यों ?

उ०—ऐसा पूछने पर आचार्य कहते हैं—शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में आसक्त होने वाले ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य (के विषय) में शंका, कांक्षा और विचिकित्सा उत्पन्न होती है ।

अथवा ब्रह्मचर्य का विनाश होता है,

अथवा उन्माद पैदा होता है ।

अथवा दीर्घकालिक रोग और आतंक होता है,
अथवा वह केवली-कथित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है,

इसलिए शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में आसक्त न बने ।

ब्रह्मचर्य की समाधि का यह दसवां स्थान है ।

सद्दे रूवे य गन्धे य, रसे फासे तहेव य।
पंचविहे कामगुणे, निच्चसो परिवज्जए ॥
—उत्त० अ० १६, गा, १२

शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श—इन पाँच प्रकार के कामगुणों का सदा वर्जन करें।

कामाणु गिद्धिप्पभवं खु दुक्खं,
सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स।
जं काइयं माणसियं च किंचि,
तस्सऽन्तगं गच्छइ वीयरागो ॥

सब जीवों के, और देवताओं के भी जो कुछ कायिक और मानसिक दुःख हैं, वे काम-भोगों की सतत अभिलाषा से उत्पन्न होते हैं। वीतराग उस दुःख का अन्त पा जाता है।

जहा य किंपागफला मणोरमा,
रसेण वण्णेण य भुज्जमाणा।
ते खुड्डए जीविय पच्चमाणा,
एओवमा कामगुणा विवागे ॥
—उत्त० अ० ३२, गा० १९-२०

जैसे किंपाक फल खाने के समय रस और वर्ण से मनोरम होते हैं और परिपाक के समय क्षुद्र-जीवन का अन्त कर देते हैं, काम-गुण भी विपाक फल में ऐसे ही होते हैं।

दुज्जए कामभोगे य, निच्चसो परिवज्जए।
संकट्ठाणाणि सव्वाणि, वज्जेज्जा पणिहाणवं ॥
—उत्त० अ० १६, गा० १४

एकाग्रचित्त वाला मुनि दुर्जय काम-भोगों और ब्रह्मचर्य में शंका उत्पन्न करने वाले पूर्वोक्त सभी स्थानों का वर्जन करे।

विभूसा इत्थिसंसग्गी पणीयरसभोयणं।
नरस्सऽत्तगवेसिस्स, विसं तालउडं जहा ॥
—दस० अ० ८, गा० ५६

आत्मगवेषी पुरुष के लिए विभूषा, स्त्री का संसर्ग और प्रणीतरस का भोजन तालपुट विष के समान है।

विवित्ता य भवे सेज्जा, नारीणं न लवे कहं।
गिहिसंथवं न कुज्जा, कुज्जा साहूहिं संथवं ॥
—दस० अ० ८, गा० ५२

मुनि एकान्त स्थान में रहे, स्त्रियों की कथा न कहे। और गृहस्थों से परिचय न करे। यदि परिचय करना ही चाहे तो साधुओं से ही करे।

बम्भचेररक्खणोवाया—

ब्रह्मचर्य रक्षण के उपाय—

४७६. से पभूतदंसी पभूतपरिण्णाणे उवसंते समिए सहिते सदा जते दट्ठुं विप्पडिवेदेति अप्पाणं-किमेस जणो करिस्सति ?

४७६. वह प्रभूतदर्शी, प्रभूत परिज्ञानी, उपशान्त, समिति से युक्त, (ज्ञानादि) सहित, सदा यतनाशील या इन्द्रियजयी अप्रमत्त मुनि के लिए उद्यत स्त्रीजन को देखकर अपने आपका पर्यालोचन करता है—

एस से परमारामो जाओ लोगंसि इत्थिओ।

"यह स्त्रीजन मेरा क्या कर लेगा ?" अर्थात् मुझे क्या सुख प्रदान कर सकेगा ? (तनिक भी नहीं) वह स्त्रियाँ परम आराम (चित्त को मोहित करने वाली) हैं। किन्तु मैं तो सहज आत्मिक सुख से सुखी हूँ (ये मुझे क्या सुख देंगी ?)

मुणिणा हु एतं पवेदितं। उब्बाहिज्जमाणे गामधम्मेहिं,

ग्रामधर्म (इन्द्रिय विषय वासना) से उत्पीड़ित मुनि के लिए मुनीन्द्र तीर्थंकर महावीर ने यह उपदेश दिया है कि—

अवि णिब्बलासए।
अवि ओमोदरियं कुज्जा,
अवि उड्ढं ठाणं ठाएज्जा,
अवि गामाणुगामं दूइज्जेज्जा,
अवि आहारं वोच्छिदेज्जा,
अवि चए इत्थीसु मणं।

वह निर्बल (निःसार) आहार करे,
ऊनोदरिका (अल्पाहार) भी करे—कम खाये,
ऊर्ध्व स्थान होकर कायोत्सर्ग करे,
ग्रामानुग्राम विहार भी करे,
आहार का परित्याग (अनशन) करे,
स्त्रियों के प्रति आकृष्ट होने वाले मन का परित्याग करे।

पुव्वं दंडा पच्छा फासा, पुव्वं फासा पच्छा दंडा।

विषय सेवन करने के पहले अनेक पाप करने पड़ते हैं, बाद में भोग भोगे जाते हैं, अथवा कभी पहले भोग भोगे जाते हैं बाद में उसका दण्ड मिलता है।

इच्चेते कलहा संगकरा भवंति पडिलेहाए आगमेत्ता आणवेज्ज अणासेवणाए।

इस प्रकार ये काम भोग कलह और आसक्ति पैदा करने वाले होते हैं। स्त्री-संग से होने वाले ऐहिक एवं पारलौकिक दुष्परिणामों को आगम के द्वारा तथा अनुभव द्वारा समझकर आत्मा को उनके अनासेवन की आज्ञा दे। अर्थात् स्त्री का सेवन न करने का सुदृढ़ संकल्प करे।

से णो कहिए, णो पासणिए, णो संपसारए, णो मामए, णो कतकिरिए, वइगुत्ते अज्झप्पसंवुडे परिवज्जए सदा पावं।

ब्रह्मचारी कामकथा न करे, (वासनापूर्ण दृष्टि से) स्त्रियों को न देखे, परस्पर कामुक भावों—संकेतों का प्रसारण न करे, उन पर ममत्व न करे, शरीर की साज-सज्जा से दूर रहे, वचन गुप्ति का पालक वह मुनि वाणी से कामुक आलाप न करे, मन को भी काम-वासना की ओर जाते हुए नियन्त्रित करे, सतत पाप का परित्याग करे।

एतं मोणं समणुवासेज्जासि। त्ति बेमि॥

—आ० सु० १, अ० ५, उ० ४, सु० १६४-१६५

इस (अब्रह्मचर्य-विरति रूप) मुनित्व को जीवन में सम्यक् प्रकार से बसा ले—जीवन में उतार लें।

११. गणिका-आवागमणणिसेहो—

११. वेश्याओं की गली में आवागमन निषेध—

४७७. न चरेज्ज वेससामंते बंभचेरवसाणुए।
बंभयारिस्स दंतस्स होज्जा तत्थ विसोत्तिया॥

४७७ ब्रह्मचर्य का वशवर्ती मुनि वेश्या बाड़े के समीप न जाये। वहाँ दमितेन्द्रिय ब्रह्मचारी के भी विस्रोतसिका हो सकती है—साधना का स्रोत मुड़ सकता है।

अणायणे चरंतस्स संसग्गीए अभिक्खणं।
होज्ज वयाणं पीला सामण्णम्मि य संसओ॥

अस्थान में बार-बार जाने वाले के (वेश्याओं का) संसर्ग होने के कारण व्रतों की पीड़ा (विनाश) और श्रामण्य में सन्देह हो सकता है।

तम्हा एयं वियाणित्ता दोसं दुग्गइवड्ढणं।
वज्जए वेससामंतं मुणी एगंतमस्सिए॥

—दस० अ० ५, उ० १, गा० ९-११

इसलिए इसे दुर्गति बढ़ाने वाला दोष जानकर एकान्त (मोक्ष मार्ग) का अनुगमन करने वाला मुनि वेश्या—बाड़े के समीप न जाये।

बंभचेरस्स अट्ठारसप्पगारा—

ब्रह्मचर्य के अठारह प्रकार—

४७८. अट्ठारसविहे बंभे पण्णत्ते, तं जहा—

(१) ओरालिए कामभोगे णेव सयं मणेणं सेवइ,

(२) नोवि अण्णं मणेणं सेवावेइ,

(३) मणेणं सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणइ,

(४) ओरालिए कामभोगे णेव सयं वायाए सेवइ,

(५) नोवि अण्णं वायाए सेवावेइ,

(६) वायाए सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणइ,

४७८. ब्रह्मचर्य अठारह प्रकार का कहा गया है जैसे—

१. औदारिक (शरीर वाले मनुष्यों-तिर्यंचों के) काम-भोगों को न मन से स्वयं सेवन करता है,

२. न अन्य को मन से सेवन कराता है,

३. सेवन करते हुए अन्य को न मन से अनुमोदना करता है।

४. औदारिक-कामभोगों को न वचन से स्वयं सेवन करता है,

५. न अन्य को वचन से सेवन कराता है,

६. सेवन करते हुए अन्य को वचन से अनुमोदना नहीं करता है,

(७) ओरालिए कामभोगे णेव सयं काएणं सेवइ,

७. औदारिक काम-भोगों को न स्वयं काया से सेवन करता है,

(८) णोवि य अण्णं काएणं सेवावेइ,

८. न अन्य को काया से सेवन कराता है,

(९) काएणं सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणाई।

९. सेवन करते हुए अन्य की काया से अनुमोदना नहीं करता है,

(१०) दिव्वे कामभोगे णेव सयं मणेणं सेवति,

१०. दिव्य—(देव-देवी सम्बन्धी) काम-भोगों को न स्वयं मन से सेवन करता है,

(११) णो वि अण्णं मणेणं सेवावेइ,

११. न अन्य को मन से सेवन कराता है,

(१२) मणेणं सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणइ,

१२. सेवन करते हुए की न मन से अनुमोदना करता है,

(१३) दिव्वे कामभोगे णेव सयं वायाए सेवावेइ,

१३. दिव्य-कामभोगों को न स्वयं वचन से सेवन करता है,

(१४) णोवि अण्णं वायाए सेवावेइ,

१४. न अन्य को वचन से सेवन कराता है,

(१५) वायाए सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणइ।

१५. सेवन करते हुए अन्य की वचन से अनुमोदना नहीं करता है,

(१६) दिव्वे कामभोगे णेव सयं काएणं सेवइ।

१६. दिव्य-कामभोगों को न स्वयं काया से सेवन करता है,

(१७) णोवि अण्णं काएणं सेवावेइ,

१७. न अन्य को काया से सेवन कराता है,

(१८) काएणं सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणइ।[1]

—सम० १८, सु० १

१८. सेवन करते हुए अन्य की काया से अनुमोदना नहीं करता है।

अब्रह्म निषेध के कारण—३

अधम्मस्स मूलं—

४७९. अबंभचरियं घोरं, पमायं दुरहिट्ठियं।
नायरंति मुणी लोए, भेयाययणवज्जिणो॥

मूलमेयमहम्मस्स महादोससमुस्सयं।
तम्हा मेहुण संसग्गिं निग्गंथा वज्जयंति णं॥

—दसवै. ६।१५-१६

अधर्म का मूल है—

४७९. अब्रह्मचर्य जगत में घोर—सबसे भारी प्रमाद का कारण है, दुर्बल व्यक्ति ही इसका सेवन करते हैं तथा इसका सेवन दुरधिष्ठित—घृणा एवं जुगुप्सा जनक है, चारित्र भंग के स्थान (भेदायतन) से दूर रहने वाले मुनि इसका आचरण नहीं करते।

यह अब्रह्मचर्य अधर्म का मूल (बीज-जड़) है और महान दोषों की राशि ढेर है। इसलिए निर्ग्रन्थ मैथुन का; संसर्ग का के वर्जन करते हैं।

---

१ (क) तीन प्रकार के मैथुन हैं—१. दिव्य, २. मानुष्य और ३. तैर्यक्य। इन तीनों से विरति ही ब्रह्मचर्य है।
यदि प्रत्येक विरति के तीन करण तीन योग से विकल्प प्रस्तुत किये जाते तो ९ विकल्प होते। इस प्रकार तीनों विरति २७ विकल्प होते हैं।
यहाँ ब्रह्मचर्य के १८ भेदों में औदारिक कामभोगों के नौ विकल्पों के अन्तर्गत मनुष्यों और तिर्यञ्चों की मैथुन विरति समाविष्ट कर ली गई है।
शेष नौ विकल्पों में केवल दिव्य कामभोगों की विरति ही कही गई है।
(ख) उत्त. अ. ३१, गा. १४।
(ग) इसी प्रकार अब्रह्म के १८ प्रकार हैं आव० श्रमण सूत्र ४ में।

इत्थीरागणिसेहो --

४८०. जे छेये से सागारियं ण सेवे।

कट्टु एवं अविजाणतो बितिया मंदस्स बालिया।

—आ. सु. १, अ. ५, उ. १, सु. १४६

स्त्री-राग निषेध --

४८०. जो कुशल है वह मैथुन-सेवन नहीं करता और जो मैथुन सेवन करके छिपाता है या अनजान बनता है यह उस मूर्ख (काममूढ़) की दूसरी मूर्खता है।

नो रक्खसीसु गिज्झेज्जा, गंडवच्छासुऽणेगचित्तासु।

जाओ पुरिसं पलोभित्ता, खेलंति जहा व दासेहिं॥

जिनके वक्ष में गांठें (ग्रन्थियाँ) हैं, जो अनेक चित्त (कामनाओं) वाली हैं, जो पुरुष को प्रलोभन में फँसाकर खरीदे हुए दास की भाँति उसे नचाती हैं (वासना की दृष्टि से ऐसी) राक्षसी स्वरूप (साधनाविघातक) स्त्रियों में आसक्त नहीं होना चाहिए।

नारीसु नोपगिज्झेज्जा इत्थी विप्पजहे अणगारे।

धम्मं च पेसलं नच्चा, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं॥

—उत्त, अ. ८, गा. १८-१९

अनगार स्त्रियों में मूर्च्छित न हो तथा उनके संसर्ग को छोड़ दे। भिक्षु धर्म को श्रेष्ठतम जानकर उसी में अपनी आत्मा को स्थापित करे।

न मिज्जति महावीरे, जस्स नत्थि पुरेकडं।

वाऊ व जालमच्चेति, पिया लोगंसि इत्थिओ॥

जिसके पूर्वकृत कर्म नहीं है, वह महावीर्यवान् नहीं मरता (और नहीं जन्मता) जैसे वायु अग्नि की ज्वाला को पार कर जाती है, वैसे ही वह (साधक) लोक में प्रिय होने वाली स्त्रियों को पार पा जाता है, (वह स्त्रियों के वश में नहीं होता)।

इत्थिओ जे ण सेवंति, आदिमोक्खा हु ते जणा।

ते जणा बंधणुम्मुक्का, नावकंखंति जीवितं॥

—सूय. सु. १, अ. १५, गा. ८-९

जो साधक जन स्त्रियों का सेवन नहीं करते, वे सर्वप्रथम मोक्षगामी होते हैं। समस्त (कर्म) बन्धनों से मुक्त वे साधुजन (असंयमी) जीवन जीने की आकांक्षा नहीं करते।

अह सेऽणुतप्पती पच्छा, भोच्चा पायसं व विसमिस्सं।

एवं विवेगमायाए, संवासो न कप्पती दविए॥

जैसे विषमिश्रित खीर को खाकर मनुष्य पश्चात्ताप करता है, वैसे ही स्त्री के वश में होने के पश्चात् वह साधु पश्चात्ताप करता है। इस प्रकार अपने आचरण का विपाक जानकर राग-द्वेष रहित भिक्षु को स्त्री के साथ संवास (संसर्ग) करना नहीं कल्पता है।

तम्हा उ वज्जए इत्थी, विसलित्तं व कंटगं नच्चा।

ओए कुलाणी वसवत्ती, आघाति ण से वि णिग्गंथे॥

स्त्रियों को विष से लिप्त कांटे के समान समझकर साधु स्त्रीसंसर्ग से दूर रहे। स्त्री के वश में रहने वाला जो साधक गृहस्थों के घरों में अकेला जाकर अकेली स्त्री को धर्मकथा करता है वह भी "निर्ग्रन्थ" नहीं है।

जे एयं उंछं अणुगिद्धा, अण्णयरा हु ते कुसीलाणं।

सुतवस्सिए वि से भिक्खू, णो विहरे सह णमित्थीसु॥

जो भिक्षु इस (स्त्री संसर्गरूपी) जूठन या त्याज्य निन्द्यकर्म में अत्यन्त आसक्त है, वह अवश्य ही कुशीलों, (पार्श्वस्थ, अवसन्न आदि चारित्र भ्रष्टों) में से कोई एक है। इसलिए वह साधु चाहे उत्तम तपस्वी भी हो, तो भी स्त्रियों के साथ विहार न करे।

अवि धूयराहिं सुण्हाहिं, धातीहिं अदुव दासीहिं।

महतीहिं वा कुमारीहिं, संथवं से णेव कुज्जा अणगारे॥

भिक्षु अपनी पुत्रियों, पुत्रवधुओं, धाय-माताओं अथवा दासियों, या बड़ी उम्र की स्त्रियों अथवा कुंआरी कन्याओं के साथ भी वह अनगार सम्पर्क-- परिचय न करे।

अदु णातिणं व सुहिणं वा, अप्पियं दट्ठु एगता होति।

गिद्धा सत्ता कामेहिं, रक्खण-पोसणे मणुस्सोऽसि॥

किसी समय (एकान्त स्थान में स्त्री के साथ बैठे हुए साधु को) देखकर (उस स्त्री के) ज्ञातियों अथवा हितैषियों को अप्रिय लगता है। (वे सोचते हैं यह साधु कामभोगों में गृद्ध है, आसक्त भी है।) वे साधु से कहते हैं (तुम इसका रक्षण-पोषण करो,) क्योंकि तुम इसके पुरुष हो।

समणं पि दट्ठुदासीणं, तत्थ वि ताव एगे कुप्पंति ।
अदुवा भोयणेहिं णत्थेहिं, इत्थी दोससंकिणो होंति ॥

उदासीन तपस्वी साधु को भी स्त्री के साथ एकान्त में बातचीत करते या बैठे देखकर कोई-कोई व्यक्ति क्रुद्ध हो उठते हैं। अथवा नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन साधु के लिए बनाकर रखते या देते देखकर वे उस स्त्री के प्रति दोष की शंका करने लगते हैं।

कुव्वंति संथवं ताहिं, पब्भट्ठा समाहिजोगेहिं ।
तम्हा समणा ण समेंति, आतहिताय सण्णिसेज्जाओ ॥

समाधि योग से भ्रष्ट पुरुष ही उन स्त्रियों के साथ संसर्ग करते हैं इसलिए श्रमण आत्महित के लिए स्त्रियों के निवास स्थान (निषद्या) पर नहीं जाते।

बहवे गिहाइं अवहट्टु, मिस्सीभावं पत्थुता एगे ।
धुवमग्गमेव पवदंति, वायावीरियं कुसीलाणं ॥

बहुत से लोग घर से निकलकर प्रव्रजित होकर भी मिश्र-भाव अर्थात् कुछ गृहस्थ का और कुछ साधु का यों मिला-जुला आचार अपना लेते हैं। इसे वे मोक्ष का मार्ग ही कहते हैं। (सच है) कुशीलों के वचन में ही शक्ति होती है, (कार्य में नहीं)

सुद्धं रवति परिसाए, अह रहस्सम्मि दुक्कडं करेंति ।
जाणंति य णं तहावेदा, माइल्ले महासढेऽयं ति ॥

वह (कुशील) भिक्षु सभा में स्वयं को शुद्ध कहता है, परन्तु एकान्त में पाप करता है। तथाविद् (उसकी अंगचेष्टाओं-आचार-विचारों एवं व्यवहारों को जानने वाले व्यक्ति) उसे जान लेते हैं कि यह मायावी महाधूर्त है।

सयं दुक्कडं च न वदइ, आइट्ठो वि पकत्थती बाले ।
वेयाणुवीइ मा कासी, चोइज्जंतो गिलाइ से भुज्जो ॥

बाल (अज्ञ) साधक स्वयं अपने दुष्कृत-पाप को नहीं कहता, तथा गुरु आदि द्वारा उसे अपने पाप को प्रकट करने का आदेश दिये जाने पर भी वह अपनी बड़ाई करने लगता है। तुम मैथुन की अभिलाषा मत करो, इस प्रकार बार-बार प्रेरित किये जाने पर वह कुशील ग्लानि को प्राप्त हो (मुर्झा) जाता है (झेंप जाता है या नाराज हो जाता है।)

उसिया वि इत्थिपोसेसु, पुरिसा इत्थिवेदखेतण्णा ।
पण्णासमन्निता वेगे, णारीण वसं उवकसंति ॥

कुछ पुरुष स्त्रियों की पोषक प्रवृत्तियों में प्रवृत्त रह चुके हैं, अतएव स्त्रियों के कारण होने वाले खेदों के ज्ञाता (अनुभवी) हैं एवं प्रज्ञा से सम्पन्न हैं फिर भी वे स्त्रियों के वश में हो जाते हैं।

अवि हत्थ-पादछेदाए, अदुवा वद्धमंस उक्कंते ।
अवि तेयसाऽभितवणाइं, तच्छिय खारसिंचणाइं च ॥

(इस लोक में परस्त्री-सेवन के दण्ड रूप में) उसके हाथ-पैर भी छेदे जा सकते हैं, अथवा उसकी चमड़ी और मांस भी उखेड़ा जा सकता है, अथवा उसे आग में डालकर जलाया जाना भी सम्भव है, और उसका अंग छीलकर उस पर नमक भी छिड़का जा सकता है।

अदु कण्ण-णासियाछेज्जं, कंठच्छेदणं तितिक्खंति ।
इति एत्थ पावसंतत्ता, न य बेंति पुणो न काहिं ति ॥

—सूय. सु. १, अ. ४, उ. १, गा. १०-२२

कान और नाक छेदन एवं कण्ठ का छेदन (गला काटा जाना) तो सहन कर लेते हैं, परन्तु यह नहीं कहते हैं कि "हम अब फिर ऐसे पाप नहीं करेंगे।"

भोए सदा ण रज्जेज्जा, भोगकामी पुणो विरज्जेज्जा ।
भोगे समणाण सुणेहा, जह भुंजंति भिक्खुणो एगे ॥

राग-द्वेष से मुक्त होकर अकेला रहने वाला भिक्षु कामभोग में कभी आसक्त न बने। भोग की कामना उत्पन्न हो गई हो तो उससे फिर विरक्त हो जाये। कुछ श्रमण-भिक्षु जैसे भोग भोगते हैं, उनके भोगों को तुम सुनो।

अह तं तु भेदमावन्नं, मुच्छितं भिक्खु काममतिवट्टं ।
पलिभिंदियाण तो पच्छा, पादु द्धट्टु मुद्धि पहणंति ।।

चारित्र से भ्रष्ट मूच्छित और कामासक्त भिक्षु को वश में करने के बाद स्त्री उसके सिर पर पैर से प्रहार करती है।

जइ केसियाए मए भिक्खू णो विहरे सह णमित्थीए ।
केसाणि वि हं लुंचिस्सं, नऽन्नत्थ मए चरिज्जासि ।।

(भिक्षु को वश में करने के लिए कोई स्त्री कहती है—) मैं केश रखती हूँ। भिक्षु ! यदि तुम मेरे साथ विहार करना नहीं चाहते तो मैं केशलुंचन करा लूंगी। तुम मुझे छोड़ अन्यत्र मत जाओ।

अह णं से होति उवलद्धो, तो पेसंति तहाभूतेहिं ।
लाउच्छेदं पेहाहि, वग्गुफलाइं आहराहि त्ति ।।

जब यह भिक्षु पकड़ में आ जाता है तब उससे नौकर का काम कराती है—कद्दू काटने के लिए चाकू ला। अच्छे फल ला।

दारूणि सागपागाए, पज्जोओ वा भविस्सती रातो ।
पाताणि य मे रयावेहि, एहि य ता मे पट्ठिं उम्मद्दे ।।

शाकभाजी पकाने के लिए लकड़ी ला। उससे रात को प्रकाश भी हो जायगा। मेरे पैर रचा। आ, मेरी पीठ मल दे।

वत्थाणि य मे पडिलेहेहि, अन्नपाणं च आहराहि त्ति ।
गंधं च रओहरणं च कासवगं च समणुजाणाहि ।।

मेरे वस्त्रों को देख (वे फट गये हैं, नये वस्त्र ला) अन्न-पान ले आ। सुगन्ध चूर्ण और कूंची ला। बाल काटने के लिए नाई को बुला।

अदु अंजणि अलंकारं, कुक्कुहयं च मे पयच्छाहि ।
लोद्धं च लोद्धकुसुमं च, वेणुपलासियं च गुलियं च ।।

अंजनदानी, आभूषण और तुंबवीणा ला। लोध, लोध के फूल बांसुरी और (औषध की) गुटिका ला।

कुट्ठं अगुरुं तगरं च, संपिट्ठं समं उसीरेण ।
तेल्लं मुहं भिलिजाए, वेणुफलाइं सन्निधाणाए ।।

कूठ, तगर, अगर, खस के साथ पीसा हुआ चूर्ण, मुंह पर मलने के लिए तेल तथा वस्त्र आदि रखने के लिए बांस की पिटारी ला।

नंदीचुण्णगाइं पहराहि, छत्तोवाहणं च जाणाहि ।
सत्थं च सूवच्छेयाए, आणीलं च वत्थयं रयावेहि ।।

(होठों को मुलायम करने के लिए) नन्दी चूर्ण, छत्ता और जूते ला। भाजी छीलने के लिए छुरी ला। वस्त्र को हल्के नीले रंग से रंगा दे।

सुफणिं च सागपागाए, आमलगाइं दगाहरणं च ।
तिलगकरणिमंजणसलागं, घिंसु मे विधूणयं विजाणाहि ।।

शाक पकाने के लिए तपेली, आंवले, कलश तिलककरनी अंजनशलाका तथा गरमी के लिए पंखा ला।

संडासगं च फणिहं च, सीहलिपासगं च आणाहि ।
आदंसगं पयच्छाहि, दंतपक्खालणं पवेसेहि ।।

(नाक के केशों को उखाड़ने के लिए) संडशक, कंघी और केश-कंकण ला। दर्पण दे और दतवन ला।

पूयफलं तंबोलं च, सूईसुत्तगं च जाणाहि ।
कोसं च मोयमेहाए, सुप्पुक्खलगं च खारगलणं च ।।

सुपारी, पान, सूई, धागा, मूत्र के लिए पात्र, सूप, ओखली मूसल और सब्जी गलाने का बर्तन ला।

चंदालगं च करगं च, वच्चघरगं च आउसो ! खणाहि ।
सरपादगं च जाताए, गोरहगं च सामणेराए ।।

आयुष्मान् ! पूजा-पात्र और लघु पात्र ला। संडास के लिए गड्ढा खोद दे। पुत्र के लिए धनुष्य और श्रामणेर (श्रमण-पुत्र) के लिए तीन वर्ष का बैल ले आ।

घडिगं च सडिंडिमयं च, चेलगोलं कुमारभूताए ।
वासं समभियावन्नं, आवसहं च जाण भत्तं च ।।

बच्चे के लिए घण्टा, डमरू और कपड़े की गेंद ला। हे भर्ता ! वर्षा सिर पर मंडरा रही है। इसलिए घर की ठीक व्यवस्था कर।

आसंदियं च नवसुत्तं, पाउल्लाइं संकमट्ठाए ।
अदु पुत्तदोहलट्ठाए, आणप्पा हवंति दासा वा ।।

नई सुतली की खटिया और चलने के लिए काष्ठ पादुका ला। तथा गर्भकाल में स्त्रियाँ अपने दोहद (लालसा) की पूर्ति के लिए अपने प्रियतम पर दास की भाँति शासन करती हैं।

जाते फले समुप्पन्ने, गेण्हसु वा णं अहवा जहाहि।
अह पुत्तपोसिणो एगे, भारवहा हवंति उट्टा वा॥

पुत्र रूपी फल के उत्पन्न होने पर (वह कहती है) इसे (पुत्र को) ले अथवा छोड़ दे। (स्त्री के अधीन होने वाले) कुछ पुरुष पुत्र के पोषण में लग जाते हैं और वे ऊँट की भाँति भारवाही हो जाते हैं।

राओ वि उट्ठिया संता, दारगं संठवेंति धाती वा।
सुहिरीमणा वि ते संता, वत्थधुवा हवंति हंसा वा॥

वे रात में भी उठकर (रोते हुए) बच्चे को धाई की भाँति लोरी गाकर सुला देते हैं। वे लाजयुक्त मन वाले होते हुए भी धोबी की भाँति (स्त्री और बच्चे के) वस्त्रों को धोते हैं।

एवं बहूहि कयपुव्वं, भोगत्थाए जेऽभियावन्ना।
दासे मिए व पेस्से वा, पसुभूते वा से ण वा केई॥

बहुतों ने पहले ऐसा किया है। जो काम-भोग के लिए भ्रष्ट हुए हैं वे दास की भाँति समर्पित, मृग की भाँति परवश, प्रेष्य की भाँति कार्य में व्यापृत और पशु की भाँति भारवाही होते हैं। वे अपने आप में कुछ भी नहीं रहते।

एवं खु तासु विण्णप्पं संथवं संवासं च चएज्जा।
तज्जातिया इमे कामा वज्जकरा य एवमक्खाया॥

इस प्रकार (स्त्रियों के विषय में जो कहा गया है) उन दोषों को जानकर उनके साथ परिचय और संवास का परित्याग करे। ये काम-भोग सेवन करने से बढ़ते हैं। तीर्थंकरों ने उन्हें कर्म-बन्धन कारक बतलाया है।

एवं भयं ण सेयाए इइ से अप्पगं णिरुंभित्ता।
णो इत्थिं णो पसुं भिक्खू, णो सयं पाणिणा णिलिज्जेज्जा॥

ये कामभोग भय उत्पन्न करते हैं। ये कल्याणकारी नहीं हैं। यह जानकर भिक्षु मन का निरोध करे—कामभोग से अपने को बचाए। वह स्त्रियों और पशुओं से बचे तथा अपने गुप्तांग को हाथ से न छुए।

सुविसुद्धलेसे मेहावी परकिरियं च वज्जए णाणी।
मणसा वयसा काएणं सव्वफाससहे अणगारे॥

शुद्ध अन्तःकरण वाला मेधावी ज्ञानी भिक्षु परक्रिया न करे—स्त्री के पैर आदि न दबाए। वह अनिकेत भिक्षु मन, वचन और काया से सब स्पर्शों (कष्टों) को सहन करे।

इच्चेवमाहु से वीरे धुयरए धुयमोहे से भिक्खू।
तम्हा अज्झत्थविसुद्धे सुविमुक्के आमोक्खाए परिव्वएज्जासि॥
—सूय. सु. १, अ. ४, उ. २, गा. १-२२

भगवान् महावीर ने ऐसा कहा है—जो राग और मोह को धुन डालता है वह भिक्षु होता है। इसलिए वह शुद्ध अन्तःकरण भिक्षु काम-वांछा से मुक्त होकर, बन्धन-मुक्ति के लिए परिव्रजन करे।

□□

परिकर्म निषेध—४

गिहत्थकय कायकिरियाए अणुमोयणा णिसेहो—

४८१. परकिरियं अज्झत्थियं संसेइयं णो तं सातिए णो तं णियमे।
—आ. सु. २, अ. १३, सु. ६९०

गृहस्थकृत काय क्रिया की अनुमोदना का निषेध—

४८१. पर अर्थात् गृहस्थ के द्वारा आध्यात्मिकी अर्थात् मुनि के शरीर पर की जाने वाली काय व्यापाररूपी क्रिया संश्लेषिणी-कर्म बन्धन की जननी है, (अतः) वह उसे मन से न चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा न करे।

गिहत्थकय-कायपरिकम्मस्स अणुमोयणा णिसेहो—

४८२. से से परो कायं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

से से परो कायं संबाधेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

से से परो कायं तेल्लेण वा—जाव-वसाए वा मक्खेज्ज वा अब्भंगेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

से से परो कायं लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

से से परो कायं सीतोदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

से से परो कायं अण्णतरेणं विलेवण जाएणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

से से परो कायं अण्णतरेण धूवणजाएण धूवेज्ज वा पधूवेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

से से परो कायं फुमेज्ज वा रएज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे। —आ. सु. २, अ. १३, सु. ७०१-७०३

गृहस्थकृत शरीर के परिकर्मों की अनुमोदना का निषेध—

४८२. यदि कोई गृहस्थ मुनि के शरीर को एक बार या बार-बार पोंछकर साफ करे तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

यदि कोई गृहस्थ मुनि के शरीर को एक बार या बार-बार मर्दन करे तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

यदि कोई गृहस्थ मुनि के शरीर पर तेल - यावत्—चर्बी मले या बार-बार मले तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

यदि कोई गृहस्थ मुनि के शरीर पर लोध, - यावत्—वर्ण का उबटन करे, बार-बार उबटन करे तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

कदाचित् कोई गृहस्थ साधु के शरीर को प्रासुक शीतल जल से या उष्ण जल से धोये या बार-बार धोये तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

कदाचित् कोई गृहस्थ मुनि के शरीर पर किसी एक प्रकार के विलेपन से एक बार या बार बार लेप करे तो वह उसे न मन से चाहे न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

यदि कोई गृहस्थ मुनि के शरीर को किसी अन्य प्रकार के धूप से धूपित करे या प्रधूपित करे तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

यदि कोई गृहस्थ मुनि के शरीर पर फूंक मारे या रंगे तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन एवं काया से भी प्रेरणा करे।

गिहत्थकय-पायपरिकम्मस्स अणुमोयणा णिसेहो—

४८३. से से परो पादाइं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

से से परो पादाइं संबाधेज्ज वा पलिमद्देज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

से से परो पादाइं फुमेज्ज वा रएज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

से से परो पादाइं तेल्लेण वा-जाव-वसाए वा मक्खेज्ज वा भिलिंगेज्ज वा णो तं सातिए, णो तं णियमे।

से से परो पादाइं लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

गृहस्थकृत पादपरिकर्म की अनुमोदना का निषेध—

४८३. यदि कोई गृहस्थ मुनि के चरणों को (वस्त्रादि से) पोंछे, बार-बार पोंछे तो वह उसे न मन से चाहे, वचन और काया से भी प्रेरणा न करे।

यदि कोई गृहस्थ मुनि के चरणों का मर्दन करे, प्रमर्दन करे वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

यदि कोई गृहस्थ मुनि के चरणों को फूंक मारे तथा रंगे तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

यदि कोई गृहस्थ साधु के चरणों पर तेल—यावत्—चर्बी मले या बार-बार मले तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

यदि कोई गृहस्थ साधु के चरणों पर लोध,—यावत्—वर्ण का उबटन करे या बार-बार उबटन करे तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

से से परो पादाइं सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

यदि कोई गृहस्थ साधु के चरणों को प्रासुक शीतल जल से या उष्ण जल से धोये या बार-बार धोये तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

से से परो पादाइं अण्णतरेण विलेवणजातेण आलिपेज्ज वा विलिपेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

यदि कोई गृहस्थ साधु के चरणों पर किसी एक प्रकार के द्रव्यों से एक बार या बार-बार विलेपन करे तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

से से परो पादाइं अण्णतरेण धूवणजाएणं धूवेज्ज वा पधूवेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

—आ. सु. २, अ. १३, सु. ६९१-६९८

यदि कोई गृहस्थ साधु के चरणों को किसी एक प्रकार के धूप से धूपित और प्रधूपित करे तो वह उसे न मन से चाहे और न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

आरामाइसु गिहत्थकयपायाइ - परिकम्माणुमोयणा णिसेहो—

उद्यानादि में गृहस्थकृत पैर आदि के परिकर्मों की अनुमोदना का निषेध—

४८४. से से परो आरामंसि वा उज्जाणंसि वा णीहरित्ता वा पविसित्ता वा पायाइं आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा णो तं सातिए णो तं णियमे।

एवं णेयव्वा अण्णमण्णकिरिया वि।

—आ. सु. २, अ. १३, सु. ७२७

४८४. यदि कोई गृहस्थ साधु को आराम या उद्यान में ले जाकर प्रवेश कराकर उसके चरणों को पोंछे, बार-बार पोंछे तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

इसी प्रकार साधुओं की अन्योन्यक्रिया पारस्परिक क्रियाओं के विषय में भी ये सब सूत्र पाठ समझ लेने चाहिए।

गिहत्थकय-पाय परिकम्म णिसेहो—

गृहस्थकृत पादपरिकर्म निषेध—

४८५. से से परो अंकंसि वा पलियंकंसि वा तुयट्टावेत्ता पादाइं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा; णो तं सातिए णो तं णियमे।

४८५. यदि कोई गृहस्थ साधु को अपनी गोद में या पलंग पर लिटाकर अथवा करवट बदलवाकर उनके चरणों को वस्त्रादि से पोंछे, अथवा बार-बार पोंछे तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

से से परो अंकंसि वा पलियंकंसि वा तुयट्टावेत्ता पादाइं संबाधेज्जा वा पलिमद्देज्जा वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

यदि कोई गृहस्थ साधु को अपनी गोद में या पलंग पर लिटाकर या करवट बदलवाकर उसके चरणों को सम्मर्दन करे या प्रमर्दन करे तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

से से परो अंकंसि वा पलियंकंसि वा तुयट्टावेत्ता पादाइं फुमेज्ज वा रएज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

यदि कोई गृहस्थ साधु को अपनी गोद में या पलंग पर लिटाकर या करवट बदलवाकर उसके चरणों को फूंक मारे या रंगे तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

से से परो अंकंसि वा पलियंकंसि वा तुयट्टावेत्ता पादाइं तेल्लेण वा-जाव-वसाए वा मक्खेज्ज वा भिलिंगेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

यदि कोई गृहस्थ साधु को अपनी गोद में या पलंग पर लिटाकर या करवट बदलवाकर उनके चरणों पर तेल—यावत्—चर्बी से मले तथा बार-बार मले तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन एवं काया से भी प्रेरणा करे।

से से परो अंकंसि वा पलियंकंसि वा तुयट्टावेत्ता लोद्धेण वा, कक्केण वा चुण्णेण वा वण्णेण वा उल्लोलेज्ज वा उव्वट्टेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

यदि कोई गृहस्थ साधु को अपनी गोद में या पलंग पर लिटाकर या करवट बदलवाकर उनके चरणों पर लोध —यावत् — वर्ण का उबटन करे बार-बार उबटन करे तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन एवं काया से भी प्रेरणा करे।

से से परो अंकंसि वा पलियंकंसि वा तुयट्टावेत्ता पावाइं सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

यदि कोई गृहस्थ साधु को अपनी गोद में या पलंग पर लिटाकर या करवट बदलवाकर उनके चरणों को प्रासुक शीतल जल से या उष्ण जल से धोये अथवा बार-बार धोये तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

से से परो अंकंसि वा पलियंकंसि वा तुयट्टावेत्ता पाढाइं अण्णतरेण विलेवणजाएणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा, णो तं साइए णो तं णियमे।

यदि कोई गृहस्थ साधु को अपनी गोद में या पलंग पर लिटाकर या करवट बदलवाकर उनके पैरों पर किसी एक प्रकार के विलेपन द्रव्यों का एक बार या बार-बार विलेपन करे तो वह न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

से से परो अंकंसि वा पलियंकंसि वा तुयट्टावेत्ता पावाइं अण्णतरेण धूवणजाएणं धूवेज्ज वा पधूवेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

यदि कोई गृहस्थ साधु को अपनी गोद में या पलंग पर लिटाकर या करवट बदलवाकर उनके चरणों को किसी एक प्रकार के विशिष्ट धूप से धूपित और प्रधूपित करे तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

से से परो अंकंसि वा पलियंकंसि वा तुयट्टावेत्ता हारं वा अद्धहारं वा उरत्थं वा गेवेयं वा मउडं वा पालंबं वा सुवण्णसुत्तं वा आविंधेज्ज वा पिणिंधेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे। —आ. सु. २, अ. १३, सु. ७१५-७२०

यदि कोई गृहस्थ साधु को अपनी गोद में या पलंग पर लिटाकर या करवट बदलवाकर उसको हार, अर्धहार, वक्षस्थल पर पहनने योग्य आभूषण, गले का आभूषण, मुकुट, लम्बी माला, सुवर्णसूत्र बाँधे या पहनाये तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन एवं काया से भी प्रेरणा करे।

गिहत्थकय-मलणीहरणस्स अणुमोयणा णिसेहो—

गृहस्थ द्वारा मैल निकालने की अनुमोदना का निषेध—

४८६. से से परो कायाओ सेयं वा जल्लं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे।

से से परो अच्छिमलं वा कण्णमलं वा दंतमलं वा णहमलं वा णीहरेज्ज वा विसोहेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे। —आ. सु. २, अ. १३, सु. ७२१-७२२

४८६. यदि कोई गृहस्थ साधु के शरीर से पसीने को या मैल से युक्त पसीने को (पोंछे) या साफ करे तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

यदि कोई गृहस्थ साधु के आंख का मैल, कान का मैल, दांत का मैल या नख का मैल निकाले या उसे साफ करे तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

गिहत्थकय रोमपरिकम्मस्स अणुमोयणा णिसेहो—

गृहस्थकृत रोम परिकर्मों की अनुमोदना का निषेध—

४८७. से से परो दीहाइं वालाइं दीहाइं रोमाइं दीहाइं भमुहाइं दीहाइं कक्खरोमाइं दीहाइं वत्थिरोमाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे। —आ. सु. २, अ. १३, सु. ७२३

४८७. यदि कोई गृहस्थ साधु के सिर के लम्बे केशों, लम्बे रोमों, भौंहें एवं कांख के लम्बे रोमों, लम्बे गुह्य रोमों को काटे, अथवा सँवारे, तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन और काया से भी प्रेरणा करे।

भिक्खुस्स भिक्खुणीए अण्णमण्णकिरियाणिसेहो—

भिक्षु भिक्षुणी की अन्योन्य परिकर्म क्रिया की अनुमोदना का निषेध—

४८८. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अण्णमण्णकिरियं अज्झत्थियं संसेइयं णो तं सातिए णो तं णियमे। —आ. सु. २, अ. १३, सु. ७३०

४८८. साधु या साध्वी की अन्योन्य क्रिया-परस्पर पाद-प्रमार्जनादि समस्त क्रिया, जो कि परस्पर में सम्बन्धित है, कर्मसंश्लेषजननी है, इसलिए वह इसको न मन से चाहे, और न वचन एवं काया से भी प्रेरणा करे।

अण्णमण्ण पायाइ परिकम्म णिसेहो—

अन्योन्य पादादि परिकर्म क्रिया की अनुमोदना का निषेध—

४८९. से अण्णमण्ण पाए आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, णो तं सातिए णो तं णियमे। —आ. सु. २, अ. १३, सु. ७३१

४८९. साधु या साध्वी (बिना कारण) परस्पर एक दूसरे के चरणों को पोंछकर एक बार या बार-बार पोंछकर साफ करें तो वह उसे न मन से चाहे, न वचन एवं काया से भी प्रेरणा करे।

१–चिकित्साकरण प्रायश्चित्त (५)

विभूषा के संकल्प से स्व-शरीर की चिकित्सा के प्रायश्चित्त—१

विभूसावडियाए वणतिगिच्छाए पायच्छित्त सुत्ताइं—

४१०. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि—
वणं आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,
आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि—
वणं संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,
संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि—
वणं तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,
मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि—
वणं लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि—
वणं सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि—
वणं फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फूमेंतं वा, रयंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. ११२-११७

विभूषा के संकल्प से व्रणों की चिकित्सा करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

४१०. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर पर हुए
व्रण का मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर पर हुए
व्रण का मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर पर हुए
व्रण पर तेल से—यावत्—मक्खन से,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर पर हुए
व्रण पर लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर पर हुए
व्रण को अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोवे, बार-बार धोवे,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर पर हुए
व्रण को रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विभूसावडियाए गंडाइ तिगिच्छाए पायच्छित्त सुत्ताइं—

४६१. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि—
गंडं वा,-जाव-भगंदलं वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदेज्ज वा, विच्छिंदेज्ज वा,

अच्छिंदंतं वा, विच्छिंदंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि—
गंडं वा,-जाव-भगंदलं वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा सोणियं वा,
नीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा,

नीहरेंतं वा, विसोहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि—
गंडं वा,-जाव-भगंदलं वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरेत्ता वा, विसोहेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरेत्ता वा, विसोहेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा,
उच्छोलेत्ता वा, पधोएत्ता वा,
अन्नयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपेज्ज वा, विलिंपेज्ज वा,

आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा साइज्जइ।

विभूषा के संकल्प से गण्डादि की चिकित्सा करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

४६१. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर के—
गण्ड— यावत्—भगन्दर को,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन करे, बार-बार छेदन करे,
छेदन करवावे, बार-बार छेदन करवावे,
छेदन करने वाले का, बार-बार छेदन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर के—
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन कर, बार बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकाले, शोधन करे,
निकलवावे, शोधन करवावे,
निकालने वाले का, शोधन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर के—
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन कर, बार बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकाल कर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोए, बार बार धोए, धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर के—
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन कर, बार बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकाल कर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोकर, बार-बार धोकर,
किसी एक लेप का,
लेप करे, बार-बार लेप करे,
लेप करवावे, बार-बार लेप करवावे,
लेप करने वाले का, बार-बार लेप करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरेत्ता वा, विसोहेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेत्ता वा, पधोएत्ता वा,
अन्नयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपित्ता वा, विलिंपित्ता वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगेज्ज वा, मक्खेज्ज वा,
अब्भंगेंतं वा, मक्खेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर के—
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकालकर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोकर, बार-बार धोकर,
किसी एक प्रकार के लेप का,
लेप कर, बार-बार लेप कर,
तेल—यावत्—मक्खन मले,
बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायंसि—
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अन्नयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरेत्ता वा, विसोहेत्ता वा,
सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा,
उच्छोलेत्ता वा, पधोएत्ता वा,
अन्नयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपित्ता वा, विलिंपित्ता वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगेत्ता वा, मक्खेत्ता वा,
अन्नयरेणं धूवणजाएणं,
धूवेज्ज वा, पधूवेज्ज वा,

धूवंतं वा, पधूवंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर के—
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकाल कर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोकर, बार-बार धोकर,
अन्य किसी एक प्रकार के लेप का,
लेप कर, बार-बार लेप कर,
तेल—यावत्—मक्खन,
मलकर, बार-बार मलकर,
किसी एक प्रकार का,
धूप देवे, बार-बार धूप देवे,
धूप दिलवावे, बार-बार धूप दिलवावे,
धूप दिलवाने वाले का, बार-बार धूप दिलवाने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. ११८-१२३

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विभूसावडियाए किमिणीहरणस्स पायच्छित्तसुत्तं—

४६२. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो—

पालुकिमियं वा, कुच्छिकिमियं वा, अंगुलीए निवेसिय निवेसिय नीहरेइ, नीहरेंतं वा साइज्जइ।

विभूषा के संकल्प से कृमि निकालने का प्रायश्चित्त सूत्र—

४६२. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने—

गुदा के कृमियों को और कुक्षि के कृमियों को अंगुली डाल-डालकर निकालता है, निकलवाता है, निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. १२४

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

※※

मैथुन के संकल्प से स्व-शरीर की चिकित्सा के प्रायश्चित्त—२

मेहुणवडियाए वण तिगिच्छाए पायच्छित्त सुत्ताइं—

४९३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो कायंसि—

वणं आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,

आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स अप्पणो कायंसि—

वणं संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,

संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो कायंसि—

वणं तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,

मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,
मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो कायंसि—

वणं लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,

उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

मैथुन सेवन के संकल्प से व्रण की चिकित्सा करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

४९३. जो भिक्षु माता के समान है इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने शरीर पर हुए

व्रण का मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान है इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने शरीर पर हुए

व्रण का मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान है इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने शरीर पर हुए

व्रण पर तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान है इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने शरीर पर हुए

व्रण पर लोध,—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

---

१ यहाँ व्रणचिकित्सा, गण्डादिचिकित्सा और कृमिचिकित्सा के सूत्र ओघक्रम से लिए गये हैं।
विभूषा की दृष्टि से कोई कहीं चिकित्सा न करता है, न करवाता है, चिकित्सा का उद्देश्य केवल स्वास्थ्य लाभ है।
चिकित्सा में औषधादि के प्रयोग से कृमियों की हिंसा अनिवार्य है अतः यहाँ ये उसी हिंसा के प्रायश्चित्त सूत्र हैं।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो कायंसि—

वणं सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,

उच्छोलेंतं वा पधोएंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु, माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने शरीर पर हुए

व्रण को अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोवे, बार-बार धोवे,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो कायंसि—

वणं कुमेज्ज वा, रएज्ज वा,

कुमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।
—नि. उ. ६, सु. ३६-४१

जो भिक्षु, माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने शरीर पर हुए

व्रण को रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे ।
उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

मेहुणवडियाए गंडाइ तिगिच्छाए पायच्छित्तसुत्ताइं—

मैथुन सेवन के संकल्प से गण्डादिक चिकित्सा करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

४९४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो कायंसि—

गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदेज्ज वा, विच्छिंदेज्ज वा,

अच्छिंदंतं वा, विच्छिंदंतं वा साइज्जइ ।

४९४. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने शरीर पर हुए

गण्ड—यावत्—भगन्दर को
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन करे, बार-बार छेदन करे,
छेदन करवावे, बार-बार छेदन करवावे,
छेदन करने वाले का, बार-बार छेदन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो कायंसि—

गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा,

नीहरेंतं वा, विसोहेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने शरीर पर हुए

गण्ड—यावत्—भगन्दर को
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकाले, शोधन करे,
निकलवावे, शोधन करवावे,
निकालने वाले का, शोधन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो कायंसि—

गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरित्ता वा विसोहेत्ता वा,

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने शरीर पर हुए,

गण्ड—यावत्—भगन्दर को
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकाल कर, शोधन कर,

सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,

उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ ।

अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो कायंसि —

गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
णीहरित्ता वा, विसोहेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेत्ता वा, पधोएत्ता वा,
अण्णयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपेज्ज वा, विलिंपेज्ज वा,

आलिंपेंतं वा, विलिंपेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु माता के समान है इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने शरीर पर हुए

गण्ड—**यावत्**—भगन्दर को,
किसी प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकाल कर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से
धोकर, बार-बार धोकर,
किसी एक प्रकार के लेप का,
लेप करे, बार-बार लेप करे,
लेप करावे, बार-बार लेप करावे,
लेप करने वाले का, बार-बार लेप करने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो कायंसि—

गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
णीहरित्ता वा, विसोहेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेत्ता वा, पधोएत्ता वा,
अण्णयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपेत्ता वा, विलिंपेत्ता वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगेज्ज वा, मक्खेज्ज वा,

अब्भंगेंतं वा, मक्खेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने शरीर पर हुए

गण्ड,—**यावत्**—भगन्दर को,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकाल कर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोकर, बार-बार धोकर,
किसी एक प्रकार के लेप का,
लेप कर, बार-बार लेप कर,
तेल—**यावत्**—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो कायंसि—

गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने शरीर पर हुए,

गण्ड—**यावत्**—भगन्दर को,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,

णीहरित्ता वा, विसोहेत्ता वा,[1]
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेत्ता वा, पधोएत्ता वा,
अण्णयरेणं आलेवणजाएणं
आलिंपेत्ता वा, विलिंपेत्ता वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगेत्ता वा, मक्खेत्ता वा,
अण्णयरेण धूवणजाएणं,
धूवेज्ज वा, पधूवेज्ज वा,

धूवेंतं वा, पधूवेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ६, सु. ४२-४७

निकालकर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोकर, बार-बार धोकर,
किसी एक प्रकार के लेप का,
लेप कर, बार-बार लेप कर,
तेल—यावत्—मक्खन,
मलकर, बार-बार मलकर,
किसी एक प्रकार के धूप से,
धूप दे, बार-बार धूप दे,
धूप दिलवावे, बार-बार धूप दिलवावे,
धूप देने वाले का, बार-बार धूप देने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए किमि-णिहरणस्स पायच्छित्त सुत्तं —

४६५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो,

पालुकिमियं वा, कुच्छिकिमियं वा, अंगुलिए निवेसिय निवेसिय,
णीहरइ, णीहरेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ६, सु. ४८

मैथुन सेवन के संकल्प से कृमि निकालने का प्रायश्चित्त सूत्र—

४६५. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके

अपने गुदा के कृमियों को और कुक्षि के कृमियों को उँगली डाल-डालकर,

निकालता है, निकलवाता है, निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर चिकित्सा के प्रायश्चित्त—३

मेहुणवडियाए अण्णमण्णवणतिगिच्छाए पायच्छित्त सुत्ताइं—

४६६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि,

वणं आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,

आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर व्रण की चिकित्सा करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

४६६. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के शरीर पर हुए

व्रण का मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,

मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि,

वणं संवाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,

संवाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि,

वणं तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,

मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि,

वणं लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,

उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि,

वणं सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,

उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि,

वणं फुमेज्ज वा, रएज्ज वा,

फुमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।
—नि. उ. ७, सु. २६-३१

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के शरीर पर हुए

व्रण का मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,

मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के शरीर पर हुए

व्रण पर तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,

मलवाने वाले का, बार-बार मलवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के शरीर पर हुए

व्रण पर लोध,—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,

उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के शरीर पर हुए

व्रण को अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के शरीर पर हुए

व्रण को रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे ।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

मेहुणवडियाए अण्णमण्ण गंडाइ तिगिच्छाए पायच्छित्त सुत्ताइं—

मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर गण्डादि की चिकित्सा करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

४९७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि,

४९७. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के शरीर पर हुए

गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदेज्ज वा, विच्छिंदेज्ज वा,
अच्छिंदंतं वा, विच्छिंदंतं वा साइज्जइ।

गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन करे, बार-बार छेदन करे,
छेदन करवावे, बार-बार छेदन करवावे,
छेदन करने वाले का, बार-बार छेदन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि,
गंडं वा—जाव—भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा,
नीहरेंतं वा, विसोहेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के,
गण्ड,—यावत्—भगन्दर को,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकाले, शोधन करे,
निकलवावे, शोधन करवावे,
निकालने वाले का, शोधन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि,
गंडं वा—जाव—भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरित्ता वा, विसोहेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके, एक दूसरे से,
गण्ड,—यावत्—भगन्दर को,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकालकर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोवे, बार-बार धोवे,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि,
गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरित्ता वा, विसोहेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेत्ता वा, पधोएत्ता वा,
अण्णयरेणं आलेवण-जाएणं,
आलिंपेज्ज वा, विलिंपेज्ज वा,
आलिंपंतं वा, विलिंपंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके, एक दूसरे के,
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप वा रक्त को,
निकालकर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोकर, बार-बार धोकर,
किसी एक प्रकार के लेप का,
लेप करे, बार-बार लेप करे,
लेप करवावे, बार-बार लेप करवावे,
लेप करने वाले का, बार-बार लेप करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि,

गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरित्ता वा, विसोहेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेत्ता वा, पधोएत्ता वा,
अण्णयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपित्ता वा, विलिंपित्ता वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगेज्ज वा, मक्खेज्ज वा,
अब्भंगेंतं वा, मक्खेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के,
गण्ड,—यावत्—भगन्दर को,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकालकर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोकर, बार-बार धोकर,
किसी एक प्रकार के लेप का,
लेप कर, बार-बार लेप कर,
तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले, मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स कायंसि,

गंडं वा-जाव-भगंदलं वा,
अण्णयरेणं तिक्खेणं सत्थजाएणं,
अच्छिंदित्ता वा, विच्छिंदित्ता वा,
पूयं वा, सोणियं वा,
नीहरित्ता वा, विसोहेत्ता वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेत्ता वा, पधोएत्ता वा,
अण्णयरेणं आलेवण जाएणं,
आलिंपित्ता वा, विलिंपित्ता वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा, अब्भंगेत्ता वा, मक्खेत्ता वा,
अण्णयरेणं धूवण-जाएणं,
धूवेज्ज वा, पधूवेज्ज वा,
धूवंतं वा, पधूवंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ७, सु. ३२-३७

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के,
गण्ड—यावत्—भगन्दर को,
किसी एक प्रकार के तीक्ष्ण शस्त्र से,
छेदन कर, बार-बार छेदन कर,
पीप या रक्त को,
निकालकर, शोधन कर,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोकर, बार-बार धोकर,
किसी एक प्रकार के लेप का,
लेप कर, बार-बार लेप कर,
तेल—यावत्—मक्खन, मलकर, बार-बार मलकर,
किसी एक प्रकार के धूप से,
धूप दे, बार-बार धूप दे, धूप दिलवावे, बार-बार धूप दिलवावे,
धूप देने वाले का, बार-बार धूप देने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए अण्णमण्णकिमि-णीहरणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर कृमि निकालने का प्रायश्चित्त सूत्र—

४९८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स पालु-

किमियं वा, कुच्छि-किमियं वा,
अंगुलीए निवेसिय निवेसिय,
नीहरइ, नीहरंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ७, सु. ३८

४९८. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के,
गुदा के कृमियों को और कुक्षि के कृमियों को,
उँगली डाल-डालकर,
निकालता है, निकलवाता है, निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

(२) परिकर्मकरण-प्रायश्चित्त

स्व-शरीर परिकर्म-प्रायश्चित्त—१

कायपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

४९९. जे भिक्खू अप्पणो कायं—
आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,
आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो कायं—
संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,
संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो कायं—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगेज्ज वा, मक्खेज्ज वा,
अब्भंगेंतं वा, मक्खेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो कायं—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो कायं—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोवेज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोवेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो कायं—
फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फूमेंतं वा, रयंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ३, सु. २२-२७

शरीर परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

४९९. जो भिक्षु अपने शरीर का—
मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने शरीर का—
मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करावे, प्रमर्दन करावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने शरीर पर—
तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने शरीर पर—
लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करावे, बार-बार उबटन करावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने शरीर को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने शरीर को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगावे, बार-बार रंगावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।

उसे उद्घातिक मासिक परिहार स्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मलणीहरणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५००. जे भिक्खू अप्पणो कायाओ —

सेयं वा, जल्लं वा, पंकं वा, मलं वा,

णीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा,

णीहरेंतं वा, विसोहेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अप्पणो—

अच्छि-मलं वा, कण्ण-मलं वा, दंत-मलं वा, नह-मलं वा,

णीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा,

णीहरेंतं वा, विसोहेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. ३, सु. ६७-६८

मैल दूर करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५००. जो भिक्षु अपने शरीर से—

स्वेद (पसीना) को, जल्ल (जमा हुआ मैल) को, पंक (लगा हुआ कीचड़) को, मल्ल (लगी हुई रज) को,

दूर करे, शोधन करे,

दूर करवावे, शोधन करवावे,

दूर करने वाले का, शोधन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जो भिक्षु अपने—

आँख के मैल को, कान के मैल को, दाँत के मैल को, नख के मैल को,

दूर करे, शोधन करे,

दूर करवावे, शोधन करवावे,

दूर करने वाले का, शोधन करने वाले का अनुमोदन करे ।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

पायपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५०१. जे भिक्खू अप्पणो पाए—

आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,

आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अप्पणो पाए—

संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,

संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अप्पणो पाए—

तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,

अब्भंगेज्ज वा, मक्खेज्ज वा,

अब्भंगेंतं वा, मक्खेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अप्पणो पाए—

लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,

उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,

उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अप्पणो पाए—

सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,

पादपरिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

५०१. जो भिक्षु अपने पैरों का—

मार्जन करे, प्रमार्जन करे,

मार्जन करावे, प्रमार्जन करावे,

मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जो भिक्षु अपने पैरों का—

मर्दन करे, प्रमर्दन करे,

मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,

मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जो भिक्षु अपने पैरों पर—

तेल,—यावत्—नवनीत (मक्खन),

मले, बार-बार मले,

मलवावे, बार-बार मलवावे,

मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे ।

जो भिक्षु अपने पैरों पर—

लोध,—यावत्—वर्ण का,

उबटन करे, बार-बार उबटन करे,

उबटन करावे, बार-बार उबटन करावे,

उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जो भिक्षु अपने पैरों को—

अचित्त शीत जल से और अचित्त उष्ण जल से,

उच्छोलेज्ज वा, पधोवेज्ज वा,

उच्छोलेंतं वा, पधोवेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो पाए—

फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,

फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ३, सु. १६-२१

धोवे, बार-बार धोवे,

धुलावे, बार-बार धुलावे,

धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने पैरों को—

रंगे, बार-बार रंगे,

रंगावे, बार-बार रंगावे,

रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णहसिहापरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्तं—

५०२. जे भिक्खू अप्पणो दीहाओ णहसिहाओ—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ३, सु. ४१

नखाग्र भागों के परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र—

५०२. जो भिक्षु अपने लम्बे नखाग्रों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

जंघाइरोमाणं परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५०३. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं जंघ-रोमाइं—

कप्पेज्ज, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा संठवेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं कक्ख-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं मंसु-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं वत्थि-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं चक्खु रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ३, सु. ४२-४६

जंघादिरोम परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र—

५०३. जो भिक्षु अपने जांघ (पिन्डली) के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने बगल (कांख) के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने श्मश्रु (दाढ़ी) मूंछ के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने वस्ति के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने चक्षु के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

ओट्ठपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५०४. जे भिक्खू अप्पणो उट्ठे—
आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,
आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो उट्ठे—
संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,
संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो उट्ठे—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगेज्ज वा, मक्खेज्ज वा,
अब्भंगेंतं वा, मक्खेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो उट्ठे—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो उट्ठे—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अप्पणो उट्ठे—
फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फूमंतं वा, रयंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ३, सु. ५०-५५

ओष्ठ परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

५०४. जो भिक्षु अपने होठों का—
मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने होठों का—
मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने होठों पर—
तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने होठों पर—
लोध्र—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने होठों को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोवे, बार-बार धोवे,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अपने होठों को—
रंगे, बार बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

उत्तरोट्ठाइरोमाणं पायच्छित्त सुत्ताइं—

५०५. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं उत्तरोट्ठ-रोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

उत्तरोष्ठादि रोम परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र—

५०५. जो भिक्षु अपने लम्बे उत्तरोष्ठ रोम—
(होठ के नीचे के लम्बे रोम),
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं णासा-रोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. ३, सु. ५६

जो भिक्षु अपने नाक के लम्बे रोम—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।
उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

दंतपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५०६. जे भिक्खू अप्पणो दंते—
आघंसेज्ज वा, पघंसेज्ज वा,
आघंसंतं वा, पघंसंतं वा साइज्जइ।
जे भिक्खू अप्पणो दंते—
उच्छोलेज्ज वा, पधोवेज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।
जे भिक्खू अप्पणो दंते—
फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फूमंतं वा, रयंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. ३, सु. ४७-४९

दन्त परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

५०६. जो भिक्षु अपने दाँतों को—
घिसे, बार-बार घिसे,
घिसवावे, बार-बार घिसवावे,
घिसने वाले का, बार-बार घिसने वाले का अनुमोदन करे।
जो भिक्षु अपने दाँतों को—
धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।
जो भिक्षु अपने दाँतों को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।
उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

चक्खु परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५०७. जे भिक्खू अप्पणो अच्छीणि—
आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,
आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।
जे भिक्खू अप्पणो अच्छीणि—
संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,
संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।
जे भिक्खू अप्पणो अच्छीणि—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगेज्ज वा, मक्खेज्ज वा,
अब्भंगेंतं वा, मक्खेंतं वा, साइज्जइ।
जे भिक्खू अप्पणो अच्छीणि—

चक्षु परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

५०७. जो भिक्षु अपनी आँखों का—
मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।
जो भिक्षु अपनी आँखों का—
मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।
जो भिक्षु अपनी आँखों पर—
तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।
जो भिक्षु अपनी आँखों पर—

लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,

उल्लोल्लेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अप्पणो अच्छीणि—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोवेज्ज वा,

उच्छोलेंतं वा, पधोवेंतं वा साइज्जइ ।
जे भिक्खू अप्पणो अच्छीणि—
फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,

फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. ३, सु. ५८-६३

लोध्र—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे ।
जो भिक्षु अपनी आँखों को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोवे, बार-बार धोवे,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे ।
जो भिक्षु अपनी आँखों को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे ।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

अच्छिपत्तपरिकम्म पायच्छित्त सुत्तं—

५०८. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं अच्छि-पत्ताइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. ३, सु. ५७

अक्षिपत्र-परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र—

५०८. जो भिक्षु अपने लम्बे अक्षि पत्रों को—
काटे, सुशोभित करे, कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे ।
उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

भुमगाइरोमाणं परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५०९. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं भुमग-रोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।
जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं पास-रोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. ३, सु. ६४-६५

भौंहादिरोम परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र—

५०९. जो भिक्षु अपने भौंह के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे ।
जो भिक्षु अपने पार्श्व के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे, कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे ।
उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

केस परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्तं—

५१०. जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं केसाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. ३, सु. ६६

केशों के परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र—

५१०. जो भिक्षु अपने लम्बे केशों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे ।
उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

सीसदुवारियं करणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

५११. जे भिक्खू गामाणुगामं दूइज्जमाणे अप्पणो सीसदुवारियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ३, सु. ६९

मस्तक ढकने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५११. जो भिक्षु ग्रामानुग्राम जाता हुआ अपने मस्तक को—ढकता है,

ढकवाता है, और ढकने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

परस्पर शरीर परिकर्म प्रायश्चित्त—२

अण्णमण्णस्स काय परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५१२. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायं—
आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,
आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायं—
संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,
संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायं—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,
मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायं—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायं—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

एक दूसरे के शरीर परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

५१२. जो भिक्षु एक दूसरे के शरीर का—
मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु एक दूसरे के शरीर का—
मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु एक दूसरे के शरीर पर—
तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु एक दूसरे के शरीर पर—
लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु एक दूसरे के शरीर को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायं—
कुमेज्ज वा, रएज्ज वा,
कुमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. ४, सु. ५५-६०

जो भिक्षु एक दूसरे के शरीर को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णमण्णस्स मलणिहरणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५१३. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स अच्छि-मलं वा, कण्ण-मलं वा, दंत-मलं वा, नह-मलं वा,
नीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा,
नीहरेंतं वा, विसोहेंतं वा साइज्जइ।
जे भिक्खू अण्णमण्णस्स कायाओ—सेयं वा, जल्लं वा, पंकं वा, मलं वा,
नीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा,
नीहरेंतं वा, विसोहेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. ४, सु. ९९-१००

एक दूसरे के मल निकालने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५१३. जो भिक्षु एक दूसरे के आँखों के मैल को, कान के मैल को, दाँत के मैल को, नख के मैल को,
दूर करे, शोधन करे,
दूर करवावे, शोधन करवावे,
दूर करने वाले का, शोधन करने वाले का अनुमोदन करे।
जो भिक्षु एक दूसरे के शरीर से स्वेद (पसीना) को जल्ल, (जमा हुआ मैल) पंक (लगा हुआ कीचड़) मल्ल (लगी हुई रज) को,
दूर करे, शोधन करे,
दूर करवावे, शोधन करवावे,
दूर करने वाले का, शोधन करने वाले का अनुमोदन करे।
उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णमण्णस्स पायपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५१४. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स पाए—
आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,
आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।
जे भिक्खू अण्णमण्णस्स पाए—
संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,
संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।
जे भिक्खू अण्णमण्णस्स पाए—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,
मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।
जे भिक्खू अण्णमण्णस्स पाए—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

एक दूसरे के पाद परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

५१४. जो भिक्षु एक दूसरे के पैरों का—
मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।
जो भिक्षु एक दूसरे के पैरों का—
मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।
जो भिक्षु एक दूसरे के पैरों पर—
तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।
जो भिक्षु एक दूसरे के पैरों पर—
लोध,—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स पाए—
सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु एक दूसरे के पैरों को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स पाए—
फुमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फुमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. ४, सु. ४६-५४

जो भिक्षु एक दूसरे के पैरों को—
रंगे, बार-बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।
उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णमण्णस्स णहसीहापरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्तं—

५१५. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाओ नह-सीहाओ—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. ३, सु. ७४

एक दूसरे के नखाग्र काटने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५१५. जो भिक्षु एक दूसरे के लम्बे नखाग्रों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।
उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णमण्णस्स जंघाइरोमाणं परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५१६. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं जंघ-रोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

एक दूसरे के जंघादि के रोमों के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र—

५१६. जो भिक्षु एक दूसरे के जंघा (पिण्डली) के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं कक्ख-रोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु एक दूसरे की कुक्षि (काँख) के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं मंसु-रोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु एक दूसरे के श्मश्रु (दाढ़ी मूंछ) के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं वत्थि-रोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु एक दूसरे के बस्ति के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं चक्खु-रोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. ४, सु. ७५-७६

जो भिक्षु एक दूसरे की चक्षु के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।
उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णमण्णस्स ओट्ठ परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्तं—

एक दूसरे के होठों के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र—

५१७. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स उट्ठे—
आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,
आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

५१७. जो भिक्षु एक दूसरे के होठों का—
मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स उट्ठे—
संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,
संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु एक दूसरे के होठों का—
मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स उट्ठे,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,
मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु एक दूसरे के होठों पर—
तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स उट्ठे—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु एक दूसरे के होठों पर—
लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स उट्ठे—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु एक दूसरे के होठों को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स उट्ठे—
फुमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फुमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु एक दूसरे के होठों को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. ४, सु. ८३-८८

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णमण्णस्स उत्तरोट्ठरोमाइं परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं —

५१८. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं उत्तरोट्ठरोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं णासा-रोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. ४, सु. ८९

एक दूसरे के उत्तरोष्ठ रोमादि परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र—

५१८. जो भिक्षु एक दूसरे के लम्बे उत्तरोष्ठ रोम (होठ के नीचे लम्बे रोम)—

काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु एक दूसरे के नाक के लम्बे रोम —
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।
उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णमण्णस्स दंतपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं —

५१९. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दंते—
आघंसेज्ज वा, पघंसेज्ज वा,

आघंसंतं वा, पघंसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दंते —
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,

उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दंते—
फुमेज्ज वा, रएज्ज वा,

फुमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
— नि. उ. ४, सु. ८०-८२

एक दूसरे के दाँतों के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र—

५१९. जो भिक्षु एक दूसरे के दाँतों को—
घिसे, बार-बार घिसे,
घिसवावे, बार-बार घिसवावे,
घिसने वाले का, बार-बार घिसने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु एक दूसरे के दाँतों को—
धोए, बार-बार धोए,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु एक दूसरे के दाँतों को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।
उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णमण्णस्स चक्खु परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५२०. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स अच्छीणि —
आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,

आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स अच्छीणि—
संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,

संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

एक दूसरे की आँखों के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र —

५२०. जो भिक्षु एक दूसरे की आँखों का—
मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु एक दूसरे की आँखों का—
मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स अच्छीणि—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,
मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु एक दूसरे की आँखों पर—
तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स अच्छीणि—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु एक दूसरे की आँखों पर—
लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स अच्छीणि—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु एक दूसरे की आँखों को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स अच्छीणि—
फुमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फुमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. ४, सु. ६१-६६

जो भिक्षु एक दूसरे की आँखों को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।
उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णमण्णस्स अच्छीपत्तपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्तं—

एक दूसरे के अक्षिपत्र के परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र —

५२१. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं अच्छिपत्ताइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. ४, सु. ६०

५२१. जो भिक्षु एक दूसरे के लम्बे अक्षि पत्रों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।
उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णमण्णस्स भमुगाइरोमाणं परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

एक दूसरे के भौंह आदि के परिकर्मों के प्रायश्चित्त के सूत्र—

५२२. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं भुमग-रोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

५२२. जो भिक्षु एक दूसरे के भौंह के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं पास-रोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

जो भिक्षु एक दूसरे के पार्श्व के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. ४, सु. ९७-९८

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे ।

उसे मासिक उद्‌घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

अण्णमण्णस्स केस-परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्तं—

५२३. जे भिक्खू अण्णमण्णस्स दीहाइं केसाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. ४, सु. ९८

एक दूसरे के केशों के परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र—

५२३. जो भिक्षु एक दूसरे के लम्बे केशों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे ।

उसे मासिक उद्‌घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

अण्णमण्णस्स सीसदुवारियंकरणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

५२४. जे भिक्खू गामाणुगामियं दूइज्जमाणे—

अण्णमण्णस्स सीसदुवारियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. ४, सु. १०१

एक दूसरे के मस्तक ढकने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५२४. जो भिक्षु ग्रामानुग्राम जाते हुए एक दूसरे के मस्तक को—

ढकता है, ढकवाता है, ढकने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे मासिक उद्‌घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

अन्यतीर्थिकादि द्वारा स्व-शरीर का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त—३

कायपरिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५२५. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो कायं—

आमज्जावेज्ज वा, पमज्जावेज्ज वा,

आमज्जावेंतं वा, पमज्जावेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो कायं—

संबाहावेज्ज वा, पलिमद्दावेज्ज वा,

संबाहावेंतं वा, पलिमद्दावेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो कायं—

तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,

मक्खावेज्ज वा, भिलिंगावेज्ज वा,

मक्खावेंतं वा, भिलिंगावेंतं वा साइज्जइ ।

शरीर का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५२५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने शरीर का—

मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,

मार्जन करवाने वाले का, प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने शरीर का—

मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,

मर्दन करवाने वाले का, प्रमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने शरीर को—

तेल—यावत्—मक्खन से,

मलवावे, बार-बार मलवावे,

मलवाने वाले का, बार-बार मलवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो कायं—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलावेज्ज वा, उव्वट्टावेज्ज वा,
उल्लोलावेंतं वा, उव्वट्टावेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने शरीर को—
लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करवाने वाले का, बार-बार उबटन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो कायं—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने शरीर को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाले का, बार-बार धुलवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो कायं—
फूमावेज्ज वा, रयावेज्ज वा,
फूमावेंतं वा, रयावेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने शरीर को—
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगवाने वाले का, बार-बार रंगवाने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. १९-२४

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मलणीहरावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

मल दूर करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५२६. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो—
अच्छिमलं वा, कण्णमलं वा, दंतमलं वा, नहमलं वा,
नीहरावेज्ज वा, विसोहावेज्ज वा,
नीहरावेंतं वा, विसोहावेंतं वा साइज्जइ।

५२६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने—
आँख के मैल को, कान के मैल को, दाँत के मैल को, नख के मैल को,
दूर करवावे, शोधन करवावे,
दूर करवाने वाले का, शोधन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो कायाओ—
सेयं वा, जल्लं वा, पंकं वा, मलं वा,
नीहरावेज्ज वा, विसोहावेज्ज वा,
नीहरावेंतं वा, विसोहावेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने—
शरीर से स्वेद (पसीना) को, जल्ल (जमा हुआ मैल) को, पंक (लगा हुआ कीचड़) को, मल्ल (लगी हुई रज) को,
दूर करवावे, शोधन करवावे,
दूर करवाने वाले का, शोधन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. ६३-६४

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पाय-परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

पैरों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५२७. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो पाये—
आमज्जावेज्ज वा, पमज्जावेज्ज वा,
आमज्जावेंतं वा, पमज्जावेंतं वा साइज्जइ।

५२७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने पैरों का—
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करवाने वाले का, प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो पाये—
संबाहावेज्ज वा, पलिमद्दावेज्ज वा,

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने पैरों का—
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,

संवाहावेंतं वा, पलिमद्दावेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो पाये—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खावेज्ज वा, भिलिंगावेज्ज वा,
मक्खावेंतं वा, भिलिंगावेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो पाये—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलावेज्ज वा, उव्वट्टावेज्ज वा,
उल्लोलावेंतं वा, उव्वट्टावेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो पाये—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो पाये—
फूमावेज्ज वा, रयावेज्ज वा,
फूमावेंतं वा, रयावेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १५, सु. १३-२८

मर्दन करवाने वाले का, प्रमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने पैरों को—
तेल—यावत्—मक्खन,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलवाने वाले का, बार-बार मलवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने पैरों को—
लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करवाने वाले का, बार-बार उबटन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने पैरों को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाले का, बार-बार धुलवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने पैरों को—
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगवाने वाले का, बार-बार रंगवाने वाले का अनुमोदन करे।

उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णहसीहाए परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

५२८. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा दीहाओ नह-सिहाओ—
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १५, सु. ३८

नखाग्र परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५२८. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से लंबे नखाग्रों को—
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

जंघाइरोमाणं परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५२९. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा दीहाइं जंघ-रोमाइं—
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा दीहाइं कक्ख-रोमाइं—

जंघादि के रोमों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५२९. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से जंघा (पिण्डली) के लम्बे रोमों को—
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से बगल (कांख) के लम्बे रोमों को—

कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ ।

कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा दीहाइं मंसु-रोमाइं—
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से श्मश्रु (दाढ़ी मूंछ) के लम्बे रोमों को—
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा दीहाइं वत्थि-रोमाइं—
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से बस्ति के लम्बे रोमों को—
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा दीहाइं चक्खु-रोमाइं—
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से लम्बे चक्षु रोमों को—
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १५, सु. ३९-४३

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

ओट्ठ परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

होठों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५३०. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो उट्ठे—
आमज्जावेज्ज वा, पमज्जावेज्ज वा,
आमज्जावेंतं वा, पमज्जावेंतं वा साइज्जइ ।

५३०. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने होठों का—
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करवाने वाले का, प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो उट्ठे—
संबाहावेज्ज वा, पलिमद्दावेज्ज वा,
संबाहावेंतं वा, पलिमद्दावेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने होठों का—
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करवाने वाले का, प्रमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो उट्ठे—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खावेज्ज वा, भिलिंगावेज्ज वा,
मक्खावेंतं वा, भिलिंगावेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने होठों को—
तेल—यावत्—मक्खन,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलवाने वाले का, बार-बार मलवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो उट्ठे—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलावेज्ज वा, उव्वट्टावेज्ज वा,
उल्लोलावेंतं वा, उव्वट्टावेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने होठों पर—
लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करवाने वाले का, बार-बार उबटन करवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो उट्ठे—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने होठों पर—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाले का, बार-बार धुलवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो उट्ठे—
फूमावेज्ज वा, रयावेज्ज वा,
फूमावेंतं वा, रयावेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने होठों को—
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगवाने वाले का, बार-बार रंगवाने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १५, सु ४७-५२

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

उत्तरोट्ठरोमाणं परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं-

उत्तरोष्ठादि रोमों के परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५३१. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो दीहाइं उत्तरोट्ठरोमाइं—
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ ।

५३१. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने लम्बे उत्तरोष्ठ रोम (होठों के नीचे के लम्बे रोम)
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो णासा रोमाइं—
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने नाक के लम्बे रोम—
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १५, सु. ५३

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

दंतपरिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

दाँतों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५३२. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो दंते—
आघंसावेज्ज वा, पघंसावेज्ज वा,
आघंसावेंतं वा, पघंसावेंतं वा साइज्जइ ।

५३२. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने दाँतों को—
घिसवावे, बार-बार घिसवावे,
घिसवाने वाले का, बार-बार घिसवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो दंते—
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने दाँतों को—
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाले का, बार-बार धुलवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो दंते—
फूमावेज्ज वा, रयावेज्ज वा,
फूमावेंतं वा, रयावेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने दाँतों को—
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगवाने वाले का, बार-बार रंगवाने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. ४४-४६

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अच्छीपरिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

आँखों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५३३. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो अच्छीणि—
आमज्जावेज्ज वा, पमज्जावेज्ज वा,
आमज्जावेंतं वा, पमज्जावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो अच्छीणि—
संबाहावेज्ज वा, पलिमद्दावेज्ज वा,
संबाहावेंतं वा, पलिमद्दावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो अच्छीणि—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खावेज्ज वा, भिलिंगावेज्ज वा,
मक्खावेंतं वा, भिलिंगावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो अच्छीणि—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलावेज्ज वा, उव्वट्टावेज्ज वा,
उल्लोलावेंतं वा, उव्वट्टावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो अच्छीणि—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो अच्छीणि—
फूमावेज्ज वा, रयावेज्ज वा,
फूमावेंतं वा, रयावेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. ५५-६०

५३३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपनी आँखों का—
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करवाने वाले का, प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपनी आँखों का—
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करवाने वाले का, प्रमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपनी आँखों पर—
तेल,—यावत्—मक्खन,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलवाने वाले का, बार-बार मलवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपनी आँखों पर—
लोध,—यावत्—वर्ण का,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करवाने वाले का, बार-बार उबटन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपनी आँखों का—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाले का, बार-बार धुलवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपनी आँखों को—
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगवाने वाले का, बार-बार रंगवाने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अच्छीपत्त-परिकम्म-कारावणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

अक्षीपत्रों के परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५३४. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो दीहाइं अच्छीपत्ताइं—
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. ५४

५३४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने लम्बे अक्षिपत्रों को—
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सुमगरोमाइं परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५३५. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो दीहाइं सुमगरोमाइं—

कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,

कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो दीहाइं पासरोमाइं—

कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,

कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १५, सु. ६१-६२

भौंहों आदि के रोमों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५३५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने भौंहों के लंबे रोमों को—

कटवावे, सुशोभित करवावे,

कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने पार्श्व के लम्बे रोमों को—

कटवावे, सुशोभित करवावे,

कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

केस-परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

५३६. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा अप्पणो दीहाइं केसाइं—

कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,

कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १५, सु. ६२

केश परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५३६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से अपने लम्बे केशों को—

कटवावे, सुशोभित करवावे,

कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सीसदुवारियं कारावणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

५३७. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अप्पणो सीसदुवारियं—

करावेइ, करावेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १५, सु. ६५

मस्तक ढकवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५३७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से ग्रामानुग्राम जाता हुआ अपने मस्तिष्क को—

ढकवाता है, ढकने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अन्यतीर्थिकादि द्वारा निर्ग्रन्थी-निर्ग्रन्थ के प्रायश्चित्त—४

णिग्गंथिए णिग्गंथस्स काय-परिकम्म-कारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५३८. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स कायं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
आमज्जावेज्ज वा, पमज्जावेज्ज वा,
आमज्जावेंतं वा, पमज्जावेंतं वा साइज्जइ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स कायं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
संबाहावेज्ज वा, पलिमद्दावेज्ज वा,
संबाहावेंतं वा, पलिमद्दावेंतं वा साइज्जइ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स कायं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खावेज्ज वा, भिलिंगावेज्ज वा,
मक्खावेंतं वा, भिलिंगावेंतं वा साइज्जइ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स कायं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलावेज्ज वा, उव्वट्टावेज्ज वा,
उल्लोलावेंतं वा, उव्वट्टावेंतं वा साइज्जइ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स कायं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स कायं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
फूमावेज्ज वा, रयावेज्ज वा,
फूमावेंतं वा, रयावेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. २१-२६

निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के शारीरिक परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५३८. जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के शरीर को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करवाने वाली का, प्रमार्जन करवाने वाली का अनुमोदन करे।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के शरीर को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करवाने वाली का, प्रमर्दन करवाने वाली का अनुमोदन करे।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के शरीर को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
तेल—यावत्—मक्खन,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलवाने वाली का, बार-बार मलवाने वाली का अनुमोदन करे।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के शरीर को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
लोध,—यावत्—वर्ण का,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करवाने वाली का, बार-बार उबटन करवाने वाली का अनुमोदन करे।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के शरीर को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाली का, बार-बार धुलवाने वाली का अनुमोदन करे।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के शरीर को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगवाने वाली का, बार-बार रंगवाने वाली का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथिणा णिग्गंथ अच्छी आईणं मल-णीहरावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५३९. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स—

अच्छिमलं वा, कण्णमलं वा, दंतमलं वा, नहमलं वा,
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
णीहरावेज्ज वा, विसोहावेज्ज वा,
नीहरावेंतं वा, विसोहावेंतं वा साइज्जइ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स—

कायाओ सेयं वा, जल्लं वा, पंकं वा, मल्लं वा,

अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
नीहरावेज्ज वा, विसोहावेज्ज वा,
नीहरावेंतं वा, विसोहावेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १७, सु. ६५-६६

निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ का मैल निकलवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५३९. जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के—

आँखों के मैल को, कान के मैल को, दाँत के मैल को, नख के मैल को, अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,

दूर करवावे, शोधन करवावे,

दूर करवाने वाली का, शोधन करवाने वाली का अनुमोदन करे।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के—

स्वेद (पसीना) को, जल्ल (जमा हुआ मैल) को, पंक (लगा हुआ कीचड़) को, मल्ल (लगी हुई रज) को,

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,

दूर करवावे, शोधन करवावे,

दूर करवाने वाली का, शोधन करवाने वाली का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथिणा णिग्गंथ पायपरिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५४०. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स पाये—

अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
आमज्जावेज्ज वा, पमज्जावेज्ज वा,
आमज्जावेंतं वा, पमज्जावेंतं वा साइज्जइ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स पाये—

अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
संबाहावेज्ज वा, पलिमद्दावेज्ज वा,
संबाहावेंतं वा, पलिमद्दावेंतं वा साइज्जइ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स पाये—

अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खावेज्ज वा, भिलिंगावेज्ज वा,
मक्खावेंतं वा, भिलिंगावेंतं वा साइज्जइ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स पाये—

अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलावेज्ज वा, उव्वट्टावेज्ज वा,
उल्लोलावेंतं वा, उव्वट्टावेंतं वा साइज्जइ।

निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के पैरों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५४०. जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के पैर का—

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,

मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,

मार्जन करवाने वाली का, प्रमार्जन करवाने वाली का अनुमोदन करे।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के पैर का—

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,

मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,

मर्दन करवाने वाली का, प्रमर्दन करवाने वाली का अनुमोदन करे।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के पैर पर—

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,

तेल—यावत्—मक्खन,

मलवावे, बार-बार मलवावे,

मलवाने वाली का, बार-बार मलवाने वाली का अनुमोदन करे।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के पैरों पर—

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,

लोध का—यावत्—वर्ण का,

उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,

उबटन करवाने वाली का, बार-बार उबटन करवाने वाली का अनुमोदन करे।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स पाये—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के पैरों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाली का, बार-बार धुलवाने वाली का अनुमोदन करे ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स पाये—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
फूमावेज्ज वा, रयावेज्ज वा,
फूमावेंतं वा, रयावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के पैरों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगवाने वाली का, बार-बार रंगवाने वाली का अनुमोदन करे ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १७, सु. १९-२०

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

णिग्गंथिणा णिग्गंथ णहसिहा परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के नखाग्रों का परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५४१. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दीहाओ नहसिहाओ—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ ।

५४१. जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के लम्बे नखाग्रों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाली का, सुशोभित करवाने वाली का अनुमोदन करे ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १७, सु. ४०

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

णिग्गंथिणा णिग्गंथ जंघाइ रोमाणं परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के जंघादि के रोमों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५४२. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दीहाइं जंघरोमाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ ।

५४२. जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के जंघा (पिण्डली) के लम्बे रोमों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाली का, सुशोभित करवाने वाली का अनुमोदन करे ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दीहाइं कक्खरोमाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के बगल (कांख) के लम्बे रोमों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाली का, सुशोभित करवाने वाली का अनुमोदन करे ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दीहाइं मंसुरोमाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के श्मश्रु (दाढ़ी मूंछ) के लम्बे रोमों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,

कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दीहाइं वत्थिरोमाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दीहाइं चक्खुरोमाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १७, सु. ४१-४५

कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाली का, सुशोभित करवाने वाली का अनुमोदन करे ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के बस्ति के लम्बे रोमों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाली का, सुशोभित करवाने वाली का अनुमोदन करे ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के लम्बे चक्षु रोमों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाली का, सुशोभित करवाने वाली का अनुमोदन करे ।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

णिग्गंथिणा णिग्गंथ ओट्ठपरिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५४३. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स उट्ठे—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
आमज्जावेज्ज वा, पमज्जावेज्ज वा,
आमज्जावेंतं वा, पमज्जावेंतं वा साइज्जइ ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स उट्ठे—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
संबाहावेज्ज वा, पलिमद्दावेज्ज वा,
संबाहावेंतं वा, पलिमद्दावेंतं वा साइज्जइ ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स उट्ठे—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खावेज्ज वा, भिलिंगावेज्ज वा,
मक्खावेंतं वा, भिलिंगावेंतं वा साइज्जइ ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स उट्ठे—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलावेज्ज वा, उव्वट्टावेज्ज वा,
उल्लोलावेंतं वा, उव्वट्टावेंतं वा साइज्जइ ।

निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के होठों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५४३. जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के होठों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करवाने वाली का, प्रमार्जन करवाने वाली का अनुमोदन करे ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के होठों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करवाने वाली का, प्रमर्दन करवाने वाली का अनुमोदन करे ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के होठों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
तेल—यावत्—मक्खन,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलवाने वाली का, बार-बार मलवाने वाली का अनुमोदन करे ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के होठों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
लोध—यावत्—वर्ण से,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करवाने वाली का, बार-बार उबटन करवाने वाली का अनुमोदन करे ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स उट्ठे—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स उट्ठे—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
फूमावेज्ज वा, रयावेज्ज वा,
फूमावेंतं वा, रयावेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. ४६-५४

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के होठों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाली का, बार-बार धुलवाने वाली का अनुमोदन करे।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के होठों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगवाने वाली का, बार-बार रंगवाने वाली का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथिणा णिग्गंथ उत्तरोट्ठाइ रोमाणं परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के उत्तरोष्ठ रोमों के परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५४४. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दीहाइं उत्तरोट्ठ रोमाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ।

[जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दीहाइं णासा रोमाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ।]

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. ५५

५४४. जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के उत्तरोष्ठ लम्बे रोमों (होठ के नीचे के लम्बे रोम) को
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाली का, सुशोभित करवाने वाली का अनुमोदन करे।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के नासिका के लम्बे रोमों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाली का, सुशोभित करवाने वाली का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथिणा णिग्गंथ दंत परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के दाँतों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५४५. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दंते—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
आघंसावेज्ज वा, पघंसावेज्ज वा,
आघंसावेंतं वा, पघंसावेंतं वा साइज्जइ।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दंते—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ।

५४५. जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के दाँतों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
घिसवावे, बार-बार घिसवावे,
घिसवाने वाली का, बार-बार घिसवाने वाली का अनुमोदन करे।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के दाँतों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाली का, बार-बार धुलवाने वाली का अनुमोदन करे।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दंते—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
फूमावेज्ज वा, रयावेज्ज वा,
फूमावेंतं वा, रयावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के दाँतों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगवाने वाली का, बार-बार रंगवाने वाली का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
— नि. उ. १७, सु. ४६-४८

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथिणा णिग्गंथ अच्छी परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ की आँखों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५४६. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स अच्छीणि—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
आमज्जावेज्ज वा, पमज्जावेज्ज वा,
आमज्जावेंतं वा, पमज्जावेंतं वा साइज्जइ ।

५४६. जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ की आँखों का—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करवाने वाली का, प्रमार्जन करवाने वाली का अनुमोदन करे।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स अच्छीणि—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
संबाहावेज्ज वा, पलिमद्दावेज्ज वा,
संबाहावेंतं वा, पलिमद्दावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ की आँखों का—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करवाने वाली का, प्रमर्दन करवाने वाली का अनुमोदन करे।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स अच्छीणि—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खावेज्ज वा, भिलिंगावेज्ज वा,
मक्खावेंतं वा, भिलिंगावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ की आँखों पर—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
तेल—यावत्—मक्खन,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलवाने वाली का, बार-बार मलवाने वाली का अनुमोदन करे।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स अच्छीणि—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलावेज्ज वा, उव्वट्टावेज्ज वा,
उल्लोलावेंतं वा, उव्वट्टावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ की आँखों पर—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
लोध,—यावत्—वर्ण का,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करवाने वाली का, बार-बार उबटन करवाने वाली का अनुमोदन करे।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स अच्छीणि—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ की आँखों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाली का, बार-बार धुलवाने वाली का अनुमोदन करे।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स अच्छीणि—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ की आँखों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,

फूमावेज्ज वा, रयावेज्ज वा,
फूमावेंतं वा, रयावेंतं वा साइज्जइ।

रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगवाने वाली का, बार-बार रंगवाने वाली का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. ४०-६२

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथिणा णिग्गंथ अच्छीपत्त परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के अक्षीपत्रों का परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५४७. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दीहाइं अच्छिपत्ताइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ।

५४७. जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के लम्बे अक्षि पत्रों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाली का, सुशोभित करवाने वाली का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. ५९

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथिणा णिग्गंथ भुमगाइरोमाणं परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के भौंहों आदि के परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५४८. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दीहाइं भुमगरोमाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा संठवावेंतं वा साइज्जइ।

५४८. जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के भौंहों के लम्बे रोमों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाली का, सुशोभित करवाने वाली का अनुमोदन करे।

जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दीहाइं पासरोमाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के पार्श्व के लम्बे रोमों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाली का, सुशोभित करवाने वाली का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. ६३-६४

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथिणा णिग्गंथस्स केस परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ के केश परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५४९. (जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स दीहाइं केसाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ।)

५४९. जो निर्ग्रन्थी निर्ग्रन्थ के लम्बे केशों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाली का, सुशोभित करवाने वाली का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. ६५

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथिणा णिग्गन्थस्स सीसदुवारिय कारावणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

५५०. जा णिग्गंथी णिग्गंथस्स गामाणुगामं दूइज्जमाणे—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
सीसदुवारियं कारावेइ, कारावेंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १७, सु. ६७

निर्ग्रन्थी द्वारा निर्ग्रन्थ का मस्तक ढकवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५५०. जो निर्ग्रन्थी ग्रामानुग्राम जाते हुए निर्ग्रन्थ के मस्तक को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
ढकवाती है, ढकवाने वाली का अनुमोदन करती है ।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

अन्यतीर्थिकादि द्वारा निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी के प्रायश्चित्त—५

णिग्गंथेण णिग्गन्थी कायपरिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५५१. जे णिग्गंथे णिग्गंथीए कायं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
आमज्जावेज्ज वा, पमज्जावेज्ज वा,
आमज्जावेंतं वा, पमज्जावेंतं वा साइज्जइ ।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए कायं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
संवाहावेज्ज वा, पलिमद्दावेज्ज वा,
संवाहावेंतं वा, पलिमद्दावेंतं वा साइज्जइ ।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए कायं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खावेज्ज वा, भिलिंगावेज्ज वा,
मक्खावेंतं वा, भिलिंगावेंतं वा साइज्जइ ।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए कायं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलावेज्ज वा, उव्वट्टावेज्ज वा,
उल्लोलावेंतं वा, उव्वट्टावेंतं वा साइज्जइ ।

निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के शरीर परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५५१. जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के शरीर का—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करवाने वाले का, प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के शरीर का—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करवाने वाले का, प्रमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के शरीर पर—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
तेल—यावत्—मक्खन,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलवाने वाले का, बार-बार मलवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के शरीर पर—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करवाने वाले का, बार-बार उबटन करवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए कायं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के शरीर को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाले का, बार-बार धुलवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए कायं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
फूमावेज्ज वा, रयावेज्ज वा,
फूमावेंतं वा, रयावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के शरीर को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगवाने वाले का, बार-बार रंगवाने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १७, सु. ७४-७९

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गन्थे णिग्गन्थी मलणिहरावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी का (आँखों आदि के) मैल निकलवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५५२. जे णिग्गंथे णिग्गंथीए—
अच्छिमलं वा, कण्णमलं वा, दंतमलं वा, नहमलं वा,
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
नीहरावेज्ज वा, विसोहावेज्ज वा,
नीहरावेंतं वा, विसोहावेंतं वा साइज्जइ ।

५५२. जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी की—
आँख के मैल को, कान के मैल को, दाँत के मैल को नख के मैल को,
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
दूर करवावे, शोधन करवावे,
दूर करवाने वाले का, शोधन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए—
कायाओ सेयं वा, जल्लं वा, पंकं वा, मलं वा,
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
नीहरावेज्ज वा, विसोहावेज्ज वा,
नीहरावेंतं वा, विसोहावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के—
स्वेद (पसीना) को, जल्ल (जमा हुआ मैल), पंक (लगा हुआ कीचड़), मल्ल (लगी हुई रज) को,
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
दूर करवावे, शोधन करवावे,
दूर करवाने वाले का, शोधन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १७, सु. ११८-११९

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गन्थेण णिग्गन्थी पायपरिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के पैरों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५५३. जे णिग्गंथे णिग्गंथीए पाए—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
आमज्जावेज्ज वा, पमज्जावेज्ज वा,
आमज्जावेंतं वा, पमज्जावेंतं वा साइज्जइ ।

५५३. जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के पैरों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करवाने वाले का, प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए पादे —
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
संबाहावेज्ज वा, पलिमद्दावेज्ज वा,
संबाहावेंतं वा, पलिमद्दावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के पैरों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करवाने वाले का, प्रमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए पादे—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खावेज्ज वा, भिलिंगावेज्ज वा,
मक्खावेंतं वा, भिलिंगावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के पैरों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
तेल—यावत्—मक्खन,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलवाने वाले का, बार-बार मलवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए पादे—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलावेज्ज वा, उव्वट्टावेज्ज वा,
उल्लोलावेंतं वा, उव्वट्टावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के पैरों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करवाने वाले का, बार-बार उबटन करवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जे णिग्गन्थे णिग्गन्थीए पादे—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के पैरों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाले का, बार-बार धुलवाने वाले का अनुमोदन करे ।

जे णिग्गन्थे णिग्गन्थीए पादे—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
फूमावेज्जा वा, रयावेज्ज वा,
फूमावेंतं वा, रयावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के पैरों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगवाने वाले का, बार-बार रंगवाने वाले का अनुमोदन करे ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १७, सु. ६८-७२

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

णिग्गंथेण णहसीहाए परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त-सुत्तं-

निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के नखाग्रों का परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५५४. जे णिग्गंथे णिग्गंथीए दीहाओ नहसिहाओ—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १७, सु. ९३

५५४. जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के लंबे नखाग्रों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे ।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

णिग्गंथेण णिग्गंथी जंघाइरोमाणं परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५५५. जे णिग्गंथे णिग्गंथीए दीहाइं जंघरोमाइं—

अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए दीहाइं कक्खरोमाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए दीहाइं मंसुरोमाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए दीहाइं वत्थिरोमाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए दीहाइं चक्खुरोमाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं व साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. ९४-९८

निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के जंघा आदि के रोमों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५५५. जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के जंघा (पिण्डली) के लम्बे रोमों को—

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के बगल (कांख) के लम्बे रोमों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के श्मश्रु (दाढ़ी मूंछ) के लम्बे रोमों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के बस्ति के लम्बे रोमों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के चक्षु के लम्बे रोमों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथेण णिग्गंथी ओट्ठ परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५५६. जे णिग्गंथे णिग्गंथीए उट्ठे—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
आमज्जावेज्ज वा, पमज्जावेज्ज वा,
आमज्जावेंतं वा, पमज्जावेंतं वा साइज्जइ।

निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के होठों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५५६. जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के होठों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करवाने वाले का, प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए उट्ठे—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
संबाहावेज्ज वा, पलिमद्दावेज्ज वा,
संबाहावेंतं वा, पलिमद्दावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के होठों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करवाने वाले का, प्रमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए उट्ठे—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खावेज्ज वा, भिलिंगावेज्ज वा,
मक्खावेंतं वा, भिलिंगावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के होठों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
तेल,—यावत्—मक्खन,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलवाने वाले का, बार-बार मलवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए उट्ठे—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलावेज्ज वा, उव्वट्टावेज्ज वा,
उल्लोलावेंतं वा, उव्वट्टावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के होठों पर—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करवाने वाले का, बार-बार उबटन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए उट्ठे—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के होठों पर—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ द्वारा,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवावे बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाले का, बार-बार धुलवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए उट्ठे—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
फूमावेज्ज वा, रयावेज्ज वा,
फूमावेंतं वा, रयावेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. १०२-१०७

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के होठों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगवाने वाले का, बार-बार रंगवाने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथेण णिग्गंथी उत्तरोट्ठ रोमाणं परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी के उत्तरोष्ठादि रोमों का परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५५७. जे णिग्गंथे णिग्गंथीए दीहाइं उत्तरोट्ठ रोमाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ।

५५७. जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के उत्तरोष्ठ के लम्बे रोमों (होठ के नीचे के लम्बे रोम) को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।

(जे णिग्गंथे णिग्गंथीए दीहाइं णासा रोमाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,

(जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के नासिका के लम्बे रोमों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।)

कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. १०८

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथेण णिग्गंथी दंतपरिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के दाँतों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५५८. जे णिग्गंथे णिग्गंथीए दंते—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
आघंसावेज्ज वा, पघंसावेज्ज वा,
आघंसावेंतं वा, पघंसावेंतं वा साइज्जइ।

५५८. जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के दाँतों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
घिसवावे, बार-बार घिसवावे,
घिसवाने वाले का, बार-बार घिसवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए दंते—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के दाँतों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाले का, बार-बार धुलवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए दंते—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
फूमावेज्ज वा, रयावेज्ज वा,
फूमावेंतं वा, रयावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के दाँतों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगवाने वाले का, बार-बार रंगवाने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. ९९-१०१

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथेण णिग्गंथी अच्छीपरिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी की आँखों के परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५५९. जे णिग्गंथे णिग्गंथीए अच्छीणि—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
आमज्जावेज्ज वा, पमज्जावेज्ज वा,
आमज्जावेंतं वा, पमज्जावेंतं वा साइज्जइ।

५५९. जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी की आँखों का—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करवाने वाले का, प्रमार्जन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए अच्छीणि—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
संबाहावेज्ज वा, पलिमद्दावेज्ज वा,
संबाहावेंतं वा, पलिमद्दावेंतं वा साइज्जइ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी की आँखों का—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करवाने वाले का, प्रमर्दन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गंथीए अच्छीणि—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी की आँखों पर—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,

तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खावेज्ज वा, भिलिंगावेज्ज वा,
मक्खावेंतं वा, भिलिंगावेंतं वा साइज्जइ ।

तेल—यावत्—मक्खन,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलवाने वाले का, बार-बार मलवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गन्थे णिग्गन्थीए अच्छीणि—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलावेज्ज वा, उव्वट्टावेज्ज वा,
उल्लोलावेंतं वा, उव्वट्टावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी की आँखों पर—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
लोध्र—यावत्—वर्ण का,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करवाने वाले का, बार-बार उबटन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गंथे णिग्गन्थीए अच्छीणि—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलावेज्ज वा, पधोयावेज्ज वा,
उच्छोलावेंतं वा, पधोयावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी की आँखों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धुलवाने वाले का, बार-बार धुलवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गन्थे णिग्गन्थीए अच्छीणि—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
फूमावेज्ज वा, रयावेज्ज वा,
फूमावेंतं वा, रयावेंतं वा साइज्जइ ।

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी की आँखों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगवाने वाले का, बार-बार रंगवाने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १७, सु. ११०-११५

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथेण णिग्गंथी अच्छिपत्त परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के अक्षीपत्रों का परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५६०. जे णिग्गन्थे णिग्गन्थीए दीहाइं अच्छिपत्ताइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ ।

५६०. जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के लम्बे अक्षि पत्रों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १७, सु. १०९-११०

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथेण णिग्गंथी भुमगाइरोमाणं परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के भौंह आदि के रोमों का परिकर्म करवाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५६१. जे णिग्गन्थे णिग्गन्थीए दीहाइं भुमग-रोमाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ ।

५६१. जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के भौंहों के लम्बे रोमों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे णिग्गन्थे णिग्गन्थीए दीहाइं पास-रोमाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. ११६-११७

जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के पार्श्व के लम्बे रोमों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिग्गंथेण णिग्गंथी केसाइं परिकम्मकारावणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

५६२. (जे णिग्गन्थे णिग्गंथीए दीहाइं केसाइं—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
कप्पावेज्ज वा, संठवावेज्ज वा,
कप्पावेंतं वा, संठवावेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।)
—नि. उ. १७, सु. ११७

निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के केश परिकर्म करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५६२. (जो निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थी के लम्बे केशों को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।)

णिग्गंथेण णिग्गंथी सीसदुवारियं कारावणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

५६३. जे णिग्गंथे णिग्गन्थीए गामाणुगामं दूइज्जमाणे—
अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा,
सीसदुवारियं कारावेइ, कारावेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. १२०

निर्ग्रन्थ द्वारा निर्ग्रन्थी के मस्तक को ढकवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५६३. जो निर्ग्रन्थ ग्रामानुग्राम जाती हुई निर्ग्रन्थी के मस्तक को—
अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से,
ढकवाता है, ढकने वाले का अनुमोदन करता है।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

□□

अन्यतीर्थिक के परिकर्म करने के प्रायश्चित्त—६

अण्णउत्थियस्स गारत्थियस्स कायपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५६४. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा गारत्थियस्स वा कायं—
आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,
आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के शरीर परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र—

५६४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के शरीर का,
मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा कायं—
संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,

संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा कायं—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,

मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा कायं—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,

उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा कायं—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,

उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा,
फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,

फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ११, सु. १७-२२

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के शरीर को,
मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के शरीर पर,
तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के शरीर पर,
लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के शरीर को,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोवे, बार-बार धोवे,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के शरीर को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णतित्थियस्स गारत्थियस्स मलणिहरणपायच्छित्त सुत्ताइं—

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के मैल निकालने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५६५. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा—
अच्छिमलं वा, कण्णमलं वा, दंतमलं वा, नहमलं वा,

नीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा,

नीहरेंतं वा, विसोहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा—
कायाओ, सेयं वा, जल्लं वा, पंकं वा, मलं वा,

नीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा,

५६५. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के—
आँख के मैल को, कान के मैल को, दाँत के मैल को, नख के मैल को—
दूर करे, शोधन करे,
दूर करवावे, शोधन करवावे,
दूर करने वाले का, शोधन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के—
शरीर के स्वेद (पसीना) को, जल्ल (जमा हुआ मैल) को, पंक (लगा हुआ कीचड़) को, मल्ल (लगी हुई रज) को,
दूर करे, शोधन करे,
दूर करवावे, शोधन करवावे,

णीहरेंतं वा, विसोहेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।

नि. उ. ११, सु. ६१-६२

दूर करने वाले का, शोधन करने वाले का अनुमोदन करे ।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

अण्णउत्थियस्स गारत्थियस्स पायपरिकम्म पायच्छित्त सुत्ताइं—

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के पैरों के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र—

५६६. **जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा पाए—**
आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा,
आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ ।

५६६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के पैरों का—
मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा पाए—
संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,
संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के पैरों का—
मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा पाए—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,
मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के पैरों पर—
तेल—**यावत्**—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का **अनुमोदन करे ।**

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा पाए—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के पैरों पर—
लोध—**यावत्**—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा पाए—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के पैरों को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा पाए—
फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।

—नि. उ. ११, सु. ११-१६

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के पैरों को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे ।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

अण्णउत्थियस्स गारत्थियस्स णहपरिकम्म-पायच्छित्त सुत्तं —

५६७. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा दीहाओ नह-सिहाओ—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।

—नि. उ. ११, सु. ३६

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के नखाग्रों के परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र—

५६७. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के लम्बे नखाग्रों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णउत्थियस्स गारत्थियस्स जंघाइरोम-परिकम्म-पायच्छित्त सुत्ताइं —

५६८. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा दीहाइं जंघ-रोमाइं —

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा, दीहाइं कक्ख-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा दीहाइं मंसु-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा दीहाइं वत्थि-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा दीहाइं चक्खु रोमाइं

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।

—नि. उ. ११, सु. ३७-४१

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के जंघादि के रोमों का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र

५६८. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के जंघा (पिण्डली) के, लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के बगल (कांख) के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के श्मश्रु (दाढ़ी मूंछ) के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के बस्ति के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के चक्षु के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णउत्थियस्स गारत्थियस्स ओट्ठपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५६९. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा उट्ठे—
आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,
आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा उट्ठे—
संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,
संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा उट्ठे—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,
मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा उट्ठे—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा उट्ठे—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा उट्ठे—
फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ११, सु. ४५-५०

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के होठों के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र—

५६९. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के होठों का
मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के होठों का—
मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के होठों पर—
तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के होठों पर—
लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के होठों को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के होठों को—
रंगे, बार बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णउत्थियस्स गारत्थियस्स उत्तरोट्ठाइरोम-परिकम्म पायच्छित्त सुत्ताइं—

५७०. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा दीहाइं उत्तरोट्ठ-रोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के उत्तरोष्ठ रोम आदि के परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

५७०. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के उत्तरोष्ठ के लम्बे रोम (होठ के नीचे के लम्बे रोम),
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

(जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा दीहाइं णासा रोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।)
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ११, सु. ४१

(जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के नासिका के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
कटवाने वाले का, सुशोभित करवाने वाले का अनुमोदन करे।)
उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णउत्थियस्स गारत्थियस्स दंतपरिकम्म-पायच्छित्त सुत्ताइं—

५७१. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा दंते—
आघंसेज्ज वा, पघंसेज्ज वा,
आघंसंतं वा, पघंसंतं वा साइज्जइ।
जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा दंते—
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।
जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा दंते—
फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ११, सु. ४२-४४

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के दाँतों के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र—

५७१. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के दाँतों को—
घिसे, बार-बार घिसे,
घिसवावे, बार-बार घिसवावे,
घिसवाने वाले का, बार-बार घिसवाने वाले का अनुमोदन करे।
जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के दाँतों को—
धोए, बार-बार धोए,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।
जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के दाँतों को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णउत्थियस्स गारत्थियस्स चक्खु परिकम्म-पायच्छित्त सुत्ताइं—

५७२. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा अच्छीणि—
आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,
आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।
जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा अच्छीणि—
संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,
संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।
जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा अच्छीणि—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,
मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के आँखों के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र—

५७२. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ की आँखों का—
मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।
जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ की आँखों का—
मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।
जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ की आँखों पर—
तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा अच्छीणि —
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ की आँखों पर—
लोध्र,—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करवाने वाले का, बार-बार उबटन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा अच्छीणि—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ की आँखों को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोवे,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा अच्छीणि—
फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ११, सु. ५३-५८

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ की आँखों को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णउत्थियस्स गारत्थियस्स अच्छीपत्तपरिकम्म-पायच्छित्त सुत्तं—

५७३. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा दीहाइं अच्छिपत्ताइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ११, सु. ५२

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के अक्षीपत्रों के परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र—

५७३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के लम्बे अक्षिपत्रों को—
काटे, सुशोभित करे, कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णउत्थियस्स गारत्थियस्स भुमगाइरोम-परिकम्म पायच्छित्त सुत्ताइं—

५७४. जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा दीहाइं भुमग-रोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।
जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा दीहाइं पास-रोमाइं—
कप्पेज्ज, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा संठवेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ११, सु. ५९-६०

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के भौंहों आदि के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र—

५७४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के भौंहों के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।
जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के पार्श्व के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णउत्थियस्स गारत्थियस्स केस परिकम्म-पायच्छित्त सुत्तं—

५७५. (जे भिक्खू अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा दीहाइं केसाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ११, सु. ५३

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के केश परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र

५७५. (जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के लम्बे केशों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अण्णउत्थियस्स गारत्थियस्स सीसदुवारियंकरणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

५७६. जे भिक्खू गामाणुगामं दूइज्जमाणे अण्णउत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा—
सीस-दुवारियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ११, सु. ६३

अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के मस्तक ढकने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५७६. जो भिक्षु ग्रामानुग्राम जाता हुआ अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के—
मस्तक को ढकता है, ढकवाता है,
ढकने वाले का अनुमोदन करता है।
उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विभूषा के संकल्प से स्व-शरीर का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त—७

विभूसावडियाए कायपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५७७. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायं—
आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,
आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायं—
संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,
संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायं—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,
मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

विभूषा के संकल्प से शरीर परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५७७. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर का—
मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर का—
मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर पर—
तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायं—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर पर—
लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायं—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो कायं—
फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. १०६-१११

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने शरीर को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विभूसावडियाए मलणिहरणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

विभूषा के संकल्प से मैल को निकालने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५७८. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो—
अच्छिमलं वा, कण्णमलं वा, दंतमलं वा, नहमलं वा,
नीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा,
नीहरेंतं वा, विसोहेंतं वा साइज्जइ।

५७८. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने—
आँख के मैल को, कान के मैल को, दाँत के मैल को, नख के मैल को,
दूर करे, शोधन करे,
दूर करवावे, शोधन करवावे,
दूर करने वाले का, शोधन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो—
कायाओ सेयं वा, जल्लं वा, पंकं वा, मल्लं वा,
नीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा,
नीहरेंतं वा, विसोहेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. १५०-१५१

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने—
शरीर से स्वेद (पसीना) को, जल्ल (जमा हुआ मैल) को, पंक (लगा हुआ कीचड़) को, मल्ल (लगी हुई रज) को,
दूर करे, शोधन करे,
दूर करवावे, शोधन करवावे,
दूर करने वाले का, शोधन करने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विभूसावडियाए पायपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

विभूषा के संकल्प से पैरों का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५७९. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो पाये—
आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,
आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

५७९. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने पैरों का—
मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो पाये—
संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,

संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने पैरों का—
मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो पाये—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,

मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने पैरों पर—
तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो पाये—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उवट्टेज्ज वा,

उल्लोलेंतं वा, उवट्टेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने पैरों पर—
लोध्र—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो पाये—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,

उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने पैरों को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोवे, बार-बार धोवे,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो पाये—
फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,

फूमेंतं वा, रयंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १५, सु. १००-१०५

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने पैरों को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विभूसावडियाए णहसिहाए परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्तं—

विभूषा के संकल्प से नखाग्रों के परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र—

५८०. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाओ नह-सिहाओ—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १५, सु. १२५

५८०. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने लम्बे नखाग्रों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विभूसावडियाए जंघाइरोमाणं परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

विभूषा के संकल्प से जंघादि के रोमों के परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५८१. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं जंघ-रोमाइं—

५८१. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने जंघा (पिण्डली) के लम्बे रोमों को—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं कक्ख-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं मंसु-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं वत्थि-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं चक्खुरोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १५, सु. १२९-१३०

काटे, सुशोभित करे,
कटवावें, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे ।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने बगल (कांख) के लंबे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे ।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने श्मश्रु (दाढ़ी मूंछ) के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे ।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने बस्ति के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे ।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने चक्षु के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे ।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

विभूसावडियाए ओट्ठपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५८२. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो उट्ठे—
आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,

आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो उट्ठे—
संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,

संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो उट्ठे—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,

मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ ।

विभूषा के संकल्प से होठों का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५८२. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने होठों का—
मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने होठों का—
मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने होठों पर—
तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो उट्ठे—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने होठों पर—
लोध्र का—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो उट्ठे—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने होठों को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो उट्ठे—
फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. १३४-१३६

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने होठों को—
रंगे, बार-बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विभूसावडियाए उत्तरोट्ठाइं रोमाइं परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

विभूषा के संकल्प से उत्तरोष्ठादि रोमों के परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

५८३. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं उत्तरोट्ठाइं रोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

[जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं णासा रोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।]
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. १४०

५८३. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने उत्तरोष्ठ रोमों के (होठ के नीचे के) लम्बे रोम—
काटे, सुशोभित करे, कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

(जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने नासिका के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे, कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विभूसावडियाए दंत परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

विभूषा के संकल्प से दाँतों के परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

५८४. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दंते—
आघंसेज्ज वा, पघंसेज्ज वा,
आघंसंतं वा, पघंसंतं वा साइज्जइ।

५८४. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने दाँतों को—
घिसे, बार-बार घिसे,
घिसवावे, बार-बार घिसवावे,
घिसने वाले का, बार-बार घिसने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दंते—
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने दाँतों को—
धोए, बार-बार धोए,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दंते—
फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. १३१-१३३

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने दाँतों को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विभूसावडियाए अच्छीपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५८५. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो अच्छीणि—
आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,
आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो अच्छीणि—
संवाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,
संवाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो अच्छीणि—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,
मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो अच्छीणि—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो अच्छीणि—
सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो अच्छीणि—
फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. १४२-१४७

विभूषा के संकल्प से चक्षु परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

५८५. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपनी आँखों का—
मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपनी आँखों का—
मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपनी आँखों पर—
तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपनी आँखों पर—
लोध,—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपनी आँखों को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोवे, बार-बार धोवे,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपनी आँखों को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विभूसावडियाए अच्छिपत्तपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्तं—

५८६. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं अच्छिपत्ताइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. १४१

विभूषा के संकल्प से अक्षीपत्रों के परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र—

५८६. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने अक्षिपत्रों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विभूसावडियाए भुमगरोमाणं परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५८७. जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं भुमगरोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं पासरोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. १४८-१४९

विभूषा के संकल्प से भौंहो आदि के रोमों के परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

५८७. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने भौंहों के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।
जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने पार्श्व के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विभूसावडियाए केस-परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्तं—

५८८. (जे भिक्खू विभूसावडियाए अप्पणो दीहाइं केसाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।)
—नि. उ. १५, सु. १४९

विभूषा के संकल्प से केश परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र—

५८८. (जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से अपने लम्बे केशों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।)

विभूसावडियाए सीसदुवारियंकरणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

५८९. जे भिक्खू विभूसावडियाए गामाणुगामं दूइज्जमाणे—
अप्पणो सीसदुवारियं करेइ,
करेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. १५२

विभूषा के संकल्प से मस्तक ढकने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५८९. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से ग्रामानुग्राम जाता हुआ—
अपने मस्तक को ढकता है, ढकवाता है,
ढकने वाले का अनुमोदन करता है।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

✻✻

मैथुन के संकल्प से स्व-शरीर परिकर्म के प्रायश्चित्त—८

मेहुणवडियाए कायपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं

५९०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो कायं—

आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,

आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो कायं—

संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,

संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो कायं—

तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,

मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो कायं—

लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,

उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो कायं—

सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,

उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो कायं—

मैथुन सेवन के संकल्प से शरीर का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५९०. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने शरीर का—

मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने शरीर का—

मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने शरीर पर—

तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने शरीर पर—

लोध्र—यावत्—वर्ण से,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने शरीर को—

अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने शरीर को—

फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,

फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ६, सु. ३०-३५

रंगे, बार-बार रंगे,

रंगवावे, बार-बार रंगवावे,

रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए मलणीहरणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५९१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो—

अच्छि-मलं वा, कण्ण-मलं वा, दंत-मलं वा, नह-मलं वा,

नीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा,

नीहरेंतं वा, विसोहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो—

कायाओ—सेयं वा, जल्लं वा, पंकं वा, मलं वा,

नीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा,

नीहरेंतं वा, विसोहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ६, सु. ७४-७५

मैथुन सेवन के संकल्प से मल निकालने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५९१. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने—

आँखों के मैल को, कान के मैल को, दाँत के मैल को, नख के मैल को,

दूर करे, शोधन करे,

दूर करवावे, शोधन करवावे,

दूर करने वाले का, शोधन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने—

स्वेद (पसीना) को, जल्ल (जमा हुआ मैल) को, पंक (लगा हुआ कीचड़) को, मल्ल (लगी हुई रज) को,

दूर करे, शोधन करे,

दूर करवावे, शोधन करवावे,

दूर करने वाले का, शोधन करने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए पायपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५९२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो पाए—

आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,

आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो पाए—

संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,

संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो पाए—

मैथुन सेवन के संकल्प से पैरों का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५९२. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने पैरों का—

मार्जन करे, प्रमार्जन करे,

मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,

मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने पैरों का—

मर्दन करे, प्रमर्दन करे,

मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,

मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने पैरों पर—

तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,
मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो पाए—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो पाए—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो पाए—
फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ६, सु. २४-२९

तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने पैरों पर—
लोध्र—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने पैरों को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोवे, बार-बार धोवे,
धुलावे, बार-बार धुलावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने पैरों को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए णहसिहापरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्तं—

५६३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो दीहाओ नहसीहाओ—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ६, सु. ४९

मैथुन सेवन के संकल्प से नखों का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५६३. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने लम्बे नखाग्रों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए जंघाइ रोमाणं परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५६४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो दीहाइं जंघ-रोमाइं—

मैथुन सेवन के संकल्प से जांघ आदि के रोमों का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५६४. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने जंघा (पिण्डली) के लंबे रोमों को—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो दीहाइं कक्ख-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने बगल (काँख) के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो दीहाइं मंसु-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने श्मश्रु (दाढ़ी मूंछ) के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो दीहाइं वत्थि-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने बस्ति के लम्बे रोमों को —

काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो दीहाइं चक्खु-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।
—नि. उ. ६, सु. ५०-५४

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने चक्षु के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे ।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

मेहुणवडियाए ओट्ठपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

मैथुन-सेवन के संकल्प से होठों का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५९५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो उट्ठे—

आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,

आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ ।

५९५. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने होठों का—

मार्जन करे, प्रमार्जन करे,
मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,
मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो उट्ठे—

संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,

संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने होठों का—

मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो उट्ठे—

तेल्लेण वा-जाव-नवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,

मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो उट्ठे—

लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोल्लेज्ज वा, उवट्टेज्ज वा,

उल्लोलेंतं वा, उवट्टेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो उट्ठे—

सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,

उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो उट्ठे—

फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,

फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ६, सु. ५८-६३

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने होठों पर—

तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने होठों पर—

लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने होठों को—

अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोवे, बार-बार धोवे,
धुलावे, बार-बार धुलावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके, अपने होठों को—

रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए उत्तरोट्ठाइरोमाणं परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्तं—

५६६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो दीहाइं उत्तरोट्ठ-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

(जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो दीहाइं णासा-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।)

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ६, सु. ६४

मैथुन सेवन के संकल्प से उत्तरोष्ठ रोमों के परिकर्म करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५६६. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने उत्तरोष्ठ के लम्बे रोमों (होठों के नीचे के लम्बे रोम) को—

काटे, सुशोभित करे, कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

(जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने नाक के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे, कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।)

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए दंतपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५६७ जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो दंते—

आघंसेज्ज वा, पघंसेज्ज वा,

आघंसंतं वा, पघंसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो दंते—

उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,

उच्छोलंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो दंते—

फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,

फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ६, सु. ५५-५७

मैथुन सेवन के संकल्प से दाँतों के परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

५६७. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने दाँतों को—

घिसे, बार-बार घिसे,

घिसवावे, बार-बार घिसवावे,

घिसने वाले का, बार-बार घिसने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने दाँतों को—

धोये, बार-बार धोये,

धुलवावे, बार-बार धुलवावे,

धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने दाँतों को—

रंगे, बार-बार रंगे,

रंगवावे, बार-बार रंगवावे,

रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए चक्खुपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

५६८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो अच्छीणि—

आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,

आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो अच्छीणि—

संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,

संबाहेंतं वा पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो अच्छीणि—

तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,

मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,

मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो अच्छीणि—

मैथुन सेवन के संकल्प से आँखों के परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र —

५६८. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपनी आँखों का—

मार्जन करे, प्रमार्जन करे,

मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,

मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपनी आँखों का—

मर्दन करे, प्रमर्दन करे,

मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,

मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपनी आँखों पर—

तेल—यावत्—मक्खन,

मले, बार-बार मले,

मलवावे, बार-बार मलवावे,

मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपनी आँखों पर—

लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,
उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो अच्छीणि—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो अच्छीणि—
फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ६, सु. ६६-७१

लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपनी आँखों को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोवे, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपनी आँखों को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए अच्छिपत्त परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्तं—

मैथुन सेवन के संकल्प से अक्षीपत्र परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र—

५९९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो दीहाइं अच्छि-पत्ताइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा संठवेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ६, सु. ६५

५९९. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने लम्बे अक्षिपत्रों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।
उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए भुमगाइरोमपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

मैथुन सेवन के संकल्प से भौंह आदि के रोमों का परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

६००. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो दीहाइं भुमग-रोमाइं—
कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो दीहाइं पास रोमाइं—

६००. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने भौंह के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने पार्श्व के लम्बे रोमों को—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ६, सु. ७२-७३

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए केस-परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्तं—

मैथुन सेवन के संकल्प से केश परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र—

६०१. (जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अप्पणो दीहाइं केसाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।)

—नि. उ. ६, सु. ७३

६०१. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके अपने लम्बे केशों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए सीसदुवारिय करणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

मैथुन सेवन के संकल्प से मस्तक ढकने का प्रायश्चित्त सूत्र—

६०२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए गामाणुगामं दूइज्जमाणे—सीसदुवारियं

करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ६, सु. ७६

६०२. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके ग्रामानुग्राम जाते हुए मस्तक को—

ढके, ढकवावे, ढकने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मैथुन के संकल्प से परस्पर परिकर्म के प्रायश्चित्त—९

मेहुणवडियाए अण्णमण्णकायपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर शरीर के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र—

६०३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स कायं—

आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,

आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स कायं—

६०३. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के शरीर का—

मार्जन करे, प्रमार्जन करे,

मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,

मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के शरीर का—

संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,

संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स कायं—

तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,

मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स कायं—

लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,

उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स कायं—

सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,

उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स कायं—

फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,

फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ७, सु. २०-२२

मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के शरीर पर—
तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के शरीर पर—
लोध—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के शरीर को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धुलावे, बार-बार धुलावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के शरीर को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स मलणिहरण पायच्छित्त सुत्ताइं—

६०४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स—

अच्छि-मलं वा, कण्ण-मलं वा, दंत-मलं वा, नह-मलं वा,

नीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा,

नीहरेंतं वा, विसोहेंतं वा साइज्जइ।

मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर मल निकालने के प्रायश्चित्त सूत्र—

६०४. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे की—

आंख के मैल को, कान के मैल को, दाँत के मैल को, नख के मैल को,

दूर करे, शोधन करे,
दूर करवावे, शोधन करवावे,
दूर करने वाले का, शोधन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स—

कायाओ सेयं वा, जल्लं वा, पंकं वा, मलं वा,

नीहरेज्ज वा, विसोहेज्ज वा,

नीहरेंतं वा, विसोहेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।

—नि. उ. ७, सु. ६४-६५

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के—

शरीर के स्वेद (पसीना) को, जल्ल (जमा हुआ मैल) को, पंक (लगा हुआ कीचड़) को, मल (लगी हुई रज) को,

दूर करे, शोधन करे,

दूर करवावे, शोधन करवावे,

दूर करने वाले का, शोधन करने वाले का अनुमोदन करे ।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

मेहुणवडियाए अण्णमण्ण पायपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर पैरों के परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र—

६०५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स पाए—

आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,

आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ ।

६०५. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के पैरों का—

मार्जन करे, प्रमार्जन करे,

मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,

मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स पाए—

संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,

संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के पैरों का—

मर्दन करे, प्रमर्दन करे,

मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,

मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स पाए—

तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,

मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,

मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के पैरों पर—

तेल, —यावत्—मक्खन,

मले, बार-बार मले,

मलवावे, बार-बार मलवावे,

मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स पाए—

लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,

उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,

उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के पैरों पर—

लोध—यावत्—वर्ण का,

उबटन करे, बार-बार उबटन करे,

उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,

उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स पाए—

सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के पैरों को—

अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,

उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,

उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स पाए—

फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,

फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ७, सु. १४-१६

धोये, बार-बार धोये,

धुलवावे, बार-बार धुलवावे,

धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियां जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के पैरों को—

रंगे, बार-बार रंगे,

रंगवावे, बार-बार रंगवावे,

रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए अण्णमण्ण-णहसिहा परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्तं—

६०६. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स दीहाओ नहसीहाओ—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ७, सु. ३६

मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर नखाग्रों के परिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र—

६०६. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियां जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के नखाग्रों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए अण्णमण्ण जंघाइरोमाणं परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

६०७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं जंघ-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं कक्ख-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं मंसु-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर जंघादि परिकर्मों के प्रायश्चित्त सूत्र—

६०७. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियां जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के—जंघा (पिंडली) के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियां जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के बगल (कांख) के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियां जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के श्मश्रु (दाढ़ी मूंछ) के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं वत्थि-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के बस्ति के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं मंसु-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ७, सु. ४०-४४

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के चक्षु के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए अण्णमण्ण-ओट्ठ परिकम्मस्स पायच्छित्त-सुत्ताइं—

मैथुन सेवन के संकल्प से ओष्ठ परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

६०८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स उट्ठे—

आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,

आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

६०८. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के होठों का—

मार्जन करे, प्रमार्जन करे,

मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,

मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स उट्ठे—

संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,

संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के होठों को—

मर्दन करे, प्रमर्दन करे,

मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,

मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स उट्ठे—

तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,

मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,

मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के होठों पर—

तेल—यावत्—मक्खन,

मले, बार-बार मले,

मलवावे, बार-बार मलवावे,

मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स उट्ठे—

लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,

उल्लोलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा,

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के होठों पर—

लोध—यावत्—वर्ण का,

उबटन करे, बार-बार उबटन करे,

उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,

उल्लोलेंतं वा, उव्वट्टेंतं वा साइज्जइ।

उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स उट्ठे—

सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के होठों को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोये, बार-बार धोये,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स उट्ठे—

फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,
फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के होठों को—
रंगे, बार-बार रंगे,
रंगवावे, बार-बार रंगवावे,
रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ७, सु. ४८-५३

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए अण्णमण्ण-उत्तरोट्ठाइ रोम-परिकम्मस्स पायच्छित्त-सुत्ताइं—

मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर उत्तरोष्ठ परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

६०९. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं उत्तरोट्ठ रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

६०९. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के लम्बे उत्तरोष्ठ रोमों को (होठ के नीचे के रोम)
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

(जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं णासा-रोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,
कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।)

[जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के नाक के लम्बे रोमों को—
काटे, सुशोभित करे,
कटवावे, सुशोभित करवावे,
काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।]

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ७, सु. ५४

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए अण्णमण्ण-दंतपरिकम्मस्स पायच्छित्त-सुत्ताइं—

मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर दन्तपरिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

६१०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स दंते—

आघंसेज्ज वा, पघंसेज्ज वा,
आघंसंतं वा, पघंसंतं वा साइज्जइ।

६१०. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के दाँतों को—
घिसे, बार-बार घिसे,
घिसवावे, बार-बार घिसवावे,
घिसने वाले का, बार-बार घिसने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स दंते—

उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,

उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के दाँतों को—

धोये, बार-बार धोये,

धुलवावे, बार-बार धुलवावे,

धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स दंते—

फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,

फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ७, सु. ४५-४७

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के दाँतों को—

रंगे, बार-बार रंगे,

रंगवावे, बार-बार रंगवावे,

रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए अण्णमण्ण-अच्छी परिकम्मस्स पायच्छित्त-सुत्ताइं—

मैथुन सेवन के संकल्प से परस्पर अक्षिपरिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

६११. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स अच्छीणि—

आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा,

आमज्जंतं वा, पमज्जंतं वा साइज्जइ।

६११. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे की आँखों का—

मार्जन करे, प्रमार्जन करे,

मार्जन करवावे, प्रमार्जन करवावे,

मार्जन करने वाले का, प्रमार्जन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स अच्छीणि—

संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,

संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे की आँखों का—

मर्दन करे, प्रमर्दन करे,

मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,

मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स अच्छीणि—

तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,

मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा,

मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे की आँखों पर—

तेल—यावत्—मक्खन,

मले, बार-बार मले,

मलवावे, बार-बार मलवावे,

मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स अच्छीणि—

लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,

उल्लोलेज्ज वा, उवट्टेज्ज वा,

उल्लोलेंतं वा, उवट्टेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे की आँखों पर—

लोध्र—यावत्—वर्ण का,

उबटन करे, बार-बार उबटन करे,

उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,

उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स अच्छीणि—

सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,

उच्छोलेज्ज वा पधोएज्ज वा,

उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स अच्छीणि—

फूमेज्ज वा, रएज्ज वा,

फूमेंतं वा, रएंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ७, सु. ५६-६१

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे की आँखों को—

अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,

धोये, बार-बार धोये,

धुलवावे, बार-बार धुलवावे,

धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे की आँखों को—

रंगे, बार-बार रंगे,

रंगवावे, बार-बार रंगवावे,

रंगने वाले का, बार-बार रंगने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए अण्णमण्ण-अच्छिपत्तपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्तं—

मैथुन-सेवन के संकल्प से परस्पर अक्षिपत्रपरिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

६१२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं अच्छिपत्ताइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ७, सु. ५५

६१२. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के लम्बे अक्षिपत्रों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए अण्णमण्ण-भुमगाइ-रोमाणं परिकम्मस्स पायच्छित्त-सुत्ताइं—

मैथुन-सेवन के संकल्प से परस्पर भौंह आदि रोमों के परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

६१३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं भुमगरोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं पासरोमाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा, संठवेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ७, सु. ६२-६३

६१३. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के भौंह के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के पार्श्व के लम्बे रोमों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए अण्णमण्ण केसपरिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्तं—

६१४. (जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स दीहाइं केसाइं—

कप्पेज्ज वा, संठवेज्ज वा,

कप्पेंतं वा संठवेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।

—नि. उ. ७, सु. ६३

मैथुन-सेवन के संकल्प से परस्पर केशपरिकर्म का प्रायश्चित्त सूत्र—

६१४. (जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके एक दूसरे के लम्बे केशों को—

काटे, सुशोभित करे,

कटवावे, सुशोभित करवावे,

काटने वाले का, सुशोभित करने वाले का अनुमोदन करे ।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।)

मेहुणवडियाए अण्णमण्ण-सीसदुवारियं करणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

६१५. जे भिक्खु माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णमण्णस्स गामाणुगामं दूइज्जमाणे—

सीस-दुवारियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।

—नि. उ. ७, सु. ६६

मैथुन-सेवन के संकल्प से परस्पर मस्तक ढकने का प्रायश्चित्त सूत्र—

६१५. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके ग्रामानुग्राम जाते हुए एक दूसरे के मस्तक को—

ढकता है, ढकवाता है, ढकने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

३. मैथुन के संकल्प से निषिद्ध कृत्यों के प्रायश्चित्त-(१०)

मेहुणसेवण संकप्पस्स पायच्छित्त-सुत्ताइं—

६१६. निग्गंथी च णं गिलायमाणिं पिया वा, भाया वा, पुत्तो वा, पलिस्सएज्जा —

तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा मेहुणपडिसेवणपत्ता,

आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।

निग्गंथं च णं गिलायमाणं माया वा, भगिणी वा, धूया वा, पलिस्सएज्जा—

तं च निग्गंथे साइज्जेज्जा मेहुणपडिसेवणपत्ते,

आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।

—कप्प. उ. ४, सु. १४-१५

मैथुन सेवन संकल्प के प्रायश्चित्त सूत्र—

६१६. ग्लान निर्ग्रन्थी के पिता, भ्राता या पुत्र गिरती हुई निर्ग्रन्थी को—हाथ का सहारा दें, गिरी हुई को उठावें,

स्वतः उठने-बैठने में असमर्थ को उठावे, बिठावें –

उस समय वह निर्ग्रन्थी (पूर्वानुभूत मैथुन सेवन की स्मृति से) पुरुष स्पर्श का अनुमोदन करे तो,

उसे अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

ग्लान निर्ग्रन्थ की माता, बहन या बेटी गिरते हुए निर्ग्रन्थ को—हाथ का सहारा दें, गिरे हुए को उठावें,

स्वतः उठने-बैठने में असमर्थ को उठावें, बिठावें,

उस समय वह निर्ग्रन्थ (पूर्वानुभूत मैथुन सेवन की स्मृति से) स्त्री स्पर्श का अनुमोदन करे तो—

उसे अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

विकुव्वियरूवेण मेहुणसंकप्पपायच्छित्त सुत्ताइं—

६१७. देवे य इत्थिरूवं विउव्वित्ता निग्गंथं पडिग्गाहिज्जा—

तं च निग्गंथे साइज्जेज्जा मेहुणपडिसेवणपत्ते,

आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

देवे य पुरिसरूवं विउव्वित्ता निग्गंथिं पडिग्गाहिज्जा—

तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा मेहुणपडिसेवणपत्ता,

आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

देवी अ इत्थिरूवं विउव्वित्ता निग्गंथं पडिग्गाहेज्जा—

तं च निग्गंथे साइज्जेज्जा मेहुणपडिसेवणपत्ते,

आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

देवी अ पुरिसरूवं विउव्वित्ता निग्गंथिं पडिग्गाहेज्जा—

तं च निग्गंथी साइज्जेज्जा मेहुणपडिसेवणपत्ता,

आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—कप्प. उ. ५, सु. १-४

विकुर्वित रूप से मैथुन संकल्प के प्रायश्चित सूत्र—

६१७. यदि कोई देव (विकुर्वणा शक्ति से) स्त्री का रूप बनाकर निर्ग्रन्थ का आलिंगन करे और वह उसके स्पर्श का अनुमोदन करे तो—

(मैथुन सेवन नहीं करने पर भी) मैथुन सेवन के दोष को प्राप्त होता है।

अतः वह (निर्ग्रन्थ) अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहार-स्थान (प्रायश्चित्त) का पात्र होता है।

यदि कोई देव (विकुर्वणा शक्ति से) पुरुष का रूप बनाकर निर्ग्रन्थी का आलिंगन करे और वह उसके स्पर्श का अनुमोदन करे तो—

(मैथुन सेवन नहीं करने पर भी) मैथुन सेवन के दोष को प्राप्त होती है।

अतः वह (निर्ग्रन्थी) अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) का पात्र होती है।

यदि कोई देवी (विकुर्वणा शक्ति से) स्त्री का रूप बनाकर निर्ग्रन्थ का आलिंगन करे और वह उसके स्पर्श का अनुमोदन करे तो—

(मैथुन सेवन नहीं करने पर भी) मैथुन सेवन के दोष को प्राप्त होता है—

अतः वह निर्ग्रन्थ अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) का पात्र होता है।

यदि कोई देवी पुरुष का रूप बनाकर निर्ग्रन्थी का आलिंगन करे और वह उसके स्पर्श का अनुमोदन करे तो—

[मैथुन सेवन नहीं करने पर भी] मैथुन सेवन के दोष को प्राप्त होती है।

अतः वह [निर्ग्रन्थी] अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान [प्रायश्चित्त] का पात्र होती है।

मेहुणवडियाए तिगिच्छाकरणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

६१८. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

पिट्ठंतं वा, सोयंतं वा, पोसंतं वा,
भल्लायएण उप्पाएइ, उप्पायंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

पिट्ठंतं वा, सोयंतं वा, पोसंतं वा,

मैथुन-सेवन के संकल्प से चिकित्सा करने का सूत्र—

६१८. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी [ऐसी स्त्री से] मैथुन सेवन का संकल्प करके—

उस स्त्री की योनि को, अपान को या अन्य छिद्र को,
भिलावा आदि से उत्तेजित करता है, उत्तेजित करवाता है, उत्तेजित करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके—

उस स्त्री की योनि को, अपान को या अन्य छिद्र को,

भल्लायएण उप्पाएत्ता—
सीओदग वियडेण वा, उसिणोदग वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,

उच्छोलेंतं वा, पधोवंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

पिट्टुतं वा, सोयंतं वा, पोसंतं वा,
भल्लायएण उप्पाएत्ता
सीओदग वियडेण वा, उसिणोदग वियडेण वा,
उच्छोलेत्ता वा, पधोइत्ता वा,
अन्नयरेण आलेवणजाएणं आलिंपेज्ज वा, विलिंपेज्ज वा,

आलिंपंतं वा, विलिंपंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

पिट्टुतं वा, सोयंतं वा, पोसंतं वा,
भल्लायएण उप्पाएत्ता—
सीओदग वियडेण वा, उसिणोदग वियडेण वा,
उच्छोलेत्ता वा, पधोएत्ता वा—
अन्नयरेणं आलेवणजाएणं
आलिंपित्ता वा, विलिंपित्ता वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगेज्ज वा, मक्खेज्ज वा,

अब्भंगेंतं वा, मक्खेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

पिट्टुतं वा, सोयंतं वा पोसंतं वा,
भल्लायएण उप्पाएत्ता—
सीओदग वियडेण वा, उसिणोदग वियडेण वा,
उच्छोलेत्ता वा, पधोएत्ता वा,
अन्नयरेणं आलेवणजाएणं,
आलिंपित्ता वा विलिंपित्ता वा,
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगेत्ता वा, मक्खेत्ता वा,
अण्णयरेणं धूवणजाएणं धूवेज्ज वा, पधूवेज्ज वा,

भिलावा आदि से उत्तेजित करके,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोवे, बार-बार धोवे,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके,

उस स्त्री की योनि को, अपान को या अन्य छिद्र को,
भिलावा आदि से उत्तेजित करके,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोकर, बार-बार धोकर,
अन्य किसी लेप का लेपन करे, बार-बार लेपन करे,
लेपन करवावे, बार-बार लेपन करवावे,
लेपन करने वाले का, बार-बार लेपन करवाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके—

उस स्त्री की योनि को, अपान को या अन्य छिद्र को,
भिलावा आदि से उत्तेजित करके,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोकर, बार-बार धोकर,
अन्य किसी लेप का,
लेप करे, बार-बार लेप करे,
तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके—

उस स्त्री की योनि को, अपान को या छिद्र को,
भिलावा आदि से उत्तेजित करके,
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोकर, बार-बार धोकर,
अन्य किसी लेप का,
लेप कर, बार-बार लेप कर,
तेल—यावत्—मक्खन,
मलकर, बार-बार मलकर,
किसी एक प्रकार के धूप से, धूप दे, बार-बार धूप दे,
धूप दिलवावे, बार-बार धूप दिलवावे,

धूवेंतं वा, पधूवेंतं वा साइज्जइ।

धूप देने वाले का, बार-बार धूप देने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ६, सु. १४-१८

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुण पत्थणाय पायच्छित्त सुत्तं—

मैथुन-सेवन के लिए प्रार्थना करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

६१९. जे भिक्खू माउग्गामं मेहुणवडियाए विण्णवेइ, विण्णवेंतं वा साइज्जइ।

६१९. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन के लिए प्रार्थना करे, करवावे, करने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ६, सु. १

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए वत्थ विरहियकरणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

मैथुन-सेवन के लिए वस्त्र अपावृत करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

६२०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए सयं अवाउडि कुज्जा, करेंतं वा साइज्जइ।

६२०. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन के लिए उसे स्वयं नग्न होने के लिए कहे, कहलवावे, कहने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ६, सु. ११

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए अंगादाण-दरिसणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

मैथुन-सेवन के लिए अंगादान दर्शन का प्रायश्चित्त सूत्र—

६२१. (जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

"इच्छामि मे अज्जो ! अचेलियाए अंगादाणं पासित्तए"
जो तं एवं वयइ वयंतं वा साइज्जइ।)

६२१. [जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके कहे कि—
"हे आर्ये ! मैं तुम्हारे अनावृत अंग को देखना चाहता हूँ।"
इस प्रकार जो कहता है, कहलवाता है, कहने वाले का अनुमोदन करता है।]

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ६, सु. ११

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अंगादाण-परिकम्मस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

अंगादान परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

६२२. जे भिक्खू अंगादाणं—
कट्ठेण वा, कलिंचेण वा,
अंगुलियाए वा, सलागाए वा,
संचालेइ संचालेंतं वा साइज्जइ।

६२२. जो भिक्षु जननेन्द्रिय को—
काष्ठ से, बाँस की खपच्ची से,
अंगुली से या शलाका से,
संचालन करता है, संचालन करवाता है, संचालन करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू अंगादाणं—
संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,
संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु जननेन्द्रिय का—
मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अंगादाणं—
तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा,

जो भिक्षु जननेन्द्रिय पर—
तेल—यावत्—मक्खन,

अब्भंगेज्ज वा, मक्खेज्ज वा,
अब्भंगेंतं वा, मक्खेंतं वा, साइज्जइ।

मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अंगादाणं—
लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा,
उव्वट्टेइ वा, परिवट्टेइ वा,
उव्वट्टेंतं वा, परिवट्टेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु जननेन्द्रिय पर—
लोध,—**यावत्**—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अंगादाणं—
सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,
उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु जननेन्द्रिय को—
अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोवे, बार-बार धोवे,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू अंगादाणं निच्छलेइ, निच्छलेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु जननेन्द्रिय के अग्र भाग की त्वचा को ऊपर की ओर करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू अंगादाणं—
जिग्घइ, जिग्घंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु जननेन्द्रिय को—
सूंघता है, सुंघवाता है, सूंघने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू अंगादाणं—
अण्णयरंसि अचित्तंसि सोयंसि अणुप्पवेसित्ता सुक्कपोग्गले,
निग्घायइ, निग्घायंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु जननेन्द्रिय को—
किसी अचित्त छिद्र में प्रवेश करके वीर्य के पुद्गलों को
निकालता है, निकलवाता है, निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
नि० उ० १, सु० २—९

उसे अनुद्घातिक मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए अंगादाणपरिकम्मस्स पायच्छित्तसुत्ताइं—

मैथुन सेवन के संकल्प से अंगादान परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

६२३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अंगादाणं—
कट्ठेण वा, किलिंचेण वा, अंगुलियाए वा, सलागाए वा,
संचालेइ, संचालेंतं वा साइज्जइ।

६२३. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके जननेन्द्रिय का—
काष्ठ से, बाँस की खपच्ची से, अंगुली से या शलाका से,
संचालन करता है, संचालन करवाता है, संचालन करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अंगादाणं—
संबाहेज्ज वा, पलिमद्देज्ज वा,
संबाहेंतं वा, पलिमद्देंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके जननेन्द्रिय का—
मर्दन करे, प्रमर्दन करे,
मर्दन करवावे, प्रमर्दन करवावे,
मर्दन करने वाले का, प्रमर्दन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अंगादाणं —

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके जननेन्द्रिय पर—

तेल्लेण जाव-णवणीएण वा,
अब्भंगेज्ज वा, मक्खेज्ज वा,

अब्भंगेंतं वा, मक्खेंतं वा साइज्जइ।

तेल—यावत्—मक्खन,
मले, बार-बार मले,
मलवावे, बार-बार मलवावे,
मलने वाले का, बार-बार मलने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अंगादाणं —

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके जननेन्द्रिय पर—

लोद्धेण वा जाव-वण्णेण वा,
उव्वट्टेइ वा, परिवट्टेइ वा,

उव्वट्टेंतं वा, परिवट्टेंतं वा साइज्जइ।

लोध्र—यावत्—वर्ण का,
उबटन करे, बार-बार उबटन करे,
उबटन करवावे, बार-बार उबटन करवावे,
उबटन करने वाले का, बार-बार उबटन करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अंगादाणं—

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके जननेन्द्रिय को—

सीओदगवियडेण वा, उसिणोदग वियडेण वा,
उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,

उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से,
धोवे, बार-बार धोवे,
धुलवावे, बार-बार धुलवावे,
धोने वाले का, बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अंगादाणं—

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके जननेन्द्रिय की—

णिच्छल्लेइ, णिच्छल्लेंतं वा साइज्जइ।

त्वचा को ऊपर उठाता है, ऊपर उठवाता है, ऊपर उठाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अंगादाणं—

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके जननेन्द्रिय को—

जिग्घइ, जिग्घंतं वा साइज्जइ।

सूंघता है, सुंघवाता है, सूंघने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अंगादाणं —

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके जननेन्द्रिय को—

अण्णयरंसि अचित्तंसि सोयंसि अणुपवेसेत्ता सुक्कपोग्गले,
निग्घायइ, निग्घायंतं वा साइज्जइ।

अन्य किसी अचित्त छिद्र में प्रवेश करके वीर्य के पुद्गल को, निकालता है, निकलवाता है, निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ ६, सु. ३-१०

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

हत्थकम्मपायच्छित्तसुत्तं—

हस्तकर्म प्रायश्चित्त सूत्र—

६२४. जे भिक्खू हत्थकम्मं करेइ करेंतं वा साइज्जइ।

६२४. जो भिक्षु हस्तकर्म करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. १, सु. १

उसे अनुद्घातिक मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए हत्थकम्मकरणस्स पायच्छित्तसुत्तं—

६२५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए

हत्थकम्मं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ६, सु. २

मैथुन सेवन के संकल्प से हस्तकर्म करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

६२५. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके—

हस्तकर्म करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सुक्कपोग्गल णिग्घाडण पायच्छित्त सुत्तं—

६२६. जत्थ एए बहवे इत्थीओ य पुरिसा य पण्हायंति, तत्थ से समणे निग्गंथे

अन्नयरंसि अचित्तंसि सोयंसि सुक्कपोग्गले निग्घाएमाणे हत्थकम्म पडिसेवणपत्ते आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

जत्थ एए बहवे इत्थीओ य पुरिसा य पण्हायंति, तत्थ से समणे णिग्गंथे

अन्नयरंसि अचित्तंसि सोयंसि सुक्कपोग्गले निग्घाएमाणे मेहुण-पडिसेवणपत्ते

आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—वव. उ. ६ सु. १६-१७

शुक्र के पुद्गल निकालने का प्रायश्चित्त सूत्र—

६२६. जहाँ पर अनेक स्त्री-पुरुष मैथुन सेवन (प्रारम्भ) करते हैं उन्हें देखकर वह (एकाकी अगीतार्थ) श्रमण-निर्ग्रन्थ—

हस्तकर्म से किसी अचित्त स्रोत में शुक्र पुद्गल निकाले तो,

उसे अनुद्घातिक मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

जहाँ पर अनेक स्त्री-पुरुष मैथुन सेवन (प्रारम्भ) करते हैं उन्हें देखकर (एकाकी अगीतार्थ) श्रमण-निर्ग्रन्थ

मैथुन सेवन करके किसी अचित्त स्रोत में शुक्र-पुद्गल निकाले तो,

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

✻

मैथुनेच्छा से उपकरण धारणादि के प्रायश्चित्त—४

मेहुणवडियाए वत्थधरणस्स पायच्छित्त-सुत्ताइं—

६२७. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

कसिणाइं वत्थाइं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

अहयाइं वत्थाइं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

मैथुन-सेवन के संकल्प से वस्त्र धारण करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

६२७. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके उस स्त्री के लिए—

अभिन्न वस्त्र धरकर रखता है, रखवाता है, रखने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके उस स्त्री के लिए—

अक्षत वस्त्र धरकर रखता है, रखवाता है, रखने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

धोवरत्ताइं वत्थाइं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

[जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

मलिणाइं वत्थाइं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।]

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

चित्ताइं वत्थाइं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

विचित्ताइं वत्थाइं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ६, सु. १२-१३

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके उस स्त्री के लिए—

धोकर रंगे हुए वस्त्र धरकर रखता है, रखवाता है, रखने वाले का अनुमोदन करता है।

(जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियां जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके उस स्त्री के लिए—

मलिन वस्त्र धरकर रखता है, रखवाता है, रखने वाले का अनुमोदन करता है।)

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके उस स्त्री के लिए—

किसी एक रंग के वस्त्र को धरकर रखता है, रखवाता है, रखने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके उस स्त्री के लिए—

दुरंगे वस्त्र को धरकर रखता है, रखवाता है, रखने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विभूसावडियाए वत्थाइ उवगरणधरणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

विभूषा हेतु उपकरण धारण प्रायश्चित्त सूत्र—

६२८. जे भिक्खू विभूसावडियाए वत्थं वा-जाव-पायपुंछणं वा-

अण्णयरं वा उवगरणजायं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. १५३

६२८. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से वस्त्र—**यावत्**—रजोहरण या—

ऐसे कोई उपकरण को धारण करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विभूसावडियाए वत्थाइ उवगरण धोवणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

विभूषा हेतु उपकरण प्रक्षालन प्रायश्चित्त सूत्र—

६२९. जे भिक्खू विभूसावडियाए वत्थं वा-जाव-पायपुंछणं वा-

अण्णयरं वा उवगरणजायं धोवेइ, धोवंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १५, सु. १५४

६२९. जो भिक्षु विभूषा के संकल्प से वस्त्र—**यावत्**—रजोहरण या—

अन्य ऐसे कोई उपकरण को धोता है, धुलवाता है, धोने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए आभूसणं करमाणस्स पायच्छित्त-सुत्ताइं—

मैथुन सेवन के संकल्प से आभूषण निर्माण करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

६३०. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

१. हाराणि वा, २. अद्धहाराणि वा,

६३०. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके—

(१) हार, (२) अर्द्धहार

३. एगावली वा, ९. केऊराणि वा,
४. मुत्तावली वा, १०. कुण्डलाणि वा,
५. कणगावली वा, ११. पट्टाणि वा,
६. रयणावली वा, १२. मउडाणि वा,
७. कडगाणि वा, १३. पलंब-सुत्ताणि वा,
८. तुडियाणि वा, १४. सुवण्ण-सुत्ताणि वा,

करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

हाराणि वा-जाव-सुवण्ण-सुत्ताणि वा धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

हाराणि वा-जाव-सुवण्ण-सुत्ताणि वा परिभुंजइ, परिभुंजंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ७, सु. ७-९

(३) एकावली, (९) केयूर-कंठा,
(४) मुक्तावली, (१०) कुण्डल,
(५) कनकावली, (११) पट्ट,
(६) रत्नावली, (१२) मुकुट,
(७) कटि सूत्र, (१३) प्रलम्ब सूत्र,
(८) भुजबन्ध, (१४) सुवर्ण सूत्र

करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके—

हार—यावत्—सुवर्ण सूत्र धरकर रखता है, रखवाता है, रखने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके—

हार—यावत्—सुवर्ण सूत्र का परिभोग करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए मालाकरणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

६३१. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

१. तण-मालियं वा, ८. संख-मालियं वा,
२. मुंज-मालियं वा, ९. हड्ड-मालियं वा,
३. भिंड-मालियं वा, १०. कट्ठ-मालियं वा,
४. मयण-मालियं वा, ११. पत्त-मालियं वा,
५. पिच्छ-मालियं वा, १२. पुप्फ-मालियं वा,
६. दंत-मालियं वा, १३. फल-मालियं वा,
७. सिंग-मालियं वा, १४. बीज-मालियं वा,
१५. हरिय-मालियं वा,

करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

तणमालियं वा-जाव-हरियमालियं वा, धरेइ, धरेंतं वा, साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए—

तणमालियं वा-जाव-हरिय-मालियं वा पिणद्धइ, पिणद्धंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ७, सु. १-३

मैथुन सेवन के संकल्प से माला निर्माण करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

६३१. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके—

(१) तृण की माला, (८) शंख की माला,
(२) मुंज की माला, (९) हड्डी की माला,
(३) बेंत की माला, (१०) काष्ठ की माला,
(४) मदन की माला, (११) पत्र की माला,
(५) पीछ की माला, (१२) पुष्प की माला,
(६) दंत की माला, (१३) फल की माला,
(७) सींग की माला, (१४) बीज की माला,
(१५) हरित (वनस्पति) की माला

करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके—

तृण की माला—यावत्—हरित की माला धरकर रखता है, रखवाता है, रखने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके—

तृण की माला—यावत्—हरित की माला पहनता है, पहनवाता है, पहनने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए धाउकम्मकरणस्स पायच्छित्त-सुत्ताइं—

६३२. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

१. अय-लोहाणि वा, ४. सीसग-लोहाणि वा,
२. तंब-लोहाणि वा, ५. रूप्प-लोहाणि वा,
३. तउय-लोहाणि वा, ६. सुवण्ण-लोहाणि वा,

करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

अय-लोहाणि वा-जाव-सुवण्ण-लोहाणि वा,
धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

अयलोहाणि वा-जाव-सुवण्ण-लोहाणि वा,
परिभुंजइ, परिभुंजंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ७, सु. ४-६

मैथुन सेवन के संकल्प से धातु निर्माण करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

६३२. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके—

(१) अय-लोहा, (४) सीसक-लोहा
(२) ताम्र-लोहा, (५) रूप्य-लोहा,
(३) त्रपु-लोहा, (६) सुवर्ण-लोहा,

करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके —

अय-लोहा—यावत्—सुवर्ण-लोहा को,

धरकर रखता है, रखवाता है, रखने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके—

अय-लोहा—यावत्—सुवर्ण-लोहा का,

परिभोग करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

✻✻

मैथुनेच्छा सम्बन्धी प्रकीर्णक प्रायश्चित्त—५

मेहुणवडियाए कलहकरणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

६३३. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

कलहं कुज्जा, कलहं बूया,
कलहवडियाए बहियाए,
गच्छइ, गच्छंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ६, सु. १२

मैथुन सेवन के लिए कलह करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

६३३. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन के संकल्प से—

कलह करे, कलह करने का संकल्प करके बोले, या कलह करने का संकल्प करके बाहर,

जाता है, जाने के लिए कहे, और जाने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए पत्तपदाणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

६३४. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

मैथुन सेवन के संकल्प से पत्र लिखने का प्रायश्चित्त सूत्र—

६३४. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके—

लेहं लिहइ, लेहं लिहावइ,
लेहवडियाए बहियाए,
गच्छइ, गच्छंतं वा साइज्जइ।

पत्र लिखता है, पत्र लिखवाता है,
पत्र लिखने के संकल्प से बाहर,
जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ६, सु. १३

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मेहुणवडियाए पणीय आहारं आहारमाणस्स पायच्छित्त सुत्त—

मैथुन सेवन के संकल्प से प्रणीत आहार करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

६३५. जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए—

१. खीरं वा, २. दहिं वा, ३. णवणीयं वा, ४. सप्पिं वा,
५. गुलं वा, ६. खंडं वा, ७. सक्करं वा, ८. मच्छंडियं वा,
अण्णयरं वा पणीयं आहारं आहारेइ आहारेंतं वा साइज्जइ।

६३५. जो भिक्षु माता के समान हैं इन्द्रियाँ जिसकी (ऐसी स्त्री से) मैथुन सेवन का संकल्प करके—

(१) दूध, (२) दही, (३) मक्खन, (४) घी,
(५) गुड़, (६) खांड, (७) शक्कर, (८) मिश्री
और भी ऐसे पौष्टिक आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ६, सु. ७७

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

वसीकरण सुत्तकरणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

वशीकरण करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

६३६. जे भिक्खू सण-कप्पासओ वा, उण्ण कप्पासओ वा, पोण्ड कप्पासओ वा, अमिल-कप्पासओ वा,

वसीकरण सुत्ताइं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

६३६. जो भिक्षु सण कपास से, ऊन कपास से, पोण्ड्र कपास से और अमील कपास से—

वशीकरण सूत्र करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. ३, सु. ७०

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अकिच्चठाणसेवण विवादे विणिण्णओ—

अकृत्य सेवन के सम्बन्ध में हुए विवाद का निर्णय—

६३७. दो साहम्मिया एगयओ विहरंति,
एगे तत्थ अन्नयरं अकिच्चठाणं पडिसेवित्ता आलोएज्जा,

"अहं णं भंते! अमुगेणं साहुणा सद्धिं इमम्मि कारणम्मि मेहुणपडिसेवी।"
पच्चयहेउं च सयं पडिसेवियं भणाति।

प०—से तत्थ पुच्छियव्वे —"किं पडिसेवी, अपडिसेवी?"
उ०—से य वएज्जा—"पडिसेवी", परिहारपत्ते।

से य वएज्जा—"नो पडिसेवी" नो परिहारपत्ते जं से पमाणं वयइ से पमाणओ घेयव्वे।

६३७. दो सार्धर्मिक एक साथ विचरते हों—
उनमें से यदि एक साधु किसी एक अकृत्य स्थान की प्रतिसेवना करके आलोचना करे कि—

"हे भगवन्! मैं अमुक साधु के साथ अमुक कारण के होने पर मैथुन-प्रतिसेवी हूँ" (प्रतीति कराने के लिए वह अपनी प्रतिसेवना स्वीकार करता है अतः गणावच्छेदक को) दूसरे साधु से पूछना चाहिए कि—

प्र०—क्या तुम प्रतिसेवी हो, या अप्रतिसेवी?
उ०—(क) यदि वह कहे कि—"मैं प्रतिसेवी हूँ—तब तो परिहार तप का पात्र होता है।"

(ख) यदि वह कहे कि—"मैं प्रतिसेवी नहीं हूँ।" तो वह परिहार तप का पात्र नहीं है। क्योंकि वह प्रमाणभूत सत्य कहता है—इसलिए उसका सत्य कथन स्वीकार करना चाहिए।

प०—से किमाहु भंते !

उ०—सच्चपइण्णा ववहारा ।

जे भिक्खू अ गणाओ अवक्कम्म ओहाणुप्पेही वज्जेज्जा, से य अणोहाइए इच्छेज्जा दोच्चं पि तमेव गणं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए,

तत्थ णं थेराणं इमेयारूवे विवाए समुप्पज्जित्था—

"इमं भो ! जाणह किं पडिसेवी, अपडिसेवी ?"

से य पुच्छियव्वे—

प० —"किं पडिसेवी, अपडिसेवी ?"

उ०—से य वएज्जा "पडिसेवी" परिहारपत्ते ।

से य वएज्जा—"नो पडिसेवी" नो परिहारपत्ते ।

जं से पमाणं वयइ से पमाणओ घेयव्वे ।

प०—से किमाहु भंते !

उ०—सच्चपइण्णा ववहारा ।

—वव. उ. २, सु. २४-२५

प्र०—हे भगवन् ! आप ऐसा क्यों कहते हैं ?

उ०—तीर्थंकरों ने सत्य प्रतिज्ञा पर (सत्य कथन पर) व्यवहार को निर्भर बताया है ।

असंयम सेवन की इच्छा से यदि कोई साधु गण से निकलकर जावे और बाद में असंयम का सेवन किए बिना ही आकर पुनः उसी गण में सम्मिलित होना चाहे—

(ऐसी स्थिति में) संघ स्थविरों में यदि विवाद उत्पन्न हो जाए कि –

"भिक्षुओ ! क्या तुम यह जानते हो कि भिक्षु प्रतिसेवी है या अप्रतिसेवी ?"

तब उस साधु से पूछना चाहिए कि—

प्र०—क्या तुम प्रतिसेवी हो या अप्रतिसेवी हो ?

उ०—(क) (यदि वह कहे कि) "मैं प्रतिसेवी हूँ ।" तो वह परिहारतप (प्रायश्चित्त) का पात्र होता है ।

(ख) (यदि वह कहे कि) "मैं प्रतिसेवी नहीं हूँ ।" तो वह परिहारतप (प्रायश्चित्त) का पात्र नहीं होता है । क्योंकि वह प्रमाणभूत (सत्य) वचन कहता है अतः उसका कथन प्रमाण रूप से ग्रहण करना चाहिए ।

प्र०—हे भगवन् ! आप ऐसा क्यों कहते हैं ?

उ०—तीर्थंकरों ने सत्य प्रतिज्ञा पर व्यवहार को निर्भर बताया है ।

५. परिशिष्ट

चउत्थस्स बंभचेरमहव्वयस्स पंच भावणाओ—

६३८. १. इत्थी-पसु-पंडगसंसत्तसयणासणवज्जणया,

२. इत्थीकहविवज्जणया,

३. इत्थीणं इंदियाणमालोयणवज्जणया,

४. पुव्वरय-पुव्वकीलिआणं अणणुसरणया,

५. पणीताहार विवज्जणया । —सम. ५, सु. १

तस्स इमा पंच भावणाओ चउत्थस्स होंति अबंभचेरवेरमण-परिरक्खणट्ठयाए ।

चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत की पाँच भावनाएँ—

(१) स्त्री-पशु-नपुंसक सहित शयन-आसन त्याग,

(२) स्त्री-कथा का त्याग,

(३) स्त्री की इन्द्रियों (मनोहरांग) को देखने का त्याग,

(४) पूर्वानुभूत रति क्रीडा के स्मरण का त्याग,

(५) पौष्टिक स्निग्ध आहार करने का त्याग,

चतुर्थ अब्रह्मचर्यविरमणव्रत की रक्षा के लिए ये पाँच भावनाएँ हैं ।

पढमा भावणा-विवित्त सयणासणया—

६३९. पढमं १. सयणासण-घर-दुवार-अंगण-आगास-गवक्ख-साल-अभिलोयण-पच्छवत्थुकपसाहणक-ण्हाणिकावकासा अवकासा ।

प्रथम भावना स्त्री युक्त स्थान का वर्जन —

६३९. (१) शय्या, आसन, गृहद्वार (घर का दरवाजा), आँगन, आकाश (छत) ऊपर से खुला स्थान, झरोखा, सामान रखने का कमरा आदि स्थान, बैठकर देखने का ऊँचा स्थान, पिछवाड़ा-पीछे का घर, नहाने और शृंगार करने का स्थान, इत्यादि सब स्थान, स्त्री-संसक्त—नारी के संसर्ग वाले होने से वर्जनीय हैं ।

२. जे य वेसियाणं अच्छंति य।

३. जत्थ इत्थियाओ अभिक्खणं मोह-दोस-रति-रागवड्ढणीओ कहिंति य कहाओ बहुविहाओ ते वि हु वज्जणिज्जा।

४. इत्थिसंसत्त-संकिलिट्ठा अन्ने वि य एवमाई अवकासा ते वि हु वज्जणिज्जा।

५. जत्थ मणोविब्भमो वा, भंगो वा, (भंसणो वा) अट्टं, रुद्दं च हुज्ज झाणं तं तं वज्जेज्जऽवज्जभीरू अणायतणं अंतपंतवासी।

एवमसंसत्त वास-वसही समिइ-जोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा-आरतमण-विरयगामधम्मे जितेंदिए बंभचेरगुत्ते।

(२) जहाँ वेश्याओं के अड्डे हैं।

(३) जहाँ स्त्रियाँ बार-बार आकर बैठकर मोह द्वेष काम-राग और स्नेहराग की वृद्धि करने वाली नाना प्रकार की कथाएँ कहती हैं—उनका भी ब्रह्मचारी को वर्जन करना चाहिए।

(४) स्त्री संसर्ग के कारण संक्लेशयुक्त अन्य जो भी स्थान हो, उससे भी अलग रहना चाहिए।

(५) जहाँ रहने से मन में व्यग्रता उत्पन्न हो, ब्रह्मचर्य भग्न हो, जहाँ रहने से आर्तध्यान—रौद्रध्यान होता हो, उन-उन अनायतनों - अयोग्य स्थानों का पापभीरु-ब्रह्मचारी परित्याग करे। साधु विषय-विकार रहित एकान्त स्थानवासी हो।

इस प्रकार स्त्रियों के संसर्ग से रहित स्थान में समिति के योग से भावित-अन्तःकरण वाला, ब्रह्मचर्य में अनुरक्त चित्तवाला तथा इन्द्रिय विकार से विरत रहने वाला, जितेन्द्रिय साधु ब्रह्मचर्य से गुप्त (सुरक्षित) रहता है।

बिइया भावणा : इत्थीकहा विवज्जणया—

६४०. बिइयं—१. नारी जणस्स मज्झे न कहेयव्वा कहा विचित्ता बिब्बोय-विलास-संपउत्ता हास-सिंगार-लोइयकहव्व मोह-जणणी।

२. न आवाह-विवाहवरकहा वि व इत्थीणं वा सुभग-दुभग कहा चउसट्ठिं च महिलागुणा।

३. न वण्ण-देस-जाति-कुल-रूव-नाम-नेवत्थ-परिजण-कहा वि इत्थियाणं।

४. अन्नाणि य एवमादियाओ कहाओ सिंगार-कलुणरसाओ तव-संजम-बंभचेरघाओवघाइयाओ अणुचरमाणेणं बंभचेरं न कहेयव्वा, न सुणेयव्वा, न चिंतेयव्वा।

एवं इत्थी कहाविरति-समितिजोगेणं भाविओ भवइ अंतरप्पा आरत-मण-विरय-गामधम्मे जिइंदिए बंभचेरगुत्ते।

द्वितीय भावना : स्त्रीकथा-विवर्जन—

६४० केवल स्त्रियों की सभा में वाणी विलास रूप विचित्र प्रकार की कथा नहीं करनी चाहिए, जो कथा स्त्रियों की काम-चेष्टाओं से और विलास-स्मित आदि के वर्णन से युक्त हो, जो हास्य और श्रृंगार रस की प्रधानता वाली हो, जो मोह उत्पन्न करने वाली हो,

(२) इसी प्रकार गौने या विवाह सम्बन्धी बातें भी नहीं करनी चाहिए। स्त्रियों के सौभाग्य-दुर्भाग्य की चर्चा, वार्ता एवं महिलाओं के चौंसठ गुणों (कलाओं) सम्बन्धी कथाएँ भी नहीं कहनी चाहिए।

(३) स्त्रियों के रंग-रूप, देश, जाति, कुल, नाम (भेद-प्रभेद आदि) पोशाक तथा परिवार सम्बन्धी कथाएँ नहीं कहनी चाहिए।

(४) तथा इसी प्रकार की जो भी अन्य कथाएँ श्रृंगार रस से करुणा उत्पन्न करने वाली हों और जो तप, संयम तथा ब्रह्मचर्य का घात-उपघात करने वाली हों, ऐसी कथाएँ ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले साधुजनों को नहीं कहनी चाहिए, न सुननी चाहिए और न उनका चिन्तन करना चाहिए।

इसी प्रकार स्त्रीकथा-विरति-समिति के योग से भावित-अन्तःकरण वाला, ब्रह्मचर्य में अनुरक्त चित्तवाला तथा इन्द्रिय विकार से विरत रहने वाला, जितेन्द्रिय साधु ब्रह्मचर्य से गुप्त (सुरक्षित) रहता है।

तईया भावणा : इत्थीणं इंदियाणमालोयण वज्जणया—

६४१. तईयं—नारीणं हसिय-भणियं चेट्ठिय-विप्पेक्खिय-गइ-विलास-कीलियं,

तृतीय भावना : स्त्री रूप दर्शन निषेध—

६४१. नारियों के हास्य को, विकारमय भाषण को, हाथ आदि की चेष्टाओं को, कटाक्षयुक्त निरीक्षण को, गति-चाल को, विलास-क्रीड़ा को,

बिब्बोयिय-नट्ट-गीत-वाइय-सरीर-संठाण-वण्ण-कर-चरण-नयण-लावण्ण-रूव-जोव्वण-पयोहराधर-वत्थालंकार-भूसणाणि य गुज्झोवकासियाइं।

कामोत्पादक संभाषण, नाट्य, नृत्य, गीत, वीणादि वादन, शरीर की आकृति, गौर श्याम आदि वर्ण, हाथों, पैरों एवं नेत्रों का लावण्य, रूप, यौवन, स्तन, अधर-ओष्ठ, वस्त्र, अलंकार और भूषण-ललाट की बिन्दी आदि को तथा उसके गोपनीय अंगों को,

अण्णाणि य एवमाइयाइं तव-संजम-बंभचेर-घातोवघातियाइं अणुचरमाणेणं बंभचेरं न चक्खुसा, न मणसा, न वयसा, पत्थेयव्वाइं पावकम्माइं।

तथा अन्य इसी प्रकार की चेष्टाओं को जिनसे ब्रह्मचर्य, तप, तथा संयम का घात उपघात होता है। उन्हें ब्रह्मचर्य का अनुपालन करने वाला मुनि न नेत्रों से देखें, न मन से सोचे और न वचन से उनके सम्बन्ध में कुछ बोले और न पापमय कार्यों की अभिलाषा करे।

एवं इत्थीरूव-विरति-समिति-जोगेण भावितो भवइ अंतरप्पा आरतमण-विरय-गामधम्मे जिइंदिए बंभचेरगुत्ते।

इसी प्रकार स्त्रीरूपविरति-समिति के योग से भावित अन्तःकरण वाला, ब्रह्मचर्य में अनुरक्त चित्त वाला, इन्द्रिय विकार से विरत, जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य से गुप्त—(सुरक्षित) होता है।

चउत्था भावणा : पुव्वरय-पुव्वकीडा अणुस्सरणया—

६४२. चउत्थं—पुव्वरय-पुव्वकीलिय-पुव्वसंगंथ-गंथ-संथुया

चतुर्थ भावना : पूर्व भुक्त भोगों के स्मरण का निषेध—

६४२. पहले (गृहस्थावस्था में) किया गया रमण—विषयोपभोग, पूर्वकाल में की गई काम क्रीड़ाएँ, पूर्वकाल के सग्रन्थ-श्वसुरकुल (ससुराल) सम्बन्धी जन, ग्रन्थ—साले आदि से सम्बन्धित जन, तथा संस्तुत—पूर्व काल के परिचित जन, इन सबका स्मरण नहीं करना चाहिए।

जे ते आवाह-विवाह-चोल्लकेसु य तिथिसु जन्नेसु उस्सवेसु य सिंगारागार चारुवेसाहिं हाव-भाव-पललिय विक्खेव-विलास सालिणीहिं अणुकूलपेम्मिकाहिं सद्धिं अणुभूया सयण-संपओगा,

इसके अतिरिक्त गौने या विवाह, चूड़ाकर्म, शिशु का मुण्डन तथा पर्वतिथियों में, यज्ञों में, पूजाओं में, उत्सवों में, शृंगार रस की गृहस्वरूप सुन्दर वेशभूषा वाली, हाव—मुख की चेष्टा, भाव—चित्त के अभिप्राय, लालित्य-युक्त कटाक्ष, ढीली चोटी, पत्र-लेखा, आँखों में अंजन आदि शृंगार, हाथों, भौंहों एवं नेत्रों की विशेष प्रकार की चेष्टा इन सब से सुशोभित, अनुकूल प्रेम वाली स्त्रियों के साथ अनुभव किए हुए शयन आदि के विविध प्रकार के कामशास्त्रोक्त प्रयोग,

उउसुहवर-कुसुम-सुरभि चंदण-सुगंधि-वरवासधूव-सुहफरिस-वत्थ-भूसण-गुणोववेया

ऋतु के अनुकूल सुख प्रदान करने वाले उत्तम पुष्पों का सौरभ एवं चन्दन की सुगन्ध, चूर्ण किए हुए अन्य उत्तम वास-द्रव्य, धूप, सुखद स्पर्श वाले वस्त्र, आभूषण युक्त,

रमणिज्जाउज्ज - गेय-पउर - नड-नट्टक-जल्ल-मल्ल- मुट्ठिक-वेलंबग-कहग-पवग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंब-वीणिय-तालायर-पकरणाणि य बहूणि महुर-सर-गीय-सुस्सराइं

रमणीय वाद्यध्वनि, गायन, प्रचुर नट नाचने वाले, रस्सी पर खेल दिखलाने वाले, कुश्तीबाज, मुक्केबाज, विदूषक, कहानी सुनाने वाले, उछलने वाले, रास गाने वाले या रासलीला करने वाले, शुभाशुभ बताने वाले, ऊँचे बांस पर खेल करने वाले या चित्रमय पट्ट लेकर भिक्षा माँगने वाले, तूण नामक वाद्य बजाने वाले, वीणा बजाने वाले, एक प्रकार के ताल बजाने वाले, इन सबकी क्रीड़ाएँ गायकों के नाना प्रकार के मधुर ध्वनि वाले गीत एवं मनोहर स्वर,

अण्णाणि य एवमादियाणि तव-संजम-बंभचेरघातोवघातियाइं अणुचरमाणेणं बंभचेरं न ताइं समणेण लब्भा दट्ठुं, न कहेउं, न सुमरिउं जे।

इस प्रकार के अन्य विषय, जो तप, संयम और ब्रह्मचर्य का घात उपघात करने वाले हैं, उन्हें ब्रह्मचर्यपालक श्रमण को देखना नहीं चाहिए, इन से सम्बद्ध वार्तालाप नहीं करना चाहिए और पूर्व काल में जो देखे-सुने हों उनका स्मरण भी नहीं करना चाहिए।

एवं पुव्वरय-पुव्वकीलिय-विरति-समितिजोगेणं भाविओ भवइ अंतरप्पा आरयमण-विरय-गामधम्मे जिंतिदिए बंभचेरगुत्ते।

इस प्रकार पूर्वरत-पूर्वक्रीडितविरति-समिति के योग से भावित अन्तःकरण वाला, ब्रह्मचर्य में अनुरक्त चित्त वाला, जितेन्द्रिय, साधु ब्रह्मचर्य से गुप्त (सुरक्षित) होता है।

पंचमा भावणा : पणीयाहार विवज्जणया—

पाँचवी भावना : विकारवर्धक आहार निषेध—

६४३. पंचमगं—आहार-पणीय-निद्ध-भोयण-विवज्जिए संजए सुसाहू ववगय-खीर-दहि-सप्पि-नवनीय-तेल्ल-गुल-खंड-मच्छंडिक-महु-मज्ज-मंसखज्जक-विगति-परिचत्तकयाहारे

६४३. स्वादिष्ट, गरिष्ट एवं स्निग्ध (चिकनाई वाले) भोजन का त्यागी संयमशील-सुसाधु दूध, दही, घी, मक्खन, तेल, गुड़, खाण्ड, मिसरी, मधु, मद्य, मांस, खाद्य—पकवान और विगय से रहित आहार करे।

न दप्पणं, न बहुसो, न नितिकं,

वह दर्पकारक इन्द्रियों में उत्तेजना उत्पन्न करने वाला आहार न करे। दिन में बहुत बार न खाए और न प्रतिदिन लगातार खाए।

न सायसूपाहिकं, न खद्धं।

न दाल और व्यंजन की अधिकता वाला और न प्रचुर भोजन करे।

"तहा भोत्तव्वं जह से जायामायाए य भवइ"

"साधु उतना ही हित-मित आहार करे जितना उसकी संयम-यात्रा का निर्वाह करने के लिए आवश्यक हो।"

न य भवइ विब्भमो, न भंसणा य धम्मस्स।

जिससे मन में विभ्रम-चंचलता उत्पन्न न हो और धर्म (ब्रह्मचर्यव्रत) से च्युत न हो।

एवं पणीयाहार विरति-समितिजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा आरय-मण-विरय-गामधम्मे जिइंदिए बंभचेरगुत्ते।

—प. सु. २, अ. ४, सु. ८-१२

इस प्रकार प्रणीत आहार की विरति रूप समिति के योग से भावित अन्तःकरण वाला, ब्रह्मचर्य की आराधना में अनुरक्त चित्तवाला और मैथुन से विरत साधु जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य से सुरक्षित होता है।

उवसंहारो—

उपसंहार—

एवमिणं संवरस्स दारं सम्मं संवरियं होइ सुपणिहियं।
इमेहिं पंचहि वि कारणेहिं मण-वयण-काय-परिरक्खिएहिं।
णिच्चं आमरणंतं च एसो जोगो णेयव्वो धितिमया मतिमया।

इस प्रकार ब्रह्मचर्यव्रत रूप यह संवरद्वार सम्यक् प्रकार से संवृत और सुरक्षित-पालित होता है। मन, वचन और काय, इन तीनों योगों से परिरक्षित इन (पूर्वोक्त) पाँच भावना रूप कारणों से सदैव, आजीवन यह योग धैर्यवान् और मतिमान् मुनि को पालन करना चाहिए।

अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो सुद्धो सव्वजिणमणुण्णाओ।

यह संवरद्वार आस्रव से रहित है और भावछिद्रों से रहित है। इससे कर्मों का आस्रव नहीं होता है। यह संक्लेश से रहित है, शुद्ध है और सभी तीर्थंकरों द्वारा अनुज्ञात है।

एवं चउत्थं संवरदारं फासियं पालियं सोहियं तीरियं किट्टियं आणाए अणुपालियं भवइ।

इस प्रकार यह चौथा संवरद्वार विधिपूर्वक अंगीकृत, पालित, शोधित—अतिचार त्याग से निर्दोष किया गया, पार—किनारे तक पहुँचाया हुआ, कीर्तित—दूसरों को उपदिष्ट किया गया, आराधित और तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा के अनुसार अनुपालित होता है।

एवं नायमुणिणा भगवया पण्णवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धवरसासणमिणं आघवियं सुदेसियं पसत्थं। त्तिबेमि।

—प. सु. २, अ. ४, सु. १२

ऐसा ज्ञात मुनि भगवान् (महावीर) ने कहा है, युक्तिपूर्वक समझाया है। यह प्रसिद्ध-जगद्विख्यात है, प्रमाणों से सिद्ध है। यह भवस्थित सिद्धों—अर्हन्त भगवानों का शासन है। सुर, नर आदि की परिषद में उपदिष्ट किया गया है और मंगलकारी है। ऐसा मैं कहता हूँ।

बंभचेरस्स णव अगुत्तिओ -

६४४. णव बंभचेर अगुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
णो विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता भवति—
१. इत्थीसंसत्ताइं पसुसंसत्ताइं पंडगसंसत्ताइं ।
२. इत्थीणं कहं कहेत्ता भवति ।
३. इत्थिठाणाइं सेवित्ता भवति ।
४. इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता णिज्झाइत्ता भवति ।
५. पणीयरसभोई भवति ।
६. पाणभोयणस्स अइमायमाहारए सया भवति ।
७. पुव्वरयं पुव्वकीलियं सरित्ता भवति ।
८. सद्दाणुवाई रूवाणुवाई सिलोगाणुवाई भवति ।
९. सायासोक्खपडिबद्धे यावि भवति ।[1]
—ठाणं. अ. ९, सु. ६६३

ब्रह्मचर्य की नौ अगुप्तियाँ—

६४४. ब्रह्मचर्य की नौ अगुप्तियाँ या विराधनाएँ कही गई हैं। जैसे—
जो ब्रह्मचारी एकान्त में शयन-आसन का सेवन नहीं करता,
(१) किन्तु स्त्रीसंसक्त, पशुसंसक्त और नपुंसकसंसक्त स्थानों का सेवन करता है।
(२) जो ब्रह्मचारी स्त्रियों की कथा करता है तथा स्त्रियों में कथा करता है।
(३) जो ब्रह्मचारी स्त्रियों के बैठने-उठने के स्थानों का सेवन करता है।
(४) जो ब्रह्मचारी स्त्रियों के मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को देखता है और उनका चिन्तन करता है।
(५) जो ब्रह्मचारी प्रणीत रस वाला भोजन करता है।
(६) जो ब्रह्मचारी सदा अधिक मात्रा में आहार-पान करता है।
(७) जो ब्रह्मचारी पूर्वभुक्त भोगों और क्रीड़ाओं का स्मरण करता है।
(८) जो ब्रह्मचारी मनोज्ञ शब्दों को सुनने का, सुन्दर रूपों को देखने का और कीर्ति-प्रशंसा का अभिलाषी होता है।
९. जो ब्रह्मचारी सातावेदनीय-जनित सुख में प्रतिबद्ध होता है।

बंभचेरस्स णव गुत्तिओ—

६४५. णव बंभचेरगुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
विवित्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता भवति—
१. णो इत्थिसंसत्ताइं णो पसुसंसत्ताइं णो पंडगसंसत्ताइं ।
२. णो इत्थीणं कहं कहेत्ता भवति ।
३. णो इत्थिठाणाइं सेवित्ता भवति ।
४. णो इत्थीणमिंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता णिज्झाइत्ता भवति ।
५. णो पणीतरसभोती भवति ।
६. णो पाणभोयणस्स अतिमातमाहारए सया भवति ।
७. णो पुव्वरतं पुव्वकीलियं सरेत्ता भवति ।
८. णो सद्दाणुवाती णो रूवाणुवाती णो सिलोगाणुवाती भवति ।
९. णो सातसोक्खपडिबद्धे यावि भवति ।
—ठाणं. अ. ९, सु. ६६३

ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियाँ—

६४५. ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियाँ (बाड़ें) कही गई हैं। जैसे—
ब्रह्मचारी एकान्त में शयन और आसन करता है,
(१) किन्तु स्त्रीसंसक्त, पशुसंसक्त और नपुंसक के संसर्ग वाले स्थानों का सेवन नहीं करता है।
(२) ब्रह्मचारी स्त्रियों की कथा नहीं करता है व स्त्रियों में कथा नहीं करता है।
(३) ब्रह्मचारी स्त्रियों के बैठने-उठने के स्थानों का सेवन नहीं करता है।
(४) ब्रह्मचारी स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को नहीं देखता है और चिन्तन भी नहीं करता है।
(५) ब्रह्मचारी प्रणीत-रस-घृत-तेलबहुल भोजन नहीं करता है।
(६) ब्रह्मचारी सदा अधिक मात्रा में आहार-पानी नहीं करता है।
(७) ब्रह्मचारी सदा पूर्वकाल में भोगे हुए भोगों और स्त्री क्रीड़ाओं का स्मरण नहीं करता है।
(८) ब्रह्मचारी मनोज्ञ शब्दों को सुनने का, सुन्दर रूपों को देखने का और कीर्ति-प्रशंसा का अभिलाषी नहीं होता है।
(९) ब्रह्मचारी सातावेदनीय-जनित सुख में प्रतिबद्ध-आसक्त नहीं होता है।

---
१ सम० ९, सु० १ ।

पंचम अपरिग्रह महाव्रत

अपरिग्रह महाव्रत की आराधना—१

अपरिग्गहमहव्वय आराहण-पइण्णा—

६४६. अहावरे पंचमे भंते ! महव्वए परिग्गहाओ वेरमणं।

सव्वं भंते ! परिग्गहं पच्चक्खामि—से गामे वा णगरे वा अरण्णे वा अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा।

(से य परिग्गहे चउव्विहे पण्णत्ते) तं जहा,

१. दव्वओ, २. खेत्तओ, ३. कालओ, ४. भावओ।

१. दव्वओ सव्वदव्वेहिं,

२. खेत्तओ सव्वलोएहिं,

३. कालओ दिया वा राओ वा,

४. भावओ अप्पग्घे वा महग्घे वा।)

नेव सयं परिग्गहं परिगेण्हेज्जा, नेवन्नेहिं परिग्गहं परिगेण्हावेज्जा, परिग्गहं परिगेण्हंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा[1] जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भन्ते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।[2]

पंचमे भंते ! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं। —दस. अ. ४, सु. १५

अपरिग्रह महाव्रत आराधन की प्रतिज्ञा—

६४६. भन्ते ! इसके पश्चात् पाँचवें महाव्रत में परिग्रह की विरति होती है।

भन्ते ! मैं सब प्रकार के परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ। जैसे कि—गाँव में, नगर में या अरण्य में, अल्प या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त।

(परिग्रह के चार प्रकार हैं यथा—

(१) द्रव्य से, (२) क्षेत्र से, (३) काल से, (४) भाव से,

(१) द्रव्य से सर्व द्रव्य सम्बन्धी

(२) क्षेत्र से सर्व लोक में

(३) काल से दिन में या रात्रि में

(४) भाव से अल्प मूल्य वाली वस्तु हो या बहुमूल्य वाली)

किसी भी परिग्रह का ग्रहण मैं स्वयं नहीं करूँगा, दूसरों से परिग्रह ग्रहण नहीं कराऊँगा और परिग्रह ग्रहण करने वालों का अनुमोदन भी नहीं करूँगा, यावज्जीवन के लिए, तीन करण तीन योग से—मन से, वचन से, काया से—न करूँगा, न कराऊँगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूँगा।

भन्ते ! मैं अतीत के परिग्रह से निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और आत्मा से परिग्रह का व्युत्सर्ग करता हूँ।

भन्ते ! मैं पाँचवें महाव्रत में उपस्थित हुआ हूँ। इसमें सर्व परिग्रह की विरति होती है।

अपरिग्गहमहव्वयस्स पंच भावणाओ—

६४७. अहावरं पंचमं भन्ते ! महव्वयं सव्वं परिग्गहं पच्चाइक्खामि। से अप्पं वा, बहुं वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा, णेव सयं परिग्गहं गेण्हेज्जा, णेवऽण्णेणं परिग्गहं गेण्हावेज्जा, अण्णं पि परिग्गहं गेण्हंतं न समणुजाणेज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणसा वयसा कायसा तस्स भन्ते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

अपरिग्रह महाव्रत की पाँच भावनाएँ—

६४७. इसके पश्चात् हे भगवन् ! मैं पाँचवें महाव्रत में सब प्रकार के परिग्रह का त्याग करता हूँ। मैं थोड़ा या बहुत सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त किसी भी प्रकार के परिग्रह को स्वयं ग्रहण नहीं करूँगा, न दूसरों से ग्रहण कराऊँगा और न परिग्रह ग्रहण करने वालों का अनुमोदन करूँगा। इस प्रकार मैं यावज्जीवन तीन करण तीन योग से, मन से, वचन से, काया से, परिग्रह से निवृत्त होता हूँ। हे भगवन् ! उसका प्रतिक्रमण करता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ, अपनी आत्मा से परिग्रह का त्याग करता हूँ।

---

१ सूय० सु० २, अ० १, सु० ६८५।

२ धण-धन्न-पेसवग्गेसु, परिग्गहविवज्जणा। सव्वारंभपरिच्चाओ, निम्ममत्तं सुदुक्करं। —उत्त० अ० १९, गा० ३०

तस्सिमाओ पंच भावणाओ भवंति—

उस पंचम महाव्रत की पांच भावनाएँ ये हैं—

पढमा भावणा—सोइंदियसंजमो—

प्रथम भावना—श्रोत्रेन्द्रिय संयम—

१. तत्थिमा पढमा भावणा—सोततो णं जीवे मणुण्णामणुण्णाइं सद्दाइं सुणेति, मणुण्णामणुण्णेहिं सद्देहिं णो सज्जेज्जा, णो रज्जेज्जा, णो गिज्झेज्जा, णो मुज्झेज्जा, णो अज्झोववज्जेज्जा, णो विणिघायमावज्जेज्जा।

उसमें प्रथम भावना श्रोत्र (कान) से यह जीव मनोज्ञ तथा अमनोज्ञ शब्दों को सुनता है, परन्तु वह उसमें आसक्त न हो, राग भाव न करे, गृद्ध न हो, मोहित न हो, अत्यन्त आसक्ति न करे, राग-द्वेष करके अपने आत्म-भाव को नष्ट न करे।

केवली बूया—निग्गंथे णं मणुण्णामणुण्णेहिं सद्देहिं सज्जमाणे -जाव-विणिघायमावज्जमाणे संतिभेदा संतिविभंगा संति-केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा।

केवली भगवान् ने कहा है—जो साधु मनोज्ञ-अमनोज्ञ शब्दों में आसक्त होता है—यावत्—राग द्वेष करता है वह शान्ति रूप चारित्र को भंग करता है, शान्ति रूप अपरिग्रह महाव्रत को भंग करता है, शान्ति रूप केवलीप्रज्ञप्त धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

गाहा—ण सक्का ण सोउं, सद्दा सोतविसयमागया।
राग-दोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए॥

गाथार्थ—कर्ण-प्रदेश में आये हुए शब्दों का श्रवण न करना शक्य नहीं है किन्तु उसके सुनने पर जो राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है, भिक्षु उसका परित्याग करे।

सोततो जीवो मणुण्णामणुण्णाइं सद्दाइं सुणेति पढमा भावणा।

अतः श्रोत्र से जीव प्रिय और अप्रिय सभी प्रकार के शब्दों को सुनता है। यह प्रथम भावना है।

बितिया भावणा—चक्खुरिंदियसंजमो—

द्वितीय भावना—चक्षुरिन्द्रिय संयम—

२ अहावरा दोच्चा भावणा—चक्खूतो जीवो मणुण्णामणुण्णाइं रूवाइं पासति, मणुण्णामणुण्णाइं रूवेहिं णो सज्जेज्जा-जाव-णो विणिघातमावज्जेज्जा।

अब दूसरी भावना चक्षु से जीव मनोज्ञ-अमनोज्ञ सभी प्रकार के रूपों को देखता है, किन्तु साधु मनोज्ञ-अमनोज्ञ रूपों में आसक्त न हो—यावत्—राग-द्वेष करके अपने आत्मभाव को नष्ट न करे।

केवली बूया—निग्गंथे णं मणुण्णामणुण्णाइं रूवेहिं सज्जमाणे -जाव-संति केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा।

केवली भगवान् ने कहा है—जो निर्ग्रन्थ मनोज्ञ-अमनोज्ञ रूपों को देखकर आसक्त होता है—यावत्—शान्ति रूप-केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

गाहा—ण सक्का रूवमदट्ठुं, चक्खुविसयमागतं।
राग-दोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए॥

गाथार्थ—नेत्रों के विषय बने हुए रूप को न देखना तो शक्य नहीं है, वह दिख ही जाता है किन्तु उसके देखने पर जो राग-द्वेष उत्पन्न होता है भिक्षु उनका परित्याग करे अर्थात् उनमें राग-द्वेष का भाव उत्पन्न न होने दे।

चक्खूतो जीवो मणुण्णामणुण्णाइं रूवाइं पासति त्ति दोच्चा भावणा।

अतः नेत्रों से जीव मनोज्ञ अमनोज्ञ रूपों को देखता है, यह दूसरी भावना है।

ततिया भावणा—घाणिंदिय संजमो—

तीसरी भावना—घ्राणेन्द्रिय संयम—

३. अहावरा तच्चा भावणा—

अब तीसरी भावना,

घाणतो जीवो मणुण्णामणुण्णाइं गंधाइं अग्घायति मणुण्णामणुण्णेहिं गंधेहिं णो सज्जेज्जा-जाव-विणिघाय-मावज्जेज्जा।

नासिका से जीव प्रिय और अप्रिय गन्धों को सूंघता है, किन्तु भिक्षु मनोज्ञ और अमनोज्ञ गन्ध पाकर आसक्त न हो—यावत्—राग द्वेष करके आत्मभाव का नाश न करे।

केवली बूया—मणुण्णामणुण्णेहिं गंधेहिं सज्जमाणे-जाव-संति केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा।

केवली भगवान् ने कहा है—जो निर्ग्रन्थ मनोज्ञ या अमनोज्ञ गंध पाकर आसक्त होता है—यावत्—वह शांतिरूप केवलि प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

गाहा—ण सक्का ण गंधमग्घाउं, णासाविसयमागयं ।
राग-दोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए ॥

घाणतो जीवो मणुण्णामणुण्णाइं गंधाइं अग्घायति त्ति तच्चा भावणा ।

चउत्था भावणा—जिब्भिंदिय संजमो—

४. अहावरा चउत्था भावणा—जिब्भातो जीवो मणुण्णामणुण्णाइं रसाइं अस्सादेति मणुण्णामणुण्णाइं रसेहिं णो सज्जेज्जा-जाव-णो विणिघातमावज्जेज्जा ।

केवली बूया— निग्गंथे णं मणुण्णामणुण्णेहिं रसेहिं सज्जमाणे-जाव-संति केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा ।

गाहा—ण सक्का रसमणासातुं, जीहाविसयमागतं ।
राग-दोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए ॥

जीहातो जीवो मणुण्णामणुण्णाइं रसाइं अस्सादेति त्ति चउत्था भावणा ।

पंचमा भावणा—फासिंदिय संजमो—

अहावरा पंचमा भावणा—
फासातो जीवो मणुण्णामणुण्णेहिं फासेहिं णो सज्जेज्जा-जाव-णो विणिघातमावज्जेज्जा ।

केवली बूया—निग्गंथेणं मणुण्णामणुण्णेहिं फासेहिं सज्जमाणे-जाव-संति केवलिपण्णत्ताओ धम्माओ भंसेज्जा ।

गाहा—ण सक्का ण संवेदेतुं फासं विसयमागतं ।
राग-दोसा उ जे तत्थ ते भिक्खू परिवज्जए ॥

फासातो जीवो मणुण्णामणुण्णाइं फासाइं पडिसंवेदेति त्ति पंचमा भावणा ।[1]

गाथार्थ—ऐसा नहीं हो सकता कि नासिका-प्रदेश के सान्निध्य में आये हुए गन्ध के परमाणु पुद्गल सूंघे न जाए, किन्तु उनको सूंघने पर जो उनमें राग-द्वेष समुत्पन्न होता है, भिक्षु उनका परित्याग करे।

अतः नासिका से जीव मनोज्ञ-अमनोज्ञ सभी प्रकार की गन्धों को सूंघता है, यह तीसरी भावना है।

चौथी भावना—जिह्वेन्द्रिय संयम—

अब चौथी भावना जिह्वा से जीव मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसों का आस्वादन कराता है, किन्तु भिक्षु को चाहिए कि वह मनोज्ञ अमनोज्ञ रसों में आसक्त न हो,—**यावत्**—राग-द्वेष करके अपने आत्मभाव का नाश न करे।

केवली भगवान ने कहा है—जो निर्ग्रन्थ मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसों को पाकर आसक्त होता है—**यावत्**—वह शान्तिरूप केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

गाथार्थ—ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि जिह्वाप्रदेश पर रस आए और वह उसका आस्वादन न करे किन्तु उन रसों के प्रति जो राग-द्वेष उत्पन्न होता है भिक्षु उसका परित्याग करे।

अतः जिह्वा से जीव मनोज्ञ-अमनोज्ञ सभी प्रकार के रसों का आस्वादन करता है, यह चौथी भावना है।

पंचम भावना—स्पर्शेन्द्रिय संयम—

अब पाँचवी भावना

स्पर्शेन्द्रिय से जीव मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्शों का संवेदन (अनुभव) करता है किन्तु भिक्षु उन मनोज्ञामनोज्ञ स्पर्शों में आसक्त न हो,—**यावत्**—राग-द्वेष करके अपने आत्मभाव का नाश न करे।

केवली भगवान ने कहा है—जो निर्ग्रन्थ मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्शों को पाकर आसक्त होता है—**यावत्** वह शांतिप्रिय केवलीप्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

गाथार्थ—स्पर्शेन्द्रिय के विषय प्रदेश में आए हुए स्पर्श का संवेदन न करना किसी तरह संभव नहीं है अतः भिक्षु उन मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्शों को पाकर उनमें उत्पन्न होने वाले राग या द्वेष का परित्याग करता है।

अतः स्पर्शेन्द्रिय से जीव प्रिय-अप्रिय अनेक प्रकार के स्पर्शों का संवेदन करे, यह पाँचवी भावना है।

---

१ समवायांग सूत्र में पंचम महाव्रत की पाँच भावनाएँ इस प्रकार हैं—
१. श्रोत्रेन्द्रियरागोपरति, २. चक्षुरिन्द्रियरागोपरति, ३. घ्राणेन्द्रियरागोपरति, ४. रसनेन्द्रियरागोपरति, ५. स्पर्शेन्द्रियरागोपरति। —सम० स० २५, सु० १
प्रश्नव्याकरण सूत्र में पाँच भावनाएं आचारांग सूत्र की तरह ही हैं। —पण्ह० सु० २, अ० ५, सु० १३-१६

एत्ताव ताव महव्वए सम्मं काएण फासिते पालिते तीरिए किट्टिते अवट्ठिते आणाए आराहिते यावि भवति।

इस प्रकार पंच भावनाओं से विशिष्ट तथा साधक द्वारा स्वीकृत परिग्रह-विरमण रूप पंचम महाव्रत का काया से सम्यक् स्पर्श कर उसका पालन करे, स्वीकृत महाव्रत को पार लगाने, उसका कीर्तन करने तथा अन्त तक उसमें अवस्थित रहने पर भगवदाज्ञा के अनुरूप आराधक हो जाता है।

पंचमं भंते ! महव्वयं परिग्गहाओ वेरमणं।

—आ. सु. २, अ. १५, सु. ७८६-७९१

भगवन ! यह है—परिग्रह-विरमणरूप पंचम महाव्रत।

अपरिग्गहमहव्वयस्स पादपोवमा—

अपरिग्रह महाव्रत को पादप की उपमा—

६४८. जो सो वीरवर-वयण-विरति-पवित्थर-बहुविहप्पकारो सम्मत्त विसुद्धो मूलो।

धिति कन्दो।

विणय वेइओ।

निग्गत-तिलोक्क-विपुल-जस-निविड-पीण-पवर-सुजात खंधो।

पंचमहव्वय-विसाल सालो।

भावण तयंत

ज्झाण-सुभोग-नाण पल्लववरंकुरधरो।

बहुगुण कुसुमसमिद्धो।

सील सुगंधो।

अणण्हय फलो।

पुणो य मोक्खवर बीजसारो।

मंदरगिरिसिहर-चूलिका इव मोक्खवर मुत्तिमग्गस्स सिहर-भूओ संवरवरपादवो। —पण्ह० सु० २, अ० ५, सु० २

६४८. श्री वीरवर—महावीर भगवान् के वचन—आदेश से की गई परिग्रह निवृत्ति के विस्तार से यह संवरवर-पादप अर्थात् अपरिग्रह नामक अन्तिम संवरद्वार बहुत प्रकार का है। सम्यग्-दर्शन इसका विशुद्ध-निर्दोष मूल है।

धृति—चित्त की स्थिरता इसका कन्द है।

विनय इसकी वेदिका—चारों ओर का परिकर है।

तीनों लोकों में फैला हुआ विपुल यश इसका सघन महान् सुनिर्मित स्कन्ध (तना) है।

पांच महाव्रत इसकी विशाल शाखाएँ हैं।

अनित्यता, अशरणता आदि भावनाएँ इस संवर वृक्ष की त्वचा है।

धर्मध्यान, शुभयोग तथा ज्ञान रूपी पल्लवों के अंकुरों को यह धारण करने वाला है।

बहुसंख्यक उत्तरगुण रूपी फूलों से यह समृद्ध है।

यह शील के सौरभ से सम्पन्न है।

यह संवरवृक्ष अनास्रव-कर्मास्रव के निरोध रूप फलों वाला है।

मोक्ष ही इसका बीजसार-बींजी है।

यह मेरु पर्वत के शिखर पर चूलिका के समान मोक्ष-कर्म क्षय के निर्लोभता स्वरूप मार्ग का शिखर है।

इस प्रकार का अपरिग्रह रूप उत्तम संवर रूपी जो वृक्ष है, वह अन्तिम संवरद्वार है।

अपरिग्गह महव्वय-आराहगस्स अकप्पणिज्जाइं दव्वाइं—

अपरिग्रह महाव्रत आराधक के अकल्पनीय द्रव्य—

६४९. जत्थ न कप्पइ गामागर-नगर-खेड-कव्वड-मडंब-दोणमुह-पट्टणाऽऽसमगयं च। किंचि अप्पं वा, बहुं वा, अणुं वा, थूलं वा तस-थावरकायदव्वजायं मणसा वि परिघेत्तुं।

न हिरण्ण-सुवण्ण-खेत्त-वत्थुं।

६४९. ग्राम, आकर, नगर, खेड, कर्बट, मडंब, द्रोणमुख, पत्तन अथवा आश्रम में रहा हुआ कोई भी पदार्थ हो, चाहे वह अल्प मूल्य वाला हो या बहुमूल्य हो, प्रमाण में छोटा हो अथवा बड़ा हो, वह त्रसकाय-शंख आदि हो या स्थावरकाय—रत्न आदि हो, उस द्रव्य समूह को मन से भी ग्रहण करना नहीं कल्पता, अर्थात् उसे ग्रहण करने की इच्छा करना भी योग्य नहीं है।

चाँदी, सोना, क्षेत्र (खुली भूमि), वास्तु (मकान-दुकान आदि) भी ग्रहण करना नहीं कल्पता।

न दासी-दास-भयग-पेस-हय-गय-गवेलगं च।

दासी, दास, भृत्य—नियत वृत्ति पाने वाला सेवक, प्रेष्य—संदेश ले जाने वाला सेवक, घोड़ा, हाथी, बैल आदि भी ग्रहण करना नहीं कल्पता।

न जाण-जुग्ग-सयणाइं, न छत्तकं, न कुंडिया, न उवाणहा।

यान—रथ, गाड़ी और युग्य—डोली आदि, शयन और छत्र-छाता आदि भी ग्रहण करना नहीं कल्पता, न कमण्डलु, न जूता,

न पेहुण-वीयण-तालियंटका।

न मोरपीछी, न वीजना—पंखा और तालवृन्त—ताड़ का पंखा ग्रहण करना कल्पता है।

न यावि अय तउय तंब-सीसक-कंस-रयत-जातरूव-मणि-मुत्ताधार-पुडक-संख-दंत-मणि-सिंग-सेल-काय-वरचेल-चम्म-पत्ताइं-महारिहाइं, परस्स अज्झोववायलोभ जणणाइं परियड्ढेउं गुणवओ।

लोहा, त्रपु, तांबा, सीसा, कांसा, चांदी, सोना, मणि और मोती का आधार सीपसम्पुट, शंख, उत्तम दांत, सींग, शैल-पाषाण, उत्तम कांच, वस्त्र और चमड़ा और इनके बने हुए पात्र भी ग्रहण करना नहीं कल्पता। ये सब मूल्यवान पदार्थ दूसरे के मन में ग्रहण करने की तीव्र आकांक्षा तथा लोभ उत्पन्न करते हैं, उन्हें खींचना, अपनी ओर झपटना बढ़ाना या जतन से रखना मूल-गुणादि से युक्त भिक्षु के लिए उचित नहीं है।

न यावि पुप्फ-फल-कंद-मूलादियाइं, सण-सत्तरसाइं, सव्वधन्नाइं तिहि वि जोगेहिं परिघेत्तुं ओसह-भेसज्ज-भोयणट्ठयाए संजएणं।

इसी प्रकार पुष्प, फल, कन्द, मूल आदि तथा सनादि सत्रह प्रकार के धान्य ऐसे समस्त धान्यों को भी परिग्रहत्यागी साधु औषध, भेषज्य या भोजन के लिए त्रियोग—मन, वचन, काय से ग्रहण न करे।

प०—किं कारणं ?

उ०—अपरिमित-णाण-दंसणधरेहिं सीलगुण-विणय-तव-संजम-नायकेहिं तित्थयरेहिं सव्वजगज्जीव-वच्छलेहिं तिलोयमहिएहिं जिणवरिंदेहिं एस जोणी जंगमाणं दिट्ठा।

प्र०—नहीं ग्रहण करने का क्या कारण है ?

उ०—अपरिमित-अनन्त ज्ञान और दर्शन के धारक, शील-चित्त की शान्ति, गुण—अहिंसा आदि, विनय, तप और संयम के नायक, जगत् के समस्त प्राणियों पर वात्सल्य धारण करने वाले, त्रिलोक-पूजनीय, तीर्थंकर जिनेन्द्र देवों ने अपने केवलज्ञान से देखा है कि ये पुष्प, फल आदि त्रस जीवों की योनि—उत्पत्ति स्थान है।

न कप्पइ जोणी-समुच्छेदो तेण वज्जंति समणसीहा।

योनि का उच्छेद—विनाश करना योग्य नहीं है। इसी कारण श्रमणसिंह—उत्तम मुनि पुष्प, फल आदि का परिवर्जन करते हैं।

जं पि य ओदण-कुम्मास-गंज-तप्पण-मंथु-भुज्जिय-पलल-सूप-सक्कुलि-वेढिम-वरसरक-चुण्ण-कोसग-पिंड-सिहरिणि-वट्ट-मोयग खीर-दहि-सप्पि-नवनीत तेल्ल-गुल-खंड-मच्छंडिय-मधु-मज्ज-मंस खज्जक-वंजण-विधिमादिकं पणीयं उवस्सए परघरे व रण्णे न कप्पति, तं पि सण्णिहिं काउं सुविहियाणं।

—पण्ह० सु० २. अ० ५, सु० ३-४

और जो भी ओदन—कूर, कुल्माष—थोड़े उबाले उड़द आदि, गंज—एक प्रकार का भोज्य पदार्थ, तर्पण—सत्तू, मंथु—बोर आदि का चूर्ण—आटा, भूंजी हुई धानी—लाई, पलल तिल के फूलों पिष्ट सूप—दाल, शष्कुली—तिलपपड़ी, वेष्टिम—जलेबी, इमरती आदि, बरसरक नामक भोज्य वस्तु, चूर्णकोश—खाद्य विशेष, गुड़ आदि का पिण्ड, शिखरिणी—दही में शक्कर आदि मिलाकर बनाया गया भोज्य—श्रीखण्ड, वट्ट—बड़ा, मोदक—लड्डू, दूध, दही, घी, मक्खन, तेल, खाजा, गुड़, खांड, मिश्री, मधु, मद्य, मांस और अनेक प्रकार के व्यंजन—शाक, छाछ आदि वस्तुओं का उपाश्रय में या अन्य किसी के घर में अथवा अटवी में सुविहित—परिग्रहत्यागी, शोभन आचार वाले साधुओं को संचय करना नहीं कल्पता है।

अपरिग्रह महाव्रत के आराधक—२

अपरिग्गही—

६५०. आवंती के आवंती लोयंसि अपरिग्गहावंती एएसु चेव अपरिग्गहावंति। —आ. सु. १, अ. ५, सु. १५७

अपरिग्रही—

६५०. इस जगत में जितने अपरिग्रही हैं वे पदार्थों (वस्तुओं) में (मूर्छा न रखने और उनका संग्रह न करने के कारण) अपरिग्रही हैं।

अपरिग्गही समणस्स पउमोवमा—

६५१. वोछिन्द सिणेहमप्पणो कुमुयं सारइयं व पाणियं।
से सव्वसिणेहवज्जिए, समयं गोयम ! मा पमायए॥
—उत्त. अ. १०, गा. २८

अपरिग्रही श्रमण को पद्म की उपमा

६५१. जिस प्रकार शरद्-ऋतु का कुमुद (रक्त-कमल) जल में लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार तू अपने स्नेह का विच्छेदन कर निर्लिप्त बन। हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

सव्वे एगंतपंडिया सव्वत्थ समभावसाहगा—

६५२. जहा अंतो तहा बाहिं, जहा बाहिं तहा अंतो।

अंतो अंतो पूतिदेहंतराणि पासति पुढो वि सवंताइं।
पंडिते पडिलेहाए।

से मतिमं परिण्णाय मा य हु लालं पच्चासी। मा तेसु तिरिच्छमप्पाण मावातए।
—आ. सु. १, अ. २, उ. ५, सु. ९२

सभी एकान्त पण्डित सर्वत्र समभाव के साधक होते हैं—

६५२. (यह देह) जैसा भीतर है, वैसा बाहर है, जैसा बाहर है वैसा भीतर है।

इस शरीर के भीतर अशुद्धि भरी हुई है, साधक इसे देखे। देह से झरते हुए अनेक अशुचि स्रोतों को भी देखें। इस प्रकार पंडित पुरुष शरीर की अशुचिता (तथा काम-विपाक) को भलीभांति देखें।

वह मतिमान् साधक (उक्त विषय को) जानकर तथा त्याग कर लार को न चाटे—वमन किये हुए भोगों को पुनः सेवन न करे। अपने को तिर्यक् मार्ग में (काम-भोग के बीच में अथवा ज्ञान-चारित्र से विपरीत मार्ग में) न फंसाए।

सव्वे बाला आसत्ता सव्वे पंडिया अणासत्ता—

६५३. आहाकडं चेव निकाममीणे,
निकामसारी य विसण्णमेसी।
इत्थीसु सत्ते य पुढो य बाले,
परिग्गहं चेव पकुव्वमाणे॥

वेराणुगिद्धे णिचयं करेति,
इतो चुते से दुहमट्ठदुग्गं।
तम्हा तु मेधावि समिक्ख धम्मं,
चरे मुणी सव्वतो विप्पमुक्के॥

आयं न कुज्जा इह जीवितट्ठी,
असज्जमाणो य परिव्वएज्जा।
णिसम्मभासी य विणीय गिद्धिं,
हिंसण्णितं वा ण कहं करेज्जा॥
—सूय. सु. १, अ. १०, गा. ८-१०

सभी बाल जीव आसक्त हैं, सभी पण्डित अनासक्त हैं—

६५३. जो साधु आधाकर्म आदि दोषदूषित आहार की कामना करता है, जो निमन्त्रण पिंड आदि आहार की गवेषणा करता है, वह (पार्श्वस्थ आदि कुशीलों के) मार्ग की गवेषणा करता है जो स्त्रियों के विलास आदि अलग-अलग हास्य में आसक्त होकर परिग्रह का संचय करता है।

(परिग्रह अर्जन के निमित्त) प्राणियों के साथ जन्म-जन्मातर तक वैर में गृद्ध होकर वह पाप कर्म का संचय करता है। वह यहाँ से च्युत होकर दुःखप्रद स्थानों में जन्म लेता है। इसलिए मेधावी मुनि धर्म की समीक्षा कर सब ओर से सर्वथा विमुक्त होकर संयम की चर्या करे।

साधु इस लोक में चिरकाल तक जीने की इच्छा से आय (द्रव्योपार्जन या कर्मोपार्जन) न करे, तथा स्त्री-पुत्र आदि में अनासक्त रहकर संयम में पराक्रम करे। साधु पूर्वापर विचार करके कोई बात कहे। शब्दादि विषयों से आसक्ति हटा ले तथा हिंसायुक्त कथा न कहे।

अणासत्तो एव मरणा मुच्चइ—

६५४. जरामच्चुवसोवणीते णरे सततं मूढे धम्मं णाभिजाणति।
पासिय आतुरे पाणे अप्पमत्तो परिव्वए।

मंता एयं मतिमं पास,
आरंभजं दुक्खमिणं ति णच्चा,

मायी पमायी पुणरेति गब्भं।
उवेहमाणो सद्द-रूवेसु अंजू माराभिसंकी मरणा पमुच्चति।
—आ. सु. १, अ. ३, उ. १, सु. १०८

अनासक्त ही मरण से मुक्त होता है—

६५४. बुढ़ापे और मृत्यु के वश में पड़ा हुआ मनुष्य (देहादि की आसक्ति से) सतत मूढ़ बना रहता है। वह धर्म को नहीं जान सकता। (आसक्त) मनुष्यों को शारीरिक—मानसिक दुःखों से आतुर देखकर साधक सतत अप्रमत्त होकर विचरण करे।

हे मतिमान् ! तू मननपूर्वक इन प्राणियों को देख।

यह दुःख आरम्भजन्य (प्राणी) हिंसाजनित है, यह जानकर तू—अप्रमत्त बन)

मायी और प्रमादी मनुष्य बार-बार जन्म लेता है।

शब्द और रूप आदि के प्रति जो उपेक्षा करता है—(राग-द्वेष नहीं करता है) वह ऋजु होता है जो मृत्यु के प्रति सदा आशंकित (सतर्क) रहता है और मृत्यु (के भय) से मुक्त हो जाता है।

अणासत्तो एव सव्वहा अहिंसओ भवइ—

६५५. आसेवित्ता एतमट्ठं इच्चेवेगे समुट्ठिता।

तम्हा तं बिइयं नासेवए णिस्सारं पासिय णाणी।
उववायं चयणं णच्चा, अणण्णं चर माहणे।

से ण छणे, न छणावए, छणंतं णाणुजाणति।

णिव्विंद णंदिं अरते पयासु।

अणोमदंसी णिसण्णे पावेहिं कम्मेहिं।
—आ. सु. १, अ. ३, उ. २, सु. ११९

आसक्त ही हमेशा अहिंसक होता है—

६५५. कई व्यक्ति असंयम का आचरण करके अंत में संयम-साधना से संलग्न हो जाते हैं अतः वे पुनः इसका सेवन नहीं करते हैं।

हे ज्ञानी ! विषयों को निस्सार देखकर (तू केवल मनुष्यों के ही जन्म-मरण नहीं) देवों के उपपात (जन्म) और च्यवन (मरण) निश्चित हैं, वह जानकर हे महान् ! तू अनन्य (संयम या मोक्ष मार्ग) का आचरण कर।

वह (संयमी मुनि) प्राणियों की हिंसा स्वयं न करे, न दूसरों से हिंसा कराए और न हिंसा करने वाले का अनुमोदन करे।

तू (कामभोगजनित आमोद-प्रमोद से विरक्त होकर) स्त्रियों में अनुरक्त मत बन।

परम उच्च को देखने वाला पाप कर्मों में उदासीन रहता है।

कामभोगेसु अगिद्धो णियंठो—

६५६. अण्णातपिंडेणऽहियासएज्जा, नो पूयणं तवसा आवहेज्जा।
सद्देहिं रूवेहिं असज्जमाणे, सव्वेहिं कामेहिं विणीय गेहिं॥

सव्वाइं संगाइं अइच्च धीरे, सव्वाइं दुक्खाइं तितिक्खमाणे।
अखिले अगिद्धे अणिएयचारी, अभयंकरे भिक्खू अणाविलप्पा॥
सूय. सु. १, अ. ७, गा. २७-२८

कामभोगों में अनासक्त निर्ग्रन्थ—

६५६. मुनि अज्ञातपिण्ड (अपरिचित घरों से लाये हुए भिक्षान्न) में अपना निर्वाह करे, तपस्या के द्वारा अपनी पूजा-प्रतिष्ठा की इच्छा न करे, शब्दों और रूपों में अनासक्त रहता हुआ समस्त काम-भोगों से आसक्ति हटावे।

धीर साधक सर्वसंगों को त्याग कर, सभी दुःखों को सहन करता हुआ वह अखिल (ज्ञान-दर्शन-चारित्र से पूर्ण) हो, अनासक्त (विषयभोगों में अनासक्त हो) अनियतचारी, अप्रतिबद्ध-विहारी (और अभयंकर) जो न स्वयं भयभीत हो और न दूसरों को भयभीत करे (तथा) निर्मल चित्तवाला हो।

परिच्चाई समणाणं पमाय णिसेहो—

६५७. चिच्चाण धणं च भारियं, पव्वइओ हि सि अणगारियं।
मा वन्तं पुणो वि आइए, समयं गोयम ! मा पमायए॥

अवउज्झिय मित्तबन्धवं, विउलं चेव धणोहसंचयं।
मा तं बिइयं गवेसए, समयं गोयम ! मा पमायए॥

—उत्त. अ. १०, गा. २९-३०

सल्लुद्धरो समणो—

६५८. महयं पलिगोव जाणिया, जा वि य वंदण-पूयणा इहं।
सुहुमे सल्ले दुरुद्धरे, विदुमं ता पयहेज्ज संथवं॥

—सूय. सु. १, अ. २, उ. २, गा. ११

चाईणं देवगई—

६५९. गवासं मणिकुंडलं, पसवो दासपोरुसं।
सव्वमेयं चइत्ताणं, कामरूवी भविस्ससि॥

—उत्त. अ. ६, गा. ५

धीरा धम्मं जाणंति—

६६०. आसं च छंदं च विगिंच धीरे।

तुमं चेव तं सल्लमाहट्टु।

जेण सिया तेण णो सिया।

इणमेव णावबुज्झंति जे जणा मोहपाउडा।

—आ. सु. १, अ. २, उ. ४, सु. ८३

धुववादिणो कम्मरयं धुणंति—

६६१. आयाण भो ! सुस्सूस भो ! धूतवादं पवेदयिस्सामि। इह खलु अत्तत्ताए तेहिं तेहिं कुलेहिं अभिसेएण अभिसंभूता अभिसंजाता अभिणिव्वट्टा अभिसंवुड्ढा अभिसंबुद्धा अभिणिक्खंता अणुपुव्वेणं महामुणी।

तं परक्कमंतं परिदेवमाणा 'मा णे चयाहि' इति ते वदंति। छंदोवणीता अज्झोववण्णा अक्कंदकारी जणगा रुदंति।

त्यागी श्रमणों के लिए प्रमाद का निषेध—

६५७. धन और पत्नी का त्याग कर तू अनगार-वृत्ति के लिए घर से निकला है, अतः वमन किये हुए—कामभोगों को फिर से स्वीकार न कर। हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

मित्र, बान्धव और विपुल धनराशि को छोड़कर फिर से उनकी गवेषणा मत कर। हे गौतम ! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

शल्य को समाप्त करने वाला ही श्रमण होता है—

६५८. जो वंदना और पूजा है वह महाकीचड़ है, उसे भी इस लोक में या जिन-शासन में स्थित विद्वान् मुनि गर्वरूप सूक्ष्म एवं कठिनता से निकाला जा सकने वाला शल्य जानकर उस संस्तव का परित्याग करे।

त्यागियों की देवगति—

६५९. गाय, घोड़े, मणि, कुण्डल, पशु, दास और पुरुष-समूह—इन सबको छोड़। ऐसा करने पर तू काम-रूपी (इच्छानुकूल रूप बनाने में समर्थ) होगा।

धीर पुरुष धर्म को जानते हैं—

६६०. हे धीर पुरुष ! तू आशा और स्वच्छन्दता (मनमानी) का त्याग कर दे।

उस भोगेच्छा रूप शल्य का सृजन तूने स्वयं ही किया है।

जिस भोग सामग्री से तुझे सुख होता है उससे सुख भी नहीं होता है। (भोग के बाद दुःख है।)

जो मनुष्य मोह की सघनता से आवृत हैं, ढके हैं, वे इस तथ्य को, उक्त आशय को—कि पौद्गलिक साधनों से कभी सुख मिलता है, कभी नहीं, वे क्षणभंगुर हैं, तथा वे ही शल्य (कांटा) रूप हैं; नहीं जानते हैं।

ध्रुववादी कर्मरज को धुनते हैं—

६६१ हे मुने ! समझो, सुनने की रुचि करो, मैं धूतवाद का निरूपण करूँगा, इस संसार में आत्मभाव से प्रेरित होकर, उन कुलों में शुक्रशोणित के अभिषेक-अभिसिंचन से माता के गर्भ में कललरूप हुए, फिर प्रसव होकर संवर्धित हुए, तत्पश्चात् अभिसम्बुद्ध हुए, फिर धर्म श्रवण करके विरक्त होकर अभिनिष्क्रमण किया। इस प्रकार क्रमशः महामुनि बनते हैं।

मोक्षमार्ग संयम में पराक्रम करते हुए उस मुनि के माता-पिता आदि करुण विलाप करते हुए यों कहते हैं—"तुम हमें मत छोड़ो, हम तुम्हारे अभिप्राय के अनुसार व्यवहार करेंगे, तुम पर हमें ममत्व है।" इस प्रकार आक्रन्दन करते हुए वे रुदन करते हैं।

अतारिसे मुणी ओहं तरए जणगा जेण विप्पजढा ।

जिसने माता-पिता को छोड़ दिया है ऐसा व्यक्ति न मुनि हो सकता है न ही संसार-सागर को पार कर सकता है ।"

सरणं तत्थ णो समेति । किह णाम से तत्थ रमति ।

वह मुनि (स्वजनों का विलाप-रुदन सुनकर) उनकी शरण में नहीं जाता । वह तत्वज्ञ पुरुष भला कैसे उस (गृहवास) में रमण कर सकता है ?

एतं णाणं सया समणुवासेज्जासि ।

—आ. सु. १, अ. ६, उ. १, सु. १८१-१८२

मुनि इस ज्ञान को सदा (अपनी आत्मा में) अच्छी तरह बसा ले ।

सामण्णरहिया समणा—

श्रामण्य रहित श्रमण—

६६२. जे धम्मलद्धं विणिहाय भुंजे,
वियडेण साहट्टु य जो सिणाति ।
जो धोवति लूसयती व वत्थं,
अहाऽऽहु से णागणियस्स दूरे ॥

कम्मं परिण्णाय दगंसि धीरे,
वियडेण जीवेज्ज य आदिमोक्खं ।
से बीय-कंदाति अभुंजमाणे,
विरते सिणाणादिसु इत्थियासु ॥

जे मायरं पियरं च हेच्चा,
गारं तहा पुत्त पसुं धणं च ।
कुलाइं जे धावति साउगाइं,
अहाऽऽहु से सामणियस्स दूरे ॥

कुलाइं जे धावति साउगाइं,
आघाति धम्मं उदराणुगिद्धे ।
अहाहु से आयरियाण सतंसे,
जे लावएज्जा असणस्स हेउं ॥

निक्खम्म दीणे परभोयणम्मि,
मुहमंगलिओदरियाणुगिद्धे ।
नीवारगिद्धे व महावराहे,
अदूर एवेहति घातमेव ॥

अन्नस्स पाणस्सिहलोइयस्सं,
अणुप्पियं भासति सेवमाणे ।
पासत्थयं चेव कुसीलयं च,
निस्सारए होति जहा पुलाए ॥

—सूय. सु. १, अ. ७, गा. २१-२६

६६२. जो भिक्षा से प्राप्त अन्न का संचय कर भोजन करता है, जो शरीर को संकुचित कर निर्जीव जल से स्नान करता है, जो कपड़ों को धोता है उन्हें फाड़कर छोटे और सांध कर बड़े करता है, वह नागन्य (श्रामण्य) से दूर है, ऐसा कहा है ।

जल के समारंभ से कर्म-बंध होता है, ऐसा जानकर धीर मुनि मृत्यु पर्यन्त निर्जीव जल से जीवन बिताए । वह बीज, कंद आदि न खाए, स्नान आदि तथा स्त्रियों से विरत रहे ।

जो माता, पिता, घर, पुत्र, पशु और धन को छोड़कर स्वादु भोजन वाले कुलों की ओर दौड़ता है, वह श्रामण्य से दूर है, ऐसा कहा है ।

जो स्वादु भोजन वाले कुलों की ओर दौड़ता है, पेट भरने के लिए धर्म का आख्यान करता है और जो भोजन के लिए अपनी प्रशंसा करवाता है, वह आर्य श्रमणों की गुण-संपदा के सौवें भाग से भी हीन होता है ।

जो अभिनिष्क्रमण कर गृहस्थ से भोजन पाने के लिए दीन होता है, भोजन में आसक्त होकर दाता की प्रशंसा करता है वह चारे के लोभी विशालकाय सुअर की भांति शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है ।

जो इहलौकिक अन्न-पान के लिए प्रिय वचन बोलता है, पार्श्वस्था और कुशीलता का सेवन करता है वह पुआल की भांति निस्सार हो जाता है ।

पंच आसवदाराए—

पांच आस्रव द्वार—

६६३. पंच आसवदारा पण्णत्ता, तं जहा—

१. मिच्छत्तं, २. अविरइ, ३. पमाया, ४. कसाया, ५. जोगा ।

—सम. समवाय ५, सु. १

६६३. पांच आस्रव द्वार बताये हैं, जैसे—

(१) मिथ्यात्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कषाय और (५) योग ।

परिग्रह का स्वरूप—३

परिग्गहसरूवं—

६६४. आवंती के आवंती लोगंसि परिग्गहावंती, से अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा एतेसु चेव परिग्गहावंती।

एतदेवेगेसिं महब्भयं भवति।

लोगवित्तं च णं उवेहाए।

एते संगे अविजाणतो। —आ. सु. १, अ. ५, सु. १५४

परिग्रह का स्वरूप—

६६४. इस जगत् में जितने भी प्राणी परिग्रह वाले हैं, वे अल्प या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त वस्तु को ग्रहण करते हैं। वे इनमें आसक्त होने से ही परिग्रहवान् हैं।

यह परिग्रह ही परिग्रहियों के लिए महाभय का कारण होता है।

साधको! असंयमी-परिग्रही लोगों के वित्त-धन या वृत्त (संज्ञाओं) को देखो।

जो आसक्तियों को नहीं जानता, वह महाभय को पाता है।

परिग्गहपावस्स फलं दुक्खं—

६६५. तं परिगिज्झ दुपयं चउप्पयं अभिजुंजियाणं संसिंचियाणं तिविधेण जा वि से तत्थ मत्ता भवति अप्पा वा, बहुगा वा।

से तत्थ गढिते चिट्ठति भोयणाए।

ततो से एगया विप्परिसिट्ठं संभूतं महोवकरणं भवति।

तं पि से एगया दायादा विभयंति, अदत्तहारो वा सेऽवहरति, रायाणो वा से विलुंपंति णस्सति वा से, विणस्सति वा से, अगारदाहेण वा से डज्झति।

इति से परस्सऽट्ठाए कूराइं कम्माइं बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेति।

मुणिणा हु एतं पवेदितं।

अणोहंतरा एते, णो य ओहं तरित्तए।

परिग्रह पाप का फल दुःख—

६६५. वह परिग्रह में आसक्त मनुष्य द्विपद (मनुष्य-कर्मचारी) चतुष्पद (पशु आदि) का परिग्रह करके उनका उपयोग करता है। उनको कार्य में नियुक्त करता है। फिर धन का संग्रह-संचय करता है। अपने, दूसरों के और दोनों के सम्मिलित प्रयत्नों से (अपनी पूर्वार्जित पूंजी, दूसरों का श्रम तथा बुद्धि तीनों के सहयोग से) उनके पास अल्प या बहुत मात्रा में धन संग्रह हो जाता है।

वह उस अर्थ में गृद्ध-आसक्त हो जाता है और भोग के लिए संरक्षण करता है।

पश्चात् विविध प्रकार के भोगोपभोग करने के बाद बची हुई विपुल अर्थ सम्पदा से महान् उपकरण वाला बन जाता है।

एक समय ऐसा आता है, जब उस सम्पत्ति में से दामाद-बेटे-पोते हिस्सा बंटा लेते हैं, चोर चुरा लेते हैं, राजा उसे छीन लेते हैं या वह नष्ट विनष्ट हो जाती है तथा गृहदाह के साथ जल जाती है।

इस प्रकार वह अज्ञानी पुरुष, दूसरों के लिए क्रूर कर्म करता हुआ अपने दुःख उत्पन्न करता है, फिर उस दुःख से त्रस्त होकर सुख की खोज करता है, पर अन्त में उसके हाथ दुःख ही लगता है इस प्रकार वह मूढ़ विपर्यास को प्राप्त होता है।

भगवान् ने यह बताया है—(जो क्रूर कर्म करता है, वह मूढ़ होता है। मूढ़ मनुष्य सुख की खोज में बार-बार दुःख प्राप्त करता है।)

ये मूढ़ अनोघंतर अर्थात् संसार प्रवाह को तैरने में समर्थ नहीं होते एवं प्रव्रज्या लेने में असमर्थ रहते हैं।

अतीरंगमा एते णो य तीरं गमित्तए।

वे अतीरंगम हैं, तीर-किनारे तक पहुँचने में (मोह कर्म का क्षय करने में) समर्थ नहीं होते।

अपारंगमा एते, णो य पारं गमित्तए।

वे अपारंगम है,—पार—(संसार के उस पार निर्वाण तक) पहुंचने में समर्थ नहीं होते हैं।

आयाणिज्जं च आयाय तम्मि ठाणे ण चिट्ठति।
वितहं पप्प खेत्तण्णे तम्मि ठाणंमि चिट्ठति॥
—आ. सु १, अ. २, उ. ३, सु. ७९

वह (मूढ़) आदाणीय-सत्यमार्ग (संयम पथ) को प्राप्त करके भी उस स्थान में स्थित नहीं हो पाता। अपनी मूढ़ता के कारण वह असत्मार्ग को प्राप्त कर उसी में ठहर जाता है।

आउक्खयं चेव अबुज्झमाणे,
ममाति से साहसकारि मंदे।
अहो य राओ परितप्पमाणे,
अट्टे सुमूढे अजरामरव्व॥

आयु-क्षय को नहीं समझता हुआ ममत्वशाली पापकर्म करने का साहस करता रहता है। वह दिन-रात चिन्ता से संतप्त रहता है। वह मूढ़ स्वयं को अजर-अमर के समान मानता हुआ (धन आदि पदार्थ) में मोहित रहता है।

जहाहि वित्तं पसवो य सव्वे,
जे बांधवा जे य पिता य मित्ता।
लालप्पती सो वि य एइ मोहं,
अन्ने जणा तं सि हरंति वित्तं॥
—सूय. सु १, अ. १०, गा. १८-१९

समाधि का इच्छुक व्यक्ति धन और पशु आदि सब पदार्थों का (ममत्व) त्याग करे। जो बान्धव और प्रिय मित्र हैं, वे वस्तुतः लोकोत्तर उपकार नहीं करते हैं तथापि मनुष्य उनके वियोग से शोकाकुल होकर विलाप करता है, और मोह को प्राप्त होता है। (उसके मर जाने पर) उसके (द्वारा अत्यधिक कष्ट से उपार्जित) धन का दूसरे लोग ही हरण कर लेते हैं।

परिग्गहे आसत्ति णिसेहो—

परिग्रह में आसक्ति का निषेध—

परिग्गहाओ अप्पाणं अवसक्केज्जा।
अण्णहा णं पासए परिहरेज्जा।

परिग्रह से स्वयं को दूर रखे।

जिस प्रकार गृहस्थ परिग्रह को ममत्व भाव से देखते हैं उस प्रकार न देखे, अन्य प्रकार से देखे और परिग्रह का वर्जन करे।

एस मग्गे आरिएहिं पवेदिते, जहेत्थ कुसले णोवलिंपिज्जासि त्ति बेमि।
—आ. सु. १, अ. २, उ. ५, सु ८९(घ)

यह (अनासक्ति का) मार्ग आर्य—तीर्थंकरों ने प्रतिपादित किया है, जिससे कुशल पुरुष (परिग्रह में) लिप्त न हो। ऐसा मैं कहता हूँ।

परिग्गहं महाभयं—

परिग्रह महाभय—

६६६. से सुपडिबुद्धं सुविणियंति णच्चा पुरिसा परमचक्खू। विपरिक्कम एतेसु चेव बंभचेरं त्ति बेमि।
—आ. सु. १, अ. ५, उ. २, सु. १५५

६६६. (परिग्रह महाभय का हेतु है) यह (प्रत्यक्षज्ञानी के द्वारा) सम्यक् प्रकार से दृष्ट और उपदेशित है। (इसलिए) परमचक्षुष्मान् पुरुष (परिग्रह-संयम के लिए) पराक्रम करे। परिग्रह का संयम करने वालों में ही ब्रह्मचर्य होता है। ऐसा मैं कहता हूँ।

परिग्गहमुत्ति एव मुत्ति—

परिग्रह-मुक्ति ही मुक्ति है—

६६७. [थावरं जंगमं चेव, धणं धण्णं उवक्खरं।
पच्चमाणस्स कम्मेहिं, नालं दुक्खाउ मोयणे।]
—उत्त. अ. ६, गा. ५

६६७. (चल और अचल सम्पत्ति, धन, धान्य और गृहोपकरण—ये सभी पदार्थ कर्मों से दुःख पाते हुए प्राणी को दुःख से मुक्त करने में समर्थ नहीं होते हैं।)

परिग्गहेण दुहं अपरिग्गहेणं सुहं—

परिग्रह से दुःख—अपरिग्रह से सुख—

६६८. धम्मस्स य पारए मुणी, आरम्भस्स य अंतए ठिए।
सोयंति य णं ममाइणो, णो य लभंति णियं परिग्गहं॥

६६८. जो पुरुष धर्म का पारगामी है और आरम्भ के अन्त (अभाव) में स्थित है, (वही) मुनि है। ममत्वयुक्त पुरुष शोक करते हैं, फिर भी अपने परिग्रह को नहीं पाते।

इए लोगे दुहावहं विऊ, परलोगे य दुहं दुहावहं।
विद्धंसणधम्ममेव तं, इति विज्जं को गारमावसे ? ॥
—सूय. सु. १, अ. २, गा. ६-१०

परिग्रह इस लोक में दुःख देने वाला है और परलोक में भी दुःख उत्पन्न करने वाला है, तथा वह विध्वंसक (विनश्वर) स्वभाव वाला है, ऐसा जानने वाला कौन पुरुष गृह-निवास कर सकता है ?

सुहोवाय परूवणं—

६६९. आयावयाही चय सोगमल्लं, कामे कमाही कमियं खु दुक्खं।
छिंदाही दोसं विणएज्ज रागं, एवं सुही होहिसि संपराए ॥
—दस. अ. २, गा. ५

सुखी होने के उपाय का प्ररूपण—

६६९. अपने को तपा। सुकुमारता का त्याग कर। काम-विषय-वासना का अतिक्रम कर। इससे दुःख अपने-आप अतिक्रांत हो जाएगा। द्वेष भाव को छिन्न कर, राग-भाव को दूर कर। ऐसा करने से तू संसार (इहलोक और परलोक) में सुखी होगा।

तण्हाए लयोवमा —

६७०. प०—अन्तोहियय—संभूया, लया चिट्ठइ गोयमा !
फलेइ विसभक्खीणि सा उ उद्धरिया कहं ? ॥
उ०—तं लयं सव्वसो छित्ता, उद्धरित्ता समूलियं।
विहरामि जहानायं, मुक्को मि विसभक्खणं ॥

प०—लया य इइ का वुत्ता, केसी गोयममब्बवी।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥
उ०—भवतण्हा लया वुत्ता, भीमा भीमफलोदया।
तमुद्धरित्तु जहानायं, विहरामि महामुणी ॥
—उत्त. अ. २३, गा. ४५-४८

तृष्णा को लता की उपमा—

६७०. प्र०—"हे गौतम ! हृदय के भीतर उत्पन्न एक लता है। उसके विष-तुल्य फल लगते हैं। उसे तुमने कैसे उखाड़ा ?"

उ० —"उस लता को सर्वथा काटकर एवं जड़ से उखाड़कर नीति के अनुसार मैं विचरण करता हूँ। अतः मैं विषफल खाने से मुक्त हूँ।"

प्र०—केशी ने गौतम को कहा—"वह लता कौन सी है ?"
केशी के पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा—

उ०—"भवतृष्णा ही भयंकर लता है। उसके भयंकर परिपाक वाले फल लगते हैं। हे महामुने ! उसे जड़ से उखाड़कर मैं नीति के अनुसार विचरण करता हूँ।"

अट्ठलोलुपा दंडं समारभंति—

६७१. अहो य राओ य परितप्पमाणे कालाकालसमुट्ठायी संजोगट्ठी अट्ठालोभी आलुंपे सहसक्कारे विणिविट्ठचित्ते एत्थ सत्थे पुणो पुणो।

से आतबले, से णातबले, से मित्तबले, से पेच्चबले, से देवबले, से रायबले, से चोरबले, से अतिथिबले, से किवणबले, से समणबले,

इच्चेतेहिं विरूवरूवेहिं कज्जेहिं दंडसमादाणं, संपेहाए भया कज्जति, पावमोक्खो त्ति मण्णमाणे अदुवा आसंसाए।

अर्थलोलुप हिंसा करते हैं—

६७१. (जो विषयों से निवृत्त नहीं होता) वह रात-दिन परितप्त रहता है। काल या अकाल में (धन आदि के लिए) सतत प्रयत्न करता रहता है। विषयों को प्राप्त करने का इच्छुक होकर वह धन का लोभी बनता है। चोर व लुटेरा बन जाता है। उसका चित्त व्याकुल व चंचल बना रहता है और वह पुनः-पुनः शस्त्र-प्रयोग (हिंसा व संहार) करता रहता है।

वह आत्मबल (शरीर बल), ज्ञातिबल, मित्रबल, प्रेत्य बल, देवबल, राजबल, चोरबल अतिथिबल, कृपणबल और श्रमण-बल का संग्रह करने के लिए अनेक प्रकार के कार्यों (उपक्रमों) द्वारा दण्ड (हिंसा) का प्रयोग करता है।

कोई व्यक्ति किसी कामना के लिए दण्ड का प्रयोग करता है (अथवा किसी अपेक्षा से) कोई भय के कारण हिंसा आदि करता है। कोई पाप से मुक्ति पाने की भावना से (यज्ञ-बलि आदि द्वारा) हिंसा करता है। कोई किसी आशा (अप्राप्त को प्राप्त करने की लालसा) से हिंसा-प्रयोग करता है।

तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं एतेहिं कज्जेहिं दंडं समारंभेज्जा, णेवऽण्णं एतेहिं कज्जेहिं दंडं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे एतेहिं कज्जेहिं दंडं समारंभंते समणुजाणेज्जा।

एस मग्गे आरिएहिं पवेदिते जहेत्थ कुसले णोवलिंपेज्जासि त्ति बेमि। —आ. सु. १, अ. २, उ. २, सु. ७२-७४

यह जानकर मेधावी पुरुष पहले बताये गये प्रयोजनों के लिए स्वयं हिंसा न करे, दूसरों से हिंसा न करवाये तथा हिंसा करने वाले का अनुमोदन न करे।

यह मार्ग आर्य-पुरुषों ने (तीर्थंकरों ने) बताया है। कुशल पुरुष इन विषयों में लिप्त न हों। ऐसा मैं कहता हूँ।

लोभ-णिसेहो—

६७२. कसिणं पि जो इमं लोयं, पडिपुण्णं दलेज्ज इक्कस्स।
तेणावि से न संतुस्से, इइ दुप्पूरए इमे आया॥

जहा लाभो तहा लोभो लाभा लोभो पवड्ढई।
दोमासकयं कज्जं, कोडीए वि न निट्ठियं॥
—उत्त. अ. ८, गा. १६-१७

लोभ-निषेध—

६७२. धन्य धान्य से परिपूर्ण यह समूचा लोक भी यदि कोई किसी को दे दे—उससे भी वह सन्तुष्ट नहीं होता—तृप्त नहीं होता, इतना दुष्पूर (लोभाभिभूत) है यह आत्मा।

जैसे-जैसे लाभ होता है, वैसे-वैसे लोभ बढ़ता है। दो माशा सोने से निष्पन्न होने वाला कार्य करोड़ों (स्वर्ण-मुद्राओं) से भी पूरा नहीं हुआ।

जीवियंतकरणे वि रोगायंके वि समुप्पन्ने ओसहाईणं संगह-णिसेहो—

६७३. जं पि य समणस्स सुविहियस्स उ रोगायंके बहुप्पगारंमि समुप्पन्ने।

वाताहिक-पित्त-सिंभ-अइरित्त-कुविय-तह-सन्निवातजाते व उदयपत्ते।

उज्जल-बल-विउल-कक्खड-पगाढदुक्खे।

असुह-कडुय-फरुसे।

चण्डफलविवागे।

महब्भए जीवियंतकरणे।

सव्वसरीरपरितावणकरे न कप्पइ तारिसे वि तह अप्पणो परस्स वा ओसह-भेसज्जं भत्त पाणं च तं पि संनिहिकयं।
—पण्ह. सु. २, अ. ५, सु. ७

जीवनविनाशी रोग होने पर भी औषधादि के संग्रह का निषेध—

६७३. सुविहित—आगमानुकूल चारित्र का परिपालन करने वाले साधु को यदि अनेक प्रकार के रोग और आतंक (जीवन को संकट या कठिनाई में डालने वाली व्याधि) उत्पन्न हो जाय।

वात—पित्त या कफ का अतिशय प्रकोप हो जाय, अथवा सन्निपात (उक्त दो या तीनों दोषों का एक साथ प्रकोप) हो जाए।

इसके कारण उज्ज्वल अर्थात् सुख के लेशमात्र से रहित प्रबल, विपुल, दीर्घकाल पर्यन्त कर्कश—अनिष्ट एवं प्रगाढ़ अर्थात् अत्यन्त तीव्र दुःख उत्पन्न हो जाये।

वह दुःख अशुभ या कटुक द्रव्य के समान (असुख-अनिष्ट रूप) हो, परुष (कठोर) हो,

दुःखमय दारुण फल वाला हो,

महान् भय उत्पन्न करने वाला हो, जीवन का अन्त करने वाला हो,

समग्र शरीर में परिताप उत्पन्न करने वाला हो, तो ऐसा दुःख उत्पन्न होने की स्थिति में भी स्वयं अपने लिए तथा दूसरे साधु के लिए औषध, भैषज्य, आहार तथा पानी का संचय करके रखना नहीं कल्पता है।

असणाईणं संगह-निसेहो—

६७४. तहेव असणं पाणगं वा, विविहं खाइम साइमं लभित्ता।
होही अट्ठो सुए परे वा, तं न निहे न निहावए जे स भिक्खू।
—दस. अ. १०, गा. ८

सन्निहिं च न कुव्वेज्जा, लेवमायाए संजए।
पक्खी पत्तं समादाय, निरवेक्खो परिव्वए॥
—उत्त. अ. ६, गा. १५

अशनादि के संग्रह का निषेध—

६७४. पूर्वोक्त विधि से विविध अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य को प्राप्त कर कल या परसों काम आयेगा—इस विधि से जो न सन्निधि (संचय) करता है और न कराता है—वह भिक्षु है।

संयमी मुनि लेप लगे उतना भी संग्रह न करे—बासी न रखे। पक्षी की भाँति कल की अपेक्षा न रखता हुआ पात्र लेकर भिक्षा के लिए पर्यटन करे।

बाला कूरकम्माइं कुव्वंति—

६७५. ततो से एगया रोगसमुप्पाया समुप्पज्जंति ।

जेहिं वा सद्धिं संवसति ते व णं एगया णियगा पुव्विं परिवयंति, सो वा ते णियए पच्छा परिवएज्जा ।

णालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा ।

तुमं पि तेसिं णालं ताणाए वा सरणाए वा ।
जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं ।

भोगामेव अणुसोयंति,

इहमेगेसिं माणवाणं तिविहेण जा वि से तत्थ मत्ता भवति अप्पा वा बहुया वा ।

से तत्थ गढिते चिट्ठति भोयणाए ।

ततो से एगया विप्परिसिट्ठं संभूतं महोवकरणं भवति तं पि से एगया दायादा विभयंति, अदत्तहारो वा सेऽवहरंति, रायाणो वा से विलुंपंति, णस्सति वा से, विणस्सति वा से, अगारदाहेणं वा से डज्झति ।

इति से परस्स अट्ठाए कूराइं कम्माइं बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेति ।

—आ. सु. १, अ. २, उ. ४, सु. ८१-८२

बालजीव क्रूर कर्म करते हैं—

६७५. कभी एक समय ऐसा आता है, जब उस अर्थ-संग्रही मनुष्य के शरीर में (भोग-काल में) अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं ।

वह जिनके साथ रहता है, वे ही स्व-जन एकदा (रोगग्रस्त होने पर) उसका तिरस्कार व निन्दा करने लगते हैं । बाद में वह भी उनका तिरस्कार व निन्दा करने लगता है ।

हे पुरुष ! वे स्वजनादि तुझे त्राण देने में, शरण देने में समर्थ नहीं हैं ।

तू भी उन्हें त्राण या शरण देने में समर्थ नहीं है ।
दुःख और सुख प्रत्येक आत्मा का अपना-अपना है, यह जानकर (इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करे) ।

कुछ मनुष्य, जो इन्द्रियों पर विजय प्राप्त नहीं कर पाते, वे बार-बार भोग के विषय में ही (ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की तरह) सोचते रहते हैं ।

यहाँ पर कुछ मनुष्यों को (जो विषयों की चिन्ता करते हैं ।) (तीन प्रकार से) अपने, दूसरों के अथवा दोनों के सम्मिलित प्रयत्न से अल्प या बहुत अर्थ-मात्रा (धन-सम्पदा) हो जाती है । वह फिर उस अर्थ-मात्रा में आसक्त होता है । भोग के लिए उसकी रक्षा करता है ।

भोग के बाद बची हुई विपुल सम्पत्ति के कारण वह महान् वैभव वाला बन जाता है । फिर जीवन में कभी ऐसा समय आता है जब दामाद हिस्सा बँटाते हैं, चोर उसे चुरा लेते हैं, राजा उसे छीन लेते हैं, वह अन्य प्रकार से नष्ट-विनष्ट हो जाती है । गृह दाह आदि से जलकर भस्म हो जाती है ।

अज्ञानी मनुष्य इस प्रकार दूसरों के लिए अनेक क्रूरकर्म करता हुआ (दुःख के हेतु का निर्माण करता है) फिर दुःखोदय होने पर वह मूढ़ बनकर विपर्यास भाव को प्राप्त होता है ।

मूढा धम्मं न जाणंति—

६७६. थीभि लोए पव्वहिते ।

ते भो ! वयंति एयाइं आयतणाइं ।

से दुक्खाए मोहाए माराए णरगाए णरगतिरिक्खाए ।

सततं मूढे धम्मं णाभिजाणति ।
उदाहु वीरे—अप्पमादो महामोहे,

मूर्ख धर्म को नहीं जानते हैं—

६७६. यह संसार स्त्रियों के द्वारा पराजित है (अथवा प्रव्यथित-पीड़ित है)

हे पुरुषो ! वे (स्त्रियों से पराजित जन) कहते हैं—"ये स्त्रियाँ आयतन हैं ।" (भोग की सामग्री है) ।

(किन्तु उनका) यह कथन-धारणा दुःख के लिए एवं मोह, मृत्यु, नरक तथा नरकान्तर तिर्यंचगति के लिए होता है ।

सतत मूढ़ रहने वाला मनुष्य धर्म को नहीं जान पाता ।
भगवान् महावीर ने कहा है—"महामोह" में अप्रमत्त रहे । अर्थात् विषयों के प्रति अनासक्त रहे ।

अलं कुसलस्स पमादेणं, संतिमरणं सपेहाए, भेउरधम्मं सपेहाए। णालं पास।

बुद्धिमान् पुरुष को प्रमाद से बचना चाहिए। शान्ति (मोक्ष) और मरण (संसार) को देखने-समझने वाला (प्रमाद न करे) यह शरीर क्षणभंगुर धर्म (नाशमान) है, यह देखने वाला (प्रमाद न करे)।

अलं ते एतेहिं। एतं पास मुणि! महब्भयं! णातिवातेज्ज कंचणं।

—आ. सु. १, अ. २, उ. ४, सु. ८४-८५

ये भोग (तेरी अतृप्ति की प्यास बुझाने में) समर्थ नहीं हैं। यह देख। तुझे इन भोगों से क्या प्रयोजन है? हे मुनि! यह देख, ये भोग महान् भय रूप हैं। भोगों के लिए किसी प्राणी की हिंसा न करे।

✻✻

आसक्ति-निषेध—४

सव्वण्णु एव सव्वासवं जाणइ—

६७७. उड्ढं सोता, अहे सोता, तिरियं सोता वियाहिता।
एते सोता वियक्खाता जेहिं संगं ति पासहा॥

आवट्टमेयं तु पेहाए एत्थ विरमेज्ज वेदवी।

विणएत्तु सोतं णिक्खम्म एस महं अकम्मा जाणति, पासति, पडिलेहाए, णावकंखति। इह आगतिं गतिं परिण्णाय।

—आ. सु. १, अ. ५, उ. ६, सु. १७४-१७६(क)

सर्वज्ञ ही सर्व आस्रवों को जानते हैं—

६७७. ऊपर (आसक्ति) के स्रोत हैं, नीचे स्रोत हैं मध्य में स्रोत हैं। ये स्रोत कर्मों के आस्रवद्वार कहे गये हैं जिनके द्वारा समस्त प्राणियों को आसक्ति पैदा होती है, ऐसा तुम देखो।

(रागद्वेष-कषाय-विषयावर्त रूप) भावावर्त का निरीक्षण करके आगमविद् पुरुष उससे विरत हो जाये।

विषयासक्तियों के या आस्रवों के स्रोत को हटाकर निष्क्रमण करने वाला यह महान साधक अकर्म होकर लोक को प्रत्यक्ष जानता, देखता है। अन्तर्निरीक्षण करने वाला साधक इस लोक में संसार-भ्रमण और उसके कारण की परिज्ञा करके उनकी आकांक्षा नहीं करता।

रइ-णिसेहो—

६७८. विसएसु मणुन्नेसु, पेमं नाभिनिवेसए।
अणिच्चं तेसिं विन्नाय, परिणामं पोग्गलाण उ॥

पोग्गलाणपरिणामं, तेसिं नच्चा जहा तहा।
विणीयतण्हो विहरे, सीईभूएण अप्पणा॥

—दस. अ. ८, गा. ५८-५९

रति-निषेध—

६७८. शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श इन पुद्गलों के परिणमन को अनित्य जानकर ब्रह्मचारी मनोज्ञ विषयों में राग भाव न करे।

इन्द्रियों के विषयभूत पुद्गलों के परिणमन को, जैसा है वैसा जानकर अपनी आत्मा को उपशान्त कर तृष्णा-रहित हो विहार करे।

अरइ-णिसेहो—

६७९. चिरं भिक्खुं रीयंतं विरतातोसियं अरती तत्थ किं विधारए?

संधेमाणे समुट्ठिते।

अरति-निषेध—

६७९. चिरकाल से मुनिधर्म में प्रव्रजित विरत और संयम में गतिशील भिक्षु को क्या अरति दबा सकती है?

(प्रतिक्षण आत्मा के साथ) संधान करने वाले तथा सम्यक् प्रकार से उत्थित मुनि को (अरति अभिभूत नहीं कर सकती।)

जहा से दीवे असंदीणे एवं से धम्मे आरियपदेसिए ।

जैसे असंदीन (जल में नहीं डूबा हुआ) द्वीप आश्वासन-स्थान होता है, वैसे ही आर्य (तीर्थंकर) द्वारा उपदिष्ट धर्म (संसार-समुद्र पार करने वालों के लिए आश्वासन-स्थान) होता है।

ते अणवकंखमाणा अणतिवातेमाणा दइता मेधाविणो पंडिता ।

मुनि आकांक्षा तथा प्राण-वध न करने के कारण लोकप्रिय मेधावी और पण्डित कहे जाते हैं।

एवं तेसिं भगवंतो अणुट्ठाणे जहा से दियापोते । एवं ते सिस्सा दिया य अणुपुव्वेण वायित ।

—आ. सु. १, अ. ६, उ. ३, सु. १८६

जिस प्रकार पक्षी के बच्चों का पालन किया जाता है, उसी प्रकार धर्म में जो अभी तक अनुत्थित है, उन शिष्यों का वे (महाभाग-आचार्य) क्रमशः वाचना द्वारा दिन-रात पालन (संवर्द्धन) करते हैं।

अरतिं आउट्टे से मेधावी खणंसि मुक्के ।

—आ. सु. १, अ. २, उ. २, सु. ६६

जो अरति (चैतसिक उद्वेग) का निवर्तन करता है, वह मेधावी होता है।

रइ-अरइ णिसेहो—

रति-अरति-निषेध—

६८०. जे ममाइयमतिं जहाति से जहाति ममाइयं ।

६८०. जो ममत्व बुद्धि का त्याग करता है, वह ममत्व का त्याग करता है।

से हु दिट्ठपहे मुणी जस्स णत्थि ममाइयं ।

वही दृष्ट-पथ (मोक्ष मार्ग को देखने वाला) मुनि है, जिसने ममत्व का त्याग कर दिया।

तं परिण्णाय मेहावी विदित्ता लोगं, वंता लोगसण्णं से मतिमं परक्कमेज्जासि त्ति बेमि ।

उस को (उक्त दृष्टिबिन्दु को) जानकर मेधावी लोकस्वरूप को जाने। लोक-संज्ञा का त्याग करे, तथा संयम में पुरुषार्थ करे। वास्तव में उसे ही मतिमान (बुद्धिमान) पुरुष कहा गया है—ऐसा मैं कहता हूँ।

णारतिं सहति वीरे, वीरे णो सहति रतिं ।
जम्हा अविमणे वीरे तम्हा वीरे ण रज्जति ।

वीर साधक अरति (संयम के प्रति अरुचि) को सहन नहीं करता, और रति (विषयों की अभिरुचि) को भी सहन नहीं करता। इसलिए वीर इन दोनों में ही अविमनस्क—स्थिर-शान्त-मना रहकर रति-अरति में आसक्त नहीं होता।

सद्दे फासे अधियासमाणे णिव्विंद णंदिं इह जीवियस्स ।

—आ. सु. १, अ. २, उ. ६, सु. ९७-९९(क)

मुनि शब्द (रूप, रस, गन्ध) और स्पर्श को सहन करता है। इस असंयमी जीवन में होने वाले आमोद-प्रमोद आदि से विरत होता है।

भिक्खुणा न रइ कायव्वा, न अरइ कायव्वा—

भिक्षु को न रति करनी चाहिए और न अरति करनी चाहिए—

६८१. अरतिं रतिं च अभिभूय भिक्खू,
बहूजणे वा तह एगचारी ।
एगंतमोणेण वियागरेज्जा,
एगस्स जंतो गतिरागती य ॥

६८१. साधु संयम में अरति (अरुचि) और असंयम में रति (रुचि) को त्यागकर बहुत से साधुजनों के साथ रहता हो या अकेला रहता है। जो बात मौन (मुनिधर्म या संयम) से सर्वथा अविरुद्ध हो, वही कहे। (यह ध्यान रखे कि) जीव अकेला ही जाता है, और अकेला ही आता है।

सयं समेच्चा अदुवा वि सोच्चा,
भासेज्ज धम्मं हितदं पयाणं ।
जे गरहिया सणियाणप्पओगा,
ण ताणि सेवंति सुधीरधम्मा ॥

—सूय. सु. १, अ. १३, गा. १८-१९

स्वयं जिनोक्त धर्म (सिद्धान्त) को भलीभाँति जानकर अथवा दूसरे से सुनकर प्रजाओं (जनता) के लिए हितकारक धर्म का उपदेश दे। जो कार्य निन्द्य (गर्हित) है, अथवा जो कार्य निदान (सांसारिक फलाकांक्षा) सहित किये जाते हैं, सुधीर वीतराग धर्मानुयायी साधक उनका सेवन नहीं करते।

रागणिग्गहोवायं—

६८२. समाए पेहाए परिव्वयंतो, सिया मणो निस्सरई बहिद्धा ।
न सा महं नोवि अहं पि तीसे, इच्चेव ताओ विणएज्ज रागं ॥
—दस. अ. २, गा. ४

रागशमन के उपाय—

६८२. समदृष्टिपूर्वक विचरते हुए भी यदि कदाचित् मन (संयम से) बाहर निकल जाये तो यह विचार करे कि "वह मेरी नहीं है और न मैं ही उसका हूँ।" मुमुक्षु उसके प्रति होने वाले विषय-राग को दूर करे।

अब्भिंतर पासपरिग्गहपासबद्धा पाणिणो—

६८३. प०—दीसन्ती बहवे लोए, पासबद्धा सरीरिणो ।
मुक्कपासो लहुब्भूओ, कहं तं विहरसी मुणी ॥

उ०—ते पासे सव्वसो छित्ता, निहन्तूण उवायओ ।
मुक्कपासो लहुब्भूओ, विहरामि अहं मुणी ॥

प०—पासा य इइ के वुत्ता, केसी गोयममब्बवी ।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥

उ०—रागद्दोसादओ तिव्वा, नेहपासा भयंकरा ।
ते छिन्दित्तु जहानायं, विहरामि जहक्कमं ॥
—उत्त. अ. २३, गा. ४०-४३

आभ्यन्तर परिग्रह के पाश से बद्ध प्राणी—

६८३. प्र०—"इस संसार में बहुत से शरीरधारी जीव (मोह के अनेक) पाशों से बद्ध हैं। मुने! तुम बन्धन से मुक्त और लघुभूत (प्रतिबन्ध रहित हल्के) होकर कैसे विचरण करते हो?"

उ०—"मुने! मैं उन बन्धनों को सब प्रकार से काटकर, उपायों से विनष्ट कर, बन्धन-मुक्त और हल्का होकर विचरण करता हूँ।"

प्र०—"गौतम! वे बन्धन कौन से हैं?" केशी ने गौतम से पूछा। केशी के पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा—

उ०—"तीव्र रागद्वेषादि और स्नेह भयंकर बन्धन है। उन्हें काटकर धर्म-नीति एवं आचार के अनुसार मैं विचरण करता हूँ।"

अब्भिंतर-परिग्गहविरओ पंडिओ—

६८४. से असइं उच्चागोए, असइं णीयागोए। णो हीणे, णो अतिरित्ते। णो पीहए।

इति संखाए के गोतावादी? के माणावादी? कंसि वा एगे गिज्झे?

तम्हा पंडिते णो हरिसे, णो कुज्झे।

भूतेहिं जाण पडिलेह सातं। समिते एयाणुपस्सी तं जहा—

अंधत्तं बहिरत्तं मूकत्तं काणत्तं कुंटत्तं खुज्जत्तं वडभत्तं सामत्तं सबलत्तं।

सह पमादेणं अणेगरूवाओ जोणीओ संधेति, विरूवरूवे फासे पडिसंवेदयति।

से अबुज्झमाणे हतोवहते जाती-मरणं अणुपरियट्टमाणे।
—आ. सु. १, अ. २, उ. ३, सु. ७५-७६

आभ्यन्तर परिग्रह से विरत पण्डित—

६८४. यह पुरुष (आत्मा) अनेक बार उच्च गोत्र और अनेक बार नीच गोत्र को प्राप्त हो चुका है। इसलिए यहाँ न तो कोई हीन है और न कोई अतिरिक्त (विशेष उच्च) है। यह जानकर उच्च-गोत्र की स्पृहा न करे।

यह (उक्त तथ्य को) जान लेने पर कौन गोत्रवादी होगा? कौन मानवादी होगा? और कौन किस एक गोत्र (स्थान) में आसक्त होगा?

इसलिए विवेकशील मनुष्य उच्चगोत्र प्राप्त होने पर हर्षित न हो और नीच गोत्र प्राप्त होने पर कुपित (दुःखी) न हो।

प्रत्येक जीव को सुख प्रिय है, यह तू देख, इस पर सूक्ष्मतापूर्वक विचार कर। जो समित (सम्यग्दृष्टिसम्पन्न) है वह इस (जीवों के इष्ट-अनिष्ट कर्मविपाक) को देखता है। जैसे—

अन्धापन, बहरापन, गूंगापन, कानापन, लूला-लंगड़ापन, कुबड़ापन, बौनापन, कालापन, चितकबरापन (कुष्ट आदि चर्मरोग) आदि की प्राप्ति अपने प्रमाद के कारण होती है।

वह अपने प्रमाद (कर्म) के कारण ही नाना प्रकार की योनियों में जाता है और विविध प्रकार के आघातों-दुःखों-वेदनाओं का अनुभव करता है।

वह प्रमादी पुरुष कर्म-सिद्धान्त को नहीं समझता हुआ शारीरिक दुःखों से हत तथा मानसिक पीड़ाओं से उपहत (पुनः-पुनः पीड़ित) होता हुआ जन्म-मरण के चक्र में बार-बार भटकता है।

परिग्गहविरओ पावकम्मविरओ होइ—

६८५. से भिक्खू जे इमे कामभोगा सचित्ता वा अचित्ता वा ते णो सयं परिगिण्हति, नेवऽण्णेणं परिगिण्हावेति, अण्णं परिगिण्हंतं पि ण समणुजाणइ, इति से महया आदाणातो उवसंते उवट्ठिते पडिविरते।

—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६८५

परिग्रहविरत पापकर्मविरत होता है—

६८५. जो ये सचित्त या अचित्त काम-भोग (के साधन) हैं, वह भिक्षु स्वयं उनका परिग्रह नहीं करता, न दूसरों से परिग्रह कराता है, और न ही परिग्रह करने वाले व्यक्ति का अनुमोदन करता है। इस कारण से वह भिक्षु महान् कर्मों के आदान (ग्रहण या बन्ध) से मुक्त हो जाता है, शुद्ध संयम पालन में उपस्थित होता है, और पापकर्मों से विरत हो जाता है।

गोला रूवगं—

६८६. उल्लो सुक्को य दो छूढा, गोलया मट्टियामया।
दो वि आवडिया कुड्डे, जो उल्लो सोऽत्थ लग्गई॥

एवं लग्गन्ति दुम्मेहा, जे नरा कामलालसा।
विरत्ता उ न लग्गन्ति, जहा सुक्को उ गोलए॥

—उत्त. अ. २५, गा. ४०-४१

गोलों का रूपक—

६८६. "एक गीला और एक सूखा, ऐसे दो मिट्टी के गोले फेंके गये। वे दोनों दीवार पर गिरे। जो गीला था, वह वहीं चिपक गया।"

"इसी प्रकार जो मनुष्य दुर्बुद्धि और काम-भोगों में आसक्त हैं, वे विषयों में चिपक जाते हैं। विरत साधक सूखे गोले की भाँति नहीं लगते हैं।"

भोगनियट्टी कुज्जा—

६८७. अधुवं जीवियं नच्चा सिद्धिमग्गं वियाणिया।
विणियट्टेज्ज भोगेसु, आउं परिमियमप्पणो॥

—दस. अ. ८, गा. ३४

भोगों से निवृत्त हो—

६८७. मुमुक्षु जीवन को अनित्य और अपनी आयु को परिमित जान तथा सिद्धि मार्ग का ज्ञान प्राप्त कर भोगों से निवृत्त बने।

मणुण्णामणुण्णेसु काम-भोगेसु राग-दोस णिग्गहो कायव्वो—

६८८. जे विण्णवणाहिऽज्झोसिया, संतिण्णेहि समं वियाहिया।
तम्हा उड्ढं ति पासहा, अदक्खू कामाइं रोगवं॥

अग्गं वणिएहि आहियं,
धारेंती राईणिया इहं।
एवं परमा महव्वया,
अक्खाया उ सराइभोयणा॥

जे इह सायाणुगा नरा,
अज्झोववन्ना कामेसु मुच्छिया।
किवणेण समं पगब्भिया,
न वि जाणंति समाहिमाहियं॥

वाहेण जहा व विच्छते,
अबले होइ गवं पचोइए।
से अंतसो अप्पथामए,
नातिवहति अबले विसीयति॥

मनोज्ञ और अमनोज्ञ कामभोगों में राग-द्वेष का निग्रह करना चाहिए—

६८८. जो साधक स्त्रियों से आसक्त नहीं हैं, वे मुक्त (संसार-सागर) सन्तीर्ण के समान कहे गये हैं। इसलिए तुम ऊर्ध्व (मोक्ष) की ओर देखो और काम-भोगों को रोगवत् देखो।

जैसे इस लोक में वणिकों-व्यापारियों द्वारा लाये हुए उत्तमोत्तम सामान (रत्न आभूषण आदि) को राजा-महाराजा आदि लेते हैं, या खरीदते हैं, इसी प्रकार आचार्यों द्वारा प्रतिपादित रात्रिभोजनत्याग सहित पाँच परम महाव्रतों को कामविजेता श्रमण ग्रहण धारण करते हैं।

इस लोक में जो मनुष्य (सुख के पीछे दौड़ते हैं) वे, अत्यासक्त हैं और काम-भोगों में मूच्छित हैं, वे कृपण (इन्द्रियविषयों के लालची) के समान काम-सेवन में धृष्ट बने रहते हैं। वे (महावीर द्वारा कथित) समाधि को नहीं समझते।

जैसे गाड़ीवान के द्वारा चाबुक मारकर प्रेरित किया हुआ बैल कमजोर हो जाता है, अतः वह विषम-कठिन मार्ग में चल नहीं सकता, आखिरकार वह अल्प सामर्थ्य वाला (दुर्बल बैल) भार वहन नहीं कर सकता, अपितु कीचड़ आदि में फँसकर क्लेश पाता है।

एवं कामेसणविदू,
अज्ज सुए पयहेज्ज संथवं ।
कामी कामे ण कामए,
लद्धे वा वि अलद्ध कण्हुई ॥

मा पच्छ असाहुया भवे,
अच्चेही अणुसास अप्पगं ।
अहियं च असाहु सोयती,
से थणती परिदेवती बहुं ॥
इह जीवियमेव पासहा,
तरुणए वाससयाउ तुट्टती ।
इत्तरवासे व बुज्झहा,
गिद्धनरा कामेसु मुच्छिया ॥
—सूय. सु. १, अ. २, उ. ३, गा. २-८

इसी तरह काम के अन्वेषण में निपुण पुरुष आज या कल में कामभोगों का संसर्ग (छोड़ने का विचार किया करता है,) छोड़ नहीं सकता । अतः कामी पुरुष कामभोग की कामना ही न करे, तथा कहीं से प्राप्त हुए कामभोग को अप्राप्त के समान जाने (यही अभीष्ट है ।)

मरणकाल में असाधुता (शोक या अनुताप) न हो अतः तू कामभोगों का त्यागकर स्वयं को अनुशासित कर (जो असाधु) असंयमी पुरुष होता है वह अत्यधिक शोक करता है, क्रन्दन करता है, और बहुत विलाप करता है ।

इस लोक में अपने जीवन को ही देख लो, सौ वर्ष की आयु वाले मनुष्य का जीवन तरुणावस्था (युवावस्था) में ही नष्ट हो जाता है । अतः इस जीवन को थोड़े दिन के निवास के समान समझो (ऐसी स्थिति में) क्षुद्र या अविवेकी मनुष्य ही कामभोगों में मूच्छित होते हैं ।

सव्वे कामभोगा दुहावहा—

६८९. सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडम्बियं ।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥

बालाभिरामेसु दुहावहेसु, न तं सुहं कामगुणेसु रायं ।
विरत्तकामाण तवो धणाणं, जं भिक्खुणं सीलगुणे रयाणं ॥
—उत्त. अ. १३, गा. १६-१७

सभी कामभोग दुःखदायी हैं—

६८९. सब गीत (गायन) विलाप हैं, समस्त नाट्य विडम्बना से भरे हैं, सभी आभूषण भाररूप हैं और सभी कामभोग दुःखावह (दुःखोत्पादक) हैं ।

अज्ञानियों को रमणीय प्रतीत होने वाले, (किन्तु वस्तुतः) दुःखजनक कामभोगों में वह सुख नहीं है, जो सुख शीलगुणों में रत, कामभोगों से विरक्त तपोधन भिक्षुओं को प्राप्त होता है ।

कामभोगाभिकंखी परितप्पइ

६९०. कामा दुरतिक्कमा । जीवियं दुप्पडिबूहगं ।

कामकामी खलु अयं पुरिसे से सोयति जूरति तिप्पति पिड्डति परितप्पति ।

आयतचक्खू लोगविपस्सी लोगस्स अहे भागं जाणति, उड्ढं भागं जाणति, तिरियं भागं जाणति ।

गढिए अणुपरियट्टमाणे ।

संधिं विदित्ता इह मच्चिएहिं ।

एस वीरे पसंसिते जे बद्धे पडिमोयए ।
—आ. सु. १, अ. २, उ. ५, सु. ९०-९१

काम भोगाभिलाषी दुःखी होता है—

६९०. ये काम दुर्लंघ्य हैं । जीवन (आयुष्य जितना है, उसे) बढ़ाया नहीं जा सकता, (तथा आयुष्य की टूटी डोरी को पुनः सांधा नहीं जा सकता ।)

पुरुष काम-भोग की कामना रखता है । (किन्तु वह परितृप्त नहीं हो सकती, इसलिए) वह शोक करता है (काम की अप्राप्ति तथा वियोग होने पर खिन्न होता है) फिर वह शरीर से सूख जाता है, आँसू बहाता है । पीड़ा और परिताप (पश्चात्ताप) से दुःखी होता रहता है ।

दीर्घदर्शी पुरुष लोकदर्शी होता है । वह लोक के अधोभाग को जानता है, ऊर्ध्व भाग को जानता है, तिरछे भाग को जानता है ।

(काम-भोग में) गृद्ध हुआ आसक्त पुरुष संसार में (अथवा काम-भोग के पीछे) अनुपरिवर्तन—पुनः-पुनः चक्कर काटता रहता है ।

(दीर्घदर्शी यह भी जानता है) यहाँ (संसार में) मनुष्यों के सन्धि (मरणधर्मा शरीर) को जानकर विरक्त हो ।

वह वीर प्रशंसा के योग्य है (अथवा वीर प्रभु ने उसकी प्रशंसा की है) जो काम-भोग में बद्ध को मुक्त करता है ।

कामभोगेसु आसत्ति-णिसेहो—

६६१. लद्धे कामे ण पत्थेज्जा, विवेगे एसमाहिए।
आरियाइं सिक्खेज्जा, बुद्धाण अंतिए सया ॥
—सूय. सु. १, अ. ६, गा. ३२

अगिद्धे सद्द-फासेसु, आरंभेसु अणिस्सिते।
सव्वेतं समयातीतं, जमेतं लवितं बहु ॥
—सूय. सु. १, अ. ६, गा. ३५

लद्धा हुरत्था पडिलेहाए आगमेत्ता आणवेज्जा अणासेवणयाए।
—आ. सु. १, अ. ५, उ. १, सु. १४६(ग)

काम-भोगों में आसक्ति का निषेध—

६६१. लब्ध कामभोगों की इच्छा न करे। इसे विवेक कहा गया है। बुद्धों के पास सदा आचार की शिक्षा प्राप्त करे।

शब्द—यावत्—स्पर्श में अनासक्त तथा आरम्भ से अप्रतिबद्ध रहे। जो यह स्वरूप कहा गया है, वह सब समयातीत (त्रैकालिक) है।

प्राप्त कामभोगों को पर्यालोचना करके उनका सेवन न करने की आज्ञा दे और उनके कटु परिणामों का शिष्य को ज्ञान कराये।

कामगुणेसु मुच्छा-णिसेहो—

६६२. जे गुणे से आवट्टे, जे आवट्टे से गुणे।

उड्ढं अहं तिरियं पाईणं पासमाणे रूवाइं पासति, सुणमाणे सद्दाइं सुणेति।

उड्ढं अहं तिरियं पाईणं मुच्छमाणे रूवेसु मुच्छति, सद्देसु यावि।

एस लोगे वियाहिए।

एत्थ अगुत्ते अणाणाए।

पुणो पुणो गुणासाए वंकसमायारे पमत्ते गारमावसे।
—आ. सु. १, अ. १, उ. ५, सु. ४१

कामगुणों में मूर्च्छा का निषेध—

६६२. जो गुण (शब्दादि विषय) हैं, वह आवर्त-संसार है। जो आवर्त है वह गुण है।

ऊँचे, नीचे, तिरछे, सामने देखने वाला रूपों को देखता है, सुनने वाला शब्दों को सुनता है।

ऊँचे, नीचे, तिरछे, सामने विद्यमान वस्तुओं में आसक्ति करने वाला, रूपों में मूर्च्छित हो जाता है, शब्दों में मूर्च्छित हो जाता है।

यह आसक्ति ही संसार कहा जाता है।

जो पुरुष यहाँ (विषयों में) अगुप्त है। वह इन्द्रिय एवं मन से असंयत है और आज्ञा (धर्म शासन) के बाहर है।

जो पुनः-पुनः विषयों का आस्वादन करता है। उनका भोग-उपभोग करता है, वह वक्र समाचार अर्थात् असंयममय जीवन वाला है। वह प्रमत्त है। तथा गृहत्यागी कहलाते हुए भी वास्तव में गृहवासी ही है।

सद्दसवणासत्ति-णिसेहो—

६६३. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा मुइंगसद्दाणि वा नंदीसद्दाणी वा झल्लरीसद्दाणि वा अण्णतराणि वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं वितताइं सद्दाइं कण्णसोयपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगतियाइं सद्दाइं सुणेति, तं जहा - वीणासद्दाणी वा विपंचिसद्दाणि वा बद्धीसगसद्दाणि वा तुणयसद्दाणी वा पवणसद्दाणि वा तुंबवीणियसद्दाणी वा ढंकुणसद्दाणि वा, अण्णतराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाणि सद्दाणि तताइं कण्णसोयपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगतियाइं सद्दाइं सुणेति, तं जहा - तालसद्दाणि वा कंसतालसद्दाणि वा लत्तियसद्दाणि वा गोहियसद्दाणि वा किरिकिरिसद्दाणी वा अण्णतराणि वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं तालसद्दाइं कण्णसोयपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

शब्द-श्रवण की आसक्ति का निषेध—

६६३. संयमशील साधु या साध्वी मृदंग शब्द, नन्दीशब्द या झलरी (झालर या छैने) के शब्द तथा इसी प्रकार के अन्य वाद्यों के शब्दों को कानों से सुनने के उद्देश्य से कहीं भी जाने का मन में संकल्प न करे।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्दों को सुनते हैं, जैसे कि वीणा के शब्द, विपंची के शब्द, बद्धीसक के शब्द, तुनक के शब्द, ढोल के शब्द, तुम्बवीणा के शब्द, ढंकुण (वाद्य विशेष) के शब्द, या इसी प्रकार के विविध वीणादि के शब्दों को कानों से सुनने के लिए कहीं भी जाने का मन में विचार न करे।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं, जैसे कि—ताल के शब्द, कंसताल के शब्द, लत्तिका (कांसी) के शब्द, गोधिका (भाँड लोगों द्वारा कांख और हाथ में रखकर बजाये जाने वाले वाद्य) के शब्द या बांसुरी के शब्दों को कानों से सुनने के लिए कहीं भी जाने का मन में संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगतियाइं सद्दाइं सुणेति, तं जहा—संखसद्दाणि वा वेणुसद्दाणि वा वंससद्दाणि वा खरमुहिसद्दाणि वा पिरिपिरियसद्दाणि वा अण्णयराइं तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं सद्दाइं झुसिराइं कण्णसोयपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

साधु-साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं, जैसे कि—शंख के शब्द, वेणु के शब्द, बाँस के शब्द, खरमुही के शब्द, बांस आदि की नली के शब्द या इसी प्रकार के अन्य नाना शुषिर (छिद्रगत) शब्दों को कानों से सुनने के लिए कहीं भी जाने का मन में संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगइयाइं सद्दाइं सुणेति, तं जहा—वप्पाणि वा फलिहाणी वा-जाव-सराणि वा सरपंतियाणि वा सरसरपंतियाणि वा अण्णतराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं सद्दाइं कण्णसोयपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं, जैसे कि—खेत की क्यारियों में तथा खाइयों में होने वाले शब्द—**यावत्**—सरोवरों में, सरोवर की पंक्तियों में तथा तालाबों की अनेक पंक्तियों में होने वाले तथा इसी प्रकार के अन्य विविध शब्दों को कानों से सुनने के लिए जाने का मन में संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगतियाइं सद्दाइं सुणेति, तं जहा—कच्छाणि वा णूमाणि वा गहणाणि वा वणाणि वा वणदुग्गाणि वा पव्वयाणि वा पव्वयदुग्गाणि वा अण्णतराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं सद्दाइं कण्णसोयपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं, जैसे कि—नदी तटीय जलबहुल (कच्छों) में, भूमिगृहों या प्रच्छन्न स्थानों में, वृक्षों से सघन एवं गहन प्रदेशों में, वनों में, वन के दुर्गम प्रदेशों में, पर्वतों में या पर्वतीय दुर्गों में तथा इसी प्रकार के अन्य प्रदेशों में होने वाले शब्दों को कानों से सुनने के लिए कहीं भी जाने का मन में संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगतियाइं सद्दाइं सुणेति, तं जहा—गामाणि वा णगराणि वा निगमाणी वा रायहाणाणि वा आसम-पट्टण-सण्णि-वेसाणि वा अण्णतराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं सद्दाइं णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं, जैसे गाँवों में, नगरों में, निगमों में, राजधानी में, आश्रम, पत्तन और सन्निवेशों में होने वाले शब्द या इसी प्रकार के अन्य नाना प्रकार के शब्दों को सुनने के लिए कहीं भी जाने का मन में संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगतियाइं सद्दाइं सुणेति, तं जहा—आरामाणि वा उज्जाणाणि वा वणाणि वा वणसंडाणि वा देवकुलाणि वा सभाणि वा पवाणि वा अण्णतराइं वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं, जैसे कि—आरामगारों में, उद्यानों में, वनों में, वनखण्डों में, देवकुलों में, सभाओं में, प्याउओं में होने वाले शब्द या अन्य इसी प्रकार के विविध शब्दों को सुनने के लिए कहीं भी जाने का मन में संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगतियाइं सद्दाइं सुणेति, तं जहा—अट्टाणि वा अट्टालयाणि वा चरियाणि वा दाराणि वा गोपुराणि वा अण्णतराणि वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं, जैसे कि—अटारियों में, प्राकार से सम्बद्ध अट्टालयों में, नगर के मध्य में स्थित राजमार्गों में, द्वारों में, नगर-द्वारों में होने वाले शब्द तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में होने वाले शब्दों को सुनने के लिए कहीं भी जाने का मन में संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगतियाइं सद्दाइं सुणेति, तं जहा—तियाणि वा चउक्काणि वा चच्चराणि वा चउमुहाणि वा अण्णतराइं वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं, जैसे कि—तिराहों में, चौकों में, चौराहों में, चतुर्मुख मार्गों में होने वाले शब्द तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में होने वाले शब्दों को सुनने के लिए कहीं भी जाने का मन में संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगतियाइं सद्दाइं सुणेति, तं जहा—महिसकरणट्ठाणाणि वा वसभकरणट्ठाणाणि वा अस्सकरणट्ठाणाणि वा हत्थिकरणट्ठाणाणि वा-जाव-कविंजलकरणट्ठाणाणि वा अण्णतराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं सद्दाइं णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं जैसे कि—भैंसों के स्थान, वृषभशाला, घुड़शाला, हस्तिशाला—**यावत्**—कपिंजल पक्षी आदि के रहने के स्थानों में होने वाले शब्द तथा इसी प्रकार के अन्य शब्दों को सुनने के लिए कहीं भी जाने का मन में संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगतियाइं सद्दाइं सुणेइ, तं जहा—महिसजुद्धाणि वा वसभजुद्धाणि वा अस्सजुद्धाणि वा हत्थिजुद्धाणि वा-जाव-कविजलजुद्धाणि वा अण्णतराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं सद्दाइं नो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं, जैसे कि—भैंसों के युद्ध, सांडों के युद्ध, अश्व-युद्ध, हस्ति-युद्ध—यावत्—कपिंजल युद्ध में होने वाले शब्द तथा अन्य इसी प्रकार के पशु-पक्षियों के लड़ने से या लड़ने के स्थानों में होने वाले शब्दों को सुनने के लिए जाने का मन में संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगतियाइं सद्दाइं सुणेति, तं जहा—जूहियट्ठाणाणि वा हयजूहियट्ठाणाणि वा गयजूहियट्ठाणाणि वा अण्णतराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं सद्दाइं णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

साधु या साध्वी कानों में कई प्रकार के शब्द सुनते हैं, जैसे कि—यूथिक स्थानों में, अश्वयूथिक स्थानों में, गजयूथिक स्थानों में तथा इसी प्रकार के अन्य स्थानों में शब्दों को सुनने के लिए कहीं भी जाने का मन में संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगतियाइं सद्दाइं सुणेति, तं जहा अक्खाइयट्ठाणाणि वा माणुम्माणियट्ठाणाणि वा महयाहतनट्ट-गीत-वाइत-तंति-तलताल-तुडिय-पडुप्प-वाइयट्ठाणाणि वा अण्णतराइं वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं, जैसे कि—कथा करने के स्थानों में, तोल-माप करने के स्थानों में, या घुड़दौड़ आदि के स्थानों में, जहाँ बड़े-बड़े नृत्य, नाट्य, गीत, वाद्य, तन्त्री, तल (कांसी का वाद्य), तालत्रुटित वादित्र, ढोल बजाने आदि के आयोजन होते हैं ऐसे स्थानों में होने वाले शब्द तथा इसीप्रकार के अन्य मनोरंजन स्थलों में होने वाले शब्दों को सुनने के लिए जाने का मन में संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगतियाइं सद्दाणि सुणेति, तं जहा—कलहाणि वा डिंबाणि वा डमराणि वा दोरज्जाणि वा वेरज्जाणि वा विरुद्धरज्जाणि वा अण्णतराइं वा तहप्पगाराइं सद्दाइं णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्द सुनते हैं, जैसे कि—जहाँ कलह होते हों, शत्रु सैन्य का भय हो राष्ट्र का भीतरी या बाहरी विप्लव हो, दो राज्यों के परस्पर विरोधी स्थान हों, वैर के स्थान हों, विरोधी राजाओं के राज्य हों वहाँ के शब्द तथा इसी प्रकार के अन्य विरोधी वातावरण के शब्दों को सुनने के लिए गमन करने का मन में संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगतियाइं सद्दाइं सुणेति, तं जहा—खुड्डियं दारियं परिवुतं मंडितालंकितं निवुज्झमाणिं पेहाए, एगपुरिसं वा वहाए णीणिज्जमाणं पेहाए, अण्णतराइं वा तहप्पगाराइं णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्दों को सुनते हैं, जैसे कि—वस्त्राभूषणों से मण्डित और अलंकृत तथा बहुत से लोगों से घिरी हुई किसी छोटी बालिका को घोड़े आदि पर बिठाकर ले जाया जा रहा हो, अथवा किसी अपराधी व्यक्ति को वध के लिए वधस्थान में ले जाया जा रहा हो, अथवा अन्य किसी ऐसे व्यक्ति की शोभायात्रा निकाली जा रही हो, उस समय होने वाले (जय जयकार या धिक्कार, तथा मानापमानसूचक नारों आदि के) शब्दों को सुनने के लिए जाने का मन में संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अण्णतराइं विरूवरूवाइं महुस्सवाइं एवं जाणेज्जा, तं जहा—बहुसगडाणि वा बहुरहाणि वा बहुमिलक्खूणि वा बहुपच्चंताणि वा अण्णतराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं महुस्सवाइं कण्णसोयपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

साधु या साध्वी अन्य नाना प्रकार के महोत्सवस्थानों को इस प्रकार जाने, जैसे कि—जहाँ बहुत से शकट, बहुत से रथ, बहुत से म्लेच्छ, बहुत से सीमाप्रान्तीय लोग एकत्रित हुए हों, अथवा इस प्रकार के नाना महा-उत्सवस्थान हों, वहाँ कानों से शब्द सुनने के लिए जाने का मन में संकल्प न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अण्णतराइं विरूवरूवाइं महुस्सवाइं एवं जाणेज्जा, तं जहा—इत्थीणि वा पुरिसाणि वा थेराणि वा डहराणि वा मज्झिमाणी वा आभरणविभूसियाणि वा गायंताणि वा वायंताणि वा णच्चंताणि वा हसंताणि वा

साधु या साध्वी किन्हीं नाना प्रकार के महोत्सवों को यों जाने कि—जहाँ स्त्रियाँ पुरुष, बालक और युवक आभूषणों से विभूषित होकर गीत गाते हों, बाजे बजाते हों, नाचते हों, हँसते हों, आपस में खेलते हों, रतिक्रीड़ा करते हों तथा विपुल अशन

रमंताणि वा मोहंताणि वा विपुलं असणं-जाव-साइमं परिभुंजंताणि वा परिभायंताणि वा विछड्डयमाणाणि वा विगोवयमाणाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं महुस्सवाइं कण्णसोयपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा णो इहलोइएहिं सद्देहिं णो परलोइएहिं सद्देहिं, णो सुतेहिं सद्देहिं, णो असुतेहिं सद्देहिं, णो दिट्ठेहिं सद्देहिं, नो अदिट्ठेहिं सद्देहिं, णो इट्ठेहिं सद्देहिं, णो कंतेहिं सद्देहिं सज्जेज्जा, णो रज्जेज्जा, णो गिज्झेज्जा, णो मुज्झेज्जा, णो अज्झोववज्जेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ११, सु. ६६६-६८७

यावत्—स्वादिम पदार्थों का उपभोग करते हों परस्पर बाँटते हों या परोसते हों, त्याग करते हों, परस्पर तिरस्कार करते हों उनके शब्दों को तथा इसी प्रकार के अन्य बहुत से महोत्सवों में होने वाले शब्दों को कानों से सुनने के लिए जाने का मन में संकल्प न करे।

साधु या साध्वी इहलौकिक एवं पारलौकिक शब्दों में श्रुत (सुने हुए) या अश्रुत (बिना सुने) शब्दों में, देखे हुए या बिना देखे हुए शब्दों में, इष्ट और कान्त शब्दों में न तो आसक्त हो, न रक्त (रागभाव से लिप्त) हो, न गृद्ध हो, न मोहित हो और न ही मूर्च्छित या अत्यासक्त हो।

रूवावलोयणासत्ति णिसेहो—

६६४. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अहावेगइयाइं रूवाइं पासति, तं जहा– गंथिमाणि वा वेढिमाणि वा पूरिमाणि वा संघातिमाणि वा कट्ठकम्माणि वा पोत्थकम्माणि वा चित्तकम्माणि वा मणिकम्माणि वा दंतकम्माणि वा पत्तच्छेज्जकम्माणि वा विविहाणि वा वेढिमाइं अण्णतराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं चक्खुदंसणपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

एवं नेयव्वं जहा सद्दपडिमा सव्वा वाइत्तवज्जा रूवपडिमा वि। —आ. सु. २, अ. १२, सु. ६८६

पासह एगे रूवेसु गिद्धे परिणिज्जमाणे। एत्थ फासे पुणो पुणो। —आ. सु. १, अ. ५, उ. १, सु. १४६(घ)

रूप-दर्शन आसक्ति-निषेध—

६६४. साधु या साध्वी अनेक प्रकार के रूपों को देखते हैं जैसे—गूँथे हुए पुष्पों से निष्पन्न स्वस्तिक आदि को, वस्त्रादि से वेष्टित या निष्पन्न पुतली आदि को, जिनके अन्दर कुछ पदार्थ भरने से पुरुषाकृति बन जाती हो, उन्हें अनेक वर्णों के संघात से निर्मित चोलादि को, काष्ठ कर्म से निर्मित रथादि पदार्थों को, पुस्तकर्म से निर्मित पुस्तकादि को, दीवार आदि पर चित्रकर्म से निर्मित चित्रादि को, विविध मणिकर्म से निर्मित स्वस्तिकादि को, दंतकर्म से निर्मित दन्तपुत्तलिका आदि को, पत्रछेदन कर्म से निर्मित विविध पत्र आदि को, अथवा अन्य विविध प्रकार के वेष्टनों से निष्पन्न पदार्थों को, तथा इसी प्रकार के अन्य नाना पदार्थों के रूपों को, आँखों से देखने की इच्छा से साधु या साध्वी उस ओर जाने का मन में संकल्प न करे।

इस प्रकार जैसे शब्द सम्बन्धी प्रतिमा में ऊपर वर्णन किया है, वैसे ही यहाँ चतुर्विध आतोद्यवाद्यों को छोड़कर रूप प्रतिमा के विषय में भी जानना चाहिए।

देखो! जो रूप में गृद्ध हैं वे नरकादि योनियों में पुनः-पुनः उत्पन्न होने वाले हैं।

बालाणं दुक्खाणुभवणहेउणो—

६६५. बाले पुण णिहे कामसमणुण्णे असमितदुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टति।

—आ. सु. १, अ. २, उ. ६, सु. १०५(ख)

बाल जीवों के दुःखानुभव के हेतु—

६६५. बाल (अज्ञानी) बार-बार विषयों में स्नेह (आसक्ति) करता है। काम-इच्छा और विषयों को मनोज्ञ समझकर (उसका सेवन करता है) इसलिए वह दुःखों का शमन नहीं कर पाता। वह शारीरिक एवं मानसिक दुःखों से दुःखी बना हुआ दुःखों के चक्र में ही परिभ्रमण करता रहता है।

सव्वे एगंत बाला ममत्तजुत्ता—

६६६. जीवियं पुढो पियं इहमेगेसिं माणवाणं खेत्त-वत्थु ममायमाणाणं। आरत्तं विरत्तं मणिकुंडलं सह हिरण्णेण इत्थियाओ परिगिज्झ तत्थेव रत्ता।

सभी एकान्त बाल जीव ममत्वयुक्त होते हैं—

६६६. जो मनुष्य, क्षेत्र (खुली भूमि) तथा वास्तु (भवन) आदि में ममत्व भाव रखता है, उनको यह असंयत जीवन ही प्रिय लगता है। वे रंग बिरंगे मणि, कुण्डल, हिरण्य-स्वर्ण और उनके साथ स्त्रियों का परिग्रह कर उनमें अनुरक्त रहते हैं।

ण एत्थ तवो वा दमो वा णियमो वा दिस्सति ।

परिग्रही पुरुष में न तप होता है, न दम—इन्द्रिय-निग्रह होता है और न नियम होता है।

संपुण्णं बाले जीविउकामे लालप्पमाणे मूढे विप्परियासमुवेति ।

—आ. सु. १, अ. २, उ. ३, सु. ७७(क)

वह अज्ञानी, ऐश्वर्यपूर्ण जीवन जीने की कामना करता रहता है। बार-बार सुख की प्राप्ति की अभिलाषा करता रहता है। किन्तु सुखों की अप्राप्ति व कामना की व्यथा से पीड़ित हुआ वह मूढ़ विपर्यास (सुख के बदले दुःख) को ही प्राप्त होता है।

आतुराणं परीसहा दुरहियासा—

आतुर व्यक्तियों को परीषह असह्य होते हैं—

६६७. आतुरं लोगमायाए चइत्ता पुव्वसंजोगं हेच्चा उवसमं वसित्ता बंभचेरंसि वसु वा अणुवसु वा जाणित्तु धम्मं अहा तहा अहेगे तमचाइ कुसीला ।

६६७. (काम-राग आदि से) आतुर लोक को भलीभाँति समझकर जानकर, पूर्व संयोग को छोड़कर, उपशम को प्राप्त कर, ब्रह्मचर्य में वास करके वसु (संयमी) अथवा अनुवसु (श्रावक) धर्म को यथार्थ रूप से जानकर भी कुछ कुशील व्यक्ति उस धर्म का पालन करने में समर्थ नहीं होते।

वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं विउसिज्ज अणुपुव्वेण अणधियासेमाणा परीसहे दुरहियासए ।

वे वस्त्र, पात्र, कम्बल एवं पाद-प्रोंछन को छोड़कर उत्तरोत्तर आने वाले दुःसह परीषहों को नहीं सह सकने के कारण (मुनि-धर्म का त्याग कर देते हैं)।

कामे ममायमाणस्स इयाणिं वा मुहुत्ते वा अपरिमाणाए भेदे ।

विविध काम-भोगों को अपनाकर (उन पर) गाढ़ ममत्व रखने वाले व्यक्ति का तत्काल अन्तर्मुहूर्त में या अपरिमित समय में शरीर छूट सकता है।

एवं से अंतराइएहिं कामेहिं आकेवलिएहिं अवितिण्णा चेते ।

—आ. सु. १, अ. ६, उ. २, सु. १८३

इस प्रकार वे अनेक विघ्नों और द्वन्द्वों या अपूर्णताओं से युक्त काम-भोगों से अतृप्त ही रहते हैं। (अथवा उनका पार नहीं पा सकते, बीच में ही समाप्त हो जाते हैं।)

कसायकलुसिया कसायं वड्ढंति—

कषाय कलुषित भाव को बढ़ाते हैं—

६६८. कासंकसे खलु अयं पुरिसे, बहुमायी, कडेण मूढे,

६६८. काम-भोग में आसक्त वह पुरुष सोचता है—"मैंने यह कार्य किया, यह कार्य करूँगा" (इस प्रकार की आकुलता के कारण) वह दूसरों को ठगता है, माया कपट रचता है, और फिर अपने रचे माया जाल में फँसकर मूढ़ बन जाता है।

पुणो तं करेति लोभं, वेरं वड्ढेति अप्पणो ।

वह मूढ़भाव से ग्रस्त फिर लोभ करता है (काम-भोग प्राप्त करने को ललचाता है) और (माया एवं लोभ युक्त आचरण के द्वारा) प्राणियों के साथ अपना वैर बढ़ाता है।

जमिणं परिकहिज्जइ इमस्स चेव पडिबूहणताए ।

जो मैं यह कहता हूँ (कि वह कामी पुरुष माया तथा लोभ का आचरण कर अपना वैर बढ़ाता है) वह इस शरीर को पुष्ट करने के लिए ही ऐसा करता है।

अमराइय्ह महासड्ढी । अट्टमेतं तु पेहाए । अपरिण्णाए कंदति ।

—आ. सु. १, अ. २, उ. ५, सु. ९३

वह काम-भोग में महान् श्रद्धा (आसक्ति) रखता हुआ अपने को अमर की भाँति समझता है। तू देख, आर्त-पीड़ित तथा दुःखी है। परिग्रह का त्याग नहीं करने वाला क्रन्दन करता है (रोता है)।

सयणा न सरणदाया —

६६६. माया पिया ण्हुसा भाया, भज्जा पुत्ता य ओरसा ।
नालं ते मम ताणाय, लुप्पन्तस्स सकम्मुणा ।।

एयमट्ठं सपेहाए, पासे समियदंसणे ।
छिन्द गेहिं सिणेहं च, न कंखे पुव्वसंथवं ।।

— उत्त. अ. ६, गा. ३-४

स्वजन शरणदाता नहीं होते—

६६६. जब मैं अपने द्वारा किये गये कर्मों से छेदा जाता हूँ, तब माता-पिता, पुत्र-वधू, भाई, पत्नी, और औरस पुत्र -- ये सभी मेरी रक्षा करने में समर्थ नहीं होते ।

सम्यक् दर्शन वाला पुरुष अपनी बुद्धि से यह अर्थ देखे, गृद्धि और स्नेह का छेदन करे, पूर्व परिचय की अभिलाषा न करे ।

जे गुणे से मूलट्ठाणे, जे मूलट्ठाणे से गुणे ।

जो गुण (इन्द्रिय-विषय) है वह (कषाय रूप संसार का) मूल स्थान है । जो मूलस्थान है, वह गुण है ।

इति से गुणट्ठी महता परितावेणं वसे पमत्ते ।

इस प्रकार आगे कहा जाने वाला विषयार्थी पुरुष महान् परिताप से प्रमत्त होकर, जीवन बिताता है ।

तं जहा—माता मे, पिता मे, भाया मे, भगिणी मे, भज्जा मे, पुत्ता मे, धूया मे सुण्हा मे, सहि-सयण-संगंथ-संथुता मे, विविसोवकरण—परियट्टण-भोयण-अच्छायणं मे ।

वह इस प्रकार मानता है—"मेरी माता है, मेरा पिता है, मेरा भाई है, मेरी बहन है, मेरी पत्नी है, मेरा पुत्र है मेरी पुत्री है, मेरी पुत्र-वधू है, मेरा सखा-स्वजन-सम्बन्धी-सहवासी है, मेरे विविध प्रचुर उपकरण (अश्व, रथ, आसन आदि) परिवर्तन (लेने देने की सामग्री) भोजन तथा वस्त्र है ।

इच्चत्थं गढिए लोए वसे पमत्ते ।

इस प्रकार मेरेपन (ममत्व) में आसक्त हुआ पुरुष; प्रमत्त होकर उनके साथ निवास करता है ।

अहो य राओ य परितप्पमाणे कालाकालसमुट्ठायी संजोगट्ठी अट्ठालोभी आलुंपे सहसक्कारे विणिविट्ठचित्ते एत्थ सत्थे पुणो पुणो ।

वह प्रमत्त तथा आसक्त पुरुष रात-दिन परितप्त-चिन्तित एवं तृष्णा से आकुल रहता है । काल या अकाल में प्रयत्नशील रहता है । वह संयोग का अर्थी होकर अर्थ का लोभी बनकर लूट-पाट करने वाला (चोर या डाकू) बन जाता है । सहसाकारी दुःसाहसी और बिना विचारे कार्य करने वाला हो जाता है । विविध प्रकार की आशाओं में उसका चित्त फंसा रहता है । वह बार-बार शस्त्र प्रयोग करता है । संहारक-आक्रामक बन जाता है ।

अप्पं च खलु आउं इहमेगेसिं माणवाणं, तं जहा—सोतपण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं, चक्खुपण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं, घाणपण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं, रसपण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं, फासपण्णाणेहिं परिहायमाणेहिं ।

इस संसार में कुछ एक मनुष्यों का आयुष्य अल्प होता है । जैसे—श्रोत्र-प्रज्ञान के परिहीन (सर्वथा दुर्बल) हो जाने पर, चक्षु-प्रज्ञान के परिहीन होने पर, घ्राण-प्रज्ञान के परिहीन होने पर, रस-प्रज्ञान के परिहीन होने पर, स्पर्श-प्रज्ञान के परिहीन होने पर (वह अल्पायु में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है) ।

अभिक्कंतं च खलु वयं सपेहाए ततो से एगया मूढभावं जणयंति ।

वय-अवस्था-यौवन को तेजी से जाते हुए देखकर वह चिन्ताग्रस्त हो जाता है और फिर एकदा (बुढ़ापा आने पर) मूढ़भाव को प्राप्त हो जाता है ।

जेहिं वा सद्धिं संवसति ते व णं एगया णियगा पुव्विं परिवयंति, सो वा ते णियगे पच्छा परिवएज्जा ।

वह जिनके साथ रहता है, वे स्वजन (पत्नी-पुत्र आदि) कभी उसका तिरस्कार करने लगते हैं, उसे कटु व अपमानजनक वचन बोलते हैं । बाद में वह भी स्वजनों की निन्दा करने लगता है ।

णालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुमं पि तेसिं णालं ताणाए वा सरणाए वा ।

हे पुरुष ! वे स्वजन तेरी रक्षा करने में या तुझे शरण देने में समर्थ नहीं है। तू भी उन्हें त्राण या शरण देने में समर्थ नहीं है।

से ण हासाए, ण किड्डाए, ण रतीए, ण विभूसाए ।

—आ. सु. १, अ. २, उ. १, सु. ६३-६४

वह वृद्ध-जराजीर्ण पुरुष, न हँसी-विनोद के योग्य रहता है, न खेलने के, न रति-सेवन के और न शृंगार के योग्य रहता है।

जेहिं वा सद्धिं संवसति ते व णं एगया णियगा पुव्विं पोसेंति, सो वा ते णियगे पच्छा पोसेज्जा। णालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुमं पि तेसिं णालं ताणाए वा सरणाए वा।

जिन स्वजन आदि के साथ वह रहता है, वे पहले कभी (शैशव एवं रुग्ण अवस्था में) उसका पोषण करते हैं। वह भी बाद में उन स्वजनों का पोषण करता है। इतना स्नेह सम्बन्ध होने पर भी वे (स्वजन) तुम्हारे त्राण या शरण के लिए समर्थ नहीं है। तुम भी उनको त्राण व शरण देने में समर्थ नहीं हो।

उवादीतसेसेण वा संणिहिसंणिचयो कज्जति इहमेगेसिं माणवाणं भोयणाए।

(मनुष्य) उपभोग में आने के बाद बचे हुए धन से, तथा जो स्वर्ण एवं भोगोपभोग की सामग्री अर्जित-संचित करके रखी है उसको सुरक्षित रखता है। उसे वह कुछ गृहस्थों के भोग-भोजन के लिए उपयोग में लेता है।

ततो से एगया रोगसमुप्पाया समुप्पज्जंति।

(अनेक भोगोपभोग के कारण फिर) कभी उसके शरीर में रोग की पीड़ा उत्पन्न होने लगती है।

जेहिं वा सद्धिं संवसति ते व णं एगया णियगा पुव्विं परिहरंति, सो वा ते णियए पच्छा परिहरेज्जा।

जिन स्वजन स्नेहियों के साथ वह रहता आया है, वे ही उसे (कुष्ठ रोग आदि के कारण घृणा करके) पहले छोड़ देते हैं। बाद में वह भी अपने स्वजन स्नेहियों को छोड़ देता है।

णालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुमंपि तेसिं णालं ताणाए वा सरणाए वा।

— आ. सु. १, अ. २, उ. १, सु. ६६(ख)-६७

हे पुरुष ! न तो वे तेरी रक्षा करने और तुझे शरण देने में समर्थ हैं और न तू ही उनकी रक्षा करने व शरण देने के लिए समर्थ है।

एते जिता भो ! न सरणं
बाला पंडितमाणिणो।
हेच्चा णं पुव्वसंजोगं
सिया किच्चोवदेसगा॥

हे शिष्यो ! ये (असंवृत्त साधु) साधु (काम, क्रोध आदि से अथवा परीषह-उपसर्ग रूप शत्रुओं से) पराजित है, (इसलिए) ये शरण लेने योग्य नहीं हैं (अथवा स्वशिष्यों को) शरण देने में समर्थ नहीं है। वे अज्ञानी हैं, (तथापि) अपने आपको पण्डित मानते हैं। पूर्वसंयोग (बन्धु-बान्धव, धन-सम्पत्ति आदि) को छोड़कर भी (दूसरे आरम्भ-परिग्रह में) आसक्त हैं, तथा गृहस्थ को सावद्य कृत्यों का उपदेश देते हैं।

तं च भिक्खू परिण्णाय
विज्जं तेसु ण मुच्छए।
अणुक्कसे अप्पलीणे
मज्झेण मुणि जावए॥

विद्वान भिक्षु उन (आरम्भ-परिग्रह में आसक्त साधुओं) को भलीभाँति जानकर उसमें मूर्च्छा (आसक्ति) न करे, अपितु (वस्तु स्वभाव का मनन करने वाला) मुनि किसी प्रकार का मद न करता हुआ उन अन्यतीर्थिकों, गृहस्थों एवं शिथिलाचारियों के साथ संसर्ग रहित होकर, मध्यस्थ भाव से संयमी जीवन-यापन करे; या मध्यस्थवृत्ति से निर्वाह करे।

सपरिग्गहा य सारंभा इहमेगेसि माहियं।
अपरिग्गहे अणारंभे भिक्खू ताणं परिव्वए॥

—सूय. सु. १, अ. १, उ. ४, गा. १-३

मोक्ष के सम्बन्ध में कई (अन्यतीर्थी) मतवादियों का कथन है कि परिग्रहधारी और आरम्भ (हिंसाजनक प्रवृत्ति) से जीने वाले जीव भी मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। परन्तु निर्ग्रन्थ भाव-भिक्षु अपरिग्रही और अनारम्भी की शरण में जाए।

कम्मवेयणकाले न को वि सरणं—

७००. जे पावकम्मेहिं धणं मणूसा
समाययन्ती अमइं गहाय।
पहाय ते "पास पयट्टिए" नरे
वेराणुबद्धा नरयं उवेन्ति॥

तेणे जहा सन्धि-मुहे गहीए
सकम्मुणा किच्चइ पावकारी।
एवं पया पेच्च इहं च लोए
"कडाण कम्माण न मोक्खु अत्थि"॥

संसारमावन्न परस्स अट्ठा
साहारणं जं च करेइ कम्मं।
कम्मस्स ते तस्स उ वेय-काले
न बन्धवा बन्धवयं उवेन्ति॥

वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते
इमंमि लोए अदुवा परत्था।
दीव-प्पणट्ठे व अणन्त-मोहे
नेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव॥

—उत्त. अ. ४, गा. २-५

कर्मवेदन-काल में कोई शरण नहीं होता—

७००. जो मनुष्य कुमति को स्वीकार कर पापकारी प्रवृत्तियों से धन का उपार्जन करते हैं, उन्हें देख! वे धन को छोड़कर मौत के मुँह में जाने को तैयार हैं। वे वैर (कर्म) से बन्धे हुए मरकर नरक में जाते हैं।

जैसे सेंध लगाते हुए पकड़ा गया पापी चोर अपने कर्म से ही छेदा जाता है, उसी प्रकार इस लोक और परलोक में प्राणी अपने कृतकर्मों से ही छेदा जाता है। किये हुए कर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं होता।

संसारी प्राणी अपने बन्धु-जनों के लिए जो साधारण कर्म (इसका फल मुझे भी मिले और उनको भी -ऐसा कर्म) करता है, उस कर्म के फल-भोग के समय वे बन्धु-जन बन्धुता नहीं दिखाते—उसका भाग नहीं बँटाते।

प्रमत्त मनुष्य इस लोक में अथवा परलोक में धन से त्राण नहीं पाता। अन्धेरी गुफा में जिसका दीप बुझ गया हो उसकी भाँति, अनन्त मोह वाला प्राणी पार ले जाने वाले मार्ग को देखकर भी नहीं देखता है।

अपरिग्रह महाव्रत आराधना का फल—५

अपरिग्गह आराहणफलं

७०१. इमं च परिग्गह-वेरमण-परिरक्खणट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं, अत्तहियं, पेच्चाभावियं, आगमेसिभद्दं, सुद्धं, नेयाउयं, अकुडिलं, अणुत्तरं, सव्व दुक्ख-पावाण-विओसमणं।

—पण्ह० सु० २, अ० ५, सु० १२

अपरिग्रह आराधन का फल—

७०१. परिग्रहविरमण व्रत के परिरक्षण हेतु भगवान् ने यह प्रवचन (उपदेश) कहा है। यह प्रवचन आत्मा के लिए हितकारी है, आगामी भवों में उत्तम फल देने वाला है और भविष्य में कल्याण करने वाला है यह शुद्ध, न्याययुक्त, अकुटिल, सर्वोत्कृष्ट और समस्त दुःखों तथा पापों को सर्वथा शान्त करने वाला है।

सुहसायाफलं—

७०२. प०—सुहसाएणं भंते! जीवे किं जणयइ?

उ०—सुहसाएणं अणुस्सुयत्तं जणयइ। अणुस्सुयत्ताए णं जीवे अणुकम्पए अणुब्भडे विगयसोगे चरित्तमोहणिज्जं कम्मं खवेइ।

—उत्त. अ. २९, सु. ३१

सुख-स्पृहा-निवारण का फल—

७०२. प्र०—भन्ते! सुख की स्पृहा का निवारण करने से जीव क्या प्राप्त करता है?

उ०—सुख की स्पृहा का निवारण करने से वह विषयों के प्रति अनुत्सुक-भाव को प्राप्त करता है। विषयों के प्रति अनुत्सुक जीव अनुकम्पा करने वाला, प्रशान्त और शोकमुक्त होकर चारित्र को विकृत करने वाले मोह-कर्म का क्षय करता है।

विणियट्टणाफलं—

७०३. प०—विणियट्टणयाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—विणियट्टणयाए णं पावकम्माणं अकरणयाए अब्भुट्ठेइ। पुव्वबद्धाण य निज्जरणयाए तं नियत्तेइ तओ पच्छा चाउरंतं संसारकंतारं वीइवयइ।

—उत्त. अ. २९, सु. ३४

विनिवर्तना का फल—

७०३. प्र०—भन्ते ! विनिवर्तना (इन्द्रिय और मन को विषयों से दूर रखने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—विनिवर्तना से वह नये सिरे से पाप-कर्मों को नहीं करने के लिए तत्पर रहता है और पूर्व-अर्जित पाप-कर्मों का क्षय कर देता है—इस प्रकार वह पापकर्म का विनाश कर देता है। उसके पश्चात् चार-गति रूप चार अन्तों वाली संसार अटवी को पार कर जाता है।

आसक्ति करने का प्रायश्चित्त—६

सद्द सवणासत्तिए पायच्छित्त सुत्ताइं—

७०४. जे भिक्खू १. भेरि सद्दाणि वा, २. पडह-सद्दाणि वा, ३. मुरव-सद्दाणि वा, ४. मुइंग-सद्दाणि वा, ५. नंदि-सद्दाणि वा, ६. झल्लरी-सद्दाणि वा, ७. वल्लरि-सद्दाणि वा, ८. डमरुय-सद्दाणि वा, ९. मड्डय-सद्दाणि वा, १०. सदुय-सद्दाणि वा, ११. पएस-सद्दाणि वा, १२. गोलुकि-सद्दाणि वा अन्नयराणि वा तहप्पगाराणि विततानि सद्दाणि कण्णसोय-पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू १. वीणा सद्दाणि वा, २. विपंचि-सद्दाणि वा, ३. तुण-सद्दाणि वा, ४. बव्वीसग सद्दाणि वा, ५. वीणाइय-सद्दाणि वा, ६. तुंबवीणा-सद्दाणि वा, ७. झोडय-सद्दाणि वा, ८. ढंकुण सद्दाणि वा, अण्णयराणि वा तहप्पगाराणि तताणि सद्दाणि कण्णसोय-पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू १. ताल-सद्दाणि वा, २. कंसताल-सद्दाणि वा, ३. लित्तिय-सद्दाणि वा, ४. गोहिय-सद्दाणि वा, ५. मकरिय-सद्दाणि वा, ६. कच्छभि-सद्दाणि वा, ७. महति-सद्दाणि वा, ८. सणालिया सद्दाणि वा, ९. वलिया-सद्दाणि वा अण्णयराणि वा तहप्पगाराणि घणाणि सद्दाणि कण्णसोय-पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू १. संख-सद्दाणि वा, २. वंस-सद्दाणि वा, ३. वेणु सद्दाणि वा, ४. खरमुही-सद्दाणि वा, ५. परिलिस-सद्दाणि वा, ६. वेवा-सद्दाणि वा अण्णयराणि वा तहप्पगाराणि झुसिराणि सद्दाणि कण्णसोय पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

— नि. उ. १७, सु. १३५-१३८

शब्द श्रवणासक्ति के प्रायश्चित्त सूत्र—

७०४. जो भिक्षु (१) भेरी के शब्द, (२) पटह के शब्द, (३) मुरज के शब्द, (४) मृदंग के शब्द, (५) नान्दी के शब्द, (६) झालर के शब्द, (७) वल्लरी के शब्द (८) डमरू के शब्द (९) मड्डुक के शब्द, (१०) सदुक के शब्द, (११) प्रदेश के शब्द, (१२) गोलुकी के शब्द अन्य ऐसे वाद्यों के शब्द सुनने के संकल्प से जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु (१) वीणा के शब्द, (२) विपंची के शब्द, (३) तूण के शब्द, (४) बव्वीसग के शब्द, (५) वीणादिक के शब्द, (६) तुम्बवीणा के शब्द, (७) झोटक के शब्द, (८) ढंकुण के शब्द अन्य ऐसे वाद्यों के शब्द सुनने के संकल्प से जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु (१) ताल के शब्द, (२) कंसताल के शब्द, (३) लत्तिक के शब्द, (४) गोहिक के शब्द, (५) मकर्य के शब्द, (६) कच्छभि के शब्द, (७) महती के शब्द (८) शा[illegible]लिका के शब्द, (९) वलीका के शब्द, अन्य ऐसे शब्द सुनने के संकल्प से जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु (१) शंख के शब्द, (२) वाँस के शब्द, (३) वेणु के शब्द, (४) खरमुहि के शब्द, (५) परिलिस के शब्द, (६) वेवा के शब्द अन्य ऐसे ही शब्द सुनने के संकल्प से जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

वप्पाइसु-सद्दसवणासत्तिए पायच्छित्त सुत्ताइं—

७०५. जे भिक्खू, १. वप्पाणि वा, २. फलिहाणि वा, ३. उप्पलाणि वा, ४. पल्ललाणि वा, ५. उज्झराणि वा, ६. णिज्झराणि वा, ७. वावीणि वा, ८. पोक्खराणि वा, ९. दीहियाणी वा [१०. गुंजालियाणी वा] ११. साराणि वा, १२. सर-पंतियाणि वा, १३. सर-सर-पंतियाणि वा कण्ण-सोय-पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू १. कच्छाणि वा, २. गहणाणि वा, ३. णूमाणि वा, ४. वणाणि वा, ५. वण-विदुग्गाणि वा, ६. पव्वयाणि वा, ७. पव्वय-विदुग्गाणि वा कण्णसोय-पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू १. गामाणि वा, २. णगराणि वा, ३. खेडाणि वा, ४. कब्बडाणि वा, ५. मडंबाणि वा, ६. दोणमुहाणि वा, ७. पट्टणाणि वा, ८. आगराणि वा, ९. संवाहाणि वा, १० सण्णिवेसाणि वा कण्णसोय-पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू १. गाम-महाणि वा, २. णगर-महाणि वा, ३. खेड-महाणि वा ४. कब्बड-महाणि वा, ५ मडंब-महाणि वा, ६. दोणमुह-महाणि वा, ७. पट्टण-महाणि वा, ८. आगर-महाणि वा, ९. संवाह-महाणि वा, १०. सण्णिवेस महाणि वा कण्णसोय-पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू गाम-वहाणि वा-जाव-सण्णिवेस-वहाणि वा कण्ण-सोय-पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

[जे भिक्खू गाम-दहाणि वा-जाव-सण्णिवेस-दहाणि वा कण्ण-सोय-पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।]

जे भिक्खू गाम-पहाणि वा-जाव-सण्णिवेस-पहाणि वा कण्ण-सोय-पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू १. आस-करणाणि वा, २. हत्थि-करणाणि वा, ३. उट्ट-करणाणि वा, ४. गोण-करणाणि वा, ५. महिस-करणाणि वा, ६. सूकर-करणाणि वा कण्णसोय-पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू १. हय-जुद्धाणि वा, २. गय-जुद्धाणि वा, ३. उट्ट-जुद्धाणि वा, ४. गोण-जुद्धाणि वा, ५. महिस-जुद्धाणि वा, [मेंढ-जुद्धाणि वा, कुक्कुड-जुद्धाणि वा, तित्तिर-जुद्धाणि वा,

वप्रादि (प्राकारादि) शब्द श्रवण के प्रायश्चित्त सूत्र—

७०५. जो भिक्षु (१) प्राकार, (२) खाई, (३) उत्पल, (४) पल्लव, (५) धोध, (६) झरना, (७) वापी, (८) पुष्करिणी, (९) लम्बी बावड़ी, (१०) गम्भीर और टेढ़ी-मेढ़ी जल वापिकाएँ [(११) सरोवर (बिना खोदे बना हुआ तालाब)], (१२) सरोवर की पंक्ति और (१३) सरोवरों की पंक्तियों से आने वाले शब्दों को सुनने के संकल्प से जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु (१) कच्छ, (२) जंगल, (३) झाड़ी, (४) गहन वन, (५) वन (में) दुर्ग, (६) पर्वत, (७) पर्वत दुर्ग से आने वाले शब्दों को सुनने के संकल्प से जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु (१) ग्राम, (२) नगर, (३) खेड़ा, (४) कुनगर, (५) मडंब, (६) द्रोणमुख, (७) पट्टण, (८) आगर (खदानें), (९) ढाणी, (१०) सन्निवेश से आने वाले शब्दों को सुनने के संकल्प से जाता है, जाने के लिए कहता है जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु (१) ग्राम उत्सव, (२) नगर उत्सव, (३) खेड़ा उत्सव, (४) कुनगर उत्सव, (५) मडंब उत्सव, (६) द्रोणमुख उत्सव, (७) पट्टण उत्सव, (८) आगर उत्सव, (९) ढाणी उत्सव (१०) सन्निवेश उत्सव से आने वाले शब्दों को सुनने के संकल्प से जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु ग्रामवध —**यावत्**—सन्निवेशवध से आने वाले शब्दों को सुनने के संकल्प से जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

(जो भिक्षु ग्रामदाह—**यावत्**—सन्निवेशदाह से आने वाले शब्दों को सुनने के लिए जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।)

जो भिक्षु ग्राम पथ **यावत्**—सन्निवेश पथ से आने वाले शब्दों को सुनने के संकल्प से जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु (१) घोड़ा, (२) हाथी, (३) ऊँट, (४) बैल, (५) भैंसा, (६) शूकर के शब्दों को सुनने के संकल्प से जाता है, जाने के लिए कहता है जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु (१) घोड़ों का युद्ध, (२) हाथियों का युद्ध, (३) ऊँटों का युद्ध, (४) बैलों का युद्ध, (५) भैंसों का युद्ध, (मींढा युद्ध, कुक्कुट युद्ध, तित्तर युद्ध, बतक युद्ध, लावक (पक्षी-

वट्ट-जुद्धाणि वा लावग-जुद्धाणि वा, अहि-जुद्धाणि वा,] ६. सूकर-जुद्धाणि वा सतानि-जुद्धाणि वा कण्णसोय-पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

विशेष) युद्ध, सर्प युद्ध) ६. शूकर युद्ध के शब्दों को सुनने के संकल्प से जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू १. उज्जूहिया-ठाणाणि वा, [णिज्जूहिया-ठाणाणि वा] २. हयजूहिया-ठाणाणि वा, ३. गयजूहिया ठाणाणि वा कण्णसोय-पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु (१) अटवी से आने वाले, गायों के यूथ को, (अटवी में जाने वाले गायों के यूथ को) (२) घोड़ों के यूथ को, (३) हाथियों के यूथ से आने वाले शब्दों को सुनने के संकल्प से जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू १. अभिसेय-ठाणाणि वा, २. अक्खाइयठाणाणि वा, ३. माणुम्माणिय-ठाणाणि वा, ४. महयाहय, ५. णट्ट, ६. गीय, ७. वाइय, ८. तंती, ९. तल, १०. ताल, ११. तुडिय, १२. पडुप्पवाइय-ठाणाणि वा कण्णसोय-पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु (१) अभिषेक स्थान (२) जुआ खेलने का स्थान, (३) माप-तौल के स्थान, (४) महाबलशाली पुरुषों के द्वारा जहाँ पर जोर जोर से बाजे बजाये जा रहे हों ऐसे स्थान, (५) नृत्य, (६) गीत, (७) वाद्य, (८) तन्त्री, (९) तल, (१०) ताल, (११) त्रुटित, (१२) घन-मृदंग आदि के स्थान से आने वाले शब्दों को सुनने के संकल्प से जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू १. डिंबाणि वा, २. डमराणि वा, ३. खाराणि वा, ४. वेराणि वा, ५. महाजुद्धाणि वा, ६. महासंगामाणि वा, ७. कलहाणि वा, ८. बोलाणि वा कण्णसोय-पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु (१) शत्रु के सैन्य को, (२) विद्रोह करने वाले को, (३) क्लेश करने वाले को, (४) वैर भाव रखने वाले को, (५) महायुद्ध को, (६) महासंग्राम को, (७) कलह को, (८) गाली-गलौच करने वाले शब्दों को सुनने के संकल्प से जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू विरूव-रूवेसु महुस्सवेसु इत्थीणि वा, पुरिसाणि वा, थेराणि वा, मज्झिमाणि वा, डहराणि वा अणलंकियाणि वा, सुअलंकियाणि वा, गायंताणि वा, वायंताणि वा, णच्चंताणि वा, हसंताणि वा, रमंताणि वा, मोहंताणि वा विपुलं असणं वा-जाव-साइमं वा परिभाएंताणि वा, परिभुंजंताणि वा, कण्णसोय पडियाए अभिसंधारेइ, अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु अनेक प्रकार के उत्सवों में स्त्रियों को, पुरुषों को, स्थविरों को, मध्यमवय वालों को, बालकों को, अनलंकृतों को, सुअलंकृतों को गाने वाले को, बजाने वाले को, नाचने वाले को, हँसने वाले को, रमण करने वाले को, मुग्धों को (जहाँ) विपुल अशन—यावत्—स्वाद्य बांटा जाता है या परिभोग किया जाता है ऐसे स्थान से आने वाले शब्दों को सुनने के लिए जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १७, सु. १३९-१५०

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

इहलोइयाइसद्देसु आसत्तिए पायच्छित्तसुत्तं—

७०६. जे भिक्खू १. इहलोइएसु वा सद्देसु[1] २. परलोइएसु वा सद्देसु, ३. दिट्ठेसु वा सद्देसु, ४. अदिट्ठेसु वा सद्देसु, ५. सुएसु वा सद्देसु, ६. असुएसु वा सद्देसु, ७. विण्णाएसु वा सद्देसु, ८. अविण्णाएसु वा सद्देसु सज्जइ रज्जइ, गिज्झइ, अज्झोववज्जइ सज्जमाणं वा रज्जमाणं वा गिज्झमाणं वा अज्झोववज्जमाणं वा साइज्जइ।

इहलौकिकादि शब्दों में आसक्ति का प्रायश्चित्त सूत्र—

७०६. जो भिक्षु (१) इहलौकिक शब्दों में, (२) पारलौकिक शब्दों में, (३) दृष्ट शब्दों में, (४) अदृष्ट शब्दों में, (५) श्रुत शब्दों में, (६) अश्रुत शब्दों में, (७) ज्ञात शब्दों में, (८) अज्ञात शब्दों में, आसक्त, रक्त, गृद्ध और अत्यधिक गृद्ध होता है, होने को कहता है होने वाले का अनुमोदन करता है।

---

१ भाष्य सु. १५१ में यहाँ सद्देसु के स्थान पर रूवेसु शब्द है परन्तु सद्देसु शब्द उपयुक्त होने से निशीथ गुटके के अनुसार यहाँ यह सूत्र इस प्रकार लिया है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. १५१

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

गायणाइ करणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

७०७. जे भिक्खू १. गाएज्ज वा, २. हसेज्ज वा, ३. वाएज्ज वा ४. नच्चेज्ज वा, ५. अभिणएज्ज वा, ६. हय-हेसियं वा, ७. हत्थिगुलगुलाइयं वा, ८. उक्किट्ठ सीहणायं वा करेइ करेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. १३४

गायन आदि करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

७०७. जो भिक्षु (१) गाये, (२) हँसे, (३) बजाये, (४) नाचे, (५) अभिनय करे, (६) घोड़े की आवाज, (७) हाथी की गर्जना, और (८) सिंहनाद करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मुहाइणावीणियंकरणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

७०८. जे भिक्खू मुह-वीणियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू दंत-वीणियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू उट्ठ-वीणियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू नासा-वीणियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कक्ख-वीणियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू हत्थ-वीणियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू नह-वीणियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पत्त-वीणियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पुप्फ-वीणियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू फल-वीणियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू बीय-वीणियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू हरिय-वीणियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. ५, सु. ६६-४७

मुख आदि से वीणा जैसी आकृति करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

७०८. जो भिक्षु मुंह को वीणा (वाद्य ध्वनि) योग्य करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु दांतों को वीणा के योग्य करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु होठों को वीणा के योग्य करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु नाक को वीणा के योग्य करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु कांख को वीणा के योग्य करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु हाथ को वीणा के योग्य करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु नखों को वीणा के योग्य करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु पत्तों को वीणा के योग्य करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु पुष्प को वीणा के योग्य करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु फल को वीणा के योग्य करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु बीज को वीणा के योग्य करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु हरी वनस्पति को वीणा के योग्य करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मुहाइणाविणियं वायणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

७०६. जे भिक्खू मुह-वीणियं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू दंत-वीणियं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू उट्ठ-वीणियं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू नासा-वीणियं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कक्ख-वीणियं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू हत्थ-वीणियं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू नह-वीणियं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पत्त-वीणियं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पुप्फ-वीणियं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू फल-वीणियं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू बीय-वीणियं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू हरिय-वीणियं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. ५, सु. ४८-५६

मुख आदि से वीणा जैसी ध्वनि निकालने के प्रायश्चित्त सूत्र—

७०६. जो भिक्षु मुंह से वीणा बजाता है, बजवाता है, बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु दाँतों से वीणा बजाता है, बजवाता है, बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु होठों से वीणा बजाता है, बजवाता है, बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु नाक से वीणा बजाता है, बजवाता है, बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु कांख से वीणा बजाता है, बजवाता है, बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु हाथ से वीणा बजाता है, बजवाता है, बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु नखों से वीणा बजाता है, बजवाता है, बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु पत्तों से वीणा बजाता है, बजवाता है, बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु पुष्पों से वीणा बजाता है, बजवाता है, बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु फल से वीणा बजाता है, बजवाता है, बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु बीज से वीणा बजाता है, बजवाता है, बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु हरी वनस्पति से वीणा बजाता है, बजवाता है, बजाने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

वप्पाइ अवलोयणस्स पायच्छित्तसुत्ताइं—

७१०. जे भिक्खू वप्पाणि वा-जाव-सरसरपंतियाणि वा चक्खुदंसण पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कच्छाणि वा-जाव-पव्वय-विदुग्गाणि वा चक्खु-दंसण पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू गामाणि वा-जाव-सण्णिवेसाणि वा चक्खुदंसण-पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

वप्रादि अवलोकन के प्रायश्चित्त सूत्र—

७१०. जो भिक्षु प्राकार—**यावत्**—तालाबों की पंक्तियों को देखने के संकल्प से जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु कच्छ—**यावत्**—पर्वत दुर्ग को देखने के संकल्प से जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु ग्राम—**यावत्**—सन्निवेश को देखने के संकल्प से जाता है, जाने के लिए कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है।

गंध-जिघण पायच्छित्त सुत्तं—

७१३. जे भिक्खू अचित्तपइट्ठियं गंधं जिग्घइ, जिग्घंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. २, सु. ६

गन्ध सूंघने का प्रायश्चित्त सूत्र—

७१३. जो भिक्षु अचित्त प्रतिष्ठित गन्ध सूंघता है, सुंघवाता है, सूंघने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अप्पवियडोदगेण हत्थाइपधोवण पायच्छित्त सुत्तं—

७१४. जे भिक्खू लहुसएण सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा हत्थाणि वा पायाणि वा कण्णाणि वा अच्छिणी वा दंताणि वा नहाणि वा मुहं वा उच्छोलेज्ज वा पधोलेज्ज वा उच्छोलंतं वा पधोलंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

नि. उ. २, सु. २१

अल्प अचित्त जल से हाथ धोने का प्रायश्चित्त सूत्र—

७१४. जो भिक्षु अल्प अचित्त शीत जल या अल्प अचित्त उष्ण जल से हाथ, पैर, कान, आँख, दाँत, नख या मुंह (आदि) को प्रक्षालित करता है, धोता है प्रक्षालित करवाता है, धुलवाता है, या प्रक्षालन करने वाले का, धोने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

कोउहल्ल पडियाए सव्वकज्जकरणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

७१५. जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए अण्णयरं तसपाणजाइं, १. तण-पासएण वा, २. मुंज-पासएण वा, ३. कट्ठ-पासएण वा, ४. चम्म-पासएण वा, ५. वेत्त-पासएण वा ६. रज्जु-पासएण वा, ७. सुत्त-पासएण वा बंधइ बंधंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए अण्णयरं तसपाण जाइं तण-पासएण वा-जाव-सुत्त-पासएण वा बद्धेल्लयं मुयइ, मुयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए १. तणमालियं वा, २. मुंज-मालियं वा ३. भेंडमालियं वा, ४ मयणमालियं वा, ५. पिंछमालियं वा ६. दंतमालियं वा, ७. सिंगमालियं वा, ८. संखमालियं वा, ९. हड्डमालियं वा, १०. कट्ठमालियं वा, ११. पत्तमालियं वा, १२. पुप्फमालियं वा, १३. फल-मालियं वा, १४. बीयमालियं वा, १५. हरियमालियं वा करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए तण-मालियं वा-जाव-हरिय-मालियं धरेइ धरेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए तण-मालियं वा-जाव-हरिय-मालियं वा पिणद्धइ पिणद्धंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए १. अयलोहाणि वा, २. तंब-लोहाणि वा, ३. तउयलोहाणि वा, ४. सीसलोहाणि वा,

कौतूहल के संकल्प से सभी कार्य करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

७१५. जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से किसी एक त्रस प्राणी को (१) तृण के पास से, (२) मुंज के पास से (३) काष्ट के पास से, (४) चर्म के पास से, (५) वेत्र के पास से, (६) रज्जु के पास से, (७) सूत्र के पास से बाँधता है, बँधवाता है, बाँधने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से किसी एक त्रस प्राणी जाति को तृण पास से यावत् – सूत्र पास से बँधे हुए को मुक्त करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से (१) तृण की माला, (२) मुंज की माला, (३) भींड की माला (४) मदन की माला, (५) पींछ की माला, (६) दंत की माला, (७) सींग की माला, (८) शंख की माला, (९) हड्डी की माला, (१०) काष्ट की माला, (११) पत्र की माला, (१२) पुष्प की माला, (१३) फल की माला, (१४) बीज की माला, (१५) हरित की माला करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से तृण की माला—यावत्—हरित की माला धरता है धरवाता है, धरने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से तृण की माला—यावत्—हरित की माला पहनता है, पहनाता है, पहनने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से (१) अयलोहा, (२) तांब लोहा, (३) त्रपु लोहा, (४) सीसक लोहा, (५) कृष्ण लोहा,

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १२, सु. १६-२८

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

इहलोइयाइरूवेसु आसत्तिए पायच्छित्त सुत्तं—

इहलौकिक आदि रूपों में आसक्ति रखने का प्रायश्चित्त सूत्र—

७११. जे भिक्खू १. इहलोइएसु वा रूवेसु, २. परलोइएसु वा रूवेसु, ३. दिट्ठेसु वा रूवेसु, ४. अदिट्ठेसु वा रूवेसु, ५. सुएसु वा रूवेसु, ६. असुएसु वा रूवेसु, ७. विण्णाएसु वा रूवेसु, ८. अविण्णाएसु वा रूवेसु, सज्जइ रज्जइ गिज्झइ अज्झोववज्जइ सज्जमाणं वा, रज्जमाणं वा, गिज्झमाणं वा, अज्झोववज्जमाणं वा साइज्जइ ।

७११. जो भिक्षु (१) इहलौकिक रूपों में, (२) पारलौकिक रूपों में, (३) दृष्ट रूपों में, (४) अदृष्ट रूपों में, (५) श्रुत रूपों में, (६) अश्रुत रूपों में, (७) ज्ञात रूपों में, (८) अज्ञात रूपों में आसक्त, रक्त, गृद्ध और अत्यधिक गृद्ध होता है, होने को कहता है, होने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
नि. उ. १२, सु. २९

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मत्ताइए अत्तदंसणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

पात्र आदि में अपना प्रतिबिम्ब देखने के प्रायश्चित्त सूत्र—

७१२. जे भिक्खू मत्तए अप्पाणं देहइ देहंतं वा साइज्जइ ।

७१२. जो भिक्षु पात्र में अपना प्रतिबिम्ब देखता है, देखने के लिए कहता है, देखने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू अद्दाए अप्पाणं देहइ देहंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु आरीसा में अपना प्रतिबिम्ब देखता है, देखने को कहता है, देखने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू असीए अप्पाणं देहइ देहंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु तलवार में अपना प्रतिबिम्ब देखता है, देखने के लिए कहता है, देखने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू मणीए अप्पाणं देहइ देहंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु मणि में अपना प्रतिबिम्ब देखता है, देखने के लिए कहता है, देखने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू कुडुपाणे अप्पाणं देहइ देहंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु कुंड के पानी में अपना प्रतिबिम्ब देखता है, देखने के लिए कहता है, देखने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू तेल्ले अप्पाणं देहइ देहंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु तेल में अपना प्रतिबिम्ब देखता है, देखने के लिए कहता है, देखने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू महुए अप्पाणं देहइ देहंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु मधु में अपना प्रतिबिम्ब देखता है, देखने के लिए कहता है, देखने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू सप्पिए अप्पाणं देहइ देहंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु घी में अपना प्रतिबिम्ब देखता है, देखने के लिए कहता है, देखने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू फाणिए अप्पाणं देहइ देहंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु गुड़ में अपना प्रतिबिम्ब देखता है, देखने के लिए कहता है, देखने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू मज्जए अप्पाणं देहइ देहंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु मज्जा में अपना प्रतिबिम्ब देखता है, देखने के लिए कहता है, देखने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू वसाए अप्पाणं देहइ देहंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु चरबी में अपना प्रतिबिम्ब देखता है, देखने के लिए कहता है, देखने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १३, सु. ३१-४१

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

गंध-जिघण पायच्छित्त सुत्तं—

७१३. जे भिक्खू अचित्तपइट्ठियं गंधं जिग्घइ, जिघंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. २, सु. ६

गन्ध सूंघने का प्रायश्चित्त सूत्र—

७१३. जो भिक्षु अचित्त प्रतिष्ठित गन्ध सूंघता है, सुंघवाता है, सूंघने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अप्पाबियडोवगेण हत्थाइपधोवण पायच्छित्त सुत्तं—

७१४. जे भिक्खू लहुसएण सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा हत्थाणि वा पायाणि वा कण्णाणि वा अच्छिणी वा दंताणि वा नहाणि वा मुहं वा उच्छोलेज्ज वा पच्छोलेज्ज वा उच्छोलंतं वा पच्छोलंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. २, सु. २१

अल्प अचित्त जल से हाथ धोने का प्रायश्चित्त सूत्र—

७१४. जो भिक्षु अल्प अचित्त शीत जल या अल्प अचित्त उष्ण जल से हाथ, पैर, कान, आँख, दाँत, नख या मुंह (आदि) को प्रक्षालित करता है, धोता है प्रक्षालित करवाता है, धुलवाता है, या प्रक्षालन करने वाले का, धोने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

कोउहल्ल पडियाए सव्वकज्जकरणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

७१५. जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए अण्णयरं तसपाणजाइं, १. तण-पासएण वा, २. मुंज-पासएण वा, ३. कट्ठ-पासएण वा, ४. चम्म-पासएण वा, ५. वेत्त-पासएण वा ६. रज्जु-पासएण वा, ७. सुत्त-पासएण वा बंधइ बंधंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए अण्णयरं तसपाण जाइं तण-पासएण वा-जाव-सुत्त-पासएण वा बद्धेल्लयं मुयइ, मुयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए १. तणमालियं वा, २. मुंज-मालियं वा ३. भेंडमालियं वा, ४ मयणमालियं वा, ५. पिंछमालियं वा ६. दंतमालियं वा, ७. सिंगमालियं वा, ८. संखमालियं वा, ९. हड्डमालियं वा, १०. कट्ठमालियं वा, ११. पत्तमालियं वा, १२. पुप्फमालियं वा, १३. फल-मालियं वा, १४. बीयमालियं वा, १५. हरियमालियं वा करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए तण-मालियं वा-जाव-हरिय-मालियं धरेइ धरेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए तण-मालियं वा-जाव-हरिय-मालियं वा पिणद्धइ पिणद्धंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए १. अयलोहाणि वा, २. तंब-लोहाणि वा, ३. तउयलोहाणि वा, ४. सीसलोहाणि वा,

कौतूहल के संकल्प से सभी कार्य करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

७१५. जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से किसी एक त्रस प्राणी को (१) तृण के पास से, (२) मुंज के पास से (३) काष्ठ के पास से, (४) चर्म के पास से, (५) वेत्र के पास से, (६) रज्जु के पास से, (७) सूत्र के पास से बाँधता है, बँधवाता है, बाँधने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से किसी एक त्रस प्राणी जाति को तृण पास से —यावत्— सूत्र पास से बँधे हुए को मुक्त करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से (१) तृण की माला, (२) मुंज की माला, (३) भींड की माला, (४) मदन की माला, (५) पींछ की माला, (६) दंत की माला (७) सींग की माला, (८) शंख की माला, (९) हड्डी की माला, (१०) काष्ठ की माला, (११) पत्र की माला, (१२) पुष्प की माला, (१३) फल की माला, (१४) बीज की माला, (१५) हरित की माला करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से तृण की माला—यावत्—हरित की माला धरता है, धरवाता है, धरने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से तृण की माला —यावत्— हरित की माला पहनता है, पहनाता है, पहनने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से (१) अयलोहा, (२) ताम्र लोहा, (३) त्रपु लोहा, (४) सीसक लोहा, (५) रूप्य लोहा,

५. रुप्पलोहाणि वा, ६. सुवण्णलोहाणि वा, करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

(६) सुवर्ण लोहा, करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए अय-लोहाणि वा-जाव-सुवण्ण लोहाणि वा धरेइ धरेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से अयलोहा—**यावत्**— सुवर्ण लोहा को धरकर रखता है, रखवाता है, रखने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए अय-लोहाणि वा-जाव-सुवण्ण लोहाणि वा पिणद्धइ पिणद्धंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से अयलोहा—**यावत्**—सुवर्ण लोहा पहनता है, पहनवाता है, पहनने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए १. हाराणि वा, २. अद्धहाराणि वा, ३. एगावलिं वा, ४. मुत्तावलिं वा, ५. कणगावलिं वा, ६. रयणावलिं वा, ७. कडगाणि वा, ८. तुडियाणि वा, ९. केउराणि वा, १०. कुण्डलाणि वा, ११. पट्टाणि वा, १२. मउडाणि वा, १३. पलंबसुत्ताणि वा, १४. सुवण्ण-सुत्ताणि वा करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से (१) हार, (२) अर्धहार, (३) एकावली, (४) मुक्तावली (५) कनकावली, (६) रत्नावली, (७) कटिसूत्र, (८) भुजबन्ध, (९) केयूर=कंठा, (१०) कुंडल, (११) पट्ट, (१२) मुकुट, (१३) प्रलम्ब सूत्र, (१४) सुवर्ण सूत्र करे, करावे, करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए हाराणि वा-जाव-सुवण्णसुत्ताणि वा धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से हार—**यावत्**—सुवर्ण सूत्र धरकर रखे, रखवावे, रखने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए हाराणि वा-जाव-सुवण्णसुत्ताणि वा पिणद्धइ, पिणद्धंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु कौतूहल से हार—**यावत्**—सुवर्ण सूत्र पहने, पहनावे, पहनने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए १. आईणाणि वा, २. आईण-पावराणि वा, ३. कंबलाणि वा, ४. कंबलपावराणि वा, ५. कोयराणि वा, ६. कोयरपावराणि वा, ७. कालमियाणी वा, ८. नीलमियाणि वा, ९. सामाणि वा, १०. मिहासामाणि वा, ११. उट्टाणि वा, १२. उट्टलेस्साणि वा, १३. विग्घाणि वा, १४. विवग्घाणि वा, १५. परवंगाणि वा, १६. सहिणाणि वा, १७. सहिणकल्लाणि वा, १८. खोमाणि वा, १९. दुगु-ल्लाणि वा, २०. पणलाणि वा, २१. आवरंताणि वा, २२. चीणाणि वा, २३. अंसुयाणि वा, २४. कणगकंताणि वा, २५. कणगखंसियाणि वा, २६. कणगचित्ताणि वा, २७. कणगविचित्ताणि वा, २८. आभरणविचित्ताणि वा करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से (१) चर्म, (२) चर्म के वस्त्र, (३) कम्बल, (४) कम्बल के वस्त्र, (५) रुई, (६) रुई के वस्त्र, (७) कृष्ण मृग चर्म, (८) नील मृग चर्म, (९) श्याम मृग चर्म, (१०) सांभर मृग चर्म, (११) ऊँट की ऊन के वस्त्र, (१२) ऊँट की ऊन के कम्बल, (१३) व्याघ्र चर्म, (१४) चीते का चर्म, (१५) परवंग के वस्त्र (१६) सहिण वस्त्र, (१७) चिकना सुखदायी वस्त्र, (१८) सोम वस्त्र, (१९) दुकूल वस्त्र, (२०) पणल वस्त्र, (२१) आवरत्त वस्त्र, (२२) चीन वस्त्र, (२३) रेशमी वस्त्र, (२४) स्वर्ण जैसी कांति वाले वस्त्र, (२५) स्वर्ण सूत्रों से बने वस्त्र, (२६) स्वर्ण वर्ण वाले वस्त्र, (२७) विविध वर्ण वाले स्वर्ण वस्त्र और (२८) विविध प्रकार के आभरण करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए आईणाणि वा-जाव-आभरण-विचित्ताणि वा धरेइ धरेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से चर्म—**यावत्**—आभरण धर के रखता है, रखवाता है, रखने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू कोउहल्ल-पडियाए आईणाणि वा-जाव-आभरण-विचित्ताणि वा (पिणद्धइ पिणद्धंतं वा) परिभुंजइ, परिभुंजंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु कौतूहल के संकल्प से चर्म—**यावत्**—आभरण का परिभोग करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १७, सु. १-१४

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

✱

वशीकरण प्रायश्चित्त—७

रायवसीकरणाईणं पायच्छित्त सुत्ताइं—

राजा को वश में करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र—

७१६. जे भिक्खू रायं अत्तीकरेइ अत्तीकरेंतं वा साइज्जइ।

७१६. जो भिक्षु राजा को वश में करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू रायं अच्चीकरेइ अच्चीकरेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु राजा के गुणों की प्रशंसा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू रायं अत्थीकरेइ अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु राजा से प्रार्थना करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. ४, सु. १, ७, १३

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अंगरक्खगवसीकरणाईणं पायच्छित्त सुत्ताइं—

अंगरक्षक को वश में करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र—

७१७. जे भिक्खू रायारक्खियं अत्तीकरेइ अत्तीकरेंतं वा साइज्जइ।

७१७. जो भिक्षु राजा के अंगरक्षक को वश में करता है, कराता है करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू रायारक्खियं अच्चीकरेइ अच्चीकरेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु (राजा के) अंगरक्षक के गुणों की प्रशंसा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू रायारक्खियं अत्थीकरेइ अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु (राजा के) अंगरक्षक से प्रार्थना करता है करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. ४, सु. २, ८, १४

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णगररक्खगवसीकरणाईणं पायच्छित्त सुत्ताइं—

नगर-रक्षक को वश में करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र—

७१८. जे भिक्खू णगरारक्खियं अत्तीकरेइ अत्तीकरेंतं वा साइज्जइ।

७१८. जो भिक्षु नगर-रक्षक को वश में करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू णगरारक्खियं अच्चीकरेइ अच्चीकरेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नगर-रक्षक के गुणों की प्रशंसा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू णगरारक्खियं अत्थीकरेइ अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नगर-रक्षक से प्रार्थना करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. ४, सु. ३, ९, १५

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिगमरक्खगवसीकरणाईणं पायच्छित्त सुत्ताइं—

निगम-रक्षक को वश में करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र—

७१९. जे भिक्खू णिगमारक्खियं अत्तीकरेइ अत्तीकरेंतं वा साइज्जइ।

७१९. जो भिक्षु निगम-रक्षक को वश में करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू णिगमारक्खियं अच्चीकरेइ अच्चीकरेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु निगम-रक्षक के गुणों की प्रशंसा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू णिगमारक्खियं अत्थीकरेइ अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु निगम-रक्षक से प्रार्थना करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. ४, सु. ४, १०, १६

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सीमारक्खगवसीकरणाईणं पायच्छित्त सुत्ताइं—

७२०. (जे भिक्खू सीमारक्खियं अत्तीकरेइ अत्तीकरेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सीमारक्खियं अच्चीकरेइ अच्चीकरेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सीमारक्खियं अत्थीकरेइ अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ।)

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ४, सु. १६, १७, १८

सीमा-रक्षक को वश में करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र—

७२०. (जो भिक्षु सीमा-रक्षक को वश में करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सीमा-रक्षक के गुणों की प्रशंसा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सीमा-रक्षक से प्रार्थना करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।)

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

देसरक्खगवसीकरणाईणं पायच्छित्त सुत्ताइं—

७२१. जे भिक्खू देसारक्खियं अत्तीकरेइ अत्तीकरेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू देसारक्खियं अच्चीकरेइ अच्चीकरेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू देसारक्खियं अत्थीकरेइ अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि० उ० ४, सु० ५, ११, १७

देश-रक्षक को वश में करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र—

७२१. जो भिक्षु देश-रक्षक को वश में करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु देश-रक्षक के गुणों की प्रशंसा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु देश-रक्षक से प्रार्थना करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सव्वरक्खगवसीकरणाईणं पायच्छित्त सुत्ताइं—

७२२. जे भिक्खू सव्वारक्खियं अत्तीकरेइ अत्तीकरेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सव्वारक्खियं अच्चीकरेइ अच्चीकरेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सव्वारक्खियं अत्थीकरेइ अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ४, सु. ६, १२, १८

सर्व-रक्षक को वश में करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र—

७२२. जो भिक्षु सर्व-रक्षक को वश में करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सर्व-रक्षक के गुणों की प्रशंसा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सर्व-रक्षक से प्रार्थना करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पाँचवें महाव्रत का परिशिष्ट—८

पंचम अपरिग्गह-महव्वयस्स पंचभावणाओ—

७२३. १. सोइंदियरागोवरई,

२. चक्खिदियरागोवरई,

३. घाणिंदियरागोवरई,

४. जिब्भिदियरागोवरई,

५. फासिंदियरागोवरई, —सम. २५, सु. १

तस्स इमा पंच भावणाओ चरिमस्स वयस्स होंति परिग्गह-वेरमण रक्खणट्ठयाए।

पाँचवें अपरिग्रह महाव्रत की पाँच भावनाएँ—

७२३. (१) श्रोत्रेन्द्रिय के राग से विरक्ति,

(२) चक्षुइन्द्रिय के राग से विरक्ति,

(३) घ्राणेन्द्रिय के राग से विरक्ति,

(४) जिह्वेन्द्रिय के राग से विरक्ति,

(५) स्पर्शेन्द्रिय के राग से विरक्ति,

परिग्रहविरमणव्रत की रक्षा के लिए अन्तिम अपरिग्रहमहाव्रत की ये पाँच भावनाएँ हैं।

पढमं—

सोइंदिएण सोच्चा सद्दाइं मणुण्णभद्दगाइं —

प्रथम भावना—श्रोत्रेन्द्रिय संयम—

श्रोत्रेन्द्रिय से मनोज्ञ एवं भद्र-सुहावने प्रतीत होने वाले शब्दों को सुनकर (साधु को राग नहीं करना चाहिए।)

प०—किं ते ?

प्र०—वे शब्द कौन से हैं ?

उ०—वर-मुरय-मुइंग-पणव-दद्दुर-कच्छभि-वीणा-विपंची-वल्लयि-वद्धीसक-सुघोस-नंदि-सूसर-परिवादिणी-वंस-तूणक-पव्वक-तंती तल-ताल-तुडिय-निग्घोस-गीय-वाइयाइं।

उ०—महामर्दल, मृदंग, छोटा पटह, मेंढक और कच्छप की आकृति के वाद्य-विशेष, वीणा, वीपंची और वल्लकी (विशेष प्रकार की वीणाएँ) वद्धीसक—वाद्य-विशेष, सुघोषा नामक घण्टा, बारह प्रकार के बाजों का निघोष, सूसरपरिवादिनी—एक प्रकार की वीणा, बाँसुरी तूणक एवं पर्वत नामक वाद्य, तन्त्री—एक विशेष प्रकार की वीणा, करताल कांसे का ताल, त्रुटित इन सब बाजों के नाद को (सुनकर)

नड-नट्टक-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिक-वेलंबक-कहक-पवक-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंब-वीणिय-तालायर-पकरणाणि य बहूणि महुर-सुर-गीत-सुस्सराइं।

तथा नट, नर्तक, जल्ल-बांस या रस्सी के ऊपर खेल दिखलाने वाले, मल्ल, मुष्टिमल्ल, विदूषक, कथाकार, तैराक रास गाने वाले, शुभाशुभ फल कहने वाले, लम्बे बांस पर खेल करने वाले, चित्रपट दिखाकर आजीविका करने वाले, तूण बजाने वाला (तून तूनी) तुम्बवीणा बजाने वाला, ताल-मंजीरे बजाने वाला इन सबकी अनेक प्रकार की मधुर ध्वनि से युक्त सुस्वर गीतों को (सुनकर)

कंची-मेहला-कलाव-पतरक-पहेरक-पायजालग घंटिय-खिंखिणि-रयणोरुजालिय छुद्दिय-नेउर-चलणमालिय-कणग-नियल-जाल-भूसणसद्दाणि।

तथा करधनी, कंदोरा ये कटि आभूषण, कलापक गले का आभूषण, प्रतरक और प्रहेरक नामक आभूषण, झांझर, घुंघरू, छोटी घण्टियों वाला आभरण, रत्नोरुजालक-रत्नों का जंघा का आभूषण, क्षुद्रिका नामक आभूषण, नूपुर चरणमालिका तथा सोने के लंगर और जालक नामक आभूषण, इन सब की ध्वनि आवाज को (सुनकर)

लीला-चंकम्म-माणाणुदीरियाइं, तरुणी जण-हसिय-भणिय-कल-रिभित-मंजुलाइं, गुणवयणाणि य महुर-जणभासियाइं। अन्नेसु य एवमाइएसु य सद्देसु मणुण्ण-भद्दएसु तेसु समणेण न सज्जियव्वं, न रज्जियव्वं, न

तथा लीलापूर्वक चलती हुई स्त्रियों की चाल से उत्पन्न (ध्वनि को) एवं तरुणी रमणियों के हास्य की, बोलों की तथा स्वर-घोलनायुक्त मधुर तथा सुन्दर आवाज को (सुनकर) और स्नेहीजनों द्वारा भाषित प्रशंसा-वचनों को एवं इसी प्रकार के

गिज्झियव्वं, न मुज्झियव्वं न विनिग्घायं, न आवज्जियव्वं, न लुभियव्वं, न तुसियव्वं, न हसियव्वं, न सइं च, मइं च तत्थ कुज्जा।

मनोज्ञ एवं सुहावने वचनों को (सुनकर) उनमें साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए, राग नहीं करना चाहिए, गृद्धि-अप्राप्ति की अवस्था में उनकी प्राप्ति की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए, मुग्ध नहीं होना चाहिए, उनके लिए स्व-पर का परिहनन नहीं करना चाहिए, लुब्ध नहीं होना चाहिए, तुष्ट—प्राप्ति होने पर प्रसन्न नहीं होना चाहिए, हँसना नहीं चाहिए, ऐसे शब्दों का स्मरण और विचार भी नहीं करना चाहिए।

पुणरवि सोइंदिएण सोच्चा सद्दाइं अमणुण्णपावगाइं।

इसके अतिरिक्त श्रोत्रेन्द्रिय के लिए अमनोज्ञ मन में अप्रीतिजनक एवं पापक-अभद्र शब्दों को सुनकर (द्वेष) नहीं करना चाहिए।

प०—किं ते ?

प्र०—वे शब्द कौन से हैं ?

उ०—अक्कोस-फरुस-खिंसण-अवमाणण-तज्जण-निब्भंछण-दित्तवयण-तासण-उक्कूजिय-रुन्न-रडिय-कंदिय-निग्घुट्ठ-रसिय-कलुण-विलवियाइं।

उ०—आक्रोश वचन (क्रोध में कहे जाने वाले) कठोर वचन, निन्दाकारी वचन, अपमान भरे शब्द, डांट-फटकार निर्भर्त्सना (धिक्कारना), कोप वचन, त्रासजनक वचन, अस्पष्ट उच्च ध्वनि, निर्घोष रूप ध्वनि, जानवर के समान चीत्कार, करुणाजनक शब्द तथा विलाप के शब्द इन सब शब्दों का—

अन्नेसु य एवमाइएसु सद्देसु अमणुण्ण-पावएसु तेसु समणेण न रूसियव्वं, न हीलियव्वं, न निंदियव्वं, न खिंसियव्वं, न छिंदियव्वं, न भिंदियव्वं, न वहेयव्वं, न दुगुंछावत्तियाए लब्भा उप्पाएउं।

तथा इसी प्रकार के अन्य अमनोज्ञ एवं पापक-अभद्र शब्दों को सुनकर रोष नहीं करना चाहिए, हीलना नहीं करनी चाहिए, निन्दा नहीं करनी चाहिए, जनसमूह के समक्ष उन्हें बुरा नहीं कहना चाहिए, अमनोज्ञ शब्द उत्पन्न करने वाली वस्तु का छेदन नहीं करना चाहिए, भेदन—टुकड़े नहीं करने चाहिए, उसे नष्ट नहीं करना चाहिए। अपने अथवा दूसरे के हृदय में जुगुप्सा उत्पन्न नहीं करना चाहिए।

एवं सोइंदिय-भावणा-भाविओ भवइ अंतरप्पा।
मणुण्णामणुण्ण-सुब्भि-दुब्भि-राग-दोसप्पणिहियप्पा साहू मण-वयण-कायगुत्ते संवुडे पणिहितिंदिए चरेज्ज धम्मं।

इस प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय (संयम) की भावना से भावित अन्तःकरण वाला साधु मनोज्ञ एवं अमनोज्ञ शुभ-अशुभ शब्दों में राग-द्वेष के संवरवाला, मन वचन और काय का गोपन करने वाला, संवरयुक्त एवं गुप्तेन्द्रिय इन्द्रियों गोपन-कर्ता होकर धर्म का आचरण करे।

बितीयं—

द्वितीय भावना—चक्षुरिन्द्रिय संवर—

चक्खिदिएण पासिय रूवाइं मणुण्णाइं भद्दगाइं सचित्ताचित्त मीसगाइं—

चक्षुरिन्द्रिय से मनोज्ञ के अनुकूल एवं भद्र-सुन्दर सचित्त द्रव्य, अचित्त द्रव्य और मिश्र सचित्ताचित्त द्रव्य के रूपों को देखकर (राग नहीं करना चाहिए।)

प०—किं ते ?

प्र०—वे रूप कौन से हैं ?

उ०—कट्ठे पोत्थे य चित्तकम्मे लेप्पकम्मे सेले य, दंतकम्मे य पंचहिं वण्णेहिं अणेग-संठाण-संठियाइं गंठिम-वेढिम-पूरिम-संघातिमाणि य मल्लाइं बहुविहाणि य अहियं नयण-मण-सुहकराइं।

उ०—वे रूप चाहे काष्ठ पर हों, वस्त्र पर हों, चित्र-लिखित हों, मिट्टी आदि के लेप से बनाये गये हों, पाषाण पर अंकित हों, हाथी दांत आदि पर हों, पाँच वर्ण के और नाना प्रकार के आकार वाले हों, गूंथकर माला आदि की तरह बनाये गये हों, वेष्टन से, चमड़ी आदि भरकर अथवा संघात से—फूल आदि

की तरह एक दूसरे को मिलाकर बनाये गये हों, अनेक प्रकार की मालाओं के रूप में हों और वे नयनों तथा मन को अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाले हों (तथापि उन्हें देखकर राग नहीं उत्पन्न होने देना चाहिए)।

वणसंडे पव्वते य गामागर-नगराणि य खुद्दियपुक्खरिणि-वावी--दीहिय-गुंजालिय--सरसरपंतिय-सागर-बिलपंतिय-खाइय-नदी-सर-तलाग-वप्पिणी-फुल्लुप्पल-पउम-परिमंडियाभिरामे, अणेग-सउण-गण-मिहुण-विचरिए।

इसी प्रकार वनखण्ड, पर्वत, ग्राम, नगर, छोटे जलाशय, गोलाकार बावड़ी, दीर्घिका—लम्बी बावड़ी नहर, सरोवरों की पंक्ति समूह, बिलपंक्ति लोहे आदि की खानों में खोदे हुए गड्ढों की पंक्ति खाई नदी बिना खोदे प्राकृतिक रूप से बने जलाशय, तालाब, पानी की क्यारी जो विकसित नील कमलों एवं (श्वेतादि) कमलों से सुशोभित और मनोहर हो। जिनमें अनेक हंस, सारस आदि पक्षियों के युगल विचरण कर रहे हों।

वरमंडव-विविह भवण-तोरण-चेतिय-देवकुल-सभप्पवा-वसह-सुकय-सयणासण-सीय-रह-सयण-जाण-जुग्ग-संदण-नर-नारिगणे य, सोम-पडिरूव-दरिसणिज्जे-अलंकिय-विभूसिए, पुव्वकय-तवप्पभाव-सोहग्ग-संपउत्ते।

उत्तम मण्डप, विविध प्रकार के भवन, तोरण, चैत्य, देवालय, सभा—लोगों के बैठने के स्थान विशेष, प्याऊ, आवसथ, परिव्राजकों के आश्रम, सुनिर्मित शयन-पलंग आदि सिंहासन-आसन, शिविका-पालकी, रथ-गाड़ी यान, युग्म (टमटम) स्यन्दन-घुंघरूदार रथ या सांग्रामिक रथ और नर-नारियों का समूह, ये सब वस्तुएँ यदि सौम्य हों, आकर्षक और दर्शनीय हों, आभूषणों से अलंकृत और सुन्दर वस्त्रों से विभूषित हों, पूर्व में की हुई तपस्या के प्रभाव से सौभाग्य को प्राप्त हों (इन्हें देखकर)

नड-नट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंबग-कहग-पवग-लासग आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुम्ब-वीणिय-तालायर-पकरणाणि य बहूणि सुकरणाणि।

तथा नट, नर्तक, जल्ल, मल्ल, मौष्टिक, विदूषक, कथावाचक, प्लवक, रास करने वाले व वार्ता करने वाले, चित्रपट लेकर भिक्षा माँगने वाले, बाँस पर खेल करने वाले, तुणइल्ल-तुणा बजाने वाले, तुम्बे की वीणा बजाने वाले एवं तालाचारों के विविध प्रयोग देखकर तथा बहुत से करतबों को देखकर तथा,

अन्नेसु य एवमाइएसु रूवेसु मणुन्नभद्दएसु तेसु समणेण न सज्जियव्वं, न रज्जियव्वं-जाव-न सइं च, मइं च तत्थ कुज्जा।

इस प्रकार के अन्य मनोज्ञ तथा सुहावने रूपों में साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए, अनुरक्त नहीं होना चाहिए—यावत्—उनका स्मरण और विचार भी नहीं करना चाहिए।

पुणरवि चक्खिदिएण पासिय रूवाइं अमणुन्न-पावकाइं—

इसके सिवाय चक्षुरिन्द्रिय से अमनोज्ञ और पापकारी रूपों को देखकर (रोष नहीं करना चाहिए)।

प०—किं ते ?

प्र०—वे (अमनोज्ञ रूप) कौन से हैं ?

उ०—गंडि-कोढिक कुणि-उदरि-कच्छुल्ल-पइल्ल-कुज्ज-पंगुल-वामण-अंधिल्लग-एगचक्खु-विणिहय-सप्पि-सल्लग-वाहिरोगपीलियं विगयाणि य मयककलेवराणि सकिमिणकुहियं च दव्वरासिं।

उ०—गंडमाला के रोगी को, कुष्ठ रोगी को, लूले या टोंटे जलोदर के रोगी को, खुजली वाले को, हाथीपगा या श्लीपद के रोगी को, लंगड़े को, वामन-बौने को, जन्मान्ध को, एकचक्षु (काणे) को, विनिहत चक्षु को—जन्म के पश्चात् जिसकी एक या दोनों आँखें नष्ट हो गई हों, पिशाचग्रस्त को अथवा पीठ से सरक कर चलने वाले को, विशिष्ट चित्तपीड़ा रूप व्याधि या रोग से पीड़ित को (इनमें से किसी को देखकर) तथा विकृत मृतक—कलेवरों को या बिलबिलाते कीड़ों से युक्त सड़ी-गली द्रव्यराशि को देखकर।

अन्नेसु य एवमाइएसु अमणुन्नपावएसु तेसु समणेण न रूसियव्वं-जाव-न दुगुंछा वत्तियाए लब्भा उप्पाएउं ।

अथवा इनके सिवाय इसी प्रकार के अन्य अमनोज्ञ और पापकारी रूपों को देखकर श्रमण को उन रूपों के प्रति रुष्ट नहीं होना चाहिए,—**यावत्**—मन में जुगुप्सा भी नहीं उत्पन्न होने देनी चाहिए ।

एवं चक्खिदियभावणाभाविओ भवइ अंतरप्पा-जाव-चरेज्जधम्मं ।

इस प्रकार चक्षुरिन्द्रिय संवर रूप भावना से भावित अन्त:-करण वाला मुनि—**यावत्**—धर्म का आचरण करे ।

तत्तियं—

तृतीय भावना—घ्राणेन्द्रिय संयम—

घाणिदिएण अग्घाइए गंधाइं मणुन्न भद्दगाइं—

घ्राणेन्द्रिय से मनोज्ञ और सुहावना गंध सूंघकर (रागादि नहीं करना चाहिए)

प०—किं ते ?

प्र०—वे सुगन्ध क्या कैसे हैं ?

उ०—जलय - थलय - सरस-पुप्फ-फल-पाण-भोयण-कुट्ठ-तगर-पत्त-चोय - दमणक -मरुय-एलारस-पक्कमंसि-गोसीस-सरस-चंदण-कप्पूर-लवंग-अगर-कुंकुम-कक्कोल-उसीर-सेयचंदण-सुगंध-सारंग-जुत्तिवरधूववासे, उउय-पिंडिय-निहारिम गंधिएसु ।

उ०—जल और स्थल में उत्पन्न होने वाले सरस पुष्प, फल, पान, भोजन, उत्पलकुष्ठ, तगर, तमालपत्र, चोय-सुगन्धित त्वचा दमनक—एक विशेष प्रकार का फूल मरुआ, एलारस—इलायची का रस, जटामांसी नामक सुगन्धित द्रव्य, सरस गोशीर्ष चन्दन, कपूर, लवंग, अगर, कुंकुम, कक्कोल—गोलाकार सुगन्धित फल-विशेष, उशीर—खस, श्वेत चन्दन आदि द्रव्यों के संयोग से बनी श्रेष्ठ धूप की सुगन्ध को सूंघकर (रागभाव नहीं धारण करना चाहिए ।)

अन्नेसु य एवमाइएसु गंधेसु मणुन्न-भद्दएसु तेसु समणेण न सज्जियव्वं-जाव-न सइं च, मइं च तत्थ कुज्जा ।

तथा भिन्न-भिन्न ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले कालोचित सुगन्ध वाले एवं दूर-दूर तक फैलने वाली सुगन्ध से युक्त द्रव्यों में और इसी प्रकार की मनोहर, नासिका को प्रिय लगने वाली सुगन्ध के विषय में मुनि को आसक्त नहीं होना चाहिए—**यावत्**—उनका स्मरण और विचार भी नहीं करना चाहिए ।

पुणरवि घाणिदिएण अग्घाइय गंधाइ अमणुन्न-पावगाइं—

इसके अतिरिक्त घ्राणेन्द्रिय से अमनोज्ञ और असुहावने गन्धों को सूंघकर (रोष आदि नहीं करना चाहिए) ।

प०—किं ते ?

प्र०—वे दुर्गन्ध कौन से हैं ?

उ०—अहिमड-अस्समड-हत्थिमड-गोमड- विग-सुणग-सियाल-मणुय-मज्जार-सीह-दीविय-मय-कुहिय-विणट्ठ-किविण-बहुदुरभिगन्धेसु ।

उ०—मरा हुआ सर्प, मृत घोड़ा, मृत हाथी, मृत गाय तथा भेड़िया, कुत्ता, मनुष्य, बिल्ली, श्रृगाल, सिंह और चीता आदि के मृतक सड़े-गले कलेवरों की, जिसमें कीड़े बिलबिला रहे हों, दूर-दूर तक बदबू फैलने वाली गन्ध में

अन्नेसु य एवमाइएसु गंधेसु अमणुन्न-पावएसु तेसु समणेण न रूसियव्वं-जाव-न दुगुंछावत्तियाए लब्भा उप्पाएउं ।

तथा इसी प्रकार के और भी अमनोज्ञ और असुहावनी दुर्गन्धों के विषय में साधु को रोष नहीं करना चाहिए—**यावत्**—मन में जुगुप्सा-घृणा भी नहीं होने देनी चाहिए ।

एवं घाणिदिय भावणा भाविओ भवइ अंतरप्पा-जाव-चरेज्ज धम्मं ।

इस प्रकार अन्तरआत्मा घ्राणेन्द्रिय की भावना से भावित होती है—**यावत्**—धर्म का आचरण करे ।

चउत्थं—

चतुर्थ भावना—रसनेन्द्रिय संयम—

जिब्भिदिएण साइय-रसाणि उ मणुन्न-भद्दगाइं—

रसना-इन्द्रिय से मनोज्ञ एवं सुहावने रसों का आस्वादन करके (उनमें आसक्त नहीं होना चाहिए ।)

प०—किं ते ?

उ०—उग्गाहिम-विविहपाण-भोयणेसु गुलकय-खंडकय-तेल्ल-घयकयभक्खेसु बहुविहेसु लवणरस-संजुत्तेसु बालियंब-सेहंब-दुद्ध-दहि-साइं अट्ठारसप्पगारेसु य मणुन्न-वन्न-गंध-रस-फास बहुदव्वसंभिसेसु अन्नेसु य एवमाइएसु रसेसु मणुन्न भद्दएसु तेसु समणेण न सज्जियव्वं-जाव-न सइं च, मइं च तत्थ कुज्जा।

प्र०—वे रस कौन से हैं ?

उ०—तले हुए वस्तु, विविध प्रकार के पानक-भोजन, गुड़, शक्कर, तेल और घी से बने हुए भोज्य पदार्थ, अनेक प्रकार के नमकीन आदि रसों से युक्त, खट्टी दाल, सेन्धाम्ल-रायता आदि, दूध, दही आदि अठारह प्रकार के व्यंजन। मनोज्ञ वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श से युक्त अनेक द्रव्यों से निर्मित भोजन तथा इसी प्रकार के अन्य मनोज्ञ एवं सुहावने-लुभावने रसों में साधु को आसक्त नहीं होना चाहिए—**यावत्**—उनका स्मरण तथा विचार भी नहीं करना चाहिए।

पुणरवि जिब्भिदिएण साइयरसाइं अमणुन्न पावकाइं—

इसके अतिरिक्त जिह्वा—इन्द्रिय से अमनोज्ञ और असुहावने रसों (का आस्वाद करके रोष आदि नहीं करना चाहिए।)

प०—किं ते ?

उ०—अरस-विरस-सीय-लुक्ख-णिज्जप्प-पाण-भोयणाइं दोसीण-वावन्न-कुहिय-पूइय-अमणुन्न-विणट्ठ-पसूय-बहुदुब्भिगंधियाइं तित्त-कडुय-कसाय-अंबिलरस-लीढ-नीरसाइं—

अन्नेसु य एवमाइएसु रसेसु अमणुन्न-पावएसु न तेसु समणेण न रूसियव्वं-जाव-न दुगु छावत्तियाए लब्भा उप्पाएउं एवं जिब्भिदिय भावणा भाविओ भवइ अंतरप्पा-जाव-चरेज्ज धम्मं।

प्र०—वे अमनोज्ञ रस कौन से हैं ?

उ०—रसहीन, विरस—पुराना होने से विगतरस, ठण्डे, रूखे निर्वाह के अयोग्य भोजन-पानी को तथा रात-बासी, रंग बदले हुए, सड़े हुए, दुर्गन्ध वाले अमनोज्ञ ऐसे तिक्त, कटु, कसैले खट्टे, शैवाल सहित पुराने पानी के समान एवं नीरस पदार्थों में

तथा इसी प्रकार के अन्य अमनोज्ञ तथा अशुभ रसों में साधु को रोष नहीं करना चाहिए **यावत्**—मन में जुगुप्सा-घृणा भी नहीं होने देनी चाहिए। इस प्रकार अन्तरात्मा रसनेन्द्रिय की भावना से भावित होती है—**यावत्**—धर्म का आचरण करना चाहिए।

पंचमगं—

पंचम भावना—स्पर्शनेन्द्रिय संयम—

पुण फासिंदिएण फासिय फासाइ मणुन्न-भद्दकाइं—

स्पर्शनेन्द्रिय से मनोज्ञ और सुहावने स्पर्शों को छूकर (राग-भाव नहीं करना चाहिए)

प०—किं ते ?

उ०—दगमंडव-हार-सेयचंदण-सीयलविमल-जल-विविह कुसुम सत्थर ओसीर-मुत्तिय-मुणाल-दोसिणा-पेहुण-उक्खेवग-तालियंट-वीयणग-जणिय-सुहसीयले य पवणे गिम्हकाले सुह-फासाणि य बहूणि सयणाणि आसणाणि य, पाउरणगुणे य सिसिरकाले अंगारपतावणा य।

आयव-निद्ध-मउय-सीय-उसिण-लहुया य, जे उउसुह-फासा अंगसुहनिव्वुइकरा ते—

अन्नेसु य एवमाइएसु फासेसु मणुन्न-भद्दएसु तेसु समणेण न सज्जियव्वं-जाव-न सइं च, मइं च तत्थ कुज्जा।

प्र०—वे मनोज्ञ स्पर्श कौन से हैं ?

उ०—फव्वारे वाले मण्डप, हीरक, हार, श्वेत, चन्दन, शीतल निर्मल जल, विविध पुष्पों की शय्या, मोती, पद्मनाल, चन्द्रमा की चान्दनी तथा मोरपिच्छी, तालवृन्त, ताड़ का पंखा, पंखे से की गई सुखद शीतल पवन में, ग्रीष्मकाल में सुखद स्पर्श वाले अनेक प्रकार के शयनों और आसनों में, शिशिरकाल-शीतकाल में आवरण गुण वाले अर्थात् ठण्ड से बचाने वाले,

वस्त्रादि में अंगारों से शरीर को तपाने, धूप, स्निग्ध—तैलादि पदार्थ, कोमल और शीतल, गर्म और हल्के—जो ऋतु के अनुकूल सुखप्रद स्पर्श वाले हों, शरीर को सुख और मन को आनन्द देने वाले हों, ऐसे सब स्पर्शों में,

तथा इसी प्रकार के अन्य मनोज्ञ और सुहावने स्पर्शों में श्रमण को आसक्त नहीं होना चाहिए—**यावत्**—उनका स्मरण और विचार भी नहीं करना चाहिए।

पुणरवि फासिंदिएण फासिय फासाइं अमणुन्न पावकाइं—

प०—किं ते ?

उ०—अणेग-वध-बंध-तालणंकण-अतिभारारोवणए अंग-भंजण-सूती-नखप्पवेस-गायपच्छणण-लक्खारस-खार-तेल्ल-कलकलंततउअ-सीसक-काललोह-सिंचण-हडि-बंधण-रज्जुनिगल-संकल-हत्थंडुय-कुंभिपाक-दहण-सीहपुच्छण-उब्बंधण-सूलभेय-गयचलण-मलण-कर-चरण-कण्ण-नासोट्ठ-सीसछेयण-जिब्भछेयण-वसण-नयण-हियय-दंत-भंजण-जोत्त-लय-कसप्पहार-पाय-पण्हि-जाणु-पत्थर-निवाय-पीलण-कविकच्छुअगणि विच्छुय-डंक-वायातव-दंसमसकनिवाते दुट्ठनिसज्ज-दुन्निसीहिया-दुब्भि-कक्खड-गुरु-सीय-उसिण-लुक्खेसु बहुविहेसु—

इसके अतिरिक्त स्पर्शनेन्द्रिय से अमनोज्ञ एवं पापक-असुहावने स्पर्शों को छूकर रुष्ट नहीं होना चाहिए।

प्र०—वे स्पर्श कौन से हैं ?

उ०—अनेक प्रकार के वध, बन्धन, ताडन-थप्पड़ आदि का प्रहार, अंकन—तपाई हुई सलाई आदि से शरीर को दागना अधिक भार का लादा जाना, अंग-भंग होना या किया जाना, शरीर में सुई या नख का चुभाया जाना, अंग की हीनता होना, लाख के रस, नमकीन (क्षार) तेल, उबलते शीशे या कृष्णवर्ण लोहे से शरीर का सींचा जाना, काष्ठ के खोड़े में डाला जाना, रस्सी के निगड़ बन्धन से बाँधा जाना हथकड़ियाँ पहनाई जाना, कुंभी में पकाना, अग्नि से जलाया जाना, सिंह की पूंछ से बाँधकर घसीटना, शूली पर चढ़ाया जाना, हाथी के पैर से कुचला जाना, हाथ-पैर-कान-नाक-होंठ और शिर में छेद किया जाना, जीभ का बाहर खींचा जाना, अण्डकोश-नेत्र-हृदय-दांत या आंत का मोड़ा जाना, गाड़ी में जोता जाना, बेंत या चाबुक द्वारा प्रहार किया जाना, एड़ी, घुटना या पाषाण का अंग पर आघात होना, यंत्र में पीला जाना, कपिकच्छू—अत्यन्त खुजली होना अथवा खुजली उत्पन्न करने वाले फल कैंच का स्पर्श होना, अग्नि का स्पर्श, बिच्छू के डंक का, वायु का, धूप का या डांस-मच्छरों का स्पर्श होना, दुष्ट—दोषयुक्त कष्टजनक आसन तथा दुर्गन्धमय स्वाध्यायभूमि में, कर्कश, भारी, शीत, उष्ण एवं रूक्ष आदि अनेक प्रकार के स्पर्शों में,

अन्नेसु य एवमाइएसु फासेसु अमणुन्न-पावकेसु तेसु समणेण न रूसियव्वं-जाव-न दुगुंछावत्तियं लब्भा उप्पाएउं।

इसी प्रकार के अन्य अमनोज्ञ स्पर्शों में साधु को रुष्ट नहीं होना चाहिए—यावत्—स्व-पर में घृणावृत्ति भी उत्पन्न नहीं करनी चाहिए।

एवं फासिंदियभावणाभाविओ भवइ अंतरप्पा मणुन्ना-मणुन्न-सुब्भि-दुब्भि-राग-दोस-पणिहियप्पा साहू मण-वयण-काय गुत्ते संवुडे पणिहितिंदिए चरेज्ज धम्मं।

—पण्ह० सु० २. अ० ५, सु० १२-१६

इस प्रकार स्पर्शनेन्द्रिय संवर की भावना से भावित अन्तःकरण वाला, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, अनुकूल और प्रतिकूल स्पर्शों की प्राप्ति होने पर राग-द्वेषवृत्ति का संवरण करने वाला साधु मन, वचन और काय से गुप्त होता है। इस भाँति साधु संवृतेन्द्रिय होकर धर्म का आचरण करे।

उवसंहारो—

एवमिणं संवरस्सदारं सम्मं संवरियं होइ सुप्पणिहियं—इमेहिं पंचहिं य कारणेहिं मण-वय-कायपरिरक्खिएहिं निच्चं आमरणंतं च एस जोगो नेयव्वो धितिमया मतिमया अणासवो अकलुसो अच्छिद्दो अपरिस्सावी असंकिलिट्ठो सुद्धो सव्वजिणमणुण्णाओ।

उपसंहार—

इस (पूर्वोक्त) प्रकार से यह पाँचवां संवरद्वार-अपरिग्रह-सम्यक् प्रकार से मन, वचन और काय से परिरक्षित पाँच भावना रूप कारणों से संवृत किया जाये तो सुरक्षित होता है। धैर्यवान् और विवेकवान साधु को यह योग जीवन पर्यन्त पालनीय है। यह आस्रव को रोकने वाला, निर्मल, मिथ्यात्व आदि छिद्रों से रहित होने के कारण अपरिस्रावी, संक्लेशहीन, शुद्ध और समस्त तीर्थंकरों द्वारा अनुज्ञात है।

एवं पंचमं संवरदारं फासियं-जाव-आणाए आराहियं भवइ ।

इस प्रकार यह पाँचवां संवरद्वार शरीर द्वारा स्पृष्ट, पालित—यावत्—तीर्थंकरों की आज्ञा के अनुसार आराधित होता है।

एवं नायमुणिणा भगवया पण्णवियं परूवियं पसिद्धं सिद्धं सिद्धवरसासणमिणं आघवियं सुदेसियं पसत्थं ।

—पण्ह. सु. २, अ. ५, सु. १७

ज्ञात मुनि भगवान् ने ऐसा प्रतिपादित किया है। युक्ति-पूर्वक समझाया है। यह प्रसिद्ध है, सिद्ध और भवस्थ सिद्धों—अरिहंतों का उत्तम शासन कहा गया है, समीचीन रूप से उपदिष्ट है। यह प्रशस्त संवरद्वार पूर्ण हुआ।

पाँचों महाव्रतों का परिशिष्ट—६

पंचमहव्वय आराहणाफलं—

पाँच महाव्रतों की आराधना का फल—

७२४. एतेसु बाले य पकुव्वमाणे,
आवट्टती कम्मसु पावएसु ।
अतिवाततो कीरति पावकम्मं,
निउंजमाणे उ करेति कम्मं ॥

७२४. अज्ञानी जीव इन (पूर्वोक्त पृथ्वीकाय आदि) प्राणियों को छेदन-भेदन-उत्पीड़न आदि के रूप में कष्ट देकर पापकर्मों के आवर्त में फँस जाता है। प्राणातिपात स्वयं करने से प्राणी ज्ञानावरणीय पाप कर्म करता है, तथा दूसरों को प्राणातिपात पापकर्मों में नियोजित करके भी पाप कर्म करता है।

आदीणभोई वि करेति पावं,
मंता तु एगंतसमाहिमाहु ।
बुद्धे समाहीय रते विवेगे,
पाणातिपाता विरते ठितप्पा ॥

—सूय. सु. १, अ. १०, गा. ५-६

दीनवृत्ति वाला भी पाप करता है। यह जानकर तीर्थंकरों ने एकान्त (भावरूप ज्ञानादि) समाधि का उपदेश दिया है। इसलिए प्रबुद्ध (ज्ञानी) समाधि और विवेक में रत होकर प्राणातिपात से विरत हो स्थितात्मा रहे।

सीहं जहा खुद्दमिगा चरंता,
दूरे चरंति परिसंकमाणा ।
एवं तु मेधावि समिक्ख धम्मं,
दूरेण पावं परिवज्जएज्जा ॥

जैसे चरते हुए मृग आदि छोटे पशु सिंह (के द्वारा मारा जाने) की शंका करते हुए दूर से ही (बचकर) रहते हैं, इसी प्रकार मेधावी साधक (समाधिरूप) धर्म को समझकर पाप को दूर से ही छोड़ दे।

संबुज्झमाणे तु णरे मतीमं,
पावातो अप्पाणं निवट्टएज्जा ।
हिंसप्पसूताइं दुहाइं मंता,
वेराणुबंधीणि महब्भयाणि ॥

समाधि को समझकर मतिमान् पुरुष दुःख हिंसा से उत्पन्न होते हैं, और वैर परम्परा बांधने वाले हैं, इसलिए ये महाभय जनक हैं। अतः साधक हिंसादि पापकर्म से स्वयं को निवृत्त करे।

मुसं न बूया मुणि अत्तगामी,
णिव्वाणमेयं कसिणं समाहिं ।
सयं न कुज्जा न वि कारवेज्जा,
करेंतमन्नं पि य नाणुजाणे ॥

आत्मगामी मुनि असत्य न बोले। मुनि मृषावाद स्वयं न करे। दूसरों के द्वारा न कराए तथा करने वाले का अनुमोदन न करे। यह निर्वाण सम्पूर्ण समाधि है।

सुद्धे सिया जाए न दूसएज्जा,
अमुच्छिते णं य अज्झोववण्णे ।
धितिमं विमुक्के ण य पूयणट्ठी,
न सिलोयकामी य परिव्वएज्जा ॥

एषणा द्वारा लब्ध शुद्ध आहार को दूषित न करे, उसमें मूर्च्छित और आसक्त न हो, संयम में धृतिमान बाह्याभ्यन्तर परिग्रह से विमुक्त मुनि अपनी पूजा-प्रतिष्ठा एवं कीर्ति का अभिलाषी न होकर शुद्ध संयम में पराक्रम करे।

निक्खम्म गेहाउ निरावकंखी,
कायं विओसज्ज नियाणछिण्णे ।
नो जीवितं नो मरणाभिकंखी,
चरेज्ज भिक्खू वलया विमुक्के ॥

—सूय. सु. १, अ. १०, गा. २०-२४

घर से निकल कर (दीक्षा लेकर) अनासक्त हो, शरीर का व्युत्सर्ग कर, कर्मबन्धन को छिन्न कर। न तो जीने की इच्छा करे और न ही मरण की। वह संसार-वलय (जन्म-मरण के चक्कर) से विमुक्त होकर संयम में विचरण करे।

आरम्भ-परिग्गहविरओ कम्मंतकरो भवइ

७२५. १. इह खलु गारत्था सारम्भा सपरिग्गहा, संतेगतिया समण-माहणा सारम्भा सपरिग्गहा, जे इमे तस-थावरा पाणा ते सयं समारम्भन्ति, अण्णेण वि समारम्भावेंति, अण्णं पि समारंभंतं समणुजाणंति।

२. इह खलु गारत्था सारम्भा सपरिग्गहा, संतेगतिया समण-माहणा वि सारम्भा सपरिग्गहा, जे इमे कामभोगा सचित्ता वा अचित्ता वा ते सयं चेव परिगिण्हंति, अण्णेण वि परिगिण्हावेंति, अण्णं पि परिगिण्हंतं समणुजाणंति।

३. इह खलु गारत्था सारम्भा सपरिग्गहा, संतेगतिया समणा माहणा वि सारम्भा सपरिग्गहा, अहं खलु अणारम्भे अपरिग्गहे। जे खलु गारत्था सारम्भा सपरिग्गहा, संतेगतिया समण-माहणा वि सारम्भा सपरिग्गहा, एतेसिं चेव निस्साए बंभचेरं चरिस्सामो।

प०—कस्स णं तं हेउं?

उ०—जहा पुव्वं तहा अवरं, जहा अवरं तहा पुव्वं। अंजू चेते अणुवरया अणुवट्ठिता पुणरवि तारिसगा चेव।

जे खलु गारत्था सारम्भा सपरिग्गहा, संतेगतिया समण-माहणा सारंभा सपरिग्गहा, दुहतो पावाइं इति संखाए दोहिं वि अंतेहिं अदिस्समाणे इति भिक्खू रीएज्जा।

से बेमि—पाईणं वा-जाव-दाहिणं वा एवं से परिण्णात-कम्मे, एवं से विवेयकम्मे, एवं से वियंतकारए भवतीति मक्खातं।

—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६७७-६७९

आरम्भ-परिग्रह विरत कर्मों का अन्त करने वाला होता है—

७२५. (१) इस लोक में गृहस्थ आरम्भ और परिग्रह से युक्त होते हैं, कई श्रमण और ब्राह्मण भी आरम्भ और परिग्रह से युक्त होते हैं। वे गृहस्थ तथा श्रमण और ब्राह्मण इन त्रस और स्थावर प्राणियों का स्वयं आरम्भ करते हैं, दूसरे के द्वारा भी आरम्भ कराते हैं और आरम्भ करने वाले का अनुमोदन करते हैं।

(२) इस जगत में गृहस्थ तो आरम्भ और परिग्रह से युक्त होते ही हैं, कई श्रमण एवं माहन भी आरम्भ और परिग्रह से युक्त होते हैं। वे गृहस्थ तथा श्रमण और ब्राह्मण सचित्त और अचित्त दोनों प्रकार के काम-भोगों को स्वयं ग्रहण करते हैं, दूसरे से भी ग्रहण कराते हैं तथा ग्रहण करते हुए का अनुमोदन करते हैं।

(३) इस जगत में गृहस्थ आरम्भ और परिग्रह से युक्त होते हैं, कई श्रमण और ब्राह्मण भी आरम्भ परिग्रह से युक्त होते हैं। (ऐसी स्थिति में आत्मार्थी भिक्षु विचार करता है) मैं आरम्भ और परिग्रह से रहित हूँ। जो गृहस्थ हैं, वे आरम्भ और परिग्रह सहित हैं, कोई-कोई श्रमण तथा माहन भी आरम्भ परिग्रह में लिप्त हैं, अतः आरम्भ परिग्रह युक्त पूर्वोक्त गृहस्थ वर्ग एवं श्रमण माहनों के आश्रय से मैं ब्रह्मचर्य (मुनिधर्म) का आचरण करूँगा।

प्र० आरम्भ-परिग्रह सहित गृहस्थ वर्ग और कतिपय श्रमण ब्राह्मणों के निश्राय में ही जब रहना है, तब फिर इनका त्याग करने का क्या कारण है?

उ० गृहस्थ जैसे पहले आरम्भ परिग्रह सहित होते हैं, वैसे पीछे भी होते हैं, एवं कोई-कोई श्रमण माहन प्रव्रज्या धारण करने से पूर्व जैसे आरम्भ-परिग्रहयुक्त होते हैं, इसी तरह बाद में आरम्भ परिग्रह में लिप्त रहते हैं। इसलिए ये लोग सावद्य आरम्भ-परिग्रह से निवृत्त नहीं हैं, अतः शुद्ध संयम का आचरण करने के लिए, शरीर टिकाने के लिए इनका आश्रय लेना अनुचित नहीं है।

आरम्भ-परिग्रह से युक्त रहने वाले जो गृहस्थ हैं, तथा जो सारम्भ सपरिग्रह श्रमण-माहन हैं, वे इन दोनों प्रकार (आरम्भ एवं परिग्रह की क्रियाओं से या राग और द्वेष) से पाप कर्म करते रहते हैं। ऐसा जानकर साधु दोनों के अन्त से इनसे अदृश्यमान (रहित) हो इस प्रकार संयम में प्रवृत्ति करे।

इसलिए मैं कहता हूँ—पूर्व आदि (चारों) दिशाओं से आया हुआ जो (पूर्वोक्त विशेषताओं से युक्त) भिक्षु आरम्भ-परिग्रह से रहित है, वही कर्म के रहस्य को जानता है, इस प्रकार वह कर्म बन्धन से रहित होता है तथा वही (एक दिन) कर्मों का अन्त करने वाला होता है, यह श्री तीर्थंकर देव ने कहा है।

रात्रि भोजन-निषेध—१

छट्ठवय आराहण पइण्णा—

७२६. अहावरे छट्ठे भंते ! वए राईभोयणाओ वेरमणं।

सव्वं भंते ! राईभोयणं पच्चक्खामि—

से असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा,

(से य राइभोयणे चउव्विहे पण्णत्ते,

तं जहा—१. दव्वओ, २. खेत्तओ, ३. कालओ, ४. भावओ।

१. दव्वओ असणे वा-जाव-साइमे वा।

२. खेत्तओ समयखेत्ते।

३. कालओ राई।

४. भावओ तित्ते वा, कडुए वा, कसाए वा, अंबिले वा महुरे वा, लवणे वा।)

नेव सयं राइं भुंजेज्जा, नेवन्नेहिं राइं भुंजावेज्जा, राइं भुंजंते वि अन्ने न समणुजाणेज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करेंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।[१]

छट्ठे भंते ! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राईभोयणाओ वेरमणं।

इच्चेयाइं पंच महव्वयाइं राइभोयणवेरमणछट्ठाइं अत्तहियट्ठयाए उवसंपज्जित्ताणं विहरामि।[२]—दस. अ. ४, सु. १६-१७

षष्ठ व्रत आराधन प्रतिज्ञा—

७२६. भन्ते ! इसके पश्चात् छठे व्रत में रात्रि-भोजन की विरति होती है।

भन्ते ! मैं सब प्रकार के रात्रि-भोजन का प्रत्याख्यान करता हूँ।

जैसे—अशन, पान, खादिम, स्वादिम।

(वह रात्रि-भोजन चार प्रकार के हैं—

जैसे—(१) द्रव्य से, (२) क्षेत्र से, (३) काल से, (४) भाव से।

(१) द्रव्य से—अशन, पान, खादिम एवं स्वादिम।

(२) क्षेत्र से—समय क्षेत्र (मनुष्य क्षेत्र) में अर्थात् जिस समय जहाँ रात्रि हो।

(३) काल से—रात्रि में।

(४) भाव से—तिक्त, कडुवा, कसैला, खट्टा, मीठा या नमकीन।)

किसी भी वस्तु को रात्रि में मैं स्वयं नहीं खाऊँगा, दूसरों को नहीं खिलाऊँगा और खाने वालों का अनुमोदन भी नहीं करूँगा, यावज्जीवन के लिए तीन करण तीन योग से—मन से, वचन से, काया से न करूँगा, न कराऊँगा और करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूँगा।

भन्ते ! मैं (अतीत के रात्रि भोजन से) निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और आत्मा का व्युत्सर्ग करता हूँ।

भन्ते ! मैं छठे व्रत में उपस्थित हुआ हूँ, इसमें सर्व-रात्रि भोजन की विरति होती है।

मैं इन पाँच महाव्रतों और रात्रि-भोजन-विरति रूप छठे व्रत को आत्महित के लिए अंगीकार कर विहार करता हूँ।

राइए असणाइ गहण-णिसेहो—

७२७. नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा,
राओ वा वियाले वा,
असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहित्तए,
नन्नत्थ एगेणं पुव्वपडिलेहिएणं सेज्जासंथारएणं।
—कप्प. उ. १, सु. ४४

रात्रि में अशनादि ग्रहण का निषेध—

७२७. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को
रात्रि में या विकाल में
अशन—यावत्—स्वादिम लेना नहीं कल्पता है।
केवल एक पूर्व प्रतिलेखित शय्या संस्तारक को छोड़कर।

---

१. चउव्विहे वि आहारे, राईभोयणवज्जणा। सन्निहीसंचओ चेव, वज्जेयव्वो सुदुक्करं॥ —उत्त. अ. १९, गा. ३१

२. रात्रि भोजन विरमण व्रत प्रथम अहिंसा व्रत में ही अन्तर्भूत है, अतः चतुर्याम धर्म और पंचयाम धर्म में इस व्रत का स्वतन्त्र रूप से उल्लेख नहीं हुआ है, श्रुतस्थविरों ने सरलता के लिए इस व्रत का भिन्न विधान पीछे से किया है।

राइभोयण—णिसेह कारणं—

७२८. संतिमे सुहुमा पाणा, तसा अदुव थावरा।
जाइं राओ अपासंतो, कहमेसणियं चरे ?॥
उदओल्लं बीयसंसत्तं, पाणा निव्वडिया महिं।
दिआ ताइं विवज्जेज्जा, राओ तत्थ कहं चरे ?॥

एयं च दोसं दट्ठूणं, नायपुत्तेण भासियं।
सव्वाहारं न भुंजंति, निग्गंथा राइभोयणं[1]॥
—दस. अ. ६, गा. २३-२५

रात्रि-भोजन निषेध का कारण—

७२८. जो त्रस और स्थावर सूक्ष्म प्राणी हैं, उन्हें रात्रि में नहीं देखता हुआ निर्ग्रन्थ एषणा कैसे कर सकता है ?

उदक से आर्द्र और बीजयुक्त भोजन तथा जीवाकुल मार्ग—उन्हें दिन में टाला जा सकता है पर रात में उन्हें टालना शक्य नहीं—इसलिए निर्ग्रन्थ—रात को भिक्षाचर्या कैसे कर सकता है ?

ज्ञातपुत्र महावीर ने इस हिंसात्मक दोष को देखकर कहा—"जो निर्ग्रन्थ होते हैं वे रात्रि-भोजन नहीं करते, चारों प्रकार के आहार में से किसी भी प्रकार का आहार नहीं करते।"

राइभोयणस्स सव्वहा णिसेहो—

७२९. अत्थंगयम्मि आइच्चे, पुरत्था य अणुग्गए।
आहारमाइयं सव्वं, मणसा वि न पत्थए॥
—दस. अ. ८, गा. २८

रात्रि-भोजन का सर्वथा निषेध—

७२९. सूर्यास्त से लेकर पुनः सूर्य पूर्व में न निकल आए तब तक सब प्रकार के आहार की मन से भी इच्छा न करे।

पारियासिय आहारस्स भुंजेण णिसेहो—

७३०. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा,
पारियासियस्स आहारस्स,
तयप्पमाणमेत्तमवि, भूइप्पमाणमेत्तमवि,
तोयबिंदुप्पमाणमेत्तमवि आहारमाहारेत्तए,
नन्नत्थ गाढागाढेहिं रोगायंकेहिं।[2]
—कप्प. उ. ५, सु. ४७

रात्रि में आहारादि के उपयोग का निषेध—

७३०. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को

परिवासित (रात्रि में रखा हुआ या कालातिक्रान्त) आहार

त्वक् प्रमाण (तिल-तुष जितना) भूति-प्रमाण (एक चुटकी जितना)

खाना तथा बिन्दु प्रमाण जितना भी पानी पीना नहीं कल्पता है—

केवल उग्र रोग एवं आतंक में (परिवासित आहार-पानी लेना) कल्पता है।

पारियासिय लेवणप्पओग णिसेहो—

७३१. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा,
पारियासिएणं आलेवणजाएणं,
गायाइं आलिंपित्तए वा विलिंपित्तए वा,
नन्नत्थ गाढागाढेहिं रोगायंकेहिं। —कप्प. उ. ५, सु. ४८

रात्रि में लेप लगाने का निषेध—

७३१. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को

अपने शरीर पर सभी प्रकार के परिवासित लेपन एक बार लगाना या बार-बार लगाना नहीं कल्पता है—

केवल उग्र रोग एवं आतंकों में लगाना कल्पता है।

---

१ रात्रि भोजन करने वाले को शबल (प्रबल) दोष लगता है—देखिए—अनाचार में शबलदोष।

२ यह सूत्र स्थविरकल्पी के उत्सर्ग और अपवाद मार्ग का सूचक है और प्रश्नव्याकरण का निम्नांकित सूत्र जिनकल्पी के उत्सर्ग मार्ग का सूचक सूत्र है।

इस सूत्र में अत्यन्त उग्र मरणान्त वेदना होने पर भी औषधि आदि के उपयोग का सर्वथा निषेध है।

जं पि य समणस्स सुविहियस्स उ रोगायंके बहुप्पगारंमि समुप्पन्ने वाताहिक-पित्त-सिंभ-अइरित्त-कुविय-तह-सन्निवातजाते व उदयपत्ते, उज्जल-बल-विउल-कक्खड-पगाढदुक्खे, असुह-कडुय-फरुसे, चंडफल-विवागे, महब्भए, जीवियंतकरणे, सव्वसरीरपरितावणकरे न कप्पइ तारिसे वि तह अप्पणो परस्स वा ओसह-भेसज्जं भत्त-पाणं च तं पि संनिहिकयं। —पण्ह. सु. २, अ. ५, सु. ७

पारियासिय तेल्लाईणं अब्भंग णिसेहो—

७३२. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा,

पारियासिएणं तेल्लेण वा, घएण वा, नवनीएण वा, वसाए वा,

गायाइं अब्भंगित्तए वा, मक्खित्तए वा,

नन्नत्थ गाढाऽगाढेहिं रोगायंकेहिं। —कप्प. उ. ५, सु. ४९

रात्रि में तैल आदि के मालिश का निषेध—

७३२. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को

अपने शरीर पर परिवासित तैल-घृत-नवनीत और वसा (चर्बी) का

चुपड़ना या मलना नहीं कल्पता है।

केवल उग्र रोग या आतंकों में लगाना कल्पता है।

पारिवासिय कक्काईणं उवट्टण णिसेहो —

७३३. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा,

परिवासिएणं कक्केणं वा, लोद्धेणं वा, पधूवेणं वा,

अन्नयरेणं वा आलेवणजाएणं गायाइं उवलित्तए वा उव्वट्टित्तए वा,

नन्नत्थ गाढाऽगाढेहिं रोगायंकेहिं। —कप्प. उ. ५, सु. ५०

रात्रि में कल्कादि के उबटन का निषेध—

७३३. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को

अपने शरीर पर परिवासित कल्क, लोध या धूप आदि का

किसी एक प्रकार का विलेपन करना या उबटन करना नहीं कल्पता है।

केवल उग्र रोग या आतंकों में लगाना कल्पता है।

※※

रात्रिभोजन के प्रायश्चित्त—२

सूरस्स उदयत्थमण-विइगिच्छाए पायच्छित्त सुत्ताणि—

७३४. भिक्खू य उग्गयवित्तीए अणत्थमियं-संकप्पे संथडिए[1] निव्वितिगिच्छा समावण्णेणं[2] असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेत्ता आहारं आहारेमाणे,

अह पच्छा जाणेज्जा—

"अणुग्गए सूरिए, अत्थमिए वा"

से जं च आसयंसि, जं च पाणिंसि, जं च पडिग्गहे,

तं विगिंचमाणे वा, विसोहेमाणे वा णो अइक्कमइ।

तं अप्पणा भुंजमाणे,

सूर्योदयास्त के सम्बन्ध में शंका होने पर आहार करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

७३४. सूर्योदय पश्चात् और सूर्यास्त पूर्व भिक्षाचर्या करने की प्रतिज्ञा वाला तथा सूर्योदय या सूर्यास्त के सम्बन्ध में असंदिग्ध सशक्त एवं प्रतिपूर्ण आहार करने वाला निर्ग्रन्थ भिक्षु (आचार्य या उपाध्याय आदि) अशन, यावत् स्वादिम (चतुर्विध आहार) ग्रहण कर आहार करता हुआ,

यदि यह जाने कि

"सूर्योदय नहीं हुआ है अथवा सूर्यास्त हो गया है"

तो उस समय जो आहार मुँह में है, हाथ में है, पात्र में है, उसे परठ दे तथा मुख आदि की शुद्धि कर ले तो जिनाज्ञा का अतिक्रमण नहीं होता है।

यदि उस आहार को वह स्वयं खावे

---

1. संस्तृत—शब्द का अर्थ है—सशक्त, स्वस्थ और प्रतिदिन पर्याप्तभोजी निर्ग्रन्थ भिक्षु।
2. निर्विचिकित्स—पद का अर्थ है संशय रहित—अर्थात् सूर्योदय हो गया है या सूर्यास्त नहीं हुआ है—इस प्रकार के निश्चय वाला निर्ग्रन्थ।

अन्नेसिं वा दलमाणे,
राइभोअणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । —कप्प. उ. ५, सु. ६

या अन्य निर्ग्रन्थ को दे तो
उसे रात्रि-भोजन सेवन का दोष लगता है। अतः वह अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहार स्थान प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

भिक्खू य उग्गयवित्तीए अणत्थमियसंकप्पे

सूर्योदय पश्चात् और सूर्यास्त पूर्व भिक्षाचर्या करने की प्रतिज्ञा वाला किन्तु,

संथडिए वितिगिच्छा-समावण्णेणं[1]

सूर्योदय या सूर्यास्त के सम्बन्ध में संदिग्ध, समर्थ एवं प्रतिपूर्ण आहार करने वाला निर्ग्रन्थ भिक्षु (आचार्य या उपाध्याय आदि)

असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहित्ता आहारं आहारेमाणे

अशन,—**यावत्**—स्वादिम (चतुर्विध आहार) ग्रहण कर आहार करता हुआ,

अह पच्छा जाणेज्जा—
"अणुग्गए सूरिए, अत्थमिए वा,"
से जं च आसयंसि, जं च पाणिंसि, जं च पडिग्गहे
तं विगिंचमाणे वा विसोहेमाणे वा नो अइक्कमइ ।

यदि वह जाने कि
"सूर्योदय नहीं हुआ है या सूर्यास्त हो गया है" तो
उस समय जो आहार मुँह में है, हाथ में है, पात्र में है
उसे परठ दे तथा मुख आदि की शुद्धि करले तो जिन आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है।

तं अप्पणा भुंजमाणे,
अन्नेसिं वा दलमाणे
राइभोयणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । —कप्प. उ. ५, सु. ७

यदि उस आहार को वह स्वयं खावे
या अन्य निर्ग्रन्थ को दे
तो उसे रात्रि-भोजन सेवन का दोष लगता है। अतः वह अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

भिक्खू य उग्गयवित्तीए अणत्थमियसंकप्पे

सूर्योदयपश्चात् और सूर्यास्तपूर्व भिक्षाचर्या करने की प्रतिज्ञा वाला तथा

असंथडिए निव्वितिगिच्छासमावण्णेणं

सूर्योदय या सूर्यास्त के सम्बन्ध में **असंदिग्ध, अशक्त** एवं प्रतिपूर्ण आहार न करने वाला निर्ग्रन्थ भिक्षु (आचार्य या उपाध्याय आदि)

असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेत्ता आहारं आहारेमाणे

अशन,—**यावत्** स्वादिम (चतुर्विध आहार) ग्रहण कर आहार करता हुआ

अह पच्छा जाणेज्जा—
"अणुग्गए सूरिए, अत्थमिए वा",
से जं च आसयंसि, जं च पाणिंसि, जं च पडिग्गहे
तं विगिंचमाणे वा, विसोहेमाणे वा नो अइक्कमइ ।

यदि वह जाने कि
"सूर्योदय नहीं हुआ है या सूर्यास्त हो गया है"
तो उस समय जो आहार मुँह में है, हाथ में है, पात्र में है—उसे परठ दे मुख आदि की शुद्धि कर ले तो जिनाज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है।

तं अप्पणा भुंजमाणे,
अन्नेसिं वा दलमाणे,
राइभोयणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । —कप्प. उ. ५, सु. ८

यदि उस आहार को वह स्वयं खावे या
अन्य निर्ग्रन्थ को दे तो
उसे रात्रि-भोजन सेवन का दोष लगता है। अतः वह अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहार स्थान प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

भिक्खू य उग्गयवित्तीए अणत्थमियसंकप्पे

सूर्योदय पश्चात् और सूर्यास्त पूर्व भिक्षाचर्या करने की प्रतिज्ञा वाला

---

१. समर्थ, संदिग्ध ।

असंथडिए विइगिच्छासमावण्णेणं ।[1]

किन्तु सूर्योदय या सूर्यास्त के सम्बन्ध में संदिग्ध, अशक्त एवं प्रतिपूर्ण आहार न करने वाला निर्ग्रन्थ भिक्षु (आचार्य या उपाध्याय आदि)

असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेत्ता आहारं आहारेमाणे

अशन,—यावत्—स्वादिम (चतुर्विध आहार) ग्रहण करता हुआ

अह पच्छा जाणेज्जा -
"अणुग्गए सूरिए, अत्थमिए वा",
से जं च मुहे, जं च पाणिसी, जं च पडिग्गहंसि
तं विगिंचमाणे वा, विसोहेमाणे वा नो अइक्कमइ।

यदि वह जाने कि—
"सूर्योदय नहीं हुआ है या सूर्यास्त हो गया है"
तो उस समय जो आहार मुँह में है, हाथ में है, पात्र में है उसे परठ दे तथा मुख आदि की शुद्धि कर ले तो जिनाज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है।

तं अप्पणा भुंजमाणे,
अन्नेसिं वा दलमाणे,
राइभोयणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। — कप्प. उ. ५, सु. ६

यदि उस आहार को वह स्वयं खावे या
अन्य निर्ग्रन्थ को दे तो
उसे रात्रि-भोजन सेवन का दोष लगता है अतः वह अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहार स्थान प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

जे भिक्खू उग्गयवित्तीए अणत्थमियसंकप्पे संथडिए णिव्वितिगिच्छासमावण्णेणं अप्पाणेणं असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेत्ता भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ।

जिस भिक्षु का सूर्योदय के बाद और सूर्यास्त के पहले आहार करने का संकल्प है स्वस्थ है, सन्देह रहित है (और) स्वयं अशन यावत् स्वाद्य ग्रहण करके उपभोग करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

अह पुण एवं जाणेज्जा—"अणुग्गयसूरिए अत्थमिए वा" से जं च मुहे, जं च पाणिसि, जं च पडिग्गहंसि, तं विगिंचेमाणे विसोहेमाणे तं परिट्ठमाणे णाइक्कमइ। जो तं भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ।

यदि वह ऐसा जाने "सूर्योदय नहीं हुआ है या सूर्यास्त हो गया है" तो जो मुँह में है, जो हाथ में है और जो पात्र में है उसे निकाल कर साफ कर परठने वाला (वीतराग की आज्ञा का) उल्लंघन नहीं करता है। यदि वह उस आहार को करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू उग्गयवित्तीए अणत्थमियसंकप्पे संथडे वितिगिच्छासमावण्णेणं अप्पाणेणं असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेत्ता भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ।

जिस भिक्षु का सूर्योदय के बाद और सूर्यास्त के पहले आहार करने का संकल्प है स्वस्थ है, सन्देह सहित है (और) स्वयं अशन यावत् स्वाद्य ग्रहण करके आहार करता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

अह पुण एवं जाणेज्जा—"अणुग्गए सूरिए, अत्थमिए वा" से जं च मुहे, जं च पाणिसि, जं च पडिग्गहंसि तं विगिंचेमाणे विसोहेमाणे तं परिट्ठमाणे णाइक्कमइ। जो तं भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ।

यदि ऐसा जाने "सूर्योदय नहीं हुआ है या सूर्यास्त हो गया है" तो जो मुँह में है, हाथ में है और जो पात्र में है उसे निकाल कर साफ कर परठने वाला (वीतराग की आज्ञा का) उल्लंघन नहीं करता है। यदि वह उस आहार को करे, करावे, करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू उग्गयवित्तीए अणत्थमियसंकप्पे असंथडिए णिव्वितिगिच्छा समावण्णेणं अप्पाणेणं असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेत्ता भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ।

जिस भिक्षु का सूर्योदय के बाद और सूर्यास्त के पहले आहार का संकल्प है, अस्वस्थ है, सन्देह रहित है (और) स्वयं अशन यावत् स्वाद्य ग्रहण करके उपभोग करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

---
1 अशक्त-संदिग्ध।

अह पुण एवं जाणेज्जा—"अणुग्गए सूरिए अत्थमिए वा" से जं च मुहे, जं च पडिग्गहंसि तं विगिंचेमाणे विसोहेमाणे तं परिट्ठमाणे णाइक्कमइ। जो तं भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ।

यदि वह ऐसा जाने "सूर्योदय हुआ नहीं है या सूर्यास्त हो गया है" तो जो मुँह में है, हाथ में है, और जो पात्र में है उसे निकाल कर, साफ कर परठने वाला (वीतराग की आज्ञा का) उल्लंघन नहीं करता है। यदि वह ऐसा आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू उग्गयवित्तीए अणत्थमियसंकप्पे असंथडिए वितिगिच्छा समावण्णेणं अप्पाणेणं असणं वा-जाव- साइमं वा पडिग्गाहेत्ता भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ।

जिस भिक्षु का सूर्योदय के बाद और सूर्यास्त के पहले आहार करने का संकल्प है, **अस्वस्थ है, सन्देह सहित है** और स्वयं अशन **यावत्** स्वाद्य ग्रहण करके उपभोग करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

अह पुण एवं जाणेज्जा—"अणुग्गए सूरिए अत्थमिए वा" से जं च मुहे, जं च पाणिंसि, जं च पडिग्गहंसि तं विगिंचेमाणे विसोहेमाणे तं परिट्ठमाणे णाइक्कमइ। जो तं भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ।

यदि वह ऐसा जाने "सूर्योदय हुआ नहीं है या सूर्यास्त हो गया है" तो जो मुँह में है, हाथ में है और जो पात्र में है उसे निकाल कर साफ कर परठने वाला (वीतराग की आज्ञा का) उल्लंघन नहीं करता है। यदि वह ऐसा आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. १०, सु. ३१-३४

उसे अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

दिवसे वा रयणीए वा असणाई गहण-भुंजण पायच्छित्त सुत्ताइं—

दिन में या रात्रि में अशनादि ग्रहण करने के तथा खाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

७३५. जे भिक्खू दिया असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेत्ता दिया भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ।[1]

७३५. जो भिक्षु दिन में अशन—**यावत्**—स्वादिम आहार को ग्रहण करके दिन मे खाता है, खिलाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू दिया असणं वा-जाव- साइमं वा पडिग्गाहेत्ता रत्तिं भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु दिन में अशन—**यावत्**—स्वादिम आहार को ग्रहण करके रात्रि में खाता है, खिलाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू रत्तिं असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेत्ता दिया भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु रात्रि में अशन - **यावत्**—स्वादिम आहार को ग्रहण करके दिन में खाता है, खिलाता है या खाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू रत्तिं असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेत्ता राइं भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु रात्रि में अशन - **यावत्**—स्वादिम आहार को ग्रहण करके रात्रि में खाता है, खिलाता है, खाने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ११, सु. ७४-७७

उसे अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान प्रायश्चित्त आता है।

---

१ इस सूत्र में दिन में अशनादि ग्रहण करके दिन में उसका उपयोग करने पर प्रायश्चित्त विधान है।
इस सम्बन्ध में चूर्णिकार का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—
पढम भंग संभवो इमो—दिया घेत्तुं णिसि संवासे तु तं त्रितियदिणे भुंजमाणस्स पढम भंगो भवति॥
प्रथम भंग की रचना इस प्रकार है—
दिन में ग्रहण किए हुए अशनादि को रात में रखकर दूसरे दिन उसका उपयोग करने पर उपभोक्ता प्रायश्चित्त का पात्र होता है।
—देखें गाथा ३३६७ की चूर्णी

राईए असणाई संगह करण—भुंजण पायच्छित्त सुत्ताइं—

७३६. जे भिक्खू असणं वा-जाव-साइमं वा अणागाढे परिवासेइ परिवासेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू परिवासियस्स असणस्स वा-जाव-साइमस्स वा तयप्पमाणं वा भूइप्पमाणं वा बिंदुप्पमाणं वा आहारं आहारेइ आहारेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । —नि. उ. ११, सु. ७८-७९

जे भिक्खू पारियासियं १. पिप्पलिं वा, २. पिप्पलिचुण्णं वा, ३. सिंगबेरं वा, ४. सिंगबेरचुण्णं वा, ५. बिलं वा, ६. लोणं वा, ७. उब्भियं लोणं वा आहारेइ आहारेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । —नि. उ. ११, सु. ८१

दिवाभोयणस्स अवण्णं राईभोयणस्स वण्णं वदमाणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

७३७. जे भिक्खू दियाभोयणस्स अवण्णं वयइ वयंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू राइभोयणस्स वण्णं वयइ वयंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । —नि. उ. ११, सु. ७२-७३

दिवसे वा, रयणीए गहियगोमयलेवस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

७३८. जे भिक्खू दिवा गोमयं पडिग्गाहेत्ता दिवा कायंसि वणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा,
आलिंपावेज्ज वा विलिंपावेज्ज वा,
आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू दिवा गोमयं पडिग्गाहेत्ता रत्तिं कायंसि वणं आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा,
आलिंपावेज्ज वा विलिंपावेज्ज वा,
आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा साइज्जइ ।

रात्रि में अशनादि के संग्रह करने के तथा खाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

७३६. जो भिक्षु अत्यावश्यक कारण के अतिरिक्त अशन—**यावत्**—स्वाद्य रात्रि में रखता है, रखवाता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु बासी रखे हुए अशन—**यावत्**—स्वाद्य त्वक् प्रमाण भूतिप्रमाण चुटकी जितना तथा बिन्दु प्रमाण जितना आहार करता है, करवाता है, या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

जो भिक्षु रात बासी रखे हुए १. पीपल, २. पीपल का चूर्ण, ३. सूंठ, ४. सूंठ का चूर्ण, ५ बिल्व, ६. समुद्र का लवण, ७. खनिज लवण का आहार करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

दिवा-भोजन निन्दा और रात्रि-भोजन प्रशंसा के प्रायश्चित्त सूत्र—

७३७. जो भिक्षु दिन में भोजन करने की निन्दा करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु रात्रि भोजन करने की प्रशंसा करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

दिन में या रात्रि में ग्रहण किए गए गोबर के लेप के प्रायश्चित्त सूत्र—

७३८. जो भिक्षु दिन में गोबर लेकर दिन में शरीर पर हुए व्रण पर लेप करता है, बार-बार लेप करता है,

लेप करवाता है, बार बार लेप करवाता है,

लेप करने वाले का, बार बार लेप करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु दिन में गोबर लेकर रात में शरीर पर हुए व्रण पर लेप करता है, बार बार लेप करता है,

लेप करवाता है, बार बार लेप करवाता है,

लेप करने वाले का, बार बार लेप करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जे भिक्खू रत्तिं गोमयं पडिग्गाहेत्ता दिवा कायंसि वणं
आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा,
आलिंपावेज्ज वा विलिंपावेज्ज वा,
आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु रात में गोबर लेकर दिन में शरीर पर हुए व्रण पर लेप करता है, बार बार लेप करता है,
लेप करवाता है, बार बार लेप करवाता है,
लेप करने वाले का, बार बार लेप करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू रत्तिं गोमयं पडिग्गाहेत्ता रत्तिं कायंसि वणं
आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा,
आलिंपावेज्ज वा विलिंपावेज्ज वा,
आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु रात में गोबर लेकर रात में शरीर पर हुए व्रण पर लेप करता है, बार बार लेप करता है,
लेप करवाता है, बार बार लेप करवाता है,
लेप करने वाले का, बार बार लेप करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. १२, सु. ३२-३५

उसे अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

दिवसे वा, रयणीए वा गहियलेवपओगस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

दिन में या रात्रि में गृहीत लेप प्रयोग के प्रायश्चित्त सूत्र—

७३९. जे भिक्खू दिवा आलेवणजायं पडिग्गाहेत्ता दिवा कायंसि वणं
आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा,
आलिंपावेज्ज वा विलिंपावेज्ज वा,
आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा साइज्जइ।

७३९. जो भिक्षु दिन में लेप मात्र ग्रहण करके दिन में शरीर पर हुए व्रण पर लेप करे, बार बार लेप करे,
लेप करावे, बार बार लेप करावे,
लेप करने वाले का, बार बार लेप करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू दिवा आलेवणजायं पडिग्गाहेत्ता रत्तिं कायंसि वणं
आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा,
आलिंपावेज्ज वा विलिंपावेज्ज वा,
आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु दिन में लेप मात्र ग्रहण करके रात में शरीर पर हुए व्रण पर लेप करे, बार बार लेप करे,
लेप करावे, बार बार लेप करावे,
लेप करने वाले का, बार बार लेप करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू रत्तिं आलेवणजायं पडिग्गाहेत्ता दिवा कायंसि वणं
आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा,
आलिंपावेज्ज वा विलिंपावेज्ज वा,
आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु रात में लेप मात्र ग्रहण करके दिन में शरीर पर हुए व्रण पर लेप करे, बार बार लेप करे,
लेप करावे, बार बार लेप करावे,
लेप करने वाले का, बार बार लेप करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू रत्तिं आलेवणजायं पडिग्गाहेत्ता रत्तिं कायंसि वणं
आलिंपेज्ज वा विलिंपेज्ज वा,
आलिंपावेज्ज वा विलिंपावेज्ज वा,
आलिंपंतं वा विलिंपंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु रात में लेप मात्र ग्रहण करके रात में शरीर पर हुए व्रण पर लेप करे, बार बार लेप करे,
लेप करावे, बार बार लेप करावे,
लेप करने वाले का, बार बार लेप करने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. १२, सु. ३६-३९

उसे अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

उग्गालगिलणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

७४०. जे भिक्खू राओ वा, वियाले वा संपाणं सभोयणं उग्गालं उग्गलित्ता पच्चोगिलइ पच्चोगिलंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।[1]

—नि. उ. १०, सु. ३५

उद्गाल गिलने का प्रायश्चित्त सूत्र—

७४०. जो भिक्षु रात में या विकाल (सूर्योदय से पूर्व या पश्चात् सन्ध्या समय) पानी या भोजन के उगाल को उगलकर निगलता है, निगलवाता है या निगलने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

---

१ (क) इस सूत्र के समान एक सूत्र कप्पसुत्तं में भी है। जो यहाँ नीचे अंकित है। दोनों सूत्र समान विषय वाले हैं। दोनों सूत्रों में प्रायश्चित्त विधान भी समान है। किन्तु निशीथ का सूत्र संक्षिप्त है और कप्पसुत्तं का सूत्र विस्तृत है—इससे प्रतीत होता है दोनों सूत्रों के स्रष्टा भिन्न हैं।

(ख) इह खलु निग्गंथस्स वा निग्गंथीए वा, राओ वा वियाले वा, सपाणे सभोयणे उग्गाले आगच्छेज्जा, तं विगिंचमाणे वा विसोहेमाणे वा नो अइक्कमइ। तं उग्गालित्ता पच्चोगिलमाणे राइभोयणपडिसेवणपत्ते आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—कप्प. उ. ५, सु. १०

(ग) तओ अणुग्घाइया पण्णत्ता, तं जहा—१. हत्थकम्मं करेमाणे, २. मेहुणं पडिसेवमाणे, ३. राइभोयणं भुंजमाणे।

—कप्प. उ. ४, सु. १

इस सूत्र में तीनों कार्य अनुद्घातिक प्रायश्चित्त योग्य हैं किन्तु प्रथम "हस्तकर्म" मासिक अनुद्घातिक प्रायश्चित्त योग्य है शेष "मैथुन के संकल्प" और "रात्रिभोजन" ये दो चातुर्मासिक अनुद्घातिक प्रायश्चित्त योग्य हैं।

चारित्राचार तालिका

(१) संवर (५)

१ प्राणातिपात विरमण
२ मृषावाद विरमण
३ अदत्तादान विरमण
४ अब्रह्मचर्य विरमण
५ परिग्रह विरमण
(प्रश्न २/१)

(२) संवर (५)

१ सम्यक्त्व संवर
२ विरति संवर
३ अप्रमत्तता संवर
४ अकषायता संवर
५ अयोगता संवर
(सम. ५)

(३) संवर (१०)

१ श्रोत्रेन्द्रिय संवर
२ चक्षु इन्द्रिय संवर
३ घ्राणेन्द्रिय संवर
४ रसना (जिह्वा) इन्द्रिय संवर
५ स्पर्शनेन्द्रिय संवर
६ मनःसंवर
७ वचन संवर
८ काय संवर
९ उपकरण संवर
१० सूची कुशाग्र संवर
(ठाण १०)

७ ब्रह्मचर्य दस समाधि स्थान
(उत्त. १६/१३-१४)
ब्रह्मचर्य के १८ प्रकार
(सम. १८)
ब्रह्मचर्य की नव गुप्ति
(ठाणं. ९)

(४) समाधि (१०)

१ प्राणातिपात विरमण
२ मृषावाद विरमण
३ अदत्तादान विरमण
४ मैथुन विरमण
५ परिग्रह विरमण
६ इरियासमिति
७ भाषा समिति
८ एषणा समिति
९ आदान भाण्ड मात्र निक्षेपण समिति
१० उच्चार प्रस्रवण श्लेष्म-सिंघाण जल्ल परिष्ठापना समिति
(ठाणं १०)

(५) प्राणातिपात विरमण (६)

१ पृथ्वीकाय हिंसा विरमण
२ अप्काय हिंसा विरमण
३ तेजस्काय हिंसा विरमण
४ वायुकाय हिंसा विरमण
५ वनस्पतिकाय हिंसा विरमण
६ त्रसकाय हिंसा विरमण
(दश. ४)

भावना (२५)

प्रत्येक महाव्रत की ५-५ भावनाएँ
(आ. २/१५)
(पण्ह. २११. सम. २५)

(६) संयम (१०)

१ पृथ्वीकाय संयम
२ अप्काय संयम
३ तेजस्काय संयम
४ वायुकाय संयम
५ वनस्पतिकाय संयम
६ द्वीन्द्रिय संयम
७ त्रीन्द्रिय संयम
८ चतुरिन्द्रिय संयम
९ पंचेन्द्रिय संयम
१० अजीवकाय संयम
(स्थानांग १०)

अट्ठ पवयणमायाओ

एयाओ पंच समिइओ चरणस्स य पवत्तणे।
गुत्ती नियत्तणे वुत्ता असुभत्थेसु सव्वसो।
एया पवयणमाया जे सम्मं आयरे मुणी।
से खिप्पं सव्व संसारा विप्पमुच्चइ पण्डिए।

—उत्त० अ० २४/२६-२७

चरणानुयोग

(अष्ट प्रवचन माता)

अष्टप्रवचन माता का स्वरूप

अट्ठपवयणमायाओ—

७४१. **अट्ठ पवयणमायाओ[1] पण्णत्ताओ, तं जहा—**

१. **इरियासमिई**, २. **भासासमिई**,

३. **एसणासमिई**, ४. **आयाण-भंड-मत्त-निक्खेवणासमिई**

५. **उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल परिट्ठावणियासमिई**[2]

६. **मणगुत्ती**, ७. **वइगुत्ती**, ८. **कायगुत्ती।**

—सम. सम. ८, सु. १

एयाओ पंच समिईओ चरणस्स य पवत्तणे।
गुत्ती नियत्तणे वुत्ता असुभत्थेसु सव्वसो[3]॥
एया पवयणमाया जे सम्मं आयरे मुणी।
से खिप्पं सव्वसंसारा विप्पमुच्चइ पण्डिए॥

—उत्त. अ. २४, गा. २६-२७

अष्टप्रवचन माता—

७४१. प्रवचन माता के आठ प्रकार हैं, जैसे—

(१) ईर्यासमिति, (२) भाषासमिति,

(३) एषणासमिति, (४) आदान-भांड-अमत्र-निक्षेपणा-समिति,

(५) उच्चार-प्रस्रवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-परिस्थापनिकी समिति,

(६) मनोगुप्ति, (७) वचनगुप्ति और (८) कायगुप्ति।

ये पांच समितियाँ चारित्र की प्रवृत्ति के लिए हैं और तीन गुप्तियाँ सब अशुभ विषयों से निवृत्ति करने के लिए हैं।

जो पण्डित मुनि इन प्रवचन-माताओं का सम्यक् आचरण करता है, वह शीघ्र ही सर्व संसार से मुक्त हो जाता है।

अट्ठसमिईओ—

७४२. **अट्ठ समितीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—**

१. **इरियासमिति,**

२. **भासासमिति,**

३. **एसणासमिति,**

४. **आयाणभंड-मत्त-णिक्खेवणासमिति,**

५. **उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-परिट्ठावणियासमिति,**

६. **मण-समिति,**

७. **वइसमिति,**

८. **कायसमिति,** —ठाणं अ. ८, सु. ६०३

एयाओ अट्ठ समिईओ[4] समासेण वियाहिया।
दुवालसंगं जिणक्खायं मायं जत्थ उ पवयणं॥

—उत्त. अ. २४, गा. ३

आठ समितियाँ—

७४२. समितियाँ आठ कही गई हैं, जैसे—

१. गमन में सावधानी—युग प्रमाण भूमि को शोधते हुए गमन करना।

२. बोलने में सावधानी रखना तथा हित, मित, प्रिय वचन बोलना।

३. गोचरी में सावधानी रखना—निर्दोष भिक्षा लेना।

४. अमत्र-निक्षेपणा समिति—भोजनादि के भाण्ड पात्र आदि को सावधानीपूर्वक देखकर तथा शोधन कर लेना और रखना।

५. उच्चार (मल) प्रस्रवण (मूत्र) श्लेष्म (कफ) सिंघाण (नासिका का मैल) जल्ल (शरीर का मैल) निर्जीव स्थान में डालना।

६. मन को संयम में रत रखना।

७. विवेक पूर्वक बोलना।

८. काया से संवर एवं कर्म निर्जरा करना।

ये आठ समितियाँ संक्षेप में कही गई हैं।

इनमें जिन-भाषित द्वादशांग-रूप प्रवचन समाया हुआ है।

---

१ (क) आगमों में अष्ट प्रवचन माता की दो प्रकार की विवक्षाएं हैं, यथा—पाँच समिति और तीन गुप्ति इनमें द्वादशांग समाविष्ट है। इन अष्टप्रवचन माताओं से ही द्वादशांग प्रवचन का प्रसव हुआ है।

(ख) अट्ठ पवयणमायाओ समिई गुत्ती तहेव य। पंचेव य समिईओ तओ गुत्तीओ आहिया॥
इरिया भासेसणादाणे उच्चारे समिई इया। मणगुत्ति वयगुत्ती कायगुत्ती य अट्ठमा॥ —उत्त. अ. २४, गा. १-२

२ (क) आव. अ. ४, सु. २४, (ख) ठाणं. अ. ५, सु. ४५७, (ग) सम. स. ५, सु. १।

३ एगओ विरइं कुज्जा, एगओ य पवत्तणं। असंजमे नियत्तिं च, संजमे य पवत्तणं॥ —उत्त. अ. ३१, गा. २

४ ईर्यादि पाँच की समिति और मनोगुप्ति आदि तीन की गुप्ति संज्ञा सर्वत्र प्रसिद्ध है पर इस गाथा में तथा ठाणं. अ. ८, ६०३ में आठों की समिति संज्ञा का ही उल्लेख है।

ईर्यासमिति

विधिकल्प—१

इरियासमिईए भेयप्पभेया—

७४३. आलंबणेण कालेणं, मग्गेण जयणाइ य।
चउकारणपरिसुद्धं, संजए इरियं रिए॥

तत्थ आलंबणं नाणं, दंसणं चरणं तहा।
काले य दिवसे वुत्ते, मग्गे उप्पहवज्जिए॥

दव्वओ खेत्तओ चेव, कालओ भावओ तहा।
जयणा चउव्विहा वुत्ता तं मे कित्तयओ सुण॥

दव्वओ चक्खुसा पेहे,
जुगमित्तं च खेत्तओ।
कालओ जाव रीएज्जा,
उवउत्ते य भावओ॥

इंदियत्थे विवज्जित्ता, सज्झायं चेव पंचहा[1]।
तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे, उवउत्ते रियं रिए॥

—उत्त. अ. २४, गा. ४-८

ईर्यासमिति के भेद-प्रभेद—

७४३. संयमी मुनि आलम्बन, काल, मार्ग और यतना—इन चार कारणों से परिशुद्ध ईर्या (गति) से चले।

उनमें ईर्या का आलम्बन, ज्ञान, दर्शन और चारित्र है। उसका काल दिवस है और उत्पथ का वर्जन करना उसका मार्ग है।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से यतना चार प्रकार की कही गई है। वह मैं कह रहा हूँ, सुनो।

द्रव्य से—आँखों से देखे।
क्षेत्र से—युग मात्र (गाड़ी के जुए जितनी) भूमि को देखे।
काल से—जब तक चले तब तक देखे।
भाव से—उपयुक्त (गमन में दत्तचित्त) रहे।

इन्द्रियों के विषयों और पांच प्रकार के स्वाध्याय का वर्जन कर, ईर्या में तन्मय हो, उसे प्रमुख बनाकर उपयोगपूर्वक चले।

एयं कुसलस्स दंसणं।
तद्दिट्ठीए,

तम्मुत्तीए,

तप्पुरक्कारे,

तस्सण्णी,

तन्निवेसणे, जयं विहारी, चित्तणिवाती पंथणिज्झाई पलिबाहिरे पासिय पाणे गच्छेज्जा।

से अभिक्कममाणे पडिक्कममाणे संकुचेमाणे पसारेमाणे विणियट्टमाणे संपलिमज्जमाणे।

(ईर्या-विवेक) यह वीतराग परमात्मा का कुशल दर्शन है।
अतः परिपक्व साधक उस (वीतराग-दर्शनरूप गुरु-सान्निध्य) में ही एक मात्र दृष्टि रखे,

उसी के द्वारा प्ररूपित विषय-कषाय-आसक्ति से मुक्ति में मुक्ति माने, उसी को आगे (दृष्टिपथ में) रखकर मुक्ति माने,

उसी को आगे दृष्टिपथ में रखकर विचरण करे,

उसी का संज्ञान-स्मृति सतत सब कार्यों में रखे, उसी के सान्निध्य में तल्लीन होकर रहे।

मुनि (प्रत्येक चर्या में) यतनापूर्वक विहार करे, चित्त को (गति में) एकाग्र कर मार्ग का सतत अवलोकन करते हुए (दृष्टि टिकाकर) चले। जीव-जन्तु को देखकर पैरों को आगे बढ़ने से रोक ले और मार्ग में आने वाले प्राणियों को बचाकर गमन करे।

वह भिक्षु जाता हुआ, वापस लौटता हुआ, अंगों को सिकोड़ता हुआ, फैलाता (पसारता हुआ) इन समस्त अशुभप्रवृत्तियों से निवृत्त होकर, सम्यक् प्रकार से परिमार्जन करता हुआ समस्त क्रियाएँ करे।

---

१ ठा. अ. ५, उ. ३, सु. ४६५।

एगया गुणसमितस्स रीयतो कायसंफासमणुचिण्णा एगतिया पाणा उद्दायंति इहलोगवेदणवेज्जावडियं ।

किसी समय प्रवृत्ति करते हुए अप्रमादी मुनि के शरीर का संस्पर्श पाकर कुछ प्राणी परिताप पाते हैं। कुछ प्राणि ग्लानि पाते हैं अथवा कुछ प्राणी मर जाते हैं, तो उसके इस जन्म में वेदन करने योग्य कर्म का बन्ध हो जाता है।

जं आउट्टिकयं कम्मं तं परिण्णाय विवेगमेति । एवं से अप्पमादेण विवेगं किट्टति वेदवी ।

—आ. सु. १, अ. ५, उ. ४, सु. १६२-१६३

आकुट्टि से (आगमोक्त विधिरहित-अविधिपूर्वक) प्रवृत्ति करते हुए जो कर्म-बन्ध होता है, उसको ज्ञपरिज्ञा से जानकर क्षय करे। इस प्रकार उसका (प्रमादवश किए हुए साम्परायिक कर्म बन्ध का) विलय (क्षय) अप्रमाद से (यथोचित प्रायश्चित्त से) होता है, ऐसा आगमवेत्ता शास्त्रकार कहते हैं।

फासुय विहार सरूव परूवणा—

७४४. प०—किं ते भंते ! फासुयविहारं ?

उ०—सोमिला ! जं णं आरामेसु उज्जाणेसु देवकुलेसु सभासु पवासु इत्थी-पसु-पंडग-विवज्जियासु वसहीसु फासु-एसणिज्जं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं उवसंपज्जित्ताणं विहरामि. से त्तं फासुयविहारं ।[1]

—वि. स. १८, उ. १०, सु. २२

प्रासुक विहार स्वरूप प्ररूपण—

७४४. प्र०—हे भगवन् ! आपके प्रासुक विहार कौन सा है ?

उ०—हे सोमिल ! आराम (बगीचा), उद्यान, देवकुल, सभा, प्रपा (प्याऊ) आदि स्थानों में स्त्री, पशु, पण्डक (नपुंसक) रहित वसतियों में प्रासुक एषणीय पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक आदि प्राप्त करके मैं विचरता हूँ। यह मेरे प्रासुक विहार है।

भावियप्पणो अणगारस्स किरिया विहाणं—

७४५. प०—अणगारस्स णं भंते ! भावियप्पणो पुरओ दुहओ जुगमायाए पेहाए पेहाए रीयं रीयमाणस्स पायस्स अहे कुक्कुडपोते वा, वट्टापोते वा, कुलिंगच्छाए वा, परियावज्जेज्जा, तस्स णं भंते ! किं इरियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ ?

भावित आत्मा अणगार की क्रिया का प्ररूपण—

७४५. प्र०—हे भगवन् ! सामने दोनों ओर युगमात्र (धूसर प्रमाण) भूमि को देखकर गमन करते हुए भावितात्मा अणगार के पाँव के नीचे मुर्गी का बच्चा, बतख का बच्चा या कुलिंगच्छाय (चींटी जैसा सूक्ष्म जन्तु) आकर मर जाय तो, हे भगवन् ! उस अणगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है या साम्परायिकी क्रिया लगती है ?

उ०—गोयमा ! अणगारस्स णं भावियप्पणो-जाव-इरियावहिया किरिया कज्जइ, नो संपराइया किरिया कज्जइ ।

उ०—हे गौतम ! भावितात्मा अणगार को यावत् ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती।

प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ अणगारस्स णं भावियप्पणो-जाव- ईरियावही किरिया कज्जइ णो संपराइया किरिया कज्जइ ?

प्र०—हे भगवान् ! किस कारण इस प्रकार कहा जाता है कि भावितात्मा अणगार को यावत् ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती ?

उ०—गोयमा ! जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिन्ना भवंति तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जति,

उ०—गौतम ! (वास्तव में) जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्यवच्छिन्न (अनुदय प्राप्त अथवा सर्वथा क्षीण) हो गये हैं, उन (११-१२-१३वें गुणस्थानवर्ती अणगार) को ही ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है।

---

१ (क) णाया सु. १, अ. ५, सु. ४६, (ख) धम्म. भा. १, ख. २, सु. १८७, पृ. ८७,
(ग) धम्म. भा. २, ख. ४, सु. ३०३, पृ. २७७ ।

जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा अवोच्छिण्णा भवंति तस्स णं संपराइया किरिया कज्जइ।

अहासुत्तं रीयमाणस्स इरियावहिया किरिया कज्जइ। उस्सुत्तं रीयमाणस्स संपराइया किरिया कज्जइ, से णं अहासुत्तमेव रीयति,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ अणगारस्स णं भावियप्पणो-जाव-इरियावही किरिया कज्जइ नो संपराइया किरिया कज्जइ।

—वि. स. १८, उ. ८, सु. १

जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ अव्यवच्छिन्न होते हैं उनको साम्परायिकी क्रिया लगती है।

क्योंकि वही यथासूत्र (आगम) के अनुसार प्रवृत्ति करने वाले अणगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है और उत्सूत्र प्रवृत्ति करने वाले को साम्परायिकी क्रिया लगती है।

इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि भावितात्मा अणगार को—**यावत्**—इरियावही क्रिया लगती है साम्परायिक क्रिया नहीं लगती है।

संवुड अणगारस्स किरिया विहाणं—

संवृत्त अणगार की क्रिया का प्ररूपण :—

७४६. प०—संवुडस्स णं भंते ! अणगारस्स आउत्तं गच्छमाणस्स,
आउत्तं चिट्ठमाणस्स,
आउत्तं निसीयमाणस्स,
आउत्तं तुयट्टमाणस्स,
आउत्तं वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं गिण्हमाणस्स वा, निक्खिवमाणस्स वा, तस्स णं भंते ! किं इरियावहिया किरिया कज्जइ ? संपराइया किरिया कज्जइ ?

७४६. प्र०—हे भदन्त ! उपयोगपूर्वक गमन करने वाला,
उपयोगपूर्वक खड़ा रहने वाला,
उपयोगपूर्वक बैठने वाला,
उपयोगपूर्वक करवट बदलने वाला,
उपयोगपूर्वक वस्त्र-पात्र-कम्बल-पादप्रोंछन का ग्रहण करने वाला, निक्षेप करने वाला (रखने वाला) संवृत्त अनगार ईर्यापथिकी क्रिया करता है ? सांपरायिकी क्रिया करता है ?

उ०—गोयमा ! संवुडस्स णं अणगारस्स आउत्तं गच्छमाणस्स-जाव-आउत्तं वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं गिण्हमाणस्स वा, निक्खिवमाणस्स वा, तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ, णो संपराइया किरिया कज्जइ।

उ०—गौतम ! उपयोगपूर्वक गमन करने वाला—**यावत्**—उपयोगपूर्वक वस्त्र-पात्र-कम्बल-पादप्रोंछन ग्रहण करने वाला—निक्षेप करने वाला संवृत्त अणगार ईर्यापथिकी क्रिया करता है—सांपरायिकी क्रिया नहीं करता है।

प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ संवुडस्स णं अणगारस्स आउत्तं गच्छमाणस्स-जाव-णिक्खिवमाणस्स वा, इरियावहिया किरिया कज्जइ णो संपराइया किरिया कज्जइ ?

प्र०—हे भदन्त ! किस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है—उपयोगपूर्वक गमन करने वाला **यावत्**—निक्षेप करने वाला संवृत्त अणगार ईर्यापथिकी क्रिया करता है। सांपरायिकी क्रिया नहीं करता है ?

उ०—गोयमा ! जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिन्ना भवंति, तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ, नो संपराइया किरिया कज्जइ।

जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा अवोच्छिन्ना भवंति, तस्स णं संपराइया किरिया कज्जइ।

अहासुत्तं रीयमाणस्स इरियावहिया किरिया कज्जइ उस्सुत्तं रीयमाणस्स संपराइया किरिया कज्जइ,

से णं अहासुत्तमेव रीयइ,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ संवुडस्स णं अणगारस्स आउत्तं गच्छमाणस्स-जाव-णिक्खिवमाणस्स णो संपराइया किरिया कज्जइ।

—वि. स. ७, उ. ७, सु. १

उ०—गौतम ! जिसके क्रोध-मान-माया-लोभ व्युच्छिन्न (नष्ट) हो गये हैं उसको ईर्यापथिकी क्रिया होती है, सांपरायिकी क्रिया नहीं होती है।

जिसके क्रोध-मान-माया-लोभ अव्युच्छिन्न (नष्ट नहीं हुए) हैं उनको सांपरायिकी क्रिया होती है।

यथाश्रुत से व्यवहार करने वाले को ईर्यापथिकी क्रिया होती है। उत्सूत्र से व्यवहार करने वाले को सांपरायिकी क्रिया होती है।

(उपयोगपूर्वक गमनादि करने वाला संवृत्त अनगार) यथासूत्र व्यवहार करता है।

इस प्रयोजन से गौतम ! ऐसा कहा जाता है। संवृत्त अणगार को उपयोगपूर्वक गमन करने वाले को—**यावत्**—सांपरायिकी क्रिया नहीं होती है।

निषेध कल्प—२

अथिर कट्ठाइ उवरिगमण णिसेहो—

७४७. होज्ज कट्ठं सिलं वा वि, इट्टालं वा वि एगया ।
ठवियं संकमट्ठाए, तं च होज्ज चलाचलं ॥
न तेण भिक्खू गच्छेज्जा, दिट्ठो तत्थ असंजमो ।
गंभीरं झुसिरं चेव, सव्विंदियसमाहिए ॥

—दस. अ. ५, उ. १, गा. ६६-६७

अस्थिर काष्ठादि के ऊपर होकर जाने का निषेध—

७४७. यदि कभी काठ, शिला या ईंट के टुकड़े संक्रमण के लिए रखे हुए हों और वे चलाचल हों तो सर्वेन्द्रिय समाहित भिक्षु उन पर होकर न जाये। इसी प्रकार वह प्रकाश-रहित और पोली भूमि पर से न जाये। भगवान् ने वहाँ असंयम देखा है।

मुणी इंगलाइं न अइक्कमे —

७४८. इंगालं छारियं रासिं, तुसरासिं च गोमयं ।
ससरक्खेहिं पाएहिं, संजओ तं न अइक्कमे ॥

—दस. अ. ५, उ. १, गा. ७

भिक्षु कोयलादि का अतिक्रमण न करे—

७४८. संयमी मुनि सचित्त-रज से भरे हुए पैरों से कोयले, राख, भूसे और गोबर के ढेर के ऊपर होकर न जाये।

राईए-गमण णिसेहो—

७४९. नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा,
राओ वा वियाले वा,
अद्धाणगमणं एत्तए ।

— कप्प. उ. १, सु. ४६

रात्रिगमन निषेध—

७४९. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को—
रात्रि में या विकाल में।
विहार (ग्रामानुग्राम मार्ग गमन) करना नहीं कल्पता है।

गोणाइ भएण उम्मग्ग गमण णिसेहो —

७५०. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से गोणं वियालं पडिपहे पेहाए-जाव-चित्तचेल्लडयं वियालं पडिपहे पेहाए णो तेसिं भीतो उम्मग्गेणं गच्छेज्जा, णो मग्गातो मग्गं संकमेज्जा, णो गहणं वा वणं वा दुग्गं वा अणुपविसेज्जा, णो रुक्खंसि दुरुहेज्जा, णो महतिमहालयंसि उदयंसि कायं विओसेज्जा, णो वाडं वा, सरणं वा, सेणं वा, सत्थं वा कंखेज्जा, अप्पुस्सुए-जाव-समाहीए, ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. ३, उ. ३, सु. ५१५

सांड आदि के भय से उन्मार्ग से जाने का निषेध—

७५०. ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए साधु या साध्वी यदि मार्ग में मदोन्मत्त सांड विषैला सांप— **यावत्**— चीते आदि हिंसक पशुओं को सम्मुख आते देखे तो उनसे भयभीत होकर न उन्मार्ग से जावे, न एक मार्ग से दूसरे मार्ग पर संक्रमण करे न गहन, वन एवं दुर्गम स्थान में प्रवेश करे, न वृक्ष पर चढ़े, न गहरे तथा विस्तृत जल में प्रवेश करे और न सुरक्षा के लिए किसी बाड़ की, शरण की, सेना की या शस्त्र की आकांक्षा करें। अपितु शरीर और उपकरणों के प्रति राग-द्वेष रहित होकर काया का व्युत्सर्ग करे, आत्मैकत्वभाव में लीन हो **यावत्** समाधिभाव में स्थिर रहे। उन्मत्त तिर्यंच आदि के चले जाने पर वह यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे।

दसुगायतणमग्गेण गमण णिसेहो—

७५१. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से विरूवरूवाणि पच्चंतिकाणि दसुगायतणाणि मिलक्खूणि अणारियाणि दुस्सण्णप्पाणि दुप्पण्णवणिज्जाणि अकालपडिबोहीणि अकालपरिभोईणि, सति लाढे विहाराए संथरमाणेहिं जणवएहिं णो विहारवत्तियाए पवज्जेज्जा गमणाए ।

दस्यु प्रदेश के मार्ग से गमन का निषेध : —

७५१. ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए साधु या साध्वी को मार्ग में विभिन्न देशों की सीमा पर रहने वाले दस्युओं के, म्लेच्छों के या अनार्यों के स्थान मिलें, तथा जिन्हें बड़ी कठिनता से आर्यों का आचार समझाया जा सकता है, जिन्हें दुख से धर्म-बोध देकर अनार्य-कर्मों से हटाया जा सकता है, ऐसे अकाल (कुसमय) में जागने वाले, कुसमय में खाने-पीने वाले मनुष्यों के स्थान मिलें तो अन्य ग्राम आदि में विहार हो सकता हो या अन्य आर्य-जनपद विद्यमान हों तो प्रासुक-भोजी साधु उन म्लेच्छादि के स्थानों में विहार करने की दृष्टि से जाने का मन में संकल्प न करे।

केवली बूया–आयाणमेयं ।
तेणं बाला "अयं तेणे, अयं उवचरए, अयं ततो आगते" त्ति कट्टु तं भिक्खू अक्कोसेज्ज वा, वहेज्ज वा, रूभेज्ज वा, उद्दवेज्ज वा, वत्थं वा-जाव-पायपुंछणं अच्छिदेज्ज वा, भिंदेज्ज वा, अवहरेज्ज वा, परिट्ठवेज्ज वा ।

केवली भगवान् कहते हैं—वहाँ जाना कर्मबन्ध का कारण है, क्योंकि—वे म्लेच्छ, अज्ञानी लोग साधु को देखकर—"यह चोर है, यह हमारे शत्रु के गाँव से आया है", यों कहकर वे उस भिक्षु को गाली-गलौज देंगे, कोसेंगे, रस्सों से बाँधेंगे, कोठरी में बन्द कर देंगे, उपद्रव करेंगे, उसके वस्त्र - यावत् पाद-प्रोंछन आदि उपकरणों को तोड़-फोड़ डालेंगे, अपहरण कर लेंगे या उन्हें कहीं दूर फेंक देंगे, (क्योंकि ऐसे स्थानों में यह सब सम्भव है) ।

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा पइण्णा-जाव-उवएसे जं तहप्पगाराणि विरूवरूवाणि पच्चंतियाणि दसुगायतणाणि-जाव-णो विहारवत्तियाए पवज्जेज्जा गमणाए । ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. ३, उ. १, सु. ४७१

इसीलिए तीर्थङ्कर आदि आप्त पुरुषों द्वारा भिक्षुओं के लिए पहले से ही निर्दिष्ट यह प्रतिज्ञा—**यावत्**—उपदेश है कि भिक्षु उन सीमा प्रदेशवर्ती दस्यु स्थानों से **यावत्**—विहार की दृष्टि से जाने का संकल्प भी न करें । अतः इन स्थानों को छोड़कर संयमी साधु यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे ।

निसिद्ध खेत्तेसु विहार-करणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

निषिद्ध क्षेत्रों में विहार करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

७५२. (जे भिक्खू विहं अणेगाह-गमणिज्जं सति लाढे विहाराए संथरमाणेसु जणवएसु विहार-पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ ।

७५२. जो भिक्षु आहार आदि सुविधा से प्राप्त होने वाले जनपदों के होते हुए भी बहुत दिन लगें ऐसे लम्बे मार्ग से जाने का संकल्प करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जे भिक्खू विरूवरूवाइं दसुयायणाइं अणारियाइं मिलक्खूइं पच्चंतियाइं सति लाढे विहाराए संथरमाणेसु जणवएसु विहार-पडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ ।

जो भिक्षु आहारादि सुविधा से प्राप्त होने वाले जनपदों के होते हुए भी सीमा पर रहने वाले अनेक प्रकार के दस्यु, अनार्य, म्लेच्छ आदि (जहाँ रहते हैं । ऐसे) जनपदों की ओर विहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।)

—(नि. उ. १६, सु. २६-२७)

उस भिक्षु को चातुर्मासिक उद्घातिक (परिहारस्थान) (प्रायश्चित्त) आता है ।

आमोसगाणं भएण उम्मग्ग गमण णिसेहो—

चोरों के भय से उन्मार्ग गमन का निषेध—

७५३. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, अंतरा से विहं सिया, सेज्जं पुण विहं जाणेज्जा, इमंसि खलु विहंसि बहवे आमोसगा उवकरणपडियाए संपडिया गच्छेज्जा, णो तेसिं भीओ उम्मग्गेणं गच्छेज्जा-जाव-समाहिए । ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. ३, उ. ३, सु. ५१६

७५३. ग्रामानुग्राम विहार करते साधु-साध्वी यह जाने कि मार्ग में अनेक दिनों में पार करने योग्य अटवी मार्ग है । उस अटवी मार्ग में अनेक चोर (लुटेरे) इकट्ठे होकर साधु के उपकरण छीनने की दृष्टि से आ जाएँ तो साधु उनसे भयभीत होकर उन्मार्ग में न जाये—**यावत्** समाधिभाव में स्थिर रहे । चोरों का उपसर्ग समाप्त होने पर यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे ।

आमोसगउवसग्गे तुसिणीए होज्जा—

चोरों का उपसर्ग होने पर मौन रहे—

७५४. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, अंतरा से आमोसगा संपडिया गच्छेज्जा, ते णं आमोसगा एवं वदेज्जा—"आउसंतो समणा ! आहर एयं वत्थं वा-जाव-पायपुंछणं वा देहि, णिक्खिवाहि," तं णो देज्जा, णिक्खिवेज्जा, णो वंदिय जाएज्जा, णो अंजलिं कट्टु

७५४. ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए साधु के पास यदि मार्ग में चोर (लुटेरे) संगठित होकर आ जाएँ और वे उनसे कहें कि "आयुष्मन् श्रमण ! ये वस्त्र—**यावत्**—पादप्रोंछन आदि लाओ, हमें दे दो, या यहाँ पर रख दो ।" इस प्रकार कहने पर साधु उन्हें वे (उपकरण) न दे, और न निकाल कर भूमि पर रखे ।

जाएज्जा, णो कलुणपडियाए जाएज्जा, धम्मियाए जायणाए जाएज्जा तुसिणीयभावेण वा उवेहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ३, उ. ३, सु. ५१७

अगर वे बलपूर्वक लेने लगें तो उन्हें पुनः लेने के लिए उनकी स्तुति (प्रशंसा) करके, हाथ जोड़कर या दीन-वचन कहकर याचना न करे। यदि माँगना हो तो धर्मवचन कहकर समझाकर माँगे अथवा मौनभाव धारण करके उपेक्षाभाव से रहे।

आमोसगेहिं उवहिं अवहरिए अभिओग णिसेहो—

७५५. ते णं आमोसगा सयं करणिज्जं ति कट्टु अक्कोसंति वा-जाव-उद्दवेंति वा वत्थं वा-जाव-पायपुंछणं वा अच्छिंदेज्ज वा-जाव-परिट्ठवेज्ज वा तं णो गामसंसारियं कुज्जा, णो रायसंसारियं कुज्जा, णो परं उवसंकमित्तु बूया—आउसंतो गाहावती एते खलु आमोसगा उवकरणपडियाए सयं करणिज्जं ति कट्टु अक्कोसंति वा-जाव-परिट्ठवेंति वा। एतप्पगारं मणं वा वइं वा णो पुरओ कट्टु विहरेज्जा। अप्पुस्सुए-जाव-समाहिए ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ३, उ. ३, सु. ५१८

चोरों द्वारा उपधि छीन लेने पर फरियाद न करे—

७५५. यदि चोर अपना कर्तव्य (जो करना है) जानकर साधु को कोसे—**यावत्**—गाली-गलौज करे—**यावत्** उपद्रव करे और उसके वस्त्र—**यावत्**—पादपोंछन को फाड़ डालें, तोड़फोड़ दे—**यावत्**—दूर फेंक दे, तो भी वह साधु ग्राम में जाकर लोगों से उस बात को न कहे, न ही राजा या सरकार के आगे फरियाद करे, न ही किसी गृहस्थ के पास जाकर कहे कि "आयुष्मन् गृहस्थ!" इन चोरों (लुटेरों) ने हमारे उपकरण छीनने के लिए अथवा करणीय कृत्य जानकर हमें गाली-गलौज की है—**यावत्**—हमारे उपकरणादि नष्ट करके दूर फेंक दिये हैं" ऐसे कुविचारों को साधु मन में भी न लाये और न वचन से व्यक्त करे। अपितु रागद्वेष रहित होकर—**यावत्**—समाधिभाव में स्थिर रहे। चोरों का उपद्रव समाप्त होने पर वह यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे।

अण्णेण उवहिं वहावणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

७५६. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा उवहिं वहावेइ वहावेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १२, सु. ४०

अन्य से उपधि वहन करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

७५६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक से या गृहस्थ से उपधि का वहन करवाता है, वहन करवाने के लिए कहता है, वहन करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पाडिपहियाणं पुच्छिए मोणं कायव्वं—

७५७. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे, अंतरा से पाडिपहिया उवागच्छेज्जा, ते णं पाडिपहिया एवं वदेज्जा—आउसंतो समणा! केवतिए एस गामे वा-जाव-रायहाणी वा, केवतिया एत्थ आसा हत्थी गामपिंडोलगा मणुस्सा परिवसंति? से बहुभत्ते बहुउदए बहुजणे बहुजवसे? से अप्पभत्ते अप्पुदए अप्पजणे अप्पजवसे? एतप्पगाराणि पसिणाणि पुट्ठो णो आइक्खेज्जा, एयप्पगाराणि पसिणाणि णो पुच्छेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ३, उ. २, सु. ५०२

पथिकों के पूछने पर मौन रहना चाहिए—

७५७. ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु या साध्वी को मार्ग में सामने से आते हुए पथिक मिलें और वे साधु से यों पूछें—"हे आयुष्मन् श्रमण! यह गाँव कितना बड़ा या कैसा है?—**यावत्**—यह राजधानी कैसी है? वहाँ पर कितने घोड़े, हाथी तथा भिखारी व कितने मनुष्य निवास करते हैं (क्या इस गाँव—**यावत्**—राजधानी में) प्रचुर आहार, पानी, मनुष्य एवं धान्य है? अथवा अल्प आहार पानी मनुष्य एवं धान्य है?" इस प्रकार के प्रश्न पूछे जाने पर साधु उसका उत्तर न दे। उन प्रतिपथिकों से भी इस प्रकार के प्रश्न न पूछे। उनके द्वारा न पूछे जाने पर भी वह ऐसी बातें न करें।

मग्गे गिहत्थेहिं सद्धिं आलाव णिसेहो—

७५८. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे णो परेहिं सद्धिं परिजविय परिजविय गामाणुगामं दूइज्जेज्जा। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ३, उ. २, सु. ४९२

मार्ग में गृहस्थों से वार्तालाप का निषेध—

७५८. साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए गृहस्थों के साथ बहुत अधिक वार्तालाप करते न चलें, किन्तु ईर्यासमिति का यथाविधि पालन करते हुए ग्रामानुग्राम विहार करें।

मग्गे वप्पाइ अवलोयण णिसेहो —

७५९. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से वप्पाणि वा—जाव-दरीओ वा कूडागाराणि वा, पासादाणि वा, णूमगिहाणि वा, रुक्खगिहाणि वा, पव्वतगिहाणि वा, रुक्खं वा, चेतियकडं थूभं वा, चेतियकडं आएसणाणि वा, आयतणाणि वा, देवकुलाणि वा, सहाणि वा, पवाणि वा, पणियगिहाणि वा, पणियसालाओ वा, जाणगिहाणि वा, जाणसालाओ वा, सुहाकम्मंताणि वा, दब्भकम्मंताणि वा, वब्भकम्मंताणि वा, चम्मकम्मंताणि वा, वणकम्मंताणि वा, इंगालकम्मंताणि वा, कट्ठकम्मंताणि वा, सुसाणकम्मंताणि वा, गिरिकम्मंताणि वा, कंदर-कम्मंताणि वा, संति कम्मंताणि वा, सेलोवट्ठाण कम्मंताणि वा, भवणगिहाणि वा णो बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय अंगुलियाए, उद्दिसिय उद्दिसिय ओणमिय ओणमिय, उण्णमिय उण्णमिय णिज्झाएज्जा। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ३, उ. ३, सु. ५०४

मार्ग में वप्र आदि अवलोकन-निषेध—

७५९. ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भिक्षु या भिक्षुणी मार्ग में आने वाले उन्नत टेकरे, खाइयां—यावत्—गुफाएँ या भूगर्भ गृह तथा कूटागार (पर्वत पर बने घर) प्रासाद, भूमिगृह, वृक्षों को काटछांट कर बनाए हुए गृह, पर्वत पर बना हुआ घर, चैत्य-वृक्ष, चैत्य-स्तूप, लोहकार आदि की शाला, आयतन, देवालय, सभा, प्याऊ, दूकान, गोदाम, यानगृह, यानशाला चूने का, दर्भ-कर्म का, वल्कल कर्म का, चर्म-कर्म का, वन-कर्म का कोयले बनाने का, काष्ठ-कर्म का कारखाना, तथा श्मशान, पर्वत, गुफा आदि में बने हुए गृह, शान्तिकर्म गृह, पाषाण मण्डप एवं भवनगृह आदि को बाँहें बार-बार ऊपर उठाकर, अंगुलियों से निर्देश करके, शरीर को ऊँचा-नीचा करके ताक-ताक कर न देखे, किन्तु यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करने में प्रवृत्त रहे।

मग्गे कच्छाइ अवलोयण णिसेहो—

७६०. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से कच्छाणि वा, दवियाणि वा, णूमाणि वा, वलयाणि वा, गहणाणि वा, गहणविदुग्गाणि य, वणाणि वा, वणविदुग्गाणि वा, पव्वताणि[1] वा, पव्वतविदुग्गाणि वा, अगडाणि वा, तलागाणि वा, दहाणि वा, णदीओ वा, वावीओ वा, पोक्खरणीओ वा, दीहियाओ वा, गुंजालियाओ वा, सराणि वा, सरपंतियाणि वा, सरसरपंतियाणि वा णो बाहाओ पगिज्झिय-जाव-णिज्झाएज्जा।

केवली बूया—आयाणमेयं।

जे तत्थ मिगा वा, पसुया वा, पक्खी वा, सरीसिवा वा, सीहा वा, जलचरा वा, थलचरा वा, खहचरा वा, सत्ता ते, उत्तसेज्ज वा, वित्तसेज्ज वा, वाडं वा, सरणं वा कंखेज्जा, चारे त्ति मे अयं समणे।

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा-जाव-एस उवएसे जं णो बाहाओ पगिज्झिय-जाव-णिज्झाएज्जा। ततो संजयामेव आयरिय-उवज्झाहिं सद्धिं गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

- आ. सु. २, अ. ३, उ. ३, सु. ५०५

मार्ग में कच्छादि अवलोकन निषेध—

७६०. ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु-साध्वियों के मार्ग में यदि कच्छ (नदी के निकटवर्ती नीचे प्रदेश), घास के संग्रहार्थ राजकीय त्यक्त भूमि, भूमिगृह, नदी आदि से वेष्टित भूभाग, गम्भीर निर्जल प्रदेश, पर्वत के एक प्रदेश में स्थित वृक्षवल्ली समुदाय, गहन दुर्गम वन, गहन दुर्गम पर्वत, अरण्य पर्वत पर भी दुर्गम स्थान, कूप, तालाब, द्रह, (झीलें), नदियाँ, बावड़ियाँ, पुष्करणियां, दीर्घिकाएं (लम्बी बावड़ियाँ), गहरे और टेढ़े-मेढ़े जलाशय, बिना खोदे तालाब, सरोवर, सरोवर की पंक्तियाँ और बहुत से मिले तालाब हों तो उन्हें अपनी भुजाएं ऊँची उठाकर, (अंगुलियों से संकेत करके तथा शरीर को ऊँचा-नीचा करके) —यावत्— ताक-ताक कर न देखे।

केवली भगवान् कहते हैं यह कर्मबन्ध का कारण है।

क्योंकि ऐसा करने से जो इन स्थानों में मृग, पशु, पक्षी, सांप, सिंह, जलचर, स्थलचर, खेचर, जीव रहते हैं, वे साधु की इन असंयममूलक चेष्टाओं को देखकर त्रास पायेंगे, वित्रस्त होंगे, किसी बाड़ की शरण चाहेंगे तथा वहाँ रहने वाले यह विचार करेंगे कि यह साधु हमें हटा रहा है।

अतः तीर्थंकरों ने पहले से ऐसी प्रतिज्ञा—यावत्—उपदेश किया है कि साधु अपनी भुजाएँ ऊँची उठाकर यावत्—ताक-ताक कर न देखे अपितु यतनापूर्वक आचार्य और उपाध्याय के साथ ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ संयम का पालन करे।

---

१ तहेव गंतुमुज्जाणं, पव्वयाणि वणाणि य। रुक्खा महल्ल पेहाए, नेवं भासेज्ज पण्णवं ॥ —दस. अ. ७, गा. २६

अण्णउत्थिएहिं सद्धिं णिक्खमण-पवेस-णिसेहो—

७६१. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा बहिया वियारभूमिं वा, विहारभूमिं वा, णिक्खममाणे वा, पविसमाणे वा, णो अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा, परिहारिओ अपरिहारिएण वा सद्धिं बहिया वियारभूमिं वा, विहारभूमिं वा णिक्खमेज्ज वा, पविसेज्ज वा ।

—आ. सु. २, अ. १, उ. १, सु. ३२८

अन्यतीर्थिक आदि के साथ निष्क्रमण व प्रवेश निषेध—

७६१. भिक्षु या भिक्षुणी बाहर विचार भूमि (शौचादि हेतु स्थंडिल भूमि) या विहार (स्वाध्याय) भूमि से लौटते या वहाँ प्रवेश करते हुए अन्यतीर्थिक या परपिण्डोपजीवी गृहस्थ (याचक) के साथ तथा पारिहारिक अपारिहारिक (आचरण शिथिल) साधु के साथ न तो विचार-भूमि या विहार-भूमि से लौटे, न प्रवेश करे ।

अण्णउत्थियाईहिं सद्धिं गामाणुगामगमण णिसेहो—

७६२. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे णो अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिहारिओ अपरिहारिएण वा सद्धिं गामाणुगामं दूइज्जेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. १, उ. १, सु. ३२८

अन्यतीर्थिकादि के साथ ग्रामानुग्राम गमन का निषेध—

७६२. एक गांव से दूसरे गांव जाते हुए भिक्षु या भिक्षुणी अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के साथ तथा पारिहारिक अपारिहारिक के साथ ग्रामानुग्राम विहार न करे ।

अण्णउत्थियाईहिं सद्धिं णिक्खममाणस्स पविसमाणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

७६३. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिहारिए वा अपरिहारिएण सद्धिं गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए निक्खमई वा अणुपविसइ वा निक्खमंतं वा अणुपविसंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिहारिओ अपरिहारिएण सद्धिं बहिया विहार-भूमिं वा, वियार-भूमिं वा निक्खमइ वा पविसइ वा निक्खमंतं वा पविसंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. २, . सु४०-४१

अन्यतीर्थिकादि के साथ प्रवेश और निष्क्रमण के प्रायश्चित्त सूत्र—

७६३. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के साथ तथा पारिहारिक अपारिहारिक के साथ गाथापतिकुल में आहार की प्राप्ति के लिए निष्क्रमण करता है या प्रवेश करता है, निष्क्रमण कराता है या प्रवेश कराता है, निष्क्रमण करने वाले का या प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के साथ तथा पारिहारिक या अपारिहारिक के साथ (ग्राम से) बाहर की स्वाध्याय भूमि में या स्थण्डिल भूमि में निष्क्रमण करता है या प्रवेश करता है, निष्क्रमण कराता है या प्रवेश कराता है तथा निष्क्रमण करने वाले का या प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

अण्णउत्थियाईहिं सद्धिं गामाणुगामं दुइज्जमाणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

७६४. जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा परिहारिओ अपरिहारिएण सद्धिं गामाणुगामं दूइज्जइ, दूइज्जंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ २, सु. ४२

अन्यतीर्थिक आदि के साथ ग्रामानुग्राम विहार करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

७६४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक एवं गृहस्थ के साथ तथा पारिहारिक अपारिहारिक के साथ ग्रामानुग्राम जाता है, जाने के लिए अन्य को कहता है, जाने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

निसिद्धसय्या पविसण पायच्छित्तसुत्तं—

७६५. जे भिक्खू सागारियं सेज्जं अणुपविसइ अणुपविसंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू सोदगं सेज्जं अणुपविसइ अणुपविसंतं वा साइज्जइ ।

निषिद्ध शय्याओं में प्रवेश करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

७६५. जो भिक्षु सागारी की शय्या में प्रवेश करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु पानी वाली शय्या में प्रवेश करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जे भिक्खू सागणियं सेज्जं अणुपविसइ अणुपविसंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १६, सु. १-३

जो भिक्षु अग्नि वाली शय्या में प्रवेश करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विधि-निषेध कल्प—३

भिक्खुस्स गमणस्स विहि णिसेहो—

७६६. अणुन्नए नावणए अप्पहिट्ठे अणाउले।
इंदियाणि जहाभागं दमइत्ता मुणी चरे॥

दवदवस्स न गच्छेज्जा[1] भासमाणो य गोयरे।
हसंतो नाभिगच्छेज्जा, कुलं उच्चावयं सया॥
—दस अ. ५, उ. १, गा. १३-१४

भिक्षु के चलने के वि-धिनिषेध—

७६६. मुनि ऊँचा मुंह कर, झुककर, हृष्ट होकर, आकुल होकर न चले (किन्तु) इन्द्रियों को (अपने अपने विषय के अनुसार) दमन कर चले।

उच्च-नीच कुल में गोचरी गया हुआ मुनि दौड़ता हुआ न चले, बोलता और हंसता हुआ न चले।

विसममग्गे गमणस्स विहि णिसेहो—

७६७. ओवायं विसमं खाणुं, विज्जलं परिवज्जए।
संकमेण न गच्छेज्जा, विज्जमाणे परक्कमे॥

पवडंते व से तत्थ, पक्खलंते व संजए।
हिंसेज्ज पाणभूयाइं, तसे अदुव थावरे॥

तम्हा तेण न गच्छेज्जा, संजए सुसमाहिए।
सइ अन्नेण मग्गेण, जयमेव परक्कमे॥
—दस. अ. ५, उ. १, गा. ४-६

विषम मार्ग से जाने के विधि निषेध—

७६७. दूसरे मार्ग के होते हुए गहरे गड्ढे को, विषम भू-भाग को, कटे हुए सूखे पेड़ को, अनाज के डंठल और पंकिल मार्ग को टाले तथा संक्रम (जल या गड्ढे को पार करने के लिए काष्ठ या पाषाण-रचित पुल) के ऊपर से न जाये।

क्योंकि वहाँ गिरने या लड़खड़ा जाने से वह संयमी प्राणियों, भूतों; त्रस अथवा स्थावर जीवों की हिंसा करता है,

इसलिए सुसमाहित संयमी दूसरे मार्ग के होते हुए उस मार्ग से न जावे। यदि दूसरा मार्ग न हो तो यतनापूर्वक जाये।

भिक्खट्ठागमणमग्गस्स विहि णिसेहो—

७६८. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावतिकुलं पिंडवाय पडियाए अणुपविट्ठे समाणे अंतरा से वप्पाणि वा, फलिहाणि वा, पागाराणि वा, तोरणाणि वा, अग्गलाणि वा, अग्गलपासगाणि वा, गड्डाओ वा, दरिओ वा, सति परक्कमे संजयामेव परक्कमेज्जा णो उज्जुयं गच्छेज्जा।

केवली बूया—आयाणमेयं।

से तत्थ परक्कममाणे पयलेज्ज वा, पवडेज्ज वा, से तत्थ पयलमाणे वा, पवडमाणे वा तत्थ से काए उच्चारेण वा,

भिक्षार्थ गमन मार्ग के विधि निषेध—

७६८ वह भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के यहाँ आहारार्थ जाते समय रास्ते के बीच में ऊँचे टेकरे या खेत की क्यारियाँ हों या खाइयाँ हों, या कोट हो, बाहर के द्वार (बंद) हो, आगल हो, अर्गला-पाशक हो, गड्ढे हों, गुफा हो तो दूसरा मार्ग होते हुए संयमी साधु उस मार्ग से न जाए।

केवली भगवान् ने कहा है- यह कर्मबन्ध का मार्ग है।

उस विषम-मार्ग से जाते हुए भिक्षु फिसल जाएगा या डिग जाएगा, अथवा गिर जाएगा। फिसलने, डिगने या गिरने पर

---

१ उत्त. अ. १७, गा. ८।

पासवणेण वा, खेलेण वा, सिंघाणएण वा, वंतेण वा, पित्तेण वा, पूएण वा, सुक्केण वा, सोणिएण वा उवलित्ते सिया।

तहप्पगारं कायं णो अणंतरहियाए पुढवीए, णो ससणिद्धाए पुढवीए, णो ससरक्खाए पुढवीए, णो चित्तमंताए सिलाए, णो चित्तमंताए लेलूए, कोलावासंसि वा दारुए जीव पतिट्ठिते सअंडे-जाव-संताणए णो आमज्जेज्ज वा, णो पमज्जेज्ज वा, णो संलिहेज्ज वा, णो णिल्लिहेज्ज वा, णो आयावेज्ज वा, णो पयावेज्ज वा।

से पुव्वामेव अप्प ससरक्खं तणं वा, पत्तं वा, कट्ठं वा, सक्करं वा जाएज्जा, जाइत्ता से त्तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा, एगंतमवक्कमित्ता अहे झामथंडिल्लंसि वा, अट्ठिरासिंसि वा, किट्टरासिंसि वा, तुसरासिंसि वा, गोमयरासिंसि वा, अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि पडिलेहिय, पडिलेहिय पमज्जिअ पमज्जिअ ततो संजयामेव आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा, संलिहेज्ज वा णिल्लिहेज्ज वा, आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ५, सु. ३५३

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा-जाव-अणुपविट्ठे समाणे अंतरा से ओवाए वा, खाणुं वा, कंटए वा, घसी वा, भिलुगा वा, विसमे वा, विज्जले वा, परियावज्जेज्जा सति परक्कमे संजयामेव परक्कमेज्जा णो उज्जुयं गच्छेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ५, सु. ३५५

उस भिक्षु का शरीर, मल, मूत्र, कफ, लींट, वमन, पित्त, मवाद, शुक्र (वीर्य) और रक्त से लिपट सकता है।

अगर कभी ऐसा हो जाए तो वह भिक्षु मूत्रादि से उपलिप्त शरीर को सचित्त पृथ्वी से, सचित्त चिकनी मिट्टी से, सचित्त रजवाली पृथ्वी से, सचित्त शिलाओं से, सचित्त पत्थर या ढेले से, या घुन लगे हुए काष्ठ से, जीवयुक्त काष्ठ से एवं अण्डे यावत् —जालों आदि से युक्त काष्ठ आदि से अपने शरीर को न एक बार साफ करे, न बार बार साफ करे। न एक बार घिसे, और न बार-बार घिसे। न एक बार धूप में सुखाए न बार बार धूप में सुखाए।

(पैर फिसल जाने या गिर पड़ने पर भिक्षु का शरीर यदि मलमूत्र, कफादि से खरड़ा जाए तो-)

वह भिक्षु पहले सचित्त रज आदि से रहित तृण पत्र, काष्ठ, कंकर आदि की याचना करे। याचना से प्राप्त करके एकान्त स्थान में जाए वहाँ जाकर दग्ध (जली हुई) भूमि पर, हड्डियों के ढेर पर, लोह कीट के ढेर पर, तुष (भूसे) के ढेर पर, सूखे गोबर के ढेर पर, वा उसी प्रकार की अन्य भूमि का प्रतिलेखन तथा प्रमार्जन करके यतनापूर्वक संयमी साधु स्वयमेव अपने शरीर को काष्ठ आदि से एक बार साफ करे या बार बार साफ करे, एक बार रगड़े या बार-बार रगड़े, एक बार धूप में सुखाए या बार-बार सुखाए।

साधु-साध्वी—यावत्—भिक्षा के लिए जा रहे हों, मार्ग में बीच में यदि गड्ढा हो, खूँटा हो या ठूंठ पड़ा हो, कांटे हों, उतराई की भूमि हो, फटी हुई काली जमीन हो, ऊँची-नीची भूमि हो, या कीचड़ अथवा दलदल पड़ता हो, (ऐसी स्थिति में) दूसरा मार्ग हो तो संयमी साधु स्वयं उसी मार्ग से जाए, किन्तु जो (गड्ढे आदि वाला विषम किन्तु) सीधा मार्ग है, उससे न जाए।

गामाणुगाम गमणस्स विहि-णिसेहो—

७६९. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे पुरओ जुगमायं पेहमाणे दट्ठूणं तसे पाणे उद्धट्टु पादं रीएज्जा, साहट्टु पादं रीएज्जा, वितिरिच्छं वा कट्टु पादं रीएज्जा, सति परक्कमे संजयामेव परक्कमेज्जा, णो उज्जुयं गच्छेज्जा, ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ३, उ. १, सु. ४६९

ग्रामानुग्रामगमन के विधि निषेध—

७६९. साधु या साध्वी एक ग्राम या दूसरे ग्राम विहार करते हुए अपने सामने की युग मात्र (गाड़ी के जुए के बराबर चार हाथ प्रमाण) भूमि को देखते हुए चले, और मार्ग में त्रस जीवों को देखे तो पैर के अग्रभाग को उठाकर चले। यदि दोनों ओर जीव हों तो पैरों को सिकोड़ कर चले अथवा पैरों को तिरछे-टेढ़े रखकर चले (यह विधि अन्य मार्ग के अभाव में बताई गई है) यदि दूसरा कोई साफ मार्ग हो, तो उसी मार्ग से यतनापूर्वक जाए किन्तु जीव जन्तुओं से युक्त सरल (सीधे) मार्ग से न जाए। उसी (जीव-जन्तु रहित) मार्ग से यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करना चाहिए।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे णो मट्टियागतेहिं पाएहिं हरियाणी छिंदिय छिंदिय विकुज्जिय विकुज्जिय विफालिय विफालिय उम्मग्गेणं हरियवधाए गच्छेज्जा जहेयं पाएहिं मट्टियं खिप्पामेव हरियाणि अवहरंतु। माइट्ठाणं संफासे। णो एवं करेज्जा। से पुव्वामेव अप्प-हरियं मग्गं पडिलेहेज्जा, पडिलेहित्ता ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए साधु या साध्वी गीली मिट्टी एवं कीचड़ से भरे हुए अपने पैरों से हरितकाय का छेदनकर बार-बार छेदन करके तथा हरे पत्तों को बहुत मोड़-तोड़ कर या दबाकर एवं उन्हें चीर-चीरकर मसलता हुआ मिट्टी न उतारे न हरित काय की हिंसा करने के लिए उन्मार्ग में इस अभिप्राय से जाए कि पैरों पर लगी हुई कीचड़ और यह गीली मिट्टी यह हरियाली अपने आप हटा देगी। ऐसा करने वाला साधु माया-स्थान का स्पर्श करता है। साधु को इस प्रकार नहीं करना चाहिये। वह पहले ही हरियाली से रहित मार्ग का प्रतिलेखन करे (देखे) और तब उसी मार्ग से यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से वप्पाणि वा-जाव-दरीओ वा, सति परक्कमे संजयामेव परक्कमेज्जा णो उज्जुयं गच्छेज्जा।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु या साध्वी के मार्ग में यदि बड़े ऊँचे टेकरे या खेत की क्यारियाँ **यावत्**—गुफाएँ हों तो अन्य मार्ग के होते हुए उस मार्ग से ही यतनापूर्वक गमन करे, किन्तु ऐसे सीधे विषम मार्ग से गमन न करे।

केवली बूया—आयाणमेयं।

केवली भगवान् ने कहा यह मार्ग (निरापद न होने से) कर्म-बन्ध का कारण है।

से तत्थ परक्कममाणे पयलेज्ज वा, पवडेज्ज वा, से तत्थ पयलमाणे वा, पवडमाणे वा, रुक्खाणि वा गुच्छाणि वा, गुम्माणि वा, लयाओ वा, वल्लीओ वा, तणाणि वा, गहणाणि वा, हरियाणि वा अवलंबिय अवलंबिय उत्तरेज्जा, जे तत्थ पडिपहिया उवागच्छंति ते पाणी जाएज्जा, जाइत्ता ततो संजयामेव अवलंबिय अवलंबिय उत्तरेज्जा। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ३, उ. २, सु. ४६८-४६६

ऐसे विषम मार्ग से जाने से साधु-साध्वी का पैर आदि फिसल सकता है, वह गिर सकता है। कदाचित् उसका पैर आदि फिसलने लगे या वह गिरने लगे तो वहाँ जो भी वृक्ष, गुच्छ, पत्तों का समूह या फलों का गुच्छा, (झाड़ियाँ, लताएं, बेलें, तृण, अथवा गहन झाड़ियां, वृक्षों के कोटर या वृक्ष लताओं का झुंड) हरितकाय आदि हो तो सहारा लेकर चले या उतरे अथवा वहाँ (सामने से) जो पथिक आ रहे हों, उनका हाथ (हाथ का सहारा) मांगे, उनके हाथ का सहारा मिलने पर उसे पकड़कर यतनापूर्वक चले या उतरे। इस प्रकार साधु या साध्वी को यतनापूर्वक ही ग्रामानुग्राम विहार करना चाहिए।

आयरियाएहिं सद्धिं गमणविहि णिसेहो—

७७०. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा आयरिय उवज्झाएहिं सद्धिं गामाणुगामं दूइज्जमाणे णो आयरिय उवज्झायस्स हत्थेण हत्थं पाएण पायं, काएण कायं आसाएज्जा से अणासायए अणासायमाणे ततो संजयामेव आयरिय उवज्झाएहिं सद्धिं गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ३, उ. ३, सु. ५०६

आचार्यादि के साथ गमन के विधि निषेध—

७७०. आचार्य और उपाध्याय के साथ ग्रामानुग्राम विहार करने वाले साधु या साध्वी अपने हाथ से उनके हाथ, अपने पैर से उनके पैर का तथा अपने शरीर से उनके शरीर का (अविवेक पूर्ण रीति से) स्पर्श न करे। उनकी आशातना न करता हुआ उनके साथ ग्रामानुग्राम विहार करे।

मग्गे आयरियाईणं विणओ—

७७१. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा आयरिय-उवज्झाएहिं सद्धिं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिपहिया उवागच्छेज्जा ते णं पाडिपहिया एवं वदेज्जा—

मार्ग में आचार्यादि का विनय—

७७१. आचार्य और उपाध्याय के साथ ग्रामानुग्राम विहार करने वाले साधु या साध्वी को मार्ग में यदि सामने से आते हुए यात्री मिलें, और वे पूछें कि—

प०— आउसंतो समणा ! के तुब्भे, कओ वा एह, कहिं वा गच्छिहिह ?

उ०—जे तत्थ आयरिए वा, उवज्झाए वा, से भासेज्ज वा, वियागरेज्ज वा, आयरिय-उवज्झायस्स भासमाणस्स वा, वियागरेमाणस्स वा णो अंतरा भासं करेज्जा, ततो संजयामेव आहारातिणियाए दूइज्जेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ३, उ. ३, सु. ५०७

प्र०—"आयुष्मन् श्रमण या श्रमणी ! आप कौन हैं ? कहाँ से आए हैं ? और कहाँ जाएंगे ?"

उ०— इस प्रश्न पर जो आचार्य या उपाध्याय साथ में हैं, वे उन्हें सामान्य या विशेष रूप से उत्तर देंगे। आचार्य या उपाध्याय सामान्य या विशेष रूप से उनके प्रश्नों का उत्तर दे रहे हों, तब वह साधु या साध्वी बीच में न बोले। किन्तु मौन रहकर यथारत्नाधिक क्रम से उनके साथ ग्रामानुग्राम विचरण करे।

मग्गे रयणाहियेहिं सद्धिं गमणस्स विहि-णिसेहो—

मार्ग में रत्नाधिक के साथ गमन के विधि-निषेध—

७७२. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा आहारातिणियं गामाणुगामं दूइज्जमाणे णो राइणियस्स हत्थेण हत्थं, पादेण पादं, काएण कायं आसादेज्जा। से अणासादए अणासायमाणे ततो संजयामेव आहाराइणियं गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ३, उ. ३, सु. ५०८

७७२. रत्नाधिक (अपने से दीक्षा में बड़े) साधु या साध्वी के साथ ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ मुनि अपने हाथ से रत्नाधिक साधु के हाथ का, अपने पैर से उनके पैर का तथा अपने शरीर से उनके शरीर का (अविधिपूर्वक) स्पर्श न करे। उनकी आशातना न करता हुआ साधु यथारत्नाधिक क्रम से उनके साथ ग्रामानुग्राम विहार करे।

मग्गे रयणाहियाण विणओ—

मार्ग में रत्नाधिक का विनय—

७७३. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा आहाराइणियं गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिपहिया उवागच्छेज्जा, ते णं पाडिपहिया एवं वदेज्जा —

प०— आउसंतो समणा ! के तुब्भे कओ वा एह, कहिं वा गच्छिहिह ?

उ०—जे तत्थ सव्वरातिणिए से भासेज्ज वा वियागरेज्ज वा, रातिणियस्स भासमाणस्स वा, वियागरेमाणस्स वा णो अंतरा भासं भासेज्जा। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ३, उ. ३, सु. ५०९

७७३. रत्नाधिक साधुओं के साथ ग्रामानुग्राम विहार करने वाले साधु या साध्वी को मार्ग में यदि सामने से आते हुए कुछ प्रतिपथिक (यात्री) मिलें वे यों पूछें कि

प्र०—"आयुष्मन् श्रमण ! आप कौन हैं ? कहाँ से आए हैं ? और कहाँ जाएंगे ?"

उ०— (ऐसा पूछने पर) जो उन साधुओं में सबसे रत्नाधिक हैं, वे उनको सामान्य या विशेष रूप से उत्तर देंगे। जब रत्नाधिक सामान्य या विशेष रूप से उन्हें उत्तर दे रहे हों तब वह साधु बीच में न बोले। किन्तु मौन रहकर उनके साथ ग्रामानुग्राम विहार करे।

थेराणं वेयावडियाए परिहारकप्पट्ठियस्स गमणविसया विहि-णिसेहो पायच्छित्तं च—

स्थविरों की सेवा के लिए परिहार कल्पस्थित भिक्षु के गमन सम्बन्धी विधि-निषेध और प्रायश्चित्त—

७७४. परिहार-कप्पट्ठिए भिक्खू बहिया थेराणं वेयावडियाए गच्छेज्जा, थेरा य से सरेज्जा।

कप्पइ से एगराइयाए पडिमाए। जं णं जं णं दिसं अन्ने साहम्मिया विहरंति तं णं तं णं दिसं उवलित्तए। नो से कप्पइ तत्थ विहारवत्तियं वत्थए।

७७४. परिहार कल्प में स्थित भिक्षु (स्थविर की आज्ञा से) अन्यत्र किसी रुग्ण स्थविर की वैयावृत्य (सेवा) के लिए जावे, उस समय स्थविर उसे स्मरण दिलाएं कि—

"हे भिक्षु ! तुम परिहार तप रूप प्रायश्चित्त कर रहे हो अतः "विश्राम के लिए जहाँ मुझे ठहरना पड़ेगा वहाँ मैं एक रात से अधिक नहीं ठहरूँगा" ऐसी प्रतिज्ञा करो और जिस दिशा में रुग्ण भिक्षु है उस दिशा में जाओ। मार्ग में विश्राम के लिए तुम्हें एक रात्रि ठहरना तो कल्पता है किन्तु एक रात से अधिक ठहरना नहीं कल्पता है।"

कप्पइ से तत्थ कारणवत्तियं वत्थए। तंसि च णं कारणंसि निट्ठियंसि परो वएज्जा—"वसाहि अज्जो! एगरायं वा दुरायं वा" एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए। नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए।

जे णं तत्थ एगरायाओ वा दुरायाओ वा परं वसइ, से संतरा छेए वा परिहारे वा।

परिहार-कप्पट्ठिए भिक्खू बहिया थेराणं वेयावडियाए गच्छेज्जा, थेरा य से नो सरेज्जा कप्पइ से निव्विसमाणस्स एगराइयाए पडिमाए जं णं जं णं दिसिं अन्ने साहम्मिया विहरंति तं णं तं णं दिसिं उवलित्तए।

नो से कप्पइ तत्थ विहारवत्तियं वत्थए।

कप्पइ से तत्थ कारणवत्तियं वत्थए।

तंसि च णं कारणंसि निट्ठियंसि परोवएज्जा—"वसाहि अज्जो! एगरायं वा दुरायं वा।"

एवं से कप्पइ एगरायं वा दुरायं वा वत्थए।

नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वत्थए।

जे तत्थ परं एगरायाओ वा दुरायाओ वा वसइ, से संतरा छेए वा परिहारे वा।

परिहार-कप्पट्ठिए भिक्खू बहिया थेराणं वेयावडियाए गच्छेज्जा थेरा य से सरेज्जा वा, नो सरेज्जा वा।

कप्पइ से निव्विसमाणस्स एगराइयाए पडिमाए जं णं जं णं दिसं अन्ने साहम्मिया विहरंति। तं णं तं णं दिसं उवलित्तए।

नो से कप्पइ तत्थ विहारवत्तियं वत्थए।

कप्पइ से तत्थ कारणवत्तियं वत्थए।

तंसि च णं कारणंसि निट्ठियंसि परो वएज्जा—"वसाहि अज्जो! एगरायं वा, दुरायं वा।" एवं से कप्पइ एगरायं वा, दुरायं वा वत्थए। नो से कप्पइ परं एगरायाओ वा, दुरायाओ वा वत्थए।

जे तत्थ परं एगरायाओ वा, दुरायाओ वा वसइ, से संतरा छेए वा परिहारे वा। — व० उ० १, सु० २०-२२

रोगादि के कारण अनेक रात रहना भी कल्पता है। कारण के समाप्त होने पर भी यदि कोई भिक्षु कहे कि—"हे आर्य! तुम यहाँ एक-दो रात और बसो" तो, एक-दो रात और रहना कल्पता है किन्तु बाद में उसे वहाँ एक-दो रात और रहना नहीं कल्पता है।

यदि बाद में भी वह वहाँ रहे तो "जितने दिन-रात वह वहाँ रहे आचार्यादि उसे उतने ही दिन की दीक्षा का छेद या परिहार तप का प्रायश्चित्त दें।"

परिहार कल्प-स्थित भिक्षु (स्थविर की आज्ञा से) अन्यत्र किसी रुग्ण भिक्षु की वैयावृत्य के लिए जावे – उस समय यदि स्थविर किसी कारणवश उसे स्मरण न दिला सके तो भी वह भिक्षु—"मार्ग में विश्राम के लिए जहाँ मुझे ठहरना पड़ेगा वहाँ मैं एक रात से अधिक नहीं ठहरूँगा"—ऐसी प्रतिज्ञा करके जिस दिशा में रुग्ण स्थविर है उस दिशा में जावे।

मार्ग में विश्राम के लिए उसे एक रात रहना कल्पता है, किन्तु एक रात से अधिक रहना नहीं कल्पता है।

रोगादि के कारण अनेक रात रहना भी कल्पता है।

कारण के समाप्त हो जाने पर भी यदि कोई भिक्षु कहे कि—"हे आर्य! तुम यहाँ एक-दो रात और रहो"

तो उसे वहाँ एक-दो रात और रहना कल्पता है।

किन्तु बाद में उसे वहाँ एक-दो रात और रहना नहीं कल्पता है।

यदि बाद में भी वह वहाँ रहे तो—"जितने दिन-रात वह वहाँ रहे आचार्यादि उसे उतने ही दिन की दीक्षा का छेद या परिहार तप का प्रायश्चित्त दें"।

परिहारकल्प-स्थित भिक्षु (स्थविर की आज्ञा से) अन्यत्र किसी रुग्ण स्थविर की वैयावृत्य के लिए जावे—उस समय स्थविर उसे (किसी कारणवश) स्मरण दिलावे या न दिलावे तो भी वह भिक्षु—"मार्ग में विश्राम के लिए जहाँ मुझे ठहरना पड़ेगा वहाँ मैं एक रात से अधिक नहीं ठहरूँगा"—ऐसी प्रतिज्ञा करके जिस दिशा में रुग्ण स्थविर है उस दिशा में जावे।

मार्ग में विश्राम के लिए उसे एक रात रहना कल्पता है किन्तु एक रात से अधिक रहना नहीं कल्पता है।

रोगादि के कारण अनेक रात रहना भी कल्पता है।

कारण के समाप्त होने पर भी यदि कोई भिक्षु कहे कि—"हे आर्य! तुम यहाँ एक-दो रात और रहो" तो उसे वहाँ एक-दो रात रहना और कल्पता है किन्तु बाद में उसे एक-दो रात और रहना नहीं कल्पता है।

यदि बाद में भी वह वहाँ रहे तो—"जितने दिन-रात वहाँ रहे आचार्यादि उसे उतने ही दिन दीक्षा छेद या परिहारतप का प्रायश्चित्त दें।"

अडवीए गमणस्स विहि-णिसेहो—

७७५. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, अंतरा से विहं सिया, सेज्जं पुण विहं जाणेज्जा—एगाहेण वा, दुयाहेण वा, तियाहेण वा, चउयाहेण वा, पंचाहेण वा, पाउणेज्जा वा, णो वा पाउणेज्जा।

तहप्पगारं विहं अणेगाहगमणिज्जं सति लाढे-जाव-विहाराए संथरमाणेहिं जणवएहिं णो विहारवत्तियाए पवज्जेज्जा गमणाए।

केवली बूया—आयाणमेयं।

अंतरा से वासे सिया पाणेसु वा, पणएसु वा, बीएसु वा, हरिएसु वा, उदएसु वा, मट्टियाए वा अविद्धत्थाए।

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा-जाव-एस उवएसे जं तहप्पगारं विहं अणेगाहगमणिज्जं सति लाढे णो विहार वत्तियाए पवेज्जेज्जा गमणाए। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

—आ० सु० २, अ० ३, उ० १, सु० ४७३

अटवी में जाने के विधि-निषेध—

७७५. ग्रामानुग्राम में विहार करते हुए साधु या साध्वी यह जाने कि आगे लम्बा अटवी-मार्ग है। यदि उस अटवी मार्ग के विषय में वह यह जाने कि यह एक दिन में, दो दिनों में, तीन दिनों में, चार दिनों में या पाँच दिनों में पार किया जा सकता है, अथवा पार नहीं किया जा सकता है,

तो विहार के योग्य अन्य आर्य जनपदों के होते हुए—**यावत्**—(उस अनेक दिनों में पार किये जा सकने वाले भयंकर) अटवी मार्ग से विहार करके जाने का विचार न करें।

केवली भगवान कहते हैं—ऐसा करना कर्मबन्ध का कारण है,

क्योंकि मार्ग में वर्षा हो जाने से द्वीन्द्रिय आदि जीवों की उत्पत्ति हो जाने पर मार्ग में काई, (लीलन, फूलन) बीज, हरियाली, सचित्त, पानी और अविध्वस्त मिट्टी आदि के होने से संयम की विराधना होनी सम्भव है।

अतः भिक्षुओं के लिए तीर्थंकरादि ने पहले ही यह प्रतिज्ञा-**यावत्**-उपदेश दिया है कि वह साधु या साध्वी अन्य साफ और एकाध दिन में ही पार किया जा सके ऐसे मार्ग के होते हुए अन्य मार्ग से विहार करके जाने का संकल्प न करे। अतः साधु को परिचित और साफ मार्ग से ही यतना-पूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करना चाहिए।

विरुद्धरज्जाइसु गमणस्स विहि-णिसेहो—

७७६. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा अरायाणि वा, जुवरायाणि वा, दोरज्जाणि वा, वेरज्जाणि वा, विरुद्धरज्जाणि वा, सति लाढे विहाराए संथरमाणेहिं जणवएहिं णो विहारवत्तियाए पवज्जेज्जा गमणाए।

केवली बूया—आयाणमेयं।

ते णं बाला "अयं तेणे-जाव-तहप्पगाराणि विरूवरूवाणि पच्चंतियाणि-जाव-अकाल परिभोईणि-सति लाढे विहाराए संथरमाणेहिं जणवएहिं णो विहारवत्तियाए पवज्जेज्जा गमणाए। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

—आ० सु० २, अ० ३, उ० १, सु० ४७२

विरुद्ध राज्यादि में जाने के विधि-निषेध—

७७६. साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए यह जाने कि ये अराजक (राजा से रहित) प्रदेश हैं, या यहाँ केवल युवराज का शासन है, (जो कि अभी राजा नहीं बना है) अथवा दो राजाओं का शासन है, या परस्पर दो शत्रु-राजाओं का राज्य है, या धर्म-विरोधी राजा का शासन है ऐसी स्थिति में विहार के योग्य अन्य आर्य जनपदों के होते हुए, इस प्रकार के अराजक आदि प्रदेशों में विहार करने की दृष्टि से गमन करने का विचार न करें।

केवली भगवान् ने कहा है—ऐसे अराजक आदि प्रदेशों में जाना कर्मबन्ध का कारण है—

क्योंकि वे अज्ञानीजन साधु के प्रति शंका कर सकते हैं "यह चोर है—**यावत्**—तथारूप अनेक म्लेच्छ—**यावत्**—अकाल-भोजी प्रदेशों में अन्य आर्य जनपदों के होते हुए विहार की दृष्टि से जाने का संकल्प न करें। अतः साधु इन अराजक आदि प्रदेशों को छोड़कर यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे।

वेरज्जे विरुद्धरज्जे गमणागमणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

७७७. जे भिक्खू वेरज्जे-विरुद्धरज्जंसि सज्जं गमणं, सज्जं आगमणं, सज्जं गमणागमणं करेइ करेंतं वा साइज्जइ।

अराज्य और विरुद्ध राज्य में गमनागमन का प्रायश्चित्त सूत्र—

७७७. जो भिक्षु अराजकता वाले राज्य में या विरुद्ध राज्य में जल्दी-जल्दी जाता है, जल्दी-जल्दी आता है, जल्दी-जल्दी जाने-आने के लिए प्रेरणा देता है जल्दी-जल्दी जाने-आने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।[1] —नि० उ० ११, सु० ७१

उस भिक्षु को चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अभिसेय-रायहाणीसु पुणो पुणो णिक्खमण-पवेसणस्स पायच्छित्तसुत्तं—

अभिषेक राजधानियों में बार-बार जाने-आने के प्रायश्चित्त सूत्र—

७७८. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं महाभिसेयंसि वट्टमाणंसि णिक्खमइ वा पविसइ वा णिक्खमंतं वा पविसंतं वा साइज्जइ।

७७८. जो भिक्षु राजा का, क्षत्रियों का, शुद्ध जातियों का, मूर्धाभिषिक्तों का जहाँ पर महाअभिषेक हो रहा हो वहाँ वह जाता-आता है, जाने-आने के लिए प्रेरणा करता है या जाने-आने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं दस अभिसेयाओ रायहाणीओ उद्दिट्ठाओ गणियाओ वंजियाओ अंतोमासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा णिक्खमइ वा पविसइ वा णिक्खमंतं वा पविसंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु राजा की, क्षत्रियों की, शुद्ध जातियों की मूर्धाभिषिक्तों की ये दश अभिषेक राजधानियाँ कही गई हैं, गिनाई गई हैं, प्रसिद्ध हैं (उनमें) एक मास में दो बार या तीन बार जाता-आता है, जाने-आने के लिए प्रेरणा देता है, जाने-आने वाले का अनुमोदन करता है।

तं जहा—१. चंपा, २. महुरा, ३. वाराणसी, ४. सावत्थी, ५. साएयं, ६. कंपिल्लं, ७. कोसंबी, ८. मिहिला, ९. हत्थिणापुरं, १०. रायगिहं।

यथा—१. चंपा, २. मथुरा, ३. वाराणसी, ४. श्रावस्ती, ५. साकेत, ६. कांपिल्य नगर, ७. कोसंबी, ८. मिथिला, ९. हस्तिनापुर, १०. राजगृह।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —नि० उ० ९, सु० १८-१९

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अणियाठाण मग्गेण गमण विहि-णिसेहो—

सेना के पड़ाव वाले मार्ग से गमन के विधि-निषेध—

७७९. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से जवसाणि वा सगडाणि वा रहाणि वा सचक्काणि वा परचक्काणि वा, सेणं वा विरूवरूवं संणिविट्ठं पेहाए सति परक्कमे संजयामेव परक्कमेज्जा, णो उज्जुयं गच्छेज्जा।

७७९. साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विहार कर रहे हों, मार्ग में यदि जौ गेहूँ आदि धान्यों के ढेर हों, बैलगाड़ियाँ हों, रथ पड़े हों, स्वदेश-शासक या परदेश-शासक की सेना के नाना प्रकार के पड़ाव (छावनी के रूप में) पड़े हों, तो उन्हें देखकर यदि कोई दूसरा (निरापद) मार्ग हो तो उसी मार्ग से यतनापूर्वक जाए, किन्तु उस सीधे (दोषयुक्त) मार्ग से न जाए।

से णं से परो सेणागओ वदेज्जा—"आउसंतो! एस णं समणे सेणाए अभिचारियं करेइ से णं बाहाए गहाए आगसह।" से णं परो बाहाहिं गहाय आगसेज्जा, तं णो सुमणे सिया णो दुम्मणे सिया, णो उच्चावयं मणं णियच्छेज्जा, णो तेसिं बालाणं घाताए वहाए समुट्ठेज्जा।

(यदि साधु सेना के पड़ाव वाले मार्ग से जाएगा, तो सम्भव है) उसे देखकर कोई सैनिक किसी दूसरे सैनिक से कहे—"आयुष्मान्! यह श्रमण हमारी सेना का गुप्त भेद ले रहा है, अतः इसकी बाहें पकड़कर खींचो। अथवा उसे घसीटो।" इस पर वह सैनिक साधु की बाहें पकड़कर खींचने या घसीटने लगे, उस समय साधु अपने मन में न हर्षित हो न रुष्ट हो और वह मन में किसी प्रकार ऊँचा-नीचा संकल्प विकल्प न करे और न उन अज्ञानी-जनों को मारने-पीटने के लिए उद्यत हो। वह उनसे

---

१ नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा,
वेरज्ज-विरुद्धरज्जंसि—सज्जं गमणं, सज्जं आगमणं, सज्जं गमणागमणं करित्तए।
जो खलु निग्गंथो वा निग्गंथी वा,
वेरज्ज-विरुद्धरज्जंसि—सज्जं गमणं सज्जं आगमणं सज्जं गमणागमणं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ, से दुहओ वि अइक्कममाणे, आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —कप्प. उ. १, सु. ३९

अप्पुस्सुए-जाव-समाहिए ततो संजयामेव **गामाणुगामं दूइज्जेज्जा ।**

—आ० सु० २, अ० ३, उ० १, सु० ५००-५०१

किसी प्रकार का प्रतिशोध लेने का विचार न करे ।—**यावत्**—समाधिभाव में स्थिर होकर यतनापूर्वक एक ग्राम से दूसरे ग्राम विचरण करे ।

सेण्ण सण्णिविट्ठे खेत्ते रयणीवसमाणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

सेना के समीपवर्ती क्षेत्र में रात रहने का प्रायश्चित्त सूत्र—

७८०. **से गामस्स वा-जाव-रायहाणीए वा बहिया सेण्णं सन्निविट्ठं पेहाए कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तद्दिवसं भिक्खायरियाए गंतूण पडिनियत्तए । नो से कप्पइ तं रयणि तत्थेव उवाइणावेत्तए ।**

जो खलु निग्गंथो वा निग्गंथी वा तं रयणि तत्थेव उवाइणावेइ, उवाइणंतं वा साइज्जइ ।

से दुहओ वि अइक्कममाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । कप्प० उ० ३, सु० ३३

७८०. ग्राम—**यावत्**—राजधानी के बाहर शत्रु सेना का स्कन्धावार देखकर निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को भिक्षाचर्या से उसी दिन लौटकर आना कल्पता है । उन्हें बाहर रात रहना नहीं कल्पता है ।

जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी (ग्राम—**यावत्**—राजधानी के बाहर) रात रहते हैं या रात रहने वाले का अनुमोदन करते हैं

तो वे जिनाज्ञा और राजाज्ञा का अतिक्रमण करते हुए चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) को प्राप्त होते हैं ।

पाणाइ आइण्णेण मग्गेण गमणविहि-णिसेहो—

प्राणी आदि युक्त मार्ग से जाने के विधि-निषेध—

७८१. **से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे, अंतरा से पाणाणि वा, बीयाणि वा, हरियाणि वा, उदए वा, मट्टिया वा अविद्धत्था सति परक्कमे संजयामेव परक्कमेज्जा णो उज्जुयं गच्छेज्जा ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा ।**

—आ० सु० २, अ० ३, उ० १, सु० ४७०

७८१. साधु या साध्वी ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए यह जानें कि मार्ग में बहुत से त्रस प्राणी हैं, बीज बिखरे हैं, हरियाली है, सचित्त पानी है या सचित्त मिट्टी है, जिसकी योनि विध्वस्त नहीं हुई है, ऐसी स्थिति में दूसरा निर्दोष मार्ग हो तो साधु-साध्वी उसी मार्ग से यतनापूर्वक जाएँ किन्तु उस (जीव-जन्तु आदि से युक्त) सरल (सीधे) मार्ग से न जाए । जीव-जन्तु, रहित मार्ग से यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे ।

महाणई पारगमणविहि-णिसेहो अववाये पंचठाणाइं—

महानदी पार गमन विधि-निषेध के पाँच कारण—

७८२. **णो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा इमाओ उद्दिट्ठाओ गणियाओ वियंजियाओ पंच महण्णवाओ महाणईओ अंतो-मासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तए वा संतरित्तए वा, तं जहा १. गंगा, २. जउणा, ३. सरऊ, ४. एरावती, ५. मही ।**[1]

पंचहि ठाणेहि कप्पति,

तं जहा—१. भयंसि वा,

२. दुब्भिक्खंसि वा,

३. पव्वहेज्ज वा णं कोई,

४. दओघंसि वा एज्जमाणंसि महता वा,

५. अणारिएसु । —ठाणं अ० ५, उ० २, सु० ४१२

७८२. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को, इन उद्दिष्ट—(आगे बताई जाने वाली) गिनती की गई, अति प्रसिद्ध तथा बहुत जल वाली पाँच महानदियाँ एक मास के भीतर दो बार या तीन बार से अधिक उतरना या नौका से पार करना नहीं कल्पता है । जैसे—१. गंगा, २. यमुना, ३. सरयू, ४. ऐरावती, ५. मही ।

किन्तु पाँच कारणों से इन महानदियों को तैर कर पार करना या नौका से पार करना कल्पता है ।

जैसे—१. शरीर, उपकरण आदि के अपहरण का भय होने पर ।

२. दुर्भिक्ष होने पर ।

३. किसी के द्वारा व्यथित किये जाने पर ।

४. बड़े वेग से जलप्रवाह अर्थात् बाढ़ आ जाने पर ।

५. अनार्य पुरुषों द्वारा उपद्रव किये जाने पर ।

---

१ कप्प. उ. ४, सु. ३४ ।

अह पुण एवं जाणेज्जा एरावई कुणालाए जत्थ चक्किया एगं पायं जले किच्चा, एगं पायं थले किच्चा एवं णं कप्पइ अंतोमासस्स दुक्खुत्तो वा, तिक्खुत्तो वा, उत्तरित्तए वा, संतरित्तए वा।[1]

जत्थ एवं नो चक्किया एवं नो कप्पइ अंतोमासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरित्तए वा संतरित्तए वा।

--कप्प० उ० ४, सु० ३५

यदि यह ज्ञात हो जाए कि कुणाला नगरी के समीप एरावती नदी एक पैर जल में और एक पैर स्थल में रखते हुए पार की जा सकती है तो एक मास में दो या तीन बार उतरना या नाव से पार करना कल्पता है।

यदि उक्त प्रकार से पार न की जा सके तो उस नदी को एक मास में दो या तीन बार उतरना या नाव से पार करना नहीं कल्पता है।

पंच महाणई उत्तरण-पायच्छित्त सुत्तं—

७८३. जे भिक्खू पंचिमाओ महण्णवाओ महाणईओ उद्दिट्ठाओ—गणियाओ वंजियाओ अंतोमासस्स दुक्खुत्तो वा तिक्खुत्तो वा उत्तरइ वा संतरइ वा उत्तरंतं वा संतरंतं वा साइज्जइ।

तं जहा--१. गंगं, २. जउणं, ३. सउणं, ४. एरावइं, ५. महिं।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —नि० उ० १२, सु० ४२

पाँच महानदी पार करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

७८३. जो भिक्षु इन बारह मास बहने वाली इन पाँचों महानदियों को जो कही गई हैं, गिनाई गई हैं, प्रसिद्ध हैं उन्हें एक मास में दो बार या तीन बार उतरकर या तैरकर पार करता है, करवाता है, या करने वाले का अनुमोदन करता है।

यथा—१ गंगा, २. यमुना, ३. सरयु, ४. एरावती और ५. मही।

उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णावाविहारस्स विहि-णिसेहो—

७८४. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, अंतरा से णावा संतारिमे उदए सिया, सेज्जं पुण णावं जाणेज्जा-असंजते भिक्खूपडियाए किणेज्ज वा, पामिच्चेज्ज वा णावाए वा णावपरिणामं कट्टु थलातो वा णावं जलंसि ओगाहेज्जा, जलातो वा णावं थलंसि उक्कसेज्जा, पुण्णं वा णावं उस्सिंचेज्जा, सण्णं वा णावं उप्पीलावेज्जा, तहप्पगारं णावं उड्ढगामिणिं वा अहेगामिणिं वा तिरियगामिणिं वा परं जोयणमेराए अद्धजोयणमेराए वा अप्पतरे वा भुज्जतरे वा णो दुरुहेज्जा गमणाए।

नौका विहार के विधि निषेध—

७८४. ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु या साध्वी यह जाने कि मार्ग में नौका द्वारा पार कर सकने योग्य जल (जल मार्ग) है, (तो वह नौका द्वारा उस जल मार्ग को पार कर सकता है।) परन्तु यदि वह यह जाने कि असंयत—गृहस्थ साधु के निमित्त मूल्य देकर (किराये से) नौका खरीद रहा है, या उधार ले रहा है या अपनी नौका की अन्य की नौका से अदला-बदली कर रहा है, या नाविक नौका को स्थल से जल में लाता है अथवा जल से स्थल में खींच कर पानी से भरी हुई नौका से पानी उलीचकर खाली करता है अथवा कीचड़ में फँसी हुई को बाहर निकालकर साधु के लिए तैयार करके साधु को उस पर चढ़ने की प्रार्थना करता है, तो इस प्रकार की नौका चाहे वह ऊर्ध्वगामिनी हो, अधोगामिनी हो या तिर्यग्गामिनी, जो उत्कृष्ट एक योजनप्रमाण क्षेत्र में चलती है या अर्द्ध योजनप्रमाण क्षेत्र में चलती है, एक बार या बहुत बार गमन करने के लिए उस नौका पर साधु सवार न हो तो ऐसी नौका में बैठकर साधु जल मार्ग पार न करे।

---

१ यहाँ "उत्तरित्तए" के बाद में "संतरित्तए" पाठ अनावश्यक है। क्योंकि उत्तरित्तए का अर्थ जंघा या बाहु द्वारा तिरकर पार करना है। अथवा एक पैर जल में और एक पैर स्थल में अर्थात् एक पैर जल से ऊपर उठाकर उसे अधर आकाश में कुछ देर रखे, पैर का पानी नितारे बाद में नितरा हुआ पैर पानी में रखे इस क्रम से एक पैर जल में और एक पैर स्थल में रखता हुआ नदी का पानी पार करे।

एक पैर जल में और एक पैर स्थल में रखते हुए नदी पारकर इस तीर के ग्राम से सामने की तीर के ग्राम में कारणवश श्रमण गया हो पीछे लौटते समय नदी में अधिक पानी आ जाय तो उसे नाव द्वारा पार करके पुनः जिस ग्राम से गया उसी में आ जावे। "संतरित्तए" का अर्थ है नाव से पार करना।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा पुव्वामेव तिरिच्छसंपातिमं णावं जाणेज्जा, जाणित्ता से तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा, एगंतमवक्कमित्ता भंडगं पडिलेहेज्जा पडिलेहित्ता एगाभोयं भंडगं करेज्जा, करित्ता ससीसोवरियं कायं पाए पमज्जेज्जा पमज्जित्ता सागारं भत्तं पच्चक्खाएज्जा पच्चक्खाइत्ता एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा ततो संजयामेव णावं दुरुहेज्जा।

(कारणवश नौका में बैठना पड़े तो) साधु या साध्वी सर्वप्रथम तिर्यग्गामिनी नौका को जाने देख ले। यह जानकर वह गृहस्थ की आज्ञा लेकर एकान्त में चला जाए। वहाँ जाकर भण्डोपकरण का प्रतिलेखन करे, तत्पश्चात् सभी उपकरणों को इकट्ठे करके बाँध ले फिर सिर से लेकर पैर तक शरीर का प्रमार्जन करे। तदनन्तर आगार-सहित आहार का प्रत्याख्यान (त्याग) करे। यह सब करके एक पैर जल में और एक स्थल में रखकर यतनापूर्वक उस नौका पर चढ़े।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा णावं दुरुहमाणे णो णावातो पुरतो दुरुहेज्जा, णो णावाओ मग्गतो दुरुहेज्जा, णो णावातो मज्झतो दुरुहेज्जा,[1] णो बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय अंगुलियाए उद्दिसिय उद्दिसिय ओणमिय ओणमिय उण्णमिय उण्णमिय णिज्झाएज्जा।

साधु या साध्वी नौका पर चढ़ते हुए न नौका के अगले भाग में बैठे, न पिछले भाग में बैठे और न मध्य भाग में। तथा नौका के बाजुओं को पकड़-पकड़ कर या अंगुली से बता-बताकर (संकेत करके) या उसे ऊँची या नीची करके एकटक जल को न देखे।

से णं परो णावागतो णावागयं वदेज्जा—"आउसंतो समणा! एतं ता तुमं णावं उक्कसाहि वा, वोक्कसाहि वा खिवाहि वा, रज्जूए वा, गहाय आकसाहि।" णो से तं परिण्णं परिजाणेज्जा, तुसिणीओ उवेहेज्जा।

यदि नाविक नौका में चढ़े हुए साधु से कहे कि "आयुष्मन् श्रमण! तुम इस नौका को ऊपर की ओर खींचो अथवा नौका को नीचे की ओर खींचो या रस्सी को पकड़ कर नौका को अच्छी तरह से बाँध दो, अथवा रस्सी से इसे जोर से कस दो।" नाविक के इस प्रकार के (सावद्य प्रवृत्त्यात्मक) वचनों को स्वीकार न करे, किन्तु मौन धारण कर बैठा रहे।

से णं परो णावागतो णावागतं वदेज्जा "आउसंतो समणा! णो संचाएसि तुमं णावं उक्कसित्तए वा, वोक्कसित्तए वा, खिवित्तए वा, रज्जूए वा, गहाय आकसित्तए" आहर एयं णावाए रज्जुयं, सयं चेवं णं वयं णावं उक्कसिस्सामो वा-जाव-रज्जुए वा गहाय आकसिस्सामो। णो से तं परिण्णं परिजाणेज्जा, तुसिणीओ उवेहेज्जा।

यदि नौकारूढ़ साधु को नाविक यह कहे कि—"आयुष्मन् श्रमण! यदि तुम नौका को ऊपर या नीचे की ओर खींच नहीं सकते या रस्सी पकड़ कर नौका को भली-भाँति बाँध नहीं सकते या जोर से कस नहीं सकते तो नाव पर रखी हुई रस्सी को लाकर दो। हम स्वयं नौका को ऊपर की ओर खींच लेंगे, —यावत्— रस्सी से इसे जोर से कस देंगे।" इस पर भी साधु नाविक के इस वचन को स्वीकार न करे, चुपचाप उपेक्षा भाव से बैठा रहे।

से णं परो णावागतो णावागयं वदेज्जा—"आउसंतो समणा! एतं ता तुमं णावं अलित्तेण वा, पिट्ठेण वा, वंसेण वा, वलएण वा, अवल्लएण वा वाहेहि।" णो से तं परिण्णं परिजाणेज्जा। तुसिणीओ उवेहेज्जा।

यदि नौका में बैठे हुए साधु से नाविक कहे कि—"आयुष्मन् श्रमण! जरा इस नौका को तुम डांड (चप्पू) से, पीठ से, बड़े बाँस से, बल्ली से या अवल्लक से (बाँस विशेष) तो चलाओ।" इस पर भी साधु नाविक के इस प्रकार के वचन को स्वीकार न करे, बल्कि उदासीन भाव से मौन होकर बैठा रहे।

से णं परो णावागतो णावागयं वदेज्जा—"आउसंतो समणा! एतं ता तुमं णावाए उदयं हत्थेण वा, पाएण वा, मत्तेण वा, पडिग्गहेण वा, णावाउस्सिंचणएण वा

नौका में बैठे हुए साधु से अगर नाविक यह कहे कि—"आयुष्मन् श्रमण! इस नौका में भरे हुए पानी को तुम हाथ से, पैर से, भाजन से या पात्र से नौका से उलीच कर पानी को

---

१ इस सूत्र में नाव के अग्रभाग, मध्यभाग और अन्तिम भाग पर बैठने का निषेध किया है किन्तु कहाँ बैठना? यह नहीं कहा है।
चूर्णीकार ने इस निषेध के कारण और कहाँ बैठने का समाधान इस प्रकार किया है—
नाव का अग्रभाग देवता का स्थान है। मध्यभाग की संज्ञा कूपक है वह बैठने वालों के आने-जाने का स्थान है, अन्तिम भाग नौका के नियामक का स्थान है अतः मध्यभाग और अन्तिम भाग के मध्य में अथवा मध्यभाग और अग्रिम भाग के मध्य में बैठे।

उस्सिंचाहि।" णो से तं परिण्णं परिजाणेज्जा। तुसिणीओ उवेहेज्जा।—आ० सु० २, अ० ३, उ० १, सु० ४७४-४८०

बाहर निकाल दो" परन्तु साधु नाविक के इस वचन को स्वीकार न करे, वह मौन होकर बैठा रहे।

से णं परो णावागतो णावागयं वएज्जा—"आउसंतो समणा! एतं ता तुमं णावाए उत्तिंगं हत्थेण वा, पाएण वा, बाहुणा वा, ऊरुणा वा, उदरेण वा, सीसेण वा, काएण वा, णावाउस्सिंचणएण वा, चेलेण वा, मट्टियाए वा, कुसपत्तएण वा, कुविंदेण वा पिहेहि।" णो से तं परिण्णं परिजाणेज्जा। तुसिणीओ उवेहेज्जा।

यदि नाविक नौकारूढ़ श्रमण से यह कहे कि—"आयुष्मन् श्रमण! नाव मे हुए इस छिद्र को तुम अपने हाथ से, पैर से, भुजा से, जंघा से, पेट से, सिर से, या शरीर से अथवा नौका के जल निकालने वाले उपकरणों से, वस्त्र से, मिट्टी से, कुशपत्र से, कुरुविन्द नामक तृण विशेष से बन्द कर दो, रोक दो।" साधु नाविक के इस कथन को स्वीकार न करके मौन धारण करके बैठा रहे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा णावाए उत्तिंगेण उदयं आसवमाणं पेहाए, उवरुवरिं णावं कज्जलावेमाणं पेहाए, णो परं उवसंकमित्तु एवं बूया—"आउसंतो गाहावति! एतं ते णावाए उदयं उत्तिंगेणं आसवति, उवरुवरिं वा णावा कज्जलावेति। एतप्पगारं मणं वा वायं वा णो पुरतो कट्टु विहरेज्जा।"

अप्पुस्सुए-जाव-समाहीए।

वह साधु या साध्वी नौका में छिद्र से पानी आता हुआ देखकर नौका को उत्तरोत्तर जल से परिपूर्ण होती देखकर, नाविक के पास जाकर यों न कहे कि "आयुष्मन् गृहपते! तुम्हारी इस नौका में छिद्र के द्वारा पानी आ रहा है, उत्तरोत्तर नौका जल से परिपूर्ण हो रही है।" इस प्रकार से मन एवं वचन को आगे पीछे न करके साधु-विचरण करे।

वह शरीर और उपकरणादि पर मूर्च्छा न करके **-यावत्**— समाधि में स्थित रहे।

ततो संजयामेव णावासंतारिमे उदए आहारियं रीएज्जा।

—आ० सु० २, अ० ३, उ० २, सु० ४८१-४८२

इस प्रकार नौका के द्वारा पार करने योग्य जल को पार करने के बाद जिस प्रकार तीर्थंकरों ने विधि बताई है उस प्रकार उसका पालन करता हुआ विचरण करे।

से णं परो णावागतो णावागयं वदेज्जा—"आउसंतो समणा! एतं ता तुमं छत्तगं वा-जाव-चम्मछेदणगं वा गेण्हाहि, एताणि ता तुमं विरूवरूवाणि सत्थजायाणि धारेहि, एयं ता तुमं दारगं वा दारिगं वा पज्जेहि", णो से तं परिण्णं परिजाणेज्जा, तुसिणीओ उवेहेज्जा।

नौका में बैठे हुए गृहस्थ आदि यदि नौकारूढ़ मुनि से यह कहे कि "आयुष्मन् श्रमण! तुम जरा हमारे छत्र—**यावत्**—चर्म-छेदनक को पकड़े रखो, इन विविध शस्त्रों को तो धारण करो, अथवा इस बालक या बालिका को पानी पिला दो", तो वह साधु उसके उक्त वचन को सुनकर स्वीकार न करे किन्तु मौन धारण करके बैठा रहे।

से णं परो णावागते णावागतं वदेज्जा—"आउसंतो! एस णं समणे णावाए भंडभारिए भवति, से णं बाहाए गहाय णावाओ उदगंसि पक्खिवेज्जा।" एतप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्मा से य चीवरधारी सिया खिप्पामेव चीवराणि उव्वेढेज्ज वा, णिव्वेढेज्ज वा उप्फेसं वा करेज्जा।

यदि कोई नौकारूढ़ व्यक्ति नौका पर बैठे हुए किसी अन्य गृहस्थ से इस प्रकार कहे—"आयुष्मन् गृहस्थ! यह श्रमण जड़ वस्तुओं की तरह नौका पर केवल भारभूत है, अतः इसकी बाहें पकड़ कर नौका से बाहर जल में फेंक दो।" इस प्रकार की बात सुनकर और हृदय में धारण करके यदि वह मुनि वस्त्रधारी है तो वस्त्रों को अलग कर दे या शरीर पर लपेट ले तथा सिर पर लपेट लें।

अह पुणेवं जाणेज्जा अभिक्कंतकूरकम्मा खलु बाला बाहाहिं गहाय णावाओ उदगंसि पक्खिवेज्जा। से पुव्वामेव वदेज्जा—"आउसंतो गाहावती! मा मेत्तो बाहाए गहाय णावातो उदगंसि पक्खिवेह, सयं चेव णं अहं णावातो उदगंसि ओगाहिस्सामि।"

यदि वह साधु यह जाने कि ये अत्यन्त क्रूर कर्मा अज्ञानीजन अवश्य ही मुझे बाहें पकड़कर नाव से बाहर पानी में फेंकेंगे। तब वह फेंके जाने से पूर्व ही उन गृहस्थों को सम्बोधित करके कहे—"आयुष्मन् गृहस्थो! आप लोग मुझे बाँहें पकड़कर नौका से बाहर जल में मत फेंको, मैं स्वयं ही इस नौका से बाहर होकर जल में प्रवेश कर जाऊँगा।"

से णेवं वदंतं परो सहसा बलसा बाहाहिं गहाय णावातो उदगंसि पक्खिवेज्जा, तं णो सुमणे सिया-जाव-समाहीए। ततो संजयामेव उदगंसि पवज्जेज्जा।

साधु के द्वारा यों कहते-कहते कोई अज्ञानी नाविक सहसा बलपूर्वक साधु को बाँहें पकड़कर नौका से बाहर जल में फेंक दे तो (जल में गिरा हुआ) साधु मन में न हर्ष से युक्त हो—**यावत्**—आत्म-समाधि में स्थिर हो जाए। फिर वह यतनापूर्वक जल में प्रवेश कर जाए।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदगंसि पवमाणे णो हत्थेण हत्थं पादेण पादं काएण कायं आसादेज्जा। से अणासादए अणासायमाणे ततो संजयामेव उदगंसि पवज्जेज्जा।

जल में डूबते समय साधु या साध्वी (अप्काय के जीवों की रक्षा की दृष्टि से) अपने एक हाथ से दूसरे हाथ का, एक पैर से दूसरे पैर का तथा शरीर के अन्य अंगोपांग का परस्पर स्पर्श न करे। वह (जलकायिक जीवों को पीड़ा न पहुँचाने की दृष्टि से) परस्पर स्पर्श न करता हुआ इसी तरह यतनापूर्वक जल में बहता हुआ चला जाए।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदगंसि पवमाणे णो उम्मुग्ग-णिमुग्गियं करेज्जा, मा मेयं उदयं कण्णेसु वा, अच्छीसु वा, णक्कंसि वा, मुहंसि वा परियावज्जेज्जा, ततो संजयामेव उदगंसि पवेज्जा।

साधु या साध्वी जल में बहते समय उन्मज्जन-निमज्जन (डुबकी लगाना और बाहर निकलना) भी न करें, और न इस बात का विचार करें कि यह पानी मेरे कानों में, आँखों में, नाक में या मुँह में न प्रवेश कर जाए। बल्कि वह यतनापूर्वक जल में (समभाव के साथ) बहता जाए।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उदगंसि पवमाणे दोब्बलियं पाउणेज्जा, खिप्पामेव उवधिं विगिंचेज्ज वा, विसोहेज्ज वा, णो चेव णं सातिज्जेज्जा।

यदि साधु या साध्वी जल में बहते हुए दुर्बलता का अनुभव करे तो शीघ्र ही थोड़ी या समस्त उपधि (उपकरण) का त्याग कर दे, वह शरीरादि पर से भी ममत्व छोड़ दे, उन पर किसी प्रकार की आसक्ति न रखे।

अह पुणेवं जाणेज्जा पारए सिया उदगाओ तीरं पाउ-णित्तए। ततो संजयामेव उदउल्लेण वा, ससणिद्धेण वा काएण दगतीरए चिट्ठेज्जा।

साधु या साध्वी जल में बहते हुए यदि यह जाने कि मैं उपधि सहित ही इस जल से पार होकर किनारे पर पहुँच जाऊँगा, तो जब तक शरीर से जल टपकता रहे तथा शरीर गीला रहे, तब तक वह नदी के किनारे पर ही खड़ा रहे।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, उदउल्लं वा, ससणिद्धं वा, कायं णो आमज्जेज्ज वा, पमज्जेज्ज वा, संलिहेज्ज वा, णिल्लिहेज्ज वा, उव्वलेज्ज वा, उव्वट्टेज्ज वा, आतावेज्ज वा, पयावेज्ज वा।

साधु या साध्वी टपकते हुए या जल से भीगे हुए शरीर को एक बार या बार-बार हाथ से स्पर्श न करे न उसे एक या अधिक बार सहलाए, न उसे एक या अधिक बार घिसे, न उस पर मालिश करे और न ही उबटन की तरह शरीर से मैल उतारे। वह भीगे हुए शरीर और उपधि को सुखाने के लिए धूप से थोड़ा या अधिक गर्म भी न करे।

अह पुणेवं जाणेज्जा—विगतोदए मे काए छिण्णसिणेहे। तहप्पगारं कायं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा-जाव-आया-वेज्ज वा पयावेज्ज वा। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा। —आ० सु० २, अ० ३, उ० २, सु० ४८३-४९१

जब वह यह जान ले कि अब मेरा शरीर पूरी तरह सूख गया है, उस पर जल की बूंद या जल का लेप भी नहीं रहा है, तभी अपने हाथ से उस सूखे हुए शरीर का स्पर्श करे, उसे सहलाए—**यावत्**—धूप में खड़ा रहकर उसे थोड़ा या अधिक भी तपावे। तदनन्तर संयमी साधु यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे।

जंघासंतरिम उदगपार-गमणविहि—

७८५. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, अंतरा

जंघाप्रमाण-जल-पारकरण विधि—

७८५. ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु या साध्वी को मार्ग में

से जंघासंतारिमे उदगे सिया, से पुव्वामेव ससीसोवरियं कायं पाए य पमज्जेज्जा, से पुव्वामेव एगं पायं जले किच्चा एगं पायं थले किच्चा ततो संजयामेव जंघासंतारिमे उदगे अहारियं रीएज्जा।

जंघा-प्रमाण (जंघा से पार करने योग्य) जल (जलाशय या नदी) पड़ता हो तो उसे पार करने के लिए पहले सिर सहित शरीर के ऊपरी भाग से लेकर पैर तक प्रमार्जन करके वह एक पैर को जल में और एक पैर को स्थल में रखकर यतनापूर्वक जंघा से तरणीय जल को भगवान के द्वारा कथित विधि के अनुसार पार करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा जंघासंतारिमे उदगे अहारियं रीयमाणे णो हत्थेण हत्थं वा-जाव-अणासायमाणे ततो संजयामेव जंघासंतारिमे उदगे अहारियं रीएज्जा।

साधु या साध्वी जंघा से तरणीय जल को शास्त्रोक्त विधि के अनुसार पार करते हुए हाथ से हाथ का **यावत्**—(जिनाज्ञा) की) अशातना न करते हुए भगवान् द्वारा प्रतिपादित विधि के अनुसार यतनापूर्वक उस जंघा-तरणीय जल को पार करे।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा जंघासंतारिमे उदए अहारियं रीयमाणे णो सायपडियाए, णो परिदाहपडियाए महतिमहालयंसि उदगंसि कायं विओसेज्जा। ततो संजयामेव जंघासंतारिमेव उदए अहारियं रीएज्जा।

साधु या साध्वी जंघा-प्रमाण जल में शास्त्रोक्त विधि के अनुसार चलते हुए शारीरिक सुख-शान्ति की अपेक्षा से दाह उपशान्त करने के लिए गहरे और विस्तृत जल में प्रवेश न करे और जब उसे यह अनुभव होने लगे कि मैं उपकरणादि सहित जल से पार नहीं हो सकता, तो वह उनका त्याग कर दे। उसके पश्चात् वह यतनापूर्वक शास्त्रोक्त विधि से उस जंघा-प्रमाण जल को पार करे।

अह पुणेवं जाणेज्जा—पारए सिया उदगाओ तीरं पाउणित्तए। ततो संजयामेव उदउल्लेण वा, ससणिद्धेण वा काएण दगतीरए चिट्ठेज्जा।

साधु या साध्वी यह जाने कि मैं उपधि सहित ही जल से पार हो सकता हूँ तो वह उपकरण-सहित पार हो जाए। परन्तु किनारे पर आने के बाद जब तक उसके शरीर से पानी की बूंद टपकती हो, जब तक उसका शरीर जरा सा भी भीगा रहे, तब तक वह जल (नदी) के किनारे ही खड़ा रहे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा उदउल्लं वा कायं ससणिद्धं वा कायं णो आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा-जाव-आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा।

साधु या साध्वी जल टपकते हुए या जल से भीगे हुए शरीर को एक बार या बार-बार हाथ से स्पर्श न करे, न उसे एक बार या अधिक बार घिसे—**यावत्**—भीगे हुए शरीर और उपधि को सुखाने के लिए धूप से थोड़ा या अधिक न तपावे।

अह पुणेवं जाणेज्जा—विगतोदए मे काए छिण्णसिणेहे। तहप्पगारं कायं आमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा-जाव-आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

— आ० सु० २, अ० ३, उ० २, सु० ४९३-४९७

जब वह यह जान ले कि अब मेरा शरीर पूरी तरह सूख गया है, उस पर जल की बूँद या जल का लेप भी नहीं रहा है, तभी अपने हाथ से उस शरीर का स्पर्श करे, —**यावत्**—धूप में खड़ा रहकर उसे थोड़ा या अधिक तपावे। बाद में वह संयमी साधु यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे।

नावाविहार-विसयाणो पायच्छित्त सुत्ताणि—

नौका विहार के प्रायश्चित्त सूत्र—

७८६. जे भिक्खू अणट्ठाए णावं दुरूहइ दुरूहंतं वा साइज्जइ।

७८६. जो भिक्षु बिना प्रयोजन नाव पर बैठता है, बैठने के लिए कहता है, बैठने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू णावं किणइ, किणावेइ, कीयं आहट्टु देज्जमाणं दुरूहइ दुरूहंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नाव खरीदता है, खरीदवाता है या खरीदी हुई नाव दे तो उस पर बैठता है, बैठने के लिए कहता है या बैठने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू णावं पामिच्चइ पामिच्चावेइ पामिच्चं आहट्टु देज्जमाणं दुरूहइ दुरूहंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नाव उधार लेता है, उधार लिवाता है या उधार ली हुई नाव दे तो उस पर बैठता है, बैठने के लिए कहता है या बैठने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू णावं परियट्टेइ परियट्टावेइ परियट्टं आहट्टु देज्जमाणं दुरूहइ दुरूहंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नाव को अदल-बदल करता है, करवाता है और अदल-बदल की हुई नाव दे तो उस पर बैठता है, बैठने के लिए कहता है या बैठने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू णावं अच्छेज्जं अणिसिट्ठं अभिहडं आहट्टु देज्जमाणं दुरूहइ दुरूहंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु छीनकर ली हुई, थोड़े समय के लिए लाकर दी हुई नाव पर बैठता है, बैठने के लिए कहता है या बैठने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू थलाओ णावं जले उक्कसावेइ उक्कसावेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु स्थल से नाव को जल में उतरवाता है या उतरवाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू जलाओ णावं थले उक्कसावेइ उक्कसावेंतं साइज्जइ।

जो भिक्षु जल से नाव को स्थल पर रखवाता है या रखवाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू पुण्णं णावं उस्सिंचइ उस्सिंच्चेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु पानी से पूर्ण भरी नाव को खाली करवाता है, खाली करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू सण्णं णावं उप्पिलावेइ उप्पिलावेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु कीचड़ में फँसी नाव को निकलवाता है, निकलवाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू उवद्धियं णावं उत्तिंगं वा उदगं वा आसिंचमाणिं वा उवरुवरि वा कज्जलावेमाणिं पेहाए हत्थेण वा पाएण वा असिपत्तेण वा कुसपत्तेण वा मट्टियाए वा चेलेण वा पडिपिहेइ पडिपिहेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु बँधी हुई नाव में छिद्र से पानी आता हुआ देखकर अथवा शनैः शनैः डूबती हुई देखकर (छिद्र को) हाथ से, पैर से, अशोपत्र से, कुशपत्र से, मिट्टी से या वस्त्र से बन्द करवाता है, बन्द करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू पडिणावियं कट्टु णावाए दुरूहइ दुरूहंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नाविक बदल करके नाव पर बैठता है, बैठने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू उड्ढगामिणिं वा णावं अहोगामिणिं वा णावं दुरूहइ दुरूहंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु उर्ध्वगामिनी नाव पर या अधोगामिनी नाव पर बैठता है या बैठने का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू जोयणवेलागामिणिं वा अद्धजोयणवेलागामिणिं वा णावं दुरूहइ दुरूहंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु एक योजन तक प्रवाह के सन्मुख जाने वाली अथवा अर्धयोजन तक प्रवाह में नीचे की ओर जाने वाली नाव पर बैठता है या बैठने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू णावं आकसेइ आकसावेइ, आकसावेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नाव को खींचता है, खिंचवाता है और खींचने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू णावं खेवेइ खेवावेइ खेवावेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नाव को खेता है, खिवाता है और खेने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू णावं रज्जुणा वा कट्ठेण वा कड्ढइ कड्ढंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नाव को रज्जु से या काष्ट से निकालता है, निकलवाता है या निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू णावं अलित्तएण वा पप्फिडएण वा वंसेण वा वलेण वा वाहेइ वाहेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु (नाव को) नौकादंड से, नौका चलाने के उपकरण से, बाँस से या बल्ले से चलाता है, चलाने को कहता है, चलाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू णावाओ उदगं भायणेण वा पडिग्गहणेण वा मत्तेण वा णावा उस्सिंचणेण वा उस्सिंचइ उस्सिंचंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नाव में से भाजन द्वारा, पात्र द्वारा या बर्तन द्वारा पानी निकालता है, निकलवाता है या निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू नावं उत्तिंगेण उदगं आसवमाणं उवरुवरिं कज्जलमाणं पलोय हत्थेण वा पाएण वा आसत्थपत्तेण वा कुसपत्तेण वा मट्टियाए वा चेलकण्णेण वा पडिपेहेइ पडिपेहेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नाव के छिद्र में से पानी आने पर नाव को डूबती हुई देखकर हाथ से, पैर से, अश्वत्थ के पत्ते से, कुश के पत्ते से, मिट्टी से और वस्त्र खण्ड से (छेद को) बन्द करता है, करवाता है, करवाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू णावागओ णावागयस्स असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नाव में बैठा है और नाव में ही बैठने वाले से अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू णावागओ जलगयस्स असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नाव में बैठा है और जल में खड़े रहने वाले से अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू णावागओ पंकगयस्स असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नाव में बैठा है और कीचड़ में खड़े रहने वाले से अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू णावागओ थलगयस्स असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नाव में बैठा है और जमीन पर खड़े रहने वाले से अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

[जे भिक्खू जलगओ णावागयस्स असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेति, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

(जो भिक्षु जल में खड़ा है और नाव में ही बैठने वाले से अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू जलगओ जलगयस्स असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु जल में खड़ा है और जल में खड़े रहने वाले से अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू जलगओ पंकगयस्स असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु जल में खड़ा है और कीचड़ में खड़े रहने वाले से अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू जलगओ थलगयस्स असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।]

जो भिक्षु जल में खड़ा है और जमीन पर खड़े रहने वाले से अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।)

[जे भिक्खू पंकगओ णावागयस्स असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

(जो भिक्षु कीचड़ में खड़ा है और नाव में ही बैठने वाले से अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू पंकगओ जलगयस्स असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु कीचड़ में खड़ा है और जल में खड़े रहने वाले से अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू पंकगओ, पंकगयस्स असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु कीचड़ में खड़ा है और कीचड़ में खड़े रहने वाले से अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू पंकगओ थलगयस्स असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।]

जो भिक्षु कीचड़ में खड़ा है और जमीन पर खड़े रहने वाले से अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।)

[जे भिक्खू थलगओ णावागयस्स असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

(जो भिक्षु स्थल पर खड़ा है और नाव में बैठने वाले से अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लेने के लिए कहता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू थलगओ जलगयस्स असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु स्थल पर खड़ा है और जल में खड़े रहने वाले से अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लेने के लिए कहता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू थलगओ पंकगयस्स असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु स्थल पर खड़ा है और कीचड़ में खड़े रहने वाले से अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लेने के लिए कहता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू थलगओ थलगयस्स असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।]

जो भिक्षु स्थल पर खड़ा है और स्थल पर खड़े रहने वाले से अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लेने के लिए कहता है लेने वाले का अनुमोदन करता है।)

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि० उ० १८, सु० १-२३

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

।। ईर्यासमिति प्रकरण समाप्त ।।

भाषासमिति

विधिकल्प—१

तिकालिय तित्थयरेहिं चत्तारि भासा परूविया—

७८७. अह भिक्खू जाणेज्जा चत्तारि भासज्जायाइं, तं जहा—सच्चमेगं पढमं भासज्जायं, बीयं मोसं, तईयं सच्चामोसं, जं णेव सच्चं णेव मोसं, णेव सच्चामोसं, असच्चामोसं णामं तं चउत्थं भासज्जातं।[1]

से बेमि—जे य अतीता, जे य पडुप्पण्णा, जे य अणागया अरहंता भगवंतो सव्वे ते एताणि चेव चत्तारि भासज्जाताइं भासिंसु वा, भासिंति वा, भासिस्संति वा, पण्णवेंति वा, पण्णविस्संति वा।

सव्वाइं च णं एयाणि अचित्ताणि वण्णमंताणि, गंधमंताणि, रसमंताणि, फासमंताणि चयोवचइयाइं विप्परिणामधम्माइं भवंति ति अक्खाताइं।

—आ० सु० २, अ० ४, उ० १, सु० ५२२

त्रैकालिक तीर्थंकरों ने चार प्रकार की भाषा प्ररूपी है—

७८७. साधु को भाषा के चार प्रकार जान लेने चाहिए। वे इस प्रकार हैं—१. सत्या, २. मृषा, ३. सत्यामृषा और जो न सत्या है, न असत्या है और न ही सत्यामृषा है वह, ४. असत्यामृषा (व्यवहार भाषा) नाम का चौथा भाषाजात है।

जो मैं यह कहता हूँ उसे भूतकाल में जितने भी तीर्थंकर भगवान् हो चुके हैं, वर्तमान में भी तीर्थंकर भगवान् हैं और भविष्य में जो भी तीर्थंकर भगवान् होंगे, उन सबने इन्हीं चार प्रकार की भाषाओं का प्रतिपादन किया है, प्रतिपादन करते हैं और प्रतिपादन करेंगे अथवा उन्होंने प्ररूपण किया है, प्ररूपण करते हैं और प्ररूपण करेंगे।

तथा यह भी उन्होंने प्रतिपादन किया है कि ये सब भाषा द्रव्य (भाषा के पुद्गल) अचित्त हैं, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले हैं तथा चय-उपचय (वृद्धि ह्रास अथवा मिलने-बिछुड़ने) वाले एवं विविध प्रकार के परिणमन धर्म वाले हैं।

विवेगेण भासमाणो आराहगो, अविवेगेण भासमाणो विराहगो—

७८८. स वक्कसुद्धिं समुपेहिया मुणी,
गिरं च दुट्ठं परिवज्जए सया।
मियं अदुट्ठं अणुवीई भासए,
सयाणमज्झे लहई पसंसणं॥

भासाए दोसे य गुणे य जाणिया,
तीसे य दुट्ठे परिवज्जए सया।
छसु संजए सामणिए सया जए,
वएज्ज बुद्धे हियमाणुलोमियं॥

परिक्खभासी सुसमाहिइंदिए,
चउक्कसायावगए अणिस्सिए।
स निद्धुणे धुण्णमलं पुरेकडं,
आराहए लोगमिणं तहा परं॥

—दस. अ. ७, गा. ५५-५७

विवेक पूर्वक बोलने वाला आराधक, अविवेक से बोलने वाला विराधक—

७८८. वह मुनि वाक्य-शुद्धि को भली-भांति समझ कर दोषयुक्त वाणी का प्रयोग न करे। सोच विचार कर मित और दोषरहित वाणी बोलने वाला साधु सत्पुरुषों में प्रशंसा को प्राप्त होता है।

भाषा के दोषों और गुणों को जानकर दोषपूर्ण भाषा को सदा वर्जने वाला, छह जीवनिकाय के प्रति संयत, श्रामण्य में सदा सावधान रहने वाला प्रबुद्ध भिक्षु हित और मौलिक वचन बोले।

गुण-दोष को परख कर बोलने वाला, सुसमाहित-इन्द्रिय वाला, चार कषायों से रहित, अनिश्रित (तटस्थ) भिक्षु पूर्वकृत पाप-मल को नष्ट कर वर्तमान तथा भावी लोक की आराधना करता है।

---

१ (क) चत्तारि भासजाया पण्णत्ता, तं जहा— सच्चमेगं भासज्जायं बितियं मोसं ततियं सच्चमोसं, चउत्थं असच्चमोसं।
— ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २३७

(ख) पण्ण. प. ११, सु. ८३० । (ग) पण्ण. प. ११, सु. ८६८ ।

प०—इच्चेयाइं भंते ! चत्तारि भासाज्जायाइं भासमाणे किं आराहए विराहए ?

उ०—गोयमा ! इच्चेयाइं चत्तारि भासज्जायाइं आउत्तं भासमाणे आराहए, णो विराहए।

तेणं परं असंजयाऽविरयाऽपडिहयाऽपच्चक्खाय पावकम्मे सच्चं वा भासं भासंतो मोसं वा सच्चामोसं वा असच्चामोसं वा भासं भासमाणे णो आराहए, विराहए। —पण्ण. प. ११, सु. ८६६

प्र०—भगवन् ! इन चारों भाषा-प्रकारों को बोलता हुआ (जीव) आराधक होता है अथवा विराधक ?

उ०—गौतम ! इन चारों प्रकार की भाषाओं को उपयोग-पूर्वक बोलने वाला आराधक होता है, विराधक नहीं।

उससे पर (अर्थात् बिना उपयोग के बोलने वाला) जो असंयत, अविरत, पापकर्म का प्रतिघात और प्रत्याख्यान न करने वाला सत्यभाषा, मृषाभाषा, सत्यामृषा और असत्यामृषा भाषा बोलता हुआ (व्यक्ति) आराधक नहीं है, विराधक है।

भासाए भेयप्पभेया—

७८९. प०—कतिविहा णं भंते ! भासा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! दुविहा भासा पण्णत्ता।

तं जहा—पज्जत्तिया य, अपज्जत्तिया य।

प०—पज्जत्तिया णं भंते ! भासा कतिविहा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता।

तं जहा—सच्चा य, मोसा य।

प०—सच्चा णं भंते ! भासा पज्जत्तिया कतिविहा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता। तं जहा—

१. जणवयसच्चा, २. सम्मतसच्चा, ३. ठवणासच्चा, ४. णामसच्चा, ५. रूवसच्चा, ६. पडुच्चसच्चा, ७. ववहारसच्चा, ८. भावसच्चा, ९. जोगसच्चा, १०. ओवम्मसच्चा।[1]

प०—मोसा णं भंते ! भासा पज्जत्तिया कतिविहा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता। तं जहा—

१. कोहणिस्सिया, २. माणणिस्सिया, ३. मायाणिस्सिया, ४. लोभणिस्सिया, ५. पेज्जणिस्सिया, ६. दोसणिस्सिया, ७. हासणिस्सिया, ८. भयणिस्सिया ९. अक्खाइयाणिस्सिया, १०. उवघायणिस्सिया।[2]

प०—अपज्जत्तिया णं भंते ! भासा कतिविहा पण्णत्ता ?

भाषा के भेद-प्रभेद—

७८९. प्र०—भगवन् ! भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

उ०—गौतम ! भाषा दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—पर्याप्तिका और अपर्याप्तिका।

प्र०—भगवन् ! पर्याप्तिका भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

उ०—गौतम ! पर्याप्तिका भाषा दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—

सत्या और मृषा।

प्र०—भगवन् ! सत्या-पर्याप्तिका भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

उ०—गौतम ! वह दस प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—

१. जनपदसत्या, २. सम्मतसत्या, ३. स्थापनासत्या, ४. नामसत्या, ५. रूपसत्या ६. प्रतीत्यसत्या, ७. व्यवहारसत्या, ८. भावसत्या, ९. योगसत्या और १०. औपम्यसत्या।

प्र०—भगवन् ! मृषा-पर्याप्तिका भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

उ०—गौतम ! (वह) दस प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—

१. क्रोधनिःसृता, २. माननिःसृता, ३. मायानिःसृता, ४. लोभनिःसृता, ५. प्रेयनिःसृता (रागनिःसृता), ६. द्वेष निःसृता, ७. हास्य निःसृता, ८. भय निःसृता, ९. आख्यायिका निःसृता और १०. उपघात निःसृता।

प्र०—भगवन् ! अपर्याप्तिका भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

---

१ ठाणं अ. १०, सु. ७४१।

२ ठाणं अ. १०, सु. ७४१।

उ०—गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता। तं जहा—

सच्चामोसा य, असच्चामोसा य।

प०—सच्चामोसा णं भंते ! भासा अपज्जत्तिया कतिविहा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता। तं जहा—

१. उप्पण्णमिस्सिया, २. विगयमिस्सिया, ३. उप्पण्ण-विगयमिस्सिया, ४. जीवमिस्सिया, ५. अजीवमिस्सिया ६. जीवाजीवमिस्सिया, ७. अणंतमिस्सिया, ८. परित्त-मिस्सिया, ९. अद्धामिस्सिया, १०. अद्धद्धामिस्सिया।[1]

प०—असच्चामोसा णं भंते ! भासा अपज्जत्तिया कतिविहा पण्णत्ता ?

उ०—गोयमा ! दुवालसविहा पण्णत्ता, तं जहा—

१. आमंतणि, २. याऽऽणमणि, ३. जायणि, ४. तह पुच्छणि, ५. य पण्णवणी। ६. पच्चक्खाणी भासा, ७. भासा इच्छाणुलोमा य, ८. अणभिग्गहिया भासा, ९. भासा य अभिग्गहम्मि बोद्धव्वा। १०. संसय-करणी भासा, ११. वोयडा, १२. अव्वोयडा चेव ॥

—पण्ण. प. ११, सु. ८६०-८६६

उ०—गौतम ! (वह) दो प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—

सत्यामृषा और असत्यामृषा।

प्र०—भगवन् ! सत्यामृषा-अपर्याप्तिका भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

उ०—गौतम ! वह दस प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—

१. उत्पन्नमिश्रिता, २. विगतमिश्रिता, ३. उत्पन्न-विगत-मिश्रिता, ४. जीवमिश्रिता, ५. अजीवमिश्रिता, ६. जीवाजीव-मिश्रिता, ७. अनन्तमिश्रिता, ८. परित्त (प्रत्येक) मिश्रिता, ९. अद्धामिश्रिता और १०. अद्धद्धामिश्रिता।

प्र०—भगवन् ! असत्यामृषा-अपर्याप्तिका भाषा कितने प्रकार की कही गई है ?

उ०—गौतम ! (वह) बारह प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है—

१. आमंत्रणी भाषा, २. आज्ञापनी भाषा, ३. याचनी भाषा, ४. पृच्छनी भाषा, ५. प्रज्ञापनी भाषा, ६. प्रत्याख्यानी भाषा, ७. इच्छानुलोमा भाषा, ८. अनभिगृहीता भाषा, ९. अभिगृहीता भाषा, १०. संशयकरणी भाषा, ११ व्याकृता भाषा और १२. अव्याकृता भाषा।

विधिकल्प—२

एगवयणविवक्खा—

७९०. प०—अह भंते ! मणुस्से, महिसे, आसे, हत्थी, सीहे, वग्घे, वगे, दीविए, अच्छे, तरच्छे, परस्सरे, रासभे, सियाले, विराले, सुणए, कोलसुणए, कोक्कंतिए, ससए, चित्तए, चिल्ललए, जे यावऽण्णे तहप्पगारा सव्वा सा एगवयू ?

उ०—हंता गोयमा ! मणुस्से-जाव-चिल्ललगा जे यावऽण्णे तहप्पगारा सव्वा सा एगवयू।

—पण्ण. प. ११, सु. ८४९

एकवचन विवक्षा—

७९०. प्र०—भगवन् ! मनुष्य, महिष (भैंसा), अश्व, हाथी, सिंह, व्याघ्र, वृक (भेड़िया), द्वीपिक (दीपड़ा), ऋक्ष (रीछ= भालू), तरक्ष, पाराशर (गैंडा), रासभ (गधा), सियार, विडाल (बिलाव), शुनक (कुत्ता=श्वान), कोलशुनक (शिकारी कुत्ता) कोकन्तिक (लोमड़ी), शशक (खरगोश), चीता और चिल्ललक (वन्य हिंस्र पशु) ये और इसी प्रकार के जो (जितने) भी अन्य जीव हैं, क्या वे सब एकवचन हैं ?

उ०—हाँ, गौतम ! मनुष्य—यावत्—चिल्ललक तथा ये और अन्य जितने भी इसी प्रकार के प्राणी हैं, वे सब एकवचन हैं।

१ ठाणं अ. १० सु. ७४१।

बहुवयणविवक्खा—

७६१. प०—अह भंते ! मणुस्सा-जाव-चिल्ललगा जे यावऽण्णे तहप्पगारा सव्वा सा बहुवयू ?

उ०—हंता गोयमा ! मणुस्सा-जाव-चिल्ललगा सव्वा सा बहुवयू । —पण्ण. प. ११, सु. ८५०

इत्थिलिंगसद्दा—

७६२. प०—अह भंते ! मणुस्सी, महिसी, वलवा, हत्थिणिया, सीही, वग्घी, वगी, दीविया, अच्छी, तरच्छी, परस्सरी, रासभी, सियाली, विराली, सुणिया, कोलसुणिया, कोक्कंतिया, ससिया, चित्तिया, चिल्लिलिया, जा यावऽण्णा तहप्पगारा सव्वा सा इत्थिवयू ?

उ०—हंता गोयमा ! मणुस्सी-जाव-चिल्ललिया जा यावऽण्णा तहप्पगारा सव्वा सा इत्थिवयू । —पण्ण. प. ११, सु. ८५१

पुल्लिंगसद्दा—

७६३. प०—अह भंते ! मणुस्से-जाव-चिल्ललए जे यावऽन्ने तहप्पगारा सव्वा सा पुमवयू ?

उ०—हंता गोयमा ! मणुस्से-जाव-चिल्ललए जे यावऽण्णे तहप्पगारा सव्वा सा पुमवयू । —पण्ण. प. ११, सु. ८५२

णपुंसगलिंगसद्दा—

७६४. प०—अह भंते ! कंसं कंसोयं परिमंडलं सेलं थूभं जालं थालं तारं रूवं अच्छि पव्वं कुंडं पउमं दुद्धं दहियं णवणीयं आसणं सयणं भवणं विमाणं छत्तं चामरं भिंगारं अंगणं निरंगणं आभरणं रयणं जे यावऽण्णे तहप्पगारा सव्वं तं णपुंसगवयू ?

उ०—हंता गोयमा ! कंसं-जाव-रयणं जे यावऽण्णे तहप्पगारा सव्वं तं णपुंसगवयू । —पण्ण० प० ११, सु० ८५३

आराहणी भासा—

७६५. प०—अह भंते ! पुढवीति इत्थीवयू आउ त्ति पुमवयू धण्णे

बहुवचन विवक्षा—

७६१. भगवन् ! मनुष्यों (बहुत से मनुष्य) से (लेकर)—**यावत्**—बहुत चिल्ललक तथा ये और इसी प्रकार के जो अन्य प्राणी हैं वे सब क्या बहुवचन हैं ?

उ०—हाँ गौतम ! मनुष्यों (बहुत से मनुष्य) से लेकर—**यावत्**—बहुत चिल्ललक तक तथा अन्य इसी प्रकार के प्राणी ये सब बहुवचन हैं।

स्त्रीलिंग शब्द—

७६२. प्र०—भगवन् ! मानुषी (स्त्री), महिषी (भैंस), बडवा (घोड़ी), हस्तिनी (हथिनी), सिंही (सिंहनी), व्याघ्री, वृकी (भेड़िनी), द्वीपिनी, रीछनी, तरक्षी, पराशरा (गैंडी), रासभी (गधी), शृगाली (सियारनी), बिल्ली, कुत्ती, शिकारी कुत्ती, कोकन्तिका (लोमड़ी), शशकी (खरगोशनी), चित्रकी (चित्ती), चिल्ललिका ये और अन्य इसी प्रकार के (स्त्रीजाति विशिष्ट) जो भी (जीव) हैं, क्या वे सब स्त्रीवचन हैं ?

उ०—हाँ, गौतम ! मानुषी से (लेकर)—**यावत्**—चिल्ललिका तक तथा ये और अन्य इसी प्रकार के जो भी (जीव) हैं, वे सब स्त्रीवचन हैं।

पुल्लिंग शब्द—

७६३. प्र०—भगवन् ! मनुष्य से लेकर—**यावत्**—चिल्ललक तक तथा जो अन्य भी इसी प्रकार के प्राणी नर जीव हैं, क्या वे सब पुरुषवचन (पुल्लिंग) हैं ?

उ०—हाँ गौतम ! मनुष्य से लेकर—**यावत्**—चिल्ललक तक तथा जो अन्य भी इसी प्रकार के प्राणी नर-जीव हैं, वे सब पुरुषवचन (पुल्लिंग) हैं।

नपुंसकलिंग शब्द—

७६४ प्र०—भगवन् ! कांस्य (कांसा), कंसोल (कसोल), परिमण्डल, शैल, स्तूप, जाल, स्थाल, तार, रूप, नेत्र, पर्व (पोर), कुण्ड, पद्म, दूध, दही, मक्खन, आसन, शयन, भवन, विमान, छत्र, चामर, भृंगार, आंगन, निरंगन (निरंजन), आभूषण और रत्न ये और इसी प्रकार के अन्य जितने भी शब्द हैं, वे सब क्या (प्राकृत भाषानुसार) नपुंसक वचन (नपुंसक लिंग) हैं ?

उ०—हाँ, गौतम ! कांस्य—**यावत्**—रत्न तथा इसी प्रकार के अन्य जितने भी शब्द हैं, वे सब नपुंसक वचन हैं।

आराधनी भाषा—

७६५. प्र०—भगवन् ! पृथ्वी यह शब्द स्त्रीवचन है, पानी यह

त्ति णपुंसगवयू, पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

उ०—हंता गोयमा ! पुढवि त्ति इत्थिवयू, आउ त्ति पुमवयू, धण्णे त्ति णपुंसगवयू, पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा।

प०—अह भंते ! पुढवीति इत्थिआणमणी, आउ त्ति पुमआणमणी, धण्णे त्ति नपुंसगआणमणी पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

उ०—हंता गोयमा ! पुढवी त्ति इत्थिआणमणी, आउ त्ति पुमआणमणी, धण्णे त्ति णपुंसगआणमणी, पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा।

प०—अह भंते ! पुढवीति इत्थिपण्णवणी, आउ त्ति पुमपण्णवणी, धण्णे त्ति णपुंसगपण्णवणी आराहणी णं एसा भासा ण एसा भासा मोसा ?

उ०—हंता गोयमा ! पुढवीति इत्थिपण्णवणी, आउ त्ति पुमपण्णवणी, धण्णे त्ति णपुंसगपण्णवणी आराहणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा।

प०—इच्चेवं भंते ! इत्थिवयणं वा पुमवयणं वा, णपुंसगवयणं वा वयमाणे पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

उ०—हंता गोयमा ! इत्थिवयणं वा, पुमवयणं वा, णपुंसगवयणं वा वयमाणे पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा। —पण्ण० प० ११, सु० ८५४-८५७

शब्द पुरुष वचन है और धान्य, यह शब्द नपुंसक वचन है, क्या यह भाषा प्रज्ञापनी है ? क्या यह भाषा मृषा नहीं है ?

उ०— हाँ, गौतम ! पृथ्वी, यह शब्द स्त्रीवचन है, पानी, यह (प्राकृत में) पुरुषवचन है और धान्य, यह शब्द नपुंसकवचन है। यह भाषा प्रज्ञापनी है, यह भाषा मृषा नहीं है।

प्र०— भगवन् ! पृथ्वी, यह भाषा स्त्री-आज्ञापनी है, अप्, यह भाषा पुरुष-आज्ञापनी है और धान्य, यह भाषा नपुंसक-आज्ञापनी है, क्या यह भाषा प्रज्ञापनी है ? क्या यह भाषा मृषा नहीं है ?

उ०—हाँ, गौतम ! पृथ्वी, यह स्त्री-आज्ञापनी भाषा है, अप्, यह पुरुष-आज्ञापनी भाषा है और धान्य, यह नपुंसक-आज्ञापनी भाषा है, यह भाषा प्रज्ञापनी है, यह भाषा मृषा नहीं है।

प्र०—भगवन् ! पृथ्वी, यह स्त्री-प्रज्ञापनी भाषा है, अप्, यह पुरुष-प्रज्ञापनी भाषा है और धान्य, यह नपुंसक-प्रज्ञापनी भाषा है, क्या यह भाषा आराधनी है ? क्या यह भाषा मृषा नहीं है ?

उ०—हाँ, गौतम ! पृथ्वी, यह स्त्री-प्रज्ञापनी (भाषा) है, अप्, यह पुरुष-प्रज्ञापनी (भाषा) है और धान्य, यह नपुंसक-प्रज्ञापनी भाषा है, यह भाषा आराधनी है। यह भाषा मृषा नहीं है।

प्र०—भगवन् ! इसी प्रकार स्त्रीवचन या पुरुषवचन अथवा नपुंसकवचन बोलते हुए (व्यक्ति की) क्या यह भाषा प्रज्ञापनी है ? क्या यह भाषा मृषा नहीं है ?

उ०—हाँ, गौतम ! स्त्रीवचन, पुरुषवचन अथवा नपुंसकवचन बोलते हुए (व्यक्ति की) यह भाषा प्रज्ञापनी है, यह भाषा मृषा नहीं है।

ओहारिणी भासा—

७६६. प०—से णूणं भंते ! मण्णामीति ओहारिणी भासा ?

चिंतेमीति ओहारिणी भासा ?

अह मण्णामीति ओहारिणी भासा ?

अह चिंतेमीति ओहारिणी भासा ?

तह मण्णामीति ओहारिणी भासा ?

तह चिंतेमीति ओहारिणी भासा ?

अवधारिणी भाषा—

७६६. प्र०—भगवन् ! क्या मैं ऐसा मानूं कि भाषा अवधारिणी (पदार्थ का अवधारण-अवबोध कराने वाली) है ?

क्या मैं (युक्ति से) ऐसा चिन्तन करूँ कि भाषा अवधारिणी है ?

(भगवन्) क्या मैं ऐसा मानू कि भाषा अवधारिणी है ?

क्या मैं (युक्ति द्वारा) ऐसा चिन्तन करूँ कि भाषा अवधारिणी है ?

(भगवन् पहले मैं जिस प्रकार मानता था) उसी प्रकार (अब भी) ऐसा मानूं कि भाषा अवधारिणी है ?

तथा उसी प्रकार मैं (युक्ति से) ऐसा निश्चय करूं कि भाषा अवधारिणी है ?

उ०—हंता गोयमा ! मण्णामीति ओहारिणी भासा,

चिंतेमीति ओहारिणी भासा,

अह मण्णामीति ओहारिणी भासा,
अह चिंतेमीति ओहारिणी भासा,

तह मण्णामीति ओहारिणी भासा,
तह चिंतेमीति ओहारिणी भासा।

उ०—हाँ, गौतम ! (तुम्हारा मनन-चिन्तन सत्य है।) तुम मानते हो कि भाषा अवधारिणी है।

तुम (युक्ति से) चिन्तन करते (सोचते) हो कि भाषा अवधारिणी है।

इसके पश्चात् भी तुम मानो कि भाषा अवधारिणी है,
अब तुम (निःसन्देह होकर) चिन्तन करो कि भाषा अवधारिणी है,

तुम्हारा जानना और सोचना यथार्थ और निर्दोष है।
(अतएव) तुम उसी प्रकार (पूर्वमननवत्) मानो कि भाषा अवधारिणी है तथा उसी प्रकार (पूर्वचिन्तनवत्) सोचो कि भाषा अवधारिणी है।

प०—ओहारिणी णं भंते ! भासा किं सच्चा, मोसा, सच्चामोसा, असच्चामोसा ?

प्र०—भगवन् ! अवधारिणी भाषा क्या सत्य है, मृषा (असत्य) है, सत्यामृषा (मिश्र) है, अथवा असत्यामृषा (न सत्य, न असत्य) है ?

उ०—गोयमा ! सिय सच्चा, सिय मोसा, सिय सच्चामोसा, सिय असच्चामोसा।

उ०—गौतम ! वह (अवधारिणी भाषा) कदाचित् सत्य होती है, कदाचित् मृषा होती है, कदाचित् सत्यामृषा होती है और कदाचित् असत्यामृषा (भी) होती है।

प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति—"ओहारिणी णं भासा सिय सच्चा, सिय मोसा, सिय सच्चामोसा, सिय असच्चामोसा ?"

प्र०—भगवन् ! किस हेतु से ऐसा कहते हैं कि अवधारिणी भाषा कदाचित् सत्य, कदाचित् मृषा, कदाचित् सत्यामृषा और कदाचित् असत्यामृषा (भी) होती है ?

उ०—गोयमा ! (१) आराहणी सच्चा, (२) विराहणी मोसा, (३) आराहणविराहणी सच्चामोसा, (४) जा णेव आराहणी णेव विराहणी णेव आराहणविराहणी असच्चामोसा णाम सा चउत्थी भासा।

उ०—गौतम ! जो १. आराधनी भाषा है, वह सत्य है, जो २. विराधनी भाषा है, वह मृषा है, जो ३. आराधनी-विराधनी (उभयरूप भाषा है, वह) सत्यामृषा है और जो ४. न तो आराधनी भाषा है, न विराधनी है और न ही आराधनी-विराधनी है, वह चौथी असत्यामृषा नाम की भाषा है।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—"ओहारिणी णं भासा सिय सच्चा, सिय मोसा, सिय सच्चामोसा, सिय असच्चामोसा।"

—पण्ण० प० ११, सु० ८३०-८३१

हे गौतम ! इस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि अवधारिणी भाषा कदाचित् सत्य, कदाचित् मृषा, कदाचित् सत्यामृषा और कदाचित् असत्यामृषा होती है।

पण्णवणी भासा—

प्रज्ञापनी भाषा—

७९७. प०—अह भंते ! गाओ मिया पसू पक्खी पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

७९७. प्र०—भगवन् ! अब यह बताइए कि गायें मृग पशु और पक्षी क्या यह भाषा प्रज्ञापनी भाषा है ? यह भाषा मृषा तो नहीं है ?

उ०—हंता गोयमा ! गाओ मिया पसू पक्खी पण्णवणी णं एसा भासा ण एसा भासा मोसा।

उ०—हाँ, गौतम ! गायें मृग पशु और पक्षी यह इस प्रकार की भाषा प्रज्ञापनी है। यह भाषा मृषा नहीं है।

प०—अह भंते ! जा य इत्थिवयू, जा य पुमवयू, जा य णपुंसगवयू पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

प्र०—भगवन् ! इसके पश्चात् यह प्रश्न है कि यह जो स्त्रीवचन है और जो पुरुषवचन है अथवा जो नपुंसकवचन है, क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है ? यह भाषा मृषा तो नहीं है ?

उ०—हंता गोयमा ! जा य इत्थिवयू, जा य पुमवयू, जा य णपुंसगवयू पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा।

उ०—हाँ, गौतम ! यह जो स्त्रीवचन है और जो पुरुषवचन है अथवा जो नपुंसकवचन है, यह भाषा प्रज्ञापनी है और यह भाषा मृषा नहीं है।

प०—अह भंते ! जा य इत्थिआणमणी, जा य पुमआणमणी जा य णपुंसगआणमणी पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

प्र०—भगवन् ! यह जो स्त्री-आज्ञापनी है और जो पुरुष-आज्ञापनी है अथवा जो नपुंसक-आज्ञापनी है, क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है ? यह भाषा मृषा नहीं है ?

उ०—हंता गोयमा ! जा य इत्थिआणमणी, जा य पुमआणमणी, जा य णपुंसगआणमणी, पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा।

उ०—हां, गौतम ! यह जो स्त्री-आज्ञापनी है और जो पुरुष-आज्ञापनी है अथवा जो नपुंसक-आज्ञापनी है, यह भाषा प्रज्ञापनी है। यह भाषा मृषा नहीं है।

प०—अह भंते ! जा य इत्थीपण्णवणी, जा य पुमपण्णवणी, जा य णपुंसगपण्णवणी, पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

प्र०—भगवन् ! यह जो स्त्री-प्रज्ञापनी है और जो पुरुष-प्रज्ञापनी है अथवा जो नपुंसक-प्रज्ञापनी है, क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है ? यह भाषा मृषा नहीं है ?

उ०—हंता गोयमा ! जा य इत्थीपण्णवणी, जा य पुमपण्णवणी, जा य पण्णवणी णपुंसगपण्णवणी, णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा।

उ०—हाँ, गौतम ! यह जो स्त्री-प्रज्ञापनी है और जो पुरुष-प्रज्ञापनी है अथवा जो नपुंसक-प्रज्ञापनी है, यह प्रज्ञापनी भाषा है और यह भाषा मृषा नहीं है।

प०—अह भंते ! जा जातीति इत्थिवयू जाईति पुमवयू जातीति णपुंसगवयू पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

प्र०—भगवन् ! जो जाति में स्त्रीवचन है, जाति में पुरुषवचन है और जाति में नपुंसकवचन है क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है ? यह भाषा मृषा नहीं है ?

उ०—हंता गोयमा ! जातीति इत्थिवयू, जातीति पुमवयू, जातीति णपुंसगवयू, पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा।

उ०—हाँ, गौतम ! जो जाति में स्त्रीवचन, जाति में पुरुषवचन है अथवा जाति में नपुंसकवचन है, यह प्रज्ञापनी भाषा है और यह भाषा मृषा नहीं है।

प०—अह भंते ! जाईति इत्थिआणमणी, जाईति पुमआणमणी, जाईति णपुंसगआणमणी, पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

प्र०—भगवन् ! अब प्रश्न यह है कि जाति में जो स्त्री-आज्ञापनी है, जाति में जो पुरुष-आज्ञापनी है अथवा जाति में नपुंसक-आज्ञापनी है, क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है ? यह भाषा मृषा नहीं है ?

उ०—हंता गोयमा ! जातीति इत्थीआणमणी, जातीति पुमआणमणी, जातीति णपुंसगाणमणी, पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा।

उ०—हाँ गौतम ! जाति में जो स्त्री-आज्ञापनी है, जाति में जो पुरुष-आज्ञापनी है या जाति में जो नपुंसक-आज्ञापनी है, यह प्रज्ञापनी भाषा है और यह भाषा मृषा (असत्य) नहीं है।

प०—अह भंते ! जातीति इत्थिपण्णवणी, जातीति पुमपण्णवणी, जातीति णपुंसगपण्णवणी, पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

प्र०—भगवन् ! इसके अनन्तर प्रश्न है—जो जाति में स्त्री-प्रज्ञापनी है, जाति में पुरुष-प्रज्ञापनी है अथवा जाति में नपुंसक-प्रज्ञापनी है, क्या यह भाषा प्रज्ञापनी है ? यह भाषा मृषा तो नहीं है ?

उ०—हंता गोयमा ! जातीति इत्थिपण्णवणी, जातीति पुमपण्णवणी, जातीति णपुंसगपण्णवणी, पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा।

—पण्ण० प० ११, सु० ८३२ से ८३८

उ०—हाँ गौतम ! जो जाति में स्त्री-प्रज्ञापनी है, जाति में पुरुष-प्रज्ञापनी है अथवा जाति में नपुंसक-प्रज्ञापनी है, यह प्रज्ञापनी भाषा है और यह भाषा मृषा नहीं है।

मंदकुमाराईणं भासाबोहो—

७६८. प०—अह भंते ! मंदकुमारए वा मंदकुमारिया वा जाणइ बुयमाणे—"अहमेसे बुयामि, अहमेसे बुयामीति ?"

उ०—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ सण्णिणो ।

प०—अह भंते ! मंदकुमारए वा मंदकुमारिया वा जाणति आहारमाहारेमाणे—"अहमेसे आहारमाहारेमि, अहमेसे आहारमाहारेमि त्ति ?"

उ०—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ सण्णिणो ।

प० अह भंते ! मंदकुमारए वा मंदकुमारिया वा जाणति—"अयं मे अम्मापियरो अयं मे अम्मापियरो ?"

उ०—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ सण्णिणो ।

प०—अह भंते ! मंदकुमारए वा मंदकुमारिया वा जाणति—"अयं मे अतिराउले अयं मे अतिराउले त्ति ?"

उ०—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ सण्णिणो ।

प०—अह भंते ! मंदकुमारए वा मंदकुमारिया वा जाणति—"अयं मे भट्टिदारए अयं मे भट्टिदारए त्ति ?"

उ०—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ सण्णिणो ।

प०—अह भंते ! उट्टे, गोणे, खरे, घोडए, अए, एलए जाणति बुयमाणे—"अहमेसे बुयामि अहमेसे बुयामि त्ति ?"

उ०—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ सण्णिणो ।

प०—अह भंते ! उट्टे-जाव-एलए जाणति आहारेमाणे—"अहमेसे आहारेमि अहमेसे आहारेमि त्ति ?"

उ०—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ सण्णिणो ।

प०—अह भंते ! उट्टे-जाव-एलए जाणति "अयं मे अम्मापियरो अयं मे अम्मापियरो" त्ति ?

उ०—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ सण्णिणो ।

प०—अह भंते ! उट्टे-जाव-एलए जाणति "अयं मे अतिराउले अयं मे अतिराउले त्ति ?"

उ०—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ सण्णिणो ।

मन्दकुमारादि की भाषा आदि का बोध—

७६८. भगवन् ! यह प्रश्न है कि क्या मन्दकुमार (अबोध, शिशु) अथवा मन्दकुमारिका (अबोध बालिका) बोलती हुई ऐसा जानती है कि मैं बोल रही हूँ ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, सिवाय संज्ञी (अवधिज्ञानी, जातिस्मरण वाले) के ।

प्र० भगवन् ! क्या मन्दकुमार अथवा मन्दकुमारिका आहार करती हुई जानती है कि मैं इस आहार को करती हूँ ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, सिवाय संज्ञी के ।

प्र०—भगवन् ! क्या मन्दकुमार अथवा मन्दकुमारिका यह जानती है कि ये मेरे माता-पिता हैं ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, सिवाय संज्ञी के ।

प्र०—भगवन् ! मन्दकुमार अथवा मन्दकुमारिका क्या यह जानती है कि यह मेरे स्वामी (अधिराज) का घर (कुल) है ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ (शक्य) नहीं है, सिवाय संज्ञी के ।

प्र०—भगवन् ! क्या मन्दकुमार या मन्दकुमारिका यह जानती है कि यह मेरे भर्ता का पुत्र है ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, संज्ञी को छोड़कर ।

प्र०—भगवन् ! इसके पश्चात् प्रश्न है कि ऊंट, बैल, गधा, घोड़ा, बकरा और एलक (भेड़) (इनमें से प्रत्येक) क्या बोलता हुआ यह जानता है कि मैं यह बोल रहा हूं ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, सिवाय संज्ञी के ।

प्र०—भगवन् ! ऊँट—यावत्—भेड़ तक (इनमें से प्रत्येक) आहार करता हुआ यह जानता है कि मैं यह आहार कर रहा हूँ ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, सिवाय संज्ञी के ।

प्र०—भगवन् ! ऊँट—यावत्—भेड़ क्या यह जानता है कि ये मेरे माता-पिता हैं ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । सिवाय संज्ञी के ।

प्र०—भगवन् ! ऊँट—यावत्—भेड़ क्या यह जानता है कि यह मेरे स्वामी का घर है ?

उ०—गौतम ! संज्ञी को छोड़कर, यह अर्थ समर्थ (शक्य) नहीं है ।

प०—अह भंते ! उट्टे-जाव-एलए जाणति "अयं मे भट्टिदारए अयं मे भट्टिदारए" त्ति ?

उ०—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, णऽण्णत्थ सण्णिणो ।

—पन्न० प० ११, सु० ८३९ से ८४८

प्र०—भगवन् ! ऊँट—यावत्—भेड़ क्या यह जानता है कि यह मेरे स्वामी का पुत्र है ?

उ०—गौतम ! यह अर्थ (बात) समर्थ नहीं है, सिवाय संज्ञी के ।

सोडस वयण विवेगो—

७९९. अणुवीयि णिट्ठाभासी समिताए संजते भासं भासेज्जा, तं जहा—

(१) एगवयणं, (२) दुवयणं, (३) बहुवयणं, (४) इत्थीवयणं, (५) पुरिसवयणं, (६) णपुंसगवयणं, (७) अज्झत्थवयणं, (८) उवणीयवयणं, (९) अवणीयवयणं, (१०) उवणीतअवणीतवयणं, (११) अवणीतउवणीतवयणं, (१२) तीयवयणं, (१३) पडुप्पण्णवयणं, (१४) अणागयवयणं, (१५) पच्चक्खवयणं, (१६) परोक्खवयणं ।[1]

से एगवयणं वदिस्सामिति एगवयणं वदेज्जा-जाव-परोक्खवयणं वदिस्सामिति परोक्खवयणं वदेज्जा । इत्थी वेस, पुमं वेस, णपुंसगं वेस[2] एयं वा चेयं, अण्णं वा चेयं अणुवीयि णिट्ठाभासी समियाए संजते भासं भासेज्जा ।

—आ० सु० २, अ० ४, उ० १, सु० ५२१

सोलह प्रकार के वचनों का विवेक—

७९९. संयमी साधु या साध्वी भाषा समिति से युक्त होकर विचारपूर्वक एवं एकाग्रतापूर्वक भाषा का प्रयोग करे ।

जैसे कि (ये १६ प्रकार के वचन हैं)—

(१) एकवचन, (२) द्विवचन, (३) बहुवचन, (४) स्त्रीलिंग कथन, (५) पुल्लिंग-कथन, (६) नपुंसकलिंग-कथन, (७) अध्यात्म-कथन, (८) उपनीत-प्रशंसात्मक-कथन, (९) अपनीत-निन्दात्मक-कथन, (१०) उपनीत-अपनीत-कथन, (११) अपनीतोपनीत-कथन, (१२) अतीत-वचन, (१३) वर्तमान-वचन, (१४) अनागत (भविष्यत्) वचन, (१५) प्रत्यक्षवचन और (१६) परोक्ष वचन ।

यदि उसे "एकवचन" बोलना हो तो वह एकवचन ही बोले—यावत्—परोक्षवचन पर्यन्त जिस किसी वचन को बोलना हो, तो उसी वचन का प्रयोग करे । जैसे—यह स्त्री है, यह पुरुष है, यह नपुंसक है, यह वही है या यह कोई अन्य है, इस प्रकार जब निश्चय हो जाए, तभी भाषा-समिति से युक्त होकर विचारपूर्वक एवं एकाग्रतापूर्वक संयत भाषा में बोले ।

असावज्जा असच्चामोसा भासा भासियव्वा—

८००. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा जा य भासा सच्चा सुहुमा, जा य भासा असच्चामोसा तहप्पगारं भासं असावज्जं अकिरियं अकक्कसं अकडुयं अनिट्ठुरं अफरुसं-अणण्हयकरिं अछेयकरिं अभेयणकरिं अपरितावणकरिं अणुद्दवणकरिं अभूतोवघातियं अभिकंख भासेज्जा ।[3]

—आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५५१

असावद्य असत्यामृषा भाषा बोलना चाहिए—

८००. जो भाषा सूक्ष्म सत्य सिद्ध हो, तथा जो असत्यामृषा भाषा है—साथ ही ऐसी दोनों भाषाएँ असावद्य अक्रिय, अकर्कश (मधुर), अकटुक (प्रिय), अनिष्ठुर, अफरुस (मृदु), संवरकारिणी, प्रीतिकारिणी, अभेदकारिणी, अपरितापकारिणी, अनुपद्रवकारिणी, प्राणियों का घात नहीं करने वाली हो तो साधु साध्वी पहले मन से पर्यालोचन करके उक्त दोनों भाषाओं का प्रयोग करें ।

---

१ प०—कतिविहे णं भंते ! वयणे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! सोलहविहे वयणे पण्णत्ते । तं जहा—१. एगवयणे, २. दुयवयणे, ३. बहुवयणे, ४. इत्थिवयणे, ५. पुमवयणे, ६ णपुंसगवयणे, ७. अज्झत्थवयणे, ८. उवणीयवयणे, ९. अवणीयवयणे, १०. उवणीयावणीयवयणे, ११. अवणीयउवणीयवयणे, १२. तीतवयणे, १३. पडुप्पन्नवयणे, १४. अणागयवयणे, १५. पच्चक्खवयणे, १६. परोक्खवयणे ।

प०—इच्चेयं भंते ! एगवयणं वा-जाव- परोक्खवयणं वा वयमाणे पण्णवणी णं एसा भासा ? ण एसा भासा मोसा ?

उ०—हंता गोयमा ! इच्चेयं एगवयणं वा-जाव-परोक्खवयणं वा वयमाणे पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा ।

—पण्ण० प० ११, ८९६-८९७

२ पंचिंदियाणि पाणाणं एस इत्थी अयं पुमं । जाव णं न विजाणेज्जा ताव जाइ त्ति आलवे ॥ —दस० अ० ७, गा० २१

३ (क) असच्चमोसं सच्चं च, अणवज्जमकक्कसं । समुप्पेहमसंदिद्धं, गिरं भासेज्ज पन्नवं ॥ —दस० अ० ७, गा० ३

(ख) अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पेज्ज वा परो । सव्वसो तं न भासेज्जा, भासं अहियगामिणी ।

दिट्ठं मियं असंदिद्धं, पडिपुन्नं वियं जियं । अयंपिरमणुव्विग्गं, भासं निसिर अत्तवं ॥ —दस० ८, अ० गा० ४७-४८

कसायं परिवज्ज भासियव्वं—

८०१. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा वंता कोहं च, माणं च, मायं च, लोभं च, अणुवीयि[1] णिट्ठभासी निसम्मभासी अतुरियभासी विवेगभासी समियाए संजते भासं भासेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५५१

आमंतणे असावज्ज भासा विही—

८०२. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा पुमं आमंतेमाणे आमंतिते अपडिसुणेमाणे एवं वदेज्जा—"अमुगे ति वा, आउसो ति वा, सावगे ति वा, उवासगे ति वा। धम्मिए ति वा, धम्मपिए ति वा। एतप्पगारं भासं असावज्जं-जाव-अभूतोवघातियं अभिकंख भासेज्जा।"[2]

—आ. सु. २, अ. ४, उ. १, सु. ५२७

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा इत्थी आमंतेमाणे आमंतिते य अपडिसुणेमाणी एवं वदेज्जा—"आउसो ति वा, भगिणी ति वा, भगवती ति वा, साविगे ति वा, उवासिए ति वा, धम्मिए ति वा, धम्मप्पिए ति वा। एतप्पगारं भासं असावज्जं-जाव-अभूतोवघातियं अभिकंख भासेज्जा।"[3]

—आ. सु. २, अ. ४, उ. १, सु. ५२९

अंतरिक्ख विसए भासा विही—

८०३. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा अंतलिक्खे ति वा, गुज्झाणुचरिते ति वा, समुच्छिते वा, णिवइए वा, पओय वदेज्ज वा वुट्ठबलाहगे त्ति।[4]

—आ. सु. २, अ. ४, उ. १, सु. ५३१

रूवाइसु असावज्ज भासाविही—

८०४. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा जहा वेगतियाइं रूवाइं पासेज्जा तहा वि ताइं एवं वदेज्जा, तं जहा—ओयंसी-ओयंसी ति वा, तेयंसी-तेयंसी ति वा, वच्चंसी-वच्चंसी ति वा, जसंसी-जसंसी ति वा, अभिरूवं-अभिरूवे ति वा, पडिरूवं-पडिरूवे ति वा, पासादियं-पासादिए ति वा, दरिसणिज्जं-दरिसणीए ति वा।

कषाय का परित्याग कर बोलना चाहिए—

८०१. साधु या साध्वी क्रोध, मान, माया और लोभ का वमन (परित्याग) करके निष्ठाभाषी विचारपूर्वक बोलने वाला हो, सुनकर-समझकर बोलने वाला हो, जल्दी-जल्दी बोलने वाला न हो एवं विवेकपूर्वक बोलने वाला हो और भाषा समिति से युक्त संयत भाषा का प्रयोग करे।

आमन्त्रण के सम्बन्ध में असावद्य भाषा विधि—

८०२. संयमशील साधु या साध्वी किसी पुरुष को आमंत्रित कर रहे हों और आमंत्रित करने पर भी वह न सुने तो उसे इस प्रकार सम्बोधित करे—हे अमुक भाई! हे आयुष्मान्! ओ श्रावक जी! हे उपासक! हे धार्मिक! या हे धर्मप्रिय! इस प्रकार की निरवद्य—**यावत्**—जीवोपघातरहित भाषा विचार पूर्वक बोले।

साधु या साध्वी किसी महिला को आमंत्रित कर रहे हों तो बहुत बुलाने पर भी वह न सुने तो उसे इस प्रकार सम्बोधित करे—आयुष्मती! बहन! भगवती! श्राविके! उपासिके! धार्मिके! धर्मप्रिये! इस प्रकार की निरवद्य—**यावत्**—जीवोपघात-रहित भाषा विचार पूर्वक बोले।

अन्तरिक्ष के विषय में भाषा विधि—

८०३. साधु या साध्वी को प्राकृतिक दृश्यों के सम्बन्ध में कहने का प्रसंग उपस्थित हो तो आकाश को गुह्यानुचरित-अन्तरिक्ष (आकाश) कहे या देवों के गमनागमन करने का मार्ग कहे। वह पयोधर (मेघ) जल देने वाला है, सम्मूर्च्छिम जल बरसाता है, या यह मेघ बरसता है, या बादल बरस चुका है, इस प्रकार की भाषा बोले।

रूपों को देखने पर असावद्य भाषा विधि—

८०४. साधु या साध्वी यद्यपि कितने ही रूपों को देखते हैं तथापि वे उनके विषय में (संयमी भाषा में) इस प्रकार कहें—जैसे कि—ओजस्वी को "ओजस्वी" तेजस्वी को "तेजस्वी" वर्चस्वी (दीप्तिमान, उपादेयवचनी या लब्धियुक्त) को "वर्चस्वी" यशस्वी को "यशस्वी" अभिरूप को (जो रूपवान् हो उसे) "अभिरूप", प्रतिरूप को (जो समान रूप वाला हो उसे) "प्रतिरूप" प्रासाद गुण (प्रसन्नता) युक्त हो, उसे "प्रासादीय" जो देखने योग्य हो उसे "दर्शनीय" कहकर सम्बोधित करे।

---

१ दस० अ० ७, गा० ५५।

२ णामधेज्जेण णं बूया, पुरिसगोत्तेण वा पुणो। जहारिहमभिगिज्झ, आलवेज्ज लवेज्ज वा। —दस० अ० ७, गा० २०

३ नामधेज्जेण णं बूया, इत्थीगोत्तेण वा पुणो। जहारिहमभिगिज्झ, आलवेज्ज लवेज्ज वा॥ —दस० अ० ७, गा० १७

४ अंतलिक्खे ति णं बूया, "गुज्झाणुचरियं" ति य। —दस० अ० ७, गा० ५३

जे यावऽण्णे तहप्पगारा एयप्पगाराहिं भासाहिं बूइया बूइया णो कुप्पंति माणवा ते यावि तहप्पगारा एतप्पगाराहिं भासाहिं असावज्जं-जाव-अभूतोवघातियं अभिकंख भासेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५३४

अन्य जितने भी ऐसे व्यक्ति हों, वे इस प्रकार की भाषाओं से सम्बोधित करने पर कुपित नहीं होते अतः ऐसी असावद्य —यावत्—जीवोपघात रहित भाषा विचारपूर्वक बोलें।

दरिसणिज्जे वप्पाइए असावज्ज भासाविही—

८०५. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा वेगतियाइं रूवाइं पासेज्जा तं जहा—वप्पाणि वा-जाव-गिहाणि वा तहा वि ताइं एवं वदेज्जा, तं जहा—आरंभकडे ति वा, सावज्जकडे ति वा, पयत्तकडे ति वा,

पासादियं पासादिए ति वा, दरिसणीयं दरिसणीए ति वा, अभिरूवं अभिरूवे ति वा, पडिरूवं पडिरूवे ति वा। एतप्पगारं भासं असावज्जं-जाव-अभूतोवघातियं अभिकंख भासेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५३६

दर्शनीय प्राकार आदि के सम्बन्ध में असावद्य भाषा विधि—

८०५. साधु या साध्वी यद्यपि कई रूपों को देखते हैं, यथा—प्राकार—यावत्—भवनगृह को (कहने का प्रयोजन हो तो) उनके सम्बन्ध में इस प्रकार कहे—यह प्राकार आरम्भ से बना है, सावद्यकृत है, या यह प्रयत्न-साध्य है।

इसी प्रकार जो प्रासादगुण युक्त हो उसे प्रासादीय, जो देखने योग्य हो उसे दर्शनीय, जो रूपवान् हो उसे अभिरूप, जो समान रूप हो उसे प्रतिरूप कहे। इस प्रकार विचारपूर्वक असावद्य—यावत्—जीवोपघात से रहित भाषा का विचारपूर्वक प्रयोग करे।

उवक्खडिए असणाइए असावज्ज भासाविही—

८०६. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा असणं वा-जाव-साइमं वा उवक्खडियं पेहाए एवं वदेज्जा, तं जहा—आरंभकडे ति वा, सावज्जकडे ति वा, पयत्तकडे ति वा, भद्दयं-भद्दए ति वा, ऊसडं-ऊसडे ति वा, रसियं-रसिए ति वा, मणुण्णं-मणुण्णे ति वा एतप्पगारं भासं असावज्जं-जाव-अभूतोवघातियं अभिकंख भासेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५३८

पयत्तपक्के त्ति व पक्कमालवे,
पयत्तछिन्न त्ति व छिन्नमालवे।
पयत्तलट्ठे त्ति व कम्महेउयं,
पहारगाढ त्ति व गाढमालवे॥

—दस. अ. ७, गा. ४२

उपस्कृत अशनादि के सम्बन्ध में असावद्य भाषा विधि

८०६. साधु या साध्वी अशन—यावत्—स्वादिम (अग्नि आदि से तैयार किये हुए) सुसंस्कृत आहार देखकर इस प्रकार कह सकते हैं, जैसे कि यह आहारादि पदार्थ आरम्भ से बना है, सावद्यकृत है, प्रयत्नसाध्य है या भद्र कल्याणकर आहार है उसे कल्याणकर आहार कहे। उत्कृष्ट आहार है उसे उत्कृष्ट आहार कहे। सरस आहार है उसे सरस आहार कहे। मनोज्ञ आहार है उसे मनोज्ञ आहार कहे। इस प्रकार की असावद्य—यावत्—जीवोपघात से रहित भाषा का विचारपूर्वक प्रयोग करे।

(प्रयोजनवश कहना हो तो) सुपक्व को प्रयत्न-पक्व कहा जा सकता है। सुच्छिन्न को प्रयत्नच्छिन्न कहा जा सकता है, कर्म हेतुक (शिक्षापूर्वक किए हुए) को प्रयत्नलब्ध कहा जा सकता है। गाढ़ (गहरे घाव वाले) को गाढ़ प्रहार कहा जा सकता है।

परिवुड्ढकाए माणुस्साइए असावज्ज भासाविही—

८०७. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा माणुस्सं वा, गोणं वा, महिसं वा, मिगं वा, पसुं वा, पक्खिं वा, सरीसिवं वा, जलयरं वा, सत्तं परिवड्ढकायं पेहाए एवं वदेज्जा—परिवड्ढकाए ति वा, उवचितकाए ति वा, थिरसंघयणे ति वा, चितमंससोणिते ति वा, बहुपडिपुण्णइंदिए ति वा। एतप्पगारं भासं असावज्जं-जाव-अभूतोवघातियं अभिकंख भासेज्जा।[1]

—आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५३९

पुष्ट शरीर वाले मनुष्यादि के सम्बन्ध में असावद्य भाषा विधि—

८०७. संयमशील साधु या साध्वी परिपुष्ट शरीर वाले किसी मनुष्य, बैल, भैंसा, मृग, पशु, पक्षी, सरिसृप, जलचर आदि किसी भी विशालकाय प्राणी को देखकर ऐसे कह सकता है कि यह पुष्ट शरीर वाला है, उपचितकाय है, दृढ़ संहनन वाला है, या इसके शरीर में रक्त-मांस संचित हो गया है, इसकी सभी इन्द्रियाँ परिपूर्ण हैं। इस प्रकार की असावद्य—यावत्—जीवोपघात रहित भाषा का विचारपूर्वक प्रयोग करे।

---

१ परिवुड्ढे त्ति णं बूया, बूया उवचिए त्ति य। संजाए पीणिए वा वि, महाकाए त्ति आलवे॥ —दस. अ. ७, गा. २३

विधि निषेध-कल्प—२

गो आइसु असावज्ज भासा विही—

८०८. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा विरूवरूवाओ गाओ पेहाए एवं वदेज्जा तं जहा—जुवंगवे ति वा, धेणु ति वा, रसवती ति वा, हस्से इ वा, महल्ल इ वा, महव्वए ति वा, संवहणे ति वा[1]। एतप्पगारं भासं असावज्जं—जाव—अभूतोवघातियं अभिकंख णो भासेज्जा। —आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५४२

गो आदि के सम्बन्ध में असावद्य भाषा विधि—

८०८. साधु या साध्वी नाना प्रकार की गायों तथा गो जाति के पशुओं को देखकर इस प्रकार कह सकता है, जैसे कि—यह गाय युवा है, प्रौढ़ है, या दुधारु है, यह बैल छोटा है या बड़ा है, बहुमूल्य है या भारवहन करने में समर्थ है इस प्रकार की असावद्य—यावत्—जीवोपघात से रहित भाषा का प्रयोग करे।

उज्जाणाइसु असावज्ज भासा विही—

८०९. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा तहेव गंतुमुज्जाणाइं पव्वताणि वणाणि य रुक्खा महल्ल पेहाए एवं वदेज्जा—तं जहा—जातिमंता ति वा, दीहवट्टा ति वा, महालया ति वा, पयातसाला ति वा, विडिमसाला ति वा, पासादिया ति वा, दरिसणीया ति वा[2] अभिरूवा ति वा, पडिरूवा ति वा। एतप्पगारं भासं असावज्जं—जाव—अभूतोवघातियं अभिकंख भासेज्जा। —आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५४४

उद्यानादि के सम्बन्ध में असावद्य भाषा विधि—

८०९. साधु या साध्वी किसी प्रयोजनवश उद्यानों, पर्वतों या वनों में जाए, वहाँ विशाल वृक्षों को देखकर इस प्रकार कहे कि ये वृक्ष उत्तम जाति के हैं, दीर्घ (लम्बे) हैं, वृत्त (गोल) हैं, महालय हैं, इनकी शाखाएँ फट गई हैं, इनकी प्रशाखाएँ दूर तक फैली हुई हैं, ये वृक्ष मन को प्रसन्न करने वाले हैं, दर्शनीय है, अभिरूप हैं, प्रतिरूप हैं। इस प्रकार की असावद्य—यावत्—जीवोपघात-रहित भाषा का विचारपूर्वक प्रयोग करे।

वणफलेसु असावज्ज भासा विही—

८१०. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा बहुसंभूया वणफला पेहाए एवं वदेज्जा तं जहा—असंथडा ति वा बहुणिवट्टिमफला ति वा, बहुसंभूया ति वा, भूतरूवा ति वा।[3] एतप्पगारं भासं असावज्जं—जाव—अभूतोवघातियं अभिकंख भासेज्जा। —आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५४६

वन फलों के सम्बन्ध में असावद्य भाषा विधि—

८१०. साधु या साध्वी अतिमात्रा में लगे हुए वन फलों को देखकर इस प्रकार कह सकता है, जैसे कि ये फल वाले वृक्ष-असंतृत-फलों के भार से नम्र या धारण करने में असमर्थ है इनके फल प्रायः निष्पन्न हो चुके हैं, ये वृक्ष एक साथ बहुत-सी फलोत्पत्ति वाले हैं, या ये भूतरूप-कोमल फल हैं। इस प्रकार की असावद्य—यावत्—जीवोपघात रहित भाषा का विचारपूर्वक प्रयोग करे।

ओसहिसु असावज्ज भासा विही—

८११. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा बहुसंभूताओ ओसहीओ पेहाए तहा वि एवं वदेज्जा, तं जहा—रूढा ति वा, बहुसंभूया ति वा, थिरा ति वा ऊसढा ति वा, गब्भिया ति वा, पसूया ति वा, ससारा ति वा। एतप्पगारं भासं असावज्जं—जाव—अभूतोवघातियं अभिकंख भासेज्जा।[4] —आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५४८

औषधियों के सम्बन्ध में असावद्य भाषा विधि—

८११. साधु या साध्वी बहुत मात्रा में पैदा हुई औषधियों को देखकर (प्रयोजनवश) इस प्रकार कह सकता है जैसे कि इनमें बीज अंकुरित हो गये है, ये अब जम गई हैं, सुविकसित या निष्पन्नप्रायः हो गई हैं या अब ये स्थिर (उपघातादि से मुक्त) हो गई हैं, ये ऊपर उठ गई हैं, ये भुट्टों, सिरों या बालियों से रहित हैं, अब ये भुट्टों आदि से युक्त है, या धान्यकण युक्त हैं। इस प्रकार की निरवद्य—यावत्—जीवोपघात से रहित भाषा विचारपूर्वक बोले।

---

१ जुवं गवे त्ति णं बूया, धेणुं रसदय त्ति य। रहस्से महल्लए वा वि, वए संवहणे त्ति य॥ —दस. अ. ७ गा. २५

२ तहेव गंतुमुज्जाणं पव्वयाणि वणाणि य। रुक्खा महल्ल पेहाए एवं भासेज्ज पण्णवं॥
जाइमंता इमे रुक्खा दीहवट्टा महालया। पयायसाला विडिमा वए दरिसणि त्ति य॥ —दस. अ. ७, गा. ३०-३१

३ असंथडा इमे अंबा बहुनिव्वट्टिमाफला। वएज्ज बहुसंभूया भूयरूव त्ति वा पुणो॥ —दस. अ. ७, गा. ३३

४ विरूढा बहुसंभूया थिरा ऊसढा वि य। गब्भियाओ पसूयाओ ससाराओ त्ति आलवे॥ —दस. अ. ७, गा. ३५

सद्द-रूव-गंध-रस-फासेसु असावज्ज भासा विही—

८१२. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जहा वेगतियाइं सद्दाइं सुणेज्जा तहा वि ताइं एवं वदेज्जा—तं जहा—

सुसद्दं सुसद्दे ति वा, दुसद्दं दुसद्दे ति वा। एतप्पगारं भासं असावज्जं—जाव—अभूतोवघातियं अभिकंख भासेज्जा।

रूवाइं—१. किण्हे ति वा, २. णीले ति वा, ३. लोहिए ति वा, ४. हलिद्दे ति वा, ५. सुक्किले ति वा—

गंधाइं—१. सुब्भिगंधे ति वा, २. दुब्भिगंधे ति वा

रसाइं—१. तित्ताणि वा, २. कडुयाणि वा, ३. कसायाणि वा, ४. अंबिलाणी वा, ५. महुराणि वा

फासाइं—१. कक्खडाणि वा, २. मउयाणि वा, ३. गरुयाणि वा, ४. लहुयाणि वा, ५. सीयाणि वा, ६. उण्हाणि वा, ७. णिद्धाणि वा, ८. लुक्खाणि वा।

—आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५५०

शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्शादि के सम्बन्ध में असावद्य भाषा विधि—

८१२. साधु या साध्वी कई प्रकार के शब्दों को सुनते हैं, तथापि उनके सम्बन्ध में कभी बोलना हो तो इस प्रकार कह सकता है जैसे कि (राग द्वेष से रहित होकर)

सुशब्द को "यह सुशब्द है" और दुःशब्द को "यह दुःशब्द है" इस प्रकार की निरवद्य—यावत्—जीवोपघात रहित भाषा विचारपूर्वक बोले।

इस प्रकार रूपों के विषय में—

(१) काले को काला कहे, (२) नीले को नीला, (३) लाल को लाल, (४) पीले को पीला, (५) श्वेत को श्वेत कहे।

गन्धों के विषय में (कहने का प्रसंग आवे तो)

(१) सुगन्ध को सुगन्ध और (२) दुर्गन्ध को दुर्गन्ध कहे, रसों के विषय में कहना हो तो—

(१) तिक्त को तिक्त, (२) कडुए को कड़वा, (३) कसैले को कसैला, (४) खट्टे को खट्टा और (५) मधुर को मधुर कहे।

इसी प्रकार स्पर्शों के विषय में कहना हो तो—

(१) कर्कश को कर्कश, (२) मृदु (कोमल) को मृदु, (३) गुरु (भारी) को गुरु, (४) लघु (हल्का) को लघु, (५) ठण्डे को ठण्डा, (६) गर्म को गर्म, (७) चिकने को चिकना और (८) रूखे को रूखा कहे।

एगंत ओहारिणी भासा णिसेहो—

८१३. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा इमाइं वइ-आयाराइं-सोच्चा णिसम्मा इमाइं अणायाराइं अणायरियपुव्वाइं जाणेज्जा—

जे कोहा वा वायं विउंजंति,
जे माणा वा वायं विउंजंति,
जे मायाए वा वायं विउंजंति,
जे लोभा वा वायं विउंजंति,
जाणतो वा फरुसं वदंति,

अजाणतो वा फरुसं वयंति। सव्वं चेयं सावज्जं वज्जेज्जा विवेगमायाए-धुवं चेयं जाणेज्जा, अधुवं चेयं जाणेज्जा

असणं वा—जाव—साइमं वा लभिय, णो लभिय, भुंजिय, णो भुंजिय।

एकान्त निश्चयात्मक भाषा का निषेध—

८१३. साधु या साध्वी इन वचन (भाषा) के आचारों को सुनकर, हृदयंगम करके, पूर्व-मुनियों द्वारा अनाचरित भाषा-सम्बन्धी अनाचारों को जाने।

यथा—जो क्रोध से वाणी का प्रयोग करते हैं।
जो अभिमानपूर्वक वाणी का प्रयोग करते हैं,
जो छल कपट सहित बोलते हैं,
जो लोभ से प्रेरित हो बोलते हैं,
जो जानबूझ कर कठोर वचन बोलते हैं,

या अनजाने में कठोर वचन बोलते हैं, ये सब भाषाएँ सावद्य (स-पाप) हैं, साधु के लिए वर्जनीय है। विवेक अपनाकर साधु इस प्रकार की सावद्य एवं अनाचरणीय भाषाओं का त्याग करे। वह साधु या साध्वी ध्रुव (भविष्यत्कालीन वृष्टि आदि के विषय में निश्चयात्मक) भाषा को जानकर उसका त्याग करे। अध्रुव (अनिश्चयात्मक) भाषा को भी जानकर उसका त्याग करें।

वह अशन—यावत्—स्वादिम आहार लेकर ही आएगा, या आहार लिए बिना ही आएगा।

अदुवा आगतो, अदुवा णो आगतो,

अदुवा एति, अदुवा णो एति,
अदुवा एहिति, अदुवा णो एहिति,
एत्थ वि आगते, एत्थ वि णो आगते,
एत्थ वि एति, एत्थ वि णो एति,
एत्थ वि एहिति, एत्थ वि णो एहिति।

—आ. सु. २, अ. ४, उ. १, सु. ५२०

वह आहार करके ही आएगा, या आहार किये बिना ही आ जाएगा।

अथवा वह अवश्य आया था या नहीं आया था,
अथवा वह आता है या नहीं आता है,
वह अवश्य आएगा, अथवा नहीं आएगा,
वह यहाँ आया था, वह यहाँ नहीं आया था,
वह यहाँ आता है, वह यहाँ नहीं आता है,

वह यहाँ आएगा, वह यहाँ नहीं आयेगा (इस प्रकार की एकान्त निश्चयात्मक भाषा का प्रयोग साधु-साध्वी न करे)।

तम्हा गच्छामो वक्खामो, अमुगं वा णे भविस्सई।
अहं वा णं करिस्सामि, एसो वा णं करिस्सई॥
एवमाई उ जा भासा, एसकालम्मि संकिया।
संपयाईयमट्ठे वा, तं पि धीरो विवज्जए॥

इसलिए—हम जाएँगे, कहेंगे, हमारा अमुक कार्य हो जाएगा, मैं यह करूँगा अथवा यह (व्यक्ति) यह (कार्य) अवश्य करेगा—यह और इस प्रकार की दूसरी भाषा जो भविष्य-सम्बन्धी होने के कारण (सफलता की दृष्टि से) शंकित हो अथवा वर्तमान और अतीत काल-सम्बन्धी अर्थ के बारे में शंकित हो, उसे भी धीर पुरुष न बोले।

अईयम्मि य कालम्मी, पच्चुप्पन्नमणागए।
जमट्ठं तु न जाणेज्जा, एवमेयं ति नो वए॥

अतीत, वर्तमान और अनागत काल सम्बन्धी जिस अर्थ को न जाने, उसे यह "इस प्रकार ही है" ऐसा न कहे।

अईयम्मि य कालम्मी, पच्चुप्पन्नमणागए।
जत्थ संका भवे तं तु, एवमेयं ति नो वए॥

अतीत, वर्तमान और अनागत काल—सम्बन्धी जिस अर्थ में शंका हो, उसे "यह इस प्रकार ही है"—ऐसा न कहे।

अईयम्मि य कालम्मी, पच्चुप्पन्नमणागए।
निस्संकियं भवे जं तु, एवमेयं ति निद्दिसे॥

—दस. अ. ७, गा. ६-१०

अतीत, वर्तमान और अनागत काल-सम्बन्धी जो अर्थ निःशंकित हो (उसके बारे में) "यह इस प्रकार ही है" ऐसा कहे।

तहेव सावज्जणुमोयणी गिरा,
ओहारिणी जा य परोवघाइणी।
से कोह लोह भयसा व माणवो
न हासमाणो वि गिरं वएज्जा॥

—दस. अ. ७, गा. ५४

इसी प्रकार मुनि सावद्य का अनुमोदन करने वाली अवधारिणी (संदिग्ध अर्थ के विषय में असंदिग्ध) और पर उपघात-कारिणी भाषा, क्रोध, लोभ, भय, मान या हास्यवश न बोले।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा णो एवं वदेज्जा—"णभदेवे ति वा, गज्जदेवे ति वा, विज्जुदेवे ति वा, पवुट्ठदेवे ति वा, णिवुट्ठदेवे ति वा, पडतु वा वासं, मा वा पडतु, णिप्पज्जतु वा सासं, मा वा णिप्पज्जतु, विभातु वा रयणी, मा वा विभातु उदेउ वा सूरिए, मा वा उदेउ, सो वा राया जयतु मा वा जयतु।" णो एयप्पगारं भासं भासेज्जा पण्णवं।[1]

—आ. सु. २, अ. ४, उ. १, सु. ५३०

साधु या साध्वी इस प्रकार न कहे कि "नभोदेव (आकाश देव) है, गर्ज (मेघ) देव है, विद्युतदेव है, प्रवृष्ट (बरसता रहने वाला) देव है, या निवृष्ट (निरन्तर बरसने वाला) देव है, वर्षा बरसे तो अच्छा या न बरसे तो अच्छा, धान्य उत्पन्न हो या न हो, रात्रि सुशोभित हो या न हो, सूर्य उदय हो या न हो, वह राजा जीते या न जीते।" प्रज्ञावान् साधु इस प्रकार की भाषा न बोले।

१ (क) वाओ वुट्ठं व सीउण्हं, खेमं धायं सिवं ति वा। कयाणु होज्जा एयाणि? मा वा होउ त्ति नो वए॥
(ख) तहेव मेहं व नहं व माणवं न देवदेव त्ति गिरं वएज्जा। समुच्छिए उन्नए वा पओए वएज्ज वा 'वुट्ठे' बलाहए त्ति॥

—दस. अ. ७, गा. ५१-५२

देवाणं मणुआणं च तिरिआणं च वुग्गहे ।
अमुगाणं जओ होउ मा वा होउत्ति नो वए ।।

—दस. अ. ७, गा. ५०

देवता, मनुष्यों और पशुओं के परस्पर युद्ध होने पर 'अमुक की जीत हो और अमुक की हार हो' ऐसा साधु को अपने मुंह से नहीं कहना चाहिए ।

छ णिसिद्धवयणाइं—

८१४. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा इमाइं छ अवयणाइं वइत्तए, तं जहा –

१. अलियवयणे २. हीलियवयणे
३. खिंसियवयणे ४. फरुसवयणे
५. गारत्थियवयणे ६. विओसवियं वा पुणो उदीरित्तए ।

—कप्प. उ. ६, सु. १

छः निषिद्ध वचन—

८१४. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को ये छह कुवचन बोलना नहीं कल्पता है ।

यथा—(१) अलीक वचन, (२) हीलित वचन,
(३) खिंसित वचन, (४) परुष वचन,
(५) गार्हस्थ्य वचन, (६) व्युपशमित वचन पुनः कहना ।

अट्ठणिसिद्धठाणाइं —

८१५. कोहे माणे य मायाए लोभे य उवउत्तया ।
हासे भए मोहरिए विगहासु तहेव च ।।

एयाइं अट्ठठाणाइं परिवज्जित्तु संजए ।
असावज्जं मियं काले भासं भासेज्ज पन्नवं ।।

—उत्त. अ. २४, गा. ९-१०

आठ निषिद्ध स्थान—

८१५. (१) क्रोध, (२) मान, (३) माया, (४) लोभ, (५) हास्य, (६) भय, (७) वाचालता और (८) विकथा के प्रति सावधान रहे —इनका प्रयोग न करे ।

प्रज्ञावान मुनि इन आठ स्थानों का वर्जन कर यथासमय निरवद्य और परिमित वचन बोले ।

चउव्विह सावज्जभासा णिसेहो—

८१६. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जा य १. भासा सच्चा, २. जा य भासा मोसा, ३. जाय भासा सच्चामोसा, ४. जा य भासा असच्चामोसा तहप्पगारं भासं सावज्जं सकिरियं कक्कसं कडुयं निट्ठुरं फरुसं अण्हयकरिं छेयणकरिं भेयणकरिं परितावणकरिं उद्दवणकरिं भूतोवघातियं अभिकंख णो भासेज्जा ।[1]

— आ. सु. २, अ. ४, उ. १, सु. ५२४

चार प्रकार की सावद्य भाषाओं का निषेध—

८१६. जो (१) भाषा सत्या है जो (२) भाषा मृषा है, जो (३) भाषा सत्यामृषा है, अथवा (४) जो भाषा असत्यामृषा है, उसमें भी यदि सत्यभाषा सावद्य (पाप सहित) अनर्थदण्डक्रिया युक्त, कर्कश, कटुक, निष्ठुर (निर्दय), कठोर (स्नेह रहित) कर्मों की आश्रवकारिणी तथा छेदनकारी (प्रीतिछेद करने वाली) भेदनकारी (फूट डालने वाली, परितापकारिणी, उपद्रवकारिणी) एवं प्राणियों का विघात करने वाली हो तो साधु या साध्वी ऐसी सत्यभाषा का भी प्रयोग न करे ।

मुसाई भासाणं णिसेहो—

८१७. मुसं परिहरे भिक्खू न य ओहारिणिं वए ।
भासादोसं परिहरे मायं च वज्जए सया ।।

न लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं न निरट्ठं न मम्मयं ।
अप्पणट्ठा परट्ठा वा उभयस्संतरेण वा ।।

—उत्त. अ. १, गा. २४-२५

मृषा आदि भाषाओं का निषेध—

८१७. भिक्षु मृषाभाषा का परिहार करे, अवधारिणी (निश्चयकारिणी) भाषा न बोले, भाषा के दोष का परिहार करे और सदा माया का त्याग करे ।

पूछने पर भी भिक्षु अपने लिए, पर के लिए या उभय के लिए सावद्य भाषा, निरर्थक और मर्म प्रगट करने वाली भाषा न बोले ।

सच्चामोसा भासा णिसेहो—

८१८. भासमाणो न भासेज्जा, णेव वंफेज्ज मम्मयं ।
मातिट्ठाणं विवज्जेज्जा, अणुवीयि वियागरे ।।

सत्यामृषा (मिश्र) भाषा आदि भाषाओं का निषेध—

८१८. साधु धर्म सम्बन्धी भाषण करता हुआ भी भाषण न करने वाले (मौनी) के समान है । वह मर्मस्पर्शी भाषा न बोले व मातृ स्थान—माया (कपट) प्रधान वचन का त्याग करे । जो कुछ भी बोले, पहले उस सम्बन्ध में सोच विचार कर बोले ।

---

१ तहेव फरुसा भासा गुरुभूओवघाइणी । सच्चा वि सा न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो ।। —दस. अ. ७, गा. ११

तइयमा तविया भासा, जं वइत्ताऽणुतप्पती ।
जं छन्नं तं न वत्तव्वं, एसा आणा नियंठिया ॥
—सूय. सु. १, अ. ९, गा. २५-२६

चार प्रकार की भाषाओं में जो तृतीय भाषा (सत्या-मृषा) है, उसे साधु न बोले क्योंकि ऐसी भाषा बोलने के बाद पश्चाताप करना पड़ता है जिस बात को सब लोग छिपाते (गुप्त रखते) हैं अथवा जो छन्न (हिंसा) प्रधान भाषा है ऐसी भाषा भी न बोले। यह निर्ग्रन्थ (भगवान) की आज्ञा है।

एअं च अट्ठमन्नं वा, जं तु नामेइ सासयं ।
स भासं सच्चमोसं च, तंपि धीरो विवज्जए ॥

विचारशील साधु, सावद्य और कर्कश भाषाओं का तथा इसी प्रकार की अन्य भाषाओं का भी 'जो बोली हुई पुरुषार्थ मोक्ष की विघातक होती हैं' चाहे फिर वे मिश्रभाषा हों या केवल सत्य-भाषा हों, विशेष रूप से परित्याग करे।

वितहं पि तहामुत्तिं, जं गिरं भासए नरो ।
तम्हा सो पुट्ठो पावेणं, किं पुण जो मुसं वए ॥
—दस. अ. ७, गा. ४-५

जो मनुष्य सत्य पदार्थ की आकृति के समान आकृति वाले असत्य पदार्थ को भी सत्य पदार्थ कहता है, वह भी जब पाप कर्म का बंध करता है, तो फिर जो केवल असत्य ही बोलते हैं, उनके विषय में कहना ही क्या है?

अवण्णवायाइयस्स णिसेहो—

८१९. अवण्णवायं च परम्मुहस्स पच्चक्खओ पडिणीयं च भासं ।
ओहारिणिं अप्पियकारिणिं च
भासं न भासेज्ज सया स पुज्जो ॥
—दस. अ. ९, उ. ३, गा. ९

अवर्णवाद आदि का निषेध—

८१९. जो पीछे से अवर्णवाद (निन्दा वचन) नहीं बोलता जो सामने विरोधी वचन नहीं कहता, जो निश्चयकारिणी और अप्रियकारिणी भाषा नहीं बोलता वह पूज्य है।

सावज्ज वयण णिसेहो—

८२०. तहेव सावज्जं जोगं परस्सट्ठाए निट्ठियं ।
कीरमाणं ति वा नच्चा सावज्जं नाऽलवे मुणी ॥
—दस. अ. ७, गा. ४०

सावद्य वचन का निषेध—

८२०. दूसरे के लिए किए गए या किए जा रहे सावद्य व्यापार को जानकर मुनि सावद्य वचन न बोले।

गिहत्थस्स सक्काराइ णिसेहो—

८२१. तहेवाऽसंजयं धीरो, आस एहि करेहि वा ।
सय चिट्ठ वयाहि त्ति, नेवं भासेज्ज पन्नवं ॥
—दस. अ. ७, गा. ४७

गृहस्थ के सत्कारादि का निषेध—

८२१. इसी प्रकार धीर और प्रज्ञावान मुनि असंयति (गृहस्थ) को बैठ, इधर आ, अमुक कार्य कर, सो, ठहर या खड़ा हो जा, चला जा—इस प्रकार न कहे।

पाडिपहियाण सावज्ज पण्हाणमुत्तरदाण णिसेहो—

८२२. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिपहिया आगच्छेज्जा, ते णं पाडिपहिया एवं वदेज्जा—

"आउसंतो समणा ! अवियाइं एत्तो पडिपहे पासह मणुस्सं वा, गोणं वा, महिसं वा, पसुं वा, पक्खिं वा, सरीसवं वा, जलचरं वा,

से तं मे आइक्खह, दंसेह।"

पथिकों के सावद्य प्रश्नों के उत्तर देने का निषेध—

८२२. ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु या साध्वी के मार्ग में कुछ पथिक सामने आ जाएँ और वे यों पूछे कि—

आयुष्मन् श्रमण! क्या आपने मार्ग में किसी मनुष्य को, मृग को, भैंसे को, पशु या पक्षी को, सर्प को या किसी जलचर जन्तु को जाते हुए देखा है?

यदि देखा हो तो हमें बताओ कि वे किस ओर गए हैं, हमें दिखाओ।

तं णो आइक्खेज्जा, णो दंसेज्जा, णो तस्स तं परिजाणेज्जा, तुसिणीए उवेहेज्जा, जाणं वा णो जाणं ति वदेज्जा। तओ संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

ऐसा कहने पर साधु न तो उन्हें बताए न मार्ग-दर्शन करे, न उनकी बात को स्वीकार करे, बल्कि कोई उत्तर न देकर मौन रहे। अथवा जानता हुआ भी (उपेक्षा भाव से) "मैं नहीं जानता" ऐसा कहे। फिर यतनापूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिपहिया आगच्छेज्जा ते णं पाडिपहिया एवं वदेज्जा—

"आउसंतो समणा। अवियाइं एत्तो पडिपहे पासह उदगपसूताणि कंदाणि वा, मूलाणि वा, तयाणि वा, पत्ताणि वा, पुप्फाणि वा, फलाणि वा, बीयाणि वा, हरिताणि वा, उदयं वा, संणिहियं अगणिं वा संणिविखत्तं, से तं मे आइक्खह दंसेह।"

तं णो आइक्खेज्जा-जाव-गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु या साध्वी को मार्ग में सामने से कुछ पथिक निकट आ जाएँ और वे साधु से यों पूछें—

"आयुष्मन् श्रमण! क्या आपने इस मार्ग में जल में पैदा होने वाले कन्द या मूल, अथवा छाल, पत्ते, फूल, फल, बीज रहित अथवा संग्रह किया हुआ पेयजल या निकटवर्ती जल का स्थान, अथवा एक जगह रखी हुई अग्नि देखी है? अगर देखी हो तो हमें बताओ?"

इस पर साधु उन्हें कुछ न बतावे—यावत्—ग्रामानुग्राम विहार करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, अंतरा से पाडिपहिया आगच्छेज्जा ते णं पाडिपहिया एवं वदेज्जा—

"आउसंतो समणा! अवियाइं एत्तो पडिपहे पासह जवसाणि वा, सगडाणि वा, रहाणि वा, सचक्काणि वा, परचक्काणि वा, सेणं वा, विरूवरूवं संणिविट्ठं, से तं मे आइक्खह दंसेह?"

तं णो आइक्खेज्जा-जाव-गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु या साध्वी को मार्ग में कुछ पथिक निकट आकर पूछें कि—

"आयुष्मन् श्रमण! क्या आपने इस मार्ग में जो (आदि धान्यों का ढेर) बैलगाड़ियाँ, रथ, या स्वचक्र या परचक्र के शासक के (सैन्य के) या नाना प्रकार के पड़ाव देखे हैं? यदि देखे हों तो हमें बताओ।"

ऐसा सुनकर साधु उन्हें कुछ न बताये,—यावत्—ग्रामानुग्राम विहार करे।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से पाडिपहिया आगच्छेज्जा ते णं पाडिपहिया एवं वदेज्जा—

"आउसंतो समणा! केवतिए एत्तो गामे वा-जाव-रायहाणी वा, से त्तं मे आइक्खह दंसेह?"

तं णो आइक्खेज्जा-जाव-गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए साधु या साध्वी को मार्ग में कुछ पथिक निकट आकर पूछें कि—

"आयुष्मन् श्रमण! यह गाँव कैसा है, या कितना बड़ा है?—यावत्—राजधानी कैसी है या कितनी बड़ी है? यदि देखी हो तो हमें बताओ?"

ऐसा सुनकर साधु उन्हें कुछ न बताए—यावत्—ग्रामानुग्राम विहार करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जेज्जा, अंतरा से पाडिपहिया आगच्छेज्जा ते णं पाडिपहिया एवं वदेज्जा—

"आउसंतो समणा! केवइए एत्तो गामस्स वा-जाव-रायहाणीए वा मग्गे? से त्तं मे आइक्खह दंसेह?"

तं णो आइक्खेज्जा-जाव-गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ३, उ. ३, सु. ५१०-५१४

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए साधु या साध्वी को मार्ग में कुछ पथिक निकट आकर पूछें कि—

"आयुष्मन् श्रमण! यहाँ से ग्राम—यावत्—राजधानी कितनी दूर है? या यहाँ से ग्राम—यावत् राजधानी का मार्ग अब कितना शेष रहा है? जानते हो तो हमें बताओ।"

ऐसा सुनकर साधु उन्हें कुछ भी न कहे—यावत्—यतना पूर्वक ग्रामानुग्राम विहार करे।

आमंतणे सावज्ज भासा णिसेहो—

८२३. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा पुमं आमंतेमाणे आमंतिते वा अपडिसुणेमाणे णो एवं वदेज्जा—

होले ति वा, गोले ति वा, वसुले ति वा, कुपक्खे ति वा, घडदासे ति वा, साणे[1] ति वा, तेणे ति वा चारिए ति वा,

आमन्त्रण में सावद्य भाषा का निषेध—

८२३. साधु या साध्वी किसी पुरुष को आमन्त्रित (सम्बोधित) कर रहे हों, और आमन्त्रित करने पर भी वह न सुने तो उसे इस प्रकार न कहे—

अरे होले (मूर्ख) रे गोले! (या हे गोले! या हे गोला!) अरे वृषल (शूद्र) हे कुपक्ष (दास या निन्द्यकुलीन) अरे घटदास

1 होलावायं, सहीवायं, गोतावायं च नो वदे। तुमं तुमं ति अमणुण्णं, सव्वसो तं ण वत्तए॥ —सूय. सु. १, अ. ९, गा. २७

माथी त्ति वा, मुसावादी त्ति वा इतियाइं तुमं, इतियाइं ते जणगा वा।" एतप्पगारं भासं सावज्जं सकिरियं-जाव-भूतोपघातियं अभिकंख णो भासेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ४, उ. १, सु. ५२६

अज्जए पज्जए वा वि बप्पो चुल्लपिउ त्ति य।
माउला भाइणेज्ज त्ति पुत्ते नत्तुणिय त्ति य[1]॥

—दस. अ. ७, गा. १८

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा इत्थी आमंतेमाणे आमंतिते य अपडिसुणेमाणी णो एवं वदेज्जा—"होली ति वा, गोली ति वा, वसुले ति वा, कुपक्खे ति वा, घडदासी ति वा, साणे ति वा, तेणे ति वा, चारिए ति वा, माई ति वा, मुसावाई ति वा, इच्चेयाइं तुमं एसाइं ते जणगां वा एतप्पगारं भासं सावज्जं-जाव-णो भासेज्जा।[2]

—आ. सु. २, अ. ४, उ. १, सु. ५२८

अज्जिए पज्जिए वा वि अम्मो माउसिय त्ति वा।
पिउस्सिए भाइणेज्ज त्ति धुए नत्तुणिए त्ति य॥

—दस. अ. ७, गा. १५

(दासीपुत्र) या ओ कुत्ते ! ओ चोर ! अरे गुप्तचर ! अरे झूठे ! ऐसे (पूर्वोक्त प्रकार के) ही तुम हो, ऐसे (पूर्वोक्त प्रकार के) ही तुम्हारे माता-पिता हैं।" विचारशील साधु इस प्रकार की सावद्य —यावत्—जीवोपघातिनी भाषा विचारकर न बोले।

हे आर्यक ! (हे दादा, हे नाना !) हे प्रार्यक ! (हे परदादा ! हे परनाना !) हे पिता ! (हे चाचा !) हे मामा ! (हे भानजा !, हे पुत्र, ! हे पोते ! ।

इस प्रकार पुरुष को आमन्त्रित न करे।

साधु या साध्वी किसी महिला को बुला रहे हों, बहुत आवाज देने पर भी वह न सुने तो उसे ऐसे नीच सम्बोधनों से सम्बोधित न करे—

"अरी होली ! (अरी गोली) अरी वृषली (क्षुद्रे) ! हे कुपक्षे ! अरी घटदासी ! ए कुत्ती ! अरी चौरटी ! हे गुप्तचरी ! अरी मायाविनी ! अरी झूठी ! ऐसी ही तू है और ऐसे ही तेरे माता-पिता हैं।" विचारशील साधु-साध्वी इस प्रकार की सावद्य —यावत् जीवोपघातिनी भाषा विचारकर न बोलें।

हे आर्यिके ! (हे दादी !, हे नानी !) हे प्रार्थिके ! (हे परदादी ! हे परनानी ! हे अम्ब !, हे माँ !), हे मौसी !, हे बुआ !, हे भानजी !, हे पुत्री !, हे पोती !,

इस प्रकार स्त्रियों को आमन्त्रित न करें।

रूवाइसु सावज्ज भासा णिसेहो—

८२४. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जहा वेगतियाइं रूवाइं-पासेज्जा तहा वि ताइं णो एवं वदेज्जा,

तं जहा—"१. गंडी गंडी ति वा,

२. कुट्ठी कुट्ठी ति वा,
३. रायंसि रायंसी ति वा,
४. अवमारियं, अवमारिए ति वा,
५. काणियं काणिए ति वा,
६. झिमियं झिमिए ति वा,
७. कुणियं कुणिए ति वा,
८. खुज्जियं खुज्जिए ति वा,
९. उदरीं उदरीए ति वा,
१०. मुइं मुए ति वा,
११. सुणियं सुणिए ति वा,

रोग आदि के सम्बन्ध में सावद्य भाषा का निषेध—

८२४. साधु या साध्वी यद्यपि अनेक रूपों को देखते हैं उन्हें देखकर इस प्रकार (ज्यों के त्यों) न कहें।

जैसे कि—(१) गण्डी (गण्ड-कण्ठमाला रोग से ग्रस्त या जिसका पैर सूज गया हो, को गण्डी)

(२) कुष्ठ-रोग से पीड़ित को कोढ़िया,
(३) राजयक्ष्मा वाले को राजयक्ष्मावाला,
(४) मृगी रोग वाले को मृगी,
(५) एकाक्षी को काना,
(६) जड़ता वाले को जड़ता वाला,
(७) टूटे हुए हाथ वाले को टूंटा,
(८) कुबड़े को कुबड़ा,
(९) उदर रोग वाले को, उदर रोगी,
(१०) मूक रोग वाले को मूका,
(११) शोथ रोग वाले को शोथ रोगी,

---

1. (क) तहेव होले गोले त्ति साणे वा वसुले त्ति य। दमए दुहए वा वि न तं भासेज्ज पण्णवं॥ —दस. अ. ७, गा. १४
(ख) हे हो हले त्ति अन्ने त्ति भट्टा सामिए गोमिए। होल गोल वसुले त्ति पुरिसं नेवमालवे॥ —दस. अ. ७, गा. १९
2. हले हले त्ति अन्ने त्ति भट्टे सामिणि गोमिणि। होले गोले वसुले त्ति इत्थियं नेवमालवे॥ —दस. अ. ७, गा. १६

१२. "गिलासिणी गिलासिणी" त्ति वा,
१३. वेवई वेवई त्ति वा,
१४. पीढ सप्पी पीढ सप्पी त्ति वा,
१५. सिलिवयं सिलिवए त्ति वा,
१६. महुमेहणी महुमेहणी त्ति वा, हत्थच्छिण्णं हत्थच्छिण्णे त्ति वा, एवं पायच्छिण्णे त्ति वा, कण्णच्छिण्णे त्ति वा, नक्कच्छिण्णे त्ति वा, उट्ठच्छिण्णे त्ति वा।"

जे यावऽण्णे तहप्पगाराहिं भासाहिं बुइया बुइया कुप्पंति माणवा ते यावि तहप्पगारा तहप्पगाराहिं भासाहिं अभिकंख णो भासेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५३३

तहेव काणं काणे त्ति, पंडगं पंडगे त्ति वा।
वाहियं वा वि "रोगि" त्ति, तेणं "चोरे" त्ति नो वए॥
एएणऽन्नेण अट्ठेण, परो जेणुवहम्मई।
आयारभावदोसन्नू, न तं भासेज्ज पन्नवं॥

—दस. अ. ७, गा. १२-१३

(१२) भस्मकरोग वालों को भस्मक रोगी,
(१३) कम्पनवात वाले को वाती,
(१४) पीठसर्पी-पंगु को पीठसर्पी,
(१५) श्लीपदरोग वाले को हाथीपगा,
(१६) मधुमेह वाले को मधुमेही, कहकर पुकारना, अथवा जिसका हाथ कटा है उसको हाथकटा, पैर कटे को पैरकटा, नाक कटा हुआ हो तो नकटा, कान कट गया हो उसे कनकटा और ओठ कटा हुआ हो उसे ओठकटा कहना।

ये और अन्य जितने भी प्रकार के हों, उन्हें इस प्रकार की (अपमानजनक) भाषाओं से सम्बोधित करने पर वे व्यक्ति दुःखी या कुपित हो जाते हैं। अतः ऐसा विचार करके उन लोगों को (जैसे वे हों उन्हें वैसी) भाषा से सम्बोधित न करे।

इसी प्रकार काने को काना, नपुंसक को नपुंसक, रोगी को रोगी और चोर को चोर न कहे।

आचार (वचन-नियमन) सम्बन्धी भाव-दोष (चित्त के प्रद्वेष या प्रमाद) को जानने वाला प्रज्ञावान् पुरुष पूर्व श्लोकोक्त अथवा इसी कोटि की दूसरी भाषा, जो दूसरे को अप्रिय लगे, न बोले।

वप्पाइसु सावज्ज भासा णिसेहो—

८२५. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जहा वेगतियाइं रूवाइं पासेज्जा, तं जहा-वप्पाणि वा-जाव-गिहाणि वा तहा वि ताइं णो एवं वदेज्जा, तं जहा—"सुकडे त्ति वा, सुट्ठुकडे त्ति वा, साहुकडे त्ति वा, कल्लाणं त्ति वा, करणिज्जे त्ति वा।" एयप्पगारं भासं सावज्जं-जाव-भूतोवघातियं अभिकंख णो भासेज्जा। —आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५३५

प्राकार आदि के सम्बन्ध में सावद्य भाषा का निषेध—

८२५. साधु या साध्वी यद्यपि कई रूपों को देखते हैं, जैसे कि प्राकार—यावत्—भवन आदि, इनके विषय में ऐसा न कहें, जैसे कि—"यह अच्छा बना है, भली भाँति तैयार किया गया है, सुन्दर बना है, यह कल्याणकारी है, यह करने योग्य है" इस प्रकार की सावद्य—यावत्—जीवोपघातक भाषा न बोलें।

उवक्खडे असणाइए सावज्ज भासा णिसेहो—

८२६. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा असणं वा-जाव-साइमं वा उवक्खडियं पेहाए तहा वि तं णो एवं वदेज्जा, तं जहा—"सुकडे त्ति वा, सुट्ठुकडे त्ति वा, साहुकडे त्ति वा, कल्लाणे त्ति वा, करणिज्जे त्ति वा।" एतप्पगारं भासं सावज्जं-जाव-भूतोवघातियं अभिकंख णो भासेज्जा।[1]

—आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५३७

उपस्कृत अशनादि के सम्बन्ध में सावद्य भाषा का निषेध—

८२६. साधु या साध्वी अशन—यावत्—स्वादिम आहार को देखकर इस प्रकार न कहे, जैसे कि—"यह आहारादि पदार्थ अच्छा बना है, या सुन्दर बना है, अच्छी तरह तैयार किया गया है, या कल्याणकारी है और अवश्य करने (खाने) योग्य है।" इस प्रकार की भाषा साधु या साध्वी सावद्य—यावत्—जीवोपघातक भाषा जानकर न बोले।

परिवुड्ढकाइए माणुस्साइए सावज्ज भासा णिसेहो—

८२७. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा मणुस्सं वा गोणं वा महिसं वा मिगं वा पसुं वा पक्खि वा सरीसिवं वा जलयरं वा सत्तं

पुष्ट शरीर वाले मनुष्य आदि के सम्बन्ध में सावद्य भाषा का निषेध—

८२७. साधु या साध्वी परिपुष्ट शरीर वाले किसी मनुष्य, सांड, भैंसे, मृग या पशु, पक्षी, सर्प या जलचर अथवा किसी प्राणी को

१ सुकडे त्ति सुपक्के त्ति, सुछिन्ने सुहडे मडे। सुनिट्ठिए सुलट्ठे त्ति, सावज्जं वज्जए मुणी॥ —दस. अ. ७, गा. ४१

परिवूढकायं पेहाए णो एवं वदेज्जा— "थुल्ले ति वा, पमेतिले ति वा, वट्टे ति वा, वज्झे ति वा, पादिमे ति वा।" एतप्पगारं भासं सावज्जं-जाव-भूतोवघातियं अभिकंख णो भासेज्जा।[1] —आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५३९

देखकर ऐसा न कहे कि यह स्थूल (मोटा) है, इसके शरीर में बहुत चर्बी-मेद है, यह गोलमटोल है, यह वध या वहन करने (बोझा ढोने) योग्य है, यह पकाने योग्य है। इस प्रकार की सावद्य—यावत्—जीवोपघातक भाषा जानकर प्रयोग न करे।

गो आइसु सावज्ज भासा णिसेहो—

८२८. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा विरूवरूवाओ गाओ पेहाए णो एवं वदेज्जा, तं जहा —"गाओ दोज्झा ति वा, दम्मा ति वा, गोरहगा ति वा, वाहिमा ति वा, रहजोग्गा ति वा"[2] एतप्पगारं भासं सावज्जं-जाव-भूतोवघातियं अभिकंख णो भासेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५४१

गाय आदि के सम्बन्ध में सावद्य भाषा का निषेध—

८२८. साधु या साध्वी नाना प्रकार की गायों तथा गोजाति के पशुओं को देखकर ऐसा न कहे—कि ये गायें दुहने योग्य हैं, अथवा इनको दुहने का समय हो रहा है, तथा यह बैल दमन करने योग्य है, यह वृषभ छोटा है, या यह वहन करने योग्य है, यह रथ में जोतने योग्य है, इस प्रकार की सावद्य—यावत्—जीवोपघातक भाषा जानकर प्रयोग न करे।

उज्जाणाइसु सावज्ज भासा णिसेहो—

८२९. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा तहेव गंतुमुज्जाणाइं पव्वयाइं वणाणि वा रुक्खा महल्ला पेहाए णो एवं वदेज्जा, तं जहा— "पासायजोग्गा ति वा, तोरणजोग्गा ति वा, गिहजोग्गा ति वा, फलितजोग्गा ति वा, अग्गलजोग्गा ति वा, णावाजोग्गा ति वा, उदगदोणिजोग्गा ति वा, पीढ-चंगेबर-णंगल-कुलिय-जंतलट्ठी-णाभि-गंडी-आसणजोग्गा ति वा, सयण-जाण-उवस्सयजोग्गा ति वा।" एतप्पगारं भासं सावज्जं-जाव-भूतोवघातियं अभिकंख णो भासेज्जा।[1]

—आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५४३

उद्यान आदि के सम्बन्ध में सावद्य भाषा का निषेध—

८२९. साधु या साध्वी किसी प्रयोजनवश किन्हीं बगीचों में, पर्वतों पर या वनों में जाकर वहाँ बड़े-बड़े वृक्षों को देखकर ऐसे न कहे, कि—"यह वृक्ष (काटकर) मकान आदि में लगाने योग्य है, यह तोरण—नगर का मुख्य द्वार बनाने योग्य है, यह घर बनाने योग्य है, यह फलक (तख्त) बनाने योग्य है, इसकी अर्गला बन सकती है, या नाव बन सकती है, पानी की बड़ी कुंडी अथवा छोटी नौका बन सकती है, अथवा यह वृक्ष-चौकी (पीठ) काष्ठ-मयी पात्री, हल, कुलिक, यंत्रयष्टी (कोल्हू) नाभि काष्ठमय अहरन, काष्ठ का आसन बनाने के योग्य है अथवा काष्ठशय्या (पलंग) रथ आदि यान उपाश्रय आदि के निर्माण के योग्य है। इस प्रकार की सावद्य—यावत्—जीवोपघातिनी भाषा जानकर साधु न बोले।

वणफलेसु सावज्ज भासा णिसेहो—

८३०. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा बहुसंभूता वणफला पेहाए तहा वि ते णो एवं वदेज्जा, तं जहा—"पक्काइं वा, पायखज्जाइं वा, वेलोतियाइं वा, टालाइं वा, वेहियाइं वा।"[4] एतप्पगारं भासं सावज्जं-जाव-भूतोवघातियं अभिकंख णो भासेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५४५

वन-फलों के सम्बन्ध में सावद्य भाषा का निषेध—

८३०. साधु या साध्वी प्रचुर मात्रा में लगे हुए वन फलों को देखकर इस प्रकार न कहे जैसे कि—"ये फल पक गये हैं, या पराल आदि में पकाकर खाने योग्य हैं, ये पक जाने से ग्रहण कालोचित फल हैं, अभी ये फल बहुत कोमल हैं, क्योंकि इनमें अभी गुठली नहीं पड़ी है, ये फल तोड़ने योग्य है या दो टुकड़े करने योग्य है।" इस प्रकार की सावद्य—यावत्—जीवोपघातिनी भाषा जानकर न बोले।

---

१ तहेव मणुसं पसुं, पक्खि वा वि, सरीसिवं। थूले पमेइले वज्झे, पाइमे त्ति य नो वए॥ —दस. अ. ७, गा. २२

२ तहेव गाओ दुज्झाओ दम्मा गोरहग त्ति य। वाहिमा रहजोग्ग त्ति नेवं भासेज्ज पण्णवं॥ —दस. अ. ७, गा. २४

३ तहेव गंतुमुज्जाणं पव्वयाणि वणाणि य। रुक्खा महल्ल पेहाए, नेवं भासेज्ज पण्णवं॥
अलं पासायखंभाणं तोरणाण गिहाण य। फलिहऽग्गल-नावाणं अलं उदगदोणिणं॥
पीढए चंगबेरे य नंगले मइयं सिया। जंतलट्ठी व नाभी वा गंडिया व अलं सिया॥
आसणं सयणं जाणं होज्जा वा किंचुवस्सए। भूओवघाइणिं भासं नेवं भासेज्ज पण्णवं॥ —दस. अ. ७, गा. २६-२९

४ तहा फलाइं पक्काइं पायखज्जाइं नो वए। वेलोइयाइं टालाइं वेहिमाइं ति नो वए॥ —दस. अ. ७, गा. ३२

ओसहिसु सावज्ज भासा णिसेहो—

८३१. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा बहुसंभूताओ ओसहीए पेहाए तहा वि ताओ णो एवं वदेज्जा—तं जहा—"पक्का ति वा, णीलिया ति वा, छवीया ति वा, लाइमा ति वा, भज्जिमा ति वा, बहुखज्जा ति वा।" एतप्पगारं भासं सावज्जं-जाव-भूतोवघातियं अभिकंख णो भासेज्जा।[1]

—आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५४७

औषधियों के सम्बन्ध में सावद्य भाषा का निषेध—

८३१. साधु या साध्वी बहुत मात्रा में पैदा हुई औषधियों (गेहूँ, चावल आदि के लहलहाते पौधों) को देखकर यों न कहे, जैसे कि—ये पक गई है, वा ये अभी कच्ची या हरी हैं, ये छवि (फली) वाली हैं, ये अब काटने योग्य हैं, ये भूनने या सेकने योग्य है, इनमें बहुत-सी खाने योग्य हैं, या चिवड़ा बनाकर खाने योग्य हैं। इस प्रकार की सावद्य यावत्—जीवोपघातिनी भाषा जानकर न बोलें।

सद्दाइसु सावज्ज भासा णिसेहो—

८३२. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा जहा वेगतियाइं सद्दाइं सुणेज्जा तहा वि ताइं णो एवं वदेज्जा—तं जहा—"सुसद्दे ति वा, दुसद्दे ति वा।" एतप्पगारं भासं सावज्जं-जाव-भूतोवघातियं अभिकंख णो भासेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ४, उ. २, सु. ५४९

शब्दादि के सम्बन्ध में सावद्य भाषा का निषेध—

८३२. साधु या साध्वी यद्यपि कई शब्दों को सुनते हैं, तथापि उनके विषय में (राग-द्वेष युक्त भाव से) यों न कहे, जैसे कि—यह मांगलिक शब्द है, या यह अमांगलिक शब्द है। इस प्रकार की सावद्य—यावत्—जीवोपघातक भाषा जानकर न बोले।

विधि-निषेध-कल्प—३

वत्तव्वा अवत्तव्वा य भासा—

८३३. चउण्हं खलु भासाणं, परिसंखाय पण्णवं।
दोण्हं तु विणयं सिक्खे दो न भासेज्ज सव्वसो॥

जा य सच्चा अवत्तव्वा, सच्चामोसा य जा मुसा।
जा य बुद्धेहिऽणाइण्णा, न तं भासेज्ज पन्नवं॥

—दस. अ. ७, गा. १-२

कहने योग्य और नहीं कहने योग्य भाषा—

८३३. प्रज्ञावान साधु (या साध्वी) (सत्या आदि) चारों ही भाषाओं को सभी प्रकार से जानकर (दो उत्तम) भाषाओं का शुद्ध प्रयोग (विनय) करना सीखे और (शेष) दो (अधम) भाषाओं को सर्वथा न बोले।

तथा जो भाषा सत्य है, किन्तु (सावद्य या हिंसाजनक होने से) अवक्तव्य (बोलने योग्य नहीं) है, जो सत्या-मृषा (मिश्र) है, तथा मृषा है एवं जो (सावद्य) असत्यामृषा (व्यवहार भाषा) है, (किन्तु) तीर्थंकरदेवों (बुद्धों) के द्वारा अनाचीर्ण है उसे भी प्रज्ञावान साधु न बोले।

दाणविसाए भासा विवेगो—

८३४. तहागिरं समारंभ अत्थि पुण्णं ति णो वदे।
अहवा नत्थि पुण्णं ति, एवमेयं महब्भयं॥

दाणट्ठयाए जे पाणा, हम्मंति तस-थावरा।
तेसिं सारक्खणट्ठाए, तम्हा अत्थि त्ति णो वए॥

जेसिं तं उवकप्पेंति, अण्ण-पाणं तहाविहं।
तेसिं लाभंतरायं ति, तम्हा णत्थि त्ति णो वदे॥

दान सम्बन्धी भाषा-विवेक—

८३४. (सचित्त अन्न या जल देने पर पुण्य होता है या नहीं) ऐसे प्रश्न को सुनकर उत्तर देते हुए पुण्य होता ही है, ऐसा श्रमण न कहे, अथवा पुण्य होता ही नहीं है), ऐसा कहना भी श्रमण के लिए महाभयदायक है।

क्योंकि सचित्त अन्न या जल देने में जो त्रस और स्थावर प्राणी मारे जाते हैं, अतः उनकी रक्षा के लिए पुण्य होता ही है, ऐसा भी श्रमण न कहे।

जिन प्राणियों को सचित्त अन्न-पानी दिया जा रहा है उनके लाभ में अन्तराय न हो इसलिए पुण्य होता ही नहीं है, यह भी साधु न कहे।

---

१ तहोसहीओ पक्काओ नीलियाओ छवी इ य। लाइमा भज्जिमाओ त्ति पिहुखज्ज त्ति नो वए॥ —दस. अ. ७, गा. ३४

जे य दाणं पसंसंति, वहमिच्छंति पाणिणं ।
जे य णं पडिसेहंति, वित्तिच्छेयं करंति ते ॥

जो दान (सचित्त पदार्थों के आरम्भ से जन्य वस्तुओं के दान) की प्रशंसा करते हैं वे प्राणिवध की इच्छा करते हैं, जो दान का निषेध करते हैं, वे अनेक जीवों की वृत्ति का छेदन (जीविका भंग) करते हैं ।

दुहओ वि ते ण भासंति, अत्थि वा नत्थि वा पुणो ।
अयं रयस्स हेच्चाणं, णिव्वाणं पाउणंति ते ॥

—सूय. सु. १. अ. ११. गा. १७-२१

साधु उक्त (सचित्त पदार्थों के आरम्भ से जन्य वस्तुओं के) दान में पुण्य होता है या नहीं होता है, ये दोनों बातें नहीं कहते हैं । इस प्रकार कर्मों के आगमन (आस्रव) को त्याग कर वे साधु निर्वाण-मोक्ष को प्राप्त करते हैं ।

अहियगारिणी भासा विवेगो—

८३५. अपुच्छिओ न भासेज्जा, भासमाणस्स अंतरा ।
पिट्ठिमंसं न खाएज्जा, मायामोसं विवज्जए ॥

अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पेज्ज वा परो ।
सव्वसो तं न भासेज्जा, भासं अहियगामिणिं ॥

दिट्ठं मियं असंदिद्धं पडिपुण्णं वियं जियं ।
अयंपिरमणुव्विग्गं, भासं निसिर अत्तवं ॥

आयारपण्णत्तिधरं, दिट्ठिवायमहिज्जगं ।
वइविक्खलियं नच्चा, न तं उवहसे मुणी ॥

—दस. अ. ८, गा. ४६-४९

अहितकारी भाषा विवेक—

८३५. संयमी साधक बिना पूछे उत्तर न दे, दूसरों के बोलने के बीच में बात काट कर न बोले, पीठ पीछे किसी की निन्दा न करे तथा बोलने में मायाचार एवं असत्य को बिलकुल न आने दे ।

जिस भाषा के बोलने से दूसरे को अविश्वास पैदा हो अथवा दूसरे जन क्रुद्ध हो जायें, जिससे किसी का अहित होता हो ऐसी भाषा साधु न बोले ।

आत्मार्थी साधक, जिस वस्तु को जैसी देखी हो वैसी ही परिमित, संदेहरहित, पूर्ण, स्पष्ट एवं अनुभवयुक्त वाणी में बोले । यह वाणी भी वाचालता एवं परदुःखकारी भाव से रहित होनी चाहिये ।

आचार प्रज्ञप्ति को धारण करने वाला तथा दृष्टिवाद को पढ़ने वाला मुनि भी यदि प्रमादवश बोलने में स्खलित हो जाए तो यह जानकर मुनि उपहास न करे ।

साहुविसए भासाविवेगो—

८३६. बहवे इमे असाहू, लोए वुच्चंति साहुणो ।
न लवे असाहुं साहुं त्ति, साहुं साहुं त्ति आलवे ॥
नाणदंसणसंपन्नं, संजमे य तवे रयं ।
एवं गुणसमाउत्तं, संजयं साहुमालवे ॥

—दस. अ. ७, गा. ४८-४९

साधु के सम्बन्ध में भाषा विवेक—

८३६. ये अनेक असाधु जन-साधारण में साधु कहलाते हैं । मुनि असाधु को साधु न कहे, जो साधु हो उसी को साधु कहे ।

ज्ञान और दर्शन से सम्पन्न, संयम और तप में रत—इस प्रकार गुण-समायुक्त संयमी को ही साधु कहे ।

संखडी आइसु भासा विवेगो—

८३७. तहेव संखडिं नच्चा, किच्चं कज्जं ति नो वए ।
तेणगं वा वि वज्झे त्ति, सुतित्थे त्ति य आवगा ॥

संखडिं संखडिं बूया, पणियट्ठ त्ति तेणगं ।
बहुसमाणि तित्थाणि, आवगाणं वियागरे ॥

—दस. अ. ७, गा. ३६-३७

संखडि आदि के सम्बन्ध में भाषा विवेक—

८३७. (इसी प्रकार) दयालु साधु संखडी (जीमनवार) और कृत्य-मृतभोज को जानकर—ये करणीय हैं, चोर मारने योग्य है, और नदी अच्छी तरह से तैरने योग्य अथवा अच्छे घाट वाली है—इस प्रकार न कहे ।

(प्रयोजनवश कहना हो तो) संखड़ी को संखड़ी, चोर को पणितार्थ (धन के लिए जीवन की बाजी लगाने वाला) और "नदी के घाट प्रायः सम हैं"—इस प्रकार कहा जा सकता है ।

णईसु भासा विवेगो—

८३८. तहा नईओ पुण्णाओ, कायतिज्ज त्ति नो वए ।
नावाहिं तारिमाओ त्ति, पाणिपेज्ज त्ति नो वए ॥

नदियों के सम्बन्ध में भाषा-विवेक—

८३८. तथा नदियां जल से भरी हुई हैं, शरीर से तिरकर पार करने योग्य हैं, नौका के द्वारा पार करने योग्य हैं और तट पर बैठे हुए प्राणी उनका जल पी सकते हैं—इस प्रकार न कहे ।

बहुवाहडा अगाहा, बहुसलिलुप्पिलोदगा।
बहुवित्थडोदगा यावि, एवं भासेज्ज पन्नवं ॥

—दस. अ. ७, गा. ३८-३९

(प्रयोजनवश कहना हो तो) (नदियाँ) जल से प्रायः भरी हुई हैं, प्रायः अगाध हैं, बहु-सलिला हैं, दूसरी नदियों के द्वारा जल का वेग बढ़ रहा है। बहुत विस्तीर्ण जल वाली है—प्रज्ञावान् भिक्षु इस प्रकार कहे।

कयविक्कए भासा विवेगो—

८३९. सव्वुक्कसं परग्घं वा, अउलं नत्थि एरिसं।
अचक्कियमवत्तव्वं, अचितं चेव नो वए ॥

सव्वमेयं वइस्सामि, सव्वमेयं ति नो वए।
अणुवीइ सव्वं सव्वत्थ, एवं भासेज्ज पन्नवं ॥

सुक्कीयं वा सुविक्कीयं, अकेज्जं केज्जमेव वा।
इमं गेण्ह इमं मुंच, पणियं नो वियागरे ॥

अप्पग्घे वा महग्घे वा, कए वा विक्कए वि वा।
पणियट्ठे समुप्पन्ने, अणवज्जं वियागरे ॥

—दस. अ. ७, गा. ४३-४६

क्रय-विक्रय के सम्बन्ध में भाषा विवेक—

८३९. (क्रय-विक्रय के प्रसंग में) यह वस्तु सर्वोत्कृष्ट है, यह बहुमूल्य है, यह तुलनारहित है, इसके समान दूसरी कोई वस्तु नहीं है, इसका मोल करना शक्य नहीं है, इसकी विशेषता नहीं कही जा सकती है, यह अचिन्त्य है—इस प्रकार न कहे।

(कोई सन्देश कहलाए तब) 'मैं यह सब कह दूँगा', (किसी को सन्देश देता हुआ (यह पूर्ण है) अविकल या ज्यों का त्यों है), इस प्रकार न कहे। सब प्रसंगों में पूर्वोक्त सब वचन-विधियों का अनुचिन्तन कर प्रज्ञावान् मुनि वैसे बोले (जैसे कर्मबन्ध न हो)।

विक्रयार्थ रखी हुई वस्तु के बारे में (यह माल) अच्छा खरीदा (बहुत सस्ता आया) (यह माल), अच्छा बेचा (बहुत नफा हुआ), यह बेचने योग्य नहीं है, यह बेचने योग्य है, इस माल को ले (यह मंहगा होने वाला है), इस माल को बेच डाल (यह सस्ता होने वाला है)—इस प्रकार न कहे।

अल्पमूल्य या बहुमूल्य माल के लेने या बेचने के प्रसंग में मुनि अनवद्य वचन बोले—क्रय-विक्रय से विरत मुनियों का इस विषय में कोई अधिकार नहीं है, इस प्रकार कहे।

भाषा समिति के प्रायश्चित्त—४

अप्पफरुसवयणस्स पायच्छित्तसुत्तं—

८४०. जे भिक्खू लहुसगं फरुसं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. २, सु. १८

अल्प कठोर वचन कहने का प्रायश्चित्त सूत्र—

८४०. जो भिक्षु अल्प कठोर वचन कहता है, कहलवाता है, या कहने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

आगाढाइवयणस्स पायच्छित्तसुत्तं—

८४१. जे भिक्खू भिक्खूं आगाढं वयइ वयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू भिक्खूं फरुसं वयइ वयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू भिक्खूं आगाढ-फरुसं वयइ वयंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १५, सु. १-३

आगाढादि वचनों के प्रायश्चित्त सूत्र—

८४१. जो भिक्षु भिक्षु को अपशब्द कहता है, कहलवाता है, कहने के लिए अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु भिक्षु को कठोर शब्द कहता है, कहलवाता है, कहने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु भिक्षु को अपशब्द और कठोर शब्द कहता है, कहलवाता है, कहने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

एषणा समिति—१

एसणा समिइ—

८४२. **पिंडं सेज्जं च वत्थं च, चउत्थं पायमेव य।**
अकप्पियं न इच्छेज्जा, पडिग्गाहेज्ज कप्पियं॥

—दस. अ. ६, गा. ४७

एषणा समिति—

८४२. साधु या साध्वी अकल्पनीय पिण्ड (आहार) शय्या (वसति उपाश्रय या धर्मस्थानक) वस्त्र (इन तीन) और चौथे पात्र को ग्रहण करने की इच्छा न करे, ये कल्पनीय हों तो ग्रहण करे।

पिंडैषणा—स्वरूप एवं प्रकार—२

सव्वदोसविप्पमुक्कआहारसरूवं—

८४३. **प०—अह भंते! सत्थातीतस्स सत्थपरिणामितस्स एसियस्स वेसियस्स सामुदाणियस्स पाणभोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते?**

उ०—गोयमा! जे णं णिग्गंथे वा णिग्गंथी वा निक्खित्त सत्थमुसले ववगतमाला वण्णगविलेवणे ववगत-चुय-चइय-चत्तदेहं जीवविप्पजढं अकयमकारियमसंकप्पियमणाहूत-मकीतकडमणुद्दिट्ठं नवकोडीपरिसुद्धं[1] दसदोसविप्पमुक्कं[2] उग्गम-उप्पायणेसणासु परिसुद्धं[3] वीतिंगालं वीतधूमं संजोयणादोस-विप्पमुक्कं[4] असुरसुरं अचवचवं अदुतमविलंबितं अपरिसाडिं अक्खोवंजण-वणाणुलेवणभूतं संयमजातामायावत्तियं संजमभार-वहणट्ठयाए बिलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं आहारमाहारेति।

एस णं गोयमा! सत्थातीतस्स सत्थपरिणामितस्स-जाव-पाण-भोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते।[5]

—वि. स. ७, उ. १, सु. २०

सर्वदोषमुक्त आहार का स्वरूप—

८४३. प्र० भगवन्! शस्त्रातीत, शस्त्रपरिणामित, एषित, वेषित तथा सामुदानिक भिक्षारूप पान-भोजन का क्या अर्थ कहा गया है?

उ०—गौतम! जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी शस्त्र और मूसलादि का त्याग किये हुए हैं, पुष्पमाला, वर्णक और विलेपन के त्यागी हैं, देय वस्तु आगंतुक जीवों से रहित है, स्वतः मरतः च्यवन और देह त्यागने से जीव रहित है, अर्थात् अचित्त है तथा जो साधु के लिए न बनाये हुए, न बनवाये हुए, असंकल्पित, अनिमंत्रित, साधु के लिए न खरीदे हुए, न बनाये हुए, नव कोटि विशुद्ध, दस प्रकार के दोषों से रहित उद्गम उत्पादन एवं एषणा सम्बन्धी दोषों से सर्वथा रहित, अंगार, धूम, संयोजना दोष रहित, सुड़-सुड़ न करते हुए, चप्-चप् न करते हुए, न जल्दी-जल्दी, न बहुत धीरे-धीरे, इधर-उधर न बिखेरते हुए गाड़ी की धुरी के अंजन अथवा घाव पर लेपन करने के समान, केवल संयम यात्रा के निर्वाह के लिए मर्यादा युक्त संयम के भार को वहन करने के लिए, जैसे सांप सीधा बिल में प्रवेश करता है उसी प्रकार सीधा गले के भीतर उतारते हुए आहार करता है।

गौतम! यही शस्त्रातीत, शस्त्रपरिणामित—**यावत्**—पान भोजन का अर्थ कहा गया है।

---

१ ठाणं अ. ९, सु. ६८१

२ १. संकिय, २. मक्खिय, ३ निक्खित्त, ४. पिहिय, ५. साहरिय, ६-७. दायगुम्मीसे, ८. अपरिणय, ९. लित्त, १०. छड्डिय, एसण दोसा दस हवंति॥
— पिण्डनिर्युक्ति० गा० ५२०

३ तिविहा विसोही पण्णत्ता तं जहा—१. उग्गमविसोही, २. उप्पायणविसोही, ३. एसणाविसोही।—ठाणं. अ. ३, उ. ४, सु. १९८

४ वि. स. ७, उ. १, सु. १८

५ (क) अकयमकारियमणाहूयमणुद्दिट्ठं अकीयकडं णवहि य कोडिहिं सुपरिसुद्धं। दसहि य दोसेहिं—विप्पमुक्कं, उग्गम-उप्पायणेसणासुद्धं, ववगयचुयचावियचत्तदेहं च फासुयं।
—प. सु. २, अ. १, सु. ५

प्र० अह केरिसयं पुणाइ कप्पइ?

(शेष टिप्पण अगले पृष्ठ पर)

१. तयक्खायसमाणे,

२. छल्लिक्खायसमाणे,

३. कट्ठक्खायसमाणे,

४. सारक्खायसमाणे।

१. तयक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स सारक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।

२. सारक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स तयक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।

३. छल्लिक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स कट्ठक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।

४. कट्ठक्खायसमाणस्स णं भिक्खागस्स छल्लिक्खायसमाणे तवे पण्णत्ते।

—ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २४३

(१) त्वक्-खाद—समान=नीरस, रूक्ष, अन्त-प्रान्त आहार भोजी साधु।

(२) छल्ली-खाद—समान=अलेप, आहार भोजी साधु।

(३) काष्ठ-खाद—समान=दूध, दही, घृतादि से रहित (विगयरहित) आहार भोजी साधु।

(४) सार-खाद—समान=दूध, दही, घृतादि से परिपूर्ण आहार भोजी साधु।

(१) त्वक्-खाद समान=भिक्षुक का तप सार—खाद-घुण के समान कहा गया है।

(२) सार-खाद—समान=भिक्षुक का तप त्वक्-खाद-घुण के समान कहा गया है।

(३) छल्ली-खाद—समान=भिक्षुक का तप काष्ठ-खाद घुण के समान कहा गया है।

(४) काष्ठ-खाद—समान=भिक्षुक का तप छल्ली-खाद घुण के समान कहा गया है।

भिक्खावित्तिणा भिक्खुस्स मच्छोवमा—

८५१. चत्तारि मच्छा पण्णत्ता, तं जहा—

१. अणुसोयचारी,

२. पडिसोयचारी,

३. अंतचारी,

४. मज्झचारी।

एवामेव चत्तारि भिक्खागा पण्णत्ता, तं जहा—

१. अणुसोयचारी,

२. पडिसोयचारी

३. अंतचारी,

४. मज्झचारी।

—ठा. अ. ४, उ. ४, सु. ३५०

भिक्षावृत्ति के निमित्त से भिक्षु को मत्स्य की उपमा—

८५१. मत्स्य चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

(१) अनुस्रोतचारी—जल प्रवाह के अनुकूल चलने वाला मत्स्य—

(२) प्रतिस्रोतचारी—जल प्रवाह के प्रतिकूल चलने वाला मत्स्य।

(३) अन्तचारी—जल प्रवाह के किनारे किनारे चलने वाला मत्स्य।

(४) मध्यचारी—जलप्रवाह के मध्य में चलने वाला मत्स्य।

इसी प्रकार भिक्षु भी चार प्रकार के कहे गये हैं जैसे—

अनुस्रोतचारी—उपाश्रय से लगाकर सीधी गली में स्थित घरों से भिक्षा लेने वाला।

(२) प्रतिस्रोतचारी—गली के अन्त से लगाकर उपाश्रय तक स्थित घरों से भिक्षा लेने वाला।

(३) अन्तचारी—नगर ग्रामादि के अन्त भाग में स्थित घरों से भिक्षा लेने वाला।

(४) मध्यचारी—नगर-ग्रामादि के मध्य में स्थित घरों से भिक्षा लेने वाला।

भिक्खावित्तिणा भिक्खुस्स विहगोवमा—

८५२. चत्तारि पक्खी पण्णत्ता, तं जहा—

१. णिवतित्ता णाममेगे णो परिवइत्ता,

भिक्षावृत्ति के निमित्त से भिक्षु को पक्षी की उपमा—

८५२. पक्षी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

(१) निपतिता, न परिव्रजिता—कोई पक्षी अपने घोंसले से नीचे उतर सकता है, किन्तु (बच्चा होने से) उड़ नहीं सकता।

२. परिवइत्ता णाममेगे णो णिवतित्ता,

(२) परिव्रजिता, न निपतिता—कोई पक्षी अपने घोंसले से उड़ सकता है, किन्तु (भीरु होने से) नीचे नहीं उतर सकता।

३. एगे णिवतित्ता वि परिवइत्ता वि,

(३) निपतिता भी, परिव्रजिता भी—कोई समर्थ पक्षी अपने घोंसले से नीचे भी उड़ सकता है और ऊपर भी उड़ सकता है।

४. एगे णो णिवतित्ता णो परिवइत्ता,

(४) न निपतिता, न परिव्रजिता—कोई पक्षी (अतीव बाल्यावस्था होने के कारण) अपने घोंसले से न नीचे उतर सकता है और न ऊपर ही उड़ सकता है।

एवामेव चत्तारि भिक्खागा पण्णत्ता, तं जहा—

इसी प्रकार भिक्षु भी चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे —

१. णिवतित्ता णाममेगे णो परिवइत्ता,

(१) निपतिता, न परिव्रजिता—कोई भिक्षु भिक्षा के लिए निकलता है, किन्तु रुग्ण आदि होने के कारण अधिक घूम नहीं सकता।

२. परिवइत्ता णाममेगे णो णिवतित्ता,

(२) परिव्रजिता, न निपतिता—कोई भिक्षु भिक्षा के लिए घूम सकता है, किन्तु स्वाध्यायादि में संलग्न रहने से भिक्षा के लिए निकल नहीं सकता।

३. एगे णिवतित्ता वि परिवइत्ता वि,

(३) निपतिता भी, परिव्रजिता भी—कोई समर्थ भिक्षुक भिक्षा के लिए निकलता भी है और घूमता भी है।

४. एगे णो णिवतित्ता णो परिवइत्ता।

—ठाणं. अ. ४, उ. ४, सु. ३५२

(४) न निपतिता, न परिव्रजिता—कोई नवदीक्षित अल्प-वयस्क भिक्षुक न भिक्षा के लिए निकलता है और न घूमता ही है।

चउव्विहो आहारो—

चार प्रकार के आहार—

८५३. मणुस्साणं चउव्विहे आहारे पन्नत्ते, तं जहा—

१. असणे, २. पाणे,

३. खाइमे,

४. साइमे।[1]

८५३. मनुष्यों का आहार चार प्रकार का होता है—

(१) अशन-अन्न आदि, (२) पान-पानी,

(३) खादिम-फल, मेवा आदि,

(४) स्वादिम-ताम्बूल, लवंग इलायची आदि।

चउव्विहे आहारे पन्नत्ते, तं जहा—

१. उवक्खरसंपन्ने,

२. उवक्खडसंपन्ने,

३. सभावसंपन्ने,

४. परिजुसितसंपन्ने।

—ठाणं. अ. ४, उ. २, सु. २९५

आहार चार प्रकार का कहा गया है, जैसे—

(१) उपस्कार-सम्पन्न—बघार से युक्त मसाले डालकर छौंका हुआ,

(२) उपस्कृत-सम्पन्न—पकाया हुआ भात आदि,

(३) स्वभाव-सम्पन्न—स्वभाव से पका हुआ फल आदि,

(४) पर्युषित-सम्पन्न—रातवासी रखने से जो तैयार हो।

तिविहो आहारो—

तीन प्रकार का आहार—

८५४. तिविहे उवहडे पण्णत्ते, तं जहा—

८५४. उपहृत (खाने के लिए लाया गया) आहार तीन प्रकार का माना गया है, यथा—

---

[1] ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २४०

१. फलिओवहडे,

२. सुद्धोवहडे,

३. संसट्ठोवहडे।[1]

—ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १७८

(१) फलितोपहृत—अनेक प्रकार के व्यंजनों से या खाद्य पदार्थों से मिश्रित आहार।

(२) शुद्धोपहृत—व्यंजन रहित शुद्ध आहार अथवा कांजी या पानी के अल्पलेप से लिप्त आहार।

(३) संसृष्टोपहृत—गृहस्थ ने खाने की इच्छा से आहार हाथ में लिया है किन्तु मुंह में नहीं रखा है—ऐसा आहार।

ओग्गहियआहारप्पयारा—

८५५. तिविहे ओग्गहिए पण्णत्ते, तं जहा—

१. जं च ओगिण्हइ,

२. जं च साहरइ,

३. जं च आसगंसि पक्खिवइ।[2] एगे एवमाहंसु।

एगे पुण एवमाहंसु।

दुविहे ओग्गहिए पण्णत्ते, तं जहा—

१. जं च ओगिण्हइ,

२. जं च आसगंसि पक्खिवइ।

—वव. उ. ९, सु. ४६

अवगृहीत आहार के प्रकार—

८५५. अवगृहीत (परोसने के लिए रसोईघर या कोठार से निकाला हुआ) आहार तीन प्रकार का कहा गया है, यथा—

(१) परोसने के लिए ग्रहण किया हुआ।

(२) परोसने के लिए ले जाता हुआ।

(३) बर्तन के मुख में डाला जाता हुआ। कुछ आचार्य ऐसा कहते हैं।

परन्तु कुछ आचार्य ऐसा भी कहते हैं—

अवगृहीत आहार दो प्रकार का है, यथा—

(१) परोसने के लिए ग्रहण किया जाता हुआ।

(२) पुनः बर्तन के मुख में डाला जाता हुआ।

णवविगईओ—

८५६. णव विगतीतो पण्णत्ताओ, तं जहा—

१. खीरं, २. दधिं, ३. णवणीतं, ४. सप्पिं, ५. तेल्लं, ६. गुलो, ७. महुं, ८. मज्जं, ९. मंसं।

—ठाणं. अ. ९, सु. ६७४

विगय विकृति के नौ प्रकार—

८५६. नौ विकृतियाँ कही गई हैं—

(१) दूध, (२) दही, (३) नवनीत (मक्खन), (४) घी, (५) तेल, (६) गुड़, (७) मधु, (८) मद्य, (९) माँस।

अण्णायविगईणप्पगारा—

८५७. चत्तारि गोरसविगतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

खीरं, दहिं, सप्पिं, णवणीतं।

चत्तारि सिणेहविगतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

तेल्लं, घयं, वसा, णवणीतं।

चत्तारि महाविगतीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

महुं, मंसं, मज्जं, णवणीतं।

—ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २७४

विगय के अन्य प्रकार—

८५७. गोरसमय विकृतियाँ चार हैं—

(१) दूध, (२) दही, (३) घृत, (४) नवनीत।

स्नेह (चिकनाई) मय विकृतियाँ चार हैं—

(१) तेल, (२) घृत (३) वसा, (४) नवनीत।

महाविकृतियाँ चार हैं—

(१) मधु, (२) मांस, (३) मद्य, (४) नवनीत।

तिविहा एसणा—

८५८. गवेसणाए गहणे य, परिभोगेसणा य जा।
आहारोवहि सेज्जाए, एए तिन्नि विसोहए॥

तीन प्रकार की एषणा—

८५८. आहार, उपधि और शय्या के विषय में गवेषणा, ग्रहणैषणा और परिभोगैषणा इन तीनों का विशोधन करे।

---

१ वव. उ. ९, सु. ४५

२ ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८८

उग्गमुप्पायणं पढमे, बीए सोहेज्ज एसणं ।
परिभोयंमि चउक्कं, विसोहेज्ज जयं जई ॥

—उत्त. अ. २४, गा. ११-१२

यतनाशील भिक्षु एषणा के सर्वप्रथम उद्गम और उत्पादन दोनों के १६-१६ दोषों का शोधन करे ।

दूसरे में एषणा के १० दोषों का शोधन करे ।

फिर परिभोगैषणा के दोष-चतुष्क (संयोजना, अप्रमाण, अंगारधूम और कारण) का शोधन कर आहार करे ।

नवविहा सुद्धभिक्खा—

८५९. समणेणं भगवता महावीरेणं समणाणं निग्गंथाणं णवकोडि-परिसुद्धे भिक्खे पण्णत्ते, तं जहा—

१. न हणइ,
२. न हणावइ,
३. हणंतं नाणुजाणइ ।
४. न पयइ,
५. न पयावेइ,
६. पयंतं नाणुजाणइ ।
७. न किणइ,
८. न किणावेइ,
९. किणंतं नाणुजाणइ ।[1]

—ठाणं. अ. ९, सु. ६८१

नौ प्रकार की शुद्ध भिक्षा—

८५९. श्रमण भगवान् महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए नौ कोटि परिशुद्ध भिक्षा का निरूपण किया है । जैसे—

(१) हिंसा नहीं करता है,
(२) हिंसा नहीं करवाता है,
(३) हिंसा करने वाले का अनुमोदन नहीं करता है ।
(४) पकाता नहीं है,
(५) पकवाता नहीं है,
(६) पकाने वाले का अनुमोदन नहीं करता है ।
(७) खरीदता नहीं है,
(८) खरीदवाता नहीं है,
(९) खरीदने वाले का अनुमोदन नहीं करता है ।

आहारपायणणिसेहो—

८६०. तहेव भत्त-पाणेसु, पयणे पयावणेसु य ।
पाण-भूयदयट्ठाए, न पये न पयावए ॥

जल-धन्ननिस्सिया जीवा, पुढवी-कट्ठनिस्सिया ।
हम्मन्ति भत्तपाणेसु, तम्हा भिक्खू न पयावए ॥

—उत्त. अ. ३५, गा. १०-११

आहार-पाचन का निषेध—

८६०. भक्त-पान के पकाने और पकवाने में हिंसा होती है, अतः प्राण, भूत, जीव और सत्व की दया के लिए भिक्षु न पकाए और न पकवाए ।

भक्त और पान के पकाने और पकवाने में जल और धान्य के आश्रित तथा पृथ्वी और काष्ठ के आश्रित जीवों का हनन होता है, इसलिए भिक्षु न पकाए न पकवाए ।

छव्विहा गोयरिया—

८६१. छव्विहा गोयरचरिया पण्णत्ता, तं जहा—

१. पेडा,
२. अद्धपेडा,
३. गोमुत्तिया,
४. पतंगविहिया,
५. संबुक्कवट्टा,

छह प्रकार की गोचरी—

८६१. छह प्रकार की गोचरचर्या कही गई है, यथा—

(१) पेटा—चोकोर पेटिका के आकार से घूमते हुए दिशाओं में भिक्षाचर्या करना ।

(२) अर्धपेटा—अर्द्ध पेटिका के आकार के दो दिशाओं में भिक्षाचर्या करना ।

(३) गोमूत्रिका—बैल के मूत्रोत्सर्ग के समान एक इस पंक्ति के घर में और एक सामने वाली पंक्ति के घर में इस क्रम से भिक्षाचर्या करना ।

(४) पतंगवीथिका—पतंगिये के फुदकने के समान बिना किसी क्रम के भिक्षाचर्या करना ।

(५) शंबुकावर्ता—शंख के आवर्तों की तरह घूमते हुये भिक्षाचर्या करना ।

---

१ आ. सु. १, अ. २, उ. ५, सु. ८८

६. गंतुं पच्चागता ।[1]

—ठाणं. अ. ६, सु. ५१४

(६) गत्वाप्रत्यागता—एक गृहपंक्ति के अन्तिम घर तक जाकर वापिस आते हुए ही भिक्षाचर्या करना ।

गवेषणा—३

सुद्ध आहारस्स गवेसणाए-परिभोगेसणाए य उवएसो—

८६२. एसणा समिओ लज्जू, गामे अणियओ चरे ।
अप्पमत्तो पमत्तेहिं, पिंडवायं गवेसए ॥

—उत्त. अ. ६, गा. १६

सुद्धेसणाओ नच्चाणं, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं ।
जायाए घासमेसेज्जा, रसगिद्धे न सिया भिक्खाए ॥

पन्ताणि चेव सेवेज्जा, सीयपिण्डं पुराणकुम्मासं ।
अदु बुक्कसं पुलागं वा, जवणट्ठाए निसेवए मंथु ॥

—उत्त. अ. ८, गा. ११-१२

परिवाडीए न चिट्ठेज्जा, भिक्खू दत्तेसणं चरे ।
पडिरूवेण एसित्ता, मियं कालेण भक्खए ॥

—उत्त. अ. १, गा. ३२

भिक्खू मुयच्चा तह दिट्ठधम्मे,
गामं च णगरं च अणुप्पविस्स ।
से एसणं जाणमणेसणं च,
अण्णस्स पाणस्स अणाणुगिद्धे ॥

—सूय. सु. १, अ. १३, गा. १७

कडेसु घासमेसेज्जा, विऊ दत्तेसणं चरे ।
अगिद्धे विप्पमुक्को य, ओमाणं परिवज्जए ॥

—सूय. सु. १, अ. १, उ. ४, गा. ४

संवुडे से महापण्णे, धीरे दत्तेसणं चरे ।
एसणासमिए णिच्चं, वज्जयंते अणेसणं ॥

—सूय. सु. १, अ. ११, गा. १३

शुद्ध आहार की गवेषणा और उपभोग का उपदेश—

८६२. एषणा समिति के उपयोग में तत्पर लज्जावान् साधु गांवों आदि में नियत निवास रहित होकर विचरण करे । अप्रमादी रहकर वह गृहस्थों से आहार आदि की गवेषणा करे ।

भिक्षु शुद्ध एषणाओं को जानकर अपने आप को उनमें स्थापित करे—अर्थात् उनके अनुसार प्रवृति करे तथा संयम यात्रा के लिए आहार की गवेषणा करे किन्तु रसों में मूच्छित न बने ।

भिक्षु जीवन-यापन के लिए प्रायः रसहीन, शीतल आहार, पुराने उड़द के बाकले, सारहीन, रूखा आहार और बेर का चूर्ण आदि पदार्थों का सेवन करे ।

भिक्षु गृहस्थ के घर (पंक्ति) में खड़ा न रहे, गृहस्थ के द्वारा दिए हुए आहार की एषणा करे, मुनि के वेष में एषणा कर यथा-समय परिमित आहार करे ।

मृत के समान सर्वथा उपशान्त, आत्मधर्मदर्शी भिक्षु ग्राम या नगर में प्रवेश करके एषणीय-अनेषणीय को जानता हुआ अशन पान में आसक्त न हो ।

विद्वान् भिक्षु गृहस्थों द्वारा अपने लिए कृत आहार की याचना करे और प्रदत्त आहार का भोजन करे । वह आहार में अनासक्त और रागद्वेष रहित होकर अन्य का अवमान (तिरस्कार) करने का वर्जन करे ।

यह साधु महान् प्राज्ञ, अत्यन्त धीर और संवृत है, जो गृहस्थ के द्वारा दिया हुआ एषणीय आहारादि पदार्थ ग्रहण करता है तथा जो अनेषणीय आहारादि को वर्जित करता हुआ सदा एषणा समिति से युक्त रहता है ।

---

१ (क) दसा. द. ७, सु. ६१
(ख) अट्ठविहं गोयरग्गं तु—उत्त. अ. ३०, गा. २५ । इस गाथा की टीका में पांचवें भेद के दो उपभेद कहे गये हैं—बाह्य संबुकावर्त और आभ्यंतर शम्बुकावर्त । इस प्रकार सात भेद हो जाते हैं और आठवां ऋजुगति कहा गया है । ये आठ गोचराग्र के प्रकार गिनाये गये हैं ।

सिक्खऊण भिक्खेसणसोहिं संजयाण बुद्धाणं सगासे।
तत्थ भिक्खू सुप्पणिहिंदिए, तिव्वलज्ज गुणवं विहरेज्जासि ॥

—दस. अ. ५, उ. २, गा. ५०

तीर्थंकर या साधुओं से भिक्षा की एषणा शुद्धि को जानकर भिक्षु सभी इन्द्रियों से उपयुक्त होकर उत्कृष्ट संयम गुणों को धारण करके विचरे।

लाभो त्ति ण मज्जेज्जा, अलाभो त्ति ण सोएज्जा,
बहुं पि लद्धुं ण णिहे।

—आ० सु० १, अ० २, उ० ५, सु० ८९ (क)

इच्छित आहारादि प्राप्त होने पर उसका मद न करे। यदि प्राप्त न हो तो खेद न करे। यदि अधिक मात्रा में प्राप्त हो तो उसका संग्रह न करे।

सामुदाणिगी भिक्खा विहाणं—

८६३. **समुयाणं चरे भिक्खू, कुलं उच्चावयं सया।**
नीयं कुलमइक्कम्म, ऊसढं नाभिधारए ॥

—दस. अ. ५, उ. २, गा. २५

सामुदानिकी भिक्षा का विधान—

८६३. भिक्षु सदा उच्च और नीच सभी कुलसमुदाय में भिक्षा लेने जाए, नीचे कुल को छोड़कर उच्च कुल में न जाए।

अन्नायउंछं चरई विसुद्धं, जवणट्ठया समुयाणं च निच्चं।
अलद्धुयं नो परिदेवएज्जा लद्धुं न विकत्थयई स पुज्जो ॥

—दस. अ. ९, उ. ३, गा. ४

जो जीवन-यापन के लिए विशुद्ध सामुदायिक अज्ञात-कुलों से भिक्षाचर्या करता है, जो भिक्षा न मिलने पर खिन्न नहीं होता है, मिलने पर श्लाघा नहीं करता है, वह पूज्य है।

समुयाणं उंछमेसिज्जा, जहासुत्तमणिंदियं।
लाभालाभम्मि संतुट्ठे, पिण्डवायं चरे मुणी ॥

—उत्त. अ. ३५, गा. १६

मुनि सूत्रानुसार अनिन्दित और उंछ—अज्ञात कुलसमुदाय से एषणा करे व लाभ और अलाभ में सन्तुष्ट रहकर आहार आदि की गवेषणा करे।

एसणा कुसलो भिक्खू—

८६४. **जे संणिधाणसत्थस्स खेयण्णे,**
से भिक्खू कालण्णे,
बलण्णे,
मातण्णे,
खेयण्णे,
खणयण्णे,
विणयण्णे,
ससमय-परसमयण्णे,
भावण्णे,
परिग्गहं अममायमाणे,
कालेणुट्ठाई,
अपडिण्णे दुहतो छित्ता णियाति।[1]

—आ. सु. १, अ. ८, उ. ३, सु. २१०

एषणा कुशल भिक्षु—

८६४. जो सम्यग् संयम विधि का ज्ञाता है। वह भिक्षु—

कालज्ञ—करणीयकृत्य के काल को जानने वाला,

बलज्ञ—आत्मबल को जानने वाला,

मात्रज्ञ—ग्राह्य वस्तु की मात्रा को जानने वाला,

खेदज्ञ—जन्म-जरा-रोगादि से होने वाली खिन्नता को जानने वाला,

क्षणज्ञ—भिक्षाचर्या के अवसर को जानने वाला,

विनयज्ञ—ज्ञान-दर्शन-चारित्र के स्वरूप को जानने वाला,

स्वसमय-परसमयज्ञ—स्व-पर सिद्धान्त को जानने वाला,

भावज्ञ—भिक्षा देने वाले के मनोभाव को जानने वाला,

परिग्रह पर ममत्व नहीं करने वाला, उचित समय पर अनुष्ठान करने वाला और अप्रतिज्ञ (भोजन के प्रति संकल्प रहित) हो—वह दोनों बन्धनों (राग और द्वेष) को छेदन करके संयम जीवन से जीता है।

भिक्खुस्स गवेसणाविही—

८६५. **जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं लोगस्स कम्मसमारंभा कज्जंति,**
तं जहा—

भिक्षु की गवेषणा विधि—

८६५. असंयमी पुरुष अनेक प्रकार के शस्त्रों से लोक के लिए (अपने एवं दूसरों के लिए) कर्म समारम्भ (पचन-पाचन आदि क्रियाएँ) करते हैं। जैसे—

---

१ आ. सु. १, अ. २, उ. ५, सु. ८८

अप्पणो से पुत्ताणं, धूयाणं, सुण्हाणं, णातीणं, धातीणं, राईणं, दासाणं, दासीणं, कम्मकराणं, कम्मकरीणं आदेसाए पुढो पहेणाए सामासाए पातरासाए संणिहि-संणिचयो कज्जति, इहमेगेसिं माणवाणं भोयणाए।

अपने लिए पुत्र, पुत्री, पुत्र-वधू, ज्ञातिजन, धाय, राजा, दास, दासी, कर्म करने वाले एवं कर्म करने वाली के लिए, पाहुने आदि के लिए तथा विविध लोगों को देने के लिए एवं सायंकालीन एवं प्रातःकालीन भोजन के लिए इस प्रकार वे कुछ मनुष्यों के भोजन के लिए (दूध, दही आदि पदार्थों का संग्रह) और सन्निचय (चीनी, घृत आदि पदार्थों का संग्रह) करते रहते हैं।

समुट्ठिते अणगारे आरिए आरियपण्णे आरियदंसी अयं संधी त्ति अदक्खु।

संयम-साधना में तत्पर आर्य, आर्यप्रज्ञ और आर्यदर्शी अनगार भिक्षा आदि प्रत्येक क्रिया उचित समय पर ही करता है।

से णाइए, णाइआवए, न समणुजाणए।

वह सदोष आहार को स्वयं ग्रहण न करे, दूसरों से ग्रहण न करवाए तथा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करे।

सव्वामगंधं परिण्णाय णिरामगंधे परिव्वए।

—आ. सु. १, अ. २, उ. ५, सु. ८७-८८

वह अनगार सब प्रकार के आमगंध (अकल्पनीय आहार) का परिवर्जन करता हुआ निर्दोष आहार के लिए गमन करे।

आहार उग्गम-गवेसणा—

८६६. उग्गमं से य पुच्छिज्जा, कस्सऽट्ठा ? केण वा कडं ?।
सोच्चा निस्संकियं सुद्धं, पडिगाहेज्ज संजए॥

—दस. अ. ५, उ. १, गा. ७१

आहार-उद्गम-गवेषणा—

८६६. आहार किसके लिए बनाया है ? किसने बनाया है ? संयत इस प्रकार आहार का उद्गम पूछे। दाता से प्रश्न का उत्तर सुनकर और निःशंकित होकर शुद्ध आहार ले।

सयण-परिजण गिहे गमण विहि णिसेहो—

८६७. भिक्खू य इच्छेज्जा नायविहिं एत्तए,
नो से कप्पइ थेरे अणापुच्छित्ता नायविहिं एत्तए।

कप्पइ से थेरे आपुच्छित्ता नायविहिं एत्तए।
थेरा य से वियरेज्जा-एवं से कप्पइ नायविहिं एत्तए।
थेरा य से नो वियरेज्जा-एवं से नो कप्पइ नायविहिं एत्तए।

जे तत्थ थेरेहिं अविइण्णे नायविहिं एइ, से संतरा छेए वा, परिहारे वा।

नो से कप्पइ अप्पसुयस्स अप्पागमस्स एगाणियस्स नायविहिं एत्तए।

कप्पइ से जे तत्थ बहुस्सुए बब्भागमे तेण सद्धिं नायविहिं एत्तए।

—वव. उ. ६, सु. १-३

स्वजन-परिजन-गृह में जाने के विधि-निषेध—

८६७. भिक्षु या भिक्षुणी यदि स्वजनों के घर जाना चाहे तो—

स्थविरों को पूछे बिना स्वजनों के घर जाना नहीं कल्पता है।

स्थविरों को पूछकर स्वजनों के घर जाना कल्पता है।

स्थविर यदि आज्ञा दे तो स्वजनों के घर जाना कल्पता है।

स्थविर यदि आज्ञा न दें तो स्वजनों के घर पर जाना नहीं कल्पता है।

स्थविरों की आज्ञा के बिना यदि स्वजनों के घर जावें तो वे दीक्षाछेद या परिहार प्रायश्चित्त के पात्र होते हैं।

अल्पश्रुत और अल्पआगमज्ञ अकेले भिक्षु और अकेली भिक्षुणी को स्वजनों के घर जाना नहीं कल्पता है। किन्तु समुदाय में जो बहुश्रुत और बहु-आगमज्ञ भिक्षु या भिक्षुणी हों उनके साथ स्वजनों के घर जाना कल्पता है।

सजण गिहे आहार गहण विहि णिसेहो—

८६८. तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते चाउलोदणे पच्छाउत्ते भिलिंगसूवे, कप्पइ से चाउलोदणे पडिगाहित्तए, नो से कप्पइ भिलिंगसूवे पडिगाहित्तए।

तत्थ से पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते भिलिंगसूवे, पच्छाउत्ते चाउलोदणे, कप्पइ से भिलिंगसूवे पडिगाहित्तए, नो से कप्पइ चाउलोदणे पडिगाहित्तए।

स्वजन के घर से आहार ग्रहण का विधि-निषेध—

८६८. गृहस्थ के घर में निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के आगमन से पूर्व चावल रंधे हुए हों और दाल पीछे से रंधे तो चावल लेना कल्पता है, किन्तु दाल लेना नहीं कल्पता है।

आगमन से पूर्व दाल रंधी हुई हो और चावल पीछे से रंधे तो दाल लेना कल्पता है किन्तु चावल लेना नहीं कल्पता है।

तत्थ से पुव्वागमणेण दो वि पुव्वाउत्ताइं, कप्पंति से दोऽवि पडिगाहित्तए।

तत्थ से पुव्वागमणेणं दो वि पच्छाउत्ताइं, एवं नो से कप्पति दोऽवि पडिगाहित्तए।

जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पुव्वाउत्ते से कप्पइ पडिगाहित्तए।

जे से तत्थ पुव्वागमणेणं पच्छाउत्ते नो से कप्पइ पडिगाहित्तए।[1]

—वव. उ. ६, सु. ४-६

आगमन से पूर्व दाल और चावल दोनों रंधे हुए हों तो दोनों लेने कल्पते हैं।

किन्तु बाद में रंधे हों तो दोनों लेने नहीं कल्पते हैं।

(तात्पर्य यह है कि) आगमन से पूर्व जो आहार अग्नि आदि से दूर रखा हुआ हो वह लेना कल्पता है और जो आगमन के बाद में अग्नि आदि से दूर रखा गया हो वह लेना नहीं कल्पता है।

सयणकुले अकाले गमणणिसेहो—

८६९. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, समाणे वा, वसमाणे वा, गामाणुगामं दूइज्जमाणे वा, से ज्जं पुण जाणेज्जा—गामं वा-जाव-रायहाणिं वा।

इमंसि खलु गामंसि वा-जाव-रायहाणिंसि संतेगतियस्स भिक्खुस्स पुरेसंथुया वा, पच्छासंथुया वा परिवसंति,

तं जहा—गाहावती वा-जाव-कम्मकरीओ वा,

तहप्पगाराइं कुलाइं णो पुव्वामेव भत्ताए वा, पाणाए वा णिक्खमेज्ज वा, पविसेज्ज वा।

केवली बूया—आयाणमेयं।

पुरा पेहाए तस्स अट्ठाए परो असणं वा-जाव-साइमं वा, उवकरेज्ज वा, उवक्खडेज्ज वा।

अह भिक्खू पुव्वोवदिट्ठा एस पतिण्णा, एस हेतु, एस उवएसे, जं णो तहप्पगाराइं कुलाइं पुव्वामेव भत्ताए वा, पाणाए वा, णिक्खमेज्ज वा, पविसेज्ज वा।

सेत्तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा, एगंतमवक्कमित्ता-अणावाय-मसंलोए चिट्ठेज्जा।

से तत्थ कालेणं अणुपविसेज्जा, अणुपविसित्ता-तत्थितरा-तरेहिं कुलेहिं सामुदाणियं एसियं वेसियं पिंडवायं एसित्ता आहारं आहारेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ९, सु. ३९१

स्वजन के घर पर अकाल में जाने का निषेध—

८६९. भिक्षु या भिक्षुणी स्थिरवास रहे हों, मासकल्प आदि रहे हों या ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए पहुँचे हो वे उस ग्राम —**यावत्**—राजधानी के सम्बन्ध में जाने कि—

इस गाँव में —**यावत्**—राजधानी में किसी एक भिक्षु के पूर्व-परिचित (माता-पिता आदि) या पश्चात् परिचित (सासु-ससुर आदि) गृहस्वामी—**यावत्**—नौकर-नौकरानियाँ आदि श्रद्धालुजन रहते हैं तो इस प्रकार के घरों में भिक्षाकाल से पूर्व आहार-पानी के लिए निष्क्रमण—प्रवेश न करे।

केवली भगवान् ने कहा है—"यह कर्मों के आने का कारण है।"

क्योंकि समय से पूर्व अपने घर में साधु या साध्वी को आए देखकर वह उसके लिए अशन—**यावत्**—स्वादिम बनाने के लिए सभी साधन जुटाएगा, अथवा आहार तैयार करेगा।

अतः भिक्षुओं के लिए तीर्थंकरों द्वारा पूर्वोपदिष्ट यह प्रतिज्ञा है, यह हेतु है, यह उपदेश है कि वह इस प्रकार के घरों में आहार-पानी के लिए भिक्षाकाल से पूर्व निष्क्रमण प्रवेश न करे।

वह परिचित घरों को जानकर एकान्त स्थान में चला जाए, वहाँ जाकर जहाँ कोई आता-जाता और देखता न हो, ऐसे एकान्त स्थल में खड़ा हो जाए ऐसे स्वजनादि के ग्राम आदि में भिक्षा के समय पर ही प्रवेश करे और अन्य-अन्य घरों से सामुदानिक एषणीय तथा साधु के वेष से प्राप्त निर्दोष आहार प्राप्त करके उसका उपभोग करे।

सजण-परिजण-गिहे अकाले गमण पायच्छित्त सुत्तं—

८७०. जे भिक्खू समाणे वा, वसमाणे वा, गामाणुगामं दूइज्जमाणे वा, पुरे संथुइयाणि वा, पच्छा संथुइयाणि वा कुलाइं पुव्वामेव भिक्खायायरियाए अणुपविसइ, अणुपविसंतं वा साइज्जइ।

स्वजन परिजन के घर असमय में जाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

८७०. जो भिक्षु स्थिरवास रहा हो मासकल्प आदि रहा हो या ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए पहुँचा हो वहाँ मातृकुलों में या श्वसुर कुलों में भिक्षा-काल के पूर्व ही प्रवेश करता है, प्रवेश करवाता है या प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है।

---

१ दसा द. ८, सु. ४१-४३

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. २, सु. ३९

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

गवेसणाकाले गमणविही—

८७१. संपत्ते भिक्खकालम्मि, असंभंतो अमुच्छिओ ।
इमेण कमजोगेण, भत्तपाणं गवेसए ॥

से गामे वा नगरे वा, गोयरग्गगओ मुणी ।
चरे मंदमणुव्विग्गो, अव्वक्खित्तेण चेयसा ॥

पुरओ जुगमायाए, पेहमाणो महिं चरे ।
वज्जंतो बीय-हरियाइं, पाणे य दग-मट्टियं ॥

—दस. अ. ५, उ. १, गा. १-३

गवेषणाकाल में जाने की विधि—

८७१. भिक्षा का काल प्राप्त होने पर मुनि उतावल न करते हुए, मूर्च्छा रहित होकर इस—आगे कहे जाने वाले, क्रम—योग से भक्त पान की गवेषणा करे ।

गाँव या नगर में गोचरी के लिए निकला हुआ मुनि उद्वेग रहित होकर एकाग्र चित्त से धीमे-धीमे चले ।

आगे युग-प्रमाण भूमि को देखता हुआ और बीज, हरियाली प्राणी, जल तथा सजीव-मिट्टी को टालता हुआ चले ।

गवेसणाकाले आयरणीय-किच्चाइं—

८७२. पविसित्तु परागारं, पाणट्ठा भोयणस्स वा ।
जयं चिट्ठे मियं भासे, ण य रूवेसु मणं करे ॥

बहुं सुणेइ कण्णेहिं, बहुं अच्छीहिं पेच्छइ ।
न य दिट्ठं सुयं सव्वं, भिक्खू अक्खाउमरिहइ ॥

सुयं वा जइ वा दिट्ठं, न लवेज्जोवघाइयं ।
न य केणइ उवाएणं, गिहिजोगं समायरे ॥

—दस. अ. ८, गा. १९-२१

कण्णसोक्खेहिं सद्देहिं, पेमं नाभिनिवेसए ।
दारुणं कक्कसं फासं, काएणं अहियासए ॥

—दस. अ. ८, गा. २६

अतितिणे अचवले अप्पभासी मियासणे ।
हवेज्ज उयरे दंते, थोवं लद्धुं न खिसए ॥

—दस. अ. ८, गा. २९

गवेषणाकाल में आचरणीय कृत्य—

८७२. मुनि गृहस्थ के घर में प्रवेश करके आहार या पानी लेने के लिए यतनापूर्वक खड़ा रहे, परिमित बोले और रूप देखने का भी मन न करे ।

भिक्षु कानों से बहुत सुनता है, आँखों से बहुत देखता है, किन्तु सब देखा और सुना अन्य किसी को कहना उचित नहीं होता है ।

सुनी हुई या देखी हुई घटना के बारे में साधु आघात-लगने वाले वचन न कहे और किसी भी प्रकार गृहस्थों जैसा आचरण न करे ।

कानों के लिए सुखकर शब्दों में प्रेम स्थापन न करे, दारुण और कर्कश स्पर्श को काया से (समभावपूर्वक) सहन करे ।

(साधु आहार न मिलने या नीरस आहार मिलने पर गुस्से में आकर) तनतनाहट (प्रलाप) न करे, चपलता न करे, अल्पभाषी, मितभोजी और उदर का दमन करने वाला हो । (आहारादि पदार्थ) थोड़ा पाकर (दाता की) निन्दा न करे ।

भिक्खाकाले एव गमणविहाणं—

८७३. कालेण निक्खमे भिक्खू कालेण य पडिक्कमे ।
अकालं च विवज्जेत्ता, काले कालं समायरे ॥

अकाले चरसि भिक्खू,[1] कालं न पडिलेहसि ।
अप्पाणं च किलामेसि, सन्निवेसं च गरिहसि ॥

भिक्षाकाल में ही जाने का विधान—

८७३. भिक्षु भिक्षा लाने के समय पर भिक्षा के लिए निकले और समय पर ही लौट आवे । अकाल को वर्जकर जो कार्य जिस समय करने का हो, उसे उसी समय करे ।

भिक्षो ! तुम अकाल में जाओगे और काल की प्रतिलेखना नहीं करोगे तो तुम अपने-आप को क्लान्त (खिन्न) करोगे और सन्निवेश (ग्राम आदि) की निन्दा करोगे ।

---

१ (क) तइयाए पोरिसिए, भत्तपाणं गवेसए— —उत्त. अ. २६, गा. ३२

(ख) प्राचीन काल में भोजन का समय प्रायः अपरान्ह ही था, ऐसा कई कहते हैं किन्तु आगमों में प्रातःकाल के भोजन के उल्लेख मिलते हैं, यथा—

(शेष टिप्पण अगले पृष्ठ पर)

सइ काले चरे भिक्खू, कुज्जा पुरिसकारियं।
अलाभो त्ति न सोएज्जा, तवो त्ति अहियासए ॥

—दस. अ. ५, उ. २, गा. ४-६

भिक्षु भिक्षा लाने का समय होने पर भिक्षा के लिए जाए और पुरुषार्थ करे। भिक्षा न मिलने पर खेद न करे, "आज सहज तप ही सही"—यों मानकर भूख को सहन करे।

गवेसणाकाले चिट्ठणाई विही—

८७४. असंसत्तं पलोएज्जा, नाइदूरावलोयए।
उप्फुल्लं न विणिज्झाए, नियट्टेज्ज अयंपिरो ॥

अइभूमिं न गच्छेज्जा, गोयरग्गगओ मुणी।
कुलस्स भूमिं जाणित्ता, मियं भूमिं परक्कमे ॥

तत्थेव पडिलेहेज्जा, भूमिभागं वियक्खणो।
सिणाणस्स य वच्चस्स, संलोगं परिवज्जए ॥

दगमट्टियआयाणे, बीयाणि हरियाणि य।
परिवज्जंतो चिट्ठेज्जा, सव्विंदियसमाहिए ॥

तत्थ से चिट्ठमाणस्स, आहरे पाण-भोयणं।
अकप्पियं न गेण्हेज्जा, पडिगाहेज्ज कप्पियं ॥

—दस. अ. ५, उ. १, गा. २३-२७

गवेषणाकाल में खड़े रहने आदि की विधि—

८७४. गोचरी में प्रविष्ट मुनि अनासक्त दृष्टि से देखे। अति दूर न देखे, उत्फुल्ल दृष्टि से न देखे। भिक्षा का निषेध करने पर बिना कुछ कहे वापस चला जाये।

गोचरी के लिए घर में प्रविष्ट मुनि अति-भूमि में न जाये, कुल-भूमि को जानकर मित-भूमि में प्रवेश करे।

विचक्षण मुनि मित-भूमि में ही उचित भू-भाग का प्रतिलेखन करे। जहाँ से स्नान और शौच का स्थान दिखाई पड़े उस भूमि-भाग का परिवर्जन करे।

सर्वेन्द्रिय-समाहित मुनि उदक और मिट्टी लाने के मार्ग तथा बीज और हरियाली को वर्जकर खड़ा रहे।

वहाँ खड़े हुए उस साधु को देने के लिए आहार-पानी लाए तो उसमें से अकल्पनीय को ग्रहण करने की इच्छा न करे, कल्पनीय ही ग्रहण करे।

समणाइं पेहाए चिट्ठण-पवेसणविही

८७५. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—

समणं वा, माहणं वा, गामपिंडोलगं वा, अतिहिं वा, पुव्वपविट्ठं पेहाए णोते उवातिकम्म पविसेज्ज वा, ओभासेज्ज वा।

से त्तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा एगंतमवक्कमित्ता अणावायमसंलोए चिट्ठेज्जा।[1]

श्रमण आदि को देखकर खड़े रहने की और प्रवेश की विधि—

८७५. भिक्षु या भिक्षुणी भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करे उस समय यदि यह जाने कि—

बहुत से शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, दरिद्र, अतिथि और याचक आदि उस गृहस्थ के यहाँ पहले से ही प्रवेश किये हुए हैं, तो उन्हें लांघकर न प्रवेश करे और न आहार की याचना करे।

वह (उन श्रमणादि को भिक्षार्थ उपस्थित) जानकर एकान्त स्थान में चला जाये, वहाँ जाकर कोई आता-जाता न हो और देखता न हो, इस प्रकार खड़ा रहे।

(ग) श्रमणों की भिक्षाचर्या का काल दिन का तृतीय प्रहर है—इसलिए प्राचीन काल में सर्वत्र सभी अपरान्हभोजी ही थे। यह कई विचारकों का मत है; किन्तु जैनागमों में गृहस्थों के लिए भी प्रातराशन—प्रातःकाल का भोजन तथा श्यामाशन—सायंकाल का भोजन का उल्लेख मिलता है। यथा—सामासाए पातरासाए— —आ. सु. १, अ. २, उ. ५, सु. ८७
—सूय. सु. २, अ. १, सु. ६८८

(घ) एक दिन में दो बार भोजन भरत चक्रवर्ती के समय में भी किया जाता था, क्योंकि—स्वयं भरत चक्रवर्ती ने दिग्विजय यात्रा में "अष्टम भक्त" तप किए थे। देखिए—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्ष. ३ टीका—ऐकैकस्मिन् दिने द्विवार भोजनोचित्येन दिनत्रयस्य षण्णां भक्तानामुत्तर-पारणकदिनयोरेकैकस्य भक्तस्य च त्यागेनाष्टमभक्तं त्याज्यम्।

१ (क) समणं माहणं वा, वि किविणं वा वणीमगं। उवसंकमंतं भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व संजए ॥
तं अइक्कमित्तु न पविसे, न चिट्ठे चक्खु-गोयरे। एगंतमवक्कमित्ता, तत्थ चिट्ठेज्ज संजए ॥
वणीमगस्स वा तस्स, दायगस्सुभयस्स वा। अप्पत्तियं सिया होज्जा, लहुत्तं पवयणस्स वा ॥

—दस. अ. ५, उ. २, गा. १०-१२

(ख) नाइदूरमणासन्ने, नन्नेसिं चक्खु-फासओ। एगो चिट्ठेज्ज भत्तट्ठा, लंघित्ता तं नाइक्कमे ॥ —उत्त. अ. १, गा. ३३

अह पुणेवं जाणेज्जा-पडिसेहिए व दिन्ने वा, तओ तम्मि णिवट्टिते संजयामेव पविसेज्ज वा, ओभासेज्ज वा ।[1]

—आ. सु. २, अ. १, उ. ५, सु. ३५७

जब वह यह जान ले कि—गृहस्थ ने श्रमणादि को आहार देने से इन्कार कर दिया है, अथवा उन्हें दे दिया है और वे उस घर से निपटा दिये गये हैं, तब वह संयमी साधु स्वयं उस गृहस्थ के घर में प्रवेश करे, अथवा आहारादि की याचना करे।

गाहावईकुले णिसिद्धकिच्चाइं—

८७६. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायं पडियाए अणुपविट्ठे समाणे—

नो गाहावइकुलस्स वा दुवारसाहं अवलंबिय अवलंबिय चिट्ठेज्जा ।[2]

नो गाहावइकुलस्स वा दगछड्डणमेत्तए चिट्ठेज्जा,

नो गाहावइकुलस्स चंदणिउयए चिट्ठेज्जा,

नो गाहावइकुलस्स सिणाणस्स वा, वच्चस्स वा संलोए सपडिदुवारे चिट्ठेज्जा[3],

नो गाहावइकुलस्स आलोयं वा, थिग्गलं वा, संधि वा, दगभवणं वा, बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय, अंगुलियाए वा उद्दिसिय उद्दिसिय, उण्णमिय उण्णमिय, अवनमिय अवनमिय निज्झाइज्जा ।[4]

नो गाहावइं अंगुलियाए उद्दिसिय उद्दिसिय जाइज्जा,

नो गाहावइं अंगुलियाए चालिय चालिय जाइज्जा,

नो गाहावइं अंगुलियाए तज्जिय तज्जिय जाइज्जा,

नो गाहावइं अंगुलियाए उक्खुलंपिय उक्खुलंपिय जाइज्जा,

नो गाहावइं वंदिय वंदिय जाइज्जा,

नो य णं फरुसं वएज्जा ।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ६, सु. ३६०

गृहस्थ के घर में नहीं करने के कार्य—

८७६. भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थों के घरों में आहार के लिए प्रवेश करके—

गृहस्थ के द्वार की शाखा को पकड़-पकड़कर खड़ा न रहे।

गृहस्थ के पात्र प्रक्षालित पानी डालने के स्थान पर खड़ा न रहे।

गृहस्थ के हाथ मुँह धोने के स्थान पर खड़ा न रहे।

गृहस्थ के स्नानघर के या शौचालय के द्वार पर नजर पड़े—ऐसे स्थान पर खड़ा न रहे।

गृहस्थ के घर के गवाक्ष को, घर के सुधारे हुए भाग को, घर के संधिस्थान को, जलगृह को हाथ लम्बा कर करके अंगुली से संकेत कर कर, गरदन ऊँची उठा उठाकर, या झुका झुकाकर न देखे, न दिखाए।

तथा गृहस्थ को अंगुली से संकेत कर करके याचना न करे।

गृहस्थ को अंगुली चला चलाकर (वस्तु का निर्देश करते हुए) याचना न करे।

गृहस्थ को अंगुली से तर्जन ताड़न कर करके याचना न करे।

गृहस्थ को अंगुली से स्पर्श (खुजला) कर करके याचना न करे।

गृहस्थ को वन्दन कर करके याचना न करे।

(तथा न देने पर गृहस्थ को) कठोर वचन न कहे।

संकिलेसठाणणिसेहो—

८७७. रण्णो गिहवईणं च, रहस्साऽऽरक्खियाण य ।
संकिलेसकरं ठाणं, दूरओ परिवज्जए ॥

—दस. अ. ५, उ. १, गा. १६

संक्लेश स्थान निषेध—

८७७. राजा, गृहपति, अन्तःपुर और आरक्षकों के स्थानों को मुनि दूर से ही त्याग दे—क्योंकि ये स्थान क्लेशवर्धक होते हैं।

भिक्खागमण काले पायपडिलेहण विहाणं—

८७८. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवाय पडियाए पविसमाणे पुव्वामेव पेहाए पडिग्गहं अवहट्टु पाणे, पमज्जिय

भिक्षार्थ जाने के समय पात्र प्रतिलेखन की विधि—

८७८. भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में आहार-पानी के लिए, प्रवेश करने से पूर्व ही भिक्षा पात्र को भलीभाँति देखे, उसमें कोई

---

१ पडिसेहिए व दिन्ने वा, तओ तम्मि नियत्तिए । उवसंकमेज्ज भत्तट्ठा, पाणट्ठाए व संजए ॥ दस. अ. ५, उ. २, गा. १३

२ अग्गलं फलिहं दारं, कवाडं वा वि संजए । अवलंबिया न चिट्ठेज्जा, गोयरग्गगओ मुणी ॥ —दस. अ. ५, उ. २, गा. ९

३ सिणाणस्स य वच्चस्स, संलोगं परिवज्जए ॥ दस. अ. ५, उ. १, गा. २५

४ आलोयं थिग्गलं दारं संधि दगभवणाणि य । चरंतो न विणिज्झाए, संकट्ठाणं विवज्जए ॥ दस. अ. ५, उ. १, गा. १५

रयं, ततो संजयामेव गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए णिक्खमेज्ज वा पविसेज्ज वा।

केवली बूया—आयाणमेयं।

अंतो पडिग्गहगंसि पाणे वा, बीए वा, रए वा परियावज्जेज्जा,

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा एस पइण्णा-जाव-एस उवएसे जं पुव्वामेव पेहाए पडिग्गहं अवहट्टु पाणे वा, पमज्जिय रयं-ततो संजयामेव गाहावतिकुलं पिंडवायपडियाए णिक्खमेज्ज वा, पविसेज्ज वा।

—आ. सु. २, अ. ६, उ. २, सु. ६०२

प्राणी हो तो उन्हें निकाल कर और रज हो तो उसका प्रमार्जन कर बाद में यतनापूर्वक आहार-पानी लेने के लिए निकले या प्रवेश करे।

केवली भगवान् कहते हैं—'ऐसा न करना कर्मबन्ध का कारण है।'

क्योंकि पात्र के अन्दर द्वीन्द्रिय आदि प्राणी, बीज या रज आदि रह सकते है।

इसलिए तीर्थंकर आदि आप्तपुरुषों ने साधुओं के लिए पहले से ही इस प्रकार की प्रतिज्ञा—**यावत्**—उपदेश दिया है कि आहार-पानी के लिए जाने से पूर्व पात्र का सम्यक् निरीक्षण करके कोई प्राणी हो तो उसे निकालकर, रज हो तो उसका प्रमार्जन कर, बाद में यतनापूर्वक आहार पानी के लिए निकले या प्रवेश करे।

असमये पवेसणस्स विहि-णिसेहो—

८७९. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावतिकुलंसि पिंडवायपडियाए पविसित्तुकामे सेज्जं पुण जाणेज्जा,

खीरिणीओ गावीओ खीरिज्जमाणीओ पेहाए,

असणं वा-जाव-साइमं वा उवक्खडिज्जमाणं पेहाए पुरा अप्पजूहिए।

सेवं णच्चा णो गाहावतिकुलं पिंडवायपडियाए णिक्खमेज्ज वा, पविसेज्ज वा।

से त्तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा, एगंतमवक्कमित्ता अणावायमसंलोए चिट्ठेज्जा

अह पुण एवं जाणेज्जा—

खीरिणीओ गावीओ खीरियाओ पेहाए,

असणं वा-जाव-साइमं वा उवक्खडितं पेहाए पुरा पजूहिते।

सेवं णच्चा ततो संजयामेव गाहावतिकुलं पिंडवायपडियाए णिक्खमेज्ज वा, पविसेज्ज वा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ४, सु. ३४९

असमय में प्रवेश के विधि निषेध—

८७९. भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रवेश करना चाहे, उस समय यदि यह जाने कि,

अभी दुधारु गायों को दुहा जा रहा है,

अशन—**यावत्**—स्वादिम आहार अभी तैयार किया जा रहा है या हो रहा है,

अभी तक उसमें से किसी दूसरे को जितना देय है उतना दिया नहीं गया है, ऐसा जानकर वह आहार प्राप्ति की दृष्टि से निष्क्रमण प्रवेश न करे।

किन्तु ऐसा जानकर वह भिक्षु एकान्त में चला जाये और जहाँ कोई आता जाता न हो और देखता न हो वहाँ ठहर जाए।

जब वह यह जान ले कि—

दुधारु गायें दुही जा चुकी हैं,

अशन—**यावत्**—स्वादिम आहार भी अब तैयार हो गया है, उसमें से दूसरों को जितना देय है उतना दे दिया गया है, तब वह संयमी साधु आहार प्राप्ति के लिए निष्क्रमण प्रवेश करे।

एसणाखेत्तपमाणं—

८८०. अवसेसं भण्डगं गिज्झा, चक्खुसा पडिलेहए।
परमद्धजोयणाओ विहारं विहरए मुणी॥

—उत्त. अ. २६, गा. ३५

एषणा क्षेत्र का प्रमाण—

८८०. भिक्षु सब भण्डोपकरणों को ग्रहण कर चक्षु से उनकी प्रतिलेखना करे और उत्कृष्ट अर्ध-योजन तक भिक्षा के लिये जाए।

भुंजमाणाणं पाणाणं मग्गे आवागमण णिसेहो—

८८१. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए

आहार करते हुए प्राणियों के मार्ग में आने जाने का निषेध—

८८१. भिक्षु या भिक्षुणी आहार के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश

पविसित्तुकामे अंतरा से रसेसिणो बहवे पाणा घासेसणाए संथडे संनिवाइए पेहाए,

तं जहा–कुक्कुडजाइयं वा, सूयरजाइयं वा, अग्गपिंडंसि वा वायसा संथडा संनिवाइया पेहाए,

सइ परक्कमे संजयामेव परक्कमेज्जा नो उज्जुयं गच्छिज्जा[1]।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ६, सु. ३५६

करना चाहे, उस समय मार्ग के बीच में यदि आहार के इच्छुक अनेक पशु-पक्षी आहार के लिए एकत्रित होकर आये हुए दिखाई दें-

यथा कुक्कुट, सूकर आदि अनेक प्राणी या अग्रपिण्ड खाने के लिए कौवों आदि को एकत्रित होकर आता हुआ देख कर,

यदि अन्य मार्ग हो तो संयत यतनापूर्वक उसी मार्ग से जावे, किन्तु उस (पशु-पक्षी वाले) सीधे मार्ग से न जावे।

भिक्खाकाले उम्मत्तगोणाइं पेहाए गमणविहि णिसेहो—

८८२. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविसित्तुकामे गोणं वियालं पडिपहे पेहाए, महिसं वियालं पडिपहे पेहाए,

एवं मणुस्सं, आसं, हत्थि, सीहं, वग्घं, विगं, दीवियं, अच्छं, तरच्छं, परिसरं, सियालं, विरालं, सुणयं, कोलसुणयं, कोकंतियं, चित्ताचेल्लडयं वियालं पडिपहे पेहाए,

सति परक्कमे संजयामेव परक्कमेज्जा, णो उज्जुयं गच्छेज्जा। —आ. सु. २, अ. १, उ. ५, सु ३५४

साणं सूइयं गाविं, दित्तं गोणं हयं गयं।
संडिब्भं कलहं जुद्धं, दूरओ परिवज्जए॥

—दस. अ. ५, उ. १, गा. १२

भिक्षा के समय उन्मत्त साण्ड आदि को देखकर गमन का विधि निषेध—

८८२. भिक्षु या भिक्षुणी भिक्षा के लिए गृहस्थों के घरों में प्रवेश करना चाहे, उस समय मार्ग में मदोन्मत्त सांड या मतवाला भैंसे को देखकर,

तथा दुष्ट मनुष्य, घोड़ा, हाथी, सिंह, बाघ, भेड़िया, चित्ता, रींछ, व्याघ्र विशेष अष्टापद, शियाल, वन बिलाव, कुत्ता, महाशूकर, लोमड़ी, चिल्लक आदि विकराल प्राणियों को मार्ग में देखकर यदि दूसरा मार्ग हो तो उसी मार्ग से जाए, किन्तु उस सीधे मार्ग से न जाए।

(गोचरी में प्रविष्ट भिक्षु) कुत्ता व नव प्रसूता गाय तथा मदोन्मत बैल, घोड़ा व हाथी और बच्चों का क्रीड़ा स्थल, क्लेश व युद्ध के स्थानों को दूर से ही वर्जन करे।

खड्डाइजुत्तपहे गमण णिसेहो—

८८३. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविसित्तुकामे अंतरा से ओवाए खाणुं वा, कंटए वा, घसी वा, भिलुगा वा, विसमे वा, विज्जले वा परियावज्जेज्जा। सति परक्कमे संजयामेव परक्कमेज्जा णो उज्जुयं गच्छेज्जा।[2] —आ. सु. २, अ. १, उ. ५, सु. ३५५

खड्डा आदि से युक्त मार्ग में जाने का निषेध—

८८३. भिक्षु या भिक्षुणी भिक्षा के लिए गृहस्थों के घरों में प्रवेश करना चाहें उस समय मार्ग के बीच में यदि गड्ढा हो, खूंटा हो या ठूंठ पड़ा हो, कांटे बिखरे हों, अन्दर धसी हुई भूमि हो, फटी हुई कालीभूमि हो, ऊँची-नीची भूमि हो या कीचड़ हो ऐसी स्थिति में दूसरा मार्ग हो तो उसी मार्ग से जावे, किन्तु सीधे मार्ग से न जावे।

अदुगुंछियकुलेसु भिक्खागमणविहाणं—

८८४. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे सेज्जाइं पुण कुलाइं जाणेज्जा, तं जहा–

१. उग्गकुलाणि वा, २. भोगकुलाणि वा,

अघृणित कुलों में गोचरी जाने का विधान—

८८४. भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में आहार प्राप्ति के लिए प्रविष्ट होने पर (आहार ग्रहण योग्य) जिन कुलों को जाने, वे इस प्रकार हैं—

(१) उग्रकुल, (२) भोगकुल,

---

१ (क) तहेवुच्चावया पाणा, भत्तट्ठाए समागया। तं उज्जुयं न गच्छेज्जा, जयमेव परक्कमे॥ —दस. अ. ५, उ. २, गा. ७

(ख) दशवैकालिक अ. ५, उ. १, गाथा ९-११ में वेश्याओं के आवासों की ओर जाने वाले मार्ग से भिक्षा के लिए जाने का निषेध है अतः वे गाथायें ब्रह्मचर्य महाव्रत की विभाग में दी गई हैं।

२ ओवायं विसमं खाणुं, विज्जलं परिवज्जिए। संकमेण न गच्छेज्जा, विज्जमाणे परक्कमे।
पवडंते व से तत्थ, पक्खलंते व संजए। हिंसेज्ज पाणभूयाइं, तसे अदुव थावरे॥
तम्हा तेण न गच्छेज्जा, संजए सुसमाहिए। सइ अन्नेण मग्गेण जयमेव परक्कमे॥ —दस. अ. ५, उ. १, गा. ४-६

३. राइण्णकुलाणि वा, ४. खत्तियकुलाणि वा,
५. इक्खागकुलाणि वा, ६. हरिवंसकुलाणि वा,
७. एसियकुलाणि वा, ८. वेसियकुलाणि वा,
९. गंडागकुलाणि वा, १०. कोट्टागकुलाणि वा,
११. गामरक्खकुलाणि वा, १२. बोक्कसालियकुलाणि वा,
अण्णतरेसु वा तहप्पगारेसु अदुगुंछिएसु अगरहिएसु असणं वा-जाव-साइमं वा फासुयं एसणिज्जं ति मण्णमाणे लाभे संते पडिगाहेज्जा। —आ. सु. २, अ. १, उ. २, सु. ३३६

(३) राजन्यकुल, (४) क्षत्रियकुल,
(५) इक्ष्वाकुकुल, (६) हरिवंशकुल,
(७) गोपालकुल, (८) वैश्यकुल,
(९) नापितकुल, (१०) बढ़ईकुल,
(११) ग्रामरक्षककुल, (१२) तन्तुवायकुल
ये और इसी प्रकार के और भी कुल, जो अनिन्दित और अगर्हित हों, उन कुलों (घरों) से अशन—यावत्—स्वादिम प्रासुक और एषणीय मानकर मिलने पर ग्रहण करें।

दुगुंछियकुलेसु भिक्खागमण पायच्छित्त सुत्तं—

८८५. जे भिक्खू दुगुंछियकुलेसु असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १६, सु. २७

घृणित कुलों में भिक्षा गमन का प्रायश्चित्त सूत्र—

८८५. जो भिक्षु घृणित कुलों में जाकर अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।
उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अगवेसणीयकुलाइं—

८८६. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा से जाइं पुण कुलाइं जाणेज्जा, तं जहा—खत्तियाण वा, राईण वा, कुराईण वा, रायपेसियाण वा, रायवंसट्ठियाण वा, अंतो वा, बाहिं वा, गच्छंताण वा, संणिविट्ठाण वा, णिमंतेमाणाण वा, अणिमंतेमाणाण वा, असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं-जाव-णो पडिग्गाहेज्जा। —आ० सु० २, अ० १, उ० ३, सु० ३४६

अगवेषणीयकुल—

८८६. भिक्षु एवं भिक्षुणी इन कुलों को जाने—
यथा—क्षत्रियों के कुल, राजाओं के कुल, कुत्सित राजाओं के कुल, राज-भृत्य, राजा के सम्बन्धियों के कुल, इन कुलों के घरों में या घरों से बाहर जाते हुए, खड़े हुए या बैठे हुए, निमन्त्रण किये जाने पर या न किए जाने पर अशन—यावत्—स्वादिम अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करें।

णिसिद्ध कुलेसु गवेसणा णिसेहो—

८८७. पडिकुट्ठकुलं न पविसे, मामगं परिवज्जए।[1]
अचियत्तकुलं न पविसे, चियत्तं पविसे कुलं॥
—दस. अ. ५, उ. १, गा. १७

निषिद्ध कुलों में गवेषणा-निषेध—

८८७. मुनि निंदित कुल में प्रवेश न करे। गृह-स्वामी द्वारा निषिद्ध कुल में प्रवेश न करे जहाँ प्रवेश करने पर साधु के प्रति द्वेष भाव प्रगट करे वहाँ न जावे। किन्तु प्रीतिकर कुल में ही प्रवेश करे।

णिसिद्धगिहेभिक्खागमणपायच्छित्त सुत्तं—

८८८. जे भिक्खू गाहावइ कुलं पिण्डवाय-पडियाए अणुपविट्ठे पडियाइक्खित्ते समाणे दोच्चंपि—तमेव कुलं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. ३, सु. १३

निषिद्ध घर में भिक्षा लेने जाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

८८८. जो भिक्षु गाथापति कुल में आहार के लिए प्रवेश करने पर गृहस्थ के मना करने के बाद भी दूसरी बार उसी कुल में प्रवेश करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।
उसे उद्घातिक मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

भिक्खायरियाए उच्चार पासवण परिट्ठावण विही—

८८९. गोयरग्गपविट्ठो उ, वच्चमुत्तं न धारए।
ओगासं फासुयं नच्चा, अणुन्नविय वोसिरे॥
—दस. अ. ५, उ. १, गा. १९

भिक्षाचर्या में मल-मूत्रादि परठने की विधि—

८८९. गोचरी के लिए गया हुआ मुनि मल-मूत्र की बाधा को न रोके और प्रासुक-स्थान देख, उसके स्वामी की अनुमति लेकर वहाँ मल-मूत्र का उत्सर्ग करे।

---

१ (क) निषिद्ध कुलों में नित्यादि पिंड देने वाले कुलों का भी निषेध है—देखिये नित्यपिंड दोष।
(ख) अप्रीतिकर कुल से भक्त-पान आदि के ग्रहण का निषेध—देखिए प्रश्नव्याकरण—तृतीय संवरद्वार सूत्र-५

पिहियदुवार उग्घाडण विहि णिसेहो —

८६०. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावतिकुलस्स दुवारबाहं कंटगबोंदियाए पडिपिहितं पेहाए तेसिं पुव्वामेव उग्गहं अणणुण्णविय, अपडिलेहिय, अप्पमज्जिय णो अवंगुणेज्ज वा, पविसेज्ज वा।

तेसिं पुव्वामेव उग्गहं अणुण्णविय पडिलेहिय पमज्जिय ततो संजयामेव अवंगुणेज्ज वा, पविसेज्ज वा।

— आ० सु० २, अ० १, उ० ५, सु० ३५६

साणीपावारपिहियं अप्पणा नावपंगुरे।
कवाडं नो पणोल्लेज्जा, ओग्गहं से अजाइया॥

— दस. अ. ५, उ. १, गा. १८

ढके हुए द्वार को खोलने का विधि निषेध -

८६०. भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के गृहद्वार को कांटों की टाटी से ढका हुआ देखे तो पहले गृहस्वामी की आज्ञा लिए बिना, प्रतिलेखन किए बिना, और प्रमार्जन किये बिना गृहद्वार न खोले और न उसमें प्रवेश करे।

पहले ही गृहस्वामी की आज्ञा लेकर प्रतिलेखन कर और प्रमार्जन कर यतनापूर्वक गृहद्वार खोले और प्रवेश करे।

मुनि गृहपति की आज्ञा लिए बिना सण या वस्त्र के पर्दे से ढंका द्वार स्वयं न खोले और किवाड़ भी न खोले।

भिक्खायरियाए मायाकरण णिसेहो —

८६१. भिक्खागा णामेगे एवमाहंसु-समाणा वा, वसमाणा वा, गामाणुगामं दूइज्जमाणे खुड्डाए खलु अयं गामे, संणिरुद्धाए, णो महालए, से हंता भयंतारो बाहिरगाणि गामाणि भिक्खायरियाए वयह।

संति तत्थेगतियस्स भिक्खुस्स पुरेसंथुया वा, पच्छासंथुया वा परिवसंति, तं जहा-गाहावती वा-जाव-कम्मकरीओ वा,

तहप्पगाराइं कुलाइं पुरेसंथुयाणि वा, पच्छासंथुयाणि वा पुव्वामेव भिक्खायरियाए अणुपविसिस्सामि, अवि य इत्थ लभिस्सामि सालिं वा, ओयणं वा, खीरं वा, दहिं वा, णवणीतं वा, घयं वा, गुलं वा, तेल्लं वा, संकुलिं वा, फाणितं वा, पूयं वा, सिहरिणिं वा तं पुव्वामेव भोच्चा पिच्चा पडिग्गहं संलिहियं संमज्जिय ततो पच्छा भिक्खूहिं सद्धिं गाहावतिकुलं पिंडवातपडियाए पविस्सामि।

माइट्ठाणं संफासे, णो एवं करेज्जा।

से तत्थ भिक्खूहिं सद्धिं कालेण अणुपविसित्ता तत्थितरातियरेहिं कुलेहिं सामुदाणियं एसियं वेसियं पिंडवातं पडिगाहेत्ता आहारं आहारेज्जा।

— आ. सु. २, अ. १, उ. ४, सु. ३५०

भिक्षाचरी में माया करने का निषेध—

८६१. स्थिरवास रहने वाला अथवा मासकल्प आदि रहने वाला या ग्रामानुग्राम विहार करके कहीं पहुँचने वाला कोई भिक्षु अन्य साधुओं से कहे "पूज्यवरो ! यह गांव बहुत छोटा है, बहुत बड़ा नहीं है, उसमें भी कुछ घर सूतक आदि के कारण रुके हुए हैं। इसलिए आप भिक्षाचरी के लिए बाहर (दूसरे) गांवों में पधारें।"

उस गांव में उस भेजने वाले मुनि के पूर्व-परिचित अथवा पश्चात्परिचित गृहपति —यावत् —नौकरानियां रहते हैं।

वह साधु यह सोचे कि इन पूर्व-परिचित और पश्चात्-परिचित घरों में पहले ही भिक्षार्थ प्रवेश करके और अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर लूंगा जैसे कि—शाली, ओदन आदि स्वादिष्ट आहार, दूध, दही, नवनीत, घृत, गुड़, तेल, पूड़ी, मालपुए, शिखरिणी आदि और उस आहार को मैं पहले ही खा पीकर पात्रों को धो-पोंछकर साफ कर लूंगा। इसके बाद आगन्तुक भिक्षुओं के साथ आहार-प्राप्ति के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करूँगा।

इस प्रकार का व्यवहार करने वाला भिक्षु कपट का सेवन करता है। अतः भिक्षु ऐसा नहीं करे।

साधु को वहाँ पर भिक्षुओं के साथ भिक्षा के समय में ही भिक्षा के लिये प्रवेश कर विभिन्न कुलों से सामुदानिक, एषणीय व साधु के वेश से प्राप्त निर्दोष भिक्षा ग्रहण करके आहार करना चाहिये।

अभिनिचारिका गमणविहि णिसेहो —

८६२. बहवे साहम्मिया इच्छेज्जा एगयओ अभिनिचारियं चारए, नो णं कप्पइ थेरे अणापुच्छित्ता एगयओ अभिनिचारियं चारए।

अभिनिचरिका में जाने के विधि-निषेध—

८६२. अनेक साधर्मिक साधु एक साथ "अभिनिचरिका" करना चाहें तो —स्थविर साधुओं को पूछे बिना उन्हें एक साथ "अभिनिचरिका" करना नहीं कल्पता है।

कप्पइ णं थेरे आपुच्छित्ता एगयओ अभिनिचारियं चारए।

किन्तु स्थविर साधुओं को पूछ लेने पर उन्हें एक साथ "अभिनिचरिका" करना कल्पता है।

थेरा य से वियरेज्जा-एवं णं कप्पइ एगयओ अभिनिचारियं चारए।

यदि स्थविर साधु आज्ञा दें तो उन्हें "अभिनिचरिका" करना कल्पता है।

थेरा य से नो वियरेज्जा—एवं णं नो कप्पइ एगयओ अभिनिचारियं चारए।

यदि स्थविर साधु आज्ञा न दें तो उन्हें "अभिनिचरिका" करना नहीं कल्पता है।

जे तत्थ थेरेहिं अविइण्णे एगयओ अभिनिचारियं चरंति से सन्तरा छेए वा परिहारे वा। —वव. उ. ४, सु. १९

यदि वे स्थविरों से आज्ञा प्राप्त किये बिना "अभिनिचरिका" करें तो वे दीक्षा छेद या परिहार प्रायश्चित्त के पात्र होते हैं।

चारिया पविट्ठ भिक्खुस्स किच्चाइं—

चर्या प्रविष्ट भिक्षु के कर्तव्य—

८६३. **चरियापविट्ठे भिक्खू-जाव-चउराय पंचरायाओ थेरे पासेज्जा, सच्चेव आलोयणा, सच्चेव पडिक्कमणा। सच्चेव ओग्गहस्स पुव्वाणुन्नवणा चिट्ठइ। अहालंदमवि ओग्गहे।**

८६३. चर्या में प्रविष्ट भिक्षु यदि चार पाँच रात की अवधि में स्थविरों को देखे (मिले) तो—उन भिक्षुओं को वही आलोचना, वहीं प्रतिक्रमण और कल्प पर्यन्त रहने के लिए वहीं अवग्रह की पूर्वानुज्ञा है।

चरियापविट्ठे भिक्खू परं चउराय-पंचरायाओ थेरे पासेज्जा, पुणो आलोएज्जा, पुणो पडिक्कमेज्जा, पुणो छेयपरिहारस्स उवट्ठाएज्जा।

चर्या में प्रविष्ट भिक्षु यदि चार-पाँच रात के बाद स्थविरों को देखे (मिले) तो वह पुनः आलोचना, प्रतिक्रमण और दीक्षा-च्छेद या परिहार प्रायश्चित्त में उपस्थित होवे।

भिक्खूभावस्स अट्ठाए दोच्चंपि ओग्गहे अणुन्नवेयव्वे सिया।

भिक्षुभाव (संयम की सुरक्षा) के लिए उसे दूसरी बार अवग्रह की अनुमति लेनी चाहिए।

कप्पइ से एवं वदित्तए

"अणुजाणह भंते ! मिओग्गहं अहालंदं धुवं नितियं निच्छइयं वेउट्टियं।"

वह इस प्रकार प्रार्थना करे कि—

"हे भदन्त ! मित-अवग्रह में विचरने के लिए कल्प अनुसार रहने के लिए ध्रुव नियमों के लिए, दैनिक क्रियायें करने के लिए, निश्चय पूर्वक प्रवृत्ति करने के लिए आज्ञा दें तथा पुनः आने की या दोषों से निवृत्त होने की अनुज्ञा दीजिए।

तओ पच्छा काय-संफासं। —वव. उ. ४, सु. २०-२१

इस प्रकार कहकर वह उनके चरण का स्पर्श करे।

चरियानियट्ट भिक्खुस्स किच्चाई—

चर्या निवृत्त भिक्षु के कर्तव्य—

८६४. **चरियानियट्टे भिक्खू-जाव-चउराय-पंचरायाओ थेरे पासेज्जा, सच्चेव आलोयणा, सच्चेव पडिक्कमणा, सच्चेव ओग्गहस्स पुव्वाणुन्नवणा चिट्ठइ अहालंदमवि ओग्गहे।**

८६४. कोई भिक्षु चर्या से निवृत्त होने पर चार, पाँच रात की अवधि में स्थविरों को देखे (मिले) तो उसे वही आलोचना, वही प्रतिक्रमण और कल्प पर्यन्त रहने के लिए वही अवग्रह की पूर्वानुज्ञापना है।

चरियानियट्टे भिक्खू परं चउराय-पंचरायाओ थेरे पासेज्जा, पुणो आलोएज्जा, पुणो पडिक्कमेज्जा, पुणो छेयपरिहारस्स उवट्ठाएज्जा।

यदि कोई भिक्षु अभिनिचरिका से निवृत्त होने पर चार-पाँच रात के बाद स्थविरों से मिले तो वह पुनः आलोचना, प्रतिक्रमण और दीक्षाच्छेद या परिहार प्रायश्चित्त में उपस्थित होवे।

भिक्खू भावस्स अट्ठाए दोच्चं पि ओग्गहे अणुन्नवेयव्वे सिया।

भिक्षुभाव (संयम) की सुरक्षा के लिए उसे दूसरी बार अवग्रह की अनुमति लेनी चाहिए।

कप्पइ से एवं वइत्तए—

"अणुजाणह भंते ! मिओग्गहं अहालंदं धुवं नितियं निच्छइयं वेउट्टियं।"

तओ पच्छा काय-संफासं। —वव. उ. ४, सु. २२-२३

वह इस प्रकार से प्रार्थना करे कि

"हे भदन्त ! मुझे मितावग्रह, यथालन्द ध्रुव, नित्य, नैश्चयिक और व्युत्थित होने की अनुमति दीजिए।" इस प्रकार कहकर वह उनके चरणों का स्पर्श करे।

नवणिम्मिय गामाइसु आहार गहणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

८६५. जे भिक्खू णवग-णिवेसंसि गामंसि वा-जाव-सण्णिवेसंसि वा अणुप्पविसित्ता असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ५, सु. ३४

नवनिर्मितग्रामादि में आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

८६५. जो भिक्षु नये निवास किये हुए गाँव में —यावत्—सन्निवेश में प्रवेश करके अशन—यावत्—स्वाद्य ग्रहण करता है, लिवाता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्घातिक मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णव अयागराइसु आहार गहणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

८६६. जे भिक्खू णवग-णिवेसंसि

१. अयागरंसि वा, २. तंबागरंसि वा,
३. तउआगरंसि वा, ४. सीसागरंसि वा,
५. हिरण्णागरंसि वा, ६. सुवण्णागरंसि वा,
७. रयणागरंसि वा, ८. वइरागरंसि वा,

अणुप्पविसित्ता असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ५, सु. ३५

नई लोहे आदि की खानों में आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

८६६. जो भिक्षु नयी निवास की हुई

(१) लोहे की, (२) तांबे की,
(३) जपु की, (४) शीशे की,
(५) हिरण्य की (६) सोने की,
(७) रत्नों की, (८) हीरों की खदानों में,

प्रवेश करके अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्घातिक मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

✲✲

उद्गम-दोष

प्राक्कथन

आहार दोष—

आहार शुद्धि से भाव शुद्धि और उससे संयम-साधना का निर्विघ्न सम्पन्न होना—यह एक सिद्धान्त-सम्मत तथ्य है। अतः उद्गम, उत्पादनादि दोषों से रहित आहार ही प्रासुक, एषणीय तथा उपभोग योग्य माना गया है।

आहार के दोषों का यह संकलन दो भागों में विभक्त है।

(१) एक सूत्र में एक दोष का प्ररूपण।

(२) एक सूत्र में अनेक दोषों का प्ररूपण।

इस संकलन में कुछ सूत्र विधि-निषेध के प्ररूपक हैं और कुछ सूत्र केवल निषेध के प्ररूपक हैं।

जिन सूत्रों में एक साथ अनेक दोषों का प्ररूपण है उनमें से कुछ दोष उद्गम के हैं, कुछ दोष उत्पादन के हैं और कुछ दोष एषणा के हैं।

इन सूत्रों में कुछ दोष ऐसे भी प्ररूपित हैं जिनके नाम भिन्न हैं किन्तु भाव भिन्न नहीं हैं। किन्तु ऐसे भी दोष हैं जिनका नामकरण कहीं नहीं मिलता फिर भी वे दोष ही हैं, क्योंकि कुछ सूत्रों में अग्राह्य पदार्थों के निषेध हैं अतः वे दोष ही हैं, कुछ दोषों के केवल प्रायश्चित्त सूत्र मिलते हैं किन्तु दोषों के सूत्र नहीं मिलते हैं। इसी प्रकार कुछ दोषों के सूत्र मिलते हैं किन्तु उनके प्रायश्चित्त सूत्र नहीं मिलते हैं।

आगमों में "उग्गमउप्पायणेसणासुद्धं" आहार-शुद्धि का सूचक यह वाक्य अनेक स्थलों में उपलब्ध है किन्तु उद्गम और उत्पादन के दोषों की निश्चित संख्या कहीं उपलब्ध नहीं है।

सभी उद्गम दोषों में प्रमुख दोष एक औद्देशिक है, अन्य सभी उसके अवान्तर भेद हैं।

प्रश्नव्याकरण संवर द्वार ५ सूत्र ६ में "**एक्कारसपिंडवायसुद्धं**" यह वाक्य है—इसका तात्पर्य है—आचारांग द्वितीय श्रुतस्कंध प्रथम पिण्डैषणा अध्ययन के ग्यारह उद्देशकों में जितने दोष हैं उन सबसे रहित आहार शुद्ध माना गया है।

उद्गम-उत्पादन के दोषों की संख्या यदि निश्चित होती तो इस आगम में संख्या का उल्लेख अवश्य होता।

एषणा के दस दोषों की संख्या निश्चित हो गई थी अतः "दसहि य दोसेहिं विप्पमुक्कं" इस वाक्य में संख्या का उल्लेख है किन्तु आगमों में इन दस दोषों के अतिरिक्त अन्य अनेक एषणा दोष उपलब्ध हैं।

पिण्डनिर्युक्ति आदि में उद्गम, उत्पादन और एषणा के दोषों की संख्या निश्चित है। संभव है नवदीक्षितों को कण्ठस्थ कराने के लिए किसी स्थविर ने प्रमुख दोषों की संख्या निश्चित करके गाथाबद्ध किये होंगे।

आगमों में कुछ ऐसे दोष भी प्ररूपित हैं जो बयालीस दोषों से सर्वथा भिन्न हैं।

परिभोगैषणा के दोषों का प्ररूपण भगवती सूत्र में प्रतिपादित है।

प्रस्तुत संकलन में दोषों का क्रम इस प्रकार संकलित किया गया है—

(१) एक सूत्र में अनेक दोषों का कथन है उसे प्रकीर्णक दोष से सूचित किया गया है।

(२) एक सूत्र में एक दोष का कथन है उसे उद्गम, उत्पादन और एषणा दोष के क्रम से रखा है।

(३) ४२ दोष के सिवाय दोषों को—संखडी प्रकरण, शय्यातर पिंड व एषणा विवेक शीर्षक से संकलित किया गया है।

सोलह उद्गम दोष—

आहाकम्मुद्देसियं पूइकम्मे य मीसजाए य । ठवणा पाहुडियाए पाओयर कीय पामिच्चे ॥
परियट्टिए अभिहडे उब्भिन्न मालोहडे इ य । अच्छिज्जे अणिसिट्ठे अज्झोयरए य सोलसमे ॥ —पिण्ड० नि० गा० ३-४

(१) **आधाकर्म**—किसी एक विशेष साधु साध्वी के उद्देश्य से आहारादि का निष्पन्न करना।

(२) **औद्देशिक**—एक या अनेक श्रमण ब्राह्मणादि के उद्देश्य से आहारादि का निष्पन्न करना।

(३) **पूतिकर्म**—प्रासुक एवं एषणीय आहार में आधाकर्म आहार का अत्यल्प या अधिक मिश्रण करना।

(४) **मिश्रजात**—अपने लिए और साधु-साध्वी के लिए एक साथ आहारादि बनाना।

(५) **स्थापना**—साधु-साध्वियों को देने के लिए आहारादि अलग स्थापित कर रखना।

(६) **प्राभृतिका**—समीप के गाँव से साधु या साध्वी आज ही अभी पधारने वाले हैं यह जानकर पाहुणों के जीमण का समय परिवर्तन करना।

(७) **प्रादुष्करण**—अन्धकार युक्त स्थानों में दीपक आदि से प्रकाश करके आहारादि देना।

(८) **क्रीत**—साधु साध्वी के लिए आहारादि खरीद कर देना।

(९) **प्रामित्य**—साधु साध्वी के लिए आहारादि उधार लाकर देना।

(१०) **परिवर्तित**—अपने घर में बना हुआ आहार किसी अन्य को देकर साधु-साध्वियों को उनका अभिलषित आहार लाकर देना।

(११) **अभिहृत**—साधु साध्वी को उनके स्थान पर आहारादि लाकर देना।

(१२) **उद्भिन्न**—किसी विशेष लेप से बन्द किए हुए पात्र के मुँह को खोलकर साधु साध्वी के लिए खाद्यादि पदार्थ देना।

(१३) **मालापहृत**—मंच या टांड आदि ऊँची जगह पर रखे हुए खाद्य पदार्थों को निसरणी आदि से उतारकर देना।

(१४) **आच्छेद्य**—किसी दुर्बल व्यक्ति से छीनकर आहारादि देना।

(१५) **अनिसृष्ट**—भागीदार के पदार्थ उसकी आज्ञा लिए बिना देना।

(१६) **अध्यवपूरक**—साधु या साध्वियाँ गाँव में आये हैं ऐसा सुनकर अपने लिए बन रहे भोजन में कुछ अधिक बढ़ाकर भोजन बनाना।

ये सभी दोष गृहस्थ अपने अविवेक से लगाता है। अतः साधु गृहस्थ से विवेकपूर्वक प्रश्न करके आहारादि के उद्गम दोष जानकर शुद्ध आहारादि ले।

इनमें से कुछ दोष भोजन बनाने से पूर्व, कुछ भोजन बनाते समय, कुछ भोजन बनाने के बाद और कुछ साधु-साध्वी को आहार देते समय लगाये जाते हैं।

उद्गम दोष—४

(१) आहाकम्म दोसं—

आहाकम्मिय आहार गहण णिसेहो—

८९७. **अहाकडं[1] वा ण णिकामएज्जा, णिकामयंते ण य संथवेज्जा। धुणे उरालं अणुवेहमाणे, चेच्चाण सोयं अणपेक्खमाणे ॥**

—सूय. सु. १, अ. १०, गा. ११

(१) आधाकर्मदोष—

आधाकर्मी आहार ग्रहण का निषेध—

८९७. साधु आधाकर्मी आहार की कामना न करे और कामना करने वाले की प्रशंसा व समर्थन न करे। स्थूल शरीर की अपेक्षा न रखता हुआ, अनुप्रेक्षापूर्वक अममत्व को छोड़कर स्थूल शरीर को कृश करे।

---

1 आहाकम्मं भुंजमाणे सबले —दसा. द. २, सु. २

इह खलु पाईणं वा-जाव-उदीणं वा संतेगतिया सड्ढा भवंति गाहावती वा-जाव-कम्मकरी वा। तेसिं च णं एवं वुत्तपुव्वं भवति—

यहाँ (जगत् में) पूर्व—**यावत्**—उत्तर दिशा में कई श्रद्धालु गाथापति—**यावत्**—नौकरानियाँ होते है, वे पहले से ही श्रमण की आचार मर्यादा के ज्ञाता होते हैं।

"जे इमे भवंति समणा भगवंतो सीलमंता, वयमंता, गुणमंता, संजता, संवुडा, बंभचारी, उवरया मेहुणातो धम्मातो णो खलु एतेसिं कप्पति आधाकम्मिए असणं वा-जाव-साइमं वा भोत्तए वा, पायए वा।

"ये श्रमण भगवन्त शीलवान्, व्रतनिष्ठ, गुणवान्, संयत, संवृत (आस्रवों के निरोधक) ब्रह्मचारी एवं मैथुन कर्म से निवृत्त होते हैं। इन्हें आधाकर्मिक अशन—**यावत्**—स्वादिम आहार खाना या पीना कल्पनीय नहीं है।

से ज्जं पुण इमं अम्हं अप्पणो अट्ठाए णिट्ठितं,

अतः हमने अपने लिए जो आहार बनाया है,

तं जहा—असणं वा-जाव-साइमं वा, सव्वमेयं समणाणं णिसिरामो, अवियाइं वयं पच्छा वि अप्पणो अट्ठाए असणं वा-जाव-साइमं वा चेतिस्सामो।"

वह सब अशन—**यावत्**—स्वादिम आहार हम इन श्रमणों को दे देंगे और हम अपने लिए बाद में नया अशन—**यावत्**—स्वादिम आहार बना लेंगे।

एयप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं अणेसणिज्जं ति मण्णमाणे लाभे वि संते णो पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ६, सु. ३६०

उनके इस प्रकार के वचन सुनकर, समझकर (साधु या साध्वी) इस प्रकार के (दोषयुक्त) अशन—**यावत्**—स्वादिम आहार को अप्रासुक और अनेषणीय मानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

सिया से परो कालेण अणुपविट्ठस्स आधाकम्मियं असणं वा-जाव-साइमं वा उवकरेज्ज वा उवक्खडेज्ज वा। तं चेगतिओ तुसिणीओ उवेहेज्जा "आहडमेवं पच्चाइक्खिस्सामि।" मातिट्ठाणं संफासे। णो एवं करेज्जा।

कदाचित् भिक्षा के समय प्रवेश करने पर भी गृहस्थ आधाकर्मिक अशन—**यावत्**—स्वादिम बनाने के साधन जुटाने लगे या आहार बनाने लगे उसे देखकर साधु इस अभिप्राय से चुपचाप देखता रहे कि "जब यह आहार लेकर आयेगा, तभी उसे लेने से इन्कार कर दूंगा" यह सोचना माया स्थान का सेवन करना है। साधु ऐसा न करे।

से पुव्वामेव आलोएज्जा—

वह पहले से ही उन्हें कहे—

"आउसो! ति वा भइणी! ति वा णो खलु मे कप्पति आहाकम्मियं असणं वा-जाव-साइमं वा भोत्तए वा पायए वा, मा उवकरेहि मा उवक्खडेहि"

"आयुष्मन् गृहस्थ! या बहन! आधाकर्मिक अशन—**यावत्**—स्वादिम खाना या पीना मुझे नहीं कल्पता है अतः मेरे लिए न तो (अशनादि बनाने के) साधन एकत्रित करो और न बनाओ।"

से सेवं वदंतस्स परो आहाकम्मियं असणं वा-जाव-साइमं वा उवक्खडेत्ता आहट्टु दलएज्जा। तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ६, सु. ३६२

उस साधु के इस प्रकार कहने पर भी यदि वह गृहस्थ आधाकर्मिक अशन—**यावत्**—स्वादिम आहार बनाकर लाए और साधु को देने लगे तो वह साधु उस अशन—**यावत्**—स्वादिम को अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

आहाकम्म आहारेण कम्मबंधस्स एगंतकहण णिसेहो—

आधाकर्मी आहार करने से कर्मबन्ध का एकान्त कथन निषेध—

८६८. आहाकम्माणि भुंजंति, अण्णमण्णे, सकम्मुणा।
उवलित्ते ति जाणेज्जा, अणुवलित्ते ति वा पुणो॥

८६८. आधाकर्म दोष युक्त आहारादि का जो साधु उपभोग करते हैं, वे (आधाकर्म दोषयुक्त आहारादि का दाता तथा उपभोक्ता) दोनों तत्संबन्धी कर्म से उपलिप्त हुए हैं, अथवा उपलिप्त नहीं हुए हैं,

एएहिं दोहिं ठाणेहिं, ववहारो न विज्जती।
एएहिं दोहिं ठाणेहिं, अणायारं तु जाणए ॥[1]

—सूय. सु. २, अ. ५, गा. ८-६

इन दोनों प्रकार के निश्चय कथन से व्यवहार नहीं चलता है, इन दोनों प्रकार के निश्चय कथन को अनाचार जानना चाहिए।

कप्पाकप्पट्ठियाण णिमित्त आहारस्स गहण विणिच्छओ—

कल्पस्थित अकल्पस्थित के निमित्त बने आहार के ग्रहण का निर्णय—

८६६. जे कडे कप्पट्ठियाणं, कप्पइ से अकप्पट्ठियाणं, नो से कप्पइ-कप्पट्ठियाणं।

जे कडे अकप्पट्ठियाणं णो से कप्पइ कप्पट्ठियाणं, कप्पइ से अकप्पट्ठियाणं

कप्पे ठिया कप्पट्ठिया,
अकप्पे ठिया अकप्पट्ठिया।[2] —कप्प. उ. ४, सु. १६

८६६. जो (अशन—यावत्—स्वादिम) कल्पस्थितों के लिए बनाया गया है वह अकल्पस्थितों को कल्पता है, कल्पस्थितों को नहीं कल्पता है।

जो अकल्पस्थितों के लिए बनाया गया है, वह कल्पस्थितों को नहीं कल्पता है (अन्य) अकल्पस्थितों को कल्पता है।

जो कल्प में स्थित हैं वे कल्पस्थित हैं।
जो अकल्प में स्थित हैं वे अकल्पस्थित हैं।

---

१ टीकाकार ने आधाकर्मी आहार करने से कर्मबन्ध होने के विषय में इस प्रकार से स्पष्टीकरण किया है—

साधु प्रधानकारणमाधाय-आश्रित्य कर्माण्याधाकर्माणि, तानि च वस्त्र-भोजन-वसत्यादीन्युच्यन्ते, एतान्याधाकर्माणि ये भुञ्जन्ते-एते तदुपभोगे ये कुर्वन्ति "अन्योऽन्यं" परस्परं तान् स्वकीयेन कर्मणोपलिप्तवान् विजानीयादित्येवं नो वदेत्-तथाऽनुपलिप्तवानपि नो वदेत्।

एतदुक्तं भवति—आधाकर्मापि श्रुतोपदेशेन शुद्धमिति कृत्वा भुञ्जानः कर्मणा नोपलिप्यते। तदाधाकर्मोपभोगेनावश्यतया कर्मबन्धो भवतीत्येवं नो वदेत्।

तथा श्रुतोपदेशमन्तरेणाहारगृद्ध्याऽऽधाकर्म भुञ्जानस्य तन्निमित्त कर्मबन्ध सद्भावात् अतोऽनुपलिप्तवानपि नो वदेत्।

यथावस्थितमौनीन्द्रागमज्ञस्यत्वेवं युज्यते वक्तुम् "आधाकर्मोपभोगेन स्यात्कर्म बन्धः स्यान्नेति।"

यत उक्तम्—किञ्चिच्छुद्धं कल्प्यमकल्प्यमपि कल्प्यम्। पिण्डःशय्या, वस्त्रं, पात्रं वा भेषजाद्यं वा।

तथाऽन्यैरप्यभिहितम्—उत्पद्येत हि साऽवस्था, देश कालामयान्प्रति। यस्यामकार्य कार्यंस्यात्, कर्मकार्यं च वर्जयेत्॥ इत्यादि।

किमित्येवं स्याद्वादः प्रतिपाद्यत इत्याह— "आभ्यां द्वाभ्यां स्थानाभ्यामाश्रिताभ्यामाभ्योर्वा स्थानयोराधाकर्मोपभोगेन कर्मबन्धभावाभावभूतयोर्व्यवहारो न विद्यते।

तथाहि—यद्यवश्यमाधाकर्मोपभोगेनैकान्तेन कर्मबन्धोऽभ्युपगम्येत-एवं चाहाराभावेनापि क्वचित्सुतरामनर्थोदयः स्यात्।

तथाहि—क्षुत्प्रपीडितो न सम्यगीर्यापथं शोधयेत्। ततश्च व्रजन् प्राण्युपमर्दमपि कुर्यात्।

मूर्च्छादिसद्भावतया च देहपाते सत्यवश्यंभावी त्रसादि व्याघातोऽकालमरणे चाविरतिरङ्गीकृता भवत्यार्तध्यानापत्तौ च तिर्यग्गतिरिति।

आगमश्च—"सव्वत्थ संजमं संजमाओ अप्पाणमेव रक्खेज्जा" इत्यादिनाऽपि सदुपभोगे कर्मबन्धाभाव इति।

तथाहि—आधाकर्मण्यपि निष्पद्यमाने षड्जीवनिकायवधस्तद्वधे च प्रतीतः कर्मबन्ध इत्यतोऽनयोः स्थानयोरेकान्तेनाश्रीयमाणयो र्व्यवहरणं व्यवहारो न युज्यते।

तथाऽऽभ्यामेव स्थानाभ्यां समाश्रिताभ्यां सर्वमनाचारं विजानीयादिति स्थितम्।

—सूय. सु. २, अ. ५, गा. ८-६ की टीका पृ. ३७४

इस प्रकार टीकाकार ने दोनों एकान्त कथनों को अनाचार कहा है।

२ कल्पस्थित—आचेलक्य आदि दस प्रकार के कल्पों के अनुसार आचरण करने वाला तथा पंचमहाव्रतधारक कल्पस्थित कहा जाता है। भगवान् ऋषभदेव और भगवान महावीर के अनुयायी श्रमण कल्पस्थित कहे जाते हैं।

अकल्पस्थित—चार महाव्रत धारक अकल्पस्थित कहा जाता है।

भगवान् अजितनाथ से लेकर भगवान् पार्श्वनाथ पर्यन्त के अनुयायी श्रमण अकल्पस्थित कहे जाते हैं।

आसत्तिपुव्वकयं आहाकम्माहारस्स फलं—

६००. प०—आहाकम्मं णं भंते ! भुंजमाणे समणे णिग्गंथे, १. किं बंधति ?, २. किं पकरेति ?, ३. किं चिणाति ?, ४. किं उवचिणाति ?

उ०—गोयमा ! आहाकम्मं णं भुंजमाणे आउयवज्जाओ सत्त-कम्मपगडीओ बंधइ

आउयं च णं कम्मं सिय बंधइ, सिय नो बंधइ।

सिढिलबंधण बद्धाओ धणियबंधणबद्धाओ पकरेइ,

हस्सकालठितियाओ दीहकालठितियाओ पकरेइ,

मंदाणुभावाओ तिव्वाणुभावाओ पकरेइ,

अप्पपएसग्गाओ बहुपएसग्गाओ पकरेइ,

असायावेयणिज्जं च णं कम्मं भुज्जो भुज्जो चिणाइ, उवचिणाइ,

अणाइयं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंत-संसार-कंतारं अणुपरियट्टइ,

प०—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—

आहाकम्मं च णं भुंजमाणे आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ बंधइ,-जाव-अणाइयं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंत संसार कंतारं अणुपरियट्टइ ?

उ०—गोयमा ! आहाकम्मं च णं भुंजमाणे आयाए धम्मं अइक्कमइ,

आयाए धम्मं अतिक्कममाणे पुढविकायं णावकंखति-जाव-तसकायं णावकंखति,

जेसि पि य णं जीवाणं सरीराइं आहारमाहरेइ ते वि जीवे णावकंखति,

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—

"आहाकम्मं च णं भुंजमाणे आउयवज्जाओ सत्तकम्मपगडीओ बंधइ-जाव-अणाइयं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टइ।"[1]

—वि. स. १, उ. ६, सु. २६

आसक्तिपूर्वक आधाकर्म आहार करने का फल—

६००. प्र०—भगवन् ! आधाकर्मदोषयुक्त आहारादि का उपभोग करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ (१) क्या बांधता है ? (२) क्या करता है ? (३) किसका चय (वृद्धि) करता है और (४) किसका उपचय करता है ?

उ०—गौतम ! आधाकर्म दोषयुक्त आहारादि का उपभोग करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों को बाँधता है।

आयुकर्म कभी बाँधता है, कभी नहीं बाँधता है।

शिथिल बन्धन से बंधी हुई सात कर्मप्रकृतियों को दृढ़बन्धन से बंधी हुई बना लेता है।

अल्पकाल वाली कर्मप्रकृतियों की स्थिति को दीर्घकाल वाली स्थिति करता है।

मन्द रस वाली कर्मप्रकृतियों को तीव्र रस वाली करता है।

अल्पप्रदेश वाली कर्मप्रकृतियों को बहुत प्रदेश वाली करता है।

असातावेदनीय कर्म का पुनः पुनः चयन (संचय) उपचयन (वृद्धि) करता है।

अनादि अनन्त दीर्घकाल पर्यन्त चतुर्गतिमय संसार रूप अटवी में परिभ्रमण करता है।

प्र०—भगवन् ! किस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है—

आधाकर्मदोषयुक्त आहारादि का उपभोग करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ आयु कर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों को बाँधता है—यावत्—अनादि अनन्त दीर्घकाल पर्यन्त चतुर्गतिमय संसार रूप अटवी में परिभ्रमण करता है ?

उ०—गौतम ! आधाकर्मी आहारादि का उपभोग करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ अपने आत्मधर्म का अतिक्रमण करता है।

अपने आत्मधर्म का अतिक्रमण करता हुआ (साधक) पृथ्वीकाय के जीवों की परवाह नहीं करता है—यावत्—त्रसकाय के जीवों की परवाह नहीं करता है।

जिन जीवों के शरीरों का वह आहार करता है, उन जीवों की भी चिन्ता नहीं करता।

हे गौतम ! इस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है—

"आधाकर्म दोषयुक्त आहारादि का उपभोग करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों को बाँधता है—यावत्—अनादि अनन्त दीर्घकाल पर्यन्त चतुर्गतिमय संसार रूप अटवी में परिभ्रमण करता है।"

---

[1] वि. स. ७, उ. ८, सु. ६

आहाकम्माहारगहणपायच्छित्त सुत्तं—

६०१. जे भिक्खू आहाकम्मं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —नि. उ. १०, सु. ६

आधाकर्म आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

६०१. जो भिक्षु आधाकर्म आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

(२) उद्देसिय दोसं—

उद्देसिय आहार गहण णिसेहो—

६०२. भूयाइं च समारम्भ, समुद्दिस्स य जं कडं।
तारिसं तु न गिण्हेज्जा, अन्नं पाणं सुसंजए॥[1]
—सूय. सु. १, अ. ११, गा. १४

(२) औद्देशिक दोष—

औद्देशिक आहार ग्रहण करने का निषेध—

६०२. जो आहार-पानी प्राणियों का समारम्भ करके साधुओं को देने के उद्देश्य से बनाया गया है, वैसे आहार और पानी को सुसंयमी साधु ग्रहण न करे।

दाणट्ठविय आहारगहण णिसेहो—

६०३. असणं वा पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा॥
जं जाणेज्ज सुणेज्जा वा, दाणट्ठा पगडं इमं॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
—दस. अ. ५, उ. १, गा. ६२-६३

दानार्थ स्थापित आहार ग्रहण करने का निषेध—

६०३. अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य के विषय में मुनि यह जाने या सुने कि यह दानार्थ तैयार किया गया है।

वह भक्त पान संयति के लिए अकल्पनीय होता है, इसलिए मुनि देती हुई स्त्री को मना करे कि—"इस प्रकार का आहार मुझे नहीं कल्पता है।"

पुण्णट्ठविय आहार गहण णिसेहो—

६०४. असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा।
जं जाणेज्ज सुणेज्जा वा, पुण्णट्ठा पगडं इमं॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
—दस. अ. ५, उ. १, गा. ६४-६५

पुण्यार्थ स्थापित आहार ग्रहण करने का निषेध—

६०४. अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य के विषय में मुनि यह जाने या सुने कि यह पुण्यार्थ तैयार किया गया है।

वह भक्त-पान संयति के लिए अकल्पनीय होता है, इसलिए मुनि देती हुई स्त्री को मना करे कि "इस प्रकार का आहार मुझे नहीं कल्पता है।"

वणिमगट्ठविय आहार गहण णिसेहो—

६०५. असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा।
जं जाणेज्ज सुणेज्जा वा, वणिमट्ठा पगडं इमं॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
—दस. अ. ५, उ. १, गा. ६६-६७

भिखारियों के लिए स्थापित आहार-ग्रहण करने का निषेध—

६०५. अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य के विषय में मुनि यह जाने या सुने कि यह भिखारियों के लिए तैयार किया गया है।

वह भक्त-पान संयति के लिए अकल्पनीय होता है, इसलिए मुनि देती हुई स्त्री को मना करे कि "इस प्रकार का आहार मुझे नहीं कल्पता है।"

समणट्ठविय आहार गहण णिसेहो—

६०६. असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा।
जं जाणेज्ज सुणेज्जा वा, समणट्ठा पगडं इमं॥

श्रमणार्थ स्थापित आहार ग्रहण करने का निषेध—

६०६. अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य के विषय में मुनि यह जाने या सुने कि यह श्रमणों के लिए तैयार किया गया है।

---

१ (क) आ. सु. २, अ. १, उ. ९, सु. ३३१
(ख) आ. सु. १, अ. ८, सु. २०४-२०५
(ग) सूय. सु. २, अ. १, सु. ६८७-६८८
(घ) आ. सु. २, अ. १, उ १०, सु. ३६७

तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
—दस. अ. ५, उ. १, गा. ६८-६९

यह भक्त-पान संयति के लिए अकल्पनीय होता है, इसलिए मुनि देती हुई स्त्री को मना करे कि "इस प्रकार का आहार मुझे नहीं कल्पता है ।"

(३) पूइकम्म दोसं—

पूइकम्मदोसजुत्तआहारस्स णिसेहो—

६०७. पूतिकम्मं णं सेवेज्जा, एस धम्मे वुसीमतो ।
जं किंचि अभिकंखेज्जा, सव्वसो तं ण कप्पते ॥
—सूय. सु. १, अ. ११, गा. १५

(३) पूतिकर्म दोष—

पूतिकर्म दोषयुक्त आहार का निषेध—

६०७. पूतिकर्मयुक्त आहार का सेवन न करे यही संयमी का धर्म है । जो अशनादि किंचित् भी शंकित हो, उसका सर्वथा उपभोग न करे ।

पूइकम्मदोसजुत्तआहार गहण परिणामो—

६०८. जं किंचि वि पूतिकडं सड्ढीमागंतुमीहियं ।
सहस्संतरियं भुंजे, दुपक्खं चेव सेवती ॥

तमेव अवियाणंता, विसमंमि अकोविया ।
मच्छा वेसालिया चेव, उदगस्सऽभियागमे ॥

उदगस्सप्पभावेणं, सुक्कंमि घातमिंति उ ।
ढंकेहि य कंकेहि य, आमिसत्थेहिं ते दुही ॥
एवं तु समणा एगे, वट्टमाणसुहेसिणो ।
मच्छा वेसालिया चेव, घातमेसंतणंतसो ॥
—सूय. सु. १, अ. १, उ. ३, गा. १-४

पूतिकर्म दोषयुक्त आहार ग्रहण करने का परिणाम—

६०८ श्रद्धालु गृहस्थ द्वारा आगन्तुक भिक्षुओं के लिए बनाये आहार से अन्य शुद्ध आहार किंचित् भी पूतिकृत (मिश्रित) हो गया, उस आहार को जो साधक हजार घर का अन्तर होने पर भी खाते हैं वे साधक (गृहस्थ और साधु) दोनों पक्षों का सेवन करते हैं ।

वे पूतिकर्म सेवन से उत्पन्न दोष को नहीं जानते तथा कर्म बन्ध के प्रकारों को भी नहीं जानते । वे उसी प्रकार दुःखी होते हैं, जैसे वैशालिक जाति के मत्स्य जल की बाढ़ आने पर ।

बाढ़ के जल के प्रभाव से सूखे स्थान में पहुँचे हुए वैशालिक मत्स्य जैसे मांसार्थी ढंक और कंक पक्षियों द्वारा सताये जाते हैं ।

इसी प्रकार वर्तमान सुख के अभिलाषी कई श्रमण वैशालिक मत्स्य के समान अनन्त बार विनाश को प्राप्त करते हैं ।

पूइकम्मदोस जुत्त आहारं भुंजमाणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

६०९. जे भिक्खू पूईकम्मं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।
—नि. उ. १, सु. ५८

पूतिकर्म दोषयुक्त आहार करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

६०९. जो भिक्षु पूतिकर्म दोषयुक्त आहार करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

(४) ठवणा दोसं—

ठवणा दोसस्स पायच्छित्त सुत्तं –

६१०. जे भिक्खू ठवणाकुलाइं अजाणिय अपुच्छिय अगवेसिय पुव्वामेव पिण्डवायपडियाए अणुप्पविसइ, अणुप्पविसंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. ४, सु. २२

(४) स्थापना दोष—

स्थापना दोष का प्रायश्चित्त सूत्र—

६१०. जो भिक्षु स्थापित कुलों को जानने पूछने या गवेषणा करने के पहले ही आहार के लिए प्रवेश करता है, करवाता है, या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

(५) कीय दोसं—

कीय आहार गहण णिसेहो—

६११. किणंतो कइओ होइ, विक्किणंतो य वाणिओ ।
कय विक्कयम्मि वट्टंतो, भिक्खू न भवइ तारिसो ॥

(५) क्रीत दोष—

क्रीत आहार ग्रहण करने का निषेध –

६११. वस्तु को खरीदने वाला क्रयिक (खरीददार) होता है और बेचने वाला वणिक (विक्रेता) होता है । क्रय और विक्रय की प्रवृत्ति करने वाला उत्तम भिक्षु नहीं होता है ।

भिक्खियव्वं न केयव्वं, भिक्खुणा भिक्खवत्तिणा।
कय विक्कओ महादोसो, भिक्खावित्ती सुहावहा ॥[1]

—उत्त. अ. ३५, गा. १४-१५

भिक्षा-वृत्ति वाले भिक्षु को भिक्षा ही करनी चाहिए किन्तु खरीदना नहीं चाहिए। क्रय विक्रय महान् दोष है। भिक्षा-वृत्ति सुख को देने वाली है।

(६) अभिहडदोसं—

अभिहड आहार गहण णिसेहो—

६१२. जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवति- पुट्ठो अबलो अहमंसि, णालमहमंसि गिहंतरसंकमणं भिक्खायरियं गमणाए",

से सेवं वदंतस्स परो अभिहडं असणं वा-जाव-साइमं वा आहट्टु दलएज्जा,

से पुव्वामेव आलोएज्जा— "आउसंतो गाहावती णो खलु मे कप्पति अभिहडं असणं वा-जाव-साइमं वा भोत्तए वा पायए वा अण्णे वा एतप्पगारे"[2]।

—आ० सु० १, अ० ८, उ० ५, सु० २१८

(६) अभिहड़ दोष—

अभिहृत आहार ग्रहण करने का निषेध

६१२. जिस भिक्षु को ऐसा प्रतीत होने लगे कि "मैं रोगग्रस्त होने से दुर्बल हो गया हूँ। अतः मैं भिक्षा लाने के लिए एक घर से दूसरे घर जाने में समर्थ नहीं हूँ।"

उसे इस प्रकार कहते हुए (सुनकर) कोई गृहस्थ अपने घर से अशन—**यावत्** स्वादिम सामने लाकर दे तो,

वह भिक्षु उसे पहले ही कहे "आयुष्मन् गृहपति! यह घर से सामने लाया हुआ अशन—**यावत्** स्वादिम मेरे लिए सेवनीय नहीं है। इसी प्रकार सामने लाये हुए दूसरे पदार्थ भी मेरे लिए ग्रहणीय नहीं है।"

अभिहड दोसस्स पायच्छित्त सुत्तं—

६१३. जे भिक्खू गाहावइ-कुलं पिण्डवाय-पडियाए अणुपविट्ठे समाणे परं ति- घरंतराओ असणं वा-जाव-साइमं वा अभिहडं आहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ३, सु. १५

अभिहड़ दोष का प्रायश्चित्त सूत्र—

६१३. जो भिक्षु गाथापति के कुल में आहार के लिए प्रवेश करके तीन घर के उपरान्त से अशन —**यावत्**—स्वाद्य सामने लाकर देने पर ग्रहण करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्घातिक मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

(७) उब्भिण्णदोसं —

उब्भिण्ण आहार गहण णिसेहो—

६१४. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा असणं वा-जाव-साइमं वा मट्टिओलित्तं। तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं-जाव-णो पडिग्गाहेज्जा।

(७) उद्भिन्न दोष—

उद्भिन्न आहार ग्रहण करने का निषेध—

६१४. भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रवेश करने पर यह जाने कि वहाँ अशन **यावत्**—स्वादिम आहार मिट्टी के लिपे हुए मुख वाले बर्तन में रखा हुआ है तो इस प्रकार का अशन— **यावत्**—स्वादिम अप्रासुक जानकर—**यावत्** —ग्रहण न करे।

---

१ दसा. द. २, सु. २

२ गच्छत्यागी श्रमण जरा से जीर्ण देहवाला होने पर या किसी महारोग से अशक्त असमर्थ होने पर अपने लिए आहारादि न ला सके तो भी वह किसी गृहस्थ द्वारा लाया हुआ आहारादि न ले।

यदि वह अभिग्रहधारी हो और आचारांग सु. १, अ. ८, उ. ५, या ७ के अनुसार उसके अभिग्रह में दूसरे श्रमण द्वारा लाया हुआ आहार लेने का आगार हो तो उस से लाया हुआ आहार ले सकता है।

अथवा उत्त. अ. १९ में उक्त मृगचर्या में रत रहकर संथारा संलेहणा करके पण्डित मरण प्राप्त हो किन्तु अभ्याहृत दोष युक्त आहार न ले।

गच्छवासी अशक्त असमर्थ श्रमण की वैयावृत्य करने वाले तो अन्य श्रमण होते ही हैं—अतः उसके लिए अभ्याहृत दोष युक्त आहार लेने का विकल्प सम्भव नहीं है।

केवली बूया-आयाणमेयं ।

अस्संजए भिक्खुपडियाए मट्टिओलित्तं असणं वा-जाव-साइमं वा उब्भिंदमाणे पुढवीकायं समारंभेज्जा, तह तेउ-वाउ-वणस्सति-तसकायं समारंभेज्जा पुणरवि ओलिंपमाणे पच्छाकम्मं करेज्जा ।

केवली भगवान् कहते हैं—यह कर्म आने का कारण है—

क्योंकि असंयत गृहस्थ साधु को अशन—यावत्—स्वादिम देने के लिए मिट्टी के लिपे हुए बर्तन का मुंह उद्भेदन करता (खोलता) हुआ पृथ्वीकाय का समारम्भ करेगा, तथा अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय का समारम्भ करेगा। शेष आहार की सुरक्षा के लिए फिर बर्तन को लिप्त करके वह पश्चात् कर्म करेगा।

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा-जाव-एस उवएसे जं तहप्पगारं मट्टिओलित्तं असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा । —आ. सु. २, अ. १, उ. ७, सु. ३६७

इसीलिए तीर्थंकर भगवान ने पहले से ही यह प्रतिज्ञा – यावत्—उपदेश दिया है कि मिट्टी से लिप्त बर्तन को खोलकर दिये जाने वाले अशन—यावत्—स्वादिम आहार को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

दगवारएण पिहियं, नीसाए पीढएण वा ।
लोढेण वा वि लेवेण, सिलेसेण व केणइ ॥

अशनादि का पात्र जल के छोटे घड़े से, पीसने की शिला से, पीढ़े से या पीसने के पत्थर (लोढ़ी) से अथवा लाख आदि से मुंह बन्द किया हुआ हो,

तं च उब्भिंदिया देज्जा, समणट्ठाए व दायए ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
—दस. अ. ५, उ. १ गा. ६०-६१

उसे श्रमण के लिये खोलकर देवे तो मुनि देने वाली स्त्री से कहे कि "इस प्रकार का आहार लेना मुझे नहीं कल्पता है।"

उब्भिण्णआहारगहणपायच्छित्त सुत्तं—

६१५. जे भिक्खू मट्टिओलित्तं असणं वा-जाव-साइमं वा उब्भिंदिय निब्भिंदिय देज्जमाणं पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १७, सु. १२५

उद्भिन्न आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

६१५. जो भिक्षु मिट्टी से लिप्त अशन—यावत् स्वादिम को लेप तोड़कर देने पर ग्रहण करता है, ग्रहण करवाता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

(८) मालोहडदोसं—

मालोहड आहारगहण णिसेहो—

६१६. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा-असणं वा-जाव-साइमं वा खंधंसि वा, मंचंसि वा, मालंसि वा, पासायंसि वा, हम्मियतलंसि वा, अण्णयरंसि वा, तहप्पगारंसि अंतलिक्ख जायंसि उवणिक्खित्ते सिया ।

तहप्पगारं मालोहडं असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा ।

केवली बूया—आयाणमेयं ।

अस्संजए भिक्खुपडियाए पीढं वा, फलगं वा, णिस्सेणिं वा, उदूहलं वा, अवहट्टु उस्सविय दुरुहेज्जा ।

से तत्थ दुरुहमाणे पयलेज्ज वा, पवडेज्ज वा ।

(८) मालोपहृत दोष—

मालोपहृत आहार ग्रहण करने का निषेध—

६१६. भिक्षु या भिक्षुणी आहार के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करने पर यह जाने कि—अशन—यावत्—स्वाद्य स्तम्भ पर, मंच पर, माले पर, प्रासाद पर और महल की छत पर या अन्य भी ऐसे आकाशीय स्थान पर रखा हुआ है।

ऐसा मालोपहृत अशन—यावत्—स्वाद्य अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

केवली भगवान्) ने कहा है—उक्त प्रकार का आहार लेना कर्मबन्ध का कारण है।

भिक्षु के लिए गृहस्थ पीढ़ा, पाटिया, निसेणी या ऊखल लाकर व खड़ा रखकर ऊपर चढ़े।

चढ़ते हुए उसका पैर फिसल जाय या वह गिर पड़े,

से तत्थ पयलमाणे वा, पवडमाणे वा, हत्थं वा, पायं वा, बाहुं वा, ऊरुं वा, उदरं वा, सीसं वा, अण्णतरं वा कायंसि वा इन्दियजायं लूसेज्ज वा,

पाणाणि वा-जाव-सत्ताणि वा अभिहणेज्ज वा, वत्तेज्ज वा, लेसेज्ज वा, संघसेज्ज वा, संघट्टेज्ज वा, परियावेज्ज वा, किलामेज्ज वा, उद्दवेज्ज वा, ठाणाओ ठाणं संकामेज्ज वा, जीवियाओ ववरोवेज्ज वा,

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा एस पइण्णा-जाव-उवएसे जं तहप्पगारं मालोहडं असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा ।[1] —आ. सु. २, अ. १, उ. ७, सु. ३६५

पैर फिसलने पर या गिर पड़ने पर उसके हाथ, पैर, बाहु, उरू, उदर, सिर या अन्य शरीर की इन्द्रियाँ क्षत-विक्षत हो जाए।

अथवा उसके गिरने पर प्राणी—यावत्—सत्वों का हनन हो जावे, वे नीचे दब जावें, संकुचित हो जावें, कुचले जावें, परस्पर टकरावें, पीड़ित हों, संतप्त हों, त्रस्त हों, उनका स्थानान्तरण हो या वे मृत्यु को प्राप्त हों।

अतः भिक्षु को पहले से ही यह प्रतिज्ञा—यावत्—उपदेश दिया गया है कि इस प्रकार अशन—यावत्—स्वाद्य अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

मालोहडआहारगहणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

६१७. जे भिक्खू मालोहडं असणं वा-जाव-साइमं वा, देज्जमाणं पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —नि. उ. १७, सु. १२३

मालोपहृत आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

६१७. जो भिक्षु मालोपहृत अशन—यावत्—स्वादिम देते हुए को लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहार स्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

कोट्ठाउत्त आहार गहण णिसेहो—

६१८. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवाय पडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा-असणं वा-जाव-साइमं वा कोट्ठियाओ वा कोलेज्जाओ वा अस्संजए भिक्खु-पडियाए उक्कुज्जिय अवउज्जिय ओहरिय आहट्टु दलएज्जा।

तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा मालोहडं ति णच्चा लाभे संते णो पडिगाहेज्जा। —आ. सु. २, अ. १, उ. ७, सु. ३६६

नाइउच्चे व नीए वा, नासन्ने नाइदूरओ।
फासुयं परकडं पिण्डं, पडिगाहेज्ज संजए॥ —उत्त. अ. १, गा. ३४

कोठे में रखे हुए आहार को लेने का निषेध—

६१८. भिक्षु या भिक्षुणी आहार के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करने पर यह जाने कि गृहस्थ साधु के लिए अशन—यावत्—स्वाद्य आहार मिट्टी आदि की बड़ी कोठी में से या ऊपर से संकड़ी और नीचे से चौड़ी लम्बी कोठी में से ऊँचा होकर, नीचे झुककर निकालकर देना चाहता है।

ऐसे अशन—यावत्—स्वाद्य आहार को मालोपहृत (दोष से युक्त) जानकर प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे।

संयमी मुनि गृहस्थ के लिए बना हुआ प्रासुक आहार ग्रहण करे, किन्तु अति ऊँचे या अति नीचे स्थान से दिया जाता हुआ तथा अति समीप या अति दूर से दिया जाता हुआ प्रासुक आहार भी न ले।

कोट्ठाउत्त आहार गहणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

६१९. जे भिक्खू कोट्ठियाउत्तं असणं वा-जाव-साइमं व उक्कुज्जिय निक्कुज्जिय ओहरिय देज्जमाणं पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —नि. उ. १७, सु. १२४

कोठे में रखा हुआ आहार लेने का प्रायश्चित्त सूत्र—

६१९. जो भिक्षु कोठे में रखे हुए अशन—यावत्—स्वाद्य को ऊँचा होकर, नीचे झुककर, निकालकर देते हुए को लेता है, लिवाता है, या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

---

१ निस्सेणिं फलगं पीढं, उस्सवित्ताणमारुहे। मंचं कीलं च पासायं, समणट्ठाए व दावए॥
दुरूहमाणी पवडेज्जा, हत्थं पायं व लूसए। पुढविजीवे विहिंसेज्जा, जे य तन्निसिया जगा॥
एयारिसे महादोसे, जाणिऊण महेसिणो। तम्हा मालोहडं भिक्खं न पडिगेण्हंति संजया॥ —दस. अ. ५, उ. १, गा. ६९-१००

(९) अणिसिट्ठ दोसं—

अणिसिट्ठ आहार गहण विहि णिसेहो—

६२०. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवाय पडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा-असणं वा-जाव-साइमं वा परं समुद्दिस्स बहिया णीहडं तं परेहिं असमणुण्णातं अणिसिट्ठं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

तं परेहिं समणुण्णातं सम्मणिसिट्ठं फासुयं-जाव-पडिगाहेज्जा। —आ. सु. २, अ. १, उ. ९, सु. ३९७ (१)

दोण्हं तु भुंजमाणाणं, एगो तत्थ निमंतए।
दिज्जमाणं न इच्छेज्जा, छंदं से पडिलेहए॥

दोण्हं तु भुंजमाणाणं, दोवि तत्थ निमंतए।
दिज्जमाणं पडिच्छेज्जा, जं तत्थेसणियं भवे॥[1]

—दस. अ. ५, उ. १, गा. ५२-५३

(९) अनिसृष्ट दोष—

अनिसृष्ट आहार ग्रहण करने का विधि निषेध—

६२०. भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रवेश करने पर वह जाने कि—अशन—यावत्—स्वादिम अन्य किसी को देने के लिए निकाला है, वह आहार उनकी आज्ञा के बिना या उनके दिये बिना अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

वह आहार उनकी आज्ञा मिलने पर या उनके द्वारा दिये जाने पर प्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण करे।

दो स्वामी या भोक्ता हों और उनमें से एक निमन्त्रित करे तो मुनि वह दिया जाने वाला आहार न ले। दूसरे के अभिप्राय को देखे—उसे देना अप्रिय लगता हो तो न ले और प्रिय लगता हो तो ले ले।

दो स्वामी या भोक्ता हों और दोनों ही निमन्त्रित करें तो मुनि उस दीयमान आहार को यदि वह एषणीय हो तो ले ले।

उत्पादन दोष—५

[प्राक्कथन]

सोलह उत्पादन दोष—

धाई दूई निमित्ते, आजीव वणीमगे तिगिच्छा य। कोहे माणे माया, लोभे य हवंति दस एए॥ १॥
पुव्विं पच्छा संथवं, विज्जा मंते य चुण्ण जोगे य। उप्पायणाइ दोसा, सोलसमे मूलकम्मे य॥ २॥

—पिण्ड. नि. गा. ४०८-४०९

(१) धात्री—धाय के समान बालक बालिकाओं को खिला-पिलाकर या हंसा रमाकर आहारादि लेना।

(२) दूती—दूती के समान इधर-उधर की बातें एक दूसरे को कहकर अथवा स्वजन सम्बन्धियों के समाचारों का आदान-प्रदान करके आहारादि लेना।

(३) निमित्त—ज्योतिष आदि निमित्त शास्त्रों के अनुसार किसी का शुभाशुभ बताकर आहारादि लेना।

(४) आजीव—आहारादि की प्राप्ति के लिए दीक्षित होने से पूर्व के जाति कुल बताना, दीक्षित होने के बाद का गण बताना तथा गृहस्थ जीवन में जिस कर्म या शिल्प में निपुणता प्राप्त की हो उस कर्म या शिल्प के प्रयोग किसी को आजीविका के लिए बताना।

(५) वनीपक—दान का महत्व बताकर या दाता की प्रशंसा करके आहारादि लेना।

(६) चिकित्सा—रोगादि निवारण के प्रयोग बताकर आहारादि लेना।

(७) क्रोध—कुपित होकर आहारादि लेना या आहारादि न देने पर श्राप देने का भय दिखाकर आहारादि लेना।

(८) मान—अपने जाति कुल आदि का गौरव बताकर आहारादि लेना।

(९) माया—छल का प्रयोग करके आहारादि लेना।

(१०) लोभ—सरस आहार के लिए अधिक घर घूमना।

---

१ (क) दसा. द. २, सु. २
(ख) मुनि को वस्तु के दूसरे स्वामी का अभिप्राय नेत्र और मुखाकृति के चढ़ाव उतार से जानना चाहिए।

(११) **पूर्व-पश्चात्संस्तव** – आहार ग्रहण करने के पहले या पीछे दाता की या अपनी प्रशंसा करना।

(१२) **विद्या**—किसी विद्या के प्रयोग से आहारादि लेना अथवा किसी विद्या की सिद्धि का प्रयोग बताकर आहारादि लेना।

(१३) **मन्त्र**—किसी मन्त्र प्रयोग से आहारादि लेना अथवा किसी मन्त्र की सिद्धि की विधि बताकर आहारादि लेना।

(१४) **चूर्ण**—वशीकरण का प्रयोग करके आहारादि लेना अथवा वशीकरण का प्रयोग बताकर आहारादि लेना।

(१५) **योग**—योग विद्या के प्रयोग दिखाकर आहारादि लेना, अथवा योग विद्या के प्रयोग सिखाकर आहारादि लेना।

(१६) **मूलकर्म**—गर्भपात के प्रयोग बताकर आहारादि लेना।

अन्तर्धान पिंड—अदृष्ट विद्या आदि के प्रयोग से अदृष्ट रहकर आहारादि लेना।

निशीथ उद्देशक १३ में धात्री आदि उत्पादन दोषों के प्रायश्चित्तों का विधान है। पिण्डनिर्युक्ति में प्रतिपादित उत्पादन दोषों में तथा निशीथ प्रतिपादित उत्पादन दोषों में क्रम भेद, संख्या भेद और पाठ भेद है।

पिण्डनिर्युक्ति में १६ भेद हैं और निशीथ में १५ भेद हैं।

पिण्डनिर्युक्ति में अन्तर्धानपिण्ड नहीं है, निशीथ में है।

पिण्डनिर्युक्ति में मूलकर्म है, निशीथ में नहीं है।

पिण्डनिर्युक्ति में पूर्व पश्चात् संस्तव है, निशीथ में नहीं है।

(१) कोपपिंड दोसं—

असणाइ अलाभे कोव-णिसेहो—

६२१. एस वीरे पसंसिते जे ण णिव्विज्जति आदाणाए,

ण मे देति ण कुप्पेज्जा,

थोवं लद्धुं ण खिंसए।
पडिसेहितो परिणमेज्जा।
एतं मोणं समणुवासेज्जासि।

—आ. सु. १, अ. २, उ. ४, सु. ८६

बहुं परघरे अत्थि, विविहं खाइमं-साइमं।
न तत्थ पंडिओ कुप्पे, इच्छा देज्ज परो न वा॥

सयणासणवत्थं वा, भत्त-पाणं व संजए।
अदेंतस्स न कुप्पेज्जा, पच्चक्खे वि य दीसओ॥[1]

—दस. अ. ५, उ. २, गा. २७-२८

लूहवित्ती सुसंतुट्ठे, अप्पिच्छे सुहरे सिया।
आसुरत्तं न गच्छेज्जा, सोच्चा णं जिणसासणं॥[2]

—दस. अ. ८, गा. २५

(१) कोपपिंड दोष—

अशनादि के न मिलने पर क्रोध करने का निषेध—

६२१. वह वीर प्रशंसनीय है जो भिक्षा अप्राप्ति में उद्विग्न नहीं होता है।

"यह मुझे भिक्षा नहीं देता" ऐसा सोचकर कुपित नहीं होता है।

थोड़ी भिक्षा मिलने पर दाता की निन्दा नहीं करता है।

दाता द्वारा प्रतिषेध करने पर वापस लौट जाता है।

मुनि इस मौन (मुनि धर्म) का भली भांति पालन करे।

गृहस्थ के घर में नाना प्रकार का प्रचुर खाद्य-स्वाद्य होता है, (किन्तु न देने पर) पण्डित मुनि कोप न करे। (यों चिन्तन करे कि) "इसकी अपनी इच्छा है, दे या न दे।"

संयमी मुनि सामने दीख रहे शयन, वस्त्र, भोजन या पानी आदि न देने वाले पर भी कोप न करे।

मुनि रूक्षवृत्ति, सुसंतुष्ट, अल्प इच्छा वाला और अल्प आहार से तृप्त होने वाला हो। वह जिन शासन को सुनकर/समझकर (अलाभ होने पर) क्रोध न करे।

तुलना के लिए देखिए—

१ सयणासण-पाण-भोयणं, विविहं खाइमं साइमं परेसिं। अदए पडिसेहिए नियंठे, जे तत्थ न पउस्सई स भिक्खू॥

—उत्त. अ. १५, गा. ११

२ इन गाथाओं में आहार न मिलने पर क्रोध न करने का विधान है वास्तव में क्रोधपिण्ड की व्याख्या निशीथचूर्णि और पिण्डनिर्युक्ति में ही दी गई है।

क्रोध-पिण्ड के प्रकार और उदाहरण आदि देखिए—

—नि. चूर्णि गा. ४४३९-४४४३

—पिण्डनिर्युक्ति गाथा ४६१-४६४

(२) माणपिंड दोसं—

६२२. जे माहणे खत्तिय जायए वा, तहुग्गपुत्ते तह लेच्छइ वा ।
जे पव्वइए परदत्तभोई, गोत्तेण जे थब्भइ माणबद्धे ॥
—सूय. सु. १, अ. १३, गा. १०

णिक्किंचणे भिक्खू सुलूहजीवी, जे गारवं होइ सिलोयगामी ।
आजीवमेयं तु अबुज्झमाणो, पुणो-पुणो विप्परियासुवेंति ॥[1]
—सूय. सु. १, अ. १३, गा. १२

(२) मानपिण्ड दोष—

६२२. जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, उग्रपुत्र अथवा लिच्छवी जाति वाला है, प्रव्रजित होकर गृहस्थों से दिया हुआ आहार खाता है और अपने उच्च गोत्र का अभिमान नहीं करता है वही पुरुष सर्वज्ञ के मार्ग का अनुयायी है।

जो भिक्षु अकिंचन है और रूक्ष आहार से जीवन निर्वाह करता है किन्तु गर्व करता है एवं प्रशंसा चाहता है तो वह अज्ञानी केवल आजीविका करता हुआ पुनः भव-भ्रमण करता है।

(३) लोभपिंडदोसं—

६२३. सिया एगइओ लद्धुं, लोभेण विणिगूहई ।
मा मेयं दाइयं संतं, दट्ठूणं सयमायए ॥
अत्तट्ठागुरुओ लुद्धो, बहुं पावं पकुव्वई ।
दुत्तोसओ य से होइ, निव्वाणं च न गच्छई ॥
—दस. अ. ५, उ. २, गा. ३१-३२

संथार सेज्जाऽऽसण-भत्त-पाणे अप्पिच्छया अइलाभे वि संते ।
जो एवमप्पाणऽभितोसएज्जा संतोसपाहन्नरए स पुज्जो ॥
—दस. अ. ९, उ. ३, गा. ५

(३) लोभ-पिण्ड दोष—

६२३. कदाचित् कोई एक मुनि सरस आहार पाकर उसे इस लोभ से छिपा लेता है कि आचार्य आदि को दिखाने पर वह स्वयं ले लें वे मुझे न दें, वह अपने स्वार्थ को प्रमुखता देने वाला और रस-लोलुप मुनि बहुत पाप करता है, वह जिस किसी वस्तु से संतुष्ट नहीं होता और (ऐसा साधु) निर्वाण को नहीं पाता।

संस्तारक, शय्या, आसन, भक्त और पानी का अधिक लाभ होने पर भी जो अल्पेच्छ होता है जो इस तरह अपने आप को संतुष्ट रखता है और जो संतोषप्रधान जीवन में रत है, वह पूज्य है।

पुव्व-पच्छा संथव दोस—

६२४. निक्खम्म दीणे परभोयणंमि, मुहमंगलिओदरियाणुगिद्धे ।
नीवारगिद्धे व महावराहे, अदूरए एहिइ घातमेव ॥

अन्नस्स पाणस्सिहलोइयस्स, अणुप्पियं भासइ सेवमाणे ।
पासत्थयं चेव कुसीलयं च निस्सारए होइ जहा पुलाए ॥[1]
—सूय. सु. १, अ. ७, गा. २५-२६

(४) पूर्व-पश्चात् संस्तव दोष—

६२४. जो श्रमण स्वगृह त्याग कर दूसरे से भोजन पाने के लिए दीनता करता है तथा भोजन में आसक्त होकर गृहस्थ की प्रशंसा करता है, वह चावल के दानों में आसक्त महाशूकर के समान शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है।

जो इहलौकिक पदार्थ अन्न, पानी आदि के लिए प्रिय भाषण करता है, वह पार्श्वस्थ भाव तथा कुशील-भाव का सेवन करता हुआ पुआल के समान निस्सार हो जाता है।

पुव्वपच्छासंथवदोसस्स पायच्छित्त सुत्तं—

६२५. जे भिक्खू पुरेसंथवं वा पच्छासंथवं वा करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।[2]
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
— नि. उ. २, सु. ३८

पूर्व-पश्चात् संस्तव दोष का प्रायश्चित्त सूत्र—

जो भिक्षु (दान देने के) पहले या पीछे स्तुति करता है, करवाता है, या करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

---

१ (क) सूत्रकृतांग सूत्र में भिक्षु के लिए मान करने का निषेध है किन्तु निशीथ चूर्णि और पिण्डनिर्युक्ति में मानपिण्ड की यथार्थ व्याख्या की गई है।
(ख) मानपिण्ड दोष की उदाहरण पूर्वक व्याख्या देखिये— —नि. चूर्णि गा. ४४४४-४४५४
(१) व्याख्या इस प्रकार है—
ओच्छाहिओ परेण वा, लद्धि-पसंसाहि वासमुइत्तो । अवमाणिओ परेण य, जो एसइ माणपिण्डो सो ॥ — पिण्ड. गा. ४६५

२ (क) मोहरंति मौखर्येण पूर्व संस्तव-पश्चात्संस्तवादिना बहुभाषितेन यल्लभ्यते तन्मौखर्यमुत्पादना दोष — —पण्ह. सु. २, अ. ५, सु. २६ की टीका
(ख) पण्ह. सु. २, अ. ५, सु. ५ में पूर्वपश्चात्संस्तव दोष का मौखर्य नाम है।

३ संस्तव के भेद, संस्तव के दोष आदि के लिए देखिए— —पिण्ड नि. गा. ४८४-४९३

उप्पायणा दोस वज्जण सुद्ध आहार गहणस्स य उवएसो—

६२६. न निसज्ज-कहा-पओयणक्खा ओवणियं ति।

न तिगिच्छा-मंत-मूल - भेसज्जकज्जहेउं।

न लक्खणुप्पाय सुमिण-जोइस-निमित्तकह-कप्पउत्तं।

नवि डंभणाए, नवि रक्खणाए, नवि सासणाए।
नवि डंभण-रक्खण-सासणाए भिक्खं गवेसियव्वं।
नवि वंदणाए, नवि माणणाए, नवि पूयणाए।
नवि वंदण-माणण-पूयणाए भिक्खं गवेसियव्वं।
नवि हीलणाए नवि निंदणाए नवि गरहणाए।
नवि हीलणं-निंदण-गरहणाए भिक्खं गवेसियव्वं।
नवि भेसणाए नवि तज्जणाए नवि तालणाए।
नवि भेसण-तज्जण-तालणाए भिक्खं गवेसियव्वं।
नवि गारवेणं नवि कुहणयाए नवि वणीमयाए।
नवि गारव-कुहण-वणीमयाए भिक्खं गवेसियव्वं।
नवि मित्तयाए नवि पत्थणाए नवि सेवणाए।
नवि मित्त-पत्थण-सेवणाए भिक्खं गवेसियव्वं।

अन्नाए, अगढिए, अदुट्ठे, अदीणे, अविमणे, अकलुणे, अविसाली, अपरितंतजोगी जयण-घडण-करण-चरिय-विणयगुण-जोगसंपउत्ते भिक्खू भिक्खेसणाए निरते।

—पण्ह. सु. २, अ. १, सु. ५

उत्पादन दोषों का वर्जन और शुद्ध आहार ग्रहण का उपदेश—

६२६. गृहस्थ के घर में बैठकर धर्मकथा निमित्त कहानियाँ कहकर भिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए।

चिकित्सा, मन्त्र, जड़ीबूटी, औषध निर्माण आदि के प्रयोग बताकर भिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए।

शुभाशुभ लक्षण, उत्पात, भूकम्पादि, स्वप्न फल, ज्योतिष-मुहूर्त कथन, निमित्तकथन, भविष्यकथन, कौतुक-जादू के प्रयोग बताकर भिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए,

दम्भ करके, आत्मरक्षा के प्रयोग की शिक्षा देकर, अनुशासन करने का शिक्षण देकर भिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए।

वन्दन करके, सन्मान करके, पूजा करके भिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए।

अपमान करके, निन्दा करके, अपकीर्ति करके भिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए।

भय दिखा करके, तर्जना करके, ताडना करके भिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए।

गर्व करके, क्रोध करके, दीनता प्रकट करके भिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए।

मित्रता करके, प्रार्थना करके, सेवा करके भिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए।

अज्ञात कुल से भिक्षा ग्रहण करने वाला, सरस आहार करने में अनासक्त, नीरस आहार दाता से अद्वेष भाव वाला, आहार न मिलने पर भी अदीन, आहार नहीं मिलने पर भी अग्लान मन वाला, दयनीय भाव रहित, विषाद रहित, अशुभयोग रहित प्राप्त संयम साधना में प्रयत्नशील, सूत्रानुसार अर्थ घटाने में उपयुक्त, करण चरण एवं विनय गुणयुक्त भिक्षु भिक्षा की एषणा में तत्पर रहे।

धाइ पिंडाइ भुंजमाणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

६२७. १. जे भिक्खू धाई-पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

२. जे भिक्खू दूई-पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

३. जे भिक्खू णिमित्त-पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

४. जे भिक्खू आजीविय-पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

धातृपिंडादि दोषयुक्त आहार करने वाले के प्रायश्चित्त सूत्र—

६२७. (१) जो भिक्षु धातृपिंड भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

(२) जो भिक्षु दूतिपिंड भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

(३) जो भिक्षु त्रैकालिक निमित्त कहकर आहार भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

(४) जो भिक्षु आजीविक (आजीविका के प्रयोग बताकर लिया हुआ आहार) पिंड भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

५. जे भिक्खू वणीमग-पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ ।

(५) जो भिक्षु भिखारी के निमित्त निकाला हुआ आहार भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है ।

६. जे भिक्खू तिगिच्छा-पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ ।

(६) जो भिक्षु चिकित्सा पिंड भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है ।

७. जे भिक्खू कोह-पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ ।

(७) जो भिक्षु कोपपिंड भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है ।

८. जे भिक्खू माण-पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ ।

(८) जो भिक्षु मानपिंड भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है ।

९. जे भिक्खू माया-पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ ।

(९) जो भिक्षु मायापिंड भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है ।

१०. जे भिक्खू लोभ-पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ ।

(१०) जो भिक्षु लोभपिंड भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है ।

११. जे भिक्खू विज्जा-पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ ।

(११) जो भिक्षु विद्यापिंड भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है ।

१२. जे भिक्खू मंत-पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ ।

(१२) जो भिक्षु मन्त्रपिंड भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है ।

१३. जे भिक्खू चुण्ण-पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ ।

(१३) जो भिक्षु चूर्णपिंड भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है ।

१४. जे भिक्खू जोग-पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ ।

(१४) जो भिक्षु योगपिंड भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है ।

१५. जे भिक्खू अंतद्धाण-पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ ।

(१५) जो भिक्षु अंतर्धानपिंड (अदृष्ट रहकर ग्रहण किया हुआ आहार को) भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. १३, सु. ६४-७८

उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

एषणा दोष—६

[प्राक्कथन]

दस दोष ग्रहणैषणा के—

संकियमक्खिय, णिक्खित्त, पिहिय, साहरिय दायगुम्मीसे । अपरिणय लित्त छड्डियं, एषण दोसा दस हवंति ॥

—पिण्डनिर्युक्ति गा. ५२०

(१) **शंकित**—किसी एक उद्गम आदि दोष की आशंका होने पर भी आहारादि लेना,

(२) **म्रक्षित**—किसी सचित्त पदार्थ से आहारादि का स्पर्श होते हुए भी ले लेना ।

(३) **निक्षिप्त**—किसी सचित्त पदार्थ पर रखा हुआ आहारादि लेना ।

(४) **पिहित**—किसी सचित्त पदार्थ युक्त पात्र आदि से ढके हुए आहारादि लेना ।

(५) **संहृत**—जिस पात्र आदि में सचित्त पदार्थ रखे हुए हों उन्हें खाली करके उसी पात्र आदि से आहारादि देने पर लेना ।

(६) दायक—अन्धे से, कम्पन वात वाले से, कुष्ठरोग वाले से, गर्भिणी तथा जीव विराधना करके देने वाले से आहारादि लेना।

(७) उन्मिश्र—किसी भी सचित्त पदार्थ से मिश्रित आहारादि लेना।

(८) अपरिणत—सर्वथा अचित्त हुए बिना अर्थात् सचित्त या मिश्र आहारादि लेना।

(९) लिप्त—हाथ पात्र आदि सचित्त पदार्थों से संसृष्ट (खरड़े हुए) हों, उनसे भिक्षा ग्रहण करना।

(१०) छर्दित - यदि कोई कुछ गिराते हुए आहारादि दे उससे लेना।

ये दोष गृहस्थ अविवेक से और साधु साध्वी आसक्ति आदि से लगाते हैं।

(१) संकियदोसं—

संकाए वट्टमाणस्स आहार गहण णिसेहो—

६२८. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवाय पडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—

असणं वा-जाव-साइमं वा एसणिज्जे सिया, अणेसणिज्जे सिया वितिगिंछ समावण्णेण अप्पाणेणं असमाहडाए लेस्साए

तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।[1] —आ. सु. २, अ. १, उ. ३, सु. ३४३

(१) शंकित दोष—

शंका के रहते हुए आहार ग्रहण करने का निषेध—

६२८. गृहस्थ के घर में भिक्षा प्राप्ति के उद्देश्य से प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

"अशन यावत्—स्वादिम एषणीय है या अनेषणीय" इस तरह उसका चित्त आशंका से युक्त हो और उसकी असमाधित अवस्था रहे।

इस प्रकार के अशन - यावत्—स्वादिम को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

(२) निक्खित्तदोसं—

पुढवीकायपइट्ठिय आहार गहण णिसेहो—

६२९. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, गाहावइकुलं पिंडवाय पडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—

असणं वा-जाव-साइमं वा पुढविक्कायपतिट्ठितं,

तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा। —आ० सु० २, अ० १, उ० ७, सु० ३६८ (क)

(२) निक्षिप्त दोष—

पृथ्वीकाय प्रतिष्ठित आहार ग्रहण करने का निषेध—

६२९. गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

अशन—यावत्—स्वादिम आहार पृथ्वीकाय पर रखा हुआ है,

इस प्रकार के अशन—यावत्—स्वादिम को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

आउकाय पइट्ठिय आहार गहण णिसेहो—

६३०. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवाय पडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—

असणं वा-जाव-साइमं वा आउकायपतिट्ठितं,

तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं-जाव-णो पडिग्गाहेज्जा।[2] —आ. सु. २, अ. १, उ. ७, सु. ३६८ (ख)

अप्काय प्रतिष्ठित आहार ग्रहण करने का निषेध—

६३०. गृहस्थ के घर में भिक्षा प्राप्ति के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

अशन—यावत्—स्वादिम अपकाय पर रखा हुआ है,

इस प्रकार के अशन—यावत्—स्वादिम आहार को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करें।

तेउकाय पइट्ठिय आहार गहण णिसेहो—

६३१. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुले पिंडवाय पडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—

अग्निकाय प्रतिष्ठित आहार ग्रहण करने का निषेध—

६३१. गृहस्थ के घर में आहारार्थ प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि,

१ (क) जं भवे भत्तपाणं तु, कप्पाकप्पम्मि संकियं। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥ —दस. अ. ५, उ. १, गा. ५६

२ (ख) असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा। उदगम्मि होज्ज निक्खित्तं, उत्तिग-पणगेसु वा॥

तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥ —दस. अ. ५, उ. १, गा. ५९-६०

असणं वा-जाव-साइमं वा अगणिणिक्खित्तं,

तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा ।

केवली बूया—आयाणमेयं ।

अशन—यावत्—स्वादिम आहार अग्नि (अंगारों) पर रखा हुआ है,

उस अशन—यावत्—स्वादिम को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे ।

केवली भगवान कहते हैं—यह कर्मों के उपादान का कारण है ।

अस्संजए भिक्खुपडियाए उस्सिंचमाणे वा, निस्सिंचमाणे वा, आमज्जमाणे वा, पमज्जमाणे वा, उत्तरेमाणे वा, उयत्तमाणे वा, अगणिजीवे हिंसेज्जा ।

क्योंकि असंयमी गृहस्थ भिक्षु के उद्देश्य से अग्नि पर रखे हुए बर्तन में से आहार को निकालता हुआ, देने के बाद शेष आहार को वापिस डालता हुआ, उसे हाथ आदि से प्रमार्जन या शोधन करता हुआ, आग पर से उतारता हुआ या अग्नि पर ही बर्तन को टेढ़ा करता हुआ अग्निकायिक जीवों की हिंसा करेगा ।

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा एस पइण्णा-जाव-एस उवएसे जं तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा अगणिणिक्खित्तं अफासुयं-जाव-णो पडिग्गाहेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ६, सु. ३६३

अतः भिक्षुओं के लिए तीर्थंकर भगवान् ने पहले से ही यह प्रतिज्ञा—यावत्—उपदेश दिया है कि वह अग्नि अर्थात् (अंगारों) पर रखे हुए अशन—यावत्—स्वादिम को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे ।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिण्डवाय पडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—

असणं वा-जाव-साइमं वा अगणिकायपतिट्ठितं,

तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा ।

केवली बूया—आयाणमेयं ।

गृहस्थ के घर में आहारार्थ प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

अशन—यावत्—स्वादिम अग्निकाय (चूल्हे) पर रखा हुआ है,

ऐसे अशन—यावत्—स्वादिम को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे ।

केवली भगवान् कहते हैं—यह कर्मों के उपादान का कारण है ।

अस्संजए भिक्खुपडियाए अगणिं उस्सक्किय, णिस्सक्किय, ओहरियआहट्टु दलएज्जा ।

क्योंकि असंयत गृहस्थ साधु के उद्देश्य से अग्नि में ईंधन डालकर अथवा निकालकर या बर्तन को उतार कर आहार लाकर देगा ।

जं तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा अगणिकाय-पइट्ठियं । अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा एस पइण्णा-जाव-एस उवएसे अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ७, सु. ३६८ (ग)

इसलिए तीर्थंकर भगवान् ने भिक्षुओं के लिए पहले से ही यह प्रतिज्ञा—यावत्—उपदेश दिया है कि वह चूल्हे पर रखे हुए अशन—यावत्—स्वादिम को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे ।

असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा ।
अगणिम्मि होज्ज निक्खित्तं, तं च संघट्टिया दए ॥
तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
देंतियं पडियाइक्खे न मे कप्पइ तारिसं ॥

अशन पान खाद्य स्वाद्य अग्नि पर रखा हुआ हो उसे देती हुई स्त्री यदि अग्नि का स्पर्श करके दे तो भिक्षु उसे कहे—"ऐसा भक्त-पान संयतों के लिए नहीं कल्पता है, अतः मुझे लेना नहीं कल्पता है ।"

असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा ।
अगणिम्मि होज्ज निक्खित्तं, तं च उस्सक्किया दए ॥
तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं ।
देंतियं पडियाइक्खे न मे कप्पइ तारिसं ॥

अशन पान खाद्य स्वाद्य अग्नि पर रखा हुआ हो उसे देती हुई स्त्री यदि अग्नि में ईंधन देकर दे तो भिक्षु उसे कहे—"ऐसा भक्त-पान संयतों के लिए नहीं कल्पता है, अतः मुझे लेना नहीं कल्पता है ।"

असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा ।
अगणिम्मि होज्ज निक्खित्तं, तं च ओसक्किया दए ॥

अशन पान खाद्य स्वाद्य अग्नि पर रखा हुआ हो उसे देती हुई स्त्री यदि अग्नि में से ईंधन निकालकर दे तो भिक्षु उसे

तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
देंतियं पडियाइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥
असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा।
अगणिम्मि होज्ज निक्खित्तं, तं च उज्जालिया दए॥
तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा।
अगणिम्मि होज्ज निक्खित्तं, तं च पज्जालिया दए॥
तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा।
अगणिम्मि होज्ज निक्खित्तं, तं च निव्वाविया दए॥
तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा।
अगणिम्मि होज्ज निक्खित्तं, तं च उस्सिंचिया दए॥
तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा।
अगणिम्मि होज्ज निक्खित्तं, तं च निस्सिंचिया दए॥
तं भवे भत्त पाणं तु, संजयाणं अकप्पियं।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा।
अगणिम्मि होज्ज निक्खित्तं, तं च ओवत्तिया दए॥
तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाणं अकप्पियं।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा।
अगणिम्मि होज्ज निक्खित्तं, तं च ओयारिया दए॥
तं भवे भत्त-पाणं तु, संजयाणं अकप्पियं।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥

—दस. अ. ५, उ. १, गा. ७६-८५

कहे —"ऐसा भक्त-पान संयतों के लिए नहीं कल्पता है, अतः मुझे लेना नहीं कल्पता है।"

अशन पान खाद्य स्वाद्य अग्नि पर रखा हुआ हो उसे देती हुई स्त्री यदि अग्नि जलाकर के दे तो भिक्षु उसे ऐसा कहे—"ऐसा भक्त-पान संयतों के लिए नहीं कल्पता है, अतः मुझे लेना नहीं कल्पता है।"

अशन पान खाद्य स्वाद्य अग्नि पर रखा हुआ हो उसे देती हुई स्त्री यदि अग्नि प्रज्वलित करके दे तो भिक्षु उसे कहे—"ऐसा भक्त-पान संयतों के लिए नहीं कल्पता है, अतः मुझे लेना नहीं कल्पता है।"

अशन पान खाद्य स्वाद्य अग्नि पर रखा हुआ हो उसे देती हुई स्त्री यदि अग्नि बुझाकर के दे तो भिक्षु उसे कहे—"ऐसा भक्त-पान संयतों के लिए नहीं कल्पता है, अतः मुझे लेना नहीं कल्पता है।"

अशन पान खाद्य स्वाद्य अग्नि पर रखा हुआ हो उसे देती हुई स्त्री यदि अग्नि पर रखे हुए पात्र से निकालकर दे तो भिक्षु उसे कहे—"ऐसा भक्त-पान संयतों के लिए नहीं कल्पता है, अतः मुझे लेना नहीं कल्पता है।"

अशन पान खाद्य स्वाद्य अग्नि पर रखा हुआ हो उसे देती हुई स्त्री यदि अग्नि पर रखे पात्र में पुनः डालकर दे तो भिक्षु उसे कहे—"ऐसा भक्त-पान संयतों के लिए नहीं कल्पता है अतः मुझे लेना नहीं कल्पता है।"

अशन पान खाद्य स्वाद्य अग्नि पर रखा हुआ हो उसे देती हुई स्त्री यदि अग्नि पर रखे हुए पात्र को टेढ़ा करके दे तो भिक्षु उसे कहे—"ऐसा भक्त-पान संयतों के लिए नहीं कल्पता है, अतः मुझे लेना नहीं कल्पता है।"

अशन पान खाद्य स्वाद्य अग्नि पर रखा हुआ हो उसे देती हुई स्त्री यदि अग्नि पर रखे हुए पात्र को उतार करके दे तो भिक्षु उसे कहे—"ऐसा भक्त-पान संयतों के लिए नहीं कल्पता है, अतः मुझे लेना नहीं कल्पता है।"

वणस्सईकायपइट्ठियआहारगहणणिसेहो—

६३२. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—
असणं वा-जाव-साइमं वा वणस्सतिकायपतिट्ठियं।

तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा। —आ. सु. २, अ. १, उ. ७, सु. ३६८ (घ)

वनस्पतिकाय प्रतिष्ठित आहार ग्रहण करने का निषेध—

६३२. गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि—

यह अशन—**यावत्**—स्वादिम आहार वनस्पतिकाय (हरी सब्जी पत्ते आदि) पर रखा हुआ है,

उस प्रकार के वनस्पतिकाय प्रतिष्ठित अशन—**यावत्**—स्वादिम आहार को अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

तसकायपइट्ठियआहारगहणणिसेहो—

६३३. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—
असणं वा-जाव-साइमं वा तसकायपतिट्ठितं।
तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा। – आ. सु. २, अ. १, उ. ७, सु. ३६८ (ख)

त्रसकाय प्रतिष्ठित आहार ग्रहण करने का निषेध—

६३३. गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि—
अशन—यावत्—स्वादिम आहार त्रसकाय पर रखा हुआ है,
उक्त प्रकार के त्रसकाय प्रतिष्ठित अशन—यावत्—स्वादिम को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

णिक्खित्तदोसजुत्तआहारगहणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

६३४. जे भिक्खू असणं वा-जाव-साइमं वा पुढवि-पइट्ठियं, पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू असणं वा-जाव-साइमं वा आउ-पइट्ठियं, पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू असणं वा-जाव-साइमं वा तेउ-पइट्ठियं, पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू असणं वा-जाव-साइमं वा वणप्फइ-पइट्ठियं, पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १७, सु. १२६-१२९

निक्षिप्त दोष युक्त आहार ग्रहण करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

६३४. जो भिक्षु सचित्त पृथ्वी पर स्थित अशन—यावत्—स्वादिम आहार को लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त जल पर स्थित अशन—यावत्—स्वादिम आहार को लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त अग्नि पर स्थित अशन—यावत्—स्वादिम आहार को लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त वनस्पति पर स्थित अशन—यावत्—स्वादिम आहार को लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

(३) दायग दोसं—

गुव्विणीहत्थेण आहार गहण णिसेहो—

६३५. सिया य समणट्ठाए, गुव्विणी कालमासिणी।
उट्ठिया वा निसीएज्जा, निसन्ना वा पुणुट्ठए॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
दंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
—दस. अ. ५, उ. १, गा. ५५-५६

(३) दायग दोष—

गर्भवती के हाथ से आहार ग्रहण का निषेध—

६३५. प्रसव काल के महिने को प्राप्त गर्भवती स्त्री खड़ी हो और श्रमण को भिक्षा देने के लिए कदाचित् बैठ जाये अथवा बैठी हो तो खड़ी हो जाये उसके द्वारा दिया जाने वाला भक्त-पान संयमियों के लिए अकल्प्य होता है। अतः मुनि देती हुई स्त्री को कहे "इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता।"

थणगं पेज्जमाणिहत्थेण आहारगहणणिसेहो—

६३६. थणगं पेज्जमाणी, दारगं वा कुमारियं।
तं निक्खिवित्तु रोयंतं, आहरे पाणभोयणं॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं।
दंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
—दस. अ. ५, उ. १, गा. ५७-५९

स्तनपान कराती हुई स्त्री के हाथ से आहार ग्रहण का निषेध—

६३६. बालक या बालिका को स्तनपान कराती हुई स्त्री उसे रोते हुए छोड़कर भक्त-पान लाये तो वह भक्त-पान संयति के लिए अकल्पनीय होता है, इसलिए मुनि देती हुई स्त्री को कहे "इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता।"

पुरेकम्म जुत्त लोणस्स गहणणिसेहो—

६३७. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवाय पडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—

पूर्वकर्म युक्त (अचित्त) नमक के ग्रहण का निषेध—

६३७. भिक्षु या भिक्षुणी आहार के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करने पर यह जाने कि—

बिडं वा लोणं, उब्भियं वा लोणं अस्संजए भिक्खुपडियाए, चित्तमंताए सिलाए, चित्तमंताए लेलुए, कोलवासंसि वा, दारुए, जीव पइट्ठिए, सअंडे-जाव-मक्कडासंताणए, भिंदिसु वा, भिंदति वा, भिंदिस्संति वा, रुचिसु वा, रुचिंति वा, रुचिस्संति वा।

गृहस्थ ने साधु के लिए सचित्त शिला पर, सचित्त शिला खण्ड पर, दीमक लगे जीवयुक्त काष्ठ पर तथा अण्डे—यावत्—मकड़ी के जालों से युक्त स्थान पर बिड लवण (जलाया हुआ नमक) या उद्भिज लवण (अन्य प्रकार से अचित्त बना नमक) का भेदन किया है (टुकड़े किये हैं) भेदन करता है, या भेदन करेगा तथा लवण को सूक्ष्म करने के लिए पीसा है, पीसता है या पीसेगा।

बिडं वा लोणं, उब्भियं वा लोणं अफासुयं-जाव-णो पडिग्गाहेज्जा। —आ. सु. २, अ. १, उ. ६, सु. ३६२

ऐसे बिड व उद्भिज लवण को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

पुरेकम्म जुत्त पिहुयाई गहणणिसेहो—

पूर्वकर्म युक्त (अचित्त) सिट्टे आदि के ग्रहण का निषेध—

६३८. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—

६३८. गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि—

पिहुयं वा, बहुरयं वा, भुंजियं वा, मंथुं वा, चाउलं वा, चाउलपलंबं वा अस्संजए भिक्खू पडियाए चित्तमंताए सिलाए, चित्तमंताए लेलुए, कोलवासंसि वा दारुए जीव-पतिट्ठिते सअंडे-जाव-मक्कडासंताणए, कोट्टिसु वा, कोट्टेंति वा, कोट्टिस्संति वा, उप्फणिसु वा, उप्फणंति वा उप्फणिस्संति वा,

गेहूँ आदि के सिट्टे, जवार जौ आदि के सिट्टे— अग्नि में अर्द्धपक्व या टुकड़े तथा शालीव्रीहि आदि या उनके टुकड़े, इन्हें गृहस्थ ने भिक्षु के लिए सचित्त शिला पर, सचित्त शिला खंड पर या दीमक लगे हुए जीवाधिष्ठित काष्ठ पर तथा अण्डे—यावत्—मकड़ी के जालों से युक्त स्थान पर उन्हें कूट चुका है, कूट रहा है या कूटेगा या उफन चुका है, उफन रहा है या उफनेगा,

तहप्पगारं पिहुयं वा-जाव-चाउलपलंबं वा अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा। —आ. सु. २, अ. १, उ. ६, सु. ३६१

इस प्रकार के गेहूँ आदि के सिट्टों—यावत्—शालि आदि के टुकड़ों को अप्रासुक जानकर—यावत् ग्रहण न करे।

पुराकम्मकडेण हत्थाइणा आहारगहणस्स णिसेहो—

पूर्व कर्मकृत हाथ आदि से आहार ग्रहण का निषेध—

६३९ से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे तत्थ कंचि भुंजमाणं पेहाए, तं जहा - गाहावइं वा-जाव-कम्मकरी वा से पुव्वामेव आलोएज्जा— आउसो त्ति वा! भगिणी! त्ति वा दाहिसि मे एत्तो अण्णयरं भोयणं जायं

६३९. भिक्षु या भिक्षुणी गाथापतियों के घरों में आहार के लिए प्रवेश करने पर वहाँ किसी गाथापति—यावत्—नौकरानी को भोजन करते हुए देखे तो उन्हें आहार लेने से पहले ही कहे— "आयुष्मान् गृहस्थ! या बहिन! इनमें से किसी एक प्रकार का भोजन मुझे दोगे?"

से सेवं वदंतस्स परो हत्थं वा, मत्तं वा दव्विं वा, भायणं वा, सीतोदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,

उनके ऐसा कहने पर गृहस्थ हाथ, लघुपात्र, चम्मच या भोजन को अचित्त शीत या उष्ण जल में धोए तो—

से पुव्वामेव आलोएज्जा—

भिक्षु उन्हें पहले ही कहे —

"आउसो! त्ति वा भगिणी! त्ति वा मा एवं तुमं हत्थं वा-जाव-भायणं वा सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेहि वा, पधोवेहि वा अभिकंखसि मे दाउं एमेव दलयाहि।"

"हे आयुष्मान् गृहस्थ! या बहिन! तुम हाथ—यावत्—भाजन को अचित्त शीत या उष्ण जल से मत धोओ मुझे देना चाहते हो तो हाथ आदि के धोए बिना ही दे दो।"।

से सेवं वदंतस्स परो हत्थं वा-जाव-भायणं वा सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेत्ता वा पधोएत्ता वा आहट्टु दलएज्जा,

ऐसा कहने पर भी गृहस्थ हाथ—यावत्—भाजन को अचित्त शीत या उष्ण जल से धोकर दे तो—

तहप्पगारेणं पुराकम्मकडेण हत्थेण वा-जाव-भायणेण वा असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं-जाव-णो पडिग्गाहेज्जा।[1]

—आ. सु. २, अ. १, उ. ६, सु. ३६० (२)

ऐसे पूर्वकर्मकृत हाथ—यावत्—भाजन से अशन—यावत्—स्वाद्य को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

पुराकम्मकडेण हत्थाइणा असणाइं गिण्हमाणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

पूर्वकर्मकृत हाथ आदि से आहार लेने का प्रायश्चित्त सूत्र—

६४०. जे भिक्खू पुरेकम्मकडेण हत्थेण वा-जाव-भायणेण वा असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १२, सु. १४

६४०. जो भिक्षु पूर्वकर्मकृत हाथ से—यावत्—भाजन से अशन—यावत्—स्वादिम ग्रहण करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

वाउकायविराहगेण भिक्खागहणणिसेहो पायच्छित्तं च—

वायुकाय के विराधक से भिक्षा लेने का निषेध व प्रायश्चित्त—

६४१. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवाय पडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—असणं वा-जाव-साइमं वा अच्चुसिणं अस्संजए भिक्खू पडियाए सूवेण वा, विहुयणेण वा, तालियंटेण वा, पत्तेण वा, पत्तभंगेण वा, साहाए वा, साहाभंगेण वा, पिहुणेण वा, पिहुणहत्थेण वा, चेलेण वा, चेलकण्णेण वा, हत्थेण वा, मुहेण वा, फुमेज्ज वा, वीएज्ज वा।[2]

से पुव्वामेव आलोएज्जा—"आउसो! त्ति वा भगिणि! त्ति वा मा एतं तुमं असणं वा-जाव-साइमं वा अच्चुसिणं वा, सूवेण वा-जाव-वीयाहि वा अभिकंखसि मे दाउं एमेव दलयाहि।"

से सेवं वदंतस्स परो सूवेण वा-जाव-वीइत्ता वा आहट्टु दलएज्जा, तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं-जाव-णो पडिग्गाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ७, सु. ३६८ (ख)

६४१. भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में आहार के लिये प्रविष्ट होने पर यह जाने कि साधु को देने के लिए यह अत्यन्त उष्ण अशन—यावत्—स्वादिम असंयत गृहस्थ सूप (छाजले) से, पंखे से, ताड़ पत्र से, पत्ते से, पत्र-खंड से, शाखा से, शाखा-खंड से, मोर के पंख से, मोरपींछी से, वस्त्र से, वस्त्रखंड से, हाथ से या मुँह से, फूंक देकर या पंखे आदि से हवा करके देने वाला हो तो साधु पहले ही गृहस्थ से कहे—

"हे आयुष्मान् गृहस्थ! या बहिन! तुम इस अत्यन्त गर्म अशन—यावत्—स्वादिम को सूप से—यावत्—पंखे आदि से हवा करके ठंडा मत करो। अगर मुझे देना चाहते हो तो ऐसे ही दे दो।"

साधु के ऐसा कहने पर भी गृहस्थ सूप से—यावत्—पंखे आदि से हवा करके देने लगे तो उस अशन—यावत्—स्वादिम को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

जे भिक्खू अच्चुसिणं असणं वा-जाव-साइमं वा।

१. सुप्पेण वा, २. विहुणेण वा, ३. तालियंटेण वा, ४. पत्तेण वा, ५. पत्तभंगेण वा, ६. साहाए वा, ७. साहाभंगेण वा, ८. पिहुणेण वा, ९. पिहुणहत्थेण वा, १०. चेलेण वा ११. चेलकण्णेण वा, १२. हत्थेण वा, १३. मुहेण वा, फूमित्ता वीइत्ता आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १७, सु. १३०

जो भिक्षु अत्यन्त उष्ण—यावत्—स्वाद्य पदार्थ को—

(१) सूप से, (२) पंखे से, (३) ताड़पत्र से, (४) पत्ते से, (५) पत्रखंड से, (६) शाखा से, (७) शाखाखंड से, (८) मोरपंख से, (९) मोरपींछी से, (१०) वस्त्र से, (११) वस्त्रखंड से, (१२) हाथ से, (१३) मुँह से, फूंक देकर या पंखे आदि से हवा करके लाकर देते हुए को लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

---

१ पुरेकम्मेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। देंतियं पडियाइक्खे न मे कप्पइ तारिसं॥ —दस. अ. ५, उ. १, गा. ३२

२ (क) दस. अ. ४, सु. २२ (ख) दस. अ. ८, गा. ६

वणस्सईकाय विराहगेण भिक्खागहण णिसेहो--

६४२. उप्पलं पउमं वा वि, कुमुयं वा मगदंतियं।
अन्नं वा पुप्फ सच्चित्तं, तं च संलुंचिया दए॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाणं अकप्पियं।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
उप्पलं पउमं वा वि, कुमुयं वा मगदंतियं।
अन्नं वा पुप्फ सच्चित्तं, तं च सम्मद्दिया दए॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाणं अकप्पियं।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥

—दस. अ. ५, उ. २, गा. १४-१७

वनस्पतिकाय के विराधक से आहार लेने का निषेध—

६४२. कोई उत्पल, पद्म, कुमुद, मालती या अन्य किसी सचित्त पुष्प का छेदन कर भिक्षा दे वह भक्त-पान संयति के लिए अकल्पनीय होता है, इसलिए मुनि देती हुई स्त्री को प्रतिषेध करे—"इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता।"

कोई उत्पल, पद्म, कुमुद, मालती या अन्य किसी सचित्त पुष्प को कुचल कर भिक्षा दे, वह भक्त-पान संयति के लिए अकल्पनीय होता है, इसलिए मुनि देती हुई स्त्री को प्रतिषेध करे—"इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता।"

विविहकाय विराहगेण आहारगहणणिसेहो—

६४३. सम्मद्दमाणी पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य।
असंजमकरिं नच्चा, तारिसं परिवज्जए॥

साहट्टु, निक्खिवित्ताणं, सच्चित्तं घट्टियाण य।
तहेव समणट्ठाए, उदगं संपणोल्लिया॥
ओगाहइत्ता चलइत्ता, आहारे पाणभोयणं।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥

—दस. अ. ५, उ. १, गा. २९-३१

विविध काय विराधक से भिक्षा लेने का निषेध—

६४३. प्राणी (द्वीन्द्रियादि) बीज और हरियाली को कुचलती हुई स्त्री को असंयमकारी जानकर मुनि उसके पास से भक्त-पान न ले।

एक बर्तन में से दूसरे बर्तन में निकालकर, सचित्त वस्तु पर रखकर, सचित्त वस्तु का स्पर्शकर इसी प्रकार पात्रस्थ सचित्त जल को उलीच (गिरा) कर, सचित्त जल में अवगाहन अर्थात् चलकर चलाकर या हिलाकर श्रमण के लिये आहार-पानी लाए तो मुनि उस देती हुई स्त्री को कहे—"इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता।"

(४) उम्मिस्सदोसं—

पाणाइसंसत्त आहारगहणणिसेहो गहियस्स य परिट्ठवणविही—

६४४. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावतिकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा --

असणं वा-जाव-साइमं वा, पाणेहिं वा, पणएहिं वा, बीएहिं वा, हरिएहिं वा, संसत्तं, उम्मिस्सं, सीओदएण वा ओसित्तं, रयसा वा परिघासियं,

तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा परहत्थंसि वा, परपायंसि वा, अफासुयं अणेसणिज्जं त्ति मण्णमाणे लाभे वि संते णो पडिगाहेज्जा।[1]

से य आहच्च पडिग्गाहए सिया, से तमादाय एगंतमवक्कमेज्जा, एगंतमवक्कमित्ता अहे आरामंसि वा, अहे उवस्सयंसि वा, अप्पंडे, अप्पपाणे, अप्पबीए, अप्पहरिते, अप्पोसे, अप्पुत्तिंग-पणग-दगमट्टिय-मक्कडासंताणए विगिंचिय-विगिं-

(४) उन्मिश्रदोष—

प्राणी आदि से युक्त आहार ग्रहण का निषेध और गृहीत आहार के परठने की विधि—

६४४. भिक्षु या भिक्षुणी आहार-प्राप्ति के उद्देश्य से गृहस्थ के घर में प्रविष्ट होकर यह जाने कि—

अशन—यावत्—स्वाद्य रसज प्राणियों से, फफूंदी-फूलण से, गेहूँ आदि के बीजों से, हरे अंकुर आदि से संसक्त है, मिश्रित है, सचित्त जल से गीला है तथा सचित्त रज से युक्त है,

इस प्रकार का अशन यावत्—स्वाद्य दाता के हाथ में हो, पात्र में हो तो उसे अप्रासुक और अनेषणीय जानकर प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे।

कदाचित् दाता या ग्रहणकर्ता की भूल से वैसा संसक्त या मिश्रित आहार ग्रहण कर लिया गया हो तो उस आहार को लेकर एकान्त स्थान उद्यान या उपाश्रय में चला जाए और वहाँ जाकर जहाँ कि प्राणियों के अंडे, जीव जन्तु, बीज, हरियाली, ओस के कण, सचित्त जल तथा चींटियाँ, लीलन-फूलन, गीली

---

१ असणं पाणगं वा वि, खाइमं साइमं तहा। पुप्फेसु होज्ज उम्मीसं, बीएसु हरिएसु वा॥
तं भवे भत्तपाणं तु, संजयाण अकप्पियं। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥ —दस. अ. ५, उ. १, गा. ७२-७३

भिय, उम्मिस्सं विसोहिय-विसोहियं, ततो संजयामेव भुंजेज्ज वा, पीएज्ज वा।

जं च णो संचाएज्जा भोत्तए वा, पायए वा से त्तमायाय एगंतमवक्कमेज्जा-एगंतमवक्कमित्ता, अहे झामथंडिलंसि वा, अट्ठिरासिंसि वा, किट्टरासिंसि वा, तुसरासिंसि वा, गोमयरासिंसि वा, अण्णयरंसि वा, तहप्पगारंसि थंडिलंसि पडिलेहिय-पडिलेहिय, पमज्जिय-पमज्जिय, ततो संजयामेव परिट्ठवेज्जा। —आ. सु. २, अ. १, उ. १, सु. ३२४

मिट्टी, मकड़ी के जाले आदि न हों, वहाँ उस संसक्त आहार से उन जीवों को पृथक करके उस मिश्रित आहार को शोध-शोधकर यतनापूर्वक खावे या पीवे।

यदि उस आहार का शोधनकर खाना-पीना अशक्य हो तो उसे लेकर एकान्त स्थान में चला जाये। वहाँ जाकर दग्ध (जली हुई) स्थंडिल भूमि पर, हड्डियों के ढेर पर, लोह कीट के ढेर पर, तुष (भूसे) के ढेर पर, सूखे गोबर के ढेर पर या अन्य भी इसी प्रकार की स्थंडिल भूमि पर भलीभाँति प्रतिलेखन करके प्रमार्जन करके, यतनापूर्वक परठ दे।

अणंतकाय संजुत्तआहारकरणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

६४५. जे भिक्खू अणंतकाय-संजुत्तं आहारं आहारेइ, आहारेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —नि. उ. १०, सु. ५

अनन्तकाय संयुक्त आहारकरण प्रायश्चित्त सूत्र—

६४५. जो भिक्षु अनन्तकाय युक्त (फूलन आदि) आहार करता है, करवाता है, या करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

परित्तकाय संजुत्तआहारकरणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

६४६. जे भिक्खू परित्तकाय संजुत्तं आहारं आहारेइ, आहारेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —नि. उ. १२, सु. ४

प्रत्येककाय संयुक्त आहारकरण प्रायश्चित्त सूत्र—

६४६. जो भिक्षु प्रत्येककाय नमक बीज आदि युक्त आहार करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

(५) अपरिणय दोसं—

असत्थपरिणयाणं सालुयाईणं गहणणिसेहो—

६४७. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा तं जहा—

१. सालुयं वा, २. विरालियं वा, ३. सासवणालियं वा अण्णतरं वा तहप्पगारं आमं असत्थपरिणतं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।[1] —आ. सु. २, अ. १, उ. ८, सु. ३७५

(५) अपरिणत दोष—

अशस्त्रपरिणत कमल कंद आदि के ग्रहण करने का निषेध—

६४७. गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

(१) कमलकन्द, (२) पलाशकन्द, (३) सरसों की नाल (कन्द) तथा अन्य भी इसी प्रकार के कन्द जो कच्चे (सचित्त) और शस्त्र परिणत नहीं हुए हों, तो अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

असत्थपरिणयाणं पिप्पलिआईणं गहणणिसेहो—

६४८. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—

तं जहा—१. पिप्पलिं वा, २. पिप्पलिचुण्णं वा, ३. मिरियं वा, ४. मिरियचुण्णं वा, ५. सिंगबेरं वा, ६. सिंगबेरचुण्णं वा, अण्णतरं वा तहप्पगारं आमं असत्थपरिणयं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।[2] —आ. सु. २, अ. १, उ. ८, सु. ३७६

अशस्त्र परिणत पिपल्यादि के ग्रहण का निषेध—

६४८. गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

(१) पिप्पली, (२) पिप्पल का चूर्ण, (३) मिर्च, (४) मिर्च का चूर्ण, (५) अदरक, (६) अदरक का चूर्ण अथवा अन्य भी इसी प्रकार के पदार्थ जो कच्चे (सचित्त) और अशस्त्र-परिणत हों, उसे अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

---

१ सालुयं वा विरालियं, कुमुयं उप्पलनालियं। मुणालियं सासवनालियं, उच्छुखंडं अनिव्वुडं ॥ —दस. अ. ५, उ. २, गा. १८

२ कंदं मूलं पलंबं वा, आमं छिन्नं च सन्निरं। तुंबागं सिंगबेरं च, आमगं परिवज्जए ॥ —दस. अ. ५ उ. १, गा. १०१

असत्थपरिणयाणं पलंबाणं गहणणिसेहो—

६४९. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण पलंबजातं जाणेज्जा—

तं जहा—१. अंबपलंबं वा, २. अंबाडगपलंबं वा, ३. तालपलंबं वा, ४. झिज्झिरिपलंबं वा, ५. सुरभिपलंबं वा, ६. सल्लइपलंबं वा, अण्णतरं वा तहप्पगारं पलंबजातं आमं असत्थपरिणयं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।[1]

—आ. सु. २, अ. १, उ. ८, सु. ३७७

अशस्त्र-परिणत प्रलंबों के ग्रहण का निषेध—

६४९. गृहस्थ के यहाँ आहार के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी प्रलम्ब (फल) के विषय में यह जाने कि—

(१) आम्र फल, (२) अम्बाडग फल, (३) ताल फल, (४) लता फल, (५) सुरभि फल, (६) शल्यकी फल, तथा इसी प्रकार के अन्य फल जो कच्चे (सचित्त) और अशस्त्र परिणत हों तो अप्रासुक समझ कर-यावत्-ग्रहण न करे।

असत्थपरिणयाणं गहणणिसेहो—

६५०. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण पवालजातं जाणेज्जा—

तं जहा—१. आसोत्थपवालं वा, २. णग्गोहपवालं वा, ३. पिलंखुपवालं वा, ४. णिपूरपवालं वा, ५. सल्लइपवालं वा, ६. अण्णतरं वा, तहप्पगारं पवालजातं आमं असत्थपरिणयं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।[2]

—आ० सु० २, अ० १, उ० ८, सु० ३७८

अशस्त्र परिणत प्रवालों के ग्रहण का निषेध—

६५०. गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी प्रवालों (पत्तों) के विषय में यह जाने कि—

(१) पीपल वृक्ष का प्रवाल, (२) बड़ वृक्ष का प्रवाल, (३) प्लक्ष वृक्ष का प्रवाल, (४) नन्दी वृक्ष का प्रवाल, (५) शल्यकी वृक्ष का प्रवाल या अन्य भी इसी प्रकार के प्रवाल जो कच्चे (सचित्त) और अशस्त्र परिणत हों, तो अप्रासुक जानकर-यावत्-ग्रहण न करे।

असत्थपरिणयाणं सरडुयाणं गहणणिसेहो—

६५१. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं सरडुयजायं जाणेज्जा, तं जहा—

१. अंबसरडुयं वा, २. कविट्ठसरडुयं वा,[3] ३. दालिमसरडुयं वा, ४. बिल्लसरडुयं वा, ५. अण्णतरं वा, तहप्पगारं सरडुयजातं आमं असत्थपरिणयं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा। —आ. सु. २, अ. १, उ. ८, सु. ३७९

अशस्त्र परिणत कोमल फलों के ग्रहण का निषेध—

६५१. गृहस्थ के यहाँ आहार के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी (जिसमें गुठली नहीं पड़ी हो ऐसे) कोमल फल के संबंध में यह जाने कि—

(१) आम्र वृक्ष का कोमल फल, (२) कबीठ वृक्ष का कोमल फल, (३) अनार का कोमल फल, (४) बिल्व का कोमल फल, अथवा अन्य भी इसी प्रकार का कोमल फल, जो कि कच्चा (सचित्त) और अशस्त्र-परिणत है तो अप्रासुक जानकर-यावत्-ग्रहण न करे।

असत्थपरिणयाणं उच्छुमेरगाईणं गहणणिसेहो—

६५२. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा, तं जहा—

१. उच्छुमेरगं वा, २. अंककरेलुयं वा, ३. णिक्खारगं वा, ४. कसेरगं वा, ५. सिंघाडगं वा, ६. पूतिआलुगं वा, अण्णतरं वा तहप्पगारं आमं असत्थपरिणयं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ८, सु. ३८२

अशस्त्र-परिणत इक्षु आदि के ग्रहण का निषेध—

६५२. गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

(१) इक्षु खण्ड-गंडेरी, (२) अंककरेलु, (३) निक्खारक, (४) कसेरू, (५) सिंघाडा एवं, (६) पूति आलुक नामक वनस्पति है अथवा अन्य भी इसी प्रकार की वनस्पति विशेष है, जो कि कच्ची (सचित्त) तथा अशस्त्र-परिणत हो तो अप्रासुक जानकर-यावत्-ग्रहण न करे।

---

१ कप्प. उ. १, सु. १

२ तरुणगं वा पवालं, रुक्खस्स तणगस्स वा। अन्नस्स वा वि हरियस्स आमगं परिवज्जए॥ —दस. अ. ५, उ. २, गा. १९

३ कविट्ठं माउलिंग च, मूलगं मूलगत्तियं। आमं असत्थपरिणयं, मणसा वि न पत्थए॥ —दस. अ. ५, उ. २, गा. २३

असत्थपरिणयाणं उप्पलाईणं गहणणिसेहो—

६५३. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा, तं जहा—

१. उप्पलं वा, २. उप्पलणालं वा, ३. भिसं वा, ४. भिसमुणालं वा, ५. पोक्खलं वा, ६. पोक्खलत्थिभगं वा, अण्णतरं वा तहप्पगारं आमं असत्थपरिणयं अफासुयं -जाव-णो पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ८, सु. ३८३

अशस्त्रपरिणत उत्पलादि के ग्रहण का निषेध—

६५३. गृहस्थ के यहाँ आहार के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि—

(१) नीलकमल है, (२) कमल की नाल है, (३) पद्म कन्दमूल है, (४) पद्म कन्द के ऊपर की लता है, (५) पद्म केसर है या, (६) पद्मकन्द है, तथा इसी प्रकार अन्य कन्द है जो कच्चा (सचित्त) है वह शस्त्रपरिणत नहीं है, तो उसे अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

असत्थपरिणयाणं अग्गबीयाईणं गहण णिसेहो—

६५४. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—तं जहा—

१. अग्गबीयाणि वा, २. मूलबीयाणि वा, ३. खंधबीयाणि वा, ४. पोरबीयाणि वा, ५. अग्गजायाणि वा, ६. मूलजायाणि वा, ७. खंधजायाणि वा, ८. पोरजायाणि वा, णण्णत्थ—

१. तक्कलिमत्थएण वा, २. तक्कलिसीसेण वा, ३. णालिएरिमत्थएण वा, ४. खज्जूरिमत्थएण वा, ५. तालमत्थएण वा, अण्णतरं वा तहप्पगारं आमं असत्थपरिणयं अफासुयं -जाव-णो पडिगाहेज्जा।

—आ० सु० २, अ० १, उ० ८, सु० ३८४

अशस्त्रपरिणत अग्रबीजादि के ग्रहण का निषेध—

६५४. गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

(१) अग्रबीज वाली, (२) मूल बीज वाली, (३) स्कन्ध बीज वाली, (४) पर्वबीज वाली वनस्पति है, (५) अग्रजात, (६) मूलजात, (७) स्कन्धजात तथा (८) पर्वजात वनस्पति है यथा—

(१) कन्दली का गूदा, (२) कन्दली का स्तबक, (३) नारियल का गूदा, (४) खजूर का गूदा, (५) ताड का गूदा के सिवाय अन्य इस प्रकार के फल आदि कच्चे (सचित्त) और अशस्त्रपरिणत है उसे अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

असत्थपरिणयाणं उच्छुआईणं गहणणिसेहो—

६५५. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—

१. उच्छुं वा काणं, २. अंगारियं, ३. सम्मिस्सं ४. विगदूमियं, ५. वेत्तग्गं वा, ६. कंदलिऊसगं वा, अण्णतरं वा तहप्पगारं आमं असत्थपरिणयं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ८, सु. ३८५

अशस्त्रपरिणत इक्षु आदि के ग्रहण का निषेध—

६५५. गृहस्थ के यहाँ आहार के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

(१) इक्षु काणा (छेद वाला) है, (२) विवर्ण हो गया है, (३) फटी हुई छाल वाला है, (४) सियार का खाया हुआ है तथा (५) बेंत का अग्रभाग या, (६) कदली का मध्य भाग है अथवा अन्य भी ऐसी कच्ची (सचित्त) और अशस्त्र परिणत वनस्पतियाँ है, तो उन्हें अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

असत्थपरिणयाणं लसुणाईणं गहणणिसेहो—

६५६. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—

१. लसुणं वा, २. लसुणपत्तं वा, ३. लसुणणालं वा, ४. लसुणकंदं वा, ५. लसुणचोयगं वा, अण्णतरं वा तहप्पगारं आमं असत्थपरिणयं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ८, सु. ३८६

अशस्त्रपरिणत लसुण आदि के ग्रहण का निषेध—

६५६. गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

(१) लहसुन, (२) लहसुन का पत्ता, (३) लहसुन की नाल, (४) लहसुन का कन्द, (५) लहसुन के बाहर की छाल या अन्य भी इसी प्रकार की वनस्पति जो कि कच्ची (सचित्त) और अशस्त्रपरिणत है, तो उसे अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

असत्थपरिणय-जीव-जुत्त-पोराणस्स आहारस्स गहण-णिसेहो—

६५७. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—

१. आमडागं वा, २. पूतिपिण्णागं वा, ३. सप्पि वा पुराणगं एत्थ पाणा अणुप्पसूआ, एत्थ पाणा जाया, एत्थ पाणा संवुड्ढा, एत्थ पाणा अवुक्कंता एत्थ पाणा अपरिणता, एत्थ पाणा अविद्धत्था अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ८, सु. ३८१

अपरिणय-मीस-वणस्सईणं गहणणिसेहो—

६५८. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण मंथुजातं[1] जाणेज्जा, तं जहा—

१. उंबरमंथुं वा, २. णग्गोहमंथुं वा, ३. पिलंखुमंथुं वा, ४. आसोत्थमंथुं वा, अण्णतरं वा तहप्पगारं मंथुजातं आमयं दुरुक्कं साणुबीयं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ८, सु. ३८०

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—

१. अत्थियं वा, २. कुंभिपक्कं, ३. तेंदुगं[2] वा, ३ वेलुगं वा, ४. कासवणालियं[3] वा अण्णतरं वा तहप्पगारं आमं असत्थपरिणयं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ८, सु. ३८७

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—

१. कणं वा, २. कणकुंडगं वा, ३. कणपूयलिं वा, ४. चाउलं वा, ५. चाउलपिट्ठं वा, ६. तिलं वा, ७. तिलपिट्ठं[4] वा, ८. तिलपप्पडगं[5] वा, अण्णतरं वा तहप्पगारं आमं असत्थपरिणयं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १ उ. ८, सु. ३८८

अशस्त्रपरिणत जीव युक्त पुराने आहार के ग्रहण का निषेध—

६५७. भिक्षु या भिक्षुणी आहार के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करने पर यह जाने कि—

(१) भाजी अपक्व और अर्धपक्व है, (२) खल पुराणा है या, (३) घृत पुराणा है, और उनमें प्राणी पुनः पुनः उत्पन्न होने लगे हैं, उत्पन्न हो गये हैं व बढ़ गये हैं। इनमें से प्राणियों का व्युत्क्रमण (च्यवन) नहीं हुआ है, वे शस्त्र-परिणत नहीं हुए हैं और वे पूर्ण अचित्त नहीं हुए हैं अतः उन्हें अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

अपरिणत मिश्र वनस्पतियों के ग्रहण का निषेध—

६५८. गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी वनस्पति चूर्ण के सम्बन्ध में यह जाने कि—

(१) उदुम्बर (गुल्लर) का चूर्ण, (२) बड़ के फलों का चूर्ण, (३) प्लक्ष फल का चूर्ण, (४) पीपल का चूर्ण, अथवा अन्य भी इसी प्रकार का चूर्ण है जो कि अभी कच्चा (सचित्त) है, थोड़ा पिसा हुआ है और बीज युक्त है उसे अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

(१) अस्थिक वृक्ष के फल, (२) तिन्दुक का फल, (३) बिल्व फल, (४) श्रीपर्णी का फल जो कि खड्डे आदि में धुएँ आदि से पकाये गये हों अथवा अन्य इसी प्रकार के फल जो कच्चे (सचित्त) और शस्त्र-परिणत नहीं हैं, ऐसे फलों को अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

(१) कच्चे गेहूँ, (२) गेहूँ का कूटा, (३) गेहूँ अर्द्धपक्व (रोटी आदि), (४) कच्चे चावल, (५) चावल का कूटा, (६) कच्चे तिल, (७) तिल का कूटा, (८) तिलों की अर्द्ध पक्व पपड़ी आदि तथा अन्य भी इसी प्रकार के पदार्थ जो कि कच्चे (सचित्त) और शस्त्रपरिणत नहीं है तो अप्रासुक जानकर —**यावत्**—ग्रहण न करे।

---

१ तहेव फलमंथूणि, बीयमंथूणि जाणिया। विहेलग पियालं च, आमगं परिवज्जए॥ —दस. अ. ५, उ. २, गा. २४

२ दस. अ. ५, उ. १, गा. १०४

३ तहा कोलमणुस्सिन्नं, वेलुयं कासवनालियं। तिलपप्पडगं नीमं, आमगं परिवज्जए॥ —दस. अ. ५, उ. २, गा. २१

४ तहेव चाउलं पिट्ठं वियडं वा तत्तनिव्वुडं। तिलपिट्ठं पूइपिन्नागं, आमगं परिवज्जए॥ —दस. अ. ५, उ. २, गा. २२

५ .... तिलपप्पडगं नीमं, आमगं परिवज्जए॥ —दस. अ. ५, उ. २, गा. २१

अपरिणय-परिणय-ओसहीणं गहण-विहि-णिसेहो—

६५९. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जाओ पुण ओसहीओ[1] जाणेज्जा—कसिणाओ, सासियाओ, अविदलकडाओ, अतिरिच्छच्छिण्णाओ, अव्वोच्छिण्णाओ, तरुणियं, छिवाडिं, अणभिक्कंतभज्जियं पेहाए, अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा,

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जाओ पुण ओसहीओ जाणेज्जा-अकसिणाओ असासियाओ, विदलकडाओ, तिरिच्छच्छिण्णाओ, वोच्छिण्णाओ, तरुणियं वा छिवाडिं, अभिक्कंत भज्जियं[2] पेहाए, फासुयं-जाव-पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. १, सु. ३२५

अपरिणत-परिणत धान्यों के ग्रहण का विधि-निषेध—

६५९. भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रविष्ट होकर धान्यों के विषय में यह जाने कि—ये अखण्ड हैं इनकी योनि नष्ट नहीं हुई है, दो टुकड़े नहीं किये गये हैं, अनेक टुकड़े नहीं किये गये हैं, अचित्त नहीं हुई है तथा कच्ची मूंगफलियाँ आदि अधूरी भुनी हुई हैं, ऐसा देखकर अप्रासुक जानकर-यावत्-ग्रहण न करे।

भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रविष्ट होकर औषधियों के विषय में यह जाने कि—ये अखण्ड नहीं हैं, इनकी योनि नष्ट हो चुकी है, ये द्विदल कर दी गई हैं, अनेक टुकड़े कर दिये गये हैं, अचित्त हो चुकी हैं, तथा कच्ची मूंगफलियाँ आदि पूर्ण भुनी हुई हैं ऐसा देखकर उन्हें प्रासुक समझ कर—यावत्—ग्रहण करे।

कसिण-ओसहि-भुंजण-पायच्छित्तसुत्तं—

६६०. जे भिक्खू कसिणाओ[3] ओसहीओ आहारेइ, आहारेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ४, सु. १९

कृत्स्न धान्य भक्षण का प्रायश्चित्त सूत्र—

६६०. जो भिक्षु अखण्ड सचित्त धान्यों का आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

भंज्जिय-पिहुयाईणं-गहण-विहि-णिसेहो—

६६१. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—

पिहुयं वा—जाव—चाउलपलंबं वा सइं भज्जियं अफासुयं—जाव—णो पडिगाहेज्जा।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—

भुने हुए सिट्टे आदि के ग्रहण का विधि निषेध—

६६१. गृहस्थ के घर में भिक्षा के निमित्त गया हुआ भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

गेहूँ आदि के सिट्टे—यावत्—शाली आदि के टुकड़े एक बार भुने हुए हैं तो उन्हें अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

गृहस्थ के घर में भिक्षा के निमित्त गया हुआ भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

---

१ (क) इस सूत्र के टीकाकार "औषधी" शब्द का अर्थ "शालिबीज आदि" सूचित करते हैं। यथा—

औषधी शालिबीजादिका एवं जानीयात्। औषध्यो जातिमात्रेस्युः अजातौ सर्वमौषधम्॥ —अमरकोष काण्ड २, वर्ग ४

जातिमात्रविवक्षायाम् औषधीः शब्द प्रयोगः। सर्वम् इत्यनेन घृत तैलादिकमप्यौषधशब्दवाच्यम्॥

औषधिः फलपाकान्ता एवं व्रीहि यवादेः। —अमरकोष काण्ड २, वर्ग ४

सभी प्रकार के पके धान्यों को "औषधी" कहा गया है। वर्तमान में औषधी शब्द केवल जड़ी बूटी आदि दवाइयों में रूढ हो गया है। उसकी यहाँ विवक्षा नहीं है।

(ख) वव. उ. ९, सु. ३३-३४

२ तरुणियं वा छेवाडिं, आमियं भज्जियं सइं। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥ —दस. अ. ५, उ. २, गा. २०

३ कृत्स्न शब्द का यद्यपि अखण्ड अर्थ होता है फिर भी यहाँ द्रव्यकृत्स्न न समझकर भावकृत्स्न समझना चाहिए। इसका फलितार्थ यह है कि जो अखण्ड धान्य शस्त्रपरिणत न होने से सचित्त है उसके खाने का यह प्रायश्चित्त विधान है। क्योंकि अखण्ड शस्त्रपरिणत अचित्त धान्य के परिभोग का आचारांग सु. २, अ. १, उ. १ में विधान है।

निशीथभाष्य में सचित्त या अचित्त अखण्ड धान्य खाने से होने वाली हानियों का विस्तृत वर्णन है।

पिहुयं वा—जाव—चाउलपलंबं वा असइं भज्जियं, दुक्खुत्तो वा भज्जियं, तिक्खुत्तो वा, भज्जियं, फासुयं—जाव—पडिगाहेज्जा। —आ. सु. २, अ. १, उ. १, सु. ३२६

गेहूँ आदि के सिट्टे – यावत्—शालि आदि के टुकड़े अनेक बार अर्थात् दो बार या तीन बार भुने हुए हैं तो उन्हें प्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण करे।

अपरिणय-परिणय-तालपलंबस्स गहण-विहि-णिसेहो—

९६२. नो कप्पइ णिग्गंथाण वा, णिग्गंथीण वा आमे तालपलंबे[1] अभिन्ने पडिगाहित्तए।

कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा आमे ताल-पलम्बे भिन्ने पडिगाहित्तए।

कप्पइ निग्गंथाणं पक्के ताल-पलम्बे भिन्ने वा, अभिन्ने वा पडिग्गाहित्तए।

नो कप्पइ निग्गंथीणं पक्के-ताल-पलम्बे अभिन्ने पडिग्गाहित्तए।

कप्पइ निग्गंथीणं पक्के ताल-पलम्बे भिन्ने पडिग्गाहित्तए।

से वि य विहिभिन्ने, नो चेव णं अविहिभिन्ने।

—कप्प. उ. १, सु. १-५

अपरिणत-परिणत ताल प्रलंब के ग्रहण का विधि निषेध—

९६२. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को अभिन्न (अशस्त्रपरिणत) कच्चा ताल फल ग्रहण करना नहीं कल्पता है।

किन्तु निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को भिन्न (शस्त्रपरिणत) कच्चा ताल फल ग्रहण करना कल्पता है।

निर्ग्रन्थों को भिन्न (खण्ड-खण्ड) किया हुआ या अभिन्न (अखण्ड) पक्व (अचित्त) ताल फल ग्रहण करना कल्पता है।

किन्तु निर्ग्रन्थियों को अभिन्न (अखण्ड) पक्व (अचित्त) ताल फल ग्रहण करना नहीं कल्पता है।

निर्ग्रन्थियों को भिन्न (खण्ड-खण्ड) किया हुआ पक्व (अचित्त) ताल फल ग्रहण करना कल्पता है।

वह भी विधिपूर्वक भिन्न अर्थात् अत्यन्त छोटे-छोटे खण्ड किये हों तो ग्रहण करना कल्पता है अविधि-भिन्न ग्रहण करना नहीं कल्पता है।

अपरिणय-परिणय-अंब-गहणस्स विहि-णिसेहो—

९६३. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा अभिकंखेज्जा अंबवणं उवागच्छित्तए, जे तत्थ ईसरे, जे तत्थ समहिट्ठाए, ते ओग्गहं अणुण्णवेज्जा।

"कामं खलु आउसो! अहालंदं अहापरिण्णायं वसामो—जाव—आउसो—जाव—आउसंतस्स ओग्गहो—जाव—साहम्मिया एत्ता वा-ताव ओग्गहं ओगिण्हिस्सामो, तेण परं विहरिस्सामो।"

प०—से किं पुण तत्थ ओग्गहंसि एवोग्गहियंसि ?

उ०—अह भिक्खू इच्छेज्जा अंबं भोत्तए से ज्जं पुण अंबं जाणेज्जा—

सअंडं—जाव—मक्कडासंताणगं, तहप्पगारं अंबं-अफासुयं – जाव—णो पडिगाहेज्जा।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण अंबं जाणेज्जा—अप्पंडं—जाव—मक्कडासंताणगं, अतिरिच्छछिन्नं अवोच्छिन्नं अफासुयं—जाव—णो पडिगाहेज्जा।

अपरिणत परिणत आम ग्रहण का विधि निषेध—

९६३. भिक्षु या भिक्षुणी (विहार करते हुए आवें और) आम्रवन के समीप यदि ठहरना चाहें तो उस स्थान के स्वामी की या संरक्षक की आज्ञा प्राप्त करें।

"हे आयुष्मन्! आप जितने स्थान में जितने समय तक ठहरने की आज्ञा देंगे हम और हमारे आने वाले स्वधर्मी उतने ही स्थान में उतने ही समय तक ठहरेंगे बाद में विहार कर देंगे।"

प्र०—वे भिक्षु या भिक्षुणी (आम खाना चाहें तो आम की एषणा) किस प्रकार करें।

उ०—यदि वे आम खाना चाहें तो वे यह जानें कि—

आम, अण्डे यावत् मकड़ी के जालों से युक्त है तो—ऐसे आम को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करें।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

आम, अण्डे यावत्—मकड़ी के जालों से रहित है किन्तु तिरछा कटा हुआ नहीं है तथा जीव रहित नहीं हुआ है, अतः ऐसे आम को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

---

१ ताल प्रलंब शब्द का अर्थ भाष्य में—फल, मूल, कंद आदि सभी प्रकार की वनस्पतिपरक किया गया है। विशेष स्पष्टीकरण के लिए देखें बृहत्कल्पभाष्य गाथा—८४७ से ८५७।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा से ज्जं पुण अंबं जाणेज्जा—

अप्पंडं—जाव—मक्कडासंताणगं, तिरिच्छच्छिन्नं वोच्छिन्नं

फासुयं—जाव—पडिगाहेज्जा।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखेज्जा—

१. अंबभित्तगं वा, २. अंबपेसियं वा, ३. अंबचोयगं वा, ४. अंबसालगं वा, ५. अंबडगलं वा भोत्तए वा, पायए वा।

से ज्जं पुण जाणेज्जा—अंबभित्तगं वा—जाव—अंबडगलं वा सअंडं—जाव—मक्कडा संताणगं अफासुयं—जाव—णो पडिगाहेज्जा—

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा से ज्जं पुण जाणेज्जा—अंबभित्तगं वा—जाव—अंबडगलं वा अप्पंडं—जाव—मक्कडा संताणगं अतिरिच्छच्छिन्नं अवोच्छिन्नं।

अफासुयं—जाव—णो पडिगाहेज्जा—

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा से ज्जं पुण जाणेज्जा—अंबभित्तगं वा—जाव—अंबडगलं वा अप्पंडं—जाव—मक्कडा संताणगं, तिरिच्छच्छिन्नं वोच्छिन्नं फासुयं—जाव—पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ७, उ. २, सु. ६२३-६२८

भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

यह आम, अण्डे—यावत्—मकड़ी के जालों से रहित है और तिरछा कटा हुआ है एवं जीव रहित हो गया है।

ऐसे आम को प्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण करें।

भिक्षु या भिक्षुणी—

(१) आम की मोटी फांके, (२) लम्बी फांकें, (३) आम का छूंदा, (४) आम की छाल या, (५) आम के टुकड़े खाना चाहें या उसका रस पीना चाहें,

तो यह जाने कि आम की मोटी फांकें—यावत्—टुकड़े अण्डे—यावत्—मकड़ी के जालों से युक्त हैं—

अतः उन्हें अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

आम की मोटी फांकें—यावत्—आम के टुकड़े अण्डे—यावत्—मकड़ी के जालों से रहित है किन्तु तिरछे कटे हुए नहीं हैं तथा जीव रहित हुए नहीं हैं।

अतः उन्हें अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करें।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

आम की मोटी फांकें—यावत्—आम के टुकड़े अण्डे—यावत्—मकड़ी के जालों से रहित हैं वे तिरछे कटे हुए हैं और जीव रहित हो गये हैं तो प्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण करें।

सचित्तं अंबं भुंजमाणस्स पायच्छित्त-सुत्ताइं—

६६४. जे भिक्खू सचित्तं अंबं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सचित्तं अंबं विडसइ, विडसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सचित्त-पइट्ठियं अंबं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सचित्त-पइट्ठियं अंबं विडसइ, विडसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सचित्तं,

१. अंबं वा, २. अंब-पेसिं वा, ३. अंब-भित्तं वा, ४. अंब-सालगं वा, ५. अंब-डगलं वा, ६. अंब-चोयगं वा, भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सचित्तं अंबं वा—जाव—अंबचोयगं वा विडसइ विडसंतं वा साइज्जइ।

सचित्त अंब उपभोग के प्रायश्चित्त सूत्र—

६६४. जो भिक्षु सचित्त आम खाता है, खिलाता है, खाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त आम चूंसता है, चूंसवाता है, चूंसने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्तप्रतिष्ठित आम को खाता है, खिलाता है, खाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्तप्रतिष्ठित आम को चूंसता है, चूंसवाता है, चूंसने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त—

(१) आम को, (२) आम की फांक को, (३) आम के अर्द्ध भाग को, (४) आम की छाल को, (५) आम के गोल टुकड़े को, (६) आम के छोटे-छोटे टुकड़ों को खाता है, खिलाता है, खाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त आम को—यावत्—आम के छोटे-छोटे टुकड़ों को चूंसता है, चूंसवाता है, चूंसने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू सचित्त-पइट्ठियं अंबं वा—जाव—अंबचोयगं वा भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सचित्त-पइट्ठियं अंबं वा—जाव—अंबचोयगं वा विडसइ, विडसंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १५, सु. ५-१२

अपरिणय-परिणय-उच्छु-गहणस्स विहि-णिसेहो—

६६५. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा अभिकंखेज्जा उच्छुवणं उवागच्छित्तए, जे तत्थ ईसरे, जे तत्थ समहिट्ठाए, ते ओग्गहं अणुण्णवेज्जा।

"कामं खलु आउसो ! अहालंदं अहापरिण्णायं वसामो-जाव-आउसो-जाव-आउसंतस्स ओग्गहो-जाव-साहम्मिया एत्ता व ताव ओग्गहं ओगिण्हिस्सामो, तेण परं विहरिस्सामो।"

प०—से किं पुण तत्थ ओग्गहंसि एवोग्गहियंसि ?

उ०—अह भिक्खू इच्छेज्जा उच्छुं भोत्तए वा, से ज्जं उच्छुं जाणेज्जा—

सअंडं-जाव-मक्कडा संताणगं,

तहप्पगारं उच्छुं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उच्छुं जाणेज्जा—

अप्पंडं-जाव-मक्कडा संताणगं, अतिरिच्छच्छिन्नं, अवोच्छिन्नं—

अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उच्छुं जाणेज्जा—

अप्पंडं-जाव-मक्कडा-संताणगं, तिरिच्छच्छिन्नं वोच्छिन्नं—

फासुयं-जाव-पडिगाहेज्जा।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा अभिकंखेज्जा—

१. अंतरुच्छुयं वा, २. उच्छुगंडियं वा, ३. उच्छुचोयगं वा, ४. उच्छुसायगं वा, ५. उच्छुडगलं वा, भोत्तए वा, पायए वा।

से ज्जं पुण जाणेज्जा-अंतरुच्छुयं वा-जाव-उच्छुडगलं वा सअंडं-जाव-मक्कडा-संताणगं

अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

जो भिक्षु सचित्तप्रतिष्ठित आम को—यावत्—आम के छोटे-छोटे टुकड़ों को खाता है, खिलाता है, खाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्तप्रतिष्ठित आम को—यावत्—आम के छोटे-छोटे टुकड़ों को चूसता है, चूसवाता है, चूसने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अपरिणत-परिणत इक्षु ग्रहण का विधि-निषेध—

६६५. भिक्षु या भिक्षुणी (विहार करते हुए आवें और) इक्षु वन के समीप यदि ठहरना चाहें तो उस स्थान के स्वामी की या संरक्षक की आज्ञा प्राप्त करें।

"आयुष्मन् ! आप जितने स्थान में जितने समय तक ठहरने की आज्ञा देंगे हम और हमारे आने वाले स्वधर्मी उतने ही स्थान में उतने ही समय तक ठहरेंगे—बाद में विहार कर देंगे।"

प्र०—वे भिक्षु या भिक्षुणी (इक्षु खाना चाहे तो इक्षु की एषणा) किस प्रकार करें ?

उ०—यदि वे इक्षु खाना चाहें तो वे यह जानें कि—

इक्षु अण्डे—यावत्—मकड़ी के जालों से युक्त है,

ऐसे इक्षु को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करें।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

इक्षु, अण्डे—यावत्—मकड़ी के जालों से रहित है किन्तु तिरछा कटा हुआ नहीं है तथा जीव रहित हुआ नहीं है,

अतः ऐसे इक्षु को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करें।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

यह इक्षु अण्डे—यावत्—मकड़ी के जालों से रहित है और तिरछा कटा हुआ है एवं जीव रहित हो गया है—

ऐसे इक्षु को प्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण करें।

भिक्षु या भिक्षुणी—

(१) इक्षु के अन्दर का भाग, (२) इक्षु की पेलियाँ, (३) इक्षु की बारीक कतली, (४) इक्षु का छिलका या, (५) इक्षु के टुकड़े खाना चाहे तथा उनका रस पीना चाहे,

तो यह जाने कि इक्षु की मोटी फांके—यावत्—इक्षु के टुकड़े अण्डे—यावत्—मकड़ी के जालों से युक्त है—

उन्हें अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करें।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण जाणेज्जा —
अंतरुच्छुयं वा-जाव-उच्छुडगलं वा अप्पंडं-जाव-मक्कडासंताणगं, अतिरिच्छछिन्नं अवोच्छिन्नं

अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण जाणेज्जा —
अंतरुच्छुयं वा-जाव-उच्छुडगलं वा अप्पंडं-जाव-मक्कडासंताणगं तिरिच्छछिन्नं वोच्छिन्नं-फासुयं-जाव-पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ७, उ. २, सु. ६२९-६३१

भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि—

इक्षु की मोटी फाँकें—**यावत्**—इक्षु के टुकड़े, अण्डे—**यावत्**—मकड़ी के जालों से रहित हैं किन्तु तिरछे कटे हुए नहीं हैं तथा जीव रहित हुए नहीं हैं।

अतः उन्हें अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि—

इक्षु की मोटी फाँकें—**यावत्**—इक्षु के टुकड़े, अण्डे—**यावत्**—मकड़ी के जालों से रहित हैं, वे तिरछे कटे हुए हैं और जीव रहित हो गये हैं तो अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण करें।

सचित्तं उच्छुं भुंजमाणस्स पायच्छित्तसुत्ताइं—

सचित्त इक्षु खाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

६६६. जे भिक्खू सच्चित्तं उच्छुं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सचित्तं उच्छुं विडसइ, विडसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सचित्तपइट्ठियं उच्छुं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सचित्तपइट्ठियं उच्छुं विडसइ, विडसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सचित्तं,

१. अंतरुच्छुयं वा, २. उच्छुखंडियं वा,
३. उच्छुचोयगं वा, ४. उच्छुमेरगं वा,
५. उच्छुसालगं वा, ६. उच्छुडगलं वा,

भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सचित्तं अंतरुच्छुयं वा-जाव-उच्छुडगलं वा विडसइ विडसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सचित्तपइट्ठियं अंतरुच्छुयं वा-जाव-उच्छुडगलं वा भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सचित्तपइट्ठियं अंतरुच्छुयं वा-जाव-उच्छुडगलं वा विडसइ, विडसंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १६, सु. ४-११

६६६. जो भिक्षु सचित्त ईख खाता है, खिलाता है, खाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त ईख को चूंसता है, चूंसवाता है चूंसने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्तप्रतिष्ठित ईख को खाता है, खिलाता है, खाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्तप्रतिष्ठित ईख को चूंसता है, चूंसवाता है, चूंसने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त—

(१) ईख का मध्य भाग, (२) ईख के खण्ड,
(३) ईख के छिलके सहित टुकड़े, (४) ईख का अग्र भाग,
(५) ईख की शाखा (६) ईख के गोल टुकड़े

खाता है, खिलाता है, खाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त ईख का मध्य भाग—**यावत्**—ईख के गोल टुकड़े चूंसता है, चूंसवाता है, चूंसने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्तप्रतिष्ठित ईख का मध्य भाग—**यावत्**—ईख के गोल टुकड़े खाता है, खिलाता है, खाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्तप्रतिष्ठित ईख का मध्य भाग—**यावत्**—ईख के गोल टुकड़े चूंसता है, चूंसवाता है, चूंसने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अपरिणय-परिणय-ल्हसुण-गहणस्स विहि-णिसेहो—

अपरिणत-परिणत ल्हसुन ग्रहण का विधि निषेध—

६६७. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा अभिकंखेज्जा ल्हसुणवणं उवागच्छित्तए,

जे तत्थ ईसरे, जे तत्थ समहिट्ठाए, ते ओग्गहं अणुण्णवेज्जा।

६६७. भिक्षु या भिक्षुणी (विहार करते हुए आवें और) लसुनवन के समीप यदि ठहरना चाहे तो उस स्थान के स्वामी की या संरक्षक की आज्ञा प्राप्त करे।

"कामं खलु आउसो ! अहालंदं अहापरिण्णायं वसामो-जाव-आउसो-जाव-आउसंतस्स ओग्गहो-जाव-साहम्मिया एत्ता, ताव ओग्गहं ओगिण्हिस्सामो, तेण परं विहरिस्सामो।"

"आयुष्मन् ! आप जितने स्थान में जितने समय तक ठहरने की आज्ञा देंगे हम और हमारे आने वाले स्वधर्मी उतने ही स्थान में उतने ही समय तक ठहरेंगे बाद में विहार कर देंगे।"

प० से किं पुण तत्थ ओग्गहंसि एवोग्गहियंसि ?

प्र०—वे भिक्षु या भिक्षुणी (लसुन खाना चाहें तो लसुन की ग्रहण) किस प्रकार करें ?

उ०—अह भिक्खू इच्छेज्जा ल्हसुणं भोत्तए वा से ज्जं पुण ल्हसुणं जाणेज्जा,

उ०—यदि वे लसुण खाना चाहें तो वे यह जानें कि—

सअंडं-जाव-मक्कडासंताणगं,
तहप्पगारं ल्हसुणं अफासुयं-जाव-णो पडिग्गाहेज्जा।

लसुन, अण्डे—**यावत्**—मकड़ी के जालों से युक्त है, ऐसे लसुन को अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण ल्हसुणं जाणेज्जा—

भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

अप्पंडं-जाव-मक्कडा-संताणगं अतिरिच्छच्छिन्नं अवोच्छिन्नं—
अफासुयं-जाव-णो पडिग्गाहेज्जा।

लसुन, अण्डे—**यावत्**—मकड़ी के जालों से रहित है किन्तु तिरछा कटा हुआ नहीं है तथा जीव रहित नहीं हुआ है। अतः ऐसे लसुन को अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करें।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा सेज्जं पुण ल्हसुणं जाणेज्जा—

भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

अप्पंडं-जाव-मक्कडा-संताणगं, तिरिच्छच्छिन्नं, वोच्छिन्नं—
फासुयं-जाव-पडिग्गाहेज्जा।

यह लसुन, अण्डे—**यावत्**—मकड़ी के जालों से रहित है और तिरछा कटा हुआ है एवं जीव रहित हो गया है। ऐसे लसुन को प्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण करे।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा अभिकंखेज्जा—

भिक्षु या भिक्षुणी—

१. ल्हसुणं वा, २. ल्हसुण-कंदं वा, ३. ल्हसुण-चोयगं, ४. ल्हसुण-णालगं वा भोत्तए।

(१) लसुन, (२) लसुन का कंद, (३) लसुन की कतली, (४) लसुन की नाल खाना चाहें तो,

से ज्जं पुण जाणेज्जा-ल्हसुणं वा-जाव-ल्हसुण-णालगं वा सअंडं-जाव-मक्कडा-संताणगं-
अफासुयं-जाव-णो पडिग्गाहेज्जा।

यह जाने कि लसुन—**यावत्**—लसुन की नाल, अण्डे—**यावत्**—मकड़ी के जालों से युक्त है। उन्हें अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करें।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा सेज्जं पुण जाणेज्जा—
ल्हसुणं वा-जाव-ल्हसुण णालगं वा अप्पंडं जाव-मक्कडासंताणगं, अतिरिच्छच्छिन्नं, अवोच्छिन्नं।

भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि—
लसुन—**यावत्**—लसुन की नाल अण्डे—**यावत्**—मकड़ी के जालों से रहित है किन्तु तिरछे कटे हुए नहीं हैं तथा जीव रहित हुए नहीं हैं।

अफासुयं-जाव-णो पडिग्गाहेज्जा।

अतः उन्हें अप्रासुक जानकर ग्रहण न करें।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण जाणेज्जा—
ल्हसुणं वा-जाव-ल्हसुण-णालगं वा अप्पंडं-जाव-मक्कडासंताणगं, तिरिच्छच्छिन्नं वोच्छिन्नं-फासुयं-जाव-पडिग्गाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ७, उ. २, सु. ६३२

भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि—
लसुन—**यावत्**—लसुन की नाल, अण्डे—**यावत्**—मकड़ी के जालों से रहित हैं, वे तिरछे कटे हुए हैं और जीव रहित हो गये हैं।
तो उन्हें प्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण करें।

८. लित्तदोसं—

संसट्ठ-हत्थाइणा आहार-गहण-विहि-णिसेहो—

६६८. १. अह पुण एवं जाणेज्जा-णो पुरेकम्मकडे, उदउल्ले।

तहप्पगारेण उदउल्लेण हत्थेण वा-जाव-भायणेणं वा असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा,

२. अह पुण एवं जाणेज्जा-णो उदउल्ले, ससिणिद्धे।

तहप्पगारेण ससिणिद्धेण हत्थेण वा-जाव-भायणेण वा असणं वा-जाव-साइमं वा, अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा,

एवं

३. ससरक्खे, ४. मट्टिया, ५. ऊसे,
६. हरियाले, ७. हिंगुलुए, ८. मणोसिला,
९. अंजणे, १०. लोणे, ११. गेरुए,
१२. वण्णिय, १३. सेडिय, १४. सोरट्ठिय,
१५. पिट्ठ, १६. कुक्कुस, १७. उक्कट्ठे,
-संसट्ठे।

तहप्पगारेण हत्थेण वा-जाव-भायणेण वा असणं वा-जाव-साइमं वा, अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा,

१८. अह पुण एवं जाणेज्जा णो उक्कुट्ठे संसट्ठे, असंसट्ठे।

तहप्पगारेण हत्थेण वा-जाव-भायणेण वा असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

१९. अह पुण एवं जाणेज्जा-णो असंसट्ठे. संसट्ठे।

तहप्पगारेण संसट्ठेण हत्थेण वा-जाव-भायणेण वा असणं वा-जाव-साइमं वा फासुयं-जाव-पडिगाहेज्जा।[1]

—आ. सु. २, अ. १, उ. ६, सु. ३६० (२)

(९) लिप्तदोष—

संसृष्ट हाथ आदि से आहार ग्रहण के विधि-निषेध—

६६८. (१) भिक्षु यदि यह जाने कि (हाथ—यावत्—भाजन) पूर्वकर्मकृत नहीं है किन्तु पानी से गीले हैं।

ऐसे गीले हाथ यावत् भाजन से दिये जाने वाले अशन—यावत्—स्वाद्य को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

(२) भिक्षु यदि यह जाने कि (हाथ—यावत्—भाजन) गीले नहीं हैं किन्तु स्निग्ध हैं।

ऐसे स्निग्ध हाथ—यावत्—भाजन से दिये जाने वाले अशन यावत्—स्वाद्य को अप्रासुक जानकर—यावत् ग्रहण न करे।

इसी प्रकार (हाथ—यावत्—भाजन)

(३) सचित्त रज, (४) सचित्त मिट्टी, (५) खारी मिट्टी, (६) हरताल, (७) हिंगलु, (८) मेनसिल, (९) अंजन, (१०) लवण, (११) गेरू, (१२) पीली मिट्टी, (१३) खड़िया (१४) फिटकरी, (१५) तन्दुल चूर्ण, (१६) चोकर या (१७) हरी वनस्पति के चूर्ण से संसृष्ट हैं।

ऐसे हाथ—यावत्—भाजन से दिये जाने वाले अशन—यावत्—स्वाद्य को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

१८. यदि यह जाने कि (हाथ—यावत्—भाजन) वनस्पति चूर्ण से लिप्त नहीं है, किन्तु पूर्ण अलिप्त है।

ऐसे हाथ—यावत्—भाजन से दिया जाने वाले अशन—यावत्—स्वाद्य को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

१९. भिक्षु यदि यह जाने कि (हाथ—यावत्—भाजन) पूर्ण अलिप्त नहीं है किन्तु (अचित वस्तु से) संसृष्ट (लिप्त) है।

ऐसे संसृष्ट हाथ—यावत्—भाजन से दिये जाने वाले अशन—यावत्—स्वाद्य को प्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण करे।

---

१ उदओल्लेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
२ ससिणिद्धेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
३ ससरक्खेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
४ मट्टियागतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
५ ऊसगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
६ हरितालगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
७ हिंगुलुयगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
८ मणोसिलागतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥

(शेष टिप्पण अगले पृष्ठ पर)

सचित्तदव्वेण संसट्ठहत्थाइणा आहार-गहण-पायच्छित्त सुत्ताइं—

६६९. से भिक्खू—१. उदउल्लेण वा, २. ससिणिद्धेण वा, हत्थेण वा, मत्तेण वा दव्वीएण वा, भायणेण वा, असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू—

३. ससरक्खेण वा, ४. मट्टिया संसट्ठेण वा, ५. ऊसा संसट्ठेण वा, ६. लोणिय संसट्ठेण वा, ७. हरियाल संसट्ठेण वा, ८. मणोसिला संसट्ठेण वा, ९. वण्णिय संसट्ठेण वा, १०. गेरुय संसट्ठेण वा, ११. सेढिय संसट्ठेण वा, १२. सोरट्ठिय संसट्ठेण वा, १३. हिंगुलय संसट्ठेण वा, १४. अंजण संसट्ठेण वा, १५. लोद्ध संसट्ठेण वा, १६. कुक्कुस संसट्ठेण वा, १७. पिट्ठ संसट्ठेण वा, १८. कंतव संसट्ठेण वा, १९. कंदमूल संसट्ठेण वा, २०. सिंगबेर संसट्ठेण वा, २१. पुप्फय संसट्ठेण वा, २२. उक्कुट्ठ संसट्ठेण वा

असंसट्ठेण वा, हत्थेण वा, मत्तेण वा दव्वीए वा, भायणेण वा असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ४, सु. ३८-३९

जे भिक्खू अण्णउत्थियाणं वा, गिहत्थाणं वा।

सीओदग-परिभोगेण हत्थेण वा, मत्तेण वा, दव्विएण वा, भायणेण वा, असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १२, सु. १५

सचित्त द्रव्य से लिप्त हस्तादि से आहार ग्रहण के प्रायश्चित्त सूत्र—

६६९. जो भिक्षु—(१) गीले या, (२) लिप्त हाथ से, पात्र से, चमचे से या भाजन से अशन—यावत्—स्वाद्य ग्रहण करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

इसी प्रकार जो भिक्षु—

(३) सचित्त रज, (४) सचित्त मिट्टी, (५) सचित्त ऊस, (६) सचित्त नमक, (७) सचित्त हरिताल, (८) सचित्त मनशिला, (९) सचित्त पीली मिट्टी, (१०) सचित्त गेरू, (११) सचित्त श्वेतिका, (१२) सचित्त फिटकरी, (१३) सचित्त हिंगलु, (१४) सचित्त अंजन, (१५) सचित्त लोध, (१६) सचित्त तुष, (१७) सचित्त पिष्ट, (१८) सचित्त कंतव, (१९) सचित्त कंद मूल, (२०) सचित्त अदरक, (२१) सचित्त पुष्प या (२२) सचित्त वनस्पति चूर्ण (चटनी) से संसृष्ट अथवा

असंसृष्ट हाथ से, पात्र से, चम्मच से, भाजन से अशन—यावत्—स्वाद्य को ग्रहण करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के,

शीतोदक से भीगे हुए हाथ से, गीले पात्र से, चमचे से, भाजन से अशन—यावत्—खाद्य पदार्थ दिया हुआ लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

(पिछले पृष्ठ का शेष)

९ अंजणगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
१० लोणगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
११ गेरुयगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
१२ वण्णियगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
१३ सेढियगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
१४ सोरट्ठियगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
१५ पिट्ठगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
१६ कुक्कुसगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
१७ उक्कुट्ठगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥
१८ असंसट्ठेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। दिज्जमाणं न इच्छेज्जा, पच्छाकम्मं जहिं भवे॥
१९ संसट्ठेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा। दिज्जमाणं पडिच्छेज्जा, जं तत्थेसणियं भवे॥ —दस. अ. ५, उ. १, गा. ३३-५१

१ इन प्रायश्चित्त सूत्रों में संसृष्ट हाथ आदि २२ प्रकार के कहे हैं। दस. अ. ५, उ. १ गा. ३३-५० तक में तथा आ. सु. २, अ. १, उ. ६, सु. ३६० में कुछ कम कहे गये हैं, साथ ही इनमें क्रमभेद भी है।

छड्डिय दोसं—

६७०. आहरंती सिया तत्थ, परिसाडेज्ज भोयणं ।
दॆतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
—दस. ५, अ. १, गा. २८

छर्दित दोष—

६७०. भिक्षा लाती हुई स्त्री यदि मार्ग में जगह-जगह आहार गिराये तो भिक्षु उस भिक्षा देने वाली को कहे—(तू आहार गिराते हुए ला रही है अतः) "ऐसा आहार मुझे लेना नहीं कल्पता है।"

एषणा विवेक—७

१. **गर्भवती निमित्त निर्मित आहार**—गर्भवती की दोहद पूर्ति के लिए बना हुआ आहार।

२. **अदृष्ट स्थान**—जहाँ अंधकार हो वहाँ से आहार लेने का निषेध।

३. **रजयुक्त आहार**—विक्रय के लिए रखे हुए रजयुक्त खाद्य पदार्थ।

४. **संघट्टण**—पुष्पादि जहाँ बिखरे हुए हों वहाँ से आहारादि लेना।

५. **उल्लंघन**—मार्ग में बैठे हुए या द्वार के मध्य में बैठे हुए बालक, बछड़ा तथा श्वान आदि को लाँघकर आहारादि दिए जाने पर लेना अथवा उक्त प्राणियों को हटाकर आहारादि लेना।

६. **बहुउज्झित धर्मिक**—काँटे गुठली आदि फैंकना पड़े ऐसे खाद्य पदार्थ लेना।

७. **अग्रपिण्ड**—भिक्षाचरों को देने के लिए बनाया हुआ आहार लेना।

८. **नित्यपिण्ड**—जिस गृहस्थ के यहाँ प्रतिदिन आहारादि का निश्चित भाग दिया जाता है उस घर से आहारादि लेना।

९. **आरण्यक**—अटवी पार करने वाले यात्रियों से आहारादि लेना।

१०. **नैवेद्य**—देवताओं के अर्घ्य के लिए अर्पित किये हुए आहारादि में से कुछ भाग लेना।

११. **अत्युष्ण आहार**—अत्यन्त गर्म आहार ग्रहण करना दाता को कष्ट हो या पात्र फूट जाय इत्यादि कारण से अग्राह्य होता है।

१२. **राजपिण्ड**—राजा या राज परिवार या राज कर्मचारियों के निमित्त बने हुए आहारादि लेना।

गुव्विणी निमित्त-णिम्मिय-आहारस्स विहि-णिसेहो—

६७१. गुव्विणीए उवन्नत्थं, विविहं पाणभोयणं ।
भुज्जमाणं विवज्जेज्जा, भुत्तसेसं पडिच्छए ॥[1]
—दस. अ. ५, उ. १, गा. ५४

गर्भवती निमित्त निर्मित आहार का विधि निषेध—

६७१. गर्भवती के लिए बनाया हुआ विविध प्रकार का भक्त-पान वह खा रही हो तो मुनि उसको ग्रहण न करे, खाने के बाद बचा हो वह ग्रहण कर सकता है।

अदिट्ठट्ठाणे गमण-णिसेहो—

६७२. नीयदुवारं तमसं, कोट्ठगं परिवज्जए ।
अचक्खुविसओ जत्थ, पाणा दुप्पडिलेहगा ॥
—दस. अ. ५, उ. १, गा. २०

अदृष्ट स्थान में जाने का निषेध—

६७२. जहाँ चक्षु का विषय न होने के कारण प्राणी भलीभाँति न देखे जा सकें वैसे नीचे द्वार वाले अन्धकार युक्त स्थान में आहार आदि के लिए न जावे।

रजजुत्त-आहारस्स गहण-णिसेहो—

६७३. तहेव सत्तुचुण्णाइं, कोलचुण्णाइं आवणे ।
सक्कुलिं फाणियं पूयं, अन्नं वा वि तहाविहं ॥

रजयुक्त आहार ग्रहण करने का निषेध—

६७३. सत्तू, बेर का चूर्ण, तिलपपड़ी, गीला गुड़, पूआ इस तरह के अन्य भी खाद्य पदार्थ जो बेचने के लिए दुकान में रखे

---

१ गर्भिणी से आहार लेने का निषेध और स्तनपान कराती हुई स्त्री से आहार लेने का निषेध देखिए—दायक दोष में।

विक्कायमाणं पसढं, रएण परिफासियं ।
देंतियं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥

—दस. अ. ५, उ. १, गा. १०२-१०३

पुप्फाई विप्पइण्ण-ठाणे पवेस-णिसेहो—

६७४. जत्थ पुप्फाइं बीयाइं, विप्पइण्णाइं कोट्ठए ।
अहुणोवलित्तं उल्लं, दट्ठूणं परिवज्जए ॥

—दस. अ. ५, उ. १, गा. २१

दारगाईणं उल्लंघण-णिसेहो—

६७५. एलगं दारगं साणं, वच्छगं वावि कोट्ठए ।
उल्लंघिया न पविसे, विउहित्ताण व संजए ॥

—दस अ. ५, उ. १, गा. २२

बहुउज्झियधम्मिय-आहार-गहण-णिसेहो—

६७६. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—

१. अंतरुच्छुयं वा,
२. उच्छुगंडियं वा,
३. उच्छुचोयगं वा,
४. उच्छुमेरगं वा,
५. उच्छुसालगं वा,
६. उच्छुडालगं वा,
७. सिंबलिं वा, ८. सिंबलियालगं वा अस्सिं खलु पडिग्गाहियंसि अप्पे सिया भोयणजाते बहुउज्झियधम्मिए—

तहप्पगारं अंतरुच्छुयं वा-जाव-सिंबलियालगं वा अफासुयं -जाव-णो पडिगाहेज्जा ।[1]

—आ. सु. २, अ १, उ. १०, सु. ४०२

अग्गपिंडस्स गहण-णिसेहो—

६७७. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे-से ज्जं पुण जाणिज्जा—

१. अग्गपिंडं उक्खिप्पमाणं पेहाए,
२. अग्गपिंडं निक्खिप्पमाणं पेहाए,
३. अग्गपिंडं हीरमाणं पेहाए,
४. अग्गपिंडं परिभाइज्जमाणं पेहाए,
५. अग्गपिंडं परिभुज्जमाणं पेहाए,

हुए हों और वे रजयुक्त हों तो मुनि देती हुई स्त्री को कहे कि "इस प्रकार का आहार मैं नहीं ले सकता।"

पुष्प आदि बिखरे हुए स्थान में प्रवेश का निषेध—

६७४. जिस घर आदि में (या द्वार पर) पुष्प बीजादि बिखरे हों तथा भूमि तत्काल की लीपी हुई और गीली हो वहाँ उन्हें देखकर मुनि आहार के लिए न जावे।

बच्चे आदि के उल्लंघन का निषेध—

६७५. संयमी मुनि भेड़, बच्चे, कुत्ते और बछड़े को लांघकर या हटाकर घर आदि में (आहार के लिए) प्रवेश न करे।

अधिक त्याज्य भाग वाले आहार ग्रहण का निषेध—

६७६. गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि—

(१) इक्षु की दो पेलियों का मध्य भाग,
(२) इक्षु के चक्रिकाकार कटे हुए छोटे-छोटे खण्ड,
(३) इक्षु के छिलके सहित खण्ड,
(४) इक्षु का अग्रभाग,
(५) इक्षु की शाखाएं,
(६) इक्षु के गोल टुकड़े,
(७) सेकी हुई मूंगफलियाँ तथा उबली हुई सरगवा की फलियाँ जिनके ग्रहण करने पर खाने लायक अल्प और फेंकने लायक अधिक प्रतीत हो—

ऐसे इक्षु की दो पेलियों के मध्य भागों को—यावत्—उबली हुई सरगवा की फलियों को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

अग्रपिंड के ग्रहण का निषेध—

६७७. भिक्षु या भिक्षुणी आहार के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करते हुए यह जाने कि—

(१) अग्रपिंड निकाला जा रहा है।
(२) अग्रपिंड अन्य स्थान पर रखा जा रहा है।
(३) अग्रपिंड अन्यत्र ले जाया जा रहा है।
(४) अग्रपिंड बाँटा जा रहा है।
(५) अग्रपिंड खाया जा रहा है।

---

१ बहु-अट्ठियपुग्गलं, अणिमिसं वा बहु-कंटयं । अत्थियं तिंदुयं बिल्लं, उच्छुखंडं च सिंबलिं ॥
अप्पे सिया भोयणजाए, बहु-उज्झिय-धम्मिए । देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥

—दस. अ. ५, उ. १, गा. १०४-१०५

६. अग्गपिंडं परिट्ठविज्जमाणं पेहाए।
पुरा असिणाइ वा, अवहराइ वा, पुरा जत्थऽण्णे समण-जाव-वणीमगा खद्धं खद्धं उवसंकमंति-से हंता अहमवि खद्धं खद्धं उवसंकमामि, माइट्ठाणं संफासे, णो एवं करेज्जा—
—आ. सु. २, अ. १, उ. ४, सु. ३५२

(६) अग्रपिंड इधर डाला जा रहा है, या फेंका जा रहा है। तथा श्रमण आदि अग्रपिंड खाकर चले गये हैं या लेकर चले गये हैं, अथवा जहाँ अन्य श्रमण—यावत्—भिक्षुक जल्दी जल्दी जा रहे हैं अतः मैं भी जाऊँ (और अग्रपिंड प्राप्त करूँ) ऐसा विचार करे तो वह माया का सेवन करता है इसलिए ऐसा न करे।

णिच्चदाण-पिण्ड-गहण-णिसेहो -

नित्य दान में दिये जाने वाले घरों से आहार लेने का निषेध—

६७८. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवाय-पडियाए पविसिउकामे सेज्जाइं पुण कुलाइं जाणेज्जा-इमेसु खलु कुलेसु।
१. णितिए अग्गपिंडे दिज्जइ।[1]
२. णितिए पिंडे दिज्जइ।
३. णितिए अवड्ढ भागे दिज्जइ।
४. णितिए भाए दिज्जइ।
५. णितिए उवड्ढभाए दिज्जइ।
तहप्पगाराइं कुलाइं नितियाइं नितिउमाणाइं नो भत्ताए वा, पाणाए वा णिक्खमेज्ज वा, पविसिज्ज वा।
—आ० सु० २, अ० १, उ० १, सु० ३२३

६७८. भिक्षु या भिक्षुणी आहार के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करना चाहे तो इन कुलों को जाने—
(१) जिनमें नित्य अग्रपिंड दिया जाता है।
(२) जिनमें नित्य पिंड दिया जाता है।
(३) जिनमें नित्य आधा भाग दिया जाता है।
(४) जिनमें नित्य तीसरा चौथा भाग दिया जाता है।
(५) जिनमें नित्य छठा-आठवाँ भाग दिया जाता है।
नित्य दान दिये जाने वाले और श्रमण आदि जहाँ निरन्तर प्रवेश करते रहते हैं—ऐसे कुलों में भिक्षु भात-पानी के लिए निष्क्रमण प्रवेश न करे।

णिच्च दाण पिंडाइ भुंजमाणस्स पायच्छित्तसुत्ताइं—

नित्यदान पिंडादि खाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

६७९. जे भिक्खू नितियं अग्गपिंडं भुंजइ भुंजंतं वा साइज्जइ।

६७९. जो भिक्षु नित्य अग्रपिंड भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू नितियं पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नित्य पिंड भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू नितियं अवड्ढ-भागं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नित्य पिंड का आधा भाग भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू नितियं भागं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु नित्य पिंड का तीसरा चौथा भाग भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू नितियं उवड्ढभागं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।[2]

जो भिक्षु नित्य पिंड का छठा, आठवाँ भाग भोगता है, भोगवाता है, भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. २, सु. ३२-३६

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

---

१ किसी एक घर से नित्य आमंत्रित भिक्षा लेना तीसरा अनाचार है। देखिए——दश. अ. ३, गा. २ की चूर्णी व टीका तथा अ. ६, गा. ४८ तथा नि. भाष्य गा. ६६६। अनेक स्थलों के उद्धरण सहित संग्रह के लिए देखें मुनि नथमलजी संपादित दशवै. अ. ३ का टिप्पण।

२ पिंडो खलु भत्तट्ठो, अवड्ढ पिंडो उ तस्स जं अद्धं। भागो तिभागमादी, तस्सद्धमुवड्ढभागो य। —नि. भाष्य, गा. १००६
इस गाथा में ४ सूत्रों के शब्दार्थ का संग्रह क्रम से हुआ है। तथा नित्य अग्रपिंड सूत्र की व्याख्या इसके पूर्व हुई है। तदनुसार आचारांग व निशीथ सूत्र के इन सूत्रों का क्रम व्यवस्थित किया गया है।

आरण्णगाईणं आहारगहण-पायच्छित्त सुत्ताइं—

९८०. जे भिक्खू आरण्णगाणं वणंधाणं अडविजत्ता संपट्ठियाणं असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू आरण्णगाणं वणंधाणं अडविजत्ताओ पडिणियत्ताणं असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १६, सु. १२-१३

आरण्यकादिकों का आहारादि ग्रहण करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

९८०. जो भिक्षु अरण्य में जाने वालों का, वन में जाने वालों का, अटवी की यात्रा में प्रस्थान करने वालों का अशन—यावत्—स्वादिम पदार्थ लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु अरण्य से, वन से या अटवी की यात्रा से लौटने वालों का अशन—यावत्—स्वादिम पदार्थ लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिवेयणपिंड-भुंजमाणस्स पायच्छित्तसुत्तं—

९८१. जे भिक्खू णिवेयणपिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ११, सु. ८१

नैवेद्यपिंड भोगने का प्रायश्चित्त सूत्र—

९८१. जो भिक्षु नैवेद्य का आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अच्चुसिणं-आहार-गहणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

९८२. जे भिक्खू असणं वा-जाव-साइमं वा उसिणुसिणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १७, सु. १३१

अत्युष्ण आहार लेने का प्रायश्चित्त सूत्र—

९८२. जो भिक्षु गर्मागर्म अशन—यावत्—स्वाद्य पदार्थ लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

रायपिंडगहणस्स भुंजणस्स य पायच्छित्त सुत्ताइं—

९८३. जे भिक्खू रायपिंडं गेण्हइ, गेण्हंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू रायपिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ९, सु. १-२

राजपिण्ड ग्रहण करने और भोगने के प्रायश्चित्त सूत्र—

९८३. जो भिक्षु राजपिंड को ग्रहण करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु राजपिंड का उपभोग करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अंतेउर पवेसणस्स भिक्खागहणस्स य पायच्छित्तसुत्ताइं—

९८४. जे भिक्खू रायंतेपुरं पविसइ, पविसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू रायंतेपुरियं वएज्जा—

"आउसो रायंतेपुरिए! णो खलु अम्हं कप्पइ रायंतेपुरे णिक्खमित्तए वा पविसित्तए वा।

इमण्हं तुमं पडिग्गहं गहाय रायंतेपुराओ असणं वा-जाव-साइमं वा अभिहडं आहट्टु दलयाहि"

जो तं एवं वयइ, वयंतं वा साइज्जइ।

अन्तःपुर में प्रवेश व भिक्षा ग्रहण के प्रायश्चित्त सूत्र—

९८४. जो भिक्षु राजा के अन्तःपुर में प्रवेश करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु राजा के अन्तःपुर की दासी को ऐसा कहे—

"हे आयुष्मति! राजान्तःपुर रक्षिके! हम साधुओं को राजा के अन्तःपुर में निष्क्रमण या प्रवेश करना नहीं कल्पता है,

तुम इस पात्र को ग्रहण कर राजा के अन्तःपुर से अशन—यावत्—स्वाद्य लाकर मुझे दो।"

जो उससे इस प्रकार कहता है, कहलवाता है, कहने वाले का अनुमोदन करता है।

भिक्खुं च णं रायंतेपुरिया वएज्जा—
"आउसंतो समणा ! णो खलु तुज्झं कप्पइ रायंतेपुरं णिक्खमित्तए वा, पविसित्तए वा।
आहरेयं पडिग्गहगं जाए अहं रायंतेउराओ असणं वा-जाव-साइमं वा अभिहडं आहट्टु दलयामि"—
जो तं एवं वयंतीं पडिसुणेइ, पडिसुणंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —नि. उ. ९, सु. ३-५

यदि भिक्षु को अन्तःपुर की दासी ऐसा कहे—
"हे आयुष्मन् श्रमण ! तुम्हें राजा के अन्तःपुर में निष्क्रमण या प्रवेश करना नहीं कल्पता है।
अतः यह पात्र मुझे दो जिससे मैं अन्तःपुर से अशन-यावत्-स्वाद्य तुम्हें लाकर दूं।"
जो उसके इस प्रकार के कथन को स्वीकार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मुद्धाभिसित्तरायाणं विविहपिंडगहणस्स पायच्छित्त-सुत्ताइं—

मूर्द्धाभिषिक्त राजा के अनेक प्रकार के आहार ग्रहण का प्रायश्चित्त सूत्र—

९८५. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं।
१. दुवारियभत्तं वा,
२. पसु-भत्तं वा,
३. भयग-भत्तं वा,
४. बल-भत्तं वा,
५. कयग-भत्तं वा,
६. हय-भत्तं वा,
७. गय भत्तं वा,
८. कंतार-भत्तं वा,
९. दुब्भिक्ख-भत्तं वा,
१०. दमग-भत्तं वा,
११. गिलाण-भत्तं वा,
१२. वद्दलिया-भत्तं वा,
१३. पाहुण-भत्तं वा, पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —नि. उ. ९, सु. ६

९८५. जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा के—
(१) द्वारपालक के निमित्त किया हुआ भोजन,
(२) पशुओं के निमित्त किया हुआ भोजन,
(३) नौकरों के निमित्त किया हुआ भोजन,
(४) सैनिकों के निमित्त किया हुआ भोजन,
(५) काम करने वालों के निमित्त किया हुआ भोजन,
(६) घोड़ों के निमित्त किया हुआ भोजन,
(७) हाथियों के निमित्त किया हुआ भोजन,
(८) अटवी के यात्रियों के निमित्त किया हुआ भोजन,
(९) दुर्भिक्ष में देने के लिए किया हुआ भोजन,
(१०) दीन जनों के लिए देने योग्य भोजन,
(११) रोगियों के लिए देने योग्य भोजन,
(१२) वर्षा से पीड़ित जनों को देने योग्य भोजन,
(१३) मेहमानों के लिए बनाया हुआ भोजन, लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं।
१. उस्सट्ठ-पिंडं वा, २. संसट्ठ-पिंडं वा, ३. अणाह पिंडं वा, ४. किविण-पिंडं वा,
५. वणिमग-पिंडं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —नि. उ. ८, सु. १८

जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का—
(१) त्यक्त भोजन, (२) बचा हुआ भोजन, (३) अनाथों के निमित्त निकाला हुआ भोजन, (४) गरीबों के लिए निकाला हुआ भोजन, (५) भिखारियों के लिए निकाला हुआ भोजन लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मुद्धाभिसित्तं रायाणं छ दोसायतणाइं अजाणिय भिक्खा-गमण-पायच्छित्त सुत्तं—

मूर्द्धाभिषिक्त राजा के छः दोषायतन जाने बिना गोचरी जाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

९८६. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं इमाइं छद्दोसायणाइं अजाणिय अपुच्छिय अगवेसिय परं चउराय-

९८६. जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्द्धाभिषिक्त राजा के छः दोषायतनों को जाने बिना, पूछे बिना, गवेषणा किये बिना चार पाँच रात

पंचरायाओ गाहावइकुलं पिंडवाय-पडियाए णिक्खमइ वा, पविसइ वा, णिक्खमंतं वा, पविसंतं वा साइज्जइ। तं जहा—

१. कोट्ठागार-सालाणि वा, २. भंडागार-सालाणि वा,
३. पाण-सालाणि वा, ४. खीर-सालाणि वा,
५. गंज-सालाणि वा, ६. महाणस-सालाणि वा।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ६, सु. ७

के बाद भी गाथापति कुल में आहार के लिए प्रवेश करता है या निकलता है, प्रवेश करवाता है या निकलवाता है, प्रवेश करने वाले का या निकलने वाले का अनुमोदन करता है। यथा—

(१) कोष्ठागारशाला, (२) भाण्डागारशाला,
(३) पानशाला, (४) क्षीर शाला,
(५) गंजशाला, (६) महानसशाला (रसोई)

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मुद्धाभिसित्तरायाणं जत्तागयाणं आहार-गहणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

६८७. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं बहिया जत्ता—पट्ठियाणं असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं बहिया जत्ता-पडिणियत्ताणं असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं णई-जत्ता-पट्ठियाणं असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं णई-जत्ता-पडिणियत्ताणं असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं गिरि-जत्ता-पट्ठियाणं असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं गिरि-जत्ता-पडिणियत्ताणं असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ६, सु. १२-१७

यात्रागत राजा का आहार ग्रहण करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

६८७. जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा यात्रा के लिए बाहर जा रहे हों उस समय उनका अशन—यावत्—स्वाद्य आहार ग्रहण करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा यात्रा से लौट कर आ रहे हों उस समय उनका अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा नदी यात्रा के लिए जा रहे हों उस समय उनका अशन—यावत्—स्वाद्य ग्रहण करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा नदी यात्रा से लौटकर आ रहे हों उस समय उनका अशन—यावत्—स्वाद्य ग्रहण करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा पर्वत यात्रा के लिए जा रहे हों उस समय उनका अशन—यावत्—स्वाद्य ग्रहण करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा पर्वत यात्रा से लौटकर आ रहे हों उस समय उनका अशन—यावत्—स्वाद्य ग्रहण करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मुद्धाभिसित्त रायाणं णीहड-आहार-गहणस्स पायच्छित्त-सुत्ताइं—

६८८. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा-जाव-साइमं वा परस्स णीहडं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ। तं जहा—

१. खत्तियाण वा, २. राईण वा, ३. कुराईण वा,
४. राय-वंसट्ठियाण वा, ५. राय-पेसियाण वा।

मूर्धाभिषिक्त राजा के निकाले हुए आहार लेने के प्रायश्चित्त सूत्र—

६८८. जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का दूसरों को देने के लिए आहार निकाला हुआ अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है। यथा—

(१) क्षत्रियों को, (२) राजाओं को, (३) कुराजाओं को, (४) राजा के सम्बन्धियों को, (५) राजा के भृत्यों को,

जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा-जाव-साइमं वा परस्स णीहडं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ । तं जहा—

१. णडाण वा, २. णट्टाण वा,
३. कच्छुयाण वा, ४. जल्लाण वा,
५. मल्लाण वा, ६. मुट्ठियाण वा,
७. वेलंबगाण वा, ८. कहगाण वा,
९. पवगाण वा,
१०. लासगाण वा,
११. खेलयाण वा, १२. छत्ताणुयाण वा ।

जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का अशन —यावत्—स्वाद्य जो दूसरों को देने के लिए बाहर निकाला है उसे लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है। यथा—

(१) नाटक करने वालों को, (२) नृत्य करने वालों को,
(३) डोरी पर नृत्य करने वालों को, (४) स्तोत्र पाठकों को
(५) मल्लों को, (६) मुष्ठिकों को,
(७) भांड-चेष्टा करने वालों को, (८) कथा करने वालों को,
(९) नदी आदि में तैरने वालों को,
(१०) जयजयकार बोलने वालों को,
(११) खेल करने वालों को और (१२) छत्र लेने वालों को ।

जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा-जाव-साइमं वा परस्स णीहडं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ । तं जहा—

१. आस-पोसयाण वा, २. हत्थि-पोसयाण वा,
३. महिस-पोसयाण वा, ४. वसह-पोसयाण
५. सीह-पोसयाण वा, ६. वग्घ-पोसयाण वा,
७. अय-पोसयाण वा, ८. पोय-पोसयाण वा,
९. मिग-पोसयाण वा, १०. सुणह पोसयाण वा,
११. सूयर-पोसयाण वा, १२. मेंढ-पोसयाण वा,
१३. कुक्कुड-पोसयाण वा, १४. तित्तिर-पोसयाण वा,
१५. वट्टय-पोसयाण वा, १६. लावय-पोसयाण वा,
१७. चीरल्ल-पोसयाण वा, १८. हंस-पोसयाण वा,
१९. मयूर-पोसयाण वा, २०. सुय-पोसयाण वा ।

जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का दूसरों को देने के लिए बाहर निकाला हुआ अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है । यथा—

(१) अश्व पोषक, (२) हस्ति पोषक,
(३) महिष पोषक, (४) ऋषभ पोषक,
(५) सिंह पोषक, (६) व्याघ्र पोषक,
(७) अजा पोषक, (८) कपोत पोषक,
(९) मृग पोषक, (१०) श्वान पोषक,
(११) सूकर पोषक, (१२) मिंढा पोषक,
(१३) कुक्कुट पोषक, (१४) तीतर पोषक,
(१५) बतक पोषक, (१६) लावक पोषक
(१७) चील पोषक, (१८) हंस पोषक,
(१९) मयूर पोषक और (२०) शुक पोषक ।

जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा-जाव-साइमं वा परस्स णीहडं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ । तं जहा—

१. आस-दमगाण वा,
२. हत्थि-दमगाण वा ।

जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का दूसरों को देने के लिए बाहर निकाला हुआ अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है । यथा—

(१) घोड़े का दमन करने वाले को,
(२) हाथी का दमन करने वाले को ।

जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा-जाव-साइमं वा परस्स णीहडं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ । तं जहा—

१. आसरोहाण वा,
२. हत्थि-रोहाण वा ।

जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का जो दूसरों को देने के लिए बाहर निकाला हुआ अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है । यथा—

(१) घोड़े पर चढ़ने वालों को,
(२) हाथी पर चढ़ने वालों को,

जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा-जाव-साइमं वा परस्स णीहडं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ । तं जहा—

१. आस-मिंठाण वा, २. हत्थि-मिंठाण वा ।

जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का दूसरों को देने के लिए बाहर निकाला हुआ अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है लेने वाले का अनुमोदन करता है । यथा—

(१) अश्वरक्षकों को, (२) गजरक्षकों को ।

जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं

जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का दूसरों को

वा-जाव-साइमं वा परस्स णीहडं पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ। तं जहा—

१. सत्थवाहाण वा,
२. संवाहावयाण वा,
३. अब्भंगावयाण वा,
४. उव्वट्टावयाण वा,
५. मज्जावयाण वा,
६. मंडावयाण वा,
७. छत्तग्गहाण वा,
८. चामरग्गहाणं वा,
९. हडप्प-ग्गहाण वा,
१०. परियट्ट-ग्गहाण वा,
११. दीविय-ग्गहाणं वा,
१२. असि-ग्गहाण वा,
१३. धणु-ग्गहाण वा,
१४. सत्ति-ग्गहाण वा,
१५. कोंत-ग्गहाण वा।

जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा-जाव-साइमं वा परस्स णीहडं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ। तं जहा—

१. वरिस-धराण वा,
२. कंचुइज्जाण वा,
३. दोवारियाण वा,
४. डंडारक्खियाण वा।

जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं असणं वा-जाव-साइमं वा परस्स णीहडं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ। तं जहा—

१. खुज्जाण वा,
२. चिलाइयाण वा,
३. वामणीण वा,
४. वडभीण वा,
५. बब्बरीण वा,
६. बउसीण वा,
७. जोणियाण वा,
८. पल्हवियाण वा,
९. ईसणीण वा,
१०. थोरुगिणीण वा,
११. लउसीण वा,
१२. लासीण वा,
१३. सिंहलीणं वा,
१४. दमिलीण वा,
१५. आरबीण वा,
१६. पुलिंदीण वा,
१७. पक्कणीण वा,
१८. बहलीण वा,

देने के लिए बाहर निकाला हुआ अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है। यथा—

१. संदेशवाहक को
२. मर्दन करने वालों को,
३. मालिश करने वालों को
४. उबटन करने वालों को,
५. स्नान कराने वालों को,
६. मुकुट पहनाने वालों को,
७. छत्र ग्रहण करने वालों को,
८. चामर ग्रहण करने वालों को
९. आभरण पहनाने वालों को,
१०. वस्त्र पहनाने वालों को,
११. दीपक ग्रहण करने वालों को,
१२. तलवार ग्रहण करने वालों को,
१३. धनुष ग्रहण करने वालों को,
१४. त्रिशूल ग्रहण करने वालों को,
१५. भाला ग्रहण करने वालों को।

जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का दूसरों को देने के लिए बाहर निकाला हुआ अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है। यथा—

१. अंतःपुर रक्षक (कृत नपुंसक) को,
२. कंचुकियों (जन्म से नपुंसक को)
३. अंतःपुर के द्वारपाल को और,
४. दण्डरक्षकों (अंतःपुर का प्रहरी) को।

जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का दूसरों को देने के लिए बाहर निकाला हुआ अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है। यथा—

१. कुब्जा दासियों को,
२. किरात देशोत्पन्न दासियों को,
३. वामन दासियों को,
४. वक्र शरीर वाली दासियों को,
५. बब्बर देशोत्पन्न दासियों को,
६. बकुश देशोत्पन्न दासियों को,
७. यवन देशोत्पन्न दासियों को,
८. पल्हव देशोत्पन्न दासियों को,
९. इसीनिका देशोत्पन्न दासियों को,
१०. थोरुग देशोत्पन्न दासियों को,
११. लकुश देशोत्पन्न दासियों को,
१२. लाट देशोत्पन्न दासियों को,
१३. सिंहल देशोत्पन्न दासियों को,
१४. द्रविड़ देशोत्पन्न दासियों को,
१५. अरब देशोत्पन्न दासियों को,
१६. पुलिन्द देशोत्पन्न दासियों को,
१७. पक्कण देशोत्पन्न दासियों को,
१८. बहल देशोत्पन्न दासियों को,

१६. मरुंडीण वा,
२०. सबरीण वा,
२१. पारसीण वा।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —नि. उ. ६, सु. २०-२८

१६. मुरुंड देशोत्पन्न दासियों को,
२०. शबर देशोत्पन्न दासियों को,
२१. पारस देशोत्पन्न दासियों को।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

विविह ठाणे रायपिंड गहणस्स पायच्छित्तसुत्ताइं—

६८६. जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं-मुद्दियाणं-मुद्धाभिसित्ताणं समवाएसु वा पिंडनियरेसु वा—

१. इंद-महेसु वा, २. खंद-महेसु वा, ३. रुद्द-महेसु वा
४. मुकुंद-महेसु वा, ५. भूत-महेसु वा, ६. जक्ख-महेसु वा,
७. णाग-महेसु वा, ८. थूम-महेसु वा, ९. चेइय-महेसु वा,
१०. रुक्ख-महेसु वा, ११. गिरि-महेसु वा, १२. दरि-महेसु वा
१३. अगड-महेसु वा, १४. तडाग-महेसु वा, १५. दह-महेसु वा
१६. णइ-महेसु वा, १७. सर-महेसु वा, १८. सागर-महेसु वा,
१९. आगर-महेसु वा, अण्णयरेसु वा तहप्पगारेसु विरूवरूवेसु महामहेसु असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुद्दियाणं मुद्धाभिसित्ताणं उत्तर-सालंसि वा, उत्तर-गिहंसि वा, रीयमाणाणं असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू रण्णो-खत्तियाणं-मुद्दियाणं-मुद्धाभिसित्ताणं

१. हय-सालगयाण वा, २. गय-सालगयाण वा,
३. मंत-सालगयाण वा, ४. गुज्झ-सालगयाण वा,
५. रहस्स-सालगयाण वा, ६. मेहुण-सालगयाण वा,

असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू रण्णो-खत्तियाणं-मुद्दियाणं-मुद्धाभिसित्ताणं संनिहि संनिचयाओ खीरं वा-जाव-मच्छंडियं वा अण्णयरं वा भोयणजायं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —नि. उ. ८, सु. १४ से १७

विविध स्थानों में राजपिंड लेने के प्रायश्चित्त सूत्र—

६८६. जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा के मेले आदि में पितृ पिंड-निमित्तक भोजन में, यथा—

१. इन्द्र, २. स्कन्द, ३. रुद्र,
४. मुकुन्द, ५. भूत, ६. यक्ष,
७. नाग, ८. स्तूप, ९. चैत्य,
१०. वृक्ष, ११. पर्वत, १२. कंदरा,
१३. कूप, १४. तालाब, १५. द्रह,
१६. नदी, १७. सर, १८. सागर,

१९. आगर, महोत्सव में तथा, अन्य भी ऐसे अनेक प्रकार के महोत्सवों में से अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा उत्तरशाला में या उत्तरघर में हों वहाँ बने हुए अशन—यावत्—स्वाद्य को लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का

१. अश्वशाला, २. गजशाला,
३. मंत्रणाशाला, ४. गुप्तशाला,
५. रहस्यशाला, ६. मैथुनशाला, में गये हुए

राजा का अशन—यावत्—स्वाद्य लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु शुद्धवंशीय मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा के संग्रह स्थान से दूध—यावत्—मिश्री या अन्य भी ऐसे कोई खाद्य पदार्थ को लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे अनुद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

□□

प्रकीर्णक-दोष—८

उद्देसियाइ आहार गहणस्स विहि णिसेहो—

९९० से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा-असणं वा-जाव-साइमं वा अस्सिंपडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स-पाणाइं-जाव-सत्ताइं समारंभ समुद्दिस्स कीतं पामिच्चं अच्छेज्जं अणिसट्ठं अभिहडं आहट्टु चेतेति ।[1]

तं तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा,
पुरिसंतरकडं वा, अपुरिसंतरकडं वा,
बहिया णीहडं वा, अणीहडं वा,
अत्तट्ठियं वा, अणत्तट्ठियं वा,
परिभुत्तं वा, अपरिभुत्तं वा,
आसेवितं वा, अणासेवितं वा,
अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा ।[2]

एवं बहवे साहम्मिया, एगं साहम्मिणिं, बहवे साहम्मिणीओ समुद्दिस्स चत्तारि आलावगा भाणियव्वा ।

— आ. सु. २, अ. १, उ. १, सु. ३३१

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा-असणं वा-जाव-साइमं वा बहवे समण[3] माहण-अतिहि-किवण वणीमए[4] पगणिय पगणिय समुद्दिस्स पाणाइं-जाव-सत्ताइं समारंभ-जाव-आसेवियं वा अणासेवियं वा अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा ।

औद्देशिकादि आहार ग्रहण करने के विधि निषेध—

९९०. गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि—अशन - यावत्—स्वादिम दाता ने अपने लिये नहीं बनाया किन्तु एक साधर्मिक साधु के लिए प्राणी—यावत्—सत्वों का समारम्भ करके साधु के निमित्त से आहार बनाया है, मोल लिया है, उधार लिया है, किसी से जबरन छीनकर लाया गया है, उसके स्वामी की अनुमति के बिना लाया हुआ है तथा अन्य स्थान से लाया हुआ है ।

इसी प्रकार का अशन—यावत्—स्वादिम,
अन्य पुरुष को दिया हो, या नहीं दिया हो,
बाहर निकाला हो, या न निकाला हो,
स्वीकार किया हो, या न किया हो,
खाया हो, या न खाया हो,
आसेवन किया हो, या न किया हो,
उसे अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे ।

इसी प्रकार अनेक साधर्मिक साधु, एक साधर्मिक साध्वी और अनेक साधर्मिक साध्वियों के लिए इस प्रकार कुल चार आलापक का कथन कर लेना चाहिये ।

वह भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रवेश करने पर यह जाने कि—यह अशन—यावत्—स्वाद्य बहुत से श्रमणों, ब्राह्मणों, अतिथियों, दरिद्रियों, भिखारियों को गिन-गिन कर उनके उद्देश्य से प्राणी—यावत्—सत्वों का समारम्भ करके बनाया हुआ है—यावत्—वह आसेवन किया गया हो, या न किया गया हो तो उस आहार को अप्रासुक समझकर - यावत्—ग्रहण न करे ।

---

१ (क) उद्देसियं कीयगडं, पामिच्चं चेव आहडं । पूर्ति अणेसणिज्जं च, तं विज्जं परिजाणिया । —सूय. सु. १, अ ६, गा. १४

(ख) से जहाणामए अज्जो ! मए समणाणं निग्गंथाणं आधाकम्मिएइ वा, उद्देसिएइ वा, मीसज्जाए वा, अज्झोयरइ वा, पूइए, कीए, पामिच्चे, अच्छेज्जे, अणिसिट्ठे, अभिहडे वा, ... —ठाणं. अ. ९, सु. ६९३

(ग) नो खलु कप्पइ जाया ! समणाणं निग्गंथाणं आहाकम्मिए इ वा, उद्देसिए इ वा, मिस्सजाए इ वा, अज्झोयरए इ वा, पूइए इ वा, कीए इ वा, पामिच्चे इ वा, अच्छेज्जे इ वा, अणिसट्ठे इ वा, अभिहडे इ वा, कंतारभत्ते इ वा, दुब्भिक्खभत्ते इ वा, गिलाणभत्ते इ वा, वद्दलिया भत्ते इ वा, पाहुणगभत्ते इ वा, सेज्जायरपिंडे[1] इ वा, रायपिंडे[2] इ वा, मूलभोयणे[3] इ वा, कंदभोयणे[4] इ वा, फलभोयणे[5] इ वा, बीयभोयणे[6] इ वा, हरियभोयणे[7] इ वा, भुत्तए वा पायए वा । वि. स. ९, उ. ३३, सु. ४३

(घ) उद्देसियं कीयगडं नियागं अभिहडाणि य । .... ॥ —दस. अ. ३, गा. २

(ङ) दस. अ. ५, उ. १, गा ७० (च) दस. अ. ६, गा. ४८-४९ (छ) दस. अ. ८, गा. २३

(ज) दस. अ. १०, गा. १६ (झ) दसा. द. २, सु. २ ।

२ उपरोक्त दर्शाये गये दोषादि आवश्यक सूत्र में भी हैं, जो आवश्यक में भी लिए हैं । —आ. अ. ४, सु. १८

३ दस. अ. ५, उ. १, गा. ६८-६९ ४ दस. अ. ५, उ. १, गा. ६६-६७ ।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा-असणं वा-जाव-साइमं वा बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमए समुद्दिस्स पाणाइं-जाव-सत्ताइं-जाव-आहट्टु चेतेति तं तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा अपुरिसंतरकडं, अबहिया णीहडं, अणत्तट्ठियं, अपरिभुत्तं, अणासेवितं, अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

अह पुण एवं जाणेज्जा-पुरिसंतरकडं, बहिया णीहडं, अत्तट्ठियं, परिभुत्तं, आसेवितं, फासुयं-जाव-पडिगाहेज्जा।

—आ० सु० २, अ० १, उ० १, सु० ३३२

भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रविष्ट होने पर यह जाने कि—यह अशन—**यावत्**—स्वादिम आहार बहुत से श्रमणों, माहनों, अतिथियों, दरिद्रियों और याचकों के उद्देश्य से प्राणी—**यावत्**—सत्वों का समारम्भ करके—**यावत्**—अन्य स्थान से लाया गया है, इस प्रकार के (दोषयुक्त) अशन—**यावत्**—स्वादिम जो अन्य पुरुष को नहीं दिया गया है, बाहर नहीं निकाला गया है, स्वीकृत नहीं किया गया है, उपभुक्त न हो, अनासेवित हो, उसे अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

यदि वह इस प्रकार जाने कि—यह आहार अन्य पुरुष को दे दिया गया है, बाहर निकाला गया है, दाता द्वारा स्वीकृत हो, उपभुक्त हो तथा आसेवित हो तो ऐसे आहार को प्रासुक समझकर—**यावत्**—ग्रहण कर ले।

णिमंतणाणंतर दोस जुत्त आहाराइ गहण णिसेहो—

९९१. से भिक्खू परक्कमेज्ज वा, चिट्ठेज्ज वा, णिसीएज्ज वा, तुयट्टेज्ज वा, सुसाणंसि वा, सुण्णागारंसि वा, रुक्खमूलंसि वा, गिरिगुहंसि वा, कुंभारायतणंसि वा, हुरत्था वा, कहिंचि विहरमाणं तं भिक्खुं उवसंकमित्तु गाहावती बूया—"आउसंतो समणा! अहं खलु तव अट्ठाए असणं वा-जाव-साइमं वा, वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा, पाणाइं-जाव-सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स, कीयं, पामिच्चं, अच्छेज्जं, अणिसिट्ठं, अभिहडं, आहट्टु चेतेमि आवसहं वा समुस्सिणामि, से भुंजह, वसह आउसंतो समणा।"

निमंत्रण करने पर भी दोषयुक्त आहारादि लेने का निषेध—

९९१. (सावद्य कार्यों से निवृत्त) भिक्षु श्मशान में, सूने मकान में, वृक्ष के नीचे, पर्वत की गुफा में, कुम्भकारशाला आदि में कहीं रह रहा हो, खड़ा हो, बैठा हो या लेटा हुआ हो उस समय कोई गृहपति उस भिक्षु के पास आकर कहे—

"आयुष्मन् श्रमण! मैं आपके लिए अशन—**यावत्**—स्वाद्य वस्त्र, पात्र, कम्बल, वा पादप्रोंछन प्राणियों—**यावत्**—सत्वों का समारम्भ करके बना रहा हूँ या खरीद कर, उधार लेकर, किसी से छीनकर, दूसरे की वस्तु को उसकी बिना अनुमति से लाकर या घर से लाकर आपको देता हूँ अथवा आपके लिए उपाश्रय बनवा देता हूँ। हे आयुष्मन् श्रमण! आप उस अशनादि का उपभोग करो और उपाश्रय में रहो।"

भिक्खू तं गाहावतिं समणसं सवयसं पडियाइक्खे—

"आउसंतो गाहावती! णो खलु ते वयणं आढामि, णो खलु ते वयणं परिजाणामि, जो तुमं मम अट्ठाए असणं वा-जाव-साइमं वा, वत्थं वा-जाव-पायपुंछणं वा पाणाइं वा-जाव-सत्ताइं वा समारंभ-जाव-अभिहडं आहट्टु चेतेसि आवसहं वा समुस्सिणासि, से विरतो आउसो गाहावती! एतस्स अकरणयाए।"

भिक्षु उस सुमनस् (भद्र हृदय) एवं सुवयस् (भद्र वचन वाले) गृहपति को कहे—

"हे आयुष्मन् गृहपति! मैं तुम्हारे इस वचन को आदर नहीं देता, न ही तुम्हारे वचन को स्वीकार करता हूँ। जो तुम मेरे लिए अशन—**यावत्**—स्वादिम, वस्त्र—**यावत्**—पादप्रोंछन, प्राणियों—**यावत्**—सत्वों का समारम्भ करके—**यावत्**—अपने घर से यहाँ लाकर मुझे देना चाहते हो, मेरे लिए उपाश्रय बनवाना चाहते हो। हे आयुष्मन् गृहस्थ! मैं विरत हो चुका हूँ। यह अकरणीय होने से (मैं स्वीकार नहीं कर सकता)।"

से भिक्खू परक्कमेज्ज वा-जाव-तुयट्टेज्ज वा, सुसाणंसि वा-जाव-हुरत्था वा कहिंचि विहरमाणं, तं भिक्खुं उवसंकमित्तु गाहावती आयगयाए पेहाए असणं वा-जाव-साइमं वा, वत्थं वा-जाव-पायपुंछणं वा पाणाइं वा-जाव-सत्ताइं वा, समारंभ-जाव-अभिहडं आहट्टु चेतेति आवसहं वा समुस्सिणाति तं भिक्खुं परिघासेतुं।

भिक्षु कहीं रह रहा हो—**यावत्**—लेटा हुआ हो, श्मशान में—**यावत्**—अन्य कहीं भी रहे हुए उस भिक्षु के पास आकर कोई गृहपति अपने आत्मगत भावों को प्रकट किए बिना अशन—**यावत्**—स्वाद्य, वस्त्र—**यावत्**—पादप्रोंछन, प्राणियों—**यावत्**—सत्वों के समारम्भपूर्वक—**यावत्**—अपने घर से लाकर देता है तथा उस भिक्षु के रहने के लिए उपाश्रय का निर्माण या जीर्णोद्धार कराता है।

तं च भिक्खू जाणेज्जा सहसम्मुतियाए परवागरणेणं अण्णोसि वा सोच्चा अयं खलु गाहावती मम अट्ठाए असणं वा-जाव-साइमं वा, वत्थं वा-जाव-पायपुंछणं वा, पाणाइं वा-जाव-सत्ताइं वा, समारंभ-जाव-अभिहडं आहट्टु चेतेति, आवसहं वा समुस्सिणाति।

तं च भिक्खू पडिलेहाए आगमेत्ता आणवेज्जा अणासेवणाए।

—आ. सु. १, अ. ८, उ. २, सु. २०४-२०५

(साधु के लिए किए गए) उस आरम्भ को वह भिक्षु अपनी सद्बुद्धि से, ज्ञानी या परिजनादि से सुनकर यह जान जाए कि यह गृहपति मेरे लिए अशन—**यावत्**—स्वाद्य, वस्त्र—**यावत्**—पादप्रोंछन, प्राणियों—**यावत्**—सत्वों का समारम्भ करके देता है—**यावत्**—सामने लाकर देता है तथा उपाश्रय बनवाता है।

भिक्षु उसकी सम्यक् प्रकार से पर्यालोचना करके, आगम में कथित आज्ञा को ध्यान में रखकर गृहस्थ से कहे कि "ये सब पदार्थ मेरे लिए सेवन करने योग्य नहीं हैं।"

सावज्ज-संजुत्त-आहार-गहणस्स णिसेहो—

६६२. जं पि य उद्दिट्ठ-ठविय-रचियाण-पज्जवजातं, पकिण्णं-पाउकरणं पामिच्चं, मीसकजायं, कीयकड-पाहुडं च, दाणट्ठ-पुण्णट्ठ-पगडं, समण-वणिमगट्ठयाए वा कयं, पच्छाकम्मं[1], पुरेकम्मं, नितिकम्मं, मक्खियं, अतिरित्तं मोहरं चेव सयग्गाहमाहडं, मट्टिउवलित्तं, अच्छेज्जं चेव अणिसिट्ठं, जं तं तिहीसु जन्नेसु उसवेसु य अंतो वा बहिं वा होज्ज समणट्ठयाए ठवियं, हिंसा-सावज्जसंपउत्तं न कप्पति तंपिय परिघेत्तुं।

—पण्ह. सु. २, अ. ४, सु. ५

सावद्य संयुक्त आहार ग्रहण करने का निषेध—

६६२. इसके अतिरिक्त जो आहार साधु के निमित्त बनाया हो, अलग रखा हो, पुनः अग्नि से संस्कारित किया हो, खाद्य पदार्थों को संयुक्त किया हो, साफ किया हो, पीसना आदि किया हो, मार्ग में बिखेरते हुए लाया हो, दीपक जलाया हो, उधार लाया हो, गृहस्थ और साधु के उद्देश्य से बनाया हो, खरीदा गया हो, सभय परिवर्तन कर बनाया हो, जो दान के लिए या पुण्य के लिए बनाया गया हो, श्रमणों अथवा भिखारियों को देने के लिए तैयार किया गया हो, जो पश्चात्कर्म अथवा पुराःकर्म दोष से दूषित हो, जो नित्यकर्म दूषित हो, (निमंत्रण पूर्वक सदा एक स्थान से लिया गया हो) जो जल से गीले हाथ आदि से दिया गया हो, मर्यादा से अधिक हो, पूर्व पश्चात् संस्तव दोष युक्त हो, स्वयं (साधु) को ग्रहण करना पड़ता हो, संमुख लाया गया हो, मिट्टी आदि से बन्द किये बर्तन का मुख खोलकर दिया हो, छीन कर दिया गया हो, स्वामी की आज्ञा बिना दिया हो अथवा जो आहार विशिष्ट तिथियों यज्ञों और महोत्सवों के लिए बना हो, घर के भीतर या बाहर साधुओं को देने की भावना से या इन्तजार के लिए रखा हो, जो हिंसा रूप सावद्य कर्म से युक्त हो, ऐसा भी आहार साधु को लेना नहीं कल्पता है।

जे नियागं ममायंति, कीयमुद्देसियाऽहडं।
वहं ते समणुजाणंति, इइ वुत्तं महेसिणा॥

—दस. अ. ६, गा. ४८

जो साधु-साध्वी नित्य आदरपूर्वक निमंत्रित कर दिया जाने वाला, साधु के निमित्त खरीदा हुआ, साधु के निमित्त बनाया हुआ, निर्ग्रन्थ के निमित्त दूर से सन्मुख लाया हुआ आहार ग्रहण करते हैं, वे प्राणियों के वध का अनुमोदन करते हैं ऐसा महर्षि महावीर ने कहा है।

आहारासत्ति णिसेहो—

६६३. न य भोयणम्मि गिद्धो, चरे उंछं अयंपिरो।
अफासुयं न भुंजेज्जा, कीयमुद्देसियाहडं॥

—उत्त. अ. ८, गा. २३

आहार की आसक्ति करने का निषेध —

६६३. भिक्षु भोजन में गृद्ध न होता हुआ व ज्यादा न बोलता हुआ अनेक घरों से थोड़ा-थोड़ा आहार ले तथा क्रीत, औद्देशिक और अभिहृत आदि दोष युक्त अकल्पनीय आहार न खाए।

---

१ (क) ....। दिज्जमाणं न इच्छेज्जा, पच्छाकम्मं जहिं भवे॥ —दस. अ. ५, उ. १, गा. ५०
(ख) दसा. द. २, सु. २।

सन्निहिकरण-णिसेहो—

६६४. सन्निहिं च न कुव्वेज्जा, अणुमायं पि संजए।
मुहाजीवी असंबद्धे, हवेज्ज जगनिस्सिए॥
—दस. अ. ८, गा. २४

संग्रह करने का निषेध—

६६४. संयमी अणुमात्र भी सन्निधि संग्रह न करे। वह सदैव मुधाजीवी = निस्पृह भाव से जीवन निर्वाह करने वाला रहे आहारादि में अलिप्त रहे तथा सब जीवों की रक्षा करने वाला होवे।

संखडी वज्जणं आहारगहण-विहाणं—

६६५. आइण्ण ओमाण विवज्जणा य, उस्सन्नदिट्ठाहड भत्तपाणे।
संसट्ठकप्पेण चरेज्ज भिक्खू, तज्जायसंसट्ठ जई जएज्जा॥
—दस. चू. २, गा. ६

संखडी निषेध और शुद्ध आहार का विधान—

६६५. "आकीर्ण और अवमान" नामक भोज का विवर्जन और समीप के दृष्ट स्थान से लाए हुए भक्त-पान के ग्रहण का विधान है। दाता जो वस्तु दे रहा है उसी से संसृष्ट हाथ और पात्र से यति भिक्षु लेने का यत्न करे।

दोसमुक्क आहार गहण तप्परिणामं च—

६६६. से भिक्खू जं पुण जाणेज्जा-असणं वा-जाव-साइमं अस्सिंपडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स, पाणाइं, भूयाइं, जीवाइं, सत्ताइं, समारंभ, समुद्दिस्स कीतं, पामिच्चं, अच्छेज्जं, अणिसट्ठं, अभिहडं आहट्टु उद्देसियचेतियं, सिया, तं णो सयं भुंजइ, णो अन्नेणं भुंजावेति, अन्नं पि भुंजंतं णं समणुजाणइ, इति से महता आदाणातो उवसंते उवट्ठिते पडिविरते से।
— सूय. सु. २, अ. १, सु. ६८७

दोष रहित आहार का ग्रहण और उसका परिणाम—

६६६. यदि भिक्षु यह जाने कि अशन—यावत्—स्वादिम अमुक श्रावक ने किसी एक निष्परिग्रही साधर्मिक साधु को दान देने के उद्देश्य से प्राणों, भूतों, जीवों और सत्वों का आरम्भ करके आहार बनाया है, अथवा खरीदा है, किसी से उधार लिया है, बलात् छीन कर लिया है, उसके स्वामी से पूछे बिना ही ले लिया है, अथवा साधु के सम्मुख लाया हुआ है तो ऐसा सदोष आहार न स्वयं खाये कदाचित भूल से ऐसा सदोष आहार ले लिया हो तो दूसरे साधुओं को भी वह आहार न खिलाए और न ऐसा सदोष आहार सेवन करने वाले को अच्छा समझे वह महान् कर्मों के बन्धन से दूर रहता है, वह शुद्ध संयम पालन में उद्यत और पाप कर्मों से विरत रहता है।

प०—फासुएसणिज्जं णं भंते! भुंजमाणे समणे निग्गंथे किं बंधइ? किं पकरेति? किं चिणाति? किं उवचिणाति?

उ०—गोयमा! फासुएसणिज्जं णं भुंजमाणे समणे णिग्गंथे आउयवज्जाओ सत्त कम्मपयडीओ घणियबंधणबद्धाओ सिढिलबंधणबद्धाओ पकरेइ,

दीहकालट्ठितीयाओ हस्सकालट्ठितीयाओ पकरेइ,
तिव्वाणुभागाओ मंदाणुभागाओ पकरेइ,
बहुपएसग्गाओ अप्पपएसग्गाओ पकरेइ,
आउयं च णं कम्मं सिय बंधइ, सिय नो बंधइ,
असायावेयणिज्जं च णं कम्मं नो भुज्जो, भुज्जो उवचिणाति,
अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं वीतीवयति।

प०—से केणट्ठेणं भंते एवं वुच्चइ—

फासुएसणिज्जं णं भुंजमाणे समणे निग्गंथे आउयवज्जाओ सत्तकम्म-पयडीओ घणियबंधणबद्धाओ सिढिलबंधणबद्धाओ पकरेइ-जाव-चाउरंतसंसारकंतारं वीतीवयति?

प्र०—हे भदन्त! प्रासुक एषणीय आहार का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ क्या करता है? क्या बाँधता है? क्या चय करता है? क्या उपचय करता है?

उ०—गौतम! प्रासुक एवं एषणीय आहार करने वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ आयु कर्म को छोड़कर शेष सात कर्म की प्रकृतियों को दृढ़ बंधन वाली से शिथिल बंधन वाली करता है।

दीर्घकाल स्थिति वाली से ह्रस्वकाल की स्थिति वाली करता है,
तीव्ररस वाली से मंद रस वाली करता है,
बहुप्रदेश वाली से अल्पप्रदेश वाली करता है,
आयु कर्म को कदाचित् बाँधता है, कदाचित् नहीं बाँधता है,
असातावेदनीय कर्म को बार-बार नहीं बाँधता है,

अनादि-अनन्त दीर्घ मार्ग वाले चातुर्गतिक संसार रूप अरण्य को पार करता है।

प्र०—हे भदन्त! किस प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है—

प्रासुक-एषणीय आहार का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की प्रकृतियों को दृढ़ बंधन वाली से शिथिल बंधन वाली करता है—यावत्—संसार रूप अरण्य को पार करता है।

उ०—गोयमा ! फासुएसणिज्जं भुंजमाणे समणे निग्गंथे आयाए धम्मं नाइक्कमति, आयाए धम्मं अणतिक्कममाणे पुढविकायं अवकंखति-जाव-तसकायं अवकंखति, जे सिं पि य णं जीवाणं सरीराइं आहारेति ते वि जीवे अवकंखति।

से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—

"फासुएसणिज्जं णं भुंजमाणे समणे निग्गंथे आउयवज्जाओ सत्तकम्मपयडीओ-घणियबंधणबद्धाओ पकरेइ -जाव-चाउरंतं संसारकंतारं वीतीवयति।"

—वि. सु. १, उ. ६, सु. २७

उ० —गौतम ! प्रासुक एषणीय आहार को सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ आत्मधर्म का अतिक्रमण नहीं करता है, आत्मधर्म का अतिक्रमण न करता हुआ वह श्रमण निर्ग्रन्थ पृथ्वीकाय के जीवों की चिन्ता करता है—**यावत्**—त्रसकाय के जीवों की चिन्ता करता है, जिन जीवों के शरीर का उपभोग करता है, उनका भी जीवन चाहता है।

इस कारण से गौतम ! ऐसा कहा जाता है—

"प्रासुक एवं एषणीय आहार का सेवन करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ आयु कर्म को छोड़कर शेष सात कर्म की प्रकृतियों को दृढ़ बन्धन वाली से शिथिल बन्धन वाली करता है—**यावत्**—चातुर्गतिक रूप संसार अरण्य को पार करता है।"

णिद्दोष आहार गवेसगस्स दायगस्स य सुगई—

९९७. दुल्लहा उ मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा।
मुहादाई मुहाजीवी,[1] दो वि गच्छंति सोग्गइं॥

—दस. अ. ५, उ. १, गा. १३१

निर्दोष आहार गवेषक को और देने वाले की सुगति—

९९७. मुधादायी दुर्लभ है और मुधाजीवी भी दुर्लभ है।
मुधादायी और मुधाजीवी दोनों सुगति को प्राप्त होते है।

परिभोगैषणा—६

आहार करणस्स उद्देसं—

९९८. विविच्च कम्मुणो हेउं, कालकंखी परिव्वए।
मायं पिंडस्स पाणस्स कडं लद्धूण भक्खए॥

—उत्त. अ. ६, गा. १४

आहार करने का उद्देश्य—

९९८. कर्मबन्ध के हेतुओं को दूर करके समयज्ञ होकर विचरे। संयमी जीवन के लिए गृहस्थ के घर में सहज निष्पन्न आहार पानी की जितनी मात्रा आवश्यक हो उतनी प्राप्त करके सेवन करे।

आहार परिभोगणट्ठाए ठाण णिद्देसो—

९९९. अप्पपाणेऽप्पबीयंमि, पडिच्छन्नंमि संवुडे।
समयं संजए भुंजे, जयं अपरिसाडियं॥

— उत्त. अ. १, गा. ३५

आहार करने के स्थान का निर्देश -

९९९. संयमी मुनि प्राणी और बीज रहित, ऊपर से ढके हुए और चारों तरफ भित्ति आदि से घिरे हुए स्थान में अपने सहधर्मी मुनियों के साथ भूमि पर न गिराता हुआ यतनापूर्वक आहार करे।

गोयरग्ग-पविट्ठ-भिक्खुस्स-आहार करण विहि—

१०००. सिया य गोयरग्गगओ, इच्छेज्जा परिभोत्तुयं।
कोट्ठगं भित्तिमूलं वा, पडिलेहित्ताण फासुयं॥
अणुन्नवेत्तु मेहावी, पडिच्छन्नम्मि संवुडे।
हत्थगं संपमज्जित्ता[2] तत्थ भुंजेज्ज संजए॥

गोचरी में प्रविष्ट भिक्षु के आहार करने की विधि—

१०००. गोचरी के लिए गया हुआ मेधावी मुनि कदाचित आहार करना चाहे तो प्रासुक गृह या दिवाल के पास प्रतिलेखन कर उसके स्वामी की अनुज्ञा लेकर, छाये हुए एवं संवृत स्थान में बैठे और हाथ का प्रमार्जन करके उपयोग पूर्वक आहार करे।

---

१ निस्वार्थ भाव से देने वाला मुहादाई कहा जाता है। निस्पृह भाव से लेने वाला मुहाजीवी कहा जाता है।

२ "हत्थगं संपमज्जित्ता" का प्रसंगसंगत अर्थ है -हाथ का प्रमार्जन करके आहार करे। आहार हाथ से किया जाता है इसलिए हाथ का प्रमार्जन करना उचित होने के साथ-साथ आगमसम्मत भी है। क्योंकि प्रश्नव्याकरण प्रथम संवरद्वार चौथी भावना

(शेष टिप्पण अगले पृष्ठ पर)

तत्थ से भुंजमाणस्स, अट्ठियं कंटओ सिया।
तण कट्ठ-सक्करं वा वि, अन्नं वा वि तहाविहं ॥
तं उक्खिवित्तु न निक्खिवे आसएण न छड्डए।
हत्थेण तं गहेऊण, एगंतमवक्कमे ॥
एगंतमवक्कमित्ता, अचित्तं पडिलेहिया।
जयं परिट्ठवेज्जा, परिट्ठप्प पडिक्कमे ॥
—दस. अ ५, उ. १, गा. ११३-११७

वहाँ भोजन करते हुए मुनि के आहार में गुठली, काँटा, तिनका, काठ का टुकड़ा, कंकड़ या इसी प्रकार की कोई दूसरी वस्तु निकले तो उसे उठाकर न फेंके, मुंह से न थूंके, किन्तु हाथ में लेकर एकान्त में जाकर अचित्त भूमि को देखकर, यतनापूर्वक उसे रख दे और बाद में स्थान में आकर प्रतिक्रमण करे।

सेज्जामागम्म आहार करणस्स विहि —

उपाश्रय में आकर आहार करने की विधि—

*१. सिया य भिक्खू इच्छेज्जा, सेज्जमागम्म भोत्तुयं।
सपिंडपायमागम्म, उडुयं पडिलेहिया ॥
विणएण पविसित्ता, सगासे गुरुणो मुणी।
इरियावहियमायाय, आगओ य पडिक्कमे ॥
आभोएत्ताण नीसेसं, अइयारं जहक्कमं।
गमणागमणे चेव, भत्त-पाणे व संजए ॥
उज्जुप्पन्नो अणुव्विग्गो, अव्वक्खित्तेण चेयसा।
आलोए गुरुसगासे, जं जहा गहियं भवे ॥

न सम्ममालोइयं होज्जा, पुव्विं पच्छा व जं कडं।
पुणो पडिक्कमे तस्स, वोसट्ठो चिंतए इमं ॥

अहो जिणेहिं असावज्जा, वित्ती साहूण देसिया।
मोक्खसाहणहेउस्स, साहुदेहस्स धारणा ॥

नमोक्कारेण पारेत्ता, करेत्ता जिणसंथवं।
सज्झायं पट्ठवेत्ताणं, वीसमेज्ज खणं मुणी ॥

वीसमंतो इमं चिंते हियमट्ठं लाभमट्ठिओ।
"जइ मे अणुग्गहं कुज्जा साहू, होज्जामि तारिओ ॥"

साहवो तो चियत्तेणं, निमंतेज्ज जहक्कमं।
जइ तत्थ केइ इच्छेज्जा, तेहिं सद्धिं तु भुंजए ॥[1]

१. कदाचित् भिक्षु उपाश्रय में आकर भोजन करना चाहे तो भिक्षा सहित वहाँ आकर स्थान की प्रतिलेखना करे।

उसके पश्चात् मुनि विनयपूर्वक गुरु के समीप उपस्थित होकर "ईर्यापथिकी सूत्र" को पढ़कर प्रतिक्रमण (कायोत्सर्ग) करे।

आने-जाने में और भक्त-पान लेने में लगे समस्त अतिचारों को यथाक्रम से याद करे।

सरल, बुद्धिमान और उद्वेग रहित मुनि एकाग्रचित्त से जिस प्रकार भिक्षा ग्रहण की हो वैसे ही गुरु के समीप आलोचना करे।

पूर्व कर्म, पश्चात् कर्म आदि अतिचारों की यदि सम्यक् प्रकार से आलोचना न हुई हो तो उसका फिर प्रतिक्रमण करे तथा कायोत्सर्ग करके यह चिन्तन करे—

"अहो ! जिनेन्द्र भगवंतों ने मोक्ष-साधना के हेतु-भूत शरीर को धारण करने के लिए साधुओं को निरवद्य (भिक्षा) वृत्ति का उपदेश दिया है।"

(इस चिन्तनमय कायोत्सर्ग को) नमस्कार मन्त्र के द्वारा पूर्ण कर चतुर्विंशतिस्तव (लोगस्स) का पाठ बोले, फिर स्वाध्याय करे, उसके बाद, कुछ विश्राम ले।

विश्राम करता हुआ लाभार्थी मुनि अपने हित के लिए इस प्रकार चिन्तन करे कि— "यदि कोई साधु मुझ पर अनुग्रह करे तो मैं तिर जाऊँ।"

वह प्रेम पूर्वक साधुओं को यथाक्रम से निमन्त्रण दे। उन निमन्त्रित साधुओं में से यदि कोई साधु भोजन करना चाहे तो उनके साथ आहार करे।

(शेष पिछले पृष्ठ का)

में "संपमज्जिऊण ससीसं कायं तहा करतलं" ऐसा पाठ है। इसमें भी करतल का स्पष्ट कथन है। दशवैकालिक की अगस्त्यसिंह कृत चूर्णी में भी "ससीसोवरियं हत्थं तं" सूचित करके प्रश्नव्याकरण के पाठ का ही अनुसरण किया है।

अतः यहाँ "मुखवस्त्रिका से शरीर का प्रमार्जन करके आहार करना" ऐसे अर्थ की कल्पना करना प्रश्नव्याकरण सूत्र के मूल पाठ से विपरीत है अतः उचित नहीं कहा जा सकता। प्रमार्जन के लिये प्रमार्जनिका (गोच्छग) व रजोहरण ये दो उपकरण हैं। मुखवस्त्रिका नहीं है।

* यहाँ से सूत्र संख्या १००१ क्रमानुसार समझें। प्रेस की सुविधा के कारण १००० सूत्र के बाद १ क्रमांक दिया है।—सम्पादक

१ दस. अ. १०, गा. ६।

अह कोई न इच्छेज्जा, तओ भुंजेज्जा एक्कओ।
आलोए भायणे साहू, जयं अपरिसाडियं॥

यदि कोई भी साधु साथ में बैठकर आहार न करना चाहे तो अकेला ही यतनापूर्वक नीचे नहीं गिराता हुआ चौड़े मुख वाले पात्र में आहार करे।

तित्तगं व कडुयं व कसायं, अंबिलं व महुरं लवणं वा।
एय लद्धमन्नट्ठ-पउत्तं, महुघयं व भुंजेज्ज संजए॥

गृहस्थ के लिए बना हुआ तीखा, कडुवा, कसैला, खट्टा, मीठा या खारा जो भी आहार उपलब्ध हो उसे संयमी मुनि मधुघृत की भाँति खाये।

अरसं विरसं वा वि, सूइयं वा असूइयं।
उल्लं वा जइ वा सुक्कं, मन्थु कुम्मासभोयणं॥
उप्पण्णं नाइ हीलेज्जा, अप्पं वा बहु फासुयं।
मुहालद्धं मुहाजीवी, भुंजेज्जा दोसवज्जियं॥
—दस. अ ५, गा. ११८-१३०

मुधाजीवी मुनि मुधालब्ध अरस या विरस, व्यंजन सहित या व्यंजन रहित, आर्द्र या शुष्क, मन्थु और कुल्माष इत्यादि प्राप्त आहार की निन्दा न करे, वह आहार अल्प हो या पूर्ण हो दोषों का वर्जन करता हुआ खावे।

मुणी मायण्णो हवेज्ज—

२. लद्धे आहारे अणगारो मायं जाणेज्जा। से जहेयं भगवता पवेदितं। —आ. सु. १, अ. २, उ. ५, सु. ८६ (ख)

मुनि आहार की मात्रा का ज्ञाता हो—

२. आहार प्राप्त होने पर अनगार को उसकी मात्रा का ज्ञान होना चाहिए। जिसका कि भगवान् ने निर्देश किया है।

सलेव असेस आहार करण णिद्देसो—

३. पडिग्गहं संलिहित्ताणं, लेव-मायाए संजए।
दुगंधं वा सुगंधं वा, सव्वं भुंजे न छड्डए॥
—दस. अ. ५, उ. २, गा. १

लेप सहित पूर्ण आहार करने का निर्देश—

३. संयमी मुनि पात्र के लगे लेप मात्र को भी पोंछकर सब खा ले, शेष न छोड़े, भले फिर वह मन से प्रतिकूल हो या अनुकूल।

रसगिद्धिणिसेहो—

४. अलोले न रसे गिद्धे, जिब्भादन्ते अमुच्छिए।
न रसट्ठाए भुंजिज्जा, जवणट्ठाए महामुणी॥
—उत्त. अ. ३५, गा. १७

रसगृद्धि का निषेध—

४. अलोलुप, रस में अगृद्ध, जीभ का दमन करने वाला और अमूर्च्छित महामुनि रस (स्वाद) के लिए न खाये, किन्तु जीवन निर्वाह के लिए खाये।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा असणं वा-जाव-साइमं वा आहारेमाणे-णो वामातो हणुयातो, दाहिणं हणुयं संचारेज्जा आसाएमाणे, दाहिणातो वा हणुयातो वामं हणुयं णो संचारेज्जा आसाएमाणे।

भिक्षु या भिक्षुणी अशन—यावत्—स्वाद्य का आहार करते समय स्वाद लेते हुए बांए जबड़े से दाहिने जबड़े में न ले जाये और स्वाद लेते हुए दाहिने जबड़े से बांये जबड़े में न ले जाये।

से अणासादमाणे लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमण्णागते भवति।

वह अनास्वाद वृत्ति से लाघवता को प्राप्त होते हुए तप का सहज लाभ प्राप्त कर लेता है।

जहेयं भगवया पवेदितं तमेव अभिसमेच्चा सव्वतो सव्वयाए सम्मत्तमेव समभिजाणिज्जा।
—आ. सु. १, अ ८, उ. ६, सु. २२३

भगवान् ने जिस रूप में अस्वाद वृत्ति का प्रतिपादन किया है, उसे उसी रूप में जानकर सभी प्रकार से सर्वात्मना भली भाँति आचरण करे।

आगंतुगसमण णिमंतणविही—

५. से आगंतारेसु वा-जाव-परियावसहेसु वा अणुवीइ जाएज्जा, जे तत्थ ईसरे, जे तत्थ समहिट्ठाए ते उग्गहं अणुण्णवेज्जा—

"कामं खलु आउसो! अहालंदं अहापरिण्णायं वसामो-जाव-आउसो-जाव-आउसंतस्स उग्गहे-जाव-साहम्मिया एत्ताव ताव उग्गहं ओगिण्हिस्सामो, तेण परं विहरिस्सामो।

आगंतुक श्रमणों को निमन्त्रित करने की विधि—

५. साधु पथिकशालाओं—यावत्—परिव्राजकों के आवासों में उस स्थान के स्वामी की या संरक्षक की आज्ञा प्राप्त करे।

"हे आयुष्मन्! आप जितने स्थान में जितने समय तक ठहरने की आज्ञा देंगे हम और हमारे आने वाले स्वधर्मी उतने ही स्थान में उतने ही समय तक ठहरेंगे बाद में विहार कर देंगे।"

से किं पुण तत्थोग्गहंसि एवोग्गहियंसि ?

अवग्रह से अनुज्ञापूर्वक ग्रहण कर लेने पर फिर वह साधु क्या करे ?

जे तत्थ साहम्मिया संभोइया समणुण्णा उवागच्छेज्जा । जे तेण सयमेसिए असणे वा-जाव-साइमे वा तेण ते साहम्मिया संभोइया समणुण्णा उवणिमंतेज्जा ।

वहाँ (निवासित साधु के पास) कोई साधर्मिक, साम्भोगिक एवं समनोज्ञ साधु अतिथि के रूप में आ जाये तो वह साधु स्वयं अपने द्वारा गवेषणा करके लाये हुए अशन—यावत्—स्वाद्य आहार को उन साधर्मिक साम्भोगिक एवं समनोज्ञ साधुओं को उपनिमन्त्रित करे ।

नो चेव णं परिपडियाए ओगिज्झिय-ओगिज्झिय उवणिमंतेज्जा । —आ. सु. २, अ. ७, उ. १, सु. ६०८-६०९

किन्तु अन्य साधु द्वारा या अन्य रुग्णादि साधु के लिए लाये हुए आहारादि को लेकर उन्हें निमन्त्रित न करे ।

विगईभोई भिक्खु—

विगयभोक्ता भिक्षु—

६. दुद्धदहीविगईओ, आहारेइ अभिक्खणं ।
अरए य तवोकम्मे, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥
—उत्त. अ. १७, गा. १५

६. जो दूध, दही आदि विकृतियों (विगयों) का बार-बार आहार करता है और तपस्या में रत नहीं रहता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है ।

आयरिय-अदत्त-विगई-भुंजमाणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

आचार्य के दिये बिना विकृति भक्षण का प्रायश्चित्त सूत्र—

७. जे भिक्खू आयरिय-उवज्झाएहिं अविदिण्णं विगइं आहारेइ, आहारेंतं वा साइज्जइ ।
तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।
—नि. उ. ४, सु. २१

७. जो भिक्षु आचार्य, उपाध्याय के दिये बिना विगई का आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

पुणो भिक्खट्ठा गमण विहाणो—

पुनः भिक्षार्थ जाने का विधान—

८. सेज्जा निसीहियाए समावन्नो य गोयरे ।
अयावयट्ठा भोच्चा णं, जइ तेणं न संथरे ॥
तओ कारणमुप्पन्ने, भत्तपाणं गवेसए ।
विहिणा पुव्व-उत्तेण, इमेणं उत्तरेण य ॥
—दस. अ. ५, उ. २, गा. २-३

८. मुनि उपाश्रय में या अन्य बैठने के स्थान में बैठकर गोचरी से प्राप्त आहार खाने पर भी उदरपूर्ति न होने पर अथवा अन्य कारण उत्पन्न होने पर पूर्वोक्त विधि से या आगे कही जाने वाली विधि से पुनः आहार पानी की गवेषणा करे ।

पुलागभत्ते पडिग्गाहिए भिक्खा-गमण विहि-णिसेहो—

पुलाक भक्त ग्रहण हो जाने पर गोचरी जाने का विधि निषेध—

९. निग्गंथीए य गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए अणुपविट्ठाए अन्नयरे पुलागभत्ते[1] पडिग्गाहिए सिया,

सा य संथरेज्जा, कप्पइ से तद्दिवसं तेणेव भत्तट्ठेणं पज्जोसवित्तए, नो से कप्पइ दोच्चं पि गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए पविसित्तए,

९. निर्ग्रन्थी आहार के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करे और वहाँ यदि पुलाक भक्त (अत्यन्त सरस आहार) ग्रहण हो जाये ।

यदि उस गृहीत आहार से निर्वाह हो जाये तो उस दिन उसी आहार से रहे (निर्वाह करे) किन्तु दूसरी बार आहार के लिए गृहस्थ के घर में न जावे ।

---

१ पुलाक भत्तं :—
तिविहं होइ पुलागं, धण्णे गंधे य रसपुलाए य । .... ॥ ६०४८ ॥
निप्फावाई धन्ना, गंधे सादगं पलंडु लसुणाई । खीरं तु रस पुलाओ, चिंचिणि दक्खारसाईया ॥ ६०४९ ॥
आदि शब्दात् अपरमपि यद् भुक्त अतिसारयति तत् सर्वमपि रस पुलाकम् ।
उपरोक्त सूत्र में रस पुलाक की अपेक्षा से अर्थ समझना चाहिए ।

सा य नो संथरेज्जा, एवं से कप्पइ दोच्चं पि गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए पविसित्तए । —कप्प. उ. ५, सु. ५२

यदि उस गृहीत आहार से निर्वाह न हो सके तो दूसरी बार आहार के लिए जाना कल्पता है ।

साहारण आहारस्स अणुण्णविय परिभायण विहि—

साधारण आहार को आज्ञा लेकर बाँटने की विधि—

१०. से एगतिओ साहारणं वा पिंडवातं पडिगाहेत्ता से साहम्मिए अणापुच्छित्ता जस्स जस्स इच्छइ तस्स तस्स खद्धं दलाति । मातिट्ठाणं संफासे । णो एवं करेज्जा ।

१०. कोई एक भिक्षु सार्धमिक साधुओं के लिए सम्मिलित आहार लेकर आता है और उन सार्धमिक साधुओं से बिना पूछे ही जिस जिस को देना चाहता है, उसे अच्छा अच्छा (अनुकूल) आहार देता है, तो वह माया स्थान का स्पर्श करता है । उसे ऐसा नहीं करना चाहिए ।

से तमायाए तत्थ गच्छेज्जा गच्छित्ता पुव्वामेव एवं वदेज्जा—

उस साधारण आहार को लेकर स्थान पर जावे, वहाँ सार्धमिकों को पहले ही पूछे कि—

प०- "आउसंतो समणा ! संति मम पुरेसंथुया वा पच्छासंथुया वा, तं जहा—आयरिए वा, उवज्झाए वा, पवत्ती वा, थेरे वा, गणी वा, गणधरे वा, गणावच्छेए वा, अवियाइं एतेसिं खद्धं खद्धं दाहामि ?" से णेवं वदंतं परो वदेज्जा—

प्र०—"आयुष्मान् श्रमणो ! यहाँ मेरे पूर्व परिचित (जिनसे दीक्षा अंगीकार की है) तथा पश्चात्-परिचित (जिनसे श्रुताभ्यास किया है) जैसे कि आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी, गणधर या गणावच्छेदक हैं। क्या मैं इन्हें पर्याप्त (अनुकूल) आहार दूं ?" उसके इस प्रकार कहने पर यदि वे कहें—

उ०—"कामं खलु आउसो ! अहापज्जत्तं निसिराहि जावइयं जावइयं परो वदेज्जा तावइयं तावइयं णिसिरेज्जा । सव्वमेतं परो वदेज्जा सव्वमेयं णिसिरेज्जा । —आ. सु. २, अ. १, उ. १०, सु. ३९९

उ०—"आयुष्मान् श्रमण ! तुम अपनी इच्छानुसार इन्हें अनुकूल आहार दे दो ।" ऐसी स्थिति में जितना-जितना वे कहें, उतना-उतना आहार उन्हें दे दे । यदि वे कहें कि (अमुक) सारा अनुकूल आहार दे दो तो सारा का सारा दे दे ।

समण माहणाईणं अट्ठाए गहिय आहारस्स परिभायण भुंजण विहि—

श्रमण ब्राह्मण आदि के लिये गृहीत आहार के बांटने खाने की विधि—

११. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा-समणं वा, माहणं वा, गामपिंडोलगं वा, अतिहिं वा, पुव्वपविट्ठं पेहाए णो तेसिं संलोए सपडिदुवारे चिट्ठेज्जा ।

११. भिक्षु या भिक्षुणी भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करते समय यदि यह जाने की श्रमण, ब्राह्मण, ग्राम पिण्डोलक (ग्राम्य भिक्षोपजीवी) और अनियत तिथि मे भिक्षा ग्रहण करने वाले पहले से ही प्रवेश किये हुए हैं, तो उन्हें देखकर उनके दृष्टि पथ में या उनके मार्ग में खड़ा न होवे ।

केवली बूया - आयाणमेयं ।

केवली भगवान् ने कहा है—यह कर्मबन्ध का कारण है ।

पुरा पेहाए तस्सट्ठाए परो असणं वा-जाव-साइमं वा आहट्टु दलएज्जा ।

सामने खड़ा देखकर गृहस्थ उस साधु के लिए अशन —यावत्—स्वाद्य वहाँ लाकर देगा ।

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा एस पतिण्णा-जाव-एस उवएसे जं णो तेसिं संलोए सपडिदुवारे चिट्ठेज्जा ।

अतः भिक्षुओं के लिए पहले से यह प्रतिज्ञा यावत् - उपदेश है कि भिक्षु उनके दृष्टि पथ में या मार्ग में खड़ा न होवे ।

से तमादाए एगंतमवक्कमेज्जा, एगंतमवक्कमित्ता अणावायमसंलोए चिट्ठेज्जा,

किन्तु एकान्त स्थान में चला जाये, वहां जाकर कोई आता-जाता न हो और देखता न हो, इस प्रकार से खड़ा रहे ।

से परो अणावातमसंलोए चिट्ठमाणस्स असणं वा-जाव-साइमं वा आहट्टु दलएज्जा, से सेवं वदेज्जा—

भिक्षु को अनापात और असंलोक स्थान मे खड़ा देखकर गृहस्थ अशन—यावत्- स्वाद्य लाकर दे, साथ ही वह यों कहे—

"आउसंतो समणा ! इमे मे असणं वा-जाव-साइमे वा सव्व-जणाए णिसट्ठे, तं भुंजह व णं, परिभाएह व णं।"

"आयुष्मान् श्रमण ! यह अशन—यावत्—स्वाद्य आहार मैं आप सब जनों के लिए दे रहा हूँ। आप इस आहार का उपभोग करें या परस्पर बांट लें।"

तं चेगतिओ पडिगाहेत्ता, तुसिणीओ उवेहेज्जा-अवियाइं "एयं ममामेव सिया" माइट्ठाणं संफासे। णो एवं करेज्जा।

इस पर यदि कोई साधु उस आहार को चुपचाप लेकर यह विचार करे कि "यह आहार मुझे दिया है, इसलिए मेरा ही है" ऐसा सोचना मायास्थान का सेवन करना है। भिक्षु को ऐसा नहीं करना चाहिए।

से त्तमायाए तत्थ गच्छेज्जा, गच्छित्ता से पुव्वामेव आलो-एज्जा—

"आउसंतो समणा ! इमे मे असणे वा-जाव-साइमे वा सव्वजणाए णिसट्ठे, तं भुंजह व णं परिभाएह व णं।"

साधु उस आहार को लेकर श्रमण आदि के पास जाये और वहाँ जाकर पहले से ही उन्हें कहे

"हे आयुष्मान् श्रमणों ! यह अशन—यावत्—स्वाद्य गृहस्थ ने हम सबके लिए दिया है, अतः इसका उपभोग करें या विभाजन कर लें ?"

से णं मेवं वदंतं परो वदेज्जा—"आउसंतो समणा ! तुमं चेव णं परिभाएहि।"

साधु के ऐसा कहने पर वे अन्य भिक्षु उसे कहें कि—"आयुष्मान् श्रमण ! आप ही बांट दें"।

से तत्थ परिभाएमाणे णो अप्पणो खद्धं खद्धं डायं डायं,उसढं उसढं, रसियं-रसियं, मणुण्णं-मणुण्णं, णिद्धं-णिद्धं, लुक्खं-लुक्खं। से तत्थ अमुच्छिए, अगिद्धे, अगढिए, अणज्झोववण्णे बहुसममेव परिभाएज्जा।

तो उस आहार का विभाजन करता हुआ वह साधु अपने लिए अनुकूल, अच्छा, बहुमूल्य, स्वादिष्ट, मनोज्ञ, स्निग्ध व रूक्ष आहार अलग न रखे किन्तु उस आहार में अमूर्च्छित, अगृद्ध, निरपेक्ष एवं अनासक्त होकर सबके लिए समान विभाग करे।

से णं परिभाएमाणं परोवदेज्जा—"आउसंतो समणा ! मा णं तुमं परिभाएहि, सव्वे वेगतिया भोक्खामो वा पाहामो वा।"

यदि विभाग करते समय श्रमणादि कहें—"हे आयुष्मन् श्रमण ! आप विभाजन न करें। आप और हम एकत्रित होकर यह आहार खा पी लें।

से तत्थ भुंजमाणे णो अप्पणो खद्धं खद्धं-जाव-अमुच्छिए -जाव-अणज्झोववण्णे बहुसममेव भुंजेज्ज वा पाएज्ज वा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ५, सु. ३५७ (क)

तब वह साधु उनके साथ आहार करता हुआ सरस-सरस स्वयं न खावे—यावत्—अमूर्च्छित—यावत्—अनासक्त भाव से समान ही खावे या पीवे।

थविर संजुत्त गहिय पिंड उवभोग-परिठावणविही य—

स्थविरों के लिए संयुक्त गृहीत आहार के परिभोग और परठने की विधि—

१२. निग्गंथं च णं गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठं केइ दोहिं पिंडेहिं उवनिमंतेज्जा—

१२. (गृहस्थ के घर में आहार ग्रहण करने के लिए) प्रविष्ट निर्ग्रन्थ को कोई दो पिण्ड (खाद्य पदार्थ) ग्रहण करने के लिए उपनिमन्त्रण करे—

"एगं आउसो ! अप्पणा भुंजाहि, एगं थेराणं दलयाहि, से य तं पिंडं पडिग्गाहेज्जा, थेरा य से अणुगवेसियव्वा सिया, जत्थेव अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा तत्थेवऽणुप्पदायव्वे सिया नो चेव णं अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा तं नो अप्पणा भुंजेज्जा, नो अन्नेसिं दावए, एगंते अणावाए अचित्ते बहु-फासुए थंडिले पडिलेहेत्ता, पमज्जित्ता परिट्ठावेयव्वे सिया।

"आयुष्मन् श्रमण ! एक पिण्ड आप स्वयं खाना और दूसरा पिण्ड स्थविर मुनियों को देना।" निर्ग्रन्थ उन दोनों पिण्डों को ग्रहण कर ले और स्थविरों की गवेषणा करे, गवेषणा करने पर उन स्थविर मुनियों को जहाँ देखे, वहीं वह पिण्ड उन्हें दे दे। यदि गवेषणा करने पर भी स्थविर मुनि कहीं न दिखाई दे तो वह पिण्ड न खाये और न ही किसी दूसरे श्रमण को दे, किन्तु एकान्त, अनापात (जहाँ आवागमन न हो) अचित्त और प्रासुक स्थण्डिल भूमि का प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके परठ दे।

निग्गंथं च णं गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठं केइ तिहिं पिंडेहिं उवनिमंतेज्जा—

गृहस्थ के घर में आहार ग्रहण करने के विचार से प्रविष्ट निर्ग्रन्थ को कोई तीन पिण्ड ग्रहण करने के लिए उपनिमन्त्रण करे—

"एगं आउसो ! अप्पणा भुंजाहि, दो थेराणं दलयाहि", से य ते पडिग्गाहेज्जा, थेरा य से अणुगवेसेयव्वा सेसं तं चेव -जाव-परिट्ठावेयव्वे सिया ।

"आयुष्मन् श्रमण ! एक पिण्ड आप स्वयं खाना और दो पिण्ड श्रमणों को देना।" निर्ग्रन्थ उन तीनों पिण्डों को ग्रहण कर ले और स्थविरों की गवेषणा करे। शेष वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए,—**यावत्**—परठ दे ।

एवं-जाव-दसहिं पिंडेहिं उवनिमंतेज्जा, एगं आउसो ! अप्पणा भुंजाहि, नव थेराणं दलयाहि सेसं तं चेव-जाव-परिट्ठावेयव्वे सिया । — वि. स. ८, उ. ६, सु. ४

इसी प्रकार—**यावत्**—दस पिण्डों को ग्रहण करने के लिए कोई गृहस्थ उपनिमन्त्रण दे—"आयुष्मन् श्रमण ! इनमें से एक पिण्ड आप स्वयं खाना और शेष नौ पिण्ड स्थविरों को देना" इत्यादि शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए—**यावत्**—परठ दे।

बहुपरियावण्ण-आहारस्स विही—

१३. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा बहुपरियावण्णं भोयणजायं पडिगाहेत्ता साहम्मिया तत्थ वसंति संभोइया समणुण्णा अपरिहारिया अदूरगया । तेसिं अणालोइया अणामंतिया परिट्ठवेति । माइट्ठाणं संफासे । णो एवं करेज्जा ।

से त्तमायाए तत्थ गच्छेज्जा गच्छित्ता से पुव्वामेव आलोएज्जा —

"आउसंतो समणा ! इमे मे असणे वा-जाव-साइमे वा बहुपरियावण्णे तं भुंजह व णं, परिभाएह व णं, से सेवं वदंतं परोवएज्जा—

"आउसंतो समणा ! आहारमेतं असणं वा-जाव-साइमं वा जावतियं जावतियं परिसडइ तावतियं तावतियं भोक्खामो वा पाहामो वा । सव्वमेयं परिसडति सव्वमेयं भोक्खामो वा पाहामो वा । — आ. सु. २, अ. १, उ. ९, सु. ३९९

बढ़े हुए आहार सम्बन्धी विधि—

१३. भिक्षु या भिक्षुणी खाने के बाद बचे हुए अधिक आहार को लेकर साधर्मिक, सांभोगिक, समनोज्ञ तथा अपारिहारिक साधु साध्वी जो कि निकटवर्ती रहते हों, उन्हें दिखाए बिना एवं निमन्त्रित किये बिना जो उस आहार को परठ दे, वे मायास्थान का स्पर्श करते है उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए।

साधु बचे हुए आहार को लेकर उन साधुओं के पास जावे। वहाँ जाकर इस प्रकार कहे -

"आयुष्मन् श्रमणो ! यह अशन—**यावत्**—स्वाद्य आहार हमारे बढ़ गया है अतः इसका उपभोग करें और अन्यान्य भिक्षुओं को वितरित कर दें। इस प्रकार कहने पर कोई भिक्षु यों कहे कि—

"आयुष्मन् श्रमण ! यह अशन—**यावत्**—स्वाद्य लाओ हमें दो इसमें से जितना खा पी सकेंगे उतना खा पी लेंगे अगर सारा का सारा उपभोग कर सकेंगे तो सारा खा पी लेंगे।"

संभोइयाणं अणिमंतिय परिट्ठवंतस्स पायच्छित्त सुत्तं—

१४. जे भिक्खू मणुण्णं भोयणजायं पडिग्गाहित्ता बहुपरियावन्नं सिया अदूरे तत्थ साहम्मिया, संभोइया, समणुन्ना, अपरिहारिया संता परिवसंति ते अणापुच्छिय अनिमंतिय परिट्ठवेई, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं । —नि. उ. २, सु. ४५

साम्भोगिकों को निमन्त्रित किये बिना परठने का प्रायश्चित्त सूत्र—

१४. जो भिक्षु मनोज्ञ आहार ग्रहण करके खाने के बाद बचे हुए को वहाँ समीप में साधर्मिक, सांभोगिक, समनोज्ञ, अपारिहारिक भिक्षुक हों, उन्हें पूछे बिना, निमन्त्रण दिये बिना परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

गहियआहारे मायाकरण-णिसेहो—

१५. से एगइओ मणुण्णं भोयणजातं पडिगाहेत्ता पंतेण भोयणेण पलिच्छाएति 'मामेतं दाइयं संतं दट्ठूणं सयमादिए, तं (जहा) आयरिए वा-जाव-गणावच्छेइए वा। णो खलु मे कस्सइ किंचि वि दातव्वं सिया।" माइट्ठाणं संफासे। णो एवं करेज्जा।

गृहीत आहार में माया करने का निषेध —

१५. कोई एक भिक्षु सरस स्वादिष्ट आहार प्राप्त करके उसे नीरस तुच्छ आहार से ढक कर छिपा देता है, इस भावना से कि "आचार्य—**यावत्**—गणावच्छेदक मेरे इस आहार को दिखाने पर स्वयं ही लेंगे। किन्तु मुझे इसमें से किसी को कुछ भी नहीं देना है।" ऐसा करने वाला साधु—मायास्थान का स्पर्श करता है। साधु को ऐसा छल-कपट नहीं करना चाहिए।

से तमायाए तत्थ गच्छेज्जा, गच्छित्ता पुव्वामेव उत्ताणए हत्थे पडिग्गहं कट्टु 'इमं खलु इमं खलु' त्ति आलोएज्जा। णो किंचि वि णिगूहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. १०, सु. ४००

वह साधु उस आहार को लेकर आचार्य के पास जाये और वहाँ जाकर पहले से ही पात्र को करतल में लेकर "यह अमुक वस्तु है, यह अमुक वस्तु है" इस प्रकार एक-एक पदार्थ उन्हें बता दे। किन्तु कोई भी पदार्थ न छिपाये।

आहार उवभोगे मायाकरण णिसेहो—

१६. सिया एगइओ लद्धुं, विविहं पाण भोयणं।
भद्दगं भद्दगं भोच्चा, विवण्णं विरसमाहरे॥[1]

जाणंतु ता इमे समणा, आययट्ठी अयं मुणी।
संतुट्ठो सेवई पंतं लूहवित्ती सुतोसओ॥

पूयणट्ठा जसोकामी, माणसम्माणकामए।
बहुं पसवई पावं, मायासल्लं च कुव्वइ॥

—दस. अ. ५, उ. २, गा. ३३-३५

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए अणुपविट्ठे अण्णतरं भोयणजातं पडिगाहेत्ता सुब्भि सुब्भि भोच्चा, दुब्भि दुब्भि परिट्ठवेति। मातिट्ठाणं संफासे। णो एवं करेज्जा। सुब्भि वा, दुब्भि वा, सव्वं भुंजे ण छड्डए।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ६, सु. ३६४

आहार का उपभोग करने में माया करने का निषेध—

१६. कदाचित् कोई एक मुनि विविध प्रकार के पान और भोजन पाकर कहीं एकान्त में बैठ श्रेष्ठ-श्रेष्ठ खा लेता है, विवर्ण और विरस को स्थान पर लाता है (इस विचार से कि)

"ये श्रमण मुझे यों जाने कि यह मुनि बड़ा आत्मार्थी है, लाभालाभ में समभाव रखने वाला है, सारहीन आहार का सेवन करता है, रूक्ष आहार करने वाला है, और जिस किसी भी वस्तु से सन्तुष्ट होने वाला है।"

वह पूजा का अर्थी, यश का कामी और मान सम्मान की कामना करने वाला मुनि बहुत पाप का अर्जन करता है और माया शल्य का आचरण करता है।

जो भिक्षु या भिक्षुणी भोजन को ग्रहण करके मन के अनुकूल खा लेता है और मन के प्रतिकूल परठ देता है, वह माया स्थान का स्पर्श करता है। उसे ऐसा नहीं करना चाहिये। मन के अनुकूल या प्रतिकूल जैसा भी आहार प्राप्त हो, साधु उसका समभावपूर्वक उपभोग करे, उसमें से किंचित् भी नहीं परठे।

णीरस-आहार-परिट्ठवण-पायच्छित्तसुत्तं—

१७. जे भिक्खू अण्णयरं भोयणजायं पडिग्गाहित्ता सुब्भि सुब्भि भुंजइ, दुब्भि दुब्भि परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. २, सु. ४४

नीरस आहार परठने का प्रायश्चित्त सूत्र—

१७. जो भिक्षु गृहस्थ के घर से विविध प्रकार का आहार लाकर उनमें से मन के अनुकूल आहार को खाता है और मन के प्रतिकूल आहार को परठता है, परठवाता है, या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

गहिय लोणस्स परिभोगण-परिट्ठवण-विही—

१८. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे—सिया से परो अभिहट्टु अंतो पडिग्गहे बिलं वा लोणं[2] उब्भियं वा लोणं परिभाइत्ता णीहट्टु दलइज्जा। तहप्पगारं पडिग्गहं परहत्थंसि वा, परपायंसि वा, अफासुयं-जाव-णो पडिग्गाहेज्जा।

से य आहच्च पडिग्गाहिए सिया तं च णाइदूरगए जाणिज्जा, से त्तमायाय तत्थ गच्छिज्जा, गच्छित्ता पुव्वामेव आलोइज्जा।

गृहीत लवण के परिभोग और परिष्ठापन की विधि—

१८. भिक्षु या भिक्षुणी आहार के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करे, वहाँ कदाचित गृहस्थ पात्र में जलाया हुआ नमक या अन्य अचित्त नमक लाकर दे उस नमक के बर्तन को गृहस्थ के हाथ में या पात्र में देखकर अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

कदाचित् उक्त प्रकार का नमक बिना जाने ले लिया हो और अधिक दूर जाने के पहले ही मालूम पड़ जाये तो उस लवण को लेकर गृहस्थ के वहाँ जाकर पूछे—

---

१ से एगइओ अण्णयरं भोयणजायं पडिग्गाहेत्ता भद्दयं भद्दयं भोच्चा विवण्णं विरसमाहरइ, माइट्ठाणं संफासे, णो एवं करिज्जा।
—आ. सु. २, अ. १, उ. १०, सु. ४०१

२ दस. अ. ६, गा. १७।

आउसोत्ति वा ! भइणित्ति वा ! इमं किं ते जाणया दिन्नं, उयाहु अजाणया ?

"से य भणिज्जा"—नो खलु मे जाणया दिन्नं, अजाणया दिन्नं ।

कामं खलु आउसो ! इयाणिं निसिरामि तं भुंजह वा णं, परिभाएह वा णं तं परेहिं समणुण्णायं, समणुसट्ठं तओ संजयामेव भुंजिज्जा वा, पीएज्ज वा ।

जं च नो संचाएइ भोत्तए वा, पायए वा साहम्मिया तत्थ वसंति, संभोइया समणुण्णा, अपरिहारिया—अदूरगया तेसिं अणुप्पदायव्वं सिया ।

नो जत्थ साहम्मिया जहेव बहुपरियावण्णे कीरइ तहेव कायव्वं सिया । —आ. सु. २, अ. १, उ. १०, सु. ४०५

पाणाइ संसत्त आहारस्स परिभोयण-परिट्ठवण विही—

१९. निग्गंथस्स य गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुप्पविट्ठस्स, अंतो पडिग्गहंसि पाणाणि वा, बीयाणि वा, रए वा परियावज्जेज्जा, तं च संचाएइ विगिंचित्तए वा, विसोहित्तए वा, तं पुव्वामेव विगिंचिय विसोहिय, तओ संजयामेव भुंजेज्ज वा, पीएज्ज वा ।

तं च नो संचाएइ विगिंचित्तए वा, विसोहित्तए वा, तं नो अप्पणा भुंजेज्जा, नो अन्नेसिं दावए एगंते बहुफासुए थंडिले पडिलेहित्ता पमज्जित्ता परिट्ठवेयव्वे सिया ।

—कप्प. उ ५, सु ११

उदगाइ-संसत्त-भोयणस्स परिभोयण-परिट्ठवण-विहि—

२०. निग्गंथस्स य गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुप्पविट्ठस्स अंतो पडिग्गहंसि दए वा, दगरए वा, दगफुसिए वा, परियावज्जेज्जा से य उसिणभोयणजाए परिभोत्तव्वे सिया ।

से य सीयभोयणजाए, तं नो अप्पणा भुंजेज्जा, नो अन्नेसिं दावए एगंते बहुफासुए थंडिले पडिलेहित्ता पमज्जित्ता, परिट्ठवेयव्वे सिया । —कप्प. उ. ५, सु. १२

अचित्त अणेसणिज्ज-आहारस्स परिट्ठवण-विही—

२१. निग्गंथेण य गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए अणुप्पविट्ठेणं अन्नयरे अचित्ते अणेसणिज्जे पाणभोयणे पडिगाहिए सिया-अत्थि य इत्थ केइ सेहतराए अणुवट्ठावियए, कप्पइ से तस्स दाउं वा, अणुप्पदाउं वा ।

नत्थि य इत्थ केइ सेहतराए अणुवट्ठावियए, तं नो अप्पणा भुंजेज्जा, नो अन्नेसिं दावए, एगन्ते बहुफासुए पएसे पडिलेहित्ता पमज्जित्ता परिट्ठवेयव्वे सिया ।—कप्प. उ. ४, सु. १८

"हे आयुष्मन् ! या हे भगिनी ! क्या यह लवण जानते हुए दिया है या अनजाने में दिया है ?"

वह गृहस्थ कहे कि—"मैंने जानते हुए नहीं दिया है किन्तु अनजाने में दिया गया है ।"

"हे आयुष्मन् श्रमण ! अब मैं यह आपको देता हूँ आप अब स्वेच्छानुसार खायें या आपस में बाँट लें ।" इस प्रकार गृहस्थ से आज्ञा प्राप्त होने पर यतनापूर्वक खाए पीए ।

यदि वह सम्पूर्ण लवण खाया पीया न जा सके तो वहाँ समीप में ही जो साधर्मिक सांभोगिक (समनोज्ञ) अपारिहारिक श्रमण हो तो उन्हें दे देवे ।

जहाँ साधर्मिक साधु समीप न हो तो, आहार बढ़ने पर जिस प्रकार आगम में परठने की विधि कही गई है उसी के अनुसार परठ दे ।

प्राणियों से युक्त आहार के परिभोग और परिष्ठापन की विधि—

१९. गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रविष्ट हुए साधु के पात्र में कोई प्राणी, बीज या सचित्त रज पड़ जाय, यदि उसे पृथक किया जा सके तो और विशोधन किया जा सके तो उसे पहले ही पृथक करके विशोधन करके यतनापूर्वक खावे या पीवे ।

यदि उसे पृथक् करना और आहार का विशोधन करना सम्भव न हो तो उसका न स्वयं उपभोग करे और न दूसरों को दे, किन्तु एकान्त और अत्यन्त प्रासुक स्थंडिल भूमि में प्रतिलेखन प्रमार्जन करके परठ दे ।

उदकादि से युक्त आहार के परिभोग और परिष्ठापन की विधि—

२०. गृहस्थ के घर में आहार पानी के लिये प्रविष्ट साधु के पात्र में यदि सचित्त जल, जलबिन्दु, जलकण गिर पड़े और आहार उष्ण हो तो उसे खा लेना चाहिए ।

वह आहार यदि शीतल हो तो न खुद खावे न, दूसरों को दे किन्तु एकान्त और अत्यन्त प्रासुक स्थंडिल भूमि में परठ देना चाहिए ।

अचित्त अनेषणीय आहार के परठने की विधि—

२१. गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रविष्ट निर्ग्रन्थ के द्वारा अचित्त और अनेषणीय आहार ग्रहण हो जाय तो, यदि वहाँ जिसकी बड़ी दीक्षा नहीं हुई ऐसा नवदीक्षित साधु हो तो उसे वह आहार देना कल्पता है ।

यदि अनुपस्थापित शिष्य न हो तो न स्वयं खाना चाहिए और न अन्य को देना चाहिए किन्तु एकान्त और अचित्त स्थंडिल भूमि का प्रतिलेखन और प्रमार्जन कर परठ देना चाहिए ।

आयरिय अदत्त आहार परिभुंजणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

२२. जे भिक्खू आयरिएहिं अदिण्णं आहारेइ, आहारेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ४, सु. २०

आचार्य के दिए बिना आहार करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

२२. जो भिक्षु आचार्य के द्वारा दिये बिना आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पत्ताणं आहार-करमाणस्स पायच्छित्त सुत्तं —

२३. जे भिक्खू पिउमंद-पलासयं वा, पडोल-पलासयं वा, बिल्ल-पलासियं वा, सीओदग-वियडेण वा, उसिणोदग-वियडेण वा, संफाणिय-संफाणिय आहारेइ, आहारेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ५, सु. १४

पत्रों का आहार करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

२३. जो भिक्षु नीम्ब-पत्र, पटल-पत्र, बील्व-पत्र को अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से धो-धोकर आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

गिहिमत्ते भुंजमाणस्स पायच्छित्त सुत्तं —

२४. जे भिक्खू गिहिमत्ते भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १२, सु. १०

गृहस्थ के पात्र में आहार भोगने का प्रायश्चित्त सूत्र -

२४. जो भिक्षु गृहस्थ के पात्र में आहार करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पुढवी आइए असणाइ णिक्खिवणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं —

२५. जे भिक्खू असणं वा-जाव-साइमं वा पुढवीए णिक्खिवइ, णिक्खिवंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू असणं वा-जाव-साइमं वा संथारए णिक्खिवइ, णिक्खिवंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू असणं वा-जाव-साइमं वा वेहासे णिक्खिवइ, णिक्खिवंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १६, सु. ३४-३६

पृथ्वी आदि पर अशनादि रखने के प्रायश्चित्त सूत्र -

२५. जो भिक्षु **अशन—यावत्**—स्वाद्य पदार्थ भूमि पर रखता है, रखवाता है, या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु अशन—**यावत्**—स्वाद्य पदार्थ संथारे पर रखता है, रखवाता है, या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु अशन—**यावत्**—स्वाद्य पदार्थ छींके आदि ऊँची जगह पर रखता है, रखवाता है, या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

परिभोगैषणा के दोष—१०

पाँच दोष परिभोगैषणा के—

संजोयणा पमाणे इंगाले धूम कारणा पढमा। वसहि बहिरंतरे वा रसहेउं दव्व संजोगा॥ पिंड. नि. गा. ६४

१. **संयोजना**—स्वाद बढ़ाने के लिए दो प्रकार के पदार्थों का संयोग मिलाना।

२. **अप्रमाण**—प्रमाण से अधिक आहारादि लाना या खाना।

३. **इंगाल**—सरस आहार की सराहना करते हुए खाना।

४. **धूम**—निरस आहार की निन्दा करते हुए खाना।

५. **कारण**—ठाणांग अ. ६, सु. ५०० में तथा उत्तराध्ययन अ. २६, गा. ३१-३४ में आहार करने के ६ कारण और न करने के ६ कारण प्ररूपित हैं।

इंगालाइ दोसाणं सरूवं—

२६. प०—अह भंते ! सइंगालस्स सधूमस्स,[1] संजोयणा दोसदुट्ठस्स[2] पाणभोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जे णं निग्गंथे वा, निग्गंथी वा फासुएसणिज्जं असणं-जाव-साइमं पडिग्गाहित्ता मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववन्ने आहारं आहारेइ एस णं गोयमा ! सइंगाले पाणभोयणे।

जे णं निग्गंथे वा, निग्गंथी वा फासु-एसणिज्जं असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेत्ता महयाअप्पत्तियं कोहकिलामं करेमाणे आहारं आहारेइ। एस णं गोयमा ! सधूमे पाणभोयणे।

जे णं निग्गंथे वा, निग्गंथी वा फासु-एसणिज्जं असणं-जाव-साइमं पडिग्गाहेत्ता गुणुप्पायणं हेउं-अन्न-दव्वेण सद्धिं संजोएत्ता आहारं आहारेइ एस णं गोयमा ! संजोयणादोसदुट्ठे पाण-भोयणे।

एस णं गोयमा ! सइंगालस्स सधूमस्स संजोयणा दोसदुट्ठस्स पाणभोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते।

वि. स. ७, उ. १, सु. १७

इंगालादि दोष का स्वरूप—

२६. प्र०—हे भगवन् ! अंगारदोष सहित, धूम दोष सहित और संयोजना दोष से दूषित पान-भोजन का क्या अभिप्राय है ?

उ०—हे गौतम ! निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी प्रासुक एवं एषणीय अशन यावत् स्वादिम आहार को ग्रहण कर मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित एवं आसक्त होकर यदि आहार करे तो हे गौतम ! यह अंगार दोष सहित पान-भोजन कहा जाता है।

निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी प्रासुक एवं एषणीय अशन—यावत्—स्वादिम आहार को ग्रहण कर अत्यन्त अप्रीतिपूर्वक व क्रोध से खिन्न होकर यदि आहार करे तो हे गौतम ! यह धूम दोष सहित पान-भोजन कहा जाता है।

निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी प्रासुक एवं एषणीय अशन—यावत्—स्वादिम आहार को ग्रहण कर स्वाद उत्पन्न करने के लिए दूसरे पदार्थ के साथ संयोग करके यदि आहार करे तो हे गौतम ! यह संयोजना दोष से दूषित पान-भोजन कहा जाता है।

हे गौतम ! इस प्रकार अंगार दोष, धूमदोष, संयोजना दोष से दूषित पान भोजन का यह अभिप्राय है।

इंगालाइ दोस रहियं आहारस्स सरूवं—

२७. प०—अह भंते ! वीतिंगालस्स वीयधूमस्स संजोयणा—दोसविप्पमुक्कस्स पाणभोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

उ०—गोयमा ! जे णं निग्गंथे वा निग्गंथी वा-जाव-पडिग्गाहेत्ता, अमुच्छिए-जाव-आहारेइ।
एस णं गोयमा ! वीतिंगाले पाण-भोयणे।

जे णं निग्गंथे वा, निग्गंथी वा-जाव-पडिग्गाहेत्ता नो महया अप्पत्तियं-जाव-आहारेइ। एस णं गोयमा ! वीयधूमे पाण-भोयणे।

जे णं निग्गंथे वा निग्गंथी वा-जाव-पडिग्गाहेत्ता जहा लद्धं तहा आहारं आहारेइ। एस णं गोयमा संजोयणादोस विप्पमुक्के पाण-भोयणे।

एस णं गोयमा ! वीतिंगालस्स वीयधूमस्स संजोयणा दोसविप्पमुक्कस्स पाण-भोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते।

—वि. स. ७, उ. १, सु. १८

इंगालादि दोष रहित आहार का स्वरूप—

२७. प्र०—हे भगवन् ! अंगारदोषरहित, धूमदोषरहित और संयोजनादोष रहित भोजन का क्या अर्थ कहा गया है ?

उ०—हे गौतम ! निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी—यावत्—आहार ग्रहण करके मूर्च्छा रहित होकर—यावत्—आहार करे तो हे गौतम ! यह अंगार दोष रहित पान-भोजन कहा जाता है।

निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी—यावत्—आहार ग्रहण करके अत्यन्त अप्रीतिपूर्वक—यावत्—आहार न करे तो हे गौतम ! यह धूमदोष रहित पान-भोजन कहा जाता है।

निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी—यावत्—आहार ग्रहण करके जैसा आहार प्राप्त हुआ है, वैसा ही आहार करे (किन्तु स्वाद के लिए अन्य पदार्थ के साथ संयोग न करे) तो हे गौतम ! यह संयोजना दोष रहित पान-भोजन कहा जाता है।

हे गौतम ! इस प्रकार अंगारदोष रहित, धूमदोष रहित और संयोजना दोष रहित पान-भोजन का यह अर्थ कहा गया है।

---

१ अंगार दोष और धूम दोष की व्याख्या देखिए—पिण्डनिर्युक्ति गाथा ६५५-६६०।

२ संयोजना दोष का उदाहरण, व्याख्या और भेद—देखिए पिण्डनिर्युक्ति गाथा ६२६-६४२।

खेत्ताइक्कंतादिदोसाणं सरूवं—

२८. प० — अह भंते ! खेत्तातिक्कंतस्स कालातिक्कंतस्स, मग्गातिक्कंतस्स, पमाणातिक्कंतस्स पाणभोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

उ० — गोयमा ! जे णं निग्गंथे वा निग्गंथी वा फासुएसणिज्जं असणं-जाव-साइमं अणुग्गते सूरिए पडिग्गाहित्ता, उग्गते सूरिए आहारं आहारेति ।

एस णं गोयमा ! खेत्तातिक्कंते पाण-भोयणे ।[1]

जे णं निग्गंथे वा, निग्गंथी वा फासुएसणिज्जं असणं-जाव-साइमं पढमाए पोरिसीए पडिग्गाहेत्ता, पच्छिमं पोरिसं उवायणावेत्ता आहारं आहारेति ।

एस णं गोयमा ! कालातिक्कंते पाण-भोयणे ।

जे णं निग्गंथे वा, निग्गंथी वा फासुएसणिज्जं असणं-जाव-साइमं पडिगाहित्ता परं अद्धजोयणमेराए वीतिक्कमावेत्ता आहारमाहारेति ।

एस णं गोयमा ! मग्गातिक्कंते पाण-भोयणे ।

१. जे णं निग्गंथे वा, निग्गंथी वा फासुएसणिज्जं असणं-जाव-साइमं पडिग्गाहेत्ता परं बत्तीसाए कुक्कुडि[2]अंडग-प्पमाणमेत्ताणं कवलाणं आहारं आहारेइ ।

एस णं गोयमा ! पमाणाइक्कंते पाण-भोयणे ।

२. अट्ठ कुक्कुडि अंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारं आहारेमाणे अप्पाहारे ।

३. दुवालस कुक्कुडि अंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारं आहारेमाणे अवड्ढोमोयरिया ।

४. सोलस कुक्कुडि अंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारं आहारेमाणे दुभागपत्ते अड्ढोमोयरिया ।

५. चउव्वीसं कुक्कुडि अंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारं आहारेमाणे तिभाग पत्ते, अंसिया ओमोयरिया ।

क्षेत्रातिक्रान्त आदि दोष का स्वरूप—

२८. प्र० — भगवान् ! क्षेत्रातिक्रान्त, कालातिक्रान्त, मार्गातिक्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन का क्या अर्थ कहा गया है ?

उ० — हे गौतम ! जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी प्रासुक और एषणीय अशन **यावत्**—स्वादिम को सूर्योदय से पूर्व ग्रहण करके सूर्योदय के पश्चात् उस आहार को करते हैं तो हे गौतम ! यह क्षेत्रातिक्रान्त पान-भोजन कहलाता है ।

जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी प्रासुक एवं एषणीय अशन—**यावत्**—स्वादिम आहार को प्रथम प्रहर (पौरुषी) में ग्रहण करके चतुर्थ प्रहर तक रखकर सेवन करते हैं, तो

हे गौतम ! यह कालातिक्रान्त पान-भोजन कहलाता है ।

जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी प्रासुक एवं एषणीय अशन—**यावत्**—स्वादिम आहार को ग्रहण करके आधे योजन-दो कोस (की मर्यादा) का उल्लंघन करके खाते हैं ।

हे गौतम ! यह मार्गातिक्रान्त पान-भोजन कहलाता है ।

(१) जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी प्रासुक एवं एषणीय अशन — **यावत्** — स्वादिम आहार ग्रहण करके अपने मुखप्रमाण बत्तीस कवल से अधिक आहार करता है ।

हे गौतम ! यह प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन कहा जाता है ।

(२) अपने मुखप्रमाण आठ कवल आहार करने से अल्पाहार कहा जाता है ।

(३) अपने मुखप्रमाण बारह कवल आहार करने से कुछ कम अर्ध ऊनोदरिका कही जाती है ।

(४) अपने मुखप्रमाण सोलह कवल आहार करने से द्विभाग प्राप्त आहार और अर्द्ध ऊणोदरी कही जाती हैं ।

(५) अपने मुखप्रमाण चौबीस कवल आहार करने से त्रिभाग प्राप्त आहार और एक भाग ऊनोदरिका कही जाती है ।

---

१ क्षेत्रातिक्रान्त — यहां क्षेत्र शब्द का अर्थ है—सूर्य का ताप क्षेत्र, उसका अतिक्रमण करना क्षेत्रातिक्रान्त है । तात्पर्य यह है कि — जहाँ साधु-साध्वी रहते हैं वहाँ सूर्योदय से पूर्व और सूर्यास्त के बाद याने रात्रि में आहार करना क्षेत्रातिक्रान्त दोष है । सूर्योदय बाद और सूर्यास्त पूर्व आहार करना क्षेत्रातिक्रान्त दोष नहीं है ।

२ "कुक्कुडि अंडग" शब्द की टीका में अनेक प्रकार से व्याख्या की गई है । यथा—

(I) निजकस्याहारस्य सदा यो द्वात्रिंशत्तमो भागो तत् कुक्कुटी प्रमाणं ।

(II) कुत्सिता कुटी कुक्कुटी शरीरमित्यर्थः । तस्याः शरीर रूपायाः कुकुट्या अंडकमिव अंडकं—मुखं ।

(III) यावत् प्रमाणमात्रेण कवलेन मुखे प्रक्षिप्यमाणेन मुखं न विकृतं भवति तत्स्थल कुक्कुटअंडकप्रमाणम् ।

(IV) अयमन्यः विकल्पः कुक्कुटचंडकोपमे कवले ।

(V) अयमन्योऽर्थ :—"कुक्कुटयंडक" प्रमाणमात्र शब्दस्येत्यर्थ : —एतेन कवलमानेनादिना संख्या द्रष्टव्याः ।

—अभि. रा. कोष ऊणोयरिया प. १०८२ ।

(६) एगतीसं कुक्कुडी अंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारं आहारेमाणे किंचूणोमोयरिया ।

(७) बत्तीसं कुक्कुडि अंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारं आहारेमाणे पमाणपत्ते,

एत्तो एकेण वि कवलेण ऊणगं आहारं आहारेमाणे समणे निग्गंथे नो पकामभोईत्ति वत्तव्वं सिया ।

एस णं गोयमा ! खेत्ताइक्कंतस्स, कालाइक्कंतस्स, मग्गाइक्कंतस्स, पमाणाइक्कंतस्स पाण-भोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते ।[1] —वि. स. ७, उ. १, सु. १९

(६) अपने मुखप्रमाण एकतीस कवल आहार करने से किंचित् ऊणोदरिका कही जाती है ।

(७) अपने मुखप्रमाण बत्तीस कवल आहार करने से प्रमाण प्राप्त आहार कहा जाता है ।

इससे एक भी कवल कम आहार करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ प्रकामभोजी नहीं कहा जा सकता है ।

हे गौतम ! इस प्रकार क्षेत्रातिक्रान्त, कालातिक्रान्त, मार्गातिक्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन का यह अर्थ कहा गया है ।

आहारकरण कारणा—

२९. छहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे आहारमाहारेमाणे णातिक्कमति, तं जहा—

वेयण वेयावच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए ।
तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मचिंताए ॥[2]

—ठाणं. अ. ६, सु. ५००

आहार लेने के कारण—

२९. छह कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ आहार को ग्रहण करता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है । जैसे—

(१) वेदना—भूख की पीड़ा दूर करने के लिए ।
(२) गुरुजनों की वैयावृत्य करने के लिए ।
(३) ईर्यासमिति का पालन करने के लिए ।
(४) संयम की रक्षा के लिए ।
(५) प्राण-धारण करने के लिए ।
(६) धर्म का चिन्तन करने के लिए ।

आहार अकरण कारणा—

३०. छहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे आहारं वोच्छिंदमाणे णातिक्कमति, तं जहा

आतंके उवसग्गे, तितिक्खणे बंभचेरगुत्तीए ।
पाणिदया-तवहेउं, सरीरवुच्छेयणट्ठाए ॥[2]

—ठाणं. अ. ६, सु. ५००

आहार त्यागने के कारण—

३०. छह कारणों से श्रमण निर्ग्रन्थ आहार का परित्याग करता हुआ भगवान् की आज्ञा का अतिक्रमण नहीं करता है । जैसे—

(१) आतंक—ज्वर आदि आकस्मिक रोग हो जाने पर ।
(२) उपसर्ग—देव, मनुष्य, तिर्यञ्चकृत उपद्रव होने पर ।
(३) तितिक्षा—ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए ।
(४) प्राणियों की दया करने के लिए ।
(५) तप की वृद्धि के लिए ।
(६) शरीर व्युत्सर्ग (संथारा) करने के लिए ।

कालाइक्कंत-आहार-रक्खण-भुंजण-णिसेहो पायच्छित्तं च—

३१. नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा असणं वा-जाव-साइमं वा, पढमाए पोरिसीए पडिग्गाहेत्ता, पच्छिमं पोरिसिं उवाइणावेत्तए ।

से य आहच्च उवाइणाविए सिया तं नो अप्पणा भुंजेज्जा, नो अन्नेसिं अणुपदेज्जा ।

एगन्ते बहुफासुए थंडिले पडिलेहित्ता पमज्जित्ता परिट्ठवेयव्वे सिया ।

कालातिक्रान्त आहार रखने व खाने का निषेध व प्रायश्चित्त—

३१. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को प्रथम पौरुषी में ग्रहण किए हुए अशन—यावत्—स्वादिम को अन्तिम पौरुषी तक अपने पास रखना नहीं कल्पता है ।

कदाचित् वह आहार रह जाय तो उसे स्वयं न खावे और न अन्य को दे ।

किन्तु एकान्त और सर्वथा अचित्त स्थंडिल भूमि का प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन कर उस आहार को परठ देना चाहिए ।

---

१ व्यव. सूत्र ३०४ सू. १७ में अट्ठ कुक्कुडी वत्तव्वं सिया तक पाठ है । —व्यव. भाष्य. गा. २९९ से ३०१ की टीका

२ उत्त. अ. २६, गा. ३२ ।

२ उत्त. अ. २६, गा. ३४ ।

तं अप्पणा भुंजमाणे, अन्नेसिं वा दलमाणे,
आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं[1] ॥
—कप्प. उ. ४, सु. १६

उस आहार को स्वयं खावे या अन्य को दे तो वह उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

जे भिक्खू पढमाए पोरिसीए असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेत्ता पच्छिमं पोरिसिं उवाइणावेइ, उवाणावेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १२, सु. ३०

जो भिक्षु प्रथम पोरिषी में अशन—यावत्—स्वाद्य ग्रहण करके अन्तिम पोरिषी तक रखता है, रखवाता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

मग्गातिकंत आहार रक्खण भुंजण णिसेहो पायच्छित्तं च—

मार्गातिक्रान्त आहार रखने व खाने का निषेध व प्रायश्चित्त—

३२. नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा असणं वा-जाव-साइमं वा, परं अद्धजोयणमेराए उवाइणावेत्तए[2]।

३२. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को अशन—यावत्—स्वादिम आहार अर्धयोजन की मर्यादा से आगे अपने पास रखना नहीं कल्पता है।

से य आहच्च उवाइणाविए सिया, तं नो अप्पणा भुंजेज्जा, नो अन्नेसिं अणुपदेज्जा।
एगन्ते बहुफासुए थंडिले पडिलेहित्ता पमज्जित्ता परिट्ठवेयव्वे सिया।
तं अप्पणा भुंजमाणे, अन्नेसिं वा दलमाणे, आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—कप्प. उ. ४, सु. १७

कदाचित् वह आहार रह जाय तो उस आहार को स्वयं न खावे और न अन्य को दे।
किन्तु एकान्त और सर्वथा अचित्त स्थंडिल भूमि का प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन कर उस आहार को परठ देना चाहिए।
यदि उस आहार को स्वयं खावे या अन्य को दे तो वह उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) का पात्र होता है।

जे भिक्खू परं अद्धजोयण मेराओ असणं वा-जाव-साइमं वा उवाइणावेइ, उवाणावेंतं वा साइज्जइ।
तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १२, सु. ३१

जो भिक्षु अर्ध योजन के उपरान्त अशन—यावत्—स्वाद्य रखता है, रखवाता है, रखने वाले का अनुमोदन करता है।
उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

आहारस्स वण्णं अवण्णं ण णिद्दिसे—

आहार की प्रशंसा और निन्दा का निषेध—

३३. निट्ठाणं रसनिज्जूढं, भद्दगं पावगंति वा।
पुट्ठो वा वि अपुट्ठो वा, लाभालाभं न निद्दिसे॥
—दस. अ. ८, गा. २२

३३. किसी के पूछने पर या बिना पूछे सर्व गुण सम्पन्न आहार के लिए यह बहुत बढ़िया है और रूखा खारा आदि के लिए यह खराब है ऐसा न कहे तथा इनकी प्राप्ति या अप्राप्ति के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहे।

---

१ कालातिक्रान्त और मार्गातिक्रान्त आहार के खाने का निषेध और परठने का विधान का तात्पर्य यह है कि—उक्त दोनों प्रकार के आहारों में चौथे प्रहर के बाद तथा आधा योजन जाने के बाद संग्रह वृत्ति और जीव-संसक्तता आदि की सम्भावना रहती है।
—बृहत्कल्प भाष्य सु. १७ की टीका पृ. १४००

२ वर्षावास में यदि मार्ग के बीच में नदी बहती हो तो अर्ध योजन जाना भी नहीं कल्पता है। स्पष्टीकरण हेतु देखिए—वर्षावास समाचारी।
—दसा. द. ८, सु. १०-११

संखडी-गमन—११

परमद्धजोयण मेराए संखडीए य गमणणिसेहो—

३४. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा परं अद्धजोयणमेराए संखडिं संखडिपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा—

१. पाईणं संखडिं णच्चा पडीणं गच्छे अणाढायमाणे,

२. पडीणंसंखडिं णच्चा पाईणं गच्छे अणाढायमाणे,

३. दाहिणं संखडिं णच्चा उदीणं गच्छे अणाढायमाणे,

४. उदीणं संखडिं णच्चा दाहिणं गच्छे अणाढायमाणे।

जत्थेव सा संखडी सिया, तं जहा—

गामंसि वा-जाव-रायहाणिंसि वा संखडिं संखडिपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

केवली बूया—आयाणमेयं।

—आ. सु. २, अ. १, उ. २, सु ३३८

आधा योजन उपरान्त संखडी में जाने का निषेध—

३४. भिक्षु या भिक्षुणी अर्द्ध योजन की सीमा से आगे संखडि (बड़ा जीमनवार) हो यह जानकर संखडि में निष्पन्न आहार लेने के निमित्त से जाने का विचार न करे।

भिक्षु या भिक्षुणी—

(१) पूर्वदिशा में संखडि जाने तो वह उसके प्रति अनादर भाव रखते हुए पश्चिम दिशा में जाए।

(२) पश्चिम दिशा में संखडि जाने तो उसके प्रति अनादर भाव रखते हुए पूर्व दिशा में चला जाए।

(३) दक्षिण दिशा में संखडि जाने तो उसके प्रति अनादर भाव रखकर उत्तर दिशा में चला जाए।

(४) उत्तर दिशा में संखडि जाने तो उसके प्रति अनादर भाव रखकर दक्षिण दिशा में चला जाए।

संखडि जहाँ भी हो, जैसे कि—

गाँव में हो—यावत्—राजधानी में हो, उस संखडि में संखडि के निमित्त से न जाए।

केवलज्ञानी भगवान् कहते हैं—यह कर्मबन्धन का कारण है।

संखडीगमणे उप्पण्णदोसाई—

३५. संखडिं संखडिपडियाए अभिसंधारेमाणे आहाकम्मियं वा, उद्देसियं वा मीसजायं वा, कीयगडं वा, पामिच्चं वा, अच्छेज्जं वा, अणिसिट्ठं वा अभिहडं वा आहट्टु दिज्जमाणं भुंजेज्जा,

असंजते भिक्खुपडियाए—

१. खुड्डियदुवारियाओ महल्लियाओ कुज्जा,
२. महल्लियदुवारियाओ खुड्डियाओ कुज्जा,
३. समाओ सेज्जाओ विसमाओ कुज्जा,
४. विसमाओ सेज्जाओ समाओ कुज्जा,
५. पवाताओ सेज्जाओ णिवायाओ कुज्जा,
६. णिवायाओ सेज्जाओ पवाताओ कुज्जा,
७. अंतो वा, बहिं वा उवस्सयस्स हरियाणी छिंदिय छिंदिय दालिय दालिय संथारगं संथारेज्जा, एस विलुंगयामो सिज्जाए।

संखडी में जाने से होने वाले दोष—

३५. संखडि में बढ़िया भोजन लाने के संकल्प से जाने वाला भिक्षु आधाकर्मिक, औद्देशिक, मिश्रजात, क्रीत, प्रामित्य, बलात् छीना हुआ, दूसरे के स्वामित्व का पदार्थ उसकी अनुमति के बिना लिया हुआ या सम्मुख लाकर दिया हुआ आहार खायेगा।

तथा कोई गृहस्थ भिक्षु के संखडि में पधारने की सम्भावना से—

(१) छोटे द्वार को बड़ा बनाएगा,
(२) बड़े द्वार को छोटा बनाएगा।
(३) समस्थान को विषम बनाएगा,
(४) विषम स्थान को सम बनाएगा।
(५) वातयुक्त स्थान को निर्वात बनाएगा,
(६) निर्वात स्थान को हवादार बनाएगा,
(७) उपाश्रय के अन्दर और बाहर (उगी हुई) हरियाली को काटेगा, उसे जड़ से उखाड़कर वहाँ आसन बिछाएगा। इस विचार से कि ये निर्ग्रन्थ मकान का कोई सुधार करने वाले नहीं हैं।

तम्हा से संजते णियंठे तहप्पगारं पुरेसंखडिं वा, पच्छासंखडिं वा संखडिं संखडिपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

—आ. सु. २, अ. १, उ. २, सु. ३३८ (ख)

इसलिए संयमी निर्ग्रन्थ इस प्रकार की (नामकरण, विवाह आदि के उपलक्ष्य में होने वाली) पूर्वसंखडि (प्रीतिभोज) पश्चात् संखडि (मृतक भोज) में संखडि की दृष्टि से जाने का मन में संकल्प न करें।

संखडीभोयणे उप्पण्णदोसाइं—

संखडी में भोजन करने से उत्पन्न दोष—

३६. से एगतिओ अण्णतरं संखडिं आसित्ता पिबित्ता छड्डेज्ज वा, वमेज्ज वा, भुत्ते वा से णो सम्मं परिणमेज्जा, अण्णतरे वा से दुक्खे रोगातंके समुप्पज्जेज्जा।

केवली बूया—आयाणमेयं।

इह खलु भिक्खू गाहावतीहिं वा, गाहावतीणीहिं वा परिवायएहिं वा परिवाइयाहिं वा एगज्झं सद्धिं सोंडं पाउं भो वतिमिस्सं हुरत्था वा उवस्सयं पडिलेहमाणे णो लभेज्जा तमेव उवस्सयं सम्मिस्सीभावमावज्जेज्जा, अण्णमणे वा से मत्ते विप्परियासियभूते इत्थिविग्गहे वा, किलीबे वा, तं भिक्खुं उवसंकमित्तु बूया—

"आउसंतो समणा! अहे आरामंसि वा, अहे उवस्सयंसि वा, रातो वा, वियाले वा गामधम्मनियंतियं कट्टु रहस्सियं मेहुणधम्मपरियारणाए आउट्टामो।" तं चेगइओ सातिज्जेज्जा।

अकरणिज्जं चेतं संखाए, एते आयाणा संति संचिज्जमाणा पच्चवाया भवंति।

तम्हा से संजए णियंठे तहप्पगारं पुरेसंखडिं वा, पच्छासंखडिं वा संखडिं संखडिपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ३, सु. ३४०

३६. कोई एक भिक्षु को किसी संखडी में अधिक सरस आहार खाने-पीने से दस्तें लग सकती हैं या वमन हो सकते हैं अथवा खाये गये आहार का सम्यग् परिणमन नहीं होने से कोई दर्द या रोगातंक पैदा हो सकता है।

इसलिए केवली भगवान् ने कहा है—यह कर्मबंध का कारण है।

संखडी में भिक्षु गृहस्थ, गृहस्थ पत्नियाँ, परिव्राजक, परिव्राजिकाएँ सब एक साथ एकत्रित होकर मद्य पीकर गवेषणा करने पर भी कदाचित् अलग-अलग स्थान न मिलने पर एक ही स्थान में मिश्रित रूप से ठहरने का प्रसंग प्राप्त होगा। वहाँ से गृहस्थ, गृहस्थपत्नियाँ आदि नशे में मत्त एवं अन्यमनस्क होकर अपने आप को भूल जाएँगे और स्त्रियाँ या नपुंसक उस भिक्षु के पास आकर कहेंगे—

"आयुष्मन् श्रमण! किसी बगीचे या उपाश्रय में रात्रि में या विकाल में इन्द्रिय विषयों की पूर्ति के लिए एकान्त स्थान में हम मैथुन-सेवन करेंगे।" उस प्रार्थना को कोई एक साधु स्वीकार भी कर सकता है।

किन्तु यह साधु के लिए सर्वथा अकरणीय है, यह जानकर संखडी में न जाए क्योंकि संखडी में जाना कर्मों के आस्रव का कारण है। इसमें जाने से कर्मों का संचय बढ़ता है तथा पूर्वोक्त दोष उत्पन्न होते हैं।

इसलिए संयमी निर्ग्रन्थ पूर्व संखडी या पश्चात् संखडी में जाने का विचार भी न करें।

आइण्णसंखडीए गमणणिसेहो तद्दोसाइं च—

आकीर्ण संखडी में जाने का निषेध व उसके दोष—

३७. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण जाणेज्जा गामं वा-जाव-रायहाणिं वा, इमंसि खलु गामंसि वा-जाव-रायहाणिंसि वा संखडिं सिया, तं पि याइं गामं वा-जाव-रायहाणिं वा संखडिं संखडिपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

केवली बूया आयाणमेयं।

आइण्णोमाणं संखडिं अणुपविस्समाणस्स—

१. पाएण वा पए अक्कंतपुव्वे भवति,

२. हत्थेण वा हत्थे संचालियपुव्वे भवति,

३७. भिक्षु या भिक्षुणी गाँव—यावत्—राजधानी के विषय में जाने कि इस गाँव—यावत्—राजधानी में संखडी है तो उस गाँव—यावत्—राजधानी में संखडी की प्रतिज्ञा से जाने का विचार भी न करे।

केवली भगवान् कहते हैं कि—यह अशुभ कर्मों के बन्ध का कारण है।

आकीर्ण और अवमान संखडी में प्रविष्ट होने से—

(१) पैर से पैर टकरायेंगे।

(२) हाथ से हाथ संचालित होंगे।

३. पाएणं वा पाए आवडियपुव्वे भवति,
४. सीसेणं वा सीसे संघट्टियपुव्वे भवति,
५. काएण वा काए, संखोभितपुव्वे भवति,
६. दंडेण वा, अट्ठीण वा, मुट्ठीण वा, लेलुणा वा, कवालेण वा, अभिहत पुव्वे भवति,
७. सीतोदएण वा ओसित्तपुव्वे भवति,
८. रयसा वा परिघासितपुव्वे भवति,
९. अणेसणिज्जे वा परिभुत्तपुव्वे भवति,
१०. अण्णेसिं वा दिज्जमाणे पडिगाहितपुव्वे भवति ।

तम्हा से संजते णियंठे तहप्पगारं आइण्णोमाणं संखडिं संखडिपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए ।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ३, सु. ३४२

(३) पात्र से पात्र रगड़ खाएगा ।
(४) सिर से सिर का स्पर्श होकर टकराएगा ।
(५) शरीर से शरीर का संघर्षण होगा ।
(६) डण्डे, हड्डी, मुट्ठी, ढेला-पत्थर या खप्पर से एक दूसरे पर प्रहार होना भी सम्भव है ।
(७) (इसके अतिरिक्त) पानी के छींटे लग सकते हैं ।
(८) रज-धूल आदि से भर सकता है ।
(९) अनैषणीक आहार का उपभोग करना पड़ सकता है ।
(१०) अन्य को दिया जाने वाला आहार ग्रहण किया जा सकता है ।

अतः वह संयमी निर्ग्रन्थ उस प्रकार की जनाकीर्ण एवं अल्प आहार वाली संखडी में संखडी के संकल्प से जाने का विचार न करे ।

उस्सवेसु आहारस्स गहण विही णिसेहो—

३८. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—असणं वा-जाव-साइमं वा अट्ठमीपोसहिएसु वा, अद्धमासिएसु वा, मासिएसु वा, दोमासिएसु वा, तेमासिएसु वा, चाउम्मासिएसु वा, पंचमासिएसु वा, छम्मासिएसु वा ।

उऊसु वा, उदुसंधीसु वा, उदुपरियट्टेसु वा, बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगे—

एगातो उक्खातो परिएसिज्जमाणे पेहाए,
दोहिं उक्खाहिं परिएसिज्जमाणे पेहाए,
तिहिं उक्खाहिं परिएसिज्जमाणे पेहाए,
चउहिं उक्खाहिं परिएसिज्जमाणे पेहाए,
कुंभीमुहातो वा कलोवातितो वा, संणिहीसंणिचयातो वा, परिएसिज्जमाणे पेहाए,

तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा अपुरिसंतरकडं-जाव-अणासेवितं अफासुयं-जाव णो पडिग्गाहेज्जा ।

अह पुण एवं जाणेज्जा पुरिसंतरकडं-जाव-आसेवितं फासुयं -जाव-पडिगाहेज्जा । —आ. सु. २, अ. १, उ. २, सु. ३३५

उत्सवों में आहार के ग्रहण का विधि निषेध—

३८. भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में आहार प्राप्ति के निमित्त प्रविष्ट होने पर अशन—**यावत्**—स्वाद्य के विषय में यह जाने कि यह आहार अष्टमी पौषध व्रत के उपलक्ष्य में तथा अर्द्ध-मासिक (पाक्षिक), मासिक, द्विमासिक, त्रैमासिक, चातुर्मासिक, पंचमासिक और पाण्मासिक उत्सवों के उपलक्ष्य में,

तथा ऋतुओं, ऋतुसन्धियों एवं ऋतु-परिवर्तनों के उत्सवों के उपलक्ष्य में बहुत से श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, दरिद्री एवं भिखारियों को,

एक मुख वाले बर्तनों से परोसते हुए देखकर,
दो मुख वाले बर्तनों से परोसते हुए देखकर,
तीन मुख वाले बर्तनों से परोसते हुए देखकर,
एवं चार मुख वाले बर्तनों से परोसते हुए देखकर,

तथा सँकड़े मुंह वाली कुम्भी और बाँस की टोकरी एवं सन्निधि संचय के स्थान से लेकर परोसते हुए देखकर

इसी प्रकार के अशन—**यावत्**—स्वादिम जो कि पुरुषान्तर-कृत नहीं है अनासेवित है तो उस आहार को अप्रासुक जानकर —**यावत्**—ग्रहण न करे ।

यदि ऐसा जाने कि यह आहार पुरुषान्तरकृत है—**यावत्**—आसेवित है तो उस आहार को प्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण करे ।

महामहेसु आहारस्स गहण विहि णिसेहो—

३९. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा-असणं वा-जाव-साइमं वा समवाएसु वा, पिंडणियरेसु वा, इंदमहेसु वा, खंदमहेसु वा, रुद्दमहेसु वा, मुगुंदमहेसु वा, भूतमहेसु वा,

महामहोत्सवों में आहार के ग्रहण का विधि निषेध—

३९. भिक्षु या भिक्षुणी भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर में प्रविष्ट होते समय अशन—**यावत्**—स्वाद्य के विषय में यह जाने कि—मेला, पितृपिण्ड के निमित्त भोज तथा इन्द्र महोत्सव, स्कन्द महोत्सव, रुद्रमहोत्सव, मुकुन्द-महोत्सव, भूत-महोत्सव, यक्ष-

जक्खमहेसु वा, नागमहेसु वा, थूभमहेसु वा, चेतियमहेसु वा, रुक्खमहेसु वा, गिरिमहेसु वा, दरिमहेसु वा, अगडमहेसु वा, तलायमहेसु वा, दहमहेसु वा, णदिमहेसु वा, सरमहेसु वा, सागरमहेसु वा, आगरमहेसु वा, अण्णतरेसु वा, तहप्पगारेसु वा, विरूवरूवेसु वा, महामहेसु वट्टमाणेसु,

महोत्सव, नाग-महोत्सव, स्तूप-महोत्सव, चैत्य-महोत्सव वृक्ष-महोत्सव, पर्वत-महोत्सव, गुफा-महोत्सव, कूप-महोत्सव, तालाब-महोत्सव, द्रह-महोत्सव, नदी-महोत्सव, सरोवर-महोत्सव, सागर-महोत्सव या आकर-महोत्सव, एवं अन्य भी इसी प्रकार के विभिन्न महोत्सव हो रहे हों,

बहवे समण-जाव-वणीमए एगातो उक्खातो परिएसिज्जमाणे पेहाए-जाव-संणिहिसंणिचिताओ वा परिएसिज्जमाणे पेहाए, तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा अपुरिसंतरकडं-जाव-अणासेवितं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

उसमें बहुत से श्रमण—**यावत्**—याचकों को एक मुख वाले बर्तन से परोसते हुए देखकर—**यावत्**—सन्निधि संचय के स्थान से लेकर परोसते हुए देखकर इसी प्रकार के अशन—**यावत्**—स्वाद्य जो कि अपुरुषान्तरकृत—**यावत्**—अनासेवित है तो उस आहार को अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

अह पुण एवं जाणेज्जा—दिण्णं तं तेसिं दायव्वं, अह तत्थ भुंजमाणे पेहाए गाहावतिभारियं वा, गाहावति-भगिणिं वा, गाहावतिपुत्तं वा, गाहावतिधूयं वा, सुण्हं वा, धातिं वा, दासं वा, दासिं वा, कम्मकरं वा, कम्मकरिं वा से पुव्वामेव आलोएज्जा—

प०—"आउसो! त्ति वा, भगिणि! त्ति वा, दाहिसि मे एत्तो अण्णयरं भोजणजायं?

उ०—से सेवं वदंतस्स परो असणं वा-जाव-साइमं वा आहट्टु दलएज्जा, तहप्पगारं असणं वा-जाव-साइमं वा सयं वा णं जाएज्जा, परो वा से देज्जा, फासुयं-जाव-पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. २, सु. ३३७

यदि वह यह जाने कि जिनको देना था उनको दिया जा चुका है, अब वहाँ गृहस्वामी की पत्नी, बहन, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू, धायमाता, दास, दासी, नौकर या नौकरानी को भोज करते हुए देखकर पूछे कि—

प्र०—"हे आयुष्मन् गृहस्थ या बहन! क्या मुझे इस भोजन में से कुछ दोगी?"

उ०—ऐसा कहने पर वह गृहस्थ अशन—**यावत्**—स्वाद्य आहार लाकर साधु को दे तो इस प्रकार के अशन—**यावत्**—स्वाद्य की स्वयं याचना करे या वह गृहस्थ स्वयं दे तो प्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण करे।

आइण्ण अणाइण्ण संखडीए गमण विहि-णिसेहो—

आकीर्ण या अनाकीर्ण संखडी में जाने का विधि-निषेध—

४०. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा-आहेणं वा, पहेणं वा, हिंगोलं वा, संमेलं वा, हीरमाणं पेहाए।

१. अंतरा से मग्गा बहुपाणा-जाव-मक्कडा संताणगा।

२. बहवे तत्थ समण-जाव-वणीमगा उवागता उवागमिस्संति।

३. अच्चाइण्णा वित्ती।

४. णो पण्णस्स णिक्खमणपवेसाए।

५. णो पण्णस्स वायण-पुच्छण-परियट्टणाऽणुप्पेह-धम्माणुयोग-चिंताए।

४०. गृहस्थ के घर में भिक्षा के लिए प्रवेश करते समय भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि—वर के घर का भोजन, वधू के घर का भोजन, मृत व्यक्ति की स्मृति में बनाया गया भोजन, गोठ, पुत्र जन्म आदि के लिए बनाया गया भोजन, अन्यत्र ले जाया जा रहा है तथा—

(१) मार्ग में बहुत से प्राणी—यावत्—मकड़ी के जाले हैं।

(२) वहाँ बहुत से शाक्यादि-श्रमण—यावत्—भिखारी आदि आये हुए हैं और आयेंगे।

(३) संखडीस्थल जनता की भीड़ से अत्यन्त घिरा हुआ है।

(४) वहाँ प्राज्ञ साधु का निर्गमन प्रवेश का व्यवहार उचित नहीं है।

(५) वहाँ प्राज्ञ भिक्षु की वाचना, पृच्छना, पर्यटना, अनुप्रेक्षा, और धर्मकथारूप स्वाध्याय प्रवृत्ति नहीं हो सकती है।

से एवं णच्चा तहप्पगारं पुरेसंखडिं वा पच्छासंखडिं वा संखडिं संखडि पडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए ।

अतः यह जानकर भिक्षु इस प्रकार की पूर्व-संखडी या पश्चात् संखडी में संखडी की प्रतिज्ञा से जाने का मन में संकल्प न करे ।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गाहावइकुलं पिंडवाय-पडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा—आहेणं वा-जाव-संमेलं वा हीरमाणं पेहाए ।

भिक्षु या भिक्षुणी भिक्षा के लिए गृहस्थ के यहाँ प्रवेश करते समय यह जाने कि वर के घर का भोजन—यावत्—गोठ, पुत्र जन्म आदि का भोजन अन्यत्र ले जाया जा रहा है तथा—

१. अंतरा से मग्गा अप्पंडा-जाव-संताणगा,

(१) मार्ग में बहुत से प्राणी—यावत्—मकड़ी के जाले भी नहीं हैं ।

२. णो जत्थ बहवे समण-जाव-वणीमगा उवागता, उवागमिस्संति,

(२) बहुत से श्रमण—यावत्—भिक्षाचर अभी नहीं आये हैं और न आयेंगे ।

३. अप्पाइण्णा वित्ती,

(३) लोगों की भीड़ भी बहुत कम है ।

४. पण्णस्स णिक्खमण-पवेसाए,

(४) प्राज्ञ निर्गमन-प्रवेश कर सकता है ।

५. पण्णस्स वायण-पुच्छण-परियट्टणाऽणुप्पेह धम्माणुओग-चिंताए ।

(५) वहाँ प्राज्ञ साधु का वाचना पृच्छना आदि धर्मानुयोग चिन्तन हो सकता है ।

सेवं णच्चा तहप्पगारं पुरेसंखडिं वा, पच्छासंखडिं वा संखडिं संखडिपडियाए अभिसंधारेज्ज गमणाए ।

—आ० सु० २, अ० १, उ० ४, सु० ३४८

ऐसा जान लेने पर उस प्रकार की पूर्व संखडी या पश्चात् संखडी में संखडी की प्रतिज्ञा से जाने का विचार कर सकता है ।

संखडीगमणाए माइट्ठाणसेवणणिसेहो—

संखडी में जाने के लिए मायास्थान सेवन का निषेध—

४१. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा अण्णतरं संखडिं सोच्चा णिसम्म संपहावति उस्सुयभूतेणं अप्पाणेणं, धुवा संखडी । णो संचाएति तत्थ इतराइतरेहिं कुलेहिं सामुदाणियं एसियं वेसियं पिण्डवातं पडिगाहेत्ता आहारं आहारेत्तए । माइट्ठाणं संफासे । णो एवं करेज्जा ।

४१. भिक्षु या भिक्षुणी संखडी के विषय में सुनकर मन में विचार करके उत्सुक भावों से संखडी में जाने के लिए भिक्षा के असमय में जल्दी-जल्दी जाता है तो वह अन्यान्य घरों में सामुदानिक एषणीय व साधु के वेश से प्राप्त भिक्षा ग्रहण कर आहार नहीं कर सकेगा । ऐसा करना मायास्थान का सेवन करता है, अतः साधु ऐसा न करे ।

से तत्थ कालेण अणुपविसित्ता तत्थितराइतरेहिं कुलेहिं सामुदाणियं एसियं वेसियं पिण्डवातं पडिगाहेत्ता आहारं आहारेज्जा । —आ. सु. २, अ. १, उ. ३, सु. ३४१

भिक्षु को वहाँ समय पर ही भिक्षा के लिए प्रवेश कर विभिन्न कुलों से सामुदानिक एषणीय व वेष से प्राप्त निर्दोष भिक्षा ग्रहण कर आहार करना चाहिए ।

रत्तिं संखडिपडियाए गमणणिसेहो—

रात्रि में संखडी के लिए जाने का निषेध—

४२. नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा, राओ वा, वियाले वा संखडिं वा संखडिपडियाए एत्तए ।

—कप्प. उ. १, सु. ४७

४२. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को संखडी में संखडी के लिए भी रात्रि में या विकाल में जाना नहीं कल्पता है ।

संखडिपडियाए गमणस्स पायच्छित्तसुत्ताइं—

संखडी के लिए जाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

४३. जे भिक्खू संखडिपलोयणाए असणं वा-जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

४३. जो भिक्षु संखडी में खाद्य सामग्री को देखते हुए अशन—यावत्—स्वाद्य आहार को ग्रहण करता है, ग्रहण करवाता है, ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. ३, सु. १४

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

जे भिक्खू आहेणं वा-जाव-संमेलं वा अन्नयरं वा तहप्पगारं विरूवरूवं हीरमाणं पेहाए ताए आसाए, ताए पिवासाए तं रयणि अण्णत्थ उवाइणावेइ, उवाइणावंतं साइज्जइ ।

जो भिक्षु वर के घर का भोजन—यावत्—गोठ आदि का भोजन तथा अन्य भी ऐसे विविध प्रकार के भोजन को ले जाते हुए देखकर उसकी आशा से, अभिलाषा से जहाँ ठहरा है, वहाँ से दूसरी जगह रात्रि विश्राम करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । —नि. उ. ११, सु. ८०

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

सागारिक—१२

सागारियस्स असणाइ गहणणिसेहो—

४४. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा जस्सुवस्सए संवसेज्जा तस्स पुव्वामेव णामगोत्तं जाणेज्जा, तओ पच्छा तस्स गिहे णिमंतेमाणस्स वा, अणिमंतेमाणस्स वा असणं वा-जाव-साइमं वा अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा ।

—आ० सु० २, अ० २, उ० ३, सु० ४४६

सागारिक के अशनादि ग्रहण का निषेध—

४४. भिक्षु या भिक्षुणी जिसके उपाश्रय में निवास करे, उसका नाम और गोत्र पहले से जान लें । उसके पश्चात् उसके घर में निमंत्रित करने या न करने पर भी अशन—यावत्—स्वाद्य आहार अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करें ।

पारिहारिय सागारियस्स णिण्णओ—

४५. सागारिए उवस्सयं वक्कएणं पउंजेज्जा, से य वक्कइयं वएज्जा—"इमम्मि इमम्मि य ओवासे समणा निग्गंथा परिवसंति"

से सागारिए पारिहारिए ।

से य नो वएज्जा, वक्कइए वएज्जा, से सागारिए पारिहारिए ।

दो वि ते वएज्जा, दो वि सागारिया पारिहारिया ।

सागारिए उवस्सयं विक्किणेज्जा, से य कइयं वएज्जा—"इमम्मि य इमम्मि य ओवासे समणा निग्गंथा परिवसंति"

से सागारिए पारिहारिए ।

से य नो वएज्जा, कइए वएज्जा, से सागारिए पारिहारिए ।

दो वि ते वएज्जा, दो वि सागारिया पारिहारिया ।

—वव. उ. ७, सु. २२-२३

एगे सागारिए पारिहारिए ।

दो, तिण्णि, चत्तारि, पंच सागारिया पारिहारिया ।

परिहरणीय शय्यातर का निर्णय—

४५. यदि उपाश्रय किराये पर दे और किराये पर लेने वाले को यह कहे कि—"इतने-इतने स्थान में श्रमण निर्ग्रन्थ रह रहे हैं—

इस प्रकार कहने वाला गृहस्वामी सागारिक है, अतः उसके घर आहारादि लेना नहीं कल्पता है ।

यदि शय्यातर कुछ न कहे—किन्तु किराये पर लेने वाला कहे तो—वह सागारिक है, अतः परिहार्य है ।

यदि किराये पर देने वाला और लेने वाला दोनों कहें तो दोनों सागारिक हैं, अतः दोनों परिहार्य हैं ।

सागारिक यदि उपाश्रय बेचे और खरीदने वाले को यह कहे कि—"इतने-इतने स्थान में श्रमण निर्ग्रन्थ रहते हैं ।"

तो वह सागारिक है, अतः वह परिहार्य है ।

यदि उपाश्रय का विक्रेता कुछ न कहे किन्तु खरीदने वाला कहे तो वह सागारिक है, अतः वह परिहार्य है ।

यदि विक्रेता और क्रेता दोनों कहें तो दोनों सागारिक हैं, अतः दोनों परिहार्य हैं ।

जिस उपाश्रय का एक स्वामी हो वह एक सागारिक पारिहारिक है ।

जिस उपाश्रय के दो, तीन, चार या पांच स्वामी हों, वे सब सागारिक पारिहारिक हैं ।

एगं तत्थ कप्पागं ठवइत्ता अवसेसे निव्विसेज्जा ।

—कप्प. उ. २, सु. १३

वहाँ एक को कल्पाक-सागारिक स्थापित करके उसे पारिहारिक मानना चाहिए और शेष घरों में आहारादि लेने के लिए जावें ।

संसट्ठ-असंसट्ठ सागारिय-पिंडगहणस्स विहि-णिसेहो—

४६. नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा, सागारियपिण्डं बहिया अनीहडं, असंसट्ठं वा, संसट्ठं वा पडिग्गाहित्तए ।

नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा—सागारियपिण्डं बहिया नीहडं असंसट्ठं पडिग्गाहित्तए ।

कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा—सागारियपिण्डं बहिया नीहडं संसट्ठं पडिग्गाहित्तए ।

—कप्प. उ. २, सु. १४-१६

संसृष्ट असंसृष्ट शय्यातर पिंड के ग्रहण का विधि-निषेध—

४६. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को सागारिक-पिण्ड जो बाहर नहीं निकाला गया है, चाहे वह अन्य किसी ने स्वीकार किया है या नहीं किया है तो लेना नहीं कल्पता है ।

निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को सागारिक-पिण्ड जो बाहर तो निकाला गया है, किन्तु अन्य ने स्वीकार नहीं किया है तो लेना नहीं कल्पता है ।

निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को सागारिक पिण्ड जो घर से बाहर भी ले जाया गया है और अन्य ने स्वीकार भी कर लिया है तो ग्रहण करना कल्पता है ।

सागारिय असंसट्ठपिंडस्स संसट्ठकरावण णिसेहो पायच्छित्तं च—

४७. नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा—सागारियपिण्डं बहिया नीहडं असंसट्ठं संसट्ठं करित्तए ।

जो खलु निग्गंथो वा, निग्गंथी वा—सागारियपिण्डं बहिया नीहडं असंसट्ठं संसट्ठं करेइ करंतं वा साइज्जइ ।

से दुहओ विइक्कममाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । —कप्प. उ. २, सु. १७-१८

शय्यातर के असंसृष्ट पिंड के संसृष्ट कराने का निषेध व प्रायश्चित्त—

४७. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को घर से बाहर ले जाया गया सागारिक-पिण्ड जो अन्य ने स्वीकार नहीं किया है उसे स्वीकृत कराना नहीं कल्पता है ।

जो निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थी घर के बाहर ले जाये गये सागारिक-पिण्ड जो अन्य से स्वीकृत नहीं है उसे स्वीकृत करता है, कराता है या कराने वाले का अनुमोदन करता है ।

वह लौकिक और लोकोत्तर दोनों मर्यादा का अतिक्रमण करता हुआ चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) का पात्र होता है ।

सागारिय आहडिया गहणस्स विहि-णिसेहो—

४८. सागारियस्स आहडिया सागारिएणं पडिग्गहिया, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए ।

सागारियस्स आहडिया सागारिएणं अपडिग्गाहिया, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए ।

—कप्प. उ. २, सु. १९-२०

शय्यातर के घर आये आहार के ग्रहण का विधि-निषेध—

४८. अन्य घर से आये हुए आहार को सागारिक ने अपने घर पर ग्रहण कर लिया है और वह उसमें से साधु को दे तो लेना नहीं कल्पता है ।

किन्तु अन्य घर से लाये हुए आहार को सागारिक ने अपने घर पर ग्रहण नहीं किया है । यदि आहार लाने वाला उस आहार में से साधु को दे तो लेना कल्पता है ।

सागारिय णीहडिया गहणस्स विहि-णिसेहो—

४९. सागारियस्स नीहडिया परेण अपडिग्गहिया, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए ।

सागारियस्स नीहडिया परेण पडिग्गहिया, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए । —कप्प. उ. २, सु. २१-२२

शय्यातर के अन्यत्र भेजे गये आहार को ग्रहण करने का विधि-निषेध—

४९. सागारिक के घर से अन्य घर पर ले जाये गये आहार को उस गृहस्वामी ने स्वीकार नहीं किया है । उस आहार में से साधु को दे तो लेना नहीं कल्पता है ।

किन्तु सागारिक के घर से अन्य घर पर ले जाये गये आहार को उस गृह-स्वामी ने स्वीकार कर लिया है । यदि वह उस आहार में से साधु को दे तो लेना कल्पता है ।

सागारिय अंसजुत्त आहारगहणस्स विहि-णिसेहो—

५० सागारियस्स अंसियाओ—

१. अविभत्ताओ,
२. अव्वोच्छिन्नाओ,
३. अव्वोगडाओ,
४. अनिज्जूढाओ।

तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहित्तए।

सागारियस्स अंसियाओ विभत्ताओ, वोच्छिन्नाओ, वोगडाओ, निज्जूढाओ,

तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

—कप्प. उ. २, सु. २३-२४

शय्यातर के अंशयुक्त आहार ग्रहण का विधि-निषेध—

५०. (सागारिक तथा अन्य व्यक्तियों के लिए संयुक्त निष्पन्न भोजन में से) सागारिक का अंश (विभाग) यदि—

(१) अविभक्त—(विभाग निश्चित नहीं किया गया हो।)
(२) अव्यवच्छिन्न—(विभाग न किया गया हो।)
(३) अव्याकृत—(निर्धारित कर अलग न किया गया हो।)
(४) अनिर्यूढ—(विभाग बाहर न निकाला गया हो)

ऐसे आहार में से साधु को कोई दे तो लेना नहीं कल्पता है।

किन्तु सागारिक के अंश युक्त आहारादि का यदि—
(१) विभाग निश्चित हो, (२) विभाग कर दिया हो,
(३) उसे अलग कर दिया हो,
(४) विभाग बाहर निकाला गया हो,

शेष आहार में से साधु को कोई दे तो लेना कल्पता है।

पूयाभत्तस्स गहणस्स विहि-णिसेहो—

५१. सागारियस्स पूयाभत्ते उद्देसिए, चेइए, पाहुडियाए, सागारियस्स उवगरणजाए निट्ठिए, निसट्ठे, पाडिहारिए,

तं सागारिओ देज्जा, सागारियस्स परिजणो देज्जा, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स पूयाभत्ते उद्देसिए, चेइए, पाहुडियाए, सागारियस्स उवगरणजाए निट्ठिए, निसट्ठे पाडिहारिए।

तं नो सागारियो देज्जा, नो सागारियस्स परिजणो देज्जा, सागारियस्स पूया देज्जा, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहित्तए।

सागारियस्स पूयाभत्ते उद्देसिए, चेइए पाहुडियाए, सागारियस्स उवगरणजाए निट्ठिए निसट्ठे अपाडिहारिए।

तं सागारिओ देइ, सागारिअस्स परिजणो देइ। तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहित्तए।

सागारियस्स पूयाभत्ते उद्देसिए-चेइए पाहुडियाए, सागारियस्स उवगरणजाए णिट्ठिए, निसट्ठे, अपाडिहारिए।

तं नो सागारिओ देइ, नो सागारियस्स परिजणो देइ, सागारियस्स पूया देइ, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

—कप्प, उ. २, सु. २५-२८

पूज्य पुरुषों के आहार के ग्रहण करने के विधि-निषेध—

५१. सागारिक ने अपने पूज्य पुरुषों को भेंट देने के उद्देश्य से जो आहार अपने उपकरणों में बनाया है और उन्हें प्रातिहारिक दिया है।

उस आहार में से यदि सागारिक या उसके परिजन दें तो साधु को लेना नहीं कल्पता है।

सागारिक ने अपने पूज्य पुरुषों को भेंट देने के उद्देश्य से जो आहार अपने उपकरणों में बनाया है और उन्हें प्रातिहारिक दिया है।

उस आहार में से न सागारिक दे और न सागारिक के परिजन दें किन्तु सागारिक के पूज्य पुरुष दें तो भी साधु को लेना नहीं कल्पता है।

सागारिक ने अपने पूज्य पुरुषों को भेंट देने के उद्देश्य से जो आहार अपने उपकरणों में बनवाया है और उन्हें अप्रातिहारिक दिया है।

यदि उस आहार में से सागारिक या उसके परिजन दें तो साधु को लेना नहीं कल्पता है।

सागारिक ने अपने पूज्य पुरुषों को भेंट देने के लिए जो आहार अपने उपकरणों में बनवाया है और उन्हें अप्रातिहारिक दिया है।

उस आहार में से न सागारिक दे और न सागारिक के परिजन दें किन्तु सागारिक के पूज्य पुरुष दें तो लेना कल्पता है।

सागारिय-आगंतुग-निमित्त-आहारगहणस्स विहि-णिसेहो—

५२. सागारियस्स आएसे अन्तोवगडाए भुंजइ, निट्ठिए, निसट्ठे, पाडिहारिए, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स आएसे अंतोवगडाए भुंजइ, निट्ठिए निसट्ठे अपाडिहारिए तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स आएसे बाहिं वगडाए भुंजइ निट्ठिए निसट्ठे पाडिहारिए तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स आएसे बाहिं वगडाए भुंजइ निट्ठिए निसट्ठे अपाडिहारिए तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

—वव. उ. ९, सु. १-४

शय्यातर के आगन्तुक निमित्तक आहार के ग्रहण का विधि-निषेध—

५२. शय्यातर के यहाँ कोई आगन्तुक के लिये घर के भीतरी विभाग में आहार बनाया गया है उन्हें खाने के लिए प्रातिहारिक रूप से दिया गया है। उस आहार में से वे आगन्तुक दें तो साधु को लेना नहीं कल्पता है।

शय्यातर के यहाँ कोई आगन्तुक के लिये घर के भीतरी विभाग में आहार बनाया गया है उन्हें खाने के लिये अप्राति-हारिक रूप से दिया गया है उस आहार में से वे आगन्तुक दें तो साधु को लेना कल्पता है।

शय्यातर के यहाँ कोई आगन्तुक के लिये घर के बाह्य भाग में आहार बनाया गया है व उन्हें खाने के लिए प्रातिहारिक रूप से दिया गया है उस आहार में से वे आगन्तुक को दें तो साधु को लेना नहीं कल्पता है।

शय्यातर के यहाँ कोई आगन्तुक के लिये घर के बाह्य भाग में आहार बनाया गया है व उन्हें खाने के लिए अप्रातिहारिक रूप से दिया गया है, उस आहार में से वे आगन्तुक दें तो साधु को लेना कल्पता है।

सागारिय-दासाइ-निमित्त-आहार-गहणस्स विहि-णिसेहो—

५३. सागारियस्स दासे वा, पेसे वा, भयए वा, भइन्नए वा अंतो वगडाए भुंजइ, निट्ठिए, निसट्ठे, पाडिहारिए, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स दासे वा, पेसे वा, भयए वा, भइन्नए वा अंतो वगडाए भुंजइ, निट्ठिए, निसट्ठे, अपाडिहारिए, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स दासे वा, पेसे वा, भयए वा भइन्नए वा बाहिं वगडाए भुंजइ, निट्ठिए, निसट्ठे, पाडिहारिए, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स दासे वा, पेसे वा, भयए वा भइन्नए वा बाहिं वगडाए भुंजइ, निट्ठिए, निसट्ठे, अपाडिहारिए, तम्हा दावए एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

—वव. उ. ९, सु. ५-८

शय्यातर के दासादि निमित्तक आहार के ग्रहण का विधि-निषेध—

५३. सागारिक के दास, प्रेष्य, भृतक और नौकर के लिए आहार बना है व उसे प्रातिहारिक दिया है वह उसके घर के भीतरी भाग में जीमता है उस आहार में से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को दे तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है।

सागारिक के दास, प्रेष्य, भृतक और नौकर के लिए आहार बना है व उसे अप्रातिहारिक दे दिया है। वह घर के भीतरी भाग में जीमता है, उस आहार में से दे तो साधु को लेना कल्पता है।

सागारिक के दास, प्रेष्य, भृतक और नौकर के लिए आहार बना है व उसे प्रातिहारिक दे दिया है। वह घर के बाह्य भाग में जीमता है। उस आहार में से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को दे तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है।

सागारिक के दास, प्रेष्य, भृतक और नौकर के लिए सागारिक के घर पर आहार बना है व उसे अप्रातिहारिक दे दिया है। वह घर के बाह्य भाग में जीमता है। उस आहार में से दे तो साधु को लेना कल्पता है।

सागारियोपजीवी-णायगाणं आहार गहणस्स णिसेहो—

५४. सागारियस्स नायए सिया सागारियस्स एगवगडाए अंतो एगपयाए सागारियं चोवजीवइ, तम्हा दावए, नो से कप्पइ

शय्यातर के उपजीवी ज्ञातिजन निमित्तक आहार के ग्रहण का निषेध—

५४. सागारिक का स्वजन यदि सागारिक के घर में सागारिक के एक ही चूल्हे पर सागारिक की ही सामग्री से आहार निष्पन्न

पडिग्गाहेत्तए।

कर जीवन निर्वाह करता है। यदि उस आहार में से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को देता है तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है।

सागारियस्सणायए सिया सागारियस्स एगवगडाए अंतो सागारियस्स अभिनिपयाए सागारियं चोवजीवइ, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारिक का स्वजन यदि सागारिक के घर में ही सागारिक के चूल्हे से भिन्न चूल्हे पर सागारिक की ही सामग्री से आहारादि निष्पन्न कर जीवन निर्वाह करता है। यदि उस आहार में से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को देता है तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है।

सागारियस्सणायए सिया सागारियस्स एगवगडाए बाहिं सागारियस्स एगपयाए सागारियं चोवजीवइ, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारिक का स्वजन यदि सागारिक के घर में बाह्य विभाग में सागारिक के ही चूल्हे पर सागारिक की ही सामग्री से आहार निष्पन्न कर उससे जीवन निर्वाह करता है। यदि उस आहार में से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को देता है तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है।

सागारियस्सणायए सिया सागारियस्स एगवगडाए बाहिं सागारियस्स अभिनिपयाए सागारियं चोवजीवइ, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारिक का स्वजन यदि सागारिक के घर के बाह्य सागारिक के चूल्हे से भिन्न चूल्हे पर सागारिक की ही सामग्री से आहार निष्पन्न कर जीवन निर्वाह करता है। यदि उस आहार में से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को देता है तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है।

सागारियस्सणायए सिया सागारियस्स अभिनिव्वगडाए एगदुवाराए एगनिक्खमण-पवेसाए अंतो सागारियस्स एगपयाए सागारियं चोवजीवइ, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारिक का स्वजन यदि सागारिक के घर के भिन्न गृह विभाग में तथा एक निष्क्रमण-प्रवेश द्वार वाले गृह में सागारिक के ही चूल्हे पर सागारिक की ही सामग्री से आहार निष्पन्न कर जीवन निर्वाह करता है। यदि उस आहार में से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को देता है तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है।

सागारियस्सणायए सिया सागारियस्स अभिनिव्वगडाए एगनिक्खमण-पवेसाए अंतो सागारियस्स अभिनिपयाए सागारियं चोवजीवइ, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारिक का स्वजन यदि सागारिक के घर के भिन्न गृह विभाग में तथा एक निष्क्रमण-प्रवेश-द्वार वाले गृह में सागारिक के चूल्हे से भिन्न चूल्हे पर सागारिक की ही सामग्री से आहार निष्पन्न कर जीवन निर्वाह करता है। यदि उस आहार में से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को दे तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है।

सागारियस्सणायए सिया सागारियस्स अभिनिव्वगडाए एगदुवाराए एगनिक्खमण-पवेसाए बाहिं सागारियस्स एगपयाए सागारियं चोवजीवइ, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारिक का स्वजन यदि सागारिक के गृह से भिन्न गृह विभाग में तथा एक निष्क्रमण-प्रवेश-द्वार वाले गृह के बाह्य भाग में सागारिक के चूल्हे पर सागारिक की ही सामग्री से आहार निष्पन्न कर जीवन निर्वाह करता है। यदि उस आहार में से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को देता है तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है।

सागारियस्सणायए सिया सागारियस्स अभिनिव्वगडाए एगदुवाराए एगनिक्खमण-पवेसाए, बाहिं सागारियस्स अभिनिपयाए सागारियं चोवजीवइ, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। —वव. उ. ९, सु. ९-१६

सागारिक का स्वजन यदि सागारिक के गृह से भिन्न गृह विभाग में तथा एक निष्क्रमण-प्रवेश-द्वार वाले गृह के बाह्य भाग में सागारिक के चूल्हे से भिन्न चूल्हे पर सागारिक की ही सामग्री से आहार निष्पन्न कर जीवन निर्वाह करता है। यदि उस आहार में से निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को देता है तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है।

सागारिय साहारण पिंड गहणस्स विहि-णिसेहो—

शय्यातर के सीरवाली के पदार्थों को ग्रहण करने का विधि-निषेध—

५५. सागारियस्स चक्कियासाला साहारण वक्कयपउत्ता, तम्हा

५५. सागारिक के सीरवाली चक्रिकाशाला (तेल की दुकान)

दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स चक्कियासाला निस्साहारण-वक्कय-पउत्ता, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स गोलियसाला साहारण वक्कयपउत्ता, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स गोलियसाला निस्साहारण वक्कयपउत्ता, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स बोधियसाला साहारण वक्कयपउत्ता, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स बोधियसाला निस्साहारण वक्कयपउत्ता, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स दोसियसाला साहारण वक्कयपउत्ता, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स दोसियसाला निस्साहारण वक्कयपउत्ता, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स सोत्तियसाला साहारण वक्कयपउत्ता, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स सोत्तियसाला निस्साहारण वक्कयपउत्ता, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स बोंडियसाला साहारण वक्कयपउत्ता, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स बोंडियसाला निस्साहारण वक्कयपउत्ता, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स गन्धियसाला साहारण वक्कयपउत्ता, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

में से सागारिक का साझीदार निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को तेल देता है तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है।

सागारिक के सीर वाली चक्रिकाशाला (तेल की दुकान) में से सागारिक का साझीदार सागारिक के बिना सीर का तेल देता है तो साधु को लेना कल्पता है।

सागारिक की सीर वाली गुड़ की दुकान में से सागारिक का साझीदार निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को गुड़ देता है तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है।

सागारिक की सीर वाली गुड़ की दुकान में से सागारिक का साझीदार सागारिक के बिना सीर का गुड़ देता है तो साधु को लेना कल्पता है।

सागारिक की सीर वाली बोधियशाला (किराणे की दुकान) में से सागारिक का साझीदार निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को किराणे की वस्तु देता है तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है।

सागारिक की सीर वाली बोधियशाला (किराणे की दुकान) में से सागारिक का साझीदार बिना सीर की किराणे की वस्तु देता है तो उन्हें लेना कल्पता है।

सागारिक की सीर वाली दोसियशाला (कपड़े की दुकान) में से सागारिक का साझीदार निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को वस्त्र देता है तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है।

सागारिक की सीर वाली दोसियशाला (कपड़े की दुकान) में से सागारिक का साझीदार सागारिक के बिना सीर का कपड़ा देता तो साधु को लेना कल्पता है।

सागारिक की सीर वाली सूत की दुकान में से सागारिक का साझीदार निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को सूत देता है तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है।

सागारिक की सीर वाली सूत की दुकान में से सागारिक का साझीदार सागारिक के बिना सीर का सूत देता है तो साधु को लेना कल्पता है।

सागारिक के सीर वाली बोंडियशाला (रूई की दुकान) में से सागारिक का साझीदार निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को रूई देता है तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है।

सागारिक की सीर वाली रूई की दुकान में से सागारिक का साझीदार सागारिक के बिना सीर की रूई देता है, तो लेना कल्पता है।

सागारिक के सीर वाली गन्धियशाला में से सागारिक का साझीदार निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को सुगन्धित पदार्थ देता है तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है।

सागारियस्स गंधियसाला निस्साहारण वक्कयपउत्ता, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

—वव. उ. ९, सु. १७-३०

सागारिक के सीर वाली गन्धियशाला में से सागारिक का साझीदार सागारिक के बिना सीर का सुगन्धित पदार्थ देता है, तो साधु को लेना कल्पता है।

सागारिय साहारण ओसहि गहणस्स विहि-णिसेहो—

शय्यातर के सीरवाली भोजन सामग्री के ग्रहण का विधि-निषेध—

५६. सागारियस्स ओसहीओ संथडाओ, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए।

सागारियस्स ओसहीओ असंथडाओ, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिग्गाहेत्तए। —वव. उ. ९, सु. ३३-३४

५६. सागारिक के सीर वाली औषधियों (खाद्य सामग्री) में से यदि कोई निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को देता है तो लेना नहीं कल्पता है।

सागारिक से बँटवारे में प्राप्त खाद्य सामग्री में से कोई देता है तो साधु को लेना कल्पता है।

सागारिय साहारण अंब-फल गहणस्स विहि-णिसेहो—

शय्यातर के सीरवाली के आम्र फल ग्रहण करने का विधि-निषेध—

५७. सागारियस्स अम्बफला संथडाओ, तम्हा दावए, नो से कप्पइ पडिगाहेत्तए।

सागारियस्स अम्बफला असंथडा, तम्हा दावए, एवं से कप्पइ पडिगाहेत्तए। —वव. उ. ९, सु. ३५-३६

५७. सागारिक के सीरवाले आम्र आदि फलों में से यदि कोई निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को देता है तो उन्हें लेना नहीं कल्पता है।

सागारिक से बंटवारे में प्राप्त आम्र आदि फल यदि कोई निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को देता है तो उन्हें लेना कल्पता है।

सागारियपिंड भुंजमाणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

सागारिक का आहार भोगने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५८. जे भिक्खू सागारिय-पिंडं भुंजइ, भुंजंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. २, सु. ४६

५८. जो भिक्षु सागारिक के पिण्ड को भोगता है, भोगवाता है या भोगने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सागारियपिंड गिण्हमाणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

सागारिक का आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

५९. जे भिक्खू सागारिय-पिण्डं गिण्हइ, गिण्हंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. २, सु. ४७

५९. जो भिक्षु शय्यातर के आहार को ग्रहण करता है, करवाता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सागारियकुलं अजाणिय भिक्खा-गमणपायच्छित्त सुत्तं—

शय्यातर का घर जाने बिना भिक्षा गमन का प्रायश्चित्त सूत्र—

६०. जे भिक्खू सागारिय-कुलं अजाणिय, अपुच्छिय, अगवेसिय, पुव्वामेव पिण्डवायपडियाए अणुपविसइ, अणुप्पविसंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. २, सु. ४८

६०. जो भिक्षु सागारिक के गृह को जाने बिना, पूछे बिना और गवेषणा किये बिना आहार के लिए प्रवेश करता है, प्रवेश करवाता है या प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सागारियणिस्साए असणाइ जायमाणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

सागारिक की निश्रा में अशनादि की याचना का प्रायश्चित्त सूत्र—

६१. जे भिक्खू सागारिय णिस्साए असणं वा पाणं वा खाइमं वा

६१. जो भिक्षु सागारिक की निश्रा में (दूसरे घर से) अशन,

साइमं वा ओभासिय ओभासिय जायइ, जायंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. २, सु. ४१

पान, खादिम, स्वादिम आहार की याचना करता है, करवाता है या याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पाणैषणा—२

प्राक्कथन—

आगमों में अनेक प्रकार के अचित्त एवं एषणीय पानी लेने के विधान हैं।

सचित्त एवं अनेषणीय पानी लेने का निषेध है।

पानी दो प्रकार के होते हैं—(१) लेने योग्य पानी, (२) न लेने योग्य पानी।

(१) लेने योग्य पानी के १० नाम हैं— —आ. सु. २, अ. १, उ. ७, सु. ३६९-३७०; दश. अ. ५, उ. १, गा. १०६

(२) न लेने योग्य पानी के १२ नाम हैं— —आ. सु. २, अ. १, उ. ८, सु. ३७३

लेने योग्य पानी के आगम पाठ में और न लेने योग्य पानी के आगम पाठ में निश्चित संख्या सूचित नहीं है।

लेने योग्य पानी के आगम पाठ में अन्य भी ऐसे लेने योग्य पानी लेने का विधान है।

इसी प्रकार न लेने योग्य पानी के आगम पाठ में अन्य भी ऐसे न लेने योग्य पानी लेने का निषेध है।

पानी शस्त्र परिणत होने पर भी तत्काल अचित्त नहीं होता है, अतः वह लेने योग्य नहीं है। वही पानी कुछ समय बाद अचित्त होने पर लेने योग्य हो जाता है।

फल आदि धोये हुए अचित्त पानी में यदि बीज गुठली आदि हों तो ऐसा पानी छान करके दें तो भी वह लेने योग्य नहीं है।

धोवणपाणी सूचक आगम पाठ—

(१) दशवैकालिक अ. ५, उ. १, गा. १०६ में तीन प्रकार के धोवन पानी लेने योग्य कहे हैं। इनमें दो धोवन पानी आचारांग सु. २, अ. १, उ. ७, सू. ३६९ के अनुसार कहे गये हैं और एक, "वार धोयणं" अधिक है।

(२) उत्तराध्ययन अ. १५, गा. १३ में तीन प्रकार के धोवन कहे गये हैं। इन तीनों का कथन आ. सु. २, अ. १, उ. ७ सू. ३६९-३७० में है।

(३) आचारांग सु. २, अ. १, उ. ७, सू. ३७० में अल्पकाल का धोवन लेने का निषेध है, अधिक काल का बना हुआ धोवन लेने का विधान है। तथा गृहस्थ के कहने पर स्वतः लेने का विधान है।

(४) आ. सु. २, अ. १, उ. ८, सु. ३७३ में अनेक प्रकार के धोवन पानी का कथन है। इनमें बीज, गुठली आदि हो तो ऐसे पानी को छान करके देने पर भी लेने का निषेध है।

(५) निशीथ उ. १७, सू. १३२ में अल्पकाल का धोवन लेने पर प्रायश्चित्त विधान है। अधिक काल का धोवन लेने पर प्रायश्चित्त नहीं है। यहाँ ग्यारह ग्राह्य पानी के नाम हैं।

(६) ठाणं. अ. ३, उ. ३, सू. १८८ में चउत्थ, छट्ठ, अट्ठम तप में ३-३ प्रकार के ग्राह्य पानी का विधान है। इन नव का कथन आ. सु. २, अ. १, उ. ७, सू. ३६९-७० में है।

(७) दशवैकालिक अ. ८, गा. ६ में उष्णोदक ग्रहण करने का विधान है।

आचारांग व निशीथ में वर्णित "सुद्ध वियड" इससे भिन्न है क्योंकि तत्काल बने शुद्ध वियड ग्रहण करने का प्रायश्चित्त कहा गया है अतः उसे अचित्त शीतल जल ही समझना चाहिये।

आगमों में वर्णित ग्राह्य अग्राह्य धोवन पानी के संक्षिप्त अर्थ इस प्रकार हैं—

११ प्रकार के ग्राह्य धोवन पानी -

(१) **उस्सेदिम** आटे से लिप्त हाथ या बर्तन का धोवण।

(२) **संस्वेदिम**—उबाले हुए तिल, पत्र-शाक आदि का धोया हुआ जल।

(३) **तन्दुलोदक**—चावलों का धोवण।

(४) **तिलोदक**—तिलों का धोवण।

(५) **तुषोदक**—भूसी का धोवण।

(६) **जवोदक**—जौ का धोवन।

(७) **आयाम**—अवश्रावण—उबाले हुए चावलों का पानी—मांड आदि।

(८) **सौवीर**—कांजी का जल।

(९) **सुद्ध विकट**—हरड बहेड़ा आदि से प्रासुक बनाया जल।

(१०) **वारोदक**—गुड़ आदि के घड़े आदि का धोया जल।

(११) **आम्ल कांजिक**—खट्टे पदार्थों का धोवण।

१२ प्रकार के अग्राह्य धोवण पानी—

(१) **आम्रोदक**—आम्र धोया हुआ पानी।

(२) **अम्बाडोदक**—आम्रातक (फल विशेष) धोया हुआ पानी।

(३) **कपित्थोदक**—कैंथ या कविठ का धोवन।

(४) **बीजपूरोदक**—बिजोरे का धोया हुआ पानी।

(५) **द्राक्षोदक**—दाख का धोवन।

(६) **दाडिमोदक**—अनार का धोया हुआ पानी।

(७) **खर्जू रोदक**—खजूर का धोया हुआ पानी।

(८) **नालिकेरोदक**—नारियल का धोया हुआ पानी।

(९) **करीरोदक**—कैर का धोया हुआ पानी।

(१०) **बदिरोदक**—बेरों का धोवन पानी।

(११) **आमलोदक**—आंवले का धोया जल।

(१२) **चिंचोदक**—इमली का धोया जल।

इनके सिवाय गर्म जल भी ग्राह्य कहा गया है।

फासुग पाणग गहणविही—

६२. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण पाणगजायं जाणेज्जा, तं जहा—

अचित्त जल ग्रहण विधि—

६२. गृहस्थ के यहाँ गोचरी के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी अगर इस प्रकार का पानी जाने, जैसे कि—

१. तिलोदगं वा, २. तुसोदगं वा,
३. जवोदगं वा,[1] ४. आयामं वा,
५. सोवीरं वा, ६. सुद्धवियडं वा[2],
अण्णतरं वा, तहप्पगारं पाणगजायं पुव्वामेव आलोएज्जा —

प० —"आउसो त्ति वा ! भगिणि त्ति वा ! दाहिसि मे एत्तो अण्णतरं पाणगजायं ?"

से सेवं वदंतं परो वदेज्जा—

उ०—"आउसंतो समणा ! तुमं चेवेदं पाणगजायं पडिग्गहेण वा, उस्सिंचियाणं ओयत्तियाणं वा गिण्हाहि।" तहप्पगारं पाणगजायं सयं वा गेण्हेज्जा,

परो वा से देज्जा, फासुयं-जाव-पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ७, सु. ३७०

(१) तिलों का (धोया हुआ) पानी, (२) तुषोदक, (३) यवोदक, (४) उबले हुए चावलों का ओसामण (माँड), (५) कांजी का जल, (६) प्रासुक शीतल जल अथवा अन्य भी इसी प्रकार का धोया हुआ पानी (धोवन) है, उसे देखकर पहले ही साधु गृहस्थ से कहे —

प्र० —"आयुष्मान् ! गृहस्थ या बहन ! क्या मुझे इन जलों (धोवन पानी) में से कोई जल दोगे ?"

साधु के इस प्रकार कहने पर वह गृहस्थ यदि कहे कि—

उ०—"आयुष्मन् श्रमण ! जल पात्र में रखे हुए पानी को आप स्वयं अपने पात्र से भरकर या जल के बर्तन को टेढ़ा कर ले लीजिए।" गृहस्थ के इस प्रकार कहने पर साधु उस पानी को स्वयं ले ले।

अथवा गृहस्थ स्वयं देता हो तो उसे प्रासुक जान कर —यावत्—ग्रहण कर ले।

गिलाण णियंठस्स कप्पणिओ वियडदत्तीओ—

६३. णिग्गंथस्स णं गिलायमाणस्स कप्पंति तओ वियडदत्तीओ पडिग्गाहित्तए, तं जहा—

उक्कोसा,

मज्झिमा,

जहण्णा।

—ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८०

ग्लान निर्ग्रन्थ के लिए कल्पनीय विकट दत्तियाँ—

६३. ग्लान (रुग्ण) निर्ग्रन्थ साधु को तीन प्रकार की दत्तियाँ लेनी कल्पती हैं—

(१) उत्कृष्ट दत्ति—पर्याप्त जल या कल्मी चावल की काँजी।

(२) मध्यम दत्ति—अनेक बार किन्तु अपर्याप्त जल और साठी चावल की काँजी।

(३) जघन्य दत्ति—एक बार पी सके उतना जल, तृण धान्य की काँजी या उष्ण जल।

---

१ (क) यहाँ ये तीन प्रकार के पानी लेने का सामान्य विधान है।
(ख) छट्ठभत्तितस्स णं भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहेत्तए, तं जहा—तिलोदए, तुसोदए, जवोदए।
—ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८८

आचारांग की अपेक्षा यह विशेष सूत्र है।

(ग) वासावासं पज्जोसवियस्स छट्ठभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पति तओ पाणगाइं पडिग्गाहित्तए तं जहा—तिलोदगं, तुसोदगं, जवोदगं। —दसा. द. ८, सु. ३२

स्थानांग की अपेक्षा यह विशेष सूत्र है।

२ (क) यहाँ ये तीन प्रकार के पानी लेने का सामान्य विधान है।
(ख) अट्ठमभत्तियस्स णं भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहेत्तए, तं जहा—आयामए, सोवीरए, सुद्धवियडे।
—ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८८

आचारांग की अपेक्षा यह विशेष विधान है।

(ग) वासावासं पज्जोसवियस्स अट्ठमभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिग्गाहित्तए तं जहा—आयामं, सोवीरं, सुद्धवियडं। —दसा. द. ८, सु. ३२

अफासुग पाणग गहण णिसेहो—

६४. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण पाणगजायं जाणेज्जा—अणंतरहियाए पुढवीए-जाव-मक्कडा-संताणए ओहट्टु णिक्खित्ते सिया ।

अस्संजते भिक्खुपडियाए उदउल्लेण वा, ससणिद्धेण वा, सकसाएण वा मत्तेण, सीतोदएण वा संभोएत्ता, आहट्टु दलएज्जा । तहप्पगारं पाणगजायं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा । —आ० सु० २, अ० १, उ० ७, सु० ३७१

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण पाणगजायं जाणेज्जा, तं जहा—

७. अंबपाणगं वा, ८. अंबाडगपाणगं वा,
९. कविट्ठपाणगं वा, १०. माउलिंगपाणगं वा,
११. मुद्दियापाणगं वा, १२. दालिमपाणगं वा,
१३. खज्जूरपाणगं वा, १४. णालिएरपाणगं वा,
१५. करीरपाणगं वा, १६. कोलपाणगं वा,
१७. आमलगपाणगं वा, १८. चिंचापाणगं वा,

अण्णतरं वा तहप्पगारं पाणगजायं सअट्ठियं, सकणुयं, सबीयगं, अस्संजए भिक्खुपडियाए छब्बेण वा, दूसेण वा, वालगेण वा, आवीलियाण वा परिपीलियाण वा, परिस्साइयाण वा, आहट्टु दलएज्जा । तहप्पगारं पाणगजायं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ८, सु. ३७२

अप्रासुक पानी लेने का निषेध—

६४. गृहस्थ के यहाँ गोचरी के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यदि पानी के विषय में यह जाने कि—गृहस्थ ने प्रासुक जल को सचित्त पृथ्वी के निकट—यावत्—मकड़ी के जालों से युक्त स्थान पर रखा है ।

अथवा असंयत गृहस्थ भिक्षु को देने के उद्देश्य से सचित्त जल से गीला अथवा स्निग्ध या सचित्त पृथ्वी आदि से युक्त बर्तन से लाए या प्रासुक जल के साथ सचित्त उदक मिलाकर लाकर दे तो उस प्रकार के जल को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे ।

गृहस्थ के घर में गोचरी के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यदि इस प्रकार का पानी जाने, जैसे कि—

(७) आम्रफल का पानी, (८) अम्बाडग फल का पानी,
(९) कपित्थ फल का पानी, (१०) बिजौरे का पानी,
(११) द्राक्ष का पानी, (१२) दाडिम का पानी,
(१३) खजूर का पानी, (१४) नारियल का पानी,
(१५) करीर (कैर) का पानी, (१६) बेर का पानी,
(१७) आँवले के फल का पानी, (१८) इमली का पानी,

इसी प्रकार का अन्य पानी, जो कि गुठली सहित छिलके आदि अवयव सहित या बीज सहित है और गृहस्थ साधु के निमित्त बाँस की छबड़ी से वस्त्र से छलनी से एक बार या बार-बार छानकर या नितारकर (उसमें रहे हुए बीज, गुठली आदि अवयव को अलग करके) लाकर देने लगे तो इस प्रकार के जल को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे ।

सहसा दत्त सचित्तोदग परिट्ठवण विही—

६५. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे—सिया से परो आहट्टु अंतो पडिग्गहंसि सीओदगं परिभाएत्ता णीहट्टु दलएज्जा, तहप्पगारं पडिग्गहं परहत्थंसि वा, परपायंसि वा अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा ।

से य आहच्च पडिग्गाहिए सिया, खिप्पामेव उदगंसि साहरेज्जा, सपडिग्गहमायाए वा, पाणं परिट्ठवेज्जा, ससणिद्धाए वा भूमिए णियमेज्जा ।

असावधानी से दिए हुए सचित्त जल के परठने की विधि—

६५. भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के यहाँ गोचरी के लिए गये हों और गृहस्थ घर के भीतर से अपने पात्र में अन्य बर्तन से सचित्त जल निकाल कर लावे और देने लगे तो साधु उस प्रकार के पर-हस्तगत एवं पर-पात्रगत सचित्त जल को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे ।

कदाचित् असावधानी से वह जल ले लिया हो तो शीघ्र दाता के जल-पात्र में उडेल दे । यदि गृहस्थ उस पानी को वापस न ले तो जलयुक्त पात्र को लेकर परठ दे या किसी गीली भूमि में उस जल को विधिपूर्वक परिष्ठापन कर दे । (उस जल के गीले पात्र को एकान्त निर्दोष स्थान में रख दे ।)

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा उदउल्लं वा ससणिद्धं वा पडिग्गहं णो आमज्जेज्ज वा-जाव-पयावेज्ज वा ।

अह पुण एवं जाणेज्जा —विगदोदए मे पडिग्गहे छिण्ण-सिणेहे से पडिग्गहे, तहप्पगारं पडिग्गहं ततो संजयामेव आमज्जेज्ज वा-जाव-पयावेज्ज वा ।

—आ. सु. २, अ. ६, उ. २, सु. ६०३, ६०४

भिक्षु या भिक्षुणी जल से आर्द्र और स्निग्ध पात्र को न तो एक बार साफ करे— यावत् – न ही धूप में सुखाए ।

किन्तु जब यह जान ले कि मेरा पात्र अब जल रहित हो गया है और स्नेह रहित हो गया है, तब उस प्रकार के पात्र को यतनापूर्वक साफ कर सकता है— यावत्— धूप में सुखा सकता है ।

सरस णिरस पाणगेसु समभाव विहाणं—

६६. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिण्डवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे—अण्णतरं वा पाणगजायं पडिगाहेत्ता पुप्फं-पुप्फं आविइत्ता कसायं-कसायं परिट्ठवेइ माइट्ठाणं संफासे । णो एवं करेज्जा ।

पुप्फं-पुप्फे त्ति वा, कसायं कसाए त्ति वा सव्वमेयं पीवेज्जा, णो किंचि वा परिट्ठवेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ६, सु. ३६५

सरस निरस पानी में समभाव का विधान—

६६. गृहस्थ के यहाँ गोचरी के लिए गये हुए भिक्षु या भिक्षुणी यथाप्राप्त जल लेकर मधुर पानी को पीकर और कसैला पानी को परठ दे तो वे मायास्थान का स्पर्श करते हैं । ऐसा नहीं करना चाहिए ।

वर्ण गन्धयुक्त अच्छा या कसैला जैसा भी जल प्राप्त हुआ हो उसे समभाव से पी लेना चाहिए, उसमें से जरा-सा भी बाहर नहीं डालना चाहिए ।

पाणगस्स गहण विहाणं णिसेहं च—

६७. सीओदगं न सेवेज्जा, सिलावुट्ठं हिमाणि य ।
उसिणोदगं तत्तफासुयं, पडिग्गाहेज्ज संजए ।।

—दस. अ ८, गा. ६

तहेवुच्चावयं पाणं, अदुवा वारधोयणं ।
संसेइमं चाउलोदगं, अहुणाधोयं विवज्जए ।।

जं जाणेज्ज चिराधोयं, मईए दंसणेण वा ।
पडिपुच्छिऊणं सोच्चा वा, जं च निस्संकियं भवे ।।

अजीवं परिणयं नच्चा, पडिगाहेज्ज संजए ।
अह संकियं भवेज्जा, आसाइत्ताण रोयए ।।

थोवमासायणट्ठाए, हत्थगम्मि दलाहि मे ।
मा मे अच्चंबिलं पूइं, नालं तण्हं विणित्तए ।।

तं च अच्चंबिलं पूइं, नालं तण्हं विणित्तए ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ।।

तं च होज्ज अकामेणं, विमणेण पडिच्छियं ।
तं अप्पणा न पिबे, नो वि अन्नस्स दावए ।।

एगंतमवक्कमित्ता, अचित्तं पडिलेहिया ।
जयं परिट्ठवेज्जा, परिट्ठप्प पडिक्कमे ।।

—दस. अ ५, उ. १, गा. १०६-११२

पानी ग्रहण करने के विधान और निषेध—

६७. संयमी शीतोदक, ओले, बरसात के जल और हिम का सेवन न करे । तप्त गर्म जल प्रासुक हो गया हो वैसा ही जल ले ।

इसी प्रकार श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ अचित्त जल, गुड आदि के घड़े का धोवन, आटे का धोवन, चावल का धोवन, जो तत्काल बनाया हुआ हो, उसे मुनि न ले ।

अपनी मति से या देखने से तथा पूछकर उसका उत्तर सुनकर जान ले कि "यह धोवन चिरकाल का है" और शंका रहित हो गया है ।

भिक्षु उस जल को जीव रहित और परिणत जानकर ग्रहण करे । किन्तु उसके उपयोगी होने में सन्देह हो तो चख कर निर्णय करे ।

दाता से कहे—"चखने के लिए थोड़ा-सा जल मेरे हाथ में दे दो क्योंकि बहुत खट्टा व दुर्गन्ध युक्त जल मेरी प्यास बुझाने में भी उपयोगी न होगा ।"

चखने पर बहुत खट्टा, दुर्गन्ध युक्त और प्यास बुझाने में अनुपयोगी हो तो देती हुई स्त्री को मुनि प्रतिषेध करे कि—इस प्रकार का जल मैं नहीं ले सकता ।

यदि वह पानी अनिच्छा या असावधानी से ले लिया गया हो तो उसे न स्वयं पीए और न दूसरे साधुओं को दे ।

परन्तु एकान्त में जाकर अचित्त भूमि को देखकर यतनापूर्वक उसे परठ दे । परठने के बाद स्थान में आकर प्रतिक्रमण करे ।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठे समाणे से ज्जं पुण पाणगजायं जाणेज्जा—

गृहस्थ के घर में पानी के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी पानी के इन प्रकारों को जाने जैसे कि—

१९. उस्सेइमं वा[1], २०. संसेइमं वा,[2] २१. चाउलोदगं वा[3] अण्णयरं वा तहप्पगारं पाणगजायं अहुणाधोयं, अणंबिलं, अवुक्कंतं, अपरिणयं, अविद्धत्थं, अफासुयं-जाव-णो पडिग्गाहेज्जा।

(१९) आटे का हाथ या बर्तन धोया हुआ पानी, (२०) उबले हुए तिल भाजी आदि धोया हुआ पानी, (२१) चावल धोया हुआ पानी अथवा अन्य भी इसी प्रकार का पानी जो कि तत्काल धोया हुआ हो, जिसका स्वाद परिवर्तित न हुआ हो, जिसमें जीव अतिक्रान्त न हुए हों, जो शस्त्र न परिणत हुआ हो, और सर्वथा जीव रहित नहीं हुआ हो तो ऐसे पानी को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

अह पुण एवं जाणेज्जा—चिराधोयं, अंबिलं, वुक्कंतं, परिणयं, विद्धत्थं, फासुयं-जाव-पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १, उ. ७, सु. ३६९

किन्तु यदि यह जाने कि बहुत देर का धोया हुआ धोवन है, इसका स्वाद बदल गया है, जीवों का अतिक्रमण हो गया है, शस्त्र परिणत हो गया है और सर्वथा जीव रहित हो गया है तो उस जल को प्रासुक जानकर—यावत् ग्रहण करे।

---

१ उत्स्वेदिम जल के सम्बन्ध में टीकाकारों के विभिन्न मत इस प्रकार हैं

(क) उत्स्वेदेन निर्वृत्तमुत्स्वेदिमं - येन व्रीह्यादि पिष्टं सुरार्थं उत्स्वेद्यते। —ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८२ की टीका

(ख) उस्सेइमं वे ति—पिष्टोत्स्वेदनार्थमुदकम्। —आ. सु. २, अ. १, उ. ७, सु. ४२ की टीका पृ. २३१

(ग) उस्सेइमे ति—पिष्टभृतहस्तादिक्षालनजले। — दसा. द. ८, सु. ३० की टीका

(घ) उस्सेइमं णाम जहा पिट्ठं सुदविकायभायणं आउक्कायस्स भरेत्ता मीसए अवाहिज्जति मुहं से वत्थेणं उहाडिज्जंति ताहे पिट्ठपयणयं रोट्टस्स भरेता ताहे तीसे थालीए जलभरियाए उवरि ठविज्जंति ताहे आहे छिद्देणं तं पि ओसिज्जति हेट्ठा हुतं वा ठविज्जइ, तत्थ जं आमं तं उस्सेतिमामं भण्णति। —नि. उ. १५, सु. १२, भा. गा. ४७०९ की चूर्णि पृ. ४८४

२ संसेइम जल के सम्बन्ध में व्याख्याकारों के मत इस प्रकार हैं—

(क) संसेकन निर्वृत्तमिति संसेकिमम्।
अरणिकादि पत्रशाकमुत्काल्य येन शीतलजलेन संसिच्यते तदिति। —ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८२ की टीका पत्र १४७

(ख) संसेइमं वे ति—तिलधावनोदकम्।
यदिवा—आरणिकादि संस्विन्नधावनोदकम्। —आचा. सु. २, अ. १, उ. ७, सु. ४१ की टीका पृष्ठ १४७

(ग) संसेइमे—पिष्टोदके। —दस. अ. ५, उ. १, गा. १०६ की टीका

(घ) उसिणं (उष्ण पदार्थ) सीतोदगे छुब्भति तं जं पुण उसिणं चेव उवरि सीतोदग चेव तं संसेइमं। अहवा संसेइमं—तिला उण्हं पाणिएणं सिण्णा जति सीतोदयेण धोवेंति तं संसेतिमं भण्णति।

—नि. उ. १७, सु. १३२, भा. गा. ५९९९ पृ. १९५

(ङ) संसेइमे—अरणिकासंस्विन्नधावनोदके। —दसा द. ८, सु. ३०

३ (क) यहाँ तीन प्रकार के पानी लेने का सामान्य विधान है।

(ख) चउत्थभत्तियस्स णं भिक्खुस्स कप्पति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तं जहा—उस्सेइमं, संसेइमे, चाउलोदगे (चाउल-धोवणे)। —ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १८८

चतुर्थ भक्त करने वाले श्रमण को ये तीन प्रकार के पानी लेने कल्पते हैं, अतः यह विशेष विधान है।

(ग) वासावासं पज्जोसवियस्स चउत्थभत्तियस्स भिक्खुस्स कप्पंति तओ पाणगाइं पडिगाहित्तए, तं जहा—उस्सेइमं, संसेइमं, चाउलोदगं। — दसा. द. ८, सु. ३०

वर्षावास में रहे हुए श्रमण को ये तीन प्रकार के पानी लेने कल्पते हैं अतः यह भी विशेष विधान है।

अमणुण्ण पाणग परिट्ठवण पायच्छित्त सुत्तं—

६८. जे भिक्खू अण्णयरं पाणगजायं पडिग्गाहित्ता पुप्फगं-पुप्फगं आइयइ, कसायं-कसायं परिट्ठवेइ परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. २, सु. ४३

अनमोज्ञ जल परिष्ठापन का प्रायश्चित्त सूत्र—

६८. जो भिक्षु अनेक प्रकार के पानकों को गृहस्थ के घर से लाकर उनमें से मनोज्ञ जल पी लेता है और अनमोज्ञ जल को परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अहुणाधोयं पाणगं गहणस्स पायच्छित्तसुत्तं—

६९. जे भिक्खू—

१. उस्सेइमं वा, २. संसेइमं वा,
३. चाउलोदगं वा, ४. वारोदगं वा,
५. तिलोदगं वा, ६. तुसोदगं वा,
७. जवोदगं वा, ८. आयामं वा,
९. सोवीरं वा, १०. अंबकंजियं वा,

११. सुद्धवियडं वा—

१. अहुणाधोयं,
२. अणंबिलं,
३. अपरिणयं,
४. अवुक्कंतं,
५. अविद्धत्थं,

पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १७, सु. १३२

तत्काल धोये पानी को ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

६९. जो भिक्षु—

(१) उत्स्वेदिम, (२) संस्वेदिम,
(३) चावलोदक, (४) वारोदक,
(५) तिलोदक, (६) तुषोदक,
(७) यवोदक, (८) ओसामण,
(९) कांजी, (१०) आम्लकांजिक,

(११) शुद्ध प्रासुक जल को,

(१) जो तत्काल का धोया हो,
(२) जिसका रस बदला न हो,
(३) शस्त्रपरिणत न हो,
(४) जीवों का अतिक्रमण न हुआ हो या,
(५) पूर्ण रूप से अचित्त न हुआ हो,

ऐसे जल को ग्रहण करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

शय्यैषणा-विधि—१

समणवसइ जोग्ग ठाणाइं—

७०. सुसाणे सुन्नगारे वा, रुक्खमूले व एक्कओ।
पइरिक्के परकडे वा, वासं तत्थऽभिरोयए॥

फासुयम्मि अणाबाहे, इत्थीहिं अणभिद्दुए।
तत्थ संकप्पए वासं, भिक्खू परमसंजए॥

—उत्त. अ. ३५, गा. ६-७

श्रमण के ठहरने योग्य स्थान—

७०. भिक्षु श्मशान में, शून्य गृह में, वृक्ष के मूल में अथवा परकृत एकान्त स्थान में रहने की इच्छा करे।

परम संयत भिक्षु प्रासुक, अनाबाध और स्त्रियों के उपद्रव से रहित स्थान में रहने का संकल्प करे।

उवसयस्स जायणा—

७१. से आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावतिकुलेसु वा, परियावसहेसु वा, अणुवीइ उवस्सयं जाएज्जा। जे तत्थ ईसरे, जे तत्थ समहिट्ठाए, ते उवस्सयं अणुण्णवेज्जा।

उपाश्रय की याचना—

७१. साधु पथिकशालाओं, आरामगृहों, गृहपति के घरों, परिव्राजकों के मठों आदि को देख-जानकर और विचार करके फिर उपाश्रय की याचना करे। उस उपाश्रय के स्वामी की या समधिष्ठाता की आज्ञा मांगे और कहे—

"कामं खलु आउसो ! अहालंदं अहापरिण्णायं वसिस्सामो, -जाव-आउसंतो,-जाव-आउसंतस्स उवस्सए,-जाव-साहम्मिया, एत्ता ताव उवस्सयं गिण्हिस्सामो, तेण परं विहरिस्सामो।

— आ. सु. २, अ. २, उ. ३, सु. ४४५

"आयुष्मन् ! आपकी इच्छानुसार जितने काल तक निवास करने की तुम आज्ञा दोगे उतने समय तक हम निवास करेंगे। यहाँ जितने समय तक आप आयुष्मन् की अनुज्ञा है उतनी अवधि तक जितने भी अन्य साधर्मिक साधु आयेंगे, उनके लिए भी उतने क्षेत्र-काल की अवग्रह अनुज्ञा ग्रहण करेंगे। वे भी उतने ही समय तक उतने ही क्षेत्र में ठहरेंगे। उसके पश्चात् वे और हम विहार कर देंगे।

उवस्सए पवेस-णिक्खमण विही--

७२. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा-खुड्डियाओ, खुड्डदुवारियाओ, नीयाओ, संणिरुद्धाओ भवंति, तहप्पगारे उवस्सए राओ वा, वियाले वा, णिक्खममाणे वा, पविसमाणे वा पुरा हत्थेण पच्छा पाएण ततो संजयामेव णिक्खमेज्ज वा, पविसेज्ज वा।

उपाश्रय में प्रवेश-निष्क्रमण की विधि—

७२. वह भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे उपाश्रय को जाने, जो छोटा है या छोटे द्वारों वाला है तथा नीचा है तथा अन्य श्रमण ब्राह्मण आदि से अवरुद्ध है। इस प्रकार के उपाश्रय में (कदाचित् किसी कारणवश साधु को ठहरना पड़े तो) वह रात्रि में या विकाल में भीतर से बाहर निकलता हुआ या बाहर से भीतर प्रवेश करता हुआ पहले हाथ से टटोल ले, फिर पैर से यतनापूर्वक निकले या प्रवेश करे।

केवली बूया आयाणमेयं।

केवली भगवान कहते हैं—(अन्यथा) यह कर्मबन्ध का कारण है।

जे तत्थ समणाण वा, माहणाण वा, छत्तए वा, मत्तए वा, दंडए वा, लट्ठिया वा, भिसिया वा, णालिया वा, चेले वा, चिलिमिली वा, चम्मए वा, चम्मकोसए वा, चम्मछेदणए वा दुब्बद्धे दुणिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले।

क्योंकि वहाँ पर शाक्य आदि श्रमणों के या ब्राह्मणों के जो छत्र, पात्र, दण्ड, लाठी, ऋषि-आसन (वृषिका) नालिका (एक प्रकार की लम्बी लाठी या घटिका) वस्त्र, चिलिमिलि (यवनिका, पर्दा या मच्छरदानी) मृगचर्म, चर्मकोश या चर्म-छेदनक हों, वे अच्छी तरह से बँधे हुए नहीं हों, अस्तव्यस्त रखे हुए हों, अस्थिर हों, चलाचल हों (उनकी हानि होने का डर है)।

भिक्खू य रातो वा, वियाले वा, णिक्खममाणे वा, पविसमाणे वा, पयलेज्ज वा, पवडेज्ज वा।

भिक्षु रात्रि में या विकाल में अन्दर से बाहर या बाहर से अन्दर (अयतना से) निकलता-घुसता हुआ यदि फिसले या गिर पड़े तो (उनके उक्त उपकरण टूट जायेंगे)

से तत्थ पयलमाणे वा, पवडमाणे वा, हत्थं वा, पायं वा, बाहुं वा, ऊरुं वा, उदरं वा, सीसं वा, अण्णयरं वा कायंसि इंदियजातं लूसेज्ज वा,

(अथवा उसके फिसलने या गिर पड़ने से) उसके हाथ, पैर, भुजा, छाती, पेट, सिर, शरीर के कोई अंग या इन्द्रियों (अंगोपांगों) को चोट लग सकती है या वे टूट सकते हैं।

पाणाणि वा-जाव-सत्ताणि वा अभिहणेज्ज वा-जाव-ववरोवेज्ज वा।

अथवा प्राणी—यावत्—सत्वों का हनन हो जाएगा—यावत्—वे जीवन से भी रहित हो जायेंगे।

अह भिक्खू णं पुव्वोवदिट्ठा-जाव-एस उवएसे जं तहप्पगारे उवस्सए पुराहत्थेण पच्छा पादेण ततो संजयामेव णिक्खमेज्ज वा, पविसेज्ज वा।

—आ. सु. २, अ. २, उ. ३, सु. ४४४

इसलिए तीर्थंकर भगवान् ने पहले से ही यह प्रतिज्ञा --यावत्- उपदेश दिया है कि इस प्रकार से (संकड़े छोटे और अन्धकारयुक्त) उपाश्रय में (रात को या विकाल में) पहले हाथ से टटोल कर फिर पैर रखते हुए यतनापूर्वक भीतर से बाहर, बाहर से भीतर गमनागमन करना चाहिए।

हेमंत-गिम्हासु णिग्गंथाणं वसइ वासमेरा—

७३. से गामंसि वा-जाव-रायहाणिसि वा सपरिक्खेवंसि अबाहिरियंसि, कप्पइ निग्गंथाणं हेमन्त-गिम्हासु एगं मासं वत्थए।

से गामंसि वा-जाव-रायहाणिसि वा, सपरिक्खेवंसि सबाहिरियंसि, कप्पइ निग्गंथाणं हेमन्त-गिम्हासु दो मासे वत्थए।

अन्तो एगं मासं, बाहिं एगं मासं।

अन्तो वसमाणाणं अन्तो भिक्खायरिया,

बाहिं वसमाणाणं, बाहिं भिक्खायरिया।

—कप्प. उ. १, सु. ६-७

हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में निर्ग्रन्थों की वसतिवास मर्यादा—

७३. निर्ग्रन्थों को सपरिक्षेप (प्राकार या बाड़युक्त) और अबाहिरिक (प्राकार के बाहर की बस्तिरहित) ग्राम—यावत्—राजधानी में हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में एक मास तक बसना कल्पता है।

निर्ग्रन्थों को सपरिक्षेप और सबाहिरिक ग्राम—यावत्—राजधानी में हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में दो मास तक बसना कल्पता है।

एक मास ग्राम आदि के अन्दर और एक मास ग्रामादि के बाहर।

ग्राम आदि के अन्दर बसने वाले निर्ग्रन्थों को ग्राम आदि के अन्दर बसे घरों में भिक्षाचर्या करना कल्पता है।

ग्राम आदि के बाहर बसने वाले निर्ग्रन्थों को ग्राम आदि के बाहर बसे घरों में भिक्षाचर्या करना कल्पता है।

णिग्गंथाणं कप्पणिज्जा उवस्सया—

७४. कप्पइ निग्गंथाणं, आवणगिहंसि वा-जाव-अन्तरावणंसि वा वत्थए।

—कप्प. उ. १, सु. १३

कप्पइ निग्गंथाणं, अवंगुयदुवारिए उवस्सए वत्थए।

—कप्प. उ. १, सु. १६

कप्पइ निग्गंथाणं, सागारिय-निस्साए वा, अनिस्साए वा वत्थए।

—कप्प. उ. १, सु. २५

कप्पइ निग्गंथाणं, पुरिस-सागारिए उवस्सए वत्थए।

—कप्प. उ. १, सु. २६

कप्पइ निग्गंथाणं अहे आगमणगिहंसि वा, वियडगिहंसि वा, वंसीमूलंसि वा, रुक्खमूलंसि वा, अब्भावगासियंसि वा वत्थए।

—कप्प. उ. २, सु. १२

निर्ग्रन्थों के कल्प्य उपाश्रय—

७४. निर्ग्रन्थों को आपणगृह—यावत्—अन्तरापण में बसना कल्पता है।

निर्ग्रन्थों को अपावृतद्वार (खुले द्वार) वाले उपाश्रय में बसना कल्पता है।

निर्ग्रन्थों को सागारिक की निश्रा या अनिश्रा से (उपाश्रय के स्वामी से सुरक्षा का आश्वासन प्राप्त हो या न हो) उपाश्रय में बसना कल्पता है।

निर्ग्रन्थों को पुरुष-सागारिक (केवल पुरुष निवास वाले) उपाश्रय में बसना कल्पता है।

निर्ग्रन्थों को आगमन गृह में, चारों ओर से खुले घर में, छप्पर के नीचे अथवा बाँस की जाली युक्त घर में, वृक्ष के नीचे या आकाश के नीचे बसना कल्पता है।

हेमंत-गिम्हासु णिग्गंथीणं वसइवासमेरा—

७५. से गामंसि वा-जाव-रायहाणिसि वा, सपरिक्खेवंसि अबाहिरियंसि, कप्पइ निग्गंथीणं हेमंत-गिम्हासु दो मासे वत्थए।

से गामंसि वा-जाव-रायहाणिसि वा, सपरिक्खेवंसि सबाहिरियंसि, कप्पइ निग्गंथीणं हेमन्त-गिम्हासु चत्तारि मासे वत्थए।

हेमन्त और ग्रीष्म में निर्ग्रन्थियों की वसतिवास मर्यादा—

७५. निर्ग्रन्थियों को सपरिक्षेप और अबाहिरिक ग्राम—यावत्—राजधानी में हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में दो मास तक बसना कल्पता है।

निर्ग्रन्थियों को सपरिक्षेप और सबाहिरिक ग्राम—यावत्—राजधानी में हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में चार मास तक बसना कल्पता है।

अन्तो दो मासे, बाहिं दो मासे।

अन्तो वसमाणीणं, अन्तो भिक्खायरिया।

बाहिं वसमाणीणं, बाहिं भिक्खायरिया।

—कप्प. उ. १, सु. ८-९

दो मास ग्राम आदि के अन्दर और दो मास ग्राम आदि के बाहर।

ग्राम आदि के अन्दर बसने वाली निर्ग्रन्थियों को ग्राम आदि के अन्दर बसे घरों में भिक्षाचर्या करना कल्पता है।

ग्राम आदि के बाहर बसने वाली निर्ग्रन्थियों को ग्राम आदि के बाहर बसे घरों में भिक्षाचर्या करना कल्पता है।

णिग्गंथीणं कप्पणिज्ज वसहिओ—

७६. कप्पइ निग्गंथीणं, सागारिय-निस्साए वत्थए।

—कप्प. उ. १, सु. २४

कप्पइ निग्गंथीणं, इत्थि-सागारिए उवस्सए वत्थए।

—कप्प. उ. १, सु. ३१

कप्पइ निग्गंथीणं, पडिबद्ध-सेज्जाए वत्थए।

—कप्प. उ. १, सु. ३३

कप्पइ निग्गंथीणं, गाहावइ-कुलस्स मज्झं मज्झेण गंतुं वत्थए। —कप्प. उ. १, सु. ३५

निर्ग्रन्थियों के कल्प्य उपाश्रय—

७६. निर्ग्रन्थियों को सागारिक की निश्रा से (उपाश्रय के स्वामी से सुरक्षा का आश्वासन प्राप्त होने पर) उपाश्रय में बसना कल्पता है।

निर्ग्रन्थियों को स्त्री-सागारिक (केवल स्त्रियों के निवास वाले) उपाश्रय में बसना कल्पता है।

निर्ग्रन्थियों का प्रतिबद्ध (उपाश्रय की भित्ति से संलग्न) शय्या में बसना कल्पता है।

गृह के मध्य में होकर जिस उपाश्रय में जाने-आने का मार्ग हो उस उपाश्रय में निर्ग्रन्थियों को बसना कल्पता है।

णिग्गंथ-णिग्गंथीणं कप्पणिज्जा उवस्सया—

७७. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अप्पसागारिए उवस्सए वत्थए। —कप्प. उ. १, सु. २७

कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अचित्तकम्मे उवस्सए वत्थए। —कप्प. उ. १, सु. २२

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के कल्प्य उपाश्रय—

७७. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों का अल्प-सागारिक (गृहस्थ निवास रहित) उपाश्रय में बसना कल्पता है।

निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को चित्र-रहित उपाश्रय में बसना कल्पता है।

गामाइसु णिग्गंथ-णिग्गंथीणं वसणविहि—

७८. से गामंसि वा-जाव-रायहाणिंसि वा, अभिनिव्वगडाए, अभिनिवदुवाराए अभिनिक्खमणपवेसाए, कप्पइ निग्गंथाण य निग्गंथीण य एगयओ वत्थए। —कप्प. उ. १, सु. ११

ग्रामादि में निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के रहने की विधि—

७८. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को अनेक बगडा, अनेक द्वार और अनेक निष्कमण-प्रवेश वाले ग्राम —यावत्— राजधानी में समकाल बसना कल्पता है।

अभिक्कंत किरिया कप्पणिज्जा वसही—

७९. इह खलु पाईणं वा-जाव-उदीणं वा संतेगतिया सड्ढा भवंति,

तं जहा— गाहावती वा-जाव-कम्मकरीओ वा, तेसिं च णं आयारगोयरे णो सुणिसंते भवति, तं सद्दहमाणेहिं, तं पत्तियमाणेहिं, तं रोयमाणेहिं, बहवे समण-माहण-अतिहि किवण वणीमए समुद्दिस्स तत्थ तत्थ अगारीहिं अगाराइं चेतिताइं भवंति, तं जहा—आएसणाणि वा-जाव-भवणगिहाणि वा।

जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा-जाव-भवणगिहाणि वा तेहिं ओवतमाणेहिं ओवतंति अयमाउसो! अभिक्कंत-किरिया या वि भवति।

—आ. सु. २, अ. २, उ. २, सु. ४३५

अभिक्रान्त क्रिया कल्पनीय शय्या—

७९. हे आयुष्मन्! इस संसार में पूर्व यावत् उत्तर दिशा में कई श्रद्धालु होते हैं—

जैसे कि—गृहस्वामी यावत् नौकर-नौकरानियां आदि उन्होंने निर्ग्रन्थ साधुओं के आचार-व्यवहार के विषय में तो सम्यक्तया नहीं सुना है, किन्तु श्रद्धा प्रतीति एवं अभिरुचि रखते हुए उन गृहस्थों ने (अपने-अपने ग्राम या नगर में) बहुत से शाक्यादि श्रमणों, ब्राह्मणों, अतिथि, दरिद्रों और भिखारियों आदि के उद्देश्य से गृहस्थों ने जगह-जगह मकान बनवा दिये हैं जैसे लुहारशाला यावत् भूमि गृह आदि।

जो श्रमण भगवन्त इस प्रकार के लोहकारशाला यावत् भूमिगृह आदि आवास स्थानों में, जहाँ शाक्यादि श्रमण ब्राह्मण आदि पहले ठहर गए हैं, उन्हीं में बाद में आकर ठहरते हैं तो वह शय्या अभिक्रान्त क्रिया वाली (निर्दोष) हो जाती है।

अप्पसावज्जकिरिया कप्पणिज्जा सेज्जा—

८०. इह खलु पाईणं वा-जाव-उदीणं वा संतेगतिया सड्ढा भवंति -जाव-तं रोयमाणेहिं अप्पणो सयट्ठाए तत्थ तत्थ अगारीहिं अगाराइं चेतियाइं भवंति,

तं जहा—आएसणाणि वा-जाव-भवणगिहाणि वा,

महता पुढविकायसमारंभेणं,

महता आउकायसमारंभेणं,

महता तेउकायसमारंभेणं,

महता वाउकायसमारंभेणं,

महता वणस्सइकायसमारंभेणं,

महता तसकायसमारंभेणं महया संरंभेणं, महया समारंभेणं, महया आरंभेणं,

महता विरूवरूवेहिं पावकम्मकिच्चेहिं,

तं जहा—छावणतो, लेवणतो, संथार-दुवार-पिहणतो, सीतोदए वा परिट्ठविय पुव्वे भवति, अगणिकाए वा उज्जालियपुव्वे भवति,

जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा-जाव-भवण-गिहाणि वा उवागच्छंति, उवागच्छित्ता इतराइतरेहिं पाहुडेहिं वट्टंति एगपक्खं ते कम्मं सेवंति, अयमाउसो ! अप्पसावज्जकिरिया यावि भवति। —आ सु. २, अ. २, उ. २, सु. ४४१

अल्प सावद्य क्रिया-कल्पनीय शय्या—

८०. इस संसार में पूर्व यावत् उत्तर दिशा में, कई श्रद्धालु व्यक्ति होते हैं यावत् वे अभिरुचि से प्रेरित होकर उन्होंने अपने निजी प्रयोजन के लिए यत्र-तत्र मकान बनवाए हैं,

जैसे कि- लोहकारशाला यावत् भूमिगृह आदि।

उनका निर्माण पृथ्वीकाय के महान समारंभ से,

अप्काय के महान् समारंभ से,

तेउकाय के महान् समारंभ से,

वाउकाय के महान् समारंभ से,

वनस्पतिकाय के महान् समारंभ से,

त्रसकाय के महान् समारम्भ से इस प्रकार महान् संरम्भ, समारम्भ एवं आरंभ से,

तथा नाना प्रकार के पापकर्मजनक कृत्यों से हुआ है,

जैसे—छत डालने, लीपने, संस्तारक कक्ष सम करने तथा द्वार का दरवाजा बनाने से हुआ है तथा वहां सचित्त पानी डाला गया है, अग्नि भी प्रज्वलित की गई है।

जो पूज्य निर्ग्रन्थ श्रमण इस प्रकार के (गृहस्थ द्वारा अपने लिए निर्मित) लोहकारशाला यावत् भूमिगृह आदि वासस्थानों में आकर रहते हैं, अन्यान्य सावद्य कर्म निष्पन्न स्थानों का उपयोग करते हैं वे एकपक्ष (भाव से साधुरूप) कर्म का सेवन करते हैं। हे आयुष्मन् ! उन श्रमणों के लिए वह शय्या अल्प सावद्य क्रिया (निर्दोष) रूप होती है।

शय्यैषणा-निषेध—२

गिहारंभकरण णिसेहो—

८१. न सयं गिहाइं कुव्वेज्जा, णेव अन्नेहिं कारए।
गिहकम्म समारम्भे भूयाणं दीसई वहो ॥
तसाणं थावराणं च सुहुमाणं बायराण य।
तम्हा गिहसमारम्भं संजओ परिवज्जए ॥
—उत्त. अ. ३५, गा. ८-९

इमंतं णाणुजाणेज्जा, आयगुत्ते जिइंदिए।
ठाणाइं संति सड्ढीणं, गामेसु नगरेसु वा ॥
—सूय. सु. १, अ. ११, गा. १६

गृह-निर्माण—निषेध—

८१. भिक्षु न स्वयं घर बनाए और न दूसरों से बनवाए। गृह निर्माण के समारम्भ (प्रवृत्ति) में त्रस और स्थावर, सूक्ष्म और बादर जीवों का वध देखा जाता है। इसलिए संयत भिक्षु गृह-समारम्भ का परित्याग करे।

ग्रामों में या नगरों में श्रद्धालुओं के कुछ आश्रय स्थान होते हैं, उनके निर्माण में होने वाली हिंसा का आत्मगुप्त जितेन्द्रिय मुनि अनुमोदन नहीं करते हैं।

णिग्गंथाणं अकप्पणिज्जा उवस्सया—

८२. **णो कप्पइ निग्गंथाणं इत्थि-सागारिए उवस्सए वत्थए।**
—कप्प. उ. १, सु. २८

नो कप्पइ निग्गंथाणं, पडिबद्ध[1]-सेज्जाए वत्थए।
—कप्प. उ. १, सु. ३२

नो कप्पइ निग्गंथाणं, गाहावइ-कुलस्स मज्झं मज्झेणं गंतुं वत्थए।
— कप्प. उ. १, सु. ३४

णिग्गंथीणं अकप्पणिज्ज उवस्सया —

८३. **नो कप्पइ निग्गंथीणं, पुरिस-सागारिए उवस्सए वत्थए।**
—कप्प. उ. १, सु. ३०

नो कप्पइ निग्गंथीणं, आवणगिहंसि वा, रत्थामुहंसि वा, सिंघाडगंसि वा, तियंसि वा, चउक्कंसि वा, चच्चरंसि वा, अन्तरावणंसि वा वत्थए।
— कप्प. उ. १, सु. १२

नो कप्पइ निग्गंथीणं सागारिय अणिस्साए वत्थए।
— कप्प. उ. १, सु. २३

नो कप्पइ निग्गंथीणं-अहे आगमणगिहंसि वा, वियडगिहंसि वा, वंसीमूलंसि वा, रुक्खमूलंसि वा, अब्भावगासियंसि वा वत्थए।
— कप्प. उ. २, सु. ११

णिग्गंथ-णिग्गंथीणं अकप्पणिज्जा उवस्सया—

८४. **नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, सागारिय उवस्सए वत्थए।**
— कप्प. उ. १, सु. २६

नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, सचित्तकम्मे उवस्सए वत्थए।
— कप्प. उ. १, सु. २१

से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा—अस्सिंपडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स पाणाइं-जाव-सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स,

निर्ग्रन्थों के अकल्प्य उपाश्रय—

८२. निर्ग्रन्थों को स्त्री-सागारिक (स्त्रियों के निवास वाले) उपाश्रय में बसना नहीं कल्पता है।

निर्ग्रन्थों को प्रतिबद्ध (गृहस्थ के घर से संलग्न छत वाली) शय्या में बसना नहीं कल्पता है।

गृह के मध्य में होकर जिस उपाश्रय में जाने-आने का मार्ग हो उस उपाश्रय में निर्ग्रन्थों को बसना नहीं कल्पता है।

निर्ग्रन्थियों के लिए अकल्प्य उपाश्रय—

८३. निर्ग्रन्थियों को पुरुष-सागारिक (केवल पुरुष निवास वाले) उपाश्रय में बसना नहीं कल्पता है।

निर्ग्रन्थियों को दुकान युक्त गृह में, गली के प्रारंभ में, शृंगाटकाकार स्थान में, तिराहे में, चौराहे में, अनेक मार्ग मिलने के स्थान में (बने हुए गृहों में) या दुकान में बसना नहीं कल्पता है।

निर्ग्रन्थियों को सागारिक की अनिश्रा से (उपाश्रय के स्वामी से सुरक्षा का आश्वासन प्राप्त हुए बिना) उपाश्रय में बसना नहीं कल्पता है।

निर्ग्रन्थियों को आगमन गृह में, चारों ओर से खुले घर में, छप्पर के नीचे (या बांस की जाली युक्त गृह में), वृक्ष के नीचे या आकाश के नीचे बसना नहीं कल्पता है।

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के लिए अकल्प्य उपाश्रय—

८४. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को सागारिक (गृहस्थ के निवास वाले) उपाश्रय में बसना नहीं कल्पता है।

निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को सचित्र उपाश्रय में बसना नहीं कल्पता है।

यदि साधु ऐसा उपाश्रय जाने, जो कि (भावुक गृहस्थ द्वारा) इसी प्रतिज्ञा से अर्थात् किसी एक साधर्मिक साधु के उद्देश्य से प्राणी —**यावत्**— सत्वों का समारम्भ करके बनाया गया है,

---

१ 'प्रतिबद्ध शय्या'—द्रव्यतः भावतश्च प्रतिबद्ध उपाश्रयः।
द्रव्यतः पुनरयम्—'पृष्ठवंशः' — बलहरणं, स यत्रोपाश्रये गृहस्थगृहेण सह संबद्धः स द्रव्य प्रतिबद्ध उच्यते। प्रस्रवणे स्थाने रूपे शब्दे चेति चत्वारो भेदा भाव प्रतिबद्धे भवंति।
— कल्पभाष्य उ. १ सू. ३०

भावार्थ—(१) द्रव्य प्रतिबद्ध—उपाश्रय और गृहस्थ गृह की छत एक ही बलधारण आधार पर हो।

(२) भाव प्रतिबद्ध उपाश्रय ४ प्रकार का होता है यथा—(१) स्त्रियों की व साधु की प्रस्रवण भूमि एक हो। (२) हवा प्रकाश आदि के लिये अन्यत्र खड़े रहने बैठने का स्थान साधु का व स्त्रियों का एक हो। (३) जिस उपाश्रय में बैठे-बैठे ही स्त्रियों के रूप दिखते हों। (४) जिस उपाश्रय में स्त्रियों के अनेक प्रकार के शब्द सुनाई देते हों। इस प्रकार के द्रव्य और भाव प्रतिबद्ध उपाश्रय में रहना साधु को नहीं कल्पता है।

कीयं, पामिच्चं, अच्छेज्जं, अणिसट्ठं, अभिहडं आहट्टु चेतेति।

खरीदा गया है, उधार लिया गया है, छीना गया है, स्वामी की अनुमति के बिना लिया गया है या अन्य स्थान से लाया गया है।

तहप्पगारे उवस्सए पुरिसंतरकडे वा, अपुरिसंतरकडे वा बहियाणीहडे वा, अणीहडे वा, अत्तट्ठिए वा, अणत्तट्ठिए वा, परिभुत्ते वा, अपरिभुत्ते वा, आसेविते वा, अणासेविते वा, णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा।

ऐसा उपाश्रय चाहे वह अन्य पुरुष को दिया हो या न दिया हो, बाहर निकाला गया हो या न निकाला गया हो, स्वीकृत हो या अस्वीकृत हो, परिभुक्त हो या अपरिभुक्त अथवा आसेवित हो या अनासेवित हो उसमें स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे।

एवं बहवे साहम्मिया, एगं साहम्मिणिं, बहवे साहम्मिणीओ।
—आ. सु. २, अ. २, उ. १, सु. ४१३

जैसे एक साधर्मिक साधु का कहा वैसे ही बहुत से साधर्मिक साधुओं एक साधर्मिणी साध्वी, बहुत-सी साधर्मिणी साध्वियों का भी समझना चाहिए।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा-बहवे समण-जाव-वणीमए पगणिय-पगणिय समुद्दिस्स पाणाइं -जाव-सत्ताइं समारम्भ-जाव-अभिहडं आहट्टु चेतेति,

तहप्पगारे उवस्सए पुरिसंतरकडे वा, अपुरिसंतर कडे वा -जाव-अणासेविते णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा, चेतेज्जा। —आ. सु. २, अ. १, उ. १, सु. ४१४

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसा उपाश्रय जाने, जो बहुत-से श्रमणों—**यावत्**—भिखारियों को गिन-गिन कर उनके उद्देश्य से प्राणी—**यावत्**—सत्वों का समारम्भ करके—**यावत्**—अन्य स्थान से लाकर दे तो ऐसा (उपाश्रय) पुरुषांतरकृत हो अथवा पुरुषान्तरकृत न हो—**यावत्**—अनासेवित हो तो उसमें स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा—सइत्थियं, सखुड्डं, सपसुभत्तपाणं। तहप्पगारे सागारिए उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा, चेतेज्जा।
—आ. सु. २, अ. २, उ. १, सु. ४२०

भिक्षु या भिक्षुणी ऐसा उपाश्रय जाने कि — जो स्त्रियों से, बालकों से, पशुओं से तथा खाने पीने योग्य पदार्थों से युक्त हो ऐसे सागारिक के उपाश्रय में स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे।

आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावतिकुलेण सद्धिं संवसमाणस्स,

साधु का गृहपतिकुल के साथ (एक ही मकान में) निवास कर्मबन्ध का उपादान कारण है।

अलसगे वा, विसूइया वा, छड्डी वा णं उव्वाहेज्जा,

गृहस्थ परिवार के साथ निवास करते हुए साधु के हाथ, पैर, आदि का कदाचित् स्तम्भन हो जाए अथवा सूजन हो जाए, विशूचिका या वमन की व्याधि हो जाए,

अण्णतरे वा से दुक्खे रोगातंके समुप्पज्जेज्जा।

अथवा अन्य कोई दुख या रोगातंक पैदा हो जाए।

अस्संजते कलुणपडियाए तं भिक्खुस्स गातं तेल्लेण वा, घएण वा, वसाए वा, णवणीएण वा, अब्भंगेज्ज वा, मक्खेज्ज वा, सिणाणेण वा, कक्केण वा, लोद्धेण वा, वण्णेण वा, चुण्णेण वा, पउमेण वा, आघंसेज्ज वा, पघंसेज्ज वा, उव्वलेज्ज वा, उवट्टेज्ज वा, सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेज्ज वा, पहोएज्ज वा, सिणावेज्ज वा, सिंचेज्ज वा, दारुणा वा, दारुपरिणामं कट्टु अगणिकायं उज्जालेज्ज वा, पज्जालेज्ज वा, उज्जालेत्ता, पज्जालेत्ता, कायं आतावेज्ज वा, पयावेज्ज वा।

ऐसी स्थिति में वह गृहस्थ करुणा भाव से प्रेरित होकर उस भिक्षु के शरीर पर तेल, घी, वसा अथवा नवनीत से मालिश करेगा अथवा सिणाण = सुगंधित द्रव्य समुदाय, कल्क, लोध, वर्णक, चूर्ण, या पद्म से एक बार घिसेगा, जोर से घिसेगा, शरीर पर लेप करेगा, अथवा शरीर का मैल दूर करने के लिए उबटन करेगा। अथवा प्रासुक शीतल जल से या उष्ण जल से एक बार धोएगा या बार-बार धोएगा, मल-मलकर नहलाएगा, अथवा मस्तक आदि पर पानी छींटेगा, अथवा अरणी की लकड़ी को परस्पर रगड़ कर अग्नि उज्ज्वलित-प्रज्वलित करेगा। अग्नि को सुलगाकर और अधिक प्रज्वलित करके साधु के शरीर को थोड़ा या अधिक तपाएगा।

अह भिक्खू णं पुव्वोवदिट्ठा-जाव-एस उवएसे जं तहप्पगारे सागारिए उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा। —आ. सु. २, अ. २, उ. १, सु. ४२१

(इस तरह गृहस्थकुल के साथ उसके घर में ठहरने से अनेक दोषों की संभावना देखकर) तीर्थंकर प्रभु ने भिक्षु के लिए पहले से ही ऐसी प्रतिज्ञा बताई है—यावत्—उपदेश दिया है कि वह ऐसे गृहस्थ संसक्त मकान में कायोत्सर्ग, शय्या और स्वाध्याय न करे।

आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावतिणा सद्धिं संवसमाणस्स।

गृहस्थ के साथ ठहरने वाले साधु के लिए वह कर्मबंध का कारण है।

इह खलु गाहावइस्स अप्पणो सयट्ठाए विरूवरूवाइं भिण्णपुव्वाइं भवंति।

क्योंकि वहाँ गृहस्थ के अपने स्वयं के लिए पहले नाना प्रकार के काष्ठ (लकड़ियां) काट कर रखी हुई होती हैं,

अह पच्छा भिक्खूपडियाए विरूवरूवाइं दारुयाइं भिंदेज्ज वा किणेज्ज वा, पामिच्चेज्ज वा दारुणा वा दारुपरिणामं कट्टु अगणिकायं उज्जालेज्ज वा, पज्जालेज्ज वा,

उसके पश्चात् वह साधु के लिए भी विभिन्न प्रकार के काष्ठ को काटेगा, खरीदेगा या किसी से उधार लेगा और काष्ठ से काष्ठ का घर्षण करके अग्निकाय को उज्ज्वलित एवं प्रज्वलित करेगा।

तत्थ भिक्खू अभिकंखेज्जा आयावेत्तए वा, पयावेत्तए वा, वियट्टित्तए वा।

ऐसी स्थिति में सम्भव है वह साधु भी गृहस्थ की तरह शीत निवारणार्थ आताप और प्रताप लेना चाहेगा। तथा उसमें आसक्त होकर वहीं रहना चाहेगा।

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा-जाव-एस उवएसे जं तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेज्जा। —आ. सु. २, अ. २, उ. २, सु. ४२१

इसलिए तीर्थंकरों ने भिक्षुओं के लिए ऐसी प्रतिज्ञा—यावत्—उपदेश दिया है, कि साधु ऐसे उपाश्रय में स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे।

आयाणमेयं भिक्खुस्स सागारिए उवस्सए संवसमाणस्स।

साधु के लिए गृहस्थ-संसर्ग युक्त उपाश्रय में निवास करना अनेक दोषों का कारण है,

इह खलु गाहावती वा-जाव-कम्मकरीओ वा अण्णमण्णं अक्कोसंति वा, वहंति वा, रुभंति वा, उद्दवेंति वा।

क्योंकि उसमें गृहस्वामी—यावत्—नौकरानियाँ कदाचित् परस्पर एक-दूसरे को कटु वचन कहें, मारें-पीटें, बंद करें या उपद्रव करें।

अह भिक्खू उच्चावयं मणं णियच्छेज्जा-एते खलु अण्णमण्णं अक्कोसंतु वा, मा वा अक्कोसंतु-जाव-मा वा उद्दवेंतु।

उन्हें ऐसा करते देख भिक्षु के मन में ऊँचे-नीचे भाव आ सकते हैं कि ये परस्पर एक-दूसरे को भला-बुरा कहें अथवा नहीं कहें—यावत्—उपद्रव करें या नहीं करें।

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा-जाव-एस उवएसे जं तहप्पगारे सागारिए उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा णिसीहियं वा, चेतेज्जा। —आ. सु. २, अ. २, उ. १ सु. ४२२

इसलिए तीर्थंकरों ने पहले से ही साधु के लिए ऐसी प्रतिज्ञा बताई है—यावत्—उपदेश दिया है कि वह गृहस्थयुक्त उपाश्रय में कायोत्सर्ग, शय्या और स्वाध्याय न करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा-इह खलु गाहावती वा-जाव-कम्मकरीओ वा, अण्णमण्णं अक्कोसंति वा-जाव-उद्दवेंति वा, णो पण्णस्स णिक्खमण-पवेसाए-जाव-चिंताए। से एवं णच्चा तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा। —आ. सु. २, अ. २, उ. ३, सु. ४४६

यदि भिक्षु या भिक्षुणी ऐसे उपाश्रय को जाने कि—इस उपाश्रय में गृहस्वामी—यावत्—कर्म करने वाली परस्पर एक दूसरे को कोसती है,—यावत्—उपद्रव करती है, प्रज्ञावान् साधु को इस प्रकार के उपाश्रय में निर्गमन प्रवेश करना—यावत्—धर्मचिन्तन करना उचित नहीं है। यह जानकर साधु उस प्रकार के उपाश्रय में स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे।

आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावतीहिं सद्धिं संवसमाणस्स ।

गृहस्थों के साथ एक मकान में साधु का निवास करना इस लिए कर्मबन्ध का कारण है कि,

इह खलु गाहावती अप्पणो सअट्ठाए अगणिकायं उज्जालेज्ज वा, पज्जालेज्ज वा विज्झावेज्ज वा ।

उसमें गृहस्वामी अपने प्रयोजन के लिए अग्निकाय को उज्ज्वलित-प्रज्वलित करेगा, प्रज्वलित अग्नि को बुझाएगा ।

अह भिक्खू उच्चावयं मणं णियच्छेज्जा—

वहाँ रहते हुए भिक्षु के मन में कदाचित् ऊँचे-नीचे परिणाम आ सकते हैं –

"एते खलु अगणिकायं उज्जालेंतु वा, मा वा उज्जालेंतु, पज्जालेंतु वा, मा वा पज्जालेंतु, विज्झावेंतु वा, मा वा विज्झावेंतु ।"

ये गृहस्थ अग्नि को उज्वलित करें, अथवा उज्वलित न करें तथा ये अग्नि को प्रज्वलित करें अथवा न करें, अग्नि को बुझा दे अथवा न बुझा दे ।'

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा-जाव-एस उवएसे जं तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. २, उ. १, सु. ४२३

इसलिए तीर्थंकरों ने पहले से ही साधु के लिए ऐसी प्रतिज्ञा बताई है—यावत् उपदेश दिया है कि वह गृहस्थसंसक्त उपाश्रय में स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे ।

आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावतीहिं सद्धिं संवसमाणस्स ।

गृहस्थों के साथ एक जगह निवास करना साधु के लिए कर्मबन्ध का कारण है (उसमें निम्नोक्त कारणों से राग-द्वेष के भाव उत्पन्न हो सकते हैं ।)

इह खलु गाहावतिस्स कुंडले वा, गुणे वा, मणी वा, मोत्तिए वा, हिरण्णे वा, सुवण्णे वा, कडगाणि वा, तुडियाणि वा, तिसरगाणि वा, पालंबाणि वा, हारे वा, अद्धहारे वा, एगा-वली वा, मुत्तावली वा, कणगावली वा, रयणावली वा, तरुणियं वा, कुमारिं अलंकियविभूसियं पेहाए ।

जैसे कि उस मकान में गृहस्थ के कुण्डल, करधनी, मणि, मुक्ता, चाँदी, सोना या सोने के कड़े, बाजूबंद, तीनलड़ा हार, लम्बीमाला, अठारह लड़ी का हार, नौ लड़ी का हार, एकावली हार, मुक्तावली हार, कनकावली हार, रत्नावली हार, अथवा वस्त्राभूषण आदि से अलंकृत और विभूषित युवति या कुमारी कन्या को देखकर,

अह भिक्खू उच्चावयं मणं णियच्छेज्जा,

"एरिसिया वा सा, णो वा एरिसिया" इति वा णं बूया, इति वा णं मणं साएज्जा ।

भिक्षु के मन में ऊँचे-नीचे संकल्प विकल्प आ सकते हैं कि,

"ये आभूषण आदि मेरे घर में भी थे, एवं मेरी कन्या भी इसी प्रकार की थी, या ऐसी नहीं थी ।" वह इस प्रकार के उद्‌गार भी निकाल सकता है, अथवा मन ही मन उनका अनुमोदन भी कर सकता है ।

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा-जाव-एस उवएसे जं तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. २, उ. १, सु. ४२४

अतः तीर्थंकर प्रभु ने पहले से ही साधुओं के लिए ऐसी प्रतिज्ञा—यावत्—उपदेश दिया है कि साधु ऐसे उपाश्रय में स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे ।

आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावतीहिं सद्धिं संवसमाणस्स ।

गृहस्थों के साथ एक जगह निवास करना साधु के लिए कर्म बन्ध का कारण है,

इह खलु गाहावतिणीओ वा गाहावतिधूयाओ वा, गाहावति-सुण्हाओ वा, गाहावतिधातीओ वा, गाहावतिदासीओ वा, गाहावतिकम्मकरीओ वा, तासिं च णं एवं वुत्तपुव्वं भवति—

क्योंकि उसमें गृहपत्नियाँ, गृहस्थ की पुत्रियाँ, पुत्रवधुएँ, धायमाताएँ, दासियाँ या नौकरानियाँ भी रहती हैं । उनमें कभी परस्पर ऐसा वार्तालाप भी होना सम्भव है कि—

"जे इमे भवंति समणा भगवंतो सीलमंता, वयमंता, गुण-मंता, संजता, संवुडा, बंभयारी, उवरता मेहुणातो धम्मातो णो खलु एतेसिं कप्पति मेहुणधम्मपरियारणाए आउट्टित्तए ।

"ये जो श्रमण भगवान् होते हैं, वे शीलवान, व्रतनिष्ठ, गुणवान, संयमी, आस्रवों के निरोधक, ब्रह्मचारी एवं मैथुन धर्म से सदा उपरत होते हैं । अतः मैथुन सेवन इनके लिए कल्पनीय नहीं है ।

जा य खलु एतासिं सद्धिं मेहुणधम्मपरियारणाए आउट्टेज्जा पुत्तं खलु सा लभेज्जा ओयस्सिं तेयस्सिं, वच्चस्सिं, जसस्सिं, संपराइयं, आलोयदरिसिणिज्जं ।"

परन्तु जो स्त्री इनके साथ मैथुन-क्रीड़ा में प्रवृत्त होती है, उसे ओजस्वी, तेजस्वी, प्रभावशाली—(रूपवान्), यशस्वी, संग्राम में शूरवीर, चमक-दमक वाले एवं दर्शनीय पुत्र की प्राप्ति होती है ।"

एयप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म तासिं च णं अण्णतरी सड्ढी तं तवस्सिं भिक्खुं मेहुणधम्मपरियारणाए आउट्टावेज्जा ।

इस प्रकार की बातें सुनकर, मन में विचार करके उनमें से पुत्र-प्राप्ति की इच्छुक कोई स्त्री उस तपस्वी भिक्षु को मैथुन-सेवन के लिए अभिमुख कर ले, ऐसा सम्भव है ।

अह भिक्खू णं पुव्वोवदिट्ठा-जाव-एस उवएसे जं तहप्पगारे सागारिए उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. २, उ. १, सु. ४२५

इसलिए तीर्थंकरों ने साधुओं के लिए पहले से ही ऐसी प्रतिज्ञा—यावत्—उपदेश दिया है कि साधु उस प्रकार के गृहस्थों से संसक्त उपाश्रय में स्थान, शय्या और स्वाध्याय न करे ।

आयाणमेयं भिक्खुस्स गाहावतीहिं सद्धिं संवसमाणस्स ।

गृहस्थों के साथ निवास वाले साधु के लिए वह कर्मबन्ध का कारण है,

इह खलु गाहावइस्स अप्पणो सयट्ठाए विरूवरूवे भोयणजाते उवक्खडिते सिया, अह पच्छा भिक्खुपडियाए असणं वा -जाव-साइमं वा उवक्खडेज्ज वा, उवकरेज्ज वा ।

क्योंकि वहाँ गृहस्थ ने अपने लिए नाना प्रकार के भोजन तैयार किये हुए होते हैं उसके पश्चात् वह साधुओं के लिए अशन—यावत्—स्वाद्य आहार तैयार करेगा, उसकी सामग्री जुटाएगा ।

तं च भिक्खू अभिकंखेज्जा भोत्तए वा, पायए वा, वियट्टित्तए वा ।

उस आहार को साधु खाना या पीना चाहेगा या उस आहार में आसक्त होकर वहीं रहना चाहेगा ।

अह भिक्खू णं पुव्वोवदिट्ठा-जाव-एस उवएसे जं तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. २, उ. २, सु. ४२८

इसलिए भिक्षुओं के लिए तीर्थंकरों ने यह प्रतिज्ञा—यावत्—उपदेश दिया है कि वह इस प्रकार के उपाश्रय में स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे ।

गाहावती णामेगे सुइसमायारा भवंति, भिक्खू य असिणाणए मोयसमायारे से तग्गंधे दुग्गंधे पडिकूले पडिलोमे यावि भवति,

कोई गृहस्थ शौचाचार-परायण होते हैं और भिक्षु स्नान न करने वाले तथा मोकाचारी होते हैं । इस कारण उनके शरीर या वस्त्रों से आने वाली दुर्गन्ध उस गृहस्थ के लिए प्रतिकूल और अप्रिय भी हो सकती है ।

जं पुव्वकम्मं तं पच्छाकम्मं, जं पच्छाकम्मं तं पुरेकम्मं,

इसके अतिरिक्त वे गृहस्थ (स्नानादि) जो कार्य पहले करते थे अब भिक्षुओं की अपेक्षा से बाद में करेंगे और जो कार्य बाद में करते थे, वे पहले करेंगे,

ते भिक्खुपडियाए वट्टमाणा करेज्जा वा णो वा करेज्जा ।

अथवा भिक्षुओं के कारण वे असमय में भोजनादि क्रियाएँ करेंगे या नहीं भी करेंगे ।

अह भिक्खू णं पुव्वोवदिट्ठा-जाव-एस उवएसे जं तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. २, उ. २, सु. ४२७

इसलिए तीर्थंकरों ने भिक्षुओं के लिए पहले से ही प्रतिज्ञा—यावत्—उपदेश दिया है कि साधु ऐसे उपाश्रय में स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे ।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा-इह खलु गाहावती वा-जाव-कम्मकरीओ वा, अण्णमण्णस्स गातं तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा, अब्भंगेति वा

भिक्षु या भिक्षुणी अगर ऐसे उपाश्रय को जाने कि वहां गृहस्वामी—यावत्—नौकरानियाँ एक दूसरे के शरीर पर तेल, —यावत्—नवनीत से मर्दन करती है या चुपड़ती है, तो प्राज्ञ

मक्खेति वा, णो पण्णस्स णिक्खमण-पवेसाए-जाव-चिंताए, से एवं णच्चा तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा ।

आ. सु. २, अ. २, उ. ३, सु ४५०

साधु का वहाँ आना-जाना—**यावत्**—धर्मचिंतन करना उचित नहीं है, यह जानकर साधु उस प्रकार के उपाश्रय में स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे ।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा-इह खलु गाहावती वा-जाव-कम्मकरीओ वा अण्णमण्णस्स गायं सिणाणेण वा, कक्केण वा-जाव-पउमेण वा, आघंसंति वा, पघंसंति वा, उव्वलेंति वा, उवट्टेंति वा, णो पण्णस्स निक्खमण-पवेसाए-जाव-चिंताए से एवं णच्चा तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. २, उ. ३, सु. ४५१

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे उपाश्रय को जाने, कि वहाँ गृह स्वामी—**यावत्**—नौकरानियाँ परस्पर एक दूसरे के शरीर को स्नान (सुगंधित द्रव्य समुदाय) से, कल्क से, - **यावत्**—पद्मचूर्ण से मलती है, रगड़ती है, मैल उतारती है, उबटन करती है, वहाँ प्राज्ञ साधु का निकलना या प्रवेश करना—**यावत्**—धर्मचिन्तन करना उपयुक्त नहीं है । यह जानकर ऐसे उपाश्रय में साधु स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे ।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा-ससागारियं, सागणियं, सउदयं, णो पण्णस्स णिक्खमण-पवेसाए णो पण्णस्स वायण-पुच्छण-परियट्टणाऽणुप्पेह-धम्माणुयोगचिंताए । से एवं णच्चा तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. २, उ. २, सु. ४४७

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे उपाश्रय को जाने कि जो गृहस्थों से संसक्त हो, अग्नि से युक्त हो, जल से युक्त हो तो बुद्धिमान् साधु को निर्गमन-प्रवेश करना उचित नहीं है और न ही ऐसा उपाश्रय वाचना, पृच्छा, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मानुयोग चिन्तन के लिए उपयुक्त है । यह जानकर साधु ऐसे उपाश्रय में कायोत्सर्ग, शय्या और स्वाध्याय न करे ।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा-गाहावतिकुलस्स मज्झंमज्झेणं गंतुं वत्थए, पडिबद्धं वा, णो पण्णस्स णिक्खमण-पवेसाए-जाव-चिंताए, से एवं तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा, चेतेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. २, उ. ३, सु. ४४८

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे उपाश्रय को जाने कि जिसमें निवास करने पर गृहस्थ के घर में से होकर जाना आना पड़ता हो, अथवा जो उपाश्रय गृहस्थ घर से प्रतिबद्ध (संलग्न) है, वहाँ प्राज्ञ साधु का आना-जाना—**यावत्**—चिन्तन करना उचित नहीं है यह जानकर ऐसे उपाश्रय में साधु स्थान, शय्या और स्वाध्याय न करे ।

भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा-इह खलु गाहावती वा-जाव-कम्मकरीओ वा अण्णमण्णस्स गायं, सीतोदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेंति वा, पधोवेंति वा, सिंचंति वा, सिणावेंति वा, णो पण्णस्स निक्खमण पवेसाए-जाव-चिंताए, से एवं णच्चा तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. २, उ. ३, सु. ४५२

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे उपाश्रय को जाने कि वहाँ गृहस्वामी - **यावत्**—नौकरानियाँ परस्पर एक दूसरे के शरीर को प्रासुक शीतल जल या उष्ण जल से धोती है, बार बार धोती है, सींचती है या स्नान कराती है, तो ऐसा स्थान बुद्धिमान साधु के जाने-आने—**यावत्**—धर्मचिन्तन के लिए उपयुक्त नहीं है । यह जानकर इस प्रकार के उपाश्रय में साधु स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे ।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा इह खलु गाहावती वा-जाव-कम्मकरीओ वा, णिगिणा ठिता, णिगिणा उवल्लीणा, मेहुणधम्मं विण्णवेंति, रहस्सियं वा मंतं मंतेंति, णो पण्णस्स निक्खमण-पवेसाए-जाव-चिंताए, से एवं णच्चा तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. २, उ. ३, सु. ४५३

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे उपाश्रय को जाने कि वहां गृहपति—**यावत्**—नौकरानियाँ आदि नग्न खड़ी रहती हैं या बैठी रहती हैं और नग्न होकर मैथुन-धर्म विषयक परस्पर प्रार्थना करती है, अथवा किसी रहस्यमय अकार्य के सम्बन्ध में गुप्त-मंत्रणा करती है, तो प्राज्ञ साधु का निर्गमन-प्रवेश—**यावत्**—धर्म चिन्तन करना उचित नहीं है । यह जानकर इस प्रकार के उपाश्रय में साधु स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे ।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा-आइण्णं-संलिक्खं णो पण्णस्स निक्खमण-पवेसाए-जाव-चिंताए, से एवं णच्चा तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा,

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे उपाश्रय को जाने कि वह स्त्री-पुरुषों आदि के चित्रों से सुसज्जित है तो ऐसे उपाश्रय में प्राज्ञ साधु को निर्गमन-प्रवेश करना—**यावत्**—धर्मचिन्तन करना

सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा।
— आ. सु. २, अ. २, उ. ३, सु. ४५४

उचित नहीं है। यह जानकर इस प्रकार के उपाश्रय में साधु स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे।

गिहत्थ पडिबद्ध उवस्सयस्स दोसाइं—

८५. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा उच्चारपासवणेणं उब्बाहिज्जमाणे रातो वा वियाले वा गाहावतिकुलस्स दुवारबाहं अवंगुणेज्जा, तेणो य तस्संधिचारी अणुपविसेज्जा, तस्स भिक्खुस्स णो कप्पति एवं वदित्तए—

"अयं तेणे पविसति वा णो वा पविसति, उवल्लियति वा णो वा उवल्लियति, आपतति वा णो वा आपतति, वयइ वा णो वा वयइ,
तेण हडं, अण्णेण हडं,
तस्स हडं, अण्णस्स हडं
अयं तेणे, अयं उवचरए,
अयं हंता, अयं एत्थमकासी।"
तं तवस्सिं भिक्खुं अतेणं तेणमिति संकति।

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा-जाव-एस उवएसे जं तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा।
—आ. सु. २, अ. २, उ. २, सु. ४३०

गृहस्थ प्रतिबद्ध उपाश्रय के दोष—

८५ वह भिक्षु या भिक्षुणी रात में या विकाल में मल-मूत्रादि की बाधा होने पर गृहस्थ के घर का द्वारभाग खोलेगा, उस समय मौका देखने वाला कोई चोर घर में प्रविष्ट हो जाएगा तो उस समय साधु को ऐसे कहना कल्पनीय नहीं है कि—

"यह चोर प्रवेश कर रहा है या प्रवेश नहीं कर रहा है, यह छिप रहा है या नहीं छिप रहा है, नीचे कूद रहा है या नहीं कूदता है, जा रहा है या नहीं जा रहा है,
इसने चुराया है या किसी दूसरे ने चुराया है।
उसका धन चुराया है अथवा दूसरे का धन चुराया है।
यही चोर है, यह उसका उपचारक (साथी) है।
यह घातक है, इसी ने यहाँ यह (चोरी का) कार्य किया है" और कुछ भी न कहने पर जो वास्तव में चोर नहीं है उस तपस्वी साधु पर चोर होने की शंका होती है।

अतः तीर्थंकर भगवान् ने पहले से ही साधु के लिए ऐसी प्रतिज्ञा बताई है—यावत्—उपदेश दिया है कि साधु ऐसे उपाश्रय में स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे।

सुद्ध उवस्सयस्स परूवणा—

८६. से य णो सुलभे फासुए उंछे अहेसणिज्जे, णो य खलु सुद्धे इमेहिं पाहुडेहिं, तं जहा—छावणतो लेवणतो संथार-दुवार पिहाणतो पिंडवातेसणाओ।

से य भिक्खू चरियारते, ठाणरते, णिसीहियारते, सेज्जासंथार-पिंडवातेसणारते, संति भिक्खुणो एवमक्खाइणो उज्जुकडा णियागपडिवण्णा अमायं कुव्वमाणा वियाहिता।

संतेगतिया पाहुडिया उक्खित्तपुव्वा भवति, एवं णिक्खित्तपुव्वा भवति, परिभाइयपुव्वा भवति, परिभुत्तपुव्वा भवति, परिट्ठवियपुव्वा भवति।

शुद्ध उपाश्रय की प्ररूपणा—

८६. प्रासुक, उंछ, एषणीय उपाश्रय सुलभ नहीं है और न ही इन सावद्य कर्मों (पापयुक्त क्रियाओं) के कारण उपाश्रय शुद्ध निर्दोष मिलता है, जैसे कि कहीं साधु के निमित्त उपाश्रय का छप्पर छाने से या छत डालने से, कहीं उसे लीपने-पोतने से, कहीं संस्तारक भूमि सम करने से, कहीं उसे बन्द करने के लिए द्वार लगाने से, कहीं आहार की एषणा के कारण से।

कई साधु विहार चर्या परायण होते हैं, कई कायोत्सर्ग करने वाले होते हैं, कई स्वाध्यायरत होते हैं, कई साधु शय्या संस्तारक एवं पिण्डपात (आहार पानी) की गवेषणा में रत रहते हैं। तथा भिक्षु सरल होते हैं, मोक्ष का पथ स्वीकार किये हुए होते हैं, एवं निष्कपट साधु माया नहीं करने वाले होते हैं वे शय्या के विषय में इस प्रकार कहते हैं —

"कई मकान गृहस्थ के खाली पड़े रहते हैं, कई मकान गृहस्थ के मेहमान आदि के लिये रखे हुये होते हैं, कई मकान बंटवारे में प्राप्त हुए होते हैं, कई मकान गृहस्थ के समय समय पर काम में लिये जाने वाले होते हैं, कोई मकान गृहस्थ के पूर्ण रूप से अनुपयुक्त होते हैं या दान किये हुए होते हैं। (इस प्रकार के मकान गृहस्थ के लिये बने हुए होने से साधु को कल्पनीय होते हैं)

प० - एवं वियागरेमाणे समिया वियागरेइ ?

उ०—हंता भवति।

—आ. सु. २, अ. २, उ. ३, सु. ४४३

प्र० गृहस्थों को इस तरह उपाश्रय संबंधी कथन करने वाला क्या सम्यक् कथन करता है ?

उ०—हाँ सम्यक् कथन करता है, अर्थात् इस तरह सही स्वरूप समझाना उचित है।

अभिक्खणं साहम्मिय आगमण वसहि णिसेहो—

८७. से आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा, गाहावतिकुलेसु वा, परियावसहेसु वा, अभिक्खणं अभिक्खणं साहम्मिएहिं ओवयमाणेहिं णो ओवतेज्जा।

—आ. सु. २, अ. २, उ. २, सु. ४३२

बारंबार साधर्मिक के आगमन की शय्या का निषेध—

८७. पथिकशालाओं में, उद्यान में निर्मित विश्रामगृहों में, गृहस्थ के घरों में या तापसों के मठों में जहाँ साधर्मिक साधु बार-बार आते-जाते (ठहरते) हों, वहाँ निर्ग्रन्थ साधु न ठहरे।

कालातिक्कंत किरिया सरूवं—

८८. से आगंतारेसु वा-जाव-परियावसहेसु वा जे भयंतारो उडुबद्धियं वा, वासावासियं वा कप्पं उवातिणित्ता तत्थेव भुज्जो भुज्जो संवसंति अयमाउसो। कालातिक्कंतकिरिया वि भवति।

—आ. सु. २, अ. २, उ. २, सु. ४३३

कालातिक्रान्त क्रिया का स्वरूप—

८८. हे आयुष्मन् ! जिन पथिकशाला—**यावत्**—मठों में श्रमण भगवन्तों ने ऋतुबद्ध मासकल्प (शेषकाल) या वर्षावास कल्प (चातुर्मास) बिताया है, उन्हीं स्थानों में अगर वे बिना कारण निरन्तर निवास करते हों तो उनकी वह शय्या (वसति-स्थान) **कालातिक्रान्त क्रिया** दोष से युक्त हो जाती है।

उवट्ठाण किरिया सरूवं—

८९. से आगंतारेसु वा-जाव-परियावसहेसु वा जे भयंतारो उडुबद्धियं वा वासावासियं वा कप्पं उवातिणावित्ता तं दुगुणा दुगुणेण अपरिहरित्ता तत्थेव भुज्जो भुज्जो संवसंति अयमाउसो ! उवट्ठाणकिरिया यावि भवति।

—आ. सु. २, अ. २, उ. २, सु. ४३४

उपस्थान क्रिया का स्वरूप—

८९. हे आयुष्मन् ! जिन पथिकशाला—**यावत्**—मठों में, जिन साधु भगवन्तों ने ऋतुबद्ध मास कल्प या वर्षावास कल्प बिताया है, उससे दुगुना-दुगुना काल (मासादि-कल्प का समय) अन्यत्र बिताए बिना पुनः उन्हीं स्थानों में ठहर जाते हैं तो उनकी वह शय्या **उपस्थान क्रिया** दोष से युक्त हो जाती है।

भिक्खुस्स एग खेत्ते पुणरागमण कालमेरा—

९०. संवच्छरं चावि परं पमाणं, बीयं च वासं न तहिं वसेज्जा।
सुत्तस्स मग्गेण चरेज्ज भिक्खू, सुत्तस्स अत्थो जह आणवेइ।

—दस. चू. २, गा. ११

भिक्षु के एक क्षेत्र में पुनः आने की काल-मर्यादा

९०. भिक्षु ने जहाँ वर्षावास किया है वहाँ उत्कृष्ट एक वर्ष तक पुनः आकर न रहे। किंतु (दुगुणा काल व्यतीत करना आदि) सूत्रोक्त विधि या सूत्र का अर्थ (भाव) जिस तरह आज्ञा दे उसी प्रकार आचरण करे।

अणभिक्कंत किरया सरूवं—

९१. इह खलु पाईणं वा-जाव-उदीणं वा संतेगतिया सड्ढा भवंति-जाव-तं रोयमाणेहिं बहवे समण-माहण अतिहि-किवण-वणीमए समुद्दिस्स तत्थ तत्थ अगारीहिं अगाराइं चेतिताइं भवंति, तं जहा—आएसणाणि वा-जाव-भवणगिहाणि वा।

जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा-जाव-भवणगिहाणि वा, तेहिं अणोवतमाणेहिं ओवयंति अयमाउसो ! अणभिक्कंतकिरिया यावि भवति।

—आ. सु. २, अ. २, उ. २, सु. ४३६

अनभिक्रान्त क्रिया का स्वरूप—

९१. हे आयुष्मन् ! इस संसार में पूर्व—**यावत्**—उत्तर दिशा में कई श्रद्धालु होते हैं,—**यावत्** अभिरुचि से प्रेरित होकर बहुत से श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण, वनीपक आदि के उद्देश्य से गृहस्थों ने जगह-जगह मकान बनवाए हैं, जैसे कि—लोहकारशाला—**यावत्**—भूमिगृह आदि।

जो श्रमण भगवन्त ऐसे लोहकारशाला—**यावत्**—भूमिगृहों में आकर पहले-पहल ठहरते हैं, तो वह शय्या **अनभिक्रान्त क्रिया** वाली है, (अतः कल्पनीय है।)

वज्जकिरिया सरूवं—

९२. इह खलु पाईणं वा-जाव-उदीणं वा संतेगइया सड्ढा भवंति, तं जहा—गाहावती वा-जाव-कम्मकरीओ वा, तेसिं च णं एवं वुत्तपुव्वं भवति—

जे इमे भवंति समणा भगवंतो सीलमंता-जाव-उवरता मेहुणाओ धम्माओ, णो खलु एतेसिं भयंताराणं कप्पति आधाकम्मिए उवस्सए वत्थए, से ज्जाणिमाणि अम्हं अप्पणो सयट्ठाए चेतियाइं भवंति, तं जहा—आएसणाणि वा-जाव-भवणगिहाणि वा, सव्वाणि ताणि समणाणं णिसिरामो, अवियाइं वयं पच्छावि अप्पणो सयट्ठाए चेतेस्सामो तं जहा—आएसणाणि वा-जाव-भवणगिहाणि वा।

एतप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा-जाव-भवणगिहाणि वा उवागच्छंति इतरा-इतरेहिं पाहुडेहिं वट्टंति, अयमाउसो! वज्जकिरिया यावि भवति। —आ. सु. २, अ. २, उ. २, सु. ४३७

वर्ज्य क्रिया का स्वरूप—

९२. इस संसार में पूर्व—**यावत्**—उत्तर दिशा में कई श्रद्धालु होते हैं जैसे कि गृहस्वामी—**यावत्**—नौकरानियाँ। उन्हें पहले से ही यह ज्ञात होता है कि—

"ये श्रमण भगवन्त शीलवान्—**यावत्**—मैथुनधर्म के त्यागी होते हैं, इन भगवन्तों के लिए आधाकर्मदोष से युक्त उपाश्रय में निवास करना कल्पनीय नहीं है। अतः ये जो हमारे अपने लिए बनवाये हुए हैं जैसे कि लोहकारशाला—**यावत्**—भवनगृह। वे सब मकान हम इन श्रमणों को दे देंगे, और हम अपने प्रयोजन के लिए बाद में दूसरे लोहकारशाला—**यावत्**—भवनगृह आदि मकान बना लेंगे।"

गृहस्थों का इस प्रकार का वार्तालाप सुनकर तथा समझकर भी जो निर्ग्रन्थ श्रमण उक्त प्रकार के लोहकारशाला—**यावत्**—भवनगृह में आकर ठहरते हैं, वहाँ ठहर कर वे अन्यान्य छोटे बड़े घरों का उपयोग करते हैं, तो हे आयुष्मन् श्रमणो! उनके लिये वह शय्या **वर्ज्यक्रिया** वाली होती है।

महावज्जकिरिया सरूवं—

९३. इह खलु पाईणं वा-जाव-उदीणं वा संतेगतिया सड्ढा भवंति-जाव-तं रोयमाणेहिं बहवे-समण माहण-जाव-वणीमए पगणिय पगणिय समुद्दिस्स तत्थ तत्थ अगारीहिं अगाराइं चेतियाइं भवंति, तं जहा—आएसणाणि वा-जाव-भवणगिहाणि वा,

जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा-जाव-भवणगिहाणि वा उवागच्छंति उवागच्छित्ता इयराइयरेहिं पाहुडेहिं वट्टंति अयमाउसो! महावज्जकिरिया यावि भवति।

—आ. सु. २, अ. २, उ. २, सु. ४३८

महावर्ज्यक्रिया का स्वरूप—

९३. इस संसार में पूर्व—**यावत्**—उत्तर दिशा में कई श्रद्धालु होते हैं,—**यावत्**—अभिरुचि से प्रेरित होकर वे बहुत से श्रमण ब्राह्मण—**यावत्**—भिक्षाचरों को गिन-गिनकर उनके उद्देश्य से जहाँ-तहाँ लोहकारशाला—**यावत्**—भूमिगृह बनवाते हैं।

जो निर्ग्रन्थ साधु उस प्रकार के लोहकारशाला—**यावत्**—भूमिगृहों में आकर रहते हैं, वहाँ रहकर वे अन्यान्य छोटे-बड़े घरों का उपयोग करते हैं तो हे आयुष्मन्! वह शय्या उनके लिए **महावर्ज्य क्रिया** से युक्त हो जाती है।

सावज्जकिरिया सरूवं—

९४. इह खलु पाईणं वा-जाव-उदीणं वा, संतेगतिया सड्ढा भवंति-जाव-तं रोयमाणेहिं बहवे समणजाते समुद्दिस्स तत्थ तत्थ अगारीहिं अगाराइं चेतिताइं भवंति, तं जहा—आएसणाणि वा-जाव-भवणगिहाणि वा,

जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा-जाव-भवणगिहाणि वा उवागच्छंति उवागच्छित्ता इतराइतरेहिं पाहुडेहिं वट्टंति अयमाउसो! सावज्जकिरिया यावि भवति।

—आ. सु. २, अ. २, उ. २, सु. ४३९

सावद्य क्रिया का स्वरूप—

९४. इस संसार में पूर्व—**यावत्**—उत्तर दिशा में कई श्रद्धालु होते हैं—**यावत्**—अभिरुचि से प्रेरित होकर वे अनेक प्रकार के श्रमणों के उद्देश्य से जहाँ तहाँ लोहकारशाला—**यावत्**—भूमिगृह बनवाते हैं।

जो निर्ग्रन्थ साधु उस प्रकार के लोहकारशाला—**यावत्**—भूमिगृह में आकर ठहरते हैं तथा अन्यान्य छोटे बड़े गृहों का उपयोग करते हैं, हे आयुष्मन्! उनके लिए वह शय्या **सावद्यक्रिया** दोष से युक्त हो जाती है।

महासावज्ज किरिया सरूवं—

९५. इह खलु पाईणं वा-जाव-उदीणं वा संतेगतिया सड्ढा भवंति-जाव-तं रोयमाणेहिं एगं समणजातं समुद्दिस्स तत्थ तत्थ

महासावद्य क्रिया का स्वरूप—

९५. इस संसार में पूर्व—**यावत्**—उत्तर दिशा में कई श्रद्धालु व्यक्ति हैं—**यावत्**—अभिरुचि से प्रेरित होकर उन्होंने एक ही

अगारीहिं अगाराइं चेतिताइं भवंति, तं जहा—आएसणाणि वा-जाव-भवणगिहाणि वा, महता पुढविकायसमारंभेणं-जाव-महता तसकायसमारंभेणं, महता संरंभेणं, महता समारंभेणं, महता आरंभेणं महता विरूवरूवेहिं पावकम्मकिच्चेहिं, तं जहा—छावणतो लेवणतो संथार-दुवार-पिहणतो, सीतोदए वा परिट्ठवियपुव्वे भवति, अगणिकाए वा उज्जालियपुव्वे भवति।

प्रकार के निर्ग्रन्थ श्रमण वर्ग के उद्देश्य से लोहकारशाला—**यावत्**—भूमिगृह आदि मकान जहाँ तहाँ बनवाए हैं। उन मकानों का निर्माण पृथ्वीकाय के महान् समारम्भ से—**यावत्**—त्रसकाय के महान् समारंभ से, इस प्रकार महान् संरम्भ-समारम्भ और आरम्भ से तथा नाना प्रकार के महान् पापकर्मजनक कृत्यों से हुआ है जैसे कि छत आदि डाली गई है, उसे लीपा गया है संस्तारक कक्ष को सम बनाया गया है, द्वार के दरवाजा लगाया गया है, तथा वहाँ शीतल सचित्त पानी डाला गया है, अग्नि भी प्रज्वलित की गयी है।

जे भयंतारो तहप्पगाराइं आएसणाणि वा-जाव-भवणगिहाणि वा, उवागच्छंति उवागच्छित्ता इतराइतरेहिं पाहुडेहिं वट्टंति दुपक्खं ते कम्मं सेवंति, अयमाउसो ! महासावज्ज-किरिया यावि भवति।

—आ. सु. २, अ. २, उ. २, सु. ४४०

जो निर्ग्रन्थ श्रमण उस प्रकार के लोहकारशाला—**यावत्**—भूमिगृह में आकर रहते हैं तथा अन्यान्य छोटे-बड़े गृहों में ठहरते हैं, वे द्विपक्ष (द्रव्य से साधुरूप और भाव से गृहस्थरूप) कर्म का सेवन करते हैं। हे आयुष्मन् ! उन श्रमणों के लिए यह शय्या महासावद्य क्रिया दोष से युक्त होती है।

एगदुवारवंतेसु गामाइसु णिग्गंथ-णिग्गंथीणं णिसिद्ध वसणं—

ग्राम आदि में निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के रहने का निषेध—

९६. से गामंसि वा-जाव-रायहाणिंसि वा, एगवगडाए, एगदुवाराए, एगनिक्खमणपवेसाए, नो कप्पइ निग्गंथाण य निग्गंथीण य एगयओ वत्थए। —कप्प. उ. १, सु. १०

९६. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को एक वगडा, एक द्वार और एक निष्क्रमण प्रवेश वाले ग्राम—**यावत्**—राजधानी में (भिन्न-भिन्न उपाश्रयों में भी) समकाल बसना नहीं कल्पता है।

णिग्गंथ-णिग्गंथीणं दगतीरंसि णिसिद्ध किच्चाइं—

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के लिए पानी के किनारे पर निषिद्ध कार्य—

९७ नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, दगतीरंसि चिट्ठित्तए वा, निसीइत्तए वा, तुयट्टित्तए वा, निद्दाइत्तए वा, पयलाइत्तए वा, असणं वा-जाव-साइमं वा आहरित्तए वा, उच्चारं वा, पासवणं वा, खेलं वा सिंघाणं वा परिट्ठवेत्तए, सज्झायं वा करित्तए, धम्मजागरियं वा जागरित्तए, काउसग्गं वा ठाणं ठाइत्तए। —कप्प उ. १, सु. २०

९७. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को दकतीर (जल के किनारे) पर खड़ा होना, बैठना, शयन करना, निद्रा लेना, ऊँघना, अशन—**यावत्**—स्वादिम आहार का खाना-पीना, मल-मूत्र, श्लेष्म, नासामल आदि का परित्याग करना—स्वाध्याय करना, धर्म जागरिका (रात्रि जागरण) करना तथा खड़े या बैठे कायोत्सर्ग करना नहीं कल्पता है।

णिग्गंथी उवस्सए णिग्गंथाणं णिसिद्ध किच्चाइं—

निर्ग्रन्थियों के उपाश्रय में निर्ग्रन्थों के लिए निषिद्ध कार्य—

९८. नो कप्पइ निग्गंथाणं निग्गंथीणं उवस्सयंसि—

१. चिट्ठित्तए वा, २. निसीइत्तए वा, ३. तुयट्टित्तए वा,
४. निद्दाइत्तए वा, ५. पयलाइत्तए वा, ६-९. असणं वा-जाव-साइमं वा, आहारं आहारेत्तए,
१०. उच्चारं वा, ११. पासवणं वा, १२. खेलं वा,
१३. सिंघाणं वा परिट्ठवेत्तए, १४. सज्झायं वा करेत्तए,
१५. झाणं वा झाइत्तए, १६. काउसग्गं वा करित्तए, ठाणं वा ठाइत्तए। —कप्प. उ. ३, सु. १

९८. निर्ग्रन्थों को निर्ग्रन्थियों के उपाश्रय में—

१. खड़े होना, २. बैठना, ३. लेटना,
४. निद्रा लेना, ५. ऊँघ लेना, ६-९. अशन—**यावत्**—स्वादिम का आहार करना,
१०. मल, ११. मूत्र, १२. कफ और
१३. नाक का मैल त्यागना, १४. स्वाध्याय,
१५. ध्यान तथा १६. खड़े या बैठे कायोत्सर्ग करना नहीं कल्पता है।

निग्गंथाणं उवस्सए निग्गंथीणं णिसिद्ध किच्चाइं—

९९. नो कप्पइ निग्गंथीणं निग्गंथाणं उवस्सयंसि चिट्ठित्तए वा -जाव-ठाणं वा ठाइत्तए। — कप्प. उ. ३, सु. २

णिसीहियाए णिसिद्ध किच्चाइं—

१००. जे तत्थ दुवग्गा वा, तिवग्गा वा, चउवग्गा वा, पंचवग्गा वा, अभिसंधारेज्जा णिसीहियं गमणाए,

ते णो अण्णमण्णस्स कायं आलिंगेज्ज वा, विलिंगेज्ज वा, चुंबेज्ज वा, दंतेहिं वा, अच्छिदेज्ज वा विच्छिंदेज्ज वा,

—आ. सु. २, अ. ९, सु. ६४३

निर्ग्रन्थों के उपाश्रय में निर्ग्रन्थियों के लिए निषिद्ध कार्य—

९९. निर्ग्रन्थियों को निर्ग्रन्थों के उपाश्रय में ठहरना—**यावत्**—खड़े या बैठे कायोत्सर्ग करना नहीं कल्पता है।

स्वाध्यायभूमि में निषिद्ध कार्य—

१००. यदि स्वाध्यायभूमि में दो-दो तीन-तीन चार-चार या पाँच-पाँच के समूह में एकत्रित होकर (साधु) जाना चाहे तो,

वहाँ एक-दूसरे के शरीर का परस्पर आलिंगन न करें, न ही एक दूसरे से चिपटें, न वे परस्पर चुम्बन करें, न ही दांतों और नखों से एक दूसरे का छेदन करें।

शय्यैषणा विधि-निषेध—३

अंतलिक्ख उवस्सयस्स विहि-णिसेहो—

१०१. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा, तं जहा— खंधंसि वा-जाव हम्मियतलंसि वा, अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि अंतलिक्खजायंसि णण्णत्थ आगाढागाढेहिं कारणेहिं णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा।

से य आहच्च चेतिते सिया,

णो तत्थ सीतोदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, हत्थाणि वा, पादाणि वा, अच्छीणि वा, दंताणि वा, मुहं वा, उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा,

णो तत्थ ऊसढं पकरेज्जा, तं जहा—उच्चारं वा, पासवणं वा, खेलं वा, सिंघाणं वा, वंतं वा, पित्तं वा, पूतिं वा, सोणियं वा, अण्णतरं वा सरीरावयवं।

केवली बूया—आयाणमेयं।

से तत्थ ऊसढं पकरेमाणे पयलेज्ज वा, पवडेज्ज वा, से तत्थ पयलमाणे वा, पवडमाणे वा, हत्थं वा-जाव-सीसं वा अण्णतरं वा कायंसि इंदियजातं लूसेज्ज वा पाणाणि वा -जाव-सत्ताणि वा अभिहणेज्ज वा-जाव ववरोवेज्ज वा।

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा एस पइण्णा-जाव-एस उवएसे, जं तहप्पगारे उवस्सए अंतलिक्खजाते णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेज्जा।

—आ. सु. २, अ. २, उ. १, सु. ४१६

अन्तरिक्ष उपाश्रय के विधि-निषेध—

१०१. भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे उपाश्रय को जाने,

जो कि स्तम्भ पर बना है—**यावत्**–प्रासाद के तल पर बना हुआ है, अथवा अन्य भी इसी प्रकार के अन्तरिक्षजात स्थान है, तो किसी अत्यंत गाढ कारण के बिना उक्त प्रकार के उपाश्रय में स्थान शय्या और स्वाध्याय न करे।

कदाचित् कारणवश ऐसे उपाश्रय में ठहरना पड़े तो

वहाँ प्रासुक शीतल जल से या उष्ण जल से हाथ, पैर, आँख, दाँत, या मुँह एक बार या बार-बार न धोए,

वहाँ पर किसी भी प्रकार का व्युत्सर्जन न करे, यथा उच्चार (मल) प्रस्रवण (मूत्र) मुख का मैल, नाक का मैल, वमन, पित्त, मवाद, रक्त तथा शरीर के अन्य किसी भी अवयव के मल का त्याग वहाँ न करें।

क्योंकि केवलज्ञानी प्रभु ने इसे कर्मों के आने का कारण बताया है।

वह वहाँ पर मलोत्सर्ग आदि करता हुआ फिसल जाए या गिर पड़े। ऊपर से फिसलने या गिरने पर उसके हाथ–**यावत्**–सिर तथा शरीर के किसी भी भाग में या अन्य किसी इन्द्रिय पर चोट लग सकती है, तथा प्राणी—**यावत्**–सत्व भी घायल हो सकते हैं—**यावत्**—प्राणरहित हो सकते हैं।

अतः भगवान् ने पहले से ही साधु के लिये ऐसी प्रतिज्ञा बताई है—**यावत्**– उपदेश दिया है कि इस प्रकार के अंतरिक्ष जात उपाश्रय में स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे।

एसणिज्जा अणेसणिज्जा य उवस्सया—

१०२. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा अभिकंखेज्जा उवस्सयं एसित्तए से अणुपविसित्ता गामं वा-जाव-रायहाणिं वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा-सअंडं-जाव-मक्कडा संताणयं।

तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा अप्पंडं-जाव-मक्कडा-संताणयं।

तहप्पगारे उवस्सए पडिलेहित्ता पमज्जित्ता ततो संजयामेव ठाणं वा, सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेज्जा।

—आ. सु. २, अ, २, उ. १, सु. ४१२

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा बहवे समण-जाव-वणीमए समुद्दिस्स पाणाई-जाव-सत्ताइं समारम्भ-जाव-अभिहडं आहट्टु चेतेति।

तहप्पगारे उवस्सए अपुरिसंतरकडे-जाव-अणासेविते णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा।

अह पुण एवं जाणेज्जा पुरिसंतरकडे-जाव-आसेविते, पडिलेहित्ता पमज्जित्ता ततो संजयामेव ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा, चेतेज्जा।

—आ. सु. २, अ. २, उ. १, सु. ४१४

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा-अस्संजए भिक्खुपडियाए कडिए वा, उक्कंबिए वा, छन्ने वा, लित्ते वा, घट्ठे वा, मट्ठे वा, संमट्ठे वा संपधूविए वा।

तहप्पगारे उवस्सए अपुरिसंतरकडे-जाव-अणासेविए णो ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेज्जा।

अह पुण एवं जाणेज्जा—पुरिसंतरकडे-जाव-आसेविते, पडिलेहित्ता पमज्जित्ता ततो संजयामेव ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेज्जा। —आ. सु. २, अ. २, उ. १, सु. ४१५

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा—अस्संजते भिक्खुपडियाए खुड्डियाओ दुवारियाओ महल्लियाओ कुज्जा-जाव-संथारगं संथरेज्जा बहिया वा णिण्णक्खू।

तहप्पगारे उवस्सए अपुरिसंतरकडे-जाव-अणासेविए णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा।

अह पुण एवं जाणेज्जा पुरिसंतरकडे-जाव-आसेविते, पडिलेहित्ता पमज्जित्ता, ततो संजयामेव ठाणं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा। —आ. सु. २, अ. २, उ. १, सु. ४१६

एषणीय और अनेषणीय उपाश्रय—

१०२. भिक्षु या भिक्षुणी उपाश्रय की गवेषणा करना चाहे तो ग्राम **यावत्**—राजधानी में प्रवेश करके साधु के योग्य उपाश्रय का अन्वेषण करते हुए यदि यह जाने कि उपाश्रय अंडों से—**यावत्**—मकड़ी के जाले आदि से युक्त है तो,

ऐसे उपाश्रय में स्थान, शय्या और स्वाध्याय न करे।

भिक्षु या भिक्षुणी जिस उपाश्रय को अंडों से—**यावत्**—मकड़ी जालों से रहित जाने तो,

ऐसे उपाश्रय का प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके उसमें यतना पूर्वक स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय करे।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसा उपाश्रय जाने जो श्रमण—**यावत्**—भिखारी के उद्देश्य से प्राणी—**यावत्**—सत्वों का समारम्भ करके बना है—**यावत्**—अन्य स्थान से लाकर दे तो

ऐसा उपाश्रय यदि अपुरुषान्तरकृत—**यावत्**—अनासेवित हो तो उसमें स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे।

यदि वह जाने कि उपाश्रय पुरुषान्तरकृत—**यावत्**—आसेवित है तो प्रतिलेखन तथा प्रमार्जन करके उसमें यतनापूर्वक स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय करे।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसा उपाश्रय जाने जो कि गृहस्थ ने साधुओं के निमित्त काष्ठादि लगाकर संस्कारित किया है, बांस आदि से बाँधा है, घास आदि से आच्छादित किया है, गोबर आदि से लीपा है, सँवारा है, घिसा है या चिकना किया है, ऊबड़खाबड़ स्थान को समतल बनाया है, दुर्गन्ध आदि को मिटाने के लिए धूप आदि सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित किया है।

ऐसा उपाश्रय यदि अपुरुषान्तरकृत—**यावत्**—अनासेवित हो तो उसमें स्थान शय्या और स्वाध्याय न करे।

यदि वह जाने कि वह उपाश्रय पुरुषान्तरकृत—**यावत्**—आसेवित है तो प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके यतनापूर्वक उसमें स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय करे।

भिक्षु या भिक्षुणी ऐसा उपाश्रय जाने कि गृहस्थ ने साधुओं के लिए छोटे द्वार को बड़ा बनाया है **यावत्**—संस्तारक बिछाया है, अथवा कुछ सामान बाहर निकाला है।

ऐसा उपाश्रय यदि अपुरुषान्तरकृत—**यावत्**—अनासेवित हो तो वहाँ स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे।

यदि वह जाने कि वह उपाश्रय पुरुषान्तरकृत—**यावत्**—आसेवित है तो प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके यतनापूर्वक उसमें स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा — अस्संजए भिक्खुपडियाए उदकपसुयाणि कंदाणि वा, मूलाणि वा, पत्ताणि वा, पुप्फाणि वा, फलाणि वा, बीयाणि वा, हरियाणि वा, ठाणाओ ठाणं साहरति, बहिया वा णिण्णक्खु।

तहप्पगारे उवस्सए अपुरिसंतरकडे-जाव-अणासेविते णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा।

अह पुण एवं जाणेज्जा—पुरिसंतरकडे-जाव-आसेविते, पडिलेहित्ता पमज्जित्ता ततो संजयामेव ठाणं वा सेज्जं वा णिसीहियं वा चेतेज्जा।

—आ. सु. २, अ. २, उ. २, सु. ४१७

भिक्षु या भिक्षुणी ऐसा उपाश्रय जाने कि गृहस्थ साधुओं के निमित्त से, पानी से उत्पन्न हुए कन्द मूल, पत्र, फूल, फल, बीज और हरी को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाता है या भीतर से कन्द आदि पदार्थों को बाहर निकालता है।

ऐसा उपाश्रय यदि अपुरुषान्तरकृत —**यावत्**— अनासेवित हो तो वहां स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे।

यदि यह जाने कि वह उपाश्रय पुरुषान्तरकृत—**यावत्**— आसेवित है तो प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके यतनापूर्वक स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा— अस्संजए भिक्खुपडियाए पीढं वा, फलगं वा, णिस्सेणिं वा, उदूखलं वा, ठाणाओ ठाणं साहरति, बहिया वा णिण्णक्खु।

तहप्पगारे उवस्सए अपुरिसंतरकडे-जाव-अणासेविते णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा।

अह पुण एवं जाणेज्जा - पुरिसंतरकडे-जाव-आसेविते, पडिलेहित्ता पमज्जित्ता ततो संजयामेव ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा।

—आ. सु. २, अ. २, उ. १, सु. ४१८

भिक्षु या भिक्षुणी ऐसा उपाश्रय जाने कि गृहस्थ साधुओं को ठहराने की दृष्टि से (उसमें रखे हुए) चौकी, पाट, नीसरणी या ऊखल आदि सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है, अथवा अन्य सामान बाहर निकालता है।

ऐसा उपाश्रय अपुरुषान्तरकृत—**यावत्**— अनासेवित हो तो साधु उसमें स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे।

यदि यह जाने कि उपाश्रय पुरुषान्तरकृत - **यावत्** - आसेवित है तो प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके यतनापूर्वक स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय करे।

तण पलाल णिम्मिय उवस्सय विहि-णिसेहो—

१०३. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा, तं जहा - तणपुंजेसु वा, पलालपुंजेसु वा, सअंडे-जाव-मक्कडा संताणए।

तहप्पगारे उवस्सए णो ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उवस्सयं जाणेज्जा, तं जहा — तणपुंजेसु वा पलालपुंजेसु वा अप्पंडे-जाव-मक्कडा संताणए।

तहप्पगारे उवस्सए पडिलेहित्ता पमज्जित्ता ततो संजयामेव ठाणं वा, सेज्जं वा, णिसीहियं वा चेतेज्जा।

—आ. सु. २, अ. २, उ. २, सु. ४३१

तृण पराल निर्मित उपाश्रय का विधि-निषेध—

१०३. भिक्षु या भिक्षुणी उपाश्रय के सम्बन्ध में यह जाने कि तृण पुंज से बना गृह या पुआल पुंज से बना गृह अंडे—**यावत्**— मकड़ी के जालों से युक्त है।

इस प्रकार के उपाश्रय में स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय न करे।

भिक्षु या भिक्षुणी उपाश्रय के सम्बन्ध में यह जाने कि तृण-पुंज से बना गृह या पुआल पुंज से बना गृह अंडों—**यावत्**— मकड़ी के जालों से युक्त नहीं है।

इस प्रकार के उपाश्रय में प्रतिलेखन प्रमार्जन करके यतना पूर्वक स्थान, शय्या एवं स्वाध्याय करे।

से तणेसु वा, तणपुंजेसु वा, पलालेसु वा, पलालपुंजेसु वा, अप्पंडेसु-जाव-मक्कडा संताणएसु, अहे सवणमायाए।

नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा, तहप्पगारे उवस्सए हेमंत-गिम्हासु वत्थए।

से तणेसु वा-जाव-मक्कडासंताणएसु, उप्पिसवणमायाए।

जो उपाश्रय तृण या तृण पुंज, पराल या परालपुंज से बना हो और वह अंडे - **यावत्**—मकड़ी के जालों से रहित हो तथा उस उपाश्रय के छत की ऊँचाई कानों से नीची हो तो।

ऐसे उपाश्रय में निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को हेमन्त ग्रीष्म ऋतु में बसना नहीं कल्पता है।

जो उपाश्रय तृण या तृणपुंज से बना हो—**यावत्**—मकड़ी के जालों से रहित हो (साथ ही) उपाश्रय की छत की ऊँचाई कानों से ऊँची हो तो,

कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तहप्पगारे उवस्सए हेमंत-गिम्हासु वत्थए।

से तणेसु वा तणपुंजेसु वा पलालेसु वा, पलालपुंजेसु वा, अप्पंडेसु-जाव-मक्कडासंताणएसु अहेरयणिमुक्कमउडेसु।

नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तहप्पगारे उवस्सए वासावासं वत्थए।

से तणेसु वा-जाव-मक्कडा संताणएसु उप्पिं रयणिमुक्कमउडेसु।

कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा तहप्पगारे उवस्सए वासावासं वत्थए। —कप्प. उ. ४, सु. ३५-३८

अवंगुयदुवारिय उवस्सयस्स विहि-णिसेहो—

१०४. नो कप्पइ निग्गंथीणं, अवंगुयदुवारिए उवस्सए वत्थए।

एगं पत्थारं अंतो किच्चा, एगं पत्थारं बाहिं किच्चा, ओहाडिय चिलिमिलियागंसि एवं णं कप्पइ वत्थए।

—कप्प. उ. १, सु. १४-१५

ओसहिजुत्त उवस्सयस्स विहि-णिसेहो—

१०५. उवस्सयस्स अंतोवगडाए सालीणि वा, वीहीणि वा, मुग्गाणि वा, मासाणि वा, तिलाणि वा, कुलत्थाणि वा, गोधूमाणि वा, जवाणि वा, जवजवाणि वा, उक्खित्ताणि वा, विक्खित्ताणि वा, विइकिण्णाणि वा, विप्पइण्णाणि वा।

नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा, अहालंदमवि वत्थए।

अह पुण एवं जाणेज्जा – नो उक्खित्ताइं, नो विक्खित्ताइं, नो विइ किण्णाइं, नो विप्पकिण्णाइं।

रासिकडाणि वा, पुंजकडाणि वा, भित्तिकडाणि वा, कुलियाकडाणि वा, लंछियाणि वा, मुद्दियाणि वा, पिहियाणि वा।

कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, हेमन्तु—गिम्हासु वत्थए।

अह पुण एवं जाणेज्जा नो रासिकडाइं, नो पुंजकडाइं, नो भित्तिकडाइं नो कुलियाकडाइं।

कोट्ठाउत्ताणि वा, पल्लाउत्ताणि वा, मंचाउत्ताणि वा, मालाउत्ताणि वा, ओलित्ताणि वा, विलित्ताणि वा, पिहियाणि वा, लंछियाणि वा, मुद्दियाणि वा।

कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा वासावासं वत्थए।

—कप्प. उ. २, सु. १-३

ऐसे उपाश्रय में निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को हेमन्त तथा ग्रीष्म ऋतु में बसना कल्पता है।

जो उपाश्रय तृण या तृणपुंज या पराल या परालपुंज से बना हो और वह अंडे—यावत्—मकड़ी के जालों से रहित हो किन्तु उपाश्रय के छत की ऊँचाई खड़े व्यक्ति के सिर से ऊपर उठे सीधे दोनों हाथ जितनी ऊँचाई से नीची हो तो ऐसे उपाश्रय में निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को वर्षावास बसना नहीं कल्पता है।

जो उपाश्रय तृण से बना हो—यावत्—मकड़ी के जालों से रहित हो और साथ ही उपाश्रय के छत की ऊँचाई खड़े व्यक्ति के सिर से ऊपर उठे सीधे दोनों हाथ जितनी ऊँचाई से अधिक हो तो ऐसे उपाश्रय में निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को वर्षावास में बसना कल्पता है।

कपाट रहित द्वार वाले उपाश्रय का विधि-निषेध

१०४. निर्ग्रन्थियों को खुले द्वार वाले उपाश्रय में बसना नहीं कल्पता है।

किन्तु परिस्थितिवश ठहरना पड़े तो एक पर्दा द्वार के अन्दर करके और एक पर्दा द्वार के बाहर करके इस प्रकार चिलिमिलिका बाँध कर उसमें बसना कल्पता है।

धान्य युक्त उपाश्रय के विधि-निषेध—

१०५. उपाश्रय के भीतर शालि, व्रीहि, मूँग, उड़द, तिल, कुलत्थ, गेहूँ, जौ या जवार अव्यवस्थित पड़े हों या अनेक जगह पड़े हों या बिखरे हुए हों, या विशेष बिखरे हुए हों तो,

निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को वहाँ "यथालन्दकाल" तक भी बसना नहीं कल्पता है।

यदि निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियाँ यह जान जाये कि (उपाश्रय के परिक्षेप या आँगन में शालि—यावत्—जवजव) उत्क्षिप्त, विक्षिप्त, व्यतिकीर्ण और विप्रकीर्ण नहीं है,

किन्तु राशिकृत, पुंजकृत, भित्तिकृत, कुलिकाकृत तथा लांछित, मुद्रित या पिहित है तो,

उन्हें हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में वहाँ बसना कल्पता है।

यदि निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियाँ यह जाने कि (उपाश्रय के परिक्षेप या आँगन में शालि—यावत्—जवजव) राशि कृत, पुंजकृत, भित्तिकृत या कुलिकाकृत नहीं है,

किन्तु कोठे में या पल्य में भरे हुए हैं, मंच पर या माले पर सुरक्षित हैं, मिट्टी या गोबर से लिपे हुए हैं, ढके हुए, चिन्ह किये हुए या मुहर लगे हुए हैं तो उन्हें वहाँ वर्षावास में बसना कल्पता है।

आहार जुत्त उवस्सयस्स विहि-णिसेहो—

१०६. उवस्सयस्स अंतोवगडाए—पिण्डए वा, लोयए वा, खीरं वा, दहिं वा, नवणीए वा, सप्पि वा, तेल्ले वा, फाणियं वा, पूवे वा, सक्कुली वा, सिहरिणी वा।

उक्खित्ताणि वा, विक्खित्ताणि वा, विइगिण्णाणि वा, विप्पइण्णाणि वा।

नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा, अहालंदमवि वत्थए।

अह पुण एवं जाणेज्जा—नो उक्खित्ताइं, नो विक्खित्ताइं, नो विइकिण्णाइं वा, नो विप्पइण्णाइं वा।

रासिकडाणि वा, पुंजकडाणि वा, भित्तिकडाणि वा, कुलियाकडाणि वा, लंछियाणि वा, मुद्दियाणि वा, पिहियाणि वा। कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा हेमंत—गिम्हासु वत्थए।

अह पुण एवं जाणेज्जा—नो रासिकडाइं-जाव-नो कुलियाकडाइं।

कोट्ठाउत्ताणि वा, पल्लाउत्ताणि वा, मंचाउत्ताणि वा, मालाउत्ताणि वा, कुंभिउत्ताणि वा, करभि-उत्ताणि वा, ओलित्ताणि वा, विलित्ताणि वा, पिहियाणि वा, लंछियाणि वा, मुद्दियाणि वा। कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा वासावासं वत्थए।

—कप्प. उ. २, सु. ८-१०

आहार युक्त उपाश्रय के विधि-निषेध—

१०६. उपाश्रय की परिधि में पिण्डरूप खाद्य, लोचक-मावा आदि, दूध, दही, नवनीत, घृत, तेल, गुड़, मालपुए, पूड़ी और श्रीखण्ड (शिखरण)

उत्क्षिप्त विक्षिप्त व्यतिकीर्ण और विप्रकीर्ण है तो,

निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को वहाँ "यथालन्दकाल" बसना भी नहीं कल्पता है।

यदि निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियाँ यह जाने कि (उपाश्रय की परिधि में या आँगन में पिण्डरूप खाद्य—**यावत्**—श्रीखण्ड) उत्क्षिप्त, विक्षिप्त, व्यतिकीर्ण या विप्रकीर्ण नहीं है,

किन्तु राशिकृत, पुंजकृत, भित्तिकृत, कुलिकाकृत तथा लांछित मुद्रित या पिहित है तो,

निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को वहाँ हेमन्त और ग्रीष्म ऋतु में बसना कल्पता है।

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियाँ यदि यह जाने कि (उपाश्रय के भीतर में पिण्डरूप खाद्य—**यावत्**—श्रीखण्ड) राशिकृत-**यावत्**-कुलिकाकृत नहीं है,

किन्तु कोठे में या पल्य में भरे हुए हैं, मंच पर या माले पर सुरक्षित है, कुंभी या बोधी में धरे हुए हैं, मिट्टी या गोबर से लिप्त हैं, ढके हुए, चिन्ह किये हुए या मुहर लगे हुए हैं तो उन्हें वहाँ वर्षावास करना कल्पता है।

गामाइसु वासावास विहि-णिसेहो—

१०७. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण जाणेज्जा-गामं वा-जाव-रायहाणिं वा।

इमंसि खलु गामंसि वा-जाव-रायहाणिंसि वा णो महती विहार भूमि, णो महती वियार भूमी।

णो सुलभे पीढ फलग सेज्जा—संथारए।

णो सुलभे फासुए उंछे अहेसणिज्जे।

बहवे जत्थ समण-जाव-वणीमगा उवागया उवागमिस्संति य अच्चाइण्णा वित्ती, णो पण्णस्स णिक्खमण पवेसाए-जाव-चिंताए।

सेवं णच्चा तहप्पगारं गामं वा-जाव-रायहाणिं वा णो वासावासं उवल्लिएज्जा।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण जाणेज्जा—गामं वा-जाव-रायहाणिं वा।

ग्रामादि में चातुर्मास करने का विधि-निषेध—

१०७. भिक्षु या भिक्षुणी ग्राम—**यावत्**—राजधानी के सम्बन्ध में यह जाने कि—

इस ग्राम—**यावत्**—राजधानी में स्वाध्याय योग्य विशाल भूमि नहीं है, मलमूत्र विसर्जन के लिए विशाल स्थंडिल भूमि नहीं है,

पीठ फलक शय्या संस्तारक भी सुलभ नहीं है,

प्रासुक निर्दोष एषणीय आहार पानी भी सुलभ नहीं है,

जहाँ बहुत से श्रमण—**यावत्**—भिखारी आये हुए हैं या आवेंगे, तथा मार्गों में जनता की भीड़ भी अधिक रहती है। प्रज्ञावान् साधु को वहाँ निकलना प्रवेश करना—**यावत्**—धर्म चिन्तन करना उपयुक्त नहीं होता है, ऐसा जानकर इस प्रकार के ग्राम—**यावत्**—राजधानी में वर्षावास नहीं करे।

भिक्षु या भिक्षुणी ग्राम—**यावत्**—राजधानी के सम्बन्ध में यह जाने कि,

इमंसि खलु गामंसि वा-जाव-रायहाणिंसि वा, महती विहारभूमि, महती वियारभूमि।
सुलभे जत्थ पीढ-फलग-सेज्जा-संथारए,
सुलभे फासुए उंछे अहेसणिज्जे,
णो जत्थ बहवे समण-जाव-वणीमगा उवागया उवागमिस्संति य।

अप्पाइण्णा वित्ती, पण्णस्स णिक्खमण-पवेसाए-जाव-चिंताए। सेवं णच्चा तहप्पगारं गामं वा-जाव-रायहाणिं वा तओ संजयामेव वासावासं उवल्लिएज्जा।

—आ० सु० २, अ० ३, उ० १, सु० ४६५-४६६

इस ग्राम—यावत्—राजधानी में स्वाध्याय-योग्य विशाल भूमि है, मल-मूत्र-विसर्जन के लिए विशाल स्थंडिल भूमि है,
यहाँ पीठ, फलक, शय्या-संस्तारक की प्राप्ति भी सुलभ है,
प्रासुक निर्दोष एवं एषणीय आहार पानी भी सुलभ है,
जहाँ बहुत-से श्रमण—यावत्—भिखारी आये हुए नहीं हैं और न आयेंगे

तथा यहाँ के मार्गों पर जनता की भीड़ भी कम है, जिससे कि प्राज्ञ साधु का निकलना और प्रवेश करना—यावत्—धर्म चिन्तन करना हो सकता है, अतः इस प्रकार जानकर साधु ऐसे ग्राम—यावत्—राजधानी में यतनापूर्वक वर्षावास व्यतीत करे।

बहुसुयस्स वसइ वासाइं विहि-णिसेहो—

१०८. से गामंसि वा जाव सन्निवेसंसि वा अभिनिव्वगडाए, अभिनिदुवाराए, अभिनिक्खमण-पवेसणाए नो कप्पइ बहुसुयस्स बब्भागमस्स एगाणियस्स भिक्खुस्स वत्थए किमंगपुण अप्पसुयस्स अप्पागमस्स?

१०९. से गामंसि वा जाव सन्निवेसंसि वा एगवगडाए, एगदुवाराए, एगनिक्खमण-पवेसाए कप्पइ बहुस्सुयस्स बब्भागमस्स एगाणियस्स भिक्खुस्स वत्थए दुहओ कालं भिक्खुभावं पडिजागरमाणस्स। —ववहार. उ. ६, सु. १४-१५

बहुश्रुत वसति निवास-विधि-निषेध—

१०८. भिन्न-भिन्न वाड़, प्राकार या द्वारवाले और भिन्न-भिन्न निष्क्रमण-प्रवेश वाले ग्राम—यावत्—सन्निवेश में अकेले बहुश्रुत और बहुआगमज्ञ भिक्षु को भी बसना नहीं कल्पता है तो अल्पश्रुत और अल्पागमज्ञ भिक्षु को (पूर्वोक्त ग्राम—यावत्—सन्निवेश में) बसना कैसे कल्प सकता है?

१०९. एक वाड़, प्राकार या द्वार वाले और एक निष्क्रमण-प्रवेश वाले ग्राम—यावत्—सन्निवेश में अकेले बहुश्रुत और बहुआगमज्ञ को बसना कल्पता है यदि वह भिक्षुभाव (संयमभाव) के प्रति सतत जागृत हो तो।

काउसग्ग हेउ ठाणस्स विहि-णिसेहो—

११०. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा अभिकंखेज्जा ठाणं ठाइत्तए। से अणुपविसेज्जा गामं वा-जाव-रायहाणिं वा।
से अणुपविसित्ता गामं वा-जाव-रायहाणिं वा से ज्जं पुण ठाणं जाणेज्जा-सअंडं-जाव-मक्कडासंताणयं।

तहप्पगारं ठाणं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा,

एवं सेज्जागमेण नेयव्वं जाव उदयपसूयाई त्ति।[1]

— आ. सु. २, अ. ८, उ. १, सु. ६३७

कायोत्सर्ग के लिए स्थान का विधि-निषेध—

११०. भिक्षु या भिक्षुणी यदि किसी स्थान में कायोत्सर्ग से रहना चाहे तो वह पहले ग्राम—यावत्—राजधानी में पहुँचे,
वहाँ ग्राम—यावत्—राजधानी में पहुँच कर वह जिस स्थान को जाने कि यह अंडों—यावत्—मकड़ी के जालों से युक्त है, तो,
उस प्रकार के स्थान को अप्रासुक एवं अनैषणीय जानकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।
इसी प्रकार इससे आगे का स्थानैषणा सम्बन्धी वर्णन शय्यैषणा अध्ययन में निरूपित उदक प्रसूत कंदादि तक के वर्णन के समान जान लेना चाहिए।

णिसीहियाए गमण विहि-णिसेहो—

१११. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा अभिकंखेज्जा णिसीहियं गमणाए।
से ज्जं पुण णिसीहियं जाणेज्जा सअंडं-जाव-मक्कडासंताणयं,

स्वाध्यायभूमि में जाने के विधि-निषेध—

१११. भिक्षु या भिक्षुणी स्वाध्यायभूमि में जाना चाहे तो,

वह स्वाध्यायभूमि के सम्बन्ध में यह जाने कि जो अंडों, —यावत्—मकड़ी के जालों से युक्त हो तो,

---

१ आ. सु. २, अ. २, उ. १, सु. ४१२-४१७ पर्यन्त।

तहप्पगारं णिसीहियं अफासुयं-जाव-णो चेएज्जा।

उस प्रकार की स्वाध्यायभूमि को अप्रासुक समझ कर —यावत्—ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखेज्जा णिसीहियं गमणाए, से ज्जं पुण निसीहियं जाणेज्जा-अप्पंडं-जाव-मक्कडासंताणयं। तहप्पगारं णिसीहियं फासुयं-जाव-चेएज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी स्वाध्याय भूमि में जाना चाहे तो वह स्वाध्याय भूमि के सम्बन्ध में यह जाने कि जो अंडों —यावत्—मकड़ी के जालों से रहित है उस प्रकार की स्वाध्याय भूमि को प्रासुक समझकर —यावत्—ग्रहण करे।

एवं सेज्जागमेणं णेयव्वं जाव उदयपसूयाणि त्ति।

—आ. सु. २, अ. २, उ. ६, सु. ६४१-६४२

इसी प्रकार इससे आगे का स्वाध्यायभूमि सम्बन्धित वर्णन शय्यैषणा अध्ययन में निरूपित उदक प्रसूत कंदादि तक के वर्णन के समान जान लेना चाहिए।

अंतोगिहठाणाइ पगरणम्—

अन्तर गृहस्थानादि प्रकरण—

११२. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा—अंतरगिहंसि आसइत्तए वा, चिट्ठित्तए वा, निसीइत्तए वा, तुयट्टित्तए वा, निद्दाइत्तए वा, पयलाइत्तए वा, असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा आहारमाहारेत्तए, उच्चारं वा पासवणं वा खेलं वा सिंघाणं वा परिट्ठवेत्तए, सज्झायं वा करित्तए, झाणं वा झाइत्तए, काउस्सग्गं वा करित्तए, ठाणं वा ठाइत्तए।

अह पुण एवं जाणिज्जा - वाहिए, जराजुण्णे, तवस्सी, दुब्बले, किलंते मुच्छेज्ज वा, पवडेज्ज वा एवं से कप्पइ अंतरगिहंसि आसइत्तए वा जाव—ठाणं वा ठाइत्तए।

—कप्प. उ. ३, सु. २१

११२. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को गृहस्थ के घर में या दो घरों के मध्य में ठहरना, बैठना—यावत्—खड़े होकर कायोत्सर्ग करना नहीं कल्पता है।

यदि वह यह जाने कि—मैं व्याधि-ग्रस्त, जरा-जीर्ण, तपस्वी या दुर्बल हूँ।

अथवा (भिक्षाटन से) क्लान्त होकर मूर्च्छित हो जाए या गिर पड़े तो उसे गृहस्थ के घर में या दो घरों के मध्य में ठहरना —यावत्—कायोत्सर्ग कर स्थित होना कल्पता है।

अवग्रह ग्रहण विधि—४

पंचविहा उग्गहा—

पाँच प्रकार के अवग्रह—

११३. सुयं मे आउसं तेणं भगवया एवमक्खायं—इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं पंचविहे उग्गहे पण्णत्ते, तं जहा—

१. देविंदोग्गहे, २. राओग्गहे,
३. गाहावतिउग्गहे, ४. सागारिय उग्गहे,
५. साहम्मिय उग्गहे।[1]

—आ. सु. २, अ. ७, उ. २, सु. ६३५

११३. हे आयुष्मन् शिष्य! मैंने उन भगवान् से इस प्रकार सुना है कि इस जिन-प्रवचन में स्थविर भगवन्तों ने पाँच प्रकार का अवग्रह अर्थात् पाँच प्रकार की आज्ञा बताई है। जैसे कि—

(१) देवेन्द्र-अवग्रह, (२) राजावग्रह,
(३) गृहपति-अवग्रह, (४) सागारिक-अवग्रह, और
(५) साधर्मिक-अवग्रह।

उग्गह गहण विहि—

आज्ञा ग्रहण करने की विधि—

११४. विहवधूया नायकुलवासिणी, सा वि यावि ओग्गहं अणुन्नवेयव्वा किमंग पुण पिया वा भाया वा पुत्ते वा, से वि या वि ओग्गहे ओगेण्हियव्वे। पहे वि ओग्गहो अणुन्नवेयव्वो।

—वव. उ. ७, सु. २४-२५

११४. पिता के घर पर जीवनयापन करने वाली विधवा लड़की की भी आज्ञा ली जा सकती है अतः पिता, भाई, पुत्र का तो कहना ही क्या? उनकी भी आज्ञा ग्रहण की जा सकती है तथा मार्ग में ठहरना हो तो उस स्थान की भी आज्ञा ग्रहण करनी चाहिए।

---

१ वि० स० १६, उ० २, सु० १०

पुव्व गहिय उग्गहस्स गहण विहि—

११५. अत्थि या इत्थ केइ उवस्सयपरियावन्नए अचित्ते परिहरणारिहे सच्चेव उग्गहस्स पुव्वाणुन्नवणा चिट्ठइ अहालंदमवि उग्गहे।

से वत्थूसु—अव्वावडेसु अव्वोगडेसु अपरपरिग्गहिएसु, अमरपरिग्गहीएसु सच्चेव उग्गहस्स पुव्वाणुन्नवणा चिट्ठइ अहालंदमवि उग्गहे।

से वत्थूसु वावडेसु परपरिग्गहिएसु भिक्खुभावस्स अट्ठाए दोच्चंपि उग्गहे अणुन्नवेयव्वे सिया अहालन्दमवि उग्गहे।

से अणुकुड्डेसु वा, सच्चेव उग्गहस्स पुव्वाणुन्नवणा चिट्ठइ। अहालंदमवि उग्गहे। —कप्प. उ. ३, सु. २९-३२

पूर्व गृहीत अवग्रह के ग्रहण की विधि—

११५. कोई अचित्त उपयोग में आने योग्य वस्तु भी उपाश्रय में हो उसका भी उन्हीं पूर्व की (विहार करने वाले श्रमणों से गृहीत) आज्ञा से जितने काल रहना हो उपयोग किया जा सकता है।

जो घर, काम में न आ रहा हो, कुटुम्ब द्वारा विभाजित न हो, जिस पर किसी अन्य का प्रभुत्व न हो अथवा किसी देव द्वारा अधिकृत हो तो उसमें भी उसी पूर्व की (विहार करने वाले श्रमणों द्वारा ग्रहीत) आज्ञा से जितने काल रहना हो ठहरा जा सकता है।

जो घर काम में आ रहा हो, कुटुम्ब द्वारा विभाजित हो या (पूर्व रहे श्रमणों के विहार करने पर) अन्य से परिगृहीत हो गया हो तो भिक्षु भाव के लिए जितने समय रहना हो उसकी दूसरी बार आज्ञा लेनी चाहिये।

मिट्टी आदि से निर्मित दिवाल के पास, ईंट आदि से निर्मित दिवाल के पास, चरिका (कोट के पास का मार्ग) के पास, खाई के पास, सामान्य पथ के पास, बाड या कोट के पास भी उसी पूर्व की (विहार करने वाले श्रमणों द्वारा ग्रहीत) आज्ञा से जितने काल रहना हो ठहरा जा सकता है।

उग्गह खेत्तपमाणं—

११६. से गामंसि वा-जाव-सन्निवेसंसि वा कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सव्वओ समंता सक्कोसं जोयणं उग्गहं ओगिण्हित्ताणं चिट्ठित्तए। —कप्प. उ. ३, सु. ३४

अवग्रह क्षेत्र का प्रमाण—

११६. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को ग्राम—यावत्—सन्निवेश में चारों ओर से एक कोश सहित एक योजन का अवग्रह ग्रहण करके रहना कल्पता है, अर्थात् एक दिशा में ढाई कोश क्षेत्र में जाना आना कल्पता है।

उग्गह गहण वसण-विवेगो—

११७. से आगंतारेसु वा-जाव-परियावसहेसु वा, अणुवीइ उग्गहं जाएज्जा, जे तत्थ ईसरे, जे तत्थ समहिट्ठाए ते उग्गहं अणुण्णवेज्जा—

कामं खलु आउसो! अहालंदं अहापरिण्णायं वसामो, जाव आउसो, जाव आउसंतस्स उग्गहे, जाव साहम्मिया, एत्ता ताव उग्गहं ओगिण्हिस्सामो तेण परं विहरिस्सामो।[1]

से किं पुण तत्थ उग्गहंसि एवोग्गहियंसि?

जे तत्थ समणाण वा, माहणाण वा, दंडए वा, छत्तए वा -जाव-चम्मछेदणए वा, तं णो अंतोहिंतो बाहिं णीणेज्जा,

अवग्रह के ग्रहण करने का और उसमें रहने का विवेक—

११७. साधु पथिकशालाओं यावत्—परिव्राजकों के आवासों का विचार करके अवग्रह ग्रहण करे, उस उपाश्रय के स्वामी की या जो अधिष्ठाता हो तो उसकी आज्ञा मांगे और कहे—

"हे आयुष्मन्! आपकी इच्छानुसार जितनी अवधि तक जितने काल तक की अनुज्ञा दोगे उतने समय तक हम निवास करेंगे और जितनी अवधि तक आयुष्मन् की अनुज्ञा है उस अवधि में यदि अन्य साधर्मिक जितने आएंगे वे भी उसी अवधि तक उतने ही क्षेत्र में ठहरेंगे उसके बाद हम और वे विहार कर देंगे।"

उक्त स्थान में अवग्रह की अनुज्ञा प्राप्त हो जाने पर साधु उसमें निवास करते समय क्या क्या विवेक रखे?

वह यह ध्यान रखे कि—वहाँ पहले ठहरे हुए शाक्यादि श्रमणों या ब्राह्मणों के दण्ड, छत्र—यावत्—चर्मच्छेदनक आदि

---

१ आ. सु. २, अ. ७, उ. १, सु. ६०८

बहियाओ वा णो अंतो पवेसेज्जा, णो सुत्तं वा णं पडिबोहेज्जा, णो तेसिं किंचि वि अप्पत्तियं पडिणीयं करेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ७, उ. २, सु. ६२१-६२२

उपकरण पड़े हों, उन्हें वह भीतर से बाहर न निकाले और न ही बाहर से अन्दर रखे, तथा किसी सोए हुए को न जगाए। उनके साथ किंचित् मात्र भी अप्रीतिजनक या प्रतिकूल व्यवहार न करे, (जिससे उनके हृदय को आघात पहुँचे।)

अवग्रह ग्रहण निषेध—५

सचित्त पुढवी आईणं उग्गह णिसेहो—

११८. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उग्गहं जाणेज्जा—अणंतरहियाए पुढवीए-जाव-मक्कडासंताणए तहप्पगारं उग्गहं णो ओगिण्हेज्ज वा, पगिण्हेज्ज वा।

—आ. सु. २, अ. ७, उ. १, सु. ६१२

सचित्त पृथ्वी आदि का अवग्रह निषेध—

११८. भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे अवग्रह स्थान को जाने, जो सचित्त पृथ्वी के निकट हो **यावत्**—मकड़ी के जाले से युक्त हो, तो इस प्रकार के स्थान का अवग्रह—"आज्ञा" ग्रहण न करे।

अंतलिक्खजात उग्गहाणं णिसेहो—

११९. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उग्गहं जाणेज्जा-थूणंसि वा, गेहेलुयंसि वा, उसुयालंसि वा, कामजलंसि वा, अण्णयरंसि वा, तहप्पगारेंसि अंतलिक्खजायंसि दुब्बद्धे-जाव-चलाचले, णो उग्गहं ओगिण्हेज्ज वा पगिण्हेज्ज वा।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उग्गहं जाणेज्जा-खंधंसि वा, भित्तिंसि वा सिलंसि वा, लेलुंसि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतलिक्खजायंसि दुब्बद्धे-जाव-चलाचले, णो उग्गहं ओगिण्हेज्ज वा, पगिण्हेज्ज वा।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उग्गहं जाणेज्जा-खंधंसि वा, मंचंसि वा, मालंसि वा, पासायंसि वा, हम्मियतलंसि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतलिक्खजायंसि दुब्बद्धे-जाव-चलाचले, णो उग्गहं ओगिण्हेज्ज वा पगिण्हेज्ज वा।

—आ. सु. २, अ. ७, उ. १, सु. ६१३-६१५

अन्तरिक्ष जात अवग्रहों का निषेध—

११९. भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे अवग्रह को जाने, यथा—ठूंठ, देहली, ऊखल, स्नान करने की चौकी तथा अन्य भी ऐसे अन्तरिक्ष जात "आकाशीय" स्थान जो कि दुर्बद्ध - **यावत्**—चलाचल हो उनका अवग्रह ग्रहण नहीं करे।

भिक्षु या भिक्षुणी ऐसे अवग्रह को जाने, जो घर की कच्ची पतली दीवार, ईंट आदि की पक्की दीवार, शिला या शिलाखंड पत्थर आदि अन्य भी ऐसे आकाशीय स्थान जो कि दुर्बद्ध —**यावत्**—चलाचल हो उनका अवग्रह ग्रहण न करे।

भिक्षु या भिक्षुणी ऐसे अवग्रह को जाने—जो स्तम्भ गृह, मंचान, ऊपर की मंजिल, प्रासाद, हवेली की छत तथा अन्य भी ऐसे आकाशीय स्थान जो कि दुर्बद्ध—**यावत्**—चलाचल हो, उनका अवग्रह ग्रहण न करे।

सागारिय संजुत्त उवस्सयस्स उग्गह णिसेहो—

१२०. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उग्गहं जाणेज्जा-ससागारियं, सागणियं, सउदयं, सइत्थियं, सखुड्डं, सपसु-भत्तपाणं णो पण्णस्स णिक्खमण पवेसाए-जाव-धम्माणुओग चिंताए,

सेवं णच्चा तहप्पगारे उवस्सए ससागारिए-जाव-सपसु-भत्तपाणे, णो उग्गहं ओगिण्हेज्ज वा, पगिण्हेज्ज वा।

—आ. सु. २, अ. ७, उ. १, सु. ६१६

गृहस्थ संयुक्त उपाश्रय का अवग्रह निषेध—

१२०. भिक्षु या भिक्षुणी ऐसे अवग्रह को जाने, जो गृहस्थों से संसक्त हो, अग्नि से युक्त हो और जल से युक्त हो तथा जो स्त्रियाँ, छोटे बच्चे, पशु और खाद्य सामग्री से युक्त हो प्रज्ञावान् साधु के लिए ऐसा आवास स्थान निर्गमन-प्रवेश —**यावत्**—धर्मानुयोग चिन्तन के योग्य नहीं है,

यह जानकर ऐसे गृहस्थ से संसक्त—**यावत्** —पशु और खाद्य सामग्री से युक्त उपाश्रय का अवग्रह ग्रहण न करे।

पडिबद्ध उवसयस्स उग्गह णिसेहो—

१२१. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा से ज्जं पुण उग्गहं जाणेज्जा-गाहावतिकुलस्स मज्झंमज्झेणं गंतुं वत्थए, पडिबद्धं वा, णो पण्णस्स णिक्खमण पवेसाए-जाव-धम्माणुओग चिंताए,

से एवं णच्चा तहप्पगारे उवस्सए णो उग्गहं ओगिण्हेज्ज वा, पगिण्हेज्ज वा । —आ. सु. २, अ. ७, उ. १, सु. ६१७

गृहस्थ के घर से संलग्न उपाश्रय का अवग्रह निषेध—

१२१. भिक्षु या भिक्षुणी ऐसे अवग्रह स्थान को जाने कि जिसमें ठहरने पर गृहस्थ के घर में से होकर जाना-आना पड़ता हो अथवा जो गृहस्थ के घर से संलग्न हो वहाँ प्रज्ञावान साधु को निकलना और प्रवेश करना—**यावत्**—धर्मानुयोग चिन्तन करना उचित नहीं है,

यह जानकार ऐसे उपाश्रय का अवग्रह ग्रहण न करे ।

अकप्पणिज्ज उवस्सयाण उग्गह णिसेहो—

१२२. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उग्गहं जाणेज्जा-इह खलु गाहावती वा-जाव-कम्मकरीओ वा, अण्णमण्णं अक्कोसंति वा-जाव-उद्दवंति वा । तहेव तेल्लादि, सिणाणादि, सीओदगवियडादि, णिगिणाठिता जहा सेज्जाए आलावगा, णवरं उग्गह वत्तव्वता ।

—आ. सु. २, अ. ७, उ. १, सु. ६१८

अकल्पनीय उपाश्रयों का अवग्रह निषेध—

१२२. भिक्षु या भिक्षुणी ऐसे अवग्रह स्थान को जाने, जिसमें गृहस्वामी—**यावत्**—नौकरानियाँ परस्पर एक दूसरे पर आक्रोश करते हों—**यावत्**—उपद्रव करते हों **इसी प्रकार परस्पर एक दूसरे के शरीर पर तेल आदि लगाते हों, स्नानादि सुगन्धित द्रव्य लगाते हों, शीतल या उष्ण जल से गात्र सिंचन आदि करते हों या नग्न स्थित हो इत्यादि वर्णन शय्या अध्ययन के आलापकों की तरह यहाँ समझ लेना चाहिए इतना विशेष है कि यहाँ अवग्रह की वक्तव्यता कहनी चाहिए ।**

सचित्त उवस्सयस्स उग्गह णिसेहो—

१२३. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण उग्गहं जाणेज्जा-आइण्ण संलेक्खं, णो पण्णस्स णिक्खमण पवेसाए-जाव-धम्माणुओगचिंताए से एवं णच्चा, तहप्पगारे उवस्सए णो उग्गहं ओगिण्हेज्ज वा, पगिण्हेज्ज वा ।

—आ. सु. २, अ. ७, उ. १, सु. ६१९

सचित्र उपाश्रय का अवग्रह लेने का निषेध—

१२३. भिक्षु या भिक्षुणी ऐसे अवग्रह-स्थान को जाने कि जो स्त्री पुरुषों आदि के चित्रों से आकीर्ण हो, ऐसा उपाश्रय प्रज्ञावान् साधु के निर्गमन-प्रवेश—**यावत्**—धर्मानुयोग चिन्तन के योग्य नहीं है। यह जानकार ऐसे उपाश्रय का अवग्रह ग्रहण न करे ।

संस्तारक ग्रहण विधि—६

आगंतुग समणाणं सेज्जा संथारगस्स विहि—

१२४. जद्दिवसं च णं समणा निग्गंथा सेज्जासंथारयं विप्पजहंति तद्दिवसं च णं अवरे समणा निग्गंथा हव्वमागच्छेज्जा सच्चेव ओग्गहस्स पुव्वाणुन्नवणा चिट्ठइ अहालंदमवि उग्गहे ।

—कप्प. उ. ३, सु. २८

आगन्तुक श्रमणों के शय्या संस्तारक की विधि—

१२४. जिस दिन श्रमण-निर्ग्रन्थ शय्या-संस्तारक छोड़कर विहार कर रहे हों उसी दिन या उसी समय दूसरे श्रमण-निर्ग्रन्थ आ जावें तो उसी पूर्व गृहीत आज्ञा से जितने भी समय रहना हो शय्या-संस्तारक को ग्रहण करके रह सकते हैं ।

सेज्जासंथारग गहणं विहि—

१२५. गाहा उदू पज्जोसविए । ताए गाहाए, ताए पएसाए, ताए उवासंतराए, जमिणं जमिणं सेज्जासंथारगं लभेज्जा, तमिणं तमिणं ममेव सिया ।

शय्या संस्तारक के ग्रहण की विधि—

१२५. हेमन्त ग्रीष्म या वर्षाकाल में किसी घर में ठहरने के लिए रहा हो उस घर के उन स्थानों में जो जो **अनुकूल स्थान या** संस्तारक मिले वे वे मैं ग्रहण करूँ ।

थेरा य से अणुजाणेज्जा, तस्सेव सिया। थेरा य से नो अणुजाणेज्जा नो तस्सेव सिया।

एवं से कप्पइ अहाराइणियाए सेज्जासंथारगं पडिग्गाहित्तए।[1]

—वव. उ. ८, सु. १

किन्तु स्थविर यदि उस स्थान के लिए आज्ञा दे तो वहाँ शय्या संस्तारक करना कल्पता है। यदि स्थविर आज्ञा न दें तो वहाँ शय्या-संस्तारक करना नहीं कल्पता है।

स्थविर के आज्ञा न देने पर यथारत्नाधिक (दीक्षापर्याय से ज्येष्ठ-कनिष्ठ) क्रम से शय्या संस्तारक ग्रहण करना कल्पता है।

णिग्गंथाणं कप्पणिज्ज आसणाई—

१२६. कप्पइ निग्गंथाणं सावस्सयंसि आसणंसि आसइत्तए वा, तुयट्टित्तए वा।

कप्पइ निग्गंथाणं सविसाणंसि पीढंसि वा, फलगंसि वा, आसइत्तए वा, तुयट्टित्तए वा। — कप्प. उ. ५, सु. ३७-३९

निर्ग्रन्थों के कल्प्य आसन—

१२६. निर्ग्रन्थ साधुओं को सावश्रय (अवलम्बनयुक्त) आसन पर बैठना एवं शयन करना कल्पता है।

निर्ग्रन्थ साधुओं को सविषाण पीठ (बाजोट) पर या फलक (शयन का पाट) पर बैठना एवं शयन करना कल्पता है।

सेज्जासंथारग आणयण विहि—

१२७. से य अहालहुसगं सेज्जासंथारगं गवेसेज्जा, जं चक्किया एगेणं हत्थेणं ओगिज्झ-जाव-एगाहं वा, दुयाहं वा, तियाहं वा अद्धाणं परिवहित्तए, एस मे हेमंत-गिम्हासु भविस्सइ।

से य अहालहुसगं सेज्जासंथारगं गवेसेज्जा—जं चक्किया एगेणं हत्थेणं ओगिज्झ-जाव-एगाहं वा, दुयाहं वा, तियाहं वा अद्धाणं परिवहित्तए, एस मे वासावासासु भविस्सइ।

से य अहालहुसगं सेज्जासंथारगं गवेसेज्जा जं चक्किया एगेणं हत्थेणं ओगिज्झ-जाव-एगाहं वा, दुयाहं वा, तियाहं वा, चउयाहं वा, पंचाहं वा, दूरमवि अद्धाणं परिवहित्तए, एस मे वुड्ढावासासु भविस्सइ। —वव. उ. ८, सु. २-४

शय्या संस्तारक के लाने की विधि—

१२७. श्रमण यथासम्भव हल्के शय्या-संस्तारक का अन्वेषण करे। वह इतना हल्का हो कि उसे एक हाथ से ग्रहण करके लाया जा सके तथा एक दो तीन दिन तक के मार्ग से लाया जा सकता है। इस प्रयोजन से कि "यह शय्या संस्तारक मेरे हेमन्त या ग्रीष्म ऋतु में काम आएगा।"

श्रमण यथासम्भव हल्के शय्या-संस्तारक का अन्वेषण करे। वह इतना हल्का हो कि उसे एक हाथ से ग्रहण करके लाया जा सके तथा एक दो तीन दिन तक के मार्ग से लाया जा सकता है। इस प्रयोजन से कि "यह शय्या संस्तारक मेरे वर्षावास में काम आएगा।"

श्रमण यथासम्भव हल्के शय्या-संस्तारक की याचना करे। वह इतना हल्का हो कि उसे एक हाथ से उठाकर लाया जा सके तथा एक, दो, तीन, चार, पाँच दिन में पहुँचे इतने दूर (दो कोश उपरान्त) के मार्ग से भी लाया जा सकता है इस प्रयोजन से कि "यह शय्या-संस्तारक मेरे वृद्धावास में काम आएगा।"

सेज्जा संथारगस्स पुणरवि अणुण्णा—

१२८. कप्पए निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पाडिहारियं वा सागारियसंतियं वा सेज्जासंथारगं दोच्चंपि ओग्गहं अणुन्नवेत्ता बहिया नीहरित्तए।

कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा, पाडिहारियं वा, सागारिय-संतियं वा सेज्जासंथारगं सव्वप्पणा अप्पिणित्ता दोच्चं पि ओग्गहं अणुन्नवेत्ता अहिट्ठित्तए। — वव. उ. ८, सु. ७-९

शय्या संस्तारक को पुनः आज्ञा लेने की विधि—

१२८. निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को प्रातिहारिक या शय्यातर का शय्या संस्तारक दूसरी बार आज्ञा लेकर ही वस्ति से बाहर ले जाना कल्पता है।

निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थियों को प्रातिहारिक या शय्यातर का शय्या-संस्तारक सर्वथा सौंप देने के बाद दूसरी बार आज्ञा लेकर ही काम में लेना कल्पता है।

सेज्जा संथारग संथरण विही—

१२९. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, अभिकंखेज्जा सेज्जासंथारग-भूमिं पडिलेहित्तए णण्णत्थ आयरिएण वा, उवज्झाएण वा पवत्तएणं वा, थेरेण वा, गणिणा वा, गणहरेण वा, गणा-

शय्या संस्तारक के बिछाने की विधि—

१२९. भिक्षु या भिक्षुणी शय्या-संस्तारक भूमि की प्रतिलेखना करना चाहे तो वह आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी, गणधर, गणावच्छेदक, बालक, वृद्ध, शैक्ष (नवदीक्षित) ग्लान एवं

1 कप्प. उ. ३, सु. १९।

वच्छेइएण वा, बालेण वा, वुड्ढेण वा, सेहेण वा, गिलाणेण वा, आएसेण वा, अंतेण वा, मज्झेण वा, समेण वा, विसमेण वा, पवाएण वा, णिवातेण वा पडिलेहिय-पडिलेहिय पमज्जिय-पमज्जिय ततो संजयामेव बहुफासुयं सेज्जासंथारगं संथरेज्जा।

—आ. सु. २, अ. २, उ. ३, सु. ४६०(१)

अतिथि साधु के लिये किनारे का स्थान मध्यस्थान या सम और विषम स्थान वातयुक्त या निर्वातस्थान को छोड़कर अन्य भूमि का बार-बार प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके अपने लिए अत्यन्त प्रासुक शय्या-संस्तारक को यतनापूर्वक बिछाए।

सेज्जासंथारे आरोहण सयण विहि—

१३०. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा बहुफासुयं सेज्जासंथारगं संथरित्ता अभिकंखेज्जा, बहुफासुए सेज्जासंथारए दुरुहित्तए।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा बहुफासुए सेज्जासंथारए दुरुहमाणे पुव्वामेव ससीसोवरियं कायं पाए य, पमज्जिय पमज्जिय ततो संजयामेव बहुफासुए सेज्जासंथारए दुरुहेज्जा, दुरुहित्ता ततो संजयामेव बहुफासुए सेज्जासंथारए सएज्जा।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा बहुफासुए सेज्जासंथारए सयमाणे णो अण्णमण्णस्स हत्थेण हत्थं, पादेण पादं, काएण कायं, आसाएज्जा। से अणासायए अणासायमाणे ततो संजयामेव बहुफासुए सेज्जासंथारए सएज्जा।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा ऊससमाणे वा, णीससमाणे वा, कासमाणे वा, छीयमाणे वा, जंभायमाणे वा, उड्डोए वा, वातणिसग्गे वा करेमाणे, पुव्वामेव आसयं वा, पोसयं वा पाणिणा परिपिहेत्ता ततो संजयामेव ऊससेज्ज वा-जाव-वाय-णिसग्गं वा करेज्जा।

—आ. सु. २, अ. २, उ. ३, सु. ४६०-४६१

शय्या संस्तारक पर बैठने व शयन की विधि

१३०. भिक्षु या भिक्षुणी अत्यन्त प्रासुक शय्या-संस्तारक बिछाकर उस अति प्रासुक शय्या-संस्तारक पर चढ़ना चाहे तो भिक्षु या भिक्षुणी उस अति-प्रासुक शय्या-संस्तारक पर चढ़ने से पूर्व मस्तक सहित शरीर के ऊपरी भाग से लेकर पैरों तक भली-भाँति प्रमार्जन करके फिर यतनापूर्वक उस अतिप्रासुक शय्या संस्तारक पर आरूढ़ होवें और आरूढ़ होकर यतनापूर्वक उस पर शयन करे।

भिक्षु या भिक्षुणी उस अतिप्रासुक शय्या संस्तारक पर शयन करते हुए परस्पर एक दूसरे के हाथ से हाथ पैर से पैर और शरीर से शरीर की आशातना नहीं करे. इस प्रकार आशातना न करते हुए यतनापूर्वक अतिप्रासुक शय्या-संस्तारक पर सोवे।

भिक्षु या भिक्षुणी (शय्या-संस्तारक पर सोते-बैठते हुए) श्वास लेते हुए, श्वास छोड़ते हुए, खांसते हुए, छींकते हुए, उबासी लेते हुए, डकार लेते हुए या वायु निसर्ग करते हुए पहले ही मुंह या अपानद्वार को हाथ से ढँक कर यतनापूर्वक श्वास लेवे—यावत्—वायुनिसर्ग करे।

अण्णसंभोइयाणं पीढाई णिमंतण विही—

१३१. से आगंतारेसु वा-जाव-परियावसहेसु वा अणुवीइ उग्गहं जाएज्जा-जाव-से किं पुण तत्थोग्गहियंसि एवोग्गहियंसि?

जे तत्थ साहम्मिया अण्णसंभोइया समणुण्णा उवागच्छेज्जा जे तेण सयमेसित्तए, पीढे वा फलए वा सेज्जासंथारए वा तेण ते साहम्मिए अण्णसंभोइए समणुण्णे उवणिमंतेज्जा, णो चेव णं परिपडियाए ओगिज्झिय ओगिज्झिय उवणिमंतेज्जा।

—आ सु. २. अ. ७, उ. १, सु. ६१०

अन्य सांभोगिक को पीढ़ आदि के निमन्त्रण विधि—

१३१. साधु पथिकशालाओं यावत्—परिव्राजकों के आवासों में विचार कर अवग्रह ग्रहण करे—यावत्—वहाँ अवग्रह ग्रहण करने के बाद और क्या करे?

यदि वहाँ साधर्मिक, अन्य सांभोगिक, समनोज्ञ साधु आ जाये तो स्वयं के लिए ग्रहण किये हुए पीढ, फलग या शय्या संस्तारक उन साधर्मिक अन्य सांभोगिक साधुओं को निमन्त्रण कर दे देवे। किन्तु उनके लिए अन्य ही लाकर देवे ऐसा न करे।

सागारिय सेज्जा संथारगा पच्चप्पिणण विही—

१३२. कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा सागारिय संतियं सेज्जा-संथारयं आयाए विगरणं कट्टु संपव्वइत्तए।

—कप्प. उ. ३, सु. २६

सागारिक के शय्या संस्तारक की प्रत्यर्पण विधि—

१३२. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को सागारिक का ग्रहण किया हुआ शय्या संस्तारक व्यवस्थित करके विहार करना कल्पता है।

विप्पणट्ठ सेज्जासंथारगाणं गवेसण विही—

१३३. इह खलु निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा—पाडिहारिए वा सागारियसंतिए वा सेज्जासंथारए विप्पणसेज्जा, से य अणु-गवेसियव्वे सिया।

खोए हुए शय्या संस्तारक के अन्वेषण की विधि—

१३३. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को प्रातिहारिक या सागारिक का शय्या संस्तारक यदि गुम हो जाये तो उसका अन्वेषण करना चाहिए।

से य अणुगवेसमाणे लभेज्जा तस्सेव पडिदायव्वे सिया।

अन्वेषण करने पर यदि मिल जाये तो उसी को दे देना चाहिए।

से य अणुगवेसमाणे नो लभेज्जा एवं से कप्पइ दोच्चंपि उग्गहं अणुण्णवेत्ता परिहारं परिहरित्तए।

—कप्प. उ. ३, सु. २७

अन्वेषण करने पर कदाचित् न मिले तो पुनः आज्ञा लेकर अन्य शय्या संस्तारक ग्रहण करके उपयोग में लेना कल्पता है।

अपडिलेहिए सेज्जासंथारए सुवमाणो पावसमणो—

प्रतिलेखन किये बिना शय्या पर शयन करने वाला पाप-श्रमण होता है –

१३४. ससरक्खपाए सुवई, सेज्जं न पडिलेहइ।
संथारए अणाउत्ते, पावसमणि त्ति वुच्चई॥

—उत्त. अ. १७, गा. १४

१३४. जो सचित्त रज से भरे हुए पैरों का प्रमार्जन किये बिना ही सो जाता है और सोने के स्थान का प्रतिलेखन नहीं करता — इस प्रकार बिछौने (या सोने) के विषय में जो असावधान होता है वह पाप-श्रमण कहलाता है।

अणुकूल पडिकूलाओ सेज्जाओ—

अनुकूल और प्रतिकूल शय्यायें—

१३५. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा,
समा वेगया सेज्जा भवेज्जा,
विसमा वेगया सेज्जा भवेज्जा,
पवाता वेगया सेज्जा भवेज्जा,
णिवाता वेगया सेज्जा भवेज्जा,
ससरक्खा वेगया सेज्जा भवेज्जा,
अप्पससरक्खा वेगया सेज्जा भवेज्जा,
सदंस-मसगा वेगया सेज्जा भवेज्जा,
अप्पदंस-मसगा वेगया सेज्जा भवेज्जा,
सपरिसाडा वेगया सेज्जा भवेज्जा,
अपरिसाडा वेगया सेज्जा भवेज्जा,
सउवसग्गा वेगया सेज्जा भवेज्जा,
णिरुवसग्गा वेगया सेज्जा भवेज्जा,
तहप्पगाराइं सेज्जाहिं संविज्जमाणाहिं पग्गहियतरागं विहारं विहरेज्जा। णो किंचि वि गिलाएज्जा।

—आ. सु. २, अ. २, उ. ३, सु. ४६२

१३५. संयमशील भिक्षु या भिक्षुणी को,
कभी सम शय्या मिले,
कभी विषम शय्या मिले,
कभी वायु युक्त शय्या मिले,
कभी निर्वात् शय्या मिले,
कभी धूल युक्त शय्या मिले,
कभी धूल रहित शय्या मिले,
कभी डांस मच्छरों से युक्त शय्या मिले,
कभी डांस मच्छरों से रहित शय्या मिले,
कभी जीर्ण-शीर्ण शय्या मिले,
कभी सुदृढ़ शय्या मिले,
कभी उपसर्ग युक्त शय्या मिले,
कभी उपसर्ग रहित शय्या मिले।
इन शय्याओं के प्राप्त होने पर उसमें समचित्त होकर संयम में रहे, किन्तु मन में जरा भी खेद या ग्लानि का अनुभव न करे।

संस्तारक ग्रहण विधि निषेध—७

कप्पणिज्जा अकप्पणिज्जा सेज्जा संथारगा—

कल्पनीय अकल्पनीय शय्या संस्तारक—

१३६. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा, अभिकंखेज्जा संथारगं एसित्तए। से ज्जं पुण संथारगं जाणेज्जा-सअंड-जाव-मक्कडा-संताणगं, तहप्पगारं संथारगं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

१३६. भिक्षु या भिक्षुणी संस्तारक की गवेषणा करना चाहे और यह जाने कि वह संस्तारक अण्डों से—यावत्—मकड़ी के जालों से युक्त है तो ऐसे संस्तारक को अप्रासुक समझकर—यावत्—ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण संथारगं जाणेज्जा-अप्पंडं-जाव-मक्कडा-संताणगं, गरुयं, तहप्पगारं संथारगं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी संस्तारक के सम्बन्ध में यह जाने कि वह अण्डों—**यावत्**—मकड़ी के जालों से तो रहित है, किन्तु भारी है, ऐसे संस्तारक को अप्रासुक समझकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण संथारगं जाणेज्जा—अप्पंडं-जाव-मक्कडा-संताणगं, लहुयं, अप्पडिहारियं, तहप्पगारं संथारगं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी संस्तारक के सम्बन्ध में यह जाने कि वह अण्डों—**यावत्**—मकड़ी के जालों से रहित है, हल्का भी है, किन्तु अप्रातिहारिक है अर्थात् दाता वापस लेना नहीं चाहता हो ऐसे संस्तारक को अप्रासुक समझकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण संथारगं जाणेज्जा अप्पंडं-जाव-मक्कडा-संताणगं, लहुयं, पडिहारियं, णो अहाबद्धं, तहप्पगारं संथारगं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी संस्तारक के सम्बन्ध में यह जाने कि वह अण्डों—**यावत्**—मकड़ी के जालों से रहित है, हल्का भी है, प्रातिहारिक भी है, किन्तु ठीक से बँधा हुआ नहीं है तो ऐसे संस्तारक को अप्रासुक समझकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा अभिकंखेज्जा संथारगं एसित्तए। से ज्जं पुण संथारगं जाणेज्जा-अप्पंडं-जाव-मक्कडा-संताणयं, लहुयं, पाडिहारियं, अहाबद्धं। तहप्पगारं संथारगं फासुयं एसणिज्जं त्ति मण्णमाणे लाभे संते पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. २, उ. ३, सु. ४५५ (५)

भिक्षु या भिक्षुणी संस्तारक की गवेषणा करना चाहे और यह जाने कि अण्डों—**यावत्**—मकड़ी के जालों से रहित है, हल्का है, पुनः लौटाने योग्य है और सुदृढ़ भी है तो ऐसे संस्तारक को प्रासुक और एषणीय जानकर मिलने पर ग्रहण करे।

सेज्जासंथारग गहणं विहि-णिसेहो—

शय्या संस्तारक ग्रहण का विधि-निषेध—

१३७. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पुव्वामेव ओग्गहं ओगिण्हित्ता तओ पच्छा अणुन्नवेत्तए।

१३७. निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थियों को पहले शय्या-संस्तारक ग्रहण करना और बाद में उनकी आज्ञा लेना नहीं कल्पता है।

कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पुव्वामेव ओग्गहं अणुन्नवेत्ता तओ पच्छा ओगिण्हित्तए।

निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थियों को पहले आज्ञा लेना और बाद में शय्या संस्तारक ग्रहण करना कल्पता है।

अह पुण एवं जाणेज्जा—इह खलु निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा नो सुलभे पाडिहारिए सेज्जा संथारए त्ति कट्टु एवं णं कप्पइ पुव्वामेव ओग्गहं ओगिण्हित्ता तओ पच्छा अणुन्नवेत्तए।

यदि यह जाने कि—निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थियों को यहाँ प्रातिहारिक शय्या-संस्तारक सुलभ नहीं है तो पहले स्थान या शय्या संस्तारक ग्रहण करना और बाद में आज्ञा लेना कल्पता है। (किन्तु ऐसा करने पर यदि संयतों के और शय्या-संस्तारक के स्वामी के मध्य किसी प्रकार का कलह हो जाये तो आचार्य उन्हें इस प्रकार कहे "हे आर्यो! एक ओर तो तुमने इनकी वसति ग्रहण की है दूसरी ओर इनसे कठोर वचन बोल रहे हो) हे आर्यो! इस प्रकार तुम्हें इनके साथ ऐसा दुहरा अपराधमय व्यवहार नहीं करना चाहिए।

"मा वहउ अज्जो! बिइयं" त्ति वइ अणुलोमेणं अणुलोमेयव्वे सिया। —वव. उ. ८, सु. १०-१२

इस प्रकार आचार्य को अनुकूल वचनों से उसे (वसति के स्वामी को) अनुकूल करना चाहिए।

संथारगस्स पच्चप्पण विहि-णिसेहो—

संस्तारक प्रत्यर्पण विधि-निषेध—

१३८. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा अभिकंखेज्जा संथारगं पच्चप्पिणित्तए। से ज्जं पुण संथारगं जाणेज्जा-सअंडं-जाव-मक्कडा-संताणगं, तहप्पगारं संथारगं णो पच्चप्पिणेज्जा।

१३८. भिक्षु या भिक्षुणी यदि संस्तारक वापस लौटाना चाहे तो वह संस्तारक के सम्बन्ध में जाने कि अण्डों—**यावत्**—मकड़ी के जालों से युक्त है तो ऐसे संस्तारक को वापस न लौटाए।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा अभिकंखेज्जा संथारगं पच्चप्पिणित्तए। से ज्जं पुण संथारगं जाणेज्जा—अप्पंडं-जाव-

भिक्षु या भिक्षुणी यदि संस्तारक वापस सौंपना चाहे, उस समय उस संस्तारक को अण्डों—**यावत्**—मकड़ी के जालों से

मक्कडा-संताणगं, तहप्पगारं संथारगं पडिलेहिय-पडिलेहिय, पमज्जिय-पमज्जिय, आतावियं-आताविय, विणिद्धुणिय-विणिद्धुणिय, ततो संजयामेव पच्चप्पिणेज्जा।

— आ. सु. २, अ. २, उ. ३, सु. ४५८

रहित जाने तो ऐसे संस्तारक को बार-बार प्रतिलेखन तथा प्रमार्जन करके, सूर्य की धूप दे देकर एवं झाड़ झाड़कर यतनापूर्वक वापस लौटावे।

संस्तारक ग्रहण निषेध—८

णिग्गंथीणं अकप्पणीय आसणाइं—

१३९. नो कप्पइ निग्गंथीणं सावस्सयंसि आसणंसि आसइत्तए वा, तुयट्टित्तए वा।

नो कप्पइ निग्गंथीणं सविसाणंसि पीढंसि वा, फलगंसि वा, आसइत्तए वा, तुयट्टित्तए वा। —कप्प. उ. ५, सु. ३६-३८

निर्ग्रन्थियों के अकल्पनीय आसन—

१३९. निर्ग्रन्थी-साध्वियों को सावश्रय (अवलम्बन युक्त) आसन पर बैठना एवं शयन करना नहीं कल्पता है।

निर्ग्रन्थी-साध्वियों को सविषाण (छोटे-छोटे स्तम्भ युक्त) पीठ या फलक पर बैठना एवं शयन नहीं कल्पता है।

दोच्चं उग्गहं विणा सेज्जासंथारग गहण णिसेहो—

१४०. नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा, पाडिहारियं वा, सागारियसंतियं वा सेज्जासंथारगं दोच्चंपि ओग्गहं अणणुन्नवेत्ता बहिया नीहरित्तए।

नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा, पाडिहारियं वा, सागारियसंतियं वा सेज्जासंथारगं सव्वप्पणा अप्पिणित्ता दोच्चंपि ओग्गहं अणणुन्नवेत्ता अहिट्ठित्तए।

—वव. उ. ८, सु. ६-८

दूसरी बार आज्ञा लिए बिना शय्या संस्तारक ग्रहण का निषेध—

१४०. निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को प्रातिहारिक या शय्यातर का शय्या संस्तारक दूसरी बार आज्ञा लिए बिना बस्ती के बाहर ले जाना नहीं कल्पता है।

निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थियों को प्रातिहारिक या शय्यातर का शय्या-संस्तारक सर्वथा सौंप देने के बाद दूसरी बार आज्ञा लिए बिना काम में लेना नहीं कल्पता है।

सेज्जासंथारग पच्चप्पणेण विणा विहार णिसेहो—

१४१. नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा पाडिहारियं सेज्जा-संथारयं आयाए अपडिहट्टु संपव्वइत्तए।

नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा सागारियसंतियं सेज्जासंथारयं आयाए अविकरणं कट्टु संपव्वइत्तए।

—कप्प. उ. ३, सु. २४-२५

शय्या संस्तारक लौटाए बिना विहार करने का निषेध—

१४१. निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को प्रातिहारिक शय्या संस्तारक ग्रहण करके उसे लौटाये बिना विहार करना नहीं कल्पता है।

निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को शय्यातर का शय्या संस्तारक ग्रहण करके उसे यथावस्थित किये बिना विहार करना नहीं कल्पता है।

संस्तारक सम्बन्धी प्रायश्चित्त—६

सेज्जा संथारगाणं पायच्छित्त सुत्ताइं—

१४२. जे भिक्खू उडुबद्धियं सेज्जा संथारगं परं पज्जोसवाओ उवाइणावेइ, उवाइणावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू वासावासियं सेज्जा संथारगं परं दसरायकप्पाओ उवाइणावेइ उवाइणावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू उडुबद्धियं वा वासावासियं सेज्जा संथारगं उवरिसिज्जमाणं पेहाए न ओसारेइ न ओसारेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पाडिहारियं सेज्जा संथारगं दोच्चंपि अणणुण्णवित्ता बाहिं नीणेइ, नीणेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सागारियसंतियं सेज्जा संथारगं दोच्चंपि अणणुण्णवित्ता बाहिं नीणेइ, नीणेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पाडिहारियं वा सागारियसंतियं वा सेज्जासंथारगं दोच्चंपि अणणुण्णवित्ता बाहिं नीणेइ, नीणेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पाडिहारियं सेज्जा संथारगं आयाए अपडिहट्टु संपव्वयइ संपव्वयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सागारियसंतियं सेज्जा संथारगं आयाए अविगरणं कट्टु अणप्पिणित्ता संपव्वयइ, संपव्वयंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पाडिहारियं वा, सागारियसंतियं वा सेज्जा संथारगं विप्पणट्ठं न गवेसइ, न गवेसंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. २, सु. ५०-५८

शय्या संस्तारक सम्बन्धी प्रायश्चित्त सूत्र—

१४२. जो भिक्षु शीत या ग्रीष्म ऋतु में ग्रहण किये हुए शय्या संस्तारक को पर्युषण (संवत्सरी) के बाद रखता है, रखवाता है रखने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु वर्षावास के लिए ग्रहण किये गए शय्या संस्तारक को वर्षावास के बाद दस-रात से अधिक रखता है, रखवाता है, रखने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु शेष काल या वर्षावास के लिये ग्रहण किये गये शय्या संस्तारक को वर्षा से भीगता हुआ देखकर भी नहीं हटाता है, नहीं हटवाता है या नहीं हटाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु प्रातिहारिक शय्या संस्तारक को दूसरी बार आज्ञा लिए बिना बाहर ले जाता है, बाहर ले जाने के लिए कहता है और बाहर ले जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु शय्यातर का शय्या संस्तारक को दूसरी बार आज्ञा लिये बिना बाहर ले जाता है, बाहर ले जाने के लिए कहता है, बाहर ले जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु प्रातिहारिक या शय्यातर का शय्या संस्तारक दूसरी बार आज्ञा लिए बिना बाहर ले जाता है, बाहर ले जाने के लिए कहता है और बाहर ले जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु प्रातिहारिक शय्या संस्तारक को ग्रहण करके लौटाये बिना विहार करता है, विहार करवाता है, विहार करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु शय्यातर के शय्या-संस्तारक को लेकर व्यवस्थित किये बिना और लौटाये बिना विहार करता है, विहार करवाता है और विहार करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु प्रातिहारिक या शय्यातर को शय्या संस्तारक खो जाने पर उसकी गवेषणा नहीं करता है, नहीं करवाता है, नहीं करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सागारिय सेज्जासंथारयं अणणुण्णविय गिण्हमाणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

१४३. जे भिक्खू पाडिहारियं वा सागारिय-संतियं वा सेज्जा-संथारयं पच्चप्पिणित्ता दोच्चं पि अणणुण्णविय अहिट्ठेइ अहिट्ठेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ५, सु. २३

सागारिक का शय्या संस्तारक बिना आज्ञा लेने का प्रायश्चित्त सूत्र—

१४३. जो भिक्षु प्रातिहारिक या शय्यातर के शय्या-संस्तारक को लौटा कर दूसरी बार आज्ञा लिए बिना ही परिभोग करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

शय्यैषणा-विधि-निषेध-प्रायश्चित्त—१०

सुराजुत्त वसण उवस्सय विहि-णिसेहो पायच्छित्तं च—

१४४. उवस्सयस्स अंतोवगडाए, सुरा वियड कुम्भे वा, सोविरक वियड कुम्भे वा, उवनिक्खित्ते सिया, नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा, अहालंदमवि वत्थए।

हुरत्था य उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा, दुरायं वा वत्थए।

जे तत्थ एगरायाओ वा, दुरायाओ वा परं वसइ, से सन्तरा छेए वा, परिहारे वा। —कप्प. उ. २, सु. ४

सीओदजुत्त उवस्सए वसण विहि-णिसेहो पायच्छित्तं च—

१४५. उवस्सयस्स अंतोवगडाए सीओदग-वियडकुम्भे वा, उसिणोदगवियडकुम्भे वा, उवनिक्खित्ते सिया, नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा, अहालंदमवि वत्थए।

हुरत्था य उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा, दुरायं वा वत्थए।

जे तत्थ एगरायाओ वा, दुरायाओ वा परं वसइ, से सन्तरा छेए वा, परिहारे वा। कप्प. उ. २, सु. ५

जोई जुत्त उवस्सय वसण विहि-णिसेहो पायच्छित्तं च—

१४६. उवस्सयस्स अंतोवगडाए, सव्वराइए जोई झियाएज्जा, नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अहालंदमवि वत्थए।

हुरत्था य उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा, दुरायं वा वत्थए।

जे तत्थ एगरायाओ वा, दुरायाओ वा परं वसइ, से संतरा छेए वा, परिहारे वा। —कप्प. उ. २, सु. ६

पईवजुत्त उवस्सय वसण विहि-णिसेहो पायच्छित्तं च—

१४७. उवस्सयस्स अंतोवगडाए, सव्वराइए पईवे दिप्पेज्जा नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा अहालंदमवि वत्थए।

हुरत्था य उवस्सयं पडिलेहमाणे नो लभेज्जा, एवं से कप्पइ एगरायं वा, दुरायं वा वत्थए।

सुरायुक्त उपाश्रय में रहने का विधि-निषेध व प्रायश्चित्त—

१४४. उपाश्रय के भीतर सुरा और सौवीर से भरे कुम्भ रखे हुए हों तो निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को वहाँ "यथालन्दकाल" भी बसना नहीं कल्पता है।

कदाचित् गवेषणा करने पर भी अन्य उपाश्रय न मिले तो उक्त उपाश्रय में एक या दो रात बसना कल्पता है।

जो वहाँ एक या दो रात से अधिक बसता है वह मर्यादा उल्लंघन के कारण दीक्षाच्छेद या तप रूप प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

जल युक्त उपाश्रय में रहने का विधि-निषेध और प्रायश्चित्त—

१४५. उपाश्रय के भीतर अचित्त शीत जल या उष्ण जल से भरे हुए कुम्भ रखे हों तो निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को वहाँ "यथालन्दकाल" भी बसना नहीं कल्पता है।

कदाचित् गवेषणा करने पर भी अन्य उपाश्रय न मिले तो उक्त उपाश्रय में एक या दो रात बसना कल्पता है।

जो वहाँ एक या दो रात से अधिक बसता है वह मर्यादा उल्लंघन के कारण दीक्षाच्छेद या तपरूप प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

ज्योतियुक्त उपाश्रय में रहने का विधि-निषेध और प्रायश्चित्त—

१४६. उपाश्रय के भीतर सारी रात अग्नि जले तो निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को वहाँ "यथालन्दकाल" भी बसना नहीं कल्पता है।

कदाचित् गवेषणा करने पर भी अन्य उपाश्रय न मिले तो उक्त उपाश्रय में एक या दो रात बसना कल्पता है।

जो वहाँ एक या दो रात से अधिक बसता है वह मर्यादा उल्लंघन के कारण दीक्षाच्छेद या तपरूप प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

दीपक युक्त उपाश्रय में रहने का विधि-निषेध और प्रायश्चित्त—

१४७. उपाश्रय के भीतर सारी रात दीपक जले तो निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को वहाँ "यथालन्दकाल" भी बसना नहीं कल्पता है।

कदाचित् गवेषणा करने पर भी अन्य उपाश्रय न मिले तो उक्त उपाश्रय में एक या दो रात बसना कल्पता है।

जे तत्थ एगराइयाओ वा दुराइयाओ वा परं वसइ, से संतरा छेए वा, परिहारे वा। —कप्प. उ. २, सु. ७

जो वहाँ एक या दो रात से अधिक बसता है वह मर्यादा उल्लंघन के कारण दीक्षाच्छेद या तपरूप प्रायश्चित्त का पात्र होता है।

अगड सुयाणं वसणस्स विहि-णिसेहो पायच्छित्तं च—

अल्पज्ञों के रहने का विधि-निषेध और प्रायश्चित्त—

१४८. से गामंसि वा-जाव-सन्निवेसंसि वा एगवगडाए एगदुवाराए, एगनिक्खमण-पवेसाए नो कप्पइ बहूणं अगडसुयाणं एगयओ वत्थए।

अत्थि याइं णं केइ आयार-पकप्पधरे, नत्थि याइं णं केइ छेए वा, परिहारे वा।

नत्थि याइं णं केइ आयार-पकप्पधरे से संतरा छेए वा, परिहारे वा।

से गामंसि वा-जाव-सन्निवेसंसि वा अभिनिव्वगडाए, अभिनिवदुवाराए, अभिनिक्खमण-पवेसाए नो कप्पइ बहूणं वि अगडसुयाणं एगयओ वत्थए।

अत्थि याइं णं केइ आयार-पकप्पधरे जे तत्तियं रयणिं संवसइ, नत्थि णं केइ छेए वा, परिहारे वा।

नत्थि याइं णं केइ आयार-पकप्पधरे जे तत्तियं रयणिं संवसइ, सव्वेसिं तेसिं तप्पत्तियं छेए वा, परिहारे वा।

—वव. उ. ६, सु. १२-१३

१४८. एक प्राकार वाले, एक द्वार वाले और एक निष्क्रमण-प्रवेश वाले ग्राम यावत्—सन्निवेश में अनेक अकृतश्रुत (अल्पज्ञ) भिक्षुओं को एक साथ बसना नहीं कल्पता है।

यदि उनमें कोई आचार कल्पधर हो तो वे दीक्षाच्छेद या परिहार प्रायश्चित्त के पात्र नहीं होते हैं।

यदि उनमें कोई आचार-कल्पधर न हो तो वे मर्यादा उल्लंघन के कारण दीक्षाच्छेद या तपरूप प्रायश्चित्त के पात्र होते हैं।

अनेक प्राकार वाले, अनेक द्वार वाले और अनेक निष्क्रमण-प्रवेश वाले ग्राम—यावत्—सन्निवेश में अनेक अकृत-श्रुत (अल्पज्ञ) भिक्षुओं को एक साथ बसना नहीं कल्पता है।

यदि उनमें कोई आचार-कल्पधर हो तो वे दीक्षाच्छेद या तपरूप प्रायश्चित्त के पात्र नहीं होते हैं।

यदि उनमें कोई आचार-कल्पधर न हो तो वे दीक्षाच्छेद या तपरूप प्रायश्चित्त के पात्र होते हैं।

नितियवासं वसमाणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

नित्य निवास का प्रायश्चित्त सूत्र—

१४९. जे भिक्खू नितियं-वासं वसइ, वसंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. २, सु. ३७

१४९. जो भिक्षु नित्यवास अर्थात् कल्प मर्यादा से अधिक बसता है, बसवाता है या बसने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

उद्देसियाइसेज्जासु पवेसणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं

औद्देशिकादि शय्याओं में प्रवेश के प्रायश्चित्त सूत्र—

१५०. जे भिक्खू उद्देसियं सेज्जं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सपाहुडियं सेज्जं अणुप्पविसइ अणुप्पविसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सपरिकम्मं सेज्जं अणुप्पविसइ अणुप्पविसंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ५, सु. ६०-६२

१५०. जो भिक्षु औद्देशिक शय्या में प्रवेश करता है, प्रवेश करवाता है, या प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सपाहुड (साधु के निमित्त निर्माण के समय को परिवर्तन करके बनाई गई) शय्या में प्रवेश करता है, प्रवेश करवाता है या प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु परिकर्म युक्त (साधु के निमित्त सुधार की हुई) शय्या में प्रवेश करता है, प्रवेश करवाता है, या प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

दुगुंछिय कुल पायच्छित्त सुत्तं—

१५१. जे भिक्खू दुगुंछियकुलेसु वसहिं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १६, सु. ३०

णिग्गंथीणं उवस्सए अविहि पवेसणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

१५२. जे भिक्खू णिग्गंथीणं उवस्सयंसि अविहीए अणुप्पविसइ, अणुप्पविसंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ४, सु. २३

णिग्गंथीणं आगमणपहे उवगरण-ठवणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

१५३. जे भिक्खू णिग्गंथीणं आगमणपहंसि दंडगं वा, लट्ठियं वा, रयहरणं वा, मुहपोत्तियं वा अण्णयरं वा उवगरणजायं ठवेइ, ठवेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ४, सु. २४

सरिसणिग्गंथस्स आवासे अदिण्णे पायच्छित्त सुत्तं—

१५४. जे णिग्गंथे णिग्गंथस्स सरिसगस्स अंते ओवासे संते, ओवासं ण देइ, ण देंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घायं।

—नि. उ. १७, सु. १२१

सरिसणिग्गंथीए आवास अदिण्णस्स पायच्छित्त सुत्तं—

१५५. जा णिग्गंथी णिग्गंथीए सरिसियाए अंते ओवासे संते, ओवासं ण देइ, देंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १७, सु. १२२

उवस्सए णायगाईणं संवसावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

१५६. जे भिक्खू णायगं वा, अणायगं वा, उवासगं वा, अणुवासगं वा अंतो उवस्सयस्स अद्धं वा राइं, कसिणं वा राइं संवसावेइ, संवसावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू णायगं वा, अणायगं वा, अणुवासगं वा अंतो उवस्सयस्स अद्धं वा राइं, कसिणं वा राइं संवसावेइ, तं

घृणित कुलों में रहने का प्रायश्चित्त सूत्र—

१५१. जो भिक्षु घृणित कुलों की शय्या में आश्रय स्थान लेता है, लिवाता है, या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

निर्ग्रन्थियों के उपाश्रय में अविधि से प्रवेश करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

१५२. जो भिक्षु निर्ग्रन्थियों के उपाश्रय में अविधि से प्रवेश करता है, प्रवेश करवाता है या प्रवेश करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

निर्ग्रन्थियों के आगमन पथ में उपकरण रखने का प्रायश्चित्त सूत्र—

१५३. जो भिक्षु निर्ग्रन्थियों के आगमन पथ में दंड, लाठी, रजोहरण या मुख-वस्त्रिका अथवा अन्य कोई उपकरण रखता है, रखवाता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

स्वधर्मी निर्ग्रन्थ को आवास न देने का प्रायश्चित्त सूत्र—

१५४ जो निर्ग्रन्थ सदृश (आचार वाले) निर्ग्रन्थ को उपाश्रय में ठहरने के लिए स्थान होते हुए भी स्थान नहीं देता है, न दिवाता है, न देने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

स्वधर्मी निर्ग्रन्थी को आवास न देने का प्रायश्चित्त सूत्र—

१५५. जो निर्ग्रन्थी सदृश निर्ग्रन्थी को उपाश्रय में ठहरने के लिए स्थान होते हुए भी स्थान नहीं देती है, न दिवाती है या न देने वाली का अनुमोदन करती है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

स्वजन आदि को उपाश्रय में रखने का प्रायश्चित्त सूत्र—

१५६. जो भिक्षु स्वजन या परजन, उपासक या अन्य कोई भी स्त्री को उपाश्रय में आधी रात या पूरी रात रखता है, रखवाता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्वजन या परजन, उपासक या अन्य कोई स्त्री को आधी रात या पूरी रात रखकर उसके निमित्त उपाश्रय से

पडुच्च णिक्खमइ वा, पविसइ वा, णिक्खमंतं वा, पविसंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । —नि. उ. ८, सु. १२-१३

निष्क्रमण-प्रवेश करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

राय समीवे विहरणाई पायच्छित्त सुत्तं—

१५७. अह पुण एवं जाणेज्जा "इहज्ज रायखत्तिए परिवुसिए" जे भिक्खू ताए गिहाए ताए पएसाए ताए उवासंतराए, विहारं वा करेइ, सज्झायं वा करेइ, असणं वा-जाव-साइमं वा आहारेइ, उच्चारं वा, पासवणं वा परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । —नि. उ. ९, सु. ११

राजा के समीप ठहरने आदि का प्रायश्चित्त सूत्र—

१५७. यदि यह ज्ञात हो जाये कि आज यहाँ क्षत्रिय राजा रहे हुए हैं तब जो भिक्षु उस गृह में उस प्रदेश में उस अवकाशान्तर में विहार करता है (ठहरता है), स्वाध्याय करता है, अशन—यावत्—स्वाद्य का आहार करता है, मल-मूत्र का परित्याग करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

वस्त्रैषणा :

वस्त्रैषणा का स्वरूप—१ [१]

णिग्गंथ-णिग्गंथीणं वत्थेसणा सरूवं—

१५८. वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं[1] उग्गहं च कडासणं एतेसु चेव जाणेज्जा ।

—आ. सु. १, अ. २, उ. ५, सु. ८९ (क)

पडिलेहणाऽणंतरमेव वत्थ गहण विहाणं—

१५९. सिया से परो णेत्ता वत्थं निसिरेज्जा, से पुव्वामेव आलोएज्जा—

"आउसो ! ति वा, भइणी ! ति वा, तुमं चेव णं संतियं वत्थं अंतो अंतेणं पडिलेहिस्सामि ।"

केवली बूया—"आयाणमेयं !

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों की वस्त्रैषणा का स्वरूप—

१५८. वह (संयमी) वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोंछन (पाँव पोंछने का वस्त्र), अवग्रह-स्थान और कटासन आदि (जो गृहस्थ के लिए निर्मित हों) उनकी याचना करे ।

वस्त्र का प्रतिलेखन करने के बाद वस्त्र ग्रहण का विधान—

१५९. यदि गृहस्वामी (साधु के द्वारा याचना करने पर) वस्त्र (लाकर) साधु को दे, तो वह पहले ही उसे कहे—

"आयुष्मन् गृहस्थ ! या बहन ! तुम्हारे वस्त्र को मैं अन्दर और बाहर चारों ओर से भली-भाँति देखूंगा ।"

केवली भगवान ने कहा है—"प्रतिलेखन किए बिना वस्त्र लेना कर्मबन्धन का कारण है ।"

---

१ अतीत में "पायपुंछणं" कैसा उपकरण था—वह वर्तमान में समझना अति कठिन है क्योंकि कहीं "पायपुंछणं" रजोहरण माना गया है और कहीं "पायपुंछणं" तथा "रजोहरण" अलग-अलग कहे गये हैं ।

प्रश्नव्याकरण तथा दशवैकालिक सूत्र में "पायपुंछणं" का अर्थ 'पैर पोंछने का वस्त्र' किया गया है । इन दोनों स्थलों में दोनों उपकरणों का एक साथ कथन हुआ है । अतः दोनों ही भिन्न भिन्न उपकरण होना सिद्ध होता है ।

आ. सु. २, अ. १०, सु. ६४५ में मल-विसर्जन आवश्यक हो तो उस समय अपना "पायपुंछणं" हो तो उसका उपयोग करे, न हो तो साथी श्रमण से लेकर उसका उपयोग करे । इससे अनुमान होता है कि यहाँ पर मल विसर्जन के बाद मलद्वार को पोंछने के लिए प्रयुक्त जीर्ण-वस्त्र के खण्ड को "पायपुंछणं" माना है ।

इन विभिन्न मन्तव्यों के होते हुए भी यह निश्चित है कि अतीत में "पायपुंछणं" एक आवश्यक उपकरण था । इसलिए इसका अनेक जगह उल्लेख है ।

वत्थंते ओबद्धं सिया-कुंडले वा-जाव-रयणावली वा, पाणे वा, बीए वा, हरिए वा ।

कदाचित उस वस्त्र के सिरे पर कुछ बंधा हो, यथा—कुण्डल बंधा हो,—यावत्—रत्नों की माला बंधी हो, अथवा प्राणी, बीज या हरी वनस्पति बँधी हो ।

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा-जाव-एस उवएसे, जं पुव्वामेव वत्थं अंतो अंतेणं पडिलेहेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५६८

अतः भिक्षुओं के लिए तीर्थंकर आदि आप्त पुरुषों ने पहले से ही ऐसी प्रतिज्ञा—यावत्—उपदेश दिया है कि साधु वस्त्र ग्रहण करने से पहले ही उस वस्त्र की अन्दर-बाहर चारों ओर से प्रतिलेखना करे ।

हेमंत-गिम्हासु वत्थ गहण विहाणं—

१६०. कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा दोच्चसमोसरणुद्देसपत्ताइं चेलाइं पडिग्गाहेत्तए ।[1] —कप्प. उ. ३, सु. १७

हेमन्त और ग्रीष्म में वस्त्र ग्रहण करने का विधान—

१६०. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को द्वितीय समवसरण (हेमन्त और ग्रीष्म) में वस्त्र ग्रहण करना कल्पता है ।

पव्वज्जापरियाय कमेण वत्थ गहण विहाणं—

१६१. कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा अहाराइणियाए चेलाइं पडिग्गाहित्तए । —कप्प. उ. ३, सु. १८

प्रव्रज्या पर्याय के क्रम से वस्त्र ग्रहण का विधान—

१६१. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को चारित्र पर्याय के क्रम से वस्त्र ग्रहण करना कल्पता है ।

निर्ग्रन्थ की वस्त्रैषणा-विधि—१ [२]

णिग्गंथाणं वत्थाइ एसणा विही—

१६२. निग्गंथं च णं गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठं केइ वत्थेण वा पडिग्गहेण वा, कंबलेण वा, पायपुंछणेण वा उवनिमंतेज्जा, कप्पइ से सागारकडं गहाय आयरियपायमूले ठवेत्ता, दोच्चं पि उग्गहं अणुण्णवित्ता परिहारं परिहरित्तए ।

निग्गंथं च णं बहिया वियारभूमिं वा, विहारभूमिं वा, निक्खंतं समाणं, केइ वत्थेण वा, पडिग्गहेण वा, कंबलेण वा, पायपुंछणेण वा, उवनिमंतेज्जा, कप्पइ से सागारकडं गहाय आयरियपायमूले ठवित्ता दोच्चं पि उग्गहं अणुण्णवित्ता परिहारं परिहरित्तए । —कप्प. उ. १, सु. ४०-४१

निर्ग्रन्थों की वस्त्रैषणा विधि—

१६२. गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रविष्ट निर्ग्रन्थ को यदि कोई वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोंछन लेने के लिए कहे तो वस्त्रादि को "सागारकृत" ग्रहण कर, उन्हें आचार्य के चरणों में रखकर तथा उसे ग्रहण करने के लिए आचार्य से दूसरी बार आज्ञा लेकर उसे अपने पास रखना और उसका उपयोग करना कल्पता है ।

विचार भूमि (मल-मूत्र विसर्जन स्थान) या विहारभूमि (स्वाध्याय भूमि) के लिए (उपाश्रय से) बाहर निकले हुए निर्ग्रन्थ को यदि कोई वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोंछन लेने के लिए कहे तो वस्त्रादि को "सागारकृत" ग्रहण करे, उसे आचार्य के चरणों में रखकर तथा उसे ग्रहण करने के लिए आचार्य से दूसरी बार आज्ञा लेकर अपने पास रखना और उसका उपयोग करना कल्पता है ।

---

१ एक वर्ष के दो विभाग हैं एक वर्षावास काल और दूसरा ऋतुबद्ध काल ।

वर्षावास काल में भिक्षु-भिक्षुणियाँ चार मास तक विहार नहीं करते हैं । जहाँ वर्षावास करने का उनका संकल्प होता है वहीं रहते हैं ।

ऋतुबद्धकाल में अपने अपने कल्प के अनुसार भिक्षु-भिक्षुणियाँ विहार करते रहते हैं इसलिए वर्षावास को प्रथम समवसरण और ऋतुबद्धकाल को द्वितीय समवसरण कहा गया है । —बृहत्कल्प भाष्य गा. ४२४२ व ४२६७ ।

निर्ग्रन्थिनी की वस्त्रैषणा विधि—१ [३]

णिग्गंथीए वत्थेसणा विही—

१६३. निग्गंथीए य गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुप्पविट्ठाए, चेलट्ठे समुप्पज्जेज्जा,
नो से कप्पइ अप्पणो निस्साए चेलं पडिग्गाहेत्तए।

कप्पइ से पवत्तिणी-निस्साए चेलं पडिग्गाहित्तए।

नो य से तत्थ पवत्तिणी सामाणा सिया, जे से तत्थ सामाणे आयरिए वा, उवज्झाए वा, पवत्तए वा, थेरे वा, गणी वा, गणहरे वा, गणावच्छेइए वा, जं चऽन्नं पुरओ कट्टु विहरति, कप्पइ से तन्नीसाए चेलं पडिग्गाहेत्तए।

—कप्प. उ. ३, सु. १३

निर्ग्रन्थी की वस्त्रैषणा विधि—

१६३. गृहस्थ के घर में आहार के लिए गई हुई निर्ग्रन्थी को यदि वस्त्र की आवश्यकता हो तो अपनी निश्रा ("यह वस्त्र मैं अपने लिए ग्रहण कर रही हूँ"—इस संकल्प) से वस्त्र लेना नहीं कल्पता है।

किन्तु प्रवर्तिनी की निश्रा (मैं यह वस्त्र प्रवर्तिनी के चरणों में रख दूँगी वह जिसे देना चाहेगी दे देगी। यदि वह न रखेगी तो मैं वापस तुम्हें लौटा दूँगी ऐसे संकल्प से) वस्त्र लेना कल्पता है।

यदि वहाँ प्रवर्तिनी विद्यमान न हो तो जो आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, गणी, गणधर, गणावच्छेदक (आदि जो गीतार्थ) वहाँ विद्यमान हों अथवा जिसे प्रमुख करके विचर रही है उसकी निश्रा से वस्त्र लेना कल्पता है।

णिग्गंथीए वत्थुग्गह विही—

१६४. निग्गंथिं च णं गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठं केइ वत्थेण वा, पडिग्गहेण वा, कंबलेण वा, पायपुंछणेण वा उवनिमंतेज्जा,
कप्पइ से सागारकडं गहाय पवत्तिणिपायमूले ठवित्ता, दोच्चं पि उग्गहं अणुण्णवित्ता परिहारं परिहरित्तए।

निग्गंथिं च णं बहिया वियारभूमिं वा, विहारभूमिं वा, णिक्खंतिं समाणिं केइ वत्थेण वा, पडिग्गहेण वा, कंबलेण वा, पायपुंछणेण वा उवनिमंतेज्जा, कप्पइ से सागारकडं गहाय पवित्तिणिपायमूले ठवेत्ता, दोच्चं पि उग्गहं अणुण्णवित्ता परिहारं परिहरित्तए। —कप्प. उ. १, सु. ४२-४३

निर्ग्रन्थी की वस्त्रावग्रह विधि—

१६४. गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रविष्ट निर्ग्रन्थी को यदि कोई वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोंछन लेने के लिए कहे तो वस्त्रादि को "सागारकृत" ग्रहण कर उन्हें प्रवर्तिनी के चरणों में रखकर तथा उन्हें ग्रहण करने के लिए प्रवर्तिनी से दूसरी बार आज्ञा लेकर उसे अपने पास रखना और उसका उपयोग करना कल्पता है।

विचार भूमि या स्वाध्याय भूमि के लिए (उपाश्रय से) बाहर निकली हुई निर्ग्रन्थी को यदि कोई वस्त्र पात्र, कम्बल, पादप्रोंछन लेने के लिए कहे तो वस्त्रादि को "सागारकृत" ग्रहण कर, उसे प्रवर्तिनी के चरणों में रखकर तथा उसे ग्रहण करने के लिए उनसे दूसरी बार आज्ञा लेकर अपने पास रखना और उसका उपयोग करना कल्पता है।

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थी की वस्त्रैषणा का निषेध—१ [४]

उद्देसियाइं वत्थ गहण णिसेहो—

१६५. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण वत्थं जाणेज्जा—अस्सिंपडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स पाणाइं-जाव-सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स, कीयं, पामिच्चं अच्छिज्जं, अणिसट्ठं, अभिहडं आहट्टु चेएइ।

तं तहप्पगारं वत्थं पुरिसंतरकडं वा, अपुरिसंतरकडं वा, बहिया णीहडं वा, अणीहडं वा, अत्तट्ठियं वा, अणत्तट्ठियं वा, परिभुत्तं वा, अपरिभुत्तं वा, आसेवियं वा, अणासेवियं वा, अफासुयं अणेसणिज्जं ति मण्णमाणे लाभे संते णो पडिग्गाहेज्जा।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण वत्थं जाणेज्जा—अस्सिंपडियाए बहवे साहम्मिया समुद्दिस्स पाणाइं-जाव-सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स-जाव-णो पडिग्गाहेज्जा।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण वत्थं जाणेज्जा-अस्सिंपडियाए एगं साहम्मिणिं समुद्दिस्स पाणाइं-जाव-सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स-जाव-णो पडिग्गाहेज्जा।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण वत्थं जाणेज्जा—अस्सिंपडियाए बहवे साहम्मिणीओ समुद्दिस्स पाणाइं-जाव-सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स-जाव-णो पडिग्गाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५५५ (क)

औद्देशिकादि वस्त्र के ग्रहण का निषेध—

१६५. भिक्षु या भिक्षुणी वस्त्र के सम्बन्ध में यह जाने कि दाता ने अपने लिए नहीं बनाया है किन्तु एक साधर्मिक साधु के लिये प्राणी—यावत्—सत्वों का समारम्भ करके बनाया है, खरीदा है, उधार लिया है, छीनकर लाया है, दो स्वामियों में से एक की आज्ञा के बिना लाया है और अन्य स्थान से यहाँ लाया है।

इस प्रकार का वस्त्र अन्य पुरुष को दिया हुआ हो या न दिया हो, बाहर निकाला गया हो या न निकाला गया हो, स्वीकृत हो या अस्वीकृत हो, उपभुक्त हो या अनुपभुक्त हो, सेवित हो या अनासेवित हो इस प्रकार के वस्त्र को अप्रासुक एवं अनेषणीय समझकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

भिक्षु या भिक्षुणी वस्त्र के सम्बन्ध में यह जाने कि—दाता ने अपने लिये नहीं बनाया है किन्तु अनेक साधर्मिक साधुओं के लिए प्राणी—यावत्—सत्वों का समारम्भ करके बनाया है—यावत्—ग्रहण न करें।

भिक्षु या भिक्षुणी वस्त्र के सम्बन्ध में यह जाने कि—दाता ने अपने लिये नहीं बनाया है किन्तु एक साधर्मिणी साध्वी के लिये प्राणी—यावत्—सत्वों का समारम्भ करके बनाया है—यावत्—ग्रहण न करे।

भिक्षु या भिक्षुणी वस्त्र के सम्बन्ध में यह जाने कि—दाता ने अपने लिये नहीं बनाया है किन्तु अनेक साधर्मिक साध्वियों के लिये प्राणी—यावत्—सत्वों का समारम्भ करके बनाया है—यावत् ग्रहण न करे।

समणाइ पगणिय निम्मिय वत्थस्स णिसेहो—

१६६. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण वत्थं जाणेज्जा—बहवे समण-माहण-अतिहि-किविण-वणीमए, पगणिय-पगणिय-समुद्दिस्स-जाव-आहट्टु चेएइ।

तं तहप्पगारं वत्थं पुरिसंतरकडं वा, अपुरिसंतरकडं वा -जाव-णो पडिग्गाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५५५ (ख)

श्रमणादि की गणना करके बनाया गया वस्त्र लेने का निषेध—

१६६. भिक्षु या भिक्षुणी वस्त्र के सम्बन्ध में यह जाने कि अनेक श्रमण ब्राह्मण-अतिथि-कृपण-भिखारियों को गिन-गिन कर उनके उद्देश्य से बनाया है—यावत्—अन्य स्थान से यहाँ लाया है।

इस प्रकार का वस्त्र अन्य पुरुष को दिया हुआ हो या न दिया हुआ हो—यावत्—ग्रहण न करे।

अद्ध जोयणमेराए परं वत्थेसणाए गमण णिसेहो—

१६७. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा परं अद्धजोयणमेराए वत्थपडियाए नो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

—आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५५४

अर्धयोजन से आगे वस्त्रैषणा के लिए जाने का निषेध—

१६७. भिक्षु या भिक्षुणी को वस्त्र ग्रहण करने के लिए आधे योजन से आगे जाने का विचार नहीं करना चाहिए।

महद्धणमोल्लाणं वत्थाणं गहण णिसेहो—

१६८. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जाइं पुण वत्थाइं जाणेज्जा विरूवरूवाइं महद्धणमोल्लाइं, तं जहा—

आईणगाणि वा,
सहिणाणि वा,
सहिणकल्लाणाणि वा,
आयाणि वा,
कायाणि वा,
खोमियाणि वा,
दुगुल्लाणि वा,
पट्टाणि वा,
मलयाणि वा,
पत्तुण्णाणि वा,
अंसुयाणि वा,
चीणंसुयाणि वा,
देसरागाणि वा,
अमिलाणि वा,
गज्जलाणि वा,
फालियाणि वा,
कोयवाणि वा, कंबलगाणि वा, पावाराणि वा, अण्णतराइं वा, तहप्पगाराइं वत्थाइं महद्धणमोल्लाइं लाभे संते णो पडिगाहेज्जा। —आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५५७

बहुमूल्य वस्त्रों के ग्रहण का निषेध –

१६८. भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि ये नाना प्रकार के वस्त्र महाधन से प्राप्त होने वाले (बहुमूल्य) हैं, जैसे कि—

आजिनक = चूहे आदि के चर्म से बने हुए,

श्लक्ष्ण = वर्ण और छवि आदि के कारण बहुत सूक्ष्म या मुलायम,

श्लक्ष्णकल्याण = सूक्ष्म और मंगलमय चिन्हों से अंकित,

आजक = किसी देश की सूक्ष्म रोएँ वाली बकरी के रोम से निष्पन्न,

कायक = इन्द्रनील वर्ण कपास से निर्मित,

क्षौमिक = सामान्य कपास से बनाया गया वस्त्र,

दुकूल—गौडदेश में उत्पन्न विशिष्ट कपास से बने हुए वस्त्र,

पट्टसूत्र = रेशम के वस्त्र,

मलयज = (चन्दन) के सूत से बने या मलयदेश में बने वस्त्र,

पत्तुण = वल्कल तन्तुओं से निर्मित वस्त्र,

अंशुक = बारीक वस्त्र,

चीनांशुक = चीन देश के बने अत्यन्त सूक्ष्म एवं कोमल वस्त्र,

देश = राग-एक प्रदेश से रंगे हुए,

अमिल = रोम देश में निर्मित,

गर्जल = पहनते समय बिजली के समान कड़कड़ शब्द करने वाले वस्त्र,

स्फटिक के समान स्वच्छ वस्त्र,

कोयव = कोयव देश में उत्पन्न वस्त्र, विशेष प्रकार के पारसी कम्बल (मोटा कम्बल) तथा अन्य इसी प्रकार के बहुमूल्य वस्त्र प्राप्त होने पर भी उन्हें ग्रहण न करे।

मच्छ चम्माई णिम्मिय वत्थाणं गहण-णिसेहो --

१६९. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण आईणपाउरणाणि वत्थाणि जाणेज्जा, तं जहा—

उद्दाणि वा,
पेसाणि वा,
पेसलेसाणि वा,
किण्हमिगाईणगाणि वा, णीलमिगाईणगाणि वा, गोरमिगाईणगाणि वा,
कणगाणि वा, कणगकंताणि वा,
कणगपट्टाणि वा, कणगखइयाणि वा, कणगफुसियाणि वा, वग्घाणि वा, विवग्घाणि वा, आभरणाणि वा, आभरण-

मत्स्य चर्मादि से निर्मित वस्त्रों के ग्रहण का निषेध—

१६९. साधु या साध्वी यदि चर्म से निष्पन्न ओढ़ने के वस्त्र जाने जैसे कि—

औद्र—सिंधु देश के मत्स्य के चर्म और सूक्ष्म रोम से निष्पन्न वस्त्र,

पेष—सिन्धु देश के सूक्ष्म चर्म वाले जानवरों से निष्पन्न वस्त्र,

पेषलेश—उसी के चर्म पर स्थित सूक्ष्म रोमों से बने हुए वस्त्र,

कृष्ण मृग के चर्म, नील मृग के चर्म, गौर मृग के चर्म से निर्मित वस्त्र,

सुनहरे सूत्रों से निर्मित वस्त्र, सोने की कांति वाले वस्त्र,

सुनहरे सूत्रों की पट्टियों से बने हुए वस्त्र, सोने के पुष्प गुच्छों से अंकित वस्त्र, सोने के तारों से जटित और स्वर्ण चन्द्रि-

विचित्ताणि वा, अण्णतराणि वा, तहप्पगाराणि आईणपाउरणाणि वत्थाणि लाभे संते णो पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५५८

काओं से स्पर्शित, व्याघ्रचर्म, चीते का चर्म, आभरणों से मण्डित, आभरणों से चित्रित ये तथा अन्य इसी प्रकार के चर्म निष्पन्न प्रावरण = वस्त्र प्राप्त होने पर भी ग्रहण न करे।

संगार वयणेण कालाणंतरं वत्थ गहण णिसेहो—

१७०. सिया णं एयाए एसणाए एसमाणं पासित्ता परो वदेज्जा—

"आउसंतो समणा! एज्जाहि तुमं मासेण वा, दसरातेण वा, पंचरातेण वा, सुते वा, सुततरे वा, तो ते वयं आउसो! अण्णतरं वत्थं दासामो।"

एतप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म से पुव्वामेव आलोएज्जा।

"आउसो! ति वा, भगिणी! ति वा णो खलु मे कप्पति एतप्पगारे संगार वयणे पडिसुणेत्तए अभिकंखसि मे दाउं इयाणिमेव दलयाहि।"

से णेवं वदंतं परो वदेज्जा—

"आउसंतो समणा! अणुगच्छाहि, तो ते वयं अण्णतरं वत्थं दासामो।" से पुव्वामेव आलोएज्जा—

"आउसो! ति वा, भइणी! ति वा, णो खलु मे कप्पति एयप्पगारे संगारवयणे पडिसुणेत्तए, अभिकंखसि मे दाउं इयाणिमेव दलयाहि।"

—आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५६१-५६२

संकेत वचन से वस्त्र ग्रहण का निषेध—

१७०. उक्त वस्त्र एषणाओं से वस्त्र की गवेषणा करने वाले साधु को कोई गृहस्थ कहे कि—

"आयुष्मन् श्रमण! तुम इस समय जाओ, एक मास तथा दस या पाँच रात के बाद अथवा कल या परसों आना, तब हम तुम्हें किसी एक प्रकार का वस्त्र देंगे।"

इस प्रकार का कथन सुनकर समझकर वह उसे पहले ही कह दे—

"आयुष्मन् गृहस्थ! अथवा बहन! मुझे इस प्रकार के अवधिसूचक वचन स्वीकार करना नहीं कल्पता है यदि मुझे वस्त्र देना चाहते हो तो अभी दे दो।"

साधु के इस प्रकार कहने पर भी यदि गृहस्थ यों कहे कि—

"आयुष्मन् श्रमण! अभी तुम जाओ। थोड़ी देर बाद आना, हम तुम्हें कोई वस्त्र दे देंगे।" ऐसा कहने पर वह पहले ही उसे कहे—

"आयुष्मन् गृहस्थ! अथवा बहन! मेरे लिए इस प्रकार के अवधि सूचक वचन स्वीकार करना नहीं कल्पता है, यदि मुझे देना चाहते हो तो अभी दे दो।"

अफासुय वत्थ गहण णिसेहो—

१७१. से सेवं वदंतं परो णेत्ता वदेज्जा—

"आउसो! ति वा, भगिणी! ति वा, आहर एयं वत्थं समणस्स दासामो, अवियाइं वयं पच्छा वि अप्पणो सयट्ठाए पाणाइं-जाव-सत्ताइं समारब्भ-जाव-चेतेस्सामो।" एतप्पगारं निग्घोसं सोच्चा निसम्म तहप्पगारं वत्थं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५६३

अप्रासुक वस्त्र ग्रहण करने का निषेध—

१७१. साधु के इस प्रकार कहने पर भी गृहस्थ घर के किसी सदस्य (बहन आदि) को (बुला कर) यों कहे कि—

"आयुष्मन् भाई! या बहन! वह वस्त्र लाओ हम उसे श्रमण को देंगे। हम तो अपने निजी प्रयोजन के लिए बाद में भी प्राणी—यावत्—सत्वों का समारम्भ करके और उद्देश्य करके —यावत्—अन्य वस्त्र बनवा लेंगे।" इस प्रकार का कथन सुनकर समझकर उस प्रकार के वस्त्र को अप्रासुक जानकर —यावत्—ग्रहण न करे।

परिकम्मकय वत्थ गहण-णिसेहो—

१७२. सिया णं परो णेत्ता वदेज्जा—

"आउसो! ति वा, भइणी! ति वा, आहर एयं वत्थं, सिणाणेण वा, कक्केण वा, लोद्धेण वा वण्णेण वा, चुण्णेण वा, पउमेण वा, आघंसित्ता वा पघंसित्ता वा समणस्स णं दासामो।"

एतप्पगारं निग्घोसं सोच्चा निसम्म से पुव्वामेव आलोएज्जा—

परिकर्मकृत वस्त्र ग्रहण का निषेध—

१७२. गृहस्वामी घर के किसी व्यक्ति से यों कहे कि—

"आयुष्मन् भाई! अथवा बहन! यह वस्त्र लाओ हम उसे स्नान (सुगन्धित द्रव्य समुदाय) से, कल्क से, लोध से, वर्ण से, चूर्ण से या पद्म से एक बार या बार बार घिसकर श्रमण को देंगे।"

इस प्रकार का कथन सुनकर समझकर वह पहले से ही उसे कह दे—

"आउसो ! ति वा, भइणी ! ति वा, मा एतं तुमं वत्थं सिणाणेण वा-जाव-पउमेण वा आघंसाहि वा पघंसाहि वा, अभिकंखसि मे दातुं एमेव दलयाहि ।"

से सेवं वदंतस्स परो सिणाणेण वा-जाव-पउमेण वा आघंसित्ता वा पघंसित्ता वा दलएज्जा, तहप्पगारं वत्थं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५६४

"आयुष्मन् गृहस्थ ! या आयुष्मती बहन ! तुम वस्त्र को स्नान (सुगन्धित द्रव्य समुदाय) से —यावत्—पद्मादि सुगन्धित द्रव्यों से घर्षण वा प्रघर्षण मत करो । यदि मुझे देना चाहते हो तो ऐसा ही दे दो ।"

साधु के द्वारा इस प्रकार कहने पर भी वह गृहस्थ स्नान (सुगन्धित द्रव्य समुदाय) से—**यावत्**—पद्मादि सुगन्धित द्रव्यों से एक बार या बार बार घिसकर उस वस्त्र को देने लगे तो उस प्रकार के वस्त्र को अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे ।

समणुद्देसिय पक्खालिय वत्थस्स गहण-णिसेहो—

श्रमण के निमित्त प्रक्षालित वस्त्र के ग्रहण का निषेध—

१७३. से णं परो णेत्ता वदेज्जा—

"आउसो ! ति वा भइणी ! ति वा, आहर एयं वत्थं सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेत्ता वा, पधोवेत्ता वा समणस्स णं दासामो ।"

एयप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म से पुव्वामेव आलोएज्जा—"आउसो ! ति वा भइणी ! ति वा मा एयं तुमं वत्थं सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेहि वा, पधोवेहि वा अभिकंखसि मे दातुं एमेव दलयाहि ।"

से सेवं वदंतस्स परो सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेत्ता वा, पधोवेत्ता वा दलएज्जा, तहप्पगारं वत्थं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५६५

१७३. गृहपति घर के किसी सदस्य से कहे कि—

"आयुष्मन् भाई ! या बहन ! उस वस्त्र को लाओ, हम उसे प्रासुक शीतल जल से या प्रासुक उष्ण जल से एक बार या बार-बार धोकर श्रमण को दे देंगे ।"

इस प्रकार सुनकर समझकर वह पहले ही उसे कह दे ।

"आयुष्मन् गृहस्थ ! या आयुष्मती बहन ! इस वस्त्र को तुम प्रासुक शीतल जल या उष्ण जल से एक बार या बार-बार मत धोओ । यदि मुझे देना चाहते हो तो ऐसे ही दे दो ।"

इस प्रकार कहने पर भी यदि वह गृहस्थ उस वस्त्र को ठंडे पानी या गर्म पानी से एक बार या बार-बार धोकर साधु को देने लगे तो उसे अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे ।

कंदाइ विसोहिय वत्थस्स गहण-णिसेहो—

कंदादि निकालकर दिये जाने वाले वस्त्र के ग्रहण का निषेध—

१७४. से णं परो णेत्ता वदेज्जा—

"आउसो ! ति वा भइणी ! ति वा, आहर एयं वत्थं कंदाणि वा-जाव-हरियाणी वा विसोहेत्ता समणस्स णं दासामो ।"

एतप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म से पुव्वामेव आलोएज्जा—

"आउसो ति वा, भइणी ! ति वा, मा एताणि तुमं कंदाणि वा-जाव-हरियाणि वा विसोहेहि, णो खलु मे कप्पति एयप्पगारे वत्थे पडिगाहित्तए ।"

से सेवं वदंतस्स परो कंदाणि वा-जाव-हरियाणि वा विसोहेत्ता दलएज्जा । तहप्पगारं वत्थं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा । —आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५६६-५६७

१७४. गृहस्थ अपने घर के किसी व्यक्ति से यों कहे कि—

"आयुष्मन् भाई ! या बहन ! उस वस्त्र को लाओ हम उसमें से कन्द—**यावत्**—हरी (वनस्पति) को विशुद्ध कर (निकाल कर) साधु को देंगे ।"

इस प्रकार सुनकर समझकर वह पहले ही उसे कहे—

"आयुष्मन् गृहस्थ ! या बहन ! इस वस्त्र में से कन्द—**यावत्**—हरी मत निकालो मेरे लिए इस प्रकार का वस्त्र ग्रहण करना कल्पता नहीं है ।"

साधु के द्वारा इस प्रकार इन्कार करने पर भी वह गृहस्थ कन्द—**यावत्**—हरी वस्तु को विशुद्ध करके (निकाल करके) वस्त्र देने लगे तो इस प्रकार के वस्त्र को अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे ।

वासावासे वत्थ-गहण-णिसेहो—

वर्षावास में वस्त्र ग्रहण का निषेध—

१७५. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पढमसमोसरणुद्देसपत्ताइं चेलाइं पडिगाहेत्तए । —कप्प. उ. ३, सु. १६

१७५. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को प्रथम समवसरण में वस्त्र ग्रहण करना नहीं कल्पता है ।

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनी वस्त्रैषणा के विधि-निषेध—१ [५]

राईए वत्थाए गहण विहि-णिसेहो—

१७६. नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा,
राओ वा, वियाले वा,
वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कम्बलं वा, पायपुंछणं वा पडिगा-हेत्तए, नऽन्नत्थ एगाए हरियाहडियाए

सा वि य परिभुत्ता वा, धोया वा, रत्ता वा, घट्टा वा, मट्ठा वा, संपधूमिया वा। —कप्प. उ. १, सु. ४५

रात्रि में वस्त्रादि ग्रहण का विधि-निषेध—

१७६. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को,
रात्रि में या विकाल में,
वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोंछन लेना नहीं कल्पता है।
केवल एक "हृताहृतिका" को छोड़कर (पहले चुराई गयी, पीछे वापस लौटाई गई वस्तु "हृताहृतिका" कही जाती है।)
यदि वह परिभुक्त, धौत, रक्त, घृष्ट, मृष्ट या सम्प्रधूमित भी किया गया हो (तो भी रात्रि में लेना कल्पता है।)

समणाइ उद्देसिय णिम्मिय वत्थस्स गहण विहि-णिसेहो—

१७७. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा से ज्जं पुण वत्थं जाणेज्जा—बहवे समण-माहण-अतिहि-किविण-वणीमए समुद्दिस्स-जाव-आहट्टु चेएइ।
तं तहप्पगारं वत्थं अपुरिसंतरकडं अबहिया णीहडं, अणत्तट्ठियं, अपरिभुत्तं अणासेवियं अफासुयं-जाव-णो पडिग्गाहेज्जा।
अह पुण एवं जाणेज्जा पुरिसंतरकडं बहिया णीहडं, अत्तट्ठियं, परिभुत्तं आसेवियं फासुयं-जाव-पडिग्गाहेज्जा।
—आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५५५ (ग)

श्रमणादि के उद्देश्य से निर्मित वस्त्र लेने के विधि-निषेध—

१७७. भिक्षु या भिक्षुणी वस्त्र के सम्बन्ध में यह जाने कि अनेक श्रमण-ब्राह्मण-अतिथि-कृपण-भिखारियों के उद्देश्य से बनाया है—**यावत्**—अन्य स्थान से यहाँ लाया है।
इस प्रकार का वस्त्र अन्य पुरुष को दिया हुआ नहीं हो, बाहर निकाला नहीं हो, स्वीकृत न किया हो, उपभुक्त न हो, आसेवित न हो, उसको अप्रासुक जानकर—**यावत्** ग्रहण न करें।
यदि यह जाने कि इस प्रकार का वस्त्र अन्य पुरुष को दिया हुआ है, बाहर निकाला है, दाता द्वारा स्वीकृत है, उपभुक्त है, आसेवित है, उसको प्रासुक समझकर **यावत्**—ग्रहण करें।

कीयाइ दोस जुत्त वत्थ गहण विहि-णिसेहो—

१७८. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा से ज्जं पुण वत्थं जाणेज्जा—अस्संजते भिक्खुपडियाए कीतं वा, धोयं वा, रत्तं वा, घट्ठं वा, मट्ठं वा, संमट्ठं वा, संपधूवितं वा, तहप्पगारं वत्थं अपुरिसंतरकडं-जाव अणासेवितं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

अह पुणेवं जाणेज्जा पुरिसंतरकडं-जाव-पडिगाहेज्जा।
—आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५५६

क्रीतादिदोष युक्त वस्त्र ग्रहण का विधि-निषेध—

१७८. भिक्षु या भिक्षुणी वस्त्र के विषय में यह जाने कि—गृहस्थ ने साधु के निमित्त उसे खरीदा है, धोया है, रंगा है, घिस कर साफ किया है, चिकना या मुलायम बनाया है, संस्कारित किया है, धूप इत्यादि से सुवासित किया है ऐसा वह वस्त्र पुरुषान्तरकृत—**यावत्**—किसी के द्वारा आसेवित नहीं हुआ है, ऐसे वस्त्र को अप्रासुक समझकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।
यदि (साधु या साध्वी) यह जान जाए कि—वह वस्त्र पुरुषान्तरकृत है—**यावत्**—ग्रहण कर सकता है।

कीयाइ दोस जुत्त वत्थ गहण पायच्छित्त सुत्ताइं—

१७९. से भिक्खू वत्थं किणेइ, किणावेइ, कीयं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू वत्थं पामिच्चेइ, पामिच्चावेइ, पामिच्चमाहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू वत्थं परियट्टेइ, परियट्टावेइ, परियट्टियमाहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

क्रीतादि दोषयुक्त वस्त्र ग्रहण करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

१७९. जो भिक्षु वस्त्र को खरीदता है, खरीदवाता है, खरीदा हुआ लाकर देते हुए को लेता है, लिवाता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु वस्त्र को उधार लेता है, उधार लिवाता है, उधार लाकर देते हुए को लेता है, लिवाता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु वस्त्र को परिवर्तन करता है, परिवर्तन करवाता है या परिवर्तन करके लाये हुए वस्त्र को लेता है, लिवाता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू वत्थं अच्छेज्जं, अणिसिट्ठं, अभिहडमाहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १८, सु. २४-२७

जो भिक्षु आच्छेद्य, अनिगृष्ट और सामने लाये गये वस्त्र को लेता है, लिवाता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अइरेग वत्थ वियरण पायच्छित्त सुत्ताइं—

१८०. जे भिक्खू अइरेगं वत्थं गणिं उद्दिसियं, गणिं समुद्दिसियं, तं गणिं अणापुच्छिय, अणामंतिय, अण्णमण्णस्स वियरइ, वियरंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अइरेगं वत्थं खुड्डगस्स वा, खुड्डियाए वा, थेरगस्स वा, थेरियाए वा (१) अहत्थच्छिण्णस्स, (२) अपायच्छिण्णस्स, (३) अकण्णच्छिण्णस्स, (४) अणासच्छिण्णस्स, (५) अणोट्ठच्छिण्णस्स सक्कस्स देइ, देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अइरेगं वत्थं खुड्डगस्स वा, खुड्डियाए वा, थेरगस्स वा, थेरियाए वा (१) हत्थच्छिण्णस्स, (२) पायच्छिण्णस्स, (३) कण्णच्छिण्णस्स, (४) णासच्छिण्णस्स, (५) ओट्ठच्छिण्णस्स असक्कस्स न देइ, न देंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १८, सु. २८-३०

अतिरिक्त वस्त्र वितरण के प्रायश्चित्त सूत्र—

१८०. जो भिक्षु अतिरिक्त वस्त्र को गणी के उद्देश्य से या किसी विशेष गणी के उद्देश्य से लाये गये वस्त्र को उस गणी से बिना पूछे, बिना आमन्त्रण दिये यदि किसी अन्य को देता है, दिलवाता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु अतिरिक्त वस्त्र को—१. जिसके हाथ कटे हुए नहीं हैं, २. पैर कटे हुए नहीं हैं, ३. कान, ४. नाक और ५. होठ कटे हुए नहीं हैं ऐसे क्षुल्लक या क्षुल्लिका स्थविर या स्थविरा जो सशक्त हैं उनके लिए देता है, दिलवाता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु अतिरिक्त वस्त्र को जिसके १. हाथ, २. पैर, ३. कान, ४. नाक और ५. होठ कटे हैं ऐसे क्षुल्लक या क्षुल्लिका के लिए स्थविर और स्थविरा के लिए जो अशक्त हैं उन्हें नहीं देता है, नहीं दिलवाता है या नहीं देने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

वस्त्र धारण—२ [1]

वत्थ धारण कारणाइं—

१८१. तिहिं ठाणेहिं वत्थं धारेज्जा, तं जहा—

(१) हिरिवत्तियं,
(२) दुगुंछावत्तियं,
(३) परीसहवत्तियं।

—ठाण. अ. ३, उ. ३, सु. १७६

वस्त्र धारण के कारण—

१८१. (निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियाँ) तीन कारणों से वस्त्र धारण करें, यथा—

१. ह्रीप्रत्यय से (लज्जा-निवारण के लिए)।
२. जुगुप्साप्रत्यय से (घृणा निवारण के लिए)।
३. परीषहप्रत्यय से (शीतादि परीषह के निवारण के लिए)।

एसणिज्जाणि वत्थाणि—

१८२. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा अभिकंखेज्जा वत्थं एसित्तए। से ज्जं पुण वत्थं जाणेज्जा, तं जहा—

(१) जंगियं वा,
(२) भंगियं वा,
(३) साणयं वा,

एषणीय वस्त्र—

१८२. भिक्षु या भिक्षुणी वस्त्र की गवेषणा करना चाहें तो वे वस्त्रों के सम्बन्ध में जाने। वे वस्त्र इस प्रकार हैं—

१. जांगमिक—त्रसजीवों के अवयवों से निष्पन्न वस्त्र।
२. भांगिक—अलसी की छाल से निष्पन्न वस्त्र।
३. सानिक—सण से निष्पन्न वस्त्र।

(४) पोत्तगं वा,
(५) खोमियं वा,
(६) तूलकडं वा,

तहप्पगारं वत्थं[1] जे णिग्गंथे तरुणे जुगवं बलवं अप्पायंके थिरसंघयणे, से एगं वत्थं धारेज्जा, णो बिइयं ।

—आ. सु. २. अ. ५, उ. १, सु. ५५३

४. पोत्रक—ताड़ आदि के पत्रों से निष्पन्न वस्त्र ।
५. क्षौमिक—कपास (रूई) से बने वस्त्र ।
६. तूलकृत – आक आदि की रुई से बने हुए वस्त्र ।

इन वस्त्रों में से जो निर्ग्रन्थ मुनि तरुण है, समय के उपद्रव (प्रभाव) से रहित है, बलवान है, रोग-रहित है और स्थिर संहनन (दृढ़ संहनन) वाला है वह एक ही (प्रकार के) वस्त्र धारण करे, दूसरा नहीं ।

अहेसणिज्जवत्थ धारण विहाणं—

१८३. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा अहेसणिज्जाइं वत्थाइं जाएज्जा, अहापरिग्गहियाइं वत्थाइं धारेज्जा, णो धोएज्जा, णो रएज्जा, णो धोत्तरत्ताइं वत्थाइं धारेज्जा-अपलिउंचमाणे गामंतरेसु ओमचेलिए[2] ।

एवं खलु वत्थधारिस्स सामग्गियं ।

—आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५८१

एषणीय वस्त्र धारण का विधान—

१८३. भिक्षु या भिक्षुणी एषणीय वस्त्रों की याचना करे और जैसे वस्त्र लिए हों वैसे ही वस्त्रों का धारण करे, परन्तु (विभूषा के लिए) न उन्हें धोए, न उन्हें रंगे और न धोए हुए तथा न रंगे हुए वस्त्रों को पहने उन (बिना धोए या रंगे) साधारण वस्त्रों को ग्रामान्तरों में न छिपाते हुए विचरण करे ।

यही वस्त्रधारी भिक्षु का आचार है ।

**

---

१ (क) कप्प. उ. २, सु. २९ ।

(ख) एवं तथाप्रकारमन्यदपि धारयेदित्युत्तरेण सम्बन्धः । —आ. टीका पृ. ३९२

(ग) कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा पंच वत्थाइं धारित्तए वा, परिहरेत्तए वा, तं जहा—१. जंगिए, २. भंगिए, ३. साणिए, ४. पोत्तिए, ५. तिरीडपट्टए णामं पंचमए । – ठाणं, अ. ५, उ. ३, सु. ४४६

(घ) कप्पति णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा ततो वत्थाइं धारित्तए वा परिहरित्तए वा, तं जहा —१. जंगिते, २. भंगिते, ३. खोमिते । ––ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १७८

(ङ) उपर्युक्त कल्प्य वस्त्रों की संख्याओं में और नामों में भिन्नता है । ठाणांग सूत्र ठाणा तीन में तीन प्रकार के वस्त्र ग्राह्य कहे हैं और 'खोमिए' से सूती वस्त्र का कथन हुआ है ।

बृहत्कल्प सूत्र और ठाणांग सूत्र ठाणा ५ में पाँच प्रकार के वस्त्र कहे हैं । इन दोनों स्थलों में संख्या व नाम सदृश हैं । तथा यहाँ 'पोत्तिए' से सूती वस्त्र का कथन हुआ है ।

आचारांग सूत्र के प्रस्तुत सूत्र में 'पोत्तिय' और 'खोमियं' दोनों ही शब्दों का भिन्न अर्थ में प्रयोग हुआ है तथा 'तिरीडपट्ट' के स्थान पर 'तूलकड' का कथन हुआ है । इस प्रकार सर्व कल्प्य वर्णित वस्त्र संख्या सात होना फलित होता है ।

२ "अवम" का अर्थ अल्प या साधारण होता है । "अवम" शब्द यहाँ संख्या, परिमाण (नाप) और मूल्य तीनों दृष्टियों से अल्पता या साधारणता का द्योतक है । कम से कम मूल्य के साधारण से और थोड़े से वस्त्र से निर्वाह करने वाला भिक्षु "अवमचेलक" कहलाता है ।

निर्ग्रन्थ के वस्त्र-धारण की विधि—२ [२]

एगवत्थधारी भिक्खू—

१८४. जे भिक्खू एगेण वत्थेण परिवुसिते पायबितिएण तस्स णो एवं भवति—बितियं वत्थं जाइस्सामि

से अहेसणिज्जं वत्थं जाएज्जा, अहापरिग्गहियं वत्थं धारेज्जा -जाव-एतं खु वत्थधारिस्स सामग्गियं।

अह पुण एवं जाणेज्जा उवातिक्कंते खलु हेमंते गिम्हे पडिवन्ने, अहा परिजुण्णं वत्थं परिट्ठवेज्जा अदुवा एगसाडे, अदुवा अचेले,

लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमण्णागते भवति।

जहेयं भगवया पवेदितं तमेव अभिसमेच्चा सव्वतो सव्वत्ताए सम्मत्तमेव समभिजाणिया।

—आ. सु. १, अ. ८, उ. ६, सु. २२०-२२१

एक वस्त्रधारी भिक्षु—

१८४. जो भिक्षु एक वस्त्र और दूसरा पात्र रखने की प्रतिज्ञा स्वीकार कर चुका है, उसके मन में ऐसा अध्यवसाय नहीं होता है कि "मैं दूसरे वस्त्र की याचना करूँ"।

वह यथा एषणीय वस्त्र की याचना करे और यथा गृहीत वस्त्र को धारण करे—यावत्—उस एक वस्त्रधारी मुनि की यही सामग्री (धर्मोपकरण समूह) है।

जब भिक्षु यह जाने कि अब हेमन्त ऋतु बीत गई है ग्रीष्म ऋतु आ गई है, तब वह जो जीर्ण वस्त्र हो गये हैं उनका परित्याग करे। यदि जीर्ण न हुआ हो तो वह एक शाटक (आच्छादन पट) में रहे, यदि जीर्ण हो गया हो तो उसे परठकर वह अचेल (वस्त्र रहित) हो जाए।

इस प्रकार वस्त्र परित्याग से लाघवता प्राप्त करते हुए उस मुनि को सहज ही तप प्राप्त हो जाता है।

भगवान ने जिस प्रकार से इसका निरूपण किया है, उसे उसी रूप में गहराईपूर्वक जानकर सब प्रकार से सर्वात्मना भलीभांति आचरण में लाए।

दोवत्थधारी भिक्खू—

१८५. जे भिक्खू दोहिं वत्थेहिं परिवुसिते तस्स णं णो एवं भवति—"ततियं वत्थं जाइस्सामि"।

से अहेसणिज्जाइं वत्थाइं जाएज्जा, अहापरिग्गहियाइं वत्थाइं धारेज्जा-जाव-एतं खु वत्थधारिस्स सामग्गियं।

अह पुण एवं जाणेज्जा "उवातिक्कंते खलु हेमंते, गिम्हे पडिवण्णे" अहापरिजुण्णाइं वत्थाइं परिट्ठवेज्जा, अदुवा ओमचेले, अदुवा एगसाडे, अदुवा अचेले,

लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमण्णागते भवति।

जहेयं भगवता पवेदितं तमेव अभिसमेच्चा सव्वतो सव्वत्ताए सम्मत्तमेव समभिजाणिया।

—आ. सु. १, अ. ८, उ. ५, सु. २१६-२१७

दो वस्त्रधारी भिक्षु—

१८५. जो भिक्षु दो वस्त्र और तीसरे पात्र रखने की प्रतिज्ञा में स्थित है, उसके मन में यह विकल्प नहीं उठता कि 'मैं तीसरे वस्त्र की याचना करूं।'

वह अपनी कल्पमर्यादानुसार एषणीय वस्त्रों की याचना करे और गृहीत वस्त्रों को धारण करे यावत् द्विवस्त्रधारी भिक्षु की यही सामग्री है।

जब भिक्षु यह जाने कि हेमन्त ऋतु बीत गई है, ग्रीष्म ऋतु आ गई है, तब वह जो वस्त्र जीर्ण हो गए हैं, उनका परित्याग करे। यदि जीर्ण न हुये हों तो दो वस्त्र में ही रहे, यदि एक वस्त्र जीर्ण हुआ हो तो उसका परित्याग करके एक शाटक (आच्छादन पट) में रहे, यदि दोनों जीर्ण हो जायें तो उनका परित्याग करके अचेल हो जाए।

इस प्रकार वस्त्र परित्याग से लाघवता प्राप्त हुए उस मुनि को सहज ही तप प्राप्त हो जाता है।

भगवान ने जिस प्रकार से इसका प्रतिपादन किया है, उसे उसी रूप में गहराईपूर्वक जानकर सब प्रकार से सर्वात्मना सम्यक् प्रकार से जाने व क्रियान्वित करे।

तिवत्थधारी भिक्खू—

१८६. जे भिक्खू तिहिं वत्थेहिं परिवुसिते पायचउत्थेहिं तस्स णं णो एवं भवति, "चउत्थं वत्थं जाइस्सामि।"

से अहेसणिज्जाइं वत्थाइं जाएज्जा, अहापरिग्गहियाइं वत्थाइं धारेज्जा-जाव-एतं खु वत्थधारिस्स सामग्गियं।

अह पुण एवं जाणेज्जा "उवातिक्कंते खलु हेमंते गिम्हे पडिवण्णे" अहापरिजुण्णाइं वत्थाइं परिट्ठवेज्जा, अदुवा संतरुत्तरे, अदुवा ओमचेले, अदुवा एगसाडे, अदुवा अचेले,

लाघवियं आगमेमाणे तवे से अभिसमण्णागते भवति।

जहेतं भगवता पवेदितं तमेव अभिसमेच्चा सव्वतो सव्वताए सम्मत्तमेव समभिजाणिया।

—आ. सु. १, अ. ८, उ. ४, सु. २१३-२१४

तीन वस्त्रधारी भिक्षु—

१८६. जो भिक्षु तीन वस्त्र और चौथे पात्र रखने की मर्यादा में स्थित है, उसके मन में ऐसा अध्यवसाय नहीं होता कि 'मैं चौथे वस्त्र की याचना करूँ।'

वह यथा—एषणीय वस्त्रों की याचना करे और यथापरिगृहीत वस्त्रों को धारण करे—यावत्—उस तीन वस्त्रधारी मुनि की यही सामग्री है।

जब भिक्षु यह जान ले कि 'हेमन्त ऋतु बीत गई है, ग्रीष्म ऋतु आ गई है।' तब वह जिन-जिन वस्त्रों को जीर्ण जाने उनका परित्याग कर दे। यदि जीर्ण न हुए हों तो तीन वस्त्र में ही रहे, यदि एक जीर्ण हो गया तो उसका परित्याग करके दो वस्त्र में रहे, यदि दो जीर्ण हो गये हों तो उनका परित्याग करके एक शाटक (एक ही वस्त्र) वाला होकर रहे। अथवा तीनों वस्त्र जीर्ण हो जाने पर अचेलक हो जाए।

इस प्रकार वस्त्र परित्याग से लाघवता प्राप्त करते हुए उस मुनि के तप (उपकरण-ऊनोदरी और कायक्लेश) सहज हो जाता है।

भगवान ने जिस प्रकार से इसका प्रतिपादन किया है, उसे उसी रूप में गहराईपूर्वक जानकर सब प्रकार से सर्वात्मना सम्यक् प्रकार से जाने व कार्यान्वित करे।

निर्ग्रन्थी की वस्त्र-धारण की विधि—२ [३]

णिग्गंथीणं संघाडीपमाणं—

१८७. जा णिग्गंथी सा चत्तारि संघाडीओ धारेज्जा—एगं दुहत्थवित्थारं, दो तिहत्थवित्थाराओ, एगं चउहत्थवित्थारं।[1]

तहप्पगारेहिं वत्थेहिं असंविज्जमाणेहिं अह पच्छा एगमेगं संसीवेज्जा। —आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५५३ (ख)

निर्ग्रन्थियों के चादरों का प्रमाण—

१८७. जो साध्वी है, वह चार संघाटिका (चादर) धारण करे—उसमें एक दो हाथ प्रमाण विस्तृत, दो तीन हाथ प्रमाण विस्तृत और एक चार हाथ प्रमाण विस्तृत (लम्बी) होनी चाहिए।

इस प्रकार के विस्तार युक्त वस्त्रों के न मिलने पर वह एक वस्त्र को दूसरे वस्त्र के साथ सीं ले।

णिग्गंथीए संघाडी सिवावण पायच्छित्त सुत्तं—

१८८. जे भिक्खू णिग्गंथीए संघाडिं अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा सिव्वावेइ, सिव्वावेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —नि. उ. १२, सु. ७

निर्ग्रन्थी की साड़ी सिलवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

१८८. जो भिक्षु किसी निर्ग्रन्थी की संघाटी (साड़ी आदि) को अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से सिलवाता है या सिलवाने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

१ ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २४६।

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनी वस्त्र धारण के विधि-निषेध—२ [४]

वत्थस्स गहण विहि-णिसेहो—

१८९. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण वत्थं जाणेज्जा—सअंडं-जाव-संताणगं तहप्पगारं वत्थं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण वत्थं जाणेज्जा—अप्पडं-जाव-संताणगं, अणलं, अथिरं, अधुवं, अधारणिज्जं, रोइज्जंतं ण रुच्चति, तहप्पगारं वत्थं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण वत्थं जाणेज्जा—अप्पडं-जाव-संताणयं, अलं, थिरं, धुवं, धारेणिज्जं रुच्चति, तहप्पगारं वत्थं फासुयं-जाव-पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५६६-५७१

वस्त्र ग्रहण के विधि-निषेध—

१८९. भिक्षु या भिक्षुणी वस्त्र के सम्बन्ध में जाने कि अण्डों से—**यावत्**—मकड़ी के जालों से युक्त है, तो उस प्रकार के वस्त्र को अप्रासुक जानकर—**यावत्** ग्रहण न करे।

भिक्षु या भिक्षुणी वस्त्र के सम्बन्ध में जाने कि अण्डों से—**यावत्**—मकड़ी के जालों से तो रहित है, किन्तु अभीष्ट कार्य करने में असमर्थ है, अस्थिर है (अर्थात् टिकाऊ नहीं है, जीर्ण है) अध्रुव (थोड़े समय के लिए दिया जाने वाला) है, धारण करने के योग्य नहीं है अपनी रुचि के अनुकूल नहीं है तो ऐसे वस्त्र को अप्रासुक समझकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

भिक्षु या भिक्षुणी वस्त्र के सम्बन्ध में जाने कि अण्डों से—**यावत्** मकड़ी के जालों से रहित है, अभीष्ट कार्य करने में समर्थ है, स्थिर है, ध्रुव है, धारण करने के योग्य है, अपनी रुचि के अनुकूल है तो ऐसे वस्त्र को प्रासुक समझकर—**यावत्**—ग्रहण कर सकता है।

धारणिज्ज अधारणिज्ज वत्थस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

१९०. जे भिक्खू वत्थं अणलं, अथिरं, अधुवं, अधारणिज्जं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू वत्थं अलं, थिरं, धुवं, धारणिज्जं न धरेइ, न धरेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १८, सु. ३१-३२

जे भिक्खू-वत्थं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा, अलं, थिरं, धुवं, धारणिज्जं पलिछिंदिय पलिछिंदिय परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ५, सु. ६५

धारणीय-अधारणीय वस्त्र के प्रायश्चित्त सूत्र—

१९०. जो भिक्षु अयोग्य, अस्थिर, अध्रुव एवं अधारणीय वस्त्र को धारण करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु योग्य, स्थिर, ध्रुव एवं धारणीय वस्त्र को धारण नहीं करता है, नहीं करवाता है और नहीं धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्‌घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

जो भिक्षु वस्त्र को, कम्बल को, पादप्रोंछन को, जो कि योग्य, स्थिर, ध्रुव और धारणीय हैं उनके टुकड़े-टुकड़े करके परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्‌घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

आकुंचणपट्टगस्स गहण विहि-णिसेहो—

१९१. नो कप्पइ निग्गंथीणं आकुंचणपट्टगं धारित्तए वा, परिहरित्तए वा।

कप्पइ निग्गंथाणं आकुंचणपट्टगं[1] धारित्तए वा, परिहरित्तए वा।

—कप्प. उ. ५, सु. ३४-३५

आकुंचनपट्टग के ग्रहण का विधि निषेध—

१९१. निर्ग्रन्थी साध्वियों को आकुंचन पट्टक (चार अंगुल विस्तार वाला पर्यस्तिका वस्त्र) रखना या धारण करना नहीं कल्पता है।

किन्तु निर्ग्रन्थ साधुओं को आकुंचन पट्टक रखना या धारण करना कल्पता है।

---

१ आकुंचणपट्टं-पर्यस्तिकापट्टं स च पर्यस्तिकापट्ट किदृशः इत्याह—

गाहा—फल्लो अचित्तो अह आविओ वा, चउरंगुलं वित्थडो असंधिमो अ। विस्सामहेउं तु सरीरगस्सा दोसा अवट्ठंभगया ण एवं॥

—बृहत्कल्प भाष्य, भा. ५, गा. ५९६८ पृ. १५७४

उग्गहणंतगाईणं गहण विहि-णिसेहो—

१९२. नो कप्पइ निग्गंथाणं—

उग्गहणन्तगं वा, उग्गहपट्टगं वा, धारित्तए वा, परिहरित्तए वा।

कप्पइ निग्गंथीणं—

उग्गहणन्तगं वा, उग्गहपट्टगं वा धारित्तए वा, परिहरित्तए वा। —कप्प. उ. ३, सु. ११-१२

अवग्रहानन्तकादि के ग्रहण का विधि-निषेध—

१९२. निर्ग्रन्थों को—

(१) अवग्रहानन्तक (चोलपट्टक के अन्दर गुप्तांग को आवृत करने का वस्त्र) और (२) अवग्रहपट्टक (अवग्रहानन्तक को आवृत करने का वस्त्र) रखना या उसका उपयोग करना नहीं कल्पता है।

किन्तु निर्ग्रन्थियों को—

(१) अवग्रहानन्तक—साड़ी के अन्दर (गुप्तांग को आवृत करने का वस्त्र) और (२) अवग्रहपट्टक (कटिप्रदेश से जानुपर्यन्त पहना जाने वाला कच्छा-जांघिया) रखना या उसका उपयोग करना कल्पता है।

कसिणाकसिणवत्थाणं विहि-णिसेहो—

१९३. नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा—कसिणाइं वत्थाइं धारित्तए वा, परिहरित्तए वा।

कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा अकसिणाइं वत्थाइं धारित्तए वा परिहरित्तए वा। —कप्प उ. ३, सु. ७-८

कृत्स्नाकृत्स्न वस्त्रों का विधि-निषेध—

१९३. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को कृत्स्न वस्त्रों का रखना या उपयोग करना नहीं कल्पता है।

किन्तु निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को अकृत्स्न वस्त्रों का रखना या उपयोग करना कल्पता है।

कसिण वत्थ धरणपायच्छित्तसुत्तं—

१९४. जे भिक्खू कसिणाइं वत्थाइं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —नि. उ. २, सु. २३

कृत्स्न वस्त्र धारण करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

१९४. जो भिक्षु कृत्स्न वस्त्र धारण करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

भिन्नाभिन्न वत्थाणं विहि-णिसेहो—

१९५. नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा अभिन्नाइं वत्थाइं धारित्तए वा, परिहरित्तए वा।

कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा भिन्नाइं वत्थाइं धारित्तए वा, परिहरित्तए वा। —कप्प. उ. ३ सु. ९-१०

भिन्नाभिन्न वस्त्रों का विधि-निषेध—

१९५. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को अभिन्न वस्त्रों का रखना या उपयोग करना नहीं कल्पता है।

निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को भिन्न वस्त्रों का रखना या उपयोग करना कल्पता है।

अभिन्न वत्थधरण पायच्छित्त सुत्तं—

१९६. जे भिक्खू अभिन्नाइं वत्थाइं धरेइ धरेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —नि. उ. २, सु. २४

अभिन्न वस्त्र धारण करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

१९६. जो भिक्षु अभिन्न वस्त्र धारण करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

वस्त्र प्रक्षालन का निषेध—३

वत्थाणं गंधिकरण धोवण-णिसेहो—

१९७. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा "णो णवए मे वत्थे" त्ति कट्टु णो बहुदेसिएण सिणाणेण वा-जाव-पउमेण वा, आघंसेज्ज वा, पघंसेज्ज वा।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा "णो णवए मे वत्थे" त्ति कट्टु णो बहुदेसिएण सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा "दुब्भिगंधे मे वत्थे" त्ति कट्टु णो बहुदेसिएण सिणाणेण वा-जाव-पउमेण वा, आघंसेज्ज वा, पघंसेज्ज वा।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा "दुब्भिगंधे मे वत्थे त्ति कट्टु णो बहुदेसिएण सीतोदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा।

—आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५७३-५७४

वस्त्र सुगन्धित करने का और धोने का निषेध—

१९७. "मेरा वस्त्र नया नहीं है" ऐसा सोच कर भिक्षु या भिक्षुणी उसे (पुराने वस्त्र को) अल्प या बहुत सुगन्धित द्रव्य समुदाय से—यावत्—पद्म राग से आघर्षित प्रघर्षित न करे।

"मेरा वस्त्र नया नहीं है" इस अभिप्राय से भिक्षु या भिक्षुणी उस मलीन वस्त्र को अल्प या बहुत शीतल या उष्ण प्रासुक जल से एक बार या बार-बार प्रक्षालन न करे।

"मेरा वस्त्र दुर्गन्धित है" इस अभिप्राय से भिक्षु या भिक्षुणी अल्प या बहुत सुगन्धित द्रव्य समुदाय से—यावत्—पद्म राग से आघर्षित-प्रघर्षित न करे।

"मेरा वस्त्र दुर्गन्धित है" इस अभिप्राय से भिक्षु या भिक्षुणी उस मलिन वस्त्र को अल्प या बहुत शीतल या उष्ण प्रासुक जल से एक बार या बार-बार न धोए।

वत्थ-गंधिकरणस्स धोवणस्स य पायच्छित्तसुत्ताइं—

१९८. जे भिक्खू "नो नवए मे वत्थे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेसिएण[1] लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा आघंसेज्ज वा पघंसेज्ज वा आघंसंतं वा पघंसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू "नो नवए मे वत्थे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेसिएण सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १८, सु. ३६-३७

जे भिक्खू "नो नवए मे वत्थे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेवसिएण[2] लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा आघंसेज्ज वा, पघंसेज्ज वा आघंसंतं वा, पघंसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू "नो नवए मे वत्थे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेवसिएण सीओदगवियडेण वा उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

वस्त्र को सुगन्धित करने और धोने के प्रायश्चित्त सूत्र—

१९८. जो भिक्षु "मुझे नया वस्त्र नहीं मिला है" ऐसा सोच करके लोध से—यावत्—वर्ण से एक बार या बार-बार घिसे, घिसवावे, घिसने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु "मुझे नया वस्त्र नहीं मिला है" ऐसा सोच करके अचित्त शीतल जल से या अचित्त उष्ण जल से धोये, धुलावे, धोने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

जो भिक्षु "मुझे नया वस्त्र नहीं मिला है" ऐसा सोच करके पुराने लोध से—यावत्—वर्ण से एक बार या बार-बार घिसे, घिसवावे, घिसने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु "मुझे नया वस्त्र नहीं मिला है" ऐसा सोच करके पुराने अचित्त शीतल जल से या अचित्त उष्ण जल से धोये, धुलावे, धोने वाले का अनुमोदन करे।

---

१ 'बहुदेसिएणं' का अर्थ है अल्प या बहुत लेप्य पदार्थ से कार्य करना।

२ 'बहुदेवसिएणं' के अनेक अर्थ हैं यथा—बहुत दिन के लेप्य पदार्थ, बहुत दिन तक अपने पास रखे हुए पदार्थ, बहुत दिन तक एक वस्त्र के लेप्य पदार्थ लगाना या धोना इत्यादि।

अथवा यह भी संभव है कि 'बहुदेसिएण' शब्द से ही लिपि दोष से 'बहुदेवसिएण' का पाठ बन गया हो तथा भिन्न-भिन्न प्रतियों में विभिन्नता हो जाने से दोनों पाठ वृद्धि होकर प्रचलित हो गये हों। क्योंकि 'बहुदेसिएणं' के सूत्र का अर्थ जितना स्पष्ट और संगतियुक्त है उतना 'बहुदेवसिएणं' का नहीं है। लोद्रादि अनेक दिन के होने में कोई दोष नहीं होता है तथा अचित्त जल अनेक दिन का होना या रखना सम्भव नहीं है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १८, सु. ३९-४०

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

जे भिक्खू "दुब्भिगंधे मे वत्थे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेसिएण लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा, आघंसेज्ज वा, पघंसेज्ज वा, आघंसंतं वा, पघंसंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु "मुझे दुर्गन्धी वस्त्र मिला है" ऐसा सोच करके लोध से—यावत् वर्ण से एक बार या बार-बार घिसे, घिसवावे, घिसने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू "दुब्भिगंधे मे वत्थे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेसिएण सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु "मुझे दुर्गन्धी वस्त्र मिला है" ऐसा सोच करके अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से धोये, धुलावे, धोने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १८, सु. ४२-४३

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

जे भिक्खू "दुब्भिगंधे मे वत्थे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेवसिएण लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा, आघंसेज्ज वा, पघंसेज्ज वा, आघंसंतं वा, पघंसंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु "मुझे दुर्गन्धी वस्त्र मिला है" ऐसा सोच करके पुराने लोध से—यावत्—वर्ण से एक बार या बार-बार घिसे, घिसवावे, घिसने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू "दुब्भिगंधे मे वत्थे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेवसिएण सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।[1]

जो भिक्षु "मुझे दुर्गन्धी वस्त्र मिला है" ऐसा सोच करके पुराने अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से धोये, धुलावे, धोने वाले का अनुमोदन करे।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १८, सु. ४५-४६

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

---

१ (क) निशीथ भाष्य में निम्न सूत्र अधिक प्राप्त होते हैं।

जे भिक्खू "नो नवए मे सुब्भिगंधे वत्थे लद्धे" त्ति कट्टु लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा आघंसेज्ज वा, पघंसेज्ज वा, आघंसंतं वा, पघंसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू "नो नवए मे सुब्भिगंधे वत्थे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेसिएण सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ। —नि० उ० १८, सु० ४८-४९

जे भिक्खू "नो नवए मे सुब्भिगंधे वत्थे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेवसिएण लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा आघंसेज्ज वा, पघंसेज्ज वा, आघंसंतं वा, पघंसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू "नो नवए मे सुब्भिगंधे वत्थे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेवसिएण सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ। —नि० उ० १८, सु० ५१-५२

(ख) जे भिक्खू सुब्भिगंधे पडिग्गहे लद्धे त्ति कट्टु दुब्भिगंधे करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू दुब्भिगंधे पडिग्गहे लद्धे—त्ति कट्टु सुब्भिगंधे करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

स्व० पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी म० तथा स्व० पूज्य श्री घासीलालजी म० सम्पादित प्रतियों में ये दो सूत्र अधिक उपलब्ध हैं।

वस्त्र-आतापन—४

वत्थआयावण विहित ठाणाइं—

१९९. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा अभिकंखेज्ज वत्थं आयावेत्तए वा पयावेत्तए वा, तहप्पगारं वत्थं से समायाए एगंतमवक्कमेज्जा एगंतमवक्कमित्ता अहे झामथंडिल्लंसि वा-जाव-गोमयरासिंसि वा अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिल्लंसि पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय ततो संजयामेव वत्थं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा।

—आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५७६

विहित स्थानों पर वस्त्र सुखाने का विधान—

१९९. भिक्षु या भिक्षुणी वस्त्र को धूप में सुखाना चाहे तो उस वस्त्र को लेकर एकान्त में जाये, वहाँ जाकर देखे कि जो भूमि अग्नि से दग्ध हो—यावत्—गोबर के ढेर वाली हो या अन्य ऐसी कोई स्थंडिल भूमि हो उसका भलीभाँति प्रतिलेखन एवं रजोहरणादि से प्रमार्जन करके तत्पश्चात् यतनापूर्वक उस वस्त्र को धूप में सुखाए।

वत्थ आयावण णिसिद्ध ठाणाइं—

२००. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा अभिकंखेज्जा—वत्थं आयावेत्तए वा, पयावेत्तए वा, तहप्पगारं वत्थं णो अणंतरहिताए पुढवीए-जाव-मक्कडासंताणए, आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा अभिकंखेज्जा वत्थं आयावेत्तए वा, पयावेत्तए वा, तहप्पगारं वत्थं थूणंसि वा, गिहेलुगंसि वा, उसुयालंसि वा, कामजलंसि वा, अण्णयरे वा तहप्पगारे अंतलिक्खजाते[1] दुब्बद्धे दुण्णिक्खित्ते अणिकंपे चलाचले णो आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा अभिकंखेज्जा वत्थं आयावेत्तए वा, पयावेत्तए वा, तहप्पगारं वत्थं कुलियंसि वा, भित्तिंसि वा, सिलंसि वा, लेलुंसि वा, अण्णतरे वा तहप्पगारे अंतलिक्खजाते दुब्बद्धे-जाव-चलाचले णो आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा अभिकंखेज्जा वत्थं आयावेत्तए वा, पयावेत्तए वा, तहप्पगारं वत्थं खंधंसि वा-जाव-हम्मियतलंसि वा अण्णतरे वा तहप्पगारे अंतलिक्खजाते दुब्बद्धे-जाव-चलाचले णो आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा।

—आ. सु. २, अ. ५, उ. १, सु. ५७५-५७८

निषिद्ध स्थानों पर वस्त्र सुखाने का निषेध—

२००. भिक्षु या भिक्षुणी वस्त्र को धूप में सुखाना चाहे तो ऐसे वस्त्र को सचित्त पृथ्वी के निकट की भूमि पर—यावत्—मकड़ी के जाले हों ऐसे स्थान में न सुखाए।

भिक्षु या भिक्षुणी वस्त्र को धूप में सुखाना चाहे तो वह वैसे वस्त्र को ठूँठ पर, दरवाजे की देहली पर, ऊखल पर, स्नान करने की चौकी पर, अन्य इस प्रकार के और भी अन्तरिक्ष-आकाशीय स्थान पर जो भलीभाँति बंधा हुआ नहीं है, ठीक तरह से भूमि पर गड़ा हुआ या रखा हुआ नहीं है, निश्चल नहीं है, चलाचल है, वहाँ वस्त्र को न सुखाए।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि वस्त्र को धूप में सुखाना चाहे तो वह वैसे वस्त्र को ईंटों से निर्मित दीवार पर, मिट्टी से निर्मित दीवार पर, शिला पर, शिला खंड-पत्थर पर, या अन्य किसी इस प्रकार के अन्तरिक्ष (आकाशीय) स्थान पर जो कि भलीभाँति स्थिर नहीं है—यावत्—चलाचल है, (वहाँ वस्त्र को) न सुखाए।

भिक्षु या भिक्षुणी वस्त्र को धूप में सुखाना चाहे तो उस वस्त्र को स्तम्भ पर—यावत्—महल की छत पर अथवा इस प्रकार के अन्य अन्तरिक्ष स्थानों पर जो कि, दुर्बद्ध—यावत्—चलाचल हो, वहां वस्त्र को न सुखाए।

णिसिद्ध ठाणेसु वत्थ आतावण-पायच्छित्त सुत्ताइं—

२०१. जे भिक्खू अणंतरहियाए पुढवीए वत्थं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा, पयावेंतं वा साइज्जइ।

निषिद्ध स्थानों पर वस्त्र सुखाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

२०१. जो भिक्षु वस्त्र को सचित्त पृथ्वी के निकट की भूमि पर सुखावे, सुखवावे, सुखाने वाले का अनुमोदन करे।

---

१ 'अंतरिक्ष जातं' जो स्थान भूमि से ऊँचा हो और उसके पास में ही एक या अनेक दिशा में खुला आकाश हो जिससे व्यक्ति या वस्तु के गिरने का भय बना रहता हो उसे 'अंतरिक्ष जात' आकाशीय स्थल कहा जाता है। ऐसे स्थलों पर साधु को बैठना, सोना, रहना, तथा वस्त्र आदि सुखाना नहीं कल्पता है। आचा० श्रु० २, अ० २, उ. १ में ऐसे स्थल पर रहने से गिर जाने आदि स्थिति का वर्णन है।

जे भिक्खू ससिणिद्धाए पुढवीए वत्थं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावंतं वा, पयावंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू ससरक्खाए पुढवीए वत्थं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावंतं वा, पयावंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू मट्टियाकडाए पुढवीए वत्थं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावंतं वा, पयावंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू चित्तमंताए पुढवीए वत्थं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावंतं वा, पयावंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू चित्तमंताए सिलाए वत्थं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावंतं वा, पयावंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू चित्तमंताए लेलूए वत्थं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावंतं वा, पयावंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कोलावासंसि वा दारुए जीवपइट्ठिए, सअंडे, सपाणे, सबीए, सहरिए, सओसे, सउदए, सउत्तिंग-पणग-दगमट्टिय-मक्कडा-संताणगंसि वत्थं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावंतं वा, पयावंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू थूणंसि वा, गिहेलुयंसि वा, उसुयालंसि वा, कामजलंसि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतलिक्खजायंसि दुब्बद्धे-जाव-चलाचले वत्थं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावंतं वा, पयावंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कुलियंसि वा, भित्तिसि वा, सिलंसि वा, लेलुंसि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतलिक्खजायंसि दुब्बद्धे-जाव-चलाचले वत्थं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा आयावंतं वा, पयावंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू खंधंसि वा, मंचंसि वा, मालंसि वा, पासायंसि वा, हम्मियतलंसि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतलिक्खजायंसि दुब्बद्धे-जाव-चलाचले वत्थं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावंतं वा, पयावंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।
—नि. उ. १८, सु. ५३-६१

जो भिक्षु स्निग्ध पृथ्वी पर वस्त्र को सुखावे, सुखवावे, सुखाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु सचित्त रज वाली पृथ्वी पर वस्त्र को सुखावे, सुखवावे, सुखाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु सचित्त मिट्टी बिखरी हुई पृथ्वी पर वस्त्र को सुखावे, सुखवावे, सुखाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु सचित्त पृथ्वी पर वस्त्र को सुखावे, सुखवावे, सुखाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु सचित्त शिला पर वस्त्र को सुखावे, सुखवावे, सुखाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु सचित्त शिला खंड आदि पर वस्त्र को सुखावे, सुखवावे, सुखाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु दीमक आदि जीवों से युक्त काष्ठ पर, तथा अंडे, प्राणी, बीज, हरी वनस्पति, ओस, उदक, उत्तिंग (कीड़ी आदि के घर) लीलन-फूलन, गीली मिट्टी और मकड़ी के जालों युक्त स्थान पर वस्त्र को सुखावे, सुखवावे, सुखाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु ठूंठ, देहली, ऊखल या स्नान करने की चौकी तथा अन्य भी इस प्रकार के अन्तरिक्ष जात (आकाशीय) स्थान जो शिथिल—यावत्—अस्थिर हो उस पर वस्त्र सुखावे, सुखवावे सुखाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु ईंट की दीवाल, मिट्टी आदि की दीवाल, शिला, शिलाखंड आदि तथा अन्य भी इसी प्रकार के अन्तरिक्षजात (आकाशीय) स्थान जो शिथिल—यावत्—अस्थिर हो उस पर वस्त्र सुखावे, सुखवावे, सुखाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु स्कन्ध पर, मंच पर, माल पर, प्रासाद पर, महल (हवेली) के छत पर तथा अन्य भी इस प्रकार के अंतरिक्ष जात (आकाशीय) स्थान जो शिथिल—यावत्—अस्थिर हों उन पर वस्त्र सुखावे, सुखवावे, सुखाने वाले का अनुमोदन करे।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

वस्त्र-प्रत्यर्पण का विधि-निषेध—५

पाडिहारिय वत्थगहणे माया णिसेहो—

२०२. से एगइओ मुहुत्तगं मुहुत्तगं पाडिहारियं वत्थं जाइत्ता एगाहेण वा-जाव-पंचाहेण वा विप्पवसिय विप्पवसिय उवागच्छेज्जा, तहप्पगारं (ससंधियं) वत्थं -नो अप्पणा गेण्हेज्जा, नो अन्नमन्नस्स देज्जा, नो पामिच्चं कुज्जा, नो वत्थेण वत्थ-परिणामं करेज्जा,

नो परं उवसंकमित्ता एवं वदेज्जा—"आउसंतो समणा! अभिकंखसि एयं वत्थं धारित्तए वा, परिहरित्तए वा?" थिरं वा णं संतं नो पलिछिंदिय पलिछिंदिय परिट्ठवेज्जा

तहप्पगारं वत्थं ससंधियं तस्स चेव निसिरेज्जा। नो य णं सातिज्जेज्जा।

बहु वयणेण वि भाणियव्वं।

से एगइओ एयप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म से हंता अहमवि मुहुत्तगं मुहुत्तगं पाडिहारियं वत्थं जाइत्ता। एगाहेण वा-जाव-पंचाहेण वा विप्पवसिय विप्पवसिय उवागच्छिस्सामि, अवियाइं एयं ममेव सिया।

"माइट्ठाणं संफासे नो एवं करेज्जा।"

आ. सु. २, अ. ५, उ. २, सु. ५८३

प्रातिहारिक वस्त्र ग्रहण करने में माया करने का निषेध—

२०२. कोई एक भिक्षु किसी अन्य भिक्षु से अल्पकाल के लिए प्रातिहारिक वस्त्र की याचना करके एक दिन—यावत्—पाँच दिन कहीं अन्यत्र रह रहकर वस्त्र देने आवे तो वस्त्रदाता भिक्षु उस लाये हुए वस्त्र को क्षतविक्षत जानकर न स्वयं ग्रहण करे, न दूसरे को दे, न किसी को उधार दे, न उस वस्त्र को किसी वस्त्र के बदले में दे।

न किसी दूसरे भिक्षु को इस प्रकार कहे "हे आयुष्मन् श्रमण! इस वस्त्र को रखना या उपयोग में लेना चाहते हो?" (तथा) उस दृढ़ वस्त्र के टुकड़े-टुकड़े कर के परिष्ठापन भी नहीं करे—फेंके भी नहीं।

बीच में से सांधे हुए उस वस्त्र को उसी ले जाने वाले भिक्षु को दे दे किन्तु वस्त्रदाता उसे अपने पास न रखे।

इसी प्रकार अनेक भिक्षुओं के सम्बन्ध में भी आलापक कहना चाहिए।

कोई एक भिक्षु इस प्रकार का संवाद सुनकर समझकर सोचे—"मैं भी अल्पकाल के लिए किसी से प्रातिहारिक वस्त्र की याचना करके एक दिन यावत्—पाँच दिन कहीं अन्यत्र रहकर आऊँगा।" इस प्रकार से वह वस्त्र मेरा हो जायेगा।

(सर्वज्ञ भगवान् ने कहा) यह मायावी आचरण है, अतः इस प्रकार नहीं करना चाहिए।

अवहरण भएण वत्थस्स विवण्णकरण णिसेहो—

२०३. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा णो वण्णमंताइं वत्थाइं विवण्णाइं करेज्जा, णो विवण्णाइं वत्थाइं वण्णमंताइं करेज्जा,

अण्णं वा वत्थं लभिस्सामि "त्ति कट्टु नो अण्णमण्णस्स देज्जा, नो पामिच्चं कुज्जा, नो वत्थेण वत्थपरिणामं करेज्जा, नो परं उवसंकमित्तु एवं वदेज्जा—"आउसंतो समणा! अभिकंखसि एयं वत्थं धारित्तए वा, परिहरित्तए वा?

थिरं वा णं संतं णो पलिछिंदिय पलिछिंदिय परिट्ठवेज्जा, जहा मेयं वत्थं पावगं परो मण्णइ।

अपहरण के भय से वस्त्र के विवर्ण करने का निषेध—

२०३. साधु या साध्वी सुन्दर वर्ण वाले वस्त्रों को विवर्ण (असुन्दर) न करे तथा विवर्ण (असुन्दर) वस्त्रों को सुन्दर वर्ण वाले न करे।

"मैं दूसरा नया (सुन्दर) वस्त्र प्राप्त कर लूंगा" इस अभिप्राय से अपना पुराना वस्त्र किसी दूसरे साधु को न दे और न किसी से उधार वस्त्र ले और न ही वस्त्र की परस्पर अदला-बदली करे और न दूसरे साधु के पास जाकर ऐसा कहे कि—"हे आयुष्मन् श्रमण! क्या तुम मेरे वस्त्र को धारण करना या पहनना चाहते हो?"

इसके अतिरिक्त उस सुदृढ़ वस्त्र को टुकड़े-टुकड़े करके परठे भी नहीं, इस भावना से कि मेरे इस वस्त्र को लोग अच्छा नहीं समझते।

परं च णं अदत्तहारी पडिपहे पेहाए तस्स वत्थस्स णिदाणाए णो तेसिं भीओ उम्मग्गेणं गच्छेज्जा-जाव-ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. ५, उ. २, सु. ५८४

तथा मार्ग में चोरों को सामने आता देखकर उस वस्त्र की रक्षा हेतु चोरों से भयभीत होकर साधु उन्मार्ग से न जाए —**यावत्**—समाधि भाव में स्थिर होकर संयमपूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे ।

आमोसगभएण उम्मग्ग गमण णिसेहो—

२०४. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से विहं सिया, से ज्जं पुण विहं जाणेज्जा—इमंसि खलु विहंसि बहवे आमोसगा वत्थपडियाए संपडियागच्छेज्जा, णो तेसिं भीओ उम्मग्गेण गच्छेज्जा-जाव-ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा । — आ. सु. २, अ. ५, उ. २, सु. ५८५

चोरों के भय से उन्मार्ग से जाने का निषेध—

२०४. ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भिक्षु या भिक्षुणी के मार्ग में अटवी वाला लम्बा मार्ग हो और वह यह जाने कि—इस अटवीबहुल मार्ग में बहुत-से चोर वस्त्र छीनने के लिए आते हैं, तो साधु उनसे भयभीत होकर उन्मार्ग से न जाए—**यावत्**—समाधि भाव में स्थिर होकर संयमपूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे ।

आमोसगावहारियवत्थस्स जायणा विहि-णिसेहो—

२०५. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से आमोसगा संपडियागच्छेज्जा, ते णं आमोसगा एवं वदेज्जा ।

"आउसंतो समणा ! आहरेतं वत्थं देहि, णिक्खिवाहि"

तं णो देज्जा, णिक्खिवेज्जा,

णो वंदिय-वंदिय जाएज्जा, णो अंजलिं कट्टु जाएज्जा, णो कलुणपडियाए जाएज्जा, धम्मियाए जायणाए जाएज्जा, तुसिणीयभावेण वा उवेहेज्जा ।

— आ. सु. २, अ. ५, उ. २, सु. ५८६

चोरों से अपहृरित वस्त्र के याचना का विधि-निषेध—

२०५. ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भिक्षु या भिक्षुणी के मार्ग में चोर वस्त्रहरण करने के लिए आ जाएँ और कहें कि -

"आयुष्मन् श्रमण ! यह वस्त्र लाओ हमारे हाथ में दे दो या हमारे सामने रख दो ।"

इस प्रकार कहने पर साधु उन्हें वे वस्त्र न दे, अगर वे बल-पूर्वक लेने लगें तो उन्हें भूमि पर रख दे ।

पुनः लेने के लिए उनकी स्तुति (प्रशंसा) करके हाथ जोड़कर या दीन-वचन कहकर याचना न करे अर्थात् उन्हें इस प्रकार से वापस देने का न कहे । यदि माँगना हो तो उन्हें धर्मवचन कहकर समझाकर माँगे, अथवा मौन भाव धारण करके उपेक्षा भाव से रहे ।

वत्थस्स विवण्णकरण पायच्छित्त सुत्ताइं—

२०६. जे भिक्खू वण्णमंतं वत्थं विवण्णं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू विवण्णं वत्थं वण्णमंतं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

— नि. उ. १८, सु. ३३-३४

वस्त्र के विवर्ण करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

२०६. जो भिक्षु वर्ण वाले वस्त्र को विवर्ण करता है, विवर्ण करवाता है अथवा विवर्ण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु विवर्ण वस्त्र को वर्णवाला करता है, वर्णवान् कराता है अथवा वर्णवान् करने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

चर्म सम्बन्धी विधि-निषेध—६

सलोम चम्म विहि-णिसेहो—

२०७. नो कप्पइ निग्गंथीणं सलोमाइं चम्माइं अहिट्ठित्तए ।

सलोम चर्म के विधि-निषेध—

२०७. निर्ग्रन्थियों को शयनासनादि कार्यों के लिए रोम-सहित चर्म को उपयोग में लेना नहीं कल्पता है ।

कप्पइ निग्गंथाणं सलोमाइं चम्माइं अहिट्ठित्तए,

से वि य परिभुत्ते, नो चेव णं अपरिभुत्ते,

से वि य पाडिहारिए, नो चेव णं अपाडिहारिए,

से वि य एगराइए, नो चेव णं अणेगराइए।

—कप्प. उ. ३, सु. ३-४

किन्तु निर्ग्रन्थों को शयनासनादि कार्यों के लिए रोम-सहित चर्म को उपयोग में लेना कल्पता है।

वह भी परिभुक्त (काम में लिया हुआ) हो, अपरिभुक्त (नया) न हो।

प्रातिहारिक (लौटाया जाने वाला) हो, अप्रातिहारिक (न लौटाया जाने वाला) न हो।

केवल एक रात्रि में उपयोग करने के लिए लाया जावे, पर अनेक रात्रियों में उपयोग करने के लिए न लाया जावे।

सलोम चम्म अहिट्ठाणस्स पायच्छित्तसुत्तं—

२०८. जे भिक्खू सलोमाइं चम्माइं अहिट्ठेइ, अहिट्ठेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १२, सु. ५

सरोम चर्म के उपयोग का प्रायश्चित्त सूत्र—

२०८. जो भिक्षु रोम सहित चर्म को उपयोग में लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

कसिणाकसिण चम्म विहि णिसेहो—

२०९. नो कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा कसिणाइं चम्माइं धारेत्तए वा, परिहरित्तए वा।

कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अकसिणाइं चम्माइं धारेत्तए वा, परिहरित्तए वा। —कप्प. उ. ३, सु. ५-६

कृत्स्नाकृत्स्न चर्म का विधि-निषेध—

२०९. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को अखण्ड चर्म पास में रखना या उसका उपयोग करना नहीं कल्पता है।

किन्तु निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को चर्म खण्ड पास में रखना या उसका उपयोग करना कल्पता है।

अखण्ड चम्म धारण पायच्छित्त सुत्तं—

२१०. जे भिक्खू कसिणाइं चम्माइं धरेइ धरेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. २, सु. २२

अखण्ड चर्म धारण करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

२१०. जो भिक्षु कृत्स्न (अखण्ड) चर्म को धारण करता है, धारण करवाता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

चिलमिली की विधि—७

चिलमिली धारण-परिहरण विहाणं—

२११. कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा, चेलचिलिमिलियं[1] धारित्तए वा, परिहरित्तए वा।

—कप्प. उ. १, सु. १९

चिलमिली रखने का तथा उपयोग करने का विधान—

२११. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को चेल-चिलिमिलिका रखना और उसका उपयोग करना कल्पता है।

चिलमिली सयंकरण-पायच्छित्त सुत्तं—

२१२. जे भिक्खू सोत्तियं वा, रज्जुयं वा, चिलमिलिं सयमेव करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

चिलमिलिका के स्वयं निर्माण करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

२१२. जो भिक्षु सूत की अथवा रस्सी की चिलमिली का निर्माण स्वयं करता है, करवाता है, या करने वाले का अनुमोदन करता है।

---

१ चिलिमिलिका यह देशी शब्द है, यह छोलदारी के आकार वाली एक प्रकार की वस्त्र-कुटी (मच्छरदानी) है तथा बृहत्कल्प सूत्र उ. १ में द्वार पर लगाये गये पर्दे को भी चिलमिलिका कहा गया है।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. २, सु. १३

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

चिलमिली कारावण पायच्छित्त सुत्तं—

२१३. जे भिक्खू सोत्तियं वा, रज्जुयं वा, चिलमिलिं अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा कारेइ, कारेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. २, सु. १४

चिलमिलिका के निर्माण कराने का प्रायश्चित्त सूत्र—

२१३. जो भिक्षु सूत की अथवा रस्सी की चिलमिली का निर्माण अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

वस्त्रैषणा सम्बन्धी अन्य प्रायश्चित्त—८

अण्णउत्थियाईणं वत्थाइदाणस्स पायच्छित्त सुत्तं

२१४. जे भिक्खू अण्ण-उत्थियस्स वा, गारत्थियस्स वा वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा देइ, देंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १५, सु. ९७

अन्यतीर्थिकादिक को वस्त्रादि देने का प्रायश्चित्त सूत्र—

२१४. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक को या गृहस्थ को वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोंछन देता है, दिलाता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अजाणियवत्थ गहणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

२१५. जे भिक्खू जायणावत्थं वा, णिमंतणावत्थं वा अजाणिय, अपुच्छिय, अगवेसिय पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

से य वत्थे चउण्हं अण्णयरे सिया, तं जहा—

(१) णिच्च-णियंसिए,
(२) मज्जणिए,
(३) छण्णूसविए,
(४) रायदुवारिए।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १५, सु. ९९

अज्ञात वस्त्र ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

२१५. जो भिक्षु याचित वस्त्र तथा निमन्त्रित वस्त्र को जाने बिना, पूछे बिना, गवेषणा किए बिना लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

वह वस्त्र चार प्रकार के वस्त्रों में से किसी एक प्रकार का होता है, यथा—

१. नित्य काम में आने वाला,
२. स्नान के बाद पहना जाने वाला,
३. उत्सव में जाने के समय पहनने योग्य,
४. राजसभा में जाते समय पहनने योग्य।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

दुगुंछियकुलाओ वत्थाइ गहणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

२१६. जे भिक्खू दुगुंछियकुलेसु वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुंछणं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ १६, सु. २९

घृणित कुल से वस्त्रादि ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

२१६. जो भिक्षु घृणित कुलों में वस्त्र, पात्र, कम्बल या पादप्रोंछन लेता है, लिवाता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

उग्घोस जायणाए पायच्छित्त सुत्ताइं—

२१७. जे भिक्खू णायगं वा, अणायगं वा, उवासगं वा, अणुवासगं वा, गामंतरंसि वा, गामपहंतरंसि वा, वत्थं ओभासिय ओभासिय जायइ, जायंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू णायगं वा, अणायगं वा, उवासगं वा, अणुवासगं वा, परिसामज्झाओ उट्ठवेत्ता वत्थं ओभासिय जायइ, जायंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १८, सु. ७१-७२

मार्गादि में वस्त्र की याचना करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

२१७. जो भिक्षु स्वजन से, परिजन से, उपासक से, अनुपासक से, ग्राम में या ग्राम पथ में, वस्त्र माँग-माँग कर याचना करता है, याचना करवाता है या याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्वजन को, परिजन को, उपासक को, अनुपासक को परिषद् में से उठाकर (उससे) माँग-माँगकर वस्त्र की याचना करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

वत्थणीसाए वसणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

२१८. जे भिक्खू वत्थणीसाए उडुबद्धं वसइ, वसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू वत्थणीसाए वासावासं वसइ, वसंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १८, सु. ७३-७४

वस्त्र के लिए रहने के प्रायश्चित्त सूत्र—

२१८. जो भिक्षु वस्त्र के लिए ऋतुबद्ध काल (सर्दी या गर्मी) में रहता है, रहवाता है या रहने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु वस्त्र के लिए वर्षावास में रहता है, रहवाता है या रहने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

सचेल अचेलसह वसणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

२१९. जे भिक्खू सचेले सचेलयाणं मज्झे संवसइ, संवसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सचेले अचेलयाणं मज्झे संवसइ, संवसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अचेले सचेलयाणं मज्झे संवसइ, संवसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अचेले अचेलयाणं मज्झे संवसइ, संवसंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ११, सु. ८७-९०

सचेल अचेल के साथ रहने के प्रायश्चित्त सूत्र—

२१९. जो सचेल भिक्षु सचेलिकाओं के बीच में रहता है, रहवाता है या रहने वाले का अनुमोदन करता है।

जो सचेल भिक्षु अचेलिकाओं के बीच में रहता है, रहवाता है या रहने वाले का अनुमोदन करता है।

जो अचेल भिक्षु सचेलिकाओं के बीच में रहता है, रहवाता है या रहने वाले का अनुमोदन करता है।

जो अचेल भिक्षु अचेलिकाओं के बीच में रहता है, रहवाता है या रहने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

गिहिवत्थोवओगकरणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

२२०. जे भिक्खू गिहिवत्थं परिहेइ, परिहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. १२, सु. ११

गृहस्थ के वस्त्र उपयोग करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

२२०. जो भिक्षु गृहस्थ के वस्त्र को धारण करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

दीहसुत्तकरणपायच्छित्त सुत्ताइं—

२२१. जे भिक्खू अप्पणो संघाडीए दीहसुत्ताइं[1] करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

दीर्घसूत्र बनाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

२२१. जो भिक्षु अपनी संघाटि (चादर) के लम्बी डोरियाँ बाँधता है, बंधवाता है या बाँधने वाले का अनुमोदन करता है।

---

१ चद्दर को दीर्घ सूत्र करने का तात्पर्य यह है कि—शरीर पर बाँधने में छोटी होती है तो उसके किनारों पर बाँधने के लिए डोरी लगाई जा सकती है। वह बन्धन सूत्र (डोरी) ऐसे प्रमाण में हो कि बाँधने के बाद ४ अंगुल से अधिक डोरी शेष न रहे।

अगले सूत्र में अनेक प्रकार के कपास (रूई) को दीर्घ सूत्र करने का तात्पर्य है कि उन-उन कपासों (रूइयों) को तकली चर्खा आदि से कातना। अतः इस सूत्र से सूत आदि कातने, कताने आदि का प्रायश्चित्त कहा गया है।

जे भिक्खू सण-कप्पासाओ वा, उण्ण-कप्पासाओ वा, पोंड-कप्पासाओ वा, अमिलकप्पासाओ वा, दीहसुत्ताइं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ५, सु. १३, २४

जो भिक्षु सन, ऊन, पोण्ड (रुई) या अमिल के कपास को कातकर सूत बनाता है, बनवाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

भिक्खुस्स संघाडी सिवावण पायच्छित्त सुत्तं—

२२२. जे भिक्खू अप्पणो संघाडिं अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा सिव्वावेइ, सिव्वावेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

--नि. उ १, सु. १२

भिक्षु की चादर सिलवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

२२२. जो भिक्षु अपनी संघाटि (ओढ़ने की चादर) को अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से सिलवाता है या सिलवाने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

वत्थपरिकम्म पायच्छित्त सुत्ताइं—

२२३. जे भिक्खू वत्थस्स एगं पडियाणियं देइ, देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू वत्थस्स परं तिण्हं पडियाणियाणं देइ, देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अविहीए वत्थं सिव्वइ, सिव्वेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू वत्थस्स एगं फालिय-गंठियं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू वत्थस्स परं तिण्हं फालिय-गंठियाणं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू वत्थस्स एगं फालियं गण्ठेइ, गंठेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू वत्थस्स परं तिण्हं फालियाणं गंठेइ, गंठेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू वत्थं अविहीए गंठेइ, गंठेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू वत्थं अतज्जाएणं गहेइ, गहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अइरेग-गहियं वत्थं परं दिवड्ढाओ मासाओ धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

--नि. उ. १, सु. ४७-५६

वस्त्र परिकर्म के प्रायश्चित्त सूत्र—

२२३. जो भिक्षु वस्त्र के एक थेगली देता है, दिलवाता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु वस्त्र के तीन थेगलियों से अधिक थेगली देता है, दिलवाता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु अविधि से (वस्त्र को) सींता है, सिलवाता है या सीने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु फटे हुए वस्त्र के एक गाँठ देता है, दिलवाता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु फटे हुए वस्त्र को तीन से अधिक गाँठ देता है, दिलवाता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु एक सिलाई करके वस्त्रों को जोड़ता है, जुड़वाता है या जोड़ने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु तीन से अधिक सिलाई करके वस्त्रों को जोड़ता है, जुड़वाता है या जोड़ने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु वस्त्र को अविधि से जोड़ता है, जुड़वाता है या जोड़ने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु विजातीय वस्त्रों को जोड़ता है, जुड़वाता है या जोड़ने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु तीन से अधिक सिलाई आदि किये हुए वस्त्र को डेढ़ मास से अधिक धारण करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनी के पात्रैषणा की विधि—१

एसणिज्ज पायाइं—

२२४. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा अभिकंखेज्जा पायं एसित्तए, से जं पुण पायं जाणेज्जा, तं जहा—

लाउयपायं वा, दारुपायं वा,

मट्टियापायं वा[1]

तहप्पगारं पायं जे णिग्गंथे तरुणे जुगवं बलवं अप्पायंके थिर-संघयणे से एगं पायं धारेज्जा नो बिइयं।

—आ. सु. २, अ. ६, उ. १, सु. ५८८

पडिग्गह-पडिलेहणाणंतरमेव पडिग्गह-गहण-विहाणं—

२२५. सिया से परो णेत्ता पडिग्गहं णिसिरेज्जा, से पुव्वामेव आलोएज्जा—

"आउसो ! ति वा भइणी ! ति वा, तुमं चेव णं संतियं पडिग्गहं, अंतोअंतेणं पडिलेहिस्सामि।

केवली बूया - आयाणमेयं,

अंतो पडिग्गहंसि पाणाणि वा, बीयाणि वा, हरियाणि वा,

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा-जाव-एस उवएसे, जं पुव्वामेव पडिग्गहं अंतो अंतेण पडिलेहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ६, उ. १, सु. ५९९

थेरट्ठगहिय पडिग्गहाईणं विही—

२२६. निग्गंथं च णं गाहावइकुलं पडिग्गहपडियाए अणुपविट्ठं समाणं केइ दोहिं पडिग्गहेहिं उवनिमंतेज्जा—

एगं आउसो ! अप्पणा पडिभुंजाहि, एगं थेराणं दलयाहि,

"से य तं पडिग्गाहेज्जा, थेरा य से अणुगवेसियव्वा सिया। जत्थेव अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा तत्थेव अणुप्पदायव्वे सिया, नो चेव णं अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा, तं नो अप्पणा परिभुंजेज्जा, नो अण्णेसिं दावए, एगंते अणावाए

एषणीय पात्र—

२२४. भिक्षु या भिक्षुणी यदि पात्र की एषणा करना चाहे तो वह पात्रों के सम्बन्ध में जाने, वे पात्र इस प्रकार है-

(१) तुम्बे का पात्र (२) लकड़ी का पात्र और

(३) मिट्टी का पात्र

इन पात्रों में से जो निर्ग्रन्थ मुनि तरुण है, समय के उपद्रव (प्रभाव) से रहित है, बलवान् है, रोग-रहित और स्थिर संहनन (दृढ़ संहनन) वाला है, वह एक ही प्रकार के पात्र धारण करे, दूसरे प्रकार के पात्र धारण न करे।

पात्र प्रतिलेखन के बाद पात्र ग्रहण करने का विधान—

२२५. यदि गृहनायक पात्र (को सुसंस्कृत आदि किये बिना ही) लाकर साधु को देने लगे तो साधु लेने से पहले उससे कहे -

"आयुष्मन् गृहस्थ ! या बहन ! मैं तुम्हारे इस पात्र को अन्दर बाहर— चारों ओर से भली-भांति प्रतिलेखन करूँगा।"

क्योंकि प्रतिलेखन किए बिना पात्र ग्रहण करना केवली भगवान् ने कर्मबन्ध का कारण बताया है।

सम्भव है उस पात्र में जीव जन्तु हों, बीज हो या हरी वनस्पति आदि हो।

अतः भिक्षुओं के लिए तीर्थंकर आदि आप्त पुरुषों ने पहले से ही ऐसी प्रतिज्ञा—यावत्—उपदेश दिया है कि साधु को पात्र ग्रहण करने से पूर्व ही उस पात्र का अन्दर बाहर चारों ओर से प्रतिलेखन कर लेना चाहिए।

स्थविर के निमित्त लाये गये पात्रादि की विधि—

२२६. गृहस्थ के घर में पात्र ग्रहण करने की बुद्धि से प्रविष्ट निर्ग्रन्थ को कोई गृहस्थ दो पात्र ग्रहण करने के लिए उपनिमंत्रण करे—

"आयुष्मन् ! श्रमण इन दो पात्रों में से एक पात्र आप स्वयं रखना और दूसरा पात्र स्थविर मुनियों को देना।"

(इस पर) वह निर्ग्रन्थ श्रमण उन दोनों पात्रों को ग्रहण कर ले और (स्थान पर आकर) स्थविरों की गवेषणा करे। गवेषणा करने पर उन स्थविर मुनियों को जहाँ देखे, वहीं पर पात्र उन्हें दे दे। यदि गवेषणा करने पर भी स्थविर मुनि कहीं न दिखाई दे तो उस पात्र का स्वयं भी उपभोग न करे और न ही दूसरे किसी श्रमण को दे, किन्तु एकान्त, अनापात (जहाँ आवागमन

---

१ कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा तओ पायाइं धारित्तए वा, परिहरित्तए वा, तं जहा—लाउयपाए वा, दारुपाए वा, मट्टियापाए वा।

—ठाणं. अ. ३, उ. ३, सु. १७८

अचित्ते बहुफासुए थंडिल्ले पडिलेहेत्ता पमज्जित्ता परिट्ठावेयव्वे सिया।

एवं जाव दसहिं पडिग्गहेहिं।

जहा पडिग्गह वत्तव्वया भणिया एवं गोच्छग-रयहरण-चोलपट्टग-कंबल-लट्ठी-संथारग वत्तव्वया य भणियव्वा जाव दसहिं संथारएहिं उवणिमंतेज्जा जाव परिट्ठावेयव्वे सिया।

—वि. स. ८, उ. ६, सु. ५-६

न हो ऐसी) अचित्त या बहुप्रासुक स्थण्डिल भूमि का प्रतिलेखन एवं प्रमार्जन करके वहाँ (उस पात्र को) परिष्ठापन करे। (परठ दे)।

इसी प्रकार तीन चार यावत् दस पात्र तक का कथन पूर्वोक्त कथन के समान कहना चाहिए।

जिस तरह पात्र की वक्तव्यता कही उसी प्रकार गोच्छग, रजोहरण, चोलपट्टक, कम्बल, लाठी, संस्तारक का वर्णन भी कह देना चाहिये यावत् गृहस्थ दस संस्तारक का निमन्त्रण करे यावत् स्थविर के नहीं मिलने पर परठ देना चाहिए।

अइरेग-पडिग्गह-वियरण पायच्छित्त सुत्ताइं -

२२७. **जे भिक्खू अइरेगं पडिग्गहं गणिं उद्दिसिय गणिं समुद्दिसिय तं गणिं अणापुच्छिय अणामंतिय अण्णमण्णस्स वियरइ, वियरंतं वा साइज्जइ।**

जे भिक्खू अइरेगं पडिग्गहं खुड्डगस्स वा, खुड्डियाए वा, थेरगस्स वा, थेरियाए वा, अ-हत्थच्छिण्णस्स, अ-पायच्छिण्णस्स, अ-णासच्छिण्णस्स, अ-कण्णच्छिण्णस्स, अणोट्ठच्छिण्णस्स, सक्कस्स देइ, देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अइरेगं पडिग्गहं खुड्डगस्स वा, खुड्डियाए वा, थेरगस्स वा, थेरियाए वा, हत्थच्छिण्णस्स, पायच्छिण्णस्स, णासच्छिण्णस्स, कण्णच्छिण्णस्स, ओट्ठच्छिण्णस्स, असक्कस्स न देइ, न देंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १४ सु. ५-७

अतिरिक्त पात्र वितरण के प्रायश्चित्त सूत्र--

२२७. जो भिक्षु गणि के निमित्त अधिक पात्र लेता है, गणि को पूछे बिना या निमन्त्रण किये बिना एक दूसरे को देता है, दिलवाता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु, बाल साधु साध्वी के लिए, अथवा वृद्ध साधु साध्वी के लिए जिनके कि हाथ, पैर, नाक, कान, होंठ, कटे हुए नहीं है जो सशक्त हैं, अतिरिक्त पात्र रखने की अनुज्ञा देता है, दिलवाता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु बाल साधु साध्वी के लिए अथवा वृद्ध साधु साध्वी के लिए जिनके कि हाथ, पैर, नाक, होंठ कटे हुए हैं, जो अशक्त हैं, अतिरिक्त पात्र रखने की अनुज्ञा नहीं देता है न दिलवाता है या न देने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनी के पात्रैषणा का निषेध—२

उद्देसियाइं पाय-गहण णिसेहो—

२२८. **से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा से ज्जं पुण पायं जाणेज्जा—अस्सिंपडियाए एगं साहम्मियं समुद्दिस्स पाणाइं-जाव-सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स, कीयं, पामिच्चं, अच्छिज्जं, अणिसिट्ठं, अभिहडं आहट्टु चेएइ।**

तं तहप्पगारं पायं पुरिसंतरकडं वा, अपुरिसंतरकडं वा, बहिया णीहडं वा, अणीहडं वा, अत्तट्ठियं वा, अणत्तट्ठियं वा, परिभुत्तं वा, अपरिभुत्तं वा, आसेवियं वा, अणासेवियं वा अफासुयं अणेसणिज्जं ति मण्णमाणे लाभे संते णो पडिग्गाहेज्जा।

औद्देशिकादि पात्र के ग्रहण का निषेध —

२२८. भिक्षु या भिक्षुणी पात्र के सम्बन्ध में यह जाने कि दाता ने अपने लिए नहीं बनाया है किन्तु एक साधर्मिक साधु के लिये प्राणी —यावत्—सत्वों का समारम्भ करके बनाया है, खरीदा है, उधार लिया है, छीनकर लाया है, दो स्वामियों में से एक की आज्ञा के बिना लाया है अथवा अन्य स्थान से यहाँ लाया है।

इस प्रकार का पात्र अन्य पुरुष को दिया हुआ हो या न दिया हो, बाहर निकाला गया हो या न निकाला गया हो, स्वीकृत हो या अस्वीकृत हो, उपभुक्त हो या अनुपभुक्त हो, सेवित हो या अनासेवित हो उस पात्र को अप्रासुक एवं अनेषणीय समझकर मिलने पर भी ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण पायं जाणेज्जा-- अस्सिं पडियाए बहवे साहम्मिया समुद्दिस्स पाणाइं-जाव-सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी पात्र के सम्बन्ध में यह जाने कि दाता ने अपने लिए नहीं बनाया है किन्तु अनेक साधर्मिक साधुओं के लिये प्राणी—**यावत्**—सत्वों का समारम्भ करके बनाया है—**यावत्**—ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण पायं जाणेज्जा-- अस्सिं पडियाए एगं साहम्मिणिं समुद्दिस्स पाणाइं-जाव-सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी पात्र के सम्बन्ध में यह जाने कि दाता ने अपने लिये नहीं बनाया है किन्तु एक साधर्मिणी साध्वी के लिये प्राणी—**यावत्**—सत्वों का समारम्भ करके बनाया है—**यावत्**—ग्रहण न करे।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण पायं जाणेज्जा-- अस्सिं पडियाए बहवे साहम्मिणीओ समुद्दिस्स पाणाइं-जाव-सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ६, उ. १, सु. ५६०(क)

भिक्षु या भिक्षुणी पात्र के सम्बन्ध में यह जाने कि दाता ने अपने लिये नहीं बनाया है किन्तु अनेक साधर्मिक साध्वियों के लिये प्राणी—**यावत्**—सत्वों का समारम्भ करके बनाया है—**यावत्**—ग्रहण न करे।

समणाइ पगणिय निम्मिय पायस्स णिसेहो—

श्रमणादि की गणना करके बनाया गया पात्र लेने का निषेध—

२२९. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण पायं जाणेज्जा— बहवे समण-माहण-अतिहि-किविण वणीमए पगणिय-पगणिय समुद्दिस्स-जाव-आहट्टु चेएइ।

तं तहप्पगारं पायं पुरिसंतरकडं वा अपुरिसंतरकडं वा-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ६, उ. १, सु. ५६०(ख)

२२९. भिक्षु या भिक्षुणी पात्र के सम्बन्ध में यह जाने कि अनेक श्रमण-ब्राह्मण अतिथि-कृपण-भिखारियों को गिन-गिन कर उनके उद्देश्य से बनाया है—**यावत्**—अन्य स्थान से यहाँ लाया है।

इस प्रकार का पात्र अन्य पुरुष को दिया हुआ हो या न दिया हुआ हो—**यावत्**—ग्रहण न करे।

अद्ध जोयणमेराए परं पायपडियाए गमण णिसेहो—

आधे योजन की मर्यादा से आगे पात्र के लिए जाने का निषेध—

२३०. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा परं अद्धजोयणमेराए पायपडियाए णो अभिसंधारेज्जा गमणाए।

—आ. सु. २, अ. ६, उ. १, सु. ५८९

२३०. भिक्षु या भिक्षुणी अर्धयोजन के उपरान्त पात्र लेने के लिए जाने का विचार भी न करे।

पायपडियाए अद्धजोयणमेरा लंघणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

पात्र हेतु अर्ध योजन की मर्यादा भंग करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

२३१. जे भिक्खू परं अद्धजोयणमेराओ पायपडियाए गच्छइ, गच्छंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू परं अद्धजोयणमेराओ सपच्चवायंसि पायं अभिहडं आहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. ११, सु. ७८

२३१. जो भिक्षु आधे योजन से आगे पात्र के लिए जाता है, भेजता है या जाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु विकट परिस्थिति में भी आधे योजन से अधिक दूर से पात्र को सामने लाकर देते हुए को लेता है, लिवाता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

महद्धणमोल्लाणं पडिग्गहाणं गहण-णिसेहो—

बहुमूल्य वाले पात्र ग्रहण करने का निषेध—

२३२. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से जाइं पुण पायाइं जाणेज्जा विरूवरूवाइं महद्धणमोल्लाइं, तं जहा—

२३२. गृहस्थ के घर में पात्र के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी यह जाने कि नाना प्रकार के महामूल्यवान पात्र हैं, जैसे कि—

(१) अयपायाणि वा, (२) तउयपायाणि वा,
(३) तंबपायाणि वा, (४) सीसगपायाणि वा,
(५) हिरण्णपायाणि वा, (६) सुवण्णपायाणि वा,
(७) रीरियपायाणि वा,
(८) हारपुडपायाणि वा,
(९) मणिपायाणि वा, (१०) कायपायाणि वा,
(११) कंसपायाणि वा, (१२) संखपायाणि वा,
(१३) सिंगपायाणि वा, (१४) दंतपायाणि वा,
(१५) चेलपायाणि वा, (१६) सेलपायाणि वा,
(१७) चम्मपायाणि वा,

अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं महद्धणमोल्लाइं पायाइं अफासुयाइं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से जाइं पुण पायाइं जाणेज्जा विरूवरूवाइं महद्धणबंधणाइं तं जहा—अयबंधणाणि वा -जाव-चम्मबंधणाणि वा अण्णयराइं वा तहप्पगाराइं विरूवरूवाइं महद्धणबंधणाइं पायाइं अफासुयाइं-जाव-णो पडिगाहेज्जा। —आ. सु. २, अ. ६, उ. १, सु. ५९२-५९३

(१) लोहे के पात्र, (२) रांगे के पात्र,
(३) तांबे के पात्र, (४) सीसे के पात्र,
(५) चांदी के पात्र, (६) सोने के पात्र,
(७) पीतल के पात्र,
(८) हारपुट अर्थात् मणी रत्न जटित लोहादि के पात्र,
(९) मणि के पात्र, (१०) कांच के पात्र,
(११) कांसे के पात्र, (१२) शंख के पात्र,
(१३) सींग के पात्र, (१४) दांत के पात्र,
(१५) वस्त्र के पात्र, (१६) पत्थर के पात्र,
(१७) चमड़े के पात्र,

अथवा दूसरे भी इसी तरह के नाना प्रकार के महामूल्यवान् पात्रों को अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

गृहस्थ के घर में पात्र के लिए प्रविष्ट भिक्षु या भिक्षुणी उन पात्रों को जाने जो नाना प्रकार के महामूल्यवान् बन्धन वाले हैं, जैसे कि - लोहे के बन्धन वाले **यावत्**—चर्म के बन्धन वाले अथवा अन्य भी इसी तरह के नाना प्रकार के महामूल्यवान् बन्धन वाले पात्रों को अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

णिसिद्ध पाय पायच्छित्त सुत्ताइं —

२३३. जे भिक्खू—

(१) अय-पायाणि वा, (२) तउय-पायाणि वा,
(३) तंब-पायाणि वा, (४) सीसग-पायाणि वा,
(५) हिरण्ण-पायाणि वा, (६) सुवण्ण-पायाणि वा,
(७) रीरिय-पायाणि वा,
(८) हारपुड-पायाणि वा,
(९) मणि-पायाणि वा, (१०) काय-पायाणि वा,
(११) कंस-पायाणि वा, (१२) संख-पायाणि वा,
(१३) सिंग-पायाणि वा, (१४) दंत-पायाणि वा,
(१५) चेल-पायाणि वा, (१६) सेल-पायाणि वा,
(१७) चम्म-पायाणि वा,[1]

अण्णयराणि वा तहप्पगाराणि पायाणि करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अय-पायाणि वा-जाव-अण्णयराणि वा तहप्पगाराणि पायाणि वा धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अय-बंधणाणि वा-जाव-बंधणाणि वा करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

निषिद्ध पात्र के प्रायश्चित्त सूत्र—

२३३. जो भिक्षु—

(१) लोहा के पात्र, (२) रांगा के पात्र,
(३) तांबा के पात्र, (४) सीसा के पात्र,
(५) चांदी के पात्र, (६) सोना के पात्र,
(७) पीतल के पात्र,
(८) मणी रत्न जटित लोहादि के पात्र,
(९) मणि के पात्र, (१०) कांच के पात्र,
(११) कांसा के पात्र, (१२) शंख के पात्र,
(१३) सिंग के पात्र, (१४) दांत के पात्र,
(१५) वस्त्र के पात्र (१६) पत्थर के पात्र,
(१७) चर्म के पात्र तथा

अन्य भी इस प्रकार के पात्र करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु लोहे के पात्र—**यावत्**—अन्य भी इस प्रकार के पात्र रखता है, रखवाता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु पात्र को लोहे के बन्धन—**यावत्**—अन्य भी इस प्रकार के बन्धन लगाता है, लगवाता है या लगाने वाले का अनुमोदन करता है।

१ अंक पायाणि और वइर पायाणि दो पात्रवाचक शब्द निशीथ सूत्र की अनेक प्रतियों में अधिक मिलते हैं।

जे भिक्खू अय-बंधणाणि वा-जाव-बंधणाणि वा धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।[1]

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।
—नि. उ. ११, सु. १-२-४-५

जो भिक्षु लोहे के बन्धन—यावत्—अन्य भी इस प्रकार के बन्धन वाले पात्र रखता है, रखवाता है या रखने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

संगार वयणेण पडिग्गह गहण णिसेहो—

२३४. से णं एताए एसणाए एसमाणं पासित्ता परो वदेज्जा –

"आउसंतो समणा! एज्जाहि तुमं मासेण वा, दसरातेण वा, पंचरातेण वा, सुते वा, सुततरे वा, तो ते वयं आउसो! अण्णतरं पायं दासामो।"

एतप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म से पुव्वामेव आलोएज्जा—

"आउसो! ति वा, भगिणी! ति वा, णो खलु मे कप्पति एतप्पगारे संगार वयणे पडिसुणेत्तए, अभिकंखसि मे दाउं इदाणिमेव दलयाहि।"

से णेवं वदंतं परो वदेज्जा—

"आउसंतो समणा! अणुगच्छाहि तो ते वयं अण्णतरं पायं दासामो।"

से पुव्वामेव आलोएज्जा—

"आउसो! ति वा, भइणी! ति वा, णो खलु मे कप्पति एयप्पगारे संगारवयणे पडिसुणेत्तए अभिकंखसि मे दाउं इयाणिमेव दलयाहि।"

—आ. सु. २, अ. ६, उ. १, सु. ५९६ (क-ख)

संकेत वचन से पात्र ग्रहण का निषेध—

२३४. पात्र एषणाओं से पात्र की गवेषणा करने वाले साधु को कोई गृहस्थ कहे कि—

"आयुष्मन् श्रमण! तुम इस समय जाओ एक मास या दस या पाँच रात के बाद अथवा कल या परसों आना, तब हम तुम्हें कोई पात्र देंगे।"

इस प्रकार का कथन सुनकर समझकर साधु उसे पहले ही कह दे—

"आयुष्मन् गृहस्थ! अथवा बहन! मुझे इस प्रकार का संकेतपूर्वक वचन स्वीकार करना नहीं कल्पता है। अगर मुझे पात्र देना चाहते हो तो अभी दे दो।"

साधु के इस प्रकार कहने पर भी यदि वह गृहस्थ यों कहे कि—

"आयुष्मन् श्रमण! अभी तुम जाओ। थोड़ी देर बाद आना, हम तुम्हें कोई पात्र दे देंगे।"

ऐसा कहने पर साधु उसे पहले ही कह दे,

"आयुष्मन् गृहस्थ! अथवा बहन! मुझे इस प्रकार से संकेतपूर्वक वचन स्वीकार करना नहीं कल्पता है। अगर मुझे देना चाहते हो तो अभी दे दो।"

अफासुय पडिग्गह गहण णिसेहो—

२३५. से सेवं वदंतं परो णेत्ता वदेज्जा—

"आउसो! ति वा, भगिणी! ति वा, आहरेतं पायं समणस्स दासामो अवियाइं वयं पच्छा वि अप्पणो सयट्ठाए पाणाइं -जाव-सत्ताइं समारब्भ-जाव-चेतेस्सामो।"

एतप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म तहप्पगारं पायं अफासुयं -जाव-णो पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ६, उ. १, सु. ५९६ (ग)

अप्रासुक पात्र-ग्रहण करने के निषेध—

२३५. साधु के इस प्रकार कहने पर भी वह गृहस्थ घर के किसी सदस्य (बहन आदि को बुलाकर) यों कहे कि—

"आयुष्मन् भाई या बहन! वह पात्र लाओ, हम उसे श्रमण को देंगे। हम तो अपने निजी प्रयोजन के लिए बाद में भी प्राणी —यावत्—सत्वों का समारम्भ करके और उद्देश्य करके —यावत्—अन्य पात्र बनवा लेंगे।

इस प्रकार का कथन सुनकर समझकर उस प्रकार के पात्र को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

परिकम्मकय पडिग्गह गहण-णिसेहो—

२३६. से णं परो णेत्ता वएज्जा—

परिकर्मकृत पात्र-ग्रहण का निषेध—

२३६. कदाचित् कोई गृहस्वामी घर के किसी व्यक्ति से यों कहे—

१ तीसरा और छठा सूत्र "परिभुंजइ" के हैं अतः ये दो सूत्र अधिक होने पर छह सूत्र हो जाते हैं।

"आउसो ! ति वा, भइणि ! ति वा, आहरेयं पायं तेल्लेण वा, घएण वा, णवणीएण वा, वसाए वा अब्भंगेत्ता वा, मक्खेत्ता वा समणस्स णं दासामो।"

एयप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म से पुव्वामेव आलोएज्जा—

"आउसो ! ति वा, भइणि ! ति वा, मा एयं तुमं पायं तेल्लेण वा-जाव-वसाए वा, अब्भंगाहि वा, मक्खाहि वा, अभिकंखसि मे दाउं एमेव दलयाहि।"

से सेयं वयंतस्स परो तेल्लेण वा-जाव-वसाए वा, अब्भंगेत्ता वा, मक्खेत्ता वा दलएज्जा तहप्पगारं पायं-अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

सिया णं परो णेत्ता वदेज्जा—

"आउसो ! ति वा, भइणी ! ति वा, आहर एयं पायं सिणाणेण वा-जाव-पउमेण वा आघंसित्ता वा पघंसित्ता वा समणस्स णं दासामो।"

एतप्पगारं निग्घोसं सोच्चा निसम्म से पुव्वामेव आलोएज्जा—

"आउसो ! ति वा, भइणी ! ति वा, मा एतं तुमं पायं सिणाणेण वा-जाव-पउमेण वा आघंसाहि वा पघंसाहि वा, अभिकंखसि मे दातुं एमेव दलयाहि।"

से सेवं वदंतस्स परो सिणाणेण वा-जाव-पउमेण वा, आघंसित्ता वा, पघंसित्ता वा दलएज्जा तहप्पगारं पायं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

— आ. सु. २, अ. ६, उ. १, सु. ५९७ (क)

"आयुष्मन् भाई ! या बहन ! वह पात्र लाओ, हम उस पर तेल, घी, नवनीत या वसा अल्प या अधिक चुपड़कर साधु को देंगे।"

इस प्रकार का कथन सुनकर एवं उस पर विचार करके वह साधु पहले से ही कह दे—

"आयुष्मन् गृहस्थ ! या आयुष्मति बहन ! तुम इस पात्र को तेल से—यावत्—चर्बी से अल्प या अधिक न चुपड़ो यदि मुझे पात्र देना चाहते हो तो ऐसे ही दे दो।" साधु के द्वारा इस प्रकार कहने पर भी वह गृहस्थ तेल से—यावत्—चर्बी से अल्प या अधिक चुपड़कर पात्र देने लगे तो उस प्रकार के पात्र को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

कदाचित् गृहस्वामी घर के किसी व्यक्ति से यों कहे कि "आयुष्मन् भाई अथवा बहन ! वह पात्र लाओ, हम उसे स्नान (सुगन्धित द्रव्य समुदाय) से—यावत्—पद्मादि सुगन्धित पदार्थ से एक बार या बार-बार घिसकर श्रमण को देंगे।"

इस प्रकार का कथन सुनकर एवं समझकर वह साधु पहले से ही कह दे—

"आयुष्मन् ! गृहस्थ या बहन ! तुम इस पात्र को स्नान (सुगन्धित द्रव्य समुदाय) से—यावत्—पद्मादि सुगन्धित द्रव्यों से आघर्षण या प्रघर्षण मत करो। यदि मुझे वह पात्र देना चाहते हो तो ऐसे ही दे दो।"

साधु के इस प्रकार कहने पर भी वह गृहस्थ स्नान (सुगंधित द्रव्य समुदाय से)—यावत् पद्मादि सुगन्धित द्रव्यों से एक बार या बार-बार घिसकर पात्र देने लगे तो उस प्रकार के पात्र को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

समणुद्देसिय-पक्खालिय-पडिग्गहस्स गहण णिसेहो—

२३७. से णं परो णेत्ता वदेज्जा—"आउसो ! ति वा, भइणी ! ति वा, आहर एयं पायं सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेत्ता वा, पधोवेत्ता वा समणस्स णं दासामो"

एयप्पगारं निग्घोसं सोच्चा निसम्म से पुव्वामेव आलोएज्जा—

"आउसो ! ति वा, भइणी ! ति वा, मा एयं तुमं पायं सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेहि वा, पधोवेहि वा। अभिकंखसि मे दातुं एमेव दलयाहि।"

से सेवं वयंतस्स परो सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेत्ता वा, पधोवेत्ता वा दलएज्जा। तहप्पगारं पायं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ६, उ. १, सु. ५९७ (ख)

श्रमण के निमित्त प्रक्षालित पात्र के ग्रहण का निषेध—

२३७. कदाचित् गृहपति घर के किसी सदस्य से कहे कि "आयुष्मन् भाई या बहन ! उस पात्र को लाओ, हम उसे प्रासुक शीतल जल से या प्रासुक उष्ण जल से एक बार या बार-बार धोकर श्रमण को देंगे।"

इस प्रकार की बात सुनकर एवं समझकर वह पहले ही दाता से कह दे—

"आयुष्मन् गृहस्थ ! या बहन ! इस पात्र को तुम प्रासुक शीतल जल से या प्रासुक उष्ण जल से एक बार या बार-बार मत धोओ। यदि मुझे इसे देना चाहते हो तो ऐसे ही दे दो।"

इस प्रकार कहने पर भी यदि वह गृहस्थ उस पात्र को ठंडे पानी से या गरम पानी से एक बार या बार-बार धोकर साधु को देने लगे तो उसे अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे।

कंदाइ-विसोहिय-पडिग्गहस्स गहण णिसेहो—

२३८. से णं परो णेत्ता वदेज्जा—

"आउसो ! ति, वा भइणी ! ति,वा, आहर एवं पायं कंदाणि वा-जाव-हरियाणि वा विसोहित्ता समणस्स णं दासामो"

एतप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा निसम्म से पुव्वामेव आलोएज्जा,

"आउसो ! ति वा, भइणी ! ति वा, मा एताणि तुमं कंदाणि वा-जाव-हरियाणि वा विसोहेहि, णो खलु मे कप्पति एयप्पगारे पाये पडिगाहित्तए।

से सेवं वदंतस्स परो कंदाणि वा जाव-हरियाणि वा विसोहेत्ता दलएज्जा। तहप्पगारं पायं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा। —आ. सु. २, अ. ६, उ. १, सु. ५९७ (ग)

कन्दादि निकालकर दिये जाने वाले पात्र के ग्रहण का निषेध—

२३८. यदि वह गृहस्थ अपने घर के किसी व्यक्ति से यों कहे कि—

"आयुष्मन् ! भाई या बहन ! उस पात्र को लाओ, हम उसमें से कन्द—यावत्—हरी वनस्पति (निकालकर) विशुद्ध करके साधु को देंगे।"

इस प्रकार सुनकर समझकर वह पहले ही दाता से कह दे—

"आयुष्मन् गृहस्थ ! या बहन ! इस पात्र में से कन्द—यावत्—हरी वनस्पति (निकालकर) विशुद्ध मत करो मेरे लिए इस प्रकार का पात्र ग्रहण करना कल्पनीय नहीं है।

साधु के द्वारा इस प्रकार कहने पर भी वह कन्द—**यावत्**—हरी वनस्पति को (निकालकर) विशुद्ध करके देने लगे तो उस प्रकार के पात्र को अप्रासुक जानकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

उद्देसिय पाण-भोयण सहिय पडिग्गह गहण णिसेहो—

२३९. से णं परो णेत्ता वदेज्जा—

"आउसंतो समणा ! मुहुत्तगं मुहुत्तगं अच्छाहि-जाव-ताव अम्हे असणं वा-जाव-साइमं वा उवकरेसु वा, उवक्खडेंसु वा, तो ते वयं आउसो ! सपाणं सभोयणं पडिग्गहं दासामो, तुच्छए पडिग्गहे दिण्णे समणस्स णो सुट्ठु, णो साहु भवति।"

से पुव्वामेव आलोएज्जा—

"आउसो ! ति वा, भइणी ! ति वा, णो खलु मे कप्पति आधाकम्मिए असणे वा-जाव-साइमे वा भोत्तए वा, पायए वा, मा उवकरेहि, मा उवक्खडेहि, अभिकंखसि मे दाउं एमेव दलयाहि।"

से सेवं वदंतस्स परो असणं वा-जाव-साइमं वा, उवकरेत्ता, उवक्खडेत्ता सपाणं सभोयणं पडिग्गहं दलएज्जा, तहप्पगारं पडिग्गहं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ६, उ. १, सु. ५९८

औद्देशिक पान-भोजन सहित पात्र ग्रहण का निषेध—

२३९. (कदाचित्) कोई गृहनायक साधु से इस प्रकार कहे—

"आयुष्मन् श्रमण ! आप मुहूर्तपर्यन्त (कुछ समय) ठहरिए। जब तक हम अशन—**यावत्** स्वादिम आहार जुटा लें या तैयार कर लें, तब हम आप को पानी और भोजन से भरकर पात्र देंगे क्योंकि साधु को खाली पात्र देना अच्छा और उचित नहीं होता।

इस पर साधु पहले ही उस गृहस्थ से कह दे—

"आयुष्मन् गृहस्थ ! या बहन ! मेरे लिए आधाकर्मी अशन **यावत्**—स्वादिम खाना या पीना कल्पनीय नहीं है। अतः तुम आहार की सामग्री मत जुटाओ, आहार तैयार न करो। यदि मुझे पात्र देना चाहते हो तो ऐसा (खाली) ही दे दो।"

साधु के इस प्रकार कहने पर भी यदि कोई गृहस्थ अशन—**यावत्**—स्वादिम आहार की सामग्री जुटाकर अथवा तैयार करके पानी और भोजन भरकर साधु को वह पात्र देने लगे, तो उस प्रकार के पात्र को अप्रासुक समझकर—**यावत्**—ग्रहण न करे।

निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थिनी पात्रैषणा के विधि-निषेध—३

समणाइ उद्देसिय णिम्मिय पायस्स विहि-णिसेहो—

२४०. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा से ज्जं पुण पायं जाणेज्जा—बहवे समण-माहण-अतिहि-किविण-वणीमए समुद्दिस्स-जाव-आहट्टु चेएइ।

तं तहप्पगारं पायं अपुरिसंतरकडं, अबहिया नीहडं, अणत्तट्ठियं, अपरिभुत्तं अणासेवियं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा।

अह पुण एवं जाणेज्जा-पुरिसंतरकडं बहिया णीहडं, अत्तट्ठियं, परिभुत्तं आसेवियं फासुयं-जाव-पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ६, उ. १, सु. ५९१ (क)

श्रमणादि के उद्देश्य से निर्मित पात्र लेने के विधि-निषेध—

२४०. भिक्षु या भिक्षुणी पात्र के सम्बन्ध में यह जाने कि अनेक श्रमण ब्राह्मण-अतिथि-कृपण-भिखारियों के उद्देश्य से बनाया है—**यावत्**—अन्य स्थान से यहाँ लाया है।

इस प्रकार का पात्र अन्य पुरुष को दिया हुआ नहीं हो, बाहर निकाला नहीं हो, स्वीकृत न किया हो, उपभुक्त न हो, आसेवित न हो, उसको अप्रासुक जानकर **यावत्** - ग्रहण न करें।

यदि यह जाने कि इस प्रकार का पात्र अन्य पुरुष को दिया हुआ है, बाहर निकाला है, दाता द्वारा स्वीकृत है, उपभुक्त है, आसेवित है, उसको प्रासुक समझकर—**यावत्**—ग्रहण करें।

कीयाई दोस जुत्त पाय-गहण विहि णिसेहो—

२४१. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से ज्जं पुण पायं जाणेज्जा—असंजए भिक्खु पडियाए कीयं वा, धोयं वा, रत्तं वा, घट्टं वा, मट्ठं वा, संमट्ठं वा, संपधूवियं वा—तहप्पगारं पायं अपुरिसंतरकडं-जाव-अणासेवियं अफासुयं-जाव-नो पडिगाहेज्जा।

अह पुण एवं जाणेज्जा—पुरिसंतरकडं-जाव-आसेवियं फासुयं-जाव-पडिगाहेज्जा।

—आ. सु. २. अ. ६, उ. १, सु. ५९१ (ख)

क्रीतादि दोष युक्त पात्र ग्रहण का विधि निषेध—

२४१. भिक्षु या भिक्षुणी पात्र के विषय में यह जाने कि गृहस्थ ने साधु के निमित्त से उसे खरीदा है, धोया है, रंगा है, घिसकर साफ किया है, चिकना या मुलायम बनाया है, संस्कारित किया है, धूप इत्यादि से सुवासित किया है ऐसा वह पात्र पुरुषांतरकृत नहीं है—**यावत्**—किसी के द्वारा आसेवित नहीं हुआ है, ऐसे पात्र को अप्रासुक समझकर—**यावत्**—ग्रहण नहीं करे।

यदि (साधु या साध्वी) यह जान जाये कि यह पात्र पुरुषांतरकृत है—**यावत्**—आसेवित है तो प्रासुक समझकर—**यावत्**—ग्रहण कर सकता है।

कीयाइ-दोससहिय-पाय-गहणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

२४२. जे भिक्खू पडिग्गहं किणेइ, किणावेइ, कीयमाहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पडिग्गहं पामिच्चेइ, पामिच्चावेइ, पामिच्चमाहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पडिग्गहं परियट्टेइ, परियट्टावेइ, परियट्टियमाहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पडिग्गहं अच्छेज्जं अणिसिट्ठं अभिहडमाहट्टु दिज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १४, सु. १-४

क्रीतादि दोष युक्त पात्र ग्रहण के प्रायश्चित्त सूत्र—

२४२. जो भिक्षु पात्र खरीदता है, खरीदवाता है, खरीदा हुआ लाकर देते हुए को लेता है, लिवाता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु पात्र उधार लेता है, उधार लिवाता है या उधार लाकर देते हुए को लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु पात्र को अन्य पात्र से बदलता है, बदलवाता है, बदला हुआ लाकर देवे उसे लेता है, लिवाता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु छीना हुआ, दो स्वामियों में से एक की इच्छा बिना दिया हुआ, या सामने लाकर दिया हुआ पात्र लेता है, लिवाता है या लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पडिग्गहस्स गहण विहि-णिसेहो—

२४३. से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा से ज्जं पुण पायं जाणेज्जा सअंडं -जाव-संताणगं तहप्पगारं पायं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा ।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा से ज्जं पुण पायं जाणेज्जा अप्पंडं -जाव-संताणगं अणलं, अथिरं, अधुवं, अधारणिज्जं, रोइज्जंतं ण रुच्चति, तहप्पगारं पायं अफासुयं-जाव-णो पडिगाहेज्जा ।

से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा से ज्जं पुण पायं जाणेज्जा अप्पंडं -जाव-संताणगं, अलं, थिरं, धुवं, धारणिज्जं, रोइज्जंतं रुच्चति, तहप्पगारं पायं फासुयं-जाव-पडिगाहेज्जा ।

—आ. सु. २, अ. ६, उ. १, सु. ६०० (क)

धारणिज्ज-अधारणिज्ज-पडिग्गहस्स पायच्छित्तसुत्ताइं—

२४४. जे भिक्खू पडिग्गहं अणलं, अथिरं, अधुवं, अधारणिज्जं, धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू पडिग्गहं अलं, थिरं, धुवं, धारणिज्जं न धरेइ न धरेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. १४, सु. ८-९

जे भिक्खू लाउय-पायं वा दारु पायं वा मट्टिया-पायं वा, अलं, थिरं, धुवं, धारणिज्जं परिभिंदिय परिभिंदिय परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. ५, सु. ६४

अइरेग पडिग्गहदाणस्स विहि-णिसेहो—

२४५. कप्पइ निग्गंथाण वा, निग्गंथीण वा अइरेगपडिग्गहं अन्नमन्नस्स अट्ठाए दूरमवि अद्धाणं परिवहित्तए,

"सो वा णं धारेस्सइ,
अहं वा णं धारेस्सामि,
अन्ने वा णं धारेस्सइ,"

पात्र के ग्रहण का विधि-निषेध—

२४३. भिक्षु या भिक्षुणी पात्र के सम्बन्ध में जाने कि अन्डों से —यावत्—मकड़ी के जालों से युक्त है, तो उस प्रकार के पात्र को अप्रासुक जानकर—यावत्—ग्रहण न करे ।

भिक्षु या भिक्षुणी पात्र के सम्बन्ध में जाने कि अण्डों से —यावत्—मकड़ी के जालों से रहित है, किन्तु उपयोग में आने योग्य नहीं है, अस्थिर है (टिकाऊ नहीं है, जीर्ण है) अध्रुव (थोड़े समय के लिए दिया जाने वाला) है, धारण करने के योग्य नहीं है, अपनी रुचि के अनुकूल नहीं है तो उस प्रकार के पात्र को अप्रासुक समझकर—यावत्—ग्रहण न करे ।

भिक्षु या भिक्षुणी पात्र के सम्बन्ध में जाने कि यह पात्र अण्डों से—यावत्—मकड़ी के जालों से रहित है, उपयोग में आने योग्य है, स्थिर है, या ध्रुव है, धारण करने योग्य है, अपनी रुचि के अनुकूल है तो उस प्रकार के पात्र को प्रासुक समझकर—यावत्—ग्रहण करे ।

धारण करने योग्य और न धारण करने योग्य पात्र के प्रायश्चित्त सूत्र—

२४४. जो भिक्षु काम के अयोग्य, अस्थिर, अध्रुव, धारण करने के अयोग्य ऐसे पात्र को धारण करता है, धारण करवाता है, धारण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु काम के योग्य, स्थिर, ध्रुव, धारण करने योग्य पात्र को धारण नहीं करता है, नहीं करवाता है, नहीं करने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

जो भिक्षु तुम्बे के पात्र को, काष्ठ के पात्र को, मिट्टी के पात्र को पर्याप्त (काम में आने योग्य), दृढ़ (टिकाऊ), ध्रुव एवं धारण करने योग्य होते हुए भी तोड़ फोड़ कर परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे उद्घातिक मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

अतिरिक्त पात्र देने का विधि निषेध—

२४५. निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों को एक दूसरे के लिए अधिक पात्र बहुत दूर ले जाना कल्पता है ।

(अधिक पात्र लेते समय तीन विकल्प होते हैं)

वह धारण कर लेगा,
मैं रख लूंगा,
(अथवा) अन्य को आवश्यकता होगी तो उसे दे दूंगा ।

नो से कप्पइ ते अणापुच्छिय, अणामंतिय अन्नमन्नेसिं दाउं वा अणुप्पदाउं वा।

जिनके निमित्त पात्र लिया है उन्हें लेने के लिए पूछे बिना निमन्त्रण किये बिना दूसरे को देना या निमन्त्रण करना नहीं कल्पता है।

कप्पइ से ते आपुच्छिय आमंतिय अन्नमन्नेसिं दाउं वा अणुप्पदाउं वा। —वव. उ. ८, सु. १६

उन्हें पूछने व निमन्त्रण करने के बाद अन्य किसी को देना या निमन्त्रण करना कल्पता है।

पात्र धारण विधि-निषेध—६

सवेंटय पात्तधारण विहाणं—

२४६. कप्पइ निग्गंथाणं सवेण्टयं लाउयं धारेत्तए वा परिहरित्तए वा।

कप्पइ निग्गंथाणं सवेण्टयं पायकेसरियं[1] धारित्तए वा, परिहरित्तए वा। —कप्प. उ. ५, सु. ४१, ४३

सवृन्त पात्र धारण विधान—

२४६. निर्ग्रन्थ साधुओं को सवृन्त (डन्ठल सहित) अलाबु (तुम्बी) रखना या उसका उपयोग करना कल्पता है।

निर्ग्रन्थ साधुओं को सवृन्त पात्रकेसरिका रखना या उसका उपयोग करना कल्पता है।

सवेंटय-पात्त-धारण-णिसेहो—

२४ . नो कप्पइ निग्गंथीणं सवेण्टयं[2] लाउयं धारेत्तए वा परिहरित्तए वा।[3]

नो कप्पइ निग्गंथीणं सवेण्टयं पायकेसरियं धारित्तए वा परिहरित्तए वा। —कप्प. उ. ५, सु. ४०-४२

सवृन्त पात्र धारण निषेध—

२४७. निर्ग्रन्थी साध्वियों को सवृन्त (डन्ठल-सहित) अलाबु (तुम्बी) रखना या उपयोग करना नहीं कल्पता है।

निर्ग्रन्थी साध्वियों को सवृन्त पात्रकेसरिका रखना या उसका उपयोग करना नहीं कल्पता है।

घडिमत्त धारण विहाणं—

२४८. कप्पइ निग्गंथीणं अन्तोलित्तं घडिमत्तयं धारित्तए वा परिहरित्तए वा। —कप्प. उ. १, सु. १७

घटिमात्रक धारण का विधान—

२४८. निर्ग्रन्थियों को अन्दर की ओर लेप किया हुआ घटीमात्रक (मूत्र-विसर्जन पात्र) रखना और उसका उपयोग करना कल्पता है।

घडिमत्त धारण णिसेहो—

२४९. नो कप्पइ निग्गंथाणं अन्तोलित्तं घडिमत्तयं धारित्तए वा परिहरित्तए वा। —कप्प. उ. १, सु. १८

घटिमात्रक धारण का निषेध—

२४९. निर्ग्रन्थों को अन्दर की ओर लेप किया हुआ घटीमात्रक रखना और उसका उपयोग करना नहीं कल्पता है।

कप्पणीय पाय संखा—

२५०. कप्पइ निग्गंथाणं तिण्णि पायाइं चउत्थं उग्गं धारित्तए।

कप्पइ निग्गंथीणं चत्तारि पायाइं पंचमं उग्गं धारित्तए। —कप्प. उ. ५, सु. ३०

कल्पनीय पात्रों की संख्या—

२५०. निर्ग्रन्थ को तीन पात्र और चौथा मात्रक रखना कल्पता है।

निर्ग्रन्थियों को चार पात्र और पाँचवा मात्रक रखना कल्पता है।

---

१ तुम्बी प्रमाण लकड़ी के एक सिरे पर वस्त्र खण्ड को बाँधकर पात्र आदि के भीतरी भाग के पोंछने वाले उपकरण को "पात्र केसरिका" कहते हैं।

२ तुम्बी के ऊँचे उठे हुए डन्ठल को देखने से भी कदाचित् साध्वी के मन में विकार पैदा हो सकता है अतः डन्ठलयुक्त तुम्बी के रखने का निषेध किया गया है।

३ यह सूत्र बृहत्कल्पसूत्र की एक प्रति में मिला है।

पात्र-आतापन के विधि-निषेध—७

पडिग्गह आयावणविहित ठाणाइं—

२५१. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा अभिकंखेज्जा पायं आयावेत्तए वा, पयावेत्तए वा, तहप्पगारं पायं से तमादाए एगंतमवक्कमेज्जा एगंतमवक्कमित्ता अहे झाम-थंडिल्लंसि वा-जाव-गोमयरासिंसि वा, अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिल्लंसि पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिय पमज्जिय ततो संजयामेव पायं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा।

—आ. सु. २, अ. ६, उ. १, सु. ६०० (घ)

विहित स्थानों पर पात्र सुखाने का विधान—

२५१. भिक्षु या भिक्षुणी पात्र को धूप में सुखाना चाहे तो पात्र को लेकर एकान्त में जाये, वहाँ जाकर देखे कि जो भूमि अग्नि से दग्ध हो—यावत्—(सूखे) गोबर के ढेर वाली हो या अन्य भी ऐसी स्थंडिल भूमि हो उसका भलीभाँति प्रतिलेखन एवं रजोहरणादि से प्रमार्जन करके तत्पश्चात् यतनापूर्वक उस पात्र को सुखाए।

पडिग्गह आतावण णिसिद्धठाणाइं—

२५२. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा अभिकंखेज्जा पायं आयावेत्तए वा, पयावेत्तए वा, तहप्पगारं पायं णो अणंतरहियाए पुढवीए -जाव-मक्कडासंताणए आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा अभिकंखेज्जा पायं आयावेत्तए वा, पयावेत्तए वा, तहप्पगारं पायं थूणंसि वा-जाव-कामजलंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतलिक्ख-जायंसि दुब्बद्धे-जाव-चलाचले णो आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा।

से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा अभिकंखेज्जा पायं आयावेत्तए वा, पयावेत्तए वा, तहप्पगारं पायं कुलियंसि वा-जाव-लेलुंसि वा, अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि अंतलिक्खजायंसि दुब्बद्धे -जाव-चलाचले णो आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा अभिकंखेज्जा पायं आयावेत्तए वा, पयावेत्तए वा, तहप्पगारं पायं खंधंसि वा-जाव-हम्मियतलंसि वा, अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि अंतलिक्खजायंसि दुब्बद्धे-जाव-चलाचले णो आयावेज्ज वा पयावेज्ज वा।

—आ. सु. २, अ. ६, उ. १, सु. ६००(ग)

निषिद्ध स्थानों पर पात्र सुखाने का निषेध—

२५२. भिक्षु या भिक्षुणी पात्र को धूप में सुखाना चाहे तो वह वैसे पात्र को सचित्त पृथ्वी के निकट की अचित्त पृथ्वी पर—यावत्—मकड़ी के जाले हों ऐसे स्थान में न सुखाये।

भिक्षु या भिक्षुणी पात्र को धूप में सुखाना चाहे तो वह उस प्रकार के पात्र को ठूंठ पर—यावत्—स्नान करने की चौकी पर, अन्य भी इस प्रकार के अन्तरिक्ष जात (आकाशीय) स्थान पर जो कि भलीभाँति बंधा हुआ नहीं है—यावत्—चलाचल है, वहाँ पात्र को न सुखाये।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि पात्र को धूप में सुखाना चाहे तो ईंट की दीवार पर—यावत्—शिलाखंडादि पर या अन्य भी इस प्रकार के अन्तरिक्ष जात (आकाशीय) स्थान पर जो कि भलीभाँति बँधा हुआ नहीं है—यावत्—चलाचल है, वहाँ पात्र को न सुखाए।

भिक्षु या भिक्षुणी पात्र को धूप में सुखाना चाहे तो उस पात्र को स्तम्भ पर—यावत्—महल की छत पर, अन्य भी इस प्रकार के अन्तरिक्ष जात (आकाशीय) स्थानों पर जो कि दुर्बद्ध—यावत्—चलाचल हो वहाँ पात्र को न सुखाए।

णिसिद्धठाणेसु पडिग्गह आयावणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

२५३. जे भिक्खू अणंतरहियाए पुढवीए पडिग्गहं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा, पयावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू ससिणिद्धाए पुढवीए पडिग्गहं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा, पयावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू ससरक्खाए पुढवीए पडिग्गहं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा, पयावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू मट्टियाकडाए पुढवीए पडिग्गहं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा, पयावेंतं वा साइज्जइ।

निषिद्ध स्थानों पर पात्र सुखाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

२५३. जो भिक्षु सचित्त पृथ्वी के निकट की अचित्त पृथ्वी पर पात्र को सुखाता है, सुखवाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्निग्ध पृथ्वी पर पात्र को सुखाता है, सुखवाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त रज युक्त पृथ्वी पर पात्र को सुखाता है, सुखवाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त मिट्टी बिखरी हुई पृथ्वी पर पात्र को सुखाता है, सुखवाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू चित्तमंताए पुढवीए पडिग्गहं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा, पयावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू चित्तमंताए सिलाए पडिग्गहं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा, पयावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू चित्तमंताए लेलुए पडिग्गहं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा, पयावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कोलावासंसि वा दारुए जीवपइट्ठिए, सअंडे-जाव-मक्कडासंताणए पडिग्गहं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा, पयावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू थूणंसि वा-जाव-कामजलंसि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतलिक्खजायंसि दुब्बद्धे-जाव-चलाचले पडिग्गहं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा, पयावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू कुलियंसि वा-जाव-लेलुंसि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतलिक्खजायंसि दुब्बद्धे-जाव-चलाचले पडिग्गहं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा, पयावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू खंधंसि वा-जाव-हम्मियतलंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि अंतलिक्खजायंसि दुब्बद्धे-जाव-चलाचले पडिग्गहं आयावेज्ज वा, पयावेज्ज वा, आयावेंतं वा, पयावेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

---नि. उ. १४, सु. २४-३४

जो भिक्षु सचित्त पृथ्वी पर पात्र को सुखाता है, सुखवाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त शिला पर पात्र को सुखाता है, सुखवाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु सचित्त शिलाखंड आदि पर पात्र को सुखाता है, सुखवाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु दीमक आदि जीव युक्त काष्ठ तथा अंडे युक्त स्थान पर —यावत्—मकड़ी के जाले युक्त स्थान पर पात्र को सुखाता है, सुखवाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु ठूंठ पर—यावत्—स्नान करने की चौकी पर अथवा अन्य भी ऐसे अंतरिक्ष जात (आकाशीय) स्थान पर जो कि भलीभाँति बँधा हुआ नहीं है—यावत्—चलाचल है वहाँ पात्र को सुखाता है, सुखवाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु ईंट की दीवार पर—यावत्—शिलाखंड आदि पर अथवा अन्य भी ऐसे अंतरिक्ष जात (आकाशीय) स्थान पर जो कि भलीभाँति बँधा हुआ नहीं है—यावत्—चलाचल है वहाँ पात्र को सुखाता है, सुखवाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्कंध पर—यावत्—महल की छत पर अथवा अन्य भी ऐसे अंतरिक्ष जात (आकाशीय) स्थान पर जो कि भलीभाँति बँधा हुआ नहीं है—यावत्—चलाचल है वहाँ, पात्र को सुखाता है, सुखवाता है या सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पात्र-प्रत्यर्पण का विधि-निषेध—८

पाडिहारिय पायगहणे माया णिसेहो—

२५४. से एगइओ मुहुत्तगं मुहुत्तगं पाडिहारियं पायं जाइत्ता एगाहेण वा-जाव-पंचाहेण वा विप्पवसिय विप्पवसिय उवागच्छेज्जा, तहप्पगारं स-संधियं पायं —नो अप्पणा गेण्हेज्जा नो अन्नमन्नस्स देज्जा, नो पामिच्चं कुज्जा, नो पाएण पाय-परिणामं करेज्जा,

प्रातिहारिक पात्र ग्रहण करने में माया करने का निषेध—

२५४. कोई एक भिक्षु किसी अन्य भिक्षु से अल्पकाल के लिए प्रातिहारिक पात्र की याचना करके एक दिन—यावत्—पाँच दिन कहीं अन्यत्र रह रहकर पात्र देने आवे तो पात्रदाता भिक्षु उस लाये हुए पात्र को क्षतविक्षत जानकर न स्वयं ग्रहण करे, न दूसरे को दे, न किसी को उधार दे, न उस पात्र को किसी पात्र के बदले में दे।

नो परं उवसंकमित्ता एवं वदेज्जा—"आउसंतो समणा! अभिकंखसि एयं पायं धारित्तए वा, परिहरित्तए वा?" थिरं वा णं संतं नो पलिछिंदिय पलिछिंदिय परिट्ठवेज्जा,

न किसी दूसरे भिक्षु को इस प्रकार कहे "हे आयुष्मन् श्रमण! इस पात्र को रखना या उपयोग में लेना चाहते हो?" (तथा) उस दृढ़ पात्र के टुकड़े-टुकड़े करके परिष्ठापन भी नहीं करे—फेंके भी नहीं।

तहप्पगारं पायं ससंधियं तस्स चेव निसिरेज्जा। नो य णं सातिज्जेज्जा।

बीच में से सांधे हुए उस पात्र को उसी ले जाने वाले भिक्षु को दे दे किन्तु पात्रदाता उसे अपने पास न रखे।

एवं बहु वयणेण वि भाणियव्वं।

इसी प्रकार अनेक भिक्षुओं के सम्बन्ध में भी आलापक कहना चाहिए।

से एगइओ एयप्पगारं णिग्घोसं सोच्चा णिसम्म—से हंता अहमवि मुहुत्तगं मुहुत्तगं पाडिहारियं पायं जाइत्ता—एगाहेण वा-जाव-पंचाहेण वा विप्पवसिय विप्पवसिय उवागच्छिस्सामि, अवियाइं एयं ममेव सिया।

कोई एक भिक्षु इस प्रकार का संवाद सुनकर समझकर सोचे "मैं भी अल्पकाल के लिए किसी से प्रातिहारिक पात्र की याचना करके एक दिन यावत्—पाँच दिन कहीं अन्यत्र रहकर आऊँगा।" इस प्रकार से वह मेरा हो जायेगा।

"माइट्ठाणं संफासे नो एवं करेज्जा।"

—आ. सु. २, अ. ६, उ. २, सु. ६०५(ग)

(सर्वज्ञ भगवान् ने कहा) यह मायावी आचरण है, अतः इस प्रकार नहीं करना चाहिए।

पायस्स विवण्णाइकरण णिसेहो—

पात्र के विवर्ण आदि करने का निषेध—

२५५. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा णो वण्णमंताइं पायाइं विवण्णाइं करेज्जा, णो विवण्णाइं पायाइं वण्णमंताइं करेज्जा,

२५५. भिक्षु या भिक्षुणी सुन्दर वर्ण वाले पात्रों को विवर्ण (असुन्दर) न करे तथा विवर्ण (असुन्दर) पात्रों को सुन्दर वर्ण वाले न करे।

"अण्णं वा पायं लभिस्सामि" त्ति कट्टु नो अण्णमण्णस्स देज्जा, नो पामिच्चं कुज्जा, नो पाएण पायपरिणामं करेज्जा, नो परं उवसंकमित्तु एवं वदेज्जा—"आउसंतो समणा! अभिकंखसि एयं पायं धारित्तए वा, परिहरित्तए वा?"

"मैं दूसरा तथा (सुन्दर) पात्र प्राप्त कर लूँगा" इस अभिप्राय से अपना पुराना पात्र किसी दूसरे साधु को न दे, न किसी से उधार पात्र ले, न ही पात्र की परस्पर अदलाबदली करे और न दूसरे साधु के पास जाकर ऐसा कहे कि—"हे आयुष्मन् श्रमण! क्या तुम मेरे पात्र को धारण करना चाहते हो?"

थिरं वा णं संतं णो पलिछिंदिय पलिछिंदिय परिट्ठवेज्जा, जहा मेयं पायं पावगं परो मण्णइ।

इसके अतिरिक्त उस सुदृढ़ पात्र के टुकड़े-टुकड़े करके परठे भी नहीं, इस भावना से कि मेरे इस पात्र को लोग अच्छा नहीं समझते।

परं च णं अदत्तहारी पडिपहे पेहाए तस्स पायस्स णिदाणाय णो तेसिं भीओ उम्मग्गेणं गच्छेज्जा-जाव-ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ६, उ. २, सु. ६०५ (घ)

तथा मार्ग में चोरों को सामने आता देखकर (उस पात्र की रक्षा हेतु) उनसे भयभीत होकर उन्मार्ग से न जाये—यावत्—समाधि भाव में स्थिर होकर संयमपूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे।

पडिग्गहस्स वण्णपरिवट्टण पायच्छित्त सुत्ताइं—

पात्र का वर्ण परिवर्तन करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

२५६. जे भिक्खू वण्णमंतं पडिग्गहं विवण्णं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

२५६. जो भिक्षु अच्छे वर्ण वाले पात्र को विवर्ण करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू विवण्णं पडिग्गहं वण्णमंतं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु विवर्ण पात्र को अच्छा करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १४, सु. १०-११

उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

आमोसगभएण उम्मग्ग-गमण णिसेहो—

२५७. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से विहं सिया, से ज्जं पुणं विहं जाणेज्जा—इमंसि खलु विहंसि बहवे आमोसगा पायपडियाए संपडिया गच्छेज्जा, णो तेसिं भीओ उम्मग्गे गच्छेज्जा-जाव-तत्तो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ६, उ. २, सु. ६०५ (ङ)

चोरों के भय से उन्मार्ग से जाने का निषेध—

२५७. ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भिक्षु या भिक्षुणी के मार्ग में अटवीवाला लम्बा मार्ग हो और वह यह जाने कि—इस अटवीबहुल मार्ग में बहुत से चोर पात्र छीनने के लिए आते हैं, तो साधु उनसे भयभीत होकर उन्मार्ग से न जाए—**यावत्**—समाधि भाव में स्थिर होकर संयमपूर्वक ग्रामानुग्राम विचरण करे।

आमोसगावहारिय पायस्स जायणा णिसेहो—

२५८. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे अंतरा से आमोसगा संपडियाऽऽगच्छेज्जा, ते णं आमोसगा एवं वदेज्जा।

"आउसंतो समणा! आहरेतं पायं देहि, णिक्खिवाहि"

तं णो देज्जा, णिक्खिवेज्जा,

णो वंदिय जाएज्जा, णो अंजलिं कट्टु जाएज्जा, णो कलुणपडियाए जाएज्जा, धम्मियाए जायणाए जाएज्जा, तुसिणीयभावेण वा उवेहेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ६, उ. २, सु. ६०५ (च)

चोरों से अपहरित पात्र के याचना का विधि-निषेध—

२५८. ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भिक्षु या भिक्षुणी के मार्ग में चोर पात्र हरण करने के लिए आ जाएँ और कहे कि—

"आयुष्मन् श्रमण! यह पात्र लाओ हमारे हाथ में दे दो या हमारे सामने रख दो।"

इस प्रकार कहने पर साधु उन्हें वे पात्र न दें, अगर वे बलपूर्वक लेने लगें तो भूमि पर रख दें।

पुनः लेने के लिए उनकी स्तुति (प्रशंसा) करके, हाथ जोड़कर या दीन-वचन कहकर याचना न करे अर्थात् उन्हें इस प्रकार से वापस देने को न कहे। यदि माँगना हो तो उन्हें धर्मवचन कहकर समझा कर माँगे, अथवा मौन भाव धारण करके उपेक्षा भाव से रहे।

पात्र-परिकर्म का निषेध—९

पाय परिकम्म णिसेहो—

२५९. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा "णो णवए मे पाये त्ति कट्टु" णो बहुदेसिएण तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा, मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा "णो णवए मे पाये त्ति कट्टु" णो बहुदेसिएण सिणाणेण वा-जाव-पउमेण वा आघंसेज्ज वा, पघंसेज्ज वा।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा "णो णवए मे पाये त्ति कट्टु" णो बहुदेसिएण सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा "दुब्भिगंधे मे पाये त्ति कट्टु" णो बहुदेसिएण तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा, मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा।

पात्र के परिकर्म का निषेध—

२५९. भिक्षु या भिक्षुणी "मेरा पात्र नया नहीं है" ऐसा सोचकर उसके अल्प या बहुत तेल—**यावत्**—नवनीत न लगावे, न बार-बार लगावे।

भिक्षु या भिक्षुणी "मेरा पात्र नया नहीं है" ऐसा सोचकर उसे अल्प या बहुत सुगंधित द्रव्य समुदाय से—**यावत्**—पद्मचूर्ण से न घिसे, न बार-बार घिसे।

भिक्षु या भिक्षुणी "मेरा पात्र नया नहीं है" ऐसा सोचकर उसे अल्प या बहुत अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से न धोये, न बार-बार धोये।

भिक्षु या भिक्षुणी "मेरा पात्र दुर्गन्धवाला है" ऐसा सोचकर उसके अल्प या बहुत तेल—**यावत्**—नवनीत न लगावे, न बार-बार लगावे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा "दुब्भिगंधे मे पाये त्ति कट्टु" णो बहुदेसिएण सिणाणेण वा-जाव-पउमेण वा, आघंसेज्ज वा, पघंसेज्ज वा।

भिक्षु या भिक्षुणी "मेरा पात्र दुर्गंधवाला है" ऐसा सोचकर उसे अल्प या बहुत सुगन्धित द्रव्य समुदाय से – **यावत्** – पद्मचूर्ण से न घिसे, न बार-बार घिसे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा "दुब्भिगंधे मे पाये त्ति कट्टु" णो बहुदेसिएण सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा।

—आ. सु. २, अ. ६, उ. १, सु. ६०० (ख)

भिक्षु या भिक्षुणी "मेरा पात्र दुर्गन्धवाला है" ऐसा सोचकर उसे अल्प या बहुत अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से न धोये, न बार-बार धोये।

पाय परिकम्म पायच्छित्त सुत्ताइं—

पात्र परिकर्म करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

२६०. जे भिक्खू "नो नवए मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेसिएण तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा, मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा, मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

२६०. जो भिक्षु "मुझे नया पात्र नहीं मिला है" ऐसा सोचकर पात्र के अल्प या बहुत तेल—**यावत्**—मक्खन लगावे, बार-बार लगावे, लगवावे, बार-बार लगवावे, लगाने वाले का बार-बार लगाने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू "नो नवए मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेसिएण लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा, उल्लोलेज्ज वा, उव्वलेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा, उव्वलेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु "नया पात्र मुझे नहीं मिला है" ऐसा सोचकर पात्र के अल्प या बहुत लोध्र से—**यावत्** – वर्ण से लेप करे, बार-बार लेप करे, लेप करवावे, बार-बार लेप करवावे, लेप करने वाले का बार-बार लेप करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू "नो नवए मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेसिएण सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु "मुझे नया पात्र नहीं मिला है" ऐसा सोचकर पात्र को अल्प या बहुत अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण से धोये, बार-बार धोये, धुलावे, बार-बार धुलावे, धोने वाले का बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू "नो नवए मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेवसिएण तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा, मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु "मुझे नया पात्र नहीं मिला है" ऐसा सोचकर पात्र के रात रखा हुआ तेल—**यावत्**—नवनीत लगावे, बार-बार लगावे, लगवावे, बार-बार लगवावे, लगाने वाले का बार-बार लगाने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू—"नो नवए मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेवसिएण लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा, उल्लोलेज्ज वा, उव्वलेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा, उव्वलेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु "मुझे नया पात्र नहीं मिला है" ऐसा सोचकर पात्र के रात रखे हुए लोध—**यावत्** वर्ण से लेप करे, बार-बार लेप करे, लेप करावे, बार-बार लेप करावे, लेप करने वाले का बार-बार लेप करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू—"नो नवए मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेवसिएण सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु "नया पात्र मुझे नहीं मिला है" ऐसा सोचकर पात्र को रात रखे हुए अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से धोवे, बार-बार धोये, धुलावे बार-बार धुलावे, धोने वाले का बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू "दुब्भिगंधे मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेसिएण तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा, मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा, मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु "मुझे दुर्गन्ध वाला पात्र मिला है" ऐसा सोचकर पात्र के अल्प या बहुत तेल—**यावत्**—नवनीत लगावे, बार-बार लगावे, लगवावे, बार-बार लगवावे लगाने वाले का बार-बार लगाने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू—"दुब्भिगंधे मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेसिएण लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा, उच्छोलेज्ज वा, उव्वलेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा, उव्वलेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु "मुझे दुर्गंध वाला पात्र मिला है" ऐसा सोचकर पात्र के अल्प या बहुत लोध से—**यावत्**—वर्ण से लेप करे, बार-बार लेप करे, लेप करावे, बार-बार लेप करावे, लेप करने वाले का बार-बार लेप करने वाले का अनुमोदन करे।

जे भिक्खू "दुब्भिगंधे मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेसिएण सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा, पधोवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू—"दुब्भिगंधे मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेवसिएण तेल्लेण वा-जाव-णवणीएण वा, मक्खेज्ज वा, भिलिंगेज्ज वा, मक्खेंतं वा, भिलिंगेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू "दुब्भिगंधे मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेवसिएण लोद्धेण वा-जाव-वण्णेण वा, उल्लोलेज्ज वा, उव्वलेज्ज वा, उल्लोलेंतं वा, उव्वलेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू "दुब्भिगंधे मे पडिग्गहे लद्धे" त्ति कट्टु बहुदेवसिएण सीओदगवियडेण वा, उसिणोदगवियडेण वा, उच्छोलेज्ज वा, पधोएज्ज वा, उच्छोलेंतं वा, पधोएंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. १४, सु. १२-२३

सयं पायपरिकम्म करणस्स पायच्छित्तसुत्तं—

२६१. जे भिक्खू लाउय-पायं वा-दारु-पायं वा, मट्टिया-पायं वा, सयमेव परिघट्टेइ वा, संठवेइ वा, जमावेइ वा, परिघट्टेंतं वा, संठवेंतं वा, जमावेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. २, सु. २५

पाय परिकम्म कारावणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

२६२. जे भिक्खु लाउय-पायं वा, दारु-पायं वा, मट्टिया-पायं वा, अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा, परिघट्टावेइ वा, संठावेइ वा, जमावेइ वा, अलमप्पणो करणयाए सुहुममवि नो कप्पइ, जाणमाणे सरमाणे अण्णमण्णस्स वियरइ, वियरंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।

—नि. उ. १, सु. ३६

पाय कोरण पायच्छित्त सुत्तं—

२६३. जे भिक्खू पडिग्गहं कोरेइ, कोरावेइ, कोरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. १४, सु. ४१

जो भिक्षु "मुझे दुर्गन्ध वाला पात्र मिला है" ऐसा सोचकर पात्र को अल्प या बहुत अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से धोवे, बार-बार धोवे, धुलावे, बार-बार धुलावे, धोने वाले का बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु "मुझे दुर्गन्ध वाला पात्र मिला है" ऐसा सोचकर पात्र के रात रखा हुआ तेल—यावत्—नवनीत लगावे, बार-बार लगावे, लगवावे बार-बार लगवावे, लगाने वाले का बार-बार लगाने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु "मुझे दुर्गन्ध वाला पात्र मिला है" ऐसा सोचकर पात्र के रात रखे हुए लोध्र—यावत्—वर्ण से लेप करे, बार-बार लेप करे, लेप करावे, बार-बार लेप करावे, लेप करने वाले का बार-बार लेप करने वाले का अनुमोदन करे।

जो भिक्षु "मुझे दुर्गन्ध वाला पात्र मिला है" ऐसा सोचकर पात्र को रात रखे हुए अचित्त शीत जल से या अचित्त उष्ण जल से धोवे, बार-बार धोवे, धुलावे, बार-बार धुलावे, धोने वाले का बार-बार धोने वाले का अनुमोदन करे।

उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पात्र का स्वयं परिष्कार करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

२६१ जो भिक्षु "तुम्ब पात्र, काष्ठपात्र, या मृत्तिका पात्र का स्वयं निर्माण करता है, आकार सुधारता है, विषम को सम करता है, निमार्ण करवाता है, आकार सुधरवाता है, विषम को सम करवाता है या निर्माण करने वाले का आकार सुधारने वाले का विषम को सम करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पात्र के परिष्कार करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

२६२ जो भिक्षु तुम्ब पात्र, काष्ठ पात्र या मृत्तिका पात्र का परिघट्टण, संठवण, जमावण का कार्य अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से से कराता है, तथा स्वयं करने में समर्थ होते हुए "गृहस्थ से किंचित् भी कराना नहीं कल्पता है" यह जानते हुए या स्मृति में होते हुए भी अन्य भिक्षु को गृहस्थ से कराने की आज्ञा देता है, दिवाता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पात्र को कोरने का प्रायश्चित्त सूत्र—

२६३. जो भिक्षु पात्र को कोरता है, कोरवाता है, कोरकर देते हुए को लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पाय संधाण-बंधण पायच्छित्त सुत्ताइं—

२६४. जे भिक्खू पायस्स एक्कं तुडियं तड्डेइ तड्डेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पायस्स परं तिण्हं तुडियाणं तड्डेइ, तड्डेंतं वा साइज्जइ।

(जे भिक्खू पायं अविहीए तड्डेइ तड्डेंतं वा साइज्जइ।)

जे भिक्खू पायं अविहीए बंधइ, बंधंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पायं एगेण बंधेण बंधइ, बंधंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पायं परं तिण्हं बंधाणं बंधइ, बंधंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अइरेगबंधणं पायं दिवड्ढाओ मासाओ परेण धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. १. सु. ४१-४६

पात्र सन्धान-बन्धन के प्रायश्चित्त सूत्र—

२६४. जो भिक्षु पात्र के एक 'थेगली' देता है, दिलवाता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु पात्र के तीन थेगली से अधिक देता है, दिलवाता है, देने वाले का अनुमोदन करता है।

(जो भिक्षु पात्र के अविधि से थेगली देता है, दिलवाता है, देने वाले का अनुमोदन करता है।)

जो भिक्षु पात्र को अविधि से बाँधता है, बँधवाता है या बाँधने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु पात्र को एक बन्धन से बाँधता है, बँधवाता है, या बाँधने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु पात्र के तीन से अधिक बन्धन बाँधता है, बँधवाता है या बाँधने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु डेढ़ मास के बाद अतिरिक्त (अधिक) बन्धन वाले पात्र को रखता है, रखवाता है, रखने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे अनुद्घातिक मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पात्रैषणा सम्बन्धी अन्य प्रायश्चित्त—१०

पडिग्गहाओ तसपाणाईणं णिहरणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

२६५. जे भिक्खू पडिग्गहातो पुढविकायं नीहरइ, नीहरावेइ, नीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पडिग्गहातो आउक्कायं नीहरइ, नीहरावेइ, नीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पडिग्गहातो तेउक्कायं नीहरइ, नीहरावेइ, नीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पडिग्गहाओ कंदाणि वा, मूलाणि वा, पत्ताणि वा, पुप्फाणि वा, फलाणि वा, नीहरइ, नीहरावेइ, नीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ- पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

पात्र से त्रसप्राणी आदि निकालने के प्रायश्चित्त सूत्र—

२६५ जो भिक्षु पात्र से (सचित्त) पृथ्वीकाय को निकालता है, निकलवाता है, निकालकर देते हुए को लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु पात्र से (सचित्त) अप्काय को निकालता है, निकलवाता है, निकाल कर देते हुए को लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु (मिट्टी के) पात्र से (सचित्त) अग्निकाय को निकालता है, निकलवाता है, निकालकर देते हुए को लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु पात्र से (सचित्त) कन्द, मूल, पत्र, पुष्प, फल, निकालता है, निकलवाता है, निकालकर देते हुए को लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू पडिग्गहातो ओसहि-बीयाइं नीहरइ, नीहरावेइ, नीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु पात्र से औषधि अर्थात् गेहूँ आदि धान्य और जीरा बीज आदि को निकालता है, निकलवाता है, निकालकर देते हुए को लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू पडिग्गहातो तसपाणजाइं नीहरइ, नीहरावेइ, नीहरियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १४, सु. ३५-४०

जो भिक्षु पात्र से त्रस प्राणियों को निकालता है निकल-वाता है, निकालकर देते हुए को लेता है, लिवाता है, लेने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पडिग्गहणीसाए वसमाणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

२६६. जे भिक्खू पडिग्गहणीसाए उडुबद्ध वसइ, वसंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पडिग्गहणीसाए वासावासं वसइ, वसंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १४, सु. ४४-४५

पात्र के लिए निवास करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

२६६. जो भिक्षु पात्र के लिए ऋतुबद्ध काल (सर्दी या गर्मी) में रहता है, रहवाता है, रहने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु पात्र के लिए वर्षावास में रहता है, रहवाता है, रहने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

ओभासिय-जायणाए पायच्छित्त सुत्ताइं—

२६७. जे भिक्खू णायगं वा, अणायगं वा, उवासगं वा, अणुवासगं वा गामंतरंसि वा, गामपहंतरंसि वा पडिग्गहं ओभासिय ओभासिय जायइ, जायंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू णायगं वा, अणायगं वा, उवासगं वा, अणुवासगं वा परिसामज्झाओ उट्ठवेत्ता पडिग्गहं ओभासिय ओभासिय जायइ, जायंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १४, सु. ४२-४३

माँग-माँगकर याचना करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

२६७. जो भिक्षु स्वजन से, परिजन से, उपासक से, अनुपासक से ग्राम में या ग्रामपथ में पात्र माँग-माँगकर याचना करता है, करवाता है, याचना करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्वजन को, परिजन को, उपासक को, अनुपासक को परिषद में से उठाकर (उससे) माँग-माँगकर पात्र की याचना करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्घातिक चातुर्मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णियगादि-गवेसिय पडिग्गह धरणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

२६८. जे भिक्खू नियग-गवेसियं पडिग्गहं धरेइ धरेंतं वा साइज्जइ।

निजगादि गवेषित पात्र रखने के प्रायश्चित्त सूत्र —

२६८. जो भिक्षु निजक-गवेषित (अपने सगे सम्बन्धी के द्वारा दिलाये गये) पात्र को धारण करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू पर-गवेसियं पडिग्गहं धरेइ धरेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु पर-गवेषित (सामान्य गृहस्थ द्वारा दिलाये गये) पात्र को धारण करता है, करवाता है या करने वाले का अनु-मोदन करता है।

जे भिक्खू वर-गवेसियं पडिग्गहं धरेइ धरेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु वर-गवेषित (ग्राम-प्रधान पुरुष द्वारा दिलाये गये) पात्र को धारण करता है, करवाता है या करने वाले का अनु-मोदन करता है।

जे भिक्खू बल-गवेसियं पडिग्गहं धरेइ धरेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु बल-गवेषित (बलवान्—शक्ति सम्पन्न पुरुष द्वारा दिलाये गये) पात्र को धारण करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू लव-गवेसियं पडिग्गहं धरेइ धरेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. २, सु. २७-३१

जो भिक्षु लव-गवेषित (पात्र दान का फल बताकर दिलाये गये) पात्र को धारण करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे उद्घातिक मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

पायपुंछण एषणा :—

[पायपुंछण एषणा का स्वतन्त्र प्रकरण आचारांग सूत्र में नहीं है । आगमों में जहाँ-जहाँ पायपुंछण एषणा के स्वतन्त्र पाठ मिले हैं वे इस प्रकरण में संकलित किये गये हैं । जहाँ-जहाँ "वत्थं-जाव-पायपुंछण" ऐसा पाठ है वे सब स्थल निर्देश नीचे अंकित किये गये हैं, उन्हें उन स्थानों से समझ लेवें ।

आ. सु. १, अ. २, उ. ५, सु. ८९	आ. सु. १, अ. ८, उ. १, सु. १९९	आ. सु. १, अ. ८, उ. २, सु. २०४
आ. सु. १, अ. ८, उ. २, सु. २०५	कप्प. उ. १, सु. ४०-४१	कप्प उ. १, सु. ४२-४३
नि. उ. ५, सु. ६५	नि. उ. १५, सु. ८७-९८	नि. उ. १५, सु. १५३-१५४
नि. उ. १६, सु. १९-२०	नि. उ. १६, सु. २१]	

दारुडंडग पायपुंछण विहि-णिसेहो—

२६९. नो कप्पइ निग्गंथीणं दारुदण्डयं पायपुंछणं[1] धारेत्तए वा, परिहरित्तए वा ।

काष्ठदण्ड वाले पादप्रोंछन का विधि-निषेध—

२६९. निर्ग्रन्थी (साध्वियों) को दारुदण्ड (काष्ठ डण्डी वाला) पादप्रोञ्छन रखना या उसका उपयोग करना नहीं कल्पता है ।

१ पादे पुंछति जेण तं पादपुंछणं पाँव पोंछने का वस्त्र खंड । —नि. उ. ५, सु. १५-१८

पायपुंछण रजोहरण से भिन्न उपकरण है—यह आगमों के निम्नांकित कतिपय उद्धरणों से स्पष्ट है ।

दश. अ. ४ में पायपुंछण और रजोहरण को भिन्न-भिन्न उपकरण कहा गया है ।

प्रश्न. श्रु. २, अ. ५ में भी दोनों उपकरण भिन्न-भिन्न कहे हैं ।

अभयदेव सूरि ने इसकी व्याख्या में चौदह उपकरणों के अन्तर्गत पायपुंछण और रजोहरण को भिन्न-भिन्न गिनाये हैं ।

आ. सु. २, अ. १० में ऐसा विधान है कि "स्वयं के समीप पायपुंछण न हो तो, दूसरे स्वधर्मी से पायपुंछण प्राप्त करके अत्यावश्यक कार्य से निवृत्त होवे ।" इस विधान से पायपुंछण का रजोहरण से भिन्न होना स्वयं सिद्ध है । क्योंकि रजोहरण आवश्यक औधिक उपकरण है अतः वह सबके पास होता ही है ।

बृह. उ. ५ में साध्वी के लिए काष्ठ दण्डयुक्त "पायपुंछण" रखना निषिद्ध है और साधु के लिए विहित है । इससे भी इनकी भिन्नता सिद्ध होती है ।

निशीथ उ. २ में काष्ठ दण्डयुक्त "पायपुंछण" रखने पर प्रायश्चित्त विधान है ।

निशीथ उ. ५ में काष्ठ दण्डयुक्त "पायपुंछण" एक निर्धारित अवधि के लिए प्रातिहारिक पीछा लौटाने की शर्त पर लाने का विधान है और निर्धारित अवधि में न लौटाने पर प्रायश्चित्त का विधान है ।

रजोहरण कभी पीछा लौटाने की शर्त पर नहीं लाया जाता, न ही उसके लिए निर्धारित अवधि होती है, किन्तु रजोहरण तो काष्ठ दण्डयुक्त ही बनाया और सदा रखा जाता है और उसके लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है ।

इस प्रकार "पायपुंछण" की रजोहरण से भिन्नता सिद्ध है । ऐसे अन्य भी अनेक आगम विधान हैं जिनसे दोनों की भिन्नता सिद्ध होती हैं ।

चूर्णियों और टीकाओं के रचना काल में कहीं-कहीं दोनों की एकता मान लेने पर भ्रान्ति हुई है अतः इन उद्धरणों से भ्रान्ति का निराकरण कर लेना चाहिए ।

कप्पइ निग्गंथाणं दारुदण्डयपायपुंछणं धारेत्तए वा परिहरित्तए वा।

—कप्प. उ. ५, सु. ४४-४५

किन्तु निर्ग्रन्थ (साधुओं) को दारुदण्ड वाला पादप्रोंछन रखना या उसका उपयोग करना कल्पता है।

दारुदण्डग पायपुंछणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

२७०. (१) जे भिक्खू दारुदण्डयं पायपुंछणं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

(२) जे भिक्खू दारुदण्डयं पायपुंछणं गिण्हइ, गिण्हंतं वा साइज्जइ।

(३) जे भिक्खू दारुदण्डयं पायपुंछणं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

(४) जे भिक्खू दारुदण्डयं पायपुंछणं वियरइ वियरेंतं वा साइज्जइ।

(५) जे भिक्खू दारुदण्डयं पायपुंछणं परिभाएइ, परिभायंतं वा साइज्जइ।

(६) जे भिक्खू दारुदण्डयं पायपुंछणं परिभुंजइ, परिभुंजंतं वा साइज्जइ।

(७) जे भिक्खू दारुदण्डयं पायपुंछणं परं दिवड्ढाओ मासाओ धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

(८) जे भिक्खू दारुदण्डयं पायपुंछणं विसुयावेइ, विसुयावेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. २, सु. १-८

काष्ठ दण्ड वाले पादप्रोंछन के प्रायश्चित्त सूत्र—

२७०. १. जो भिक्षु काष्ठ दण्डवाला पादप्रोञ्छन करता है, करवाता है करने वाले का अनुमोदन करता है।

२. जो भिक्षु काष्ठदण्ड वाला पादप्रोञ्छन ग्रहण करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

३. जो भिक्षु काष्ठदण्ड वाला पादप्रोञ्छन धारण करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

४. जो भिक्षु काष्ठदण्ड वाला पादप्रोञ्छन दूसरों को ग्रहण करने की अनुज्ञा देता है, दिलवाता है, देने वाले का अनुमोदन करता है।

५. जो भिक्षु काष्ठ दंडवाले पादप्रोञ्छन को देता है, दिलवाता है, देने वाले का अनुमोदन करता है।

६. जो भिक्षु काष्ठदंड वाले पादप्रोञ्छन का परिभोग करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

७. जो भिक्षु काष्ठ दंड वाले पादप्रोञ्छन को डेढ़ मास से अधिक धारण करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

८. जो भिक्षु काष्ठ दंड वाले पादप्रोञ्छन को धूप में सुखाता है, सुखवाता है, सुखाने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पायपुंछणं न पच्चप्पिणंतस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

२७१. जे भिक्खू पडिहारियं पायपुंछणं जाइत्ता—"तामेव रयणीं पच्चप्पिणिस्सामि त्ति" सुए पच्चप्पिणइ पच्चप्पिणंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पाडिहारियं पायपुंछणं जाइत्ता "सुए पच्चप्पिणिस्सामि त्ति" तामेव रयणिं पच्चप्पिणइ पच्चप्पिणंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सागारियसंतियं पायपुंछणं जाइत्ता "तामेव रयणिं पच्चप्पिणिस्सामि त्ति" सुए पच्चप्पिणंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सागारियसंतियं पायपुंछणं जाइत्ता "सुए पच्चप्पिणिस्सामि त्ति" तामेव रयणिं पच्चप्पिणइ पच्चप्पिणंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ५, सु. १५-१८

पादप्रोंछन के न लौटाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

२७१. जो भिक्षु प्रातिहारिक पादप्रोञ्छन की याचना करके इसे "आज ही लौटा दूंगा" ऐसा कहकर कल लौटाता है, लौटवाता है, लौटाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु प्रातिहारिक (लौटाने योग्य) पादप्रोञ्छन की याचना करके कल लौटा दूंगा ऐसा कहकर उसी दिन लौटाता है, लौटवाता है, लौटाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु शय्यातर के पादप्रोञ्छन की याचना करके आज ही लौटा दूंगा ऐसा कहकर कल लौटाता है, लौटवाता है, लौटाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु शय्यातर के पादप्रोञ्छन की याचना करके "कल लौटा दूंगा" ऐसा कहकर उसी दिन लौटाता है, लौटवाता है, लौटाने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

रजोहरण एषणा—

[रजोहरण एषणा का स्वतन्त्र प्रकरण आचारांग में नहीं है। आगम में जहाँ-जहाँ रजोहरण सम्बन्धी स्वतन्त्र सूत्र मिले हैं वे इस प्रकरण में संकलित किये गये हैं। अन्यत्र जहाँ-जहाँ रजोहरण का कथन है उन सबके स्थल निर्देश नीचे अंकित किये गये हैं—

कप्प. उ. ३, सु. १४-१५	दस. अ. ४, सु. ५४	पण्ह. सं. १, सु. ११
प्रश्न. सं. ५, सु. ८	नि. उ. ४, सु. २४	आव. अ. ४]

एसणिज्ज रयहरणाइं—

२७२. कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा—इमाइं पंच रयहरणाइं[1] धारित्तए वा, परिहरित्तए वा, तं जहा—
(१) ओण्णिए,
(२) उट्टिए,
(३) साणए,
(४) वच्चाचिप्पए,
(५) मुंजचिप्पए नामं पंचमे[2]। —कप्प. उ. २, सु. ३०

एषणीय रजोहरण—

२७२. निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को इन पाँच प्रकार के रजोहरणों को रखना और उनका उपयोग करना कल्पता है। यथा—
१. औणिक—(भेड़ों की ऊन से निष्पन्न) रजोहरण।
२. औष्ट्रिक—(ऊँट के केशों से निष्पन्न) रजोहरण।
३. सानक—(सन के वल्कल से निष्पन्न) रजोहरण।
४. वच्चाचिप्पक—(वच्चक नामक घास से निष्पन्न) रजोहरण।
५. मुंजचिप्पक—(मुंज से निष्पन्न) रजोहरण।

रयहरणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

२७३. (१) जे भिक्खू अतिरेग-पमाणं रयहरणं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

(२) जे भिक्खू सुहुमाइं रयहरण—सीसाइं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ।

(३) जे भिक्खू रयहरणं कंडूसगबंधेणं बंधइ, बंधंतं वा साइज्जइ।

(४) जे भिक्खू रयहरणस्स अविहीए बंधइ, बंधंतं वा साइज्जइ।

(५) जे भिक्खू रयहरणस्स एक्कं बंधं देइ, देंतं वा साइज्जइ।

(६) जे भिक्खू रयहरणस्स परं तिण्हं बंधाणं देइ, देंतं वा साइज्जइ।

(७) जे भिक्खू रयहरणं अणिसट्ठं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

रजोहरण सम्बन्धी प्रायश्चित्त सूत्र—

२७३. १. जो भिक्षु प्रमाण से अधिक रजोहरण रखता है, रखवाता है, रखने वाले का अनुमोदन करता है।

२. भिक्षु रजोहरण की फलियाँ सूक्ष्म करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

३. जो भिक्षु रजोहरण को वस्त्र लपेट कर बाँधता है, बँधवाता है, बाँधने वाले का अनुमोदन करता है।

४. जो भिक्षु रजोहरण को अविधि से बाँधता है, बँधवाता है, बाँधने वाले का अनुमोदन करता है।

५. जो भिक्षु रजोहरण को एक बंध देता है, दिलाता है, देने वाले का अनुमोदन करता है।

६. जो भिक्षु रजोहरण के तीन से अधिक बंध देता है, दिलाता है, देने वाले का अनुमोदन करता है।

७. जो भिक्षु आगम विरुद्ध रजोहरण को रखता है, रखवाता है, रखने वाले का अनुमोदन करता है।

---

१ हरइ रओ जीवाणं, बज्झं अब्भिन्तरं च जं तेणं। रयहरणंति पवुच्चइ, कारणमिदं कज्जोवयाराओ॥
संयम जोगा इत्थं, रओहरा तेसिं कारणं जे णं। रयहरणं उवयारा, भण्णइ तेणं रओकम्मं॥ —पिण्डनिर्युक्ति टीका
बाह्य रज और आभ्यन्तर कर्मरज का जो हरण करता हो वह कारण में कार्य का उपचार करके उसे रजोहरण कहा है।
योगों के संयम से जो कर्मरज का हरण करने में कारणभूत है वह रजोहरण उपचार से आभ्यन्तर रज का हरण करने वाला है।

२ ठाणं. अ. ५, उ. ३, सु. ४४६।

(८) जे भिक्खू रयहरणं वोसट्ठं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ ।

८. जो भिक्षु रजोहरण को अपने शरीर के प्रमाण से अधिक दूर रखता है, रखवाता है, रखने वाले का अनुमोदन करता है।

(९) जे भिक्खू रयहरणं अहिट्ठेइ, अहिट्ठेंतं वा साइज्जइ ।

९. जो भिक्षु रजोहरण पर बैठता है, बिठवाता है, बैठने वाले का अनुमोदन करता है।

(१०) जे भिक्खू रयहरणं उस्सीसमूले ठवेइ, ठवेंतं वा साइज्जइ ।

१०. जो भिक्षु रजोहरण को शिर के नीचे रखता है, रखवाता है, रखने वाले का अनुमोदन करता है।

(११) जे भिक्खू रयहरणं तुयट्टेइ, तुयट्टेंतं वा साइज्जइ ।

११. जो भिक्षु रजोहरण पर सोता है, सुलाता है, सोने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. ५, सु. ६७-७७

उसे उद्घातिक मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

गोच्छगाईणं वियरण विवेगो—

गोच्छकादि के वितरण का विवेक—

२७४. निग्गंथं च णं गाहावइ कुलं पिंडवाय पडियाए अणुपविट्ठं केइ, दोहिं गोच्छग रयहरण चोलपट्टग-कंबल-लट्ठी संथारगेहिं उवनिमंतेज्जा—

"एगं आउसो ! अप्पणा परिभुंजाहि एगं थेराणं दलयाहि" से य तं पडिग्गाहेज्जा तहेव-जाव-तं नो अप्पणा परिभुंजेज्जा, नो अन्नेसिं दावए सेसं तं चेव-जाव-परिट्ठावेयव्वे सिया ।

एवं तिहिं-जाव-दसहिं गोच्छग—रयहरण-चोलपट्टग लट्ठी कंबल-संथारगेहिं[1] । —वि. सु. ८, उ. ६, सु. ५

२७४. निर्ग्रन्थ गृहपति-कुल में गोचरी के लिये प्रवेश करने पर कोई गृहस्थ उसे दो गुच्छक (पूंजणी) रजोहरण, चोलपट्टक, कंबल, लाठी और संस्तारक (बिछौना) ग्रहण करने के लिए उपनिमंत्रण करे—

"आयुष्मन् श्रमण ! (इन दोनों में से) एक का आप स्वयं उपयोग करें और दूसरा स्थविरों को दे देना।" इस पर वह निर्ग्रन्थ उन दोनों को ग्रहण कर ले। शेष सारा वर्णन पूर्ववत् कहना चाहिए,—यावत्—उसका न तो स्वयं उपयोग करे और न दूसरे साधुओं को दे, शेष सारा वर्णन पूर्ववत् समझना—यावत्—उसे परठ देना चाहिए।

इसी प्रकार तीन—यावत्—दस गुच्छक रजोहरण चोलपट्टक, कम्बल, लाठी और संस्तारक तक का कथन पूर्व के समान कहना चाहिए।

卐卐

---

१ एवं जहा पडिग्गहवत्तव्वया भणिया एवं गोच्छग-रयहरण-चोलपट्टग-कंबल-लट्ठी-संथारगेहिं वत्तव्वया य भाणियव्वा-जाव-दसहिं संथारएहिं उवनिमंतेज्जा-जाव-परिट्ठावेयव्वे सिया ।

इस सूचना सूत्र के अनुसार यह पाठ व्यवस्थित किया है। यह सूचना सूत्र देखें पात्र प्रकरण में।

—वि. सु. ८, उ. ६, सु. ६

(४) आदान-निक्षेप समिति का स्वरूप—१

आयाण भंड-मत्तणिक्खेवणसमिइ सरूवं—

२७५. जं पि य समणस्स सुविहियस्स पडिग्गहधारिस्स भवति भायण-भंडोवहि-उवगरणं।

(१) पडिग्गहो, (२) पादबंधणं,
(३) पादकेसरिया (४) पादठवणं च,
(५-७) पडलाइं तिण्णेव, (८) रयत्ताणं च,
(९) गोच्छओ, (१०-१२) तिण्णेव य पच्छाका,
(१३) रयोहरणं, (१४) चोलपट्टक,
(१५) मुहणंतकमादियं एयं पि संजमस्स उववूहणट्ठयाए वायायव-दंसमसग-सीय परिरक्खणट्ठाए।

उवगरणं राग-दोस-रहियं परिहरियव्वं संजएण।

निच्चं पडिलेहण-पप्फोडण-पमज्जणाए, अहो य राओ य अप्पमत्तेण होइ सततं निक्खिवियव्वं च गिण्हियव्वं च भायण-भंडोवहि-उवगरणं[1]। —पण्ह. सु. २, अ. ५, सु. ८

आदान भाण्ड मात्र निक्षेपणा समिति का स्वरूप—

२७५. पात्रधारी सुविहित साधु के पास जो भी काष्ठ के पात्र, मिट्टी के पात्र, उपधि और उपकरण होते हैं, जैसे—

१. पात्र, २. पात्र-बन्धन,
३. पात्र केसरिका, ४. पात्रस्थापनिका,
५—७. तीन पटल, ८. रजस्त्राण,
९. गोच्छक, १०-१२. तीन प्रच्छादक,
१३. रजोहरण, १४. चोलपट्टक,
१५. मुखवस्त्रिका आदि ये सब संयम की वृद्धि के लिए होते हैं तथा प्रतिकूल वायु, धूप, डांस-मच्छर और शीत से रक्षण के लिए हैं।

इन सब उपकरणों को राग और द्वेष से रहित होकर साधु को धारण करने चाहिए।

सदा इनका प्रतिलेखन, प्रस्फोटन और प्रमार्जन करना चाहिए। दिन में और रात्रि में निरन्तर अप्रमत्त रहकर भाजन, भाण्ड, उपधि और उपकरणों को रखना और ग्रहण करना चाहिए।

उवगरण धारण कारणं—

२७६. जं पि वत्थं व पायं वा, कंबलं पायपुंछणं।
तं पि संजम लज्जट्ठा, धारेंति परिहरेंति य॥
— दस. अ. ६, गा. १९

उपकरण धारण के कारण—

२७६. साधु जो भी वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोंछन (आदि उपकरण) रखते हैं उन्हें संयम की रक्षा के लिये और लज्जा (निवारण) के लिए ही रखते हैं और उनका उपयोग करते हैं।

सव्व भंडग संजुत्त गमण विही—

२७७. से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइ-कुलं पिंडवाय-पडियाए पविसितुकामे सव्वं भंडगमायाए गाहावइ-कुलं पिंडवाय-पडियाए णिक्खमेज्ज वा पविसेज्ज वा।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा बहिया विहार भूमिं वा वियार-भूमिं वा णिक्खममाणे वा, पविसमाणे वा सव्वं भंडगमायाए बहिया विहार-भूमिं वा वियार-भूमिं वा णिक्खमेज्ज वा, पविसेज्ज वा।

सर्व भण्डोपकरण सहित गमन विधी—

२७७. भिक्षु या भिक्षुणी गृहस्थ के घर में आहार के लिए जाना चाहे तो सर्व भण्डोपकरण लेकर ही जावे और आवे।

भिक्षु या भिक्षुणी उपाश्रय से बाहर की स्वाध्याय भूमि में या मलोत्सर्ग भूमि में जाता हुआ भी सर्व भण्डोपकरण लेकर ही जावे और आवे।

---

१ अन्य स्थविर के निमित्त लाये गये गोच्छक, रजोहरण, कंबलादि के सन्दर्भ हेतु देखिए रजोहरणैषणा।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे सव्वं भंडगमायाए गामाणुगामं दूइज्जेज्जा ।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा अह पुण एवं जाणेज्जा—

तिव्वदेसियं वा वासं वासमाणं पेहाए,

तिव्वदेसियं वा महियं सण्णिवयमाणिं पेहाए,

महावाएण वा रयं समुद्धूयं पेहाए,

तिरिच्छ-संपाइमा वा तसा-पाणा संथडा सन्निवयमाणा पेहाए,

से एवं णच्चा णो सव्वं भंडगमायाए गाहावइ-कुलं पिंडवाय-पडियाए णिक्खमेज्ज वा पविसेज्ज वा ।

बहिया विहार-भूमिं वा वियार-भूमिं वा णिक्खमेज्ज वा पविसेज्ज वा,

गामाणुगामं वा दूइज्जेज्जा[1] ।

—आचा. सु. २, अ. १, उ. ३, सु. ३४४

भिक्षु या भिक्षुणी ग्रामानुग्राम विहार करते समय भी सर्व भण्डोपकरण लेकर ही जावे और आवे ।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि यह जाने कि—

अल्प या अधिक वर्षा बरस रही है,

अल्प या अधिक धुंअर गिर रही है,

महावायु से रज गिर रही है,

तिरछे उड़ने वाले त्रस प्राणी अत्यधिक गिर रहे हैं तो सर्व भण्डोपकरण लेकर भी गृहस्थ के घर में आहार के लिए न जावे और न आवे ।

इसी प्रकार उपाश्रय से बाहर की स्वाध्याय भूमि में या मलोत्सर्ग भूमि में भी न जावे और न आवे ।

इसी प्रकार ग्रामानुग्राम विहार भी न करे ।

उवगरण अवग्गह-गहण विहाणं—

२७८. जेहिं वि सद्धिं संपव्वइए तेसिंपि याइं,

(१) छत्तयं वा[2], (२) मत्तयं वा,

(३) डंडगं वा, (४) लट्ठिं वा,

(५) भिसियं वा,

(६) णालियं वा,

(७) चेलं वा,

(८) चिलिमिलिं वा,

(९) चम्मयं वा,

(१०) चम्म-कोसयं वा,

(११) चम्मच्छेणयं वा,

तेसिं पुव्वामेव उग्गहं अणणुण्णवेत्ता अपडिलेहिय अपमज्जिय णो गिण्हेज्ज वा पगिण्हेज्ज वा,

उपकरण अवग्रह-ग्रहण विधान—

२७८. जिन साधुओं के साथ या जिनके पास वह प्रव्रजित हुआ है, विचरण कर रहा है या रह रहा है, उनके भी—

१. छत्रक, २. मात्रक (तीन प्रकार के भाजन)

३. दण्ड (बाहुप्रमाण) ४. लाठी (शरीर प्रमाण)

५. भूषिका-काष्ट का आसन,

६. नालिका (शरीर प्रमाण से चार अंगुल अधिक लाठी)

७. वस्त्र,

८. चिलिमिलिका (यवनिका, पर्दा या मच्छरदानी)

९. चर्म,

१०. चर्मकोश, (अंगुली आदि में पहनने का साधन) ।

११. चर्म-छेदनक (चर्म काटने का शस्त्र,

आदि उपकरणों की पहले उनसे अवग्रह-अनुज्ञा लिए बिना तथा प्रतिलेखन प्रमार्जन किये बिना एक या अनेक बार ग्रहण न करे ।

---

१ (क) इसी प्रकार वस्त्रैषणा तथा पात्रैषणा में भी ऐसे सूत्र हैं—अन्तर केवल इतना ही है कि वस्त्रैषणा में (आ. सु. २, अ. ५, उ. २, सु. ५८२) "सव्वभंडगमायाए" के स्थान में "सव्वचीवरमायाए" है और पात्रैषणा में (आ. सु. २, अ. ६, उ. २, सु. ६०५) "सव्वपडिग्गहमायाए" है । शेष सब समान है ।

(ख) न चरेज्ज वासे वासंते, महियाए व पडंतीए । महावाए व वायंते, तिरिच्छ संपाइमेसु वा ॥ —दस. अ. ५, उ. १, गा. ८

इस गाथा में भी सूत्रोक्त चारों प्रसंगों में गोचरी जाने का निषेध है ।

सूत्रोक्त चारों प्रसंगों में यद्यपि बाहर की स्वाध्याय भूमि में तथा उच्चार प्रस्रवण भूमि में जाने का निषेध है, किन्तु उपाश्रय में स्वाध्याय करने का और उपाश्रय के समीप की उच्चार प्रस्रवण भूमि में उच्चारादि के परिष्ठापन का निषेध नहीं है तथा महिया व रजघात में स्वाध्याय करना सर्वथा वर्जित है ।

२ प्रस्तुत सूत्रपाठ में छाता (छत्रक) चर्मच्छेदनक आदि उपकरण का उल्लेख है । जबकि दशवैकालिक सूत्र में "छत्तस्स धारणट्ठाए" कहकर इसे अनाचीर्ण में बताया गया है । इस विषय में आचारांग वृत्तिकार एवं चूर्णिकार समाधान इस प्रकार करते हैं कि किसी देश विशेष में वर्षा के समय कारणवश साधु छत्र रख सकता है । कोंकण आदि देश में अत्यन्त वृष्टि होने के कारण ऐसा सम्भव हो सकता है ।

तेसिं पुव्वामेव उग्गहं अणुण्णविय, पडिलेहिय, पमज्जिय तओ संजयामेव ओगिण्हेज्ज वा पगिण्हेज्ज वा।

—आ. सु. २, अ. ७, उ. १, सु. ६०७ (ग)

अपितु उनसे पहले ही ग्रहण करने की आज्ञा लेकर, उनका प्रतिलेखन-प्रमार्जन करके फिर यतनापूर्वक एक या अनेक बार ग्रहण करे।

एगागी थविरस्स भंडोवगरणाणं आयाण-णिक्खेवण विही—

२७९. थेराणं थेरभूमिपत्ताणं कप्पइ दण्डए वा, भण्डए वा, छत्तए वा, मत्तए वा, लट्ठिया वा, भिसे वा, चेले वा, चेलचिलिमिलि वा, चम्मे वा, चम्मकोसे वा, चम्मपलिच्छेयणए वा, अविरहिए ओवासे ठवेत्ता गाहावइकुलं पिण्डवाय-पडियाए पविसित्तए वा निक्खमित्तए वा।

कप्पइ णं सन्नियट्टचारीणं दोच्चंपि उग्गहं अणुन्नवेत्ता परिहरित्तए।

—वव. उ. ८, सु. ५

एकाकी स्थविर के भण्डोपकरण और उनके आदान-निक्षेपण की विधि—

२७९. स्थविरत्व प्राप्त (एकाकी) स्थविर को दण्ड, भाण्ड, छत्र, मात्रक, लाठी, काष्ठ का आसन, वस्त्र, वस्त्र की चिलमिलिका, चर्म, चर्मकोष और चर्मपरिच्छेदनक, अविरहित स्थान में रखकर अर्थात् किसी को संभलाकर गृहस्थ के घर में आहार के लिए जाना-आना कल्पता है।

भिक्षाचर्या से निवृत्त होने पर जिसकी देख-रेख में दण्डादि रखे गये हैं उससे दूसरी बार आज्ञा लेकर ग्रहण करना कल्पता है।

दंडाईणं परिघट्टावणस्स पायच्छित्त-सुत्तं—

२८०. जे भिक्खू दण्डयं वा, लट्ठियं वा, अवलेहणियं वा, वेणुसूइं वा, अण्णउत्थिएण वा, गारत्थिएण वा परिघट्टावेइ वा, संठावेइ वा जमावेइ वा। अलमप्पणो करणयाए सुहुममवि नो कप्पइ जाणमाणे सरमाणे अण्णमण्णस्स वियरइ वियरंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. १, सु. ४०

दण्डादि के परिष्कार करवाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

२८०. जो भिक्षु दण्ड, लाठी, अवलेहनिका और बाँस की सुई को घिसना, सुधारना, उपयोगी बनाना आदि कार्य अन्यतीर्थिक या गृहस्थ से कराता है तथा स्वयं कर सकता हो तो गृहस्थ से किंचित् भी कराना नहीं कल्पता है यह जानते हुए, स्मृति में होते हुए भी अन्य साधु को गृहस्थ से कराने की अनुमति देता है, दिलवाता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

दंडगाईणं परिट्ठवणस्स पायच्छित्त-सुत्तं—

२८१. जे भिक्खू दंडगं वा-जाव-वेणुसूइं वा पलिभंजियं पलिभंजिय परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ५, सु. ६६

दण्डादि के परठने का प्रायश्चित्त सूत्र—

२८१. जो भिक्षु दण्ड— यावत्—बाँस की सुई को तोड़-तोड़कर परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्घातिक मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अतिरित्त उवहि-धरणस्स पायच्छित्त-सुत्तं—

२८२. जे भिक्खू पमाणाइरित्तं वा, गणणाइरित्तं वा उवहिं धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. १६, सु. ४०

अतिरिक्त उपधि रखने का प्रायश्चित्त सूत्र—

२८२. जो भिक्षु प्रमाण से और गिनती से अधिक उपधि धारण करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

उपकरण का प्रतिलेखन—२

सेज्जा-संथारगाई पडिलेहण विहाणं—

२८३. धुवं च पडिलेहेज्जा जोगसा पाय कंबलं।
सेज्जमुच्चारभूमिं च संथारं अदुवाऽऽसणं॥

—दस. अ. ८, गा. १७

शय्या संस्तारक आदि प्रतिलेखन विधान—

२८३. मुनि पाद कम्बल (पैर पोंछने का गरम कपड़ा) शय्या, उच्चार-भूमि, संस्तारक अथवा आसन का यथासमय प्रतिलेखन करे।

उवहि-उवओग विही—

२८४. ओहोवहोवग्गहियं, भण्डगं दुविहं मुणी।
गिण्हन्तो निक्खिवन्तो य, पउंजेज्ज इमं विहिं॥

चक्खुसा पडिलेहित्ता, पमज्जेज्ज जयं जई।
आइए निक्खिवेज्जा वा, दुहओ वि समिए सया॥

—उत्त. अ. २४, गा. १३-१४

उपधि को उपयोग में लेने की विधि—

२८४. मुनि ओघ-उपधि (सामान्य उपकरण) और औपग्रहिक-उपधि (विशेष उपकरण) दोनों प्रकार के उपकरणों के लेने और रखने में इस विधि का उपयोग करे—

सदा सम्यक्-प्रवृत्त और यतनाशील यति दोनों प्रकार के उपकरणों को सदा चक्षु से प्रतिलेखन कर तथा रजोहरण आदि से प्रमार्जन कर उन्हें ले और रखे।

अप्पमाय-पमाय-पडिलेहणा—

२८५. छव्विहा अप्पमायपडिलेहणा पण्णत्ता, तं जहा—

(१) अणच्चावितं,

(२) अवलितं,

(३) अणाणुबंधि,

(४) अमोसलि,

(५) छप्पुरिमा नव खोडा[1]

अप्रमाद-प्रमाद-प्रतिलेखना के प्रकार—

२८५. प्रमाद रहित प्रतिलेखना छह प्रकार की कही गई है, जैसे—

१. **अनर्तिता**—शरीर या वस्त्र को न नचाते हुए प्रतिलेखना करना।

२. **अवलिता**—शरीर या वस्त्र को मुड़ाये बिना प्रतिलेखना करना।

३. **अनानुबन्धी**—उतावल रहित या वस्त्र को झटकाये बिना प्रतिलेखना करना।

४. **अमोसली**—वस्त्र के ऊपरी, नीचले आदि भागों को मसले बिना प्रतिलेखना करना।

५. **षट्पूर्वा—नवखोड़ा**—प्रतिलेखन किये जाने वाले वस्त्र को पसारकर और आँखों से भली-भाँति देखकर उसके दोनों भागों को तीन-तीन बार खंखेरना षट्पूर्वा प्रतिलेखना है, वस्त्र को तीन-तीन बार पूंज कर तीन-तीन बार शोधना नवखोड़ा है।

---

१ छ पुरिमा नव खोडा का विवरण—"पुरिमा"=विभाग। "खोडा"=विभाग के विभाग-खंड।

इन्हें चद्दर की प्रतिलेखना विधि से इस प्रकार समझना—

श्रमण के ओढ़ने की चद्दर की लम्बाई का पूरा माप ५ हाथ होता है और चौड़ाई का पूरा माप ३ हाथ होता है।

सर्वप्रथम चद्दर की चौड़ाई के मध्य भाग से मोड़कर दो समान पट कर लें, प्रथम एक पट की चौड़ाई डेढ़ हाथ और लम्बाई ५ हाथ रहेगी। इसके बाद पट की लम्बाई के तीन समान भाग करें, प्रत्येक भाग के ऊपर से नीचे तक तीन-तीन खंड करें। प्रत्येक खंड पर दृष्टि डालकर प्रतिलेखन करें।

इसी प्रकार दूसरे पट के भी तीन समान भाग करें और प्रत्येक भाग के ऊपर से नीचे तक तीन-तीन खंड करें। प्रत्येक खंड पर दृष्टि डालकर प्रतिलेखन करें। यह चद्दर के एक पार्श्व भाग की प्रतिलेखना हुई।

(शेष अगले पृष्ठ पर)

(६) पाणीपाणविसोहणी ।

६. **पाणिप्राण विशोधनी**—हाथ के ऊपर वस्त्र-गत जीव को लेकर प्रासुक स्थान पर परठना ।

छव्विहा पमायपडिलेहणा पण्णत्ता तं जहा—

(१) आरभडा,

(२) संमद्दा,

(३) वज्जेयव्वा य मोसली ततिया,

(४) पप्फोडणा चउत्थी,

(५) विक्खित्ता,

(६) वेइया छट्ठी ।

—ठाणं. अ. ६, सु. ५०३

प्रमाद—पूर्वक की गई प्रतिलेखना छह प्रकार की कही गई है। जैसे—

१. **आरभटा**—उतावल से वस्त्रादि को सम्यक् प्रकार से देखे बिना प्रतिलेखन करना ।

२. **सम्मर्दा** –मर्दन करके प्रतिलेखना करना ।

३. **मोसली**—वस्त्र के ऊपरी, नीचले या तिरछे भाग का प्रतिलेखन करते हुए परस्पर घट्टन करना ।

४. **प्रस्फोटना**—वस्त्र की धूलि को झटकाते हुए प्रतिलेखन करना ।

५. **विक्षिप्ता**—प्रतिलेखित वस्त्रों को अप्रतिलेखित वस्त्रों के ऊपर रखना ।

६. **वेदिका**—प्रतिलेखना करते समय विधिवत् न बैठकर प्रतिलेखन करना ।

पडिलेहणा पमत्तो पावसमणो—

२८६. पडिलेहेइ पमत्ते, अवउज्झइ पायकम्बलं ।
पडिलेहणाअणाउत्ते, पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

पडिलेहेइ पमत्ते, से किंचि हु निसामिया ।
गुरुपरिभावए निच्चं, पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

—उत्त. अ. १७, गा. ९-१०

संथारं फलगं, पीढं निसेज्जं पायकम्बलं ।
अप्पमज्जियमारूहइ, पावसमणि त्ति वुच्चई ॥

—उत्त. अ. १७, गा. ७

प्रतिलेखना में प्रमत्त पाप श्रमण—

२८६. जो असावधानी से प्रतिलेखन करता है, जो पाद-कम्बल (पैर पोंछने का गरम कपड़ा) को जहाँ कहीं रख देता है, जो प्रतिलेखना में असावधान होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है।

जो कुछ भी बातचीत हो रही हो उसे सुनते हुए प्रतिलेखना में असावधानी करता है तथा जो शिक्षा देने पर गुरु के सामने बोलने लगता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है।

जो बिछौने, पाट, पीठ, आसन और पैर पोंछने का गरम कपड़ा का प्रमार्जन किये बिना (तथा देखे बिना) उन पर बैठता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है।

उवहि अपडिलेहणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

२८७. जे भिक्खू इत्तरियं पि उवहिं न पडिलेहेइ, न पडिलेहेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. २, सु. ५९

उपधि अप्रतिलेखन का प्रायश्चित्त सूत्र

२८७. जो भिक्षु अल्प उपधि का भी प्रतिलेखन नहीं करता है, नहीं करवाता है और नहीं करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

इस प्रतिलेखना में पूर्ण चद्दर का एक पार्श्व भाग ६ भागों में और १८ खंडों में विभक्त किया गया है। इसी प्रकार पूर्ण चद्दर का दूसरा पार्श्व भाग भी ६ भागों में और १८ खंडों में विभक्त किया जाए और उसकी प्रतिलेखना की जाए, इस प्रकार एक चद्दर की प्रतिलेखना में चद्दर के बारह भाग (पुरिमा) और छत्तीस खंड (खोडा) किये जाते हैं।

सूत्र में चादर के एक पार्श्व भाग की अपेक्षा से "छ पुरिमा" कहे गये हैं तथा एक पार्श्व भाग के एक पट की (लम्बाई पाँच हाथ और चौड़ाई डेढ़ हाथ की) अपेक्षा से "नव खोडा" कहे गये हैं।

२ उत्त. अ. २६, गा. २५-२६ ।

उपकरण का प्रत्यर्पण एवं प्रत्याख्यान—३

पडिहारिअ सुई आईणं पच्चप्पण विही—

२८८. से आगंतारेसु वा-जाव-परियावसहेसु वा-जाव-से किं पुण तत्थोग्गहंसि एवोग्गहियंसि ?

जे तत्थ गाहावतीण वा-जाव-कम्मकरीण वा सूई वा पिप्पलए वा, कण्णसोहणए वा, णहच्छेदणए वा, तं अप्पणो एगस्स अट्ठाए पडिहारियं जाइत्ता णो अण्णमण्णस्स देज्ज वा अणुपदेज्ज वा।

सयं करणिज्जं ति कट्टु से तमायाए तत्थ गच्छेज्जा, गच्छित्ता पुव्वामेव उत्ताणए हत्थे कट्टु, भूमीए वा ठवेत्ता, 'इमं खलु-इमं खलु' त्ति आलोएज्जा, णो चेव णं सयं पाणिणा परपाणिंसि पच्चप्पिणेज्जा।

—आ. सु. २, अ. ७, उ. १, सु. ६

प्रातिहारिक सूई आदि के प्रत्यर्पण की विधि—

२८८. धर्मशाला—**यावत्**—परिव्राजकों के आश्रम में—**यावत्**—आज्ञा ग्रहण कर लेने के बाद साधु और क्या करे ?

गृहस्थ—**यावत्**—नौकरानियों से कार्यवश सूई, कैंची, कर्ण-शोधनक या नख छेदनक आदि अपने स्वयं के लिए प्रातिहारिक रूप से याचना करके लाया हो तो वह उन चीजों को परस्पर एक-दूसरे साधु को न दे अथवा न सौंपे।

किन्तु स्वयं का कर्तव्य समझकर उन प्रातिहारिक उपकरणों को लेकर गृहस्थ के यहाँ जाये और खुले हाथ में रखकर या भूमि पर रखकर गृहस्थ से कहे—"यह तुम्हारा अमुक पदार्थ है, यह तुम्हारा अमुक पदार्थ है।" (इसे सँभाल लो, देख लो) परन्तु उन सूई आदि उपकरणों को साधु अपने हाथ से गृहस्थ के हाथ पर रखकर न सौंपे।

अविहीए सूई आईणं पच्चप्पिणस्स पायच्छित्त सुत्ताइ—

२८९. जे भिक्खू अविहीए सूइं पच्चप्पिणइ, पच्चप्पिणंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अविहीए पिप्पलगं पच्चप्पिणइ, पच्चप्पिणतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अविहीए नहच्छेणगं पच्चप्पिणइ, पच्चप्पिणंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू अविहीए कण्णसोहणगं पच्चप्पिणइ, पच्चप्पिणंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं।

—नि. उ. १, सु. ३५-३८

अविधि से सूई आदि के प्रत्यर्पण करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

२८९. जो भिक्षु सूई को अविधि से प्रत्यर्पण (वापिस सौंपना) करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु कैंची को अविधि से प्रत्यर्पित करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु नखछेदनक को अविधि से प्रत्यर्पित करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु कर्णशोधनक को अविधि से प्रत्यर्पित करता है, करवाता है, करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

णिच्छियकडे काले दंडाइय न पच्चप्पिणंतस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

२९०. जे भिक्खू पाडिहारियं दंडयं वा-जाव-वेणुसूइं वा जाइत्ता "तामेव रयणिं पच्चप्पिणिस्सामि त्ति" सुए पच्चप्पिणइ पच्चप्पिणंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू पाडिहारियं दंडयं वा-जाव-वेणुसूइं वा जाइत्ता "सुए पच्चप्पिणिस्सामि त्ति" तामेव रयणिं पच्चप्पिणइ, पच्चप्पिणंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू सागारिय-संतियं दंडयं वा-जाव-वेणुसूइं वा जाइत्ता "तामेव रयणिं पच्चप्पिणिस्सामि त्ति" सुए पच्चप्पिणइ, पच्चप्पिणंतं वा साइज्जइ।

निश्चित काल में दण्डादि के न लौटाने के प्रायश्चित्त सूत्र—

२९०. जो भिक्षु लौटाने योग्य दण्ड—**यावत्**—बाँस की सूई की याचना करके "आज ही लौटा दूंगा" ऐसा कहकर कल लौटाता है, लौटवाता है, लौटाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु लौटाने योग्य दण्ड—**यावत्**—बाँस की सूई की याचना करके "कल लौटा दूंगा" ऐसा कहकर आज ही लौटाता है, लौटवाता है, लौटाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु शय्यातर के दण्ड,—**यावत्**—बाँस की सूई की याचना करके "आज ही लौटा दूंगा" ऐसा कहकर कल लौटाता है, लौटवाता है, लौटाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू सागारिय-संतियं दंडयं वा-जाव-वेणुसूइं वा जाइत्ता "सुए पच्चप्पिणिस्सामि त्ति" तामेव रयणि पच्चप्पिणइ, पच्चप्पिणंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ५, सु. १९-२२

जो भिक्षु शय्यातर के दण्ड,—यावत्—बांस की सूई की याचना करके "कल लौटा दूंगा" ऐसा कहकर आज ही लौटाता है, लौटवाता है, लौटाने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

उवहि-पच्चक्खाण फलं—

उपधि प्रत्याख्यान का फल—

२९१. प०—उवहि-पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—उवहि पच्चक्खाणेणं अपलिमंथं जणयइ, निरुवहिए णं जीवे निक्कंखी उवहिमंतरेण य न संकिलिस्सई।

—उत्त. अ. २९, सु. ३६

२९१. प्र०—भन्ते ! उपधि प्रत्याख्यान से जीव क्या उपार्जन करता है ?

उ०—उपधि प्रत्याख्यान से स्वाध्याय आदि में निर्विघ्नता प्राप्त करता है। उपधि विहीन जीव निरीह (आकांक्षा रहित) बन जाता है और उपधि के अभाव में संक्लेश नहीं पाता है।

पब्भट्ठ उवगरणस्स एसणा—

पतित या विस्मृत उपकरण की एषणा—

२९२. निग्गंथस्स णं गाहावइकुलं पिण्डवाय-पडियाए अणुपविट्ठस्स अहालहुसए उवगरणजाए परिब्भट्ठे सिया,

तं च केई साहम्मिए पासेज्जा, कप्पइ से सागारकडं गहाय जत्थेव अन्नमन्नं पासेज्जा तत्थेव एवं वएज्जा—

प०—इमे भे अज्जो ! किं परिन्नाए ?

उ०—से य वएज्जा—"परिन्नाए" तस्सेव पडिणिज्जाएयव्वे सिया।

से य वएज्जा—"नो परिन्नाए" तं नो अप्पणा परिभुंजेज्जा, नो अन्नमन्नस्स दावए एगंते बहुफासुए थण्डिले परिट्ठवेयव्वे सिया।

निग्गंथस्स णं बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा निक्खन्तस्स अहालहुसए उवगरणजाए परिब्भट्ठे सिया,

तं च केई साहम्मिए पासेज्जा, कप्पइ से सागारकडं गहाय जत्थेव अन्नमन्नं पासेज्जा तत्थेव एवं वएज्जा—

प०—"इमे भे अज्जो ! किं परिन्नाए ?

उ०—से य वएज्जा—"परिन्नाए" तस्सेव पडिणिज्जाएयव्वे सिया।

से य वएज्जा—"नो परिन्नाए" तं नो अप्पणा परिभुंजेज्जा, नो अन्नमन्नस्स दावए एगंते बहुफासुए थण्डिले परिट्ठवेयव्वे सिया।

निग्गंथस्स णं गामाणुगामं दूइज्जमाणस्स अन्नयरे उवगरणजाए परिब्भट्ठे सिया,

२९२. निर्ग्रन्थ गृहस्थ के घर में आहार के लिए प्रवेश करे और कहीं पर उसका कोई लघु उपकरण गिर जाए—

उस उपकरण को यदि कोई साधर्मिक श्रमण देखे तो—"जिसका यह उपकरण है उसे दे दूंगा" इस भावना से लेकर जाए और जहाँ किसी श्रमण को देखे वहाँ इस प्रकार कहे—

प्र०—"हे आर्य ! इस उपकरण को पहचानते हो ?"

उ०—वह कहे—"हां पहचानता हूँ" तो उस उपकरण को उसे दे दे।

यदि वह कहे—"मैं नहीं पहचानता हूँ।" तो उस उपकरण का न स्वयं उपभोग करे और न अन्य किसी को दे किन्तु एकांत प्रासुक (निर्जीव) भूमि पर उसे परठ दे।

स्वाध्याय भूमि से या उच्चार-प्रस्रवण भूमि से निकलते हुए निर्ग्रन्थ का कोई लघु उपकरण गिर जाए—

उस उपकरण को यदि कोई साधर्मिक श्रमण देखे तो—"जिसका यह उपकरण है उसे दे दूंगा।" इस भावना से लेकर जाए और जहाँ किसी श्रमण को देखे वहाँ इस प्रकार कहे—

प्र०—"हे आर्य ! इस उपकरण को पहचानते हो ?"

उ०—वह कहे—"हाँ पहचानता हूँ"—तो उस उपकरण को उसे दे दे।

यदि वह कहे "मैं नहीं पहचानता हूँ" तो उस उपकरण का न स्वयं उपयोग करे और न अन्य किसी को दे किन्तु एकान्त प्रासुक भूमि पर उसे छोड़ दे।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए निर्ग्रन्थ का यदि कोई उपकरण गिर जाए—

तं च केई साहम्मिए पासेज्जा, कप्पइ से सागारकडं गहाय दूरमवि अद्धाणं परिवहित्तए, जत्थेव अन्नमन्नं पासेज्जा तत्थेव एवं वएज्जा—

प०—"इमे भे अज्जो ! किं परिन्नाए ?

उ०—से य वएज्जा—"परिन्नाए" तस्सेव पडिणिज्जाएयव्वे सिया।

से य वएज्जा—"नो परिन्नाए" तं नो अप्पणा परिभुंजेज्जा, नो अन्नमन्नस्स दावए, एगंते बहुफासुए थंडिले परिट्ठवेयव्वे सिया।

—वव. उ. ८, सु. १३-१५

उस उपकरण को यदि कोई साधर्मिक श्रमण देखे—तो "जिसका यह उपकरण है उसे दे दूँगा"—इस भावना से वह उस उपकरण को दूर तक भी लेकर जाए और जहाँ किसी श्रमण को देखे वहाँ इस प्रकार कहे-

प्र०—"हे आर्य ! इस उपकरण को पहचानते हो ?"

उ०—वह कहे—"हाँ पहचानता हूँ" तो उस उपकरण को उसे दे दे।

यदि वह कहे "मैं नहीं पहचानता हूँ" तो उस उपकरण को न स्वयं उपभोग करे और न अन्य किसी को दे किन्तु एकान्त प्रासुक भूमि पर उसे छोड़ दे।

(५) उच्चार-प्रस्रवण निक्षेप समिति

परिष्ठापना की विधि—१

परिट्ठावणिया समिई सरूवं—

२९३. उच्चारं पासवणं, खेलं सिंघाण-जल्लियं।
आहारं उवहिं देहं, अन्नं वावि तहाविहं॥
—उत्त. अ. २४, गा. १५

उच्चारं पासवणं, खेलं सिंघाण जल्लियं।
फासुयं पडिलेहित्ता, परिट्ठावेज्ज संजए॥
—दस. अ. ८, गा. १८

परिष्ठापना समिति का स्वरूप—

२९३. उच्चार=मल प्रस्रवण=मूत्र, श्लेष्म, मुंह के अन्दर का कफ, सिंघाणक=नासिका का मल, जल्ल—शरीर पर का मैल, आहार, उपधि, शरीर या उसी प्रकार की दूसरी कोई उत्सर्ग करने योग्य वस्तु का श्रमण स्थण्डिल में उत्सर्ग करे।

संयमी मुनि प्रासुक (जीव रहित) भूमि का प्रतिलेखन कर वहाँ उच्चार, प्रस्रवण, श्लेष्म, नाक के मैल और शरीर के मैल का उत्सर्ग करे।

थंडिलस्स चउभंगो—

२९४. अणावायमसंलोए, अणावाए चेव होइ संलोए।
आवायमसंलोए, आवाए चेव संलोए॥
—उत्त. अ. २४, गा. १६

स्थण्डिल की चौभंगी—

२९४. चार प्रकार के स्थण्डिल—

१. **अनापात-असंलोक**—जहाँ लोगों का आवागमन न हो और वे दूर से भी न देखते हैं।

२. **अनापात-संलोक**—जहाँ लोगों का आवागमन न हो, किन्तु वे दूर से देखते हों।

३. **आपात-असंलोक**—जहाँ लोगों का आवागमन हो, किन्तु वे देखते न हों।

४. **आपात-संलोक**—जहाँ लोगों का आवागमन भी हो, और वे देखते भी हों।

दस लक्खण जुत्त थंडिले परिट्ठवण विहाणो—

२९५. अणावायमसंलोए, परस्सऽणुवघाइए।
समे अज्झुसिरे यावि, अचिरकालकयंमि य॥

विच्छिण्णे दूरमोगाढे, नासन्ने बिलवज्जिए।
तसपाण बीयरहिए, उच्चाराईणि वोसिरे॥
—उत्त. अ. २४, गा. १७-१८

दस लक्षण युक्त स्थंडिल में परठने का विधान—

२९५. १. जहाँ कोई आता नहीं और देखता भी नहीं।

२. जहाँ पर मल-मूत्रादि डालने से किसी व्यक्ति को आघात न पहुँचे।

३. भूमि सम हो।

४. पोलार रहित अर्थात् तृणादि से आच्छादित व दरारों से युक्त न हो।

५. कुछ समय पहले ही अचित हुई हो।

६. विस्तीर्ण हो (कम से कम एक हाथ लम्बी चौड़ी हो)।

७. बहुत गहराई (कम से कम चार अंगुल नीचे) तक अचित्त हो।

८. ग्रामादि से कुछ दूर हो।

९. मूषक, चींटियाँ आदि के बिलों से रहित हो।

१०. त्रस प्राणियों एवं बीजों से रहित हो।

तो वहाँ भिक्षु या भिक्षुणियाँ मल-मूत्रादि का परित्याग करें।

उच्चार-पासवण भूमि पडिलेहण विहाणं—

२६६. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा समाणे वा वसमाणे वा, गामाणुगामं दूइज्जमाणे वा, पुव्वामेव पण्णस्स उच्चार-पासवण-भूमिं पडिलेहेज्जा।

केवली बूया-आयाणमेयं।

अप्पडिलेहियाए णं उच्चार-पासवणभूमिए, भिक्खू वा भिक्खूणी वा राओ वा, वियाले वा, उच्चार-पासवणं परिट्ठवेमाणे पयलेज्ज वा, पवडेज्ज वा, से तत्थ पयलमाणे वा, पवडमाणे वा हत्थं वा-जाव-इंदियजायं लूसेज्जा वा, पाणाणि वा-जाव-सत्ताणि वा अभिहणेज्ज वा-जाव-ववरोवेज्जा वा।

अह भिक्खूणं पुव्वोवदिट्ठा-जाव एस उवएसे, जं पुव्वामेव पण्णस्स उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहेज्जा।

—आ सु. २, अ. २, उ. ३, सु. ४५६

उच्चार-प्रस्रवण भूमि के प्रतिलेखन का विधान—

२६६. भिक्षु या भिक्षुणी स्थिर वास हों, मासकल्प आदि रहे हों या ग्रामानुग्राम विहार करते हुए कहीं ठहरे हों तो प्रज्ञावान् साधु को चाहिए कि वह उच्चार प्रस्रवण भूमि का प्रतिलेखन करे।

केवली भगवान ने कहा है कि (प्रतिलेखन नहीं करना) कर्म-बन्ध का कारण है।

(क्योंकि) भिक्षु या भिक्षुणी रात्रि में या विकाल में अप्रतिलेखित भूमि में मल-मूत्रादि का परिष्ठापन करता हुआ फिसल सकता है या गिर सकता है। फिसलने या गिर पड़ने से उसके हाथ—**यावत्**—किसी भी अंगोपांग में चोट लग सकती है। वहाँ स्थित प्राणी—**यावत्**—सत्त्व का हनन हो सकता है—**यावत्**—वे मर सकते हैं।

इसलिए भिक्षु को पहले से ही यह प्रतिज्ञा—**यावत्**—उपदेश दिया है कि प्रज्ञावान् साधु पहले से ही मल-मूत्र परिष्ठापन भूमि की प्रतिलेखना करे।

उच्चारेण उब्बाहिज्जमाणे करणिज्ज विही—

२६७. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा उच्चारपासवण-किरियाए उब्बाहिज्जमाणे सयस्स पायपुंछणस्स[1] असतीए ततो पच्छा साहम्मियं जाएज्जा। —आ. सु. २, अ. १०, सु. ६४५

मल-मूत्र की प्रबल बाधा होने पर करने की विधि—

२६७. भिक्षु या भिक्षुणी मल-मूत्र की प्रबल बाधा होने पर अपने पादप्रोञ्छनक के अभाव में साधर्मिक साधु से उसकी याचना करे।

उच्चाराईणं परिट्ठवण विही—

२६८. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा सयपात्तं वा परपात्तं वा गहाय से तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा, अणावायंसि, असंलोयंसि, अप्पपाणंसि-जाव-मक्कडासंताणयंसि आहारामंसि वा उवस्सयंसि वा ततो संजयामेव उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

उच्चार-पासवणं वोसिरित्ता से तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा अणावायंसि-जाव-मक्कडासंताणयंसि अहारामंसि[2] झामथंडिलंसि वा-जाव-अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि अचित्तंसि ततो संजयामेव उच्चार-पासवणं परिट्ठवेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १०, सु. ६६७

मल-मूत्रादि को परठने की विधि—

२६८. (उच्चार प्रस्रवण विसर्जन योग्य स्थण्डिल न मिले तब) भिक्षु या भिक्षुणी स्वपात्रक (स्वभाजन) या परपात्रक (दूसरे का भाजन) लेकर उपाश्रय या बगीचे के एकान्त स्थान में चला जाए, जहाँ पर कोई आता-जाता न हो और कोई देखता न हो तथा प्राणी—**यावत्**—मकड़ी के जालों से रहित हो, वहाँ यतनापूर्वक मल-मूत्र विसर्जन करे।

विसर्जन करके उस पात्र को लेकर एकान्त स्थान में जाए, जहाँ कोई आता-जाता न हो—**यावत्**—मकड़ी के जाले न हों, ऐसी बगीचे के पास की भूमि में, दग्ध अचित्त भूमि में—**यावत्**—इसी प्रकार की अन्य अचित्त भूमि में यतनापूर्वक मल-मूत्र का परिष्ठापन करे।

समणसरीर परिट्ठवण उवगरणगहण विही—

२६९. भिक्खू य राओ वा वियाले वा आहच्च वीसुंभेज्जा तं च

श्रमण के मृत शरीर को परठने की और उपकरणों को ग्रहण करने की विधि—

२६९. यदि कोई भिक्षु रात्रि में या विकाल में मर जाय तो उस

१ 'पायपुंछणं''—पादपुञ्छनसमाध्यादावुच्चारादिकं कुर्यात्—पादपुंछनसमाध्यादिकमिति—टीकाकार ने ''पादपुञ्छनक'' शब्द का अर्थ 'समाधि पात्र आदि' किया है। जो आज भी व्यवहार में ''समाधिया'' शब्द प्रचलित है।

—आ. टीका. सु. १६५ की वृत्ति पत्र ४०६ (पृ. २७३)

२ बगीचे के पास की स्थंडिल योग्य भूमि में।

सरीरगं केइ वेयावच्चकरे भिक्खू इच्छेज्जा एगंते बहुफासुए पएसे परिट्ठवेत्तए।

अत्थि य इत्थ केइ सागारियसंतिए उवगरणजाए अचित्ते परिहरणारिहे कप्पइ से सागारकडं गहाय तं सरीरगं एगंते बहुफासुए पएसे परिट्ठवेत्ता तत्थेव उवनिक्खिवियव्वे सिया।

—कप्प. उ. ४, सु. २९

मृत भिक्षु के शरीर को कोई वैयावृत्य करने वाला साधु एकान्त में सर्वथा अचित्त प्रदेश में परठना चाहे उस समय—

यदि वहाँ उपयोग में आने योग्य गृहस्थ का कोई अचित्त उपकरण (वहन योग्य काष्ठ) हो तो उसे पुनः लौटाने का कहकर ग्रहण करे और उससे उस मृत भिक्षु के शरीर को एकान्त और सर्वथा अचित्त प्रदेश पर परठ कर उस वहन-काष्ठ को यथास्थान रख देना चाहिए।

गामाणुगामं दूइज्जमाणे भिक्खू य आहच्च वीसुंभेज्जा, तं च सरीरगं केइ साहम्मिए पासेज्जा, कप्पइ से तं सरीरगं "मा सागारियं" त्ति कट्टु एगंते अचित्ते बहुफासुए थंडिल्ले पडिलेहित्ता पमज्जित्ता परिट्ठवेत्तए।

ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ भिक्षु यदि अकस्मात मार्ग में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाए और उसके शरीर को कोई श्रमण देखे और यह जान ले कि यहाँ कोई गृहस्थ नहीं है तो उस मृत श्रमण के शरीर को एकान्त निर्जीव भूमि में प्रतिलेखन व प्रमार्जन करके परठना कल्पता है।

अत्थि य इत्थ केइ साहम्मिय संतिए उवगरणजाए परिहरणारिहे कप्पइ से सागारकडं गहाय दोच्चंपि ओग्गहं अणुन्नवेत्ता परिहारं परिहरित्तए। —वव. उ. ७, सु. २१

यदि उस मृत श्रमण के कोई उपकरण उपयोग में लेने योग्य हों तो उन्हें सागार कृत ग्रहण कर पुनः आचार्यादि की आज्ञा लेकर उपयोग में लेना कल्पता है।

परिष्ठापना का निषेध—२

उद्देसियाई थंडिले उच्चाराईणं परिट्ठवण-णिसेहो—

उद्देशिक आदि स्थंडिल में मल-मूत्रादि के परठने का निषेध—

३००. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से ज्जं पुण थंडिलं जाणेज्जा अस्सिंपडियाए—

एगं साहम्मियं समुद्दिस्स—

बहवे साहम्मिया समुद्दिस्स—

एगं साहम्मिणिं समुद्दिस्स,

बहवे साहम्मिणीओ समुद्दिस्स

बहवे समण, माहण, अतिहि, किवण, वणीमगे पगणिय पगणिय समुद्दिस्स पाणाइं-जाव-सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स -जाव-चेएइ,

तहप्पगारं थंडिलं पुरिसंतरकडं वा, अपुरिसंतरकडं वा जाव णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १०, सु. ६४८

३००. भिक्षु या भिक्षुणी यदि इस प्रकार का स्थण्डिल जाने कि किसी गृहस्थ ने अपने लिये न बनाकर—

एक साधर्मिक साधु के लिए,

बहुत से साधर्मिक साधुओं के लिए,

एक साधर्मिणी साध्वी के लिए,

बहुत सी साधर्मिणी साध्वियों के लिए तथा

बहुत से श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, दरिद्री या भिखारियों को गिन-गिनकर उनके उद्देश्य से प्राणी—**यावत्**—सत्वों का समारम्भ करके स्थंडिल बनाया है—**यावत्**—देता है,

वह पुरुषान्तरकृत हो या पुरुषान्तरकृत न हो—**यावत्**—उस स्थण्डिल भूमि में मल-मूत्र विसर्जन न करे।

परिकम्म कए थंडिले उच्चाराईणं परिट्ठवणणिसेहो—

परिकर्म किये हुए स्थंडिल में मल-मूत्रादि के परठने का निषेध—

३०१. से भिक्खू वा, भिक्खूणी वा से ज्जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—अस्सिंपडियाए कीयं वा, कारियं वा, पामिच्चियं वा, छन्नं

३०१. भिक्षु या भिक्षुणी इस प्रकार का स्थण्डिल जाने कि गृहस्थ ने साधु के लिये खरीदा है, बनवाया है, उधार लिया है, उस पर

वा, घट्ठं वा, मट्ठं वा, लित्तं वा, समट्ठं वा, संपधूवितं वा, अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।   —आ. सु. २, अ. १०, सु. ६५०

छप्पर छाया है या छत डाली है, उसे सम किया है, कोमल या चिकना बना दिया है, उसे लीपा पोता है, संवारा है, धूप आदि पदार्थों से सुगन्धित किया है अथवा अन्य भी इस प्रकार के आरम्भ समारम्भ करके तैयार किया है तो उस प्रकार के स्थंडिल पर भिक्षु मल-मूत्र विसर्जन न करे।

विविह ठाणेसु उच्चाराईणं परिट्ठवणणिसेहो—

विभिन्न स्थानों में मल-मूत्रादि के परठने का निषेध—

३०२. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—इह खलु गाहावती वा-जाव-कम्मकरीओ वा, कंदाणि वा-जाव-हरियाणि वा, अंतातो वा बाहिं णीहरति बहियाओ वा अंतो साहरति, अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

३०२. भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जहाँ कि—गृहपति—यावत्—नौकरानियाँ कन्द,—यावत्—हरी वनस्पतियों को अन्दर से बाहर ले जा रहे हैं या बाहर से अन्दर ले जा रहे हैं, अथवा अन्य भी उसी प्रकार की स्थण्डिल पर मल-मूत्र विसर्जन न करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—खंधंसि वा, पीढंसि वा, मंचंसि वा, मालंसि वा, अट्टंसि वा, पासादंसि वा, अण्णतरंसि वा, तहप्पगारंसि वा थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी ऐसे स्थण्डिल को जाने जो कि स्तम्भगृह, चबूतरा, मचान, माला, अटारी, महल या अन्य भी इस प्रकार का कोई स्थान है वहाँ पर मल-मूत्र विसर्जन न करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—अणंतरहियाए पुढवीए-जाव-मक्कडासंताणयंसि, अण्णतरंसि वा, तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी ऐसे स्थण्डिल को जाने, जो कि सचित्त पृथ्वी के निकट है—यावत्—मकड़ी के जालों से युक्त है एवं अन्य भी इसी प्रकार का स्थण्डिल है वहाँ पर मल-मूत्र विसर्जन न करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुणं थंडिलं जाणेज्जा—इह खलु गाहावती वा-जाव-कम्मकरीओ वा कंदाणि वा-जाव-हरियाणि वा परिसाडेंसु वा परिसाडंति वा परिसाडिस्संति वा, अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने कि जहाँ पर गृहस्थ या नौकरानियों ने कंद—यावत्—हरियाली आदि फैलाई है, फैला रहे हैं, फैलायेंगे अथवा अन्य भी इस प्रकार का स्थन्डिल हो वहाँ पर मल-मूत्र का त्याग न करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—इह खलु गाहावती वा-जाव-कम्मकरीओ वा, सालीणि वा वीहीणि वा, मुग्गाणि वा, मासाणि वा तिलाणि वा, कुलत्थाणि वा, जवाणि वा, जवजवाणि वा, पइरिंसु वा, पइरंति वा, पइरिस्संति वा, अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने कि—जहाँ पर गृहस्थ—यावत्—नौकरानियों ने शाली, व्रीहि (धान), मूंग, उड़द, तिल, कुलत्थ, जौ और ज्वार आदि बोए हैं, बो रहे हैं या बोएँगे, अथवा अन्य भी इस प्रकार की स्थण्डिल हो वहाँ मल-मूत्र का विसर्जन न करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—आमोयाणि वा, घसाणि वा, भिलुयाणि वा, विज्जलाणि वा, खाणुयाणि वा, कडवाणि वा, पगत्ताणि वा, दरीणि वा, पदुग्गाणि वा, समाणि वा, विसमाणि वा, अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने कि, जहाँ पर कचरे के ढेर हों, भूमि फटी हुई या पोली हो, भूमि पर दरारें पड़ी हों, ठूँठ हों, ईख के डंडे हों, बड़े-बड़े गहरे गड्डे हों, गुफायें हों, किले की दीवार हों, सम-विषम स्थान हों अथवा अन्य भी इसी प्रकार के ऊबड़-खाबड़ स्थण्डिल पर मल-मूत्र विसर्जन न करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—माणुसरंधणाणि वा, महिसकरणाणि वा, वसभकरणाणि वा, अस्सकरणाणि वा, कुक्कुडकरणाणि वा, मक्कडकरणाणि वा

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जहाँ मनुष्यों के भोजन पकाने के चूल्हे आदि हों, अथवा भैंस, बैल, घोड़ा, मुर्गा या बन्दर, लावक पक्षी, बत्तक, तीतर, कबूतर,

लावयकरणाणि वा, वट्टयकरणाणि वा, तित्तिरकरणाणि वा, कवोतकरणाणि वा, कपिंजलकरणाणि वा, अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

कपिंजल आदि के आश्रय स्थान हों, अथवा अन्य भी इसी प्रकार के स्थान हों तो वहाँ मल-मूत्र विसर्जन न करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—वेहाणसट्ठाणेसु वा, गिद्धपिट्ठट्ठाणेसु वा, तरुपडणट्ठाणेसु वा मेरुपडणट्ठाणेसु वा, विसभक्खणट्ठाणेसु वा, अगणिफंडणट्ठाणेसु वा, अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जहाँ फाँसी पर लटकाने के स्थान हों, गिद्धों का कलेवर खाने का स्थान हो, वृक्ष पर से गिरकर मरने का स्थान हो, पर्वत से झंपापात करके मरने के स्थान हों, विषभक्षण करके मरने के स्थान हों, या आग में गिरने के स्थान हों, अथवा अन्य इस प्रकार के स्थान हों वहाँ पर मल-मूत्र त्याग न करें।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—आरामाणि वा, उज्जाणाणि वा, वणाणि वा, वणसंडाणि वा, देवकुलाणि वा, सभाणि वा, पवाणि वा, अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जैसे कि—बगीचा (उपवन), उद्यान, वन, वनखण्ड, देवकुल, सभा, प्याऊ हो अथवा अन्य भी इस प्रकार के (कोई पवित्र या रमणीय) स्थान हों तो वहाँ मल-मूत्र विसर्जन न करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—अट्टालयाणि वा, चरियाणि वा, दाराणि वा, गोपुराणि वा, अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जैसे कि—कोट की अटारी हो, किले और नगर के बीच के मार्ग हो, द्वार हों, नगर के मुख्य द्वार हों अथवा अन्य भी इस प्रकार के स्थल हों तो वहाँ मल-मूत्र विसर्जन न करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—तिगाणि वा, चउक्काणि वा, चच्चराणि वा, चउमुहाणि वा, अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने कि जहाँ तीन मार्ग मिलते हों, चार मार्ग मिलते हों, अनेक मार्ग मिलते हों, चतुर्मुख स्थान हों, अथवा अन्य भी इस प्रकार के स्थान हों वहाँ मल मूत्र विसर्जन न करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—इंगालडाहेसु वा, खारडाहेसु वा, मडयडाहेसु वा, मडयथूभियासु वा, मडयचेतिएसु वा, अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी ऐसे स्थण्डिल को जाने कि जहाँ लकड़ियाँ जलाकर कोयले बनाये जाते हैं, साजी खार आदि तैयार किये जाते हैं, मुर्दे जलाने के स्थान हैं, मृतक के स्तूप हैं, मृतक के चैत्य हैं, अथवा अन्य भी इस प्रकार के कोई स्थण्डिल हों तो वहाँ पर मल-मूत्र विसर्जन न करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—णदिआयतणेसु वा, पंकायतणेसु वा, ओघायतणेसु वा, सेयणपहंसि वा, अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने कि जो नदी के तट पर बने स्थान हैं, पंकबहुल आयतन हैं, जल प्रवाह के स्थान हैं, जल ले जाने के मार्ग हैं, अथवा अन्य भी इस प्रकार के जो स्थण्डिल हों, वहाँ मल-मूत्र विसर्जन न करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—णवियासु वा मट्टियखाणियासु, णवियासु वा, गोलेहणियासु, गवाणणीसु वा, खाणीसु वा, अण्णतरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने कि मिट्टी की नई खानें हैं, नई हल चलाई भूमि है, गायों के चरने की भूमि है, अन्य खानें हैं, अथवा अन्य इस प्रकार की कोई स्थण्डिल हों तो वहाँ मल-मूत्र विसर्जन न करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—डागवच्चंसि वा, सागवच्चंसि वा, मूलगवच्चंसि वा, हत्थंकुरवच्चंसि वा, अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जहाँ डाल-प्रधान शाक के खेत हैं, पत्र-प्रधान शाक के खेत हैं, मूली गाजर के खेत हैं, हस्तंकुर वनस्पति विशेष के खेत हैं, अथवा अन्य भी उस प्रकार के स्थल हैं तो वहाँ पर मल-मूत्र विसर्जन न करे।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—असणवणंसि वा, सणवणंसि वा, धायइवणंसि वा, केयइ-

भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने, जहाँ बीजक वृक्ष का वन है; पटसन का वन है, धातकी (आंवला) वृक्ष का

वर्णंसि वा, अंबवणंसि वा, असोगवणंसि वा, णागवणंसि वा, पुन्नागवणंसि वा, अण्णयरेसु वा तहप्पगारेसु पत्तोवएसु वा, पुप्फोवएसु वा, फलोवएसु वा, बीओवएसु वा, हरितोवएसु वा णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १०, सु. ६५०-६६६

वन है, केवड़े का उपवन है, आम्रवन है, अशोक वन है, नागवन है, या पुन्नागवृक्षों का वन है, अथवा अन्य भी इस प्रकार के स्थण्डिल जो पत्रों, पुष्पों, फलों, बीजों या हरियाली से युक्त हों, उनमें मल-मूत्र विसर्जन न करे।

◆◆

परिष्ठापना के विधि-निषेध—३

फासुय-अफासुय थंडिले परिट्ठवण विहि-णिसेहो—

३०३. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—सअंडं-जाव-मक्कडासंताणयं तहप्पगारंसि थंडिलंसि णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—अप्पंडं-जाव-मक्कडासंताणयं तहप्पगारंसि थंडिलंसि उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १०, सु. ६४६-६४७

प्रासुक-अप्रासुक स्थण्डिल में परठने का विधि-निषेध—

३०३. भिक्षु या भिक्षुणी ऐसी स्थण्डिल भूमि को जाने, जो कि अण्डों—यावत्—मकड़ी के जालों से युक्त है तो उस प्रकार के स्थण्डिल पर मल-मूत्र का विसर्जन न करे।

भिक्षु या भिक्षुणी ऐसी स्थण्डिल भूमि को जाने, जो अण्डे रहित—यावत्—मकड़ी के जालों से रहित है तो उस प्रकार के स्थण्डिल पर मल-मूत्र विसर्जन कर सकता है।

समण माहणाई उद्देसिय थंडिले परिट्ठवण विहि-णिसेहो—

३०४. से भिक्खू वा भिक्खूणी वा से जं पुण थंडिलं जाणेज्जा—बहवे समण-माहण अतिही-किवण-वणीमग-समुद्दिस्स पाणाइं-जाव-सत्ताइं-समारम्भ-जाव-चेतेति, तहप्पगारं थंडिलं अपुरिसंतरकडं-जाव-अणासेवियं, णो उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

अह पुणेवं जाणेज्जा पुरिसंतरकडं-जाव-आसेवियं, तओ संजयामेव उच्चार-पासवणं वोसिरेज्जा।

—आ. सु. २, अ. १०, सु. ६४९

श्रमण-ब्राह्मण के उद्देश्य से बनी स्थण्डिल में परठने का विधि-निषेध—

३०४. भिक्षु या भिक्षुणी यदि ऐसे स्थण्डिल को जाने कि गृहस्थ ने बहुत से शाक्यादि श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण या भिखारियों के उद्देश्य से प्राणी—यावत्—सत्वों का समारम्भ करके—यावत्—बनाया है तो उस प्रकार की स्थण्डिल भूमि अपुरुषान्तरकृत—यावत्—अनासेवित है तो उस में मल-मूत्र का विसर्जन न करे।

यदि वह जाने कि पुरुषान्तरकृत—यावत्—आसेवित हो गई है तो उस प्रकार की स्थण्डिल भूमि में मल-मूत्र विसर्जन करे।

◆◆

निषिद्ध परिष्ठापना सम्बन्धी प्रायश्चित्त—४

णिसिद्धठाणेसु उच्चाराई-परिट्ठवणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

३०५. (१) जे भिक्खू गिहंसि वा गिह-मुहंसि वा, गिह-दुवारियंसि वा, गिह-पडिदुवारियंसि वा, गिहेलुयंसि वा, गिहंगणंसि वा, गिह-वच्चंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

(२) जे भिक्खू मडग-गिहंसि वा, मडग-छारियंसि वा, मडग-थूभियंसि वा, मडगासयंसि वा, मडग-लेणंसि वा, मडग-वच्चंसि वा, उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

(३) जे भिक्खू इंगाल-दाहंसि वा, खार-दाहंसि वा, गात-दाहंसि वा, तुसदाहंसि वा, भुसदाहंसि वा, उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

(४) जे भिक्खू अभिणवियासु वा गोलेहणियासु, अभिणवियासु वा मट्टिया-खाणिसु, परिभुज्जमाणियासु वा, अपरिभुज्जमाणियासु वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

(५) जे भिक्खू सेयायणंसि वा, पंकंसि वा, पणगंसि वा, उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

(६) जे भिक्खू उंबर-वच्चंसि वा, णग्गोह-वच्चंसि वा, असोत्थ-वच्चंसि व, पिलक्खु-वच्चंसि वा, उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

(७) जे भिक्खू डाग-वच्चंसि वा, साग-वच्चंसि वा, मूलय-वच्चंसि व,, कोत्थुंभरि-वच्चंसि वा, खार-वच्चंसि वा, जीरय-वच्चंसि वा, दमण-वच्चंसि वा, मरुग-वच्चंसि वा, उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

(८) जे भिक्खू इक्खु-वणंसि वा, साल-वणंसि वा, कुसुंभ-वणंसि वा, कप्पास-वणंसि वा, उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

(९) जे भिक्खू असोग-वणंसि वा, सत्तिवण्ण-वणंसि वा, चंपग-वणंसि वा, चूय-वणंसि वा, अण्णयरेसु वा, तहप्पगारेसु वा पत्तोवएसु, पुप्फोवएसु, फलोवएसु, बीओवएसु उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

निषिद्ध स्थानों पर उच्चार-प्रस्रवण परिष्ठापन के प्रायश्चित्त सूत्र—

३०५. जो भिक्षु घर में, घर के मुँह पर, घर के द्वार पर, घर के प्रतिद्वार पर, घर के द्वार के मध्य के स्थान में, घर के आंगन में, घर की शेष भूमि में मल-मूत्र परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु मुर्दा घर में, मुर्दे की राख पर, मुर्दे के स्तूप पर, मुर्दे के आश्रय स्थान पर, मुर्दे के लयन पर, मुर्दे के स्थण्डिल पर, श्मशान के चौतरफ की भूमि पर मल-मूत्र परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु कोयले बनाने की भूमि पर, सज्जी क्षार आदि बनाने की भूमि पर, पशुओं को डामने की भूमि पर, तुस जलाने की भूमि पर, भूसा (अनाज का छिलका) जलाने की भूमि पर मल-मूत्र परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु नवीन हल चलाई भूमि में या नवीन मिट्टी की खान में, जहाँ कि लोग मल-मूत्र के लिये जाते हों या नहीं जाते हों, वहाँ मल-मूत्र परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु नमी वाली भूमि पर, कीचड़ पर, पनक पर, मल-मूत्र परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु उंबर (गूलर), वड, पीपल और पीपली के फूल संग्रह करने के स्थान पर मल-मूत्र परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु भाजी, साग, मूले, कोत्थुंबर, क्षाणा, जीरा, दमणक (सुगन्धित वनस्पति विशेष) मरुग (वनस्पति विशेष) के संग्रह के स्थान या उत्पन्न होने की वाडियों में मल-मूत्र परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु ईक्षु, शालि, कुसुंभ या कपास के खेत में मल-मूत्र परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु अशोक वन में, सप्तपर्ण वन में, चंपक वन में, आम्रवन में, या अन्य भी ऐसे स्थल जो कि पत्र, पुष्प, फल और बीज आदि से युक्त हों वहाँ मल-मूत्र परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ ३, सु. ७१-७९

जे भिक्खू खुड्डागंसि थंडिलंसि उच्चार पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि उ. ४, सु. १०४

जे भिक्खू आगंतागारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइ-कुलेसु वा, परियावसहेसु वा, उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू उज्जाणंसि वा, उज्जाणगिहंसि वा, उज्जाण-सालंसि वा, निज्जाणंसि वा, निज्जाणगिहंसि वा, निज्जाण-सालंसि वा उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू अट्टंसि वा, अट्टालयंसि वा, चरियंसि वा, पागा-रंसि वा, दारंसि वा, गोपुरंसि वा, उच्चार-पासवणं परिट्ठ-वेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू दगमग्गंसि वा, दगपहंसि वा, दगतीरंसि वा, दगट्ठाणंसि वा, उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू सुन्नगिहंसि वा, सुन्नसालंसि वा, भिन्नगिहंसि वा, भिन्नसालंसि वा, कूडागारंसि वा, कोट्ठागारंसि वा, उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू तणगिहंसि वा, तणसालंसि वा, तुसगिहंसि वा, तुससालंसि वा, भुसगिहंसि वा, भुससालंसि वा, उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू जाणसालंसि वा, जाणगिहंसि वा, जुग्गगिहंसि वा, जुग्गसालंसि वा, उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू पणियसालंसि वा, पणियगिहंसि वा, परियासालंसि वा, परियागिहंसि वा, कुवियसालंसि वा, कुवियगिहंसि वा, उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू गोणसालंसि वा, गोणगिहंसि वा, महाकुलंसि वा, महागिहंसि वा, उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. १५, सु. ६६-७४

जे भिक्खू अणंतरहियाए पुढवीए उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

जो भिक्षु छोटी-सी स्थण्डिल भूमि में उच्चार प्रस्रवण परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

जो भिक्षु धर्मशालाओं में, उद्यानों में, गाथापति कुलों में या आश्रमों में मल-मूत्र का परित्याग करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु उद्यान में, उद्यान गृह में, उद्यानशाला में, नगर के बाहर बने हुए स्थान में, नगर के बाहर बने हुए घर में, नगर के बाहर बनी हुई शाला में, मल-मूत्र का परित्याग करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु चबूतरे पर, अट्टालिका में, चरिका में, प्राकार पर, द्वार में, गोपुर में, मल-मूत्र का परित्याग करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु जल मार्ग में, जल पथ में, जलाशय के तीर पर, जल स्थान पर, मल-मूत्र का परित्याग करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु शून्य गृह में, शून्य शाला में, टूटे घर में, टूटी शाला में, कूटागार में, कोष्ठागार में, मल-मूत्र का परित्याग करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु तृण गृह में, तृणशाला में, तुस गृह में, तुसशाला में, भुस (छिलके) गृह में, भुसशाला में, मल-मूत्र का परित्याग करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु यान शाला में, यान गृह में, वाहन शाला में, वाहन गृह में, मल-मूत्र का परित्याग करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु विक्रयशाला में, विक्रय गृह में, परिव्राजकशाला में, परिव्राजक गृह में, कर्मशाला में, कर्म गृह में, मल-मूत्र का परित्याग करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु बैलशाला में, बैल गृह में, महाकुल में, महागृह में मल-मूत्र का परित्याग करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

जो भिक्षु सचित्त पृथ्वी के निकट की भूमि पर मल-मूत्र का परित्याग करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जे भिक्खू ससिणिद्धाए पुढवीए उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू ससरक्खाए पुढवीए उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू मट्टियाकडाए पुढवीए उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू चित्तमंताए पुढवीए उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू चित्तमंताए सिलाए उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू चित्तमंताए लेलुए उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू कोलावासंसि वा दारुए जीवपइट्ठिए, सअंडे-जाव-मक्कडा-संताणए, उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू थूणंसि वा, गिहेलुयंसि वा, उसुयालंसि वा, कामजलंसि वा, दुब्बद्धे, दुन्निक्खित्ते, अनिकंपे चलाचले, उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू कुलियंसि वा, भित्तिसि वा, सिलंसि वा, लेलुंसि वा, अंतलिक्खजायंसि वा दुब्बद्धे, दुन्निक्खित्ते अणिकंपे, चलाचले उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू खंधंसि वा, फलहंसि वा, मंचंसि वा, मंडवंसि वा, मालंसि वा, पासायंसि वा, हम्मियतलंसि वा, अंतलिक्खजायंसि वा, दुब्बद्धे, दुन्निक्खित्ते, अनिकंपे चलाचले उच्चार-पासवणं परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. १६, सु. ४१-५१

जो भिक्षु सस्निग्ध पृथ्वी पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु सचित्त रज युक्त पृथ्वी पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है, परठवाता है, या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु सचित्त मिट्टी बिखरी हुई पृथ्वी पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु सचित्त पृथ्वी पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु सचित्त शिला पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु सचित्त शिलाखण्ड आदि पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु दीमक लगे जीव युक्त काष्ठ पर तथा अण्डे —यावत्—मकड़ी के जालों से युक्त स्थान पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु दुर्बद्ध, दुर्निक्षिप्त, अनिष्कम्प या चलाचल, ठूंठ पर, देहली पर, ओखली पर या स्नान पीठ पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु दुर्बद्ध, दुर्निक्षिप्त अनिष्कम्प या चलाचल मिट्टी की दीवार पर, ईंट आदि की भित्ति पर, शिला पर या शिला खण्ड-पत्थर आदि अन्तरिक्षजात स्थानों पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु दुर्बद्ध, दुर्निक्षिप्त, अनिष्कम्प या चलाचल स्कन्ध, टांड, मंच, मण्डप, माला, महल या हवेली के छत आदि अन्तरिक्षजात स्थानों पर उच्चार-प्रस्रवण परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

अण्णउत्थियाइ सद्धिं थंडिल-गमण-पायच्छित्त सुत्तं—

३०६. जे भिक्खू अण्णउत्थिएणं वा गारत्थिएण वा परिहारिओ वा, अपरिहारिएण सद्धिं बहिया विहार-भूमिं वियार-भूमिं वा णिक्खमइ वा पविसइ वा णिक्खमंतं वा पविसंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ।

—नि. उ. २, सु. ४१

अन्यतीर्थिकादि के साथ स्थंडिल जाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

३०६. जो भिक्षु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ के साथ अथवा पारिहारिक साधु अपरिहारिक के साथ उपाश्रय से बाहर की स्वाध्याय भूमि में या स्थण्डिल में प्रवेश करता है या निष्क्रमण करता है, प्रवेश कराता है या निष्क्रमण कराता है, प्रवेश करने वाले का या निष्क्रमण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

आउड्डे ठाणे उच्चाराइ परिट्ठवणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

३०७. जे भिक्खू दिया वा राओ वा वियाले वा उच्चार-पासवणेणं

आवृत स्थान में मल-मूत्र परठने जाने का प्रायश्चित्त सूत्र—

३०७. जो भिक्षु दिन में, रात में या विकाल (संध्या में) मल-

उच्चाहिज्जमाणे सपायं गहाय, परपायं वा, जाइत्ता उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता, अणुग्गए सूरिए एडेइ एडेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ३ सु. ८०

उच्चार-पासवण भूमि अपडिलेहणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

३०८. जे भिक्खू साणुप्पए उच्चार-पासवणभूमिं न पडिलेहेइ न पडिलेहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू तओ उच्चार-पासवणभूमिओ न पडिलेहेइ न पडिलेहेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ४, सु. १०२-१०३

उच्चाराइ अविहिए परिट्ठवणस्स पायच्छित्त सुत्तं—

३०९. जे भिक्खू उच्चार-पासवणं अविहीए परिट्ठवेइ, परिट्ठवेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ४, सु. १०५

थंडिल सामायारीणं अकरणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

३१०. जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता न पुंछइ, न पुंछंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता कट्ठेण वा, किलिंचेण वा, अंगुलियाए वा, सलागाए वा, पुंछइ, पुंछंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता णायमइ, णायमंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता तत्थेव आयमइ, आयमंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता अइदूरे आयमइ आयमंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू उच्चार-पासवणं परिट्ठवेत्ता परं तिण्हं णावापूराणं आयमइ, आयमंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं।

—नि. उ. ४, सु. १०६-१११

मूत्र के वेग से बाधित होने पर अपना पात्र लेकर या दूसरे के पात्र की याचना कर उसमें मल-मूत्र त्याग करके जहाँ सूर्य का ताप नहीं आता है ऐसे स्थान पर परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्घातिक मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

उच्चार-प्रस्रवण भूमि के प्रतिलेखन न करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

३०८. जो भिक्षु चतुर्थ प्रहर में उच्चार-प्रस्रवण (मल-मूत्र त्यागने) की भूमि का प्रतिलेखन नहीं करता है, नहीं करवाता है या नहीं करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु तीन उच्चार-प्रस्रवण भूमियों का प्रतिलेखन नहीं करता है, नहीं करवाता है या नहीं करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे उद्घातिक मासिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अविधि से मल-मूत्रादि परठने का प्रायश्चित्त सूत्र—

३०९. जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण (मल-मूत्र) को अविधि से परठता है, परठवाता है या परठने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

स्थंडिल सामाचारी के पालन नहीं करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

३१०. जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण का त्याग करके (मलद्वार को) नहीं पूंछता है, नहीं पुंछवाता है या नहीं पूंछने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण का त्याग करके काष्ट से, बांस की खपच्ची से, अंगुली से या शलाका से, पूंछता है, पूंछवाता है या पूंछने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण का त्याग करके आचमन नहीं करता है, नहीं करवाता है या नहीं करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु उच्चार प्रस्रवण का त्याग कर वहीं आचमन करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण का त्याग करके अधिक दूर जाकर आचमन करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु उच्चार-प्रस्रवण का त्याग करके तीन से अधिक नावापूर (पसली) से आचमन करता है, करवाता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

गुप्ति

गुप्ति-अगुप्ति—१

गुत्तिओ सरूवं—

३११. एयाओ पंचसमिईओ, समासेण वियाहिया।
एत्तो य तओ गुत्तीओ, वोच्छामि अणुपुव्वसो॥
—उत्त. अ. २४, गा. १९

गुत्ती नियत्तणे वुत्ता असुभत्थेसु सव्वसो।
—उत्त. अ. २४, गा. २६ (२)

गुप्ति का स्वरूप—

३११. ये पाँच समितियाँ संक्षेप में कही गई हैं। यहाँ से क्रमशः तीन गुप्तियाँ कहूँगा।

अशुभ व्यापारों से सर्वथा निवृत्ति को गुप्ति कहा है।

तिगुत्तो संजओ—

३१२. हत्थसंजए पायसंजए, वायसंजए संजइंदिए।
अज्झप्परए सुसमाहियप्पा, सुत्तत्थं च वियाणइ जे स भिक्खू॥
—दस. अ. १०, गा. १५

त्रिगुप्ति संयत्—

३१२. जो हाथों और पैरों को यतनापूर्वक प्रवृत्त करता है, वाणी में पूर्ण विवेक रखता है, इन्द्रियों को पूर्ण संयत रखता है, अध्यात्म भाव में लीन रहता है, भली-भाँति समाधिस्थ है और जो सूत्र व अर्थ का यथार्थ रूप से ज्ञाता है वह भिक्षु है।

गुत्ति अगुत्तिप्पगारा—

३१३. तओ गुत्तिओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
(१) मणगुत्ती, (२) वइगुत्ती, (३) कायगुत्ती[1]।
संजयमणुस्साणं तओ गुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
(१) मणगुत्ती, (२) वइगुत्ती, (३) कायगुत्ती।
तओ अगुत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
(१) मणअगुत्ती, (२) वइअगुत्ती, (३) कायअगुत्ती[2]।
—ठाणं. अ. ३, उ. १, सु. १३४

गुप्ति तथा अगुप्ति के प्रकार—

३१३. गुप्ति तीन प्रकार की कही गई है—
१. मन गुप्ति, २. वचन गुप्ति और ३. कायगुप्ति।
संयत मनुष्यों के तीनों गुप्तियाँ कही गई है—
१. मन गुप्ति, २. वचन गुप्ति और ३. कायगुप्ति।
अगुप्ति तीन प्रकार की कही गई है—
१. मन अगुप्ति, २. वचन-अगुप्ति, ३. काय-अगुप्ति।

मन-गुप्ति—२

मणगुत्ती सरूवं—

३१४. संरम्भ समारम्भे आरम्भे य तहेव य।
मणं पवत्तमाणं तु नियत्तेज्ज जयं जई॥
—उत्त. अ. २४, गा. २१

मन गुप्ति का स्वरूप—

३१४. यतनाशील यति संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवर्तमान मन का निवर्तन करे।

---

१ आव० अ० ४, सु० २२।

२ मन, वचन और काया के निग्रह को गुप्ति और अनिग्रह को अगुप्ति कहते हैं।

चउव्विहा मणगुत्ती—

३१५ सच्चा[1] तहेव मोसा[2] य, सच्चा मोसा[3] तहेव य।
चउत्थी असच्चमोसा य[4] मणगुत्ती चउव्विहा ॥
—उत्त. अ. २४, गा. २०

चार प्रकार की मन-गुप्ति—

३१५. सत्या, मृषा, सत्यामृषा और चौथी असत्यामृषा—इस प्रकार मनो-गुप्ति के चार प्रकार हैं।

मणस्स दुट्ठऽस्सोवमा—

३१६. प०-अयं साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
जंसि गोयम ! आरूढो, कहं तेण न हीरसि ? ॥

उ०—पधावन्तं निगिण्हामि, सुयरस्सीसमाहियं।
न मे गच्छइ उम्मग्गं, मग्गं च पडिवज्जइ ॥

प०—आसे य इइ के वुत्ते ? केसी गोयममब्बवी।
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥

उ०—मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
तं सम्मं निगिण्हामि, धम्मसिक्खाए कन्थगं ॥
—उत्त. अ. २३, गा. ५५-५८

मन को दुष्ट अश्व की उपमा—

३१६. केशीकुमार श्रमण ने गौतम को पूछा—

प्र०—"यह साहसिक, भयंकर, दुष्ट अश्व जो चारों तरफ दौड़ रहा है। गौतम ! तुम उस पर चढ़े हुए हो। फिर भी वह तुम्हें उन्मार्ग पर कैसे नहीं ले जाता है ?"

गणधर गौतम ने इस प्रकार कहा—

उ०—दौड़ते हुए अश्व को मैं श्रुत रश्मि से ("श्रुतज्ञान की लगाम से) वश में करता हूँ। मेरे अधीन हुआ अश्व उन्मार्ग पर नहीं जाता है, अपितु सन्मार्ग पर ही चलता है।"

केशी ने गौतम को पूछा—

प्र०—"अश्व किसे कहा गया है ?"

केशी के पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा—

उ०—"मन ही साहसिक, भयंकर और दुष्ट अश्व है, जो चारों तरफ दौड़ता है। उसे मैं अच्छी तरह वश में करता हूँ। धर्म शिक्षा से वह कन्थक (उत्तम जाति का अश्व) हो गया है।" अथवा उस मन रूपी कंथग (अश्व) को मैं धर्म शिक्षाओं से सम्यग् रूप से वश में करता हूँ।

दस चित्तसमाहिट्ठाणा—

३१७. इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं दसचित्त-समाहिट्ठाणा पण्णत्ता।

प०—कयरे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस चित्तसमाहिट्ठाणा पण्णत्ता ?

उ०- इमे खलु ते थेरेहिं भगवंतेहिं दस चित्तसमाहिट्ठाणा पण्णत्ता। —दसा. द. ५, सु. १-२

"अज्जो !" इति समणे भगवं महावीरे समणा-निग्गंथा य निग्गंथीओ य आमंतित्ता एवं वयासी—

दस चित्तसमाधि स्थान—

३१७. इस आर्हत् प्रवचन में स्थविर भगवन्तों ने दश चित्त-समाधिस्थान कहे हैं।

प्र०—भगवन् ! वे कौन से दस चित्तसमाधिस्थान स्थविर भगवन्तों ने कहे हैं ?

उ०—ये दश चित्तसमाधिस्थान स्थविर भगवन्तों ने कहे हैं। जैसे—

"हे आर्यो !" इस प्रकार आमन्त्रण कर श्रमण भगवान् महावीर निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों से कहने लगे—

---

१ सत्या मनोगुप्ति—सत्य वस्तु का मन में चिन्तन, यथा—जगत् में जीव विद्यमान है।

२ असत्या मनोगुप्ति—असत्य वस्तु का मन में चिन्तन, यथा—जीव नहीं है।

३ सत्या-मृषा मनोगुप्ति—कुछ सत्य और कुछ असत्य वस्तु का मन में चिन्तन, यथा—आम्र आदि नाना प्रकार के वृक्षों को देखकर "यह आम्र वन है" ऐसा चिन्तन करना। वन में आम्र वृक्ष हैं यह तो सत्य चिन्तन है किन्तु पलाश, खदिर, धव आदि नाना प्रकार के वृक्ष भी वन में हैं अतः उक्त चिन्तन असत्य भी है।

४ असत्या अमृषा मनोगुप्ति जो चिन्तन सत्य और असत्य नहीं है, यथा—किसी आदेश या निर्देश का चिन्तन—"हे देवदत्त ! घड़ा ला" या "मुझे अमुक वस्तु लाकर दे" इत्यादि चिन्तन।

"इह खलु अज्जो ! निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा इरिया-समियाणं, भासा-समियाणं, एसणा-समियाणं, आयाणं-भंड-मत्त-निक्खेवणा-समियाणं, उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-परिट्ठावणिया-समियाणं, मण-समियाणं, वय-समियाणं, काय समियाणं, मण-गुत्तीणं वयगुत्तीणं, काय-गुत्तीणं, गुत्तिंदियाणं, गुत्त-बंभयारीणं, आयट्ठीणं, आयहियाणं, आय-जोईणं, आय-परक्कमाणं, पक्खिय-पोसहिएसु समाहिपत्ताणं झियाय-माणाणं इमाइं दस चित्त-समाहि ठाणाइं, असमुप्पण्ण-पुव्वाइं समुप्पज्जेज्जा : तं जहा—

"हे आर्यो ! निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों को, जो ईर्यासमिति वाले, भाषा समिति वाले, एषणासमिति वाले, आदान-भाण्ड-मात्रनिक्षेपणासमिति वाले, उच्चार-प्रस्रवण खेल-सिंघाणक-जल्ल (मैल) की परिष्ठापनासमिति वाले, मनःसमिति वाले, वाक् समिति वाले, कायसमितिवाले, मनोगुप्ति वाले, वचनगुप्ति वाले, कायगुप्ति वाले तथा गुप्तेन्द्रिय, गुप्तब्रह्मचारी, आत्मार्थी, आत्मा का हित करने वाले, आत्मयोगी, आत्मपराक्रमी, पाक्षिक पौषधों में समाधि को प्राप्त और शुभ ध्यान करने वाले मुनियों को ये पूर्व असमुत्पन्न चित्तसमाधि के दस स्थान उत्पन्न हो जाते हैं ।

(१) धम्मचिंता वा से असमुप्पण्णपुव्वा समुप्पज्जेज्जा, सव्वं धम्मं जाणित्तए ।

१. पहिले कभी उत्पन्न नहीं हुई ऐसी धर्म-भावना उत्पन्न हो जाय जिससे वह सर्वश्रेष्ठ धर्म को जान ले ।

(२) सण्णि-जाइ-सरणेण सण्णि-णाणं वा से असमुप्प-ण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा, अप्पणो पोराणियं जाइं सुमरित्तए ।

२. पहले नहीं हुए संज्ञि-जातिस्मरण ज्ञान द्वारा अपने पूर्व जन्मों का स्मरण करले ।

(३) सुमिणदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जेज्जा, अहातच्चं सुमिणं पासित्तए ।

३. पूर्व अदृष्ट यथार्थ स्वप्न दिख जाय ।

(४) देवदंसणे वा से असमुप्पण्ण-पुव्वे समुप्पज्जेज्जा, दिव्वं देविड्ढिं, दिव्वं देवजुइं. दिव्वं देवाणुभावं पासित्तए ।

४. पूर्व अदृष्ट देव-दर्शन हो जाय और दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देव-द्युति और दिव्य देवानुभाव दिख जाय ।

(५) ओहिणाणे वा से असमुप्पण्ण-पुव्वे समुप्पज्जेज्जा, ओहिणा लोगं जाणित्तए ।

५. पहले नहीं हुआ अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाय और उसके द्वारा वह लोक को जान लेवे ।

(६) ओहिदंसणे वा से असमुप्पण्ण-पुव्वे समुप्पज्जेज्जा, ओहिणा लोयं पासित्तए ।

६. पहले नहीं हुआ अवधिदर्शन उत्पन्न हो जाय और उसके द्वारा वह लोक को देख लेवे ।

(७) मणपज्जवनाणे वा से असमुप्पण्ण-पुव्वे समुप्प-ज्जेज्जा, अंतो मणुस्सखित्तेसु अड्ढाइज्जेसु दीव-समुद्देसु सण्णीणं पंचिंदियाणं पज्जत्तगाणं मणोगए भावे जाणित्तए ।

७. पहले नहीं हुआ मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न हो जाय और मनुष्य-क्षेत्र के भीतर अढाई द्वीप दो समुद्र में रहे हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों के मनोगत भावों को जान लेवे ।

(८) केवलणाणे वा से असमुप्पण्ण-पुव्वे समुप्पज्जेज्जा, केवलकप्पं लोयालोयं जाणित्तए ।

८. पहले नहीं हुआ केवलज्ञान उत्पन्न हो जाय और सम्पूर्ण लोक-अलोक को जान लेवे ।

(९) केवलदंसणे वा से असमुप्पण्ण-पुव्वे समुप्पज्जेज्जा, केवलकप्पं लोयालोयं पासित्तए ।

९. पहले नहीं हुआ केवलदर्शन उत्पन्न हो जाय और सम्पूर्ण लोक-अलोक को देख लेवे ।

(१०) केवल-मरणे वा से असमुप्पण्ण-पुव्वे समुप्प-ज्जेज्जा, सव्वदुक्खपहाणाए । —दसा. द. ५, सु. ६

१०. पूर्व अप्राप्त केवल मरण प्राप्त हो जाय तो वह सर्व दुःखों के सर्वथा अभाव को प्राप्त हो जाता है ।

इन दस स्थानों से समाधि (आत्मानन्द) भाव की प्राप्ति होती है ।

संकिलिट्ठचित्तस्स अकिच्चाइं—

३१८. अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे, से केयणं अरिहइ पूरइत्तए ।

व्याकुल चित्तवृत्ति वाले के दुष्कृत्य—

३१८. वह (असंयमी) पुरुष अनेक चित्त वाला है । वह चलनी को जल से भरना चाहता है ।

---

१ (क) ठाणं अ. १०, सु. ७५५ (ख) सम. स. १०, सु. १

से अण्णवहाए, अण्णपरियावाए, अण्णपरिग्गहाए, जणवय-वहाए, जणवयपरियावाए, जणवयपरिग्गहाए ।

—आ. सु. १, अ. ३, उ. २, सु. ११८

वह (तृष्णा की पूर्ति के हेतु व्याकुल मनुष्य) दूसरों के वध के लिए, दूसरों के परिताप के लिए और दूसरों को परिग्रहण के लिए तथा जनपद के वध के लिए, जनपद के परिताप के लिए और जनपद को परिग्रहण के लिए प्रवृत्ति करता रहता है ।

दसविहा समाही—

३१९. दसविधा समाधी पण्णत्ता, तं जहा—

(१) पाणातिवायवेरमणे ।
(२) मुसावायवेरमणे ।
(३) अदिण्णादाणवेरमणे ।
(४) मेहुणवेरमणे ।
(५) परिग्गहवेरमणे ।
(६) इरियासमिति ।
(७) भासासमिति ।
(८) एसणासमिति ।
(९) आयाण-भंड-मत्त-णिक्खेवणासमिति ।
(१०) उच्चार - पासवण -खेल-सिंघाणग-जल्ल-परिट्ठावणिया समिति ।

—ठाणं अ. १०, सु. ७११

दस प्रकार की समाधि—

३१९. समाधि दस प्रकार की कही गई है । जैसे—

१. प्राणातिपात-विरमण ।
२. मृषावाद-विरमण ।
३. अदत्तादान-विरमण ।
४. मैथुन-विरमण ।
५. परिग्रह-विरमण ।
६. ईर्यासमिति ।
७. भाषासमिति ।
८. एषणासमिति ।
९. आदान भाण्ड अमत्र (पात्र) निक्षेपणा समिति ।
१०. उच्चार प्रस्रवण खेल सिंघाण-जल्ल-परिष्ठापना समिति ।

दसविहा असमाही—

३२०. दसविधा असमाधी पण्णत्ता, तं जहा—

(१) पाणातिवाते ।
(२) मुसावाए ।
(३) अदिण्णादाणे ।
(४) मेहुणे ।
(५) परिग्गहे ।
(६) इरियाऽसमिती ।
(७) भासाऽसमिती ।
(८) एसणाऽसमिती ।
(९) आयाण-भंड-मत्त-णिक्खेवणाऽसमिती ।
(१०) उच्चार-पासवण-खेल सिंघाणग-जल्ल-परिट्ठावणियाऽसमिती ।

—ठाणं. अ. १०, सु. ७११

दस प्रकार की असमाधि—

३२०. असमाधि दस प्रकार की कही गई है । जैसे—

१. प्राणातिपात—अविरमण ।
२. मृषावाद—अविरमण ।
३. अदत्तादान—अविरमण ।
४. मैथुन—अविरमण ।
५. परिग्रह—अविरमण ।
६. ईर्या—असमिति ।
७. भाषा—असमिति ।
८. एषणा—असमिति ।
९. आदान—भाण्ड—अमत्र (पात्र) निक्षेप की असमिति ।
१०. उच्चार-प्रस्रवण खेल सिंघाण—जल्ल—परिष्ठापना की असमिति ।

मणगुत्तयाए फलं—

३२१. प०—मणगुत्तयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—मणगुत्तयाए णं जीवे एगग्गं जणयइ । एगग्गचित्ते णं जीवे मणगुत्ते संजमाराहए भवइ ।

—उत्त. अ. २९, सु. ५५

मन को वश में करने का फल—

३२१. प्र०—भन्ते ! मनोगुप्तता (कुशल मन के प्रयोग) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—मनो-गुप्तता से वह एकाग्रता को प्राप्त होता है । एकाग्र-चित्त वाला जीव (अशुभ संकल्पों से) मन की रक्षा करने वाला और संयम की आराधना करने वाला होता है ।

मणसमाहारणयाए फलं—

३२२. प०—मणसमाहारणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

मनसमाधारणा का फल—

३२२. प्र०—भन्ते ! मन-समाधारणा (मन को आगम-कथित भावों में भली-भांति लगाने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०— मणसमाहारणयाए णं एगग्गं जणयइ। एगग्गं जणइत्ता नाणपज्जवे जणयइ। नाणपज्जवे जणइत्ता सम्मत्तं विसोहेइ, मिच्छत्तं च निज्जरेइ।

—उत्त. अ. २९, सु. ५८

उ०— मन-समाधारणा से वह एकाग्रता को प्राप्त होता है। एकाग्रता को प्राप्त होकर ज्ञान-पर्यवों (ज्ञान के विविध प्रकारों) को प्राप्त होता है। ज्ञान-पर्यवों को प्राप्त कर सम्यक्दर्शन को विशुद्ध करता है और मिथ्या-दर्शन को क्षीण करता है।

एगग्गमणसंनिवेसणयाए फलं—

३२३. प० एगग्गमणसंनिवेसणयाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ?

उ०—एगग्गमणसंनिवेसणयाए णं चित्तनिरोहं करेइ॥

—उत्त. अ. २९, सु. २७

मन की एकाग्रता का फल—

३२३. प्र०—भन्ते! एक अग्र (आलम्बन) पर मन को स्थापित करने से जीव क्या प्राप्त करता है?

उ०—एकाग्र-मन की स्थापना से वह चित्त का निरोध करता है।

वचन-गुप्ति—२

वयगुत्ती सरूवं—

३२४. संरम्भ समारम्भे, आरम्भे य तहेव य।
वयं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई[1]॥

—उत्त. अ. २४, गा. २३

वचनगुप्ति का स्वरूप—

३२४. यतनाशील यति संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवर्तमान वचन का निवर्तन करे।

चउव्विहा वइगुत्ती—

३२५. सच्चा तहेव मोसा य, सच्चामोसा तहेव य।
चउत्थी असच्चमोसा, वइगुत्ती चउव्विहा॥

—उत्त. अ. २४, गा. २२

चार प्रकार की वचन गुप्ति—

३२५. सत्या, मृषा, सत्या-मृषा और चौथी असत्या-मृषा-इस प्रकार वचन गुप्ति के चार प्रकार हैं।

वयगुत्तस्स किच्चाइं—

३२६. गुत्तो वईए य समाहिपत्ते, लेसं समाहट्टु परिव्वएज्जा॥

—सूय. सु. १, अ. १०, गा. १५

वचन गुप्त के कृत्य—

३२६. वचन से गुप्त साधु भाव समाधि को प्राप्त कर विशुद्ध लेश्या के साथ संयम में पराक्रम करे।

वइगुत्ति परूवणं—

३२७. से जहेतं भगवया पवेदितं आसुपण्णेण जाणया पासया। अदुवा गुत्ती वइगोयरस्स।

—आ. सु. १, अ. ८, उ. १, सु. २०१

वचनगुप्ति का प्ररूपण—

३२७. जिस प्रकार से आशुप्रज्ञ सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् महावीर ने जो सिद्धान्त कहे हैं उनका उसी प्रकार से प्ररूपण करे अथवा वाणी विषयक गुप्ति से मौन साध कर रहे।

वइगुत्तयाए फलं—

३२८. प०—वयगुत्तयाए णं भन्ते! जीवे किं जणयइ?

उ०—वयगुत्तयाए णं निव्वियारं जणयइ। "निव्वियारेणं जीवे वइगुत्ते अज्झप्पजोगसाहणजुत्ते" यावि भवइ।

—उत्त. अ. २९, गा. ५६

वचन गुप्ति का फल—

३२८. प्र०—भन्ते! वाग्-गुप्तता (कुशल वचन प्रयोग) से जीव क्या प्राप्त करता है?

उ०—वाग्-गुप्तता से वह निर्विकार भाव को प्राप्त होता है। निर्विकार भाव प्राप्त वाग्-गुप्त जीव अध्यात्म-योग के साधन चित्त की एकाग्रता आदि से युक्त हो जाता है।

---

१ संकप्पो संरंभ, परितापकरो भवे समारंभो। आरंभो उद्दवओ, सुद्ध नयाईणं सव्वेसिं॥ —उत्त. अ. २४, टीका
हिंसा का संकल्प संरम्भ, प्राणियों को परिताप (कष्ट) देना समारम्भ, और प्राणियों को उपद्रवित करना आरम्भ है।

वयसमाहारणयाए फलं—

३२९. प०—वयसमाहारणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—वयसमाहारणयाए णं वयसाहारणदंसणपज्जवे विसोहेइ। वयसाहारणदंसणपज्जवे विसोहेत्ता सुलहबोहियत्तं निव्वत्तेइ, दुल्लहबोहियत्तं निज्जरेइ।

—उत्त. अ. २९, सु. ५९

वचन-समाधारणा का फल—

३२९. प्र०—भन्ते ! वाक्-समाधारणा (वाणी को स्वाध्याय में भली-भाँति लगाने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—वाक्-समाधारणा से वह वाणी के विषयभूत दर्शन-पर्यवों (सम्यक्-दर्शन के प्रकारों) को विशुद्ध करता है। वाणी के विषयभूत दर्शन-पर्यवों को विशुद्ध कर बोधि की सुलभता को प्राप्त होता है और बोधि की दुर्लभता को क्षीण करता है।

काय-गुप्ति—४

कायगुत्ती सरूवं —

३३०. संरम्भ समारम्भे, आरम्भे य तहेव य।
काय पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई॥

—उत्त. अ. २४, गा. २५

कायगुप्ति का स्वरूप—

३३०. यतनावान् यति संरंभ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवृत्त होती हुई काया का निवर्तन करे।

कायगुत्ती अणेगविहा—

३३१. ठाणे निसीयणे चेव, तहेव य तुयट्टणे।
उल्लंघण पल्लंघणे, इन्दियाण य जुंजणे॥

—उत्त. अ. २४, गा. २४

कायगुप्ति के अनेक प्रकार—

३३१. खड़े होने में, बैठने में, सोने में, विषम भूमि को उल्लंघन में तथा खड्डा, खाई वगैरह के प्रलंघन करने में और इन्द्रियों के प्रयोग में प्रवर्त्तमान मुनि कायगुप्ति करे।

कायगुत्ती महत्तं—

३३२. एतेहिं पलिछिण्णेहिं आयाणसोतगढिते बाले अव्वोच्छिण्ण-बंधणे अणभिक्कंत-संजोए। तमंसि अविजाणओ आणाए लंभो णत्थि त्ति बेमि।

जस्स णत्थि पुरे पच्छा मज्झे तस्स कुओ सिया ?

से हु पण्णाणमंते बुद्धे आरंभोवरए।

सम्ममेयं ति पासहा।
जेण बंधं वहं घोरं परितावं च दारुणं।

पलिछिंदिय बाहिरगं च सोतं णिक्कम्मदंसी इह मच्चिएहिं।

कायगुप्ति का महत्व—

३३२. नेत्र आदि इन्द्रिय विषयों से निवृत्त होकर भी कोई बाल प्राणी मोहादि के उदयवश आस्रवों में गृद्ध हो जाता है, वह जन्म-जन्मों के कर्मबन्धनों को तोड़ नहीं पाता, वह विषयों के संयोगों को छोड़ नहीं सकता, मोह-अन्धकार में निमग्न वह अज्ञानी अपने आत्महित को नहीं जान पाता। इस प्रकार उसे तीर्थंकरों की आज्ञा का लाभ नहीं प्राप्त होता। अर्थात् वह आज्ञा का आराधक नहीं हो सकता ऐसा मैं कहता हूँ।

जिसके विषयासक्ति का पूर्व संस्कार नहीं है और भविष्य का संकल्प नहीं है तो बीच (वर्तमान) में उसके विषयासक्ति का विकल्प कहाँ से होगा ? अर्थात् विषय विकल्प नहीं रहेगा।

वही वास्तव में प्रज्ञावान् है, प्रबुद्ध है और आरम्भ से विरत है।

उसका आचरण सम्यक् है, ऐसा तुम देखो—सोचो।

विषयासक्ति से ही पुरुष बन्ध, घोर-बन्ध और दारुण-परिताप को प्राप्त करता है।

अतः बाह्य परिग्रह आदि एवं अन्तरंग राग-द्वेष आदि आस्रवों का निरोध करके मनुष्यों के बीच रहते हुए निष्कर्मदर्शी बनना चाहिये।

कम्मुणा सफलं दट्ठुं ततो णिज्जाति वेदवी ।

—आ. सु. १, अ. ४, उ. ४, सु. १४४-१४५

कर्म अपना फल अवश्य देते हैं, यह जानकर ज्ञानी पुरुष उनसे अवश्य ही निवृत्त होवे ।

कायगुत्तयाए फलं—

३३३. प०—कायगुत्तयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—कायगुत्तयाए णं संवरं जणयइ । संवरेणं कायगुत्ते पुणो पावासवनिरोहं करेइ ॥

—उत्त. अ. २९, सु. ५७

कायगुप्ति का फल—

३३३. प्र०—भन्ते ! काय-गुप्ति (कुशल काय के प्रयोग) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—काय-गुप्ति से वह संवर (अशुभ प्रवृत्ति के निरोध) को प्राप्त होता है । संवर प्राप्त कायगुप्त जीव फिर पाप-कर्म के आस्रवों का निरोध कर देता है ।

कायसमाहारणयाए फलं—

३३४. प०—कायसमाहारणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—कायसमाहारणयाए णं चरित्तपज्जवे विसोहेइ । चरित्तपज्जवे विसोहेत्ता अहक्खायचरित्तं विसोहेइ । अहक्खायचरित्तं विसोहेत्ता चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेइ । तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाएइ सव्वदुक्खाणमन्तं करेइ ।

—उत्त. अ. २९, सु. ६०

कायसमाधारणा का फल—

३३४. प्र०—भन्ते ! काय-समाधारणा (संयम-योगों में काया को भली-भाँति लगाने) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—काय-समाधारणा से वह चरित्र-पर्यवों (चारित्र के प्रकारों) को विशुद्ध करता है; चारित्र-पर्यवों को विशुद्ध कर यथाख्याचारित्र को प्राप्त करने योग्य विशुद्धि करता है। यथाख्यात चारित्र को विशुद्ध कर केवली के विद्यमान चार कर्मों (आयुष, वेदनीय, नाम और गोत्र) को क्षीण करता है। उसके पश्चात् सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है परिनिर्वाण को प्राप्त होता है और सब दुःखों का अन्त करता है।

इंदियणिग्गह फलं—

३३५. प०—सोइन्दिय निग्गहेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—सोइन्दिय निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु सद्देसु राग दोस निग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ।

प०—चक्खिन्दिय-निग्गहेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ।

उ०—चक्खिन्दिय-निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु रूवेसु राग-दोस-निग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ।

प०—घाणिन्दिय निग्गहेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

उ०—घाणिन्दिय निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु गन्धेसु राग-दोस निग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ।

प०—जिब्भिन्दिय निग्गहेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

इन्द्रियनिग्रह का फल—

३३५. प्र०—भन्ते ! श्रोत्रेन्दिय का निग्रह करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—श्रोत्रेन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दों में होने वाले राग और द्वेष का निग्रह करता है। वह राग-द्वेष निमित्तक कर्म-बन्धन नहीं करता और पूर्व-बद्ध कर्म को क्षीण करता है।

प्र०—भन्ते ! चक्षु-इन्द्रिय का निग्रह करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—चक्षु-इन्द्रिय के निग्रह करने से वह मनोज्ञ और अमनोज्ञ रूपों में होने वाले राग और द्वेष का निग्रह करता है। वह राग-द्वेष निमित्तक कर्म-बन्धन नहीं करता और पूर्व-बद्ध कर्म को क्षीण करता है।

प्र०—भन्ते ! घ्राण-इन्द्रिय का निग्रह करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—घ्राण-इन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ और अमनोज्ञ गन्धों में होने वाले राग और द्वेष का निग्रह करता है। वह राग-द्वेष निमित्तक कर्म-बन्धन नहीं करता और पूर्व-बद्ध कर्म को क्षीण करता है।

प्र०—भन्ते ! जिह्वा-इन्द्रिय का निग्रह करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

उ०—जिब्भिन्दिय निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु रसेसु राग-दोस-निग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ।

उ०—जिह्वा-इन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ और अमनोज्ञ रसों में होने वाले राग और द्वेष का निग्रह करता है वह राग-द्वेष निमित्तक कर्म-बन्धन नहीं करता है और पूर्व-बद्ध कर्म को क्षीण करता है :

प०—फासिन्दिय निग्गहेणं भन्ते! जीवे किं जणयइ ?

प्र०—भन्ते! स्पर्श-इन्द्रिय का निग्रह करने से जीव क्या करता है ?

उ०—फासिन्दिय निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु फासेसु राग-दोस-निग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ। —उत्त. अ. २९, सु. ६४ से ६८

उ० - स्पर्श-इन्द्रिय के निग्रह से वह मनोज्ञ और अमनोज्ञ स्पर्शों में होने वाले राग-द्वेष का निग्रह करता है। वह राग-द्वेष निमित्तक कर्म-बन्धन नहीं करता है और पूर्व-बद्ध कर्म को क्षीण करता है।

अप्पमत्तअज्झवसाणं—

अप्रमत्तमुनि के अध्यवसाय—

३३६. आवंती केआवंती लोगंसि अणारंभजीवी, एतेसु चेव अणारंभजीवी।
एत्थोवरते तं झोसमाणे अयं संधी ति अदक्खु,

३३६. इस मनुष्य लोक में जितने भी अनारम्भजीवी हैं, वे मनुष्यों के बीच रहते हुए भी अनारम्भजीवी है।

सावद्य आरम्भ से उपरत मुनि यह मनुष्यभव उत्तम अवसर है ऐसा देखकर कर्मों को क्षीण करता हुआ प्रमाद न करे।

जे इमस्स विग्गहस्स अयं खणे त्ति मन्नेसी।

"इस औदारिक शरीर का यह अमूल्य क्षण है" इस प्रकार जो क्षणान्वेषी है वह सदा अप्रमत्त रहता है।

एस मग्गे आरिएहिं पवेदिते।
उट्ठिते णो पमादए।
जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सातं।

यह (अप्रमाद का मार्ग) तीर्थंकरों ने बताया है।

साधक इसमें उत्थित होकर प्रमाद न करे।

प्रत्येक का सुख और दुःख (अपना-अपना स्वतन्त्र होता है यह) जानकर प्रमाद न करे।

पुढो छंदा इह माणवा।
पुढो दुक्खं पवेदितं।
से अविहिंसमाणे अणवयमाणे पुट्ठो फासे विप्पणोल्लए।
एस समिया परियाए वियाहिते।

इस जगत् में मनुष्य पृथक्-पृथक् अध्यवसाय वाले होते हैं, उनका दुःख भी पृथक्-पृथक् होता है—ऐसा तीर्थंकरों ने कहा है।

वह जानकर साधक किसी भी जीव की हिंसा न करता हुआ, असत्य न बोलता हुआ, परीषहों और उपसर्गों के होने पर उन्हें समभावपूर्वक सहन करे। ऐसा साधक सम्यक् प्रव्रज्या वाला कहलाता है।

जे असत्ता पावेहिं कम्मेहिं उदाहु ते आतंका फुसंति। इति उदाहु वीरे। ते फासे पुट्ठोऽधियासते।

जो साधक पापकर्मों में आसक्त नहीं है कदाचित् उसे रोगातंक उत्पन्न हो जाय तो उन उत्पन्न दुःखों को भली-भाँति सहन करे ऐसा तीर्थंकर महावीर ने कहा है।

से पुव्वं पेतं पच्छा पेतं, भेउरधम्मं, विद्धंसणधम्मं, अधुवं, अणितियं, असासतं, चयोवचइयं, विप्परिणाम धम्मं। पासह एयं रूवसंधिं।

यह शरीर पहले या पीछे अवश्य छूट जायेगा। छिन्न-भिन्न होना और विध्वंस होना इसका स्वभाव है। यह अध्रुव है, अनित्य है, अशाश्वत है, इसमें उपचय-अपचय (घट-बढ़) होता रहता है, विविध परिवर्तन होते रहना इसका स्वभाव है। इस प्रकार शरीर-स्वभाव का विचार करे।

समुपेहमाणस्स एगायतणरतस्स इह विप्पमुक्कस्स णत्थि मग्गे विरयस्स त्तिबेमि।

—आ० सु० १, अ० ५, उ० २, सु० १५२-१५३

जो इस प्रकार शरीर स्वभाव का विचार करता है, इस आत्म-रमणरूप एक आयतन में लीन रहता है तथा मोह ममता से मुक्त है, उस विरत साधक के लिए संसार-भ्रमण का मार्ग नहीं है। ऐसा मैं कहता हूं।

कायदंडणिसेहो—

३३७. उड्ढं अहं तिरियं दिसासु सव्वतो सव्वावंति च णं पाडियक्कं जीवेहिं कम्मसमारंभेणं।

तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं एतेहिं काएहिं दंडं समारंभेज्जा णेवऽण्णेहिं एतेहिं काएहिं दंडं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे एतेहिं काएहिं दंडं समारंभंते वि समणुजाणेज्जा।

जे वऽण्णे एतेहिं काएहिं दंडं समारंभंति तेसिं पि वयं लज्जामो।

तं परिण्णाय मेहावी तं वा दंडं अण्णं वा दंडं णो दंडभी दंडं समारंभेज्जासि।

—आ. सु. १, अ. ८, उ. १, सु. २०३

कायदण्ड का निषेध—

३३७. ऊँची, नीची एवं तिरछी, सब दिशाओं में सब प्रकार से एकेन्द्रियादि जीवों में से प्रत्येक को लेकर कर्म-समारम्भ किया जाता है।

यह जानकर मेधावी साधक स्वयं इन जीवों के प्रति दण्ड-समारम्भ न करे, न दूसरों से दण्ड समारम्भ करवाये और दण्ड-समारम्भ करने वालों का अनुमोदन भी न करे।

अन्य जो भी इन जीवनिकायों के प्रति दण्ड-समारम्भ करते हैं उनके कार्य से भी हम लज्जित होते हैं। (ऐसा अनुभव करे।)

यह जानकर दण्डभीरु मेधावी मुनि हिंसा दण्ड का अथवा मृषावाद आदि किसी अन्य दण्ड का दण्डसमारम्भ न करे।

अथिरासणो पावसमणो—

१३३८. अथिरासणे कुक्कुईए, जत्थ तत्थ निसीयई।
आसणम्मि अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई॥

—उत्त. अ. १७, गा. १३

अस्थिरासन वाला पापश्रमण है—

१३३८. जो स्थिरासन नहीं होता, बिना प्रयोजन इधर-उधर चक्कर लगाता है, जो हाथ, पैर आदि अवयवों को हिलाता रहता है, जो जहाँ कहीं बैठ जाता है—इस प्रकार आसन (या बैठने) के विषय में जो असावधान होता है, वह पाप-श्रमण कहलाता है।

परिशिष्ट नं. १

अवशिष्ट पाठों का विषयानुक्रम से संकलन

(अंकित पृष्ठांक और सूत्रों के अनुसार पाठक अवलोकन करें)

पृष्ठ १५

भगवओ धम्म-देसणा—

सूत्र २० (क) ततो णं समणे भगवं महावीरे उप्पन्नणाणदंसणधरे अप्पाणं च लोगं च अभिसमिक्ख पुव्वं देवाणं धम्माइक्खंती, ततो पच्छा मणुसाणं।

—आ. सु. २. अ. १५, सु. ७७५

पृष्ठ ३०

सूत्र ३३. सोच्चा वई मेधावी पंडियाणं निसामिया। समियाए धम्मे आरिएहिं पवेइए[1]।

—आ. सु. १, अ. ५, उ. ३, सु. १५७ (ख-ग)

पृष्ठ ३०

सूत्र ३३. (ख) दुविहे सामाइए पण्णत्ते, तं जहा—
(१) अगारसामाइए चेव, (२) अणगारसामाइए चेव।

—ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ७८

पृष्ठ ३१

सूत्र ३३. (ग) तिविहा पण्णवणा पण्णत्ता, तं जहा—
(१) णाणपण्णवणा, (२) दंसणपण्णवणा,
(३) चरित्तपण्णवणा।
तिविहे सम्मे पण्णत्ते, तं जहा—
(१) णाणसम्मे, (२) दंसणसम्मे, (३) चरित्तसम्मे।

—ठाणं. अ. ३, सु. १९८/२-३

पृष्ठ ५१

णिग्गंथाणं आयार धम्मो—

सूत्र ७०. (क) नाण-दंसणसंपन्नं संजमे य तवे रयं।
गणिमागमसंपन्नं उज्जाणम्मि समोसढं ॥१॥

पृष्ठ १५

भगवान की धर्म देशना—

सूत्र २० (क) अनुत्तर ज्ञान-दर्शन के धारक श्रमण भगवान् महावीर ने केवलज्ञान द्वारा अपनी आत्मा और लोक को सम्यक् प्रकार से जानकर पहले देवों को, तत्पश्चात् मनुष्यों को धर्मोपदेश दिया।

पृष्ठ ३०

सूत्र ३३. आचार्य की यह वाणी सुनकर मेधावी साधक हृदयंगम करे कि— आर्यों ने समता में धर्म कहा है।

पृष्ठ ३०

सूत्र ३३. (ख) सामायिक दो प्रकार की कही गई है, यथा—
(१) अगार सामायिक, (२) अनगार सामायिक।

पृष्ठ ३१

सूत्र ३३. (ग) प्रज्ञापना तीन प्रकार की होती है, यथा—
(१) ज्ञान प्रज्ञापना, (२) दर्शन प्रज्ञापना,
(३) चरित्र प्रज्ञापना।
सम्यक् तीन प्रकार का होता है, यथा—
(१) ज्ञान सम्यक्, (२) दर्शन सम्यक्, (३) चरित्र सम्यक्।

पृष्ठ ५१

निर्ग्रन्थों का आचार धर्म—

सूत्र ७०. (क) ज्ञान और दर्शन से सम्पन्न, संयम और तप में रत, आगम-सम्पदा से युक्त आचार्य को उद्यान में विराजित देखकर—

---

१ आ. सु. १, अ. ८, उ. ३, सु. २०९ (ख)

रायाणो रायमच्चा य माहणा अदुव खत्तिया ।
पुच्छंति निहुयप्पाणो, कहं भे आयारगोयरो ? ॥२॥

तेसिं सो निहुओ दंतो, सव्वभूयसुहावहो ।
सिक्खाए सुसमाउत्तो, आइक्खइ वियक्खणो ॥३॥

हंदि ! धम्मत्थकामाणं निग्गंथाणं सुणेह मे ।
आयारगोयरं भीमं, सयलं दुरहिट्ठियं ॥४॥

नन्नत्थ एरिसं वुत्तं, जं लोए परमदुच्चरं ।
विउलट्ठाणभाइस्स, न भूयं न भविस्सइ ॥५॥

सखुड्डग-वियत्ताणं, वाहियाणं च जे गुणा ।
अखंड-फुडिया कायव्वा, तं सुणेह जहा तहा ॥६॥

—दस. अ. ६ गा. १-६

राजा और राजमन्त्री, ब्राह्मण और क्षत्रिय निश्चलात्मा होकर पूछते हैं—'हे भगवन् ! आपका आचार-गोचर कैसा है ?'

ऐसा पूछे जाने पर वे शान्त, दान्त, सर्वप्राणियों के लिए सुखावह, शिक्षाओं से समायुक्त और परम विचक्षण गणी उन्हें कहते हैं ।

हे राजा आदि जनो ! धर्म के प्रयोजनभूत मोक्ष की कामना वाले निर्ग्रन्थों के भीम (कायर पुरुषों के लिए) दुरधिष्ठित और सम्पूर्ण आचार-गोचर को मुझ से सुनो ।

जो लोक में अत्यन्त दुश्चर है, वह श्रेष्ठ आचार जिन शासन के अतिरिक्त कहीं नहीं कहा गया है । सर्वोच्च मोक्ष स्थान को प्राप्त कराने वाला ऐसा आचार अन्य मत में न कभी था और न ही भविष्य में होगा ।

बालक हो या वृद्ध, अस्वस्थ हो या स्वस्थ, सभी को जिन गुणों का अर्थात् आचार-नियमों का पालन अखण्ड और अस्फुटित रूप से करना चाहिए, वे गुण यथातथ्यरूप से मुझ से सुनो ।

पृष्ठ ५६

णाणस्स उप्पत्ति-अणुप्पत्ति-कारणा—

सूत्र ८४. (ख) दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—
(१) आरंभे चेव, (२) परिग्गहे चेव ।
दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलमाभिणिबोहियणाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा—
(१) आरंभे चेव, (२) परिग्गहे चेव ।

—ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ५४-५५

पृष्ठ ५६

ज्ञान की उत्पत्ति अनुत्पत्ति के कारण—

सूत्र ८४ (ख) आरम्भ और परिग्रह इन दो स्थानों को जाने और छोड़े बिना आत्मा विशुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान को प्राप्त नहीं करता ।

आरम्भ और परिग्रह इन दो स्थानों को जानकर और छोड़कर आत्मा विशुद्ध आभिनिबोधिक ज्ञान को प्राप्त करता है ।

पृष्ठ ८०

सूत्र ११३. चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
(१) वंदति णाममेगे, णो वंदावेति,
(२) वंदावेति णाममेगे, णो वंदति,
(३) एगे वंदति वि, वंदावेति वि,
(४) एगे णो वंदति, णो वंदावेति ।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
(१) सक्कारेइ णाममेगे, णो सक्कारावेइ,
(२) सक्कारावेइ णाममेगे, णो सक्कारेइ,
(३) एगे सक्कारेइ वि, सक्कारावेइ वि,
(४) एगे णो सक्कारेइ, णो सक्कारावेइ ।

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—
(१) सम्माणेति णाममेगे, णो सम्माणावेति,
(२) सम्माणावेति णाममेगे, णो सम्माणेति,

पृष्ठ ८०

सूत्र ११३. पुरुष चार प्रकार के होते हैं, यथा—
(१) कुछ पुरुष वन्दना करते हैं, किन्तु करवाते नहीं,
(२) कुछ पुरुष वन्दना करवाते हैं, किन्तु करते नहीं,
(३) कुछ पुरुष वन्दना करते भी हैं और करवाते भी हैं,
(४) कुछ पुरुष न वन्दना करते हैं और न करवाते हैं ।

पुरुष चार प्रकार के होते हैं, यथा—
(१) कुछ पुरुष सत्कार करते हैं, किन्तु करवाते नहीं,
(२) कुछ पुरुष सत्कार करवाते हैं, किन्तु करते नहीं,
(३) कुछ पुरुष सत्कार करते भी हैं और करवाते भी हैं,
(४) कुछ पुरुष न सत्कार करते हैं और न करवाते हैं ।

पुरुष चार प्रकार के होते हैं, यथा—
(१) कुछ पुरुष सम्मान करते हैं, किन्तु करवाते नहीं,
(२) कुछ पुरुष सम्मान करवाते हैं, किन्तु करते नहीं,

(३) एगे सम्माणेति वि, सम्माणावेति वि,
(४) एगे णो सम्माणेति, णो सम्माणावेति ।

— ठाणं. अ. ४, उ. १, सु. २५६/६-८

(३) कुछ पुरुष सम्मान करते भी हैं और करवाते भी हैं,
(४) कुछ पुरुष न सम्मान करते हैं और न करवाते हैं।

पृष्ठ १६५

अण्णउत्थियाणं दंसणपण्णवणा—

सूत्र २६२. (ख) इहमेगेसिं आयारगोयरे णो सुणिसंते भवति। ते इह आरंभट्ठी, अणुवयमाणा 'हणपाणे', घातमाणा, हणतो यावि समणुजाणमाणा,

अदुवा अदिन्नमाइयंति।

—आ. सु. १, अ. ८, उ. १, सु. २०० (क)

सुकडे त्ति वा दुक्कडे त्ति वा
कल्लाणे त्ति वा पावए त्ति वा
साहू त्ति वा असाहू त्ति वा
सिद्धी त्ति वा असिद्धी त्ति वा
निरए त्ति वा अनिरए त्ति वा।
जमिणं विप्पडिवण्णा मामगं धम्मं पण्णवेमाणा।
एत्थ वि जाणह अकस्मा।

—आ. सु. १, अ. ८, उ. १, सु. २०० (ग)

एवं तेसिं णो सुअक्खाते णो सुपण्णत्ते धम्मे भवति।

—आ. सु. १, अ. ८, उ. १, सु. २०१ (क)

पृष्ठ १६५

अन्यतीर्थिकों की दर्शन प्रज्ञापना—

सूत्र २६२. (ख) इस मनुष्य लोक में कई साधकों को आचार-गोचर सुपरिचित नहीं होता। वे आरम्भ के अर्थी हो जाते हैं। वे इस प्रकार कथन करते हैं कि—"प्राणियों का वध करो" अथवा स्वयं वध करते हैं और प्राणियों का वध करने वालों का अनुमोदन करते हैं।

अथवा इस प्रकार का आचरण करने वाले वे अदत्त का ग्रहण करते हैं।

(वे इस प्रकार प्ररूपण करते हैं—)
सुकृत है, दुष्कृत है।
कल्याण है, पाप है।
साधु है, असाधु है।
सिद्धि है, सिद्धि नहीं है।
नरक है, नरक नहीं है।

इस प्रकार परस्पर विरुद्ध वादों को मानते हुए अपने-अपने धर्म का प्ररूपण करते हैं, इनकी पूर्वोक्त प्ररूपणा में कोई भी हेतु नहीं है, ऐसा जानो।

इस प्रकार उनका धर्म न तो युक्ति-संगत होता है और न ही सुप्ररूपित होता है।

पृष्ठ १७८

सूत्र २७४. जे केइ लोगंमि उ अकिरियआया,
अन्नेण पुट्ठा धुयमादिसंति।
आरंभसत्ता गढिया य लोए,
धम्मं ण जाणंति विमुक्खहेउं ॥६॥
पुढो य छंदा इह माणवा उ,
किरियाकिरियं च पुढो य वायं।
जायस्स बालस्स पकुव्व देहं,
पवड्ढई वेरमसंजयस्स ॥७॥

—सूय. सु. १, अ. १०, गा. १६-१७

पृष्ठ १७८

सूत्र २७४. इस लोक में जो आत्मा को क्रियारहित मानते हैं और दूसरे के पूछने पर मोक्ष का अस्तित्व बतलाते हैं, वे लोग आरम्भ में आसक्त और विषय-भोगों में गृद्ध हैं। वे मोक्ष के कारणरूप धर्म को नहीं जानते।

जगत में मनुष्यों की रुचियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। इस कारण कोई क्रियावाद को मानता है तो कोई उससे विपरीत अक्रियावाद को। तथा कोई ताजे जन्मे हुए बच्चे के शरीर को काटकर अपना सुख मानते हैं, वस्तुतः ऐसे असंयमी लोग दूसरों के साथ वैर ही बढ़ाते हैं।

पृष्ठ २०५

सूत्र ३०४. (ख) तओ वया पण्णत्ता, तं जहा—
पढमे वए, मज्झिमे वए, पच्छिमे वए
तिहिं वएहिं आया केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा तं जहा—
पढमे वए, मज्झिमे वए, पच्छिमे वए।

—ठाणं. अ. ३, उ. २, सु. १६३

पृष्ठ २०५

सूत्र ३०४. (ख) तीन प्रकार के वय कहे गये हैं, यथा—
प्रथम वय, मध्यम वय और अन्तिम वय।

तीनों ही वयों में आत्मा सम्पूर्ण संवर के द्वारा संवृत होता है। यथा—
प्रथम वय, मध्यम वय और अन्तिम वय।

सूत्र ३०४. (ग) दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।
दो ठाणाइं परियाणेत्ता आया केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।
—ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ५४-५५

सूत्र ३०४. (ग) आरम्भ और परिग्रह इन दो स्थानों को जाने और छोड़े बिना आत्मा सम्पूर्ण संवर के द्वारा संवृत नहीं होता।

आरम्भ और परिग्रह इन दो स्थानों को जानकर और छोड़कर आत्मा सम्पूर्ण संवर के द्वारा संवृत होता है।

पृष्ठ २२५

सूत्र ३२५. (ख) तओ णं समणे भगवं महावीरे उप्पन्नणाणदंसणधरे गोतमाईणं समणाणं णिग्गंथाणं पंच महव्वयाइं सभावणाइं छज्जीवणिकायाइं आइक्खति भासति परूवेति, तं जहा—पुढवीकाए-जाव-तसकाए। —आ. सु. २, अ. १५, सु. ७७६

पृष्ठ २२५

सूत्र ३२५.5(ख) तत्पश्चात् केवलज्ञान-केवलदर्शन के धारक श्रमण भगवान महावीर ने गौतम आदि श्रमण-निर्ग्रन्थों को (लक्ष्य करके) भावना सहित पंच-महाव्रतों और पृथ्वीकाय से लेकर त्रसकाय तक षड्जीवनिकायों के स्वरूप का व्याख्यान किया। सामान्य-विशेष रूप से प्ररूपण किया।

पृष्ठ ३२२

बंभचेराणुकुलाजणा—

सूत्र ४५८. (ख) दो ठाणाइं अपरियाणेत्ता आया णो केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।
दो ठाणाइं परियाणेज्जा आया केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा, तं जहा—
आरंभे चेव, परिग्गहे चेव।
—ठाणं. अ. २, उ. १, सु. ५४-५५

पृष्ठ ३२२

ब्रह्मचर्य के अनुकूल जन—

सूत्र ४५८. (ख) आरम्भ और परिग्रह इन दो स्थानों को जाने और छोड़े बिना आत्मा सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास को प्राप्त नहीं करता।

आरम्भ और परिग्रह इन दो स्थानों को जानकर और छोड़कर आत्मा सम्पूर्ण ब्रह्मचर्यवास को प्राप्त करता है।

पृष्ठ ४१४

सचित्त पुढवीआइए निसिज्जाकरण पायच्छित्त सुत्ताई—

सूत्र ६१७. (ख) जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए "अणंतरहियाए पुढवीए" णिसीयावेज्ज वा, तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा, तुयट्टावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण वडियाए "ससिणिद्धाए पुढवीए" णिसीयावेज्ज वा, तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा, तुयट्टावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए "ससरक्खाए पुढवीए" णिसीयावेज्ज वा, तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा, तुयट्टावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए "मट्टियाकडाए पुढवीए" णिसीयावेज्ज वा, तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा, तुयट्टावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए "चित्तमंताए पुढवीए" णिसीयावेज्ज वा, तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा, तुयट्टावेंतं वा साइज्जइ।

पृष्ठ ४१४ : सूत्र ६१७. (ख)

सचित्त पृथ्वी आदि पर निषद्या करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से सचित्त पृथ्वी के निकट की भूमि पर स्त्री को बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले का या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से स्निग्ध भूमि पर स्त्री को बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले का या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से सचित्त रज युक्त भूमि पर स्त्री को बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले का या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से सचित्त मिट्टी युक्त भूमि पर स्त्री को बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले का या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से सचित्त पृथ्वी पर स्त्री को बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए "चित्तमंताए सिलाए" णिसीयावेज्ज वा, तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा, तुयट्टावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए "चित्तमंताए लेलुए" णिसीयावेज्ज वा, तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा, तुयट्टावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण वडियाए कोलावासंसि वा दारुए जीवपइट्ठीए; सअंडे, सपाणे, सबीए, सहरिए, सओसे, सउदए, सउत्तिंग-पणग-दग-मट्टिय-मक्कडा-संताणगंसि णिसीयावेज्ज वा, तुयट्टावेज्ज वा णिसीयावेंतं वा, तुयट्टावेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —नि. उ. ७, सु. ६७-७४

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से सचित्त शिला पर स्त्री को बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले का या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से सचित्त मिट्टी के ढेले पर या पत्थर के टुकड़े पर स्त्री को बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले का या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन के संकल्प से घुन या दीमक लग जाने से जो काष्ठ जीव युक्त हो उस पर तथा जिस स्थान में अंडे, त्रस जीव, बीज, हरी, घास, ओस, पानी, कीड़ी आदि के बिल, लीलन-फूलन, गीली मिट्टी, मकड़ी के जाले हों, वहां पर स्त्री को बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

अंक-पलियंकंसि निसिज्जाकरण पायच्छित्त सुत्ताइं—

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अंकंसि वा, पलियंकंसि वा, णिसीयावेज्ज वा, तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा, तुयट्टावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अंकंसि वा, पलियंकंसि वा, णिसीयावेत्ता वा, तुयट्टावेत्ता वा, असणं वा-जाव-साइमं वा अणुग्घासेज्ज वा अणुप्पाएज्ज वा, अणुग्घासंतं वा अणुप्पाएंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —नि. उ. ७, सु. ७५-७६

अंक-पल्यंक में निषद्यादि करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से स्त्री को अर्धपल्यंक आसन में या पूर्ण पल्यंकासन में बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले का या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से स्त्री को एक जंघा पर अर्थात् गोद में या पल्यंकासन में बिठाकर या सुलाकर अशन—यावत्—स्वाद्य खिलाता है या पिलाता है अथवा खिलाने पिलाने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

आगंतारादिसु निसिज्जाइकरण पायच्छित्त सुत्ताइं—

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइकुलेसु वा, परियावसहेसु वा, णिसीयावेज्ज वा, तुयट्टावेज्ज वा, णिसीयावेंतं वा, तुयट्टावेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए आगंतारेसु वा, आरामागारेसु वा, गाहावइ कुलेसु वा, परियावसहेसु वा, णिसीयावेत्ता वा, तुयट्टावेत्ता वा, असणं वा-जाव-साइमं वा अणुग्घासेज्ज वा, अणुपाएज्ज वा, अणुग्घासंतं वा, अणुपाएंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —नि. उ. ७, सु. ७७-७८

धर्मशाला आदि में निषद्यादि करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से स्त्री को धर्मशाला में, बगीचे में, गृहस्थ के घर में या परिव्राजक के स्थान में बिठाता है या सुलाता है अथवा बिठाने वाले या सुलाने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से स्त्री को धर्मशाला में, बगीचे में, गृहस्थ के घर में या परिव्राजक के स्थान में बिठाकर या सुलाकर अशन—यावत्—स्वाद्य खिलाता है या पिलाता है अथवा खिलाने-पिलाने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पोग्गल पक्खेवणाईए पायच्छित्त सुत्ताइं—

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अमणुण्णाइं पोग्गलाइं नीहरइ, नीहरंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए मणुण्णाइं पोग्गलाइं उवकिरइ, उवकिरंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —नि. उ. ७, सु. ८०-८१

पसुपक्खीण अंग संचालणाई पायच्छित्त सुत्ताइं—

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अन्नयरं पसुजायं वा, पक्खिजायं वा, पायंसि वा, पक्खंसि वा, पुच्छंसि वा, सीसंसि वा गहाय संचालेइ संचालेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णयरं पसुजायं वा, पक्खिजायं वा, सोयंसि कट्ठं वा, कलिंचं वा, अंगुलियं वा, सलागं वा अणुप्पवेसित्ता संचालेइ, संचालेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णयरं पसुजायं वा, पक्खिजायं वा, अयमित्थित्ति कट्टु आलिंगेज्ज वा, परिस्सएज्ज वा, परिचुम्बेज्ज वा, छिदेज्ज वा, विच्छिदेज्ज वा, आलिंगंतं वा, परिस्सयंतं वा, परिचुम्बंतं वा, छिदंतं वा, विच्छिदंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —नि. उ. ७, सु. ८२-८४

भत्तापाणाई आयाण-पयाण करणं-पायच्छित्त सुत्ताइं—

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए असणं वा-जाव-साइमं वा देइ, देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए असणं वा-जाव-साइमं वा, पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए वत्थं वा-जाव-पायपुंछणं वा देइ, देंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए वत्थं वा-जाव-पायपुंछणं वा, पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ।

पुद्गल प्रक्षेपणादि के प्रायश्चित्त सूत्र—

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से अमनोज्ञ पुद्गलों को निकालता है या निकालने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से मनोज्ञ पुद्गलों का प्रक्षेप करता है या प्रक्षेप करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है।

पशुपक्षियों के अंग संचालनादि के प्रायश्चित्त सूत्र—

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से किसी भी जाति के पशु या पक्षी के (१) पाँव को, (२) पार्श्वभाग को (पंख को), (३) पूंछ को या (४) मस्तक को पकड़कर संचालित करता है या संचालित करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से किसी भी जाति के पशु या पक्षी के श्रोत अर्थात् अपान द्वार या योनि द्वार में काष्ठ, खपच्ची, अंगुली या बेंत आदि की शलाका प्रविष्ट करके संचालित करता है या संचालित करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से किसी भी जाति के पशु या पक्षी को "यह स्त्री है" ऐसा जानकर उसका आलिंगन (शरीर के एक देश का स्पर्श) करता है, परिष्वजन (पूरे शरीर का स्पर्श) करता है, मुख का चुम्बन करता है या नख आदि से एक बार या अनेक बार छेदन करता है या आलिंगन आदि करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक (परिहारस्थान) प्रायश्चित्त आता है।

भक्त-पान आदि के आदान-प्रदान करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से उसे अशन—**यावत्**—स्वाद्य देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से उससे अशन—**यावत्**—स्वाद्य ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से उसे वस्त्र—**यावत्**—पादप्रोंछन देता है या देने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से उससे वस्त्र—**यावत्**—पादप्रोंछन ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।
—नि. उ. ७, सु. ८५-८८

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक (परिहारस्थान) प्रायश्चित्त आता है ।

वायणा आयाण-पयाण पायच्छित्त सुत्ताइं—

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए सज्झायं वाएइ, वाएंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए सज्झायं पडिच्छइ, पडिच्छंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।
—नि. उ. ७, सु. ८९-९०

वाचना देने लेने के प्रायश्चित्त सूत्र—

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से सूत्रार्थ की वाचना देता है या वाचना देने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से सूत्रार्थ की वाचना लेता है या वाचना लेने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

आकारकरण पायच्छित्त सुत्तं—

जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णयरेणं इंदिएणं आकारं करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं ।
—नि. उ. ७, सु. ९१

आकार करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से किसी भी इन्द्रिय से (अर्थात् आँख हाथ आदि किसी भी अंगोपांग से) किसी भी प्रकार के आकार को बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

पृष्ठ ४१६

सूत्र ६१८. (ख) जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अण्णयरं तेइच्छं आउट्टइ, आउट्टंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । —नि. उ. ७, सु. ७६

पृष्ठ ४१६

सूत्र ६१८. (ख) जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से किसी प्रकार की चिकित्सा करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

पृष्ठ ४१८

अंग संचालणं पायच्छित्त सुत्तं—

सूत्र ६२३. (ख) जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुणवडियाए अक्खंसि वा, ऊरुंसि वा, उयरंसि वा, थणंसि वा गहाय संचालेइ, संचालेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । —नि. उ. ७, सु. १२

पृष्ठ ४१८

अंग संचालन का प्रायश्चित्त सूत्र—

सूत्र ६२३. (ख) जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से स्त्री के अक्ष, ऊरु, उदर या स्तन को ग्रहण कर संचालित करता है या संचालित करने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

पृष्ठ ४२०

मेहुण वडियाए वत्थ-करणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

सूत्र ६२९. (ख) जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण वडियाए—

(१) आइणाणि वा,
(२) सहिणाणि वा,
(३) सहिणकल्लाणाणि वा,
(४) आयाणि वा,
(५) कायाणि वा,
(६) खोमियाणि वा,

पृष्ठ ४२०

मैथुन के संकल्प से वस्त्र निर्माण करने के प्रायश्चित्त सूत्र—

सूत्र ६२९. (ख) जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से -

(१) मूषक आदि के चर्म से निष्पन्न वस्त्र,
(२) सूक्ष्म वस्त्र,
(३) सूक्ष्म व सुशोभित वस्त्र,
(४) अजा के सूक्ष्म रोम से निष्पन्न वस्त्र,
(५) इन्द्रनीलवर्णी कपास से निष्पन्न वस्त्र,
(६) सामान्य कपास से निष्पन्न सूती वस्त्र,

(७) दुगुल्लाणि वा,
(८) तिरीड पट्टाणि वा,
(९) मलयाणि वा,
(१०) पत्तुण्णाणि वा,
(११) अंसुयाणि वा,
(१२) चिणंसुयाणि वा,
(१३) देसरागाणि वा,
(१४) अमिलाणि वा,
(१५) गज्जलाणि वा,
(१६) फालिहाणि वा,
(१७) कोयवाणि वा,
(१८) कंबलाणि वा,
(१९) पावराणि वा,
(२०) उद्दाणि वा,
(२१) पेसाणि वा,
(२२) पेसलेसाणि वा,
(२३) किण्हमिगाईणगाणि वा,
(२४) नीलमिगाईणगाणि वा,
(२५) गोरमिगाईणगाणि वा,
(२६) कणगाणि वा,
(२७) कणगंताणि वा,
(२८) कणगपट्टाणि वा,
(२९) कणगखचियाणि वा,
(३०) कणगफुसियाणि वा,
(३१) वग्घाणि वा,
(३२) विवग्घाणि वा,
(३३) आभरण-चित्ताणि वा,
(३४) आभरण-विचित्ताणि वा करेइ, करेंतं वा साइज्जइ ।

(७) गौड देश में प्रसिद्ध या दुगुल वृक्ष से निष्पन्न विशिष्ट कपास का वस्त्र,
(८) तिरीड वृक्षावयव से निष्पन्न वस्त्र,
(९) मलयागिरि चन्दन के पत्रों से निष्पन्न वस्त्र,
(१०) बारीक बालों-तंतुओं से निष्पन्न वस्त्र,
(११) दुगुल वृक्ष के अभ्यंतरावयव से निष्पन्न वस्त्र,
(१२) चीन देश में निष्पन्न अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्र,
(१३) देश विशेष के रंगे वस्त्र,
(१४) रोम देश में बने वस्त्र,
(१५) चलने पर आवाज करने वाले वस्त्र,
(१६) स्फटिक के समान स्वच्छ वस्त्र,
(१७) वस्त्र विशेष="कोतवोवरको",
(१८) कम्बल,
(१९) कम्बल विशेष="खरडग पारिगादि पावारग" ।
(२०) सिन्धु देश के मच्छ के चर्म से निष्पन्न वस्त्र,
(२१) सिन्धु देश के सूक्ष्म चर्म वाले पशु से निष्पन्न वस्त्र,
(२२) उसी पशु की सूक्ष्म पश्मी से निष्पन्न वस्त्र,
(२३) कृष्ण मृग चर्म,
(२४) नील मृग चर्म,
(२५) गौर मृग चर्म,
(२६) स्वर्ण रस से लिप्त साक्षात् स्वर्णमय दिखे ऐसा वस्त्र,
(२७) जिसके किनारे स्वर्ण रस रंजित किये हो ऐसा वस्त्र,
(२८) स्वर्ण रसमय पट्टियों से युक्त वस्त्र,
(२९) सोने के तार जड़े हुए वस्त्र,
(३०) सोने के स्तबक या फूल जड़े हुए वस्त्र
(३१) व्याघ्र चर्म,
(३२) चीते का चर्म,
(३३) एक विशिष्ट प्रकार के आभरण युक्त वस्त्र,
(३४) अनेक प्रकार के आभरण युक्त वस्त्र बनाता है या बनाने वाले का अनुमोदन करता है ।

सूत्र ६२९. (ग) जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए आइणाणि वा-जाव-आभरण-विचित्ताणि वा धरेइ, धरेंतं वा साइज्जइ ।

सूत्र ६२९. (ग) जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से मूषक आदि के चर्म से निष्पन्न वस्त्र - **यावत्**—अनेक प्रकार के आभरण युक्त वस्त्र धारण करता है या धारण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

सूत्र ६२९. (घ) जे भिक्खू माउग्गामस्स मेहुण-वडियाए आइणाणि वा-जाव-आभरण-विचित्ताणि वा पिणद्धेइ, पिणद्धेंतं वा साइज्जइ ।

सूत्र ६२९ (घ) जो भिक्षु स्त्री के साथ मैथुन सेवन के संकल्प से मूषक आदि के चर्म से निष्पन्न वस्त्र —**यावत्**—अनेक प्रकार के आभरण युक्त वस्त्र पहनता है या पहनने वाले का अनुमोदन करता है ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं । —नि. उ. ७, सु. १०-१२

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक परिहारस्थान (प्रायश्चित्त) आता है ।

पृष्ठ ४२३

एगाणीए इत्थीए सद्धिं संवासकरण पायच्छित्त सुत्ताइं—

सूत्र ६३६. (ख) जे भिक्खू (१) आगंतारेसि वा, (२) आरामागारेंसि वा, (३) गाहावइकुलंसि वा, (४) परियावसहंसि वा, एगो एगित्थिए सद्धिं विहारं वा करेइ, सज्झायं वा करेइ, असणं वा-जाव-साइमं वा आहारेइ, उच्चारं वा पासवणं वा परिट्ठवेइ, अण्णयरं वा अणारियं णिट्ठुरं असमणपाउग्गं कहं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू (१) उज्जाणंसि वा, (२) उज्जाणगिहंसि वा, (३) उज्जाणसालंसि वा, (४) णिज्जाणंसि वा, (५) णिज्जाणगिहंसि वा, (६) णिज्जाणसालंसि वा एगो एगित्थिए सद्धिं विहारं वा करेइ -जाव-असमणपाउग्गं कहं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू (१) अट्टंसि वा, (२) अट्टालयंसि वा, (३) चरियंसि वा, (४) पागारंसि वा, (५) दारंसि वा, (६) गोपुरंसि वा एगो एगित्थिए सद्धिं विहारं वा करेइ-जाव-असमणपाउग्गं कहं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू (१) दग-मग्गंसि वा, (२) दग-पहंसि वा, (३) दग-तीरंसि वा, (४) दग-ठाणंसि वा एगो एगित्थिए सद्धिं विहारं वा करेइ-जाव-असमणपाउग्गं कहं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू (१) सुण्ण-गिहंसि वा, (२) सुण्ण सालंसि वा, (३) भिण्णगिहंसि वा, (४) भिण्णसालंसि वा, (५) कूडागारंसि वा, (६) कोट्ठागारंसि वा एगो एगित्थिए सद्धिं विहारं वा करेइ -जाव-असमणपाउग्गं कहं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू (१) तणगिहंसि वा, (२) तणसालंसि वा, (३) तुसगिहंसि वा, (४) तुससालंसि वा, (५) भुसगिहंसि वा, (६) भुससालंसि वा एगो एगित्थिए सद्धिं विहारं वा करेइ-जाव-असमणपाउग्गं कहं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू (१) जाणसालंसि वा, (२) जाणगिहंसि वा, (३) वाहणगिहंसि वा, (४) वाहणसालंसि वा एगो एगित्थिए सद्धिं विहारं वा करेइ-जाव-असमणपाउग्गं कहं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ।

पृष्ठ ४२३

अकेली स्त्री के साथ रहने के प्रायश्चित्त सूत्र—

सूत्र ६३६. (ख) जो भिक्षु (१) धर्मशाला में, (२) उद्यान गृह में, (३) गृहस्थ के घर में या (४) परिव्राजक के आश्रम में अकेला अकेली स्त्री के साथ रहता है, स्वाध्याय करता है, अशन —यावत्—स्वाद्य का आहार करता है, उच्चार प्रस्रवण परठता है, या कोई साधु के न कहने योग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु (१) नगर के समीप ठहरने के स्थान में, (२) नगर के समीप ठहरने के गृह में, (३) नगर के समीप ठहरने की शाला में, (४) राजा आदि के नगर निर्गमन के समय ठहरने के स्थान में, (५) घर में, (६) शाला में अकेला अकेली स्त्री के साथ रहता है—**यावत्**—साधु के न कहने योग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु (१) प्राकार के ऊपर के गृह में, (२) प्राकार के झरोखे में, (३) प्रकार व नगर के बीच के मार्ग में, (४) प्राकार में, (५) नगर द्वार में या (६) दो द्वार के बीच के स्थान में अकेला अकेली स्त्री के साथ रहता है—**यावत्**—साधु के न कहने योग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु (१) जलाशय में पानी आने के मार्ग में, (२) जलाशय से पानी ले जाने के मार्ग में, (३) जलाशय के तट पर, (४) जलाशय में, अकेला अकेली स्त्री के साथ रहता है —**यावत्**—साधु के न कहने योग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु (१) शून्य गृह में, (२) शून्य शाला में, (३) खण्डहर गृह में, (४) खण्डहर शाला में, (५) झोंपड़ी में, (६) धान्यादि के कोठार में अकेला अकेली स्त्री के साथ रहता है —**यावत्**—साधु के अयोग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु (१) तृण गृह में, (२) तृण शाला में, (३) शालि आदि के तुष गृह में, (४) तुष शाला में, (५) मूंग, उड़द आदि के भुस गृह में, (६) भुसशाला में अकेला अकेली स्त्री के साथ रहता है—**यावत्**—साधु के अयोग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु (१) यान गृह में, (२) यान शाला में, (३) वाहन गृह में या (४) वाहन शाला में अकेला अकेली स्त्री के साथ रहता है—**यावत्**—साधु के अयोग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू (१) पणियगिहंसि वा, (२) पणियसालंसि वा, (३) कुवियगिहंसि वा, (४) कुवियसालंसि वा एगो एगित्थिए सद्धिं विहारं वा करेइ -जाव-असमणपाउग्गं कहं कहेइ, कहेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु (१) विक्रय शाला (दुकान) में, (२) विक्रय गृह (हाट) में, (३) चूना आदि बनाने की शाला में या (४) चूना बनाने के गृह में अकेला अकेली स्त्री के साथ रहता है—यावत्—साधु के अयोग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू (१) गोणसालंसि वा, (२) गोणगिहंसि वा, (३) महाकुलंसि वा, (४) महागिहंसि वा एगो एगित्थिए सद्धिं विहारं वा करेइ-जाव-असमणपाउग्गं कहं कहेइ कहेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु (१) गौशाला में, (२) गौगृह में, (३) महाशाला में या (४) महागृह में अकेला अकेली स्त्री के साथ रहता है —यावत्—साधु के अयोग्य कामकथा कहता है या कहने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —नि. उ. ८, सु. १-९

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक (परिहार स्थान) प्रायश्चित्त आता है।

पृष्ठ ४३२

सूत्र ६४७. इच्चेतेहिं पंचहिं महव्वतेहिं पणवीसाहिं य भावणाहिं संपन्ने अणगारे अहासुत्तं अहाकप्पं, अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएण फासित्ता पालित्ता सोहित्ता तीरित्ता किट्टित्ता आराहित्ता आणाए अणुपालित्ता भवति।

—आ. सु. २, अ. १५, सु. ७९२

सूत्र ६४७. इन (पूर्वोक्त) पाँच महाव्रतों और उनकी पच्चीस भावनाओं से सम्पन्न अनगार यथाश्रुत, यथाकल्प और यथामार्ग यथार्थ रूप में इनका काया से सम्यक् स्पर्श कर, पालन कर, शोधन कर, इन्हें पार लगाकर, इनके महत्व का कीर्तन करके, आराधना कर, भगवान् की आज्ञा के अनुसार इनका पालन करने वाला होता है।

पृष्ठ ४३५

सूत्र ६५६. (ख) ते अणवकंखमाणा, अणतिवातेमाणा, अपरिग्गहेमाणा, णो परिग्गहावंति सव्वावंति च णं लोगंसि,

सूत्र ६५६. (ख) वे काम-भोगों की आकांक्षा न रखने वाले, प्राणियों की हिंसा न करने वाले और परिग्रह नहीं रखने वाले ऐसे निर्ग्रन्थ मुनि समग्र लोक में अपरिग्रहवान् होते हैं।

णिहाय दंडं पाणेहिं पावं कम्मं अकुव्वमाणे, एस महं अगंथे वियाहिते।

जो प्राणियों के लिए दण्ड का त्याग करके हिंसादि पाप कर्म नहीं करता, उसे ही महान् निर्ग्रन्थ कहा गया है।

ओए जुइमस्स खेतण्णे, उववायं चयणं च णच्चा।

—आ. सु. १, अ. ८, उ. ३, सु. २०९ (ख)

राग-द्वेष से रहित द्युतिमान् अर्थात् संयम का ज्ञाता, जन्म और मरण के स्वरूप को जानकर शरीर की अनित्यता का अनुचिन्तन करें।

पृष्ठ ४६२

राईणं तह तेसिं इत्थियाणं अवलोयणस्स पायच्छित्त सुत्ताइं—

राजा और उनकी रानियों को देखने के प्रायश्चित्त सूत्र—

सूत्र ७१०. (ख) जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं आगच्छमाणाण वा णिगच्छमाणाण वा पयमवि चक्खुदंसण-वडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

सूत्र ७१०. (ख) जो भिक्षु शुद्ध वंशज मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा के आने जाने के समय उन्हें देखने के संकल्प से एक कदम भी चलता है या चलने वाले का अनुमोदन करता है।

जे भिक्खू रण्णो खत्तियाणं मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं इत्थीओ सव्वालंकार-विभूसियाओ पयमवि चक्खुदंसण-वडियाए अभिसंधारेइ अभिसंधारेंतं वा साइज्जइ।

जो भिक्षु शुद्ध वंशज मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा की सर्व अलंकारों से विभूषित रानियों को देखने के संकल्प से एक कदम भी चलता है या चलने वाले का अनुमोदन करता है।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं अणुग्घाइयं। —नि. उ. ९, सु. ८-९

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक (परिहारस्थान) प्रायश्चित्त आता है।

पृष्ठ ४६६

गाम-रक्खग वसीकरणाईणं पायच्छित्त सुत्ताइं —

सूत्र ७२२. (ख) जे भिक्खू गामारक्खियं अत्तीकरेइ, अत्तीकरेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू गामारक्खियं अच्चीकरेइ, अच्चीकरेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू गामारक्खियं अत्थीकरेइ, अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। — नि. उ. ४, सु. ४०-४२

पृष्ठ ४६६

ग्राम रक्षक को वश में करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र—

सूत्र ७२२. (ख) जो भिक्षु ग्राम रक्षक को अपने वश में करता है या वश में करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु ग्राम रक्षक की प्रशंसा=गुण कीर्तन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु ग्राम रक्षक को अपनी तरफ आकृष्ट करता है या आकृष्ट करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक (परिहारस्थान) प्रायश्चित्त आता है।

पृष्ठ ४६६

रण्णा रक्खग वसीकरणाईणं पायच्छित्त सुत्ताइं —

सूत्र ७२२. (ग) जे भिक्खू रण्णारक्खियं अत्तीकरेइ, अत्तीकरेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू रण्णारक्खियं अच्चीकरेइ, अच्चीकरेंतं वा साइज्जइ।

जे भिक्खू रण्णारक्खियं अत्थीकरेइ, अत्थीकरेंतं वा साइज्जइ।

तं सेवमाणे आवज्जइ मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं। —नि. उ. ४, सु. ४६-४८

पृष्ठ ४६६

राज्य रक्षक को वश में करने आदि के प्रायश्चित्त सूत्र—

सूत्र ७२२. (ग) जो भिक्षु राज्य रक्षक को अपने वश में करता है या वश में करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु राज्य-रक्षक की प्रशंसा=गुण कीर्तन करता है या करने वाले का अनुमोदन करता है।

जो भिक्षु राज्य रक्षक को अपनी तरफ आकृष्ट करता है या आकृष्ट करने वाले का अनुमोदन करता है।

उसे मासिक उद्घातिक (परिहारस्थान) प्रायश्चित्त आता है।

पृष्ठ ४७४

भिक्खुस्स पंच महव्वयपालणा —

सूत्र ७२५. (घ) मुसावायं बहिद्धं च, उग्गहं च अजाइयं।
सत्थादाणाइं लोगंसि, तं विज्जं परिजाणिया॥
—सूय. सु. १, अ. ९, गा. १०

पृष्ठ ४७४

भिक्षु के पाँच महाव्रतों का पालन—

सूत्र ७२५. (घ) असत्य भाषण, स्त्री एवं परिग्रह का ग्रहण, बिना दिये वस्तु लेना एवं प्राणी हिंसा, ये लोक में कर्मबन्ध के स्थान है। विद्वान् मुनि इन्हें जानकर इनका त्याग करे।

पृष्ठ ४८८

सूत्र ७४६. जययं विहराहि जोगवं, अणुपाणा पंथा दुरुत्तरा।
अणुसासणमेव पक्कमे, वीरेहिं सम्मं पवेइयं॥
—सूय. सु. १, अ. २, उ. १, गा. ११

पृष्ठ ४८८

सूत्र ७४६. हे पुरुष ! तू यत्न करता हुआ, पाँच समिति और तीन गुप्ति से युक्त होकर विचरण कर, क्योंकि सूक्ष्मप्राणियों से परिपूर्ण मार्ग को उपयोग और यतना के बिना पार करना दुष्कर है। अतः शास्त्र में या जिनशासन में संयम पालन की जो रीति बताई है, उसके अनुसार संयम पथ पर चलना चाहिए। सभी तीर्थंकरों ने इसी का ही सम्यक् प्रकार से उपदेश दिया है।

पृष्ठ ५६२

बहिया णिग्गयाण-राईणं आहार गहण पायच्छित्त सुत्तं—

सूत्र ६४७. (ख) जे भिक्खू रण्णो-खत्तियाणं-मुदियाणं मुद्धाभिसित्ताणं मंसखायाण वा, मच्छ-खायाण वा, छविखायाण

पृष्ठ ५६२

बाहर गये हुए राजा के आहार ग्रहण करने का प्रायश्चित्त सूत्र—

सूत्र ६४७. (ख) जो भिक्षु मांस, मछली व फली आदि खाने के लिये बाहर गये हुए, शुद्ध वंशज मूर्द्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा के

वा, बहिया णिग्गयाणं असणं वा, जाव-साइमं वा पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं । —नि. उ. ९, सु. १०

अशन—यावत्—स्वाद्य को ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे चातुर्मासिक अनुद्घातिक (परिहारस्थान) प्रायश्चित्त आता है ।

पृष्ठ ५६०

ओसहस्स कीयाई दोसाणं पायच्छित्त सुत्ताइं—

सूत्र ६११. (ख) जे भिक्खू वियडं किणइ, किणावेइ, कीयं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू वियडं पामिच्चइ, पामिच्चावेइ, पामिच्चं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू वियडं परियट्टइ, परियट्टावेइ, परियट्टियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू वियडं अच्छेज्जं, अणिसिट्ठं, अभिहडं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू गिलाणस्स अट्ठाए परं तिण्हं वियड-दत्तीणं पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू वियडं गहाय गामाणुगामं दुइज्जइ दुइज्जंतं वा साइज्जइ ।

जे भिक्खू वियडं गालेइ गालावेइ गालियं आहट्टु देज्जमाणं पडिग्गाहेइ पडिग्गाहेंतं वा साइज्जइ ।

तं सेवमाणे आवज्जइ चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं । —नि उ. १९, सु. १-७

पृष्ठ ५६०

औषध सम्बन्धी क्रीतादि दोषों के प्रायश्चित्त सूत्र—

सूत्र ६११. (ख) जो भिक्षु औषध (किसी रोग विशेष की दवा) खरीदता है, खरीदवाता है या साधु के लिये खरीदकर देने वाले से ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु औषध उधार लाता है, उधार लिवाता है या उधार लाने वाले से ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु औषध को बदलता है बदलवाता है या बदलवा-कर लाने वाले से ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनु-मोदन करता है ।

जो भिक्षु छीन कर लाई हुई, स्वामी की आज्ञा के बिना लाई हुई अथवा सामने लाई हुई औषध को ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु ग्लान के लिए तीन दत्ति (तीन मात्रा) से अधिक औषध ग्रहण करता है या ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु औषध साथ में लेकर ग्रामानुग्राम विहार करता है या विहार करने वाले का अनुमोदन करता है ।

जो भिक्षु औषध को स्वयं गालता है, गलवाता है या गाल-कर देने वाले से ग्रहण करता है अथवा ग्रहण करने वाले का अनुमोदन करता है ।

उसे चातुर्मासिक उद्घातिक (परिहारस्थान) प्रायश्चित्त आता है ।